पुरा ह्युक्तो नाकरोस्त्वं वचो मे द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन्।
दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति ॥ ६८ ॥

राजन्! पहले जूएमें द्रौपदीको जीती गयी देखकर मैंने आपसे कहा था— 'आप द्यूतक्रीडामें आसक्त दुर्योधनको रोकिये, विद्वान्‌लोग इस जुएके लिये मना करते हैं।' किंतु आपने मेरा कहना नहीं माना ॥ ६८ ॥

न तद्बलं यन्मृदुना विरुध्यते मिश्रो धर्मस्तरसा सेवितव्यः।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥ ६९ ॥

वह बल नहीं, जिसका मृदुल स्वभावके साथ विरोध हो; बल और मृदुल स्वभावसे युक्त धर्मका ही शीघ्र सेवन करना चाहिये। क्रूरतापूर्वक उपार्जित लक्ष्मी नश्वर होती है, यदि वह मृदुलतापूर्वक बढायी जाए तो पुत्रपौत्रोंतक स्थिर रहती है ॥ ६९ ॥

धार्तराष्ट्राः पाण्डवान्पालयन्तु पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु।
एकारिमित्राः कुरवो ह्येकमन्त्रा जीवन्तु राजन्सुखिनः समृद्धाः ॥ ७० ॥

राजन्! आपके पुत्र पाण्डवोंकी रक्षा करें और पाण्डुके पुत्र आपके पुत्रोंकी रक्षा करें। सभी कौरव एकदूसरेके शत्रुको शत्रु और मित्रको मित्र समझें। सबकी एक ही सलाह और विचार हों, सभी सुखी और समृद्धिशाली होकर जीवन व्यतीत करें ॥ ७० ॥

मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ।
पार्थान्बालान्वनवासप्रतप्तान्गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन् ॥ ७१ ॥

अजमीढकुलनन्दन! इस समय आप ही कौरवोंके आधारस्तम्भ हैं, कुरुवंश आपके ही अधीन है। तात! वनवाससे बहुत कष्ट पाये हुए बालक पाण्डवोंका पालन करके अपने यशकी रक्षा कीजिये ॥ ७१ ॥

संधत्स्व त्वं कौरवान्पाण्डुपुत्रैर्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र ॥ ७२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ १२१२ ॥

कौरव पाण्डवोंसे संधि कर लें, जिससे शत्रुओंको आपका छिद्र देखनेका अवसर न मिले। नरदेव! समस्त पाण्डव सत्यपर डटे हुए हैं; अब आप अपने पुत्र दुर्योधनको रोकिये ॥ ७२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ १२१२ ॥

: ३७ :

विदुर उवाच

सप्तदशेमान्राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्रवीर्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥ १ ॥
तानेवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।
अथो मरीचिनः पादाननाम्यान्नमतस्तथा ॥ २ ॥

विदुर बोले– राजेन्द्र ! विचित्रवीर्यनन्दन ! स्वायम्भुव मनुने इन सत्रह प्रकारके पुरुषोंको आकाशपर मुक्कोंसे प्रहार करनेवाले, न झुकाये जा सकनेवाले, वर्षाकालीन इन्द्रधनुषको झुकानेकी चेष्टा करनेवाले तथा पकड़में न आनेवाली सूर्यकी किरणोंको पकड़नेका प्रयास करनेवाले बतलाया है अर्थात् इनके सभी उद्यमोंको निष्फल कहा है ॥ १–२ ॥

यश्चाशिष्यं शासति यश्च कुप्यते यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम् ।
स्त्रियश्च योऽरक्षति भद्रमस्तु ते यश्चायाच्यं याचति यश्च कत्थते ॥ ३ ॥

हे धृतराष्ट्र ! तेरा कल्याण हो, जो अशिष्यको उपदेश देता है, क्रोध करता है, मर्यादाका उल्लंघन करता है, शत्रुकी सेवा करता है, स्त्रीकी रक्षा नहीं करता है, याचना करनेके अयोग्य पुरुषसे याचना करता है तथा आत्मप्रशंसा करता है ॥ ३ ॥

यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी ।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ॥ ४ ॥

अच्छे कुलमें उत्पन्न होकर भी नीच कर्म करता है, दुर्बल होकर भी सदा बलवान्‌से वैर रखता है, श्रद्धाहीनको उपदेश करता है, न चाहने योग्य शास्त्रनिषिद्ध वस्तुको चाहता है ॥ ४ ॥

वध्वा हासं श्वशुरो यश्च मन्यते वध्वा वसन्नुत यो मानकामः ।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम् ॥ ५ ॥

श्वसुर होकर पुत्रवधूके साथ परिहास पसंद करता है, तथा पुत्रवधूसे एकान्तवास करके भी समाजमें अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, परस्त्रीमें अपने वीर्यका आधान करता है, मर्यादाके बाहर स्त्रीकी निन्दा करता है ॥ ५ ॥

×

यश्चैव लब्ध्वा न स्मरामीत्युवाच दत्त्वा च यः कत्थति याच्यमानः ।
यश्चासतः सान्त्वमुपास्तीह एतेऽनुयान्त्यनिलं पाशहस्ताः ॥ ६ ॥
किसीसे कोई वस्तु पाकर भी 'याद नहीं है', ऐसा कहकर उसे दबाना चाहता है, माँगनेपर दान देकर उसके लिये अपनी श्लाघा करता है और दुष्टोंके प्रति शान्तभावका उपयोग करता है। ये दुष्ट लोंगोको पाश हाथमें धारण करनेवाले यमदूत नरकमें ले जाते हैं ॥ ६ ॥

यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युदेयः ॥ ७ ॥
जो मनुष्य अपने साथ जैसा बर्ताव करे, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये, यही नीतिधर्म है। कपटका आचरण करनेवालेके साथ कपटपूर्ण बर्ताव करे और अच्छा बर्ताव करनेवालेके साथ साधुभावसे ही बर्ताव करना चाहिये ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ८ ॥
धृतराष्ट्र बोले– विदुर ! जब सभी वेदोंमें पुरुषको सौ वर्षकी आयुवाला बताया गया है, तब वह किस कारणसे अपनी पूर्ण आयुको नहीं पाता ? ॥ ८ ॥

विदुर उवाच

अतिवादोऽतिमानश्च तथात्यागो नराधिपः ।
क्रोधश्चातिविवित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥ ९ ॥
विदुर बोले– राजन् ! अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्यागका अभाव, क्रोध, अत्यधिक जाननेकी अभिलाषा और मित्रद्रोह ये छः ॥ ९ ॥

एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।
एतानि मानवान्घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥ १० ॥
तीखी तलवारें देहधारियोंकी आयुको काटती हैं। ये ही मनुष्योंका वध करती हैं, मृत्यु नहीं। तेरा कल्याण हो ॥ १० ॥

विश्वस्तस्यैति यो दारान्यश्चापि गुरुतल्पगः ।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ॥ ११ ॥
भारत ! जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले पुरुषकी स्त्रीके साथ समागम करता है, जो गुरुस्त्रीगामी है, ब्राह्मण होकर शूद्र स्त्रीके साथ विवाह करता है, शराब पीता है ॥ ११ ॥

शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणैः समाः ।
एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥ १२ ॥

तथा शरणागतकी हिंसा करनेवाला है, ये सबके सब ब्रह्महत्यारेके समान हैं; इनका सङ्ग हो जानेपर प्रायश्चित्त करे, यह वेदोंकी आज्ञा है ॥ १२ ॥

गृही वदान्योऽनपविद्धवाक्यः शेषान्नभोक्ताप्यविहिंसकश्च ।
नानर्थकृत्त्यक्तकलिः कृतज्ञः सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥ १३ ॥

गृहस्थधर्मका पालन करनेवाला, दाता, अप्रतिहत वचनवाला, यज्ञशेष अन्नको भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थपूर्ण कार्योंसे दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान् स्वर्गगामी होता है ॥ १३ ॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ १४ ॥

राजन् ! सदा प्रिय वचन बोलनेवाले मनुष्य तो सहजमें ही मिल सकते हैं; किंतु जो अप्रिय होता हुआ हितकारी हो, ऐसे वचनके वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं ॥ १४ ॥

यो हि धर्मं व्यपाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥ १५ ॥

जो धर्मका आश्रय लेकर तथा स्वामीको प्रिय लगेगा या अप्रिय इसका विचार छोडकर अप्रिय होनेपर भी हितकी बात कहता है, उसीसे राजाको सच्ची सहायता मिलती है ॥ १५ ॥

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १६ ॥

कुलकी रक्षाके लिए एक मनुष्यका, ग्रामकी रक्षाके लिए कुलका, देशकी रक्षाके लिए गाँवका और आत्माके कल्याणके लिए सारी पृथ्वीका त्याग कर देना चाहिये ॥ १६ ॥

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ १७ ॥

आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करे, धनके द्वारा भी स्त्रीकी रक्षा करे और स्त्री एवं धन दोनोंके द्वारा सदा अपनी रक्षा करे ॥ १७ ॥

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन्नैवं युक्तं वचनं प्रातिपीय ।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य न रोचते तव वैचित्रवीर्य ॥ १८ ॥

प्रतीपनन्दन ! विचित्रवीर्यकुमार राजन् ! मैंने जूएका खेल आरम्भ होते समय भी कहा था कि यह ठीक नहीं है, किंतु रोगीको जैसे दवा और पथ्य अच्छे नहीं लगते, उसी तरह मेरी वह बात भी आपको अच्छी नहीं लगी ॥ १८ ॥

काकैरिमांश्चित्रबर्हान्मयूरान्पराजैष्ठाः पाण्डवान्धार्तराष्ट्रैः ।
हित्वा सिंहान्क्रोष्टुकान्गूहमानः प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र ॥ १९ ॥

नरेन्द्र ! आप कौओंके समान अपने पुत्रोंके द्वारा विचित्र पंखवाले मोरोंके सदृश पाण्डवोंको पराजित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं; सिंहोंको छोडकर सियारोंकी रक्षा करनेवाले आपको समय आनेपर इसके लिये पश्चात्ताप करना पडेगा ॥ १९ ॥

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य ।
तस्मिन्भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥ २० ॥

तात ! जो स्वामी सदा हितसाधनमें लगे रहनेवाले अपने भक्त सेवकपर कभी क्रोध नहीं करता, उसपर भृत्यगण विश्वास करते हैं और उसे आपत्तिके समय भी नहीं छोडते ॥ २० ॥

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन बाह्यं जनं संजिघृक्षेदपूर्वम् ।
त्यजन्ति ह्येनमुचितावरुद्धाः स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥ २१ ॥

सेवकोंकी जीविका बंद करके दूसरोंके धनके अपहरणका प्रयत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि अपनी जीविका छिन जानेसे भोगोंसे हटाये गए पहलेके प्रेमी मन्त्री भी उस समय विरोधी बन जाते हैं और राजाका परित्याग कर देते हैं ॥ २१ ॥

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वाण्यायव्ययावनुरूपां च वृत्तिम् ।
संगृह्णीयादनुरूपान्सहायान्सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥ २२ ॥

पहले कर्तव्य एवं आयव्यय और उचित वेतन आदिका निश्चय करके फिर सुयोग्य सहायकोंका संग्रह करे; क्योंकि कठिनसे कठिन कार्य भी सहायकोंद्वारा साध्य होते हैं ॥ २२ ॥

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्रीः ।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥ २३ ॥

जो सेवक स्वामीके अभिप्रायको समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्योंको पूरा करता है, जो हितकी बात कहनेवाला, स्वामिभक्त, सज्जन और राजाकी शक्तिको जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर उसपर कृपा करनी चाहिये ॥ २३ ॥

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः ।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक्त्वरयैव भृत्यः ॥ २४ ॥

जो सेवक स्वामीके आज्ञा देनेपर उनकी बातका आदर नहीं करता, किसी काममें लगाये जानेपर अस्वीकार कर देता है, अपनी बुद्धिपर गर्व करने और प्रतिकूल बोलनेवाले उस भृत्यको शीघ्र ही त्याग देना चाहिये ॥ २४ ॥

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥ २५ ॥

अहंकाररहित, कायरताशून्य, शीघ्र काम पूरा करनेवाला, दयालु, शुद्धहृदय, दूसरोंके बहकावेमें न आनेवाला, नीरोग और उदार वचनवाला इन आठ गुणोंसे युक्त मनुष्यको दूत बनाने योग्य बताया गया है ॥ २५ ॥

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहं गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजन्यां योषितं प्रार्थयीत ॥ २६ ॥

सावधान मनुष्य विश्वास करके असमयमें कभी किसी दूसरेके घर न जाय, रातमें छिपकर चौराहेपर न खडा हो और राजाकी कन्याको अपने स्त्रीके रूपमें प्राप्त करनेका यत्न न करे ॥ २६ ॥

न निह्नवं सत्रगतस्य गच्छेत्संसृष्टमन्त्रस्य कुसङ्गतस्य।
न च ब्रूयान्नाश्वसामि त्वयीति सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥ २७ ॥

दुष्ट सहायकोंवाला राजा जब बहुत लोगोंके साथ मन्त्रणा समितिमें बैठकर सलाह ले रहा हो, उस समय उसकी बातका खण्डन न करे; मैं तुमपर विश्वास नहीं करता, ऐसा भी न कहे, अपितु कोई युक्तिसंगत बहाना बनाकर वहाँसे हट जाय ॥ २७ ॥

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा।
सेनाजीवी चोद्धृतभक्त एव व्यवहारे वै वर्जनीयाः स्युरेते ॥ २८ ॥

अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र, भाई, छोटे बच्चोंवाली विधवा, सैनिक और उद्दण्डभक्त इन सबके साथ लेन देनका व्यवहार न करे ॥ २८ ॥

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥ २९ ॥

नित्य स्नान करनेवाले मनुष्यको बल, रूप, मधुरस्वर, उज्ज्वल वर्ण, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दर स्त्रियाँ ये दस लाभ प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च सुखं बलं च।
अनाविलं चास्य भवेदपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥ ३० ॥

थोडा भोजन करनेवालेको निम्नाङ्कित छः गुण प्राप्त होते हैं, आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं, उसकी संतान उत्तम होती है तथा यह बहुत खानेवाला है ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते ॥ ३० ॥

शाप, अम्बाका दूसरा शरीर धारण करके भीष्मवधकी प्रतिज्ञा करके अग्निप्रवेश आदि कथाओंका वर्णन है।

इसी अम्बोपाख्यानपर्वके उत्तरार्धमें सन्तानहीन द्रुपदके द्वारा सन्तानकी प्राप्तिके लिए शंकरकी आराधना, शंकरका प्रसन्न होकर द्रुपदको कन्या प्राप्तिका वरदान देना, द्रुपदकी पुत्रप्राप्तिकी प्रार्थनापर शंकरका उस कन्याका बादमें पुरुष बन जानेकी बात कहना, द्रुपदका अपनी कन्याका पुत्रवत् पोषण, युवावस्थामें द्रुपदका अपनी कन्याका दशार्ण राजा हिरण्यवर्माकी पुत्रीसे विवाह करना, हिरण्यवर्माकी पुत्रीकी द्वारा रहस्योद्घाटन, हिरण्यवर्माका क्रुद्ध होकर द्रुपदपर आक्रमण करना, अपने मातापिताके दुःखसे दुःखी होकर शिखण्डीका वनमें जाकर मरनेका निश्चय करना, वनमें यक्ष स्थूणाकर्णसे शिखण्डीकी भेंट, शिखण्डीका दुःख जानकर स्थूणाकर्णका शिखण्डीको अपना पुरुषत्व देकर स्वयं उसका स्त्रीत्व ग्रहण करना, प्रसन्न हुए शिखण्डीका वापस लौटना, उसी समय यक्षराज कुबेरका स्थूणाकर्णके पास आगमन, स्थूणाकर्णके वृत्तान्तको जानकर कुबेरका उसे शिखण्डीके मरनेतक स्त्रीरूपमें रहनेका शाप देना, पुरुषत्व प्राप्त शिखण्डीकी हिरण्यवर्माके द्वारा परीक्षा तथा प्रसन्न होना आदि कथाओंका वर्णन है।

इसी पर्वके अन्तिम भागमें दुर्योधनका भीष्म, द्रोण आदिसे शत्रुओंके संहारके बारेमें उनकी शक्तिका ज्ञान प्राप्त करना, इसी तरह युधिष्ठिरका अपने वीरोंकी शक्तिका ज्ञान प्राप्त करना तथा कौरवों और पाण्डवोंका अपनी अपनी सेनाओंका व्यूह बनाकर युद्धके लिए प्रस्थान करनेका वर्णन है। इसी वर्णनके साथ यह उद्योगपर्व समाप्त होता है।

आभार – प्रदर्शन

महाभारतका यह पांचवां भाग उद्योगपर्व पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत है। इस भागके प्रकाशनकार्यमें हमें सबसे बडी सहायता आधुनिक भामाशाहके नामसे प्रसिद्ध स्वर्गीय सेठ जुगुलकिशोरजी बिरला के सुयोग्य भ्रातृव्य श्री सेठ गङ्गाप्रसादजी बिरला से मिली है। उन्होंने इस पर्वके प्रकाशनके लिए अपनी मिलसे हमें कम दामोंपर कागज दिलवाकर हमारी जो सहायता की और हमारा जो उत्साह बढाया, उसके लिए हम श्री सेठजीके सदा आभारी रहेंगे। उनके अतिरिक्त भी जिन महानुभावोंने ज्ञात या अज्ञातरूपसे इस कार्यमें अपना सहयोग दिया है, उनके प्रति भी हम अपना आभार प्रकट करते हैं।

सम्पादकमण्डल

उद्योग पर्व



महाभारत

उद्योगपर्व

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ गणोंके ईशके लिये नमस्कार हो ।

ॐ नरोत्तम नारायण, नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जयकी घोषणा करनी चाहिये ॥

: १ :

वैशम्पायन उवाच

कृत्वा विवाहं तु कुरुप्रवीरास्तदाभिमन्योर्मुदितस्वपक्षाः ।
विश्रम्य चत्वार्युषसः प्रतीताः सभां विराटस्य ततोऽभिजग्मुः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! उस समय अभिमन्युका विवाह करके अपने दलवालोंके सहित कुरुवीर पाण्डव अत्यन्त आनन्दित हुए। चार दिन विश्राम करके वे विराट्की सभामें उपस्थित हुए ॥ १ ॥

सभा तु सा मत्स्यपतेः समृद्धा मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।
न्यस्तासना माल्यवती सुगन्धा तामभ्ययुस्ते नरराजवर्याः ॥ २ ॥

मत्स्य देशके अधिपति विराट्की वह सभा अत्यन्त समृद्धिशालिनी थी । उसमें मणियोंकी खिडकियाँ और झालरें लगी थीं । उसके फर्श और दीवारोंमें उत्तम–उत्तम रत्न लगे हुए थे । उस सभाभवनमें यथायोग्य स्थानोंपर आसन लगे हुए थे, जगह–जगह मालाएँ लटक रही थीं और सब ओर सुगन्ध फैल रही थी । वे श्रेष्ठ नरपतिगण पाण्डव उसी सभामें गए ॥ २ ॥

अथासनान्याविशतां पुरस्तादुभौ विराटद्रुपदौ नरेन्द्रौ ।
वृद्धश्च मान्यः पृथिवीपतीनां पितामहो रामजनार्दनाभ्याम् ॥ ३ ॥

वहाँ सबसे पहले विराट और द्रुपद ये दोनों राजा आसनपर विराजमान हुए; क्योंकि वे दोनों समस्त भूपतियोंमें वृद्ध और माननीय थे । तत्पश्चात् अपने पिता वसुदेवके साथ बलराम और श्रीकृष्णने भी आसन ग्रहण किये ॥ ३ ॥

पाञ्चालराजस्य समीपतस्तु शिनिप्रवीरः सहरौहिणेयः ।
मत्स्यस्य राज्ञस्तु सुसंनिकृष्टौ जनार्दनश्चैव युधिष्ठिरश्च ॥ ४ ॥

पाञ्चालराज द्रुपदके पास शिनिवंशके श्रेष्ठ वीर सात्यकि तथा रोहिणीनन्दन बलरामजी बैठे थे और मत्स्यराज विराटके अत्यन्त निकट श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर बैठे ॥ ४ ॥

सुताश्च सर्वे द्रुपदस्य राज्ञो भीमार्जुनौ माद्रवतीसुतौ च ।
प्रद्युम्नसाम्बौ च युधि प्रवीरौ विराटपुत्रश्च सहाभिमन्युः ॥ ५ ॥

राजा द्रुपदके सब पुत्र, भीमसेन, अर्जुन, माद्रीके पुत्र नकुल, सहदेव, युद्धवीर प्रद्युम्न और साम्ब, विराटके पुत्र सहित अभिमन्यु ॥ ५ ॥

सर्वे च शूराः पितृभिः समाना वीर्येण रूपेण बलेन चैव ।
उपाविशन् द्रौपदेयाः कुमाराः सुवर्णचित्रेषु वरासनेषु ॥ ६ ॥

पराक्रम, सौन्दर्य, शूरवीरता और बलमें अपने पिता पाण्डवोंके ही समान द्रौपदीके सभी पुत्र सुवर्णजटित सुन्दर सिंहासनोंपर आसपास ही बैठे थे ॥ ६ ॥

तथोपविष्टेषु महारथेषु विभ्राजमानाम्बरभूषणेषु ।
रराज सा राजवती समृद्धा ग्रहैरिव द्यौर्विमलैरुपेता ॥ ७ ॥

इस प्रकार चमकीले आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रोंसे विभूषित उन समस्त महारथियोंके बैठ जानेपर राजाओंसे भरी हुई वह समृद्धिशालिनी सभा ऐसी शोभा पा रही थी; मानो उज्ज्वल ग्रह-नक्षत्रोंसे भरा हुआ आकाश जगमगा रहा हो ॥ ७ ॥

ततः कथास्ते समवाययुक्ताः कृत्वा विचित्राः पुरुषप्रवीराः ।
तस्थुर्मुहूर्तं परिचिन्तयन्तः कृष्णं नृपास्ते समुदीक्षमाणाः ॥ ८ ॥

तदनन्तर उन शूरवीर पुरुषोंने समाजमें बोलने योग्य अनेक प्रकारकी विचित्र बातें कीं। फिर वे सब नरेश भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए थोडी देरतक कुछ सोचते हुए चुप बैठ रहे ॥ ८ ॥

कथान्तमासाद्य च माधवेन संघट्टिताः पाण्डवकार्यहेतोः ।
ते राजसिंहाः सहिता ह्यशृण्वन् वाक्यं महार्थं च महोदयं च ॥ ९ ॥

जब उन सब लोगोंकी बातचीत बंद हो गयी, तब पाण्डवोंके कार्यके लिए संघटित हुए हुए वे सिंहके समान पराक्रमी नरेश एकसाथ श्रीकृष्णके सारगर्भित तथा श्रेष्ठ फल देनेवाले वचन सुनने लगे ॥ ९ ॥

कृष्ण उवाच

सर्वैर्भवद्भिर्विदितं यथायं युधिष्ठिरः सौबलेनाक्षवत्याम् ।
जितो निकृत्यापहृतं च राज्यं पुनः प्रवासे समयः कृतश्च ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण बोले– उपस्थित सुहृद्गण ! आप सब लोगोंको यह मालूम ही है कि सुबलपुत्र शकुनिने द्यूतसभामें किस प्रकार कपट करके धर्मात्मा युधिष्ठिरको परास्त किया और इनका राज्य छीन लिया था । फिर वन जानेकी शर्त रखी थी ॥ १० ॥

शक्तैर्विजेतुं तरसा महीं च सत्ये स्थितैस्तच्चरितं यथावत् ।
पाण्डोः सुतैस्तद् व्रतमुग्ररूपं वर्षाणि षट् सप्त च भारताग्र्यैः ॥ ११ ॥

पाण्डव सदा सत्यमें स्थित रहते हैं । वेगपूर्वक समस्त भूमण्डलको जीत लेनेकी शक्ति है तथापि इन वीराग्रगण्य पाण्डुकुमारोंने सत्यका ख्याल करके तेरह वर्षोंतक वनवास और अज्ञातवासके उस कठोर और उग्रस्वरूपवाले व्रतका धैर्यपूर्वक पालन किया है ॥ ११ ॥

त्रयोदशश्चैव सुदुस्तरोऽयमज्ञायमानैर्भवतां समीपे ।
क्लेशानसह्यांश्च तितिक्षमाणैर्यथोषितं तद्विदितं च सर्वम् ॥ १२ ॥

इस तेरहवें वर्षको पार करना बहुत ही कठिन था, परंतु सुखदुःखोंको सहनेवाले इन महात्माओंने आपके पास ही अज्ञातरूपसे रहकर भाँति–भाँतिके असह्य क्लेश सहते हुए यह वर्ष बिताया है, यह सब आपको ज्ञात ही है ॥ १२ ॥

×

एवं गते धर्मसुतस्य राज्ञो दुर्योधनस्यापि च यद्धितं स्यात्।
तच्चिन्तयध्वं कुरुपाण्डवानां धर्म्यं च युक्तं च यशस्करं च ॥ १३ ॥

ऐसी परिस्थितिमें जिस उपायसे धर्मपुत्र युधिष्ठिर तथा राजा दुर्योधनका भी हित हो, उसका आप लोग विचार करें। आप कोई ऐसा मार्ग ढूंढ निकालें, जो इन कुरुश्रेष्ठ वीरोंके लिये धर्मानुकूल न्यायोचित तथा यशकी वृद्धि करनेवाला हो ॥ १३ ॥

अधर्मयुक्तं च न कामयेत राज्यं सुराणामपि धर्मराजः।
धर्मार्थयुक्तं च महीपतित्वं ग्रामेऽपि कस्मिंश्चिदयं बुभूषेत् ॥ १४ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर यदि धर्मके विरुद्ध देवताओंका भी राज्य प्राप्त होता हो, तो उसे लेना नहीं चाहेंगे। किसी छोटेसे गाँवका राज्य भी यदि धर्म और अर्थके अनुकूल प्राप्त होता हो, तो ये उसे ये भूपित कर सकते हैं ॥ १४ ॥

पित्र्यं हि राज्यं विदितं नृपाणां यथापकृष्टं धृतराष्ट्रपुत्रैः।
मिथ्योपचारेण तथाप्यनेन कृच्छ्रं महत् प्राप्तमसह्यरूपम् ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंके पैतृक राज्यका किस प्रकार अपहरण किया है यह आप सभी नरेशोंको विदित ही है कौरवोंके इस मिथ्या व्यवहार तथा छल–कपटके कारण पाण्डवोंको महान् और असह्य कष्ट भोगना पडा है ॥ १५ ॥

न चापि पार्थो विजितो रणे तैः स्वतेजसा धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः।
तथापि राजा सहितः सुहृद्भिरभीप्सतेऽनामयमेव तेषाम् ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्रके उन पुत्रोंने अपने बल और पराक्रमसे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको किसी युद्धमें पराजित नहीं किया था (छलसे ही इनका राज्य छीना) तथापि सुहृदोंसहित राजा युधिष्ठिर उनकी भलाई ही चाहते हैं ॥ १६ ॥

यत् तत्स्वयं पाण्डुसुतैर्विजित्य समाहृतं भूमिपतीन् निपीड्य।
तत् प्रार्थयन्ते पुरुषप्रवीराः कुन्तीसुता माद्रवतीसुतौ च ॥ १७ ॥

पाण्डवोंने दूसरे–दूसरे राजाओंको युद्धमें जीतकर उन्हें पीडित करके जो धन स्वयं प्राप्त किया था, उसीको कुन्ती और माद्रीके ये वीर पुत्र माँग रहे हैं ॥ १७ ॥

बालास्त्विमे तैर्विविधैरुपायैः सम्प्रार्थिता हन्तुममित्रसाहाः।
राज्यं जिहीर्षद्भिरसद्भिरुग्रैः सर्वं च तद् वो विदितं यथावत् ॥ १८ ॥

जब पाण्डव बालक थे तभी इनके राज्यको हर लेनेकी इच्छासे उन उग्र प्रकृतिके दुष्ट शत्रुओंने संघबद्ध होकर भाँति–भाँतिके षड्यन्त्रोंद्वारा इन्हें मार डालनेकी पूरी चेष्टा की थी; ये सब बातें आपलोग अच्छी तरह जानते होंगे ॥ १८ ॥

तेषां च लोभं प्रसमीक्ष्य वृद्धं धर्मात्मतां चापि युधिष्ठिरस्य ।
सम्बन्धितां चापि समीक्ष्य तेषां मतिं कुरुध्वं सहिताः पृथक् च ॥ १९ ॥

अतः सभी सभासद् कौरवोंके बढे हुए लोभको तथा युधिष्ठिरकी धर्मज्ञताको तथा इन दोनोंके पारस्परिक सम्बन्धको देखते हुए अलग-अलग तथा एक रायसे भी कुछ निश्चय करें ॥ १९ ॥

इमे च सत्येऽभिरताः सदैव तं पारयित्वा समयं यथावत् ।
अतोऽन्यथा तैरुपचर्यमाणा हन्युः समेतान् धृतराष्ट्रपुत्रान् ॥ २० ॥

ये पाण्डवगण सदा ही सत्यपरायण होनेके कारण पहले की हुई प्रतिज्ञाका यथावत् पालन करके हमारे सामने उपस्थित हैं यदि अब भी धृतराष्ट्रके पुत्र इनके साथ विपरीत व्यवहार ही करते रहेंगे— इनका राज्य नहीं लौटायेंगे, तो पाण्डव उन सबको मार डालेंगे ॥२०॥

तैर्विप्रकारं च निशम्य राज्ञः सुहृज्जनास्तान् परिवारयेयुः ।
युद्धेन बाधेयुरिमांस्तथैव तैर्बध्यमाना युधितांश्च हन्युः ॥ २१ ॥

उनकी बुराईपर ही तुले हुए हैं; यह बात निश्चितरूपसे जान लेनेपर सुहृदों और सम्बन्धियोंको उचित है कि वे उन दुष्ट कौरवोंको (इस प्रकार अत्याचार करनेसे) रोकें यदि धृतराष्ट्रके पुत्र इस प्रकार युद्ध छोडकर इन पाण्डवोंको सतायेंगे, तो उनके बाध्य करनेपर ये भी डटकर युद्धमें उनका सामना करेंगे और उन्हें मार गिरायेंगे ॥ २१ ॥

तथापि नेमेऽल्पतया समर्थास्तेषां जयायेति भवेन्मतं वः ।
समेत्य सर्वे सहिताः सुहृद्भिस्तेषां विनाशाय यतेयुरेव ॥ २२ ॥

सम्भव है, आपलोग यह सोचते हों कि ये पाण्डव अल्पसंख्यक होनेके कारण उनपर विजय पानेमें समर्थ नहीं हैं तथापि ये सब लोग अपने हितैषी सुहृदोंके साथ मिलकर शत्रुओंके विनाशके लिये प्रयत्न तो करेंगे ही ॥ २२ ॥

दुर्योधनस्यापि मतं यथावन्न ज्ञायते किं नु करिष्यतीति ।
अज्ञायमाने च मते परस्य किं स्यात् समारभ्यतमं मतं वः ॥ २३ ॥

युद्धका भी निश्चय कैसे किया जाय; क्योंकि, दुर्योधनके भी मतका अभी ठीक–ठीक पता नहीं है कि वह क्या करेगा ? शत्रुपक्षका विचार जाने बिना आपलोग कोई ऐसा निश्चय कैसे कर सकते हैं ? ॥ २३ ॥

तस्मादितो गच्छतु धर्मशीलः शुचिः कुलीनः पुरुषोऽप्रमत्तः ।
दूतः समर्थः प्रशमाय तेषां राज्यार्धदानाय युधिष्ठिरस्य ॥ २४ ॥

अतः मेरा विचार है कि यहाँसे कोई धर्मशील, पवित्रात्मा, कुलीन और सावधान पुरुष दूत बनकर वहाँ जाय । वह दूत ऐसा होना चाहिये, जो उनके जोश तथा रोषको शान्त करनेमें समर्थ हो और उन्हें युधिष्ठिरको आधा राज्य दे देनेके लिये विवश कर सके ॥२४॥

निशम्य वाक्यं तु जनार्दनस्य धर्मार्थयुक्तं मधुरं समं च ।
समाददे वाक्यमथाग्रजोऽस्य संपूज्य वाक्यं तदतीव राजन् ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णका धर्म और अर्थसे युक्त, मधुर एवं उभयपक्षके लिये समान-रूपसे हितकर वचन सुनकर उनके बडे भाई बलरामजीने उस भाषणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके अपना वक्तव्य आरम्भ किया ॥ २९ ॥

॥ महाभारतमें उद्योगपर्वमें पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ २९ ॥

: २ :

बलदेव उवाच

श्रुतं भवद्भिर्गदपूर्वजस्य वाक्यं यथा धर्मवदर्थवच्च ।
अजातशत्रोश्च हितं हितं च दुर्योधनस्यापि तथैव राज्ञः ॥ १ ॥

बलदेव बोले— सज्जनो ! गदाग्रज श्रीकृष्णने जो कुछ धर्मानुकूल तथा अर्थशास्त्रसम्मत सम्भाषण किया है, उसे आप सब लोगोंने सुना है । इसीमें अजातशत्रु युधिष्ठिरका भी हित है तथा ऐसा करनेसे ही राजा दुर्योधनकी भलाई है ॥ १ ॥

अर्धं हि राज्यस्य विसृज्य वीराः कुन्तीसुतास्तस्य कृते यतन्ते ।
प्रदाय चार्धं धृतराष्ट्रपुत्रः सुखी सहास्माभिरतीव मोदेत् ॥ २ ॥

वीर कुन्तीकुमार आधा राज्य छोडकर केवल आधेके लिये ही प्रयत्नशील हैं । दुर्योधन भी पाण्डवोंको आधा राज्य देकर हमारे साथ स्वयं भी सुखी और प्रसन्न होवे ॥ २ ॥

लब्ध्वा हि राज्यं पुरुषप्रवीराः सम्यक्प्रवृत्तेषु परेषु चैव ।
ध्रुवं प्रशान्ताः सुखमाविशेयुस्तेषां प्रशान्तिश्च हितं प्रजानाम् ॥ ३ ॥

पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर पाण्डव आधा राज्य पाकर दूसरे पक्षकी ओरसे अच्छा बर्ताव होनेपर अवश्य ही शान्त रहकर कहीं सुखपूर्वक निवास करेंगे । इससे कौरवोंको शान्ति मिलेगी और प्रजावर्गका भी हित होगा ॥ ३ ॥

दुर्योधनस्यापि मतं च वेत्तुं वक्तुं च वाक्यानि युधिष्ठिरस्य ।
प्रियं मम स्याद् यदि तत्र कश्चिद् व्रजेच्छमार्थं कुरुपाण्डवानाम् ॥ ४ ॥

यदि दुर्योधनका भी विचार जाननेके लिये, युधिष्ठिरके संदेशको उसके कानोंतक पहुँचानेके लिये तथा कौरव-पाण्डवोंमें शान्ति स्थापित करनेके लिये कोई दूत जाय, तो यह मेरे लिये बडी प्रसन्नताकी बात होगी ॥ ४ ॥

स भीष्ममामन्त्र्य कुरुप्रवीरं वैचित्रवीर्यं च महानुभावम् ।
द्रोणं सपुत्रं विदुरं कृपं च गान्धारराजं च ससूतपुत्रम् ॥ ५ ॥

यह दूत वहाँ जाकर कुरुवंशके श्रेष्ठ वीर भीष्म, महानुभाव धृतराष्ट्र, द्रोण, अश्वत्थामा, विदुर, कृपाचार्य, शकुनि, कर्ण ॥ ५ ॥

सर्वे च येऽन्ये धृतराष्ट्रपुत्रा बलप्रधाना निगमप्रधानाः ।
स्थिताश्च धर्मेषु यथा स्वकेषु लोकप्रवीराः श्रुतकालवृद्धाः ॥ ६ ॥

तथा दूसरे सब धृतराष्ट्र पुत्र, जो शक्तिशाली, वेदज्ञ, स्वधर्मनिष्ठ लोकप्रसिद्ध वीर, विद्या-वृद्ध और वयोवृद्ध हैं, उन सबको आमन्त्रित करे ॥ ६ ॥

एतेषु सर्वेषु समागतेषु पौरेषु वृद्धेषु च संगतेषु ।
ब्रवीतु वाक्यं प्रणिपातयुक्तं कुन्तीसुतस्यार्थकरं यथा स्यात् ॥ ७ ॥

और इन सबके आजाने एवं नागरिकों तथा बडे–बूढोंके सम्मिलित होनेपर वह दूत विनयपूर्वक प्रणाम करके ऐसी बात कहे, जिससे युधिष्ठिरके प्रयोजनकी सिद्धि हो ॥ ७ ॥

सर्वास्ववस्थासु च ते न कोप्या ग्रस्तो हि सोऽर्थो बलमाश्रितैस्तैः ।
प्रियाभ्युपेतस्य युधिष्ठिरस्य द्यूते प्रमत्तस्य हृतं च राज्यम् ॥ ८ ॥

किसी भी दशामें कौरवोंको उत्तेजित या कुपित नहीं करना चाहिये, क्योंकि उन्होंने बलवान् होकर ही पाण्डवोंके राज्यपर अधिकार जमाया है । ये युधिष्ठिर भी जूएको प्रिय मानकर उसमें आसक्त हो गये थे । तभी इनके राज्यका अपहरण हुआ है ॥ ८ ॥

निवार्यमाणश्च कुरुप्रवीरैः सर्वैः सुहृद्भिर्ह्ययमप्यतज्ज्ञः ।
गान्धारराजस्य सुतं मताक्षं समाह्वयद् देवितुमाजमीढः ॥ ९ ॥

अजमीढवंशी कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर जूएका खेल नहीं जानते थे । इसीलिये समस्त सुहृदोंने इन्हें मना किया था, दूसरी ओर गान्धारराजका पुत्र शकुनि जूएके खेलमें निपुण था । फिर भी इन्होंने शकुनिको ही अपने साथ जूआ खेलनेके लिये ललकारा था ॥ ९ ॥

दुरोदरास्तत्र सहस्रशोऽन्ये युधिष्ठिरो यान् विषहेत जेतुम् ।
उत्सृज्य तान् सौबलमेव चायं समाह्वयत् तेन जितोऽक्षवत्याम् ॥ १० ॥

उस सभामें दूसरे भी हजारों जुआरी मौजूद थे, जिन्हें युधिष्ठिर जीत सकते थे । परंतु उन सबको छोडकर इन्होंने सुबलपुत्रको ही बुलाया । इसीलिये उस जूएमें इनकी हार हुई ॥ १० ॥

स दीव्यमानः प्रतिदेवनेन अक्षेषु नित्यं सुपराङ्मुखेषु ।
संरम्भमाणो विजितः प्रसह्य तत्रापराधः शकुनेर्न कश्चित् ॥ ११ ॥

जब ये खेलने लगे और प्रतिपक्षीकी ओरसे फेंके हुए पासे लगातार इनके प्रतिकूल पडने लगे, तब भी इन्होंने हठपूर्वक खेल जारी रक्खा और अपनेको हराया, इसमें शकुनिका कोई अपराध नहीं है ॥ ११ ॥

तस्मात् प्रणम्यैव वचो ब्रवीतु वैचित्रवीर्यं बहुसामयुक्तम् ।
तथा हि शक्यो धृतराष्ट्रपुत्रः स्वार्थे नियोक्तुं पुरुषेण तेन ॥ १२ ॥

इसलिये जो दूत यहाँसे भेजा जाय, वह धृतराष्ट्रको प्रणाम करके अत्यन्त विनयके साथ सामनीतियुक्त वचन कहे । ऐसा करनेसे ही धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको वह पुरुष अपने प्रयोजनकी सिद्धिमें लगा सकता है ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवत्येव मधुप्रवीरे शिनिप्रवीरः सहसोत्पपात ।
तच्चापि वाक्यं परिनिन्द्य तस्य समाददे वाक्यमिदं समन्युः ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! मधुवंशके प्रमुख और वीर बलदेव इस प्रकार कह ही रहे थे कि शिनिवंशके श्रेष्ठ शूरवीर सात्यकि सहसा उछलकर खडे हो गये । उन्होंने कुपित होकर बलभद्रजीके भाषणकी कडी आलोचना करते हुए इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ १३ ॥

॥ महाभारतमें उद्योगपर्वके अन्तर्गत दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ ३८ ॥

: ३ :

सात्यकिरुवाच

यादृशः पुरुषस्यात्मा तादृशं सम्प्रभाषते ।
यथारूपोऽन्तरात्मा ते तथारूपं प्रभाषसे ॥ १ ॥

सात्यकि बोला— बलराम ! मनुष्यका जैसा हृदय होता है, वैसी ही बात उसके मुखसे निकलती है । आपका भी जैसा अन्तःकरण है, वैसा ही आप भाषण दे रहे हैं ॥ १ ॥

सन्ति वै पुरुषाः शूराः सन्ति कापुरुषास्तथा ।
उभावेतौ दृढौ पक्षौ दृश्येते पुरुषान् प्रति ॥ २ ॥

संसारमें शूर-वीर पुरुष भी हैं और कापुरुष (कायर) भी । पुरुषोंमें ये दोनों पक्ष निश्चित-रूपसे देखे जाते हैं ॥ २ ॥

एकस्मिन्नेव जायेते कुले क्लीबमहारथौ ।
फलाफलवती शाखे यथैकस्मिन् वनस्पतौ ॥ ३ ॥

जैसे एक ही वृक्षमें कोई शाखा फलवती होती है और कोई फलहीन, इसी प्रकार एक ही कुलमें दो प्रकारकी संतान उत्पन्न होती है, एक नपुंसक और दूसरी महारथी ॥ ३ ॥

नाभ्यसूयामि ते वाक्यं ब्रुवतो लाङ्गलध्वज ।
ये तु शृण्वन्ति ते वाक्यं तानसूयामि माधव ॥ ४ ॥

अपनी ध्वजामें हलका चिह्न धारण करनेवाले मधुकुलरत्न ! आप जो कुछ कह रहे हैं, उसमें मैं दोष नहीं निकाल रहा हूँ, जो लोग आपकी बातें चुप-चाप सुन रहे हैं, उन्हींको मैं दोषी मानता हूँ ॥ ४ ॥

कथं हि धर्मराजस्य दोषमल्पमपि ब्रुवन् ।
लभते परिषन्मध्ये व्याहर्तुमकुतोभयः ॥ ५ ॥

भला, कोई भी मनुष्य भरी सभामें निर्भय होकर धर्मराज युधिष्ठिरपर थोडासा भी दोषारोपण करता हुआ बोलनेका अवसर पा सकता है ? ॥ ५ ॥

समाहूय महात्मानं जितवन्तोऽक्षकोविदाः ।
अनक्षज्ञं यथाश्रद्धं तेषु धर्मजयः कुतः ॥ ६ ॥

जूआ खेलना न जाननेवाले महात्मा युधिष्ठिरको जूएके खेलमें निपुण धूर्तोंने बुलाकर अपने इच्छाके अनुसार हराया अथवा जीता है । यह उनकी धर्मपूर्वक विजय कैसे कही जा सकती है ? ॥ ६ ॥

यदि कुन्तीसुतं गेहे क्रीडन्तं भ्रातृभिः सह ।
अभिगम्य जयेयुस्ते तत् तेषां धर्मतो भवेत् ॥ ७ ॥

यदि भाइयोंसहित कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर अपने घरपर जूआ खेलते होते और ये कौरव वहाँ जाकर उन्हें हरा देते, तो यह उनकी धर्मपूर्वक विजय कही जा सकती थी ॥ ७ ॥

समाहूय तु राजानं क्षत्रधर्मरतं सदा ।
निकृत्या जितवन्तस्ते किं नु तेषां परं शुभम् ॥ ८ ॥

परंतु उन्होंने सदा क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले राजा युधिष्ठिरको बुलाकर छल और कपटसे उन्हें पराजित किया है । क्या यही उनका परम कल्याणमय कर्म कहा जा सकता है ? ॥ ८ ॥

कथं प्रणिपतेच्चायमिह कृत्वा पणं परम् ।
वनवासाद् विमुक्तस्तु प्राप्तः पैतामहं पदम् ॥ ९ ॥

ये राजा युधिष्ठिर अपनी वनवासविषयक प्रतिज्ञा तो पूर्ण ही कर चुके हैं, अब किस लिये उनके आगे मस्तक झुकायें— क्यों प्रणाम अथवा विनय करें ? वनवासके बन्धनसे मुक्त होकर अब ये अपने बापदादओंके राज्यको पानेके न्यायतः अधिकारी हो गये हैं ॥ ९ ॥

यद्ययं परवित्तानि कामयेत युधिष्ठिरः ।
एवमप्ययमत्यन्तं परान् नार्हति याचितुम् ॥ १० ॥

यदि युधिष्ठिर अन्यायसे भी अपना धन, अपना राज्य लेनेकी इच्छा करें, तो भी अत्यन्त दीन बनकर शत्रुओंके सामने हाथ फैलाने या भीख माँगनेके योग्य नहीं हैं ॥ १० ॥

कथं च धर्मयुक्तास्ते न च राज्यं जिहीर्षवः ।
निवृत्तवासान् कौन्तेयान् य आहुर्विदिता इति ॥ ११ ॥

कुन्तीके पुत्र वनवासकी अवधि पूरी करके जब लौटे हैं, जो कौरव यह कहने लगे हैं कि हमने तो इन्हें समय पूर्ण होनेसे पहले ही पहचान लिया है । ऐसी दशामें यह कैसे कहा जाय कि कौरव धर्ममें तत्पर हैं और पाण्डवोंके राज्यका अपहरण नहीं करना चाहते हैं ॥ ११ ॥

अनुनीता हि भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
न व्यवस्यन्ति पाण्डूनां प्रदातुं पैतृकं वसु ॥ १२ ॥

वे भीष्म और महात्मा द्रोणके द्वारा बहुत अनुनय विनय करनेपर भी पाण्डवोंको उनका पैतृक धन वापस देनेका निश्चय अथवा प्रयास नहीं कर रहे हैं ॥ १२ ॥

अहं तु तान्शितैर्बाणैरनुनीय रणे बलात् ।
पादयोः पातयिष्यामि कौन्तेयस्य महात्मनः ॥ १३ ॥

मैं तो रणभूमिमें पैने बाणोंसे उन्हें बलपूर्वक झुकाकर महात्मा कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरके चरणोंमें गिरा दूँगा ॥ १३ ॥

अथ ते न व्यवस्यन्ति प्रणिपाताय धीमतः ।
गमिष्यन्ति सहामात्या यमस्य सदनं प्रति ॥ १४ ॥

यदि वे परम बुद्धिमान् युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम करनेका निश्चय नहीं करेंगे, तो अपने मन्त्रियोंसहित उन्हें यमलोककी यात्रा करनी पडेगी ॥ १४ ॥

न हि ते युयुधानस्य संरब्धस्य युयुत्सतः ।
वेगं समर्थाः संसोढुं वज्रस्येव महीधराः ॥ १५ ॥

जैसे बडे-बडे पर्वत भी वज्रका वेग सहन करनेमें समर्थ नहीं हैं, उसी प्रकार वे युद्धकी इच्छा रखनेवाले और क्रोधमें भरे हुए मुझ सात्यकिके प्रहार-वेगको सहन करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १५ ॥

को हि गाण्डीवधन्वानं कश्च चक्रायुधं युधि ।
मां चापि विषहेत् को नु कश्च भीमं दुरासदम् ॥ १६ ॥

कौरवदलमें ऐसा कौन है, जो युद्धभूमिमें गाण्डीवधन्वा अर्जुन, चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण, क्रोधमें भरे हुए मुझ सात्यकि, दुर्धर्ष वीर भीमसेनको सहन कर सके ? ॥ १६ ॥

यमौ च दृढधन्वानौ यमकल्पौ महाद्युती ।
को जिजीविषुरासीदेद् धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ १७ ॥

ऐसा कौन है, जो जीनेकी इच्छा करते हुए भी यम और कालके समान तेजस्वी दृढ धनुर्धर नकुल–सहदेव तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नका भी सामना कर सके? ॥ १७ ॥

पञ्चैमान् पाण्डवेयांश्च द्रौपद्याः कीर्तिवर्धनान् ।
समप्रमाणान् पाण्डूनां समवीर्यान् मदोत्कटान् ॥ १८ ॥

द्रौपदीकी कीर्ति बढानेवाले अपने पिताके समान ही डील–डौलवाले, वैसे ही पराक्रमी तथा उन्हींके समान रणोन्मत्त शूरवीर इन पाँचों पाण्डवकुमारोंको भी कौन सह सकता है? ॥१८॥

सौभद्रं च महेष्वासममरैरपि दुःसहम् ।
गदप्रद्युम्नसाम्बांश्च कालवज्राग्निलोपमान् ॥ १९ ॥

महान् धनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्युका वेग तो देवताओंके लिये भी दुःसह है । गद, प्रद्युम्न और साम्ब–ये काल, वज्र और अग्निके समान अजेय हैं–इन सबका सामना कौन कर सकता है? ॥ १९ ॥

ते वयं धृतराष्ट्रस्य पुत्रं शकुनिना सह ।
कर्णेन च निहत्याजावभिषेक्ष्याम पाण्डवम् ॥ २० ॥

हमलोग शकुनिसहित धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको तथा कर्णको भी युद्धमें मारकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका राज्याभिषेक करेंगे ॥ २० ॥

नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाततायिनः ।
अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम् ॥ २१ ॥

आततायी शत्रुओंका वध करनेमें कोई पाप नहीं है । शत्रुओंके सामने याचना करना ही अधर्म और अपयशकी बात है ॥ २१ ॥

हृद्गतस्तस्य यः कामस्तं कुरुध्वमतन्द्रिताः ।
निसृष्टं धृतराष्ट्रेण राज्यं प्राप्नोतु पाण्डवः ॥ २२ ॥

अतः पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके मनमें जो अभिलाषा है, उसीको आपलोग आलस्य छोडकर करें । धृतराष्ट्रके द्वारा लौटाये गए राज्यको पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर फिर ग्रहण करें ॥ २२ ॥

अद्य पाण्डुसुतो राज्यं लभतां वा युधिष्ठिरः ।
निहता वा रणे सर्वे स्वप्स्यन्ति वसुधातले ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अब पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको राज्य मिल जाना चाहिये, अन्यथा समस्त कौरव युद्धमें मारे जाकर रणभूमिमें सदाके लिये सो जायँगे ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ ६१ ॥

×

: ४ :

द्रुपद उवाच

एवमेतन्महाबाहो भविष्यति न संशयः ।
न हि दुर्योधनो राज्यं मधुरेण प्रदास्यति ॥ १ ॥

द्रुपदने कहा– महाबाहो ! तुम्हारा कहना ठीक है । इसमें संदेह नहीं कि ऐसा ही होगा; क्योंकि दुर्योधन मधुर व्यवहारसे राज्य नहीं देगा ॥ १ ॥

अनुवर्त्स्यति तं चापि धृतराष्ट्रः सुतप्रियः ।
भीष्मद्रोणौ च कार्पण्यान्मौर्ख्याद् राधेयसौबलौ ॥ २ ॥

अपने उस पुत्रको अत्यधिक प्यार करनेवाले धृतराष्ट्र भी उसीका अनुसरण करेंगे । भीष्म और द्रोणाचार्य दीनतावश तथा कर्ण और शकुनि मूर्खतावश दुर्योधनका साथ देंगे ॥ २ ॥

बलदेवस्य वाक्यं तु मम ज्ञाने न युज्यते ।
एतद्धि पुरुषेणाग्रे कार्यं सुनयमिच्छता ॥ ३ ॥

बलदेवजीका कथन मेरी समझमें ठीक नहीं जान पडता । मैं जो कुछ कहने जा रहा हूँ, वही सुनीतिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको सबसे पहले करना चाहिये ॥ ३ ॥

न तु वाच्यो मृदु वचो धार्तराष्ट्रः कथंचन ।
न हि मार्दवसाध्योऽसौ पापबुद्धिर्मतो मम ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे मधुर अथवा नम्रतापूर्ण वचन कहना किसी प्रकार उचित नहीं है । मेरा ऐसा मत है कि वह पापपूर्ण विचार रखनेवाला है, अतः मृदु व्यवहारसे वशमें आनेवाला नहीं है ॥ ४ ॥

गर्दभे मार्दवं कुर्याद् गोषु तीक्ष्णं समाचरेत् ।
मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि ॥ ५ ॥

जो पापात्मा दुर्योधनके प्रति मृदु वचन बोलेगा, वह मानो गधेके प्रति कोमलतापूर्ण और गायोंके प्रति कठोर बर्ताव करेगा ॥ ५ ॥

मृदु वै मन्यते पापो भाषमाणमशक्तिजम् ।
जितमर्थं विजानीयादबुधो मार्दवे सति ॥ ६ ॥

पापी एवं मूर्ख मनुष्य मृदु वचन बोलनेवालेको शक्तिहीन समझता है और कोमलताका बर्ताव करनेपर यह मानने लगता है कि मैंने इसके धनपर विजय पा ली है ॥ ६ ॥

एतच्चैव करिष्यामो यत्नश्च क्रियतामिह ।
प्रस्थापयाम मित्रेभ्यो बलान्युद्योजयन्तु नः ॥ ७ ॥

(हम आपके सामने जो प्रस्ताव ला रहे हैं;) इसीको सम्पन्न करेंगे और इसीके लिये यहाँ प्रयत्न किया जाना चाहिये । हमें अपने मित्रोंके पास यह संदेश भेजना चाहिये कि वे हमारे लिये सैन्य-संग्रहका उद्योग करें ॥ ७ ॥

शल्यस्य धृष्टकेतोश्च जयत्सेनस्य चाभिभो: ।
केकयानां च सर्वेषां दूता गच्छन्तु शीघ्रगाः ॥ ८ ॥

भगवन् ! हमारे शीघ्रगामी दूत शल्य, धृष्टकेतु, वीर जयत्सेन और समस्त केकयराज कुमारोंके पास जायँ ॥ ८ ॥

स तु दुर्योधनो नूनं प्रेषयिष्यति सर्वशः ।
पूर्वाभिपन्नाः सन्तश्च भजन्ते पूर्वचोदकम् ॥ ९ ॥

निश्चय ही दुर्योधन भी सबके यहाँ संदेश भेजेगा । श्रेष्ठ राजा जब किसीके द्वारा पहले सहायताके लिये निमन्त्रित हो जाते हैं, तब प्रथम निमन्त्रण देनेवालेकी ही सहायता करते हैं ॥ ९ ॥

तत् त्वरध्वं नरेन्द्राणां पूर्वमेव प्रचोदने ।
महद्धि कार्यं वोढव्यमिति मे वर्तते मतिः ॥ १० ॥

अतः सभी राजाओंके पास पहले ही अपना निमन्त्रण पहुँच जाये; इसके लिये शीघ्रता करो । मैं समझता हूँ, हम सब लोगोंको महान् कार्यका भार वहन करना है ॥ १० ॥

शल्यस्य प्रेष्यतां शीघ्रं ये च तस्यानुगा नृपाः ।
भगदत्ताय राज्ञे च पूर्वसागरवासिने ॥ ११ ॥

राजा शल्य तथा उनके अनुगामी नरेशोंके पास शीघ्र दूत भेजे जायँ । पूर्व समुद्रके तटवर्ती राजा भगदत्तके पास भी दूत भेजना चाहिये ॥ ११ ॥

अमितौजसे तथोग्राय हार्दिक्यायान्धकाय च ।
दीर्घप्रज्ञाय मल्लाय रोचमानाय चाभिभो ॥ १२ ॥

भगवन् ! इसी प्रकार अमितौजा, उग्र, हार्दिक्य (कृतवर्मा), अन्धक, दीर्घप्रज्ञ तथा मल्ल रोचमानके पास भी दूतोंको भेजना आवश्यक है ॥ १२ ॥

आनीयतां बृहन्तश्च सेनाबिन्दुश्च पार्थिवः ।
पापजित् प्रतिविन्ध्यश्च चित्रवर्मा सुवास्तुकः ॥ १३ ॥

बृहन्तको भी बुलाया जाय । राजा सेनाबिन्दु पापजित्, प्रतिविन्ध्य, चित्रवर्मा, सुवास्तुक ॥ १३ ॥

बाह्लीको मुञ्जकेशश्च चैद्याधिपतिरेव च ।
सुपार्श्वश्च सुबाहुश्च पौरवश्च महारथः ॥ १४ ॥

बाह्लीक, मुञ्जकेश, चैद्यराज सुपार्श्व, सुबाहु, महारथी पौरव ॥ १४ ॥

शकानां पह्लवानां च दरदानां च ये नृपाः ।
काम्बोजा ऋषिका ये च पश्चिमानूपकाश्च ये ॥ १५ ॥

शकनरेश, पल्हवराज तथा दरददेशके नरेश, काम्बोजनरेश, ऋषक देशके राजा, पश्चिम-द्वीपवासी राजा भी बुलाये जायँ ॥ १५ ॥

जयत्सेनश्च काश्यश्च तथा पञ्चनदा नृपाः ।
क्राथपुत्रश्च दुर्धर्षः पार्वतीयाश्च ये नृपाः ॥ १६ ॥

जयत्सेन, काश्य, पञ्चनद (पंजाब) प्रदेशके राजा, दुर्धर्ष क्राथपुत्र तथा जो पर्वतीय नरेश हैं ॥ १६ ॥

जानकिश्च सुशर्मा च मणिमान् पौतिमत्सकः ।
पांसुराष्ट्राधिपश्चैव धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ॥ १७ ॥

राजा जनकके पुत्र, सुशर्मा, मणिमान्, पौतिमत्सक, पांसुराज्यके अधिपति, पराक्रमी धृष्टकेतु ॥ १७ ॥

औड्रश्च दण्डधारश्च बृहत्सेनश्च वीर्यवान् ।
अपराजितो निषादश्च श्रेणिमान् वसुमानपि ॥ १८ ॥

औड्र, दण्डधार, वीर्यशाली बृहत्सेन, अपराजित, निषादराज, श्रेणिमान्, वसुमान् ॥ १८ ॥

बृहद्बलो महौजाश्च बाहुः परपुरञ्जयः ।
समुद्रसेनो राजा च सह पुत्रेण वीर्यवान् ॥ १९ ॥

बृहद्बल, महौजा, शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले बाहु, पुत्रसहित पराक्रमी राजा समुद्रसेन ॥ १९ ॥

अदारिश्च नदीजश्च कर्णवेष्टश्च पार्थिवः ।
समर्थश्च सुवीरश्च मार्जारः कन्यकस्तथा ॥ २० ॥

अदारि, नदीज, भूपाल कर्णवेष्ट, समर्थ और उत्तम वीर मार्जार तथा कन्यक ॥ २० ॥

महावीरश्च कद्रुश्च निकरस्तुमुलः क्रथः ।
नीलश्च वीरधर्मा च भूमिपालश्च वीर्यवान् ॥ २१ ॥

महावीर कद्रु, निकर, मुल, क्रथ, नील, वीरधर्मा, पराक्रमी भूमिपाल ॥ २१ ॥

दुर्जयो दन्तवक्त्रश्च रुक्मी च जनमेजयः ।
आषाढो वायुवेगश्च पूर्वपाली च पार्थिवः ॥ २२ ॥

दुर्जय दन्तवक्त्र, रुक्मी, जनमेजय, आषाढ, वायुवेग, राजा पूर्वपाली ॥ २२ ॥

भूरितेजा देवकश्च एकलव्यस्य चात्मजः ।
कारूषकाश्च राजानः क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ॥ २३ ॥

भूरितेजा, देवक, एकलव्यका पुत्र, करूषदेशके बहुतसे पराक्रमी क्षेमधूर्ति ॥ २३ ॥

उद्धवः क्षेमकश्चैव वाटधानश्च पार्थिवः ।
श्रुतायुश्च दृढायुश्च शाल्वपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ २४ ॥

उद्धव, क्षेमक, राजा वाटधान, श्रुतायु, दृढायु, पराक्रमी शाल्वपुत्र, ॥ २४ ॥

कुमारश्च कलिङ्गानामीश्वरो युद्धदुर्मदः ।
एतेषां प्रेष्यतां शीघ्रमेतद्धि मम रोचते ॥ २५ ॥

कुमार तथा युद्धदुर्मद कलिङ्गराज– इन सबके पास शीघ्र ही रणनिमन्त्रण भेजा जाय; मुझे यही ठीक जान पडता है ॥ २५ ॥

अयं च ब्राह्मण शीघ्रं मम राजन् पुरोहितः ।
प्रेष्यतां धृतराष्ट्राय वाक्यमस्मिन्समर्प्यताम् ॥ २६ ॥

मत्स्यराज ! ये मेरे पुरोहित ब्राह्मण हैं, शीघ्र जानेवाले हैं इन्हें धृतराष्ट्रके पास भेजिये और वहाँके लिये उचित संदेश दीजिये ॥ २६ ॥

यथा दुर्योधनो वाच्यो यथा शान्तनवो नृपः ।
धृतराष्ट्रो यथा वाच्यो द्रोणश्च रथिनां वरः ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दुर्योधनसे क्या कहना है ? शन्तनुनन्दन भीष्मजीसे किस प्रकार बातचीत करनी है ? धृतराष्ट्रको क्या संदेश देना है ? तथा रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे किस प्रकार वार्तालाप करना है ? यह सब उन्हें समझा दीजिये ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ ८८ ॥

: ५ :

वासुदेव उवाच

उपपन्नमिदं वाक्यं सोमकानां धुरंधरे।
अर्थसिद्धिकरं राज्ञः पाण्डवस्य महौजसः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णने कहा– सभासदो! सोमकवंशके धुरंधर वीर महाराज द्रुपदने जो बात कही है, वह उन्हींके योग्य है। इसीसे महातेजस्वी पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरके अभीष्ट कार्यकी सिद्धि हो सकती है ॥ १ ॥

एतच्च पूर्वकार्यं नः सुनीतमभिकाङ्क्षताम्।
अन्यथा ह्याचरन् कर्म पुरुषः स्यात् सुबालिशः ॥ २ ॥

सुनीतिकी इच्छा रखनेवाले हमें सबसे पहले यही कार्य करना चाहिये। जो अवसरके विपरीत आचरण करता है, वह मनुष्य अत्यन्त मूर्ख माना जाता है ॥ २ ॥

किं तु सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं कुरुपाण्डुषु।
यथेष्टं वर्तमानेषु पाण्डवेषु च तेषु च ॥ ३ ॥

परंतु हम लोगोंका कौरवों और पाण्डवोंसे एक-सा सम्बन्ध है। पाण्डव और कौरव दोनों ही हमारे साथ यथायोग्य अनुकूल बर्ताव करते हैं ॥ ३ ॥

ते विवाहार्थमानीता वयं सर्वे तथा भवान्।
कृते विवाहे मुदिता गमिष्यामो गृहान् प्रति ॥ ४ ॥

इस समय हम और आप सब लोग विवाहोत्सवमें निमन्त्रित होकर आये हैं। विवाहकार्य सम्पन्न हो गया; अतः अब हम प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने घरोंको लौट जायँगे ॥ ४ ॥

भवान् वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च।
शिष्यवत् ते वयं सर्वे भवामेह न संशयः ॥ ५ ॥

आप समस्त राजाओंमें अवस्था तथा शास्त्रज्ञान दोनों ही दृष्टियोंसे सबकी अपेक्षा बड़े हैं। इसमें संदेह नहीं कि यहाँ हम सब लोग आपके शिष्यके समान हैं ॥ ५ ॥

भवन्तं धृतराष्ट्रश्च सततं बहु मन्यते।
आचार्ययोः सखा चासि द्रोणस्य च कृपस्य च ॥ ६ ॥

राजा धृतराष्ट्र भी सदा आपको विशेष आदर देते हैं, द्रोण और कृप इन दोनों आचार्योंके आप सखा हैं ॥ ६ ॥

स भवान् प्रेषयत्वद्य पाण्डवार्थकरं वचः ।
सर्वेषां निश्चितं तन्नः प्रेषयिष्यति यद् भवान् ॥ ७ ॥

अतः आप आज ही पाण्डवोंकी कार्यसिद्धिके अनुकूल संदेश भेजिये। आप जो भी संदेश भेजेंगे, वह हम सब लोगोंको निश्चित स्वीकार होगा ॥ ७ ॥

यदि तावच्छमं कुर्यान्न्यायेन कुरुपुङ्गवः ।
न भवेत् कुरुपाण्डूनां सौभ्रात्रेण महान् क्षयः ॥ ८ ॥

यदि कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन न्यायके अनुसार शान्ति स्वीकार करेगा, तो कौरव और पाण्डवोंमें परस्पर बन्धुजनोचित प्रेमवश महान् संहार न होगा ॥ ८ ॥

अथ दर्पान्वितो मोहान्न कुर्याद् धृतराष्ट्रजः ।
अन्येषां प्रेषयित्वा च पश्चादस्मान् समाह्वये ॥ ९ ॥

यदि धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन मोहवश घमंडमें आकर हमारा प्रस्ताव न स्वीकार करे, तो आप दूसरे राजाओंको युद्धका निमन्त्रण भेजकर सबके बाद हम लोगोंको आमन्त्रित कीजियेगा ॥ ९ ॥

ततो दुर्योधनो मन्दः सहामात्यः सबान्धवः ।
निष्ठामापत्स्यते मूढः क्रुद्धे गाण्डीवधन्वनि ॥ १० ॥

फिर तो गाण्डीवधनुषवाले अर्जुनके कुपित होनेपर मन्दबुद्धिवाला मूढ दुर्योधन अपने मन्त्रियों और बन्धुजनोंके साथ सर्वथा नष्ट हो जायगा ॥ १० ॥

वैशंपायन उवाच

ततः सत्कृत्य वार्ष्णेयं विराटः पृथिवीपतिः ।
गृहान् प्रस्थापयामास सगणं सहबान्धवम् ॥ ११ ॥

वैशम्पायन बोले— हे जनमेजय ! तदनन्तर राजा विराटने सेवकवृन्द तथा बान्धवोंसहित वृष्णिकुलनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका सत्कार करके उन्हें द्वारका जानेके लिये बिदा किया ॥ ११ ॥

द्वारकां तु गते कृष्णे युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
चक्रुः सांग्रामिकं सर्वं विराटश्च महीपतिः ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णके द्वारका चले जानेपर युधिष्ठिर आदि पाण्डव तथा राजा विराट युद्धकी सारी तैयारियाँ करने लगे ॥ १२ ॥

ततः सम्प्रेषयामास विराटः सह बान्धवैः ।
सर्वेषां भूमिपालानां द्रुपदश्च महीपतिः ॥ १३ ॥

बन्धुओंसहित राजा विराट तथा महाराज द्रुपदने मिलकर सब राजाओंके पास युद्धका निमन्त्रण भेजा ॥ १३ ॥

वचनात् कुरुसिंहानां मत्स्यपाञ्चालयोश्च ते ।
समाजग्मुर्महीपालाः सम्प्रहृष्टा महाबलाः ॥ १४ ॥

कुरुकुलके सिंह पाण्डव, मत्स्यनरेश विराट तथा पाञ्चालराज द्रुपदके संदेशसे महाबली नरेश बडे हर्ष और उत्साहमें भरकर वहाँ आने लगे ॥ १४ ॥

तच्छ्रुत्वा पाण्डुपुत्राणां समागच्छन्महद्बलम् ।
धृतराष्ट्रसुतश्चापि समानिन्ये महीपतीन् ॥ १५ ॥

पाण्डवोंके यहाँ विशाल सेना एकत्र हो रही है; यह सुनकर धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने भी भूमिपालोंको बुलाना आरम्भ कर दिया ॥ १५ ॥

समाकुला मही राजन् कुरुपाण्डवकारणात् ।
तदा समभवत् कृत्स्ना सम्प्रयाणे महीक्षिताम् ॥ १६ ॥

राजन् ! इस प्रकार कौरवों तथा पाण्डवोंके उद्देश्यसे दूर-दूरके नरेशोंके अपनी सेना लेकर प्रस्थान करनेपर सारी पृथ्वी भर गई ॥ १६ ॥

बलानि तेषां वीराणामागच्छन्ति ततस्ततः ।
चालयन्तीव गां देवीं सपर्वतवनामिमाम् ॥ १७ ॥

चारों ओरसे उन वीरोंके सैनिक पर्वतों और वनोंसहित इस सारी पृथ्वीको प्रकम्पित-सी करते हुए इधर उधरसे आने लगे ॥ १७ ॥

ततः प्रज्ञावयोवृद्धं पाञ्चाल्यः स्वपुरोहितम् ।
कुरुभ्यः प्रेषयामास युधिष्ठिरमते तदा ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

तदनन्तर पाञ्चालनरेशने युधिष्ठिरकी सम्मतिके अनुसार बुद्धि और अवस्थामें बढे-चढे अपने पुरोहितको कौरवोंके पास भेजा ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ १०६ ॥

: ६ :

द्रुपद उवाच

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नराणां तु द्विजातयः ॥ १ ॥

राजा द्रुपद बोले– पुरोहितजी ! समस्त भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। प्राणधारियोंमें भी बुद्धिजीवी श्रेष्ठ हैं । बुद्धिजीवी प्राणियोंमें भी मनुष्य और मनुष्योंमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ १ ॥

द्विजेषु वैद्याः श्रेयांसो वैद्येषु कृतबुद्धयः ।
स भवान् कृतबुद्धीनां प्रधान इति मे मतिः ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें सिद्धान्तके जानकार श्रेष्ठ होते हैं। मेरा ऐसा विश्वास है कि आप सिद्धान्तवेत्ताओंमें प्रमुख हैं ॥ २ ॥

कुलेन च विशिष्टोऽसि वयसा च श्रुतेन च ।
प्रज्ञयानवमश्चासि शुक्रेणाङ्गिरसेन च ॥ ३ ॥

आप कुल अवस्था तथा शास्त्र–ज्ञानमें भी बढे–चढे हैं, आपकी बुद्धि शुक्राचार्य और बृहस्पतिके समान है ॥ ३ ॥

विदितं चापि ते सर्वं यथावृत्तः स कौरवः ।
पाण्डवश्च यथावृत्तः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

दुर्योधनका आचार–विचार जैसा है, वह सब भी आपको ज्ञात ही है, कुन्तीपुत्र पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका आचार–विचार भी आपलोगोंसे छिपा नहीं है ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रस्य विदिते वञ्चिताः पाण्डवाः परैः
विदुरेणानुनीतोऽपि पुत्रमेवानुवर्तते ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्रकी जानकारीमें शत्रुओंसे पाण्डव ठगे गए हैं, विदुरजीके अनुनय–विनय करनेपर भी धृतराष्ट्र अपने पुत्रका ही अनुसरण करते हैं ॥ ५ ॥

शकुनिर्बुद्धिपूर्वं हि कुन्तीपुत्रं समाह्वयत् ।
अनक्षज्ञं मताक्षः सन् क्षत्रवृत्ते स्थितं शुचिम् ॥ ६ ॥

शकुनिने स्वयं जूएके खेलमें प्रवीण होकर जुआ न जाननेवाले क्षत्रियधर्मपर चलनेवाले शुद्धात्मा युधिष्ठिरको समझ–बूझकर जूएके लिये बुलाया ॥ ६ ॥

×

ते तथा वञ्चयित्वा तु धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
न कस्याञ्चिदवस्थायां राज्यं दास्यन्ति वै स्वयम् ॥ ७ ॥

उन सबने मिलकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरको ठगा है । अब वे किसी भी अवस्थामें स्वयं राज्य नहीं लौटायेंगे ॥ ७ ॥

भवांस्तु धर्मसंयुक्तं धृतराष्ट्रं ब्रुवन् वचः ।
मनांसि तस्य योधानां ध्रुवमावर्तयिष्यति ॥ ८ ॥

परंतु आप राजा धृतराष्ट्रसे धर्मयुक्त बातें कहकर उनके योद्धाओंका मन निश्चय ही अपनी ओर फेर लेंगे ॥ ८ ॥

विदुरश्चापि तद् वाक्यं साधयिष्यति तावकम् ।
भीष्मद्रोणकृपाणां च भेदं संजनयिष्यति ॥ ९ ॥

विदुर भी वहाँ आपके वचनोंका समर्थन करेंगे तथा आप भीष्म, द्रोण एवं कृपाचार्य आदिमें भेद उत्पन्न कर देंगे ॥ ९ ॥

अमात्येषु च भिन्नेषु योधेषु विमुखेषु च ।
पुनरेकाग्रकरणं तेषां कर्म भविष्यति ॥ १० ॥

जब मन्त्रियोंमें फूट पड जायगी और योद्धा भी विमुख होकर चल देंगे, तब पुनः नूतन सेनाका संग्रह और संगठन करना उनका कार्य होगा ॥ १० ॥

एतस्मिन्नन्तरे पार्थाः सुखमेकाग्रबुद्धयः ।
सेनाकर्म करिष्यन्ति द्रव्याणां चैव संचयम् ॥ ११ ॥

इसी बीचमें एकाग्रचित्तवाले कुन्तीकुमार अनायास ही सेनाका संगठन और द्रव्यका संग्रह कर लेंगे ॥ ११ ॥

भिद्यमानेषु च स्वेषु लम्बमाने च वै त्वयि ।
न तथा ते करिष्यन्ति सेनाकर्म न संशयः ॥ १२ ॥

जब वहाँ कौरवोंमें उनके अपने आदमी फूट जाएंगे और आप भी वहाँ रहकर लौटनेमें विलम्ब करते रहेंगे, तब निःसंदेह वे सैन्यसंग्रहका कार्य उतने अच्छे ढंगसे नहीं कर सकेंगे ॥ १२ ॥

एतत् प्रयोजनं चात्र प्राधान्येनोपलभ्यते ।
संगत्या धृतराष्ट्रश्च कुर्याद् धर्म्यं वचस्तव ॥ १३ ॥

वहाँ आपके जानेका यही प्रयोजन प्रधानरूपसे दिखायी देता है । यह भी सम्भव है कि आपकी संगतिसे धृतराष्ट्रका मन बदल जाये और वे आपकी धर्मानुकूल बात स्वीकार कर लें ॥ १३ ॥

स भवान् धर्मयुक्तश्च धर्म्यं तेषु समाचरन् ।
कृपालुषु परिक्लेशान् पाण्डवानां प्रकीर्तयन् ॥ १४ ॥
वृद्धेषु कुलधर्मं च ब्रुवन् पूर्वैरनुष्ठितम् ।
विभेत्स्यति मनांस्येषामिति मे नात्र संशयः ॥ १५ ॥

आप धर्मपरायण तो हैं ही, वहाँ धर्मानुकूल बर्ताव करते हुए कौरवकुलमें जो कृपालु वृद्ध पुरुष हैं, उनके समक्ष पाण्डवोंके क्लेशोंका वर्णन करते हुए पूर्वपुरुषोंद्वारा आचरित कुलधर्मका प्रतिपादन कीजियेगा । इस प्रकार आप उनका मन दुर्योधनकी ओरसे फोड लेंगे, इसमें मुझे कोई संशय नहीं है ॥ १४-१५ ॥

न च तेभ्यो भयं तेऽस्ति ब्राह्मणो ह्यसि वेदवित् ।
दूतकर्मणि युक्तश्च स्थविरश्च विशेषतः ॥ १६ ॥

आपको उनसे कोई भय नहीं है; क्योंकि आप वेदवेत्ता ब्राह्मण हैं । विशेषतः दूतकर्ममें नियुक्त और वृद्ध हैं ॥ १६ ॥

स भवान् पुष्ययोगेन मुहूर्तेन जयेन च ।
कौरवेयान् प्रयात्वाशु कौन्तेयस्यार्थसिद्धये ॥ १७ ॥

अतः आप पुष्य नक्षत्रसे युक्त जय नामक शुभ मुहूर्तमें कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरके कार्यकी सिद्धिके लिये कौरवोंके पास शीघ्र जाइये ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथानुशिष्टः प्रययौ द्रुपदेन महात्मना ।
पुरोधा वृत्तसम्पन्नो नगरं नागसाह्वयम् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! महामना राजा द्रुपदके द्वारा इस प्रकार अनुशासित होकर सदाचार सम्पन्न पुरोहितने हस्तिनापुरको प्रस्थान किया ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ १२९ ॥

: ७ :

वैशम्पायन उवाच
गते द्वारवतीं कृष्णे बलदेवे च माधवे ।
सह वृष्ण्यन्धकैः सर्वैर्भोजैश्च शतशस्तथा ॥ १ ॥
वैशम्पायन बोले— जब मधुकुलनन्दन श्रीकृष्ण और बलभद्र सैकडों वृष्णि, अन्धक और भोजवंशी यादवोंको साथ ले द्वारकापुरीकी ओर चले गए ॥ १ ॥
सर्वमागमयामास पाण्डवानां विचेष्टितम् ।
धृतराष्ट्रात्मजो राजा दूतैः प्रणिहितैश्चरैः ॥ २ ॥
तभी धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनने अपने नियुक्त किये हुए गुप्तचरों और दूतोंसे पाण्डवोंकी सारी चेष्टाओंका पता लगा लिया था ॥ २ ॥
स श्रुत्वा माधवं यातं सदश्वैरनिलोपमैः।
बलेन नातिमहता द्वारकामभ्ययात् पुरीम् ॥ ३ ॥
श्रीकृष्ण विराटनगरसे द्वारकाको जा रहे हैं, यह सुनकर वह वायुके समान वेगवान् उत्तम अश्वों तथा एक छोटीसी सेनाके साथ द्वारकापुरीकी ओर चल दिया ॥ ३ ॥
तमेव दिवसं चापि कौन्तेयः पाण्डुनन्दनः ।
आनर्तनगरीं रम्यां जगामाशु धनंजयः ॥ ४ ॥
कुन्तीकुमार पाण्डुनन्दन अर्जुनने भी उसी दिन शीघ्रतापूर्वक रमणीय द्वारकापुरीकी ओर प्रस्थान किया ॥ ४ ॥
तौ यात्वा पुरुषव्याघ्रौ द्वारकां कुरुनन्दनौ ।
सुप्तं ददृशतुः कृष्णं शयानं चोपजग्मतुः ॥ ५ ॥
कुरुवंशका आनन्द बढानेवाले उन दोनों नरवीरोंने द्वारकामें पहुँचकर श्रीकृष्णको सोते हुए देखा । वे दोनों सोये हुए श्रीकृष्णके पास गये ॥ ५ ॥
ततः शयाने गोविन्दे प्रविवेश सुयोधनः ।
उच्छीर्षतश्च कृष्णस्य निषसाद वरासने ॥ ६ ॥
श्रीकृष्णके शयनकालमें पहले दुर्योधनने उनके भवनमें प्रवेश किया और वह उनके सिरहानेकी ओर रक्खे हुए एक श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठ गया ॥ ६ ॥
ततः किरीटी तस्यानु प्रविवेश महामनाः ।
पश्चार्धे च स कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः ॥ ७ ॥
तत्पश्चात् महामना किरीटधारी अर्जुनने श्रीकृष्णके शयनागारमें प्रवेश किया । वे बडी नम्रतासे हाथ जोडे हुए श्रीकृष्णके चरणोंकी ओर खडे रहे ॥ ७ ॥

प्रतिबुद्धः स वार्ष्णेयो ददर्शाग्रे किरीटिनम् ।
स तयोः स्वागतं कृत्वा यथार्हं प्रतिपूज्य च ।
तदागमनजं हेतुं पप्रच्छ मधुसूदनः ॥ ८ ॥

जागनेपर वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्णने पहले अर्जुनको ही देखा । मधुसूदनने उन दोनोंका यथायोग्य आदर-सत्कार-पूर्वक स्वागत करके उनसे उनके आगमनका कारण पूछा ॥ ८ ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णमुवाच प्रहसन्निव ।
विग्रहेऽस्मिन् भवान् साह्यं मम दातुमिहार्हति ॥ ९ ॥

तब दुर्योधनने श्रीकृष्णसे हँसते हुए-से कहा कि इस युद्धमें आप मुझे सहायता देनेमें समर्थ हैं ॥ ९ ॥

समं हि भवतः सख्यं मम चैवार्जुनेऽपि च ।
तथा सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं त्वयि माधव ॥ १० ॥

हे माधव ! आपकी मेरे तथा अर्जुनके साथ एक-सी मित्रता है एवं हम लोगोंका आपके साथ सम्बन्ध भी समान ही है ॥ १० ॥

अहं चाभिगतः पूर्वं त्वामद्य मधुसूदन ।
पूर्वं चाभिगतं सन्तो भजन्ते पूर्वसारिणः ॥ ११ ॥

और मधुसूदन ! आज मैं आपके पास पहले आया हूँ । पूर्वपुरुषोंके सदाचारका अनुसरण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष पहले आये हुए प्रार्थीकी ही सहायता करते हैं ॥ ११ ॥

त्वं च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन ।
सततं सम्मतश्चैव सद्वृत्तमनुपालय ॥ १२ ॥

जनार्दन ! आप इस समय संसारके सत्पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं और सभी सर्वदा आपको सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं । अतः आप सत्पुरुषोंके ही आचारका पालन करें ॥ १२ ॥

कृष्ण उवाच

भवानभिगतः पूर्वमत्र मे नास्ति संशयः ।
दृष्टस्तु प्रथमं राजन् मया पार्थो धनंजयः ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण बोले— राजन् ! इसमें संदेह नहीं कि आप ही मेरे यहाँ पहले आये हैं, परंतु मैंने पहले कुन्तीनन्दन अर्जुनको ही देखा है ॥ १३ ॥

तव पूर्वाभिगमनात् पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात् ।
साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन ॥ १४ ॥

सुयोधन ! आप पहले आये हैं और अर्जुनको मैंने पहले देखा है; इसलिये मैं दोनोंकी ही सहायता करूँगा ॥ १४ ॥

प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः ।
तस्मात् प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनंजयः ॥ १५ ॥

शास्त्रकी आज्ञा है कि पहले बालकोंको ही उनकी अभीष्ट वस्तु देनी चाहिये; अतः अवस्थामें छोटे होनेके कारण पहले कुन्तीपुत्र अर्जुन ही अपनी अभीष्ट वस्तु पानेके अधिकारी हैं ॥ १५ ॥

मत्संहननतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत् ।
नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः ॥ १६ ॥

मेरे पास मेरे जैसे ही बलशाली गोपोंकी दस करोड विशाल सेना है, उन सबकी 'नारायण' संज्ञा है । वे सभी युद्धमें डटकर लोहा लेनेवाले हैं ॥ १६ ॥

ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्वेकस्य सैनिकाः ।
अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः ॥ १७ ॥

एक ओर तो वे दुर्धर्ष सैनिक युद्धके लिये उद्यत रहेंगे और दूसरी ओरसे अकेला मैं रहूँगा; परंतु मैं न तो युद्ध करूँगा और न कोई शस्त्र ही धारण करूँगा ॥ १७ ॥

आभ्यामन्यतरं पार्थ यत् ते हृद्यतरं मतम् ।
तद् वृणीतां भवानग्रे प्रवार्यस्त्वं हि धर्मतः ॥ १८ ॥

अर्जुन ! इन दोनोंमेंसे कोई एक वस्तु, जो तुम्हारे मनको अधिक प्रिय जान पडे, तुम पहले चुन लो; क्योंकि धर्मके अनुसार पहले तुम्हें ही अपनी मनचाही वस्तु चुननेका अधिकार है ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम् ॥ १९ ॥

वैशम्पायन बोले— राजन् ! श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर कुन्तीकुमार धनंजयने संग्रामभूमिमें युद्ध न करनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णको ही (अपना सहायक) चुना ॥ १९ ॥

सहस्राणां सहस्रं तु योधानां प्राप्य भारत ।
कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा सम्प्राप परमां मुदम् ॥ २० ॥

जनमेजय ! जो अनेक सहस्र सैनिकोंकी सहस्रों टोलियोंमें योद्धाओंको पाकर और श्रीकृष्णको ठगा गया समझकर राजा दुर्योधनको बडी प्रसन्नता हुई ॥ २० ॥

दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः ।
ततोऽभ्ययाद् भीमबलो रौहिणेयं महाबलम् ॥ २१ ॥

उसका बल भयंकर था । वह सारी सेना लेकर महाबली रोहिणीनन्दन बलरामके पास गया ॥ २१ ॥

सर्वं चागमने हेतुं स तस्मै संन्यवेदयत्।
प्रत्युवाच ततः शौरिर्धार्तराष्ट्रमिदं वचः ॥ २२ ॥
और उसने उन्हें अपने आनेका सारा कारण बताया। तब शूरवंशी बलरामजीने धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २२ ॥

विदितं ते नरव्याघ्र सर्वं भवितुमर्हति।
यन्मयोक्तं विराटस्य पुरा वैवाहिके तदा ॥ २३ ॥
पुरुषसिंह! पहले राजा विराटके यहाँ विवाहोत्सवके अवसरपर मैंने जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हें मालूम ही हो गया होगा ॥ २३ ॥

निगृह्योक्तो हृषीकेशस्त्वदर्थं कुरुनन्दन।
मया सम्बन्धकं तुल्यमिति राजन् पुनः पुनः ॥ २४ ॥
कुरुनन्दन! तुम्हारे लिये मैंने श्रीकृष्णको बाध्य करके उनसे बार बार कहा था कि हमारे साथ दोनों पक्षोंका समानरूपसे सम्बन्ध है ॥ २४ ॥

न च तद् वाक्यमुक्तं वै केशवः प्रत्यपद्यत।
न चाहमुत्सहे कृष्णं विना स्थातुमपि क्षणम् ॥ २५ ॥
परंतु श्रीकृष्णको वह बात जँची नहीं और मैं श्रीकृष्णको छोडकर एक क्षण भी अन्यत्र कहीं ठहर नहीं सकता ॥ २५ ॥

नाहं सहायः पार्थस्य नापि दुर्योधनस्य वै।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्य ह ॥ २६ ॥
अतः मैंने श्रीकृष्णकी ओर देखकर मन-ही-मन यह निश्चित मत बना लिया है कि मैं न तो अर्जुनकी सहायता करूँगा और न दुर्योधनकी ही ॥ २६ ॥

जातोऽसि भारते वंशे सर्वपार्थिवपूजिते।
गच्छ युध्यस्व धर्मेण क्षात्रेण पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥
पुरुषरत्न! तुम समस्त राजाओंद्वारा सम्मानित भरतवंशमें उत्पन्न हुए हो। जाओ, क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्ध करो ॥ २७ ॥

इत्येवमुक्तः स तदा परिष्वज्य हलायुधम्।
कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा युद्धान्मेने जितं जयम् ॥ २८ ॥
बलभद्रके ऐसा कहनेपर दुर्योधनने उन्हें हृदयसे लगाया और श्रीकृष्णको ठगा गया जानकर युद्धमें अपनी निश्चित विजय समझ ली ॥ २८ ॥

सोऽभ्ययात् कृतवर्माणं धृतराष्ट्रसुतो नृपः ।
कृतवर्मा ददौ तस्य सेनामक्षौहिणीं तदा ॥ २९ ॥

तदनन्तर धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन कृतवर्माके पास गया । तब कृतवर्माने उसे एक अक्षौहिणी सेना दी ॥ २९ ॥

स तेन सर्वसैन्येन भीमेन कुरुनन्दनः ।
वृतः प्रतियया हृष्टः सुहृदः सम्प्रहर्षयन् ॥ ३० ॥

उस सारी भयंकर सेनाके द्वारा घिरा हुआ कुरुनन्दन दुर्योधन अपने सुहृदोंका हर्ष बढाता हुआ बडी प्रसन्नताके साथ हस्तिनापुरको लौट गया ॥ ३० ॥

गते दुर्योधने कृष्णः किरीटिनमथाब्रवीत् ।
अयुध्यमानः कां बुद्धिमास्थायाहं त्वया वृतः ॥ ३१ ॥

दुर्योधनके चले जानेपर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा– 'पार्थ ! युद्ध न करनेवाले मुझे तुमने क्या सोच समझकर चुना है ?' ॥ ३१ ॥

अर्जुन उवाच

भवान् समर्थस्तान् सर्वान् निहन्तुं नात्र संशयः ।
निहन्तुमहमप्येकः समर्थः पुरुषोत्तम ॥ ३२ ॥

अर्जुन बोले– भगवन् ! आप अकेले ही उन सबको नष्ट करनेमें समर्थ हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। पुरुषोत्तम ! मैं भी अकेला ही उन सब शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हूँ ॥ ३२ ॥

भवांस्तु कीर्तिमाँल्लोके तद् यशस्त्वां गमिष्यति ।
यशसां चाहमप्यर्थी तस्मादसि मया वृतः ॥ ३३ ॥

परंतु आप संसारमें यशस्वी हैं । आप जहाँ भी रहेंगे, वह यश आपका ही अनुसरण करेगा । मुझे भी यशकी ही इच्छा है; इसीलिये मैंने आपका वरण किया है ॥ ३३ ॥

सारथ्यं तु त्वया कार्यमिति मे मानसं सदा ।
चिररात्रेप्सितं कामं तद् भवान् कर्तुमर्हति ॥ ३४ ॥

मेरे मनमें बहुत दिनोंसे यह अभिलाषा थी कि आप मेरे सारथीका काम करें । मेरी इस चिरकालिक अभिलाषाको आप पूर्ण कर सकते हैं ॥ ३४ ॥

वासुदेव उवाच

उपपन्नमिदं पार्थ यत् स्पर्धेथा मया सह ।
सारथ्यं ते करिष्यामि कामः सम्पद्यतां तव ॥ ३५ ॥

वासुदेव बोले– पार्थ ! तुम जो मेरे साथ स्पर्धा रखते हो, यह तुम्हारे लिये ठीक ही है । मैं तुम्हारा सारथ्य करूँगा । तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण हो ॥ ३५ ॥

वैशंपायन उवाच

एवं प्रमुदितः पार्थः कृष्णेन सहितस्तदा ।
वृतो दशार्हप्रवरैः पुनरायाद् युधिष्ठिरम् ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! इस प्रकार (अपनी इच्छा पूर्ण होनेसे) प्रसन्न हुए अर्जुन श्रीकृष्णके सहित मुख्य–मुख्य दशार्हवंशी यादवोंसे घिरे हुए पुनः युधिष्ठिरके पास आये ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ १६० ॥

: ८ :

वैशम्पायन उवाच

शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन महता वृतः ।
अभ्ययात् पाण्डवान् राजन् सह पुत्रैर्महारथैः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! पाण्डवोंके दूतोंके मुखसे उनका संदेश सुनकर राजा शल्य अपने महारथी पुत्रोंके साथ विशाल सेनासे घिरकर पाण्डवोंके पास चले ॥ १ ॥

तस्य सेनानिवेशोऽभूदध्यर्धमिव योजनम् ।
तथा हि बहुलां सेनां स बिभर्ति नरर्षभः ॥ २ ॥

नरश्रेष्ठ शल्य इतनी अधिक सेनाका भरण–पोषण करते थे कि उसका पड़ाव पड़नेपर आधी योजन भूमि घिर जाती थी ॥ २ ॥

विचित्रकवचाः शूरा विचित्रध्वजकार्मुकाः ।
विचित्राभरणाः सर्वे विचित्ररथवाहनाः ॥ ३ ॥

वे सबके सब शौर्य-सम्पन्न, अद्भुत कवच धारण करनेवाले तथा विचित्र ध्वज एवं धनुषसे सुशोभित थे । उन सबके अङ्गोंमें विचित्र आभूषण शोभा दे रहे थे । सभीके रथ और वाहन विचित्र थे ॥ ३ ॥

स्वदेशवेषाभरणा वीराः शतसहस्रशः ।
तस्य सेनाप्रणेतारो बभूवुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ४ ॥

उन सबने अपने अपने देशकी वेष-भूषा धारण कर रक्खी थी ऐसे सैंकड़ों और हजारों वीर थे और उन सेनाओंके सेनापति भी श्रेष्ठ क्षत्रिय थे ॥ ४ ॥

×

व्यथयन्निव भूतानि कम्पयन्निव मेदिनीम्।
शनैर्विश्रामयन् सेनां स ययौ येन पाण्डवः ॥ ५ ॥

राजा शल्य समस्त प्राणियोंको व्यथित और पृथ्वीको कम्पितसे करते हुए अपनी सेनाको धीरे धीरे विभिन्न स्थानोंपर ठहराकर विश्राम देते हुए उस मार्गपर चले, जिससे पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके पास शीघ्र पहुँच सकते थे ॥ ५ ॥

ततो दुर्योधनः श्रुत्वा महासेनं महारथम्।
उपायान्तमभिद्रुत्य स्वयमानर्च भारत ॥ ६ ॥

भरतनन्दन! उन्हीं दिनों दुर्योधनने महारथी एवं महासेनावाले राजा शल्यका आगमन सुनकर स्वयं आगे बढकर (मार्गमें ही) उनका सेवा-सत्कार प्रारम्भ कर दिया ॥ ६ ॥

कारयामास पूजार्थं तस्य दुर्योधनः सभाः।
रमणीयेषु देशेषु रत्नचित्राः स्वलंकृताः ॥ ७ ॥

दुर्योधनने राजा शल्यके स्वागत-सत्कारके लिये रमणीय प्रदेशोंमें बहुतसे सभाभवन तैयार कराये, जिनकी दीवारोंमें रत्न जडे हुए थे। उन भवनोंको सब प्रकारसे सजाया गया था ॥ ७ ॥

स ताः सभाः समासाद्य पूज्यमानो यथामरः।
दुर्योधनस्य सचिवैर्देशे देशे यथार्हतः।
आजगाम सभामन्यां देवावसथवर्चसम् ॥ ८ ॥

सब ओर विभिन्न स्थानोंमें बने हुए उन सभाभवनोंमें पहुँचकर राजा शल्य दुर्योधनके मन्त्रियोंद्वारा देवताओंकी भाँति पूजित होते थे इस तरह (यात्रा करते हुए) शल्य किसी दूसरे सभाभवनमें गये, जो देवमन्दिरोंके समान प्रकाशित होता था ॥ ८ ॥

स तत्र विषयैर्युक्तः कल्याणैरतिमानुषैः।
मेनेऽभ्यधिकमात्मानमवमेने पुरंदरम्। ॥ ९ ॥

वहाँ उन्हें अलौकिक कल्याणमय भोग प्राप्त हुए, उस समय नरेशने अपने आपको सबसे अधिक सौभाग्यशाली समझा। उन्हें देवराज इन्द्र भी अपनेसे तुच्छ प्रतीत हुए ॥ ९ ॥

पप्रच्छ स ततः प्रेष्यान् प्रहृष्टः क्षत्रियर्षभः।
युधिष्ठिरस्य पुरुषाः के नु चक्रुः सभा इमाः।
आनीयन्तां सभाकाराः प्रदेयार्हा हि मे मताः ॥ १० ॥

उस समय अत्यन्त प्रसन्न होकर उस क्षत्रिय शिरोमणि—शल्यने सेवकोंसे पूछा—युधिष्ठिरके किन आदमियोंने ये सभाभवन बनाये हैं। उन सबको बुलाओ। मैं उन्हें पुरस्कार देनेके योग्य मानता हूँ ॥ १० ॥

गूढो दुर्योधनस्तत्र दर्शयामास मातुलम् ।
तं दृष्ट्वा मद्रराजस्तु ज्ञात्वा यत्नं च तस्य तम् ।
परिष्वज्याब्रवीत् प्रीत इष्टोऽर्थो गृह्यतामिति ॥ ११ ॥

तब गुप्तरूपसे वहीं छिपा हुआ दुर्योधन मामा शल्यके सामने गया उसे देखकर तथा उसीने यह सारी तैयारी की है, यह जानकर मद्रराजने प्रसन्नतापूर्वक दुर्योधनको हृदयसे लगा लिया और कहा– 'तुम अपनी अभीष्ट वस्तु मुझसे माँग लो' ॥ ११ ॥

दुर्योधन उवाच

सत्यवाग् भव कल्याण वरो वै मम दीयताम् ।
सर्वसेनाप्रणेता मे भवान् भवितुमर्हति ॥ १२ ॥

दुर्योधन बोले– कल्याणस्वरूप महानुभाव ! आपकी बात सत्य हो । आप मुझे अवश्य वर दीजिये । मैं चाहता हूँ कि आप मेरी सम्पूर्ण सेनाके अधिनायक हो जायँ ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

कृतमित्यब्रवीच्छल्यः किमन्यत् क्रियतामिति ।
कृतमित्येव गान्धारिः प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ १३ ॥

वैशम्पायन बोले– राजन् ! उस समय शल्यने दुर्योधनसे कहा– 'तुम्हारी यह प्रार्थना तो स्वीकार कर ली । अब और कौनसा कार्य करूँ ?' यह सुनकर गन्धारीनन्दन दुर्योधनने बार-बार यही कहा कि मेरा तो सब काम आपने पूरा कर दिया ॥ १३ ॥

स तथा शल्यमामन्त्र्य पुनरायात् स्वकं पुरम् ।
शल्यो जगाम कौन्तेयानाख्यातुं कर्म तस्य तत् ॥ १४ ॥

इस प्रकार शल्यसे आज्ञा लेकर दुर्योधन पुनः अपने नगरको लौट आया और शल्य कुन्तीकुमारोंसे दुर्योधनकी वह करतूत सुनानेके लिये युधिष्ठिरके पास गये ॥ १४ ॥

उपप्लव्यं स गत्वा तु स्कन्धावारं प्रविश्य च ।
पाण्डवानथ तान् सर्वान् शल्यस्तत्र ददर्श ह ॥ १५ ॥

विराटनगरके उपप्लव्य नामक प्रदेशमें जाकर वे पाण्डवोंकी छावनीमें पहुँचे और वहीं उन सब पाण्डवोंको शल्यने देखा ॥ १५ ॥

समेत्य तु महाबाहुः शल्यः पाण्डुसुतैस्तदा ।
पाद्यमर्घ्यं च गां चैव प्रत्यगृह्णाद् यथाविधि ॥ १६ ॥

पाण्डुपुत्रोंसे मिलकर महाबाहु शल्यने उनके द्वारा विधिपूर्वक दिये हुए पाद्य, अर्घ्य और गौको ग्रहण किया ॥ १६ ॥

ततः कुशलपूर्वं स मद्रराजोऽरिसूदनः ।
प्रीत्या परमया युक्तः समालिष्य युधिष्ठिरम् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् शत्रुसूदन मद्रराज शल्यने कुशल-प्रश्नके अनन्तर बडी प्रसन्नताके साथ राजा युधिष्ठिरको हृदयसे लगाया ॥ १७ ॥

तथा भीमार्जुनौ हृष्टौ स्वस्रीयौ च यमावुभौ ।
आसने चोपविष्टस्तु शल्यः पार्थमुवाच ह ॥ १८ ॥

इसी प्रकार उन्होंने हर्षमें भरे हुए दोनों भाई भीमसेन और अर्जुनको तथा अपनी बहिनके दोनों जुडवे पुत्रों— नकुल-सहदेवको भी गले लगाया और आसनपर बैठे हुए राजा शल्य कुन्तीकुमार युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥

कुशलं राजशार्दूल कच्चित् ते कुरुनन्दन ।
अरण्यवासाद् दिष्ट्यासि विमुक्तो जयतां वर ॥ १९ ॥

'नृपतिश्रेष्ठ कुरुनन्दन ! तुम कुशलसे तो हो न ? विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ नरेश ! यह बडे सौभाग्यकी बात है कि तुम वनवासके कष्टसे छुटकारा पा गये ॥ १९ ॥

सुदुष्करं कृतं राजन् निर्जने वसता वने ।
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र कृष्णया चानया सह ॥ २० ॥

'राजन् ! तुमने अपने भाइयों यथा इस द्रुपदकुमारी कृष्णाके साथ निर्जन वनमें निवास करके अत्यन्त दुष्कर कार्य किया है ॥ २० ॥

अज्ञातवासं घोरं च वसता दुष्करं कृतम् ।
दुःखमेव कुतः सौख्यं राज्यभ्रष्टस्य भारत ॥ २१ ॥

'भारत ! भयंकर अज्ञातवास करके तो तुमलोगोंने और भी दुष्कर कार्य सम्पन्न किया है। जो अपने राज्यसे वञ्चित हो गया हो, उसे तो कष्ट ही उठाना पडता है, सुख कहाँसे मिल सकता है ? ॥ २१ ॥

दुःखस्यैतस्य महतो धार्तराष्ट्रकृतस्य वै ।
अवाप्स्यसि सुखं राजन् हत्वा शत्रून् परंतप ॥ २२ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! दुर्योधनके दिये हुए इस महान् दुःखके अन्तमें अब तुम शत्रुओंको मारकर सुखके भागी होओगे ॥ २२ ॥

विदितं ते महाराज लोकतत्त्वं नराधिप ।
तस्माल्लोभकृतं किंचित् तव तात न विद्यते ॥ २३ ॥

'महाराज ! नरेश्वर ! तुम्हें लोकव्यवहारका सम्यक् ज्ञान है। तात ! इसीलिये तुममें लोभसे उत्पन्न कोई भी बर्ताव नहीं है ॥ २३ ॥

ततोऽस्याकथयद् राजा दुर्योधनसमागमम्।
तच्च शुश्रूषितं सर्वं वरदानं च भारत ॥ २४ ॥

भारत! तदनन्तर राजा शल्यने दुर्योधनके मिलने, सेवा-शुश्रूषा करने और उसे अपने वरदान देनेकी सारी बातें कह सुनायीं ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सुकृतं ते कृतं राजन् प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
दुर्योधनस्य यद् वीर त्वया वाचा प्रतिश्रुतम्।
एकं त्विच्छामि भद्रं ते क्रियमाणं महीपते ॥ २५ ॥

युधिष्ठिर बोले— वीर महाराज! आपने प्रसन्नचित्त होकर जो दुर्योधनको उसकी सहायताका वचन दे दिया, वह अच्छा ही किया, परंतु पृथ्वीपते! आपका कल्याण हो, मैं आपके द्वारा अपना भी एक काम कराना चाहता हूँ ॥ २५ ॥

भवानिह महाराज वासुदेवसमो युधि।
कर्णार्जुनाभ्यां सम्प्राप्ते द्वैरथे राजसत्तम।
कर्णस्य भवता कार्यं सारथ्यं नात्र संशयः ॥ २६ ॥

महाराज! आप इस भूतलपर संग्राममें वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके समान माने गये हैं, नृपशिरोमणे! कर्ण और अर्जुनके द्वैरथयुद्धका अवसर प्राप्त होनेपर आपको ही कर्णके सारथिका काम करना पड़ेगा; इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ २६ ॥

तत्र पाल्योऽर्जुनो राजन् यदि मत्प्रियमिच्छसि।
तेजोवधश्च ते कार्यः सौतेरस्मज्जयावहः।
अकर्तव्यमपि ह्येतत् कर्तुमर्हसि मातुल ॥ २७ ॥

राजन्! यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं, तो उस युद्धमें आपको अर्जुनकी रक्षा करनी होगी। आपका कार्य इतना ही होगा कि आप कर्णका उत्साह भङ्ग करते रहें। वही कर्णसे हमें विजय दिलानेवाला होगा। मामा मेरे लिये यह न करनेयोग्य कार्य भी करें ॥ २७ ॥

शल्य उवाच

शृणु पाण्डव भद्रं ते यद् ब्रवीषि दुरात्मनः।
तेजोवधनिमित्तं मां सूतपुत्रस्य संयुगे ॥ २८ ॥

शल्य बोले— पाण्डुनन्दन! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी बात सुनो! युद्धमें दुरात्मा सूतपुत्र कर्णके तेज और उत्साहको नष्ट करनेके लिये तुम जो मुझसे अनुरोध करते हो, वह ठीक है ॥ २८ ॥

अहं तस्य भविष्यामि संग्रामे सारथिर्ध्रुवम्।
वासुदेवेन हि समं नित्यं मां स हि मन्यते ॥ २९ ॥

यह निश्चय है कि मैं उस युद्धमें उसका सारथि होऊँगा। स्वयं कर्ण भी मुझे सारथि-कर्ममें भगवान् श्रीकृष्णके समान समझता है ॥ २९ ॥

तस्याहं कुरुशार्दूल प्रतीपमहितं वचः।
ध्रुवं संकथयिष्यामि योद्धुकामस्य संयुगे ॥ ३० ॥

कुरुश्रेष्ठ! जब कर्ण रणभूमिमें अर्जुनके साथ युद्धकी इच्छा करेगा, उस समय मैं अवश्य ही उसके प्रतिकूल अहितकर वचन बोलूँगा ॥ ३० ॥

यथा स हृतदर्पश्च हृततेजाश्च पाण्डव।
भविष्यति सुखं हन्तुं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३१ ॥

जिससे वह नष्ट अभिमान और नष्ट तेजवाला हो जायगा और वह युद्धमें सुखपूर्वक मारा जा सकेगा। पाण्डुनन्दन! मैं तुमसे यह सत्य कहता हूँ ॥ ३१ ॥

एवमेतत् करिष्यामि यथा तात त्वमात्थ माम्।
यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत् करिष्यामि ते प्रियम् ॥ ३२ ॥

तात! तुम मुझसे जो कुछ कह रहे हो, यह अवश्य पूर्ण करूँगा, इसके सिवा और भी जो कुछ मुझसे हो सकेगा, तुम्हारा वह प्रिय कार्य अवश्य करूँगा ॥ ३२ ॥

यच्च दुःखं त्वया प्राप्तं द्यूते वै कृष्णया सह।
परुषाणि च वाक्यानि सूतपुत्रकृतानि वै ॥ ३३ ॥

तुमने द्यूतसभामें द्रौपदीके साथ जो दुःख उठाया है, सूतपुत्र कर्णने तुम्हें जो कठोर बातें सुनायी हैं ३३ ॥

जटासुरात् परिक्लेशः कीचकाच्च महाद्युते।
द्रौपद्याधिगतं सर्वं दमयन्त्या यथाशुभम् ॥ ३४ ॥

हे महातेजस्वी युधिष्ठिर! तथा पूर्वकालमें दमयन्तीने जैसे अशुभ (दुःख) भोगा था, उसी प्रकार द्रौपदीने जटासुर तथा कीचकसे जो महान् क्लेश प्राप्त किया ॥ ३४ ॥

सर्वं दुःखमिदं वीर सुखोदर्कं भविष्यति।
नात्र मन्युस्त्वया कार्यो विधिर्हि बलवत्तरः ॥ ३५ ॥

हे वीर! यह सभी दुःख भविष्यमें तुम्हारे लिये सुखके रूपमें परिवर्तित हो जायेगा। इसके लिये तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये; क्योंकि विधाताका विधान अति प्रबल होता है ॥ ३५ ॥

दुःखानि हि महात्मानः प्राप्नुवन्ति युधिष्ठिर ।
देवैरपि हि दुःखानि प्राप्तानि जगतीपते ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिर ! महात्मा पुरुष भी समय समयपर दुःख पाते हैं । पृथ्वीपते ! देवताओंने भी बहुत दुःख उठाये हैं ॥ ३६ ॥

इन्द्रेण श्रूयते राजन्सभार्येण महात्मना ।
अनुभूतं महद्दुःखं देवराजेन भारत ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ १९७ ॥

भरतवंशी नरेश ! सुना जाता है कि पत्नीसहित महात्मा देवराज इन्द्रने भी महान् दुःख भोगा है ॥ ३७ ॥

महाभारतके उद्योगपर्वमें आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ १९७ ॥

: ९ :

युधिष्ठिर उवाच

कथमिन्द्रेण राजेन्द्र सभार्येण महात्मना ।
दुःखं प्राप्तं परं घोरमेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले— राजेन्द्र ! पत्नीसहित महामना इन्द्रने कैसे अत्यन्त भयंकर दुःख प्राप्त किया था ? यह मैं जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

शल्य उवाच

शृणु राजन्पुरा वृत्तमितिहासं पुरातनम् ।
सभार्येण यथा प्राप्तं दुःखमिन्द्रेण भारत ॥ २ ॥

शल्यने कहा— भरतवंशी नरेश ! यह पूर्वकालमें घटित पुरातन इतिहास है । पत्नीसहित इन्द्रने जिस प्रकार महान् दुःख प्राप्त किया था, वह बताता हूँ, सुनो ॥ २ ॥

त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः ।
स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्रोहात्किलासृजत् ॥ ३ ॥

त्वष्टा नामसे प्रसिद्ध देवोंमें श्रेष्ठ और महातपस्वी एक प्रजापति थे, कहते हैं, उन्होंने इन्द्रके प्रति द्रोहबुद्धि हो जानेके कारण ही एक तीन सिरवाला पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

ऐन्द्रं स प्रार्थयत्स्थानं विश्वरूपो महाद्युतिः ।
तैस्त्रिभिर्वदनैर्घोरैः सूर्येन्दुज्वलनोपमैः ॥ ४ ॥

उस महातेजस्वी बालकका नाम विश्वरूप था। उसने सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निके समान तेजस्वी एवं भयंकर अपने उन तीनों मुखोंद्वारा इन्द्रका स्थान पानेकी प्रार्थना की ॥ ४ ॥

वेदानेकेन सोऽधीते सुरामेकेन चापिबत्।
एकेन च दिशः सर्वाः पिबन्निव निरीक्षते ॥ ५ ॥

वह अपने एक मुखसे वेदोंका स्वाध्याय करता, दूसरेसे सुरा पीता और तीसरेसे सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर इस प्रकार देखता था, मानो उन्हें पी ही जायेगा ॥ ५ ॥

स तपस्वी मृदुर्दान्तो धर्मे तपसि चोद्यतः ।
तपोऽतप्यन्महत्तीव्रं सुदुश्चरमरिंदम ॥ ६ ॥

शत्रुदमन! त्वष्टाका वह पुत्र कोमल स्वभाववाला, तपस्वी, जितेन्द्रिय तथा धर्म और तपस्याके लिये सदा उद्यत रहनेवाला था। उसने दूसरोंके लिए अत्यन्त दुष्कर बडा कठोर तप किया ॥ ६ ॥

तस्य दृष्ट्वा तपोवीर्यं सत्त्वं चामिततेजसः ।
विषादमगमच्छक्र इन्द्रोऽयं मा भवेदिति ॥ ७ ॥

उस अमिततेजस्वी बालकका तपोबल तथा शक्ति देखकर इन्द्रको बडा दुःख हुआ। वे सोचने लगे, 'कहीं यह इन्द्र न हो जाये ॥ ७ ॥

कथं सज्जेत भोगेषु न च तप्येन्महत्तपः ।
विवर्धमानस्त्रिशिराः सर्वं त्रिभुवनं ग्रसेत् ॥ ८ ॥

क्या उपाय किया जाय, जिससे यह भोगोंमें आसक्त हो और भारी तपस्यामें प्रवृत्त न हो, क्योंकि यह वृद्धिको प्राप्त हुआ त्रिशिरा तीनों लोकोंको अपना ग्रास बना लेगा' ॥८॥

इति संचिन्त्य बहुधा बुद्धिमान्भरतर्षभ ।
आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्त्वष्टृपुत्रप्रलोभने ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ! इस तरह बहुत सोच विचार करके बुद्धिमान् इन्द्रने त्वष्टाके पुत्रको लुभानेके लिये अप्सराओंको आज्ञा दी ॥ ९ ॥

यथा स सज्जेत्त्रिशिराः कामभोगेषु वै भृशम् ।
क्षिप्रं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत माचिरम् ॥ १० ॥

'अप्सराओ! जिस प्रकार त्रिशिरा काम भोगोंमें अत्यन्त आसक्त हो जाय, शीघ्र वैसा ही यत्न करो। जाओ, उसे लुभाओ, विलम्ब न करो' ॥ १० ॥

शृङ्गारवेषाः सुश्रोण्यो भावैर्युक्ता मनोहरैः ।
प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं भयं मम ॥ ११ ॥

सुन्दरियो! तुम सब शृङ्गारके अनुरूप वेष धारण करके मनोहर नखरोंसे विभूषित हो, विश्वरूपको लुभाओ। तुम्हारा कल्याण हो, मेरे भयको शान्त करो ॥ ११ ॥

अस्वस्थं ह्यात्मनात्मानं लक्षयामि वराङ्गनाः ।
भयमेतन्महाघोरं क्षिप्रं नाशयताबलाः ॥ १२ ॥

वराङ्गनाओ! मैं अपने आपको अस्वस्थचित्त देख रहा हूँ, अतः अबलाओ! तुम मेरे इस अत्यन्त घोर भयको शीघ्र नष्ट करो' ॥ १२ ॥

अप्सरस ऊचुः

तथा यत्नं करिष्यामः शक्र तस्य प्रलोभने ।
यथा नावाप्स्यसि भयं तस्माद्बलनिषूदन ॥ १३ ॥

अप्सराएँ बोलीं— शक्र! बलनिषूदन! हमलोग विश्वरूपको लुभानेके लिये ऐसा यत्न करेंगी, जिससे उनकी ओरसे आपको कोई भय नहीं प्राप्त होगा ॥ १३ ॥

निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां योऽसावास्ते तपोनिधिः ।
तं प्रलोभयितुं देव गच्छामः सहिता वयम् ।
यतिष्यामो वशे कर्तुं व्यपनेतुं च ते भयम् ॥ १४ ॥

देव! जो तपोनिधि विश्वरूप अपने दोनों नेत्रोंसे सबको दग्ध करते हुएसे विराज रहे हैं, उन्हें प्रलोभनमें डालनेके लिये हम सब अप्सराएँ एक साथ जा रही हैं। वहाँ उन्हें वशमें करने तथा आपके भयको दूर हटानेके लिये हम पूर्ण प्रयत्न करेंगी' ॥ १४ ॥

शल्य उवाच

इन्द्रेण तास्त्वनुज्ञाता जग्मुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम् ।
तत्र ता विविधैर्भावैर्लोभयन्त्यो वराङ्गनाः ।
नृत्यं संदर्शयन्त्यश्च तथैवाङ्गेषु सौष्ठवम् ॥ १५ ॥

शल्य बोले— राजन्! इन्द्रकी आज्ञा पाकर वे सब सुन्दर अप्सराएँ अनेक भावोंसे लुब्ध करती हुई त्रिशिराके समीप गयीं। वहाँ वे प्रतिदिन विश्वरूपको अपने अङ्गोंके सौन्दर्यका दर्शन कराया करती थीं ॥ १५ ॥

×

विचेरुः संप्रहर्षं च नाभ्यगच्छन्महातपाः।
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा पूर्णसागरसंनिभः ॥ १६ ॥
और वहीं सब विचरने लगीं तथापि वे महातपस्वी महर्षि उन सबको देखते हुए हर्ष आदि विकारोंको नहीं प्राप्त हुए; अपितु वे इन्द्रियोंको वशमें करके पूर्ण सागरके समान शान्तभावसे बैठे रहे ॥ १६ ॥

तास्तु यत्नं परं कृत्वा पुनः शक्रमुपस्थिताः।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन् ॥ १७ ॥
वे सब अप्सराएँ (त्रिशिराको विचलित करनेका) पूरा प्रयत्न करके पुनः देवराज इन्द्रकी सेवामें उपस्थित हुईं और हाथ जोडकर बोलीं ॥ १७ ॥

न स शक्यः सुदुर्धर्षो धैर्याच्चालयितुं प्रभो।
यत्ते कार्यं महाभाग क्रियतां तदनन्तरम् ॥ १८ ॥
'प्रभो! वे त्रिशिरा बडे दुर्धर्ष तपस्वी हैं, उन्हें धैर्यसे विचलित नहीं किया जा सकता। महाभाग! अब आपको जो कुछ करना हो, उसे कीजिये' ॥ १८ ॥

सम्पूज्याप्सरसः शक्रो विसृज्य च महामतिः।
चिन्तयामास तस्यैव वधोपायं महात्मनः ॥ १९ ॥
तब परम बुद्धिमान् इन्द्रने अप्सराओंका आदर-सत्कार करके उन्हें विदा कर दिया और वे महात्मा त्रिशिराके वधका उपाय सोचने लगे ॥ १९ ॥

स तूष्णीं चिन्तयन्वीरो देवराजः प्रतापवान्।
विनिश्चितमतिर्धीमान्वधे त्रिशिरसोऽभवत् ॥ २० ॥
प्रतापी वीर बुद्धिमान् देवराज इन्द्र चुपचाप सोचते हुए त्रिशिराके वधके विषयमें एक निश्चयपर पहुँच गये ॥ २० ॥

वज्रमस्य क्षिपाम्यद्य स क्षिप्रं न भविष्यति।
शत्रुः प्रवृद्धो नोपेक्ष्यो दुर्बलोऽपि बलीयसा ॥ २१ ॥
'आज मैं त्रिशिरापर वज्रका प्रहार करूँगा, जिससे वह तत्काल नष्ट हो जायगा। बलवान् पुरुषको दुर्बल होनेपर भी बढते हुए अपने शत्रुकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये' ॥ २१ ॥

शास्त्रबुद्ध्या विनिश्चित्य कृत्वा बुद्धिं वधे दृढाम्।
अथ वैश्वानरनिभं घोररूपं भयावहम्।
मुमोच वज्रं संक्रुद्धः शक्रस्त्रिशिरसं प्रति ॥ २२ ॥
शास्त्रयुक्त बुद्धिसे त्रिशिराके वधका दृढ निश्चय करके क्रोधमें भरे इन्द्रने अग्निके समान तेजस्वी, घोर एवं भयंकर वज्रको त्रिशिराकी ओर चला दिया ॥ २२ ॥

स पपात हतस्तेन वज्रेण दृढमाहतः ।
पर्वतस्येव शिखरं प्रणुन्नं मेदिनीतले ॥ २३ ॥

उस वज्रकी गहरी चोट खाकर त्रिशिरा मरकर पृथ्वीपर गिर पडे, मानो वज्रके आघातसे टूटा हुआ पर्वतका शिखर भूतलपर पडा हो ॥ २३ ॥

तं तु वज्रहतं दृष्ट्वा शयानमचलोपमम् ।
न शर्म लेभे देवेन्द्रो दीपितस्तस्य तेजसा ।
हतोऽपि दीप्ततेजाः स जीवन्निव च दृश्यते ॥ २४ ॥

त्रिशिराको वज्रके प्रहारसे प्राणशून्य होकर पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर पडा देखकर भी उसके तेजसे संतप्त होनेवाले देवराज इन्द्रको शान्ति नहीं मिली । क्योंकि वे मारे जानेपर भी अपने तेजसे जीवितसे दिखायी देते थे ॥ २४ ॥

अभितस्तत्र तक्षाणं घटमानं शचीपतिः ।
अपश्यदब्रवीच्चैनं सत्वरं पाकशासनः ।
क्षिप्रं छिन्धि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥ २५ ॥

निर्भय शचीपति इन्द्रने वहाँ अपना काम करते हुए बढईको देखा । देखते ही पाकशासन इन्द्रने तुरंत उससे कहा– ' बढई ! तू शीघ्र इस शवके तीनों मस्तकोंके टुकडे-टुकडे कर दे । मेरी इस आज्ञाका पालन कर ' ॥ २५ ॥

तक्षोवाच

महास्कन्धो भृशं ह्येष परशुर्न तरिष्यति ।
कर्तुं चाहं न शक्ष्यामि कर्म सद्भिर्विगर्हितम् ॥ २६ ॥

बढई बोला– इसके कंधे तो बडे भारी और विशाल हैं । मेरी यह कुल्हाडी इसपर काम नहीं देगी और किसी प्राणीकी हत्या रूप साधु पुरुषों द्वारा निन्दित इस पापकर्मको मैं नहीं कर सकूँगा ॥ २६ ॥

इन्द्र उवाच

मा भैस्त्वं क्षिप्रमेतद्वै कुरुष्व वचनं मम ।
मत्प्रसादाद्धि ते शस्त्रं वज्रकल्पं भविष्यति ॥ २७ ॥

इन्द्र बोला– बढई ! तू भय न कर । शीघ्र मेरी इस आज्ञाका पालन कर । मेरे प्रसादसे तेरी यह कुल्हाडी वज्रके समान हो जायगी ॥ २७ ॥

तक्षोवाच

कं भवन्तमहं विद्यां घोरकर्माणमद्य वै ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥ २८ ॥

बढई बोला– आप इस प्रकार भयानक कर्म करनेवाले कौन हैं, यह मैं कैसे समझूँ ? मैं आपका परिचय सुनना चाहता हूँ । यह यथार्थरूपसे बताइये ॥ २८ ॥

इन्द्र उवाच

अहमिन्द्रो देवराजस्तक्षन्विदितमस्तु ते ।
कुरुष्वैतद्यथोक्तं मे तक्षन्मा त्वं विचारय ॥ २९ ॥

इन्द्र बोला– बढई ! तुझे मालूम होना चाहिये कि मैं देवराज इन्द्र हूँ । मैंने जो कुछ कहा है, उसे शीघ्र पूरा कर । इस विषयमें कुछ विचार न कर ॥ २९ ॥

तक्षोवाच

क्रूरेण नापत्रपसे कथं शक्रेह कर्मणा ।
ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न ते ॥ ३० ॥

बढई बोला– देवराज ! इस क्रूर कर्मसे आपको यहाँ लज्जा कैसे नहीं आती है ? इस ऋषिकुमारकी हत्या करनेसे होनेवाले ब्रह्महत्याके पापसे भी आपको भय नहीं है ? ॥ ३० ॥

शक्र उवाच

पश्चाद्धर्मं चरिष्यामि पावनार्थं सुदुश्चरम् ।
शत्रुरेष महावीर्यो वज्रेण निहतो मया ॥ ३१ ॥

इन्द्रने बोला– यह मेरा महान् शक्तिशाली शत्रु था, जिसे मैंने वज्रसे मार डाला है । इसके बाद ब्रह्महत्यासे अपनी शुद्धि करनेके लिये मैं किसी ऐसे धर्मका अनुष्ठान करूँगा, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर हो ॥ ३१ ॥

अद्यापि चाहमुद्विग्नस्तक्षन्नस्माद्बिभेमि वै ।
क्षिप्रं छिन्धि शिरांसि त्वं करिष्येऽनुग्रहं तव ॥ ३२ ॥

बढई ! यद्यपि यह मारा गया है, तो भी अभीतक मुझे इसका भय बना हुआ है । तू शीघ्र इसके मस्तकोंके टुकडे-टुकडे कर दे । मैं तेरे ऊपर अनुग्रह करूँगा ॥ ३२ ॥

शिरः पशोस्ते दास्यन्ति भागं यज्ञेषु मानवाः ।
एष तेऽनुग्रहस्तक्षन्क्षिप्रं कुरु मम प्रियम् ॥ ३३ ॥

मनुष्य यज्ञोंमें पशुका सिर तेरे भागके रूपमें देंगे । बढई ! यह तेरे ऊपर मेरा अनुग्रह है । अब तू जल्दी मेरा प्रिय कार्य कर ॥ ३३ ॥

शल्य उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तक्षा स महेन्द्रवचनं तदा।
शिरांस्यथ त्रिशिरसः कुठारेणाच्छिनत्तदा ॥ ३४ ॥

शल्य बोले— राजन्! यह सुनकर बढ़ईने उस समय महेन्द्रकी आज्ञाके अनुसार कुठारसे त्रिशिराके तीनों सिरोंके टुकडे-टुकडे कर दिये ॥ ३४ ॥

निकृत्तेषु ततस्तेषु निष्क्रामंस्त्रिशिरास्त्वथ।
कपिञ्जलास्तित्तिराश्च कलविङ्काश्च सर्वशः ॥ ३५ ॥

कट जानेपर उनके अंदरसे तीन सिरवाले कपिंजल, तीतर और गौरय्ये पक्षी बाहर निकले ॥ ३५ ॥

येन वेदानधीते स्म पिबते सोममेव च।
तस्माद्वक्त्राद्विनिष्पेतुः क्षिप्रं तस्य कपिञ्जलाः ॥ ३६ ॥

जिस मुखसे वे वेदोंका पाठ करते तथा केवल सोमरस पीते थे, उससे शीघ्रतापूर्वक कपिञ्जल पक्षी बाहर निकले थे ॥ ३६ ॥

येन सर्वा दिशो राजन्पिबन्निव निरीक्षते।
तस्माद्वक्त्राद्विनिष्पेतुस्तित्तिरास्तस्य पाण्डव ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिर! जिसके द्वारा वे सम्पूर्ण दिशाओंको इस प्रकार देखते थे, मानो पी जायँगे, उस मुखसे तीतर पक्षी निकले ॥ ३७ ॥

यत्सुरापं तु तस्यासीद्वक्त्रं त्रिशिरसस्तदा।
कलविङ्का विनिष्पेतुस्तेनास्य भरतर्षभ ॥ ३८ ॥

भरतश्रेष्ठ! त्रिशिराका जो मुख सुरापान करनेवाला था उससे गौरैये पक्षी प्रकट हुए ॥ ३८ ॥

ततस्तेषु निकृत्तेषु विज्वरो मघवानभूत्।
जगाम त्रिदिवं हृष्टस्तक्षापि स्वगृहान्ययौ ॥ ३९ ॥

उन तीनों सिरोंके कट जानेपर इन्द्रकी मानसिक चिन्ता दूर हो गयी। वे प्रसन्न होकर स्वर्गको लौट गये तथा बढई भी अपने घर चला गया ॥ ३९ ॥

त्वष्टा प्रजापतिः श्रुत्वा शक्रेणाथ हतं सुतम्।
क्रोधसंरक्तनयन इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४० ॥

इधर त्वष्टा प्रजापतिने जब सुना कि इन्द्रने मेरे पुत्रको मार डाला है, तब क्रोधसे लाल आंखोंवाले वे इस प्रकार बोले ॥ ४० ॥

तपस्यमानं तपो नित्यं क्षान्तं दान्तं जितेन्द्रियम्।
अनापराधिनं यस्मात्पुत्रं हिंसितवान्मम ॥ ४१ ॥

सदा क्षमाशील, संयमी और जितेन्द्रिय रहकर तपस्यामें लगे हुए मेरे पुत्रकी इन्द्रने बिना किसी अपराधके हत्या की है ॥ ४१ ॥

तस्माच्छक्रवधार्थाय वृत्रमुत्पादयाम्यहम्।
लोकाः पश्यन्तु मे वीर्यं तपसश्च बलं महत्।
स च पश्यतु देवेन्द्रो दुरात्मा पापचेतनः ॥ ४२ ॥

अतः, मैं भी देवेन्द्रके वधके लिये वृत्रासुरको उत्पन्न करूँगा। आज संसारके लोग मेरा पराक्रम तथा मेरी तपस्याका महान् बल देखें। साथ ही वह पापात्मा और दुरात्मा देवेन्द्र भी मेरा महान् तपोबल देख ले ॥ ४२ ॥

उपस्पृश्य ततः क्रुद्धस्तपस्वी सुमहायशाः।
अग्निं हुत्वा समुत्पाद्य घोरं वृत्रमुवाच ह।
इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रभावात्तपसो मम ॥ ४३ ॥

ऐसा कहकर क्रोधमें भरे हुए तपस्वी एवं महायशस्वी त्वष्टाने आचमन करके अग्निको प्रज्वलित करके घोर वृत्रासुरको उत्पन्न करके उससे कहा– 'इन्द्रशत्रो! तू मेरी तपस्याके प्रभावसे खूब बढ' ॥ ४३ ॥

सोऽवर्धत दिवं स्तब्ध्वा सूर्यवैश्वानरोपमः।
किं करोमीति चोवाच कालसूर्य इवोदितः।
शक्रं जहीति चाप्युक्तो जगाम त्रिदिवं ततः ॥ ४४ ॥

उनके इतना कहते ही सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी वृत्रासुर सारे आकाशको आक्रान्त करके बहुत बडा हो गया। वह ऐसा जान पडता था, मानो प्रलयकालका सूर्य उदित हुआ हो। उसने पूछा 'मैं क्या करूँ?' तब त्वष्टाने कहा– 'इन्द्रको मार डालो।' उनके ऐसा कहनेपर वृत्रासुर स्वर्गलोकमें गया ॥ ४४ ॥

ततो युद्धं समभवद्वृत्रवासवयोस्तदा।
संक्रुद्धयोर्महाघोरं प्रसक्तं कुरुसत्तम ॥ ४५ ॥

तदनन्तर तब वृत्रासुर तथा इन्द्रमें युद्ध हुआ, कुरुश्रेष्ठ! वे दोनों क्रोधमें भरे हुए थे। उनमें अत्यन्त घोर संग्राम होने लगा ॥ ४५ ॥

ततो जग्राह देवेन्द्रं वृत्रो वीरः शतक्रतुम्।
अपावृत्य स जग्रास वृत्रः क्रोधसमन्वितः ॥ ४६ ॥

तदनन्तर कुपित हुए वीर वृत्रासुरने शतक्रतु इन्द्रको पकड लिया और मुँह खोलकर वृत्र इन्द्रको निगल गया ॥ ४६ ॥

ग्रस्ते वृत्रेण शक्रे तु सम्भ्रान्तास्त्रिदशास्तदा ।
असृजंस्ते महासत्त्वा जृम्भिकां वृत्रनाशिनीम् ॥ ४७ ॥

वृत्रासुरके द्वारा इन्द्रके ग्रस लिये जानेपर सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवता घबरा गये । तब उन महासत्त्वशाली देवताओंने वृत्रासुरका नाश करनेवाली जँभाईकी सृष्टि की ॥ ४७ ॥

विजृम्भमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादपावृतात् ।
स्वान्यङ्गान्यभिसंक्षिप्य निष्क्रान्तो बलसूदनः ।
ततः प्रभृति लोकेषु जृम्भिका प्राणिसंश्रिता ॥ ४८ ॥

जँभाई लेते समय जब वृत्रासुरने अपना मुख फैलाया, तब बलनाशक इन्द्र अपने अङ्गोंको समेटकर बाहर निकल आये । तभीसे सब लोगोंके प्राणोंमें जृम्भाशक्तिका निवास हो गया ॥ ४८ ॥

जहृषुश्च सुराः सर्वे दृष्ट्वा शक्रं विनिःसृतम् ।
ततः प्रववृते युद्धं वृत्रवासवयोः पुनः ।
संरब्धयोस्तदा घोरं सुचिरं भरतर्षभ ॥ ४९ ॥

इन्द्रको उसके मुखसे निकला हुआ देख सब देवता बड़े प्रसन्न हुए । तदनन्तर वृत्रासुर तथा इन्द्रमें पुनः युद्ध होने लगा । भरतश्रेष्ठ ! क्रोधमें भरे हुए उन दोनों वीरोंका वह भयानक संग्राम बहुत देरतक चलता रहा ॥ ४९ ॥

यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो बलसमन्वितः ।
त्वष्टुस्तपोबलाद्विद्वांस्तदा शक्रो न्यवर्तत ॥ ५० ॥

वृत्रासुर त्वष्टाके तप और बलसे व्याप्त हो जब युद्धमें अधिक बलशाली हो बढ़ने लगा, तब इन्द्र युद्धसे विमुख हो गये ॥ ५० ॥

निवृत्ते तु तदा देवा विषादमगमन्परम् ।
समेत्य शक्रेण च ते त्वष्टुस्तेजोविमोहिताः ।
आमन्त्रयन्त ते सर्वे मुनिभिः सह भारत ॥ ५१ ॥

इन्द्रके विमुख होनेपर सब देवताओंको बड़ा दुःख हुआ । हे भारत ! त्वष्टाके तेजसे मोहित हुए सब देवता देवराज इन्द्र तथा ऋषियोंसे मिलकर सलाह करने लगे ॥ ५१ ॥

किं कार्यमिति ते राजन्विचिन्त्य भयमोहिताः ।
जग्मुः सर्वे महात्मानं मनोभिर्विष्णुमव्ययम् ।
उपविष्टा मन्दराग्रे सर्वे वृत्रवधेप्सवः ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ २४९ ॥

हे राजन् ! भयसे मोहित वे सभी देव "अब क्या करना चाहिए" इस विषयमें बहुत देरतक सोच-विचार करके मन-ही-मन अविनाशी परमात्मा भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और वे वृत्रासुरके वधकी इच्छासे मन्दराचलके शिखरपर ध्यानस्थ होकर बैठ गये ॥५२॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें नौवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ २४९ ॥

: १० :

इन्द्र उवाच

सर्वं व्याप्तमिदं देवा वृत्रेण जगदव्ययम् ।
न ह्यस्य सदृशं किंचित्प्रतिघाताय यद्भवेत् ॥ १ ॥

इन्द्र बोले— देवताओ ! वृत्रासुरने इस सम्पूर्ण जगत्को आक्रान्त कर लिया है । इसके योग्य कोई ऐसा अस्त्र–शस्त्र नहीं है, जो इसका विनाश कर सके ॥ १ ॥

समर्थो ह्यभवं पूर्वमसमर्थोऽस्मि साम्प्रतम् ।
कथं कुर्यां नु भद्रं वो दुष्प्रधर्षः स मे मतः ॥ २ ॥

पहले मैं सब प्रकारसे सामर्थ्यशाली था; किंतु इस समय असमर्थ हो गया हूँ । आप लोगोंका कल्याण मैं कैसे करूँ ? मुझे तो वृत्रासुर दुर्जय प्रतीत हो रहा है ॥ २ ॥

तेजस्वी च महात्मा च युद्धे चामितविक्रमः ।
ग्रसेत्त्रिभुवनं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ३ ॥

वह तेजस्वी और महात्मा है । युद्धमें उसके बल पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है । वह चाहे तो देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको भी निगल सकता है ॥ ३ ॥

तस्माद्विनिश्चयमिमं शृणुध्वं मे दिवौकसः ।
विष्णोः क्षयमुपागम्य समेत्य च महात्मना ।
तेन संमन्त्र्य वेत्स्यामो वधोपायं दुरात्मनः ॥ ४ ॥

अतः, देवताओ ! इस विषयमें मेरे इस निश्चयको सुनो । हमलोग भगवान् विष्णुके धाममें चलें और उन परमात्मासे मिलकर उन्हींसे सलाह करके उस दुरात्माके वधका उपाय जानें ॥ ४ ॥

शल्य उवाच

एवमुक्ते मघवता देवाः सर्षिगणास्तदा ।
शरण्यं शरणं देवं जग्मुर्विष्णुं महाबलम् ॥ ५ ॥

शल्य बोले– राजन् ! इन्द्रके ऐसा कहनेपर ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवता सबके शरणदाता अत्यन्त बलशाली भगवान् विष्णुकी शरणमें गये ॥ ५ ॥

ऊचुश्च सर्वे देवेशं विष्णुं वृत्रभयार्दिताः ।
त्वया लोकास्त्रयः क्रान्तास्त्रिभिर्विक्रमणैः प्रभो ॥ ६ ॥

वृत्रासुरके भयसे पीडित उन्होंने देवेश्वर भगवान् विष्णुसे इस प्रकार कहा– ' प्रभो ! आपने पूर्वकालमें अपने तीन डगोंद्वारा सम्पूर्ण त्रिलोकीको माप लिया था ' ॥ ६ ॥

अमृतं चाहृतं विष्णो दैत्याश्च निहता रणे ।
बलिं बद्ध्वा महादैत्यं शक्रो देवाधिपः कृतः ॥ ७ ॥

' विष्णो ! आपने ही (मोहिनी अवतार धारण करके) दैत्योंके हाथसे अमृत छीना एवं युद्धमें उन सबका संहार किया तथा महादैत्य बलिको बाँधकर इन्द्रको देवताओंका राजा बनाया ॥ ७ ॥

त्वं प्रभुः सर्वलोकानां त्वया सर्वमिदं ततम् ।
त्वं हि देव महादेवः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ८ ॥

'आप ही सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी हैं । आपसे ही यह समस्त चराचर जगत् व्याप्त है । देव ! आप ही अखिलविश्ववन्दित महादेव हैं ॥ ८ ॥

गतिर्भव त्वं देवानां सेन्द्राणाममरोत्तम ।
जगद्व्याप्तमिदं सर्वं वृत्रेणासुरसूदन ॥ ९ ॥

सुरश्रेष्ठ ! आप इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके आश्रय हों । असुरसूदन ! वृत्रासुरने इस सम्पूर्ण जगत्को आक्रान्त कर लिया है ' ॥ ९ ॥

विष्णुरुवाच

अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमुत्तमम् ।
तस्मादुपायं वक्ष्यामि यथासौ न भविष्यति ॥ १० ॥

भगवान् विष्णु बोले– देवताओ ! मुझे तुम लोगोंका उत्तम हित अवश्य करना है । अतः, तुम सबको एक उपाय बताऊँगा, जिससे वृत्रासुरका अन्त होगा ॥ १० ॥

×

गच्छध्वं सर्षिगन्धर्वा यत्रासौ विश्वरूपधृक् ।
साम तस्य प्रयुञ्जध्वं तत एनं विजेष्यथ ॥ ११ ॥

तुम लोग ऋषियों और गन्धर्वोंके साथ वहाँ जाओ, जहाँ विश्वरूपधारी वृत्रासुर विद्यमान् है । तुम लोग उसके साथ संधि कर लो, तभी उसे जीत सकोगे ॥ ११ ॥

भविष्यति गतिर्देवाः शक्रस्य मम तेजसा ।
अदृश्यश्च प्रवेक्ष्यामि वज्रमस्यायुधोत्तमम् ॥ १२ ॥

देवताओ ! मेरे तेजसे इन्द्रकी विजय होगी । मैं इनके उत्तम आयुध वज्रमें अदृश्यभावसे प्रवेश करूंगा ॥ १२ ॥

गच्छध्वमृषिभिः सार्धं गन्धर्वैश्च सुरोत्तमाः ।
वृत्रस्य सह शक्रेण संधिं कुरुत माचिरम् ॥ १३ ॥

देवेश्वरगण ! तुमलोग ऋषियों तथा गन्धर्वोंके साथ जाओ और इन्द्रके साथ वृत्रासुरकी संधि कराओ । इसमें विलम्ब न करो ॥ १३ ॥

शल्य उवाच

एवमुक्तास्तु देवेन ऋषयस्त्रिदशास्तथा ।
ययुः समेत्य सहिताः शक्रं कृत्वा पुरःसरम् ॥ १४ ॥

शल्य बोले– राजन् ! भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर ऋषि तथा देवता एक साथ मिलकर देवेन्द्रको आगे करके वृत्रासुरके पास गये ॥ १४ ॥

समीपमेत्य च तदा सर्व एव महौजसः ।
तं तेजसा प्रज्वलितं प्रतपन्तं दिशो दश ॥ १५ ॥
ग्रसन्तमिव लोकांस्त्रीन्सूर्याचन्द्रमसौ यथा ।
ददृशुस्तत्र ते वृत्रं शक्रेण सह देवताः ॥ १६ ॥

समस्त महाबली देवताओंने वृत्रासुरके समीप आकर अपने तेजसे प्रज्वलित होकर दसों दिशाओंको तपाते हुए तथा सूर्य चन्द्रमाके समान प्रकाश बिखेरते हुए तथा अपने तेजसे तीनों लोकोंको ग्रसते हुएके समान इन्द्रके साथ सम्पूर्ण देवताओंने वृत्रासुरको देखा ॥ १५–१६ ॥

ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः ।
व्याप्तं जगदिदं सर्वं तेजसा तव दुर्जय ॥ १७ ॥

उस समय वृत्रासुरके पास आकर ऋषियोंने उससे यह प्रिय वचन कहा– 'दुर्जय वीर ! तुम्हारे तेजसे यह सारा जगत् व्याप्त हो रहा है ॥ १७ ॥

न च शक्नोषि निर्जेतुं वासवं भूरिविक्रमम्।
युध्यतोश्चापि वां कालो व्यतीतः सुमहानिह ॥ १८ ॥

इतनेपर भी तुम बलशाली इन्द्रको जीत नहीं सकते। तुम दोनोंको युद्ध करते बहुत समय बीत गया है ॥ १८ ॥

पीडयन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानवाः।
सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा।
अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रलोकांश्च शाश्वतान् ॥ १९ ॥

'देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सारी प्रजा इस युद्धसे पीडित हो रही है। अतः, वृत्रासुर हम चाहते हैं कि इन्द्रके साथ तुम्हारी सदाके लिये मैत्री हो जाय इससे तुम्हें सुख मिलेगा और इन्द्रके सनातन लोकोंपर भी तुम्हारा अधिकार रहेगा।' ॥ १९ ॥

ऋषिवाक्यं निशम्याथ स वृत्रः सुमहाबलः।
उवाच तांस्तदा सर्वान्प्रणम्य शिरसासुरः ॥ २० ॥

ऋषियोंकी यह बात सुनकर महाबली वृत्रासुरने उन सबको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा ॥ २० ॥

सर्वे यूयं महाभागा गन्धर्वाश्चैव सर्वशः।
यद्‍ब्रूत तच्छ्रुतं सर्वं ममापि शृणुतानघाः ॥ २१ ॥

'महाभाग देवताओ! महर्षियो तथा गन्धर्वो! आप सब लोग जो कुछ कह रहे हैं, वह सब मैंने सुन लिया। निष्पाप देवगण! अब मेरी भी बात आप लोग सुनें ॥ २१ ॥

संधिः कथं वै भविता मम शक्रस्य चोभयोः।
तेजसोर्हि द्वयोर्देवाः सख्यं वै भविता कथम् ॥ २२ ॥

मुझमें और इन्द्रमें संधि कैसे होगी? दो तेजस्वी पुरुषोंमें मैत्रीका सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित हो सकेगा? ॥ २२ ॥

ऋषय ऊचुः

सकृत्सतां संगतं लिप्सितव्यं ततः परं भविता भव्यमेव।
नातिक्रामेत्सत्पुरुषेण संगतं तस्मात्सतां संगतं लिप्सितव्यम् ॥ २३ ॥

ऋषि बोले— एक बार साधु पुरुषोंकी संगतिकी अभिलाषा अवश्य रखनी चाहिये। साधु पुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होनेपर उससे परम कल्याण ही होगा। साधु पुरुषोंके सङ्गकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। अतः, संतोंका सङ्ग पानेकी अवश्य इच्छा करे ॥ २३ ॥

दृढं सतां संगतं चापि नित्यं ब्रूयाचार्थं ह्यर्थकृच्छ्रेषु धीरः ।
महार्थवत्सत्पुरुषेण संगतं तस्मात्सन्तं न जिघांसेत धीरः ॥ २४ ॥

सज्जनोंका सङ्ग सुदृढ एवं चिरस्थायी होता है। धीर संत-महात्मा संकटके समय हितकर कर्तव्यका ही उपदेश देते हैं। साधु पुरुषोंका सङ्ग महान् अभीष्ट वस्तुओंका साधक होता है। अतः, बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह सज्जनोंको नष्ट करनेकी इच्छा न करे ॥२४॥

इन्द्रः सतां सम्मतश्च निवासश्च महात्मनाम् ।
सत्यवादी ह्यदीनश्च धर्मवित्सुविनिश्चतः ॥ २५ ॥

इन्द्र सत्पुरुषोंके सम्माननीय हैं। महात्मा पुरुषोंके आश्रय हैं। वे सत्यवादी, अदीन, धर्मज्ञ तथा सूक्ष्म बुद्धिवाले हैं ॥ २५ ॥

तेन ते सह शक्रेण संधिर्भवतु शाश्वतः ।
एवं विश्वासमागच्छ मा ते भूद्बुद्धिरन्यथा ॥ २६ ॥

ऐसे इन्द्रके साथ तुम्हारी सदाके लिये संधि हो जाय। इस प्रकार तुम उनका विश्वास प्राप्त करो। तुम्हें इसके विपरीत कोई विचार नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥

शल्य उवाच

महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महाद्युतिः ।
अवश्यं भगवन्तो मे माननीयास्तपस्विनः ॥ २७ ॥

शल्य बोले—राजन्! महर्षियोंकी कह बात सुनकर महातेजस्वी वृत्रने उनसे कहा—'भगवन्! आप जैसे तपस्वी महात्मा अवश्य ही मेरे लिये सम्माननीय हैं' ॥ २७ ॥

ब्रवीमि यदहं देवास्तत्सर्वं क्रियतामिह ।
ततः सर्वं करिष्यामि यदूचुर्मां द्विजर्षभाः ॥ २८ ॥

'देवताओ! मैं अभी जो कुछ कह रहा हूं, वह सब यदि आपलोग स्वीकार कर लें, तो इन श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियोंने मुझे जो आदेश दिये हैं, उन सबका मैं अवश्य पालन करूँगा' ॥२८॥

न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा ।
न शस्त्रेण न वज्रेण न दिवा न तथा निशि ॥ २९ ॥

'मैं न सूखी वस्तुसे, न गीली वस्तुसे, न पत्थरसे, न लकड़ीसे, न शस्त्रसे, न वज्रसे, न दिनमें और न रातमें ही ॥ २९ ॥

वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः ।
एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नित्यदा ॥ ३० ॥

देवोंके सहित इन्द्रसे मारा जाऊं। हे श्रेष्ठ विप्रो! इस शर्तपर देवेन्द्रके साथ सदाके लिये मेरी संधि हो, तो मैं उसे पसंद करता हूं' ॥ ३० ॥

बाढमित्येव ऋषयस्तमूचुर्भरतर्षभ ।
एवं कृते तु संधाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब ऋषियोंने उससे 'बहुत अच्छा' कहा । इस प्रकार संधि हो जानेपर वृत्रासुरको बडी प्रसन्नता हुई ॥ ३१ ॥

यत्तः सदाभवच्चापि शक्रोऽमर्षसमन्वितः ।
वृत्रस्य वधसंयुक्तानुपायाननुचिन्तयन् ।
रन्ध्रान्वेषी समुद्विग्नः सदाभूद्बलवृत्रहा ॥ ३२ ॥

इन्द्र भी हमेशा वृत्रको मारनेके उपायोंको सोचते हुए हर्षमें भरकर सदा उससे मिलने लगे, वृत्रासुरके छिद्रकी, उसे मारनेके अवसरकी खोज करते हुए बलासुर और वृत्रको मारनेवाले इन्द्र सदा उद्विग्न रहते थे ॥ ३२ ॥

स कदाचित्समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम् ।
संध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्ते रम्यदारुणे ॥ ३३ ॥

एक दिन उन्होंने समुद्रके तटपर उस महान् असुरको देखा । उस समय सुन्दर पर दारुण संध्याकालका मुहूर्त उपस्थित था ॥ ३३ ॥

ततः संचिन्त्य भगवान्वरदानं महात्मनः ।
संध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसं न च ।
वृत्रश्चावश्यवध्योऽयं मम सर्वहरो रिपुः ॥ ३४ ॥

भगवान् इन्द्रने परमात्मा श्रीविष्णुके वरदानका विचार करके सोचा— 'यह भयंकर संध्या उपस्थित है, इस समय न रात है, न दिन है, अतः, अभी इस वृत्रासुरका अवश्य वध कर देना चाहिये; क्योंकि यह मेरा सर्वस्व हर लेनेवाला शत्रु है ॥ ३४ ॥

यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वञ्चयित्वा महासुरम् ।
महाबलं महाकायं न मे श्रेयो भविष्यति ॥ ३५ ॥

यदि इस महाबली, महाकाय और महान् असुर वृत्रको धोखा देकर मैं अभी नहीं मार डालता हूँ, तो मेरा भला न होगा' ॥ ३५ ॥

एवं संचिन्तयन्नेव शक्रो विष्णुमनुस्मरन् ।
अथ फेनं तदापश्यत्समुद्रे पर्वतोपमम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार सोचते हुए ही इन्द्र भगवान् विष्णुका बार बार स्मरण करने लगे । इसी समय उनकी दृष्टि समुद्रमें उठते हुए पर्वताकार फेनपर पडी ॥ ३६ ॥

नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ।
एनं क्षेप्स्यामि वृत्रस्य क्षणादेव नशिष्यति ॥ ३७ ॥

उसे देखकर इन्द्रने मन-ही मन यह विचार किया कि यह न सूखा है न आर्द्र, न अस्त्र है न शस्त्र, अतः इसीको वृत्रासुरपर फेंकूंगा, जिससे वह क्षणभरमें नष्ट हो जायगा ॥ ३७ ॥

सवज्रमथ फेनं तं क्षिप्रं वृत्रे निसृष्टवान् ।
प्रविश्य फेनं तं विष्णुरथ वृत्रं व्यनाशयत् ॥ ३८ ॥

यह सोचकर इन्द्रने तुरंत ही वृत्रासुरपर वज्रसहित फेनका प्रहार किया । उस समय भगवान् विष्णुने उस फेनमें प्रवेश करके वृत्रासुरको नष्ट कर दिया ॥ ३८ ॥

निहते तु ततो वृत्रे दिशो वितिमिराभवन् ।
प्रववौ च शिवो वायुः प्रजाश्च जहृषुस्तदा ॥ ३९ ॥

वृत्रासुरके मारे जानेपर सम्पूर्ण दिशाओंका अन्धकार दूर हो गया, शीतल सुखद वायु चलने लगी और सम्पूर्ण प्रजामें हर्ष छा गया ॥ ३९ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
ऋषयश्च महेन्द्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः ॥ ४० ॥

तदनन्तर देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महानाग तथा ऋषि भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंद्वारा महेन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥

नमस्कृतः सर्वभूतैः सर्वभूतानि सान्त्वयन् ।
हत्वशत्रुः प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः ।
विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास धर्मवित् ॥ ४१ ॥

जिसने शत्रु मार दिया है, ऐसे प्रसन्न मनवाले तथा सभी प्राणियोंसे पूजित होते हुए देवों सहित इन्द्रने सब भूतोंको सांत्वना दी । तत्पश्चात् धर्मज्ञ देवराजने तीनों लोकोंके श्रेष्ठ आराध्यदेव भगवान् विष्णुका पूजन किया ॥ ४१ ॥

ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे ।
अनृतेनाभिभूतोऽभूच्छक्रः परमदुर्मनाः ।
त्रैशीर्षयाभिभूतश्च स पूर्वं ब्रह्महत्यया ॥ ४२ ॥

इस प्रकार देवताओंको भय देनेवाले महापराक्रमी वृत्रासुरके मारे जानेपर विश्वासघातरूपी असत्यसे अभिभूत होकर इन्द्र मन-ही मन बहुत दुःखी हो गये । त्रिशिराके वधसे उत्पन्न हुई ब्रह्महत्याने तो उन्हें पहलेसे ही घेर रक्खा था ॥ ४२ ॥

सोऽन्तमाश्रित्य लोकानां नष्टसंज्ञो विचेतनः।
न प्राज्ञायत देवेन्द्रस्त्वभिभूतः स्वकल्मषैः।
प्रतिच्छन्नो वसत्यप्सु चेष्टमान इवोरगः ॥ ४३ ॥

वे सम्पूर्ण लोकोंकी अन्तिम सीमापर जाकर बेसुध और अचेत होकर रहने लगे। वहाँ अपने ही पापोंसे पीडित हुए देवेन्द्रका किसीको पता न चला। वे जलमें विचरनेवाले सर्पकी भाँति पानीमें ही छिपकर रहने लगे ॥ ४३ ॥

ततः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते।
भूमिः प्रध्वस्तसंकाशा निर्वृक्षा शुष्ककानना।
विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि च ॥ ४४ ॥

ब्रह्महत्याके भयसे पीडित होकर जब देवराज इन्द्र अदृश्य हो गये, तब वृक्षसे रहित और सूखे हुए वनोंवाली होकर यह पृथ्वी नष्ट-सी हो गयी। नदियोंका स्रोत छिन्न-भिन्न हो गया और सरोवरोंका जल सूख गया ॥ ४४ ॥

संक्षोभश्चापि सत्त्वानामनावृष्टिकृतोऽभवत्।
देवाश्चापि भृशं त्रस्तास्तथा सर्वे महर्षयः ॥ ४५ ॥

सब जीवोंमें अनावृष्टिके कारण क्षोभ उत्पन्न हो गया। देवता तथा सम्पूर्ण महर्षि भी अत्यन्त भयभीत हो गये ॥ ४५ ॥

अराजकं जगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः।
ततो भीताभवन्देवाः को नो राजा भवेदिति ॥ ४६ ॥

सम्पूर्ण जगत्में अराजकताके कारण भारी उपद्रव होने लगे। तब देवगण भयभीत हो गए और सोचने लग गए कि 'अब हमारा राजा कौन होगा' ॥ ४६ ॥

दिवि देवर्षयश्चापि देवराजविनाकृताः।
न च स्म कश्चिद्देवानां राज्याय कुरुते मनः ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ २९६ ॥

स्वर्गमें देवराज इन्द्रके न होनेसे देवर्षि भी भयभीत होकर सोचने लगे। देवताओंमेंसे कोई स्वर्गका राजा बननेकी इच्छा नहीं करता था ॥ ४७ ॥

॥ महाभारतमें उद्योगपर्वमें दसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ २९६ ॥

: ११ :

शल्य उवाच

ऋषयोऽथाब्रुवन्सर्वे देवाश्च त्रिदशेश्वराः ।
अयं वै नहुषः श्रीमान्देवराज्येऽभिषिच्यताम् ।
ते गत्वाथाब्रुवन्सर्वे राजा नो भव पार्थिव ॥ १ ॥

शल्य बोले— युधिष्ठिर ! इस प्रकार (स्वर्गमें अराजकता हो जानेपर) ऋषियों, सम्पूर्ण देवताओं एवं देवेश्वरोंने परस्पर मिलकर कहा— 'ये जो श्रीमान् नहुष हैं, इन्हींको देवराजके पदपर अभिषिक्त किया जाय' ऐसा निश्चय करके वे सब लोग राजा नहुषके पास जाकर बोले— 'पृथिवीपते ! आप हमारे राजा होइये' ॥ १ ॥

स तानुवाच नहुषो देवानृषिगणांस्तथा ।
पितृभिः सहितान्राजन्परीप्सन्हितमात्मनः ॥ २ ॥

राजन् ! तब नहुषने पितरोंसहित उन देवताओं तथा ऋषियोंसे अपने हितकी इच्छासे कहा ॥ २ ॥

दुर्बलोऽहं न मे शक्तिर्भवतां परिपालने ।
बलवाञ्जायते राजा बलं शक्रे हि नित्यदा ॥ ३ ॥

'मैं तो दुर्बल हूँ, मुझमें आपलोकोंकी रक्षा करनेकी रक्षा करनेकी शक्ति नहीं है। बलवान् पुरुष ही राजा होता है । इन्द्रमें ही बलकी नित्य सत्ता है' ॥ ३ ॥

तमब्रुवन्पुनः सर्वे देवाः सर्षिपुरोगमाः ।
अस्माकं तपसा युक्तः पाहि राज्यं त्रिविष्टपे ॥ ४ ॥

यह सुनकर सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि पुनः उनसे बोले— 'राजेन्द्र ! आप हमारी तपस्यासे संयुक्त हो स्वर्गके राज्यका पालन कीजिये ॥ ४ ॥

परस्परभयं घोरमस्माकं हि न संशयः ।
अभिषिच्यस्व राजेन्द्र भव राजा त्रिविष्टपे ॥ ५ ॥

हमलोगोंमें प्रत्येकको एक दूसरेसे घोर भय बना रहता है, इसमें संशय नहीं है । अतः, आप अपना अभिषेक कराइये और स्वर्गके राजा होइये ॥ ५ ॥

देवदानवयक्षाणामृषीणां रक्षसां तथा ।
पितृगन्धर्वभूतानां चक्षुर्विषयवर्तिनाम् ।
तेज आदास्यसे पश्यन्बलवांश्च भविष्यसि ॥ ६ ॥

'देवता, दानव, यक्ष, ऋषि, राक्षस, पितर, गन्धर्व और भूत— जो भी आपके नेत्रोंके सामने आ जायँगे, उन्हें देखते ही आप उनका तेज हर लेंगे और बलवान् हो जायँगे ॥ ६ ॥

धर्मं पुरस्कृत्य सदा सर्वलोकाधिपो भव ।
ब्रह्मर्षींश्चापि देवांश्च गोपायस्व त्रिविष्टपे ॥ ७ ॥

अतः, सदा धर्मको सामने रखते हुए आप सम्पूर्ण लोकोंके अधिपति होइये। आप स्वर्गमें रहकर ब्रह्मर्षियों तथा देवताओंका पालन कीजिये ' ॥ ७ ॥

सुदुर्लभं वरं लब्ध्वा प्राप्य राज्यं त्रिविष्टपे ।
धर्मात्मा सततं भूत्वा कामात्मा समपद्यत ॥ ८ ॥

वे परम दुर्लभ वर पाकर स्वर्गके राज्यको हस्तगत करके निरन्तर धर्मपरायण रहते हुए भी कामभोगमें आसक्त हो गये ॥ ८ ॥

देवोद्यानेषु सर्वेषु नन्दनोपवनेषु च ।
कैलासे हिमवत्पृष्ठे मन्दरे श्वेतपर्वते ।
सह्ये महेन्द्रे मलये समुद्रेषु सरित्सु च ॥ ९ ॥

सम्पूर्ण देवोद्यानोंमें, नन्दनवनके उपवनोंमें, कैलासमें, हिमालयके शिखरपर, मन्दराचल, श्वेतगिरि, सह्य, महेन्द्र तथा मलयपर्वतपर एवं समुद्रों और सरिताओंमें ॥ ९ ॥

अप्सरोभिः परिवृतो देवकन्यासमावृतः ।
नहुषो देवराजः सन्क्रीडन्बहुविधं तदा ॥ १० ॥

अप्सराओं तथा देवकन्याओंसे घिरकर नहुष भाँति-भाँतिकी क्रीडाएं करते थे ॥ १० ॥

शृण्वन्दिव्या बहुविधाः कथाः श्रुतिमनोहराः ।
वादित्राणि च सर्वाणि गीतं च मधुरस्वरम् ॥ ११ ॥

कानों और मनको आकर्षित करनेवाली नाना प्रकारकी दिव्य कथाएं सुनते थे तथा सब प्रकारके वाद्यों और मधुर स्वरसे गाये जानेवाले गीतोंका आनन्द लेते थे ॥ ११ ॥

विश्वावसुर्नारदश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
ऋतवः षट् च देवेन्द्रं मूर्तिमन्त उपस्थिताः ।
मारुतः सुरभिर्वाति मनोज्ञः सुखशीतलः ॥ १२ ॥

विश्वावसु, नारद, गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदाय तथा छहों ऋतुएं शरीर धारण करके देवेन्द्रकी सेवामें उपस्थित होती थीं। उनके लिये वायु मनोहर, सुखद, शीतल और सुगन्धित होकर बहते थे ॥ १२ ॥

एवं च क्रीडतस्तस्य नहुषस्य महात्मनः ।
सम्प्राप्ता दर्शनं देवी शक्रस्य महिषी प्रिया ॥ १३ ॥

इस प्रकार क्रीडा करते हुए महात्मा राजा नहुषकी दृष्टि एक दिन देवराज इन्द्रकी प्यारी शचीपर पडी ॥ १३ ॥

×

स तां संदृश्य दुष्टात्मा प्राह सर्वान्सभासदः ।
इन्द्रस्य महिषी देवी कस्मान्मां नोपतिष्ठति ॥ १४ ॥

उन्हें देखकर दुष्टात्मा नहुषने समस्त सभासदोंसे कहा– 'इन्द्रकी महारानी शची मेरी सेवामें क्यों नहीं उपस्थित होती ? ॥ १४ ॥

अहमिन्द्रोऽस्मि देवानां लोकानां च तथेश्वरः ।
आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम् ॥ १५ ॥

मैं देवताओंका इन्द्र हूं और सम्पूर्ण लोकोंका अधीश्वर हूं । अतः, शचीदेवी आज मेरे महलमें शीघ्र पधारें' ॥ १५ ॥

तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह ।
रक्ष मां नहुषाद्ब्रह्मंस्त्वामस्मि शरणं गता ॥ १६ ॥

यह सुनकर शचीदेवी मन ही मन बहुत दुःखी हुई और बृहस्पतिसे बोलीं– 'ब्रह्मन् ! मैं आपकी शरणमें आयी हूं, आप नहुषसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ १६ ॥

सर्वलक्षणसम्पन्नां ब्रह्मंस्त्वं मां प्रभाषसे ।
देवराजस्य दयितामत्यन्तसुखभागिनीम् ॥ १७ ॥

विप्रवर ! आप मुझे सभी उत्तम लक्षणोंसे युक्त, देवराज इन्द्रकी प्यारी अत्यन्त सुखकी भोग करनेवाली कहा करते थे ॥ १७ ॥

अवैधव्येन संयुक्तामेकपत्नीं पतिव्रताम् ।
उक्तवानसि मां पूर्वमृतां तां कुरु वै गिरम् ॥ १८ ॥

तथा कभी विधवा न होनेवाली एकपत्नी व्रतवाले इन्द्रकी पत्नी और पतिव्रता आदि पहले आपने मुझसे कहा था, अब अपनी बात सत्य कीजिए ॥ १८ ॥

नोक्तपूर्वं च भगवन्मृषा ते किंचिदीश्वर ।
तस्मादेतद्भवेत्सत्यं त्वयोक्तं द्विजसत्तम ॥ १९ ॥

देवगुरो ! आपके मुखसे पहले कभी कोई व्यर्थ या असत्य वचन नहीं निकला है, अतः, द्विजश्रेष्ठ ! आपका यह पूर्वोक्त वचन भी सत्य होना चाहिये' ॥ १९ ॥

बृहस्पतिरथोवाच इन्द्राणीं भयमोहिताम् ।
यदुक्तासि मया देवि सत्यं तद्भविता ध्रुवम् ॥ २० ॥

यह सुनकर बृहस्पतिने भयसे व्याकुल हुई इन्द्राणीसे कहा– 'देवि ! मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह सब अवश्य सत्य होगा ॥ २० ॥

द्रक्ष्यसे देवराजानमिन्द्रं शीघ्रमिहागतम् ।
न भेतव्यं च नहुषात्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
समानयिष्ये शक्रेण नचिराद्भवतीमहम् ॥ २१ ॥

तुम शीघ्र ही देवराज इन्द्रको यहां आया हुआ देखोगी। नहुषसे तुम्हें डरना नहीं चाहिये। मैं सच्ची बात कहता हूं, थोडे ही दिनोंमें तुम्हें इन्द्रसे मिला दूंगा ॥ २१ ॥

अथ शुश्राव नहुष इन्द्राणीं शरणं गताम् ।
बृहस्पतेराङ्गिरसश्चुक्रोध स नृपस्तदा ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ३१८ ॥

जब राजा नहुषने सुना कि इन्द्राणी अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिकी शरणमें गयी है, तब वे बहुत कुपित हुए ॥ २२ ॥

॥ महाभारतमें उद्योगपर्वमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ ३१८ ॥

: १२ :

शल्य उवाच

क्रुद्धं तु नहुषं ज्ञात्वा देवाः सर्षिपुरोगमाः ।
अब्रुवन्देवराजानं नहुषं घोरदर्शनम् ॥ १ ॥

शल्य बोले– युधिष्ठिर ! देवराज नहुषको क्रोधमें भरे हुए देख देवतालोग ऋषियोंको आगे करके उनके पास गये । और भयंकर दीखनेवाले नहुषसे देवताओं तथा ऋषियोंने कहा ॥ १ ॥

देवराज जहि क्रोधं त्वयि क्रुद्धे जगद्विभो ।
त्रस्तं सासुरगन्धर्वं सकिन्नरमहोरगम् ॥ २ ॥

'देवराज ! आप क्रोध छोडें । प्रभो ! आपके कुपित होनेसे असुर, गन्धर्व, किन्नर और महानागगणोंसहित सम्पूर्ण जगत् भयभीत हो उठा है ॥ २ ॥

जहि क्रोधमिमं साधो न क्रुध्यन्ति भवद्विधाः ।
परस्य पत्नी सा देवी प्रसीदस्व सुरेश्वर ॥ ३ ॥

'साधो ! आप इस क्रोधको त्याग दीजिये । आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष दूसरोंपर कोप नहीं करते । अतः, प्रसन्न होइये । सुरेश्वर ! शची देवी दूसरे इन्द्रकी पत्नी हैं ॥ ३ ॥

निवर्तय मनः पापात्परदाराभिमर्शनात्।
देवराजोऽसि भद्रं ते प्रजा धर्मेण पालय ॥ ४ ॥

'परायी स्त्रियोंके स्पर्श रूप पापकर्मसे मनको हटा लीजिये। आप देवताओंके राजा हैं। आपका कल्याण हो। आप धर्मपूर्वक प्रजाका पालन कीजिये' ॥ ४ ॥

एवमुक्तो न जग्राह तद्वचः काममोहितः।
अथ देवानुवाचेदमिन्द्रं प्रति सुराधिपः ॥ ५ ॥

उनके ऐसा कहनेपर भी काममोहित नहुषने उनकी बात नहीं मानी। उस समय देवेश्वर नहुषने इन्द्रके विषयमें देवताओंसे इस प्रकार कहा— ॥ ५ ॥

अहल्या धर्षिता पूर्वमृषिपत्नी यशस्विनी।
जीवतो भर्तुरिन्द्रेण स वः किं न निवारितः ॥ ६ ॥

'देवताओ! जब इन्द्रने पूर्वकालमें यशस्विनी ऋषि-पत्नी अहल्याका उसके पति गौतमके जीते जी सतीत्व नष्ट किया था, उस समय आपलोगोंने उन्हें क्यों नहीं रोका? ॥ ६ ॥

बहूनि च नृशंसानि कृतानीन्द्रेण वै पुरा।
वैधर्म्याण्युपधाश्चैव स वः किं न निवारितः ॥ ७ ॥

'प्राचीन कालमें इन्द्रने बहुतसे क्रूरतापूर्ण कर्म किये हैं। अनेक अधार्मिक कृत्य तथा छल कपट उनके द्वारा हुए हैं। उन्हें आपलोगोंने क्यों नहीं रोका था? ॥ ७ ॥

उपतिष्ठतु मां देवी एतदस्या हितं परम्।
युष्माकं च सदा देवाः शिवमेवं भविष्यति ॥ ८ ॥

'शची देवी मेरी सेवामें उपस्थित हों। इसीमें इनका परम हित है तथा देवताओ! ऐसा होनेपर ही सदा तुम्हारा कल्याण होगा' ॥ ८ ॥

देवा ऊचुः

इन्द्राणीमानयिष्यामो यथेच्छसि दिवस्पते।
जहि क्रोधमिमं वीर प्रीतो भव सुरेश्वर ॥ ९ ॥

देवता बोले— स्वर्गलोकके स्वामी वीर देवेश्वर! आपकी जैसी इच्छा है, उसके अनुसार हमलोग इन्द्राणीको आपकी सेवामें ले आयेंगे। आप यह क्रोध छोड़िये और प्रसन्न होइये ॥ ९ ॥

शल्य उवाच

इत्युक्त्वा ते तदा देवा ऋषिभिः सह भारत।
जग्मुर्बृहस्पतिं वक्तुमिन्द्राणीं चाशुभं वचः ॥ १० ॥

शल्य बोले— युधिष्ठिर! नहुषसे ऐसा कहकर उस समय सब देवता ऋषियोंके साथ इन्द्राणीसे यह अशुभ वचन कहनेके लिये बृहस्पतिके पास गये ॥ १० ॥

जानीमः शरणं प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेश्मनि ।
दत्ताभयां च विप्रेन्द्र त्वया देवर्षिसत्तम ॥ ११ ॥

उन्होंने कहा— देवर्षिप्रवर ! विप्रेन्द्र ! हमें पता लगा है कि इन्द्राणी आपकी शरणमें आयी हैं और आपके ही भवनमें रह रही हैं । आपने उन्हें अभय दान दे रक्खा है ॥ ११ ॥

ते त्वां देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च महाद्युते ।
प्रसादयन्ति चेन्द्राणी नाहुषाय प्रदीयताम् ॥ १२ ॥

महाद्युते ! अब ये देवता, गन्धर्व तथा ऋषि आपको इस बातके लिये प्रसन्न कर रहे हैं कि आप इन्द्राणीको राजा नहुषकी सेवामें अर्पण कर दीजिये ॥ १२ ॥

इन्द्राद्विशिष्टो नहुषो देवराजो महाद्युतिः ।
वृणोत्वियं वरारोहा भर्तृत्वे वरवर्णिनी ॥ १३ ॥

इस समय महातेजस्वी नहुष देवताओंके राजा हैं । अतः, इन्द्रसे बढकर हैं । सुंदर रूप-रंगवाली यह शची इन्हें अपना पति स्वीकार कर लें ' ॥ १३ ॥

एवमुक्ते तु सा देवी बाष्पमुत्सृज्य सस्वरम् ।
उवाच रुदती दीना बृहस्पतिमिदं वचः ॥ १४ ॥

देवताओंके यह बात कहनेपर शचीदेवी आँसू बहाती हुई फूट फूटकर रोती हुई दीनभावसे बृहस्पतिसे इस प्रकार बोलीं ॥ १४ ॥

नाहमिच्छामि नहुषं पतिमन्वास्य तं प्रभुम् ।
शरणागतास्मि ते ब्रह्मंस्त्राहि मां महतो भयात् ॥ १५ ॥

' मैं उस अपने प्रभु इन्द्रको छोडकर नहुषको अपना पति बनाना नहीं चाहती, इसीलिये आपकी शरणमें आयी हूँ । अतः, हे ब्रह्मन् ! आप इस महान् भयसे मेरी रक्षा कीजिये ' ॥ १५ ॥

बृहस्पतिरुवाच

शरणागतं न त्यजेयमिन्द्राणि मम निश्चितम् ।
धर्मज्ञां सत्यशीलां च न त्यजे त्वामनिन्दिते ॥ १६ ॥

बृहस्पति बोले— इन्द्राणी ! मैं शरणागतका त्याग नहीं कर सकता, यह मेरा दृढ निश्चय है । अनिन्दिते ! अतः, धर्मज्ञ और सत्यशील तुम्हारा मैं त्याग नहीं करूँगा ॥ १६ ॥

नाकार्यं कर्तुमिच्छामि ब्राह्मणः सन्विशेषतः ।
श्रुतधर्मा सत्यशीलो जानन्धर्मानुशासनम् ॥ १७ ॥

विशेषतः ब्राह्मण होकर मैं यह न करने योग्य कार्य नहीं कर सकता । मैंने धर्मकी बातें सुनी हैं और सत्यको अपने स्वभावमें उतार लिया है । शास्त्रोंमें जो धर्मका उपदेश किया है, उसे भी जानता हूँ ॥ १७ ॥

नाहमेतत्करिष्यामि गच्छध्वं वै सुरोत्तमाः ।
अस्मिंश्चार्थे पुरा गीतं ब्रह्मणा श्रूयतामिदम् ॥ १८ ॥

अतः, मैं यह पापकर्म नहीं करूंगा । सुरश्रेष्ठगण ! आपलोग लौट जायं। इस विषयमें ब्रह्माने पूर्वकालमें जो बात कही थी, वह इस प्रकार है, सुनिये ॥ १८ ॥

न तस्य बीजं रोहति बीजकाले न चास्य वर्ष वर्षति वर्षकाले ।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे न सोऽन्तरं लभते त्राणमिच्छन् ॥ १९ ॥

जो भयभीत होकर शरणमें आये हुए प्राणीको उसके शत्रुके हाथमें दे देता है, उसका बोया हुआ बीज समयपर नहीं जमता है। उसके यहां ठीक समयपर वर्षा नहीं होती और वह जब कभी अपनी रक्षा चाहता है, तो उसे कोई रक्षक नहीं मिलता है ॥ १९ ॥

मोघमन्नं विन्दति चाप्यचेताः स्वर्गाल्लोकाद्भ्रश्यति नष्टचेष्टः ।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति यो वै न तस्य हव्यं प्रतिगृह्णन्ति देवाः ॥ २० ॥

जो भयभीत शरणागतको शत्रुके हाथमें सौंप देता है, वह दुर्बलचित्त मानव जो अन्न ग्रहण करता है, वह व्यर्थ हो जाता है। उसके सारे उद्यम नष्ट हो जाते हैं और वह स्वर्गलोकसे नीचे गिर जाता है। इतना ही नहीं, देवतालोग उसके दिये हुए हविष्यको स्वीकार नहीं करते ॥ २० ॥

प्रमीयते चास्य प्रजा ह्यकाले सदा विवासं पितरोऽस्य कुर्वते ।
भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम् ॥ २१ ॥

उसकी संतान अकालमें ही मर जाती है। उसके पितर सदा नरकमें निवास करते हैं। जो भयभीत शरणागतको शत्रुके हाथमें दे देता है, उसपर इन्द्र आदि देवता वज्रका प्रहार करते हैं' ॥ २१ ॥

एतदेवं विजानन्वै न दास्यामि शचीमिमाम् ।
इन्द्राणीं विश्रुतां लोके शक्रस्य महिषीं प्रियाम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार मैं जानता हुआ सम्पूर्ण विश्वमें इन्द्रकी पत्नी तथा देवराजकी प्यारी पटरानीके रूपमें विख्यात इन शचीदेवीको मैं नहुषके हाथमें नहीं दूंगा ॥ २२ ॥

अस्या हितं भवेद्यच्च मम चापि हितं भवेत् ।
क्रियतां तत्सुरश्रेष्ठा न हि दास्याम्यहं शचीम् ॥ २३ ॥

श्रेष्ठ देवताओ ! जो इनके लिये हितकर हो, जिससे मेरा भी हित हो, वह कार्य आपलोग करें। मैं शचीको कदापि नहीं दूंगा' ॥ २३ ॥

शल्य उवाच

अथ देवास्तमेवाहुर्गुरुमङ्गिरसां वरम् ।
कथं सुनीतं नु भवेन्मन्त्रयस्व बृहस्पते ॥ २४ ॥

शल्य बोले– राजन् ! तब अंगिराओंमें श्रेष्ठ गुरुसे देव इस प्रकार बोले ' बृहस्पते ! आप ही सलाह दीजिये कि किस उपायका अवलम्बन करनेसे शुभ परिणाम होगा ? ' ॥ २४ ॥

बृहस्पतिरुवाच

नहुषं याचतां देवी किंचित्कालान्तरं शुभा ।
इन्द्राणीहितमेतद्धि तथास्माकं भविष्यति ॥ २५ ॥

बृहस्पति बोले– देवगण ! शुभलक्षणा शचीदेवी नहुषसे कुछ समयकी अवधि मांगें । इसीसे इनका और हमारा भी हित होगा ॥ २५ ॥

बहुविघ्नकरः कालः कालः कालं नयिष्यति ।
दर्पितो बलवांश्चापि नहुषो वरसंश्रयात् ॥ २६ ॥

समय अनेक प्रकारके विघ्नोंको पैदा करनेवाला होता है । इस समय नहुष आपलोगोंके वरदानके प्रभावसे बलवान् और गर्वीला हो गया है, अतः, काल ही उसे कालके गालमें पहुंचा देगा ॥ २६ ॥

शल्य उवाच

ततस्तेन तथोक्ते तु प्रीता देवास्तमब्रुवन् ।
ब्रह्मन्साध्विदमुक्तं ते हितं सर्वदिवौकसाम् ।
एवमेतद्द्विजश्रेष्ठ देवी चेयं प्रसाद्यताम् ॥ २७ ॥

शल्य बोले– राजन् ! उनके इस प्रकार सलाह देनेपर देवता बडे प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले– ' ब्रह्मन् ! आपने बहुत अच्छी बात कही है । इसीमें सम्पूर्ण देवताओंका हित है, द्विजश्रेष्ठ ! इसी बातके लिये शचीदेवीको राजी कीजिये । ' ॥ २७ ॥

ततः समस्ता इन्द्राणीं देवाः साग्निपुरोगमाः ।
ऊचुर्वचनमव्यग्रा लोकानां हितकाम्यया ॥ २८ ॥

तदनन्तर अग्नि आदि सब देवता इन्द्राणीके पास जाकर समस्त लोकोंके हितके लिये शान्तभावसे इस प्रकार बोले ॥ २८ ॥

त्वया जगदिदं सर्वं धृतं स्थावरजङ्गमम् ।
एकपत्न्यसि सत्या च गच्छस्व नहुषं प्रति ॥ २९ ॥

देवि ! यह समस्त चराचर जगत् तुमने ही धारण कर रक्खा है, क्योंकि तुम पतिव्रता और सत्यपरायणा हो । अतः, तुम नहुषके पास चलो ॥ २९ ॥

क्षिप्रं त्वामभिकामश्च विनाशिष्यति पार्थिवः ।
नहुषो देवि शक्रश्च सुरैश्वर्यमवाप्स्यति ॥ ३० ॥

देवेश्वरि ! तुम्हारी कामना करनेके कारण राजा नहुष शीघ्र ही नष्ट हो जायगा और इन्द्र पुनः अपने देवसाम्राज्यको प्राप्त कर लेंगे ' ॥ ३० ॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा इन्द्राणी कार्यसिद्धये ।
अभ्यगच्छत सव्रीडा नहुषं घोरदर्शनम् ॥ ३१ ॥

अपनी कार्य-सिद्धिके लिये ऐसा निश्चय करके इन्द्राणी भयंकर दृष्टिवाले नहुषके पास बड़ी ही लज्जाके साथ गयी ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा तां नहुषश्चापि वयोरूपसमन्विताम् ।
समहृष्यत दुष्टात्मा कामोपहतचेतनः ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ३५० ॥

नयी अवस्था और सुन्दर रूपसे सुशोभित इन्द्राणीको देखकर दुष्टात्मा तथा कामभावनासे नष्ट हुई हुई बुद्धिवाला वह नहुष बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ३५० ॥

: १३ :

शल्य उवाच

अथ तामब्रवीद्दृष्ट्वा नहुषो देवराट् तदा ।
त्रयाणामपि लोकानामहमिन्द्रः शुचिस्मिते ।
भजस्व मां वरारोहे पतित्वे वरवर्णिनि ॥ १ ॥

शल्य बोले— युधिष्ठिर ! उस समय देवराज नहुषने इन्द्राणीको देखकर कहा— ' शुचिस्मिते ! मैं तीनों लोकोंका स्वामी इन्द्र हूं । उत्तम रूप-रंगवाली सुन्दरी ! तुम मुझे अपना पति बना लो ' ॥ १ ॥

एवमुक्ता तु सा देवी नहुषेण पतिव्रता ।
प्रावेपत भयोद्विग्ना प्रवाते कदली यथा ॥ २ ॥

नहुषके ऐसा कहनेपर पतिव्रता देवी शची भयसे उद्विग्न हो तेज हवामें हिलनेवाले केलेके वृक्षकी भांति कांपने लगीं ॥ २ ॥

नमस्य सा तु ब्रह्माणं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।
देवराजमथोवाच नहुषं घोरदर्शनम् ॥ ३ ॥

उन्होंने ब्रह्माको प्रणाम किया और भयंकर दृष्टिवाले देवराज नहुषसे हाथ जोडकर तथा सिरमें लगाकर कहा ॥ ३ ॥

कालमिच्छाम्यहं लब्धुं किंचित्त्वत्तः सुरेश्वर ।
न हि विज्ञायते शक्रः प्राप्तः किं वा क्व वा गतः ॥ ४ ॥

'देवेश्वर ! मैं आपसे कुछ समयकी अवधि लेना चाहती हूं । अभी यह पता नहीं है कि देवेन्द्र किस अवस्थामें पडे हैं ? अथवा कहां चले गये हैं ? ॥ ४ ॥

तत्त्वमेतत्तु विज्ञाय यदि न ज्ञायते प्रभो ।
ततोऽहं त्वामुपस्थास्ये सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
एवमुक्तः स इन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥ ५ ॥

प्रभो ! इसका ठीक-ठीक पता लगानेपर भी यदि कोई बात मालूम नहीं हो सकी, तो मैं आपकी सेवामें उपस्थित हो जाऊंगी । यह मैं आपसे सत्य कहती हूं !' इन्द्राणीके ऐसा कहनेपर नहुषको बडी प्रसन्नता हुई ॥ ५ ॥

नहुष उवाच

एवं भवतु सुश्रोणि यथा मामभिभाषसे ।
ज्ञात्वा चागमनं कार्यं सत्यमेतदनुस्मरेः ॥ ६ ॥

नहुष बोले– सुन्दरी ! तुम मुझसे जैसा कह रही हो ऐसा ही हो । इसके अनुसार पता लगाकर तुम्हें मेरे पास आ जाना चाहिये; इस सत्यको सदा याद रखना ' ॥ ६ ॥

नहुषेण विसृष्टा च निश्चक्राम ततः शुभा ।
बृहस्पतिनिकेतं सा जगाम च तपस्विनी ॥ ७ ॥

नहुषसे बिदा लेकर शुभलक्षणा तपस्विनी शची उस स्थानसे निकली और पुनः बृहस्पतिके भवनमें चली गयी ॥ ७ ॥

तस्याः संश्रुत्य च वचो देवाः साग्निपुरोगमाः ।
मन्त्रयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं राजसत्तम ॥ ८ ॥

नृपश्रेष्ठ ! इन्द्राणीकी बात सुनकर अग्नि आदि सब देवता एकाग्रचित्त होकर इन्द्रकी खोज करनेके लिये आपसमें विचार करने लगे ॥ ८ ॥

देवदेवेन सङ्गम्य विष्णुना प्रभविष्णुना ।
ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ ९ ॥

फिर बातचीतमें कुशल देवगण सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके कारणभूत देवाधिदेव भगवान् विष्णुसे मिले और भयसे उद्विग्न हो उनसे इस प्रकार बोले ॥ ९ ॥

×

ब्रह्महत्याभिभूतो वै शक्रः सुरगणेश्वरः ।
गतिश्च नस्त्वं देवेश पूर्वजो जगतः प्रभुः ।
रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥ १० ॥

'देवेश्वर! देवसमुदायके स्वामी इन्द्र ब्रह्महत्यासे अभिभूत होकर कहीं छिप गये हैं। भगवान्! आप ही हमारे आश्रय और सम्पूर्ण जगत्के पूर्वज तथा प्रभु हैं। आपने समस्त प्राणियोंकी रक्षाके लिये विष्णुरूप धारण किया है ॥ १० ॥

त्वद्वीर्यान्निहते वृत्रे वासवो ब्रह्महत्यया ।
वृतः सुरगणश्रेष्ठ मोक्षं तस्य विनिर्दिश ॥ ११ ॥

यद्यपि वृत्रासुर आपकी ही शक्तिसे मारा गया है तथापि इन्द्रको ब्रह्महत्याने आक्रान्त कर लिया है। सुरगणश्रेष्ठ! अब आप ही उनके उद्धारका उपाय बताइये' ॥ ११ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ।
मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् ॥ १२ ॥

देवताओंकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णु बोले— 'इन्द्र यज्ञोंद्वारा केवल मेरी ही आराधना करें, इससे मैं वज्रधारी इन्द्रको पवित्र कर दूँगा ॥ १२ ॥

पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासनः ।
पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः ॥ १३ ॥

पाकशासन इन्द्र पवित्र अश्वमेध यज्ञके द्वारा मेरी आराधना करके पुनः निर्भय हो देवेन्द्र-पदको प्राप्त कर लेंगे ॥ १३ ॥

स्वकर्मभिश्च नहुषो नाशं यास्यति दुर्मतिः ।
किंचित्कालमिदं देवा मर्षयध्वमतन्द्रिताः ॥ १४ ॥

और दुष्ट बुद्धिवाला नहुष अपने कर्मोंसे ही नष्ट हो जायगा। देवताओ! तुम आलस्य छोड़कर कुछ कालतक और यह कष्ट सहन करो' ॥ १४ ॥

श्रुत्वा विष्णोः शुभां सत्यां तां वाणीममृतोपमाम् ।
ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः महर्षिभिः ।
यत्र शक्रो भयोद्विग्नस्तं देशमुपचक्रमुः ॥ १५ ॥

भगवान् विष्णुकी यह शुभ, सत्य तथा अमृतके समान मधुर वाणी सुनकर गुरु तथा महर्षियोंसहित सब देवता उस स्थानपर गये, जहाँ भयसे व्याकुल हुए इन्द्र छिपकर रहते थे ॥ १५ ॥

तत्राश्वमेधः सुमहान्महेन्द्रस्य महात्मनः ।
ववृते पावनार्थं वै ब्रह्महत्यापहो नृप ॥ १६ ॥

नरेश्वर ! वहाँ महात्मा महेन्द्रकी शुद्धिके लिये ब्रह्महत्याको नष्ट करनेवाले एक महान् अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान हुआ ॥ १६ ॥

विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च ।
पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैव युधिष्ठिर ॥ १७ ॥

युधिष्ठिर ! इन्द्रने वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी और स्त्रीसमुदायमें ब्रह्महत्याको बाँट दिया ॥ १७ ॥

संविभज्य च भूतेषु विसृज्य च सुरेश्वरः ।
विज्वरः पूतपाप्मा च वासवोऽभवदात्मवान् ॥ १८ ॥

इस प्रकार समस्त भूतोंमें ब्रह्महत्याका विभाजन करके देवेश्वर इन्द्रने उसे त्याग दिया और स्वयं मनको वशमें करके वे निष्पाप तथा निश्चिन्त हो गये ॥ १८ ॥

अकम्प्यं नहुषं स्थानाद् दृष्ट्वा च बलसूदनः ।
तेजोघ्नं सर्वभूतानां वरदानाच्च दुःसहम् ॥ १९ ॥

परंतु बल नामक दानवका नाश करनेवाले इन्द्र जब अपना स्थान ग्रहण करनेके लिये स्वर्गलोकमें आये, तब देवताओंके वरदानसे अपनी दृष्टिमात्रसे समस्त प्राणियोंके तेजको नष्ट करनेमें समर्थ और दुःसह हुए हुए नहुषको देखकर वे काँप उठे ॥ १९ ॥

ततः शचीपतिर्वीरः पुनरेव व्यनश्यत ।
अदृश्यः सर्वभूतानां कालाकाङ्क्षी चचार ह ॥ २० ॥

तदनन्तर शचीपति इन्द्रदेव पुनः सबकी आँखोंसे ओझल हो गये तथा अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करते हुए समस्त प्राणियोंसे अदृश्य रहकर विचरने लगे ॥ २० ॥

प्रनष्टे तु ततः शक्रे शची शोकसमन्विता ।
हा शक्रेति तदा देवी विललाप सुदुःखिता ॥ २१ ॥

इन्द्रके पुनः अदृश्य हो जानेपर शची देवी शोकमें डूब गयीं और अत्यन्त दुःखी हो 'हा इन्द्र ! हा इन्द्र' कहती हुई विलाप करने लगीं ॥ २१ ॥

यदि दत्तं यदि हुतं गुरवस्तोषिता यदि ।
एकभर्तृत्वमेवास्तु सत्यं यद्यस्ति वा मयि ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् वे इस प्रकार बोलीं— 'यदि मैंने दान दिया हो, होम किया हो, गुरुजनोंको संतुष्ट रक्खा हो तथा मुझमें सत्य विद्यमान हो, तो मेरा पातिव्रत्य सुरक्षित रहे ॥ २२ ॥

पुण्यां चेमामहं दिव्यां प्रवृत्तामुत्तरायणे ।
देवीं रात्रिं नमस्यामि सिध्यतां मे मनोरथः ॥ २३ ॥

' उत्तरायणके दिन जो यह पुण्य एवं दिव्य रात्रि आ रही है, उसकी अधिष्ठात्री देवी रात्रिको मैं नमस्कार करती हूँ, मेरा मनोरथ सफल हो ' ॥ २३ ॥

प्रयता च निशां देवीमुपातिष्ठत तत्र सा ।
पतिव्रतात्वात्सत्येन सोपश्रुतिमथाकरोत् ॥ २४ ॥

ऐसा कहकर शचीने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर रात्रि देवीकी उपासना की । पतिव्रता तथा सत्यपरायणा होनेके कारण उन्होंने उपश्रुति नामवाली रात्रिदेवीका आवाहन किया ॥ २४ ॥

यत्रास्ते देवराजोऽसौ तं देशं दर्शयस्व मे ।
इत्याहोपश्रुतिं देवी सत्यं सत्येन दृश्यताम् ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ३७५ ॥

और उनसे कहा– ' देवि ! जहाँ देवराज इन्द्र हों, वह स्थान मुझे दिखाइये । सत्यका सत्यसे ही दर्शन हो ' ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ ३७५ ॥

: १४ :

शल्य उवाच

अथैनां रूपिणीं साध्वीमुपातिष्ठदुपश्रुतिः ।
तां वयोरूपसम्पन्नां दृष्ट्वा देवीमुपस्थिताम् ॥ १ ॥

शल्य बोले– युधिष्ठिर ! तदनन्तर उपश्रुति देवी मूर्तिमती होकर साध्वी शचीदेवीके पास आयीं । नूतन वय तथा मनोहर रूपसे सुशोभित उपश्रुति देवीको उपस्थित हुई देखा ॥ १ ॥

इन्द्राणी सम्प्रहृष्टा सा सम्पूज्यैनामपृच्छत ।
इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं का त्वं ब्रूहि वरानने ॥ २ ॥

इन्द्राणीका मन प्रसन्न हो गया । उन्होंने उनका पूजन करके कहा– ' सुमुखि ! मैं आपको जानना चाहती हूँ, बताइये, आप कौन हैं ? ' ॥ २ ॥

उपश्रुतिरुवाच

उपश्रुतिरहं देवि तवान्तिकमुपागता ।
दर्शनं चैव सम्प्राप्ता तव सत्येन तोषिता ॥ ३ ॥

उपश्रुति बोलीं— देवि ! मैं उपश्रुति हूँ और तुम्हारे पास आयी हूँ । भामिनि ! तुम्हारे सत्यसे प्रभावित होकर मैंने तुम्हें दर्शन दिया है ॥ ३ ॥

पतिव्रतासि युक्ता च यमेन नियमेन च ।
दर्शयिष्यामि ते शक्रं देवं वृत्रनिषूदनम् ।
क्षिप्रमन्वेहि भद्रं ते द्रक्ष्यसे सुरसत्तमम् ॥ ४ ॥

तुम पतिव्रता होनेके साथ ही यम और नियमसे संयुक्त हो, अतः, मैं तुम्हें वृत्रासुरको मारनेवाले इन्द्रदेवका दर्शन कराऊँगी तुम्हारा कल्याण हो। तुम शीघ्र मेरे पीछे-पीछे चली आओ । तुम्हें सुरश्रेष्ठ देवराजके दर्शन होंगे ॥ ४ ॥

शल्य उवाच

ततस्तां प्रस्थितां देवीमिन्द्राणी सा समन्वगात् ।
देवारण्यान्यतिक्रम्य पर्वतांश्च बहूंस्ततः ।
हिमवन्तमतिक्रम्य उत्तरं पार्श्वमागमत् ॥ ५ ॥

शल्य बोले— ऐसा कहकर उपश्रुति देवी वहाँसे चल दीं; फिर इन्द्राणी भी उनके पीछे हो लीं। देवताओंके अनेकानेक वन, बहुतसे पर्वत तथा हिमालयको लाँघकर उपश्रुति देवी उसके उत्तर भागमें जा पहुचीं ॥ ५ ॥

समुद्रं च समासाद्य बहुयोजनविस्तृतम् ।
आससाद महाद्वीपं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर अनेक योजनोंतक फैले हुए समुद्रके पास पहुँचकर उन्होंने नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे सुशोभित एक महाद्वीपमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥

तत्रापश्यत्सरो दिव्यं नानाशकुनिभिर्वृतम् ।
शतयोजनविस्तीर्णं तावदेवायतं शुभम् ॥ ७ ॥

वहां अनेक प्रकारके जल-पक्षीयोंसे घिरा हुआ एक दिव्य सरोवर दिखायी दिया, वह सुन्दर सरोवर सौ योजन लंबा और उतना ही चौडा था ॥ ७ ॥

तत्र दिव्यानि पद्मानि पञ्चवर्णानि भारत ।
षट्पदैरुपगीतानि प्रफुल्लानि सहस्रशः ॥ ८ ॥

भारत ! उसके भीतर सहस्रों कमल खिले हुए थे, जो पांच रंगके दिखायी देते थे। उनपर मंडराते हुए भौंरे गुनगुना रहे थे ॥ ८ ॥

पद्मस्य भित्त्वा नालं च विवेश सहिता तया।
बिसतन्तुप्रविष्टं च तत्रापश्यच्छतक्रतुम् ॥ ९ ॥

उपश्रुति देवीने एक कमलनालको चीरकर इन्द्राणी-सहित उस कमलके भीतर प्रवेश किया और वहीं एक तन्तुमें घुसकर छिपे हुए शतक्रतु इन्द्रको देखा ॥ ९ ॥

तं दृष्ट्वा च सुसूक्ष्मेण रूपेणावस्थितं प्रभुम्।
सूक्ष्मरूपधरा देवी बभूवोपश्रुतिश्च सा ॥ १० ॥

अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे अवस्थित भगवान् इन्द्रको वहां देखकर देवी उपश्रुति तथा इन्द्राणीने भी सूक्ष्म रूप धारण कर लिया ॥ १० ॥

इन्द्रं तुष्टाव चेन्द्राणी विश्रुतैः पूर्वकर्मभिः।
स्तूयमानस्ततो देवः शचीमाह पुरन्दरः ॥ ११ ॥

इन्द्राणीने पहलेके विख्यात कर्मोंका बखान करके इन्द्रदेवका स्तवन किया। अपनी स्तुति सुनकर इन्द्रदेवने शचीसे कहा ॥ ११ ॥

किमर्थमसि सम्प्राप्ता विज्ञातश्च कथं त्वहम्।
ततः सा कथयामास नहुषस्य विचेष्टितम् ॥ १२ ॥

'देवि! तुम किसलिये यहां आयी हो और तुम्हें कैसे मेरा पता लगा है?' तब इन्द्राणीने नहुषकी कुचेष्टाका वर्णन किया ॥ १२ ॥

इन्द्रत्वं त्रिषु लोकेषु प्राप्य वीर्यमदान्वितः।
दर्पाविष्टश्च दुष्टात्मा मामुवाच शतक्रतो।
उपतिष्ठ मामिति क्रूरः कालं च कृतवान्मम ॥ १३ ॥

'शतक्रतो! तीनों लोकोंके इन्द्रका पद पाकर नहुष बलपराक्रम और मदसे सम्पन्न हो घमंडमें भर गया है। उस दुष्टात्माने मुझसे भी कहा है कि तू मेरी सेवामें उपस्थित हो। उस क्रूर नरेशने मेरे लिये कुछ समयकी अवधि दी है ॥ १३ ॥

यदि न त्रास्यसि विभो करिष्यति स मां वशे।
एतेन चाहं संतप्ता प्राप्ता शक्र तवान्तिकम्।
जहि रौद्रं महाबाहो नहुषं पापनिश्चयम् ॥ १४ ॥

प्रभो! यदि आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो वह पापी मुझे अपने वशमें कर लेगा। महाबाहु इन्द्र! इसी कारण मैं दुःखी होकर आपके निकट आयी हूं। पापपूर्ण विचार रखनेवाले उस भयानक नहुषको आप मार डालिये ॥ १४ ॥

प्रकाशयस्व चात्मानं दैत्यदानवसूदन ।
तेजः समाप्नुहि विभो देवराज्यं प्रशाधि च ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ३९० ॥

'दैत्यदानवोंको मारनेवाले प्रभो ! अब आप अपने आपको प्रकट कीजिए, तेज प्राप्त कीजिये और देवताओंके राज्य पर शासन कीजिये' ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ ३९० ॥

: १५ :

शल्य उवाच

एवमुक्तः स भगवाञ्शच्या पुनरथाब्रवीत् ।
विक्रमस्य न कालोऽयं नहुषो बलवत्तरः ॥ १ ॥

शल्य बोले— युधिष्ठिर ! शचीदेवीके ऐसा कहनेपर भगवान् इन्द्रने पुनः उनसे कहा— 'देवि ! यह पराक्रम करनेका समय नहीं है । आजकल नहुष बहुत बलवान् हो गया है ॥१॥

विवर्धितश्च ऋषिभिर्हव्यैः कव्यैश्च भामिनि ।
नीतिमत्र विधास्यामि देवि तां कर्तुमर्हसि ॥ २ ॥

भामिनि ! ऋषियोंने हव्य और कव्य देकर उसकी शक्तिको बहुत बढा दिया है । अतः, मैं यहाँ नीतिसे काम लूँगा । देवि ! तुम उसी नीतिका पालन करो ॥ २ ॥

गुह्यं चैतत्त्वया कार्यं नाख्यातव्यं शुभे क्वचित् ।
गत्वा नहुषमेकान्ते ब्रवीहि तनुमध्यमे ॥ ३ ॥

शुभे ! तुम्हें गुप्तरूपसे यह कार्य करना है । कहीं (भी इसे) प्रकट न करना । मध्यमशरीरवाली ! तुम एकान्तमें नहुषके पास जाकर कहो ॥ ३ ॥

ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते ।
एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति तं वद ॥ ४ ॥

जगत्पते ! आप दिव्य ऋषियानपर बैठकर मेरे पास आइये । ऐसा होनेपर मैं प्रसन्नतापूर्वक आपके ! वशमें हो जाऊँगी, ऐसा उस नहुषसे कहो ॥ ४ ॥

इत्युक्ता देवराजेन पत्नी सा कमलेक्षणा ।
एवमस्त्वित्यथोक्त्वा तु जगाम नहुषं प्रति ॥ ५ ॥

देवराजके इस प्रकार आदेश देनेपर उनकी कमलनयनी पत्नी शची 'एवमस्तु' कहकर नहुषके पास गयीं ॥ ५ ॥

नहुषस्तां ततो दृष्ट्वा विस्मितो वाक्यमब्रवीत्।
स्वागतं ते वरारोहे किं करोमि शुचिस्मिते ॥ ६ ॥

उन्हें देखकर नहुष विस्मित होकर इस प्रकार बोला– हे सुन्दरि ! तुम्हारा स्वागत है। शुचिस्मिते ! कहो, तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? ॥ ६ ॥

भक्तं मां भज कल्याणि किमिच्छसि मनस्विनि।
तव कल्याणि यत्कार्यं तत्करिष्ये सुमध्यमे ॥ ७ ॥

कल्याणि ! मैं तुम्हारा भक्त हूं, मुझे स्वीकार करो। मनस्विनि ! तुम क्या चाहती हो ? हे कल्याणि सुमध्यमे ! तुम्हारा जो भी कार्य होगा, उसे मैं सिद्ध करूंगा ॥ ७ ॥

न च व्रीडा त्वया कार्या सुश्रोणि मयि विश्वस।
सत्येन वै शपे देवि कर्तास्मि वचनं तव ॥ ८ ॥

'सुश्रोणि ! तुम्हें मुझसे लज्जा नहीं करनी चाहिये। मुझपर विश्वास करो। देवि ! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूं, तुम्हारी प्रत्येक आज्ञाका पालन करूंगा' ॥ ८ ॥

इन्द्राण्युवाच

यो मे त्वया कृतः कालस्तमाकाङ्क्षे जगत्पते।
ततस्त्वमेव भर्ता मे भविष्यसि सुराधिप ॥ ९ ॥

इन्द्राणी बोली– जगत्पते ! आपके साथ जो मेरी शर्त हो चुकी है, उसे मैं पूर्ण करना चाहती हूं। सुरेश्वर ! फिर तो आप ही मेरे पति होंगे ॥ ९ ॥

कार्यं च हृदि मे यत्तद्देवराजावधारय।
वक्ष्यामि यदि मे राजन्प्रियमेतत्करिष्यसि।
वाक्यं प्रणयसंयुक्तं ततः स्यां वशगा तव ॥ १० ॥

देवराज ! मेरे हृदयमें एक कार्यकी अभिलाषा है, उसे बताती हूं, सुनिये। राजन् ! यदि आप मेरे इस प्रिय कार्यको पूर्ण कर देंगे, प्रेमपूर्वक कही हुई मेरी यह बात मान लेंगे तो मैं आपके अधीन हो जाऊंगी ॥ १० ॥

इन्द्रस्य वाजिनो वाहा हस्तिनोऽथ रथास्तथा।
इच्छाम्यहमथापूर्वं वाहनं ते सुराधिप।
यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नासुराणां न रक्षसाम् ॥ ११ ॥

सुरेश्वर ! पहले जो इन्द्र थे, उनके वाहन हाथी, घोडे तथा रथ आदि रहे हैं, परंतु आपका वाहन उनसे सर्वथा विलक्षण अपूर्व हो, ऐसी मेरी इच्छा है। वह वाहन ऐसा होना चाहिये, जो भगवान् विष्णु, रुद्र, असुर तथा राक्षसोंके भी उपयोगमें न आया हो ॥ ॥ ११ ॥

वहन्तु त्वां महाराज ऋषयः संगता विभो ।
सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम रोचते ॥ १२ ॥

प्रभो ! महाराज सप्तर्षि एकत्र होकर शिबिकाद्वारा आपका वहन करें। राजन् ! यही मुझे अच्छा लगता है ॥ १२ ॥

नासुरेषु न देवेषु तुल्यो भवितुमर्हसि ।
सर्वेषां तेज आदत्स्व स्वेन वीर्येण दर्शनात्
न ते प्रमुखतः स्थातुं कश्चिदिच्छति वीर्यवान् ॥ १३ ॥

आप अपने पराक्रमसे तथा दृष्टिपात करनेमात्रसे सबका तेज हर लें । देवताओं तथा असुरोंमें कोई भी आपकी समानता करनेवाला नहीं है । कोई कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, आपके सामने ठहर नहीं सकता है ॥ १३ ॥

शल्य उवाच

एवमुक्तस्तु नहुषः प्राहृष्यत तदा किल ।
उवाच वचनं चापि सुरेन्द्रस्तामनिन्दिताम् ॥ १४ ॥

शल्य बोले– युधिष्ठिर ! इन्द्राणीके ऐसा कहनेपर देवराज नहुप बडे प्रसन्न हुए और उस सती–साध्वी देवीसे इस प्रकार बोले ॥ १४ ॥

अपूर्वं वाहनमिदं त्वयोक्तं वरवर्णिनि ।
दृढं मे रुचितं देवि त्वद्वशोऽस्मि वरानने ॥ १५ ॥

सुन्दरि ! तुमने तो यह अपूर्व वाहन बताया । देवि ! मुझे भी वही सवारी अधिक पसंद है । सुमुखि ! मैं तुम्हारे वशमें हूँ ॥ १५ ॥

न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान्कुरुते मुनीन् ।
अहं तपस्वी बलवान्भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ १६ ॥

जो ऋषियोंको भी अपना वाहन बना सके, उस पुरुषमें थोडी शक्ति नहीं होती है । मैं तपस्वी, बलवान् तथा भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंका स्वामी हूं ॥ १६ ॥

मयि क्रुद्धे जगन्न स्यान्मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
देवदानवगन्धर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः ॥ १७ ॥

मेरे कुपित होनेपर यह संसार नहीं रहेगा। मुझपर ही सब कुछ टिका हुआ है। यह देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, नाग, राक्षस ॥ १७ ॥

×

न मे क्रुद्धस्य पर्याप्ताः सर्वे लोकाः शुचिस्मिते ।
चक्षुषा यं प्रपश्यामि तस्य तेजो हराम्यहम् ॥ १८ ॥

और सम्पूर्ण लोक भी, हे सुन्दर मुस्कराहटोंवाली ! मेरे क्रुद्ध हो जाने पर मेरा सामना नहीं कर सकते हैं । मैं अपनी आंखसे जिसको देख लेता हूं, उसका तेज हर लेता हूं ॥१८॥

तस्मात्ते वचनं देवि करिष्यामि न संशयः ।
सप्तर्षयो मां वक्ष्यन्ति सर्वे ब्रह्मर्षयस्तथा ।
पश्य माहात्म्यमस्माकमृद्धिं च वरवर्णिनि ॥ १९ ॥

अतः, देवि ! मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूंगा, इसमें कोई संशय नहीं है । सम्पूर्ण सप्तर्षि और ब्रह्मर्षि मेरी पालकी ढोयेंगे । वरवर्णिनि ! मेरे माहात्म्य तथा समृद्धिको तुम प्रत्यक्ष देख लो ॥ १९ ॥

एवमुक्त्वा तु तां देवीं विसृज्य च वराननाम् ।
विमाने योजयित्वा च ऋषीन्नियममास्थितान् ॥ २० ॥

राजन् ! सुन्दर मुखवाली शची देवीसे ऐसा कहकर नहुषने उन्हें विदा कर दिया और यमनियमका पालन करनेवाले बडे-बडे ऋषि-मुनियोंका अपमान करके अपनी पालकीमें जोत दिया ॥ २० ॥

अब्रह्मण्यो बलोपेतो मत्तो वरमदेन च ।
कामवृत्तः स दुष्टात्मा वाहयामास तानृषीन् ॥ २१ ॥

वह ब्राह्मणद्रोही नरेश बल पाकर उन्मत्त हो गया था । मद और बलसे गर्वित हो स्वेच्छाचारी दुष्टात्मा नहुषने उन महर्षियोंको अपना वाहन बनाया ॥ २१ ॥

नहुषेण विसृष्टा च बृहस्पतिमुवाच सा ।
समयोऽल्पावशेषो मे नहुषेणेह यः कृतः ।
शक्रं मृगय शीघ्रं त्वं भक्तायाः कुरु मे दयाम् ॥ २२ ॥

उधर नहुषसे विदा लेकर इन्द्राणी बृहस्पतिके यहाँ गयीं और इस प्रकार बोलीं— 'देवगुरो ! नहुषने मेरे लिये जो समय निश्चित किया है, उसमें थोडा ही शेष रह गया है । आप शीघ्र इन्द्रका पता लगाइये और अपनी भक्तिनी मुझ पर आप दया कीजिए' ॥ २२ ॥

बाढमित्येव भगवान्बृहस्पतिरुवाच ताम् ।
न भेतव्यं त्वया देवि नहुषाद्दुष्टचेतसः ॥ २३ ॥

तब भगवान् बृहस्पतिने 'बहुत अच्छा' कहकर उससे इस प्रकार कहा— देवि ! तुम दुष्टात्मा नहुषसे डरो मत ॥ २३ ॥

न ह्येष स्थास्यति चिरं गत एष नराधमः ।
अधर्मज्ञो महर्षीणां वाहनाच्च हतः शुभे ॥ २४ ॥

यह नराधम अब अधिक समयतक यहाँ ठहर नहीं सकेगा । इसे गया हुआ ही समझो । शुभे ! यह पापी धर्मको नहीं जानता । अतः, महर्षियोंको अपना वाहन बनानेके कारण शीघ्र मरेगा ॥ २४ ॥

इष्टिं चाहं करिष्यामि विनाशायास्य दुर्मतेः ।
शक्रं चाधिगमिष्यामि मा भैस्त्वं भद्रमस्तु ते ॥ २५ ॥

इसके अलावा मैं भी इस दुर्बुद्धि नहुषके लिये एक यज्ञ करूंगा । साथ ही इन्द्रका भी पता लगाऊंगा । तुम डरो मत । तुम्हारा कल्याण होगा ॥ २५ ॥

ततः प्रज्वाल्य विधिवज्जुहाव परमं हविः ।
बृहस्पतिर्महातेजा देवराजोपलब्धये ॥ २६ ॥

तदनन्तर, महातेजस्वी बृहस्पतिने देवराजकी प्राप्तिके लिये विधिपूर्वक अग्निको प्रज्वलित करके उसमें उत्तम हविष्यकी आहुति दी ॥ २६ ॥

तस्माच्च भगवान्देवः स्वयमेव हुताशनः ।
स्त्रीवेषमद्भुतं कृत्वा सहसान्तरधीयत ॥ २७ ॥

उस हवनकुण्डसे साक्षात् भगवान् अग्निदेव स्वयं प्रकट होकर अद्भुत स्त्रीवेष धारण करके वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २७ ॥

स दिशः प्रदिशश्चैव पर्वतांश्च वनानि च ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च विचीयातिमनोगतिः ।
निमेषान्तरमात्रेण बृहस्पतिमुपागमत् ॥ २८ ॥

मनके समान तीव्र गतिवाले अग्निदेव सम्पूर्ण दिशाओं, विदिशाओं, पर्वतों और वनोंमें तथा भूतल और आकाशमें भी इन्द्रकी खोज करके पलभरमें बृहस्पतिके पास लौट आये ॥ २८ ॥

अग्निरुवाच

बृहस्पते न पश्यामि देवराजमहं क्वचित् ।
आपः शेषाः सदा चापः प्रवेष्टुं नोत्सहाम्यहम् ।
न मे तत्र गतिर्ब्रह्मन्किमन्यत्करवाणि ते ॥ २९ ॥

अग्निदेव बोले— बृहस्पते ! मैं देवराजको तो इस संसारमें कहीं नहीं देख रहा हूं, केवल जल शेष रह गया है, जहां उनकी खोज नहीं की है । परंतु मैं कभी भी जलमें प्रवेश करनेका साहस नहीं कर सकता । ब्रह्मन् ! जलमें मेरी गति नहीं है । इसके सिवा तुम्हारा दूसरा कौन कार्य मैं करूं ? ॥ २९ ॥

शल्य उवाच

तमब्रवीद्देवगुरुरपो विश महाद्युते ॥ ३० ॥

शल्य बोले– तब देवगुरुने कहा– 'महाद्युते ! आप जलमें भी प्रवेश कीजिये ॥ ३० ॥

अग्निरुवाच

नापः प्रवेष्टुं शक्ष्यामि क्षयो मेऽत्र भविष्यति ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि स्वस्ति तेऽस्तु महाद्युते ॥ ३१ ॥

अग्निदेव बोले– मैं जलमें नहीं प्रवेश कर सकूंगा; क्योंकि उसमें मेरा विनाश हो जायगा । महातेजस्वी बृहस्पते ! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूं । तुम्हारा कल्याण हो । (मुझे जलमें जानेके लिये न कहो) ॥ ३१ ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ४२२ ॥

जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय तथा पत्थरसे लोहेकी उत्पत्ति हुई है । इनका तेज सर्वत्र काम करता है । परंतु अपने कारणभूत पदार्थोंमें आकर बुझ जाता है ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पंद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ ४२२ ॥

: १६ :

बृहस्पतिरुवाच

त्वमग्ने सर्वदेवानां मुखं त्वमसि हव्यवाट् ।
त्वमन्तः सर्वभूतानां गूढश्चरसि साक्षिवत् ॥ १ ॥

बृहस्पति बोले– अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण देवताओंके मुख हैं । आप ही देवताओंको हविष्य पहुंचानेवाले हैं । आप समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें साक्षीकी भांति गूढभावसे विचरते हैं ॥ १ ॥

त्वामाहुरेकं कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः
त्वया त्यक्तं जगच्चेदं सद्यो नश्येद्धुताशन ॥ २ ॥

विद्वान् पुरुष आपको एक बताते हैं । फिर वे ही आपको तीन प्रकारका कहते हैं । हे हुताशन ! आपके त्याग देनेपर यह सम्पूर्ण जगत् तत्काल नष्ट हो जायगा ॥ २ ॥

कृत्वा तुभ्यं नमो विप्राः स्वकर्मविजितां गतिम् ।
गच्छन्ति सह पत्नीभिः सुतैरपि च शाश्वतीम् ॥ ३ ॥

ब्राह्मणलोग आपकी पूजा और वन्दना करके अपनी पत्नियों तथा पुत्रोंके साथ अपने कर्मों द्वारा प्राप्त चिरस्थायी गतिको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

त्वमेवाग्ने हव्यवाहस्त्वमेव परमं हविः ।
यजन्ति सत्रैस्त्वामेव यज्ञैश्च परमाध्वरे ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! आप ही हविष्यको वहन करनेवाले देवता हैं । आप ही उत्कृष्ट हवि हैं । याज्ञिक विद्वान् पुरुष बडे–बडे यज्ञोंमें सत्रों और यज्ञों द्वारा आपकी ही आराधना करते हैं ॥ ४ ॥

सृष्ट्वा लोकांस्त्रीनिमान्हव्यवाह प्राप्ते काले पचसि पुनः समिद्धः ।
सर्वस्यास्य भुवनस्य प्रसूतिस्त्वमेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठाः ॥ ५ ॥

हे हव्यवाहन ! आप ही सृष्टिके समय इन तीनों लोकोंको उत्पन्न करके प्रलयकाल आनेपर पुनः प्रज्ज्वलित होकर इन सबका संहार करते हैं । अग्ने ! आप ही सम्पूर्ण विश्वके उत्पत्ति-स्थान हैं और आप ही पुनः इसके प्रलयकालमें आधार होते हैं ॥ ५ ॥

त्वामग्ने जलदानाहुर्विद्युतश्च त्वमेव हि ।
दहन्ति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हायनाः ॥ ६ ॥

अग्निदेव ! मनीषी पुरुष आपको ही मेघ और विद्युत् कहते हैं । आपसे ही ज्वालाएं निकल-कर सम्पूर्ण भूतोंको दग्ध करती हैं ॥ ६ ॥

त्वय्यापो निहिताः सर्वास्त्वयि सर्वमिदं जगत् ।
न तेऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु पावक ॥ ७ ॥

पावक ! आपमें ही सारा जल संचित है । आपमें ही यह सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है । तीनों लोकोंमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो ॥ ७ ॥

स्वयोनिं भजते सर्वो विशस्वापोऽविशङ्कितः ।
अहं त्वां वर्धयिष्यामि ब्राह्मैर्मन्त्रैः सनातनैः ॥ ८ ॥

समस्त पदार्थ अपने–अपने कारणमें प्रवेश करते हैं । अतः, आप भी निःशङ्क होकर जलमें प्रवेश कीजिये । मैं सनातन वेदमन्त्रों द्वारा आपको बढाऊंगा ॥ ८ ॥

शल्य उवाच

एवं स्तुतो हव्यवाहो भगवान्कविरुत्तमः ।
बृहस्पतिमथोवाच प्रीतिमान्वाक्यमुत्तमम् ।
दर्शयिष्यामि ते शक्रं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ९ ॥

शल्य बोले– इस प्रकार स्तुति की जानेपर हविष्य वहन करनेवाले श्रेष्ठ ज्ञानी भगवान् अग्निदेव प्रसन्न होकर बृहस्पतिसे यह उत्तम वचन बोले– ‘ ब्रह्मन् ! मैं आपको इन्द्रका दर्शन कराऊंगा, यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूं ’ ॥ ९ ॥

प्रविश्यापस्ततो वह्निः ससमुद्राः सपल्वलाः ।
आजगाम सरस्तच्च गूढो यत्र शतक्रतुः ॥ १० ॥

युधिष्ठिर ! तदनन्तर, अग्निदेव छोटे गड्ढेसे लेकर बड़ेसे बड़े समुद्रतकके जलमें प्रवेश करके पता लगाते हुए क्रमशः उस सरोवरमें जा पहुँचे, जहाँ इन्द्र छिपे हुए थे ॥ १० ॥

अथ तत्रापि पद्मानि विचिन्वन्भरतर्षभ ।
अन्वपश्यत्स देवेन्द्रं बिसमध्यगतं स्थितम् ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उसमें भी कमलोंके भीतर खोज करते हुए अग्निदेवने एक कमलके नालमें बैठे हुए देवेन्द्रको देखा ॥ ११ ॥

आगत्य च ततस्तूर्णं तमाचष्ट बृहस्पतेः ।
अणुमात्रेण वपुषा पद्मतन्त्वाश्रितं प्रभुम् ॥ १२ ॥

वहाँसे तुरंत लौटकर अग्निदेवने अत्यन्त सूक्ष्म शरीर धारण करके कमलकी नालमें छिपकर बैठे हुए इन्द्रका पता बृहस्पतिको बताया ॥ १२ ॥

गत्वा देवर्षिगन्धर्वैः सहितोऽथ बृहस्पतिः ।
पुराणैः कर्मभिर्देवं तुष्टाव बलसूदनम् ॥ १३ ॥

तब बृहस्पतिने देवर्षियों और गन्धर्वोंके साथ वहाँ जाकर बलसूदन इन्द्रके पुरातन कर्मोंका वर्णन करते हुए उनकी स्तुति की ॥ १३ ॥

महासुरो हतः शक्र नमुचिर्दारुणस्त्वया ।
शम्बरश्च बलश्चैव तथोभौ घोरविक्रमौ ॥ १४ ॥

'इन्द्र ! आपने अत्यन्त भयंकर नमुचिनामक महान् असुरको मार गिराया है। शम्बर और बल दोनों भयंकर पराक्रमी दानवोंको भी आपने मार डाला ॥ १४ ॥

शतक्रतो विवर्धस्व सर्वाञ्शत्रून्निषूदय ।
उत्तिष्ठ वज्रिन्संपश्य देवर्षींश्च समागतान् ॥ १५ ॥

'शतक्रतो ! आप अपने तेजस्वी स्वरूपसे बढ़िये और समस्त शत्रुओंका संहार कीजिये। हे वज्रधारी ! उठिये और यहाँ पधारे हुए देवर्षियोंका दर्शन कीजिये ॥ १५ ॥

महेन्द्र दानवान्हत्वा लोकास्त्रातास्त्वया विभो ।
अपां फेनं समासाद्य विष्णुतेजोपबृंहितम् ।
त्वया वृत्रो हतः पूर्वं देवराज जगत्पते ॥ १६ ॥

'प्रभो महेन्द्र ! आपने कितने ही दानवोंका वध करके समस्त लोकोंकी रक्षा की है। जगदीश्वर देवराज ! भगवान् विष्णुके तेजसे अत्यन्त शक्तिशाली बने हुए समुद्रफेनको लेकर आपने पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध किया ॥ १६ ॥

त्वं सर्वभूतेषु वरेण्य ईड्यस्त्वया समं विद्यते नेह भूतम्।
त्वया धार्यन्ते सर्वभूतानि शक्र त्वं देवानां महिमानं चकर्थ॥ १७॥

'आप सम्पूर्ण भूतोंमें स्तवन करने योग्य और सबके वरणीय हैं। आपकी समानता करनेवाला जगत्में दूसरा कोई प्राणी नहीं है। शक्र! आप ही सम्पूर्ण भूतोंको धारण करते हैं और आपने ही देवताओंकी महिमा बढायी है॥ १७॥

पाहि देवान्सलोकांश्च महेन्द्र बलमाप्नुहि।
एवं संस्तूयमानश्च सोऽवर्धत शनैः शनैः॥ १८॥

'महेन्द्र! आप शक्ति प्राप्त कीजिये और सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा कीजिए।' इस प्रकार स्तुति की जानेपर देवराज इन्द्र धीरे धीरे बढने लगे॥ १८॥

स्वं चैव वपुरास्थाय बभूव स बलान्वितः।
अब्रवीच्च गुरुं देवो बृहस्पतिमुपस्थितम्॥ १९॥

अपने पूर्व शरीरको प्राप्त करके वे बलपराक्रमसे सम्पन्न हो गये। तत्पश्चात् इन्द्रने वहाँ खडे हुए अपने गुरु बृहस्पतिसे कहा॥ १९॥

किं कार्यमवशिष्टं वो हतस्त्वाष्ट्रो महासुरः।
वृत्रश्च सुमहाकायो ग्रस्तुं लोकानियेष यः॥ २०॥

'ब्रह्मन्! त्वष्टाका पुत्र विशालकाय महासुर वृत्र, जो सम्पूर्ण लोकोंका विनाश करना चाहता था, मेरे द्वारा मारा गया; अब आप लोगोंका कौनसा बचा हुआ कार्य करूँ?'॥ २०॥

बृहस्पतिरुवाच

मानुषो नहुषो राजा देवर्षिगणतेजसा।
देवराज्यमनुप्राप्तः सर्वान्नो बाधते भृशम्॥ २१॥

बृहस्पति बोले— देवेन्द्र! मनुष्यलोकका राजा नहुष देवर्षियोंके प्रभावसे देवताओंका राज्य पा गया है, जो हम सब लोगोंको बडा कष्ट दे रहा है॥ २१॥

इन्द्र उवाच

कथं च नहुषो राज्यं देवानां प्राप दुर्लभम्।
तपसा केन वा युक्तः किं वीर्यो वा बृहस्पते॥ २२॥

इन्द्र बोले— बृहस्पते! वह नहुष किस तपस्यासे संयुक्त है? अथवा उसमें कितना बल और पराक्रम है? उसे किस प्रकार देवोंके दुर्लभ राज्यकी प्राप्ति हुई है?॥ २२॥

बृहस्पतिरुवाच

देवा भीताः शक्रमकामयन्त त्वया त्यक्तं महदैन्द्रं पदं तत् ।
तदा देवाः पितरोऽथर्षयश्च गन्धर्वसंघाश्च समेत्य सर्वे ॥ २३ ॥

शक्र ! आपने जब उस महान् इन्द्रपदका परित्याग कर दिया, तब देवतालोग भयभीत होकर दूसरे किसी इन्द्रकी कामना करने लगे । तब देवता, पितर, ऋषि तथा गन्धर्वगण सब मिलकर ॥ २३ ॥

गत्वाब्रुवन्नहुषं शक्र तत्र त्वं नो राजा भव भुवनस्य गोप्ता ।
तानब्रवीन्नहुषो नास्मि शक्त आप्यायध्वं तपसा तेजसा च ॥ २४ ॥

राजा नहुषके पास गये । शक्र ! वहाँ उन्होंने नहुषसे इस प्रकार कहा— 'आप हमारे राजा होइये और सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा कीजिये ।' यह सुनकर नहुषने उनसे कहा— 'मुझमें इन्द्र बननेकी शक्ति नहीं है, अतः, आपलोग अपने तप और तेजसे मुझे पुष्ट कीजिये' ॥ २४ ॥

एवमुक्तैर्वर्धितश्चापि देवै राजाभवन्नहुषो घोरवीर्यः ।
त्रैलोक्ये च प्राप्य राज्यं तपस्विनः कृत्वा वाहान्याति लोकान्दुरात्मा ॥२५॥

उसके ऐसा कहनेपर देवताओंने उसे तप और तेजसे बढाया । फिर भयंकर पराक्रमी राजा नहुष स्वर्गका राजा बन गया । इस प्रकार त्रिलोकीका राज्य पाकर वह दुरात्मा नहुष महर्षियोंको अपना वाहन बनाकर सब लोकोंमें घूमता है ॥ २५ ॥

तेजोहरं दृष्टिविषं सुघोरं मा त्वं पश्येर्नहुषं वै कदाचित् ।
देवाश्च सर्वे नहुषं भयार्ता न पश्यन्तो गूढरूपाश्चरन्ति ॥ २६ ॥

वह देखनेमात्रसे सबका तेज हर लेनेवाले, दृष्टिमें भयंकर विषवाले, अत्यन्त घोर स्वभाववाले नहुषकी ओर तुम कभी देखना नहीं । सब देवता भी अत्यन्त भयभीत हो गूढरूपसे विचरते रहते हैं; परंतु नहुषकी ओर कभी देखते नहीं हैं ॥ २६ ॥

शल्य उवाच

एवं वदत्यङ्गिरसां वरिष्ठे बृहस्पतौ लोकपालः कुबेरः ।
वैवस्वतश्चैव यमः पुराणो देवश्च सोमो वरुणश्चाजगाम ॥ २७ ॥

शल्य बोले— राजन् ! अङ्गिराके पुत्रोंमें श्रेष्ठ बृहस्पति जब ऐसा कह रहे थे, उसी समय लोकपाल कुबेर, सूर्यपुत्र यम, पुरातन देवता चन्द्रमा तथा वरुण भी वहाँ आ पहुँचे ॥ २७ ॥

ते वै समागम्य महेन्द्रमूचुर्दिष्ट्या त्वाष्ट्रो निहतश्चैव वृत्रः ।
दिष्ट्या च त्वां कुशलिनमक्षतं च पश्यामो वै निहतारिं च शक्र ॥ २८ ॥

वे सब देवराज इन्द्रसे मिलकर बोले– 'शक्र ! बडे सौभाग्यसे ही आपने त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका वध किया। सौभाग्यसे ही हम लोग आपको शत्रुका वध करनेके पश्चात् सकुशल और अक्षत देखते हैं ॥ २८ ॥

स तान्यथावत्प्रतिभाष्य शक्रः संचोदयन्नहुषस्यान्तरेण ।
राजा देवानां नहुषो घोररूपस्तत्र साह्यं दीयतां मे भवद्भिः ॥ २९ ॥

उन लोकपालोंसे बातचीत करके इन्द्रने राजा नहुषके भीतर बुद्धिभेद उत्पन्न करनेके लिये प्रेरणा देते हुए कहा– 'इन देवताओंका राजा नहुष बडा भयंकर हो रहा है। उसे स्वर्गसे हटानेके कार्यमें आपलोग मेरी सहायता करें' ॥ २९ ॥

ते चाब्रुवन्नहुषो घोररूपो दृष्टीविषस्तस्य बिभीम देव ।
त्वं चेद्राजान्नहुषं पराजयेस्तद्वै वयं भागमर्हाम शक्र ॥ ३० ॥

यह सुनकर उन्होंने उत्तर दिया– 'देवेश्वर ! नहुष तो बडा भयंकर रूपवाला है। उसकी दृष्टिमें विष है। अतः हम लोग उससे डरते हैं। शक्र ! यदि आप राजा नहुषको पराजित कर दें तो हम भी यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी हों ॥ ३० ॥

इन्द्रोऽब्रवीद्भवतु भवानपां पतिर्यमः कुबेरश्च महाभिषेकम् ।
सम्प्राप्नुवन्त्वद्य सहैव तेन रिपुं जयामो नहुषं घोरदृष्टिम् ॥ ३१ ॥

इन्द्रने कहा– 'वरुणदेव ! आप जलके स्वामी हों, यमराज और कुबेर भी मेरे द्वारा अपने अपने पदपर अभिषिक्त हों। देवताओंसहित हम सब लोग भयंकर दृष्टिवाले अपने शत्रु नहुषको परास्त करेंगे ॥ ३१ ॥

ततः शक्रं ज्वलनोऽप्याह भागं प्रयच्छ मह्यं तव साह्यं करिष्ये ।
तमाह शक्रो भविताग्ने तवापि ऐन्द्राग्नो वै भाग एको महाक्रतौ ॥ ३२ ॥

तब अग्निने भी इन्द्रसे कहा– 'प्रभो ! मुझे भी भाग दीजिये, मैं आपकी सहायता करूँगा'। तब इन्द्रने उनसे कहा– 'अग्निदेव ! महायज्ञमें इन्द्र और अग्निका एक सम्मिलित भाग होगा, जिसपर तुम्हारा भी अधिकार रहेगा' ॥ ३२ ॥

एवं संचिन्त्य भगवान्महेन्द्रः पाकशासनः ।
कुबेरं सर्वयक्षाणां धनानां च प्रभुं तथा ॥ ३३ ॥

राजन् ! इस प्रकार सोचविचार कर पाकशासन भगवान् महेन्द्रने कुबेरको सम्पूर्ण यक्षों तथा धनका अधिपति बना दिया ॥ ३३ ॥

×

वैवस्वतं पितृणां च वरुणं चाप्यपां तथा ।
आधिपत्यं ददौ शक्रः सत्कृत्य वरदस्तदा ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ४५६ ॥

इसी प्रकार वरदायक इन्द्रने खूब सत्कार कर वैवस्वत यमको पितरोंका तथा वरुणको जलका स्वामित्व प्रदान किया ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ ४५६ ॥

: १७ :

शल्य उवाच

अथ संचिन्तयानस्य देवराजस्य धीमतः ।
नहुषस्य वधोपायं लोकपालैः सहैव तैः ।
तपस्वी तत्र भगवानगस्त्यः प्रत्यदृश्यत ॥ १ ॥

शल्य बोले– युधिष्ठिर ! जिस समय बुद्धिमान् देवराज इन्द्र लोकपालोंके साथ बैठकर नहुषके वधका उपाय सोच रहे थे, उसी समय वहाँ तपस्वी भगवान् अगस्त्य दिखायी दिये ॥ १ ॥

सोऽब्रवीदर्च्य देवेन्द्रं दिष्टया वै वर्धते भवान् ।
विश्वरूपविनाशेन वृत्रासुरवधेन च ॥ २ ॥
दिष्ट्या च नहुषो भ्रष्टो देवराज्यात्पुरंदर ।
दिष्ट्या हतारिं पश्यामि भवन्तं बलसूदन ॥ ३ ॥

उन्होंने देवेन्द्रकी पूजा करके कहा– ' सौभाग्यकी बात है कि आप विश्वरूपके विनाश तथा वृत्रासुरके वधसे निरन्तर बढ रहे हैं । बलसूदन पुरंदर ! यह भी सौभाग्यकी ही बात है कि आज नहुष देवताओंके राज्यसे भ्रष्ट हो गये । बलसूदन ! सौभाग्यसे ही मैं आपको शत्रुहीन देख रहा हूं ' ॥ २-३ ॥

इन्द्र उवाच

स्वागतं ते महर्षेऽस्तु प्रीतोऽहं दर्शनात्तव ।
पाद्यमाचमनीयं च गामर्घ्यं च प्रतीच्छ मे ॥ ४ ॥

इन्द्र बोले– महर्षे ! आपका स्वागत है, आपके दर्शनसे मुझे बडी प्रसन्नता मिली है, आपकी सेवामें यह पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा गौ समर्पित हैं। आप मेरी दी हुई ये सब वस्तुएँ ग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥

शल्य उवाच

पूजितं चोपविष्टं तमासने मुनिसत्तमम् ।
पर्यपृच्छत देवेशः प्रहृष्टो ब्राह्मणर्षभम् ॥ ५ ॥

शल्य बोले— युधिष्ठिर ! मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जब पूजा ग्रहण करके आसनपर विराजमान हुए, उस समय देवेश्वर इन्द्रने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन विप्रशिरोमणिसे पूछा ॥ ५ ॥

एतदिच्छामि भगवन्कथ्यमानं द्विजोत्तम ।
परिभ्रष्टः कथं स्वर्गान्नहुषः पापनिश्चयः ॥ ६ ॥

'भगवन् ! द्विजश्रेष्ठ ! मैं आपके शब्दोंमें यह सुनना चाहता हूँ कि पापपूर्ण विचार रखनेवाला नहुष स्वर्गसे किस प्रकार भ्रष्ट हुआ है ?' ॥ ६ ॥

अगस्त्य उवाच

शृणु शक्र प्रियं वाक्यं यथा राजा दुरात्मवान् ।
स्वर्गाद्भ्रष्टो दुराचारो नहुषो बलदर्पितः ॥ ७ ॥

अगस्त्य बोले— इन्द्र ! बलके घमंडमें भरा हुआ दुराचारी और दुरात्मा राजा नहुष जिस प्रकार स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ है, वह प्रिय समाचार सुनो ॥ ७ ॥

श्रमार्तास्तु वहन्तस्तं नहुषं पापकारिणम् ।
देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।
पप्रच्छुः संशयं देव नहुषं जयतां वर ॥ ८ ॥

हे देव ! महाभाग देवर्षि तथा निर्मल अन्तःकरणवाले ब्रह्मर्षि पापाचारी नहुषका बोझ ढोते ढोते परिश्रमसे पीडित हो गये थे । विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ इन्द्र ! उस समय उन महर्षियोंने नहुषसे एक संदेह पूछा ॥ ८ ॥

य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता मन्त्रा वै प्रोक्षणे गवाम् ।
एते प्रमाणं भवत उताहो नेति वासव ।
नहुषो नेति तानाह तमसा मूढचेतनः ॥ ९ ॥

'देवेन्द्र ! गौओंके प्रोक्षणके विषयमें जो ये मन्त्र वेदमें बताये गये हैं, इन्हें आप प्रामाणिक मानते हैं या नहीं ।' नहुषकी बुद्धि तमोमय अज्ञानके कारण किंकर्तव्यविमूढ हो रही थी । उसने महर्षियोंको उत्तर देते हुए कहा— 'मैं इन वेदमन्त्रोंको प्रमाण नहीं मानता' ॥ ९ ॥

ऋषय ऊचुः

अधर्मे सम्प्रवृत्तस्त्वं धर्मं न प्रतिपद्यसे ।
प्रमाणमेतदस्माकं पूर्वं प्रोक्तं महर्षिभिः ॥ १० ॥

ऋषिगण बोले— तुम अधर्ममें प्रवृत्त हो रहे हो, इसलिये धर्मका तत्त्व नहीं समझते हो । पूर्वकालमें महर्षियोंने इन सब मन्त्रोंको हमारे लिये प्रमाणभूत बताया है ॥ १० ॥

अगस्त्य उवाच

ततो विवदमानः स मुनिभिः सह वासव।
अथ मामस्पृशन्मूर्ध्नि पादेनाधर्मपीडितः ॥ ११ ॥

अगस्त्य बोले– इन्द्र! तब नहुष मुनियोंके साथ विवाद करने लगा और अधर्मसे पीडित होकर उस पापीने मेरे मस्तकपर पैरसे प्रहार किया ॥ ११ ॥

तेनाभूद्धततेजाः स निःश्रीकश्च शचीपते।
ततस्तमहमाविग्नमवोचं भयपीडितम् ॥ १२ ॥

इससे उसका सारा तेज नष्ट हो गया। वह राजा श्रीहीन हो गया। तब तमोगुणमें डूबकर भयसे पीडित हुए नहुषसे मैंने इस प्रकार कहा ॥ १२ ॥

यस्मात्पूर्वैः कृतं ब्रह्म ब्रह्मर्षिभिरनुष्ठितम्।
अदुष्टं दूषयसि वै यच्च मूर्ध्न्यस्पृशः पदा ॥ १३ ॥

'राजन्! पूर्वकालके ब्रह्मर्षियोंने जिसका अनुष्ठान किया है, जिसे प्रमाणभूत माना है, उस निर्दोष वेदमतको जो तुम सदोष बताते हो, उसे अप्रामाणिक मानते हो, इसके सिवा तुमने जो मेरे सिरपर लात मारी है ॥ १३ ॥

यच्चापि त्वमृषीन्मूढ ब्रह्मकल्पान्दुरासदान्।
वाहान्कृत्वा वाहयसि तेन स्वर्गाद्धतप्रभः ॥ १४ ॥

तथा पापात्मा मूढ! जो तुम ब्रह्माके समान दुर्धर्ष तेजस्वी ऋषियोंको वाहन बनाकर उनसे अपनी पालकी ढुलवा रहे हो, इससे तेजोहीन हो गये हो ॥ १४ ॥

ध्वंस पाप परिभ्रष्टः क्षीणपुण्यो महीतलम्
दश वर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ १५ ॥

तुम्हारा पुण्य क्षीण हो गया है। अतः स्वर्गसे भ्रष्ट होकर तुम पृथ्वीपर गिरो। वहाँ दस हजार वर्षोंतक तुम महान् सर्पका रूप धारण करके विचरोगे और उतने वर्ष पूर्ण हो जानेपर पुनः स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे' ॥ १५ ॥

एवं भ्रष्टो दुरात्मा स देवराज्यादरिंदम।
दिष्ट्या वर्धामहे शक्र हतो ब्राह्मणकण्टकः ॥ १६ ॥

शत्रुदमन शक्र! इस प्रकार दुरात्मा नहुष देवताओंके राज्यसे भ्रष्ट हो गया। ब्राह्मणोंका कण्टक मारा गया। सौभाग्यकी बात है कि अब हमलोगोंकी वृद्धि हो रही है ॥ १६ ॥

त्रिविष्टपं प्रपद्यस्व पाहि लोकाञ्छचीपते ।
जितेन्द्रियो जितामित्रः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ १७ ॥

शचीपते ! अब आप अपनी इन्द्रियों और शत्रुओंपर विजय पा गये हैं । अतः, अब महर्षि-गणोंसे पूजित होते हुए आप स्वर्गलोकमें चलें और तीनों लोकोंकी रक्षा करें ॥ १७ ॥

शल्य उवाच

ततो देवा भृशं तुष्टा महर्षिगणसंवृताः ।
पितरश्चैव यक्षाश्च भुजगा राक्षसास्तथा ॥ १८ ॥

शल्य बोले— युधिष्ठिर ! तदनन्तर महर्षियोंसे घिरे हुए देवता, पितर, यक्ष, नाग, राक्षस ॥ १८ ॥

गन्धर्वा देवकन्याश्च सर्वे चाप्सरसां गणाः ।
सरांसि सरितः शैलाः सागराश्च विशां पते ॥ १९ ॥

गन्धर्व, देवकन्याएँ तथा समस्त अप्सराएँ बहुत प्रसन्न हुईं । सरिताएँ, सरोवर, शैल और समुद्र भी बहुत संतुष्ट हुए ॥ १९ ॥

उपागम्याब्रुवन्सर्वे दिष्ट्या वर्धसि शत्रुहन् ।
हतश्च नहुषः पापो दिष्ट्यागस्त्येन धीमता ।
दिष्ट्या पापसमाचारः कृतः सर्पो महीतले ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ४७६ ॥

वे सब लोग इन्द्रके पास आकर बोले— 'शत्रुहन् ! आपका अभ्युदय हो रहा है, यह सौभाग्यकी बात है। बुद्धिमान् अगस्त्यने पापी नहुषको मार डाला और उस पापाचारीको पृथ्वीपर सर्प बना दिया, यह भी हमारे लिये बडे हर्ष तथा सौभाग्यकी बात है ॥ २० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ४७६ ॥

: १८ :

शल्य उवाच

ततः शक्रः स्तूयमानो गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
ऐरावतं समारुह्य द्विपेन्द्रं लक्षणैर्युतम् ॥ १ ॥

शल्य बोले— युधिष्ठिर ! तत्पश्चात् उत्तम लक्षणोंसे युक्त गजराज ऐरावतपर आरूढ होकर गंधर्व और अप्सराओंके समूहसे स्तुत होकर इन्द्र चले ॥ १ ॥

पावकश्च महातेजा महर्षिश्च बृहस्पतिः ।
यमश्च वरुणश्चैव कुबेरश्च धनेश्वरः ॥ २ ॥

महान् तेजस्वी अग्निदेव, महर्षि बृहस्पति, यम, वरुण, धनाध्यक्ष कुबेर ॥ २ ॥

सर्वैर्देवैः परिवृतः शक्रो वृत्रनिषूदनः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यातस्त्रिभुवनं प्रभुः ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण देवता, गन्धर्वगण तथा अप्सराओंसे घिरकर वृत्रासुरको मारनेवाले भगवान् इन्द्र गन्धर्वों और अप्सराओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए स्वर्गलोकको चले ॥ ३ ॥

स समेत्य महेन्द्राण्या देवराजः शतक्रतुः ।
मुदा परमया युक्तः पालयामास देवराट् ॥ ४ ॥

सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले देवराज इन्द्र अपनी महारानी शचीसे मिलकर अत्यन्त आनन्दित हो स्वर्गका पालन करने लगे ॥ ४ ॥

ततः स भगवांस्तत्र अङ्गिराः समदृश्यत ।
अथर्ववेदमन्त्रैश्च देवेन्द्रं समपूजयत् ॥ ५ ॥

तदनन्तर वहाँ भगवान् अङ्गिराने दर्शन दिया और अथर्ववेदके मन्त्रोंसे देवेन्द्रका पूजन किया ॥ ५ ॥

ततस्तु भगवानिन्द्रः संहृष्टः समपद्यत ।
वरं च प्रददौ तस्मै अथर्वाङ्गिरसे तदा ॥ ६ ॥

इससे भगवान् इन्द्र उनपर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उस समय अथर्वाङ्गिरसको यह वर दिया ॥ ६ ॥

अथर्वाङ्गिरसं नाम अस्मिन्वेदे भविष्यति ।
उदाहरणमेतद्धि यज्ञभागं च लप्स्यसे ॥ ७ ॥

'ब्रह्मन्! आप इस अथर्ववेदमें अथर्वाङ्गिरस नामसे विख्यात होंगे और आपको यज्ञभाग भी प्राप्त होगा। इस विषयमें मेरा यह वचन ही उदाहरण प्रमाण होगा' ॥ ७ ॥

एवं सम्पूज्य भगवानथर्वाङ्गिरसं तदा ।
व्यसर्जयन्महाराज देवराजः शतक्रतुः ॥ ८ ॥

महाराज युधिष्ठिर! इस प्रकार देवराज भगवान् इन्द्रने उस समय अथर्वाङ्गिरसकी पूजा करके उन्हें विदा कर दिया ॥ ८ ॥

सम्पूज्य सर्वांस्त्रिदशानृषींश्चापि तपोधनान् ।
इन्द्रः प्रमुदितो राजन्धर्मेणापालयत्प्रजाः ॥ ९ ॥

राजन्! इसके बाद सम्पूर्ण देवताओं तथा तपोधन महर्षियोंकी पूजा करके देवराज इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे ॥ ९ ॥

एवं दुःखमनुप्राप्तमिन्द्रेण सह भार्यया ।
अज्ञातवासश्च कृतः शत्रूणां वधकाङ्क्षया ॥ १० ॥

युधिष्ठिर ! इस प्रकार पत्नीसहित इन्द्रने बारबार दुःख उठाया और शत्रुओंके वधकी इच्छासे अज्ञातवास भी किया ॥ १० ॥

नात्र मन्युस्त्वया कार्यो यत्क्लिष्टोऽसि महावने ।
द्रौपद्या सह राजेन्द्र भ्रातृभिश्च महात्मभिः ॥ ११ ॥

राजेन्द्र ! तुमने महामना भाइयों तथा द्रौपदीके साथ महान् वनमें रहकर जो क्लेश सहन किया है, उसके लिये तुम्हें दुःख नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥

एवं त्वमपि राजेन्द्र राज्यं प्राप्स्यसि भारत ।
वृत्रं हत्वा यथा प्राप्तः शक्रः कौरवनन्दन ॥ १२ ॥

भरतवंशी कुरुकुलनन्दन महाराज ! जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारकर अपना राज्य प्राप्त किया था, इसी प्रकार तुम भी अपना राज्य प्राप्त करोगे ॥ १२ ॥

दुराचारश्च नहुषो ब्रह्मद्विट् पापचेतनः ।
अगस्त्यशापाभिहतो विनष्टः शाश्वतीः समाः ॥ १३ ॥

शत्रुसूदन ! दुराचारी, ब्राह्मणद्रोही और पापात्मा नहुष जिस प्रकार अगस्त्यके शापसे ग्रस्त होकर अनन्त वर्षोंके लिये नष्ट हो गया ॥ १३ ॥

एवं तव दुरात्मानः शत्रवः शत्रुसूदन ।
क्षिप्रं नाशं गमिष्यन्ति कर्णदुर्योधनादयः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार तुम्हारे दुरात्मा शत्रु कर्ण और दुर्योधन आदि शीघ्र ही विनाशके मुखमें चले जायँगे ॥ १४ ॥

ततः सागरपर्यन्तां भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम् ।
भ्रातृभिः सहितो वीर द्रौपद्या च सहाभिभो ॥ १५ ॥

वीर ! तत्पश्चात् तुम अपने भाइयों तथा इन द्रौपदीके साथ समुद्रोंसे घिरे हुए इस समस्त भूमण्डलका राज्य भोगोगे ॥ १५ ॥

उपाख्यानमिदं शक्रविजयं वेदसम्मितम् ।
राज्ञा व्यूढेष्वनीकेषु श्रोतव्यं जयमिच्छता ॥ १६ ॥

शत्रुओंकी सेना जब मोर्चा बांधकर खडी हो, उस समय विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजाको यह ‘ इन्द्रविजय ’ नामक वेदतुल्य उपाख्यान सुनना चाहिये ॥ १६ ॥

तस्मात्संश्रावयामि त्वां विजयं जयतां वर ।
संस्तूयमाना वर्धन्ते महात्मानो युधिष्ठिर ॥ १७ ॥

अतः, विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर! मैंने तुम्हें यह 'इन्द्रविजय' नामक उपाख्यान सुनाया है; महात्मा देवता प्रशंसासे बढते हैं ॥ १७ ॥

क्षत्रियाणामभावोऽयं युधिष्ठिर महात्मनाम् ।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर! दुर्योधनके अपराधसे तथा भीमसेन और अर्जुनके बलसे यह महामना क्षत्रियोंके संहारका अवसर उपस्थित हो गया है ॥ १८ ॥

आख्यानमिन्द्रविजयं य इदं नियतः पठेत् ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गः स प्रेत्येह च मोदते ॥ १९ ॥

जो पुरुष नियमपरायण हो इस इन्द्रविजयनामक उपाख्यानका पाठ करे, वह पापरहित हो स्वर्गपर विजय पाकर इहलोक और परलोकमें भी सुखी होता है ॥ १९ ॥

न चारिजं भयं तस्य न चापुत्रो भवेन्नरः ।
नापदं प्राप्नुयात्कांचिद्दीर्घमायुश्च विन्दति ।
सर्वत्र जयमाप्नोति न कदाचित्पराजयम् ॥ २० ॥

वह मनुष्य कभी संतानहीन नहीं होता, उसे शत्रुजनित भय नहीं सताता, उसपर कोई आपत्ति नहीं आती, वह दीर्घायु होता है, उसे सर्वत्र विजय प्राप्त होती है तथा कभी उसकी पराजय नहीं होती ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाश्वासितो राजा शल्येन भरतर्षभ ।
पूजयामास विधिवच्छल्यं धर्मभृतां वरः ॥ २१ ॥

वैशम्पायन बोले— भरतश्रेष्ठ जनमेजय! शल्यके इस प्रकार आश्वासन देनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने उनका विधिपूर्वक पूजन किया ॥ २१ ॥

श्रुत्वा शल्यस्य वचनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
प्रत्युवाच महाबाहुर्मद्रराजमिदं वचः ॥ २२ ॥

शल्यकी बात सुनकर कुन्तीपुत्र महाबाहु युधिष्ठिर मद्रराजसे यह वचन बोले ॥ २२ ॥

भवान् कर्णस्य सारथ्यं करिष्यति न संशयः ।
तत्र तेजोवधः कार्यः कर्णस्य मम संस्तवैः ॥ २३ ॥

जब अर्जुनके साथ कर्णका युद्ध होगा, उस समय आप कर्णका सारथ्य करेंगे, इसमें संशय नहीं है। उस समय आप अर्जुनकी प्रशंसा करके कर्णके तेज और उत्साहका नाश करें और प्रशंसाओंसे मेरा उत्साह बढायें ॥ २३ ॥

शल्य उवाच

एवमेतत् करिष्यामि यथा मां सम्प्रभाषसे ।
यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत्करिष्याम्यहं तव ॥ २४ ॥

शल्य बोले— राजन्! तुम जैसा कह रहे हो, ऐसा ही करूँगा और भी (तुम्हारे हितके लिये) जो कुछ मुझसे हो सकेगा, वह सब तुम्हारे लिये करूँगा ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तत आमन्त्र्य कौन्तेयाञ्शल्यो मद्राधिपस्तदा ।
जगाम सबलः श्रीमान्दुर्योधनमरिंदमः ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ५०१ ॥

वैशम्पायन बोले— शत्रुदमन जनमेजय! तदनन्तर समस्त कुन्तीकुमारोंसे विचार विमर्श करके श्रीमान् मद्रराज शल्य अपनी सेनाके साथ दुर्योधनके यहाँ चले गये ॥२५॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ५०१ ॥

: १९ :

वैशम्पायन उवाच

युयुधानस्ततो वीरः सात्वतानां महारथः ।
महता चतुरङ्गेण बलेनागाद्युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय! तदनन्तर सात्वतवंशके महारथी वीर युयुधान (सात्यकि) विशाल चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर युधिष्ठिरके पास आये ॥ १ ॥

तस्य योधा महावीर्या नानादेशसमागताः ।
नानाप्रहरणा वीराः शोभयांचक्रिरे बलम् ॥ २ ॥

उनके सैनिक बडे पराक्रमी वीर थे। विभिन्न देशोंसे वे आये हुए थे। वे भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र लिये उस सेनाकी शोभा बढा रहे थे ॥ २ ॥

परश्वधैर्भिन्दिपालैः शक्तितोमरमुद्गरैः ।
शक्त्यृष्टिपरशुप्रासैः करवालैश्च निर्मलैः ॥ ३ ॥
खड्गकार्मुकनिर्यूहैः शरैश्च विविधैरपि ।
तैलधौतैः प्रकाशद्भिस्तदशोभत वै बलम् ॥ ४ ॥

फरसे, भिन्दिपाल, शक्ति, तोमर, मुद्गर, शक्ति, ऋष्टि, परशु, प्रास, निर्मल तलवार, खड्ग, धनुषसमूह तथा भाँति-भाँतिके बाण आदि अस्त्र-शस्त्र तेलमें धुले होनेके कारण चमचमा रहे थे, जिनसे वह सेना सुशोभित हो रही थी ॥ ३-४ ॥

तस्य मेघप्रकाशस्य शस्त्रैस्तैः शोभितस्य च ।
बभूव रूपं सैन्यस्य मेघस्येव सविद्युतः ॥ ५ ॥

सात्यकिकी वह सेना (हाथियोंके समूहके कारण तथा काली वर्दी पहननेसे) मेघोंके समान काली दिखायी देती थी । सैनिकोंके उन शस्त्रोंसे शोभित हो वह ऐसी जान पडती थी, मानो बिजलियोंसहित मेघोंकी घटा छा रही हो ॥ ५ ॥

अक्षौहिणी हि सेना सा तदा यौधिष्ठिरं बलम् ।
प्रविश्यान्तर्दधे राजन्सागरं कुनदी यथा ॥ ६ ॥

राजन् ! वह एक अक्षौहिणी सेना युधिष्ठिरकी विशाल वाहिनीमें समाकर उसी प्रकार विलीन हो गयी, जैसे कोई छोटी नदी समुद्रमें मिल गयी हो ॥ ६ ॥

तथैवाक्षौहिणीं गृह्य चेदीनामृषभो बली ।
धृष्टकेतुरुपागच्छत्पाण्डवानमितौजसः ॥ ७ ॥

इसी प्रकार महाबली चेदिराज धृष्टकेतु अपनी एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर अमित तेजस्वी पाण्डवोंके पास आये ॥ ७ ॥

मागधश्च जयत्सेनो जारासन्धिर्महाबलः ।
अक्षौहिण्यैव सैन्यस्य धर्मराजमुपागमत् ॥ ८ ॥

मागध वीर जयत्सेन और जरासंधका महाबली पुत्र सहदेव– ये दोनों एक अक्षौहिणी सेनाके साथ धर्मराज युधिष्ठिरके पास आये थे ॥ ८ ॥

तथैव पाण्ड्यो राजेन्द्र सागरानूपवासिभिः ।
वृतो बहुविधैर्योधैर्युधिष्ठिरमुपागमत् ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! इसी प्रकार समुद्रतटवर्ती जलप्राय देशके निवासी अनेक प्रकारके सैनिकोंसे घिरे हुए पाण्ड्यनरेश युधिष्ठिरके पक्षमें पधारे थे ॥ ९ ॥

तस्य सैन्यमतीवासीत्तस्मिन्बलसमागमे ।
प्रेक्षणीयतरं राजन्सुवेषं बलवत्तदा ॥ १० ॥

राजन् ! उस सैन्य-समागमके समय युधिष्ठिरकी सुन्दर वेष-भूषासे विभूषित तथा प्रबल सेना, जिसकी संख्या बहुत अधिक थी, देखने ही योग्य जान पडती थी ॥ १० ॥

द्रुपदस्याप्यभूत्सेना नानादेशसमागतैः ।
शोभिता पुरुषैः शूरैः पुत्रैश्चास्य महारथैः ॥ ११ ॥

द्रुपदकी सेना तो वहाँ पहलेसे ही उपस्थित थी, जो विभिन्न देशोंसे आये हुए शूरवीर पुरुषों तथा द्रुपदके महारथी पुत्रोंसे सुशोभित थी ॥ ११ ॥

तथैव राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ।
पार्वतीयैर्महीपालैः सहितः पाण्डवानियात् ॥ १२ ॥

इसी प्रकार मत्स्यनरेश सेनापति विराट् भी पर्वतीय राजाओंके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये प्रस्तुत थे ॥ १२ ॥

इतश्चेतश्च पाण्डूनां समाजग्मुर्महात्मनाम् ।
अक्षौहिण्यस्तु सप्तैव विविधध्वजसंकुलाः ।
युयुत्समानाः कुरुभिः पाण्डवान्समहर्षयन् ॥ १३ ॥

महात्मा पाण्डवोंके पास इधर-उधरसे सात अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुई थीं, जो नाना प्रकारकी ध्वजा-पताकाओंसे व्याप्त दिखायी देती थीं। ये सब सेनाएँ कौरवोंसे युद्ध करनेकी इच्छा रखकर पाण्डवोंका हर्ष बढाती थीं ॥ १३ ॥

तथैव धार्तराष्ट्रस्य हर्षं समभिवर्धयन् ।
भगदत्तो महीपालः सेनामक्षौहिणीं ददौ ॥ १४ ॥

इसी प्रकार राजा भगदत्तने दुर्योधनका हर्ष बढाते हुए उसे एक अक्षौहिणी सेना प्रदान की ॥ १४ ॥

तस्य चीनैः किरातैश्च काञ्चनैरिव संवृतम् ।
बभौ बलमनाधृष्यं कर्णिकारवनं यथा ॥ १५ ॥

सुनहरे शरीरवाले चीन और किरात देशके योद्धाओंसे भरी हुई भगदत्तकी दुर्धर्ष सेना (खिले हुए) कनेरके जंगलसी जान पडती थी ॥ १५ ॥

तथा भूरिश्रवाः शूरः शल्यश्च कुरुनन्दन ।
दुर्योधनमुपायातावक्षौहिण्या पृथक् पृथक् ॥ १६ ॥

कुरुनन्दन ! इसी प्रकार शूरवीर भूरिश्रवा तथा राजा शल्य पृथक्-पृथक् एक–एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर दुर्योधनके पास आये ॥ १६ ॥

कृतवर्मा च हार्दिक्यो भोजान्धककबलैः सह ।
अक्षौहिण्यैव सेनाया दुर्योधनमुपागमत् ॥ १७ ॥

हृदिकपुत्र कृतवर्मा भी भोज, अन्धक तथा वीरोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर दुर्योधनके पास आया ॥ १७ ॥

तस्य तैः पुरुषव्याघ्रैर्वनमालाधरैर्बलम् ।
अशोभत यथा मत्तैर्वनं प्रक्रीडितैर्गजैः ॥ १८ ॥

उन वनमालाधारी पुरुषसिंहोंसे कृतवर्माकी सेना उसी प्रकार सुशोभित हुई, जैसे क्रीडापरायण मतवाले हाथियोंसे कोई (विशाल) वन शोभा पा रहा हो ॥ १८ ॥

जयद्रथमुखाश्चान्ये सिन्धुसौवीरवासिनः ।
आजग्मुः पृथिवीपालाः कम्पयन्त इवाचलान् ॥ १९ ॥

सिन्धु और सौवीरदेशके निवासी जयद्रथ आदि अन्य राजा, पर्वतोंको कँपाते हुएसे दुर्योधनके पास आये ॥ १९ ॥

तेषामक्षौहिणी सेना बहुला विबभौ तदा ।
विधूयमाना वातेन बहुरूपा इवाम्बुदाः ॥ २० ॥

उनकी वह एक अक्षौहिणी विशाल सेना उस समय हवासे उडाये जाते हुए अनेक रूपवाले मेघके समान प्रतीत होती थी ॥ २० ॥

सुदक्षिणश्च काम्बोजो यवनैश्च शकैस्तथा ।
उपाजगाम कौरव्यमक्षौहिण्या विशांपते ॥ २१ ॥

राजन् ! कम्बोजनरेश सुदक्षिण भी यवनों और शकोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लिये दुर्योधनके पास आया ॥ २१ ॥

तस्य सेनासमावायः शलभानामिवाबभौ ।
स च सम्प्राप्य कौरव्यं तत्रैवान्तर्दधे तदा ॥ २२ ॥

उसका सैन्य–समूह टिड्डियोंके दलसा जान पडता था । वह सारा सैन्य–समुदाय कौरव-सेनामें आकर विलीन हो गया ॥ २२ ॥

तथा माहिष्मतीवासी नीलो नीलायुधैः सह ।
महीपालो महावीर्यैर्दक्षिणापथवासिभिः ॥ २३ ॥

इसी प्रकार माहिष्मती पुरीके निवासी राजा नील भी दक्षिण देशके रहनेवाले श्यामवर्णके शस्त्रधारी महापराक्रमी सैनिकोंके साथ दुर्योधनके पक्षमें आये ॥ २३ ॥

आवन्त्यौ च महीपालौ महाबलसुसंवृतौ ।
पृथगक्षौहिणीभ्यां तावभियातौ सुयोधनम् ॥ २४ ॥

अवन्ती देशके दोनों राजा विन्द और अनुविन्द भी पृथक् पृथक् एक अक्षौहिणी सेनासे घिरे हुए दुर्योधनके पास आये ॥ २४ ॥

केकयाश्च नरव्याघ्राः सोदर्याः पञ्च पार्थिवाः ।
संहर्षयन्तः कौरव्यमक्षौहिण्या समाद्रवन् ॥ २५ ॥

केकयदेशके पुरुषसिंह पाँच नरेश, जो परस्पर सगे भाई थे, दुर्योधनका हर्ष बढाते हुए एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आ पहुँचे ॥ २५ ॥

इतश्चेतश्च सर्वेषां भूमिपानां महात्मनाम् ।
तिस्रोऽन्याः समवर्तन्त वाहिन्यो भरतर्षभ ॥ २६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर इधर उधरसे समस्त महामना नरेशोंकी तीन अक्षौहिणी सेनाएँ और आ पहुँचीं ॥ २६ ॥

एवमेकादशावृत्ताः सेना दुर्योधनस्य ताः ।
युयुत्समानाः कौन्तेयान्नानाध्वजसमाकुलाः ॥ २७ ॥

इस प्रकार दुर्योधनके पास सब मिलाकर ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएं एकत्र हो गयीं, जो भाँति-भाँतिकी ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित थीं और कुन्तीकुमारोंसे युद्ध करनेका उत्साह रखती थीं ॥ २७ ॥

न हास्तिनपुरे राजन्नवकाशोऽभवत्तदा ।
राज्ञां सबलमुख्यानां प्राधान्येनापि भारत ॥ २८ ॥

राजन् ! दुर्योधनकी अपनी सेनाके जो प्रधान-प्रधान राजा थे, उनके भी ठहरनेके लिये हस्तिनापुरमें स्थान नहीं रह गया था ॥ २८ ॥

ततः पञ्चनदं चैव कृत्स्नं च कुरुजाङ्गलम् ।
तथा रोहितकारण्यं मरुभूमिश्च केवला ॥ २९ ॥

इसलिये भारत ! पञ्चनद प्रदेश, सम्पूर्ण कुरुजाङ्गल देश, रोहितकवन (रोहतक), समस्त मरुभूमि ॥ २९ ॥

अहिच्छत्रं कालकूटं गङ्गाकूलं च भारत ।
वारणा वाटधानं च यामुनश्चैव पर्वतः ॥ ३० ॥

अहिच्छत्र, कालकूट, गङ्गातट, वारण, वाटधान तथा यामुनपर्वत ॥ ३० ॥

एष देशः सुविस्तीर्णः प्रभूतधनधान्यवान् ।
बभूव कौरवेयाणां बलेन सुसमाकुलः ॥ ३१ ॥

यह प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न सुविस्तृत प्रदेश कौरवोंकी सेनासे भलीभांति घिर गया ॥ ३१ ॥

तत्र सैन्यं तथा युक्तं ददर्श स पुरोहितः ।
यः स पाञ्चालराजेन प्रेषितः कौरवान्प्रति ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ५३३ ॥

पाञ्चालराज द्रुपदने अपने जिन पुरोहित ब्राह्मणको कौरवोंके पास भेजा था उन्होंने वहाँ पहुंचकर कौरवोंकी उस विशाल सेनाके जमावको देखा ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ५३३ ॥

: २० :

वैशम्पायन उवाच

स तु कौरव्यमासाद्य द्रुपदस्य पुरोहितः।
सत्कृतो धृतराष्ट्रेण भीष्मेण विदुरेण च ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय! तदनन्तर द्रुपदके पुरोहित कौरवनरेशके पास पहुंचकर राजा धृतराष्ट्र, भीष्म तथा विदुर द्वारा सम्मानित हुए ॥ १ ॥

सर्वं कौशल्यमुक्त्वादौ पृष्ट्वा चैवमनामयम्।
सर्वसेनाप्रणेतॄणां मध्ये वाक्यमुवाच ह ॥ २ ॥

उन्होंने पहले (अपने पक्षके लोगोंका) सारा कुशल समाचार बताकर धृतराष्ट्र आदिके स्वास्थ्यका समाचार पूछकर फिर सम्पूर्ण सेनानायकोंके समक्ष इस प्रकार वचन कहे ॥२॥

सर्वैर्भवद्भिर्विदितो राजधर्मः सनातनः।
वाक्योपादानहेतोस्तु वक्ष्यामि विदिते सति ॥ ३ ॥

'आप सब लोग सनातन राजधर्मको अच्छी तरह जानते हैं। जाननेपर भी अन्तमें कुछ आपलोगोंके मुखसे भी सुननेका अवसर मिले इसलिए कुछ कहूंगा ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च सुतावेकस्य विश्रुतौ।
तयोः समानं द्रविणं पैतृकं नात्र संशयः ॥ ४ ॥

राजा धृतराष्ट्र तथा पाण्डु दोनों एक ही पिताके सुविख्यात पुत्र हैं। पैतृक सम्पत्तिमें दोनोंका समान अधिकार है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रस्य ये पुत्रास्ते प्राप्ताः पैतृकं वसु।
पाण्डुपुत्राः कथं नाम न प्राप्ताः पैतृकं वसु ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्रके जो पुत्र हैं, उन्होंने तो पैतृक धन प्राप्त कर लिया, परंतु पाण्डवोंको वह पैतृक सम्पत्ति क्यों प्राप्त नहीं हुई ॥ ५ ॥

एवं गते पाण्डवेयैर्विदितं वः पुरा यथा।
न प्राप्तं पैतृकं द्रव्यं धार्तराष्ट्रेण संवृतम् ॥ ६ ॥

'धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने सारा धन अपने अधिकारमें कर लिया; इसलिये पाण्डुपुत्रोंको पैतृक धन नहीं मिला है, यह बात आपलोग पहलेसे ही जानते हैं ॥ ६ ॥

प्राणान्तिकैरप्युपायैः प्रयतद्भिरनेकशः।
शेषवन्तो न शकिता नयितुं यमसादनम् ॥ ७ ॥

'उसके बाद दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र-पुत्रोंके द्वारा प्राणान्तकारी उपायों द्वारा अनेक बार पाण्डवोंको नष्ट करनेका प्रयत्न करने पर भी इनकी आयु शेष थी, इसलिये वे इन्हें यमलोक न पहुंचा सके ॥ ७ ॥

पुनश्च वर्धितं राज्यं स्वबलेन महात्मभिः ।
छद्मनापहृतं क्षुद्रैर्धार्तराष्ट्रैः ससौबलैः ॥ ८ ॥

'फिर महात्मा पाण्डवोंने अपने बाहुबलसे नूतन राज्यकी प्रतिष्ठा करके उसे बढा लिया; परंतु शकुनिसहित क्षुद्र धृतराष्ट्रपुत्रोंने जूएमें छलकपटका आश्रय ले उसका हरण कर लिया ॥ ८ ॥

तदप्यनुमतं कर्म तथायुक्तमनेन वै ।
वासिताश्च महारण्ये वर्षाणीह त्रयोदश ॥ ९ ॥

'तत्पश्चात् धृतराष्ट्रने भी उस द्यूतकर्मका अनुमोदन किया और उन्होंने जैसा आदेश दिया, उसके अनुसार पाण्डव महान् वनमें तेरह वर्षोंतक निवास करनेके लिये विवश हुए ॥ ९ ॥

सभायां क्लेशितैर्वीरैः सहभार्यैस्तथा भृशम् ।
अरण्ये विविधाः क्लेशाः संप्राप्तास्तैः सुदारुणाः ॥ १० ॥

'पत्नीसहित वीर पाण्डवोंको कौरव-सभामें भारी क्लेश पहुंचाया गया तथा वनमें भी उन्हें नाना प्रकारके भयंकर कष्ट भोगने पडे ॥ १० ॥

तथा विराटनगरे योन्यन्तरगतैरिव ।
प्राप्तः परमसंक्लेशो यथा पापैर्महात्मभिः ॥ ११ ॥

'इतना ही नहीं, दूसरी योनिमें पडे हुए पापियोंकी तरह विराटनगरमें भी इन महात्माओंको महान् क्लेश सहन करना पडा है ॥ ११ ॥

ते सर्वे पृष्ठतः कृत्वा तत्सर्वं पूर्वकिल्बिषम् ।
सामैव कुरुभिः सार्धमिच्छन्ति कुरुपुङ्गवाः ॥ १२ ॥

'पहलेके किये हुए इन सब अत्याचारोंको भुलाकर वे कुरुश्रेष्ठ पाण्डव अब भी इन कौरवोंके साथ मेल-जोल ही रखना चाहते हैं ॥ १२ ॥

तेषां च वृत्तमाज्ञाय वृत्तं दुर्योधनस्य च ।
अनुनेतुमिहार्हन्ति धृतराष्ट्रं सुहृज्जनाः ॥ १३ ॥

'पाण्डवोंके आचार-व्यवहारको तथा दुर्योधनके बर्तावको जानकर (उभयपक्षका हित चाहनेवाले) सुहृदोंका यह कर्तव्य है कि वे धृतराष्ट्रको समझावें ॥ १३ ॥

न हि ते विग्रहं वीराः कुर्वन्ति कुरुभिः सह ।
अविनाशेन लोकस्य काङ्क्षन्ते पाण्डवाः स्वकम् ॥ १४ ॥

'वीर पाण्डव कौरवोंके साथ युद्ध नहीं कर रहे हैं, वे जनसंहार किये विना ही अपना राज्य पाना चाहते हैं ॥ १४ ॥

यश्चापि धार्तराष्ट्रस्य हेतुः स्याद् विग्रहं प्रति ।
स च हेतुर्न मन्तव्यो बलीयांसस्तथा हि ते ॥ १५ ॥

'दुर्योधन जिस हेतुको सामने रखकर युद्धके लिये उत्सुक है, उसे यथार्थ नहीं मानना चाहिये; क्योंकि पाण्डव इन कौरवोंसे अधिक बलिष्ठ हैं ॥ १५ ॥

अक्षौहिण्यो हि सप्तैव धर्मपुत्रस्य संगताः ।
युयुत्समानाः कुरुभिः प्रतीक्षन्तेऽस्य शासनम् ॥ १६ ॥

'धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास सात अक्षौहिणी सेनाएं भी एकत्र हो गयी हैं, जो कौरवोंके साथ युद्धकी अभिलाषा रखकर उनके आदेशभरकी प्रतीक्षा कर रही हैं ॥ १६ ॥

अपरे पुरुषव्याघ्राः सहस्राक्षौहिणीसमाः ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च यमौ च सुमहाबलौ ॥ १७ ॥

'इसके सिवा सात्यकि, भीमसेन तथा महाबली नकुल सहदेव आदि जो दूसरे पुरुषसिंह वीर हैं वे अकेले ही हजार अक्षौहिणी सेनाओंके समान हैं ॥ १७ ॥

एकादशैताः पृतना एकतश्च समागताः ।
एकतश्च महाबाहुर्बहुरूपो धनंजयः ॥ १८ ॥

एक ओरसे आई हुई कौरवोंकी ये ग्यारह अक्षौहिणी सेनायें हों तथा दूसरी ओर केवल अनेक रूपधारी महाबाहु अर्जुन हों, तो वे अकेले ही इन सबके लिये पर्याप्त हैं ॥ १८ ॥

यथा किरीटी सेनाभ्यः सर्वाभ्यो व्यतिरिच्यते ।
एवमेव महाबाहुर्वासुदेवो महाद्युतिः ॥ १९ ॥

'जैसे किरीटधारी अर्जुन अकेले ही इन सब सेनाओंसे बढकर हैं, उसी प्रकार महातेजस्वी महाबाहु श्रीकृष्ण भी हैं ॥ १९ ॥

बहुलत्वं च सेनानां विक्रमं च किरीटिनः ।
बुद्धिमत्तां च कृष्णस्य बुद्ध्वा युध्येत को नरः ॥ २० ॥

'युधिष्ठिरकी सेनाओंकी अधिकता किरीटधारी अर्जुनके पराक्रम तथा भगवान् श्रीकृष्णकी बुद्धिमत्ताको जान लेनेपर कौन मनुष्य पाण्डवोंके साथ युद्ध कर सकता है ? ॥ २० ॥

ते भवन्तो यथाधर्मं यथासमयमेव च ।
प्रयच्छन्तु प्रदातव्यं मा वः कालोऽत्यगादयम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ५५४ ॥

'अतः आपलोग अपने धर्म और पहले की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार पाण्डवोंको उनका आधा राज्य, जो उन्हें मिलना ही चाहिये, दे दीजिये । कहीं ऐसा न हो कि यह सुन्दर अवसर आप लोगोंके हाथसे निकल जाय ' ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ५५४ ॥

: २१ :

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रज्ञावृद्धो महाद्युतिः ।
सम्पूज्यैनं यथाकालं भीष्मो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! पुरोहितकी यह बात सुनकर बुद्धिमें बढे-चढे महातेजस्वी भीष्मने समयके अनुरूप उनकी पूजा करके इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

दिष्ट्या कुशलिनः सर्वे पाण्डवाः सह बान्धवैः ।
दिष्ट्या सहायवन्तश्च दिष्ट्या धर्मे च ते रताः ॥ २ ॥

' ब्रह्मन् ! सब पाण्डव अपने भाईयोंके साथ सकुशल हैं, यह सौभाग्यकी बात है । सौभाग्यसे ही उनके बहुतसे सहायक हैं तथा सौभाग्यसे ही वे धर्ममें भी तत्पर हैं ॥ २ ॥

दिष्ट्या च संधिकामास्ते भ्रातरः कुरुनन्दनाः ।
दिष्ट्या न युद्धमनसः सह दामोदरेण ते ॥ ३ ॥

' कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले पाँचों भाई पाण्डव सन्धिकी इच्छा रखते हैं, यह सौभाग्यका विषय है । वे श्रीकृष्णके साथ युद्धमें मन नहीं लगा रहे हैं, यह भी सौभाग्यकी बात है ॥ ३ ॥

भवता सत्यमुक्तं च सर्वमेतन्न संशयः ।
अतितीक्ष्णं तु ते वाक्यं ब्राह्मण्यादिति मे मतिः ॥ ४ ॥

' आपने जितनी बातें कही हैं, वे सब सत्य हैं; इसमें संशय नहीं है । परंतु आपकी बातें बडी तीखी हैं । यह तीक्ष्णता ब्राह्मण-स्वभावके कारण ही है, ऐसा मेरा विचार है ॥ ४ ॥

असंशयं क्लेशितास्ते वने चेह च पाण्डवाः ।
प्राप्ताश्च धर्मतः सर्वं पितुर्धनमसंशयम् ॥ ५ ॥

' निःसंदेह पाण्डव वनमें और यहाँ भी दुःखी हुए हैं । उन्हें धर्मतः अपनी सारी पैतृक सम्पत्ति पानेका अधिकार प्राप्त हो चुका है; इसमें भी कोई संशय नहीं है ॥ ५ ॥

किरीटी बलवान्पार्थः कृतास्त्रश्च महारथः ।
को हि पाण्डुसुतं युद्धे विषहेत धनंजयम् ॥ ६ ॥

कुन्तीपुत्र किरीटधारी महारथी अर्जुन बलवान् तथा अस्त्रविद्यामें निपुण हैं। कौन ऐसा वीर है, जो युद्धमें पाण्डुपुत्र अर्जुनका वेग सह सके ? ॥ ६ ॥

×

अपि वज्रधरः साक्षात्किमुतान्ये धनुर्भृतः।
त्रयाणामपि लोकानां समर्थ इति मे मतिः ॥ ७ ॥

'साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी युद्धमें उनका सामना नहीं कर सकते; फिर दूसरे धनुर्धरोंकी बात ही क्या है? मेरा तो ऐसा विश्वास है कि अर्जुन तीनों लोकोंका सामना करनेमें समर्थ हैं' ॥ ७ ॥

भीष्मे ब्रुवति तद्वाक्यं धृष्टमाक्षिप्य मन्युमान्।
दुर्योधनं समालोक्य कर्णो वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥

भीष्म इस प्रकार कह ही रहे थे कि क्रोधी कर्णने दुर्योधनकी ओर देखकर धृष्टतापूर्वक आक्षेप करते हुए यह बात कही ॥ ८ ॥

न तन्न विदितं ब्रह्मँल्लोके भूतेन केनचित्।
पुनरुक्तेन किं तेन भाषितेन पुनः पुनः ॥ ९ ॥

'ब्रह्मन्! इस लोकमें जो घटना बीत चुकी है, वह किसीको ज्ञात न हो, ऐसी बात नहीं अर्थात् सभी उसे जानते हैं पर भाषण देनेसे क्या लाभ? ॥ ९ ॥

दुर्योधनार्थे शकुनिर्द्यूते निर्जितवान्पुरा।
समयेन गतोऽरण्यं पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥

'पहले शकुनिने दुर्योधनके लिये पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको द्यूत-क्रीडामें परास्त किया था और वे उस जूएकी शर्तके अनुसार वनमें गये ॥ १० ॥

न तं समयमादृत्य राज्यमिच्छति पैतृकम्।
बलमाश्रित्य मत्स्यानां पाञ्चालानां च पार्थिवः ॥ ११ ॥

'युधिष्ठिर उस शर्तका पालन करके अपना पैतृक राज्य चाहते हों, ऐसी बात नहीं है। वह राजा तो मत्स्य और पाञ्चाल देशकी सेनाके भरोसे राज्य लेना चाहते हैं ॥ ११ ॥

दुर्योधनो भयाद्विद्वन् दद्यात्पादमन्ततः।
धर्मतस्तु महीं कृत्स्नां प्रदद्याच्छत्रवेऽपि च ॥ १२ ॥

'विद्वन्! दुर्योधन किसीके भयसे अपने राज्यका पैरके बराबर भाग भी नहीं देंगे; पर यदि धर्मानुसार कोई मांगे तो वे शत्रुको भी समूची पृथ्वीतक दे सकते हैं ॥ १२ ॥

यदि काङ्क्षन्ति ते राज्यं पितृपैतामहं पुनः।
यथाप्रतिज्ञं कालं तं चरन्तु वनमाश्रिताः ॥ १३ ॥

यदि पाण्डव अपने बाप-दादोंका राज्य लेना चाहते हैं तो पूर्व-प्रतिज्ञाके अनुसार उतने समयतक पुनः वनमें निवास करते हुए विचरें ॥ १३ ॥

ततो दुर्योधनस्याङ्के वर्तन्तामकुतोभयाः ।
अधार्मिकामिमां बुद्धिं कुर्युर्मौर्ख्याद्धि केवलम् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् वे दुर्योधनके आश्रयमें निर्भय होकर रह सकते हैं । केवल मूर्खतावश वे अपनी बुद्धिको अधर्मपरायण बना रहे हैं ॥ १४ ॥

अथ ते धर्ममुत्सृज्य युद्धमिच्छन्ति पाण्डवाः ।
आसाद्येमान्कुरुश्रेष्ठान्स्मरिष्यन्ति वचो मम ॥ १५ ॥

यदि पाण्डव धर्मको त्यागकर युद्ध ही करना चाहते हैं तो इन कुरुश्रेष्ठ वीरोंसे भिडनेपर मेरी बात याद करेंगे ॥ १५ ॥

भीष्म उवाच

किं नु राधेय वाचा ते कर्म तत्स्मर्तुमर्हसि ।
एक एव यदा पार्थः षड्रथाञ्जितवान्युधि ॥ १६ ॥

भीष्म बोले– राधानन्दन ! तू जो इस प्रकार बढ-बढकर बातें बनाता है, इससे क्या होगा ? तुझे पार्थका वह पराक्रम याद करना चाहिये, जब कि विराटनगरके युद्धमें उन्होंने अकेले ही सम्पूर्ण सेनासहित छः अतिरथियोंको जीत लिया था ॥ १६ ॥

न चेदेवं करिष्यामो यदयं ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
ध्रुवं युधि हतास्तेन भक्षयिष्याम पांसुकान् ॥ १७ ॥

इन ब्राह्मणदेवताने जो कुछ कहा है, यदि हमलोग तदनुसार कार्य नहीं करेंगे तो यह निश्चय है कि युद्धमें पाण्डुनन्दन अर्जुनके हाथसे मारे जाकर हमें धूल खानी पडेगी ॥१७॥

वैशंपायन उवाच

धृतराष्ट्रस्ततो भीष्ममनुमान्य प्रसाद्य च ।
अवभर्त्स्य च राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! तदनन्तर धृतराष्ट्रने कर्णको डाँटकर भीष्मका समर्थन करके तथा उन्हें प्रसन्न करके (उस पुरोहितसे) इस प्रकार वचन कहा ॥ १८ ॥

अस्मद्धितमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ।
पाण्डवानां हितं चैव सर्वस्य जगतस्तथा ॥ १९ ॥

'शान्तनुनन्दन भीष्मने हमारे लिये यह हितकर बात कही है । इसमें पाण्डवोंका तथा सम्पूर्ण जगत्का भी हित है ॥ १९ ॥

चिन्तयित्वा तु पार्थेभ्यः प्रेषयिष्यामि संजयम् ।
स भवान्प्रतियात्वद्य पाण्डवानेव माचिरम् ॥ २० ॥

' ब्रह्मन् ! अब मैं कुछ सोच विचारकर पाण्डवोंके पास संजयको भेजूँगा । आप पुनः पाण्डवोंके पास ही पधारें, विलम्ब न करें ' ॥ २० ॥

स तं सत्कृत्य कौरव्यः प्रेषयामास पाण्डवान् ।
सभामध्ये समाहूय संजयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥ समाप्तमुद्योगपर्व ॥ २१ ॥ ५७५ ॥

तदनन्तर राजा धृतराष्ट्रने उन ब्राह्मणका सत्कार करके उन्हें पाण्डवोंके पास वापस भेजा और सभामें संजयको बुलाकर यह बात कही ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥ उद्योगपर्व समाप्त ॥ २१ ॥ ५७५ ॥

: २२ :

धृतराष्ट्र उवाच

प्राप्तानाहुः संजय पाण्डुपुत्रानुपप्लव्ये तान्विजानीहि गत्वा ।
अजातशत्रुं च सभाजयेथा दिष्ट्यानघ ग्राममुपस्थितस्त्वम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोला– संजय ! लोग कहते हैं कि पाण्डव उपप्लव्य नामक स्थानमें आ गये हैं। तुम वहाँ जाकर उनका समाचार जानो। अजातशत्रु युधिष्ठिरसे आदरपूर्वक मिलकर कहना, सौभाग्यकी बात है कि हे निष्पाप युधिष्ठिर ! अपने योग्य गांवमें आ पहुँचे हैं ॥ १ ॥

सर्वान्वदेः संजय स्वस्तिमन्तः कृच्छ्रं वासमतदर्हा निरुष्य ।
तेषां शान्तिर्विद्यतेऽस्मासु शीघ्रं मिथ्योपेतानामुपकारिणां सताम् ॥ २ ॥

संजय ! सब पाण्डवोंसे कहना कि हम लोग सकुशल हैं। पाण्डवलोग मिथ्यासे दूर रहनेवाले, परोपकारी तथा साधुपुरुष हैं । वे वनवासका कष्ट भोगने योग्य नहीं थे, तो भी उन्होंने वनवासका नियम पूरा कर लिया है । इतनेपर भी हमारे ऊपर उनका क्रोध शीघ्र ही शान्त हो गया है ॥ २ ॥

नाहं क्वचित्संजय पाण्डवानां मिथ्यावृत्तिं काञ्चन जात्वपश्यम् ।
सर्वां श्रियं ह्यात्मवीर्येण लब्ध्वा पर्याकार्षुः पाण्डवा मह्यमेव ॥ ३ ॥

संजय ! मैंने कभी कहीं पाण्डवोंमें थोडी-सी भी मिथ्या वृत्ति नहीं देखी है । पाण्डवोंने अपने पराक्रमसे प्राप्त करके सारी सम्पत्ति मेरे ही अधीन कर दी थी ॥ ३ ॥

दोषं ह्येषां नाधिगच्छे परीक्षन्नित्यं कंचिद्येन गर्हेय पार्थान्।
धर्मार्थाभ्यां कर्म कुर्वन्ति नित्यं सुखप्रिया नानुरुध्यन्ति कामान् ॥ ४ ॥
मैंने सदा ढूँढ़ते रहनेपर भी कुन्तीपुत्रोंका कोई ऐसा दोष नहीं देखा है, जिससे उन पाण्डवोंकी निन्दा करूँ। वे सदा धर्म और अर्थके लिये ही कर्म करते हैं, कामनावश मानसिक प्रीति और स्त्री-पुत्रादि प्रिय वस्तुओंमें नहीं फँसते हैं— काम-भोगमें आसक्त होकर धर्मका परित्याग नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

घर्मं शीतं क्षुत्पिपासे तथैव निद्रां तन्द्रीं क्रोधहर्षौ प्रमादम्।
धृत्या चैव प्रज्ञया चाभिभूय धर्मार्थयोगान्प्रयतन्ति पार्थाः ॥ ५ ॥
पाण्डव घाम-शीत, भूख-प्यास, निद्रा-तन्द्रा, क्रोध-हर्ष तथा प्रमादको धैर्य एवं विवेकपूर्ण बुद्धिके द्वारा जीतकर धर्म और अर्थके लिये ही प्रयत्नशील बने रहते हैं ॥ ५ ॥

त्यजन्ति मित्रेषु धनानि काले न संवासाज्जीर्यति मैत्रमेषाम्।
यथार्हमानार्थकरा हि पार्थास्तेषां द्वेष्टा नास्त्याजमीढस्य पक्षे ॥ ६ ॥
वे समय पड़नेपर मित्रोंको उनकी सहायताके लिये धन देते हैं। दीर्घकालिक प्रवाससे भी उनकी मैत्री क्षीण नहीं होती है। कुन्तीके पुत्र सबका यथायोग्य सत्कार करनेवाले हैं। अजमीढवंशी हम कौरवोंके पक्षमें उनसे कोई भी द्वेष करनेवाला नहीं है ॥ ६ ॥

अन्यत्र पापाद्विषमान्मन्दबुद्धेर्दुर्योधनात्क्षुद्रतराच्च कर्णात्।
तेषां हीमे हीनसुखप्रियाणां महात्मनां संजनयन्ति तेजः ॥ ७ ॥
सिवाय पापी, बेईमान तथा मन्दबुद्धि दुर्योधन एवं अत्यन्त क्षुद्र स्वभाववाले कर्णको छोड़कर दूसरा कोई भी उनसे द्वेष रखनेवाला नहीं है। केवल दुर्योधन और कर्ण आदि ही सुख और प्रियजनोंसे बिछुड़े हुए महामना पाण्डवोंके मनमें क्रोध उत्पन्न करते रहते हैं ॥ ७ ॥

उत्थानवीर्यः सुखमेधमानो दुर्योधनः सुकृतं मन्यते तत्।
तेषां भागं यच्च मन्येत बालः शक्यं हर्तुं जीवतां पाण्डवानाम् ॥ ८ ॥
दुर्योधन आरम्भमें ही पराक्रम दिखानेवाला है, (अन्ततक उसे निभा नहीं सकता;) क्योंकि वह सुखमें ही पलकर बड़ा हुआ है। वह इतना मूर्ख है कि पाण्डवोंके जीते-जी उनका भाग हर लेना सरल समझता है। इतना ही नहीं, वह इस कुकर्मको उत्तम कर्म भी मानने लगा है ॥ ८ ॥

यस्यार्जुनः पदवीं केशवश्च वृकोदरः सात्यकोऽजातशत्रोः।
माद्रीपुत्रौ सृंजयाश्चापि सर्वे पुरा युद्धात्साधु तस्य प्रदानम् ॥ ९ ॥
अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण, भीमसेन, सात्यकि, नकुल, सहदेव और सम्पूर्ण सृञ्जयवंशी वीर जिस अजातशत्रु युधिष्ठिरके पीछे चलते हैं, उन युधिष्ठिरको युद्धके पहले ही उनका राज्य-भाग दे देनेमें भलाई है ॥ ९ ॥

स ह्येवैकः पृथिवीं सव्यसाची गाण्डीवधन्वा प्रणुदेद् रथस्थः ।
तथा विष्णुः केशवोऽप्यप्रधृष्यो लोकत्रयस्याधिपतिर्महात्मा ॥ १० ॥
गाण्डीवधारी सव्यसाची अर्जुन रथमें बैठकर अकेले ही सारी पृथ्वीको जीत सकते हैं। इसी प्रकार विजयशील एवं दुर्धर्ष महात्मा श्रीकृष्ण भी तीनों लोकोंको जीतकर उनके अधिपति हो सकते हैं ॥ १० ॥

तिष्ठेत कस्तस्य मर्त्यः पुरस्ताद् यः सर्वदेवेषु वरेण्य ईड्यः ।
पर्जन्यघोषान् प्रवपञ्छरौघान् पतङ्गसङ्घानिव शीघ्रवेगान् ॥ ११ ॥
जो समस्त देवोंमें एकमात्र सर्वश्रेष्ठ वीर हैं, जो मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर शब्द करनेवाले तथा टिड्डियोंके दलकी भाँति तीव्र वेगसे चलनेवाले बाणसमूहोंकी वर्षा करते हैं, उन वीरवर प्रशंसनीय तथा वरेण्य अर्जुनके सामने कौन मनुष्य ठहर सकता है ? ॥ ११ ॥

दिशं ह्युदीचीमपि चोत्तरान् कुरून् गाण्डीवधन्वैकरथो जिगाय ।
धनं चैषामाहरत् सव्यसाची सेनानुगान् बलिदांश्चैव चक्रे ॥ १२ ॥
गाण्डीव धनुष धारण करके एकमात्र रथपर आरूढ हो सव्यसाची अर्जुनने उत्तर दिशा और उत्तर कुरुदेशको जीत लिया था और उन सबकी धन-सम्पत्ति जीतकर ले आये थे। उन्होंने बलिदोंको भी जीतकर अपनी सेनाका अनुगामी बनाया था ॥ १२ ॥

यश्चैव देवान् खाण्डवे सव्यसाची गाण्डीवधन्वा प्रजिगाय सेन्द्रान् ।
उपाहरत् फल्गुनो जातवेदसे यशो मानं वर्धयन् पाण्डवानाम् ॥ १३ ॥
जिस सव्यसाची अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे खाण्डववनमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंपर विजय पायी थी और फल्गुनके यश तथा सम्मानकी वृद्धि करते हुए अग्निदेवको वह वन उपहारके रूपमें अर्पित किया था ॥ १३ ॥

गदाभृतां नास्ति समोऽस्ति भीमाद्धस्त्यारोहो नास्ति समश्च तस्य ।
रथेऽर्जुनादाहुरहीनमेनं बाह्वोर्बले चायुतनागवीर्यम् ॥ १४ ॥
गदाधारियोंमें इस भूतलपर भीमसेनके समान दूसरा कोई नहीं है और न उनके-जैसा कोई हाथीसवार ही है। रथमें बैठकर युद्ध करनेकी कलामें भी वे अर्जुनसे कम नहीं बताये जाते हैं और बाहुबलमें तो वे दस हजार हाथियोंके समान शक्तिशाली हैं ॥ १४ ॥

सुशिक्षितः कृतवैरस्तरस्वी दहेत् क्रुद्धस्तरसा धार्तराष्ट्रान् ।
सदात्यमर्षी बलवान् न शक्यो युद्धे जेतुं वासवेनापि साक्षात् ॥ १५ ॥
अस्त्र-विद्यामें उन्हें अच्छी शिक्षा मिली है। वे बड़े वेगशाली वीर हैं। उनके साथ मेरे पुत्रोंने वैर ठान रक्खा है और वे सदा अत्यन्त अमर्षमें भरे रहते हैं; अतः यदि युद्ध हुआ तो क्रोधी भीमसेन मेरे पुत्रोंको (अपनी कोपाग्निसे) जलाकर भस्म कर देंगे। साक्षात् इन्द्र भी उन्हें युद्धमें बलपूर्वक परास्त नहीं कर सकते ॥ १५ ॥

सुचेतसौ बलिनौ शीघ्रहस्तौ सुशिक्षितौ भ्रातरौ फल्गुनेन ।
श्येनौ यथा पक्षिपूगान्रुजन्तौ माद्रीपुत्रौ नेह कुरूनिवशेताम् ॥ १६ ॥

माद्रीनन्दन नकुल और सहदेव भी शुद्धचित्त और बलवान् हैं। अस्त्र-संचालनमें उनके हाथोंकी फुर्ती देखने ही योग्य है। स्वयं अर्जुनने अपने उन दोनों भाइयोंको युद्धकी अच्छी शिक्षा दी है। जैसे दो बाज पक्षियोंके समुदायको सर्वथा नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार वे दोनों भाई शत्रुओंसे भिडकर उन्हें जीवित नहीं छोड सकते ॥ १६ ॥

तेषां मध्ये वर्तमानस्तरस्वी धृष्टद्युम्नः पाण्डवानामिहैकः ।
सहामात्यः सोमकानां प्रबर्हः संत्यक्तात्मा पाण्डवानां जयाय ॥ १७ ॥

पाण्डवोंके पक्षमें धृष्टद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक बलवान् योद्धा है, जो सोमकवंशका श्रेष्ठ राजकुमार है। मैंने सुना है, उसने पाण्डवोंके लिये मन्त्रियोंसहित अपने शरीरको निछावर कर दिया है ॥ १७ ॥

सहोषितश्चरितार्थो वयःस्थः शाल्वेयानामधिपो वै विराटः ।
सह पुत्रैः पाण्डवार्थे च शश्वद्युधिष्ठिरं भक्त इति श्रुतं मे ॥ १८ ॥

शाल्वदेशके राजा विराट भी अपने पुत्रोंके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये सदा उद्यत रहते हैं। मैंने सुना है कि वे युधिष्ठिरके बडे भक्त हैं। कारण यह है कि अज्ञातवासके समय वे युधिष्ठिरके साथ एक वर्ष रहे और युधिष्ठिरके द्वारा उनके गोधनकी रक्षा हुई है। अवस्थामें वृद्ध होनेपर भी वे युद्धमें नौजवानसे जान पडते हैं ॥ १८ ॥

अवरुद्धा बलिनः केकयेभ्यो महेष्वासा भ्रातरः पञ्च सन्ति ।
केकयेभ्यो राज्यमाकाङ्क्षमाणा युद्धार्थिनश्चानुवसन्ति पार्थान् ॥ १९ ॥

केकयदेशसे बाहर निकाले हुए पाँच भाई केकयराजकुमार महान् धनुर्धर एवं रथी वीर हैं। वे पाण्डवोंके सहयोगसे केकयदेशके राजाओंसे पुनः अपना राज्य लेना चाहते हैं, इसलिये उनकी ओरसे युद्ध करनेकी इच्छा रखकर उन्हींके साथ रह रहे हैं ॥ १९ ॥

सर्वे च वीराः पृथिवीपतीनां समानीताः पाण्डवार्थे निविष्टाः ।
शूरानहं भक्तिमतः शृणोमि प्रीत्या युक्तान्संश्रितान्धर्मराजम् ॥ २० ॥

मैं यह भी सुनता हूँ कि राजाओंमें जितने वीर हैं, वे सब पाण्डवोंकी सहायताके लिये आकर उनकी छावनीमें रहते हैं। वे सबके सब शौर्यसम्पन्न, युधिष्ठिरके प्रति भक्ति रखनेवाले, प्रसन्नचित्त एवं धर्मराजके आश्रित हैं ॥ २० ॥

गिर्याश्रया दुर्गनिवासिनश्च योधाः पृथिव्यां कुलजा विशुद्धाः ।
म्लेच्छाश्च नानायुधवीर्यवन्तः समागताः पाण्डवार्थे निविष्टाः ॥ २१ ॥
पर्वतोंपर रहनेवाले, दुर्गम भूमिमें निवास करनेवाले एवं समतल भूमिके निवासी योद्धा, जो कुल और जातिकी दृष्टिसे बहुत शुद्ध हैं, वे तथा म्लेच्छ भी नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र एवं बल-पराक्रमसे सम्पन्न हो पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये हैं और उनके शिविरमें निवास करते हैं ॥ २१ ॥

पाण्ड्यश्च राजामित इन्द्रकल्पो युधि प्रवीरैर्बहुभिः समेतः ।
समागतः पाण्डवार्थे महात्मा लोकप्रवीरोऽप्रतिवीर्यतेजाः ॥ २२ ॥
पाण्ड्य देशके महामना राजा, जो संसारके सुविख्यात वीर, अनुपम पराक्रम और तेजसे सम्पन्न तथा युद्धमें देवराज इन्द्रके समान हैं, पाण्डवोंकी सहायताके लिये बहुतसे प्रमुख योद्धाओंके साथ पधारे हैं ॥ २२ ॥

अस्त्रं द्रोणादर्जुनाद्वासुदेवात्कृपाद् भीष्माद्येन कृतं शृणोमि ।
यं तं कार्ष्णिप्रतिमं प्राहुरेकं स सात्यकिः पाण्डवार्थे निविष्टः ॥ २३ ॥
जिसने द्रोणाचार्य, अर्जुन, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य तथा भीष्मसे भी अस्त्रविद्या सीखी है तथा जिस एकमात्र वीरको श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्नके समान पराक्रमी बताया जाता है, वह सात्यकि भी, सुनता हूँ, पाण्डवोंकी सहायताके लिये आकर टिका हुआ है ॥ २३ ॥

अपाश्रिताश्चेदिकरूषकाश्च सर्वोत्साहैर्भूमिपालैः समेताः ।
तेषां मध्ये सूर्यमिवातपन्तं श्रिया वृतं चेदिपतिं ज्वलन्तम् ॥ २४ ॥
युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें चेदि और करूषदेशके भूपाल सब प्रकारकी तैयारीसे संगठित होकर आये थे। उन सबके बीचमें चेदिराज शिशुपाल अपनी दिव्य शोभासे तपते हुए सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा था ॥ २४ ॥

अस्तम्भनीयं युधि मन्यमानं ज्याकर्षतां श्रेष्ठतमं पृथिव्याम् ।
सर्वोत्साहं क्षत्रियाणां निहत्य प्रसह्य कृष्णस्तरसा ममर्द ॥ २५ ॥
युद्धमें उसके वेगको रोकना असम्भव था। धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेवाले भूमण्डलके सभी योद्धाओंमें शिशुपाल एक श्रेष्ठतम वीर था। यह सब समझकर भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ चेदिदेशीय क्षत्रियोंके सम्पूर्ण उत्साहको नष्ट करके हठपूर्वक बडे वेगसे शिशुपालको मार डाला ॥ २५ ॥

यशोमानौ वर्धयन्यादवानां पुराभिनच्छिशुपालं समीके ।
यस्य सर्वे वर्धयन्ति स्म मानं करूषराजप्रमुखा नरेन्द्राः ॥ २६ ॥
करूषराज आदि सब नरेश जिसका सम्मान बढाते थे, उस शिशुपालको यादवोंके यश और मानकी वृद्धिके उद्देश्यसे श्रीकृष्णने उसे युद्धमें मार डाला ॥ २६ ॥

तमसह्यं केशवं तत्र मत्वा सुग्रीवयुक्तेन रथेन कृष्णम् ।
सम्प्राद्रवंश्चेदिपतिं विहाय सिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा इवान्ये ॥ २७ ॥

सुग्रीव आदि घोडोंसे जुते हुए रथपर आरूढ होनेवाले श्रीकृष्णको असह्य मानकर चेदिराज शिशुपालके सिवा दूसरे भूपाल उसी प्रकार पलायन कर गये, जैसे सिंहको देखते ही जंगलके क्षुद्र पशु भाग जाते हैं ॥ २७ ॥

यस्तं प्रतीपस्तरसा प्रत्युदीयादाशंसमानो द्वैरथे वासुदेवम् ।
सोऽशेत कृष्णेन हतः परासुर्वातेनेवोन्मथितः कर्णिकारः ॥ २८ ॥

जिसने द्वैरथयुद्धमें विजयकी आशा रखकर भगवान् श्रीकृष्णका विरोधी हो बडे वेगसे उन पर धावा किया, वह शिशुपाल श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर प्राणशून्य हो सदाके लिये इस प्रकार धरतीपर सो गया, मानो कनेरका वृक्ष हवाके वेगसे उखडकर धराशायी हो गया हो ॥ २८ ॥

पराक्रमं मे यदवेदयन्त तेषामर्थे संजय केशवस्य ।
अनुस्मरंस्तस्य कर्माणि विष्णोर्गावल्गणे नाधिगच्छामि शान्तिम् ॥ २९ ॥

संजय ! पाण्डवोंके लिये किये हुए श्रीकृष्णके उस पराक्रमका वृत्तान्त मेरे गुप्तचरोंने मुझे बताया था । गावल्गणे ! श्रीहरिके उन वीरोचित कर्मोंको बारंबार याद करके मुझे शान्ति नहीं मिल रही है ॥ २९ ॥

न जातु ताञ्शत्रुरन्यः सहेत येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः ।
प्रवेपते मे हृदयं भयेन श्रुत्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ॥ ३० ॥

जिनके अग्रगामी वृष्णिसिंह भगवान् वासुदेव हैं, उन पाण्डवोंका आक्रमण कभी भी दूसरा कोई शत्रु नहीं सह सकता । श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों एक रथपर एकत्र हो गये हैं, यह सुनकर तो मेरा हृदय भयसे काँप उठता है ॥ ३० ॥

नो चेद्गच्छेत्संगरं मन्दबुद्धिस्ताभ्यां सुतो मे विपरीतचेताः ।
नो चेत्कुरून्संजय निर्दहेतामिन्द्राविष्णू दैत्यसेनां यथैव ।
मतो हि मे शक्रसमो धनंजयः सनातनो वृष्णिवीरश्च विष्णुः ॥ ३१ ॥

संजय ! यदि मेरा मन्दबुद्धि तथा उलटे चित्तवाला पुत्र उन दोनोंसे युद्ध करनेके लिये न जाय, अन्यथा वे दोनों वीर कौरवोंको उसी प्रकार भस्म कर देंगे, जैसे इन्द्र और विष्णु दैत्यसेनाका संहार कर डालते हैं । मुझे तो अर्जुन इन्द्रके समान प्रतीत होते हैं और वृष्णि-वीर श्रीकृष्ण सनातन विष्णु जान पडते हैं ॥ ३१ ॥

×

धर्मारामो ह्रीनिषेधस्तरस्वी कुन्तीपुत्रः पाण्डवोऽजातशत्रुः ।
दुर्योधनेन निकृतो मनस्वी नो चेत्क्रुद्धः प्रदहेद्धार्तराष्ट्रान् ॥ ३२ ॥

कुन्तीनन्दन-पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर धर्माचरणमें ही सुख मानते हैं। वे लज्जाशील और बलशाली हैं। उनके मनमें किसीके प्रति कभी शत्रुभाव नहीं पैदा हुआ है। नहीं तो वे मनस्वी युधिष्ठिर दुर्योधनके द्वारा छल कपटके शिकार होनेपर क्रोध करके मेरे सभी पुत्रोंको जलाकर भस्म कर देते ॥ ३२ ॥

नाहं तथा ह्यर्जुनाद्वासुदेवाद्भीमाद्वापि यमयोर्वा बिभेमि ।
यथा राज्ञः क्रोधदीप्तस्य सूत मन्योरहं भीततरः सदैव ॥ ३३ ॥

संजय ! मैं अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण, भीमसेन तथा नकुल-सहदेवसे भी उतना नहीं डरता, जितना कि क्रोधसे तमतमाये हुए राजा युधिष्ठिरके कोपसे। उनके रोषसे मैं सदा ही अत्यन्त भयभीत रहता हूँ ॥ ३३ ॥

अलं तपोब्रह्मचर्येण युक्तः संकल्पोऽयं मानसस्तस्य सिध्येत् ।
तस्य क्रोधं संजयाहं समीके स्थाने जानन्भृशमस्म्यद्य भीतः ॥ ३४ ॥

क्योंकि वे महान् तपस्वी और ब्रह्मचर्यसे सम्पन्न हैं, इसलिये उनके मनमें जो संकल्प होगा, वह सिद्ध होकर ही रहेगा। संजय ! मैं युद्धमें उनके क्रोधको देखकर और उसे उचित जानकर आज बहुत डरा हुआ हूँ ॥ ३४ ॥

स गच्छ शीघ्रं प्रहितो रथेन पाञ्चालराजस्य चमूं परेत्य ।
अजातशत्रुं कुशलं स्म पृच्छेः पुनः पुनः प्रीतियुक्तं वदेस्त्वम् ॥ ३५ ॥

मेरे द्वारा भेजे हुए तुम रथपर बैठकर शीघ्र ही पाञ्चालराज द्रुपदकी छावनीमें जाकर वहाँ अत्यन्त प्रेमपूर्वक अजातशत्रु युधिष्ठिरसे वार्तालाप करना और बारंबार उनका कुशल-मङ्गल पूछना ॥ ३५ ॥

जनार्दनं चापि समेत्य तात महामात्रं वीर्यवतामुदारम् ।
अनामयं मद्वचनेन पृच्छेर्धृतराष्ट्रः पाण्डवैः शान्तिमीप्सुः ॥ ३६ ॥

तात ! तुम बलवानोंमें श्रेष्ठ महाभाग भगवान् श्रीकृष्णसे भी मिलकर मेरी ओरसे उनका कुशल-समाचार पूछना और यह बताना कि धृतराष्ट्र पाण्डवोंके साथ शान्तिपूर्ण बर्ताव चाहते हैं ॥ ३६ ॥

न तस्य किंचिद्वचनं न कुर्यात्कुन्तीपुत्रो वासुदेवस्य सूत ।
प्रियश्चैषामात्मसमश्च कृष्णो विद्वांश्चैषां कर्मणि नित्ययुक्तः ॥ ३७ ॥

सूत ! कुन्तीकुमार युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णकी कोई भी बात टाल नहीं सकते। क्योंकि श्रीकृष्ण इनको आत्माके समान प्रिय हैं। श्रीकृष्ण विद्वान् हैं और सदा पाण्डवोंके हितके कार्यमें लगे रहते हैं ॥ ३७ ॥

समानीय पाण्डवान्सृञ्जयांश्च जनार्दनं युयुधानं विराटम् ।
अनामयं मद्वचनेन पृच्छेः सर्वांस्तथा द्रौपदेयांश्च पञ्च ॥ ३८ ॥

संजय ! तुम वहाँ एकत्र हुए पाण्डवों तथा सृञ्जयवंशी क्षत्रियोंसे और श्रीकृष्ण, सात्यकि, राजा विराट एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंसे भी मेरी ओरसे स्वास्थ्यका समाचार पूछना ॥ ३८ ॥

यद्यत्तत्र प्राप्तकालं परेभ्यस्त्वं मन्येथा भारतानां हितं च ।
तत्तद्भाषेथाः संजय राजमध्ये न मूर्च्छयेद्यन्न भवेच्च युद्धम् ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ६१४ ॥

इसके सिवा जैसा अवसर हो और जिसमें तुम्हें भरतवंशियोंका हित प्रतीत हो, वैसी बातें पाण्डवपक्षके लोगोंसे कहना । राजाओंके बीचमें ऐसा कोई वचन न कहना, जो उनके क्रोधको बढावे तथा युद्धका कारण बने ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ ६१४ ॥

: २३ :

वैशम्पायन उवाच

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्य संजयः ।
उपप्लव्यं ययौ द्रष्टुं पाण्डवानमितौजसः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रकी बात सुनकर संजय अमित तेजस्वी पाण्डवोंसे मिलनेके लिये उपप्लव्य गया ॥ १ ॥

स तु राजानमासाद्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
प्रणिपत्य ततः पूर्वं सूतपुत्रोऽभ्यभाषत ॥ २ ॥

वहाँ पहले धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरके पास जाकर सूतपुत्र संजयने उन्हें प्रणाम किया और उनसे बातचीत प्रारम्भ की ॥ २ ॥

गावल्गणिः संजयः सूतसूनुरजातशत्रुमवदत्प्रतीतः ।
दिष्ट्या राजंस्त्वामरोगं प्रपश्ये सहायवन्तं च महेन्द्रकल्पम् ॥ ३ ॥

गवल्गणनन्दन सूतपुत्र संजयने प्रसन्न होकर अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरसे कहा– 'राजन् ! बडे सौभाग्यकी बात है कि आज मैं देवराज इन्द्रके समान आपको अपने सहायकोंके साथ स्वस्थ एवं सकुशल देख रहा हूँ ॥ ३ ॥

अनामयं पृच्छति त्वाम्बिकेयो वृद्धो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी ।
कच्चिद्भीमः कुशली पाण्डवाग्र्यो धनंजयस्तौ च माद्रीतनूजौ ॥ ४ ॥

वृद्ध एवं बुद्धिमान् अम्बिकानन्दन महाराज धृतराष्ट्रने आपका कुशल समाचार पूछा है। भीमसेन, पाण्डवप्रवर अर्जुन तथा वे दोनों माद्रीकुमार नकुल-सहदेव कुशलसे तो हैं न ? ॥ ४ ॥

कच्चित्कृष्णा द्रौपदी राजपुत्री सत्यव्रता वीरपत्नी सपुत्रा ।
मनस्विनी यत्र च वाञ्छसि त्वमिष्टान्कामान्भारत स्वस्तिकामः ॥ ५ ॥

सत्यव्रतका पालन करनेवाली वीरपत्नी द्रुपदकुमारी राजपुत्री मनस्विनी कृष्णा अपने पुत्रोंसहित कुशलपूर्वक है न ? भारत ! इनके सिवा आप जिन जिनके कल्याणकी इच्छा रखते हैं तथा जिन अभीष्ट भोगोंको बनाये रखना चाहते हैं, वे आत्मीय जन तथा धन-वैभव-वाहन आदि भोगोपकरण सकुशल हैं न ? ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गावल्गणे संजय स्वागतं ते प्रीतात्माहं त्वाभिवदामि सूत ।
अनामयं प्रतिजाने तवाहं सहानुजैः कुशली चास्मि विद्वन् ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर बोले— गवल्गणकुमार संजय ! तुम्हारा स्वागत है । प्रसन्न होकर मैं तुम्हारा अभिवादन करता हूँ । विद्वन् ! मैं अपने भाइयोंसहित कुशलसे हूँ तथा तुम्हें अपने आरोग्यकी सूचना दे रहा हूँ ॥ ६ ॥

चिरादिदं कुशलं भारतस्य श्रुत्वा राज्ञः कुरुवृद्धस्य सूत ।
मन्ये साक्षाद् दृष्टमहं नरेन्द्रं दृष्ट्वैव त्वां संजय प्रीतियोगात् ॥ ७ ॥

सूत ! कुरुकुलके वृद्ध पुरुष भरतनन्दन महाराज धृतराष्ट्रका यह कुशल-समाचार दीर्घकालके बाद सुनकर और प्रेमपूर्वक तुम्हें भी देखकर मैं यह अनुभव करता हूँ कि आज मुझे साक्षात् महाराज धृतराष्ट्रका ही दर्शन हुआ है ॥ ७ ॥

पितामहो नः स्थविरो मनस्वी महाप्राज्ञः सर्वधर्मोपपन्नः ।
स कौरव्यः कुशली तात भीष्मो यथापूर्वं वृत्तिरप्यस्य कच्चित् ॥ ८ ॥

तात ! मनस्वी, परम ज्ञानी तथा समस्त धर्मोंके ज्ञानसे सम्पन्न हमारे बूढे पितामह कुरुवंशी भीष्म तो कुशलसे हैं न ? हमलोगोंपर उनका स्नेहभाव तो पूर्ववत् बना हुआ है न ? ॥ ८ ॥

कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो वैचित्रवीर्यः कुशली महात्मा ।
महाराजो बाह्लिकः प्रातिपेयः कच्चिद्विद्वान्कुशली सूतपुत्र ॥ ९ ॥

संजय ! क्या अपने पुत्रोंसहित विचित्रवीर्यनन्दन महामना राजा धृतराष्ट्र सकुशल हैं ? प्रतीपके विद्वान् पुत्र महाराज बाह्लीक तो कुशलपूर्वक हैं न ? ॥ ९ ॥

स सोमदत्तः कुशली तात कच्चिद् भूरिश्रवाः सत्यसंधः शलश्च ।
द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च विप्रो महेष्वासाः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ॥ १० ॥

तात ! सोमदत्त, भूरिश्रवा, सत्यप्रतिज्ञ शल, पुत्रसहित द्रोणाचार्य और विप्रश्रेष्ठ कृपाचार्य ये महाधनुर्धर वीर स्वस्थ तो हैं न ? ॥ १० ॥

महाप्राज्ञाः सर्वशास्त्रावदाता धनुर्भृतो मुख्यतमाः पृथिव्याम् ।
कच्चिन्मानं तात लभन्त एते धनुर्भृतः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ॥ ११ ॥

संजय ! क्या जो परम बुद्धिमान्, समस्त शास्त्रोंके ज्ञानसे उज्ज्वल तथा भूमण्डलके धनुर्धरोंमें प्रधान हैं, ऐसे धनुर्धारी वीरोंका अच्छी तरह सम्मान तो होता है न और ये सब स्वस्थ तो हैं न? ॥ ११ ॥

सर्वे कुरुभ्यः स्पृहयन्ति संजय धनुर्धरा ये पृथिव्यां युवानः ।
येषांराष्ट्रे निवसति दर्शनीयो महेष्वासः शीलवान्द्रोणपुत्रः ॥ १२ ॥

और जो इस पृथ्वीपर तरुण धनुर्धारी हैं, जो कौरवोंसे प्रेम करते हैं, तात ! जिनके राष्ट्रमें दर्शनीय, शीलवान् तथा महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा निवास करता है, उन कौरवोंके बीच क्या पूर्वोक्त धनुर्धर विद्वान् आदर पाते हैं न ? ॥ १२ ॥

वैश्यापुत्रः कुशली तात कच्चिन्महाप्राज्ञो राजपुत्रो युयुत्सुः ।
कर्णोऽमात्यः कुशली तात कच्चित्सुयोधनो यस्य मन्दो विधेयः ॥ १३ ॥

तात ! क्या राजा धृतराष्ट्रकी वैश्यजातीय पत्नीके पुत्र महाज्ञानी राजकुमार युयुत्सु सकुशल हैं ? संजय ! मूढ दुर्योधन सदा जिसकी आज्ञाके अधीन रहता है, वह मन्त्री कर्ण भी कुशलपूर्वक है न ? ॥ १३ ॥

स्त्रियो वृद्धा भारतानां जनन्यो महानस्यो दासभार्याश्च सूत ।
वध्वः पुत्रा भागिनेया भगिन्यो दौहित्रा वा कच्चिदप्यव्यलीकाः ॥ १४ ॥

सूत ! भरतवंशियोंकी माताएँ, बडी-बूढी स्त्रियाँ, रसोई बनानेवाली सेविकाएँ, दासियाँ, बहुएँ, पुत्र, भानजे, बहिनें और पुत्रियोंके पुत्र ये सभी निष्कपट भावसे रहते हैं न ? ॥ १४ ॥

कच्चिद्राजा ब्राह्मणानां यथावत्प्रवर्तते पूर्ववत्तात वृत्तिम् ।
कच्चिद्दायान्मामकान्धार्तराष्ट्रो द्विजातीनां संजय नोपहन्ति ॥ १५ ॥

तात ! क्या राजा दुर्योधन पहलेकी भाँति ब्राह्मणोंको जीविका देनेमें यथोचित रीतिसे तत्पर रहता है ? संजय ! मैंने ब्राह्मणोंको वृत्तिके रूपमें जो गाँव आदि दिये थे, उन्हें वह छीनता तो नहीं है ? ॥ १५ ॥

कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्र उपेक्षते ब्राह्मणातिक्रमान्वै ।
कच्चिन्न हेतोरिव वर्त्मभूत उपेक्षते तेषु स न्यूनवृत्तिम् ॥ १६ ॥

पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र ब्राह्मणोंके प्रति किये गये अपराधोंकी उपेक्षा तो नहीं करते ? ब्राह्मणोंको जो सदा वृत्ति दी जाती है, वह स्वर्गलोकमें पहुँचनेका मार्ग है; अतः राजा उस वृत्तिकी उपेक्षा या अवहेलना तो नहीं करते हैं ? ॥ १६ ॥

एतज्ज्योतिरुत्तमं जीवलोके शुक्लं प्रजानां विहितं विधात्रा ।
ते चेल्लोभं न नियच्छन्ति मन्दाः कृत्स्नो नाशो भविता कौरवाणाम् ॥१७॥

ब्राह्मणोंको दी हुई जीविकावृत्तिकी रक्षा परलोकको प्रकाशित करनेवाली उत्तम ज्योति है और इस जीव-जगत्में वह उज्ज्वल यशका विस्तार करनेवाली है । यह नियम विधाताने ही प्रजाके हितके लिये रच रखा है । यदि मन्दबुद्धि कौरव लोभवश ब्राह्मणोंकी जीविका-वृत्तिके अपहरणरूप दोषको काबूमें नहीं रक्खेंगे तो कौरवकुलका सर्वथा विनाश हो जायगा ॥ १७ ॥

कच्चिद् राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो बुभूषते वृत्तिममात्यवर्गे ।
कच्चिन्न भेदेन जिजीविषन्ति सुहृद्रूपा दुर्हृदश्चैकमित्राः ॥ १८ ॥

क्या पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र मन्त्रिवर्गको भी जीवन-निर्वाहके योग्य वृत्ति देनेकी इच्छा रखते हैं ? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि वे भेदसे जीविका चलाना चाहते हों (शत्रुओंने उन्हें फोड लिया हो और वे उन्हींके दिये हुए धनसे जीवन निर्वाह करना चाहते हों) । वे सुहृद्के रूपमें रहते हुए भी एकमत होकर शत्रु तो नहीं बन गये हैं ? ॥ १८ ॥

कच्चिन्न पापं कथयन्ति तात ते पाण्डवानां कुरवः सर्व एव ।
कच्चिद् दृष्ट्वा दस्युसङ्घान्समेतान्स्मरन्ति पार्थस्य युधां प्रणेतुः ॥ १९ ॥

तात संजय ! कहीं सब कौरव मिलकर पाण्डवोंके किसी दोषकी चर्चा तो नहीं करते हैं ? क्या राज्यमें लुटेरोंके दलोंको देखकर वे कभी संग्रामविजयी अर्जुनको भी याद करते हैं ? ॥ १९ ॥

मौर्वीभुजाग्रप्रहितान्स्म तात दोधूयमानेन धनुर्धरेण ।
गाण्डीवमुक्तान्स्तनयित्नुघोषानजिह्मगान्कच्चिदनुस्मरन्ति ॥ २० ॥

संजय ! प्रत्यञ्चाको बारंबार हिलाकर और कानोंतक खींचकर अँगुलियोंके अग्रभागसे जिनका संधान किया जाता है तथा जो गाण्डीव धनुषसे छूटकर मेघकी गर्जनाके समान सनसनाते हुए सीधे लक्ष्यतक पहुंच जाते हैं, अर्जुनके उन बाणोंको कौरवलोग बराबर याद करते हैं न ? ॥ २० ॥

न ह्यपश्यं कंचिदहं पृथिव्यां श्रुतं समं वाधिकमर्जुनेन ।
यस्यैकषष्टिर्निशितास्तीक्ष्णधाराः सुवाससः सम्मतो हस्तवापः ॥ २१ ॥

मैंने इस पृथ्वीपर अर्जुनसे बढकर या उनके समान दूसरे किसी योद्धाको नहीं देखा है; क्योंकि जब वे एक बार अपने हाथोंसे धनुषपर शर-संधान करते हैं, तब उससे सुन्दर पंख और पैनी धारवाले इकसठ तीखे बाण प्रकट होते हैं ॥ २१ ॥

गदापाणिर्भीमसेनस्तरस्वी प्रवेपयञ्शत्रुसङ्घाननीके ।
नागः प्रभिन्न इव नड्वलासु चंक्रम्यते कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २२ ॥

जैसे मस्तकसे मदकी धारा बहानेवाला गजराज सरकंडोंसे भरे हुए स्थानोंमें निर्भय विचरता है, उसी प्रकार वेगशाली वीर भीमसेन हाथमें गदा लिये रणभूमिमें शत्रुसमुदायको कम्पित करते हुए विचरण करते हैं । क्या कौरवलोग उन्हें भी कभी याद करते हैं ? ॥ २२ ॥

माद्रीपुत्रः सहदेवः कलिङ्गान्समागतानजयद्दन्तकूरे ।
वामेनास्यन्दक्षिणेनैव यो वै महाबलं कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २३ ॥

जिसमें दांत पीसकर अस्त्र-शस्त्र चलाये जाते हैं, उस भयंकर युद्धमें माद्रीनन्दन सहदेवने दाहिने और बायें हाथसे बाणोंकी वर्षा करके अपना सामना करनेके लिये आये हुए कलिङ्गदेशीय योद्धाओंको परास्त किया था । क्या इस महाबली वीरको भी कौरव कभी याद करते हैं ? ॥ २३ ॥

उद्यन्नयं नकुलः प्रेषितो वै गावल्गणे संजय पश्यतस्ते ।
दिशं प्रतीचीं वशमानयन्मे माद्रीसुतं कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २४ ॥

हे गवल्गणिके पुत्र संजय ! पहले राजसूययज्ञमें तुम्हारे सामने ही इस नकुलको भेजा गया था; परंतु इसने सारी पश्चिम दिशाको जीतकर मेरे अधीन कर दिया । क्या कौरव इस वीर माद्रीकुमारका भी स्मरण करते हैं ? ॥ २४ ॥

अभ्याभवो द्वैतवने य आसीद्दुर्मन्त्रिते घोषयात्रागतानाम् ।
यत्र मन्दाञ्शत्रुवशं प्रयातानमोचयद्भीमसेनो जयश्च ॥ २५ ॥

कर्णकी गलत सलाहके अनुसार घोषयात्रामें गये हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंकी द्वैतवनमें जो पराजय हुई थी, उसमें वे सभी मन्दबुद्धि कौरव शत्रुओंके अधीन हो गये थे । उस समय भीमसेन और अर्जुनने ही उन्हें बन्धनसे मुक्त किया था ॥ २५ ॥

अहं पश्चादर्जुनमभ्यरक्षं माद्रीपुत्रौ भीमसेनश्च चक्रे ।
गाण्डीवभृच्छत्रुसङ्घानुदस्य स्वस्त्यागमत्कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २६ ॥

उस युद्धमें मैंने पीछे रहकर अर्जुनकी रक्षा की थी और भीमसेनने नकुल तथा सहदेवका संरक्षण किया था । गाण्डीवधारी अर्जुनने शत्रुओंके समुदायको मार गिराया था और स्वयं सकुशल लौट आये थे । क्या कौरव कभी उनको याद करते हैं ? ॥ २६ ॥

न कर्मणा साधुनैकेन नूनं कर्तुं शक्यं भवतीह संजय ।
सर्वात्मना परिजेतुं वयं चेन्न शक्नुमो धृतराष्ट्रस्य पुत्रम् ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ ६४१ ॥

संजय ! यदि हम धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको सभी उपायोंसे नहीं जीत सकते तो केवल एक अच्छे व्यवहारसे ही उसे सुखपूर्वक जीतना हमारे लिये निश्चय ही सम्भव नहीं है ॥२७॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ ६४१ ॥

: २४ :

संजय उवाच

यथार्हसे पाण्डव तत्तथैव कुरून्कुरुश्रेष्ठ जनं च पृच्छसि ।
अनामयास्तात मनस्विनस्ते कुरुश्रेष्ठान्पृच्छसि पार्थ यांस्त्वम् ॥ १ ॥

संजय बोले– कुरुश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन ! आपने मुझसे जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल ठीक है। कौरवों तथा अन्य लोगोंके विषयमें आप जो कुछ पूछ रहे हैं, वह बताता हूं, सुनिये । तात ! कुन्तीनन्दन ! आपने जिन श्रेष्ठ कुरुवंशियोंके कुशल–समाचार पूछे हैं, वे सभी मनस्वी पुरुष स्वस्थ और सानन्द हैं ॥ १ ॥

सन्त्येव वृद्धाः साधवो धार्तराष्ट्रे सन्त्येव पापाः पाण्डव तस्य विद्धि ।
दद्याद्रिपोश्चापि हि धार्तराष्ट्रः कुतो दायाँल्लोपयेद्ब्राह्मणानाम् ॥ २ ॥

पाण्डव ! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके पास जैसे बहुतसे पापी रहते हैं, उसी प्रकार उसके यहाँ साधुस्वभाववाले वृद्ध पुरुष भी रहते ही हैं । आप इस बातको सत्य समझें । दुर्योधन तो शत्रुओंको भी धन देता है, फिर वह ब्राह्मणोंकी जीविकाका लोप तो कर ही कैसे सकता है ? ॥ २ ॥

यद् युष्माकं वर्ततेऽसौ न धर्म्यमद्रुग्धेषु द्रुग्धवत्तन्न साधु ।
मित्रध्रुक्स्याद् धृतराष्ट्रः सपुत्रो युष्मान्द्विषन्साधुवृत्तानसाधुः ॥ ३ ॥

आपलोगोंने दुर्योधनके प्रति कभी द्रोहका भाव नहीं रक्खा है, तो भी वह आपके प्रति जो क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता है– द्रोही पुरुषोंके समान ही आचरण करता है, (दुर्योधनके लिये) यह उचित नहीं है। आप जैसे साधुस्वभाव लोगोंसे द्वेष करनेपर तो पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र असाधु और मित्रद्रोही ही समझे जायँगे ॥ ३ ॥

न चानुजानाति भृशं च तप्यते शोचत्यन्तः स्थविरोऽजातशत्रो ।
शृणोति हि ब्राह्मणानां समेत्य मित्रद्रोहः पातकेभ्यो गरीयान् ॥ ४ ॥

अजातशत्रो ! राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंको आपसे द्वेष करनेकी आज्ञा नहीं देते; बल्कि आपके प्रति उनके द्रोहकी बात सुनकर वे मनही मन अत्यन्त संतप्त होते तथा शोक किया करते हैं ! क्योंकि वे अपने यहाँ पधारे हुए ब्राह्मणोंसे मिलकर सदा उनसे यही सुना करते हैं कि मित्रद्रोह सब पापोंसे बढकर है ॥ ४ ॥

स्मरन्ति तुभ्यं नरदेव संगमे युद्धे च जिष्णोश्च युधां प्रणेतुः ।
समुत्क्रुष्टे दुन्दुभिशङ्खशब्दे गदापाणिं भीमसेनं स्मरन्ति ॥ ५ ॥

नरदेव ! कौरवगण युद्धकी चर्चा चलनेपर आपको तथा वीराग्रणी अर्जुनको भी स्मरण करते हैं। युद्धकालमें जब दुन्दुभि और शङ्खकी ध्वनि गूंज उठती है, उस समय उन्हें गदापाणि भीमसेनकी बहुत याद आती है ॥ ५ ॥

माद्रीसुतौ चापि रणाजिमध्ये सर्वा दिशः सम्पतन्तौ स्मरन्ति ।
सेनां वर्षन्तौ शरवर्षैरजस्रं महारथौ समरे दुष्प्रकम्प्यौ ॥ ६ ॥

समराङ्गणमें जिन्हें हराना तो दूरकी बात है, विचलित या कम्पित करना भी अत्यन्त कठिन है, जो शत्रुसेनापर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करते हैं और संग्राममें सम्पूर्ण दिशाओंमें आक्रमण करते हैं, उन महारथी माद्रीकुमार नकुल-सहदेवको भी कौरव सदा याद करते हैं ॥ ६ ॥

न त्वेव मन्ये पुरुषस्य राजन्ननागतं ज्ञायते यद्भविष्यम् ।
त्वं चेदिमं सर्वधर्मोपपन्नः प्राप्तः क्लेशं पाण्डव कृच्छ्ररूपम् ॥ ७ ॥

पाण्डुनन्दन महाराज युधिष्ठिर ! मेरा यह विश्वास है कि मनुष्यका भविष्य जबतक वह सामने नहीं आता, किसीको ज्ञात नहीं होता; क्योंकि आप जैसे सर्वधर्मसम्पन्न पुरुष भी अत्यन्त भयंकर क्लेशमें पड गये ॥ ७ ॥

×

त्वमेवैतत्सर्वमतश्च भूयः समीकुर्याः प्रज्ञयाजातशत्रो ।
न कामार्थं संत्यजेयुर्हि धर्मं पाण्डोः सुताः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ॥ ८ ॥
अजातशत्रो ! संकटमें पड़नेपर भी आप ही अपनी बुद्धिसे विचारकर इस झगडेकी शान्तिके लिये पुनः कोई सरल उपाय ढूँढ निकालिये पाण्डुके सभी पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी हैं । 'वे किसी भी स्वार्थके लिये कभी धर्मका त्याग नहीं करते' ॥ ८ ॥

त्वमेवैतत्प्रज्ञयाजातशत्रो शमं कुर्या येन शर्माप्नुयुस्ते ।
धार्तराष्ट्राः पाण्डवाः सृंजयाश्च ये चाप्यन्ये पार्थिवाः संनिविष्टाः॥ ९ ॥
अतः अजातशत्रो ! आप ही इस समस्याको हल कीजिये, जिससे धृतराष्ट्रके सभी पुत्र, पाण्डव, सृंजयवंशी क्षत्रिय तथा अन्य नरेश, जो आकर सेनाकी छावनीमें टिके हुए हैं, कल्याणके भागी हों ॥ ९ ॥

यन्माब्रवीद् धृतराष्ट्रो निशायामजातशत्रो वचनं पिता ते ।
सहामात्यः सहपुत्रश्च राजन्समेत्य तां वाचमिमां निबोध ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ६५१ ॥

महाराज युधिष्ठिर ! आपके श्रेष्ठ धृतराष्ट्रने रातके समय मुझसे आपलोगोंके लिये जो संदेश कहा था, उसे आप मन्त्रियों और पुत्रोंसहित मेरे इन शब्दोंमें सुनिये ॥ १० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ ६५१ ॥

: २५ :

युधिष्ठिर उवाच

समागताः पाण्डवाः सृंजयाश्च जनार्दनो युयुधानो विराटः ।
यत्ते वाक्यं धृतराष्ट्रानुशिष्टं गावल्गणे ब्रूहि तत्सूतपुत्र ॥ १ ॥
युधिष्ठिर बोले— गवल्गण सूतपुत्र संजय ! यहाँ पाण्डव, सृंजय, भगवान् श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा राजा विराट्—सब एकत्र हुए हैं । राजा धृतराष्ट्रने तुम्हारे द्वारा जो संदेश भेजा है, उसे कहो ॥ १ ॥

संजय उवाच

अजातशत्रुं च वृकोदरं च धनंजयं माद्रवतीसुतौ च ।
आमन्त्रये वासुदेवं च शौरिं युयुधानं चेकितानं विराटम् ॥ २ ॥
संजय बोला— मैं अजातशत्रु युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण, सात्यकि, चेकितान, विराटको आमंत्रित करता हूँ ॥ २ ॥

पाञ्चालानामधिपं चैव वृद्धं धृष्टद्युम्नं पार्षतं याज्ञसेनिम् ।
सर्वे वाचं शृणुतेमां मदीयां वक्ष्यामि यां भूतिमिच्छन्कुरूणाम् ॥ ३ ॥

साथ ही पाञ्चालदेशके बूढे नरेश द्रुपद तथा उनके पुत्र पृषतवंशी धृष्टद्युम्नको भी आमन्त्रित करता हूँ । मैं कौरवोंकी भलाई चाहता हुआ जो कुछ कह रहा हूं, मेरी उस वाणीको आप सब लोग सुनें ॥ ३ ॥

शमं राजा धृतराष्ट्रोऽभिनन्दन्नयोजयत्त्वरमाणो रथं मे ।
सभ्रातृपुत्रस्वजनस्य राज्ञस्तद्रोचतां पाण्डवानां शमोऽस्तु ॥ ४ ॥

राजा धृतराष्ट्र शान्तिका आदर करते हैं (युद्ध नहीं चाहते) । उन्होंने बडी उतावलीके साथ मेरे लिये शीघ्रतापूर्वक रथ तैयार करवाया और मुझे यहां भेजा । मैं चाहता हूँ कि भाई, पुत्र तथा स्वजनोंसहित राजा धृतराष्ट्रका यह शान्तिसंदेश पाण्डवोंको रुचिकर प्रतीत हो और दोनों पक्षोंमें सन्धि स्थापित हो जाये ॥ ४ ॥

सर्वैर्धर्मैः समुपेताः स्थ पार्थाः प्रस्थानेन मार्दवेनार्जवेन ।
जाताः कुले अनृशंसा वदान्या ह्रीनिषेधाः कर्मणां निश्चयज्ञाः ॥ ५ ॥

कुन्तीके पुत्रो ! आपलोग अपने दिव्य शरीर, दयालु एवं कोमल स्वभाव और सरलता आदि गुणों तथा सम्पूर्ण धर्मोंसे युक्त हैं । आप लोगोंका उत्तम कुलमें जन्म हुआ है । आप लोगोंमें क्रूरताका सर्वथा अभाव है । आप लोग उदार, लज्जाशील और कर्मोंके परिणामको जाननेवाले हैं ॥ ५ ॥

न युज्यते कर्म युष्मासु हीनं सत्त्वं हि वस्तादृशं भीमसेनाः ।
उद्भासते ह्यञ्जनबिन्दुवत्तच्छुक्ले वस्त्रे यद्भवेत्किल्बिषं वः ॥ ६ ॥

भयंकर सैन्यसंग्रह करनेवाले पाण्डवो ! आपलोगोंमें ऐसा सत्त्वगुण भरा है कि आपके द्वारा कोई नीच कर्म बन ही नहीं सकता । यदि आपलोगोंमें कोई दोष होता तो वह सफेद वस्त्रमें काले दागकी भांति चमक उठता ॥ ६ ॥

सर्वक्षयो दृश्यते यत्र कृत्स्नः पापोदयो निरयोऽभावसंस्थः ।
कस्तत्कुर्याज्जातु कर्म प्रजानन्पराजयो यत्र समो जयश्च ॥ ७ ॥

जिसमें सबका विनाश दिखायी देता है, जिससे पूर्णतः पापका उदय होता है, जो नरकका हेतु है, जिसके अन्तमें अभाव ही हाथ लगता है और जिसमें जय तथा पराजय दोनों समान हैं, इन सब बातोंको जानते हुए उस युद्ध—जैसे कठोर कर्मके लिये कौन मनुष्य कभी उद्योग करेगा ? ॥ ७ ॥

ते वै धन्या यैः कृतं ज्ञातिकार्यं ये वः पुत्राः सुहृदो बान्धवाश्च ।
उपक्रुष्टं जीवितं संत्यजेयुस्ततः कुरूणां नियतो वै भवः स्यात् ॥ ८ ॥

जिन तुम लोगोंके पुत्र, मित्र और भाईयोंने जाति और कुटुम्बके हितकर कार्योंका साधन किया है, वे धन्य हैं। कौरवोंको चाहिये कि वे निन्दित जीवनका परित्याग कर दें, तभी कौरवकुलका अभ्युदय हो सकेगा ॥ ८ ॥

ते चेत्कुरूननुशास्य स्थ पार्था निनीय सर्वान्द्विषतो निगृह्य ।
समं वस्तज्जीवितं मृत्युना स्याद्यज्जीवध्वं ज्ञातिवधे न साधु ॥ ९ ॥

कुन्तीकुमारो ! यदि आपलोग समस्त कौरवोंको निश्चित रूपसे अपना शत्रु मानकर उन्हें दण्ड देंगे, कैद करेंगे अथवा उनका वध कर डालेंगे तो उस दशामें आपका जो जीवन होगा, वह आपके द्वारा कुटुम्बीजनोंका वध होनेके कारण अच्छा नहीं समझा जायगा। वह निन्दित जीवन तो मृत्युके समान ही होगा ॥ ९ ॥

को ह्येव युष्मान्सह केशवेन सचेकितानान्पार्षतबाहुगुप्तान् ।
ससात्यकीन्विषहेत प्रजेतुं लब्ध्वापि देवान्सचिवान्सहेन्द्रान् ॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण, चेकितान और सात्यकि महाराज द्रुपदके बाहुबलसे सुरक्षित आप लोगोंको ऐसी दशामें इन्द्रसहित समस्त देवताओंको अपने सहायकके रूपमें पाकर भी कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो जीतनेका साहस करेगा ? ॥ १० ॥

को वा कुरून्द्रोणभीष्माभिगुप्तानश्वत्थाम्ना शल्यकृपादिभिश्च ।
रणे प्रसोढुं विषहेत राजन्राधेयगुप्तान्सह भूमिपालैः ॥ ११ ॥

राजन् ! इसी प्रकार द्रोणाचार्य, भीष्म, अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य आदि वीरों तथा अन्य राजाओंसहित कर्णके द्वारा सुरक्षित कौरवोंको युद्धमें सहनेका साहस कौन कर सकता है ? ॥ ११ ॥

महद्बलं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञः को वै शक्तो हन्तुमक्षीयमाणः ।
सोऽहं जये चैव पराजये च निःश्रेयसं नाधिगच्छामि किंचित् ॥ १२ ॥

राजा दुर्योधनके पास विशाल वाहिनी एकत्र हो गयी है। कौन ऐसा वीर है, जो स्वयं क्षीण न होकर उस सेनाका विनाश कर सके ? मैं तो इस युद्धमें किसी भी पक्षकी जय हो या पराजय, कोई कल्याणकी बात नहीं देखता हूँ ॥ १२ ॥

कथं हि नीचा इव दौष्कुलेया निर्धर्मार्थं कर्म कुर्युश्च पार्थाः ।
सोऽहं प्रसाद्य प्रणतो वासुदेवं पाञ्चालानामधिपं चैव वृद्धम् ॥ १३ ॥

भला ! कुन्तीके पुत्र नीच कुलमें उत्पन्न हुए दूसरे अधम मनुष्योंके समान ऐसा (निन्दित) कर्म कैसे कर सकते हैं ? यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण हैं तथा वृद्ध पाञ्चालराज द्रुपद भी उपस्थित हैं। मैं इन सबको प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहता हूँ ॥ १३ ॥

कृताञ्जलिः शरणं वः प्रपद्ये कथं स्वस्ति स्यात्कुरुसृञ्जयानाम् ।
न ह्येव ते वचनं वासुदेवो धनंजयो वा जातु किंचिन्न कुर्यात् ॥ १४ ॥

हाथ जोडकर आपलोगोंकी शरणमें आया हूं । आप स्वयं विचार करें कि कुरु तथा सृंजय-वंशका कल्याण कैसे हो ? मुझे विश्वास है कि भगवान् श्रीकृष्ण अथवा अर्जुन इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक कही हुई मेरी किसी भी बातको ठुकरा नहीं सकते ॥ १४ ॥

प्राणानादौ याच्यमानः कुतोऽन्यदेतद्विद्वन्साधनार्थं ब्रवीमि ।
एतद्राज्ञो भीष्मपुरोगमस्य मतं यद्वः शान्तिरिहोत्तमा स्यात् ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ६६६ ॥

इतना ही नहीं, मेरे माँगनेपर अर्जुन अपने प्राणतक दे सकते हैं फिर दूसरी किसी वस्तुके लिये तो कहना ही क्या है ? विद्वान् राजा युधिष्ठिर ! मैं संधि-कार्यकी सिद्धिके लिये ही यह सब कह रहा हूँ । भीष्म तथा राजा धृतराष्ट्रको भी यही अभिमत है और इसीसे आप सब लोगोंको उत्तम शान्ति प्राप्त हो सकती है ॥ १५ ॥

॥ महाभारतमें उद्योगपर्वमें पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ ६६६ ॥

: २६ :

युधिष्ठिर उवाच

कां नु वाचं संजय मे शृणोषि युद्धैषिणीं येन युद्धाद्बिभेषि ।
अयुद्धं वै तात युद्धाद्गरीयः कस्तल्लब्ध्वा जातु युद्ध्येत सूत ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– संजय ! तुमने मेरी कौनसी ऐसी बात सुनी है, जिससे मेरी युद्धकी इच्छा व्यक्त हुई है, जिसके कारण तुम युद्धसे भयभीत हो रहे हो ? तात ! युद्ध करनेकी अपेक्षा युद्ध न करना ही श्रेष्ठ है । सूत ! युद्ध न करनेका अवसर पाकर भी कौन मनुष्य कभी युद्धमें प्रवृत्त होगा ? ॥ १ ॥

अकुर्वतश्चेत्पुरुषस्य संजय सिद्ध्येत्संकल्पो मनसा यं यमिच्छेत् ।
न कर्म कुर्याद्विदितं ममैतदन्यत्र युद्धाद्बहु यल्लघीयः ॥ २ ॥

संजय ! यदि कर्म न करनेपर पुरुषका संकल्प सिद्ध हो जाता– वह मनसे जिस-जिस वस्तुको चाहता, वह-वह उसे मिल जाती तो कोई भी मनुष्य कर्म नहीं करता, यह बात मुझे अच्छी तरह मालूम है । युद्ध किये बिना यदि थोडा भी लाभ प्राप्त होता हो तो उसे बहुत समझना चाहिये ॥ २ ॥

कुतो युद्धं जातु नरः प्रजानन्को देवशप्तोऽभिवृणीत युद्धम् ।
सुखैषिणः कर्म कुर्वन्ति पार्था धर्मादहीनं यच्च लोकस्य पथ्यम् ॥ ३ ॥

जानता हुआ मनुष्य कभी भी युद्धका विचार क्यों करेगा ? किसे देवताओंने शाप दे रक्खा है, जो जान-बूझकर युद्धका वरण करेगा ? कुन्तीके पुत्र सुखकी इच्छा रखकर वही कर्म करते हैं, जो धर्मके विपरीत न हो तथा जिससे सब लोगोंका भला होता हो ॥ ३ ॥

कर्मोदयं सुखमाशंसमानः कृच्छ्रोपायं तत्त्वतः कर्म दुःखम् ।
सुखप्रेप्सुर्विजिघांसुश्च दुःखं य इन्द्रियाणां प्रीतिवशानुगामी ।
कामाभिध्या स्वशरीरं दुनोति यया प्रयुक्तोऽनुकरोति दुःखम् ॥ ४ ॥

हम लोग वही सुख चाहते हैं, जो कर्मकी प्राप्ति करानेवाला हो । जो इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाले विषय-रसका अनुगामी होता है, वह सुखको पाने और दुःखको नष्ट करनेकी इच्छासे कर्म करता है; परंतु वास्तवमें उसका सारा कर्म दुःखरूप ही है; क्योंकि वह कष्टदायक उपायोंसे ही साध्य है । विषयोंका चिन्तन अपने शरीरको पीडा देता है, जिससे प्रेरित होकर वह कभी दुःखका अनुकरण करता है ॥ ४ ॥

यथेध्यमानस्य समिद्धतेजसो भूयो बलं वर्धते पावकस्य ।
कामार्थलाभेन तथैव भूयो न तृप्यते सर्पिषेवाग्निरिद्धः ।
सम्पश्येमं भोगचयं महान्तं सहास्माभिर्धृतराष्ट्रस्य राज्ञः ॥ ५ ॥

जैसे प्रज्ज्वलित अग्निमें ईंधन डालनेसे उसका बल बहुत अधिक बढ जाता है, उसी प्रकार विषयभोग और धनका लाभ होनेसे मनुष्यकी तृष्णा और अधिक बढ जाती है । घीसे शान्त न होनेवाली प्रज्ज्वलित अग्निकी भाँति मानव कभी विषयभोग और धनसे तृप्त नहीं होता है । हमलोगोंसहित राजा धृतराष्ट्रके पास यह भोगोंकी विशाल राशि संचित हो गयी है । परंतु देखो (इतनेपर भी उनकी तृप्ति नहीं होती) ॥ ५ ॥

नाश्रेयसामीश्वरो विग्रहाणां नाश्रेयसां गीतशब्दं शृणोति ।
नाश्रेयसः सेवते माल्यगन्धान्न चाप्यश्रेयांस्यनुलेपनानि ॥ ६ ॥

जो पुण्यात्मा नहीं है, वह संग्रामोंमें विजयी नहीं होता । जो पुण्यात्मा नहीं है, वह अपना यशोगान नहीं सुनता । जिसने पुण्य नहीं किया है, वह मालाएँ और गन्ध नहीं धारण कर सकता । जो पुण्यात्मा नहीं है, वह चन्दन आदि अवलेपनका भी उपयोग नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

नाश्रेयसः प्रावरानध्यवस्ते कथं त्वस्मान्सम्प्रणुदेत्कुरुभ्यः ।
अत्रैव च स्यादवधूय एष कामः शरीरे हृदयं दुनोति ॥ ७ ॥

जिसने पुण्य नहीं किया है, वह अच्छे कपडे नहीं धारण करता । यदि राजा धृतराष्ट्र पुण्यवान् होते, तो हमलोगोंको कुरुदेशसे दूर कैसे कर देते ? तथापि यह भोगतृष्णा अज्ञानी दुर्योधन आदिके ही योग्य है, जो काम (सभीके) शरीरके भीतर अन्तःकरणको पीडा देता रहता है ॥ ७ ॥

स्वयं राजा विषमस्थः परेषु सामस्थ्यमन्विच्छति तन्न साधु ।
यथात्मनः पश्यति वृत्तमेव तथा परेषामपि सोऽभ्युपैति ॥ ८ ॥

राजा धृतराष्ट्र स्वयं तो विषय-बर्तावमें लगे हुए; हैं; परंतु दूसरोंमें समतापूर्ण बर्ताव देखना चाहते हैं, यह अच्छी बात नहीं है । ये जैसा अपना बर्ताव देखते हैं, वैसा ही दूसरोंका भी देखें ॥ ८ ॥

आसन्नमग्निं तु निदाघकाले गम्भीरकक्षे गहने विसृज्य ।
यथा वृद्धं वायुवशेन शोचेत्क्षेमं मुमुक्षुः शिशिरव्यपाये ॥ ९ ॥

संजय ! जैसे कोई मनुष्य शिशिर ऋतु बीतनेपर ग्रीष्मऋतुकी दोपहरीमें बहुत घास-फूससे भरे हुए गहन वनमें आग लगा दे और जब हवा चलनेसे वह आग सब ओर फैलकर अपने निकट आ जाय, तब उसकी ज्वालासे अपने आपको बचानेके लिये वह कुशल-क्षेमकी इच्छा रखकर बारबार शोक करने लगे ॥ ९ ॥

प्राप्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रोऽद्य राजा लालप्यते संजय कस्य हेतोः ।
प्रगृह्य दुर्बुद्धिमनार्जवे रतं पुत्रं मन्दं मूढममन्त्रिणं तु ॥ १० ॥

उसी प्रकार आज राजा धृतराष्ट्र सारा ऐश्वर्य अपने अधिकारमें करके दुष्ट बुद्धिवाले, उद्दण्ड, भाग्यहीन, मूर्ख और किसी अच्छे मन्त्रीकी सलाहके अनुसार न चलनेवाले अपने पुत्र दुर्योधनका पक्ष लेकर अब किस लिये (दीनकी भाँति) विलाप करते हैं ॥ १० ॥

अनाप्तः सन्नाप्ततमस्य वाचं सुयोधनो विदुरस्यावमन्य ।
सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी सम्बुध्यमानो विशतेऽधर्ममेव ॥ ११ ॥

दुर्योधन स्वयं दुष्ट होने पर भी सज्जनोंमें श्रेष्ठ विदुरके वचनोंका अपमान करता है, उस पर भी अपने पुत्रका हित करनेकी इच्छा करनेवाले धृतराष्ट्र जान बूझकर अधर्मके ही पथका आश्रय ले रहे हैं ॥ ११ ॥

मेधाविनं ह्यर्थकामं कुरूणां बहुश्रुतं वाग्मिनं शीलवन्तम् ।
सूत राजा धृतराष्ट्रः कुरुभ्यो न सोऽस्मरद्विदुरं पुत्रकाम्यात् ॥ १२ ॥

हे सूत ! बुद्धिमान्, कौरवोंके अभीष्टकी सिद्धि चाहनेवाले, बहुश्रुत विद्वान्, उत्तम वक्ता तथा शीलवान् विदुरका भी राजा धृतराष्ट्रने कौरवोंके हितके लिये पुत्रस्नेहकी लालसासे आदर नहीं किया ॥ १२ ॥

मानघ्नस्य आत्मकामस्य चेर्ष्योः संरम्भिणश्चार्थधर्मातिगस्य ।
दुर्भाषिणो मन्युवशानुगस्य कामात्मनो दुर्हृदो भावनस्य ॥ १३ ॥

संजय ! दूसरोंका मान मिटाकर अपना मान चाहनेवाले, ईर्ष्यालु, क्रोधी, अर्थ और धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले, कटुवचन बोलनेवाले, क्रोध और दीनताके वशवर्ती, कामात्मा (भोगासक्त), द्रोहकी भावना रखनेवाले ॥ १३ ॥

अनेयस्याश्रेयसो दीर्घमन्योर्मित्रद्रुहः संजय पापबुद्धेः ।
सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी प्रपश्यमानः प्रजहाद्धर्मकामौ ॥ १४ ॥

शिक्षा देनेके अयोग्य, भाग्यहीन, अधिक क्रोधी, मित्रद्रोही तथा पापबुद्धि पुत्र दुर्योधनका प्रिय चाहनेवाले राजा धृतराष्ट्रने समझते हुए भी धर्म और कामका परित्याग किया है ॥ १४ ॥

तदैव मे संजय दीव्यतोऽभूत्रो चेत्कुरूनागतः स्यादभावः ।
काव्यां वाचं विदुरो भाषमाणो न विन्दते धृतराष्ट्रात्प्रशंसाम् ॥ १५ ॥

संजय ! जिस समय मैं जुआ खेल रहा था, उसी समय मुझे यह निश्चय हो गया था कि अब कौरवोंका विनाश काल समीप आ गया है, क्योंकि विदुर शुक्रनीतिके अनुसार युक्तियुक्त वचन कह रहे थे, तो भी दुर्योधनकी ओरसे उन्हें प्रशंसा नहीं प्राप्त हुई ॥ १५ ॥

क्षत्तुर्यदा अन्ववर्तन्त बुद्धिं कृच्छ्रं कुरून न तदाभ्याजगाम ।
यावत्प्रज्ञामन्ववर्तन्त तस्य तावत्तेषां राष्ट्रवृद्धिर्बभूव ॥ १६ ॥

सूत ! जबतक कौरव विदुरकी बुद्धिके अनुसार बर्ताव करते और चलते थे, तबतक उनके ऊपर कोई संकट नहीं आया, और जबतक वे विदुरकी बुद्धिके अनुसार चलते रहे, तब तक उनके राष्ट्रकी वृद्धि होती रही ॥ १६ ॥

तदर्थलुब्धस्य निबोध मेऽद्य ये मन्त्रिणो धार्तराष्ट्रस्य सूत ।
दुःशासनः शकुनिः सूतपुत्रो गावल्गणे पश्य सम्मोहमस्य ॥ १७ ॥

गवल्गणपुत्र संजय ! धनके लोभी दुर्योधनके जो जो मन्त्री हैं, उनके नाम आज तुम मुझसे सुन लो । दुःशासन, शकुनि तथा सूतपुत्र कर्ण ये ही उसके मन्त्री हैं । उसका मोह तो देखो ॥ १७ ॥

सोऽहं न पश्यामि परीक्षमाणः कथं स्वस्ति स्यात्कुरुसृंजयानाम्।
आत्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रः परेभ्यः प्रव्राजिते विदुरे दीर्घदृष्टौ ॥ १८ ॥
अपने शत्रु हमसे राज्यको छीन कर धृतराष्ट्रके द्वारा दूरदर्शी विदुरके निर्वासित कर देनेके कारण मैं बहुत सोचने विचारनेपर भी कोई ऐसा उपाय नहीं देखता, जिससे कुरु तथा सृंजयवंश दोनोंका कल्याण हो ॥ १८ ॥

आशंसते वै धृतराष्ट्रः सपुत्रो महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम्।
तस्मिञ्छमः केवलं नोपलभ्यो अत्यासन्नं मद्गतं मन्यतेऽर्थम् ॥ १९ ॥
धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंसहित भूमण्डलका निष्कण्टक साम्राज्य प्राप्त करनेकी आशा लगाये बैठे हैं। ऐसे लोभी नरेशके साथ हमेशा शान्ति नहीं बनी रह सकती, क्योंकि हमलोगोंके वन चले जानेपर वे हमारे सारे धनको अपना ही मानने लगे हैं ॥ १९ ॥

यत्तत्कर्णो मन्यते पारणीयं युद्धे गृहीतायुधमर्जुनेन।
आसंश्च युद्धानि पुरा महान्ति कथं कर्णो नाभवद्द्वीप एषाम् ॥ २० ॥
कर्ण जो ऐसा समझता है कि युद्धमें धनुष उठाये हुए अर्जुनको जीत लेना सहज है, वह उसकी भूल है। पहले भी तो बडे बडे युद्ध हो चुके हैं। उनमें कर्ण इन कौरवोंका आश्रय-दाता क्यों न हो सका? ॥ २० ॥

कर्णश्च जानाति सुयोधनश्च द्रोणश्च जानाति पितामहश्च।
अन्ये च ये कुरवस्तत्र सन्ति यथार्जुनान्नास्त्यपरो धनुर्धरः ॥ २१ ॥
अर्जुनसे बढकर दूसरा कोई धनुर्धर नहीं है इस बातको कर्ण जानता है, दुर्योधन जानता है, आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म जानते हैं तथा अन्य जो जो कौरव वहाँ रहते हैं, वे सभी जानते हैं ॥ २१ ॥

जानन्त्येते कुरवः सर्व एव ये चाप्यन्ये भूमिपालाः समेताः।
दुर्योधनं चापराधे चरन्तमरिंदमे फल्गुनेऽविद्यमाने ॥ २२ ॥
शत्रुदमन करनेवाले अर्जुनके उपस्थित न रहने पर अपराध करनेवाले दुर्योधनके बारेमें ये सभी कौरव तथा वहां इकट्ठे हुए हुए दूसरे राजा गण भी सभी कुछ जानते हैं ॥ २२ ॥

तेनार्थबद्धं मन्यते धार्तराष्ट्रः शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वम्।
किरीटिना तालमात्रायुधेन तद्वेदिना संयुगं तत्र गत्वा ॥ २३ ॥
राज्य आदिपर जो पाण्डवोंका ममत्व है, उसे हर लेना क्या दुर्योधन सरल समझता है? इसके लिये उसे उन किरीटधारी अर्जुनके साथ युद्धभूमिमें उतरना पडेगा, जो चार हाथ लंबा धनुष धारण करते और धनुर्वेदके प्रकाण्ड विद्वान् हैं ॥ २३ ॥

×

धर्मं कृत्वा कर्मणां तात मुख्यं महाप्रतापः सवितेव भाति ।
हानेन धर्मस्य महीमपीमां लब्ध्वा नरः सीदति पापबुद्धिः ॥ ६ ॥

तात ! कर्मोंमें धर्मको प्रधान मानकर तदनुसार चलनेवाला पुरुष महाप्रतापी होकर सूर्यकी भाँति चमक उठता है; परंतु धर्मसे हीन दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य इस सारी पृथ्वीको पाकर भी कष्ट ही भोगता रहता है ॥ ६ ॥

वेदोऽधीतश्चरितं ब्रह्मचर्यं यज्ञैरिष्टं ब्राह्मणेभ्यश्च दत्तम् ।
परं स्थानं मन्यमानेन भूय आत्मा दत्तो वर्षपूगं सुखेभ्यः ॥ ७ ॥

आपने परलोकपर विश्वास करके वेदोंका अध्ययन, ब्रह्मचर्यका पालन एवं यज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा ब्राह्मणोंको दान दिया है और अनन्त वर्षोंतक वहाँके सुख भोगनेके लिये अपने-आपको भी समर्पित कर दिया है ॥ ७ ॥

सुखप्रिये सेवमानोऽतिवेलं योगाभ्यासे यो न करोति कर्म ।
वित्तक्षये हीनसुखोऽतिवेलं दुःखं शेते कामवेगप्रणुन्नः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य भोग तथा प्रियका निरन्तर सेवन करते हुए योगाभ्यासोपयोगी कर्मका सेवन नहीं करता, वह धनका क्षय हो जानेपर सुखसे वञ्चित हो कामवेगसे अत्यन्त विक्षुब्ध होकर सदा दुःखशय्यापर शयन करता रहता है ॥ ८ ॥

एवं पुनरर्थचर्याप्रसक्तो हित्वा धर्मं यः प्रकरोत्यधर्मम् ।
अश्रद्दधत्परलोकाय मूढो हित्वा देहं तप्यते प्रेत्य मन्दः ॥ ९ ॥

जो धन प्राप्त करनेमें आसक्त होकर धर्मका त्याग करके अधर्मका आचरण करता है तथा जो मूढ परलोकपर विश्वास नहीं रखता है, वह मन्दभाग्य मानव शरीर त्यागनेके पश्चात् परलोकमें बडा कष्ट पाता है ॥ ९ ॥

न कर्मणां विप्रणाशोऽस्त्यमुत्र पुण्यानां वाप्यथ वा पापकानाम् ।
पूर्वं कर्तुर्गच्छति पुण्यपापं पश्चात्त्वेतदनुयात्येव कर्ता ॥ १० ॥

पुण्य अथवा पाप किन्हीं भी कर्मोंका परलोकमें नाश नहीं होता है । पहले कर्ताके पुण्य और पाप परलोकमें जाते हैं, फिर उन्हींके पीछे-पीछे कर्ता जाता है ॥ १० ॥

न्यायोपेतं ब्राह्मणेभ्यो यदन्नं श्रद्धापूतं गन्धरसोपपन्नम् ।
अन्वाहार्येषूत्तमदक्षिणेषु तथारूपं कर्म विख्यायते ते ॥ ११ ॥

लोकमें आपके कर्म इस रूपमें विख्यात हैं कि आपने उत्तम दक्षिणायुक्त वृद्धिश्राद्ध आदिके अवसरोंपर ब्राह्मणोंको न्यायोपार्जित प्रचुर धन एवं श्रद्धासहित उत्तम गन्धयुक्त, सुस्वादु एवं पवित्र अन्नका दान किया है ॥ ११ ॥

इह क्षेत्रे क्रियते पार्थ कार्यं न वै किंचिद्विद्यते प्रेत्य कार्यम्।
कृतं त्वया पारलोक्यं च कार्यं पुण्यं महत्सद्भिरनुप्रशस्तम् ॥ १२ ॥
कुन्तीनन्दन! इस शरीरके रहते हुए ही कोई भी सत्कर्म किया जा सकता है। मरनेके बाद कोई कार्य नहीं किया जा सकता। आपने तो परलोकमें सुख देनेवाला तथा पुरुषोंके द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसित कार्य किया है ॥ १२ ॥

जहाति मृत्युं च जरां भयं च न क्षुत्पिपासे मनसश्चाप्रियाणि।
न कर्तव्यं विद्यते तत्र किंचिदन्यत्र वै इन्द्रियप्रीणनार्थात् ॥ १३ ॥
(पुण्यात्मा) मनुष्य मृत्यु, बुढापा तथा भय त्याग देता है। वहां उसे मनके प्रतिकूल भूख-प्यासका कष्ट भी नहीं सहन करना पडता है। परलोकमें इन्द्रियोंको सुख पहुंचानेके सिवा दूसरा कोई कर्तव्य नहीं रह जाता है ॥ १३ ॥

एवंरूपं कर्मफलं नरेन्द्र मात्रावता हृदयस्य प्रियेण।
स क्रोधजं पाण्डव हर्षजं च लोकावुभौ मा प्रहासीश्चिराय ॥ १४ ॥
नरेन्द्र! इस प्रकार क्रोधको उत्पन्न करनेवाले, हृदयको प्रिय लगनेवाले विषयसे तथा हर्षको उत्पन्न करनेवाले कर्मफलकी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये। पाण्डुनन्दन और इस प्रकार युद्धरूप पाप करके यह लोक और परलोक दोनों ही लोकोंको सदाके लिए न त्यागें ॥ १४ ॥

अन्तं गत्वा कर्मणां या प्रशंसा सत्यं दमश्चार्जवमानृशंस्यम्।
अश्वमेधो राजसूयस्तथेष्टः पापस्यान्तं कर्मणो मा पुनर्गाः ॥ १५ ॥
इस तरह (ज्ञानाग्निके द्वारा) कर्मोंको दग्ध करके सत्य, दम, आर्जव (सरलता) तथा अनृशंसता (दया) इन सद्गुणोंका कभी त्याग न करें। अश्वमेध, राजसूय और अन्य यज्ञोंको भी न छोडें, तथा युद्ध- जैसे पापकर्मके निकट फिर कभी न जायँ ॥ १५ ॥

तच्चेदेवं देशरूपेण पार्थाः करिष्यध्वं कर्म पापं चिराय।
निवसध्वं वर्षपूगान्वनेषु दुःखं वासं पाण्डवा धर्महेतोः ॥ १६ ॥
कुन्तीकुमारो! यदि आप लोगोंको राज्यके लिये चिरस्थायी विद्वेषके रूपमें युद्धरूप पापकर्म ही करना है, तब तो मैं यही कहूँगा कि आप बहुत धर्मके कारण बहुत वर्षोंतक दुःखमय वनवासका ही कष्ट भोगते रहें ॥ १६ ॥

अप्रव्रज्ये योजयित्वा पुरस्तादात्माधीनं यद्बलं ते तदासीत्।
नित्यं पाञ्चालाः सचिवास्तवेमे जनार्दनो युयुधानश्च वीरः ॥ १७ ॥
पहले भी द्यूतक्रीडाके समय जो सेना तुम्हारे अधीन थी, उसका उपयोग करके तुम वन न जाना चाहते तो न जाते, ये भगवान् श्रीकृष्ण तथा वीरवर सात्यकि तथा पांचाल सदासे ही आप लोगोंके (प्रेमके कारण) वशीभूत एवं आपके सहायक रहे हैं ॥ १७ ॥

मत्स्यो राजा रुक्मरथः सपुत्रः प्रहारिभिः सह पुत्रैर्विराटः ।
राजानश्च ये विजिताः पुरस्तात्त्वामेव ते संश्रयेयुः समस्ताः ॥ १८ ॥

प्रहार करनेमें कुशल वीर सैनिकों तथा पुत्रोंके साथ सुवर्णमय रथसे सुशोभित मत्स्यदेशके राजा विराट तथा दूसरे भी बहुत-से नरेश, जिन्हें पहले आप लोगोंने युद्धमें जीता था, वे सब-के-सब संग्राममें आपका ही पक्ष लेते ॥ १८ ॥

महासहायः प्रतपन्बलस्थः पुरस्कृतो वासुदेवार्जुनाभ्याम् ।
वरान्हनिष्यन्द्विषतो रङ्गमध्ये व्यनेष्यथा धार्तराष्ट्रस्य दर्पम् ॥ १९ ॥

उस समय आप महान् सहायकोंसे सम्पन्न और बलशाली थे, आप श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके आगे-आगे चलकर शत्रुओंपर आक्रमण कर सकते थे। समराङ्गणमें अपने महान् शत्रुओंका संहार करते हुए आप दुर्योधनके घमंडको चूर-चूर कर सकते थे ॥ १९ ॥

बलं कस्माद्वर्धयित्वा परस्य निजान्कस्मात्कर्षयित्वा सहायान् ।
निरुष्य कस्माद्वर्षपूगान्वनेषु युयुत्ससे पाण्डव हीनकालम् ॥ २० ॥

पाण्डुनन्दन ! फिर क्या कारण है कि आपने शत्रुकी शक्तिको बढनेका अवसर दिया किसलिये अपने सहायकोंको दुर्बल बनाया और क्यों बारह वर्षोंतक वनमें निवास किया ? फिर आज जब वह अनुकूल अवसर बीत चुका है, आपको युद्ध करनेकी इच्छा क्यों हुई है ? ॥२०॥

अप्रज्ञो वा पाण्डव युध्यमानोऽधर्मज्ञो वा भूतिपथाद्व्यपैति ।
प्रज्ञावान्वा बुध्यमानोऽपि धर्मं संरम्भाद्वा सोऽपि भूतेरपैति ॥ २१ ॥

पाण्डुकुमार ! अज्ञानी अथवा पापी मनुष्य भी युद्ध करके सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है और बुद्धिमान् अथवा धर्मज्ञ पुरुष भी क्रोधके कारण ऐश्वर्यसे हाथ धो बैठता है ॥ २१ ॥

नाधर्मे ते धीयते पार्थ बुद्धिर्न संरम्भात्कर्म चकर्थ पापम् ।
अद्धा किं तत्कारणं यस्य हेतोः प्रज्ञाविरुद्धं कर्म चिकीर्षसीदम् ॥ २२ ॥

कुन्तीनन्दन ! आपकी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं लगती तथा आपने क्रोधमें आकर भी कभी पाप कर्म नहीं किया है, तो बताइये, कौन-सा ऐसा (प्रबल) कारण है, जिसके लिये अब आप अपनी बुद्धिके विरुद्ध यह युद्ध– जैसा पापकर्म करना चाहते हैं ? ॥२२॥

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगं यशोमुषं पापफलोदयं च ।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥ २३ ॥

महाराज ! जो बिना व्याधिके ही उत्पन्न होता है, स्वादमें कड़ुआ है, जिसके कारण सिरमें दर्द होने लगता है, जो यशका नाशक और पापरूप फलको प्रकट करनेवाला है, जो सज्जन पुरुषोंके ही पीने योग्य है, जिसे असाधु पुरुष नहीं पीते हैं, उस क्रोधको आप पी लीजिये और शान्त हो जाइये ॥ २३ ॥

पापानुबन्धं को नु तं कामयेत क्षमैव ते ज्यायसी नोत भोगाः ।
यत्र भीष्मः शान्तनवो हतः स्याद्यत्र द्रोणः सहपुत्रो हतः स्यात् ॥ २४ ॥

जो पापकी जड है, उस क्रोधकी इच्छा कौन करेगा ? आपकी दृष्टिमें तो क्षमा ही सबसे श्रेष्ठ वस्तु है, वे भोग नहीं, जिनके लिये शान्तनुनन्दन भीष्म मारे जायें तथा पुत्रसहित आचार्य द्रोणकी भी हत्या की जाये ॥ २४ ॥

कृपः शल्यः सौमदत्तिर्विकर्णो विविंशतिः कर्णदुर्योधनौ च ।
एतान्हत्वा कीदृशं तत्सुखं स्याद्यद्विन्देथास्तदनुब्रूहि पार्थ ॥ २५ ॥

कुन्तीनन्दन ! हमें बताइए कि आप कृपाचार्य, शल्य, भूरिश्रवा, विकर्ण, विविंशति, कर्ण तथा दुर्योधन इन सबका वध करके आपको कौनसा सुख होगा जिसे आप पाना चाहते है ॥२५॥

लब्ध्वापीमां पृथिवीं सागरान्तां जरामृत्यू नैव हि त्वं प्रजह्याः ।
प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजन्नेवं विद्वान्नैव युद्धं कुरुष्व ॥ २६ ॥

राजन् ! समुद्रपर्यन्त इस सारी पृथ्वीको पाकर भी आप जरा-मृत्यु, प्रिय-अप्रिय तथा सुखदुःखसे पिण्ड नहीं छुडा सकते । आप इन सब बातोंको अच्छी तरह जानते हैं, अतः, मेरी प्रार्थना है कि आप युद्ध न करें ॥ २६ ॥

अमात्यानां यदि कामस्य हेतोरेवंयुक्तं कर्म चिकीर्षसि त्वम् ।
अपाक्रमेः संप्रदाय स्वमेभ्यो मा गास्त्वं वै देवयानात्पथोऽद्य ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ७२१ ॥

यदि आप अपने मन्त्रियोंकी इच्छासे ही ऐसा पापमय युद्ध करना चाहते हैं तो अपना सर्वस्व उन मन्त्रियोंको ही देकर वानप्रस्थ ग्रहण कर लीजिये; परंतु अपने कुटुम्बका वध करके देवयानमार्गसे भ्रष्ट न होइये ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ ७२१ ॥

: २८ :

युधिष्ठिर उवाच

असंशयं संजय सत्यमेतद्धर्मो वरः कर्मणां यत्त्वमात्थ ।
ज्ञात्वा तु मां संजय गर्हयेस्त्वं यदि धर्मं यद्यधर्मं चरामि ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– संजय ! सब प्रकारके कर्मोंमें धर्म ही श्रेष्ठ है । यह जो तुमने कहा है, वह बिलकुल ठीक है । इसमें रत्तीभर भी संदेह नहीं है; परंतु मैं धर्म कर रहा हूँ या अधर्म, इस बातको पहले अच्छी तरह जान लो; फिर मेरी निन्दा करना ॥ १ ॥

यत्राधर्मो धर्मरूपाणि बिभ्रद्धर्मः कृत्स्नो दृश्यतेऽधर्मरूपः।
तथा धर्मो धारयन्धर्मरूपं विद्वांसस्तं सम्प्रपश्यन्ति बुद्ध्या ॥ २ ॥

कहीं तो अधर्म ही धर्मका रूप धारण कर लेता है, कहीं पूर्णतया धर्म ही अधर्म दिखायी देता है तथा कहीं धर्म अपने वास्तविक स्वरूपको ही धारण किये रहता है। विद्वान् पुरुष अपनी बुद्धिसे विचार करके उसके असली रूपको देख और समझ लेते हैं ॥ २ ॥

एवमेतावापदि लिङ्गमेतद्धर्माधर्मौ वृत्तिनित्यौ भजेताम्।
आद्यं लिङ्गं यस्य तस्य प्रमाणमापद्धर्मं संजय तं निबोध ॥ ३ ॥

इस प्रकार जो यह विभिन्न वर्णोंका अपना-अपना लक्षण (लिङ्ग) (जैसे ब्राह्मणके लिये अध्ययनाध्यापन आदि, क्षत्रियके लिये शौर्य आदि तथा वैश्यके लिये कृषि आदि) है, वह ठीक उसी प्रकार उस-उस वर्णके लिये धर्मरूप है और वही दूसरे वर्णके लिये अधर्मरूप है। इस प्रकार यद्यपि धर्म और अधर्म सदा सुनिश्चितरूपसे रहते हैं तथापि आपत्तिकालमें वे दूसरे वर्णके लक्षणको भी अपना लेते हैं। प्रथम वर्ण ब्राह्मणका जो विशेष लक्षण (याजन और अध्यापन आदि) है, वह उसीके लिये प्रमाणभूत है (क्षत्रिय आदिको आपत्तिकालमें भी याजन और अध्यापन आदिका आश्रय नहीं लेना चाहिये)। संजय! आपद्धर्मका क्या स्वरूप है, उसे तुम (शास्त्रके वचनोंद्वारा) जानो ॥ ३ ॥

लुप्तायां तु प्रकृतौ येन कर्म निष्पादयेत्तत्परीप्सेद्विहीनः।
प्रकृतिस्थश्चापदि वर्तमान उभौ गर्ह्यौ भवतः संजयैतौ ॥ ४ ॥

प्रकृति (जीविकाके साधन) का सर्वथा लोप हो जानेपर जिस वृत्तिका आश्रय लेनेसे (जीवनकी रक्षा एवं) सत्कर्मोंका अनुष्ठान हो सके, जीविकाहीन पुरुष उसे अवश्य अपनानेकी इच्छा करे। संजय! जो प्रकृतिस्थ (स्वाभाविक स्थितिमें स्थित) होकर भी आपद्धर्मका आश्रय लेता है, वह (अपनी लोभवृत्तिके कारण) निन्दनीय होता है तथा जो आपत्तिग्रस्त होनेपर भी (उस समयके अनुरूप शास्त्रोक्त साधनको अपनाकर) जीविका नहीं चलाता है, वह (जीवन और कुटुम्बकी रक्षा न करनेके कारण) गर्हणीय होता है। इस प्रकार ये दोनों तरहके लोग निन्दाके पात्र होते हैं ॥ ४ ॥

अविलोपमिच्छतां ब्राह्मणानां प्रायश्चित्तं विहितं यद्विधात्रा।
आपद्यथाकर्मसु वर्तमानान्विकर्मस्थान्संजय गर्हयेत ॥ ५ ॥

सूत! (जीविकाका मुख्य साधन न होनेपर) ब्राह्मणोंका नाश न हो जाय, ऐसी इच्छा रखनेवाले विधाताने जो (उनके लिये अन्य वर्णोंकी वृत्तिसे जीविका चलाकर अन्तमें) प्रायश्चित्त करनेका विधान किया है, उसपर दृष्टिपात करो। फिर यदि हम आपत्तिकालमें भी (स्वाभाविक) कर्मोंमें ही लगे हों और आपत्तिकाल न होनेपर भी अपने वर्णके विपरीत कर्मोंमें स्थित हो रहे हों तो उस दशामें हमें देखकर तुम (अवश्य) हमारी निन्दा करो ॥ ५ ॥

मनीषिणां तत्त्वविच्छेदनाय विधीयते सत्सु वृत्तिः सदैव ।
अब्राह्मणाः सन्ति तु ये न वैद्याः सर्वोच्छेदं साधु मन्येत तेभ्यः ॥ ६ ॥

मनीषी पुरुषोंको सत्त्व आदिके बन्धनसे मुक्त होनेके लिये सदा ही सत्पुरुषोंका आश्रय लेकर जीवन-निर्वाह करना चाहिये, यह उनके लिये शास्त्रीय विधान है। परंतु जो ब्राह्मण नहीं हैं तथा जिनकी ब्रह्मविद्यामें निष्ठा नहीं है, उन सबके लिये सबके समीप अपने धर्मके अनुसार ही जीविका चलानी चाहिये ॥ ६ ॥

तदर्था नः पितरो ये च पूर्वे पितामहा ये च तेभ्यः परेऽन्ये ।
प्रज्ञैषिणो ये च हि कर्म चक्रुर्नास्त्यन्ततो नास्ति नास्तीति मन्ये ॥ ७ ॥

प्रज्ञाकी इच्छा रखनेवाले मेरे पूर्व पिता-पितामह आदि तथा उनके भी पूर्वज उसी अर्थपर चलते रहे (जिसकी मैंने ऊपर चर्चा की है) तथा जो कर्म करते हैं, वे भी उसी मार्गसे चलते आये हैं। मैं भी नास्तिक नहीं हूँ, इसलिये उसी मार्गपर चलता हूं; उसके सिवा दूसरे मार्गपर विश्वास नहीं रखता हूँ ॥ ७ ॥

यत्किंचिदेतद्वित्तमस्यां पृथिव्यां यद्देवानां त्रिदशानां परत्र ।
प्राजापत्यं त्रिदिवं ब्रह्मलोकं नाधर्मतः संजय कामये तत् ॥ ८ ॥

संजय ! इस धरातलपर जो कुछ भी धन-वैभव विद्यमान है, नित्य यौवनसे युक्त रहनेवाले देवताओंके यहाँ जो धनराशि है, उससे भी उत्कृष्ट जो प्रजापतिका धन है तथा जो स्वर्गलोक एवं ब्रह्मलोकका सम्पूर्ण वैभव है, वह सब मिल रहा हो, तो भी मैं उसे अधर्मसे लेना नहीं चाहूँगा ॥ ८ ॥

धर्मेश्वरः कुशलो नीतिमांश्चाप्युपासिता ब्राह्मणानां मनीषी ।
नानाविधांश्चैव महाबलांश्च राजन्यभोजाननुशास्ति कृष्णः ॥ ९ ॥

यहां धर्मके स्वामी, कुशल, नीतिज्ञ, ब्राह्मण-भक्त और मनीषी भगवान् श्रीकृष्ण बैठे हैं, जो नाना प्रकारके महान् बलशाली क्षत्रियों तथा भोजवंशियों पर शासन करते हैं ॥ ९ ॥

यदि ह्यहं विसृजन्स्यामगर्ह्यो युध्यमानो यदि जह्यां स्वधर्मम् ।
महायशाः केशवस्तद्ब्रवीतु वासुदेवस्तूभयोरर्थकामः ॥ १० ॥

यदि मैं सामनीति अथवा संधिका परित्याग करके निन्दाका पात्र होता होऊं या युद्धके लिये उद्यत होकर अपने धर्मका उल्लङ्घन करता होऊं तो ये महायशस्वी वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अपने विचार प्रकट करें; क्योंकि ये दोनों पक्षोंका हित चाहनेवाले हैं ॥ १० ॥

शैनेया हि चैत्रकाश्चान्धकाश्च वार्ष्णेयभोजाः कौकुराः सृञ्जयाश्च ।
उपासीना वासुदेवस्य बुद्धिं निगृह्य शत्रून्सुहृदो नन्दयन्ति ॥ ११ ॥

ये सात्यकि, ये चेदिदेशके लोग, ये अन्धक, वृष्णि, भोज, कुकुर तथा सृंजयवंशके क्षत्रिय इन्हीं भगवान् वासुदेवकी सलाहसे चलकर अपने शत्रुओंको बंदी बनाते और सुहृदोंको आनन्दित करते हैं ॥ ११ ॥

वृष्ण्यन्धका ह्युग्रसेनादयो वै कृष्णप्रणीताः सर्व एवेन्द्रकल्पाः ।
मनस्विनः सत्यपराक्रमाश्च महाबला यादवा भोगवन्तः ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णकी बतायी हुई नीतिके अनुसार बर्ताव करनेसे वृष्णि और अन्धकवंशके सभी उग्रसेन आदि क्षत्रिय इन्द्रके समान शक्तिशाली हो गये हैं तथा सभी यादव मनस्वी, सत्यपराक्रमी महान् बलशाली और भोगसामग्रीसे सम्पन्न हुए हैं ॥ १२ ॥

काश्यो बभ्रुः श्रियमुत्तमां गतो लब्ध्वा कृष्णं भ्रातरमीशितारम् ।
यस्मै कामान्वर्षति वासुदेवो ग्रीष्मात्यये मेघ इव प्रजाभ्यः ॥ १३ ॥

(पौण्ड्रक वासुदेवके छोटे भाई) काशीनरेश बभ्रु श्रीकृष्णको ही शासक बन्धुके रूपमें पाकर उत्तम राज्यलक्ष्मीके अधिकारी हुए हैं । भगवान् श्रीकृष्ण बभ्रुके लिये समस्त मनोवाञ्छित भोगोंकी वर्षा उसी प्रकार करते हैं, जैसे वर्षाकालमें मेघ प्रजाओंके लिये जलकी वृष्टि करता है ॥ १३ ॥

ईदृशोऽयं केशवस्तात भूयो विद्मो ह्येनं कर्मणां निश्चयज्ञम् ।
प्रियश्च नः साधुतमश्च कृष्णो नातिक्रमे वचनं केशवस्य ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ७३५ ॥

तात संजय ! भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे प्रभावशाली इन्हें हम कर्मोंका निश्चय करनेवालेके रूपमें जानते हैं । ये हमारे सबसे बढ़कर प्रिय तथा श्रेष्ठतम पुरुष हैं । मैं इनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ ७३५ ॥

: २९ :

वासुदेव उवाच

अविनाशं संजय पाण्डवानामिच्छाम्यहं भूतिमेषां प्रियं च ।
तथा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सूत सदाशंसे बहुपुत्रस्य वृद्धिम् ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— सूत संजय ! मैं जिस प्रकार पाण्डवोंको विनाशसे बचाना, उनको ऐश्वर्य दिलाना तथा उनका प्रिय करना चाहता हूं, उसी प्रकार अनेक पुत्रोंसे युक्त राजा धृतराष्ट्रका भी अभ्युदय चाहता हूं ॥ १ ॥

कामो हि मे संजय नित्यमेव नान्यद्ब्रूयां तान्प्रति शाम्यतेति ।
राज्ञश्च हि प्रियमेतच्छृणोमि मन्ये चैतत्पाण्डवानां समर्थम् ॥ २ ॥

सूत ! मेरी भी सदा यही अभिलाषा है कि दोनों पक्षोंमें शान्ति बनी रहे । 'कुन्तीकुमारो ! कौरवोंसे संधि करो, उनके प्रति शान्त बने रहो,' इसके सिवा दूसरी कोई बात मैं पाण्डवोंके सामने नहीं कहता हूं । राजा युधिष्ठिरके मुंहसे भी ऐसा ही प्रिय वचन सुनता हूं और स्वयं भी इसीको पाण्डवोंके लिए बलदायक मानता हूं ॥ २ ॥

सुदुष्करश्चात्र शमो हि नूनं प्रदर्शितः संजय पाण्डवेन ।
यस्मिन्गृद्धो धृतराष्ट्रः सपुत्रः कस्मादेषां कलहो नात्र मूर्च्छेत् ॥ ३ ॥

संजय ! पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने जो शान्ति प्रकट की है यह अत्यन्त दुष्कर जान पडता है । पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र जिस राज्यमें आसक्त होकर उसे लेनेकी इच्छा करते हैं, उसके लिये इन कौरव-पाण्डवोंमें कलह कैसे नहीं बढेगा ? ॥ ३ ॥

तत्त्वं धर्मं विचरन्संजयेह मत्तश्च जानासि युधिष्ठिराच्च ।
अथो कस्मात्संजय पाण्डवस्य उत्साहिनः पूरयतः स्वकर्म ।
यथाख्यातमावसतः कुटुम्बं पुराकल्पात्साधु विलोपमात्थ ॥ ४ ॥

संजय ! तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि मुझसे और युधिष्ठिरसे धर्मका लोप नहीं हो सकता, तो भी जो उत्साहपूर्वक स्वधर्मका पालन करते हैं तथा शास्त्रोंमें जैसा बताया गया है, उसके अनुसार ही कुटुम्ब (गृहस्थाश्रम) में रहते हैं, उन्हीं पाण्डुकुमार युधिष्ठिरके धर्मलोपकी चर्चा या आशङ्का तुमने पहले किस आधारपर की है ? ॥ ४ ॥

अस्मिन्विधौ वर्तमाने यथावदुच्चावचा मतयो ब्राह्मणानाम् ।
कर्मणाहुः सिद्धिमेके परत्र हित्वा कर्म विद्यया सिद्धिमेके ।
नाभुञ्जानो भक्ष्यभोज्यस्य तृप्येद्विद्वानपीह विदितं ब्राह्मणानाम् ॥ ५ ॥

गृहस्थाश्रममें रहनेकी जो शास्त्रोक्त विधि है, उसके होते हुए भी इसके ग्रहण अथवा त्यागके विषयमें वेदज्ञ ब्राह्मणोंके भिन्न भिन्न विचार हैं । कोई तो (गृहस्थाश्रममें रहकर) कर्मयोगके द्वारा ही परलोकमें सिद्धि लाभ होनेकी बात बताते हैं, दूसरे लोग कर्मको त्याग-कर ज्ञानसे द्वारा ही सिद्धि (मोक्ष) का प्रतिपादन करते हैं, विद्वान् पुरुष भी इस जगत्में भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका भोजन किये बिना तृप्त नहीं हो सकता, अतएव विद्वान् ब्राह्मणके लिये भी क्षुधानिवृत्तिके लिये भोजन करनेका विधान है ॥ ५ ॥

या वै विद्याः साधयन्तीह कर्म तासां फलं विद्यते नेतरासाम्।
तत्रेह वै दृष्टफलं तु कर्म पीत्वोदकं शाम्यति तृष्णयार्तः ॥ ६ ॥

जो विद्याएँ कर्मका सम्पादन करती हैं, उन्हींका फल दृष्टिगोचर होता है, दूसरी विद्याओंका नहीं। विद्या तथा कर्ममें भी कर्मका ही फल यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता है। प्यासे पीडित मनुष्य जल पीकर ही शान्त होता है (उसे जानकर नहीं; अतः, गृहस्थाश्रममें रहकर सत्कर्म करना ही श्रेष्ठ है) ॥ ६ ॥

सोऽयं विधिर्विहितः कर्मणैव तद्वर्तते संजय तत्र कर्म।
तत्र योऽन्यत्कर्मणः साधु मन्येन्मोघं तस्य लपितं दुर्बलस्य ॥ ७ ॥

संजय! ज्ञानका विधान भी कर्मको साथ लेकर ही है; अतः, ज्ञानमें भी कर्म विद्यमान है। जो कर्मसे भिन्न कर्मोंके त्यागको श्रेष्ठ मानता है, वह दुर्बल है, उसका कथन व्यर्थ ही है ॥ ७ ॥

कर्मणामी भान्ति देवाः परत्र कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा।
अहोरात्रे विदधत्कर्मणैव अतन्द्रितो नित्यमुदेति सूर्यः ॥ ८ ॥

ये देवता कर्मसे ही स्वर्गलोकमें प्रकाशित होते हैं। वायुदेव कर्मको अपनाकर ही सम्पूर्ण जगत्‌में विचरण करते हैं तथा सूर्यदेव आलस्य छोडकर कर्मद्वारा ही दिन-रातका विभाग करते हुए प्रतिदिन उदित होते हैं ॥ ८ ॥

मासार्धमासानथ नक्षत्रयोगानतन्द्रितश्चन्द्रमा अभ्युपैति।
अतन्द्रितो दहते जातवेदाः समिध्यमानः कर्म कुर्वन्प्रजाभ्यः ॥ ९ ॥

चन्द्रमा भी आलस्य त्यागकर (कर्मके द्वारा ही) मास, पक्ष तथा नक्षत्रोंका योग प्राप्त करते हैं; इसी प्रकार जातवेदा (अग्निदेव) भी आलस्यरहित होकर प्रजाके लिये कर्म करते हुए ही प्रज्वलित होकर दाह-क्रिया सम्पन्न करते हैं ॥ ९ ॥

अतन्द्रिता भारमिमं महान्तं बिभर्ति देवी पृथिवी बलेन।
अतन्द्रिताः शीघ्रमपो वहन्ति संतर्पयन्त्यः सर्वभूतानि नद्यः ॥ १० ॥

पृथ्वीदेवी भी आलस्यशून्य हो बलपूर्वक विश्वके इस महान् भारको ढोती हैं। ये नदियाँ भी आलस्य छोडकर सम्पूर्ण प्राणियोंको तृप्त करती हुई शीघ्रतापूर्वक जल बहाया करती हैं ॥ १० ॥

अतन्द्रितो वर्षति भूरितेजाः संनादयन्नन्तरिक्षं दिवं च।
अतन्द्रितो ब्रह्मचर्यं चचार श्रेष्ठत्वमिच्छन्बलभिद्देवतानाम् ॥ ११ ॥

जिन्होंने देवताओंमें श्रेष्ठ स्थान पानेकी इच्छासे तन्द्रारहित होकर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया था, वे महातेजस्वी बलसूदन इन्द्र भी आलस्य छोडकर (कर्मपरायण होकर ही) मेघगर्जनाद्वारा आकाश तथा दिशाओंको गुंजाते हुए समय-समयपर वर्षा करते हैं ॥ ११ ॥

हित्वा सुखं मनसश्च प्रियाणि तेन शक्रः कर्मणा श्रैष्ठ्यमाप ।
सत्यं धर्मं पालयन्नप्रमत्तो दमं तितिक्षां समतां प्रियं च ।
एतानि सर्वाण्युपसेवमानो देवराज्यं मघवान्प्राप मुख्यम् ॥ १२ ॥

इन्द्रने सुख तथा मनको प्रिय लगनेवाली वस्तुओंका त्याग करके सत्कर्मके बलसे ही देवताओंमें ऊँची स्थिति प्राप्त की। सावधान होकर सत्य, धर्म, इन्द्रियसंयम, सहिष्णुता, समदर्शिता तथा सबको प्रिय लगनेवाले उत्तम बर्तावका पालन, इन समस्त सद्गुणोंका सेवन करनेके कारण ही इन्द्रको देवसम्राट्का श्रेष्ठ पद प्राप्त हुआ है ॥ १२ ॥

बृहस्पतिर्ब्रह्मचर्यं चचार समाहितः संशितात्मा यथावत् ।
हित्वा सुखं प्रतिरुध्येन्द्रियाणि तेन देवानामगमद्गौरवं सः ॥ १३ ॥

इसी प्रकार बृहस्पतिने भी नियमपूर्वक समाहित एवं संयतचित्त होकर सुखका परित्याग करके इन्द्रियोंको अपने वशमें रखते हुए ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया था। इसी सत्कर्मके प्रभावसे उन्होंने देवगुरुका सम्मानित पद प्राप्त किया है ॥ १३ ॥

नक्षत्राणि कर्मणामुत्र भान्ति रुद्रादित्या वसवोऽथापि विश्वे ।
यमो राजा वैश्रवणः कुबेरो गन्धर्वयक्षाप्सरसश्च शुभ्राः ।
ब्रह्मचर्यं वेदविद्यां क्रियाश्च निषेवमाणा मुनयोऽमुत्र भान्ति ॥ १४ ॥

आकाशके सारे नक्षत्र सत्कर्मके ही प्रभावसे परलोकमें प्रकाशित हो रहे हैं। रुद्र, आदित्य, वसु तथा विश्वेदेवगण भी कर्मबलसे ही महत्त्वको प्राप्त हुए हैं। यमराज, विश्रवाके पुत्र कुबेर, गन्धर्व, यक्ष तथा सुन्दरी अप्सराएँ भी अपने अपने कर्मोंके प्रभावसे ही स्वर्गमें विराजमान हैं। वेदज्ञान तथा ब्रह्मचर्यकर्मका सेवन करनेवाले महर्षि भी कर्मबलसे ही परलोकमें प्रकाशमान हो रहे हैं ॥ १४ ॥

जानन्निमं सर्वलोकस्य धर्मं ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां विशां च ।
स कस्मात्त्वं जानतां ज्ञानवान्सन्व्यायच्छसे संजय कौरवार्थे ॥ १५ ॥

संजय ! तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा सम्पूर्ण लोकोंके इस सुप्रसिद्ध धर्मको जानते हो। तुम ज्ञानियोंमें भी श्रेष्ठ ज्ञानी हो, तो भी तुम कौरवोंकी स्वार्थसिद्धिके लिये क्यों वाग्जाल फैला रहे हो ? ॥ १५ ॥

आम्नायेषु नित्यसंयोगमस्य तथाश्वमेधे राजसूये च विद्धि ।
संयुज्यते धनुषा वर्मणा च हस्तत्राणै रथशस्त्रैश्च भूयः ॥ १६ ॥

राजा युधिष्ठिरका वेद-शास्त्रोंके साथ स्वाध्यायके रूपमें सदा सम्बन्ध बना रहता है। इसी प्रकार अश्वमेध तथा राजसूय आदि यज्ञोंसे भी इनका सदा लगाव जानो। ये धनुष और कवचसे भी संयुक्त हैं। हाथी-घोडे आदि वाहनों, रथों और अस्त्र-शस्त्रोंकी भी इनके पास कमी नहीं है ॥ १६ ॥

ते चेदिमे कौरवाणामुपायमधिगच्छेयुरवधेनैव पार्थाः ।
धर्मत्राणं पुण्यमेषां कृतं स्यादार्ये वृत्ते भीमसेनं निगृह्य ॥ १७ ॥

ये कुन्तीपुत्र यदि कौरवोंका वध किये बिना ही अपने राज्यकी प्राप्तिका कोई दूसरा उपाय जान लेंगे, तो भीमसेनको आग्रहपूर्वक आर्य पुरुषोंके द्वारा आचरित सद्व्यवहारमें लगाकर धर्मरक्षारूप पुण्यका ही सम्पादन करेंगे, तुम ऐसा भलीभाँति समझ लो ॥ १७ ॥

ते चेत्पित्र्ये कर्मणि वर्तमाना आपद्येरन्दिष्टवशेन मृत्युम् ।
यथाशक्त्या पूरयन्तः स्वकर्म तदप्येषां निधनं स्यात्प्रशस्तम् ॥ १८ ॥

पाण्डव अपने बाप-दादोंके कर्म-क्षात्रधर्म (युद्ध आदि) में प्रवृत्त हो यथाशक्ति अपने कर्तव्यका पालन करते हुए यदि दैववश मृत्युको भी प्राप्त हो जायँ तो इनकी वह मृत्यु उत्तम ही मानी जायगी ॥ १८ ॥

उताहो त्वं मन्यसे सर्वमेव राज्ञां युद्धे वर्तते धर्मतन्त्रम् ।
अयुद्धे वा वर्तते धर्मतन्त्रं तथैव ते वाचमिमां शृणोमि ॥ १९ ॥

अथवा तुम क्या मानते हो कि राजाओंके धर्मका सारा तंत्र युद्धमें है अथवा उनका धर्म-तंत्र युद्ध न करनेमें है । तुम जो कुछ भी कहोगे, मैं तुम्हारी वही बात सुननेको उद्यत हूँ ॥ १९ ॥

चातुर्वर्ण्यस्य प्रथमं विभागमवेक्ष्य त्वं संजय स्वं च कर्म ।
निशम्याथो पाण्डवानां स्वकर्म प्रशंस वा निन्द वा या मतिस्ते ॥ २० ॥

संजय ! तुम पहले ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके विभाग तथा उनमेंसे प्रत्येक वर्णके अपने-अपने कर्मको देख लो । फिर पाण्डवोंके वर्तमान कर्मपर दृष्टिपात करो; तत्पश्चात् जैसा तुम्हारा विचार हो, उसके अनुसार इनकी प्रशंसा अथवा निन्दा करना ॥ २० ॥

अधीयीत ब्राह्मणोऽथो यजेत दद्यादियात्तीर्थमुख्यानि चैव ।
अध्यापयेद्याजयेच्चापि याज्यान्प्रतिग्रहान्वा विदितान्प्रतीच्छेत् ॥ २१ ॥

ब्राह्मण अध्ययन, यज्ञ एवं दान करे तथा प्रधान-प्रधान तीर्थोंकी यात्रा करे, शिष्योंको पढ़ावे और यजमानोंका यज्ञ करावे अथवा शास्त्रविहित प्रतिग्रह (दान) स्वीकार करे ॥ २१ ॥

तथा राजन्यो रक्षणं वै प्रजानां कृत्वा धर्मेणाप्रमत्तोऽथ दत्त्वा ।
यज्ञैरिष्ट्वा सर्ववेदानधीत्य दारान्कृत्वा पुण्यकृदावसेद्गृहान् ॥ २२ ॥

इसके सिवा क्षत्रिय धर्मके अनुसार सावधान रहकर प्रजाजनोंकी रक्षा करे, दान दे, यज्ञ करे, सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके विवाह करे और पुण्य कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ गृहस्थाश्रममें रहे ॥ २२ ॥

वैश्योऽधीत्य कृषिगोरक्षपण्यैर्वित्तं चिन्वन्पालयन्नप्रमत्तः ।
प्रियं कुर्वन्ब्राह्मणक्षत्रियाणां धर्मशीलः पुण्यकृदावसेद्गृहान् ॥ २३ ॥

वैश्य अध्ययन करके कृषि, गोरक्षा तथा व्यापारद्वारा धनोपार्जन करते हुए सावधानीके साथ उसकी रक्षा करे। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंका प्रिय करते हुए धर्मशील एवं पुण्यात्मा होकर वह गृहस्थाश्रममें निवास करे ॥ २३ ॥

परिचर्या वन्दनं ब्राह्मणानां नाधीयीत प्रतिषिद्धोऽस्य यज्ञः ।
नित्योत्थितो भूतयेऽतन्द्रितः स्यादेष स्मृतः शूद्रधर्मः पुराणः ॥ २४ ॥

शूद्र ब्राह्मणोंकी सेवा तथा वन्दना करे, वेदोंका स्वाध्याय न करे। उसके लिये यज्ञका भी निषेध है। वह सदा उद्योगी और आलस्यरहित अपने कल्याणके लिये चेष्टा करे। इस प्रकार शूद्रोंका प्राचीन धर्म बताया गया है ॥ २४ ॥

एतान्राजा पालयन्नप्रमत्तो नियोजयन्सर्ववर्णान्स्वधर्मे ।
अकामात्मा समवृत्तिः प्रजासु नाधार्मिकाननुरुध्येत कामात् ॥ २५ ॥

राजा सावधानीके साथ इन सब वर्णोंका पालन करते हुए ही इन्हें अपने-अपने धर्ममें लगावे। वह कामभोगमें आसक्त न होकर समस्त प्रजाओंके साथ समानभावसे बर्ताव करे और पापपूर्ण इच्छाओंका कदापि अनुसरण न करे ॥ २५ ॥

श्रेयांस्तस्माद्यदि विद्येत कश्चिदभिज्ञातः सर्वधर्मोपपन्नः ।
स तं दुष्टमनुशिष्यात्प्रजानन्न चेद्गृध्येदिति तस्मिन्न साधु ॥ २६ ॥

यदि राजाको यह ज्ञात हो जाय कि उसके राज्यमें कोई सर्वधर्मसम्पन्न श्रेष्ठ पुरुष निवास करता है तो वह उसीको प्रजाके गुण-दोषका निरीक्षण करनेके लिये नियुक्त करे तथा उसके द्वारा पता लगवावे कि मेरे राज्यमें कोई पापकर्म करनेवाला तो नहीं है ॥ २६ ॥

यदा गृध्येत्परभूमिं नृशंसो विधिप्रकोपाद्बलमाददानः ।
ततो राज्ञां भविता युद्धमेतत्तत्र जातं वर्म शस्त्रं धनुश्च ।
इन्द्रेणेदं दस्युवधाय कर्म उत्पादितं वर्म शस्त्रं धनुश्च ॥ २७ ॥

जब कोई क्रूर मनुष्य दूसरेकी धन-सम्पत्तिमें लालच रखकर उसे ले लेनेकी इच्छा करता है और विधाताके कोपसे (परपीडनके लिये) सेना-संग्रह करने लगता है, उस समय राजाओंमें युद्धका अवसर उपस्थित होता है। इस युद्धके लिये ही कवच, अस्त्र-शस्त्र और धनुषका आविष्कार हुआ है। स्वयं देवराज इन्द्रने ऐसे लुटेरोंका वध करनेके लिये कवच, अस्त्र-शस्त्र और धनुषका आविष्कार किया है ॥ २७ ॥

स्तेनो हरेद्यत्र धनं ह्यदृष्टः प्रसह्य वा यत्र हरेत दृष्टः ।
उभौ गर्ह्यौ भवतः संजयैतौ किं वै पृथक्त्वं धृतराष्ट्रस्य पुत्रे ।
योऽयं लोभान्मन्यते धर्ममेतं यमिच्छते मन्युवशानुगामी ॥ २८ ॥

चोर छिपा रहकर धन चुरा ले जाय अथवा सामने आकर डाका डाले, दोनों ही दशाओंमें वे चोर-डाकू निन्दाके ही पात्र होते हैं । संजय ! तुम्हीं कहो, धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन और उन चोर-डाकुओंमें क्या अन्तर है ? दुर्योधन क्रोधके वशीभूत हो लोभसे राज्यको ले लेना चाहता है । इसे वह धर्म मान रहा है ॥ २८ ॥

भागः पुनः पाण्डवानां निविष्टस्तं नोऽकस्मादाददीरन्परे वै ।
अस्मिन्पदे युध्यतां नो वधोऽपि श्लाघ्यः पित्र्यः परराज्याद्विशिष्टः ।
एतान्धर्मान्कौरवाणां पुराणानाचक्षीथाः संजय राज्यमध्ये ॥ २९ ॥

परंतु वह तो पाण्डवोंका भाग है, जो कौरवोंके यहाँ धरोहरके रूपमें रक्खा गया है । संजय ! हमारे उस भागको हमसे शत्रुता रखनेवाले कौरव कैसे ले सकते हैं ? सूत ! इस राज्यभागकी प्राप्तिके लिये युद्ध करते हुए हमलोगोंका वध हो जाय तो वह भी हमारे लिये स्पृहणीय ही है । बाप-दादोंका राज्य पराये राज्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ है । संजय ! तुम राजाओंकी मण्डलीमें राजाओंके इन प्राचीन धर्मोंका कौरवोंके समक्ष वर्णन करना ॥ २९ ॥

ये ते मन्दा मृत्युवशाभिपन्नाः समानीता धार्तराष्ट्रेण मूढाः ।
इदं पुनः कर्म पापीय एव सभामध्ये पश्य वृत्तं कुरूणाम् ॥ ३० ॥

दुर्योधनने जिन्हें युद्धके लिये बुलवाया है, वे मदमत्त मूर्ख राजा मौतके फंदेमें फँस गये हैं । संजय ! भरी सभामें कौरवोंने जो यह अत्यन्त पापपूर्ण कर्म किया था, उनके इस दुराचारपर दृष्टि डालो ॥ ३० ॥

प्रियां भार्यां द्रौपदीं पाण्डवानां यशस्विनीं शीलवृत्तोपपन्नाम् ।
यदुपेक्षन्त कुरवो भीष्ममुख्याः कामानुगेनोपरुद्धां रुदन्तीम् ॥ ३१ ॥

पाण्डवोंकी प्यारी पत्नी शील और सदाचारसे सम्पन्न यशस्विनी द्रौपदी रजस्वला-अवस्थामें सभाके भीतर लायी जा रही थी, परंतु भीष्म आदि प्रधान कौरवोंने भी उसकी ओरसे उपेक्षा दिखायी ॥ ३१ ॥

तं चेत्तदा ते सकुमारवृद्धा अवारयिष्यन्कुरवः समेताः ।
मम प्रियं धृतराष्ट्रोऽकरिष्यत्पुत्राणां च कृतमस्याभविष्यत् ॥ ३२ ॥

यदि बालकसे लेकर बूढ़ेतक सभी कौरव उस समय दुःशासनको रोक देते तो राजा धृतराष्ट्र मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करते तथा उनके पुत्रोंका भी प्रिय मनोरथ सिद्ध हो जाता ॥ ३२ ॥

दुःशासनः प्रातिलोम्यान्निनाय सभामध्ये श्वशुराणां च कृष्णाम् ।
सा तत्र नीता करुणान्यवोचन्नान्यं क्षत्तुर्नाथमदृष्ट कंचित् ॥ ३३ ॥
दुःशासन मर्यादाके विपरीत द्रौपदीको सभाके भीतर श्वशुरजनोंके समक्ष घसीट ले गया । द्रौपदीने वहाँ जाकर कातर-भावसे चारों ओर करुणदृष्टि डाली, परंतु उसने वहाँ विदुरके सिवा और किसीको अपना रक्षक नहीं पाया ॥ ३३ ॥

कार्पण्यादेव सहितास्तत्र राज्ञो नाशक्नुवन्प्रतिवक्तुं सभायाम् ।
एकः क्षत्ता धर्म्यमर्थं ब्रुवाणो धर्मं बुद्ध्या प्रत्युवाचाल्पबुद्धिम् ॥ ३४ ॥
उस समय सभामें बहुतसे भूपाल एकत्रित थे, परंतु अपनी कायरताके कारण वे उस अन्यायका प्रतिवाद न कर सके। एकमात्र विदुरने अपना धर्म समझकर मन्दबुद्धि दुर्योधनसे धर्मानुकूल वचन कहकर उसके अन्यायका विरोध किया ॥ ३४ ॥

अनुक्त्वा त्वं धर्ममेवं सभायामथेच्छसे पाण्डवस्योपदेष्टुम् ।
कृष्णा त्वेतत्कर्म चकार शुद्धं सुदुष्करं तद्धि सभां समेत्य ।
येन कृच्छ्रात्पाण्डवानुज्जहार तथात्मानं नौरिव सागरौघात् ॥ ३५ ॥
संजय ! द्यूतसभामें जो अन्याय हुआ था, उसे न कहकर तुम पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको धर्मका उपदेश देना चाहते हो । द्रौपदीने उस दिन सभामें जाकर अत्यन्त दुष्कर और पवित्र कार्य किया कि उसने पाण्डवों तथा अपनेको महान् संकटसे बचा लिया; ठीक उसी तरह, जैसे नौका समुद्रकी अगाध जलराशिमें डूबनेसे बचा लेती है ॥ ३५ ॥

यत्राब्रवीत्सूतपुत्रः सभायां कृष्णां स्थितां श्वशुराणां समीपे ।
न ते गतिर्विद्यते याज्ञसेनि प्रपद्येदानीं धार्तराष्ट्रस्य वेश्म ।
पराजितास्ते पतयो न सन्ति पतिं चान्यं भामिनि त्वं वृणीष्व ॥ ३६ ॥
उस सभामें कृष्णा श्वशुरजनोंके समीप खड़ी थी, तो भी सूतपुत्र कर्णने उसे अपमानित करते हुए कहा—'याज्ञसेनि ! अब तेरे लिये दूसरी गति नहीं है, तू दासी बनकर दुर्योधनके महलमें चली जा । पाण्डव जूएमें अपनेको हार चुके हैं, अतः अब वे तेरे पति नहीं रहे । भामिनि ! अब तू किसी दूसरेको अपना पति वरण कर ले' ॥ ३६ ॥

यो बीभत्सोर्हृदये प्रौढ आसीदस्थिप्रच्छिन्मर्मघाती सुघोरः ।
कर्णाच्छरो वाङ्मयस्तिग्मतेजाः प्रतिष्ठितो हृदये फल्गुनस्य ॥ ३७ ॥
कर्णके मुखसे निकला हुआ वह अत्यन्त घोर कटुवचनरूपी बाण मर्मपर चोट पहुँचानेवाला था । वह कानके रास्तेसे भीतर जाकर हड्डियोंको छेदता हुआ अर्जुनके हृदयमें धँस गया । तीखी कसक पैदा करनेवाला वह वाग्बाण आज भी अर्जुनके हृदयमें गड़ा हुआ है ॥ ३७ ॥

कृष्णाजिनानि परिधित्समानान्दुःशासनः कटुकान्यभ्यभाषत् ।
एते सर्वे षण्ढतिला विनष्टाः क्षयं गता नरकं दीर्घकालम् ॥ ३८ ॥
जिस समय पाण्डव वनमें जानेके लिये कृष्णमृगचर्म धारण करना चाहते थे, उस समय दुःशासनने उनके प्रति कितनी ही कडवी बातें कहीं— 'ये सबके सब नपुंसक अब नष्ट हो गये, चिरकालके लिये नरकके गर्तमें गिर गये' ॥ ३८ ॥

गान्धारराजः शकुनिर्निकृत्या यदब्रवीद्द्यूतकाले स पार्थान् ।
पराजितो नकुलः किं तवास्ति कृष्णया त्वं दीव्य वै याज्ञसेन्या ॥ ३९ ॥
गान्धारराज शकुनिने द्यूतक्रीडाके समय कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे शठतापूर्वक यह बात कही थी कि अब तो तुम अपने छोटे भाईको भी हार गये, अब तुम्हारे पास क्या है? इसलिये इस समय तुम द्रुपदनन्दिनी कृष्णाको दाँवपर रखकर जुआ खेलो ॥ ३९ ॥

जानासि त्वं संजय सर्वमेतद्द्यूतेऽवाच्यं वाक्यमेवं यथोक्तम् ।
स्वयं त्वहं प्रार्थये तत्र गन्तुं समाधातुं कार्यमेतद्विपन्नम् ॥ ४० ॥
संजय ! (कहाँतक गिनाऊँ,) जूएके समय जितने और जैसे निन्दनीय वचन कहे गये थे, वे सब तुम्हें ज्ञात हैं, तथापि इस विगडे हुए कार्यको बनानेके लिये मैं स्वयं हस्तिनापुर चलना चाहता हूँ ॥ ४० ॥

अहापयित्वा यदि पाण्डवार्थं शमं कुरूणामथ चेच्चरेयम् ।
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महोदयं मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥ ४१ ॥
यदि पाण्डवोंका स्वार्थ नष्ट किये विना ही मैं कौरवोंके साथ इनकी संधि करानेमें सफल हो सका तो मेरे द्वारा यह परमपवित्र और महान् अभ्युदयका कार्य सम्पन्न हो जायगा तथा कौरव भी मौतके फंदेसे छूट जायंगे ॥ ४१ ॥

अपि वाचं भाषमाणस्य काव्यां धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम् ।
अवेक्षेरन्धार्तराष्ट्राः समक्षं मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः ॥ ४२ ॥
मैं वहां जाकर शुक्रनीतिके अनुसार धर्म और अर्थसे युक्त ऐसी बातें कहूंगा, जो हिंसा-वृत्तिको दबानेवाली होंगी । क्या धृतराष्ट्रके पुत्र मेरी उन बातोंपर विचार करेंगे ? क्या कौरवगण अपने सामने उपस्थित होनेपर मेरा सम्मान करेंगे ? ॥ ४२ ॥

अतोऽन्यथा रथिना फल्गुनेन भीमेन चैवाहवदंशितेन ।
परासिक्तान्धार्तराष्ट्रांस्तु विद्धि प्रदह्यमानान्कर्मणा स्वेन मन्दान् ॥ ४३ ॥
संजय ! यदि ऐसा नहीं हुआ— कौरवोंने इनके विपरीत भाव दिखाया तो समझ लो कि रथपर बैठे हुए अर्जुन और युद्धके लिये कवच धारण करके तैयार हुए भीमसेनके द्वारा पराजित होकर धृतराष्ट्रके वे सभी पापात्मा पुत्र अपने ही कर्मदोषसे दग्ध हो जायँगे ॥ ४३ ॥

पराजितान्पाण्डवेयांस्तु वाचो रौद्ररूपा भाषते धार्तराष्ट्रः ।
गदाहस्तो भीमसेनोऽप्रमत्तो दुर्योधनं स्मारयिता हि काले ॥ ४४ ॥

द्यूतके समय जब पाण्डव हार गये थे, तब दुर्योधनने उनके प्रति बडी भयानक और कडवी बातें कही थीं; अतः, सदा सावधान रहनेवाले भीमसेन युद्धके समय गदा हाथमें लेकर दुर्योधनको उन बातोंकी याद दिलायेंगे ॥ ४४ ॥

सुयोधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः ।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ॥ ४५ ॥

दुर्योधन क्रोधमय विशाल वृक्षके समान है, कर्ण उस वृक्षका स्कन्ध, शकुनि शाखा और दुःशासन समृद्ध फल-पुष्प है । अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ही इसके मूल जड हैं ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः ।
माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे मूलं त्वहं ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिर धर्ममय विशाल वृक्ष हैं । अर्जुन (उस वृक्षके) स्कन्ध, भीमसेन शाखा और माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव इसके समृद्ध फल-पुष्प हैं । मैं, वेद और ब्राह्मण ही इस वृक्षके मूल (जड) हैं ॥ ४६ ॥

वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो व्याघ्रा वने संजय पाण्डवेयाः ।
मा वनं छिन्धि सव्याघ्रं मा व्याघ्रान्नीनशो वनात् ॥ ४७ ॥

संजय ! पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र एक वन हैं और पाण्डव उस वनमें निवास करनेवाले व्याघ्र हैं । इसलिए व्याघ्रसहित इस वनको मत काटो और वनमें सिंहोंको नष्ट न करो ॥ ४७ ॥

निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम् ।
तस्माद्व्याघ्रो वनं रक्षेद्वनं व्याघ्रं च पालयेत् ॥ ४८ ॥

क्योंकि वनसे बाहर निकला हुआ व्याघ्र मारा जाता है और बिना व्याघ्रके वनको सब लोग आसानीसे काट लेते हैं । अतः, व्याघ्र वनकी रक्षा करे और वन व्याघ्रका पालन करे ॥ ४८ ॥

लताधर्मा धार्तराष्ट्राः शालाः संजय पाण्डवाः ।
न लता वर्धते जातु अनाश्रित्य महाद्रुमम् ॥ ४९ ॥

संजय ! धृतराष्ट्रके पुत्र लताओंके समान हैं और पाण्डव शाल-वृक्षोंके समान । कोई भी लता किसी महान् वृक्षका आश्रय लिये बिना कभी नहीं बढती है (अतः, पाण्डवोंका आश्रय लेकर ही धृतराष्ट्रपुत्र बढ सकते हैं) ॥ ४९ ॥

स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिंदमाः ।
यत्कृत्यं धृतराष्ट्रस्य तत्करोतु नराधिपः ॥ ५० ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले कुन्तीपुत्र धृतराष्ट्रकी सेवा करनेके लिये भी उद्यत हैं और युद्धके लिये भी। अब राजा धृतराष्ट्रका जो कर्तव्य हो, उसका वे पालन करें ॥ ५० ॥

स्थिताः शमे महात्मानः पाण्डवा धर्मचारिणः ।
योधाः समृद्धास्तद्विद्वन्नाचक्षीथा यथातथम् ॥ ५१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ७८६ ॥

विद्वान् संजय ! धर्मका आचरण करनेवाले महात्मा पाण्डव शान्तिके लिये भी तैयार हैं और युद्ध करनेमें भी समर्थ हैं। इन दोनों अवस्थाओंको समझकर तुम राजा धृतराष्ट्रसे यथार्थ बातें कहना ॥ ५१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें उनतीसवां अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ ७८६ ॥

: ३० :

संजय उवाच

आमन्त्रये त्वा नरदेवदेव गच्छाम्यहं पाण्डव स्वस्ति तेऽस्तु ।
कच्चिन्न वाचा वृजिनं हि किंचिदुच्चारितं मे मनसोऽभिषङ्गात् ॥ १ ॥

संजय बोले— नरदेवदेव पाण्डुनन्दन ! आपका कल्याण हो। अब मैं आपसे विदा लेता और हस्तिनापुरको जाता हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि मैंने मानसिक आवेगके कारण वाणीद्वारा कोई ऐसी बात कह दी हो, जिससे आपको कष्ट हुआ हो ? ॥ १ ॥

जनार्दनं भीमसेनार्जुनौ च माद्रीसुतौ सात्यकिं चेकितानम् ।
आमन्त्र्य गच्छामि शिवं सुखं वः सौम्येन मां पश्यत चक्षुषा नृपाः ॥२॥

भगवान् श्रीकृष्ण, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि तथा चेकितानसे भी आज्ञा लेकर मैं जा रहा हूँ। आपलोगोंको सुख और कल्याणकी प्राप्ति हो। राजाओ ! आप मेरी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखें ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अनुज्ञातः संजय स्वस्ति गच्छ न नोऽकार्षीरप्रियं जातु किंचित् ।
विद्मश्च त्वा ते च वयं च सर्वे शुद्धात्मानं मध्यगतं सभास्थम् ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर बोले— संजय ! मैं तुम्हें जानेकी अनुमति देता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम जाओ। विद्वन् ! तुम कभी हमलोगोंका अनिष्ट-चिन्तन नहीं करते हो। इसलिये कौरव तथा हमलोग सभी तुम्हें शुद्धचित्त एवं मध्यस्थ सदस्य समझते हैं ॥ ३ ॥

आप्तो दूतः संजय सुप्रियोऽसि कल्याणवाक् शीलवान्दृष्टिमांश्च ।
न मुह्येस्त्वं संजय जातु मत्या न च क्रुध्येरुच्यमानोऽपि तथ्यम् ॥ ४ ॥

संजय ! तुम विश्वसनीय दूत और हमारे अत्यन्त प्रिय हो । तुम्हारी बातें कल्याणकारिणी होती हैं । तुम शीलवान् और उत्तम दृष्टिवाले हो । तुम्हारी बुद्धि कभी मोहित नहीं होती और सत्य वचन सुनकर भी तुम कभी क्रोध नहीं करते हो ॥ ४ ॥

न मर्मगां जातु वक्तासि रूक्षां नोपस्तुतिं कटुकां नोत शुक्ताम् ।
धर्मारामामर्थवतीमहिंस्रामेतां वाचं तव जानामि सूत ॥ ५ ॥

सूत ! तुम्हारे मुखसे कभी कोई ऐसी बात नहीं निकलती, जो कडवी होनेके साथ ही मर्म पर आघात करनेवाली हो । न तुम खुशामद करते हो और न तुम कडवी भाषा बोलते हो । हम अच्छी तरह जानते हैं कि तुम्हारा यह कथन धर्मानुकूल होनेके कारण मनोहर, अर्थ-युक्त तथा हिंसाकी भावनासे रहित है ॥ ५ ॥

त्वमेव नः प्रियतमोऽसि दूत इहागच्छेद्विदुरो वा द्वितीयः ।
अभीक्ष्णदृष्टोऽसि पुरा हि नस्त्वं धनंजयस्यात्मसमः सखासि ॥ ६ ॥

संजय ! तुम्हीं हमारे अत्यन्त प्रिय हो । जान पडता है, दूसरे विदुर ही (दूत बनकर) यहाँ आ गये हैं । पहले भी तुम हमसे बारंबार मिलते रहे हो और धनंजयके तो तुम अपने आत्माके समान प्रिय सखा हो ॥ ६ ॥

इतो गत्वा संजय क्षिप्रमेव उपातिष्ठेथा ब्राह्मणान्ये तदर्हाः ।
विशुद्धवीर्यांश्चरणोपपन्नान्कुले जातान्सर्वधर्मोपपन्नान् ॥ ७ ॥

संजय ! यहाँसे जाकर तुम शीघ्र ही जो आदर और सम्मानके योग्य हैं, उन विशुद्ध शक्तिशाली, ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वेदोंके स्वाध्यायमें संलग्न, कुलीन तथा सर्वधर्मसम्पन्न ब्राह्मणोंको हमारी ओरसे प्रणाम कहना ॥ ७ ॥

स्वाध्यायिनो ब्राह्मणा भिक्षवश्च तपस्विनो ये च नित्या वनेषु ।
अभिवाद्या वै मद्वचनेन वृद्धास्तथेतरेषां कुशलं वदेथाः ॥ ८ ॥

स्वाध्यायशील ब्राह्मणों, संन्यासियों तथा सदा वनमें निवास करनेवाले तपस्वी मुनियों एवं बडे-बूढे लोगोंसे हमारी ओरसे प्रणाम कहना और दूसरे लोगोंसे भी कुशलसमाचार पूछना ॥ ८ ॥

पुरोहितं धृतराष्ट्रस्य राज्ञ आचार्यांश्च ऋत्विजो ये च तस्य ।
तैश्च त्वं तात सहितैर्यथार्हं संगच्छेथाः कुशलेनैव सूत ॥ ९ ॥

तात ! संजय ! राजा धृतराष्ट्रके पुरोहित, आचार्य तथा उनके ऋत्विजोंसे भी (उनके साथ भेंट होनेपर) तुम (हमारी ओरसे) कुशल-मङ्गलका समाचार पूछते हुए ही मिलना ॥ ९ ॥

आचार्यं इष्टोऽनपगो विधेयो वेदानीप्सन्ब्रह्मचर्यं चचार ।
योऽस्त्रं चतुष्पात्पुनरेव चक्रे द्रोणः प्रसन्नोऽभिवाद्यो यथार्हम् ॥ १० ॥

जिन्होंने वेदोंकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये पहले ब्रह्मचर्यका पालन किया। तत्पश्चात् मन्त्र, उपचार, प्रयोग तथा संहार—इन चार पादोंसे युक्त अस्त्रविद्याकी शिक्षा प्राप्त की, वे सबके प्रिय, नीतिज्ञ, विनयी तथा सदा प्रसन्नचित्त रहनेवाले आचार्य द्रोण भी हमारे अभिवादनके योग्य हैं, तुम उनसे भी मेरा प्रणाम कहना ॥ १० ॥

अधीतविद्यश्चरणोपपन्नो योऽस्त्रं चतुष्पात्पुनरेव चक्रे ।
गन्धर्वपुत्रप्रतिमं तरस्विनं तमश्वत्थामानं कुशलं स्म पृच्छेः ॥ ११ ॥

जो वेदाध्ययनसम्पन्न तथा सदाचारयुक्त हैं, जिन्होंने चारों पादोंसे युक्त अस्त्रविद्याकी शिक्षा पायी है, जो गन्धर्वकुमारके समान वेगशाली वीर हैं, उन आचार्यपुत्र अश्वत्थामाका भी कुशल-समाचार पूछना ॥ ११ ॥

शारद्वतस्यावसथं स्म गत्वा महारथस्यास्त्रविदां वरस्य ।
त्वं मामभीक्ष्णं परिकीर्तयन्वै कृपस्य पादौ संजय पाणिना स्पृशेः ॥१२॥

संजय! तदनन्तर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महारथी कृपाचार्यके घर जाकर बारंबार मेरा नाम लेते हुए अपने हाथसे उनके दोनों चरणोंका स्पर्श करना ॥ १२ ॥

यस्मिन्शौर्यमानृशंस्यं तपश्च प्रज्ञा शीलं श्रुतिसत्त्वे धृतिश्च ।
पादौ गृहीत्वा कुरुसत्तमस्य भीष्मस्य मां तत्र निवेदयेथाः ॥ १३ ॥

जिनमें वीरत्व, दया, तपस्या, बुद्धि, शील, शास्त्रज्ञान, सत्त्व और धैर्य आदि सद्गुण विद्यमान हैं, उन कुरुश्रेष्ठ पितामह भीष्मके दोनों चरण पकडकर मेरा प्रणाम निवेदन करना ॥ १३ ॥

प्रज्ञाचक्षुर्यः प्रणेता कुरूणां बहुश्रुतो वृद्धसेवी मनीषी ।
तस्मै राज्ञे स्थविरायाभिवाद्य आचक्षीथाः संजय मामरोगम् ॥ १४ ॥

संजय! जो कौरवगणोंके नेता, अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता, बडे-बूढोंके सेवक और बुद्धिमान् हैं, उन वृद्ध नरेश प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रको मेरा प्रणाम निवेदन करके यह बताना कि युधिष्ठिर नीरोग और सकुशल है ॥ १४ ॥

ज्येष्ठः पुत्रो धृतराष्ट्रस्य मन्दो मूर्खः शठः संजय पापशीलः ।
प्रशास्ता वै पृथिवी येन सर्वा सुयोधनं कुशलं तात पृच्छेः ॥ १५ ॥

तात संजय! जो धृतराष्ट्रका ज्येष्ठ पुत्र, मन्दबुद्धि, मूर्ख, शठ और पापाचारी है तथा जो सारी पृथ्वी पर शासन करता है, उस सुयोधनसे भी मेरी ओरसे कुशल-मङ्गल पूछना ॥ १५ ॥

भ्राता कनीयानपि तस्य मन्दस्तथाशीलः संजय सोऽपि शश्वत् ।
महेष्वासः शूरतमः कुरूणां दुःशासने कुशलं तात पृच्छेः ॥ १६ ॥

तात संजय ! जो दुर्योधनका छोटा भाई है तथा उसीके समान मूर्ख और सदा पापमें संलग्न रहनेवाला है, कुरुकुलके उस महाधनुर्धर एवं विख्यात वीर दुःशासनसे भी कुशल पूछकर मेरा कुशल-समाचार कहना ॥ १६ ॥

वृन्दारकं कविमर्थेष्वमूढं महाप्रज्ञं सर्वधर्मोपपन्नम् ।
न तस्य युद्धं रोचते वै कदाचिद्वैश्यापुत्रं कुशलं तात पृच्छेः ॥ १७ ॥

तात ! जो समस्त विद्वानोंमें श्रेष्ठ, महाबुद्धिमान् ज्ञानी तथा सब धर्मोंसे सम्पन्न है, जिसे कौरव और पाण्डवोंका युद्ध कभी अच्छा नहीं लगता, उस वैश्यापुत्र युयुत्सुका भी मेरी ओरसे कुशल–मङ्गल पूछना ॥ १७ ॥

निकर्तने देवने योऽद्वितीयश्छन्नोपधः साधुदेवी मताक्षः ।
यो दुर्जयो देवितव्येन संख्ये स चित्रसेनः कुशलं तात वाच्यः ॥ १८ ॥

तात ! जो धनके अपहरण और द्यूतक्रीडामें अद्वितीय है, छलको छिपाये रखकर अच्छी तरहसे जूआ खेलता है, पासे फेंकनेकी कलामें प्रवीण है तथा जो युद्धमें दिव्य रथारूढ वीरके लिये भी दुर्जय है, उस चित्रसेनसे भी कुशल समाचार पूछना और बताना ॥१८॥

यस्य कामो वर्तते नित्यमेव नान्यः शमाद्भारतानामिति स्म ।
स बाह्लिकानामृषभो मनस्वी पुरा यथा माभिवदेत्प्रसन्नः ॥ १९ ॥

संजय ! भरतवंशियोंमें परस्पर शान्ति बनी रहे, इसके सिवा दूसरी कोई कामना जिनके हृदयमें कभी नहीं होती है, जो बाह्लीकवंशके श्रेष्ठ पुरुष हैं, उन साधु स्वभाववाले बुद्धिमान् बाह्लीकको भी तुम मेरा प्रणाम निवेदन करना ॥ १९ ॥

गुणैरनेकैः प्रवरैश्च युक्तो विज्ञानवान्नैव च निष्ठुरो यः ।
स्नेहादमर्षं सहते सदैव स सोमदत्तः पूजनीयो मतो मे ॥ २० ॥

जो अनेक श्रेष्ठ गुणोंसे विभूषित और ज्ञानवान् हैं, जिनमें निष्ठुरता लेशमात्र भी नहीं है, जो स्नेहवश सदा ही हमलोगोंका क्रोध सहन करते रहते हैं, वे सोमदत्त भी मेरे लिये पूजनीय हैं ॥ २० ॥

अर्हत्तमः कुरुषु सौमदत्तिः स नो भ्राता संजय मत्सखा च।
महेष्वासो रथिनामुत्तमो यः सहामात्यः कुशलं तस्य पृच्छेः ॥ २१ ॥

संजय ! सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवा कुरुकुलमें पूज्यतम पुरुष माने गये हैं। वे हम लोगोंके निकट सम्बन्धी और मेरे प्रिय सखा हैं। रथी वीरोंमें उनका बहुत ऊँचा स्थान है। वे महान् धनुर्धर तथा आदरणीय वीर हैं। तुम मेरी ओरसे मन्त्रियोंसहित उनका कुशल-समाचार पूछना ॥ २१ ॥

ये चैवान्ये कुरुमुख्या युवानः पुत्राः पौत्रा भ्रातरश्चैव ये नः।
यं यमेषां येन येनाभिगच्छेरनामयं मद्वचनेन वाच्यः ॥ २२ ॥

संजय ! इनके सिवा और भी जो कुरुकुलके प्रधान नवयुवक हैं, जो हमारे पुत्र, पौत्र और भाई लगते हैं, इनमेंसे जिस-जिसके पास तुम जाओ, उससे वैसी ही बात कहकर उन सबसे बताना कि पाण्डवलोग स्वस्थ और सानन्द हैं ॥ २२ ॥

ये राजानः पाण्डवायोधनाय समानीता धार्तराष्ट्रेण केचित्।
वसातयः शाल्वकाः केकयाश्च तथाम्बष्ठा ये त्रिगर्ताश्च मुख्याः ॥ २३ ॥

दुर्योधनने हम पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेके लिये जिन-जिन राजाओंको बुलाया है, वे वशाति, शाल्व, केकय, अम्बष्ठ तथा त्रिगर्तदेशके प्रधान वीर ॥ २३ ॥

प्राच्योदीच्या दक्षिणात्याश्च शूरास्तथा प्रतीच्याः पार्वतीयाश्च सर्वे।
अनृशंसाः शीलवृत्तोपपन्नास्तेषां सर्वेषां कुशलं तात पृच्छेः ॥ २४ ॥

पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम दिशाके शौर्यसम्पन्न योद्धा तथा समस्त पर्वतीय नरेश वहाँ उपस्थित हैं। वे लोग दयालु तथा शील और सदाचारसे सम्पन्न हैं। संजय ! तुम मेरी ओरसे उन सबका कुशल-मंगल पूछना ॥ २४ ॥

हस्त्यारोहा रथिनः सादिनश्च पदातयश्चार्यसङ्घा महान्तः।
आख्याय मां कुशलिनं स्म तेषामनामयं परिपृच्छेः समग्रान् ॥ २५ ॥

जो हाथीसवार, रथी, घुडसवार, पैदल तथा बडे-बडे सज्जनोंके समुदाय वहाँ उपस्थित हैं, उन सबसे मुझे सकुशल बताकर उनका भी आरोग्य-समाचार पूछना ॥ २५ ॥

तथा राज्ञो ह्यर्थयुक्तानमात्यान्दौवारिकान्ये च सेनां नयन्ति।
आयव्ययं ये गणयन्ति युक्ता अर्थांश्च ये महतश्चिन्तयन्ति ॥ २६ ॥

जो राजाके हितकर कार्योंमें लगे हुए मन्त्री, द्वारपाल, सेनानायक, आय-व्ययनिरीक्षक तथा निरन्तर बडे-बडे कार्यों एवं प्रश्नोंपर विचार करनेवाले हैं, उनसे भी कुशलसमाचार पूछना ॥ २६ ॥

गान्धारराजः शकुनिः पार्वतीयो निकर्तने योऽद्वितीयोऽक्षदेवी ।
मानं कुर्वन्धार्तराष्ट्रस्य सूत मिथ्याबुद्धेः कुशलं तात पृच्छेः ॥ २७ ॥

तात संजय ! जो जूआ खेलकर पराये धनका अपहरण करनेकी कलामें अपना सानी नहीं रखता तथा दुर्योधनका सदा सम्मान करता है, उस मिथ्याबुद्धि पर्वतनिवासी गान्धारराज शकुनिकी भी कुशल पूछना ॥ २७ ॥

यः पाण्डवानेकरथेन वीरः समुत्सहत्यप्रधृष्यान्विजेतुम् ।
यो मुह्यतां मोहयिताद्वितीयो वैकर्तनं कुशलं तस्य पृच्छेः ॥ २८ ॥

जो अद्वितीय वीर एकमात्र रथकी सहायतासे अजेय पाण्डवोंको भी जीतनेका उत्साह रखता है तथा जो मोहमें पडे हुए धृतराष्ट्रके पुत्रोंको और भी मोहित करनेवाला है, उस वैकर्तन कर्णकी भी कुशल पूछना ॥ २८ ॥

स एव भक्तः स गुरुः स भृत्यः स वै पिता स च माता सुहृच्च ।
अगाधबुद्धिर्विदुरो दीर्घदर्शी स नो मन्त्री कुशलं तात पृच्छेः ॥ २९ ॥

अगाधबुद्धि दूरदर्शी विदुर हमलोगोंके प्रेमी, गुरु, पालक, पिता–माता और सुहृद् हैं, वे ही हमारे मन्त्री भी हैं ! संजय ! तुम मेरी ओरसे उनकी भी कुशल पूछना ॥ २९ ॥

वृद्धाः स्त्रियो याश्च गुणोपपन्ना या ज्ञायन्ते संजय मातरस्ताः ।
ताभिः सर्वाभिः सहिताभिः समेत्य स्त्रीभिर्वृद्धाभिरभिवादं वदेथाः ॥ ३० ॥

संजय ! राजघरानेमें जो सद्गुणवती वृद्धा स्त्रियाँ हैं, वे सब हमारी माताएँ लगती हैं । उन सब वृद्धा स्त्रियोंसे एक साथ मिलकर तुम उनसे हमारा प्रणाम निवेदन करना ॥ ३० ॥

कच्चित्पुत्रा जीवपुत्राः सुसम्यग्वर्तन्ते वो वृत्तिमनृशंसरूपाम् ।
इति स्मोक्त्वा संजय ब्रूहि पश्चादजातशत्रुः कुशली सपुत्रः ॥ ३१ ॥

संजय ! उन बडी–बूढी स्त्रियोंसे इस प्रकार कहना– ‘माताओ ! आपके पुत्र आपके साथ उत्तम बर्ताव करते हैं न ? उनमें क्रूरता तो नहीं आ गयी है ? उन सबके दीर्घायु पुत्र हो गये हैं न ?’ इस प्रकार कहकर पीछे यह बताना कि आपका बालक अजातशत्रु युधिष्ठिर पुत्रोंसहित सकुशल है ॥ ३१ ॥

या नो भार्याः संजय वेत्थ तत्र तासां सर्वासां कुशलं तात पृच्छेः ।
सुसंगुप्ताः सुरभयोऽनवद्याः कच्चिद्गृहानावसथाप्रमत्ताः ॥ ३२ ॥

तात संजय ! हस्तिनापुरमें हमारे भाइयोंकी जो स्त्रियाँ हैं, उन सबको तो तुम जानते ही हो । उन सबकी कुशल पूछना और कहना क्या तुमलोग सर्वथा सुरक्षित रहकर निर्दोष जीवन बिता रही हो ? तुम्हें आवश्यक सुगन्ध आदि प्रसाधन–सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं न ? तुम घरमें प्रमादशून्य होकर रहती हो न ? ॥ ३२ ॥

×

कच्चिद्वृत्तिं श्वशुरेषु भद्राः कल्याणीं वर्तध्वमनृशंसरूपाम् ।
यथा च वः स्युः पतयोऽनुकूलास्तथा वृत्तिमात्मनः स्थापयध्वम् ॥ ३३ ॥

भद्र महिलाओ ! क्या तुम अपने श्वशुरजनोंके प्रति क्रूरतारहित कल्याणकारी बर्ताव करती हो तथा जिस प्रकार तुम्हारे प्रति अनुकूल बने रहें, वैसे व्यवहार और सद्भावको अपने हृदयमें स्थान देती हो ? ॥ ३३ ॥

या नः स्नुषाः संजय वेत्थ तत्र प्राप्ता कुलेभ्यश्च गुणोपपन्नाः ।
प्रजावत्यो ब्रूहि समेत्य ताश्च युधिष्ठिरो वोऽभ्यवदत्प्रसन्नः ॥ ३४ ॥

संजय ! तुम वहाँ उन स्त्रियोंको भी जानते हो, जो हमारी पुत्रवधुएँ लगती हैं, जो उत्तम कुलोंसे आयी हैं तथा सर्वगुणसम्पन्न और संतानवती हैं। वहां जाकर उनसे कहना, 'बहुओ ! युधिष्ठिर प्रसन्न होकर तुम लोगोंका कुशल-समाचार पूछते थे' ॥ ३४ ॥

कन्याः स्वजेथाः सदनेषु संजय अनामयं मद्वचनेन पृष्ट्वा ।
कल्याणा वः सन्तु पतयोऽनुकूला यूयं पतीनां भवतानुकूलाः ॥ ३५ ॥

संजय ! राजमहलमें जो छोटी-छोटी बालिकाएँ हैं, उन्हें हृदयसे लगाना और मेरी ओरसे उनका आरोग्य-समाचार पूछकर उन्हें कहना- 'पुत्रियो ! तुम्हें कल्याणकारी पति प्राप्त हों और वे तुम्हारे अनुकूल बने रहें। साथ ही तुम भी पतियोंके अनुकूल बनी रहो' ॥३५॥

अलंकृता वस्त्रवत्यः सुगन्धा अबीभत्साः सुखिता भोगवत्यः ।
लघु यासां दर्शनं वाक्च लघ्वी वेशस्त्रियः कुशलं तात पृच्छेः ॥ ३६ ॥

तात संजय ! जिनका दर्शन मनोहर और बातें मनको प्रिय लगनेवाली होती हैं, जो वेश-भूषासे अलङ्कृत, सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित, उत्तम सुगन्ध धारण करनेवाली, घृणित व्यवहारसे रहित, सुखशालिनी और भोग-सामग्रीसे सम्पन्न हैं, उन वेश (शृङ्गार) धारण करानेवाली स्त्रियोंकी भी कुशल पूछना ॥ ३६ ॥

दासीपुत्रा ये च दासाः कुरूणां तदाश्रया बहवः कुब्जखञ्जाः ।
आख्याय मां कुशलिनं स्म तेभ्यो अनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम् ॥ ३७ ॥

कौरवोंके जो दास तथा दासियोंके पुत्र हो तथा उनके आश्रित जो बहुतसे कुबडे और लंगडे मनुष्य रहते हों, उन सबसे मुझे सकुशल बताकर अन्तमें मेरी ओरसे उनकी भी कुशल पूछना ॥ ३७ ॥

कच्चिद्वृत्तिर्वर्तते वै पुराणी कच्चिद्भोगान्धार्तराष्ट्रो ददाति ।
अङ्गहीनाकृपणान्वामनांश्च आनृशंस्याद्धृतराष्ट्रो बिभर्ति ॥ ३८ ॥

क्या राजा धृतराष्ट्र दयावश जिन अङ्गहीनों, दीनों और बौने मनुष्योंका पालन करते हैं, उन्हें दुर्योधन भरण-पोषणकी सामग्री देता है ? क्या वह उनकी प्राचीन जीविका-वृत्तिका निर्वाह करता है ? ॥ ३८ ॥

अन्धाश्च सर्वे स्थविरास्तथैव हस्ताजीवा बहवो येऽत्र सन्ति।
आख्याय मां कुशलिनं स्म तेषामनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम्॥ ३९॥

हस्तिनापुरमें जो बहुतसे हाथीवान् हैं तथा जो अन्धे और बूढे हैं, उन सबको मेरी कुशल बताकर अन्तमें मेरी ओरसे उनके भी आरोग्य आदिका समाचार पूछना॥ ३९॥

मा भैष्ट दुःखेन कुजीवितेन नूनं कृतं परलोकेषु पापम्।
निगृह्य शत्रून्सुहृदोऽनुगृह्य वासोभिरन्नेन च वो भरिष्ये॥ ४०॥

साथ ही उन्हें आश्वासन देते हुए मेरा यह संदेश सुना देना। तुम्हें जो दुःख प्राप्त होता है अथवा कुत्सित जीवन बिताना पडता है, इसके कारण तुमलोग भयभीत न होना। निश्चय ही यह दूसरे जन्मोंमें किये हुए पापका फल प्रकट हुआ है। मैं कुछ ही दिनोंमें अपने शत्रुओंको कैद करके हितैषी सुहृदोंपर कृपा करते हुए अन्न और वस्त्रद्वारा तुमलोगोंका भरण-पोषण करूँगा॥ ४०॥

सन्त्येव मे ब्राह्मणेभ्यः कृतानि भावीन्यथो नो बत वर्तयन्ति।
पश्याम्यहं युक्तरूपांस्तथैव तामेव सिद्धिं श्रावयेथा नृपं तम्॥ ४१॥

राजा दुर्योधनसे कहना, मैंने कुछ ब्राह्मणोंके लिये वार्षिक जीविका-वृत्तियाँ नियत कर रक्खी थीं, किंतु खेद है कि तुम्हारे कर्मचारीगण उन्हें ठीकसे नहीं चला रहे हैं! मैं उन ब्राह्मणोंको पुनः पूर्ववत् उन्हीं वृत्तियोंसे युक्त देखना चाहता हूँ। तुम किसी दूतके द्वारा मुझे यह समाचार सुना दो कि उन वृत्तियोंका अब यथावत् रूपसे पालन होने लगा है॥ ४१॥

ये चानाथा दुर्बलाः सर्वकालमात्मन्येव प्रयतन्तेऽथ मूढाः।
तांश्चापि त्वं कृपणान्सर्वथैव अस्मद्वाक्यात्कुशलं तात पृच्छेः॥ ४२॥

संजय! जो अनाथ, दुर्बल एवं मूर्खजन सदा अपने शरीरका पोषण करनेके लिये ही प्रयत्न करते हैं, तुम मेरे कहनेसे उन दीनजनोंके पास भी जाकर सब प्रकारसे उनका कुशल-समाचार पूछना॥ ४२॥

ये चाप्यन्ये संश्रिता धार्तराष्ट्रान्नानादिग्भ्योऽभ्यागताः सूतपुत्र।
दृष्ट्वा तांश्चैवार्हतश्चापि सर्वान्सम्पृच्छेथाः कुशलं चाव्ययं च॥ ४३॥

सूतपुत्र! इनके अलावा विभिन्न दिशाओंसे आये हुए दूसरे-दूसरे लोग धृतराष्ट्र पुत्रोंका आश्रय लेकर रहते हैं। उन सब माननीय पुरुषोंसे भी मिलकर उनकी कुशल और उनके जीवनके सम्बन्धमें भी प्रश्न करना॥ ४३॥

एवं सर्वानागताभ्यागतांश्च राज्ञो दूतान्सर्वदिग्भ्योऽभ्युपेतान् ।
पृष्ट्वा सर्वान्कुशलं तांश्च सूत पश्चादहं कुशली तेषु वाच्यः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार वहाँ सब दिशाओंसे स्वयं पधारे हुए तथा बुलाये गए राजदूतों तथा अन्य सब अभ्यागतोंसे कुशल-मंगल पूछकर अन्तमें उनसे मेरा कुशल-समाचार भी निवेदन करना ॥ ४४ ॥

न हीदृशाः सन्त्यपरे पृथिव्यां ये योधका धार्तराष्ट्रेण लब्धाः ।
धर्मस्तु नित्यो मम धर्म एव महाबलः शत्रुनिबर्हणाय ॥ ४५ ॥

यद्यपि दुर्योधनने जिन योद्धाओंको प्राप्त किया है, वैसे वीर इस भूमण्डलमें दूसरे नहीं है, तथापि धर्म ही नित्य है और मेरे पास शत्रुओंका नाश करनेके लिये धर्मका ही सबसे महान् बल है ॥ ४५ ॥

इदं पुनर्वचनं धार्तराष्ट्रं सुयोधनं संजय श्रावयेथाः ।
यस्ते शरीरे हृदयं दुनोति कामः कुरूनसपत्नोऽनुशिष्याम् ॥ ४६ ॥

संजय ! दुर्योधनको तुम मेरी यह बात पुनः सुना देना कि मैं कौरवोंका निष्कण्टक राज्य करूँ, यह तुम्हारे मनकी अभिलाषा तुम्हारे हृदयको पीडामात्र दे रही है ॥ ४६ ॥

न विद्यते युक्तिरेतस्य काचिन्नैवंविधाः स्याम यथा प्रियं ते ।
ददस्व वा शक्रपुरं ममैव युध्यस्व वा भारतमुख्य वीर ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ८३३ ॥

उसकी सिद्धिका कोई उपाय नहीं है । हम ऐसे पौरुषहीन नहीं हैं कि तुम्हारा यह प्रिय कार्य होने दें । भरतवंशके प्रमुख वीर ! तुम इन्द्रप्रस्थपुरी फिर मुझे ही लौटा दो अथवा युद्ध करो ' ॥ ४७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ ८३३ ॥

: ३१ :

युधिष्ठिर उवाच

उत सन्तमसन्तं च बालं वृद्धं च संजय ।
उताबलं बलीयांसं धाता प्रकुरुते वशे ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– संजय ! साधु–असाधु, बालक-वृद्ध तथा निर्बल एवं बलिष्ठ–सबको विधाता अपने वशमें रखता है ॥ १ ॥

उत बालाय पाण्डित्यं पण्डितायोत बालताम् ।
ददाति सर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन् ॥ २ ॥

वही सबका नियन्ता प्राणियोंके पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार उन्हें सब प्रकारका फल देता है। वही मूर्खको विद्वान् और विद्वान्को मूर्ख बना देता है॥ २ ॥

अलं विज्ञापनाय स्यादाचक्षीथा यथातथम् ।
अथो मन्त्रं मन्त्रयित्वा अन्योन्येनातिहृष्टवत् ॥ ३ ॥

अब ज्यादा कहनेकी जरूरत नहीं है तुम ही उन्हें सब ठीक-ठीक बता देना । जिससे वे प्रसन्न होकर आपसमें सलाह करके अपने कर्तव्यका निश्चय कर सकें ॥ ३ ॥

गावल्गणे कुरून्गत्वा धृतराष्ट्रं महाबलम् ।
अभिवाद्योपसंगृह्य ततः पृच्छेरनामयम् ॥ ४ ॥

संजय ! तुम कुरुदेशमें जाकर मेरी ओरसे महाबली धृतराष्ट्रको प्रणाम करके दोनों पैर पकड लेना और उनसे स्वास्थ्यका समाचार पूछना ॥ ४ ॥

ब्रूयाश्चैनं त्वमासीनं कुरुभिः परिवारितम् ।
तवैव राजन्वीर्येण सुखं जीवन्ति पाण्डवाः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् कौरवोंसे घिरकर बैठे हुए उन महाराज धृतराष्ट्रसे तुम कहना— ' राजन् ! पाण्डव-लोग आपके ही सामर्थ्यसे सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं ॥ ५ ॥

तव प्रसादाद्बालास्ते प्राप्ता राज्यमरिंदम ।
राज्ये तान्स्थापयित्वाग्रे नोपेक्षीर्विनशिष्यतः ॥ ६ ॥

शत्रुदमन नरेश ! जब वे बालक थे, तब आपकी ही कृपासे उन्हें राज्य मिला था । पहले उन्हें राज्यपर बिठाकर अब नष्ट होनेवाले उन पाण्डवोंकी उपेक्षा न कीजिये ॥ ६ ॥

सर्वमप्येतदेकस्य नालं संजय कस्यचित् ।
तात संहत्य जीवामो मा द्विषद्भ्यो वशं गमः ॥ ७ ॥

संजय ! उन्हें यह भी बताना कि ' तात ! यह सारा राज्य किसी एकके ही लिये पर्याप्त नहीं है । हम सब लोग मिलकर एक साथ रहकर सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करें, आप शत्रुओंके वशमें न पडे ' ॥ ७ ॥

तथा भीष्मं शान्तनवं भारतानां पितामहम् ।
शिरसाभिवदेथास्त्वं मम नाम प्रकीर्तयन् ॥ ८ ॥

इसी तरह भरतवंशियोंके पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मको भी मेरा नाम लेते हुए सिर झुकाकर प्रणाम करना ॥ ८ ॥

अभिवाद्य च वक्तव्यस्ततोऽस्माकं पितामहः ।
भवता शान्तनोर्वंशो निमग्नः पुनरुद्धृतः ॥ ९ ॥

और प्रणामके पश्चात् हमारे उन पितामहसे इस प्रकार कहना— 'आपने शान्तनुके डूबते वंशका पुनरुद्धार किया है ॥ ९ ॥

स त्वं कुरु तथा तात स्वमतेन पितामह ।
यथा जीवन्ति ते पौत्राः प्रीतिमन्तः परस्परम् ॥ १० ॥

हे पितामह ! अब फिर अपनी बुद्धिसे विचार करके कोई ऐसा काम कीजिये, जिससे आपके सभी पौत्र परस्पर प्रेमपूर्वक जीवन बिता सकें ॥ १० ॥

तथैव विदुरं ब्रूयाः कुरूणां मन्त्रधारिणम् ।
अयुद्धं सौम्य भाषस्व हितकामो युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥

संजय ! इसी प्रकार कौरवोंके मन्त्री विदुरसे कहना— 'सौम्य ! युधिष्ठिरका हित चाहनेवाले आप युद्ध न होनेकी ही सलाह दें ॥ ११ ॥

अथो सुयोधनं ब्रूया राजपुत्रममर्षणम् ।
मध्ये कुरूणामासीनमनुनीय पुनः पुनः ॥ १२ ॥

तदनन्तर कौरवोंकी सभामें बैठे हुए अमर्षमें भरे रहनेवाले राजकुमार सुयोधनसे बार-बार अनुनय-विनय करके कहना ॥ १२ ॥

अपश्यन्मामुपेक्षन्तं कृष्णामेकां सभागताम् ।
तद्दुःखमतितिक्षाम मा वधीष्म कुरूनिति ॥ १३ ॥

सभामें आई हुई अकेली कृष्णाको पाससे देखते हुए भी मेरी तरफ न देखकर तुमने उसका अपमान किया, उस दुःखको हम लोगोंने इसलिये चुपचाप सह लिया है कि हमें कौरवोंका वध न करना पड़े ॥ १३ ॥

एवं पूर्वापरान्क्लेशानतितिक्षन्त पाण्डवाः ।
यथा बलीयसः सन्तस्तत्सर्वं कुरवो विदुः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार पाण्डवोंने अत्यन्त बलिष्ठ होते हुए भी जो (तुम्हारे दिये हुए) पहले और पीछेके सभी क्लेशोंको सहन किया है, उसे सब कौरव जानते हैं ॥ १४ ॥

यन्नः प्राव्राजयः सौम्य अजिनैः प्रतिवासितान् ।
तद्दुःखमतितिक्षाम मा वधीष्म कुरूनिति ॥ १५ ॥

सौम्य ! तुमने हम लोगोंको मृगछाला पहनाकर जो वनमें निर्वासित कर दिया, उस दुःखको भी हमने इसलिये सह लिया कि हमें कौरवोंका वध न करना पड़े ॥ १५ ॥

यत्तत्सभायामाक्रम्य कृष्णां केशेष्वधर्षयत् ।
दुःशासनस्तेऽनुमते तच्चास्माभिरुपेक्षितम् ॥ १६ ॥

तुम्हारी अनुमतिसे दुःशासनने आगे बढकर सभामें जो द्रौपदीके केश पकड लिये, उस अपराधको भी हमने इसीलिये उपेक्षा कर दी ॥ १६ ॥

यथोचितं स्वकं भागं लभेमहि परंतप ।
निवर्तय परद्रव्ये बुद्धिं गृद्धां नरर्षभ ॥ १७ ॥

परंतप ! परंतु अब हम अपना उचित भाग निश्चय ही लेंगे । नरश्रेष्ठ ! तुम दूसरोंके धनमें लगी हुई अपनी लोभयुक्त बुद्धि हटा लो ॥ १७ ॥

शान्तिरेवं भवेद्राजन्प्रीतिश्चैव परस्परम् ।
राज्यैकदेशमपि नः प्रयच्छ शममिच्छताम् ॥ १८ ॥

राजन् ! इस प्रकार हमलोगोंमें परस्पर शान्ति एवं प्रीति बनी रह सकती है । शान्ति चाहनेवाले हमें भले ही तुम राज्यका एक हिस्सा ही दे दो ॥ १८ ॥

कुशस्थलं वृकस्थलमासन्दी वारणावतम् ।
अवसानं भवेदत्र किंचिदेव तु पञ्चमम् ॥ १९ ॥

कुशस्थल, वृकस्थल, मासन्दी, वारणावत तथा पाँचवाँ कोई भी एक गाँव दे दो । इसीपर युद्धकी समाप्ति हो जायगी ॥ १९ ॥

भ्रातॄणां देहि पञ्चानां ग्रामान्पञ्च सुयोधन ।
शान्तिर्नोऽस्तु महाप्राज्ञ ज्ञातिभिः सह संजय ॥ २० ॥

'सुयोधन ! हम पाँच भाइयोंको पाँच गाँव दे दो ।' महाप्राज्ञ संजय ! ऐसा हो जानेपर अपने कुटुम्बीजनोंके साथ हम लोगोंकी शान्ति बनी रहेगी ॥ २० ॥

भ्राता भ्रातरमन्वेतु पिता पुत्रेण युज्यताम् ।
स्मयमानाः समायान्तु पाञ्चालाः कुरुभिः सह ॥ २१ ॥

'भाई भाईसे मिले और पिता पुत्रसे मिले । पाञ्चालदेशीय क्षत्रिय कुरुवंशियोंके साथ मुसकराते हुए मिलें ॥ २१ ॥

अक्षतान्कुरुपाञ्चालान्पश्येम इति कामये ।
सर्वे सुमनसस्तात शाम्याम भरतर्षभ ॥ २२ ॥

मेरी यही कामना है कि कौरवों तथा पाञ्चालोंको अक्षतशरीर देखूँ । तात ! भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ! हम सब लोग प्रसन्नचित्त होकर शान्त हो जायँ' ॥ २२ ॥

अलमेव शमायास्मि तथा युद्धाय संजय ।
धर्मार्थयोरलं चाहं मृदवे दारुणाय च ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ ८५६ ॥

संजय ! मैं शान्ति रखनेमें भी समर्थ हूँ और युद्ध करनेमें भी । धर्म और अर्थके विषयका भी मुझे ठीक-ठीक ज्ञान है। मैं समयानुसार कोमल होनेमें भी और कठोर होनेमें भी समर्थ हूँ ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ ८५६ ॥

: ३२ :

वैशम्पायन उवाच

अनुज्ञातः पाण्डवेन प्रययौ संजयस्तदा ।
शासनं धृतराष्ट्रस्य सर्वं कृत्वा महात्मनः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर संजय महामना राजा धृतराष्ट्रके सम्पूर्ण आदेशोंका पालन करके उस समय वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ १ ॥

सम्प्राप्य हास्तिनपुरं शीघ्रं च प्रविवेश ह ।
अन्तःपुरमुपस्थाय द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

हस्तिनापुर पहुंचकर उन्होंने शीघ्र ही राजभवनमें प्रवेश किया और अन्तःपुरके निकट जाकर द्वारपालसे यह वचन कहा ॥ २ ॥

आचक्ष्व मां धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ उपागतं पाण्डवानां सकाशात् ।
जागर्ति चेदभिवदेस्त्वं हि क्षत्तः प्रविशेयं विदितो भूमिपस्य ॥ ३ ॥

'द्वारपाल ! तुम राजा धृतराष्ट्रको पाण्डवोंके पाससे आये हुए मेरे बारेमें सूचना दो । द्वारपाल ! यदि जागते हों तो तुम उन्हें मेरा प्रणाम कहना। राजाकी सूचना मिल जानेपर मैं भीतर प्रवेश करूँगा' ॥ ३ ॥

द्वाःस्थ उवाच

संजयोऽयं भूमिपते नमस्ते दिदृक्षया द्वारमुपागतस्ते ।
प्राप्तो दूतः पाण्डवानां सकाशात्प्रशाधि राजन्किमयं करोतु ॥ ४ ॥

द्वारपालने कहा— महाराज ! आपको नमस्कार है । पाण्डवोंके पाससे लौटे हुए दूत संजय आपके दर्शनकी इच्छासे द्वारपर खडे हैं। राजन् ! आज्ञा दीजिये, ये संजय क्या करें ? ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आचक्ष्व मां सुखिनं काल्यमस्मै प्रवेश्यतां स्वागतं संजयाय ।

न चाहमेतस्य भवाम्यकाल्यः स मे कस्माद्द्वारि तिष्ठेत क्षत्तः ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र बोले— द्वारपाल ! संजयका स्वागत है । उसे कहो कि मैं सकुशल हूँ, अतः, इस समय उससे भेंट करनेको तैयार हूँ । उसे भीतर ले आओ । उससे मिलनेमें मुझे कभी भी अडचन नहीं होती । फिर वह दरवाजेपर क्यों खडा है ? ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रविश्यानुमते नृपस्य महद्वेश्म प्राज्ञशूरार्यगुप्तम् ।

सिंहासनस्थं पार्थिवमाससाद वैचित्रवीर्यं प्राञ्जलिः सूतपुत्रः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! इस प्रकार राजाकी आज्ञा पाकर सूतपुत्र संजयने बुद्धिमान्, शूरवीर तथा श्रेष्ठ पुरुषोंसे सुरक्षित विशाल राजभवनमें प्रवेश किया और सिंहासनपर बैठे हुए विचित्रवीर्यनन्दन महाराज धृतराष्ट्रके पास जा हाथ जोडकर कहा ॥ ६ ॥

संजय उवाच

संजयोऽहं भूमिपते नमस्ते प्राप्तोऽस्मि गत्वा नरदेव पाण्डवान् ।

अभिवाद्य त्वां पाण्डुपुत्रो मनस्वी युधिष्ठिरः कुशलं चान्वपृच्छत् ॥ ७ ॥

संजय बोला— भूपाल ! आपको नमस्कार है । नरदेव ! मैं संजय हूं और पाण्डवोंके पास जाकर लौटा हूं । उदारचित्त पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने आपको प्रणाम करके आपकी कुशल पूछी है ॥ ७ ॥

स ते पुत्रान्पृच्छति प्रीयमाणः कच्चित्पुत्रैः प्रीयसे नप्तृभिश्च ।

तथा सुहृद्भिः सचिवैश्च राजन्ये चापि त्वामुपजीवन्ति तैश्च ॥ ८ ॥

उन्होंने बडी प्रसन्नताके साथ आपके पुत्रोंका समाचार पूछा है । राजन् ! आप अपने पुत्रों, नातियों, सुहृदों, मन्त्रियों तथा जो आपके आश्रित रहकर जीवननिर्वाह करते हैं, उन सबके साथ आनन्दपूर्वक हैं न ? ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अभ्येत्य त्वां तात वदामि संजय अजातशत्रुं च सुखेन पार्थम् ।

कच्चित्स राजा कुशली सपुत्रः सहामात्यः सानुजः कौरवाणाम् ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र बोले— तात संजय ! मैं तुम्हारा स्वागत करके पूछता हूं कि कुन्तीनन्दन अजातशत्रु युधिष्ठिर सुखसे हैं न ? क्या कौरवोंके राजा युधिष्ठिर अपने पुत्र, मन्त्री तथा छोटे भाइयोंसहित सकुशल हैं ? ॥ ९ ॥

×

तवापीमे मन्त्रविदः समेत्य समासते कर्मसु नित्ययुक्ताः ।
तेषामयं बलवान्निश्चयश्च कुरुक्षयार्थे निरयो व्यपादि ॥ २० ॥
सदा कर्मोंमें नियुक्त किये हुए ये आपके मन्त्रवेत्ता मन्त्री कर्ण आदि एकत्र होकर बैठक किया करते हैं । इन्होंने पाण्डवोंको राज्य न देनेका जो प्रबल निश्चय कर लिया है, यह अवश्य ही कौरवोंके भावी विनाशका कारण बन गया है ॥ २० ॥

अकालिकं कुरवो नाभविष्यन्पापेन चेत्पापमजातशत्रुः ।
इच्छेज्जातु त्वयि पापं विसृज्य निन्दा चेयं तव लोकेऽभविष्यत् ॥ २१ ॥
राजन् ! यदि अजातशत्रु युधिष्ठिर आपको ही दोषी ठहराकर आपपर ही सारे पापों दोषोंका भार डालकर आपकी ही भाँति पापके बदले पाप करनेकी इच्छा कर लें तो सारे कौरव असमयमें ही नष्ट हो जायँ और संसारमें केवल आपकी निन्दा फैल जाय ॥ २१ ॥

किमन्यत्र विषयादीश्वराणां यत्र पार्थः परलोकं ददर्श ।
अत्यक्रामत्स तथा सम्मतः स्यान्न संशयो नास्ति मनुष्यकारः ॥ २२ ॥
ऐसी कौनसी वस्तु है, जो लोकपालोंके अधिकारसे बाहर हो ? तभी तो अर्जुन इन्द्रकील पर्वतपर लोकपालोंसे मिलकर एवं उनसे अस्त्र प्राप्त करके भू और भुवर्लोकको लांघकर स्वर्गलोकको देखनेके लिये गये थे । इस प्रकार लोकपालों द्वारा सम्मानित होनेपर भी यदि उन्हें कष्ट भोगना पडता है तो निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि दैवबलके सामने मनुष्यका पुरुषार्थ कुछ भी नहीं है ॥ २२ ॥

एतान्गुणादन्कर्मकृतानवेक्ष्य भावाभावौ वर्तमानावनित्यौ ।
बलिर्हि राजा पारमविन्दमानो नान्यत्कालात्कारणं तत्र मेने ॥ २३ ॥
ये शौर्य, विद्या आदि गुण अपने पूर्वकर्मके अनुसार ही प्राप्त होते हैं और प्राणियोंकी वर्तमान उन्नति तथा अवनति भी अनित्य हैं । यह सब सोचकर राजा बलिने जब इसका पार नहीं पाया, तब उसने यही माना कि इस विषयमें काल दैवके सिवा और कोई कारण नहीं है ॥ २३ ॥

चक्षुः श्रोत्रे नासिका त्वक्च जिह्वा ज्ञानस्यैतान्यायतनानि जन्तोः ।
तानि प्रीतान्येव तृष्णाक्षयान्ते तान्यव्यथो दुःखहीनः प्रणुद्यात् ॥ २४ ॥
आंख, कान, नाक, त्वचा तथा जिह्वा ये पांच ज्ञानेन्द्रियां समस्त प्राणियोंके रूप आदि विषयोंके ज्ञानके स्थान कारण हैं । तृष्णाका अन्त होनेके पश्चात् ये सदा प्रसन्न ही रहती हैं । अतः, मनुष्यको चाहिये कि वह व्यथा और दुःखसे रहित हो तृष्णाकी निवृत्तिके लिये उन इन्द्रियोंको अपने वशमें करे ॥ २४ ॥

न त्वेवमन्ये पुरुषस्य कर्म संवर्तते सुप्रयुक्तं यथावत् ।
मातुः पितुः कर्मणाभिप्रसूतः संवर्धते विधिवद्भोजनेन ॥ २५ ॥

कहते हैं, केवल पुरुषार्थका अच्छे ढंगसे प्रयोग होनेपर भी वह उत्तम फल देनेवाला होता है, जैसा माता-पिताके प्रयत्नसे उत्पन्न हुआ पुत्र विधिपूर्वक भोजनादि द्वारा वृद्धिको प्राप्त होता है; परंतु मैं इस मान्यतापर विश्वास नहीं करता क्योंकि इस विषयमें दैव ही प्रधान है ॥ २५ ॥

प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजन्निन्दाप्रशंसे च भजेत एनम् ।
परस्त्वेनं गर्हयतेऽपराधे प्रशंसते साधुवृत्तं तमेव ॥ २६ ॥

राजन्! इस जगत्में प्रिय–अप्रिय, सुख–दुःख, निन्दा–प्रशंसा ये मनुष्यको प्राप्त होते ही रहते हैं। इसीलिये लोग अपराध करनेपर अपराधीकी निन्दा करते हैं और यदि उसका ही बर्ताव उत्तम होता है, उसकी साधु पुरुष ही प्रशंसा करते हैं ॥ २६ ॥

स त्वा गर्हे भारतानां विरोधादन्तो नूनं भवितायं प्रजानाम् ।
नो चेदिदं तव कर्मापराधात्कुरून्दहेत्कृष्णवर्त्मेव कक्षम् ॥ २७ ॥

अतः, आप जो भरतवंशमें विरोध फैलाते हैं, इसके कारण मैं तो आपकी निन्दा करता हूं; क्योंकि इस कौरव-पाण्डव विरोधसे निश्चय ही समस्त प्रजाओंका विनाश होगा। यदि आप मेरे कथनानुसार कार्य नहीं करेंगे तो आपके अपराधसे अर्जुन समस्त कौरववंशको उसी प्रकार दग्ध कर डालेंगे, जैसे आग घास-फूसके समूहको जला देती है ॥ २७ ॥

त्वमेवैको जातपुत्रेषु राजन्वशं गत्वा सर्वलोके नरेन्द्र ।
कामात्मनां श्लाघसे द्यूतकाले नान्यच्छमात्पश्य विपाकमस्य ॥ २८ ॥

राजन्! महाराज! समस्त संसारमें एकमात्र आप ही अपने स्वेच्छाचारी पुत्रकी प्रशंसा करते हुए उसके अधीन होकर द्यूतक्रीडाके समय जो उसकी प्रशंसा करते थे तथा राज्यका लोभ छोडकर शान्त न हो सके, उसका अब यह भयंकर परिणाम अपनी आंखों देख लीजिये ॥ २८ ॥

अनाप्तानां प्रग्रहात्त्वं नरेन्द्र तथाप्तानां निग्रहाच्चैव राजन् ।
भूमिं स्फीतां दुर्बलत्वादनन्तां न शक्तस्त्वं रक्षितुं कौरवेय ॥ २९ ॥

नरेन्द्र! आपने ऐसे लोगों शकुनि-कर्ण आदि पर कृपा की है, जो विश्वासके योग्य नहीं हैं तथा विश्वसनीय पुरुषों पाण्डवोंको आपने दण्ड दिया है, अतः, कुरुकुलनन्दन! अपनी इस मानसिक दुर्बलताके कारण आप अनन्त एवं समृद्धिशालिनी पृथिवीकी रक्षा करनेमें कभी समर्थ नहीं हो सकते ॥ २९ ॥

अनुज्ञातो रथवेगावधूतः श्रान्तो निपद्ये शयनं नृसिंह।
प्रातः श्रोतारः कुरवः सभायामजातशत्रोर्वचनं समेताः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ समाप्तं संजययानपर्व ॥ ८८६ ॥

नरश्रेष्ठ। यदि आपकी आज्ञा हो तो रथके वेगसे हिलने डुलनेके कारण थका हुआ मैं सोनेके लिये जाऊं। प्रातःकाल जब सभी कौरव सभामें एकत्र होंगे, उस समय वे अजातशत्रु युधिष्ठिरके वचन सुनेंगे ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ संजययानपर्व समाप्त ॥ ८८६ ॥

: ३३ :

वैशंपायन उवाच

द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः।
विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय माचिरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय! संजयके चले जानेपर महाबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने द्वारपालसे कहा– 'मैं विदुरसे मिलना चाहता हूं। उन्हें यहां शीघ्र बुला लाओ' ॥ १ ॥

प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत्।
ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रका भेजा हुआ वह दूत जाकर विदुरसे बोला– 'महामते! हमारे स्वामी महाराज धृतराष्ट्र आपसे मिलना चाहते हैं' ॥ २ ॥

एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम्।
अब्रवीद्धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां प्रतिवेदय ॥ ३ ॥

उसके ऐसा कहनेपर विदुर राजमहलके पास जाकर बोले– 'द्वारपाल! धृतराष्ट्रको मेरे आनेकी सूचना दो' ॥ ३ ॥

द्वाःस्थ उवाच

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र तव शासनात्।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम् ॥ ४ ॥

द्वारपाल बोला– महाराज! आपकी आज्ञासे विदुर यहां आ पहुंचे हैं, वे आपके चरणोंका दर्शन करना चाहते हैं। मुझसे कहिए कि वे क्या करें? ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम् ।
अहं हि विदुरस्यास्य नाकाल्यो जातु दर्शने ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र बोले— महाबुद्धिमान् दूरदर्शी विदुरको भीतर ले आओ, मुझे इस विदुरसे मिलनेमें कभी भी अडचन नहीं है ॥ ५ ॥

द्वाःस्थ उवाच

प्रविशान्तःपुरं क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः ।
न हि ते दर्शनेऽकाल्यो जातु राजा ब्रवीति माम् ॥ ६ ॥

द्वारपाल बोला— विदुर ! आप बुद्धिमान् महाराज धृतराष्ट्रके अन्तःपुरमें प्रवेश कीजिये । महाराजने मुझसे कहा है कि मुझे विदुरसे मिलनेमें कभी अडचन नहीं है ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम् ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम् ॥ ७ ॥

वैशम्पायन बोले— राजन् ! तदनन्तर विदुर धृतराष्ट्रके महलके भीतर जाकर चिन्तामें पडे हुए राजासे हाथ जोडकर बोले ॥ ७ ॥

विदुरोऽहं महाप्राज्ञ सम्प्राप्तस्तव शासनात् ।
यदि किंचन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ॥ ८ ॥

' महाप्राज्ञ ! मैं विदुर हूं, आपकी आज्ञासे यहां आया हूँ । यदि मेरे करने योग्य कुछ काम हो तो मैं उपस्थित हूं, मुझे आज्ञा कीजिये ' ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संजयो विदुर प्राप्तो गर्हयित्वा च मां गतः ।
अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र बोले— विदुर ! संजय आया था, वह मुझे बुरा-भला कहकर चला गया है । कल सभामें वह अजातशत्रु युधिष्ठिरके वचन सुनायेगा ॥ ९ ॥

तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया ।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत्प्रजागरम् ॥ १० ॥

आज मैं उस कुरुवीर युधिष्ठिरकी बात न जान सका । यही मेरे अङ्गोंको जला रहा है और इसीने मुझे अबतक जगा रक्खा है ॥ १० ॥

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदिह पश्यसि।
तद्ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥ ११ ॥

तात ! चिन्तासे जलते हुए तथा अभीतक जागते हुए मेरे लिये जो कल्याणकी बात समझो, वह कहो; क्योंकि हमलोगोंमें तुम्हीं धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण हो ॥ ११ ॥

यतः प्राप्तः संजयः पाण्डवेभ्यो न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः।
सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि किं वक्ष्यतीत्येव हि मेऽद्य चिन्ता ॥ १२ ॥

संजय जबसे पाण्डवोंके यहाँसे लौटकर आया है, तबसे मेरे मनको पूर्ण शान्ति नहीं मिलती। सभी इन्द्रियाँ विकल हो रही हैं। कल वह क्या कहेगा, इसी बातकी मुझे इस समय बड़ी भारी चिन्ता हो रही है ॥ १२ ॥

विदुर उवाच

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम्।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥ १३ ॥

विदुर बोले– राजन् ! जिसका बलवान्के साथ विरोध हो गया है, उस साधनहीन दुर्बल मनुष्यको, जिसका सब कुछ हर लिया गया है, उसको, कामीको तथा चोरको रातमें नींद नहीं आती ॥ १३ ॥

कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप।
कच्चिन्न परवित्तेषु गृध्यन्विपरितप्यसे ॥ १४ ॥

नरेन्द्र ! कहीं आपका भी इन महान् दोषोंसे सम्पर्क तो नहीं हो गया है ? कहीं पराये धनके लोभसे तो आप कष्ट नहीं पा रहे हैं ? ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः।
अस्मिन्राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र बोले– विदुर ! मैं तुम्हारे धर्मयुक्त तथा कल्याण करनेवाले सुन्दर वचन सुनना चाहता हूँ; क्योंकि इस राजर्षिवंशमें केवल तुम्हीं विद्वानोंके भी माननीय हो ॥ १५ ॥

विदुर उवाच

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पण्डितलक्षणम् ॥ १६ ॥

विदुर बोले– जो अच्छे कर्मोंका सेवन करता और बुरे कर्मोंसे दूर रहता है, साथ ही जो आस्तिक और श्रद्धालु है, उसके वे सद्गुण पण्डित होनेके लक्षण हैं ॥ १६ ॥

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्यमानिता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १७ ॥

क्रोध, हर्ष, गर्व, लज्जा, उद्दण्डता तथा अपनेको पूज्य समझना—ये भाव जिसको पुरुषार्थसे भ्रष्ट नहीं करते, वही पण्डित कहलाता है ॥ १७ ॥

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे ।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १८ ॥

दूसरे लोग जिसके कर्तव्य, सलाह और पहलेसे किये हुए विचारको नहीं जानते, परंतु काम पूरा होनेपर ही जानते हैं, वही पण्डित कहलाता है ॥ १८ ॥

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥ १९ ॥

सर्दी-गरमी, भय-अनुराग, सम्पत्ति अथवा दरिद्रता ये जिसके कार्यमें विघ्न नहीं डालते, वही पण्डित कहलाता है ॥ १९ ॥

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते ।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते ॥ २० ॥

जिसकी लौकिक बुद्धि धर्म और अर्थका ही अनुसरण करती है और जो भोगको छोडकर पुरुषार्थका ही वरण करता है, वही पण्डित कहलाता है ॥ २० ॥

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते ।
न किंचिदवमन्यन्ते पण्डिता भरतर्षभ ॥ २१ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! पण्डित शक्तिके अनुसार काम करनेकी इच्छा रखते हैं और शक्तिके अनुसार करते भी हैं तथा किसी वस्तुको तुच्छ समझकर उसकी अवहेलना नहीं करते ॥ २१ ॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।
नासम्पृष्टो व्युपयुङ्क्ते परार्थे तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ २२ ॥

विद्वान् पुरुष किसी विषयको देरतक सुनता है; किंतु शीघ्र ही समझ लेता है, समझकर कर्तव्यबुद्धिसे पुरुषार्थमें प्रवृत्त होता है— कामनासे नहीं, बिना पूछे दूसरेके विषयमें व्यर्थ कोई बात नहीं कहता, उसका यह स्वभाव पण्डितकी मुख्य पहचान है ॥ २२ ॥

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥ २३ ॥

पण्डितोंकीसी बुद्धि रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ वस्तुकी कामना नहीं करते, खोयी हुई वस्तुके विषयमें शोक करना नहीं चाहते और विपत्तिमें घबराते नहीं हैं ॥ २३ ॥

×

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥ २४ ॥

जो पहले निश्चय करके फिर कार्यका आरम्भ करता है, कार्यके बीचमें नहीं रुकता, समयको व्यर्थ नहीं जाने देता और चित्तको वशमें रखता है, वही पण्डित कहलाता है ॥ २४ ॥

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते ।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ॥ २५ ॥

भरतकुलभूषण ! पण्डितजन श्रेष्ठ कर्मोंमें रुचि रखते हैं, उन्नतिके कार्य करते हैं तथा भलाई करनेवालोंसे ईर्ष्या नहीं करते ॥ २५ ॥

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते ।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ॥ २६ ॥

जो अपना आदर होनेपर हर्षके मारे फूल नहीं उठता, अनादरसे संतप्त नहीं होता तथा गंगाके ह्रद गहरे गर्तके समान जिसके चित्तको क्षोभ नहीं होता, वही पण्डित कहलाता है ॥ २६ ॥

तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ॥ २७ ॥

जो सम्पूर्ण भौतिक पदार्थोंकी असलियतका ज्ञान रखनेवाला, सब कार्योंके करनेका ढंग जाननेवाला तथा मनुष्योंमें सबसे बढकर उपायका जानकार है, वह मनुष्य पण्डित कहलाता है ॥ २७ ॥

प्रवृत्तवाक्चित्रकथ ऊहवान्प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च स वै पण्डित उच्यते ॥ २८ ॥

जिसकी वाणी कहीं रुकती नहीं, जो विचित्र ढंगसे बातचीत करता है, तर्कमें निपुण और प्रतिभाशाली है तथा जो ग्रन्थके तात्पर्यको शीघ्र बता सकता है, वह पण्डित कहलाता है ॥ २८ ॥

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥ २९ ॥

जिसकी विद्या बुद्धिका अनुसरण करती है और बुद्धि विद्याका अनुसरण करती है तथा जो शिष्ट पुरुषोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता, वही पण्डितकी संज्ञा पा सकता है ॥ २९ ॥

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ ३० ॥

बिना पढे ही गर्व करनेवाले, दरिद्र होकर भी बडे-बडे मनोरथ करनेवाले और बिना काम किये ही धन पानेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको पण्डितलोग मूर्ख कहते हैं ॥ ३० ॥

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥ ३१ ॥

जो अपना कर्तव्य छोडकर दूसरेके कर्तव्यका पालन करता है तथा मित्रके साथ असत् आचरण करता है, वह मूर्ख कहलाता है ॥ ३१ ॥

अकामान्कामयति यः कामयानान्परिद्विषन् ।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३२ ॥

जो न चाहनेवालोंको चाहता है और चाहनेवालोंसे द्वेष करता है तथा जो अपनेसे बलवान्के साथ वैर बाँधता है, उसे मूढ विचारका मनुष्य कहते हैं ॥ ३२ ॥

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च ।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३३ ॥

जो शत्रुको मित्र बनाता और मित्रसे द्वेष करते हुए उसे कष्ट पहुँचाता है तथा सदा बुरे कर्मोंका आरम्भ किया करता है, उसे मूढ चित्तवाला कहते हैं ॥ ३३ ॥

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते ।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जो अपने कामोंको व्यर्थ ही फैलाता है, सर्वत्र संदेह करता है तथा शीघ्र होनेवाले काममें भी देर लगाता है, वह मूढ है ॥ ३४ ॥

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
विश्वसत्यप्रमत्तेषु मूढचेता नराधमः ॥ ३५ ॥

मूढ चित्तवाला अधम मनुष्य बिना बुलाये ही भीतर चला आता है, बिना पूछे ही बहुत बोलता है तथा अविश्वसनीय मनुष्यपर भी विश्वास करता है ॥ ३५ ॥

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रुध्यत्यनीशः सन्स च मूढतमो नरः ॥ ३६ ॥

स्वयं दोषयुक्त बर्ताव करते हुए भी जो दूसरेपर उसके दोष बताकर आक्षेप करता है तथा जो स्वामी न होते हुए भी व्यर्थका क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है ॥ ३६ ॥

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम् ।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥ ३७ ॥

जो अपने बलको न समझकर बिना काम किये ही धर्म और अर्थसे विरुद्ध तथा न पाने योग्य वस्तुकी इच्छा करता है, वह पुरुष इस संसारमें मूढबुद्धि कहलाता है ॥ ३७ ॥

अशिष्यं शास्ति यो राजन्यश्च शून्यमुपासते।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३८ ॥

राजन्! जो अनधिकारीको उपदेश देता और शून्यकी उपासना करता है तथा जो कृपणका आश्रय लेता है, उसे मूढ चित्तवाला कहते हैं ॥ ३८ ॥

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥ ३९ ॥

जो बहुत धन, विद्या तथा ऐश्वर्यको पाकर भी उद्दण्डतापूर्वक नहीं चलता, वह पण्डित कहलाता है ॥ ३९ ॥

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ॥ ४० ॥

जो अपने द्वारा भरण-पोषणके योग्य व्यक्तियोंको बाँटे बिना अकेले ही उत्तम भोजन करता और अच्छा वस्त्र पहनता है, उससे बढकर क्रूर कौन होगा? ॥ ४० ॥

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥ ४१ ॥

मनुष्य अकेला पाप करके धन कमाता है और उस धनका उपभोग बहुतसे लोग करते हैं। उपभोग करनेवाले तो दोषसे छूट जाते हैं, पर उसका कर्ता दोषका भागी होता है ॥ ४१ ॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥ ४२ ॥

किसी धनुर्धर वीरके द्वारा छोडा हुआ बाण सम्भव है, एकको भी मारे या न मारे। परन्तु बुद्धिमान् द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजाके साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्रका विनाश कर सकती है ॥ ४२ ॥

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव ॥ ४३ ॥

एक बुद्धिसे दो कर्तव्य और अकर्तव्यका निश्चय करके चार साम, दान, भेद, दण्डसे तीन शत्रु, मित्र तथा उदासीनको वशमें कीजिये। पाँच इन्द्रियोंको जीतकर छः सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रयरूप गुणोंको जानकर तथा सात स्त्री, जूआ, मृगया, मद्य, कठोर वचन, दण्डकी कठोरता और अन्यायसे धनोपार्जनको छोडकर सुखी हो जाइये ॥ ४३ ॥

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविस्रवः ॥ ४४ ॥

विषका रस एक पीनेवालेको ही मारता है, शस्त्रसे एकका ही वध होता है; किंतु गुप्त मन्त्रणाका प्रकाशित होना राष्ट्र और प्रजाके साथ ही राजाका भी विनाश कर डालता है ॥ ४४ ॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥ ४५ ॥

अकेले स्वादिष्ट भोजन न करे, अकेला किसी विषयका निश्चय न करे, अकेला रास्ता न चले और बहुतसे लोग सोये हों तो उनमें अकेला न जागता रहे ॥ ४५ ॥

एकमेवाद्वितीयं तद्यद्राजन्नावबुध्यसे ।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥ ४६ ॥

राजन् ! जैसे समुद्रके पार जानेके लिये नाव ही एकमात्र साधन है, उसी प्रकार स्वर्गके लिये सत्य ही एकमात्र सोपान है, दूसरा नहीं; किंतु आप इसे नहीं समझ रहे हैं ॥ ४६ ॥

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपलभ्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ४७ ॥

क्षमाशील पुरुषोंमें एक ही दोष होता है, दूसरेकी तो सम्भावना ही नहीं है । वह दोष यह है कि क्षमाशील मनुष्यको लोग असमर्थ समझ लेते हैं ॥ ४७ ॥

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा दृष्टिरहिंसैका सुखावहा ॥ ४८ ॥

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है । एक विद्या ही परम दृष्टि है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देनेवाली है ॥ ४८ ॥

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ ४९ ॥

बिलमें रहनेवाले जीवोंको जैसे साँप खा जाता है, उसी प्रकार यह पृथ्वी शत्रुसे विरोध न करनेवाले राजा और परदेश सेवन न करनेवाले ब्राह्मण—इन दोनोंको खा जाती है ॥ ४९ ॥

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिँल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन्परुषं किंचिदसतो नार्थयंस्तथा ॥ ५० ॥

जरा भी कठोर न बोलना और दुष्ट पुरुषोंका आदर न करना—इन दो कर्मोंका करनेवाला मनुष्य इस लोकमें विशेष शोभा पाता है ॥ ५० ॥

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ ।
स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥ ५१ ॥

दूसरी स्त्री द्वारा चाहे गये पुरुषकी कामना करनेवाली स्त्रियाँ तथा दूसरोंके द्वारा पूजित मनुष्यका आदर करनेवाले पुरुष— ये दो प्रकारके लोग दूसरोंपर विश्वास करके चलनेवाले होते हैं ॥ ५१ ॥

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषणौ ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥ ५२ ॥

जो निर्धन होकर भी बहुमूल्य वस्तुकी इच्छा रखता और स्वामी न होकर भी क्रोध करता है, ये दोनों ही अपने लिये तीक्ष्ण काँटोंके समान हैं, एवं अपने शरीरको सुखानेवाले हैं ॥ ५२ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ राजन्स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥ ५३ ॥

राजन् ! ये दो प्रकारके पुरुष स्वर्गके भी ऊपर स्थान पाते हैं, शक्तिशाली होनेपर भी क्षमा करनेवाला और निर्धन होनेपर भी दान देनेवाला ॥ ५३ ॥

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥ ५४ ॥

न्यायपूर्वक उपार्जित किये हुए धनके दो ही दुरुपयोग समझने चाहिये, अपात्रको देना और सत्पात्रको न देना ॥ ५४ ॥

त्रयो न्याया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ॥ ५५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! मनुष्योंकी कार्यसिद्धिके लिये उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन प्रकारके न्यायानुकूल उपाय सुने जाते हैं, ऐसा वेदवेत्ता विद्वान् जानते हैं ॥ ५५ ॥

त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेद्यथावत्तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ ५६ ॥

राजन् ! उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन प्रकारके पुरुष होते हैं; इनको यथायोग्य तीन ही प्रकारके कर्मोंमें लगाना चाहिये ॥ ५६ ॥

त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ ५७ ॥

राजन् ! तीन ही धनके अधिकारी नहीं माने जाते स्त्री, पुत्र तथा दास । ये जो कुछ कमाते हैं, वह धन उसीका होता है, जिसके अधीन ये रहते हैं ॥ ५७ ॥

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात् ।
अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्यान्न दीर्घसूत्रैरलसैश्चारणैश्च ॥ ५८ ॥

थोडी बुद्धिवाले, दीर्घसूत्री, आलसी और स्तुति करनेवाले लोगोंके साथ गुप्त सलाह नहीं करनी चाहिये । ये चारों महाबली राजाके लिये त्यागने योग्य बताये गये हैं । विद्वान् पुरुष ऐसे लोगोंको पहचान ले ॥ ५८ ॥

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे ।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या ॥ ५९ ॥

तात ! गृहस्थधर्ममें स्थित लक्ष्मीवान् आपके घरमें चार प्रकारके मनुष्योंको सदा रहना चाहिये, अपने कुटुम्बका बूढा, संकटमें पडा हुआ उच्च कुलका मनुष्य, धनहीन मित्र और बिना संतानकी बहिन ॥ ५९ ॥

चत्वार्याह महाराज सद्यस्कानि बृहस्पतिः ।
पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोध मे ॥ ६० ॥

महाराज ! इन्द्रके पूछनेपर उनसे बृहस्पतिने जिन चारोंको तत्काल फल देनेवाला बताया था, उन्हें आप मुझसे सुनिये ॥ ६० ॥

देवतानां च संकल्पमनुभावं च धीमताम् ।
विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥ ६१ ॥

देवताओंका संकल्प, बुद्धिमानोंका प्रभाव, विद्वानोंकी नम्रता और पापियोंका विनाश ॥ ६१ ॥

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः ।
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥ ६२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरु मनुष्यको इन पाँच अग्नियोंकी बडे यत्नसे सेवा करनी चाहिये ॥ ६२ ॥

पञ्चैव पूजयँल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम् ।
देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥ ६३ ॥

देवता, पितर, मनुष्य, संन्यासी और अतिथि इन पाँचोंकी पूजा करनेवाला मनुष्य शुद्ध यश प्राप्त करता है ॥ ६३ ॥

पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि ।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ॥ ६४ ॥

राजन् ! आप जहाँ जहाँ जायँगे, वहाँ वहाँ मित्र, शत्रु, उदासीन, आश्रय देनेवाले तथा आश्रय पानेवाले ये पाँच आपके पीछे लगे रहेंगे ॥ ६४ ॥

पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम्।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम् ॥ ६५ ॥

पांच ज्ञानेन्द्रियोंवाले पुरुषकी यदि एक भी इन्द्रिय छिद्र अर्थात् दोष युक्त हो जाय तो उससे उसकी बुद्धि इस प्रकार बाहर निकल जाती है, जैसे मशकके छेदसे पानी ॥ ६५ ॥

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्री भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥ ६६ ॥

ऐश्वर्य या उन्नति चाहनेवाले पुरुषोंको नींद तन्द्रा—ऊँघना, डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता—जल्दी हो जानेवाले काममें अधिक देर लगानेकी आदत इन छः दुर्गुणोंको त्याग देना चाहिये ॥ ६६ ॥

षडिमान्पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ॥ ६७ ॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ॥ ६८ ॥

उपदेश न देनेवाले आचार्य, मन्त्रोच्चारण न करनेवाले होता, रक्षा करनेमें असमर्थ राजा, कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, ग्राममें रहनेकी इच्छावाले ग्वाले तथा वनमें रहनेकी इच्छावाले नाई इन छःको उसी भांति छोड दे, जैसे समुद्रकी सैर करनेवाला मनुष्य छिद्रयुक्त नावका परित्याग कर देता है ॥ ६७-६८ ॥

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥ ६९ ॥

मनुष्यको कभी भी सत्य, दान, कर्मण्यता, अनसूया गुणोंमें दोष दिखानेकी प्रवृत्तिका अभाव, क्षमा तथा धैर्य इन छः गुणोंका त्याग नहीं करना चाहिये ॥ ६९ ॥

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ॥ ७० ॥

मनमें नित्य रहनेवाले छः शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्यको जो वशमें कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पुरुष पापोंसे ही लिप्त नहीं होता, फिर उनसे उत्पन्न होनेवाले अनर्थोंसे युक्त होनेकी तो बात ही क्या है ? ॥ ७० ॥

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते ।
चोराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः ॥ ७१ ॥
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः ।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः ॥ ७२ ॥

निम्नाङ्कित छः प्रकारके मनुष्य छः प्रकारके लोगोंसे अपनी जीविका चलाते हैं, सातवेंकी उपलब्धि नहीं होती । चोर असावधान पुरुषसे, वैद्य रोगीसे, कामोन्मत्त स्त्रियां कामियोंसे, पुरोहित यजमानोंसे, राजा झगडनेवालोंसे तथा विद्वान् पुरुष मूर्खोंसे अपनी जीविका चलाते हैं ॥ ७१–७२ ॥

सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः ।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूलाश्च पार्थिवाः ॥ ७३ ॥
स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम् ।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥ ७४ ॥

ये सात दुःखदायी दोष राजाको सदा त्याग देने चाहिये । इनसे दृढमूल राजा भी प्रायः नष्ट हो जाते हैं । स्त्रीविषयक आसक्ति, जुआ, शिकार, मद्यपान, वचनकी कठोरता, अत्यन्त कठोर दण्ड देना और धनका दुरुपयोग करना ॥ ७३–७४ ॥

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः ।
ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ॥ ७५ ॥

विनाशके मुखमें पडनेवाले मनुष्यके आठ पूर्वचिह्न हैं प्रथम तो वह ब्राह्मणोंसे द्वेष करता है, फिर उनके विरोधका पात्र बनता है ॥ ७५ ॥

ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति ॥ ७६ ॥

ब्राह्मणोंका धन हडप लेता है, उनको मारना चाहता है, ब्राह्मणोंकी निन्दामें आनन्द मानता है, उनकी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता, ॥ ७६ ॥

नैतान्स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति
एतान्दोषान्नरः प्राज्ञो बुद्ध्या बुद्ध्वा विवर्जयेत् ॥ ७७ ॥

यज्ञ-यागादिमें उनका स्मरण नहीं करता तथा कुछ माँगनेपर उनमें दोष निकालने लगता है । इन सब दोषोंको बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धिसे समझे और समझकर त्याग दे ॥ ७७ ॥

×

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत ।
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव सुसुखान्यपि ॥ ७८ ॥

ये आठ हर्षके सार दिखायी देते हैं और ये ही अपने लौकिक सुखके भी साधन होते हैं ॥ ७८ ॥

समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः ।
पुत्रेण च परिष्वङ्गः संनिपातश्च मैथुने ॥ ७९ ॥

भारत ! मित्रोंसे समागम, अधिक धनकी प्राप्ति, पुत्रका आलिङ्गन, मैथुनमें संलग्न होना ॥ ७९ ॥

समये च प्रियालापः स्वयूथेषु च संनतिः ।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि ॥ ८० ॥

समयपर प्रिय वचन बोलना, अपने वर्गके लोगोंमें उन्नति, अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति और जनसमाजमें सम्मान ॥ ८० ॥

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान्यो वेद स परः कविः ॥ ८१ ॥

जो विद्वान् पुरुष आँख, कान आदि नौ दरवाजेवाले तीन सत्त्व, रज तथा तमरूपी खंभोंवाले, पांच ज्ञानेन्द्रियरूप साक्षीवाले, आत्माके निवासस्थान इस शरीररूपी गृहको तत्त्वसे जानता है, वह बहुत बडा ज्ञानी है ॥ ८१ ॥

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥ ८२ ॥

महाराज धृतराष्ट्र ! दस प्रकारके लोग धर्मके तत्त्वको नहीं जानते, उनके नाम सुनो । नशेमें मतवाला, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, ॥ ८२ ॥

त्वरमाणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु भावेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥ ८३ ॥

जल्दबाज, भयभीत लोभी और कामी ये दस हैं । अतः, इन सब लोगोंमें विद्वान् पुरुष आसक्त न होवे ॥ ८३ ॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीतं चैव सुधन्वना ॥ ८४ ॥

इसी विषयमें असुरोंके राजा प्रह्लादने सुधन्वाके साथ अपने पुत्रके प्रति कुछ उपदेश दिया था । नीतिज्ञलोग उस पुरातन इतिहासका उदाहरण देते हैं ॥ ८४ ॥

यः काममन्यू प्रजहाति राजा पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च ।
विशेषविच्छ्रुतवान्क्षिप्रकारी तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥ ८५ ॥

जो राजा काम और क्रोधका त्याग करता है और सुपात्रको धन देता है, विशेषज्ञ, शास्त्रोंका ज्ञाता और कर्तव्यको शीघ्र पूरा करनेवाला है, उसके व्यवहार और वचनोंको सब लोग प्रमाण मानते हैं ॥ ८५ ॥

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम् ।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा ॥ ८६ ॥

जो मनुष्योंमें विश्वास उत्पन्न करना जानता है, जिनका अपराध प्रमाणित हो गया है उन्हींको जो दण्ड देता है, जो दण्ड देनेकी न्यूनाधिक मात्रा तथा क्षमाका उपयोग जानता है, उस राजाकी सेवामें सम्पूर्ण सम्पत्ति चली आती है ॥ ८६ ॥

सुदुर्बलं नावजानाति कंचिद्युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम् ।
न विग्रहं रोचयते बलस्थैः काले च यो विक्रमते स धीरः ॥ ८७ ॥

जो किसी दुर्बलका अपमान नहीं करता, सदा सावधान रहकर शत्रुके साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानोंके साथ युद्ध पसंद नहीं करता तथा समय आनेपर पराक्रम दिखाता है, वही धीर है ॥ ८७ ॥

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिदुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः ।
दुःखं च काले सहते जितात्मा धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः ॥ ८८ ॥

जो धुरन्धर महापुरुष आपत्ति पडनेपर कभी दुःखी नहीं होता, बल्कि सावधानीके साथ उद्योगका आश्रय लेता है तथा समयपर दुःख सहता है, उसके शत्रु तो पराजित ही हैं ॥ ८८ ॥

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम् ।
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं न सेवते यः स सुखी सदैव ॥ ८९ ॥

जो घर छोडकर निरर्थक विदेशवास, पापियोंसे मेल, परस्त्रीगमन, पाखण्ड, चोरी, चुगलखोरी तथा मदिरापान इन सबका सेवन नहीं करता, वह सदा सुखी रहता है ॥ ८९ ॥

न संरम्भेणारभतेऽर्थवर्गमाकारितः शंसति तथ्यमेव ।
न मात्रार्थे रोचयते विवादं नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः ॥ ९० ॥

बुद्धिमान् जन क्रोध या उतावलीके साथ धर्म, अर्थ तथा कामका आरम्भ नहीं करता, पूछनेपर यथार्थ बात ही बतलाता है, विषयोंके लिये झगडा नहीं पसंद करता, आदर न पानेपर क्रुद्ध नहीं होता ॥ ९० ॥

न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति ।
नात्याह किंचित्क्षमते विवादं सर्वत्र तादृग्लभते प्रशंसाम् ॥ ९१ ॥

विवेक नहीं खो बैठता, दूसरोंके दोष नहीं देखता, सबपर दया करता है, असमर्थ होते हुए किसीकी जमानत नहीं देता, बढकर नहीं बोलता तथा विवादको सह लेता है, ऐसा मनुष्य सब जगह प्रशंसा पाता है ॥ ९१ ॥

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान् ।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किंचित्प्रियं सदा तं कुरुते जनोऽपि ॥ ९२ ॥

जो कभी उद्दण्डका-सा वेष नहीं बनाता, दूसरोंके सामने अपने पराक्रमकी श्लाघा भी नहीं करता, क्रोधसे व्याकुल होनेपर भी कटुवचन नहीं बोलता, उस मनुष्यको लोग सदा ही प्यारा बना लेते हैं ॥ ९२ ॥

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।
न दुर्गतोऽस्मीति करोति मन्युं तमार्यशीलं परमाहुरग्र्यम् ॥ ९३ ॥

जो शान्त हुई वैरकी आगको फिर प्रज्वलित नहीं करता, गर्व नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता तथा 'मैं विपत्तिमें पडा हूँ' ऐसा सोचकर क्रोध नहीं करता, उस उत्तम आचरणवाले उत्तम पुरुषको सर्वश्रेष्ठ कहते हैं ॥ ९३ ॥

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रतीतः ।
दत्त्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥ ९४ ॥

जो अपने सुखमें प्रसन्न नहीं होता, दूसरेके दुःखके समय हर्ष नहीं मानता और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सज्जनोंमें सदाचारी कहलाता है ॥ ९४ ॥

देशाचारान्समयाञ्जातिधर्मान्बुभूषते यस्तु परावरज्ञः ।
स तत्र तत्राधिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति ॥ ९५ ॥

जो मनुष्य देशके व्यवहार, अवसर तथा जातियोंके धर्मोंको तत्त्वसे जानना चाहता है, उसे उत्तम-अधमका विवेक हो जाता है । वह जहाँ कहीं भी जाता है, सदा महान् जनसमूहपर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है ॥ ९५ ॥

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम् ।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान्वर्जयेत्स प्रधानः ॥ ९६ ॥

जो बुद्धिमान् दम्भ, मोह, मात्सर्य, पापकर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी, समूहसे वैर और मतवाले, पागल तथा दुर्जनोंसे विवाद छोड देता है, वह श्रेष्ठ है ॥ ९६ ॥

दमं शौचं दैवतं मङ्गलानि प्रायश्चित्तं विविधाँल्लोकवादान्।
एतानि यः कुरुते नैत्यकानि तस्योत्थानं देवता राधयन्ति ॥ ९७ ॥
जो जितेन्द्रियता शौच देवपूजन, माङ्गलिक कर्म, प्रायश्चित्त तथा अनेक प्रकारके लौकिक आचार इन नित्य किये जानेयोग्य कर्मोंको करता है, देवतालोग उसके अभ्युदयकी सिद्धि करते हैं ॥ ९७ ॥

समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः समैः सख्यं व्यवहारं कथाश्च ।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरोदधाति विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः ॥ ९८ ॥
जो अपने बराबरवालोंके साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा बातचीत करता है, हीन पुरुषोंके साथ नहीं; और गुणोंमें बढे चढे पुरुषोंको सदा आगे रखता है, उस विद्वान्की नीति श्रेष्ठ नीति है ॥ ९८ ॥

मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा ।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥ ९९ ॥
जो अपने आश्रित जनोंको बाँटकर थोडा ही भोजन करता है, बहुत अधिक काम करके भी थोडा सोता है तथा माँगनेपर जो शत्रुको भी धन देता है, उस मनस्वी पुरुषको सारे अनर्थ दूरसे ही छोड देते हैं ॥ ९९ ॥

चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किंचित् ।
मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च स्वल्पो नास्य व्यथते कश्चिदर्थः ॥ १०० ॥
जिसके अपनी इच्छाके अनुकूल और दूसरोंकी इच्छाके विरुद्ध कार्यको दूसरे लोग कुछ भी नहीं जान पाते, मन्त्र गुप्त रहने और अभीष्ट कार्यका ठीक-ठीक सम्पादन होनेके कारण उसका थोडा भी काम विगडने नहीं पाता ॥ १०० ॥

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः सत्यो मृदुर्दानकृच्छुद्धभावः ।
अतीव संज्ञायते ज्ञातिमध्ये महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः ॥ १०१ ॥
जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंको शान्ति प्रदान करनेमें तत्पर, सत्यवादी, कोमल, दूसरोंको दान देनेवाला तथा पवित्र विचारवाला होता है, वह अच्छी खानसे निकले और चमकते हुए श्रेष्ठ रत्नकी भांति अपनी जातिवालोंमें अधिक प्रसिद्धि पाता है ॥ १०१ ॥

य आत्मनापत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत ।
अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः स्वतेजसा सूर्य इवावभासते ॥ १०२ ॥
जो स्वयं ही अधिक लज्जाशील है, वह सब लोगोंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। वह अपने अनन्त तेज, शुद्ध हृदय एवं एकाग्रतासे युक्त होनेके कारण कान्तिमें सूर्यके समान शोभा पाता है ॥ १०२ ॥

वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः पाण्डोः पुत्राः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः ।
त्वयैव बाला वर्धिता शिक्षिताश्च तवादेशं पालयन्त्याम्बिकेय ॥ १०३ ॥
अम्बिकानन्दन ! मृगरूपधारी किंदम ऋषिके शापसे दग्ध राजा पाण्डुके जो पांच पुत्र वनमें उत्पन्न हुए, वे पांच इन्द्रोंके समान शक्तिशाली हैं, उन्हें आपने ही बचपनसे पाला और शिक्षा दी है; वे भी आपकी आज्ञाका पालन करते रहते हैं ॥ १०३ ॥

प्रदायैषामुचितं तात राज्यं सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः ।
न देवानां नापि च मानुषाणां भविष्यसि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र ॥ १०४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ९९० ॥

तात ! उन्हें उनका न्यायोचित राज्यभाग देकर आप अपने पुत्रोंके साथ आनन्दित होते हुए सुख भोगिये । नरेन्द्र ! ऐसा करनेपर आप न देवताओं तथा नाही मनुष्योंकी आलोचनाके विषय रह जायँगे ॥ १०४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ ९९० ॥

: ३४ :

धृतराष्ट्र उवाच

जाग्रतो दह्यमानस्य यत्कार्यमनुपश्यसि ।
तद्ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलः शुचिः ॥ १ ॥
धृतराष्ट्र बोले— तात ! मैं चिन्तासे जलता हुआ अभीतक जाग रहा हूं; तुम मेरे करने-योग्य जो कार्य समझो, उसे बताओ; क्योंकि हमलोगोंमें तुम्हीं धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण हो ॥ १ ॥

त्वं मां यथावद्विदुर प्रशाधि प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः ।
यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्व श्रेयस्करं ब्रूहि तद्वै कुरूणाम् ॥ २ ॥
उदारचित्त विदुर ! तुम अपनी बुद्धिसे विचारकर मुझे ठीक-ठीक उपदेश करो । जो बात युधिष्ठिरके लिये हितकर और कौरवोंके लिये कल्याणकारी समझो, वह सब अवश्य बताओ ॥ २ ॥

पापाशङ्की पापमेवानुपश्यन्पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाहम् ।
कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथावन्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः ॥ ३ ॥
विद्वन् ! मेरे मनमें अनिष्टकी आशङ्का बनी रहती है, इसलिये मैं सर्वत्र अनिष्ट ही देखता हूं, अतः, व्याकुल-हृदयसे मैं तुमसे पूछ रहा हूं । अजातशत्रु युधिष्ठिर क्या चाहते हैं, सो सब ठीक-ठीक बताओ ॥ ३ ॥

विदुर उवाच

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत्पराभवम् ॥ ४ ॥

विदुर बोले– राजन् ! मनुष्यको चाहिये कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी अच्छी अथवा बुरी, कल्याण करनेवाली या अनिष्ट करनेवाली जो भी बात हो, बता दे ॥ ४ ॥

तस्माद्वक्ष्यामि ते राजन्भवमिच्छन्कुरून्प्रति ।
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ ५ ॥

इसलिये राजन् ! समस्त कौरवोंका हित चाहता हुआ मैं वही बात आपसे कहूंगा । मैं जो कल्याणकारी एवं धर्मयुक्त वचन कह रहा हूं, उन्हें आप ध्यान देकर सुनें ॥ ५ ॥

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत ।
अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ ६ ॥

भारत ! असत् उपायों अन्यायपूर्वक युद्ध एवं द्यूत आदिका प्रयोग करके जो कपटपूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, उनमें आप मन मत लगाइये ॥ ६ ॥

तथैव योगविहितं न सिध्येत्कर्म यन्नृप ।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥ ७ ॥

हे राजन् ! इसी प्रकार अच्छे उपायोंका उपयोग करके सावधानीके साथ किया गया कोई कर्म यदि सफल न हो तो बुद्धिमान् पुरुषको उसके लिये मनमें ग्लानि नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अनुबन्धानवेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु ।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥ ८ ॥

किसी प्रयोजनसे किये गये कर्मोंमें पहले प्रयोजनको समझ लेना चाहिये । खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिये, जल्दबाजीसे किसी कामका आरम्भ नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकांश्चैव कर्मणाम् ।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा ॥ ९ ॥

धीर मनुष्यको उचित है कि पहले कर्मोंका प्रयोजन, उन कर्मोंका परिणाम तथा अपनी उन्नतिका विचार करके फिर काम आरम्भ करे या न करे ॥ ९ ॥

यः प्रमाण न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ॥ १० ॥

जो राजा स्थिति, लाभ, हानि, खजाना, देश तथा दण्ड आदिकी मात्राको नहीं जानता, वह राज्यपर स्थिर नहीं रह सकता ॥ १० ॥

यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति ॥ ११ ॥

जो इनके प्रमाणोंको उपर्युक्त प्रकारसे ठीक ठीक जानता है तथा धर्म और अर्थके ज्ञानमें दत्तचित्त रहता है, वह राज्यको प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम्।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥ १२ ॥

'अब तो राज्य प्राप्त ही हो गया' ऐसा समझकर अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिये। उद्दण्डता सम्पत्तिको उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे सुन्दर रूपको बुढापा ॥ १२ ॥

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो बडिशमायसम्।
रूपाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते ॥ १३ ॥

जैसे मछली बढिया खाद्य वस्तुसे ढकी हुई लोहेकी काँटीको उसके रूपसे प्रभावित होकर निगल जाती है, उससे होनेवाले परिणामपर विचार नहीं करती अतएव मर जाती है ॥ १३ ॥

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे यत्तदद्यं भूतिमिच्छता ॥ १४ ॥

अतः, अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको वही वस्तु खानी या ग्रहण करनी चाहिये, जो परिणाममें अनिष्टकर न हो अर्थात् जो खाने योग्य हो तथा खायी जा सके, खाने या ग्रहण करने पर पच सके और पच जानेपर हितकारी हो ॥ १४ ॥

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥ १५ ॥

जो पेडसे कच्चे फलोंको तोडता है, वह उन फलोंसे रस तो पाता नहीं, परंतु उस वृक्षके बीजका भी नाश हो जाता है ॥ १५ ॥

यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलाद्रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥ १६ ॥

परंतु जो समयपर पके हुए फलको ग्रहण करता है, वह फलसे रस पाता है और उस बीजसे पुनः फल प्राप्त करता है ॥ १६ ॥

यथा मधु समादत्ते रक्षन्पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥ १७ ॥

जैसे भौंरा फूलोंकी रक्षा करता हुआ ही उनके मधुका ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजाजनोंको कष्ट दिये बिना ही उनसे धन ले ॥ १७ ॥

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः ॥ १८ ॥

जैसे माली बगीचेमें एक एक फूल तोडता है, उसकी जड नहीं काटता, उसी प्रकार राजा प्रजाकी रक्षापूर्वक उनसे कर ले । कोयला बनानेवालेकी तरह जडसे नहीं काटे ॥ १८ ॥

किं नु मे स्यादिदं कृत्वा किं नु मे स्यादकुर्वतः ।
इति कर्माणि संचिन्त्य कुर्याद् वा पुरुषो न वा ॥ १९ ॥

इसे करनेसे मेरा क्या लाभ होगा और करनेसे क्या हानि होगी, इस प्रकार कर्मोंके विषयमें भलीभाँति विचार करके फिर मनुष्य कर्म करे या न करे ॥ १९ ॥

अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथागताः ।
कृतः पुरुषकारोऽपि भवेद्येषु निरर्थकः ॥ २० ॥

कुछ ऐसे व्यर्थ कार्य हैं, जो नित्य अप्राप्त होनेके कारण आरम्भ करने योग्य नहीं होते; क्योंकि उनके लिये किया हुआ पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जाता है ॥ २० ॥

कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान् ।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥ २१ ॥

जिनका मूल साधन छोटा और फल महान् हो, बुद्धिमान् पुरुष उनको शीघ्र ही आरम्भ कर देता है; वैसे कामोंमें वह विघ्न नहीं आने देता ॥ २१ ॥

ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव ।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ॥ २२ ॥

जो राजा इस प्रकार प्रेमके साथ कोमल दृष्टिसे देखता है, मानो आँखोंसे पीना चाहता है, वह चुपचाप बैठा भी रहे, तो भी प्रजा उससे अनुराग रखती है ॥ २२ ॥

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
प्रसादयति लोकं यः तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥ २३ ॥

जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म इन चारोंसे प्रजाको प्रसन्न करता है, उसी राजाको प्रजा भी प्रसन्न करती और स्वयं भी प्रसन्न रहती है ॥ २३ ॥

यस्मात्त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव ।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥ २४ ॥

जैसे व्याधसे हरिन भयभीत होते हैं, उसी प्रकार जिससे समस्त प्राणी डरते हैं, वह समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीका राज्य पाकर भी प्रजाजनोंके द्वारा त्याग दिया जाता है ॥ २४ ॥

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान्स्वेन तेजसा ।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥ २५ ॥

अन्यायमें स्थित हुआ राजा बाप दादोंका राज्य पाकर भी अपने तेजसे उसे इस तरह भ्रष्ट कर देता है, जैसे हवा बादलको छिन्न भिन्न कर देती है ॥ २५ ॥

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः ।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्धनी ॥ २६ ॥

परम्परासे सज्जन पुरुषोंद्वारा किये हुए धर्मका आचरण करनेवाले राजाके राज्यकी पृथ्वी धन धान्यसे पूर्ण होकर उन्नतिको प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्यको बढाती है ॥ २६ ॥

अथ संत्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः ।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥ २७ ॥

जो राजा धर्मको छोडता और अधर्मका अनुष्ठान करता है, उसकी राज्यभूमि आगपर रक्खे हुए चमडेकी भाँति संकुचित हो जाती है ॥ २७ ॥

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रावमर्दने ।
स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥ २८ ॥

दूसरे राष्ट्रोंका नाश करनेके लिये जिस प्रकारका प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकारकी तत्परता अपने राज्यकी रक्षाके लिये करनी चाहिये ॥ २८ ॥

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत् ।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥ २९ ॥

धर्मसे ही राज्य प्राप्त करे और धर्मसे ही उसकी रक्षा करे; क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मीको पाकर न तो राजा उसे छोडता है और न वही राजाको छोडती है ॥ २९ ॥

अप्युन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिसर्पतः ।
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥ ३० ॥

निरर्थक बोलनेवाले, पागल तथा सरकनेवाले बच्चेसे भी सब ओरसे उसी भाँति सार बात ग्रहण करनी चाहिये, जैसे पत्थरोंमेंसे सोना लिया जाता है ॥ ३० ॥

सुव्याहृतानि सुधियां सुकृतानि ततस्ततः ।
संचिन्वन्धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा ॥ ३१ ॥

जैसे शिलोञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाला अनाजका एक एक दाना चुनता रहता है, उसी प्रकार धीर पुरुषको जहाँ-तहाँसे भावपूर्ण वचनों, उत्तम बुद्धि और सत्कर्मोंका संग्रह करते रहना चाहिये ॥ ३१ ॥

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः ।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥ ३२ ॥

गौएँ गन्धसे देखती हैं ब्राह्मणलोग वेदोंसे देखते हैं, राजा गुप्तचरोंसे देखते हैं और अन्य साधारण लोग आँखोंसे देखा करते हैं ॥ ३२ ॥

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा ।
अथ या सुदुहा राजन्नैव तां वितुदन्त्यपि ॥ ३३ ॥

राजन्! जो गाय बडी कठिनाईसे दुहने देती है, वह बहुत क्लेश उठाती है; किंतु आसानीसे दूध देती है, उसे लोग कहीं नहीं ले जाते ॥ ३३ ॥

यदतप्तं प्रणमति न तत्संतापयन्त्यपि ।
यच्च स्वयं नतं दारु न तत्संनामयन्त्यपि ॥ ३४ ॥

जो धातु बिना गरम किये मुड जाते हैं, उन्हें आगमें नहीं तपाते। जो काठ स्वयं झुका होता है, उसे कोई झुकानेका प्रयत्न नहीं करता ॥ ३४ ॥

एतयोपमया धीरः संनमेत बलीयसे ।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥ ३५ ॥

इस दृष्टान्तके अनुसार बुद्धिमान् पुरुषको अधिक बलवान्‌के सामने झुक जाना चाहिये; जो अधिक बलवान्‌के सामने झुकता है, वह मानो इन्द्रको प्रणाम करता है ॥ ३५ ॥

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मित्रबान्धवाः ।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः ॥ ३६ ॥

पशुओंके रक्षक या स्वामी हैं बादल, राजाओंके सहायक हैं मित्र, स्त्रियोंके बन्धु रक्षक हैं पति और ब्राह्मणोंके बान्धव हैं वेद ॥ ३६ ॥

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥ ३७ ॥

सत्यसे धर्मकी रक्षा होती है, योगसे विद्या सुरक्षित होती है, सफाईसे सुन्दर रूपकी रक्षा होती है और सदाचारसे कुलकी रक्षा होती है ॥ ३७ ॥

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः ।
अभीक्ष्णदर्शनाद्गावः स्त्रियो रक्ष्याः कुचेलतः ॥ ३८ ॥

भलीभाँति संभालकर रखनेसे अनाजकी रक्षा होती है, फेरनेसे घोडे सुरक्षित रहते हैं, बारंबार देख भाल करनेसे गौओंकी तथा मैले वस्त्रोंसे स्त्रियोंकी रक्षा होती है ॥ ३८ ॥

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।
अन्त्येष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥ ३९ ॥

मेरा ऐसा विचार है कि चरित्रसे हीन मनुष्यका केवल ऊँचा कुल मान्य नहीं हो सकता; क्योंकि नीच कुलमें उत्पन्न मनुष्यका भी चरित्र श्रेष्ठ माना जाता है ॥ ३९ ॥

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।
सुखे सौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥ ४० ॥

जो दूसरोंके धन, रूप, पराक्रम, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सम्मानपर डाह करता है, उसका यह रोग असाध्य है ॥ ४० ॥

अकार्यकरणाद्भीतः कार्याणां च विवर्जनात् ।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत्पिबेत् ॥ ४१ ॥

न करने योग्य काम करनेसे, करने योग्य काममें प्रमाद करनेसे तथा कार्यसिद्धि होनेके पहले ही मन्त्र प्रकट हो जानेसे डरना चाहिये और जिससे नशा चढे, ऐसी मादक वस्तु नहीं पीनी चाहिये ॥ ४१ ॥

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः ।
एते मदावलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥ ४२ ॥

विद्याका मद, धनका मद और तीसरा ऊँचे कुलका मद हैं। ये घमंडी पुरुषोंके लिये तो मद हैं, परंतु ये विद्या, धन और कुलीनता ही सज्जन पुरुषोंके लिये दमके साधन हैं ॥ ४२ ॥

असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भिः किंचित्कार्यं कदाचन ।
मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम् । ॥ ४३ ॥

कभी किसी कार्यमें सज्जनोंद्वारा प्रार्थित होनेपर दुष्टलोग अपनेको प्रसिद्ध दुष्ट जानते हुए भी सज्जन मानने लगते हैं ॥ ४३ ॥

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः ।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः ॥ ४४ ॥

मनस्वी पुरुषोंको सहारा देनेवाले संत हैं; संतोंके भी सहारे संत ही हैं; दुष्टोंको भी सहारा देनेवाले संत हैं, पर दुष्टलोग संतोंको सहारा नहीं देते ॥ ४४ ॥

जिता सभा वस्त्रवता समाशा गोमता जिता ।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम् ॥ ४५ ॥

अच्छे वस्त्रवाला सभाको जीतता—अपना प्रभाव जमा लेता है; जिसके पास गौ है, वह दूध, घी, मक्खन, खोवा आदि पदार्थोंके आस्वादनसे मीठे स्वादकी आकाङ्क्षाको जीत लेता है, सवारीसे चलनेवाला मार्गको जीत लेता—तय कर लेता है और शीलस्वभाववाला पुरुष सबपर विजय पा लेता है ॥ ४५ ॥

शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति ।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ॥ ४६ ॥

पुरुषमें शील ही प्रधान है; जिसका शील नष्ट हो जाता है, इस संसारमें उसका जीवन, धन और बन्धुओंसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ॥ ४६ ॥

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम् ।
लवणोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ॥ ४७ ॥

भारतश्रेष्ठ ! धनोन्मत्त तामस स्वभाववाले पुरुषोंके भोजनमें मांसकी, मध्यम श्रेणीवालोंके भोजनमें गोरसकी तथा दरिद्रोंके भोजनमें नमककी प्रधानता होती है ॥ ४७ ॥

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा ।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ॥ ४८ ॥

दरिद्र पुरुष सदा स्वादिष्ट भोजन ही करते हैं, क्योंकि भूख उनके भोजनमें विशेष स्वाद उत्पन्न कर देती है और वह भूख धनियोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है ॥ ४८ ॥

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
दरिद्राणां तु राजेन्द्र अपि काष्ठं हि जीर्यते ॥ ४९ ॥

राजन् ! संसारमें धनियोंमें प्रायः भोजनको पचानेकी शक्ति नहीं होती, किंतु दरिद्रोंके पेटमें काठ भी पच जाते हैं ॥ ४९ ॥

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद्भयम् ।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात्परं भयम् ॥ ५० ॥

अधम पुरुषोंको जीविका न होनेसे भय लगता है, मध्यम श्रेणीके मनुष्योंको मृत्युसे भय होता है; परंतु उत्तम पुरुषोंको अपमानसे ही महान् भय होता है ॥ ५० ॥

ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः ।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते ॥ ५१ ॥

यों तो मादक वस्तुओंके पीनेका नशा आदि भी नशा ही है, किंतु ऐश्वर्यका नशा तो बहुत ही बुरा है; क्योंकि ऐश्वर्यके मदसे मतवाला पुरुष भ्रष्ट हुए बिना होशमें नहीं आता ॥ ५१ ॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः ।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव ॥ ५२ ॥

वशमें न होनेके कारण विषयोंमें रमनेवाली इन्द्रियोंसे यह संसार उसी भाँति कष्ट पाता है, जैसे सूर्य आदि ग्रहोंसे नक्षत्र तिरस्कृत हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा ।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराड् ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य जीवोंको वशमें करनेवाली सहज पाँच इन्द्रियोंसे जीत लिया गया, उसकी आपत्तियाँ शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ती हैं ॥ ५३ ॥

अविजित्य य आत्मानममात्यान्विजिगीषते ।
अमित्रान्वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥ ५४ ॥

इन्द्रियोंसहित मनको जीते बिना ही जो मन्त्रियोंको जीतनेकी इच्छा करता है या मन्त्रियोंको अपने अधीन किये बिना शत्रुको जीतना चाहता है, उस अजितेन्द्रिय पुरुषको सब लोग त्याग देते हैं ॥ ५४ ॥

आत्मानमेव प्रथमं देशरूपेण यो जयेत् ।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥ ५५ ॥

जो पहले इन्द्रियोंसहित मनको ही एक देश समझकर जीत लेता है, उसके बाद यदि वह मन्त्रियों तथा शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करे तो उसे सफलता मिलती है ॥ ५५ ॥

वश्येन्द्रियं जितामात्यं धृतदण्डं विकारिषु ।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥ ५६ ॥

इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले तथा मंत्रियोंको जीतनेवाले, अपराधियोंको दण्ड देनेवाले और जाँच परखकर काम करनेवाले धीर पुरुषकी लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है ॥ ५६ ॥

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः ।
तैरप्रमत्तः कुशलः सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥ ५७ ॥

राजन्! मनुष्यका शरीर रथ है, आत्मा सारथि है और इन्द्रियाँ इसके घोड़े हैं। इनको वशमें करके सावधान रहनेवाला चतुर एवं धीर पुरुष काबूमें किये हुए घोड़ोंसे रथीकी भाँति सुखपूर्वक संसारपथका अतिक्रमण करता है ॥ ५७ ॥

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम् ।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ ५८ ॥

शिक्षा न पाये हुए तथा काबूमें न आनेवाले घोड़े जैसे मूर्ख सारथिको मार्गमें मार गिराते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियाँ वशमें न रहनेपर पुरुषको मार डालनेमें भी समर्थ होती हैं ॥ ५८ ॥

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः ।
इन्द्रियैः प्रसृतो बालः सुदुःखं मन्यते सुखम् ॥ ५९ ॥
इन्द्रियोंको वशमें न रखनेके कारण अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ समझकर अज्ञानी पुरुष बहुत बडे दुःखको भी सुख मान बैठता है ॥ ५९ ॥

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः ।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥ ६० ॥
जो धर्म और अर्थका परित्याग करके इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है, वह शीघ्र ही ऐश्वर्य, प्राण, धन तथा स्त्रीसे भी हाथ धो बैठता है ॥ ६० ॥

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद्भ्रश्यते हि सः ॥ ६१ ॥
जो अधिक धनका स्वामी होकर भी इन्द्रियोंपर अधिकार नहीं रखता, वह इन्द्रियोंको वशमें न रखनेके कारण ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥

आत्मनात्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ६२ ॥
मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको अपने अधीन कर अपनेसे ही अपने आत्माको जाननेकी इच्छा करे, क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है ॥ ६२ ॥

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहिताबुभौ ।
कामश्च राजन्क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥ ६३ ॥
राजन् ! जिस प्रकार सूक्ष्म छेदवाले जालमें फँसी हुई दो बडी बडी मछलियाँ मिलकर जालको काट डालती हैं, उसी प्रकार ये काम और क्रोध दोनों विवेकको लुप्त कर देते हैं ॥ ६३ ॥

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान्योऽधिगच्छति ।
स वै संभृतसंभारः सततं सुखमेधते ॥ ६४ ॥
जो इस जगत्में धर्म तथा अर्थका विचार करके विजय साधन सामग्रीका संग्रह करता है, वही उस सामग्रीसे युक्त होनेके कारण सदा सुखपूर्वक समृद्धिशाली होता रहता है ॥ ६४ ॥

यः पञ्चाभ्यन्तराञ्शत्रूनविजित्य मतिक्षयान् ।
जिगीषति रिपूनन्यान्रिपवोऽभिभवन्ति तम् ॥ ६५ ॥
जो बुद्धिको क्षीण करनेवाले पाँच इन्द्रियरूपी भीतरी शत्रुओंको जीते बिना ही दूसरे शत्रुओं-को जीतना चाहता है, उसे शत्रु पराजित कर देते हैं ॥ ६५ ॥

दृश्यन्ते हि दुरात्मानो वध्यमानाः स्वकर्मभिः ।
इन्द्रियाणामनीशत्वाद्राजानो राज्यविभ्रमैः ॥ ६६ ॥

इन्द्रियोंपर अधिकार न होनेके कारण दुष्ट जन अपने कर्मोंसे तथा राजालोग राज्यके भोगविलासोंसे बँधे रहते हैं ॥ ६६ ॥

असंत्यागात्पापकृतामपापांस्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात् ।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्तस्मात्पापैः सह सन्धिं न कुर्यात् ॥ ६७ ॥

पापाचारी दुष्टोंका त्याग न करके उनके साथ मिले रहनेसे निरपराध सज्जनोंको भी उन पापियोंके समान ही दण्ड प्राप्त होता है, जैसे सूखी लकडीमें मिल जानेसे गीली भी जल जाती है; इसलिये दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मेल न करे ॥ ६७ ॥

निजानुत्पततः शत्रून्पञ्च पञ्चप्रयोजनान् ।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद्ग्रसते नरम् ॥ ६८ ॥

जो पाँच विषयोंकी ओर दौडनेवाले अपने पाँच इन्द्रियरूपी शत्रुओंको मोहके कारण वशमें नहीं करता, उस मनुष्यको विपत्ति ग्रस लेती है ॥ ६८ ॥

अनसूयार्जवं शौचं संतोषः प्रियवादिता ।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥ ६९ ॥

गुणोंमें दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, संतोष, प्रिय वचन बोलना, इन्द्रियदमन, सत्य-भाषण तथा किसीको कष्ट न देना ये गुण दुरात्मा पुरुषोंमें नहीं होते ॥ ६९ ॥

आत्मज्ञानमनायासस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
वाक्चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत ॥ ७० ॥

भारत ! आत्मज्ञान, व्यर्थ किसीको कष्ट न देना, सहनशीलता, धर्मपरायणता, वचनकी रक्षा तथा दान ये गुण अधम पुरुषोंमें नहीं होते ॥ ७० ॥

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान् ।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥ ७१ ॥

मूर्ख मनुष्य विद्वानोंको गाली और निन्दासे कष्ट पहुंचाते हैं । गाली देनेवाला पापका भागी होता है और क्षमा करनेवाला पापसे मुक्त हो जाता है ॥ ७१ ॥

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् ।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ॥ ७२ ॥

दुष्ट पुरुषोंका बल है हिंसा, राजाओंका बल है दण्ड देना, स्त्रियोंका बल है सेवा और गुणवानोंका बल है क्षमा ॥ ७२ ॥

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः ।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम् ॥ ७३ ॥

राजन् ! वाणीका पूर्ण संयम तो बहुत कठिन माना ही गया है; परंतु विशेष अर्थयुक्त और चमत्कारपूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती, इसलिये अत्यन्त दुष्कर होनेपर भी वाणीका संयम करना ही उचित है ॥ ७३ ॥

अभ्यावहति कल्याणं विविधा वाक्सुभाषिता ।
सैव दुर्भाषिता राजन्नर्थायोपपद्यते ॥ ७४ ॥

राजन् ! मधुर शब्दोंमें कही हुई बात अनेक प्रकारसे कल्याण करती है; किंतु वही यदि कटु शब्दोंमें कही जाय तो महान् अनर्थका कारण बन जाती है ॥ ७४ ॥

संरोहति शरैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥ ७५ ॥

बाणोंसे बिंधा हुआ तथा फरसेसे काटा हुआ वन भी अंकुरित हो जाता है, किंतु कटु वचन कहकर वाणीसे किया हुआ भयानक घाव नहीं भरता ॥ ७५ ॥

कर्णिनालीकनाराचा निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥ ७६ ॥

कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाणोंको शरीरसे निकाल सकते हैं, परंतु कटु वचनरूपी बाण नहीं निकाला जा सकता; क्योंकि वह हृदयके भीतर धँस जाता है ॥ ७६ ॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ७७ ॥

कटु वचनरूपी बाण मुखसे निकलकर दूसरोंके मर्मस्थानपर ही चोट करते हैं; उनसे आहत मनुष्य रात दिन घुलता रहता है। अतः विद्वान् पुरुष दूसरोंपर उनका प्रयोग न करे ॥७७॥

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥ ७८ ॥

देवतालोग जिसे पराजय देते हैं, उसकी बुद्धिको पहले ही हर लेते हैं, इससे वह नीच कर्मोंपर ही अधिक दृष्टि रखता है ॥ ७८ ॥

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ७९ ॥

विनाशकाल उपस्थित होनेपर बुद्धि मलिन हो जाती है; फिर तो न्यायके समान प्रतीत होनेवाला अन्याय हृदयसे बाहर नहीं निकलता ॥ ७९ ॥

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां तव भारत।
पाण्डवानां विरोधेन न चैनामवबुध्यसे ॥ ८० ॥

भरतश्रेष्ठ! आपके पुत्रोंकी तथा आपकी भी वह बुद्धि पाण्डवोंके प्रति विरोधसे व्याप्त हो गयी है; आप इन्हें पहचान नहीं रहे हैं ॥ ८० ॥

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत्।
शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥ ८१ ॥

महाराज धृतराष्ट्र! जो राजलक्षणोंसे सम्पन्न होनेके कारण त्रिभुवनका भी राजा हो सकता है, वह आपका आज्ञाकारी युधिष्ठिर ही इस पृथ्वीका शासक होने योग्य है ॥ ८१ ॥

अतीव सर्वान्पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः।
तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित् ॥ ८२ ॥

वह धर्म तथा अर्थके तत्त्वको जाननेवाला, तेज और बुद्धिसे युक्त, पूर्ण सौभाग्यशाली तथा आपके सभी पुत्रोंसे बढ चढकर है ॥ ८२ ॥

आनृशंस्यादनुक्रोशाद्योऽसौ धर्मभृतां वरः।
गौरवात्तव राजेन्द्र बहून्क्लेशांस्तितिक्षति ॥ ८३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ १०७३ ॥

राजेन्द्र! धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर दया, सौम्यभाव तथा आपके प्रति गौरव बुद्धिके कारण बहुत कष्ट सह रहा है ॥ ८३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ १०७३ ॥

: ३५ :

धृतराष्ट्र उवाच

ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोला-- महाबुद्धे! तुम पुनः धर्म और अर्थसे युक्त बातें कहो। इन्हें सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती। इस विषयमें तुम विलक्षण बातें कह रहे हो ॥ १ ॥

विदुर उवाच

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
उभे एते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥ २ ॥

विदुर बोले-- राजन्! सब तीर्थोंमें स्नान और सब प्राणियोंके साथ कोमलताका बर्ताव ये दोनों एक समान हैं; अथवा कोमलताके बर्तावका विशेष महत्त्व है ॥ २ ॥

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो ।
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ३ ॥

विभो ! आप अपने पुत्र कौरव, पाण्डव दोनोंके साथ समानरूपसे कोमलताका बर्ताव कीजिये । ऐसा करनेसे इस लोकमें महान् सुयश प्राप्त करके मरनेके पश्चात् आप स्वर्गलोकमें जायँगे ॥ ३ ॥

यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोकेषु गीयते ।
तावत्स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते ॥ ४ ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! इन लोकोंमें जबतक मनुष्यकी पावन कीर्तिका गान किया जाता है, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ ४ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
विरोचनस्य संवादं केशिन्यर्थे सुधन्वना ॥ ५ ॥

इस विषयमें 'केशिनी' के लिये सुधन्वाके साथ विरोचनके विवादके वर्णनसे युक्त उस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ॥ ५ ॥

केशिन्युवाच

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद्विरोचन ।
अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति ॥ ६ ॥

केशिनी बोली— विरोचन ! ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं या दैत्य ? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं तो सुधन्वा ब्राह्मण ही मेरी शय्यापर क्यों न बैठे ? अर्थात् मैं सुधन्वासे ही विवाह क्यों न करूँ ? ॥ ६ ॥

विरोचन उवाच

प्राजापत्या हि वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः ।
अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः ॥ ७ ॥

विरोचनने कहा— केशिनी ! हम प्रजापतिकी श्रेष्ठ संतानें हैं, अतः सबसे उत्तम हैं । यह सारा संसार हम लोगोंका ही है । हमारे सामने देवता क्या हैं ? और ब्राह्मण कौन चीज हैं ? ॥ ७ ॥

केशिन्युवाच

इहैवास्स्व प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन ।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ ॥ ८ ॥

केशिनी बोली— विरोचन ! इसी जगह हम दोनों बैठें और प्रतीक्षा करें; कल प्रातःकाल सुधन्वा यहाँ आवेगा । फिर मैं तुम दोनोंको एकत्र उपस्थित देखूँगी ॥ ८ ॥

विरोचन उवाच

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे ।
सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टासि संगतौ ॥ ९ ॥

विरोचन बोला— कल्याणी ! तुम जैसा कहती हो, वही करूँगा । भीरु ! प्रातःकाल तुम मुझे और सुधन्वाको एक साथ उपस्थित देखोगी ॥ ९ ॥

सुधन्वोवाच

अन्वालभे हिरण्मयं प्राह्लादेऽहं तवासनम् ।
एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वासेयं त्वया सह ॥ १० ॥

सुधन्वा बोला— प्रह्लादनन्दन ! मैं तुम्हारे इस सुवर्णमय सुन्दर सिंहासनको केवल छू लेता हूं, तुम्हारे साथ इसपर बैठ नहीं सकता; क्योंकि ऐसा होनेसे हम दोनों एक समान हो जायँगे ॥ १० ॥

विरोचन उवाच

अन्वाहरन्तु फलकं कूर्चं वाप्यथ वा बृसीम् ।
सुधन्वन्न त्वमर्होऽसि मया सह समासनम् ॥ ११ ॥

विरोचन बोला— सुधन्वन् ! तुम्हारे लिये तो पीढा, चटाई या कुशका आसन सेवक ले आये तो उत्तम रहेगा, तुम मेरे साथ बराबरके आसनपर बैठने योग्य नहीं हो ॥ ११ ॥

सुधन्वोवाच

पितापि ते समासीनमुपासीतैव मामधः ।
बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किंचन बुध्यसे ॥ १२ ॥

सुधन्वा बोला— तुम्हारे पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर ही उच्चासनपर आसीन हुए मुझ सुधन्वाकी सेवा किया करते हैं । तुम अभी बालक हो, घरमें सुखसे पले हो; अतः तुम्हें इन बातोंका कुछ भी ज्ञान नहीं है ॥ १२ ॥

विरोचन उवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः ।
सुधन्वन्विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ॥ १३ ॥

विरोचन बोला— सुधन्वन् ! हम असुरोंके पास जो कुछ भी सोना, गौ, घोडा आदि धन है, उसकी मैं बाजी लगाता हूं; हम तुम दोनों चलकर जो इस विषयके जानकर हों, उनसे पूछें कि हम दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ? ॥ १३ ॥

सुधन्वोवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन ।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ॥ १४ ॥

सुधन्वा बोला– विरोचन ! सुवर्ण, गाय और घोडा तुम्हारे ही पास रहें । हम दोनों प्राणोंकी बाजी लगाकर, जो जानकार हों, उनसे पूछें ॥ १४ ॥

विरोचन उवाच

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते ।
न हि देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित् ॥ १५ ॥

विरोचन बोला– अच्छा, प्राणोंकी बाजी लगानेके पश्चात् हम दोनों कहां चलेंगे ? मैं न तो देवताओंके पास जा सकता हूं और न ही मनुष्योंसे निर्णय करा सकता हूं ॥ १५ ॥

सुधन्वोवाच

पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते ।
पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्रादो नानृतं वदेत् ॥ १६ ॥

सुधन्वा बोला– प्राणोंकी बाजी लग जानेपर हम दोनों तुम्हारे पिताके पास चलेंगे । मुझे विश्वास है कि प्रह्राद अपने बेटेके जीवनके लिये भी झूठ नहीं बोल सकते हैं ॥ १६ ॥

प्रह्राद उवाच

इमौ तौ सम्प्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह ।
आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गमिहागतौ ॥ १७ ॥

प्रह्रादने मन ही मन कहा– जो कभी भी एक साथ नहीं चले थे, वे ही दोनों ये सुधन्वा और विरोचन आज सांपकी तरह क्रुद्ध होकर एक ही राहसे यहांपर आज आए हैं ॥ १७ ॥

किं वै सहैव चरतो न पुरा चरतः सह ।
विरोचनैतत्पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना ॥ १८ ॥

फिर प्रकटरूपमें विरोचनसे कहा– विरोचन ! मैं तुमसे पूछता हूं, क्या सुधन्वाके साथ तुम्हारी मित्रता हो गयी है ? फिर कैसे एक साथ आ रहे हो ! पहले तो तुम दोनों कभी एक साथ नहीं चलते थे ॥ १८ ॥

विरोचन उवाच

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे ।
प्रह्राद तत्त्वां पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदीः ॥ १९ ॥

विरोचन बोला– हे प्रह्राद ! सुधन्वाके साथ मेरी मित्रता नहीं हुई है । हम दोनों प्राणोंकी बाजी लगाकर यहां आए हैं । मैं आपसे यथार्थ बात पूछता हूं । मेरे प्रश्नका झूठा उत्तर न दीजियेगा ॥ १९ ॥

प्रह्लाद उवाच

उदकं मधुपर्कं चाप्यानयन्तु सुधन्वने ।

ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरीकृता ॥ २० ॥

प्रह्लाद बोला— सेवको ! सुधन्वाके लिये जल और मधुपर्क भी लाओ। फिर सुधन्वासे कहा— ब्रह्मन् ! तुम मेरे पूजनीय हो, मैंने तुम्हें दान करनेके लिये खूब मोटी ताजी सफेद गौ रख रखी है ॥ २० ॥

सुधन्वोवाच

उदकं मधुपर्कं च पथ एवार्पितं मम ।

प्रह्लाद त्वं तु नौ प्रश्नं तथ्यं प्रब्रूहि पृच्छतोः ॥ २१ ॥

सुधन्वा बोला— प्रह्लाद ! जल और मधुपर्क तो मुझे मार्गमें ही मिल गया है। तुम तो तुमसे पूछनेवाले हम दोनोंके प्रश्नका उत्तर दो ॥ २१ ॥

प्रह्लाद उवाच

पुत्रो वान्यो भवान्ब्रह्मन्साक्ष्ये चैव भवेत्स्थितः ।

तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत् ॥ २२ ॥

प्रह्लाद बोले— ब्रह्मन् ! तुम दोनोंमेंसे एक मेरा पुत्र है और इधर तुम स्वयं उपस्थित हो; भला, तुम दोनोंके विवादमें मेरे जैसा मनुष्य कैसे निर्णय दे सकता है ? ॥ २२ ॥

अथ यो नैव प्रब्रूयात्सत्यं वा यदि वानृतम् ।

एतत्सुधन्वन्पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत् ॥ २३ ॥

सुधन्वन् ! अब मैं तुमसे यह बात पूछता हूं— जो सत्य न बोले अथवा असत्य निर्णय करे, ऐसे दुष्ट वक्ताकी क्या स्थिति होती है ? ॥ २३ ॥

सुधन्वोवाच

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः ।

यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत् ॥ २४ ॥

सुधन्वा बोला— सौतवाली स्त्री, जूएमें हारे हुए जुआरी और भार ढोनेसे व्यथित शरीरवाले मनुष्यकी रातमें जो स्थिति होती है, वही स्थिति उल्टा न्याय देनेवाले वक्ताकी भी होती है ॥ २४ ॥

नगरे प्रतिरुद्धः सन्बहिर्द्वारे बुभुक्षितः ।

अमित्रान्भूयसः पश्यन्दुर्विवक्ता स्म तां वसेत् ॥ २५ ॥

जो राजा नगरमें कैद होकर बाहरी दरवाजेपर भूखका कष्ट उठाता हुआ बहुतसे शत्रुओंको देखता है वही स्थिति झूठा निर्णय देनेवालेकी होती है ॥ २५ ॥

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ २६ ॥

अपने स्वार्थके वशीभूत हो पशुके लिये झूठ बोलनेसे पांच, गौके लिये झूठ बोलनेपर दस, घोडेके लिये असत्य भाषण करनेपर सौ पीढियोंको और मनुष्यके लिये झूठ बोलनेपर एक हजार पीढियोंको मनुष्य नरकमें गिराता है ॥ २६ ॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥ २७ ॥

सुवर्णके लिये झूठ बोलनेवाला अपनी भूत और भविष्य सभी पीढियोंको नरकमें गिराता है। पृथ्वीके लिए झूठ कहनेवाला तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है; इसलिये तुम भूमिके लिये कभी झूठ न बोलना ॥ २७ ॥

प्रह्लाद उवाच

मत्तः श्रेयानङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन ।
मातास्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः ॥ २८ ॥

प्रह्लाद बोला– विरोचन ! सुधन्वाके पिता अङ्गिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है, इसकी माता तुम्हारी मातासे श्रेष्ठ है; अतः, तुम आज सुधन्वाके द्वारा जीते गये ॥ २८ ॥

विरोचन सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव ।
सुधन्वन्पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम् ॥ २९ ॥

विरोचन ! अब सुधन्वा तुम्हारे प्राणोंका स्वामी है। सुधन्वन् ! अब यदि तुम दे दो तो मैं विरोचनको पुनः पाना चाहता हूँ ॥ २९ ॥

सुधन्वोवाच

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः ।
पुनर्ददामि ते तस्मात्पुत्रं प्रह्लाद दुर्लभम् ॥ ३० ॥

सुधन्वा बोला– प्रह्लाद ! तुमने धर्मको ही स्वीकार किया है, स्वार्थवश झूठ नहीं कहा है; इसलिये अब तुम्हारे इस दुर्लभ पुत्रको फिर तुम्हें दे रहा हूँ ॥ ३० ॥

एष प्रह्लाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात्कुमार्याः संनिधौ मम ॥ ३१ ॥

प्रह्लाद ! तुम्हारे इस पुत्र विरोचनको मैंने पुनः तुम्हें दे दिया; किंतु अब यह कुमारी केशिनीके निकट चलकर मेरे पैर धोवे ॥ ३१ ॥

विदुर उवाच

तस्माद्राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि ।
मा गमः ससुतामात्योऽत्ययं पुत्राननुभ्रमन् ॥ ३२ ॥

विदुर बोले— इसलिये राजेन्द्र ! आप पृथ्वीके लिये झूठ न बोलें। बेटेके स्वार्थवश सच्ची बात न कहकर पुत्र और मन्त्रियोंके साथ विनाशके मुखमें न जायँ ॥ ३२ ॥

न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम् ॥ ३३ ॥

देवतालोग चरवाहोंकी तरह डंडा लेकर किसीकी रक्षा नहीं करते । वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धिसे युक्त कर देते हैं ॥ ३३ ॥

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः ॥ ३४ ॥

मनुष्य जैसे जैसे कल्याणमें मन लगाता है, वैसे ही वैसे उसके सारे अभीष्ट सिद्ध होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥ ३४ ॥

न छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम् ।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥ ३५ ॥

कपटपूर्ण व्यवहार करनेवाले मायावीको वेद पापोंसे मुक्त नहीं करते; इसके विपरीत जैसे पंख निकल आनेपर चिडियोंके बच्चे घोंसला छोड देते हैं, उसी प्रकार वेद भी अन्तकालमें उस मायावीको त्याग देते हैं ॥ ३५ ॥

मत्तापानं कलहं पूगवैरं भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम् ।
राजद्विष्टं स्त्रीपुमांसोर्विवादं वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः ॥ ३६ ॥

उन्मत्त, शराब पीना, कलह, समूहके साथ वैर, पतिपत्नीमें भेद पैदा करना, कुटुम्ब-वालोंमें भेदबुद्धि उत्पन्न करना, राजाके साथ द्वेष, स्त्री और पुरुषमें विवाद और बुरे रास्ते, ये सब त्याग देनेयोग्य बताये गये हैं ॥ ३६ ॥

सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च ।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान्साक्ष्येष्वधिकुर्वीत सप्त ॥ ३७ ॥

हस्तरेखा देखनेवाला, चोरी करके व्यापार करनेवाला, जुआरी, वैद्य, शत्रु, मित्र और नर्तक इन सातोंको कभी भी गवाह न बनावे ॥ ३७ ॥

मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः।
एतानि चत्वार्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ॥ ३८ ॥
आदरके साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौनका पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदरके साथ यज्ञका अनुष्ठान ये चार कर्म भयको दूर करनेवाले हैं; किंतु वे ही यदि ठीक तरहसे सम्पादित न हों तो भय प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ ३८ ॥

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक्पारदारिकः ॥ ३९ ॥
घरमें आग लगानेवाला, विष देनेवाला, जारज संतानकी कमाई खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, शस्त्र बनानेवाला, चुगली करनेवाला, मित्रद्रोही, परस्त्रीलम्पट, ॥ ३९ ॥

भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विजः।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ४० ॥
गर्भकी हत्या करनेवाला, गुरुस्त्रीगामी, ब्राह्मण होकर शराब पीनेवाला, अधिक तीखे स्वभाववाला, कौएकी तरह कांव कांव करनेवाला, नास्तिक, वेदकी निन्दा करनेवाला, ॥४०॥

स्रुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चार्थवानपि।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात्सर्वे ब्रह्महणैः समाः ॥ ४१ ॥
ग्रामपुरोहित, व्रात्य, क्रूर तथा शक्तिमान् होते हुए भी 'मेरी रक्षा करो,' इस प्रकार कहनेवाले शरणागतका जो वध करता है ये सबके सब ब्रह्महत्यारोंके समान हैं ॥ ४१ ॥

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं युगे भद्रो व्यवहारेण साधुः।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः कृच्छ्रास्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च ॥ ४२ ॥
जलती हुई आगसे सुवर्णकी पहचान होती है, सदाचारसे सत्पुरुषकी, व्यवहारसे श्रेष्ठ पुरुषकी, भय प्राप्त होनेपर शूरकी, आर्थिक कठिनाईमें धीरकी और कठिन आपत्तिमें शत्रु एवं मित्रकी परीक्षा होती है ॥ ४२ ॥

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥ ४३ ॥
बुढापा सुन्दर रूपको, आशा धीरताको, मृत्यु प्राणोंको, असूया—गुणोंमें दोष देखनेका स्वभाव धर्माचरणको, क्रोध लक्ष्मीको, नीच पुरुषोंकी सेवा सत्स्वभावको, काम लज्जाको और अभिमान सर्वस्वको नष्ट कर देता है ॥ ४३ ॥

श्रीर्मङ्गलात्प्रभवति प्रागल्भ्यात्सम्प्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात्प्रतितिष्ठति ॥ ४४ ॥
शुभ कर्मोंसे लक्ष्मीकी उत्पत्ति होती है, प्रगल्भतासे वह बढती है, चतुरतासे जड जमा लेती है और संयमसे सुरक्षित रहती है ॥ ४४ ॥

x

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ ४५ ॥
आठ गुण पुरुषकी शोभा बढाते हैं । बुद्धि, कुलीनता, दम, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, बहुत न बोलना, यथाशक्ति दान देना और कृतज्ञ होना ॥ ४५ ॥

एतान्गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान्गुणानेष गुणोऽतिभाति ॥ ४६ ॥
तात ! एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणोंपर हठात् अधिकार जमा लेता है । जिस समय राजा किसी मनुष्यका सत्कार करता है, उस समय यह एक ही गुण सभी गुणोंसे बढकर शोभा पाता है ॥ ४६ ॥

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि ।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भिश्चत्वार्येषामन्ववयन्ति सन्तः ॥ ४७ ॥
राजन् ! मनुष्यलोकमें ये आठ गुण स्वर्गलोकका दर्शन करानेवाले हैं; इनमेंसे चार तो संतोंके साथ नित्य सम्बद्ध हैं, उनमें सदा विद्यमान रहते हैं और चारका सज्जन पुरुष अनुसरण करते हैं ॥ ४७ ॥

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः ।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यन्ववयन्ति सन्तः ॥ ४८ ॥
यज्ञ, दान, शास्त्रोंका अध्ययन और तप ये चार सज्जनोंके साथ नित्य सम्बद्ध हैं; और इन्द्रियनिग्रह, सत्य, सरलता तथा दयालुता इन चारोंका संतलोग अनुसरण करते हैं ॥४८॥

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥ ४९ ॥
जिस सभामें बडे बूढे नहीं, वह सभा नहीं; जो धर्मकी बात न कहें, वे बूढे नहीं; जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और कपटसे पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है ॥ ४९ ॥

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् ।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दश संसर्गयोनयः ॥ ५० ॥
सत्य, विनयकी मुद्रा, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और चमत्कार-पूर्ण बात कहना ये दस संसारके हेतु हैं ॥ ५० ॥

पापं कुर्वन्पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम् ।
पुण्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यमेवाश्नुते फलम् ॥ ५१ ॥
पापकीर्तिवाला निन्दित मनुष्य पापाचरण करता हुआ पापके फलको ही प्राप्त करता है और पुण्य कीर्तिवाला प्रशंसित मनुष्य पुण्य करता हुआ अत्यन्त पुण्यफलका ही उपभोग करता है ॥ ५१ ॥

पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ।
नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः ॥ ५२ ॥

बारंबार किया हुआ पाप बुद्धिको नष्ट कर देता है । जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा पाप ही करता रहता है ॥ ५२ ॥

पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ।
वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः ॥ ५३ ॥

इसी प्रकार बारंबार किया हुआ पुण्य बुद्धिको बढाता है । जिसकी बुद्धि बढ जाती है, वह मनुष्य सदा पुण्य ही करता है ॥ ५३ ॥

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृन्नरः ।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति नचिरात्पापमाचरन् ॥ ५४ ॥

गुणोंमें दोष देखनेवाला, मर्मपर आघात करनेवाला, निर्दयी, शत्रुता करनेवाला मनुष्य पापका आचरण करता हुआ शीघ्र ही महान् कष्टको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

अनसूयः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन्सदा ।
अकृच्छ्रात्सुखमाप्नोति सर्वत्र च विराजते ॥ ५५ ॥

दोषदृष्टिसे रहित शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष सदा शुभकर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ महान् सुखको प्राप्त होता है और सर्वत्र तेजसे सुशोभित होता है ॥ ५५ ॥

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः ।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ॥ ५६ ॥

जो बुद्धिमान् पुरुषोंसे सद्‌बुद्धि प्राप्त करता है, वही पण्डित है; क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ही धर्म और अर्थको प्राप्तकर अनायास ही अपनी उन्नति करनेमें समर्थ होता है ॥ ५६ ॥

दिवसेनैव तत्कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत्
अष्टमासेन तत्कुर्याद्येन वर्षाः सुखं वसेत् ॥ ५७ ॥

दिनभरमें ही वह कार्य कर ले, जिससे रातमें सुखसे रह सके और आठ महीनोंमें वह कार्य कर ले, जिससे वर्षाके चार महीने सुखसे व्यतीत कर सके ॥ ५७ ॥

पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥ ५८ ॥

पहली अवस्था अर्थात् तारुण्यमें ही वह काम करे, जिससे वृद्धावस्थामें सुखपूर्वक रह सके और जीवनभरमें वह कार्य करे, जिससे मरनेके बाद भी परलोकमें सुखसे रह सके ॥ ५८ ॥

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूरं विगतसंग्रामं गतपारं तपस्विनम् ॥ ५९ ॥

सज्जन पुरुष पच जानेपर अन्नकी, निष्कलङ्क यौवन बीत जानेपर स्त्रीकी, संग्रामके समाप्त हो जाने पर शूरकी और संसारसागरको पार कर लेनेपर तपस्वीकी प्रशंसा करते हैं ॥५९॥

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद्भवति ततोऽन्यदवदीर्यते ॥ ६० ॥

अधर्मसे प्राप्त हुए धनके द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह तो छिपता नहीं; परंतु दोष छिपानेके कारण उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है ॥ ६० ॥

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ६१ ॥

अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले शिष्योंके शासक गुरु हैं, दुष्टोंके शासक राजा हैं और छिपे छिपे पाप करनेवालोंके शासक सूर्यपुत्र यमराज हैं ॥ ६१ ॥

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ॥ ६२ ॥

ऋषि, नदी, एवं महात्माओंका वंश तथा स्त्रियोंके दुश्चरित्रका उत्पत्तिस्थान जाननेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए ॥ ६२ ॥

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी।
क्षत्रियः स्वर्गभाग्राजंश्चिरं पालयते महीम् ॥ ६३ ॥

राजन्! ब्राह्मणोंकी सेवापूजामें संलग्न रहनेवाला, दाता, कुटुम्बीजनोंके प्रति कोमलताका वर्ताव करनेवाला और स्वर्गका उपभोग करनेवाला राजा चिरकालतक पृथ्वीका पालन करता है ॥ ६३ ॥

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥ ६४ ॥

शूर, विद्वान् और सेवाधर्मको जाननेवाले ये तीन प्रकारके मनुष्य पृथ्वीरूपी लतासे सुवर्ण-रूपी पुष्पका संचय करते हैं ॥ ६४ ॥

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ॥ ६५ ॥

भारत! बुद्धिसे विचारकर किये हुए कर्म श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबलसे किये जानेवाले कर्म मध्यम श्रेणीके हैं, जङ्घासे किये जानेवाले कार्य अधम हैं और भार ढोनेका काम महान् अधम है ॥ ६५ ॥

दुर्योधने च शकुनौ मूढे दुःशासने तथा ।
कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥ ६६ ॥

राजन्! अब आप दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दुःशासन तथा कर्णपर राज्यका भार रखकर ऐश्वर्य कैसे पाना चाहते हैं? ॥ ६६ ॥

सर्वैर्गुणैरुपेताश्च पाण्डवा भरतर्षभ ।
पितृवत्त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत् ॥ ६७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ११४० ॥

भरतश्रेष्ठ! पाण्डव तो सभी उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हैं और आपमें पिताका सा भाव रखकर बर्ताव करते हैं; अतः, आप भी उनपर पुत्रभाव रखकर उचित बर्ताव कीजिये ॥ ६७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ ११४० ॥

: ३६ :

विदुर उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम् ॥ १ ॥

विदुर बोले— राजन्! इस विषयमें लोग दत्तात्रेय और साध्यदेवताओंके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं; यह मेरा भी सुना हुआ है ॥ १ ॥

चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम् ।
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा ॥ २ ॥

प्राचीनकालकी बात है, हंस परमहंसरूपसे विचरते हुए उत्तम व्रतवाले महाबुद्धिमान् महर्षि दत्तात्रेयसे साध्यदेवताओंने पूछा ॥ २ ॥

साध्या देवा वयमस्मो महर्षे दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमातुम् ।
श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो नः काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम् ॥ ३ ॥

महर्षे! हम सब लोग साध्यदेवता हैं, केवल आपको देखकर हम आपके विषयमें कुछ अनुमान नहीं कर सकते। हमें तो आप शास्त्रज्ञानसे युक्त, धीर एवं बुद्धिमान् जान पड़ते हैं; अतः हमलोगोंको अपनी विद्वत्तापूर्ण उदार वाणी सुनानेकी कृपा करें ॥ ३ ॥

हंस उवाच

एतत्कार्यममराः संश्रुतं मे धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः ।
ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं प्रियाप्रिये चात्मवशं नयीत ॥ ४ ॥

परमहंस बोले— साध्यदेवताओ ! मैंने सुना है कि धैर्यधारण, मनोनिग्रह तथा सत्यधर्मोंका पालन ही कर्तव्य है; इसके द्वारा पुरुषको चाहिये कि हृदयकी सारी गाँठ खोलकर प्रिय और अप्रियको अपने आत्माके समान समझे ॥ ४ ॥

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः ।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ ५ ॥

दूसरोंसे गाली सुनकर भी स्वयं उन्हें गाली न दे । गालीको सहन करनेवालेका रोका हुआ क्रोध ही गाली देनेवालेको जला डालता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है ॥५॥

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी ।
न चातिमानी न च हीनवृत्तो रूक्षां वाचं रुशतीं वर्जयीत ॥ ६ ॥

दूसरोंको न तो गाली दे और न उनका अपमान करे, मित्रोंसे द्रोह तथा नीच पुरुषोंकी सेवा न करे, सदाचारसे हीन एवं अभिमानी न हो, रूखी तथा रोषभरी वाणीका परित्याग करे ॥ ६ ॥

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून्घोरा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम् ।
तस्माद्वाचं रुशतीं रूक्षरूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत ॥ ७ ॥

इस जगत्में कठोर बातें मनुष्योंके मर्मस्थान, हड्डी, हृदय तथा प्राणोंको दग्ध करती रहती हैं; इसलिये धर्मानुरागी पुरुष जलानेवाली रूखी बातोंका सदाके लिये परित्याग कर दे ॥७॥

अरुन्तुदं परुषं रूक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान् ।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वहन्तम् ॥ ८ ॥

जिसकी वाणी रूखी और स्वभाव कठोर है, जो मर्मस्थानपर आघात करता और वाग्बाणोंसे मनुष्योंको पीडा पहुंचाता है, उसे ऐसा समझना चाहिये कि वह मनुष्योंमें महादरिद्र है और वह अपने मुखमें दरिद्रता अथवा मौतको बांधे हुए ढो रहा है ॥ ८ ॥

परश्चेदेनमधिविध्येत बाणैर्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तैः ।
विरिच्यमानोऽप्यतिरिच्यमानो विद्यात्कविः सुकृतं मे दधाति ॥ ९ ॥

यदि दूसरा कोई इस मनुष्यको अग्नि और सूर्यके समान दग्ध करनेवाले अत्यन्त तीखे वाग्बाणोंसे बहुत चोट पहुँचावे तो वह विद्वान् पुरुष चोट खाकर, अत्यन्त चोट खाकर भी ऐसा समझे कि वह मेरे पुण्योंको पुष्ट कर रहा है ॥ ९ ॥

यदि सन्तं सेवते यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव ।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥ १० ॥

जैसे वस्त्र जिस रंगमें रंगा जाय, वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरकी सेवा करता है तो वह उन्हींके वशमें हो जाता है, उस पर उन्हींका रंग चढ जाता है ॥ १० ॥

वादं तु यो न प्रवदेन्न वादयेद्यो नाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत् ।
यो हन्तुकामस्य न पापमिच्छेत्तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय ॥ ११ ॥

जो स्वयं किसीके प्रति बुरी बात नहीं कहता, दूसरोंसे भी नहीं कहलाता, बिना मार खाये स्वयं न तो किसीको मारता है और न दूसरोंसे ही मरवाता है, जो अपनेको मारनेकी इच्छावालेकी भी बुराई नहीं चाहता, स्वर्गमें देवता भी उसके आगमनकी बाट जोहते रहते हैं ॥ ११ ॥

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्द्वितीयम् ।
प्रियं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं धर्म्यं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ १२ ॥

बोलनेसे न बोलना ही अच्छा बताया गया है, यह वाणीकी प्रथम विशेषता है और यदि बोलना ही पडे तो सत्य बोलना वाणीकी दूसरी विशेषता है यानी मौनकी अपेक्षा भी अधिक लाभप्रद है । सत्य और प्रिय बोलना वाणीकी तीसरी विशेषता है । यदि सत्य और प्रियके साथ ही धर्मसम्मत भी कहा जाय, तो वह वचनकी चौथी विशेषता है । इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है ॥ १२ ॥

यादृशैः संविवदते यादृशांश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः ॥ १३ ॥

मनुष्य जैसे लोगोंके साथ बोलता है, जैसे लोगोंकी सेवा करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है ॥ १३ ॥

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते ।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ॥ १४ ॥

मनुष्य जिन जिन विषयोंसे मनको हटाता जाता है, उन उनसे उसकी मुक्ति होती है, इस प्रकार यदि सब ओरसे निवृत्ति हो जाय तो उसे लेशमात्र दुःखका भी कभी अनुभव नहीं होता ॥ १४ ॥

न जीयते नोत जिगीषतेऽन्यान्न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च ।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम् ॥ १५ ॥

जो न तो स्वयं किसीसे जीता जाता है, न दूसरोंको जीतनेकी इच्छा करता है, न किसीके साथ वैर करता और न दूसरोंको चोट पहुँचाना चाहता है, जो निन्दा और प्रशंसामें समानभाव रखता है, वह न किसी बातके लिए शोक करता है और न किसी बातके लिए दुःख ॥ १५ ॥

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मतिम् ।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः ॥ १६ ॥

जो सबका कल्याण चाहता है, किसीके अकल्याणकी बात बुद्धिमें भी नहीं लाता, जो सत्यवादी, कोमल और जितेन्द्रिय है, वह उत्तम पुरुष माना गया है ॥ १६ ॥

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च ।
राद्धापराद्धे जानाति यः स मध्यमपूरुषः ॥ १७ ॥

जो झूठी सान्त्वना नहीं देता, देनेकी प्रतिज्ञा करके दे ही देता है, जो अपराधीमें भी ऐश्वर्य देखता है, वह मध्यम श्रेणीका पुरुष है ॥ १७ ॥

दुःशासनस्तूपहन्ता न शास्ता नावर्तते मन्युवशात्कृतघ्नः ।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः ॥ १८ ॥

जिसका शासन अत्यन्त कठोर हो, जो अनेक दोषोंसे दूषित हो, कलङ्कित हो, जो क्रोधवश किसीकी बुराई करनेसे नहीं हटता हो, दूसरोंके किये हुए उपकारको नहीं मानता हो, जिसकी किसीके साथ मित्रता नहीं हो तथा जो दुरात्मा हो, ये अधम पुरुषके भेद हैं ॥ १८ ॥

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशङ्कितः ।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः ॥ १९ ॥

जो अपने ही ऊपर संदेह होनेके कारण दूसरोंसे भी कल्याण होनेका विश्वास नहीं करता, मित्रोंको भी दूर रखता है, वह अवश्य ही अधम पुरुष है ॥ १९ ॥

उत्तमानेव सेवेत प्राप्ते काले तु मध्यमान् ।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २० ॥

जो अपना कल्याण चाहता हो वह उत्तम पुरुषोंकी ही सेवा करे, समय आ पड़नेपर मध्यम पुरुषोंकी भी सेवा कर ले, परंतु अधम पुरुषोंकी सेवा कदापि न करे ॥ २० ॥

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन नित्योत्थानात्प्रज्ञया पौरुषेण ।
न त्वेव सम्यग्लभते प्रशंसां न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम् ॥ २१ ॥
मनुष्य दुष्ट पुरुषोंके बलसे, निरन्तरके उद्योगसे, बुद्धिसे तथा पुरुषार्थसे धन भले ही प्राप्त कर ले; परंतु इससे उत्तम कुलीन पुरुषोंके सम्मान और सदाचारको वह पूर्णरूपसे कदापि नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

महाकुलानां स्पृहयन्ति देवा धर्मार्थवृद्धाश्च बहुश्रुताश्च ।
पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं भवन्ति वै कानि महाकुलानि ॥ २२ ॥
धृतराष्ट्र बोले— विदुर ! धर्म और अर्थके अनुष्ठानमें परायण एवं बहुश्रुत देवता भी उत्तम कुलमें उत्पन्न पुरुषोंकी इच्छा करते हैं । इसलिये मैं तुमसे यह प्रश्न करता हूँ कि महान् उत्तम कुलीन कौन हैं ? ॥ २२ ॥

विदुर उवाच

तपो दमो ब्रह्मवित्त्वं वितानाः पुण्या विवाहाः सततान्नदानम् ।
येष्वेवैते सप्त गुणा भवन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥ २३ ॥
विदुर बोले— राजन् ! जिनमें तप, इन्द्रियसंयम, वेदोंका स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार, ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें महान् उत्तम कुलीन कहते हैं ॥ २३ ॥

येषां न वृत्तं व्यथते न योनिर्वृत्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम् ।
ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि ॥ २४ ॥
जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषोंसे माता-पिताको कष्ट नहीं पहुँचाते, प्रसन्न चित्तसे धर्मका आचरण करते हैं तथा असत्यका परित्याग कर अपने कुलकी विशेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान् कुलीन हैं ॥ २४ ॥

अनिज्ययाविवाहैश्च वेदस्योत्सादनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥ २५ ॥
यज्ञ न होनेसे, निन्दित कुलमें विवाह करनेसे, वेदका त्याग और धर्मका उल्लङ्घन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं ॥ २५ ॥

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ २६ ॥
देवताओंके धनका नाश, ब्राह्मणके धनका अपहरण और ब्राह्मणोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं ॥ २६ ॥

ब्राह्मणानां परिभवात्परिवादाच्च भारत ।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च ॥ २७ ॥

भारत ! ब्राह्मणोंके अनादर और निन्दासे तथा धरोहर रक्खी हुई वस्तुको छिपा लेनेसे अच्छे कुल भी निन्दनीय हो जाते हैं ॥ २७ ॥

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽश्वतः ।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥ २८ ॥

गौओं, मनुष्यों और अश्वोंसे सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचारसे हीन हैं, वे अच्छे कुलोंकी गणनामें नहीं आ सकते ॥ २८ ॥

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।
कुलसंख्यां तु गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥ २९ ॥

थोडे धनवाले कुल भी यदि सदाचारसे सम्पन्न हैं तो वे अच्छे कुलोंकी गणनामें आ जाते हैं और महान् यश प्राप्त करते हैं ॥ २९ ॥

मा नः कुले वैरकृत्कश्चिदस्तु राजामात्यो मा परस्वापहारी ।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ॥ ३० ॥

हमारे कुलमें कोई वैर करनेवाला न हो, दूसरोंके धनका अपहरण करनेवाला राजा अथवा मन्त्री न हो और मित्रद्रोही, कपटी तथा असत्यवादी न हो । इसी प्रकार माता-पिता, देवता एवं अतिथियोंको भोजन करानेसे पहले भोजन करनेवाला भी न हो ॥ ३० ॥

यश्च नो ब्राह्मणं हन्याद्यश्च नो ब्राह्मणान्द्विषेत् ।
न नः स समितिं गच्छेद्यश्च नो निर्वपेत्कृषिम् ॥ ३१ ॥

हम लोगोंमेंसे जो ब्राह्मणोंकी हत्या करे, ब्राह्मणोंके साथ द्वेष करे तथा खेतीका काम न करे वह हमारी सभामें न प्रवेश करे ॥ ३१ ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ३२ ॥

तृणका आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी सज्जनोंके घरमें इन चार चीजोंकी कभी कमी नहीं होती ॥ ३२ ॥

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम् ।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मणाम् ॥ ३३ ॥

महाप्राज्ञ राजन् ! पुण्यकर्म करनेवाले धर्मात्मा पुरुषोंके यहां ये उपर्युक्त वस्तुएँ बडी श्रद्धाके साथ सत्कारके लिये उपस्थित की जाती हैं ॥ ३३ ॥

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै शक्तो वोढुं न तथान्ये महीजाः ।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः　　॥ ३४ ॥

नृपवर ! रथ छोटासा होनेपर भी भार ढो सकता है, किंतु दूसरे काठ बडे बडे होनेपर भी ऐसा नहीं कर सकते । इसी प्रकार उत्तम कुलमें उत्पन्न उत्साही पुरुष भार सह सकते हैं, दूसरे मनुष्य वैसे नहीं होते ॥ ३४ ॥

न तन्मित्रं यस्य कोपाद्बिभेति यद्वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम् ।
यस्मिन्मित्रे पितरीवाश्वसीत तद्वै मित्रं सङ्गतानीतराणि　　॥ ३५ ॥

जिसके कोपसे भयभीत होना पडे तथा शङ्कित होकर जिसकी सेवा की जाये, वह मित्र नहीं है । मित्र तो वही है, जिसपर पिताकी भाँति विश्वास किया जा सके; दूसरे तो साथी मात्र हैं ॥ ३५ ॥

यदि चेदप्यसम्बन्धो मित्रभावेन वर्तते ।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत्परायणम्　　॥ ३६ ॥

पहलेसे कोई सम्बन्ध न होनेपर भी जो मित्रताका बर्ताव करे, वही बन्धु, वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है ॥ ३६ ॥

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः ।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः　　॥ ३७ ॥

जिसका चित्त चञ्चल है, जो वृद्धोंकी सेवा नहीं करता, उस अनिश्चितमति पुरुषके लिये मित्रोंका संग्रह स्थायी नहीं होता ॥ ३७ ॥

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम् ।
अर्थाः समतिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा　　॥ ३८ ॥

जैसे सूखे सरोवरके ऊपर ही हंस मँडराकर रह जाते हैं, उसके भीतर नहीं प्रवेश करते, उसी प्रकार जिसका चित्त चञ्चल है, जो अज्ञानी और इन्द्रियोंका गुलाम है, ऐश्वर्य उसको त्याग देते हैं ॥ ३८ ॥

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा　　॥ ३९ ॥

दुष्ट पुरुषोंका स्वभाव मेघके समान चञ्चल होता है, वे सहसा क्रोध कर बैठते हैं और अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते　　॥ ४० ॥

जो मित्रोंसे सत्कार पाकर और उनकी सहायतासे कृतकार्य होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नोंके मरनेपर उनका मांस मांसभोजी जन्तु भी नहीं खाते ॥ ४० ॥

अर्थयेदेव मित्राणि सति वासति वा धने ।
नानर्थयन्विजानाति मित्राणां सारफल्गुताम् ॥ ४१ ॥

धन हो या न हो, मित्रोंसे हमेशा याचना करे क्योंकि विना याचना किए मित्रोंके सार-असारकी परीक्षा नहीं की जा सकती ॥ ४१ ॥

संतापाद्भ्रश्यते रूपं संतापाद्भ्रश्यते बलम् ।
संतापाद्भ्रश्यते ज्ञानं संतापाद्व्याधिमृच्छति ॥ ४२ ॥

संताप–शोकसे रूप नष्ट होता है, संतापसे बल नष्ट होता है, संतापसे ज्ञान नष्ट होता है और संतापसे मनुष्य रोगको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते ।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ४३ ॥

अभीष्ट वस्तु शोक करनेसे नहीं मिलती; उससे तो केवल शरीर संतप्त होता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं । इसलिये आप मनमें शोक न करें ॥ ४३ ॥

पुनर्नरो म्रियते जायते च पुनर्नरो हीयते वर्धते पुनः ।
पुनर्नरो याचति याच्यते च पुनर्नरः शोचति शोच्यते पुनः ॥ ४४ ॥

मनुष्य बार बार मरता और जन्म लेता है, बार बार क्षय और वृद्धिको प्राप्त होता है, बार बार स्वयं दूसरेसे याचना करता है और दूसरे उससे याचना करते हैं तथा बारंबार वह दूसरोंके लिये शोक करता है और दूसरे उसके लिये शोक करते हैं ॥ ४४ ॥

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।
पर्यायशः सर्वमिह स्पृशन्ति तस्माद्धीरो नैव हृष्येन्न शोचेत् ॥ ४५ ॥

सुख दुःख, उत्पत्ति विनाश, लाभहानि और जीवनमरण ये क्रमशः सबको प्राप्त होते रहते हैं; इसलिये धीर पुरुषको इनके लिये हर्ष और शोक नहीं करना चाहिये ॥ ४५ ॥

चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि तेषां यद्यद्वर्तते यत्र यत्र ।
ततस्ततः स्रवते बुद्धिरस्य छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः ॥ ४६ ॥

ये छः इन्द्रियाँ बहुत ही चञ्चल हैं; इनमेंसे जो जो इन्द्रिय जिस जिस विषयकी ओर बढती है, वहाँ वहाँ बुद्धि उसी प्रकार क्षीण होती है, जैसे फूटे घडेसे पानी सदा चूता है ॥ ४६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तनुरुच्चः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र बोले– विदुर ! शरीरसे श्रेष्ठ, तथा धर्मसे भी श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरके साथ मैंने मिथ्या व्यवहार किया है; अतः वे युद्ध करके मेरे मूर्ख पुत्रोंका नाश कर डालेंगे ॥ ४७ ॥

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् ।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं न विद्यते किंचिदन्यद्विनाशात् ॥ ५५ ॥

हितकी बात भी कही जाय तो उन्हें अच्छी नहीं लगती । उनके योगक्षेमकी भी सिद्धि नहीं हो पाती। राजन् ! भेदभाववाले पुरुषोंकी विनाशके सिवा और कोई गति नहीं है ॥५५॥

संभाव्यं गोषु संपन्नं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः ।
सम्भाव्यं स्त्रीषु चापल्यं सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम् ॥ ५६ ॥

जैसे गौओंमें दूध, ब्राह्मणमें तप और युवती स्त्रियोंमें चञ्चलताका होना अधिक सम्भव है, उसी प्रकार अपने जातिबन्धुओंसे भय होना भी सम्भव ही है ॥ ५६ ॥

तन्तवोऽप्यायता नित्यं तन्तवो बहुलाः समाः ।
बहून्बहुत्वादायासान्सहन्तीत्युपमा सताम् ॥ ५७ ॥

नित्य सींचकर बढायी हुई पतली लताएँ बहुत होनेके कारण बहुत वर्षोंतक नाना प्रकारके झोंके सहती हैं; यही बात सत्पुरुषोंके विषयमें भी समझनी चाहिये। वे दुर्बल होनेपर भी सामूहिक शक्तिसे बलवान् हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ ५८ ॥

भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! जलती हुई लकडियाँ अलग अलग होनेपर धुआँ फेंकती हैं और एक साथ होनेपर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जातिबन्धु भी आपसमें फूट होनेपर दुःख उठाते और एकता होनेपर सुखी रहते हैं ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥ ५९ ॥

धृतराष्ट्र ! जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जातिवालों और गौओंपर ही शूरता प्रकट करते हैं, वे डंठलसे पके हुए फलोंकी भाँति नीचे गिर जाते हैं ॥ ५९ ॥

महानप्येकजो वृक्षो बलवान्सुप्रतिष्ठितः ।
प्रसह्य एव वातेन शाखास्कन्धं विमर्दितुम् ॥ ६० ॥

यदि वृक्ष अकेला है तो वह बलवान्, दृढमूल तथा बहुत बडा होनेपर भी एक ही क्षणमें आँधीके द्वारा बलपूर्वक शाखाओंसहित धराशायी किया जा सकता है ॥ ६० ॥

अथ ये सहिता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः
ते हि शीघ्रतमान्वातान्सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात् ॥ ६१ ॥

किंतु जो बहुतसे वृक्ष एक साथ रहकर समूहके रूपमें खडे हैं, वे एक दूसरेके सहारे बडीसे बडी आँधीको भी सह सकते हैं ॥ ६१ ॥

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥ ६२ ॥

इसी प्रकार समस्त गुणोंसे सम्पन्न मनुष्यको भी अकेले होनेपर शत्रु अपनी शक्तिके अंदर समझते हैं, जैसे अकेले वृक्षको वायु ॥ ६२ ॥

अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च ।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥ ६३ ॥

किंतु परस्पर मेल होनेसे और एकसे दूसरेको सहारा मिलनेसे जातिवाले लोग इस प्रकार वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे तालाबमें कमल ॥ ६३ ॥

अवध्या ब्राह्मणा गावो स्त्रियो बालाश्च ज्ञातयः ।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः ॥ ६४ ॥

ब्राह्मण, गौ, स्त्री, कुटुम्बी, बालक, जिसका अन्न खाया जाता और है शरणागत ये अवध्य होते हैं ॥ ६४ ॥

न मनुष्ये गुणः कश्चिदन्यो धनवतामपि ।
अनातुरत्वाद्भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥ ६५ ॥

राजन् ! आपका कल्याण हो, धनी मनुष्योंके लिए भी आरोग्यको छोडकर दूसरा कोई गुण नहीं है; क्योंकि रोगी तो मुर्देके समान है ॥ ६५ ॥

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगं पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुग्रम् ।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥ ६६ ॥

महाराज ! जो बिना रोगके उत्पन्न, कडवा, सिरमें दर्द पैदा करनेवाला, पापसे सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सज्जनोंद्वारा पान करने योग्य है और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते, उस क्रोधको आप पी जाइये और शान्त होइये ॥ ६६ ॥

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम् ।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम् ॥ ६७ ॥

रोगसे पीडित मनुष्य मधुर फलोंका आदर नहीं करते, विषयोंमें भी उन्हें कुछ सुख या सार नहीं मिलता । रोगी सदा ही दुखी रहते हैं; वे न तो धनसम्बन्धी भोगोंका और न सुखका ही अनुभव करते हैं ॥ ६७ ॥

पुरा ह्युक्तो नाकरोस्त्वं वचो मे द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन्।
दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति ॥ ६८ ॥

राजन्! पहले जूएमें द्रौपदीको जीती गयी देखकर मैंने आपसे कहा था— 'आप द्यूतक्रीडामें आसक्त दुर्योधनको रोकिये, विद्वान्‌लोग इस जुएके लिये मना करते हैं।' किंतु आपने मेरा कहना नहीं माना ॥ ६८ ॥

न तद्‌बलं यन्मृदुना विरुध्यते मिश्रो धर्मस्तरसा सेवितव्यः।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥ ६९ ॥

वह बल नहीं, जिसका मृदुल स्वभावके साथ विरोध हो; बल और मृदुल स्वभावसे युक्त धर्मका ही शीघ्र सेवन करना चाहिये। क्रूरतापूर्वक उपार्जित लक्ष्मी नश्वर होती है, यदि वह मृदुलतापूर्वक बढायी जाए तो पुत्रपौत्रोंतक स्थिर रहती है ॥ ६९ ॥

धार्तराष्ट्राः पाण्डवान्पालयन्तु पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु।
एकारिमित्राः कुरवो ह्येकमन्त्रा जीवन्तु राजन्सुखिनः समृद्धाः ॥ ७० ॥

राजन्! आपके पुत्र पाण्डवोंकी रक्षा करें और पाण्डुके पुत्र आपके पुत्रोंकी रक्षा करें। सभी कौरव एकदूसरेके शत्रुको शत्रु और मित्रको मित्र समझें। सबकी एक ही सलाह और विचार हों, सभी सुखी और समृद्धिशाली होकर जीवन व्यतीत करें ॥ ७० ॥

मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ।
पार्थान्बालान्वनवासप्रतप्तान्गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन् ॥ ७१ ॥

अजमीढकुलनन्दन! इस समय आप ही कौरवोंके आधारस्तम्भ हैं, कुरुवंश आपके ही अधीन है। तात! वनवाससे बहुत कष्ट पाये हुए बालक पाण्डवोंका पालन करके अपने यशकी रक्षा कीजिये ॥ ७१ ॥

संधत्स्व त्वं कौरवान्पाण्डुपुत्रैर्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र ॥ ७२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ १२१२ ॥

कौरव पाण्डवोंसे संधि कर लें, जिससे शत्रुओंको आपका छिद्र देखनेका अवसर न मिले। नरदेव! समस्त पाण्डव सत्यपर डटे हुए हैं; अब आप अपने पुत्र दुर्योधनको रोकिये ॥ ७२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ १२१९ ॥

: ३७ :

विदुर उवाच

सप्तदशेमान्राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्रवीर्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥ १ ॥
तानेवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।
अथो मरीचिनः पादाननाम्यान्नमतस्तथा ॥ २ ॥

विदुर बोले– राजेन्द्र ! विचित्रवीर्यनन्दन ! स्वायम्भुव मनुने इन सत्रह प्रकारके पुरुषोंको आकाशपर मुक्कोंसे प्रहार करनेवाले, न झुकाये जा सकनेवाले, वर्षाकालीन इन्द्रधनुषको झुकानेकी चेष्टा करनेवाले तथा पकडमें न आनेवाली सूर्यकी किरणोंको पकडनेका प्रयास करनेवाले बतलाया है अर्थात् इनके सभी उद्यमोंको निष्फल कहा है ॥ १–२ ॥

यश्चाशिष्यं शासति यश्च कुप्यते यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम् ।
स्त्रियश्च योऽरक्षति भद्रमस्तु ते यश्चायाच्यं याचति यश्च कत्थते ॥ ३ ॥

हे धृतराष्ट्र ! तेरा कल्याण हो, जो अशिष्यको उपदेश देता है, क्रोध करता है, मर्यादाका उल्लंघन करता है, शत्रुकी सेवा करता है, स्त्रीकी रक्षा नहीं करता है, याचना करनेके अयोग्य पुरुषसे याचना करता है तथा आत्मप्रशंसा करता है ॥ ३ ॥

यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी ।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ॥ ४ ॥

अच्छे कुलमें उत्पन्न होकर भी नीच कर्म करता है, दुर्बल होकर भी सदा बलवान्से वैर रखता है, श्रद्धाहीनको उपदेश करता है, न चाहने योग्य शास्त्रनिषिद्ध वस्तुको चाहता है ॥ ४ ॥

वध्वा हासं श्वशुरो यश्च मन्यते वध्वा वसन्नुत यो मानकामः ।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम् ॥ ५ ॥

श्वसुर होकर पुत्रवधूके साथ परिहास पसंद करता है, तथा पुत्रवधूसे एकान्तवास करके भी समाजमें अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, परस्त्रीमें अपने वीर्यका आधान करता है, मर्यादाके बाहर स्त्रीकी निन्दा करता है ॥ ५ ॥

×

यश्चैव लब्ध्वा न स्मरामीत्युवाच दत्त्वा च यः कत्थति याच्यमानः।
यश्चासतः सान्त्वमुपासतीह एतेऽनुयान्त्यनिलं पाशहस्ताः ॥ ६ ॥
किसीसे कोई वस्तु पाकर भी 'याद नहीं है', ऐसा कहकर उसे दबाना चाहता है, माँगनेपर दान देकर उसके लिये अपनी श्लाघा करता है और दुष्टोंके प्रति शान्तभावका उपयोग करता है। ये दुष्ट लोगोंको पाश हाथमें धारण करनेवाले यमदूत नरकमें ले जाते हैं ॥ ६ ॥

यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युदेयः ॥ ७ ॥
जो मनुष्य अपने साथ जैसा बर्ताव करे, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये, यही नीतिधर्म है। कपटका आचरण करनेवालेके साथ कपटपूर्ण बर्ताव करे और अच्छा बर्ताव करनेवालेके साथ साधुभावसे ही बर्ताव करना चाहिये ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ८ ॥
धृतराष्ट्र बोले— विदुर! जब सभी वेदोंमें पुरुषको सौ वर्षकी आयुवाला बताया गया है, तब वह किस कारणसे अपनी पूर्ण आयुको नहीं पाता? ॥ ८ ॥

विदुर उवाच

अतिवादोऽतिमानश्च तथात्यागो नराधिपः।
क्रोधश्चातिविवित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥ ९ ॥
विदुर बोले— राजन्! अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्यागका अभाव, क्रोध, अत्यधिक जाननेकी अभिलाषा और मित्रद्रोह ये छः ॥ ९ ॥

एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान्घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥ १० ॥
तीखी तलवारें देहधारियोंकी आयुको काटती हैं। ये ही मनुष्योंका वध करती हैं, मृत्यु नहीं। तेरा कल्याण हो ॥ १० ॥

विश्वस्तस्यैति यो दारान्यश्चापि गुरुतल्पगः।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ॥ ११ ॥
भारत! जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले पुरुषकी स्त्रीके साथ समागम करता है, जो गुरुस्त्रीगामी है, ब्राह्मण होकर शूद्र स्त्रीके साथ विवाह करता है, शराब पीता है ॥ ११ ॥

शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणैः समाः ।
एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥ १२ ॥

तथा शरणागतकी हिंसा करनेवाला है, ये सबके सब ब्रह्महत्यारेके समान हैं; इनका सङ्ग हो जानेपर प्रायश्चित्त करे, यह वेदोंकी आज्ञा है ॥ १२ ॥

गृही वदान्योऽनपविद्धवाक्यः शेषान्नभोक्ताप्यविहिंसकश्च ।
नानर्थकृत्त्यक्तकलिः कृतज्ञः सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥ १३ ॥

गृहस्थधर्मका पालन करनेवाला, दाता, अप्रतिहत वचनवाला, यज्ञशेष अन्नको भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थपूर्ण कार्योंसे दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान् स्वर्गगामी होता है ॥ १३ ॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ १४ ॥

राजन् ! सदा प्रिय वचन बोलनेवाले मनुष्य तो सहजमें ही मिल सकते हैं; किंतु जो अप्रिय होता हुआ हितकारी हो, ऐसे वचनके वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं ॥ १४ ॥

यो हि धर्मं व्यपाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥ १५ ॥

जो धर्मका आश्रय लेकर तथा स्वामीको प्रिय लगेगा या अप्रिय इसका विचार छोडकर अप्रिय होनेपर भी हितकी बात कहता है, उसीसे राजाको सच्ची सहायता मिलती है ॥ १५ ॥

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १६ ॥

कुलकी रक्षाके लिए एक मनुष्यका, ग्रामकी रक्षाके लिए कुलका, देशकी रक्षाके लिए गाँवका और आत्माके कल्याणके लिए सारी पृथ्वीका त्याग कर देना चाहिये ॥ १६ ॥

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ १७ ॥

आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करे, धनके द्वारा भी स्त्रीकी रक्षा करे और स्त्री एवं धन दोनोंके द्वारा सदा अपनी रक्षा करे ॥ १७ ॥

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन्नैवं युक्तं वचनं प्रातिपीय ।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य न रोचते तव वैचित्रवीर्य ॥ १८ ॥

प्रतीपनन्दन ! विचित्रवीर्यकुमार राजन् ! मैंने जूएका खेल आरम्भ होते समय भी कहा था कि यह ठीक नहीं है, किंतु रोगीको जैसे दवा और पथ्य अच्छे नहीं लगते, उसी तरह मेरी वह बात भी आपको अच्छी नहीं लगी ॥ १८ ॥

काकैरिमांश्चित्रबर्हान्मयूरान्पराजैष्ठाः पाण्डवान्धार्तराष्ट्रैः।
हित्वा सिंहान्क्रोष्टुकान्गूहमानः प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र ॥ १९ ॥

नरेन्द्र! आप कौओंके समान अपने पुत्रोंके द्वारा विचित्र पंखवाले मोरोंके सदृश पाण्डवोंको पराजित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं; सिंहोंको छोडकर सियारोंकी रक्षा करनेवाले आपको समय आनेपर इसके लिये पश्चात्ताप करना पडेगा ॥ १९ ॥

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य।
तस्मिन्भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥ २० ॥

तात! जो स्वामी सदा हितसाधनमें लगे रहनेवाले अपने भक्त सेवकपर कभी क्रोध नहीं करता, उसपर भृत्यगण विश्वास करते हैं और उसे आपत्तिके समय भी नहीं छोडते ॥ २० ॥

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन बाह्यं जनं संजिघृक्षेदपूर्वम्।
त्यजन्ति ह्येनमुचितावरुद्धाः स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥ २१ ॥

सेवकोंकी जीविका बंद करके दूसरोंके धनके अपहरणका प्रयत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि अपनी जीविका छिन जानेसे भोगोंसे हटाये गए पहलेके प्रेमी मन्त्री भी उस समय विरोधी बन जाते हैं और राजाका परित्याग कर देते हैं ॥ २१ ॥

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वाण्यायव्ययावनुरूपां च वृत्तिम्।
संगृह्णीयादनुरूपान्सहायान्सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥ २२ ॥

पहले कर्तव्य एवं आयव्यय और उचित वेतन आदिका निश्चय करके फिर सुयोग्य सहायकोंका संग्रह करे; क्योंकि कठिनसे कठिन कार्य भी सहायकोंद्वारा साध्य होते हैं ॥ २२ ॥

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्रीः।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥ २३ ॥

जो सेवक स्वामीके अभिप्रायको समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्योंको पूरा करता है, जो हितकी बात कहनेवाला, स्वामिभक्त, सज्जन और राजाकी शक्तिको जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर उसपर कृपा करनी चाहिये ॥ २३ ॥

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक्त्वरयैव भृत्यः ॥ २४ ॥

जो सेवक स्वामीके आज्ञा देनेपर उनकी बातका आदर नहीं करता, किसी काममें लगाये जानेपर अस्वीकार कर देता है, अपनी बुद्धिपर गर्व करने और प्रतिकूल बोलनेवाले उस भृत्यको शीघ्र ही त्याग देना चाहिये ॥ २४ ॥

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः ।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥ २५ ॥

अहंकाररहित, कायरताशून्य, शीघ्र काम पूरा करनेवाला, दयालु, शुद्धहृदय, दूसरोंके बहकावेमें न आनेवाला, नीरोग और उदार वचनवाला इन आठ गुणोंसे युक्त मनुष्यको दूत बनाने योग्य बताया गया है ॥ २५ ॥

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहं गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले ।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजन्यां योषितं प्रार्थयीत ॥ २६ ॥

सावधान मनुष्य विश्वास करके असमयमें कभी किसी दूसरेके घर न जाय, रातमें छिपकर चौराहेपर न खड़ा हो और राजाकी कन्याको अपने स्त्रीके रूपमें प्राप्त करनेका यत्न न करे ॥ २६ ॥

न निह्नवं सत्रगतस्य गच्छेत्संसृष्टमन्त्रस्य कुसङ्गतस्य ।
न च ब्रूयान्नाश्वसामि त्वयीति सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥ २७ ॥

दुष्ट सहायकोंवाला राजा जब बहुत लोगोंके साथ मन्त्रणा समितिमें बैठकर सलाह ले रहा हो, उस समय उसकी बातका खण्डन न करे; मैं तुमपर विश्वास नहीं करता, ऐसा भी न कहे, अपितु कोई युक्तिसंगत बहाना बनाकर वहाँसे हट जाय ॥ २७ ॥

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा ।
सेनाजीवी चोद्धृतभक्त एव व्यवहारे वै वर्जनीयाः स्युरेते ॥ २८ ॥

अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र, भाई, छोटे बच्चोंवाली विधवा, सैनिक और उद्दण्डभक्त इन सबके साथ लेन देनका व्यवहार न करे ॥ २८ ॥

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥ २९ ॥

नित्य स्नान करनेवाले मनुष्यको बल, रूप, मधुरस्वर, उज्ज्वल वर्ण, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दर स्त्रियाँ ये दस लाभ प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च सुखं बलं च ।
अनाविलं चास्य भवेदपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥ ३० ॥

थोड़ा भोजन करनेवालेको निम्नाङ्कित छः गुण प्राप्त होते हैं, आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं, उसकी संतान उत्तम होती है तथा यह बहुत खानेवाला है ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते ॥ ३० ॥

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान्गृहे न प्रतिवासयीत ॥ ३१ ॥
अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, सब लोगोंसे वैर करनेवाले, अधिक मायावी, क्रूर, देशकालका ज्ञान न रखनेवाले और निन्दित वेष धारण करनेवाले मनुष्यको कभी अपने घरमें न ठहरने दे ॥ ३१ ॥

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च वराकसंभूतममान्यमानिनम् ।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान्भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥ ३२ ॥
बहुत दुःखी होनेपर भी कृपण, गाली बकनेवाले, मूर्ख, जंगलमें रहनेवाले, धूर्त, नीचसेवी, निर्दयी, वैर बाँधनेवाले और कृतघ्नसे कभी सहायताकी याचना नहीं करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

संक्लिष्टकर्माणमतिप्रवादं नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च ।
विकृष्टरागं बहुमानिनं चाप्येतान्न सेवेत नराधमान्षट् ॥ ३३ ॥
क्लेशप्रद कर्म करनेवाले, अत्यन्त निन्दा करनेवाले, सदा असत्यभाषण करनेवाले, अस्थिर भक्तिवाले, स्नेहसे रहित, बहुत घमंड करनेवाले इन छः प्रकारके अधम पुरुषोंकी सेवा न करे ॥ ३३ ॥

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः ।
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिध्यतः ॥ ३४ ॥
धनकी प्राप्ति सहायककी अपेक्षा रखती है और सहायक धनकी अपेक्षा रखते हैं; ये दोनों एक दूसरेके आश्रित हैं, परस्परके सहयोगके बिना इनकी सिद्धि नहीं होती ॥ ३४ ॥

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित् ।
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थो मुनिवद्‌बुभूषेत् ॥ ३५ ॥
पुत्रोंको उत्पन्न कर उन्हें ऋणके भारसे मुक्त करके उनके लिये किसी जीविकाका प्रबन्ध कर दे; अपनी सभी कन्याओंका योग्य वरके साथ विवाह कर दे । तत्पश्चात् वनमें मुनि वृत्तिसे रहनेकी इच्छा करे ॥ ३५ ॥

हितं यत्सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम् ।
तत्कुर्यादीश्वरो ह्येतन्मूलं धर्मार्थसिद्धये ॥ ३६ ॥
राजा जो सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये हितकर और अपने लिये भी सुखद हो, ऐसे कार्योंको अपने धर्म और अर्थकी सिद्धिके लिए करे ॥ ३६ ॥

बुद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च ।
व्यवसायश्च यस्य स्यात्तस्यावृत्तिभयं कुतः ॥ ३७ ॥
जिसमें बौद्धिक शक्ति, प्रभाव, तेज, पराक्रम, उद्योग और अपने कर्तव्यका निश्चय हो उसे अपनी जीविकाके नाशका भय कैसे हो सकता है? ॥ ३७ ॥

पश्य दोषान्पाण्डवैर्विग्रहे त्वं यत्र व्यथेरन्नपि देवाः सशक्राः ।
पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो यशःप्रणाशो द्विषतां च हर्षः ॥ ३८ ॥
पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेमें जो दोष हैं, उनपर दृष्टि डालिये, उनसे संग्राम छिड जानेपर इन्द्र आदि देवताओंको भी कष्ट ही उठाना पडेगा । इसके सिवा पुत्रोंके साथ वैर, नित्य उद्वेगपूर्ण जीवन, कीर्तिका नाश और शत्रुओंको आनन्द होगा ॥ ३८ ॥

भीष्मस्य कोपस्तव चेन्द्रकल्प द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।
उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः श्वेतो ग्रहस्तिर्यगिवापतन्खे ॥ ३९ ॥
इन्द्रके समान पराक्रमी महाराज! आकाशमें तिरछा उदित हुआ धूमकेतु जैसे सारे संसारमें अशान्ति और उपद्रव खडा कर देता है, उसी तरह भीष्म, आप, द्रोणाचार्य और राजा युधिष्ठिरका बढा हुआ कोप इस संसारका संहार कर सकता है ॥ ३९ ॥

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः ।
पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम् ॥ ४० ॥
आपके सौ पुत्र, कर्ण और पाँच पाण्डव ये सब मिलकर समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन कर सकते हैं ॥ ४० ॥

धार्तराष्ट्रा वनं राजन्व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः ।
मा वनं छिन्धि सव्याघ्रं मा व्याघ्रान्नीनशो वनात् ॥ ४१ ॥
राजन् ! आपके पुत्र वनके समान हैं और पाण्डव उसमें रहनेवाले व्याघ्र हैं । आप व्याघ्रों-सहित समस्त वनको नष्ट न कीजिये तथा वनसे उन व्याघ्रोंको नष्ट न कीजिए ॥ ४१ ॥

न स्याद्वनमृते व्याघ्रान्व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम् ।
वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान्रक्षति काननम् ॥ ४२ ॥
व्याघ्रोंके बिना वनकी रक्षा नहीं हो सकती तथा वनके बिना व्याघ्र नहीं रह सकते; क्योंकि व्याघ्रोंसे वनकी रक्षा होती है और वन व्याघ्रोंकी रक्षा करता है ॥ ४२ ॥

न तथेच्छन्त्यकल्याणाः परेषां वेदितुं गुणान् ।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः ॥ ४३ ॥
जिसका मन पापोंमें लगा रहता है, वे लोग दूसरोंके कल्याणमय गुणोंको जाननेकी वैसी इच्छा नहीं रखते, जैसी कि उनके अवगुणोंको जाननेकी रखते हैं ॥ ४३ ॥

अर्थसिद्धिं परामिच्छन्धर्ममेवादितश्चरेत् ।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम् ॥ ४४ ॥
जो अर्थकी पूर्ण सिद्धि चाहता हो, उसे पहले धर्मका ही आचरण करना चाहिये । जैसे स्वर्गसे अमृत दूर नहीं होता, उसी प्रकार धर्मसे अर्थ अलग नहीं होता ॥ ४४ ॥

यस्यात्मा विरतः पापात्कल्याणे च निवेशितः ।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥ ४५ ॥

जिसकी बुद्धि पापसे हटाकर कल्याणमें लगा दी गयी है, उसने, संसारमें जो भी प्रकृति और विकृति है, उस सबको जान लिया है ॥ ४५ ॥

यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते ।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति ॥ ४६ ॥

जो समयानुसार धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी धर्म, अर्थ और कामको प्राप्त करता है ॥ ४६ ॥

संनियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः ।
स श्रियो भाजनं राजन्यश्चापत्सु न मुह्यति ॥ ४७ ॥

राजन् ! जो क्रोध और हर्षके उठे हुए वेगको रोक लेता है और आपत्तिमें भी मोहको प्राप्त नहीं होता, वही राजलक्ष्मीका अधिकारी होता है ॥ ४७ ॥

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे ।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥ ४८ ॥

राजन् ! मनुष्योंमें सदा पाँच प्रकारका बल होता है; उसे सुनिये । जो बाहुबल नामक प्रथम बल है, वह निकृष्ट कहलाता है ॥ ४८ ॥

अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते ।
धनलाभस्तृतीयं तु बलमाहुर्जिगीषवः ॥ ४९ ॥

हे राजन् ! आपका कल्याण हो । मन्त्रीका मिलना दूसरा बल है; जीतनेकी इच्छा करनेवाले लोग धनके लाभको तीसरा बल बताते हैं ॥ ४९ ॥

यत्त्वस्य सहजं राजन्पितृपैतामहं बलम् ।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥ ५० ॥

और राजन् ! जो बाप-दादोंसे प्राप्त हुआ मनुष्यका स्वाभाविक बल कुटुम्बका बल है, वह अभिजात नामक चौथा बल है ॥ ५० ॥

येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत ।
यद्बलानां बलं श्रेष्ठं तत्प्रज्ञाबलमुच्यते ॥ ५१ ॥

भारत ! जिससे इन सभी बलोंका संग्रह हो जाता है तथा जो सब बलोंमें श्रेष्ठ बल है वह पाँचवाँ 'बुद्धिका बल' कहलाता है ॥ ५१ ॥

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ॥ ५२ ॥

जो मनुष्यका बहुत बडा अपकार कर सकता है, उस पुरुषके साथ वैर ठानकर इस विश्वास पर निश्चिन्त न हो जाय कि मैं उससे दूर हूँ वह मेरा कुछ नहीं कर सकता ॥ ५२ ॥

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्याये शत्रुसेविषु।
भोगे चायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ ५३ ॥

ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा, जो स्त्री, राजा, साँप, पढे हुए पाठ, शत्रुओंकी सेवा करनेवालों, शत्रु, भोग और आयुपर पूर्ण विश्वास करे ॥ ५३ ॥

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममन्त्रा न च मंगलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥ ५४ ॥

जिसको बुद्धिके बाणसे मारा गया है, उस जीवके लिये न कोई वैद्य है, न दवा है, न होम, न मन्त्र, न कोई मांगलिक कार्य, न अथर्ववेदोक्त प्रयोग और न भलीभाँति सिद्ध जडीबूटी ही है ॥ ५४ ॥

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ते ह्यतितेजसः ॥ ५५ ॥

भारत ! मनुष्योंको चाहिये कि वह साँप, अग्नि, सिंह और अपने कुलमें उत्पन्न व्यक्तिका अनादर न करे; क्योंकि ये सभी बडे तेजस्वी होते हैं ॥ ५५ ॥

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु।
न चोपयुङ्क्ते तद्दारु यावन्नो दीप्यते परैः ॥५६ ॥

संसारमें अग्नि एक महान् तेज है, वह काष्ठमें छिपी रहती है; किंतु जबतक दूसरे लोग उसे प्रज्ज्वलित न कर दें, तबतक वह उस काष्ठको नहीं जलाती ॥ ५६ ॥

स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते।
तदा तच्च वनं चान्यान्निर्दहत्याशु तेजसा ॥ ५७ ॥

वही अग्नि जब काष्ठसे मथकर उद्दीप्त कर दी जाती है तो वह अपने तेजसे उस काष्ठको, जंगलको तथा दूसरी वस्तुओंको भी जल्दी ही जला डालती है ॥ ५७ ॥

एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥ ५८ ॥

इसी प्रकार अपने कुलमें उत्पन्न वे अग्निके समान तेजस्वी पाण्डव क्षमाभावसे युक्त और विकारशून्य हो काष्ठमें छिपी अग्निकी तरह गुप्तरूपसे अपने गुण एवं प्रभावको छिपाये हुए स्थित हैं ॥ ५८ ॥

लताधर्मा त्वं सपुत्रः शालाः पाण्डुसुता मताः ।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥ ५९ ॥

अपने पुत्रोंसहित आप लताके समान हैं और पाण्डव महान् शालवृक्षके सदृश हैं; महान् वृक्षका आश्रय लिये विना लता कभी बढ नहीं सकती ॥ ५९ ॥

वनं राजंस्त्वं सपुत्रोऽम्बिकेय सिंहान्वने पाण्डवांस्तात विद्धि ।
सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत्सिंहा विनश्येयुर्ऋते वनेन ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते सभापर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ १२७२ ॥

राजन् ! अम्बिकानन्दन ! आपके पुत्र एक वन हैं और पाण्डवोंको उसके भीतर रहनेवाले सिंह समझिये। तात! सिंहके सूना हो जानेपर वन नष्ट हो जाता है और वनके विना सिंह भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ६० ॥

॥ महाभारतके सभापर्वमें सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ १२७२ ॥

: ३८ :

विदुर उवाच

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥ १ ॥

विदुर बोले— राजन् ! जब कोई माननीय वृद्ध पुरुष निकट आता है, उस समय नवयुवक व्यक्तिके प्राण ऊपरको उठने लगते हैं; फिर जब वह वृद्धके स्वागतमें उठकर खडा होता और प्रणाम करता है, तब प्राणोंको पुनः वास्तविक स्थितिमें प्राप्त करता है ॥ १ ॥

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थं ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः ॥ २ ॥

धीर पुरुष अथितिके रूपमें घर आए हुए साधु पुरुषको आसन देकर एवं जल लाकर उसके चरण पखारे, फिर उसकी कुशल पूछकर अपनी स्थिति बतावे, तदनन्तर आवश्यकता समझकर अन्न भोजन करावे ॥ २ ॥

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च नमन्त्रवित्प्रतिगृह्णाति गेहे ।
लोभाद्भयादर्थकार्पण्यतो वा तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः ॥ ३ ॥

वेदज्ञानसे शून्य अज्ञानी जिसके घर दाताके लोभ, भय या कंजूसीके कारण जल, मधुपर्क और गौको स्वीकार करता है, श्रेष्ठ पुरुषोंने उस गृहस्थका जीवन व्यर्थ बताया है ॥ ३ ॥

चिकित्सकः शल्यकर्तावकीर्णी स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च ।
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः ॥ ४ ॥

वैद्य, चीरफाड करनेवाला, ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट, चोर, क्रूर, शराबी, गर्भहत्यारा, सेनाजीवी और वेदविक्रेता ये यद्यपि पैर धोनेके योग्य नहीं हैं, तथापि यदि अतिथि होकर आवें तो विशेष प्रिय यानी आदरके योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

अविक्रेयं लवणं पक्वमन्नं दधि क्षीरं मधु तैलं घृतं च ।
तिला मांसं फलमूलानि शाकं रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडश्च ॥ ५ ॥

नमक, पका हुआ अन्न, दही, दूध, मधु, तेल, घी, तिल, मांस, फल, मूल, साग, लाल कपडा, सब प्रकारकी गन्ध और गुड इतनी वस्तुएँ बेचने योग्य नहीं हैं ॥ ५ ॥

अरोषणो यः समलोष्टकाञ्चनः प्रहीणशोको गतसंधिविग्रहः ।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये चरन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥ ६ ॥

जो क्रोध न करनेवाला, लोष्ट, पत्थर और सुवर्णको एकसा समझनेवाला, शोकहीन, सन्धि विग्रहसे रहित, निन्दा प्रशंसासे शून्य, प्रियअप्रियका त्याग करनेवाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक संन्यासी है ॥ ६ ॥

नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः सुसंयतात्माग्निकार्येष्वचोद्यः ।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरंधरः पुण्यकृदेष तापसः ॥ ७ ॥

जो नीवार जंगली चावल, कन्दमूल, इंगुदीफल और साग खाकर निर्वाह करता है, मनको वशमें रखता है, अग्निहोत्र करता है, वनमें रहकर भी अतिथिसेवामें सदा सावधान रहता है, वही पुण्यात्मा तपस्वी वानप्रस्थी श्रेष्ठ माना गया है ॥ ७ ॥

अपकृत्वा बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥ ८ ॥

बुद्धिमान् पुरुषकी बुराई करके इस विश्वासपर निश्चिन्त न रहे कि मैं दूर हूँ। बुद्धिमान्की बुद्धिरूप बाँहें बडी लंबी होती हैं, सताया जानेपर वह उन्हीं बाँहोंसे बदला लेता है ॥ ८ ॥

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ ९ ॥

जो विश्वासका पात्र नहीं है, उसका तो विश्वास करे ही नहीं; किंतु जो विश्वासपात्र है, उसपर भी अधिक विश्वास न करे । विश्वाससे जो भय उत्पन्न होता है, वह मूलका भी उच्छेद कर डालता है ॥ ९ ॥

अनीर्ष्युर्गुप्तदारः स्यात्संविभागी प्रियंवदः ।
श्लक्ष्णो मधुरवाक्स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ॥ १० ॥

मनुष्यको चाहिये कि वह ईर्ष्यारहित, स्त्रियोंका रक्षक, सम्पत्तिका न्यायपूर्वक विभाग करनेवाला, प्रियवादी, स्वच्छ तथा स्त्रियोंके निकट मीठे वचन बोलनेवाला हो, परंतु उनके वशमें कभी न हो ॥ १० ॥

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ॥ ११ ॥

स्त्रियाँ घरकी लक्ष्मी कही गयी हैं । ये अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, आदरके योग्य, पवित्र तथा घरकी शोभा हैं; अतः इनकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम् ।
गोषु चात्मसमं दद्यात्स्वयमेव कृषिं व्रजेत्
भृत्यैर्वाणिज्याचारं च पुत्रैः सेवेत ब्राह्मणान् ॥ १२ ॥

अन्तःपुरकी रक्षाका कार्य पिताको सौंप दे, रसोईघरका प्रबन्ध माताके हाथमें दे दे, गौओंकी सेवामें अपने समान व्यक्तिको नियुक्त करे और कृषिका कार्य स्वयं ही करे। इसी प्रकार सेवकोंद्वारा वाणिज्यव्यापार करे और पुत्रोंके द्वारा ब्राह्मणोंकी सेवा करे ॥ १२ ॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ १३ ॥

जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा पैदा हुआ है । इनका तेज सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी अपने उत्पत्तिस्थानमें शान्त हो जाता है ॥ १३ ॥

नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥ १४ ॥

अच्छे कुलमें उत्पन्न, अग्निके समान तेजस्वी, क्षमाशील और विकारशून्य संत पुरुष सदा काष्ठमें अग्निकी भाँति शान्तभावसे स्थित रहते हैं ॥ १४ ॥

यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये ।
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ॥ १५ ॥

जिस राजाकी मन्त्रणाको उसके बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग कोई भी मनुष्य नहीं जानते, सब ओर दृष्टि रखनेवाला वह राजा चिरकालतक ऐश्वर्यका उपभोग करता है ॥ १५ ॥

करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव च दर्शयेत् ।
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते ॥ १६ ॥

धर्म, काम और अर्थसम्बन्धी कार्योंको करनेसे पहले न बतावे, करके ही दिखावे । ऐसा करनेसे अपनी मन्त्रणा दूसरोंपर प्रकट नहीं होती ॥ १६ ॥

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रो विधीयते ॥ १७ ॥

पर्वतकी चोटी अथवा राजमहलपर चढ़कर एकान्त स्थानमें जाकर या जंगलमें तृण आदिसे अनावृत स्थानपर मन्त्रणा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

नासुहृत्परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम् ।
अपण्डितो वापि सुहृत्पण्डितो वाप्यनात्मवान् ।
अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च ॥ १८ ॥

भारत ! जो मित्र न हो, मित्र होनेपर भी पण्डित न हो, पण्डित होनेपर भी जिसका मन वशमें न हो, वह अपनी गुप्त मन्त्रणा जाननेके योग्य नहीं है। धनकी प्राप्ति और मन्त्रकी रक्षाका भार मन्त्रीपर ही रहता है ॥ १८ ॥

कृतानि सर्वकार्याणि यस्य वा पार्षदा विदुः ।
गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥ १९ ॥

जिसके सभी कार्योंको पूर्ण होनेके बाद ही सभासद्गण जान पाते हैं, अपने मन्त्रको गुप्त रखनेवाले उस राजाको निःसंदेह सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १९ ॥

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति ।
स तेषां विपरिभ्रंशे भ्रश्यते जीवितादपि ॥ २० ॥

जो मोहवश बुरे शास्त्रनिषिद्ध कर्म करता है, वह उन कार्योंका विपरीत परिणाम होनेसे अपने जीवनसे भी हाथ धो बैठता है ॥ २० ॥

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम् ।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं महत् ॥ २१ ॥

उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान तो सुख देनेवाला होता है, किंतु उन्हींका अनुष्ठान न किया जाय तो वह पश्चात्तापका कारण माना गया है ॥ २१ ॥

स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः ।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥ २२ ॥

राजन् ! जो सन्धि विग्रह यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय छः गुणोंकी जानकारीके कारण प्रसिद्ध है, स्थिति, वृद्धि और ह्रासको जानता है तथा जिसके स्वभावकी सब लोग प्रशंसा करते हैं, उसी राजाके अधीन पृथ्वी रहती है ॥ २२ ॥

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षिणः ।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुधेयं वसुन्धरा ॥ २३ ॥

जिसके क्रोध और हर्ष व्यर्थ नहीं जाते, जो आवश्यक कार्योंकी स्वयं देखभाल करता है और खजानेकी भी स्वयं जानकारी रखता है, उसकी पृथ्वी पर्याप्त धन देनेवाली ही होती है ॥ २३ ॥

नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः ।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत् ॥ २४ ॥

भूपतिको चाहिये कि अपने राजा नामसे और राजोचित छत्रके धारणसे संतुष्ट रहे । सेवकोंको पर्याप्त धन दे, सब अकेला ही न हडप ले ॥ २४ ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणं वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा ।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च ॥ २५ ॥

ब्राह्मणको ब्राह्मण जानता है, स्त्रीको उसका पति जानता है, मन्त्रीको राजा जानता है और राजाको भी राजा ही जानता है ॥ २५ ॥

न शत्रुरङ्कमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः ।
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते नचिरादिव ॥ २६ ॥

गोदमें आये हुए वधके योग्य शत्रुको कभी छोडना नहीं चाहिये । क्योंकि यदि शत्रु मारा न गया तो उससे शीघ्र ही भय उपस्थित होता है ॥ २६ ॥

दैवतेषु च यत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च ।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥ २७ ॥

देवता, ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और रोगीपर होनेवाले क्रोधको प्रयत्नपूर्वक सदा रोकना चाहिये ॥ २७ ॥

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम् ।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥ २८ ॥

मूर्खोंद्वारा सेवित निरर्थक कलहका बुद्धिमान् पुरुषको त्याग कर देना चाहिये । ऐसा करनेसे उसे लोकमें यश मिलता है और अनर्थका सामना नहीं करना पडता ॥ २८ ॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥ २९ ॥

जिसके प्रसन्न होनेका कोई फल नहीं तथा जिसका क्रोध भी व्यर्थ होता है, ऐसे राजाको प्रजा उसी भाँति नहीं चाहती, जैसे स्त्री नपुंसक पतिको ॥ २९ ॥

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥ ३० ॥

धन प्राप्तिके लिए बुद्धि नहीं होती और ना ही मूर्खता दरिद्रताका कारण होती है। संसार-चक्रके वृत्तान्तको केवल विद्वान् पुरुष ही जानते हैं, दूसरे लोग नहीं ॥ ३० ॥

विद्याशीलवयोवृद्धान्बुद्धिवृद्धांश्च भारत।
धनाभिजनवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ॥ ३१ ॥

भारत ! मूर्ख मनुष्य विद्या, शील, अवस्था, बुद्धि, धन और कुलमें बडे माननीय पुरुषोंका सदा अनादर किया करता है ॥ ३१ ॥

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम्।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ॥ ३२ ॥

जिसका चरित्र निन्दनीय है, जो मूर्ख, गुणोंमें दोष देखनेवाला, अधार्मिक, बुरे वचन बोलनेवाला और क्रोधी है, उसके ऊपर शीघ्र ही अनर्थ संकट टूट पडते हैं ॥ ३२ ॥

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक् ॥ ३३ ॥

ठगी न करना, दान देना, प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन न करना और अच्छी तरह कही हुई बात ये सब सम्पूर्ण भूतोंको अपना बना लेते हैं ॥ ३३ ॥

अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः।
अपि संक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥ ३४ ॥

किसीको भी धोखा न देनेवाला, चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान् और कोमल स्वभाववाला राजा खजाना समाप्त हो जानेपर भी सहायकोंको पा जाता है अर्थात् उसे सहायक मिल जाते हैं ॥ ३४ ॥

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ॥ ३५ ॥

धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रियसंयम, पवित्रता, दया, कोमल वाणी और मित्रसे द्रोह न करना ये सात बातें लक्ष्मीको बढानेवाली हैं ॥ ३५ ॥

असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः।
तादृङ्नराधमो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥ ३६ ॥

राजन् ! जो अपने आश्रितोंमें धनका ठीक ठीक बँटवारा नहीं करता तथा जो दुष्ट स्वभाव-वाला, कृतघ्न और निर्लज्ज है, ऐसा राजा इस लोकमें त्याग देने योग्य है ॥ ३६ ॥

न स रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम् ॥ ३७ ॥

जो स्वयं दोषी होकर भी निर्दोष आत्मीय व्यक्तिको कुपित करता है, वह सर्पयुक्त घरमें रहनेवाले मनुष्यकी भाँति रातमें सुखसे नहीं सो सकता ॥ ३७ ॥

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद्योगक्षेमस्य भारत।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥ ३८ ॥

भारत! जिनके ऊपर दोषारोपण करनेसे योगक्षेममें बाधा आती हो, उन लोगोंको देवताकी भाँति सदा प्रसन्न रखना चाहिये ॥ ३८ ॥

येऽर्थाः स्त्रीषु समासक्ताः प्रथमोत्पतितेषु च।
ये चानार्यसमासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥ ३९ ॥

जो धन आदि पदार्थ स्त्री, पतित और नीच पुरुषोंके हाथमें सौंप दिये जाते हैं, वे संशयमें पड जाते हैं ॥ ३९ ॥

यत्र स्त्री यत्र कितवो यत्र बालोऽनुशास्ति च।
मज्जन्ति तेऽवशा देशा नद्यामश्मप्लवा इव ॥ ४० ॥

राजन्! जहाँका शासन स्त्री, जुआरी और बालकके हाथमें होता है, वहाँके लोग नदीमें पत्थरकी नावपर बैठनेवालोंकी भाँति विवश होकर विपत्तिके समुद्रमें डूब जाते हैं ॥ ४० ॥

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत।
तानहं पण्डितान्मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः ॥ ४१ ॥

भारत! जो लोग जितना आवश्यक है, उतने ही काममें लगे रहते हैं, अधिकमें हाथ नहीं डालते, उन्हें मैं पण्डित मानता हूँ; क्योंकि अधिकमें हाथ डालना संघर्षका कारण होता है ॥ ४१ ॥

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥ ४२ ॥

केवल जुआरी जिसकी प्रशंसा करते हैं, नर्तक जिसकी प्रशंसाका गान करते हैं और वेश्याएँ जिसकी बडाई किया करती हैं, वह मनुष्य जीता ही मुर्देके समान है ॥ ४२ ॥

हित्वा तान्परमेष्वासान्पाण्डवानमितौजसः।
आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत् ॥ ४३ ॥

भारत! आपने उन महान् धनुर्धर और अत्यन्त तेजस्वी पाण्डवोंको छोडकर यह महान् ऐश्वर्यका भार दुर्योधनके ऊपर रख दिया है ॥ ४३ ॥

तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात्त्वं नचिरादिव ।
ऐश्वर्यमदसम्मूढं बलिं लोकत्रयादिव ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ १३१६ ॥

इसलिये आप शीघ्र ही उस ऐश्वर्यमदसे मूढ दुर्योधनको त्रिभुवनके साम्राज्यसे गिरे हुए बलिकी भाँति इस राज्यसे भ्रष्ट होते देखियेगा ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ १३१६ ॥

: ३९ :

धृतराष्ट्र उवाच

अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा ।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे किलायं तस्माद्वद त्वं श्रवणे धृतोऽहम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— विदुर ! यह पुरुष ऐश्वर्यकी प्राप्ति और नाशमें स्वतन्त्र नहीं है । ब्रह्माने धागेसे बँधी हुई कठपुतलीकी भाँति इसे प्रारब्धके अधीन कर रक्खा है; इसलिये तुम कहते चलो, मैं सुननेके लिये धैर्य धारण किये बैठा हूँ ॥ १ ॥

विदुर उवाच

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत ॥ २ ॥

विदुर बोले-- भारत ! समयके विपरीत यदि बृहस्पति भी कुछ बोलें तो उनका अपमान ही होगा और उनकी बुद्धिकी भी अवज्ञा ही होगी ॥ २ ॥

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः ।
मन्त्रं मूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥ ३ ॥

संसारमें कोई मनुष्य दान देनेसे प्रिय होता है, दूसरा प्रिय वचन बोलनेसे प्रिय होता है और तीसरा मन्त्र तथा औषधके बलसे प्रिय होता है, किंतु जो वास्तवमें प्रिय है, वह तो सदा प्रिय ही है ॥ ३ ॥

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः ।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि भारत ॥ ४ ॥

जिससे द्वेष हो जाता है, वह न साधु, न विद्वान् और न बुद्धिमान् ही जान पडता है । प्रिय व्यक्ति मित्र आदिके तो सभी कर्म शुभ ही प्रतीत होते हैं और शत्रुके सभी कार्य पापमय ॥ ४ ॥

न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।
क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत् ॥ ५ ॥

महाराज! वास्तवमें जो क्षय वृद्धिका कारण होता है, वह क्षय नहीं है; इसके विपरीत उस लाभको भी क्षय ही मानना चाहिये, जिसे पानेसे बहुतसे लाभोंका नाश हो जाय ॥ ५ ॥

समृद्धा गुणतः केचिद्भवन्ति धनतोऽपरे।
धनवृद्धान्गुणैर्हीनान्धृतराष्ट्र विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र! कुछ लोग गुणसे समृद्ध होते हैं और कुछ लोग धनसे। जो धनके धनी होते हुए भी गुणोंसे हीन हैं, उन्हें सर्वथा त्याग दीजिये ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम्।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र बोले— विदुर! तुम जो कुछ कह रहे हो, परिणाममें हितकर है; बुद्धिमान् लोग इसका अनुमोदन करते हैं। यह भी ठीक है कि जिस ओर धर्म होता है, उसी पक्षकी जीत होती है, तो भी मैं अपने बेटेका त्याग नहीं कर सकता ॥ ७ ॥

विदुर उवाच

स्वभावगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दं प्रयोक्ष्यते ॥ ८ ॥

विदुर बोले— राजन् जो अधिक गुणोंसे सम्पन्न और विनयी है, वह प्राणियोंका तनिक भी संहार होते देख उसकी कभी उपेक्षा नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः ॥ ९ ॥

जो दूसरोंकी निन्दामें ही लगे रहते हैं, दूसरोंको दुःख देने और आपसमें फूट डालनेके लिये सदा उत्साहके साथ प्रयत्न करते हैं ॥ ९ ॥

सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद्भयम्।
अर्थादाने महान्दोषः प्रदाने च महद्भयम् ॥ १० ॥

जिनका दर्शन दोषसे भरा अशुभ है और जिनके साथ रहनेमें भी बहुत बडा खतरा है, ऐसे लोगोंसे धन लेनेमें महान् दोष है और उन्हें देनेमें बहुत बडा भय है ॥ १० ॥

ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ।
युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान्विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

जो प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखनेके अयोग्य निन्दित माने गये हैं। उपर्युक्त दोषोंके अतिरिक्त और भी जो महान् दोष हैं, उनसे युक्त मनुष्योंका त्याग कर देना चाहिये ॥ ११ ॥

निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति ।
या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत्सुखम् ॥ १२ ॥

सौहार्दभाव निवृत्त हो जानेपर नीच पुरुषोंका प्रेम नष्ट हो जाता है, उस सौहार्दसे होनेवाले फलकी सिद्धि और सुखका भी नाश हो जाता है ॥ १२ ॥

यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये ।
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमुपगच्छति ॥ १३ ॥

फिर वह नीच पुरुष निन्दा करनेके लिये यत्न करता है, थोडा भी अपराध हो जानेपर मोहवश विनाशके लिये उद्योग आरम्भ कर देता है। उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती ॥ १३ ॥

तादृशैः संगतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ।
निशाम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान्दूराद्विवर्जयेत् ॥ १४ ॥

वैसे नीच, क्रूर तथा अजितेन्द्रिय पुरुषोंसे होनेवाले सङ्गपर अपनी बुद्धिसे पूर्ण विचार करके विद्वान् पुरुष उसे दूरसे ही त्याग दे ॥ १४ ॥

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ।
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं यशश्चाव्ययमश्नुते ॥ १५ ॥

जो अपने कुटुम्बी, दरिद्र, दीन तथा रोगीपर अनुग्रह करता है, वह पुत्र और पशुओंसे वृद्धिको प्राप्त होता और अनन्त कल्याणका अनुभव करता है ॥ १५ ॥

ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् ।
कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात्साधु समाचर ॥ १६ ॥

राजेन्द्र ! जो लोग अपने भलेकी इच्छा करते हैं, उन्हें अपने जातिभाइयोंको उन्नतिशील बनाना चाहिये; इसलिये आप भलीभाँति अपने कुलकी वृद्धि करें ॥ १६ ॥

श्रेयसा योक्ष्यसे राजन्कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम् ।
विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ १७ ॥

राजन् ! जो अपने कुटुम्बीजनोंका सत्कार करता है, वह कल्याणका भागी होता है। भरत-श्रेष्ठ ! अपने कुटुम्बके लोग गुणहीन हों, तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणः।
प्रसादं कुरु दीनानां पाण्डवानां विशां पते ॥ १८ ॥

फिर जो आपके कृताभिलाषी एवं गुणवान् हैं, उनकी तो बात ही क्या है ? हे प्रजापालक! बेचारे पाण्डवोंपर कृपा कीजिये ॥ १८ ॥

दीयन्तां ग्रामकाः केचित्तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर।
एवं लोके यशःप्राप्तो भविष्यसि नराधिप ॥ १९ ॥

हे ईश्वर! और उनकी जीविकाके लिये उन्हें कुछ गाँव दे दीजिये। नरेश्वर! ऐसा करनेसे आपको इस संसारमें यश प्राप्त होगा ॥ १९ ॥

वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात रक्षणम्।
मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम् ॥ २० ॥

तात! आप वृद्ध हैं, इसलिये आपको अपने पुत्रोंकी रक्षा करनी चाहिये। भरतश्रेष्ठ! मुझे भी आपके हितकी ही बात कहनी चाहिये। आप मुझे अपना हितैषी समझें ॥ २० ॥

ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः भवार्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ॥ २१ ॥

तात! ऐश्वर्य चाहनेवालेको अपने जातिभाइयोंके साथ झगडा नहीं करना चाहिये; बल्कि उनके साथ मिलकर सुखका उपभोग करना चाहिये ॥ २१ ॥

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कथंचन ॥ २२ ॥

जातिभाइयोंके साथ परस्पर भोजन, बातचीत एवं प्रेम करना ही कर्तव्य है; उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥ २३ ॥

इस जगत्में जातिभाई ही तारते और जातिभाई ही डुबाते भी हैं। उनमें जो सदाचारी हैं, वे तो तारते हैं और दुराचारी डुबा देते हैं ॥ २३ ॥

सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान्प्रति मानद।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि ॥ २४ ॥

राजेन्द्र! आप पाण्डवोंके प्रति सद्व्यवहार करें। मानद! उनसे सुरक्षित होकर आप शत्रुओंके लिये दुर्धर्ष हो जायेंगे ॥ २४ ॥

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति।
दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति ॥ २५ ॥

विषैले बाण हाथमें लिये हुए व्याधके पास पहुँचकर जैसे मृगको कष्ट भोगना पडता है, उसी प्रकार जो जातीय बन्धु अपने धनी बन्धुके पास पहुँचकर दुःख पाता है, उसके पापका भागी वह धनी होता है ॥ २५ ॥

पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति।
तान्वा हतान्सुतान्वापि श्रुत्वा तदनुचिन्तय ॥ २६ ॥

नरश्रेष्ठ! आप पाण्डवोंको अथवा अपने पुत्रोंको मारे गये सुनकर पीछे संताप करेंगे; अतः इस बातका पहले ही विचार कर लीजिये ॥ २६ ॥

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत्कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥ २७ ॥

इस जीवनका कोई ठिकाना नहीं है अतएव जिस कर्मके करनेसे अन्तमें खटियापर बैठकर पछताना पडे, उसको पहलेसे ही नहीं करना चाहिये ॥ २७ ॥

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात्।
शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति ॥ २८ ॥

शुक्राचार्यके सिवा दूसरा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो नीतिका उल्लङ्घन नहीं करता; अतः जो बीत गया, सो बीत गया, शेष कर्तव्यका विचार आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषोंपर ही निर्भर है ॥ २८ ॥

दुर्योधनेन यद्येतत्पापं तेषु पुरा कृतम्।
त्वया तत्कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर ॥ २९ ॥

नरेश्वर! दुर्योधनने पहले यदि पाण्डवोंके प्रति यह अपराध किया है तो इस कुलमें बडे-बूढे आपके द्वारा उसका मार्जन हो जाना चाहिये ॥ २९ ॥

तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः।
भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम् ॥ ३० ॥

नरश्रेष्ठ! उनको राजपदपर स्थापित कर तथा स्वयं भी निष्पाप होकर आप बुद्धिमान् पुरुषोंके माननीय हो जायँगे ॥ ३० ॥

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः प्रविचिन्त्य यः।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति ॥ ३१ ॥

जो धीर पुरुषोंके वचनोंके परिणामपर विचार करके उन्हें कार्यरूपमें परिणत करता है, वह चिरकालतक यशका भागी बना रहता है ॥ ३१ ॥

अवृत्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ३२ ॥

विनयभाव कदाचारका नाश करता है, पराक्रम अनर्थको दूर करता है, क्षमा सदा ही क्रोधका नाश करती है और सदाचार कुलक्षणका अन्त करता है ॥ ३२ ॥

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया ।
परीक्षेत कुलं राजन्भोजनाच्छादनेन च ॥ ३३ ॥

राजन्! नाना प्रकारके परिच्छेद, माता, घर, सेवाशुश्रूषा और भोजन तथा वस्त्रके द्वारा कुलकी परीक्षा करे ॥ ३३ ॥

ययोश्चित्तेन वा चित्तं नैभृतं नैभृतेन वा ।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यते ॥ ३४ ॥

जिन दो मनुष्योंका चित्तसे चित्त गुप्त रहस्यसे गुप्त रहस्य और बुद्धिसे बुद्धि मिल जाती है, उनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती ॥ ३४ ॥

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव ।
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन्मैत्री प्रणश्यति ॥ ३५ ॥

मेधावी पुरुषको चाहिये कि तृणसे ढँके हुए कुएँकी भाँति दुर्बुद्धि एवं विचारशक्तिसे हीन पुरुषका परित्याग कर दे; क्योंकि उसके साथ की हुई मित्रता नष्ट हो जाती है ॥ ३५ ॥

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च ।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद्बुधः ॥ ३६ ॥

विद्वान् पुरुषको उचित है कि अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसिक और धर्महीन पुरुषोंके साथ मित्रता न करे ॥ ३६ ॥

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम् ।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते ॥ ३७ ॥

मित्र तो ऐसा होना चाहिये, जो कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ अनुराग रखनेवाला, जितेन्द्रिय, मर्यादाके भीतर रहनेवाला और मैत्रीका त्याग न करनेवाला हो ॥३७॥

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युना न विशिष्यते ।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद्दैवतान्यपि ॥ ३८ ॥

इन्द्रियोंको सर्वथा रोक रखना तो मृत्युसे बढकर नहीं है और उन्हें बिल्कुल खुली छोड देना देवताओंका भी नाश कर देता है ॥ ३८ ॥

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ॥ ३९ ॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका भाव, गुणोंमें दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रोंका अपमान न करना ये सब गुण आयुको बढानेवाले हैं ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ३९ ॥

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते।
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम् ॥ ४० ॥

जो नष्ट हुए धनको स्थिर बुद्धिका आश्रय ले अच्छी नीतिसे पुनः लौटा लानेकी इच्छा करता है, वह वीर पुरुषोंकासा आचरण करता है ॥ ४० ॥

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते ॥ ४१ ॥

जो आनेवाले दुःखको रोकनेका उपाय जानता है, वर्तमानकालिक कर्तव्यके पालनमें दृढ निश्चय रखनेवाला है और अतीतकालमें जो कर्तव्य शेष रह गया है, उसे भी जानता है, वह मनुष्य कभी अर्थसे हीन नहीं होता ॥ ४१ ॥

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदेवापहरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत् ॥ ४२ ॥

मनुष्य मन, वाणी और कर्मसे जिसका निरन्तर सेवन करता है, वह कार्य उस पुरुषको अपनी ओर खींच लेता है। इसलिये सदा कल्याणकारी कार्योंको ही करे ॥ ४२ ॥

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ॥ ४३ ॥

माङ्गलिक पदार्थोंका स्पर्श, चित्तवृत्तियोंका निरोध, शास्त्रका अभ्यास, उद्योगशीलता, सरलता और सत्पुरुषोंका बारंबार दर्शन ये सब कल्याणकारी हैं ॥ ४३ ॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलं दुःखनाशे सुखस्य च।
महान्भवत्यनिर्विण्णः सुखं चात्यन्तमश्नुते ॥ ४४ ॥

दुःखके नष्ट एवं सुखके प्राप्त हो जाने पर भी उद्योगको न तजना ही कल्याणका मूल है। इसलिये उद्योग न छोडनेवाला मनुष्य महान् हो जाता है और अनन्त सुखका उपभोग करता है ॥ ४४ ॥

नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत्पथ्यतमं तथा।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ॥ ४५ ॥

तात! समर्थ पुरुषके लिये सब जगह और सब समयमें क्षमाके समान हितकारक और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनानेवाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है ॥ ४५ ॥

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान्धर्मकारणात् ।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता ॥ ४६ ॥

जो शक्तिहीन है, वह तो सबपर क्षमा करे ही; जो शक्तिमान् है, वह भी धर्मके लिये क्षमा करे तथा जिसकी दृष्टिमें अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिये तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है ॥ ४६ ॥

यत्सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥ ४७ ॥

जिस सुखका सेवन करते रहनेपर भी मनुष्य धर्म और अर्थसे भ्रष्ट नहीं होता, उसका यथेष्ट सेवन करे; किंतु मूढव्रत निद्रा–प्रमादादिका सेवन न करे ॥ ४७ ॥

दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च ।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥ ४८ ॥

जो दुःखसे पीडित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहरहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मीका वास नहीं होता ॥ ४८ ॥

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात्सव्यपत्रपम् ।
अशक्तिमन्तं मन्यन्तो धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥ ४९ ॥

दुष्ट बुद्धिवाले लोग सरलतासे युक्त और सरलताके ही कारण लज्जाशील मनुष्यको अशक्त मानकर उसका तिरस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥ ५० ॥

अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अतीव, शूरवीर, अधिक व्रत–नियमोंका पालन करनेवाले और बुद्धिके घमंडमें चूर रहनेवाले मनुष्यके पास लक्ष्मी भयके मारे नहीं जाती ॥ ५० ॥

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ।
रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलं धनम् ॥ ५१ ॥

वेदोंका फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्राध्ययनका फल है सुशीलता और सदाचार, स्त्रीका फल है रतिसुख और पुत्रकी प्राप्ति तथा धनका फल है दान और उपभोग ॥ ५१ ॥

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ॥ ५२ ॥

जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे पारलौकिक कर्म करता है, उस धनके बुरे मार्गसे कमाये हुए होनेके कारण वह मरनेके पश्चात् उसके फलको नहीं पाता; ॥ ५२ ॥

कान्तारवनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति शेषवतां भयम् ॥ ५३ ॥

घोर जंगलमें, दुर्गम मार्गमें, कठिन आपत्तिके समय, घबराहटमें और प्रहारके लिये शस्त्र उठे रहनेपर भी सत्त्वसम्पन्न अर्थात् आत्मबलसे युक्त पुरुषोंको भय नहीं होता ॥ ५३ ॥

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तत् ॥ ५४ ॥

उद्योग, संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मृति और सोचविचारकर कार्यारम्भ करना इन्हें उन्नतिका मूलमन्त्र समझिये ॥ ५४ ॥

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥ ५५ ॥

तपस्वियोंका बल तप है, वेदवेत्ताओंका बल वेद है, पापियोंका बल हिंसा है और गुणवानोंका बल क्षमा है ॥ ५५ ॥

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥ ५६ ॥

जल, मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका वचन और औषध ये आठ व्रतके नाशक नहीं होते ॥ ५६ ॥

न तत्परस्य संदध्यात्प्रतिकूलं यदात्मनः।
संग्रहेणैष धर्मः स्यात्कामादन्यः प्रवर्तते ॥ ५७ ॥

जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके प्रति भी न करे। थोड़ेमें धर्मका यही स्वरूप है। इसके विपरीत जिसमें कामनासे प्रवृत्ति होती है, वह तो अधर्म है ॥ ५७ ॥

अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत्कदर्यं दानेन जयेत्सत्येन चानृतम् ॥ ५८ ॥

अक्रोधसे क्रोधको जीते, असाधुको सद्व्यवहारसे वशमें करे, कृपणको दानसे जीते और झूठपर सत्यसे विजय प्राप्त करे ॥ ५८ ॥

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥ ५९ ॥

स्त्रीलम्पट, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्वके अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिकका विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ५९ ॥

×

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ॥ ६० ॥

जो नित्य गुरुजनोंको प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषोंकी सेवामें लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल ये चारों बढते हैं ॥ ६० ॥

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण च।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥ ६१ ॥

जो धन अत्यन्त क्लेश उठानेसे, धर्मका उल्लङ्घन करनेसे अथवा शत्रुके सामने सिर झुकानेसे प्राप्त होता हो, उसमें आप मन न लगाइये ॥ ६१ ॥

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मिथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम् ॥ ६२ ॥

विद्याहीन पुरुषके लिये शोक करना चाहिए, संतानोत्पत्तिरहित स्त्रीप्रसङ्गके बारेमें भी शोक करना योग्य है, आहार न पानेवाली प्रजा भी शोक करने लायक है और बिना राजाके राष्ट्रके लिये शोक करना चाहिये ॥ ६२ ॥

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा ॥ ६३ ॥

अधिक राह चलना देहधारियोंके लिये दुःखरूप बुढापा है, बराबर पानी गिरना पर्वतोंका बुढापा है, सम्भोगसे वञ्चित रहनेका दुःख स्त्रियोंके लिये बुढापा है, और वचनरूपी बाणोंका आघात मनके लिये बुढापा है ॥ ६३ ॥

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम्।
कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः ॥ ६४ ॥

अभ्यास न करना वेदोंका मल है; ब्राह्मणोचित नियमोंका पालन न करना ब्राह्मणका मल है, क्रीडा एवं हास–परिहासकी उत्सुकता पतिव्रता स्त्रीका मल है और पतिके बिना परदेशमें रहना स्त्रीमात्रका मल है ॥ ६४ ॥

सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥ ६५ ॥

सोनेका मल चाँदी है, चाँदीका मल राँगा है, राँगेका मल सीसा है और सीसेका भी मल उसका मैलापन है ॥ ६५ ॥

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन स्त्रियं जयेत् ।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥ ६६ ॥

अधिक सोकर नींदको जीतनेका प्रयास न करे, कामोपभोगके द्वारा स्त्रीको जीतनेकी इच्छा न करे, लकडी डालकर आगको जीतनेकी आशा न रक्खे और अधिक पीकर मदिरा पीनेकी आदतको जीतनेका प्रयास न करे ॥ ६६ ॥

यस्य दानजितं मित्रममित्रा युधि निर्जिताः ।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ॥ ६७ ॥

जिसका मित्र धनदानके द्वारा वशमें आ चुका है, शत्रु युद्धमें जीत लिये गये हैं और स्त्रियाँ खानपानके द्वारा वशीभूत हो चुकी हैं, उसका जीवन सफल है अर्थात् सुखमय है ॥६७॥

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा ।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथंचिन्न जीव्यते ॥ ६८ ॥

जिनके पास हजार रुपये हैं, वे भी जीवित हैं तथा जिनके पास सौ रुपये हैं, वे भी जीवित हैं; अतः महाराज धृतराष्ट्र ! आप अधिकका लोभ छोड दीजिये, लोभको छोड देनेसे किसी तरह जीवन नहीं रहेगा, यह बात नहीं है अर्थात् तब भी आप जीवित ही रहेंगे ॥६८॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥ ६९ ॥

इस पृथ्वीपर जो भी धान, जौ, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सबके सब एक पुरुषके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं अर्थात् उनसे किसीकी भी तृप्ति नहीं हो सकती। ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य मोहमें नहीं पडता ॥ ६९ ॥

राजन्भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर ।
समता यदि ते राजन्स्वेषु पाण्डुसुतेषु च ॥ ७० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ १३८६ ॥

राजन् ! मैं फिर कहता हूँ, यदि आपका अपने पुत्रों और पाण्डवोंमें समानभाव है तो उन सभी पुत्रोंके साथ एकसा बर्ताव कीजिये ॥ ७० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ १३८६ ॥

: ४० :

विदुर उवाच

योऽभ्यर्थितः सद्भिरसज्जमानः करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा ।
क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्तमलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः ॥ १ ॥

विदुर बोले— राजन् ! जो सज्जन पुरुषोंसे आदर पाकर आसक्तिरहित हो अपनी शक्तिके अनुसार न्यायपूर्वक अर्थ–साधन करता रहता है, उस श्रेष्ठ पुरुषको शीघ्र ही सुयशकी प्राप्ति होती है; क्योंकि संत जिसपर प्रसन्न होते हैं, वह सदा सुखी रहता है ॥ १ ॥

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः संत्यजत्यनुपाकुष्ट एव ।
सुखं स दुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य ॥ २ ॥

जो अधर्मसे उपार्जित महान् धनराशिको भी उसकी ओर आकृष्ट हुए विना ही त्याग देता है, वह जैसे साँप अपनी पुरानी केंचुलको छोडता है, उसी प्रकार दुःखोंसे मुक्त हो सुखपूर्वक शयन करता है ॥ २ ॥

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥

झूठ बोलकर उन्नति करना, राजाके पासतक चुगली करना, गुरुजनपर भी झूठा दोषारोपण करनेका आग्रह करना-ये तीन कार्य ब्रह्महत्याके समान हैं ॥ ३ ॥

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः ।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ॥ ४ ॥

गुणोंमें दोष देखना एकदम मृत्युके समान है, निन्दा करना लक्ष्मीका वध है तथा सेवाका अभाव, उतावलापन और आत्मप्रशंसा ये तीन विद्याके शत्रु हैं ॥ ४ ॥

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा सुखम् त्यजेत् ॥ ५ ॥

सुख चाहनेवालेको विद्या कहाँसे मिल सकती है ? विद्या चाहनेवालेके लिये सुख नहीं है; सुखकी चाह हो तो विद्याको छोडे और विद्या पाना चाहे तो सुखका त्याग करे ॥ ५ ॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥ ६ ॥

ईंधनसे आगकी, नदियोंसे समुद्रकी, समस्त प्राणियोंसे मृत्युकी और पुरुषोंसे कुलटा स्त्रीकी कभी तृप्ति नहीं होती ॥ ६ ॥

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता।
अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम् ॥ ७ ॥

आशा धैर्यको, यमराज समृद्धिको नष्ट कर देता है क्रोध लक्ष्मीको, कृपणता यशको नष्ट कर देती है सारसँभालका अभाव पशुओंको नष्ट कर देता है, परंतु राजन्! ब्राह्मण यदि अकेला ही क्रुद्ध हो जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्रका नाश कर देता है ॥ ७ ॥

अजश्च कांस्यं च रथश्च नित्यं मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नो वयस्य एतानि ते सन्तु गृहे सदैव ॥ ८ ॥

बकरियाँ, काँसेका पात्र, रथ, मधु, धनुष, पक्षी, वेदवेत्ता ब्राह्मण, बूढा कुटुम्बी और आपत्तिग्रस्त मित्र ये सब आपके घरमें सदा मौजूद रहें ॥ ८ ॥

अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी।
विषमौदुम्बरं शङ्खः स्वर्णं नाभिश्च रोचना ॥ ९ ॥

भारत! बकरी, बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घी, जल, ताँबेके बर्तन, शङ्ख, शालग्राम और गोरोचन ॥ ९ ॥

गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत्।
देवब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत ॥ १० ॥

ये सब वस्तुएँ देवता, ब्राह्मण और अतिथियोंकी पूजाके लिए घरपर रखनी चाहिये ऐसा मनुजीने कहा है ॥ १० ॥

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ॥ ११ ॥

तात! अब मैं तुम्हें यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सर्वोपरि पुण्यजनक बात बता रहा हूं कामनासे, भयसे, लोभसे तथा इस जीवनके लिये भी कभी धर्मका त्याग न करे ॥ ११ ॥

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये नित्यो जीवो धातुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः ॥ १२ ॥

धर्म नित्य है, किंतु सुख दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य है, पर इसको धारण करनेवाला शरीर अनित्य है। आप अनित्यको छोडकर नित्यमें स्थित होइये और संतोष धारण कीजिये; क्योंकि संतोष ही सबसे बडा लाभ है ॥ १२ ॥

महाबलान्पश्य महानुभावान्प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्।
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान्गतान्नरेन्द्रान्वशमन्तकस्य ॥ १३ ॥

धन-धान्यादिसे परिपूर्ण पृथ्वीका शासन करके अन्तमें समस्त राज्य और विपुल भोगोंको यहीं छोडकर यमराजके वशमें गये हुए बडे बडे बलवान् एवं महानुभाव राजाओंकी ओर दृष्टि डालिये ॥ १३ ॥

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या उत्क्षिप्य राजन्स्वगृहान्निर्हरन्ति ।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्तश्चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ॥ १४ ॥

राजन् ! बडे कष्टसे पाला–पोसा जानेपर भी मरे हुए पुत्रको मनुष्य उठाकर तुरंत अपने घरसे बाहर कर देते हैं । पहले उसके लिये बाल छितराये करुणाभरे स्वरमें विलाप करनेवाले वे बादमें साधारण काठकी भाँति उसे जलती चितामें झोंक देते हैं ॥ १४ ॥

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून् ।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः ॥ १५ ॥

मरे हुए मनुष्यका धन दूसरे लोग भोगते हैं, उसके शरीरकी धातुओंको पक्षी खा जाते हैं या आग जला देती है । यह मनुष्य पुण्य–पापसे बंधा हुआ इन्हीं दोनोंके साथ परलोकमें गमन करता है ॥ १५ ॥

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः ।
अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयंकृतम् ॥ १६ ॥

तात ! उस प्रेतको उसके जातिवाले, सुहृद् और पुत्र चितामें छोडकर लौट आते हैं अग्निमें डाले हुए उस पुरुषके पीछे तो केवल उसका अपना किया हुआ बुरा या भला कर्म ही जाता है ॥ १६ ॥

अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाधो महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम् ।
तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां बुध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन् ॥ १७ ॥

इस लोक और परलोकसे ऊपर और नीचेतक सर्वत्र अज्ञानरूप महान् अन्धकार फैला हुआ है । वह इन्द्रियोंको महान् मोहमें डालनेवाला है । राजन् ! आप इसको जान लीजिये, जिससे यह आपका स्पर्श न कर सके ॥ १७ ॥

इदं वचः शक्ष्यसि चेद्यथावन्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेवम् ।
यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति ॥ १८ ॥

मेरी इस बातको सुनकर यदि आप सब ठीक ठीक समझ सकेंगे तो इस मनुष्यलोकमें आपको महान् यश प्राप्त होगा और इहलोक तथा परलोकमें आपके लिये भय नहीं रहेगा ॥ १८ ॥

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः ।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमम्भोऽम्भ एव ॥ १९ ॥

भारत ! यह जीवात्मा एक नदी है। इसमें पुण्य ही तीर्थ है। सत्यस्वरूप परमात्मासे इसका उद्गम हुआ है अथवा सत्य ही इस नदीका जल है धैर्य ही इसके किनारे हैं । दया इसकी लहरें हैं । पुण्यकर्म करनेवाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है; इस जलमें स्नान करनेवाली आत्मा सदा पवित्र ही है ॥ १९ ॥

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
कृत्वा धृतिमयीं नावं जन्मदुर्गाणि संतर ॥ २० ॥

काम-क्रोधादिरूप ग्राहसे भरी, पांच इन्द्रियोंके जलसे पूर्ण इस संसारनदीके जन्ममरणरूप दुर्गम प्रवाहको धैर्यकी नौका बनाकर पार कीजिये ॥ २० ॥

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम्।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य यः संपृच्छेन्न स मुह्येत्कदाचित् ॥ २१ ॥

जो बुद्धि, धर्म, विद्या और अवस्थामें बडे अपने बन्धुको आदरसत्कारसे प्रसन्न करके उससे कर्तव्यअकर्तव्यके विषयमें प्रश्न करता है, वह कभी मोहमें नहीं पडता ॥ २१ ॥

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ॥ २२ ॥

शिश्न और उदरकी धैर्यसे रक्षा करे, अर्थात् कामवेग और भूखकी ज्वालाको धैर्यपूर्वक सहे। इसी प्रकार हाथपैरकी नेत्रोंसे, नेत्र और कानोंकी मनसे तथा मन और वाणीकी सत्कर्मोंसे रक्षा करे ॥ २२ ॥

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी।
ऋतं ब्रुवन्गुरवे कर्म कुर्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥ २३ ॥

जो प्रतिदिन जलसे स्नान, संध्या, तर्पण आदि करता है, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहता है, नित्य स्वाध्याय करता है, पतितोंका अन्न त्याग देता है, ऐसा ब्राह्मण सत्य बोलता और गुरुकी सेवा करता हुआ कभी ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता ॥ २३ ॥

अधीत्य वेदान्परिसंस्तीर्य चाग्नीनिष्ट्वा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च।
गोब्राह्मणार्थे शस्त्रपूतान्तरात्मा हतः संग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति ॥ २४ ॥

वेदोंको पढकर, अग्निहोत्रके लिये अग्निके चारों ओर कुश बिछाकर नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा यजन कर और प्रजाजनोंका पालन करके गौ और ब्राह्मणोंके हितके लिये संग्राममें मृत्युको प्राप्त हुआ क्षत्रिय शस्त्रसे अन्तःकरण पवित्र हो जानेके कारण ऊर्ध्वलोकको जाता है ॥ २४ ॥

वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान्क्षत्रियांश्च धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च।
त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं प्रेत्य स्वर्गे देवसुखानि भुङ्क्ते ॥ २५ ॥

वैश्य यदि वेदशास्त्रोंका अध्ययन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा आश्रितजनोंको समयसमयपर धन देकर उनकी सहायता करे और यज्ञोंद्वारा तीनों अग्नियोंके पवित्र धूमकी सुगन्ध लेता रहे तो वह मरनेके पश्चात् स्वर्गलोकमें दिव्य सुख भोगता है ॥ २५ ॥

ब्रह्मक्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः क्रमेणैतान्न्यायतः पूजयानः।
तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपापस्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुङ्क्ते ॥ २६ ॥

शूद्रादि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी क्रमसे न्यायपूर्वक सेवा करता हुआ इन तीन वर्णोंके सन्तुष्ट हो जानेपर व्यथासे रहित हो पापोंसे मुक्त होकर देहत्यागके पश्चात् स्वर्गसुखका उपभोग करता है ॥ २६ ॥

चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो हेतुं चात्र ब्रुवतो मे निबोध।
क्षात्राद्धर्माद्धीयते पाण्डुपुत्रस्तं त्वं राजन्राजधर्मे नियुङ्क्ष्व ॥ २७ ॥

महाराज आपसे यह मैंने चारों वर्णोंका धर्म बताया है; अब मुझसे इसे बतानेका कारण भी सुनिये। आपके कारण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर क्षत्रियधर्मसे गिर रहे हैं, अतः आप उन्हें पुनः राज्यधर्ममें नियुक्त कीजिये ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

एवमेतद्यथा मां त्वमनुशाससि नित्यदा।
ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथात्थ माम् ॥ २८ ॥

धृतराष्ट्र बोले— विदुर! तुम प्रतिदिन मुझे जिस प्रकार उपदेश दिया करते हो, वह बहुत ठीक है। सौम्य! तुम मुझसे जो कुछ भी कहते हो, ऐसा ही मेरा भी विचार है ॥२८॥

सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान्प्रति मे सदा।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते ॥ २९ ॥

यद्यपि मैं पाण्डवोंके प्रति सदा ऐसी ही बुद्धि रखता हूँ, तथापि दुर्योधनसे मिलनेपर फिर बुद्धि पलट जाती है ॥ २९ ॥

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं मर्त्येन केनचित्।
दिष्टमेव कृतं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ १४१६ ॥

प्रारब्धका उल्लंघन करनेकी शक्ति किसी भी प्राणीमें नहीं है। मैं तो प्रारब्धको ही अचल मानता हूँ, उसके सामने पुरुषार्थ तो व्यर्थ है ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ १४१६ ॥

: ४१ :

धृतराष्ट्र उवाच

अनुक्तं यदि ते किंचिद्वाचा विदुर विद्यते ।
तन्मे शुश्रूषवे ब्रूहि विचित्राणि हि भाषसे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– विदुर ! यदि तुम्हारी वाणीसे कुछ और कहना शेष रह गया हो तो कहो, मुझे उसे सुननेकी बडी इच्छा है; क्योंकि तुम्हारे कहनेका ढंग विलक्षण है ॥ १ ॥

विदुर उवाच

धृतराष्ट्र कुमारो वै यः पुराणः सनातनः ।
सनत्सुजातः प्रोवाच मृत्युर्नास्तीति भारत ॥ २ ॥

विदुर बोले– भारतवंशी धृतराष्ट्र ! कुमार सनत्सुजात नामसे विख्यात जो ब्रह्माके पुत्र परम प्राचीन सनातन ऋषि हैं, उन्होंने एकबार कहा था, मृत्यु है ही नहीं ॥ २ ॥

स ते गुह्यान्प्रकाशांश्च सर्वान्हृदयसंश्रयान् ।
प्रवक्ष्यति महाराज सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ ३ ॥

महाराज ! समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वे ही आपके हृदयमें स्थित व्यक्त और अव्यक्त सभी प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर देंगे ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

किं त्वं न वेद तद्भूयो यन्मे ब्रूयात्सनातनः ।
त्वमेव विदुर ब्रूहि प्रज्ञाशेषोऽस्ति चेत्तव ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र बोले– विदुर ! क्या तुम उस तत्त्वको नहीं जानते, जिसे अब पुनः सनातन ऋषि मुझे बतावेंगे ? यदि तुम्हारी बुद्धि कुछ भी काम देती हो तो तुम्हीं मुझे उपदेश करो ॥४॥

विदुर उवाच

शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे ।
कुमारस्य तु या बुद्धिर्वेद तां शाश्वतीमहम् ॥ ५ ॥

विदुर बोले– राजन् ! मेरा जन्म शूद्रा स्त्रीके गर्भसे हुआ है, अतः मेरा अधिकार न होनेसे इसके अतिरिक्त और कोई उपदेश देनेका मैं साहस नहीं कर सकता, किंतु कुमार सनत्सुजातकी बुद्धि सनातन है, मैं उसे जानता हूँ ॥ ५ ॥

ब्राह्मीं हि योनिमापन्नः सुगुह्यमपि यो वदेत् ।
न तेन गर्ह्यो देवानां तस्मादेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥

ब्राह्मणयोनिमें जन्मा हुआ, वह यदि गोपनीय तत्त्वका प्रतिपादन कर भी दे तो भी देवताओंकी निन्दाका पात्र नहीं बनता । इसी कारण मैं आपको ऐसा कह रहा हूँ ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अधीहि विदुर त्वं मे पुराणं तं सनातनम् ।
कथमेतेन देहेन स्यादिहैव समागमः ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र बोले— विदुर ! उन परम प्राचीन सनातन ऋषिका पता मुझे बताओ ! भला इसी देहसे यहाँ ही उनका समागम कैसे हो सकता है ? ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

चिन्तयामास विदुरस्तमृषिं शंसितव्रतम् ।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा दर्शयामास भारत ॥ ८ ॥

वैशम्पायन बोले— राजन् ! तदनन्तर विदुरने उत्तम व्रतवाले उन सनातन ऋषिका स्मरण किया। उन्होंने भी यह जानकर कि विदुर मेरा स्मरण कर रहे हैं, प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥८॥

स चैनं प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा ।
सुखोपविष्टं विश्रान्तमथैनं विदुरोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥

विदुरने शास्त्रोक्त विधिसे पाद्य, अर्घ्य एवं मधुपर्क आदि अर्पण करके उनका स्वागत किया। इसके बाद जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम करने लगे, तब विदुरने उनसे कहा ॥ ९ ॥

भगवन्संशयः कश्चिद् धृतराष्ट्रस्य मानसे ।
यो न शक्यो मया वक्तुं तमस्मै वक्तुमर्हसि ॥
यं श्रुत्वायं मनुष्येन्द्रः सुखदुःखातिगो भवेत् ॥ १० ॥

'भगवन् ! धृतराष्ट्रके हृदयमें कुछ संशय है, जिसका समाधान मेरे द्वारा किया जाना उचित नहीं है । आप ही धृतराष्ट्रके लिये उसका समाधान कीजिए जिसे सुनकर ये नरेश सब दुःखोंसे पार हो जायँ ॥ १० ॥

लाभालाभौ प्रियद्वेष्यौ यथैनं न जरान्तकौ ।
विषहेरन्भयामर्षौ क्षुत्पिपासे मदोद्भवौ ।
अरतिश्चैव तन्द्री च कामक्रोधौ क्षयोदयौ ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ समाप्तं प्रजागरपर्व ॥ १४२७ ॥

और लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय, जरा-मृत्यु, भय-अमर्ष, भूख-प्यास, मद-ऐश्वर्य, चिन्ता-आलस्य, काम-क्रोध तथा अवनति-उन्नति ये इन्हें कष्ट न पहुँचा सकें ॥ ११ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ प्रजागरपर्व समाप्त ॥ १४२७ ॥

: ४२ :

वैशम्पायन उवाच

ततो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी सम्पूज्य वाक्यं विदुरेरितं तत् ।
सनत्सुजातं रहिते महात्मा पप्रच्छ बुद्धिं परमां बुभूषन् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! तदनन्तर बुद्धिमान् एवं महामना राजा धृतराष्ट्रने विदुरके कहे हुए उस वचनका भलीभाँति आदर करके उत्कृष्ट ज्ञानकी इच्छासे एकान्तमें सनत्सुजात मुनिसे प्रश्न किया ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

सनत्सुजात यदिदं शृणोमि मृत्युर्हि नास्तीति तवोपदेशम् ।
देवासुरा ह्याचरन्ब्रह्मचर्यममृत्यवे तत्कतरन्नु सत्यम् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले— सनत्सुजात ! मैं यह सुना करता हूँ कि मृत्यु है ही नहीं, ऐसा आपका उपदेश है । साथ ही यह भी सुना है कि देवता और असुरोंने मृत्युसे बचनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन किया था । इन दोनोंमें कौनसी बात यथार्थ है ? ॥ २ ॥

सनत्सुजात उवाच

अमृत्युः कर्मणा केचिन्मृत्युर्नास्तीति चापरे ।
शृणु मे ब्रुवतो राजन्यथैतन्मा विशङ्किथाः ॥ ३ ॥

सनत्सुजात बोले— राजन् ! इस विषयमें दो पक्ष हैं, मृत्यु है और वह ब्रह्मचर्य पालनरूप कर्मसे दूर होती है, यह एक पक्ष है और मृत्यु है ही नहीं, यह दूसरा पक्ष है । परंतु यह बात जैसी है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो और मेरे कथनमें संदेह न करना ॥ ३ ॥

उभे सत्ये क्षत्रियाद्यप्रवृत्ते मोहो मृत्युः सम्मतो यः कवीनाम् ।
प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि सदाप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥ ४ ॥

क्षत्रिय ! सनातन कालसे चले आनेवाले ये दोनों ही पक्ष सत्य हैं । कुछ विद्वानोंने मोहरूप मृत्युकी सत्ता स्वीकार की है; किंतु मेरा कहना तो यह है कि प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही अमृत है ॥ ४ ॥

प्रमादाद्वै असुराः पराभवन्नप्रमादाद्ब्रह्मभूता भवन्ति ।
न वै मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तून्न ह्यस्य रूपमुपलभ्यते ह ॥ ५ ॥

प्रमादके ही कारण असुरगण आसुरी सम्पत्तिवाले मृत्युसे पराजित हुए और अप्रमादसे ही वे ब्रह्मस्वरूप भी हुए । यह निश्चय है कि मृत्यु व्याघ्रके समान प्राणियोंका भक्षण नहीं करती, क्योंकि उसका कोई रूप देखनेमें नहीं आता ॥ ५ ॥

यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्यमाहुरात्मावसन्नममृतं ब्रह्मचर्यम्।
पितृलोके राज्यमनुशास्ति देवः शिवः शिवानामशिवोऽशिवानाम् ॥ ६ ॥

कुछ लोग इस प्रमादसे भिन्न यमको मृत्यु कहते हैं और हृदयसे दृढतापूर्वक पालन किये हुए ब्रह्मचर्यको ही अमृत मानते हैं। यमदेव पितृलोकमें राज्यशासन करते हैं। वे पुण्यात्माओंके लिये मङ्गलमय और पापियोंके लिये अमङ्गलमय हैं ॥ ६ ॥

आस्यादेष निःसरते नराणां क्रोधः प्रमादो मोहरूपश्च मृत्युः।
ते मोहितास्तद्वशे वर्तमाना इतः प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति ॥ ७ ॥

इन यमके मुखसे ही क्रोध, प्रमाद और मोहरूपी मनुष्योंकी मृत्यु प्रवृत्त होती है। मनुष्य क्रोध, प्रमाद और मोहसे मोहित होकर इस लोकसे जाकर पुनः पुनः जन्ममरणके चक्करमें पड़ते हैं ॥ ७ ॥

ततस्तं देवा अनु विप्लवन्ते अतो मृत्युर्मरणाख्यामुपैति।
कर्मोदये कर्मफलानुरागास्तत्रानु यान्ति न तरन्ति मृत्युम् ॥ ८ ॥

मरनेके बाद उनके मन, इन्द्रिय और प्राण भी साथ जाते हैं। शरीरसे प्राणरूपी इन्द्रियोंका वियोग होनेके कारण मृत्यु मरण संज्ञाको प्राप्त होती है। प्रारब्ध कर्मका उदय होनेपर कर्मके फलमें आसक्ति रखनेवाले लोग देहत्यागके पश्चात् परलोकका अनुगमन करते हैं; इसीलिये वे मृत्युको पार नहीं कर पाते ॥ ८ ॥

योऽभिध्यायन्नुत्पतिष्णून्निहन्यादनादरेणाप्रतिबुध्यमानः।
स वै मृत्युर्मृत्युरिवात्ति भूत्वा एवं विद्वान्यो विनिहन्ति कामान् ॥ ९ ॥

अतः जो मृत्युको जीतनेकी इच्छा रखता है, उसे चाहिये कि परमात्माका ध्यान करके विषयोंको तुच्छ मानकर उन्हें कुछ भी न गिनते हुए उनकी कामनाओंको उत्पन्न होते ही नष्ट कर डाले। इस प्रकार जो विद्वान् विषयोंकी इच्छाको मिटा देता है, उसको साधारण प्राणियोंकी मृत्युकी भाँति मृत्यु नहीं मारती अर्थात् वह जन्ममरणसे मुक्त हो जाता है ॥ ९ ॥

कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति।
कामान्व्युदस्य धुनुते यत्किंचित्पुरुषो रजः ॥ १० ॥

कामनाओंके पीछे चलनेवाला मनुष्य कामनाओंके साथ ही नष्ट हो जाता है; परंतु ज्ञानी पुरुष कामनाओंका त्याग कर देनेपर जो कुछ भी जन्ममरणरूप दुःख है, उन सबको वह नष्ट कर देता है ॥ १० ॥

तमोऽप्रकाशो भूतानां नरकोऽयं प्रदृश्यते।
गृह्यन्त इव धावन्ति गच्छन्तः श्वभ्रमुन्मुखाः ॥ ११ ॥

काम ही समस्त प्राणियोंके लिये मोहक होनेके कारण तमोमय और अज्ञानरूप है तथा नरकके समान दुःखदायी देखा जाता है। वे ऐसे दौडते हैं, मानो वे भोगोंको पकड ही लेंगे। अतः वे भोगोंकी तरफ मुंह करके दौडते हैं ॥ ११ ॥

अभिध्या वै प्रथमं हन्ति चैनं कामक्रोधौ गृह्य चैनं तु पश्चात्।
एते बालान्मृत्यवे प्रापयन्ति धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम् ॥ १२ ॥

पहले तो विषयोंका चिन्तन ही ऐसे मनुष्यको मारे डालता है। इसके बाद काम और क्रोध विवेकहीन मनुष्योंको पकडकर मृत्युके निकट पहुँचाते हैं; परंतु जो स्थिर बुद्धिवाले पुरुष हैं, वे धैर्यसे मृत्युके पार हो जाते हैं ॥ १२ ॥

अमन्यमानः क्षत्रिय किंचिदन्यन्नाधीयते तार्ण इवास्य व्याघ्रः।
क्रोधाल्लोभान्मोहमयान्तरात्मा स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः ॥ १३ ॥

हे क्षत्रिय! जो विषयभोगोंकी जराभी गिनती नहीं करता, उसके लिये मृत्यु घासके बाघके समान जरा भी भयदायक नहीं होती। यह जो तुम्हारे शरीरके भीतर अन्तरात्मा है, मोहके वशीभूत होकर यही क्रोध, लोभ प्रमाद और मृत्युरूप हो जाता है ॥ १३ ॥

एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा ज्ञाने तिष्ठन्न बिभेतीह मृत्योः।
विनश्यते विषये तस्य मृत्युर्मृत्योर्यथा विषयं प्राप्य मर्त्यः ॥ १४ ॥

इस प्रकार मोहसे होनेवाली मृत्युको जानकर जो ज्ञाननिष्ठ हो जाता है, वह इस लोकमें मृत्युसे कभी नहीं डरता। उसके समीप आकर मृत्यु उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे मृत्युके अधिकारमें आया हुआ मरणधर्मा मनुष्य ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच
येऽस्मिन्धर्मान्नाचरन्तीह केचित्तथा धर्मान्केचिदिहाचरन्ति।
धर्मः पापेन प्रतिहन्यते स्म उताहो धर्मः प्रतिहन्ति पापम् ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र बोले– इस जगत्में कुछ लोग ऐसे हैं, जो धर्मका आचरण नहीं करते तथा कुछ लोग उसका आचरण करते हैं, अतः धर्म पापके द्वारा नष्ट होता है या धर्म ही पापको नष्ट कर देता है? ॥ १५ ॥

सनत्सुजात उवाच

उभयमेव तत्रोपभुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च।
धर्मेणाधर्मं प्रणुदतीह विद्वान्धर्मो बलीयानिति तस्य विद्धि ॥ १६ ॥

सनत्सुजात बोले— राजन्! धर्म और पाप दोनोंके पृथक्-पृथक् फल होते हैं और उन दोनोंका ही उपभोग करना पडता है; किंतु कर्मोंके तत्वको जाननेवाला पुरुष निष्कामधर्मरूप कर्मके द्वारा अधर्मका यहाँ नाश कर देता है। इस प्रकार धर्म ही अत्यन्त बलवान् है ऐसा तुम समझो ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यानिमानाहुः स्वस्य धर्मस्य लोकान्द्विजातीनां पुण्यकृतां सनातनान्।
तेषां परिक्रमान्कथयन्तस्ततोऽन्यान्नैतद्विद्वन्नैव कृतं च कर्म ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्र बोले— विद्वन्! पुण्यकर्म करनेवाले द्विजातियोंको अपने-अपने धर्मके फलस्वरूप जिन सनातन लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है, उनका क्रम बतलाइये तथा उनसे भिन्न जो अन्यान्य लोक हैं, उनका भी निरूपण कीजिये। अब मैं सकाम कर्मकी बात नहीं जानना चाहता ॥ १७ ॥

सनत्सुजात उवाच

येषां बले न विस्पर्धा बले बलवतामिव।
ते ब्राह्मणा इतः प्रेत्य स्वर्गलोके प्रकाशते ॥ १८ ॥

सनत्सुजात बोले— जैसे दो बलवान् वीरोंमें अपना बल बढानेके निमित्त एक दूसरेसे स्पर्धा रहती है, उस प्रकार जिनके बलमें स्पर्धा नहीं होती हैं, वे ब्राह्मण यहांसे मरकर जानेके बाद स्वर्गलोकमें अपना प्रकाश फैलाते हैं ॥ १८ ॥

यत्र मन्येत भूयिष्ठं प्रावृषीव तृणोलपम्।
अन्नं पानं च ब्राह्मणस्तज्जीवन्नानुसंज्वरेत् ॥ १९ ॥

जैसे वर्षाऋतुमें तृणघास आदिकी बहुतायत होती है, उसी प्रकार जहां ब्राह्मणके योग्य अन्नपान आदिकी अधिकता मालूम पडे, उसी देशमें रहकर वह जीवननिर्वाह करे। भूख-प्याससे अपनेको कष्ट नहीं पहुंचावे ॥ १९ ॥

यत्राकथयमानस्य प्रयच्छत्यशिवं भयम्।
अतिरिक्तमिवाकुर्वन्स श्रेयान्नेतरो जनः ॥ २० ॥

किंतु जहां अपना माहात्म्य प्रकाशित न करनेपर भय और अमङ्गल प्राप्त हो, वहां रहकर भी जो अपनी विशेषता प्रकट नहीं करता, वही श्रेष्ठ पुरुष है; दूसरा नहीं ॥ २० ॥

यो वाकथ्यमानस्य आत्मानं नानुसंज्वरेत्।
ब्रह्मस्वं नोपभुञ्जेद्वा तदन्नं सम्मतं सताम् ॥ २१ ॥

जो अपना माहात्म्य प्रकाशित करनेका अवसर न मिलनेके कारण दुःखी नहीं होता तथा ब्राह्मणके स्वत्वका उपभोग नहीं करता, उसके अन्नको स्वीकार करनेमें सत्पुरुषोंकी सम्मति है ॥ २१ ॥

यथा स्वं वान्तमश्नाति श्वा वै नित्यमभूतये।
एवं ते वान्तमश्नन्ति स्ववीर्यस्योपजीवनात् ॥ २२ ॥

जैसे कुत्ता अपना वमन किया हुआ भी खा लेता है, उसी प्रकार जो अपने ब्राह्मणत्वके प्रभावका प्रदर्शन करके जीविका चलाते हैं, वे ब्राह्मण वमनका भोजन करनेवाले हैं और इससे उनकी सदा ही अवनति होती है ॥ २२ ॥

नित्यमज्ञातचर्या मे इति मन्येत ब्राह्मणः।
ज्ञातीनां तु वसन्मध्ये नैव विद्येत किंचन ॥ २३ ॥

जो कुटुम्बीजनोंके बीचमें रहकर भी जो न रहनेके समान हो अर्थात् लोगोंके गुणदोषोंकी चर्चा न करे, तथा अपनी साधनाको उनसे सदा गुप्त रखनेका प्रयत्न करता है, ऐसे ब्राह्मणोंको ही विद्वान् पुरुष ब्राह्मण मानते हैं ॥ २३ ॥

को ह्येवमन्तरात्मानं ब्राह्मणो हन्तुमर्हति।
तस्माद्धि किंचित्क्षत्रिय ब्रह्मावसति पश्यति ॥ २४ ॥

इस प्रकार कौन ब्रह्मवेत्ता पुरुष अपनी आत्माका हनन अधःपतन करना चाहेगा? इसलिये उपर्युक्तरूपसे जीवन बितानेवाला क्षत्रिय भी ब्रह्मके स्वरूपका यत्किंचित् अनुभव करता है तथा ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

अश्रान्तः स्याद्नादानात्सम्मतो निरुपद्रवः।
शिष्टो न शिष्टवत्स स्याद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्कविः ॥ २५ ॥

दान न मिलनेके कारण जो दुःखी नहीं होता, तथा जो सत्पुरुषोंमें सम्मानित और उपद्रवरहित है तथा शिष्ट होकर भी शिष्टताका विज्ञापन नहीं करता, वही ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता एवं विद्वान् है ॥ २५ ॥

अनाढ्या मानुषे वित्ते आढ्या वेदेषु ये द्विजाः।
ते दुर्धर्षा दुष्प्रकम्प्या विद्यात्तान्ब्रह्मणस्तनुम् ॥ २६ ॥

जो लौकिक धनकी दृष्टिसे निर्धन होकर भी वेदादिज्ञानोंसे सम्पन्न हैं वे दुर्धर्ष हैं और किसी भी विपत्तिसे चलायमान नहीं होते। उन्हें ब्रह्मकी साक्षात् मूर्ति समझना चाहिये ॥ २६ ॥

सर्वान्स्विष्टकृतो देवान्विद्याद्य इह कश्चन ।
न समानो ब्राह्मणस्य यस्मिन्प्रयतते स्वयम् ॥ २७ ॥

यदि कोई इस लोकमें अभीष्ट सिद्ध करनेवाले सम्पूर्ण देवताओंको जान ले, तो भी वह ब्रह्मवेत्ताके समान नहीं होता; क्योंकि वह तो अभीष्ट फलकी सिद्धिके लिये ही प्रयत्न कर रहा है ॥ २७ ॥

यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः ।
न मान्यमानो मन्येत नामानादभिसंज्वरेत् ॥ २८ ॥

जो दूसरोंसे सम्मान पाकर भी अभिमान न करे और अपमानित होने पर दुःखी न हो तथा प्रयत्न न करनेपर विद्वान् लोग जिसे आदर दें, वही वास्तवमें सम्मानित है ॥ २८ ॥

विद्वांसो मानयन्तीह इति मन्येत मानितः ।
अधर्मविदुषो मूढा लोकशास्त्रविशारदाः ॥
न मान्यं मानयिष्यन्ति इति मन्येदमानितः ॥ २९ ॥

जगत्में जब विद्वान् पुरुष आदर दें, तब सम्मानित व्यक्तिको चाहिए कि वह भी दूसरोंका आदर करे । सज्जन पुरुष किसीके द्वारा अपमानित होनेपर यही समझे कि इस संसारमें जो अधर्ममें निपुण, लोक व्यवहारमें चतुर और माननीय पुरुषोंका अपमान करनेवाले मूढ मनुष्य हैं, वे आदरणीय व्यक्तियोंका भी आदर नहीं करते ॥ २९ ॥

न वै मानं च मौनं च सहितौ चरतः सदा ।
अयं हि लोको मानस्य असौ मौनस्य तद्विदुः ॥ ३० ॥

यह निश्चित है कि मान और मौन सदा एक साथ नहीं रहते; क्योंकि मानसे इस लोकमें सुख मिलता है और मौनसे परलोकमें । ज्ञानीजन इस बातको जानते हैं ॥ ३० ॥

श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपन्थिनी ।
ब्राह्मी सुदुर्लभा श्रीर्हि प्रज्ञाहीनेन क्षत्रिय ॥ ३१ ॥

लोकमें ऐश्वर्यरूपा लक्ष्मी सुखका घर मानी गयी है, पर वह भी कल्याणमार्गमें लुटेरोंकी भांति विघ्न डालनेवाली है; किंतु ब्रह्मज्ञानमयी लक्ष्मी प्रज्ञाहीन मनुष्यके लिये सर्वथा दुर्लभ है ॥ ३१ ॥

द्वाराणि तस्या हि वदन्ति सन्तो बहुप्रकाराणि दुरावराणि ।
सत्यार्जवे ह्रीर्दमशौचविद्याः षण्मानमोहप्रतिबोधनानि ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ १४५९ ॥

संत पुरुष यहां उस ब्रह्मज्ञानमयी लक्ष्मीकी प्राप्तिके अनेकों द्वार बतलाते हैं, सत्य, सरलता, लज्जा, दम, शौच और विद्यारूपी अनेकों द्वार बतलाते हैं, इन द्वारोंको कठिनतासे ही खोला जा सकता है । पर इसके विपरीत असत्य, दुष्टता, निर्लज्जता, वासना, अशौच और अज्ञान ये छै,अभिमान और मोहको जगानेवाले हैं ॥ ३२ ॥

॥ श्रीमहाभारतमें उद्योगपर्वके बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ १४५९ ॥

: ४३ :

धृतराष्ट्र उवाच

ऋचो यजूंष्यधीते यः सामवेदं च यो द्विजः ।
पापानि कुर्वन्पापेन लिप्यते न स लिप्यते ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– विद्वन् ! जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदको जानता हुआ भी पाप करता है, वह उस पापसे लिप्त होता है या नहीं ? ॥ १ ॥

सनत्सुजात उवाच

नैनं सामान्यृचो वापि न यजूंषि विचक्षण ।
त्रायन्ते कर्मणः पापान्न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ २ ॥

सनत्सुजात बोले– हे बुद्धिमान् ! मैं तुमसे असत्य नहीं कहता; ऋक्, साम अथवा यजुर्वेद कोई भी पाप करनेवाले अज्ञानीकी उसके पापकर्मसे रक्षा नहीं करते ॥ २ ॥

न छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम् ।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥ ३ ॥

जो कपटपूर्वक धर्मका आचरण करता है, उस मिथ्याचारीका वेद पापोंसे उद्धार नहीं करते। जैसे पंख निकल आनेपर पक्षी अपना घोंसला छोड देते हैं, उसी प्रकार अन्तकालमें वेद भी उसका परित्याग कर देते हैं ॥ ३ ॥

न चेद्वेदा वेदविदं शक्तास्त्रातुं विचक्षण ।
अथ कस्मात्प्रलापोऽयं ब्राह्मणानां सनातनः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र बोले– विद्वन् ! यदि वेद भी वेदज्ञानीकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं तो वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके पवित्र होनेका प्रलाप चिरकालसे क्यों चला आता है ? ॥ ४ ॥

सनत्सुजात उवाच

अस्मिँल्लोके तपस्तप्तं फलमन्यत्र दृश्यते ।
ब्राह्मणानामिमे लोका ऋद्धे तपसि संयताः ॥ ५ ॥

सनत्सुजात बोले—इस लोकमें जो तपस्या सकामभावसे की जाती है, उसका फल परलोकमें भोगा जाता है; परंतु जो ब्रह्मोपासक इस लोकमें निष्कामभावसे गुरुतर तपस्या करते हैं, वे इसी लोकमें तत्त्वज्ञानरूप फल प्राप्त करते हैं और मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार एक ही तपस्या ऋद्ध और समृद्धके भेदसे दो प्रकारकी है ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

कथं समृद्धमप्यृद्धं तपो भवति केवलम् ।
सनत्सुजात तद् ब्रूहि यथा विद्याम तद्वयम् ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र बोले— सनत्सुजात! एक ही तप ऋद्ध और समृद्ध किस प्रकार हो जाता है यह इस प्रकार कहिये, जिससे हम उसे समझ लें ॥ ६ ॥

सनत्सुजात उवाच

क्रोधादयो द्वादश यस्य दोषास्तथा नृशंसादि षडत्र राजन् ।
धर्मादयो द्वादश चाततानाः शास्त्रे गुणा ये विदिता द्विजानाम् ॥ ७ ॥

सनत्सुजात बोले— राजन् तपस्याके क्रोध आदि बारह दोष हैं तथा छै प्रकारके नृशंस दोष होते हैं, मन्वादि–शास्त्रोंमें धर्म आदि बारह गुणोंका वर्णन है, जो ब्राह्मणोंके धर्मके रूपमें विख्यात हैं ॥ ७ ॥

क्रोधः कामो लोभमोहौ विधित्साकृपासूया मानशोकौ स्पृहा च ।
ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्यदोषा वर्ज्याः सदा द्वादशैते नरे ॥ ८ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह, वादविवाद करनेकी इच्छा, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और निन्दा मनुष्योंमें रहनेवाले ये बारह दोष मनुष्योंके द्वारा सदा ही त्याग देने योग्य हैं ॥ ८ ॥

एकैकमेते राजेन्द्र मनुष्यान्पर्युपासते ।
लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धकः ॥ ९ ॥

राजेन्द्र! जैसे व्याध मृगोंको मारनेका छिद्र-अवसर देखता हुआ उनकी टोहमें लगा रहता है, उसी प्रकार इनमेंसे एक-एक दोष मनुष्योंका छिद्र देखकर उनपर आक्रमण करता है ॥ ९ ॥

विकत्थनः स्पृहयालुर्मनस्वी बिभ्रत्कोपं चपलोऽरक्षणश्च ।
एतान्प्राप्ताः षण्नरान्पापधर्मान्प्रकुर्वते नोत सन्तः सुदुर्गे ॥ १० ॥

अपनी बहुत बड़ाई करनेवाले, लोलुप, तनिकसे भी अपमानको सहन न करनेवाले, निरन्तर क्रोधी, चञ्चल और आश्रितोंकी रक्षा नहीं करनेवाले ये छः प्रकारके पापी मनुष्यों-को देखकर सज्जन संकटके आनेपर भी इन पापोंको नहीं करते ॥ १० ॥

सम्भोगसंविद्द्विषमेधमानो दत्तानुतापी कृपणोऽबलीयान् ।
वर्गप्रशंसी वनितासु द्वेष्टा एतेऽपरे सप्त नृशंसधर्माः ॥ ११ ॥

सम्भोगमें ही मन लगानेवाले, अपने शत्रुओंकी संख्या बढानेवाले, दान देकर पश्चात्ताप करनेवाले, कमजोरोंपर दया न करनेवाले, अर्थ और कामकी प्रशंसा करनेवाले तथा स्त्रियोंके द्वेषी ये सात प्रकार नृशंसधर्म क्रूरोंके धर्म कहे गये हैं ॥ ११ ॥

धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया ।
यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य ॥ १२ ॥

धर्म, सत्य, इन्द्रियनिग्रह, तप, मत्सरताका अभाव, लज्जा, सहनशीलता, किसीके दोष न देखना, यज्ञ करना, दान देना, धैर्य और आत्मज्ञान ये ब्राह्मणके बारह महाव्रत हैं ॥ १२ ॥

यस्त्वेतेभ्यः प्रभवेद्द्वादशेभ्यः सर्वामपीमां पृथिवीं प्रशिष्यात् ।
त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वा विशिष्टो नास्य स्वमस्तीति स वेदितव्यः ॥ १३ ॥

जो इन बारह व्रतों-गुणोंके आधार पर निवास करता है, वह इस सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने अधीन कर सकता है । इनमेंसे तीन, दो या एक गुणसे भी जो हीन हो उसके पास धन नहीं है अर्थात् वह ऐश्वर्यसे हीन है ऐसा समझना चाहिये ॥ १३ ॥

दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम् ।
तानि सत्यमुखान्याहुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥ १४ ॥

दम, त्याग और अप्रमाद इन तीन गुणोंमें अमृतका वास है । जो मनीषी बुद्धिमान् ब्राह्मण हैं, वे कहते हैं कि इन गुणोंका मुख सत्यस्वरूप परमात्माकी ओर है अर्थात् ये परमात्माकी प्राप्तिके साधन हैं ॥ १४ ॥

दमोऽष्टादशदोषः स्यात्प्रतिकूलं कृताकृते ।
अनृतं चाभ्यसूया च कामार्थौ च तथा स्पृहा ॥ १५ ॥

दम अठारह दोषोंवाला है । कर्तव्य अकर्तव्यके विषयमें विपरीत धारणा, असत्यभाषण, गुणोंमें दोषदृष्टि, स्त्रीविषयक कामना, सदा धनोपार्जनमें ही लगे रहना, भोगेच्छा ॥ १५ ॥

क्रोधः शोकस्तथा तृष्णा लोभः पैशुन्यमेव च ।
मत्सरश्च विवित्सा च परितापस्तथा रतिः ॥ १६ ॥

क्रोध, शोक, तृष्णा, लोभ, चुगली करनेकी आदत, डाह, वादविवाद करनेकी या लडनेकी इच्छा, संताप, वासनामें रति ॥ १६ ॥

अपस्मारः सातिवादस्तथा सम्भावनात्मनि ।
एतैर्विमुक्तो दोषैर्यः स दमः सद्भिरुच्यते ॥ १७ ॥

कर्तव्यकी विस्मृति, अधिक बकवाद और अपनेको बडा समझना, इन दोषोंसे जो मुक्त है, उसीको सत्पुरुष दम-जितेन्द्रियता कहते हैं ॥ १७ ॥

श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागः प्रियं प्राप्य न हृष्यति।
अप्रिये तु समुत्पन्ने व्यथां जातु न चार्च्छति ॥ १८ ॥

छै प्रकारके श्रेष्ठ त्याग होते हैं— अपने अभिलषित प्रिय वस्तुको पाकर हर्षित न होना, अप्रिय या कुछ बुरा हो जानेपर दुःखी न होना ॥ १८ ॥

इष्टान्दारांश्च पुत्रांश्च न चान्यं यद्वचो भवेत्।
अर्हते याचमानाय प्रदेयं तद्वचो भवेत्
अप्यवाच्यं वदत्येव स तृतीयो गुणः स्मृतः। ॥ १९ ॥

अपने अभीष्ट पदार्थोंको अपने स्त्री पुत्र अथवा अन्य किसी सम्बन्धीके मांगने पर दे देनेमें कुछ प्रशंसा नहीं है, अपितु उसे याचना करनेवाले किसी सत्पात्रको दे देनेमें ही उसकी वास्तविक प्रशंसा है, जो प्रशंसनीय नहीं है, उसकी भी प्रशंसा करना तीसरा गुण बताया गया है ॥ १९ ॥

न च कर्मसु तद्धीनः शिष्यबुद्धिर्नरो यथा।
सर्वैरेव गुणैर्युक्तो द्रव्यवानऽपि यो भवेत् ॥ २० ॥

एक पुरुष चाहे कितने भी गुणों और धनोंसे युक्त हो, वह मूर्ख मनुष्यके समान हीन-नीच कर्मोंको न करे ॥ २० ॥

अप्रमादोऽष्टदोषः स्यात्तान्दोषान्परिवर्जयेत्।
इन्द्रियेभ्यश्च पञ्चभ्यो मनसश्चैव भारत।
अतीतानागतेभ्यश्च मुक्तो ह्येतैः सुखी भवेत् ॥ २१ ॥

भारत ! पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन-इनकी अपने अपने विषयोंमें जो भोगबुद्धिसे प्रवृत्ति होती है, ये छः प्रमादविषयक दोष हैं और भूतकालकी चिन्ता तथा भविष्यकी आशा दो दोष ये हैं इस प्रकार इन आठ दोषोंको मनुष्य त्याग दे, इन आठ दोषोंसे मुक्त पुरुष सुखी होता है ॥ २१ ॥

दोषैरेतैर्विमुक्तं तु गुणैरेतैः समन्वितम्।
एतत्समृद्धमप्यृद्धं तपो भवति केवलम्।
यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २२ ॥

इन उपर्युक्त दोषोंसे मुक्त होता और इन गुणोंसे युक्त होना ही समृद्धि और ऋद्ध तपका लक्षण है। हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूछा था, उसका उत्तर मैंने दे दिया, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आख्यानपञ्चमैर्वेदैर्भूयिष्ठं कथ्यते जनः ।
तथैवान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथापरे ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र बोले— मुने ! इतिहासपुराण जिनमें पाँचवाँ है, उन सम्पूर्ण वेदोंके द्वारा कुछ लोगोंका विशेषरूपसे नाम लिया जाता है अर्थात् वे पञ्चवेदी कहलाते हैं, दूसरे लोग चतुर्वेदी और त्रिवेदी कहे जाते हैं ॥ २३ ॥

द्विवेदाश्चैकवेदाश्च अनृचश्च तथापरे ।
तेषां तु कतमः स स्याद्यमहं वेद ब्राह्मणम् ॥ २४ ॥

इसी प्रकार कुछ लोग द्विवेदी, एकवेदी तथा अनृच कहलाते हैं । इनमेंसे कौनसे ऐसे हैं, जिन्हें मैं निश्चितरूपसे ब्राह्मण समझूँ ? ॥ २४ ॥

सनत्सुजात उवाच

एकस्य वेदस्याज्ञानाद्वेदास्ते बहवोऽभवन् ।
सत्यस्यैकस्य राजेन्द्र सत्ये कश्चिदवस्थितः ।
एवं वेदमनुत्साद्य प्रज्ञां महति कुर्वते ॥ २५ ॥

सनत्सुजात बोले— राजन् ! सृष्टिके आदिमें वेद एक ही थे, परंतु न समझनेके कारण एक ही वेदके बहुतसे विभाग कर दिये गये हैं । उस सत्यस्वरूप एक वेदके सारतत्त्व परमात्मामें तो कोई विरला ही स्थित होता है इस प्रकार वेदके तत्त्वको न जानकर भी कुछ लोग मैं विद्वान् हूँ ऐसा मानने लगते हैं ॥ २५ ॥

दानमध्ययनं यज्ञो लोभादेतत्प्रवर्तते ।
सत्यात्प्रच्यवमानानां संकल्पो वितथो भवेत् ॥ २६ ॥

और यज्ञादि कर्मोंमें सांसारिक सुखकी प्राप्तिरूप फलके लोभसे प्रवृत्ति होती है वास्तवमें जो सत्यस्वरूप परमात्मासे च्युत हो गये हैं, उनका संकल्प झूठा हो जाता है ॥ २६ ॥

ततो यज्ञः प्रतायेत सत्यस्यैवावधारणात् ।
मनसान्यस्य भवति वाचान्यस्योत कर्मणा ।
संकल्पसिद्धः पुरुषः संकल्पानधितिष्ठति ॥ २७ ॥

फिर सत्यस्वरूप वेदके प्रामाण्यका निश्चय करके ही उनके द्वारा यज्ञोंका विस्तार अनुष्ठान किया जाता है किसीका यज्ञ मनसे, किसीका वाणीसे तथा किसीका क्रियाके द्वारा सम्पादित होता है । सत्यसंकल्प पुरुष संकल्पके अनुसार ही लोकोंको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

अनैभृत्येन वै तस्य दीक्षितव्रतमाचरेत्।
नामैतद्धातुनिर्वृत्तं सत्यमेव सतां परम्।
ज्ञानं वै नाम प्रत्यक्षं परोक्षं जायते तपः ॥ २८ ॥

किंतु जबतक संकल्प सिद्ध न हो, तबतक दीक्षित व्रतका आचरण अर्थात् यज्ञादि कर्म करते रहना चाहिये। यह दीक्षित नाम 'दीक्ष' व्रतादेशे इस धातुसे बना है। सत्यपुरुषोंके लिए सत्यस्वरूप परमात्मा ही सबसे बढकर है क्योंकि परमात्माके ज्ञानका फल प्रत्यक्ष है और तपका फल परोक्ष है इसलिये ज्ञानका ही आश्रय लेना चाहिये ॥ २८ ॥

विद्याद्बहु पठन्तं तु बहुपाठीति ब्राह्मणम्।
तस्मात्क्षत्रिय मा मंस्था जल्पितेनैव ब्राह्मणम्।
य एव सत्यान्नापैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया ॥ २९ ॥

बहुत पढनेवाले ब्राह्मणको केवल बहुपाठी बहुज्ञ समझना चाहिये इसलिये महाराज! केवल बातें बनानेसे ही किसीको ब्राह्मण न मान लेना। जो सत्यस्वरूप परमात्मासे कभी पृथक् नहीं होता, उसीको तुम ब्राह्मण समझो ॥ २९ ॥

छन्दांसि नाम क्षत्रिय तान्यथर्वा जगौ पुरस्तादृषिसर्ग एषः।
छन्दोविदस्ते य उ तानधीत्य न वेद्यवेदस्य विदुर्न वेद्यम् ॥ ३० ॥

राजन्! अथर्वा मुनि एवं महर्षिसमुदायने पूर्वकालमें जिनका गान किया है, वे ही छन्द वेद हैं। किंतु सम्पूर्ण वेद पढ लेनेपर भी जो वेदोंके द्वारा जानने योग्य परमात्माके तत्त्वको नहीं जानते, वे वास्तवमें वेदके विद्वान् नहीं हैं ॥ ३० ॥

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति कश्चिद्वेदान्बुध्यते वापि राजन्।
यो वेद वेदान्न स वेद वेद्यं सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम् ॥ ३१ ॥

राजन्! वास्तवमें वेदके तत्त्वको जाननेवाला कोई नहीं है अथवा यों समझो कि कोई विरला ही उनका रहस्य जान पाता है। जो केवल वेदके वाक्योंको जानता है, वह वेदोंके द्वारा जानने योग्य परमात्माको नहीं जानता; किंतु जो सत्यमें स्थित है, वह वेदवेद्य परमात्माको जानता है ॥ ३१ ॥

अभिजानामि ब्राह्मणमाख्यातारं विचक्षणम्।
यश्छिन्नविचिकित्सः सन्नाचष्टे सर्वसंशयान् ॥ ३२ ॥

मैं तो उसीको ब्राह्मण समझता हूँ, जो परमात्माके तत्त्वको जाननेवाला और वेदोंकी यथार्थ व्याख्या करनेवाला हो, जिसके अपने संदेह मिट गये हों और जो दूसरोंके भी सम्पूर्ण संशयोंको मिटा सके ॥ ३२ ॥

तस्य पर्येषणं गच्छेत्प्राचीनं नोत दक्षिणम्।
नार्वाचीनं कुतस्तिर्यङ्नादिशं तु कथञ्चन ॥ ३३ ॥

इस आत्माकी खोज करनेके लिये पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तरकी ओर जानेकी आवश्यकता नहीं है; फिर आग्नेय आदि कोणोंकी तो बात ही क्या है ? इसी प्रकार दिग्विभागसे रहित प्रदेशमें भी उसे नहीं ढूँढना चाहिये ॥ ३३ ॥

तूष्णीम्भूत उपासीत न चेष्टेन्मनसा अपि।
अभ्यावर्तेत ब्रह्मास्य अन्तरात्मनि वै श्रितम् ॥ ३४ ॥

वागादि इन्द्रियोंकी सब प्रकारकी चेष्टासे रहित होकर परमात्माकी उपासना करे, मनसे भी कोई चेष्टा न करे। राजन् ! अपने हृदयाकाशमें स्थित उस विख्यात परमेश्वरकी बुद्धि-पूर्वक उपासना करे ॥ ३४ ॥

मौनाद्धि स मुनिर्भवति नारण्यवसनान्मुनिः।
अक्षरं तत्तु यो वेद स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३५ ॥

मौन रहने अथवा जंगलमें निवास करनेमात्रसे कोई मुनि नहीं होता। जो उस अविनाशी परमात्माके स्वरूपको जानता है, वही श्रेष्ठ मुनि कहलाता है ॥ ३५ ॥

सर्वार्थानां व्याकरणाद्वैयाकरण उच्यते।
प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः ॥ ३६ ॥

जिसप्रकार सम्पूर्ण अर्थोंको व्याकृत प्रकट करनेके कारण ज्ञानी पुरुष वैयाकरण कहलाता है उसी तरह जो योगी सम्पूर्ण लोकोंको प्रत्यक्ष देख लेता है, वह मनुष्य उन सब लोकोंका द्रष्टा कहलाता है ॥ ३६ ॥

सत्ये वै ब्राह्मणस्तिष्ठन्ब्रह्म पश्यति क्षत्रिय।
वेदानां चानुपूर्व्येण एतद्विद्वन्ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ १४९६ ॥

हे क्षत्रिय राजन् ! सत्य स्वरूप परमात्मामें स्थित ब्राह्मण ही वेदादि शास्त्रोंके अध्ययनसे उस ब्रह्मका साक्षात्कार कर सकता है। हे बुद्धिमान् राजन् ! यह मैं तुमसे कह रहा हूं ॥ ३७ ॥

॥ श्रीमहाभारतके उद्योगपर्वमें तैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥ १४९६ ॥

: ४४ :

धृतराष्ट्र उवाच

सनत्सुजात यदिमां परार्थां ब्राह्मीं वाचं प्रवदसि विश्वरूपाम्।
परां हि कामेषु सुदुर्लभां कथां तद्ब्रूहि मे वाक्यमेतत्कुमार ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— सनत्सुजात आप जिस परमार्थप्रदायिका और सर्वरूपा ब्रह्मसम्बन्धिनी विद्याका उपदेश कर रहे हैं, हे कुमार ! आप कामी पुरुषोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ इस उत्कृष्ट विषयका पुनः प्रतिपादन करें ॥ १ ॥

सनत्सुजात उवाच

नैतद्ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं यन्मां पृच्छस्यभिहृष्यस्यतीव।
अव्यक्तविद्यामभिधास्ये पुराणीं बुद्ध्या च तेषां ब्रह्मचर्येण सिद्धाम् ॥२॥

सनत्सुजात बोले— राजन् ! तुम जो मुझसे बारंबार प्रश्न करते समय अत्यन्त हर्षित हो उठते हो, सो इस प्रकार जल्दबाजी करनेसे ब्रह्मकी उपलब्धि नहीं होती । ब्रह्मज्ञानियोंकी बुद्धि एवं ब्रह्मचर्यसे सिद्ध होनेवाली उस सनातन ब्रह्मविद्याको मैं तुमसे कहता हूँ ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अव्यक्तविद्यामिति यत्सनातनीं ब्रवीषि त्वं ब्रह्मचर्येण सिद्धाम्।
अनारभ्या वसतीहार्य काले कथं ब्राह्मण्यममृतत्वं लभेत ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र बोले— हे आर्य ! जो कर्मोंद्वारा आरम्भ होने योग्य नहीं है तथा जो इस आत्मामें ही रहती है, उस अनन्त ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली इस सनातन विद्याको यदि आप ब्रह्मचर्यसे ही प्राप्त होने योग्य बता रहे हैं तो मुझ जैसे लोग ब्रह्मसम्बन्धी अमृतत्व मोक्षको कैसे पा सकते हैं ? ॥ ३ ॥

सनत्सुजात उवाच

येऽस्मिँल्लोके विजयन्तीह कामान्ब्राह्मीं स्थितिमनुतितिक्षमाणाः।
त आत्मानं निर्हरन्तीह देहान्मुञ्जादिषीकामिव सत्त्वसंस्थाः ॥ ४ ॥

सनत्सुजात बोले— इस जगत्में जो ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करनेके लिये ही नाना प्रकारके द्वन्द्वोंको सहन करते हुए ही सम्पूर्ण कामनाओंको जीत लेते हैं वे सत्त्वगुणमें स्थित हो यहाँ ही मूँजसे सींककी भाँति इस देहसे आत्माको विवेकद्वारा पृथक् कर लेते हैं ॥ ४ ॥

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत।
आचार्यशास्ता या जातिः सा सत्या साजरामरा ॥ ५ ॥

भारत ! यद्यपि माता और पिता— ये ही दोनों इस शरीरको जन्म देते हैं, तथापि आचार्यके उपदेशसे जो जन्म प्राप्त होता है, वह परम पवित्र और अजर-अमर है ॥ ५ ॥

सनत्सुजात उवाच

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य भूत्वा गर्भं ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम् ॥ ६ ॥

सनत्सुजात बोले- जो लोग आचार्यके आश्रममें प्रवेश कर अपनी सेवासे उनके अन्तरङ्ग भक्त हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, वे यहीं शास्त्रकार हो जाते हैं और देहत्यागके पश्चात् परम योगरूप परमात्माको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

यः आवृणोत्यवितथेन कर्णावृतं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन् ।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन् ॥ ७ ॥

जो परमार्थतत्त्वके उपदेशसे अमृत प्रदान करता हुआ कानोंको सत्य तत्त्वसे भर देता है । उस आचार्यको पिता-माता ही समझना चाहिये तथा उनके किये हुए उपकारका स्मरण करके कभी उनसे द्रोह नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥

गुरुं शिष्यो नित्यमभिमन्यमानः स्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रमत्तः ।
मानं न कुर्यान्न दधीत रोषमेष प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥ ८ ॥

ब्रह्मचारी शिष्यको चाहिये कि वह नित्य गुरुका सम्मान करता हुआ बाहर-भीतरसे पवित्र हो प्रमाद छोडकर स्वाध्यायमें मन लगावे, अभिमान न करे, मनमें क्रोधको स्थान न दे । यह ब्रह्मचर्यका पहला चरण है ॥ ८ ॥

आचार्यस्य प्रियं कुर्यात्प्राणैरपि धनैरपि ।
कर्मणा मनसा वाचा द्वितीयः पाद उच्यते ॥ ९ ॥

अपने प्राण और धन लगाकर भी मन, वाणी तथा कर्मसे आचार्यका प्रिय करे, यह दूसरा पाद कहलाता है ॥ ९ ॥

समा गुरौ यथा वृत्तिर्गुरुपत्न्यां तथा भवेत् ।
यथोक्तकारी प्रियकृत्तृतीय पाद उच्यते ॥ १० ॥

गुरुके प्रति शिष्यका जैसा श्रद्धा और सम्मानपूर्ण बर्ताव हो, वैसा ही गुरुकी पत्नीके साथ भी होना चाहिये । वह गुरुकी आज्ञानुसार काम करनेवाला तथा गुरुका सदा हितकारी हो । यह ब्रह्मचर्यका तृतीय पाद कहलाता है ॥ १० ॥

नाचार्यायेहोपकृत्वा प्रवादं प्राज्ञः कुर्वीत नैतदहं करोमि ।
इतीव मन्येत न भाषयेत स वै चतुर्थो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥ ११ ॥

बुद्धिमान् ब्रह्मचारी आचार्यके ऊपर उपकार करके सर्वत्र उसकी घोषणा न करता फिरे कभी मनमें ऐसा विचार न लावे कि मैं गुरुका उपकार कर रहा हूँ तथा मुँहसे भी कभी ऐसी बात न निकाले । यह ब्रह्मचर्यका चौथा पाद है ॥ ११ ॥

×

एवं वसन्तं यदुपप्लवेद्धनमाचार्याय तदनुप्रयच्छेत्।
सतां वृत्तिं बहुगुणामेवमेति गुरोः पुत्रे भवति च वृत्तिरेषा ॥ १२ ॥

इस तरह गुरुके पास रहते हुए ब्रह्मचारीको चाहिये कि जो कुछ भी धन भिक्षामें प्राप्त हो, उसे आचार्यको अर्पण कर दे। ऐसा करनेसे वह शिष्य सत्पुरुषोंके अनेक गुणोंसे युक्त वृद्धिको प्राप्त होता है। गुरुपुत्रके प्रति भी उसकी यही भावना रहनी चाहिये ॥ १२ ॥

एवं वसन्सर्वतो वर्धतीह बहून्पुत्राँल्लभते च प्रतिष्ठाम्।
वर्षन्ति चास्मै प्रदिशो दिशश्च वसन्त्यस्मिन्ब्रह्मचर्ये जनाश्च ॥ १३ ॥

ऐसी वृत्तिसे गुरुगृहमें रहनेवाले शिष्यकी इस संसारमें सब प्रकारसे उन्नति होती है। वह गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके बहुतसे पुत्र और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। सम्पूर्ण दिशा-विदिशाएँ उसके लिये सुखकी वर्षा करती हैं तथा उसके निकट बहुतसे दूसरे लोग ब्रह्मचर्य पालनके लिये निवास करते हैं ॥ १३ ॥

एतेन ब्रह्मचर्येण देवा देवत्वमाप्नुवन्।
ऋषयश्च महाभागा ब्रह्मलोकं मनीषिणः ॥ १४ ॥

इस ब्रह्मचर्यके पालनसे ही देवताओंने देवत्व प्राप्त किया और महान् सौभाग्यशाली मनीषी ऋषियोंने ब्रह्मलोकको प्राप्त किया ॥ १४ ॥

गन्धर्वाणामनेनैव रूपमप्सरसामभूत्।
एतेन ब्रह्मचर्येण सूर्यो अह्नाय जायते ॥ १५ ॥

इसीके प्रभावसे गन्धर्वों और अप्सराओंको दिव्य रूप प्राप्त हुआ। इस ब्रह्मचर्यके ही प्रतापसे सूर्यदेव समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होते हैं ॥ १५ ॥

य आशयेत्पाटयेच्चापि राजन्सर्वं शरीरं तपसा तप्यमानः।
एतेनासौ बाल्यमत्येति विद्वान्मृत्युं तथा रोधयत्यन्तकाले ॥ १६ ॥

राजन्! जो इस ब्रह्मचर्यका आश्रय लेता है, तथा पालन करता है वह ब्रह्मचारी यम-नियमादि तपका आचरण करता हुआ अपने सम्पूर्ण शरीरको भी पवित्र बना देता है तथा इससे विद्वान् पुरुष मूर्खताको पार कर जाता है और अन्त समयमें वह मृत्युको भी रोक लेता है ॥ १६ ॥

अन्तवन्तः क्षत्रिय ते जयन्ति लोकाञ्जनाः कर्मणा निर्मितेन।
ब्रह्मैव विद्वांस्तेन अभ्येति सर्वं नान्यः पन्थाः अयनाय विद्यते ॥ १७ ॥

राजन्! सकाम पुरुष अपने पुण्यकर्मोंके द्वारा नाशवान् लोकोंको ही प्राप्त करते हैं, किंतु जो ब्रह्मको जाननेवाला विद्वान् है, वही उस ज्ञानके द्वारा सर्वरूप परमात्माको प्राप्त होता है। मोक्षके लिये ज्ञानके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आभाति शुक्लमिव लोहितमिव अथो कृष्णमथाञ्जनं काद्रवं वा ।
सद्ब्राह्मणः पश्यति योऽत्र विद्वान्कथंरूपं तदमृतमक्षरं पदम् ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्र बोले— विद्वान् पुरुष यहाँ सत्यस्वरूप परमात्माके जिस अमृत एवं अविनाशी परम-पदका साक्षात्कार करते हैं, उसका रूप कैसा है? क्या वह सफेदसा, लालसा, काजलसा काला या सुवर्ण जैसे पीले रंगका प्रतीत होता है? ॥ १८ ॥

सनत्सुजात उवाच

नाभाति शुक्लमिव लोहितमिव अथो कृष्णमायसमर्कवर्णम् ।
न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे नैतत्समुद्रे सलिलं बिभर्ति ॥ १९ ॥

सनत्सुजात बोले—उस परम पदका वर्ण न सफेद है, न लाल है, न लोहेकी तरह काला है, और न सूर्यके समान प्रकाशमान् है। उस ब्रह्मका वास्तविक रूप न पृथ्वीमें है, न आकाशमें। समुद्रका जल भी उस रूपको नहीं धारण करता ॥ १९ ॥

न तारकासु न च विद्युदाश्रितं न चाभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य ।
न चापि वायौ न च देवतासु न तच्चन्द्रे दृश्यते नोत सूर्ये ॥ २० ॥

इस ब्रह्मका वह रूप न तारोंमें है, न बिजलीके आश्रित है और न बादलोंमें ही दिखायी देता है। इसी प्रकार उसका स्वरूप न वायुमें है, न देवताओंमें है, न चन्द्रमामें है और न सूर्यमें ही है ॥ २० ॥

नैवर्क्षु तन्न यजुःषु नाप्यथर्वसु न चैव दृश्यत्यमलेषु सामसु ।
रथन्तरे बार्हते चापि राजन्महाव्रते नैव दृश्येद्ध्रुवं तत् ॥ २१ ॥

राजन्! ऋग्वेदकी ऋचाओंमें, यजुर्वेदके मन्त्रोंमें, अथर्ववेदके सूक्तोंमें तथा विशुद्ध सामवेदमें भी वह नहीं दृष्टिगोचर होता। रथन्तर और बृहती नामक साममें तथा महान् व्रतमें भी उसका दर्शन नहीं होता; क्योंकि वह ब्रह्म नित्य है ॥ २१ ॥

अपारणीयं तमसः परस्तात्तदन्तकोऽप्येति विनाशकाले ।
अणीयरूपं क्षुरधारया तन्महच्च रूपं त्वपि पर्वतेभ्यः ॥ २२ ॥

ब्रह्मके उस स्वरूपका कोई पार नहीं पा सकता। वह अज्ञानरूप अन्धकारसे सर्वथा अतीत है। महाप्रलयमें सबका अन्त करनेवाला काल भी उसीमें लीन हो जाता है। वह रूप अस्तुरेकी धारके समान अत्यन्त सूक्ष्म और पर्वतोंसे भी महान् है अर्थात् वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर और महान्से भी महान् है ॥ २२ ॥

सा प्रतिष्ठा तदमृतं लोकास्तद्ब्रह्म तद्यशः ।
भूतानि जज्ञिरे तस्मात्प्रलयं यान्ति तत्र च ॥ २३ ॥

वही सबका आधार है, वही अमृत है, वही लोक, वही यश तथा वही ब्रह्म है। सम्पूर्ण भूत उसीसे प्रकट हुए और उसीमें लीन होते हैं ॥ २३ ॥

अनामयं तन्महदुद्यतं यशो वाचो विकारान्कवयो वदन्ति ।
तस्मिञ्जगत्सर्वमिदं प्रतिष्ठितं ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ १५२० ॥

विद्वान् कहते हैं, कार्यरूप जगत् वाणीका विकारमात्र है; किंतु वह ब्रह्म रोग, शोक और पापसे रहित है और उसका महान् यश सर्वत्र फैला हुआ है उसीमें यह सारा जगत् प्रतिष्ठित है उस नित्य कारणस्वरूप ब्रह्मको जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं अर्थात् मुक्त हो जाते हैं ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ १५२० ॥

ः ४५ ः

सनत्सुजात उवाच

यत्तच्छुक्रं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद्यशः ।
तद्वै देवा उपासन्ते यस्मादर्को विराजते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १ ॥

सनत्सुजात बोले— राजन् ! जिसके प्रकाशसे सूर्य प्रकाशित होता है, वह शुद्ध ब्रह्म महान् ज्योतिर्मय, देदीप्यमान एवं विशाल यशरूप है सब देवता उसीकी उपासना करते हैं। उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ १ ॥

शुक्राद् ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्धते ।
तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं तपति तापनम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २ ॥

शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्मसे हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति होती है तथा उसीसे वह वृद्धिको प्राप्त होता है। वह शुद्ध ज्योतिर्मय ब्रह्म ही सूर्यादि सम्पूर्ण ज्योतियोंके भीतर स्थित होकर सबको प्रकाशित कर रहा है और तपा रहा है; वह स्वयं सब प्रकारसे अतप्त और स्वयंप्रकाशक है, उसी सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ २ ॥

आपोऽथ अद्भ्यः सलिलस्य मध्ये उभौ देवौ शिश्रियातेऽन्तरिक्षे ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसाना उभे बिभर्ति पृथिवीं दिवं च ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ३ ॥

जलकी भाँति एकरस परब्रह्म परमात्मामें स्थित पाँच सूक्ष्म महाभूतोंसे अत्यन्त स्थूल पञ्चभौतिक शरीरके हृदयाकाशमें दो देव—ईश्वर और जीव उसको आश्रय बनाकर रहते हैं । वही सबका आश्रय है, वह तेजोंको धारण करता वही इन दोनोंको तथा पृथ्वी और द्युलोकको भी धारण करता है । उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ ३ ॥

उभौ च देवौ पृथिवीं दिवं च दिशश्च शुक्रं भुवनं बिभर्ति ।
तस्माद्दिशः सरितश्च स्रवन्ति तस्मात्समुद्रा विहिता महान्तः ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ४ ॥

उक्त दोनों देवताओंको, पृथ्वी और आकाशको, सम्पूर्ण दिशाओंको तथा समस्त लोकसमुदायको वह शुद्ध ब्रह्म ही धारण करता है । उसी परब्रह्मसे दिशाएँ प्रकट हुई हैं, उसीसे सरिताएं प्रवाहित होती हैं तथा उसीसे बडे-बडे समुद्र प्रकट हुए हैं । उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ ४ ॥

चक्रे रथस्य तिष्ठन्तं ध्रुवस्याव्ययकर्मणः ।
केतुमन्तं वहन्त्यश्वास्तं दिव्यमजरं दिवि ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ५ ॥

जो नित्य है जिसके कर्म अपने आप नष्ट होनेवाले नहीं हैं, ऐसे इस शरीररूप रथके चक्रकी भाँति इसे घुमानेवाले कर्मसंस्कारसे युक्त मनमें जुते हुए इन्द्रियरूप घोडे उस हृदयाकाशमें स्थित ज्ञानस्वरूप दिव्य अविनाशी जीवात्माको जिस सनातन परमेश्वरके निकट ले जाते हैं, उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ ५ ॥

न सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम् ।
मनीषयाथो मनसा हृदा च य एवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ६ ॥

उस परमात्माका स्वरूप किसी दूसरेकी तुलनामें नहीं आ सकता, उसे कोई चर्मचक्षुओंसे नहीं देख सकता । जो निश्चयात्मिका बुद्धिसे, मनसे और हृदयसे उसे इस प्रकार जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं अर्थात् परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं । उस सनातन भगवान्का योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ ६ ॥

द्वादशपूगां सरितं देवरक्षितम् ।
मधु ईशान्तस्तदा संचरन्ति घोरम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ७ ॥

जो दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन बारहके समुदायसे युक्त है तथा जो परमात्मासे सुरक्षित है, उस संसाररूप भयंकर नदीके विषयरूप मधुर जलको देखने और पीनेवाले लोग उसीमें गोता लगाते रहते हैं। इससे मुक्त करनेवाले उस सनातन परमात्माका योगी-जन साक्षात्कार करते हैं ॥ ७ ॥

तदर्धमासं पिबति संचित्य भ्रमरो मधु ।
ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ८ ॥

जैसे शहदकी मक्खी आधे मासतक शहदका संग्रह करके फिर आधे मासतक उसे पीती रहती है, उसी प्रकार यह भ्रमणशील संसारी जीव इस जन्ममें किये हुए संचित कर्मको परलोकमें विभिन्न योनियोंमें भोगता है। परमात्माने समस्त प्राणियोंके लिये उनके कर्मानुसार कर्मफलभोगरूप हविकी अर्थात् समस्त भोग—पदार्थोंकी व्यवस्था कर रखी है। उस सनातन भगवान्का योगीलोग साक्षात्कार करते हैं ॥ ८ ॥

हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपत्य अपक्षकाः ।
ते तत्र पक्षिणो भूत्वा प्रपतन्ति यथादिशम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ९ ॥

जिसके विषयरूपी पत्ते स्वर्णके समान मनोरम दिखायी पडते हैं, उस संसाररूपी अश्वत्थ-वृक्षपर आरूढ होकर पंखहीन जीव कर्मरूपी पंख धारणकर अपनी वासनाके अनुसार विभिन्न योनियोंमें पडते हैं अर्थात् एक योनिसे दूसरी योनिमें गमन करते हैं; किंतु योगीजन उस सनातन परमात्माका साक्षात्कार करते हैं ॥ ९ ॥

पूर्णात्पूर्णान्युद्धरन्ति पूर्णात्पूर्णानि चक्रिरे ।
हरन्ति पूर्णात्पूर्णानि पूर्णमेवावशिष्यते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १० ॥

पूर्ण परमेश्वरसे पूर्ण—चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं, पूर्ण सत्ताके स्फूर्ति पाकर ही वे पूर्ण प्राणी चेष्टा करते हैं, फिर पूर्णसे ही पूर्णब्रह्ममें उनका उपसंहार अर्थात् विलय होता है तथा अन्तमें एकमात्र पूर्णब्रह्म ही शेष रह जाता है। उस सनातन परमात्माका योगी लोग साक्षात्कार करते हैं ॥ १० ॥

तस्माद्वै वायुरायातस्तस्मिंश्च प्रयतः सदा।
तस्मादग्निश्च सोमश्च तस्मिंश्च प्राण आततः ॥ ११ ॥

उस पूर्णब्रह्मसे ही वायुका आविर्भाव हुआ है और उसीमें वह चेष्टा करता है। उसीसे अग्नि और सोमकी उत्पत्ति हुई है तथा उसीमें यह प्राण विस्तृत हुआ है ॥ ११ ॥

सर्वमेव ततो विद्यात्तत्तद्वक्तुं न शक्नुमः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १२ ॥

कहाँतक गिनावें, हम अलग-अलग वस्तुओंका नाम बतानेमें असमर्थ हैं। तुम इतना ही समझो कि सब कुछ उस परमात्मासे ही प्रकट हुआ है। उस सनातन भगवान्‌का योगीलोग साक्षात्कार करते हैं ॥ १२ ॥

अपानं गिरति प्राणः प्राणं गिरति चन्द्रमाः।
आदित्यो गिरते चन्द्रमादित्यं गिरते परः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १३ ॥

अपानको प्राण अपनेमें विलीन कर लेता है, प्राणको चन्द्रमा, निगल जाता है चन्द्रमाको सूर्य और सूर्यको परमात्मा अपनेमें विलीन कर लेता है; उस सनातन परमेश्वरका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं ॥ १३ ॥

एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
तं चेत्सततमृत्विजं न मृत्युर्नामृतं भवेत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १४ ॥

इस संसार-सलिलसे ऊपर उठा हुआ हंसरूप परमात्मा अपने एक पाद जगत्‌को ऊपर नहीं उठा रहा है; यदि उसे भी वह ऊपर उठा ले तो सबका बन्ध और मोक्ष सदाके लिये मिट जाय। उस सनातन परमेश्वरका योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ १४ ॥

एवं देवो महात्मा स पावकं पुरुषो गिरन्।
यो वै तं पुरुषं वेद तस्येहात्मा न रिष्यते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १५ ॥

ऐसा देव महात्मा पुरुष भोक्तृभावको अपनेमें विलीन करके उस पूर्ण परमेश्वरको जान लेता है। वह महात्मा इस संसारमें दुःखी नहीं होता अर्थात् वह कृतकृत्य हो जाता है। उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं ॥ १५ ॥

यः सहस्रं सहस्राणां पक्षान्संतत्य सम्पतेत्।
मध्यमे मध्य आगच्छेदपि चेत्स्यान्मनोजवः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १६ ॥

कोई मनके समान वेगवाला ही क्यों न हो और दस लाख भी पंख लगाकर क्यों न उडे, अन्तमें उसे हृदयस्थित परमात्मामें ही आना पडेगा। उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ १६ ॥

न दर्शने तिष्ठति रूपमस्य पश्यन्ति चैनं सुविशुद्धसत्त्वाः।
हितो मनीषी मनसाभिपश्येद्ये तं श्रयेयुरमृतास्ते भवन्ति।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १७ ॥

इस परमात्माका स्वरूप सबको प्रत्यक्ष नहीं होता; जिनका अन्तःकरण विशुद्ध है, वे ही उसे देख पाते हैं। सबके हितैषी और मनको वशमें करनेवाले ही अपने अन्तःकरणसे इस परमात्माका साक्षात्कार कर सकते हैं। जो उस परमात्माका आश्रय लेते हैं वे अमर हो जाते हैं। उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं ॥ १७ ॥

गूहन्ति सर्पा इव गह्वराणि स्वशिक्षया स्वेन वृत्तेन मर्त्याः।
तेषु प्रमुह्यन्ति जना विमूढा यथाध्वानं मोहयन्ते भयाय।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १८ ॥

जैसे साँप बिलोंका आश्रय लेकर अपनेको छिपाये रहते हैं, उसी प्रकार दम्भी मनुष्य अपनी शिक्षा और व्यवहारकी आडमें अपने दोषोंको छिपाये रखते हैं। जैसे ठग रास्ता चलनेवालोंको भयमें डालनेके लिये दूसरा रास्ता बतलाकर मोहित कर देते हैं, मूर्ख मनुष्य उनपर विश्वास करके अत्यन्त मोहमें पड जाते हैं; इसी प्रकार जो परमात्माके मार्गमें चलनेवाले हैं, उन्हें भी दम्भी पुरुष भयमें डालनेके लिये मोहित करनेकी चेष्टा करते हैं, किंतु योगीजन भगवत्कृपासे उनके फंदेमें न आकर उस सनातन परमात्माका ही साक्षात्कार करते हैं ॥ १८ ॥

सदा सदासत्कृतः स्यान्न मृत्युरमृतं कुतः।
सत्यानृते सत्यसमानबन्धने सतश्च योनिरसतश्चैक एव।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १९ ॥

राजन्! वह ब्रह्म किसीके द्वारा भी असत्कार करने योग्य नहीं है, न उसकी मृत्यु होती है न जन्म, फिर मोक्ष किसका और कैसे हो, क्योंकि वह नित्यमुक्त ब्रह्म है। सत्य और असत्य सब कुछ उस सनातन समब्रह्ममें स्थित हैं। एकमात्र वही सत् और असत्की उत्पत्तिका स्थान है। उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ १९ ॥

न साधुना नोत असाधुना वा समानमेतद् दृश्यते मानुषेषु ।
समानमेतदमृतस्य विद्यादेवं युक्तो मधु तद्वै परीप्सेत् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २० ॥

परमात्माका न तो साधुकर्मसे सम्बन्ध है और न असाधु कर्मसे । यह विषमता तो देहाभिमानी मनुष्योंमें ही देखी जाती है । ब्रह्मका स्वरूप सर्वत्र समान ही समझना चाहिये । इस प्रकार ज्ञानयोगसे युक्त होकर आनन्दमय ब्रह्मको ही पानेकी इच्छा करनी चाहिये । उस सनातन परमात्माका योगीलोग साक्षात्कार करते हैं ॥ २० ॥

नास्यातिवादा हृदयं तापयन्ति नानधीतं नाहुतमग्निहोत्रम् ।
मनो ब्राह्मीं लघुतामादधीत प्रज्ञानमस्य नाम धीरा लभन्ते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २१ ॥

इस ब्रह्मवेत्ता पुरुषके हृदयको निन्दाके वाक्य संतप्त नहीं करते । मैंने स्वाध्याय नहीं किया, अग्निहोत्र नहीं किया इत्यादि बातें भी उसके मनमें तुच्छभाव नहीं उत्पन्न करतीं । ब्रह्मविद्या शीघ्र ही उसे वह स्थिरबुद्धि प्रदान करती है, जिसे धीर पुरुष ही प्राप्त करते हैं । उस सनातन परमात्माका योगीजन साक्षात्कार करते हैं ॥ २१ ॥

एवं यः सर्वभूतेषु आत्मानमनुपश्यति ।
अन्यत्रान्यत्र युक्तेषु किं स शोचेत्ततः परम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार जो समस्त भूतोंमें परमात्माको निरन्तर देखता है, वह ऐसी दृष्टि प्राप्त होनेके अनन्तर अन्यान्य विषयभोगोंमें आसक्त मनुष्योंके लिये क्या शोक करे ? ॥ २२ ॥

यथोदपाने महति सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
एवं सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ २३ ॥

जैसे सब ओर जलसे परिपूर्ण बडे जलाशयके प्राप्त होनेपर जलके लिये अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार आत्मज्ञानीके लिये सम्पूर्ण वेदोंमें कुछ भी प्राप्त करने योग्य शेष नहीं रह जाता ॥ २३ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो महात्मा न दृश्यतेऽसौ हृदये निविष्टः ।
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितश्च स तं मत्वा कविरास्ते प्रसन्नः ॥ २४ ॥

यह अङ्गुष्ठमात्र अन्तर्यामी परमात्मा सबके हृदयके भीतर स्थित है, किंतु सबको दिखायी नहीं देता । वह अजन्मा, चराचरस्वरूप और दिन-रात सावधान रहनेवाला है । जो उसे जान लेता है, वह ज्ञानी परमानन्दमें निमग्न हो जाता है ॥ २४ ॥

म

अहमेवास्मि वो माता पिता पुत्रोऽस्म्यहं पुनः ।
आत्माहमपि सर्वस्य यच्च नास्ति यदस्ति च ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र ! मैं ही सबकी माता और पिता माना गया हूँ, मैं ही पुत्र हूँ और सबकी आत्मा भी मैं ही हूँ। जो है, वह भी और जो नहीं है, वह भी मैं ही हूँ ॥ २५ ॥

पितामहोऽस्मि स्थविरः पिता पुत्रश्च भारत ।
ममैव यूयमात्मस्था न मे यूयं न वोऽप्यहम् ॥ २६ ॥

भारत ! मैं ही तुम्हारा बूढ़ा पितामह, पिता और पुत्र भी हूँ। तुम सब लोग मेरी ही आत्मामें स्थित हो, फिर भी वास्तवमें न तुम हमारे हो और न हम तुम्हारे हैं ॥ २६ ॥

आत्मैव स्थानं मम जन्म चात्मा ।
वेद प्रोक्तोऽहमजरप्रतिष्ठः ॥ २७ ॥

आत्मा ही मेरा स्थान है और आत्मा ही मेरा जन्म (उद्गम) है। मैं वेदमें वर्णित अजर नित्यनूतन महिमामें स्थित हूँ ॥ २७ ॥

अणोरणीयान्सुमनाः सर्वभूतेषु जागृमि ।
पितरं सर्वभूतानां पुष्करे निहितं विदुः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ समाप्तं सनत्सुजातपर्व ॥ १५५८ ॥

परमात्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तथा विशुद्ध मनवाला है। वही सब भूतोंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रकाशित है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयकमलमें स्थित उस परमपिताको ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ सनत्सुजातपर्व समाप्त ॥ १५५८ ॥

: ४६ :

वैशम्पायन उवाच

एवं सनत्सुजातेन विदुरेण च धीमता ।
सार्धं कथयतो राज्ञः सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! इस प्रकार महर्षि सनत्सुजात और बुद्धिमान् विदुरके साथ बातचीत करते हुए राजा धृतराष्ट्रकी सारी रात बीत गयी ॥ १ ॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां राजानः सर्व एव ते ।
सभामाविविशुर्हृष्टाः सूतस्योपदिदृक्षया ॥ २ ॥

वह रात बीतनेपर जब प्रभातकाल आया, तब सब राजालोग सूतपुत्र संजयको देखनेके लिये बडे हर्षके साथ सभामें आये ॥ २ ॥

शुश्रूषमाणाः पार्थानां वचो धर्मार्थसंहितम् ।
धृतराष्ट्रमुखाः सर्वे ययू राजसभां शुभाम् ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र आदि समस्त कौरवोंने भी पाण्डवोंकी धर्मार्थयुक्त बातें सुननेकी इच्छासे उस सुन्दर एवं विशाल राजसभामें प्रवेश किया ॥ ३ ॥

सुधावदातां विस्तीर्णां कनकाजिरभूषिताम् ।
चन्द्रप्रभां सुरुचिरां सिक्तां परमवारिणा ॥ ४ ॥

जो चूनेसे पुती होनेके कारण अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देती थी। सुवर्णमय प्राङ्गण उसकी शोभा बढा रहे थे। वह सभा चन्द्रमाकी श्वेत रश्मियोंके समान प्रकाशित हो रही थी वह देखनेमें अत्यन्त मनोहर थी और उसके भीतर सुगंधित जलसे छिडकाव किया गया था ॥४॥

रुचिरैरासनैः स्तीर्णां काञ्चनैर्दारवैरपि ।
अश्मसारमयैर्दान्तैः स्वास्तीर्णैः सोत्तरच्छदैः ॥ ५ ॥

उस राजसभामें सुवर्ण, काष्ठ, मणि तथा हाथीदाँतके बने हुए सुन्दर सुन्दर आसन सुरुचिपूर्ण ढंगसे बिछे हुए थे और उनके ऊपर चादरें फैला दी गयी थीं ॥ ५ ॥

भीष्मो द्रोणः कृपः शल्यः कृतवर्मा जयद्रथः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ ६ ॥

भरतश्रेष्ठ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक ॥ ६ ॥

विदुरश्च महाप्राज्ञो युयुत्सुश्च महारथः ।
सर्वे च सहिताः शूराः पार्थिवा भरतर्षभ ।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां शुभाम् ॥ ७ ॥

परम बुद्धिमान् विदुर, महारथी युयुत्सु तथा अन्य सभी शूरवीर नरेश धृतराष्ट्रको आगे करके उस सुन्दर सभामें एक साथ प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥

दुःशासनश्चित्रसेनः शकुनिश्चापि सौबलः ।
दुर्मुखो दुःसहः कर्ण उलूकोऽथ विविंशतिः ॥ ८ ॥

राजन् ! दुःशासन, चित्रसेन, सुबलपुत्र शकुनि, दुर्मुख, दुःसह, कर्ण, उलूक और विविंशति ॥ ८ ॥

कुरुराजं पुरस्कृत्य दुर्योधनममर्षणम्।
विविशुस्तां सभां राजन्सुराः शक्रसदो यथा ॥ ९ ॥

इन सबने क्रोधमें भरे हुए कुरुराज दुर्योधनको आगे करके उस राजसभामें ठीक वैसे ही प्रवेश किया, जैसे देवतालोग इन्द्रकी सभामें प्रवेश करते हैं ॥ ९ ॥

आविशद्भिस्तदा राजञ्शूरैः परिघबाहुभिः।
शुशुभे सा सभा राजन्सिंहैरिव गिरेर्गुहा ॥ १० ॥

जनमेजय! उस समय परिघके समान सुदृढ भुजाओंवाले उन शूरवीर नरेशोंके प्रवेश करनेसे वह सभा उसी प्रकार शोभा पाने लगी, जैसे सिंहोंके प्रवेश करनेसे पर्वतकी कन्दरा सुशोभित होती है ॥ १० ॥

ते प्रविश्य महेष्वासाः सभां समितिशोभनाः।
आसनानि महार्हाणि भेजिरे सूर्यवर्चसः ॥ ११ ॥

महान् धनुष धारण करनेवाले तथा सूर्यके समान कान्तिमान् सभाको सुशोभित करनेवाले उन समस्त नरेशोंने सभामें प्रवेश करके वहाँ बिछे हुए अमूल्य आसनोंको सुशोभित किया ॥ ११ ॥

आसनस्थेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत।
द्वाःस्थो निवेदयामास सूतपुत्रमुपस्थितम् ॥ १२ ॥

भारत! जब वे सब राजा आकर यथायोग्य आसनोंपर बैठ गये, तब द्वारपालने सूचना दी कि संजय राजसभाके द्वारपर उपस्थित हैं ॥ १२ ॥

अयं स रथ आयाति योऽयासीत्पाण्डवान्प्रति।
दूतो नस्तूर्णमायातः सैन्धवैः साधुवाहिभिः ॥ १३ ॥

यह वही रथ आ रहा है, जो पाण्डवोंके पास भेजा गया था। रथको अच्छी तरह वहन करनेवाले सिन्धुदेशीय घोड़ोंसे जुते हुए इस रथपर हमारे दूत संजय शीघ्र आ पहुँचे हैं ॥ १३ ॥

उपयाय स तु क्षिप्रं रथात्प्रस्कन्द्य कुण्डली।
प्रविवेश सभां पूर्णां महीपालैर्महात्मभिः ॥ १४ ॥

द्वारपालके इतना कहते ही कानोंमें कुण्डल धारण किये संजय रथसे नीचे उतरकर राजसभाके निकट आया और महामना महीपालोंसे भरी हुई उस सभाके भीतर प्रविष्ट हुआ ॥ १४ ॥

संजय उवाच

प्राप्तोऽस्मि पाण्डवान्गत्वा तद्विजानीत कौरवाः ।
यथावयः कुरून्सर्वान्प्रतिनन्दन्ति पाण्डवाः ॥ १५ ॥

संजय बोले– कौरवो ! आपको विदित होना चाहिये कि मैं पाण्डवोंके यहाँ जाकर लौटा हूँ । पाण्डवलोग अवस्थाक्रमके अनुसार सभी कौरवोंका अभिनन्दन करते हैं ॥ १५ ॥

अभिवादयन्ति वृद्धांश्च वयस्यांश्च वयस्यवत् ।
यूनश्चाभ्यवदन्पार्थाः प्रतिपूज्य यथावयः ॥ १६ ॥

उन्होंने बडे बूढोंको प्रणाम कहलाया है । जो समवयस्क हैं, उनके साथ मित्रोचित बर्तावका संदेश दिया है तथा नवयुवकोंको भी उनकी अवस्थाके अनुसार सम्मान देकर उनसे प्रेमालापकी इच्छा प्रकट की है ॥ १६ ॥

यथाहं धृतराष्ट्रेण शिष्टः पूर्वमितो गतः ।
अब्रुवं पाण्डवान्गत्वा तन्निबोधत पार्थिवाः ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ १५६५ ॥

पहले यहाँसे जाते समय महाराज धृतराष्ट्रने मुझे जैसा उपदेश दिया था, पाण्डवोंके पास जाकर मैंने वैसी ही बातें कही हैं । राजाओ ! उसे आपलोग ध्यान देकर सुनें ॥ १७ ॥

॥ महाभारतमें उद्योगपर्वके छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ १५६५ ॥

: ४७ :

धृतराष्ट्र उवाच

पृच्छामि त्वां संजय राजमध्ये किमब्रवीद्वाक्यमदीनसत्त्वः ।
धनंजयस्तात युधां प्रणेता दुरात्मनां जीवितच्छिन्महात्मा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– संजय ! मैं इन राजाओंके बीच तुमसे यह पूछ रहा हूँ कि अनेक युद्धोंके संचालक तथा दुरात्माओंके जीवनका नाश करनेवाले उदारहृदय महात्मा अर्जुनने हमारे लिये कौनसा संदेश भेजा है ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

दुर्योधनो वाचमिमां श्रृणोतु यदब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानः ।
युधिष्ठिरस्यानुमते महात्मा धनंजयः श्रृण्वतः केशवस्य ॥ २ ॥

संजय बोले– राजन् ! युधिष्ठिरकी आज्ञासे युद्धके लिये उद्यत हुए महात्मा अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके सुनते सुनते जो बात कही है, उस सन्देशको दुर्योधन सुनें ॥ २ ॥

अन्वग्रस्तो बाहुवीर्यं विदान उपह्वरे वासुदेवस्य धीरः।
अवोचन्मां योत्स्यमानः किरीटी मध्ये ब्रूया धार्तराष्ट्रं कुरूणाम् ॥ ३ ॥

अपने बाहुबलको अच्छी तरह जाननेवाले धीर–वीर किरीटधारी अर्जुनने भावी युद्धके लिये उद्यत हो भगवान् श्रीकृष्णके समीप मुझसे इस प्रकार कहा है कि हे संजय ! तुम धृतराष्ट्रके पुत्रों एवं कौरवोंमें जाकर यह कहना ॥ ३ ॥

ये वै राजानः पाण्डवायोधनाय समानीताः शृण्वतां चापि तेषाम्।
यथा समग्रं वचनं मयोक्तं सहामात्यं श्रावयेथा नृपं तम् ॥ ४ ॥

जो-जो राजालोग पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेके लिये बुलाये गये हैं, उन सबको सुनाते हुए तुम कौरवोंकी मण्डलीमें मेरे द्वारा कही हुई सारी बातें मन्त्रियोंसहित धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनसे इस प्रकार कहना, ॥ ४ ॥

यथा नूनं देवराजस्य देवाः शुश्रूषन्ते वज्रहस्तस्य सर्वे।
तथाशृण्वन्पाण्डवाः सृंजयाश्च किरीटिना वाचमुक्तां समर्थाम् ॥ ५ ॥

जैसे सब देवता वज्रधारी देवराज इन्द्रकी बातें सुनना चाहते हैं, निश्चय ही उसी प्रकार समस्त सृंजय और पाण्डव अर्जुनकी मुझसे कही हुई ओजभरी बातें सुन रहे थे ॥ ५ ॥

इत्यब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानो गाण्डीवधन्वा लोहितपद्मनेत्रः।
न चेद्राज्यं मुञ्चति धार्तराष्ट्रो युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः।
अस्ति नूनं कर्म कृतं पुरस्तादनिर्विष्टं पापकं धार्तराष्ट्रैः ॥ ६ ॥

उस समय गाण्डीवधारी अर्जुन युद्धके लिये उत्सुक जान पडते थे। उनके कमलसदृश नेत्र लाल हो गये थे। उन्होंने इस प्रकार कहा– यदि दुर्योधन अजमीढकुलनन्दन महाराज युधिष्ठिरका राज्य नहीं छोडता है तो निश्चय ही धृतराष्ट्रके पुत्रोंका पूर्वजन्ममें किया हुआ कोई ऐसा पापकर्म प्रकट हुआ है, जिसका फल उन्हें भोगना है ॥ ६ ॥

येषां युद्धं भीमसेनार्जुनाभ्यां तथाश्विभ्यां वासुदेवेन चैव।
शैनेयेन ध्रुवमात्तायुधेन धृष्टद्युम्नेनाथ शिखण्डिना च।
युधिष्ठिरेणेन्द्रकल्पेन चैव योऽपध्यानान्निर्दहेद् गां दिवं च ॥ ७ ॥

तभी तो उनका भीमसेन, अर्जुन, नकुल–सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण, अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा इन्द्रके समान तेजस्वी उन महाराज युधिष्ठिरके साथ युद्ध होनेवाला है, जो अनिष्टचिन्तन करते ही पृथ्वी तथा स्वर्गलोकको भी भस्म कर सकते हैं ॥ ७ ॥

तैश्चेद्युद्धं मन्यते धार्तराष्ट्रो निर्वृत्तोऽर्थः सकलः पाण्डवानाम् ।
मा तत्कार्षीः पाण्डवस्यार्थहेतोरुपैहि युद्धं यदि मन्यसे त्वम् ॥ ८ ॥

यदि दुर्योधन चाहता है कि इन सब वीरोंके साथ कौरवोंका युद्ध हो, तो ठीक है, इससे पाण्डवोंका सारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा । तुम केवल पाण्डवोंके लाभके लिये संधि कराने या आधा राज्य दिलानेकी चेष्टा न करना । उस दशामें यदि ठीक समझो तो उससे कह देना– 'दुर्योधन ! तुम युद्धभूमिमें ही उतरो ॥ ८ ॥

यां तां वने दुःखशय्यामुवास प्रव्राजितः पाण्डवो धर्मचारी ।
आशिष्यते दुःखतरामनर्थामन्त्यां शय्यां धार्तराष्ट्रः परासुः ॥ ९ ॥

धर्मात्मा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने वनमें निर्वासित होकर जिस दुःखशय्यापर शयन किया है, दुर्योधन अपने प्राणोंका त्याग करके उससे भी अधिक दुःखदायिनी और अनर्थकारिणी मृत्युकी अन्तिम शय्याको ग्रहण करे ॥ ९ ॥

ह्रिया ज्ञानेन तपसा दमेन क्रोधेनाथो धर्मगुप्त्या धनेन ।
अन्यायवृत्तः कुरुपाण्डवेयानध्यतिष्ठद्धार्तराष्ट्रो दुरात्मा ॥ १० ॥

अन्यायपूर्ण बर्ताव करनेवाले दुरात्मा दुर्योधनको उचित है कि वह लज्जा, ज्ञान, तपस्या, इन्द्रियसंयम, क्रोध, धर्मरक्षा आदि गुणों तथा धनके द्वारा कौरव-पाण्डवोंपर अधिकार प्राप्त करे सद्गुणोंद्वारा सबके हृदयको जीते, अन्यायसे शासन करना असम्भव है ॥ १० ॥

मायोपधः प्रणिधानार्जवाभ्यां तपोदमाभ्यां धर्मगुप्त्या बलेन ।
सत्यं ब्रुवन्प्रीतियुक्त्यानृतेन तितिक्षमाणः क्लिश्यमानोऽतिवेलम् ॥ ११ ॥

हमारे महाराज युधिष्ठिर नम्रता, सरलता, तप, इन्द्रियसंयम, धर्मरक्षा और बल-इन सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं । वे बहुत दिनोंसे अनेक प्रकारके क्लेश उठाते हुए भी सदा सत्य ही बोलते हैं तथा कौरवोंके कपटपूर्ण व्यवहारों तथा वचनोंको सहन करते रहते हैं ॥ ११ ॥

यदा ज्येष्ठः पाण्डवः संशितात्मा क्रोधं यत्तं वर्षपूगान्सुघोरम् ।
अवस्रष्टा कुरुषूद्वृत्तचेतास्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १२ ॥

परंतु अपने मनको शुभ एवं संयत रखनेवाले ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर जिस समय उत्तेजित हो अनेक वर्षोंसे दबे हुए अपने अत्यन्त भयंकर क्रोधको कौरवोंपर छोड़ेंगे, उस समय जो भयानक युद्ध होगा, उसे देखकर दुर्योधनको पछताना पड़ेगा ॥ १२ ॥

कृष्णवर्त्मेव ज्वलितः समिद्धो यथा दहेत्कक्षमग्निर्निदाघे।
एवं दग्धा धार्तराष्ट्रस्य सेनां युधिष्ठिरः क्रोधदीप्तोऽनुवीक्ष्य ॥ १३ ॥
जैसे ग्रीष्मऋतुमें प्रज्वलित अग्नि सब ओरसे धधक उठती और घास-फूस एवं जंगलोंको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार क्रोधसे तमतमाये हुए युधिष्ठिर दुर्योधनकी सेनाको अपने दृष्टिपातमात्रसे दग्ध कर देंगे ॥ १३ ॥

यदा द्रष्टा भीमसेनं रणस्थं गदाहस्तं क्रोधविषं वमन्तम्।
दुर्मर्षणं पाण्डवं भीमवेगं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १४ ॥
जिस समय दुर्योधन हाथमें गदा लिये, रथपर बैठे हुए, भयानक वेगवाले अमर्षशील पाण्डुनन्दन भीमसेनको क्रोधरूप विष उगलते देखेगा, उस समय युद्धके परिणामको सोचकर उसे महान् पश्चाताप करना पडेगा ॥ १४ ॥

महासिंहो गाव इव प्रविश्य गदापाणिर्धार्तराष्ट्रानुपेत्य।
यदा भीमो भीमरूपो निहन्ता तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १५ ॥
जब भयंकर रूपधारी भीमसेन हाथमें गदा लिये तुम्हारी सेनामें घुसकर धृतराष्ट्रपुत्रोंके पास जाकर उनका उसी प्रकार संहार करने लगेंगे, जैसे महान् सिंह गौओंके झुंडमें घुसकर उन्हें दबोच लेता है, तब दुर्योधनको युद्धके लिये बडा पछतावा होगा ॥ १५ ॥

महाभये वीतभयः कृतास्त्रः समागमे शत्रुबलावमर्दी।
सकृद्रथेन प्रतियाद्रथौघान्पदातिसंघान्गदयाभिनिघ्नन् ॥ १६ ॥
जो भारी-से भारी भय आनेपर भी निर्भय रहते हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त की है तथा जो संग्रामभूमिमें शत्रुसेनाको रौंद डालते हैं, वे ही शूरवीर भीमसेन जब एकमात्र रथपर आरूढ हो गदाके आघातसे असंख्य रथसमूहों तथा पैदल सैनिकोंको मौतके घाट उतारते हुए ॥ १६ ॥

सैन्याननेकांस्तरसा विमृद्नन्यदा क्षेप्ता धार्तराष्ट्रस्य सैन्यम्।
छिन्दन् वनं परशुनेव शूरस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १७ ॥
दुर्योधनकी अनेक सेनाको वैसे ही छिन्न-भिन्न करने लगेंगे, जैसे कोई फरसेसे जंगल काट रहा हो, उस समय धृतराष्ट्रपुत्र मन-ही-मन यह सोचकर पछतायेगा कि मैंने युद्ध छेडकर बडी भारी भूल की है ॥ १७ ॥

तृणप्रायं ज्वलनेनेव दग्धं ग्रामं यथा धार्तराष्ट्रः समीक्ष्य।
पक्वं सस्यं वैद्युतेनेव दग्धं परासिक्तं विपुलं स्वं बलौघम् ॥ १८ ॥
जब दुर्योधन यह देखेगा कि जैसे घास-फूसके झोपडोंका गाँव आगसे जलकर खाक हो जाता है, उसी प्रकार धृतराष्ट्रके अन्य सभी पुत्र भीमसेनकी क्रोधाग्निसे दग्ध हो गये, मेरी विशाल वाहिनी बिजलीकी आगसे जली हुई पकी खेतीके समान नष्ट हो गयी ॥ १८ ॥

हतप्रवीरं विमुखं भयार्तं पराङ्मुखं प्रायशोऽधृष्टयोधम् ।
शस्त्रार्चिषा भीमसेनेन दग्धं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १९ ॥

उसके मुख्य-मुख्य वीर मारे गये, सैनिकोंने पीठ दिखा दी, सभी भयसे पीडित हो रण-भूमिसे भाग निकले, प्रायः समस्त योद्धा साहस अथवा धीरज खो बैठे तथा भीमसेनके अस्त्र-शस्त्रोंकी आगसे सब कुछ स्वाहा हो गया; उस समय उसे युद्धके लिये बडा पछतावा होगा ॥ १९ ॥

उपासंगादुद्धरन्दक्षिणेन परःशतान्नकुलश्चित्रयोधी ।
यदा रथाग्र्यो रथिनः प्रचेता तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २० ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले नकुल जब दाहिने हाथमें लिये हुए खड्गसे तुम्हारे सैनिकोंके मस्तक काट-काटकर धरतीपर उनके ढेर लगाने लगेंगे और रथी योद्धाओंको यमलोक भेजना प्रारम्भ करेंगे, उस समय धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन युद्धका परिणाम सोचकर शोकसे संतप्त हो उठेगा ॥ २० ॥

सुखोचितो दुःखशय्यां वनेषु दीर्घं कालं नकुलो यामशेत ।
आशीविषः क्रुद्ध इव श्वसन्भृशं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २१ ॥

सुख भोगनेके योग्य वीरवर नकुलने दीर्घकालतक वनोंमें रहकर जिस दुःख-शय्यापर शयन किया है, उसका स्मरण करके जब वह क्रोधमें भरे हुए विषैले सर्पकी भाँति लम्बी साँसें लेने लगेगा, उस समय धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको युद्ध छेडनेके कारण पछताना पडेगा ॥२१॥

त्यक्तात्मानः पार्थिवायोधनाय समादिष्टा धर्मराजेन वीराः ।
रथैः शुभ्रैः सैन्यमभिद्रवन्तो दृष्ट्वा पश्चात्तप्स्यते धार्तराष्ट्रः ॥ २२ ॥

संजय ! धर्मराज युधिष्ठिरके द्वारा युद्धके लिये आदेश पाकर उनके लिये प्राण देनेको उद्यत रहनेवाले भूमंडलके नरेश जब तेजस्वी रथोंपर आरूढ होकर कौरव-सेनापर आक्रमण करेंगे, उस समय उन्हें देखकर दुर्योधनको युद्धके लिये अत्यन्त पश्चात्ताप करना पडेगा ॥ २२ ॥

शिशून्कृतास्त्रानशिशुप्रकाशान्यदा द्रष्टा कौरवः पञ्च शूरान् ।
त्यक्त्वा प्राणान्केकयानाद्रवन्तस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २३ ॥

जो अवस्थामें बालक होते हुए भी अस्त्र-शस्त्रोंकी पूर्ण शिक्षा पाकर युद्धमें नवयुवकोंके समान पराक्रम प्रकाशित करते हैं, द्रौपदीके वे पाँचों शूरवीर पुत्र प्राणोंका मोह छोडकर जब केकय सेनापर टूट पडेंगे और कुरुराज दुर्योधन जब उन्हें उस अवस्थामें देखेगा, तब उसे युद्ध छेडनेकी भूलके कारण भारी पश्चात्ताप होगा ॥ २३ ॥

यदा गत्वोह्याश्मकूजनाक्षं सुवर्णतारं रथमाततायी ।
दान्तैर्युक्तं सहदेवोऽधिरूढः शिरांसि राज्ञां क्षेप्स्यते मार्गणौघैः ॥ २४ ॥

जब सहदेव उत्तम जातिके सुशिक्षित घोड़ोंसे जुते हुए अपनी इच्छाके अनुकूल चलनेवाले तथा पहियोंकी धुरीसे तनिक भी आवाज न करनेवाले रथपर, जो अलातचक्रकी भाँति घूमनेके कारण सोनेके गोलाकार तारके समान प्रतीत होता है, आरूढ हो अपने बाणसमूहों द्वारा विपक्षी राजाओंके मस्तक काट-काटकर गिराने लगेंगे ॥ २४ ॥

महाभये सम्प्रवृत्ते रथस्थं विवर्तमानं समरे कृतास्त्रम् ।
सर्वां दिशं सम्पतन्तं समीक्ष्य तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २५ ॥

और इस प्रकार महान् भयका वातावरण छा जानेपर रथपर बैठे हुए अस्त्रवेत्ता सहदेव समरभूमिमें डटे रहकर जब सभी दिशाओंमें शत्रुओंपर अक्रामण करेंगे, उस दशामें उन्हें देखकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके मनमें युद्धका परिणाम सोचकर महान् पश्चात्ताप होगा ॥ २५ ॥

ह्रीनिषेधो निपुणः सत्यवादी महाबलः सर्वधर्मोपपन्नः ।
गान्धारिमार्च्छंस्तुमुले क्षिप्रकारी क्षेप्ता जनान्सहदेवस्तरस्वी ॥ २६ ॥

लज्जाशील, युद्धकुशल, सत्यवादी, महाबली, सर्वधर्मसम्पन्न, वेगवान् तथा शीघ्रतापूर्वक बाण चलानेवाले सहदेव जब घमासान युद्धमें शकुनिपर आक्रमण करके शत्रुओंके सैनिकोंका संहार करने लगेंगे ॥ २६ ॥

यदा द्रष्टा द्रौपदेयान्महेषून्शूरान्कृतास्त्रान्रथयुद्धकोविदान् ।
आशीविषान्घोरविषानिवायतस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २७ ॥

तथा जब दुर्योधन महाधनुर्धर शूरवीर अस्त्रविद्यामें निपुण तथा रथयुद्धकी कलामें कुशल द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको भयंकर विषवाले विषधर सर्पोंकी भाँति आक्रमण करते देखेगा, तब उसे युद्ध छेड़नेकी भूलपर भारी पश्चात्ताप होगा ॥ २७ ॥

यदाभिमन्युः परवीरघाती शरैः परान्मेघ इवाभिवर्षन् ।
विगाहिता कृष्णसमः कृतास्त्रस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २८ ॥

अभिमन्यु साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके समान पराक्रमी तथा अस्त्रविद्यामें निपुण है, वह शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करनेमें समर्थ है । जिस समय वह मेघके समान बाणोंकी बौछार करता हुआ शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करेगा, उस समय धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन युद्धके लिये मन-ही-मन बहुत ही संतप्त होगा ॥ २८ ॥

यदा द्रष्टा बालमबालवीर्यं द्विषच्चमूं मृत्युमिवापतन्तम् ।
सौभद्रमिन्द्रप्रतिमं कृतास्त्रं तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २९ ॥
सुभद्राकुमार अवस्थामें यद्यपि बालक है, तथापि उसका पराक्रम युवकोंके समान है । वह इन्द्रके समान शक्तिशाली तथा अस्त्रविद्यामें पारङ्गत है । जिस समय वह शत्रुसेनापर विकराल कालके समान आक्रमण करेगा, उस समय उसे देखकर दुर्योधनको युद्ध छेडनेके कारण बडा पश्चात्ताप होगा ॥ २९ ॥

प्रभद्रकाः शीघ्रतरा युवानो विशारदाः सिंहसमानवीर्याः ।
यदा क्षेप्तारो धार्तराष्ट्रान्ससैन्यांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३० ॥
अस्त्र-संचालनमें शीघ्रता दिखानेवाले, युद्धविशारद तथा सिंहके समान पराक्रमी प्रभद्रकदेशीय नवयुवक जब सेनासहित धृतराष्ट्रपुत्रोंको मार भगायेंगे, उस समय दुर्योधनको यह सोचकर बडा पश्चात्ताप होगा कि मैंने क्यों युद्ध छेडा ? ॥ ३० ॥

वृद्धौ विराटद्रुपदौ महारथौ पृथक्चमूभ्यामभिवर्तमानौ ।
यदा द्रष्टारौ धार्तराष्ट्रान्ससैन्यांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३१ ॥
जिस समय वृद्ध महारथी राजा विराट और द्रुपद अपनी पृथक्-पृथक् सेनाओंके साथ आक्रमण करके सैनिकोंसहित धृतराष्ट्रपुत्रोंपर दृष्टि डालेंगे, उस समय दुर्योधनको युद्धका परिणाम सोचकर महान् पश्चात्ताप करना पडेगा ॥ ३१ ॥

यदा कृतास्त्रो द्रुपदः प्रचिन्वञ्शिरांसि यूनां समरे रथस्थः ।
क्रुद्धः शरैश्छेत्स्यति चापमुक्तैस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३२ ॥
जब अस्त्रविद्यामें निपुण राजा द्रुपद कुपित हो रथपर बैठकर समरभूमिमें अपने धनुषसे छोडे हुए बाणोंद्वारा विपक्षी युवकोंके मस्तकोंको चुन-चुनकर काटने लगेंगे, उस समय दुर्योधनको इस युद्धके कारण भारी पछतावा होगा ॥ ३२ ॥

यदा विराटः परवीरघाती मर्मान्तरे शत्रुचमूं प्रवेष्टा ।
मत्स्यैः सार्धमनृशंसरूपैस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३३ ॥
जब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले राजा विराट सौम्य स्वरूपवाले मत्स्यदेशीय योद्धाओंको साथ लेकर शत्रुसेनाके मर्मों अर्थात् हृदयोंके भीतर प्रवेश करेंगे, उस समय दुर्योधन युद्ध छेडनेका परिणाम सोचकर शोकसे संतप्त हो उठेगा ॥ ३३ ॥

ज्येष्ठं मात्स्यानामनृशंसरूपं विराटपुत्रं रथिनं पुरस्तात् ।
यदा द्रष्टा दंशितं पाण्डवार्थे तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३४ ॥
सौम्य तथा श्रेष्ठ स्वरूपवाले राजा विराटके ज्येष्ठ पुत्र मत्स्यदेशीय महारथी श्वेतको जब दुर्योधन पाण्डवोंके हितके लिये कवच धारण किये देखेगा, तब उसे युद्धका परिणाम सोचकर मन-ही-मन बडा कष्ट होगा ॥ ३४ ॥

रणे हते कौरवाणां प्रवीरे शिखण्डिना सत्तमे शान्तनूजे ।
न जातु नः शत्रवो धारयेयुरसंशयं सत्यमेतद्‌ब्रवीमि ॥ ३५ ॥
कौरववंशके प्रमुख वीर शान्तनुनन्दन साधुशिरोमणि भीष्म जब युद्धमें शिखण्डीके हाथसे मार दिये जायँगे, उस समय हमारे शत्रु कौरव कभी हमलोगोंका वेग नहीं सह सकेंगे, यह मैं सत्य कहता हूँ, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ ३५ ॥

यदा शिखण्डी रथिनः प्रचिन्वन्भीष्मं रथेनाभियाता वरूथी ।
दिव्यैर्हयैरवमृद्नन्रथौघांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३६ ॥
जब शिखण्डी अपने रथकी रक्षाके साधनोंसे सम्पन्न हो रथियोंको चुन चुनकर मारता तथा दिव्य अश्वोंद्वारा रथसमूहोंको रौंदता हुआ रथारूढ हो भीष्मपर आक्रमण करेगा, उस समय दुर्योधनको युद्ध छिड जानेके कारण बडा पश्चात्ताप होगा ॥ ३६ ॥

यदा द्रष्टा सृंजयानामनीके धृष्टद्युम्नं प्रमुखे रोचमानम् ।
अस्त्रं यस्मै गुह्यमुवाच धीमान्द्रोणस्तदा तप्स्यति धार्तराष्ट्रः ॥ ३७ ॥
जिसे परम बुद्धिमान् आचार्य द्रोणने अस्त्रविद्याके गोपनीय रहस्यकी भी शिक्षा दी है, वह धृष्टद्युम्न जब सृंजयवंशी वीरोंकी सेनाके अग्रभागमें प्रकाशित होगा और उसे उस दशामें दुर्योधन देखेगा, तब वह अत्यन्त संतप्त हो उठेगा ॥ ३७ ॥

यदा स सेनापतिरप्रमेयः पराभवन्निषुभिर्धार्तराष्ट्रान् ।
द्रोणं रणे शत्रुसहोऽभियाता तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ३८ ॥
जब शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ अपरिमित शक्तिशाली सेनापति धृष्टद्युम्न अपने बाणोंद्वारा धृतराष्ट्रपुत्रोंको हराता हुआ आचार्य द्रोणपर आक्रमण करेगा, उस समय युद्धका परिणाम सोचकर दुर्योधन बहुत पछतायेगा ॥ ३८ ॥

ह्रीमान्मनीषी बलवान्मनस्वी स लक्ष्मीवान्सोमकानां प्रबर्हः ।
न जातु तं शत्रवोऽन्ये सहेरन्येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः ॥ ३९ ॥
सोमकवंशका वह प्रमुख वीर धृष्टद्युम्न लज्जाशील, बलवान्, बुद्धिमान्, मनस्वी तथा वीरोचित शोभासे सम्पन्न है । इसी प्रकार वृष्णिवंशमें सिंहके समान पराक्रमी वीरवर सात्यकि जिनके अगुआ हैं, उनके वेगको दूसरे शत्रु कदापि नहीं सह सकते ॥ ३९ ॥

ब्रूयाच्च मा प्रवृणीष्वेति लोके युद्धेऽद्वितीयं सचिवं रथस्थम् ।
शिनेर्नप्तारं प्रवृणीम सात्यकिं महाबलं वीतभयं कृतास्त्रम् ॥ ४० ॥
'तुम दुर्योधनसे यह भी कह देना कि अब संसारमें जीवित रहकर तुम राज्य भोगनेकी इच्छा न करो । हमने युद्धके लिये अद्वितीय वीर, महान् बलवान्, निर्भय तथा अस्त्रविद्यामें निपुण शिनिपौत्र रथारूढ सात्यकिको अपना सहायक चुन लिया है ॥ ४० ॥

यदा शिनीनामधिपो मयोक्तः शरैः परान्मेघ इव प्रवर्षन् ।
प्रच्छादयिष्यञ्छरजालेन योधांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ४१ ॥

जब मेरे कहनेसे शिनिप्रवर सात्यकि शत्रुओंपर मेघकी भाँति बाणोंकी झडी लगाते हुए उन बाणोंके जालोंसे योद्धाओंको आच्छादित कर देंगे, उस समय दुर्योधन युद्धका परिणाम सोचकर बहुत पछतायेगा ॥ ४१ ॥

यदा धृतिं कुरुते योत्स्यमानः स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा ।
सिंहस्येव गन्धमाघ्राय गावः संवेष्टन्ते शत्रवोऽस्माद्यथाग्नेः ॥ ४२ ॥

सुदृढ धनुष धारण करनेवाले दीर्घबाहु महामना सात्यकि जब युद्धके लिये उत्सुक हो समर-भूमिमें डट जाते हैं, उस समय जैसे सिंहकी गन्ध पाकर गौएँ इधर-उधर भागने लगती हैं, उसी प्रकार शत्रु युद्धके मुहानेपर इनके पास आकर तुरंत भाग खडे होते हैं अथवा जिस प्रकार आग जंगलको चारों ओर से घेर लेती है, उसी प्रकार सात्यकिकी सेनायें शत्रुओंको घेर लेंगी ॥ ४२ ॥

स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा भिन्द्याद् गिरीन्संहरेत्सर्वलोकान् ।
अस्त्रे कृती निपुणः क्षिप्रहस्तो दिवि स्थितः सूर्य इवाभिभाति ॥ ४३ ॥

विशालबाहु, दृढ धनुर्धर, युद्धकुशल और हाथोंकी फुर्ती दिखानेवाले अस्त्रवेत्ता सात्यकि पर्वतोंको विदीर्ण कर सकते हैं और सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेमें समर्थ हैं । वे आकाश-में विद्यमान सूर्यदेवकी भाँति प्रकाशित होते हैं ॥ ४३ ॥

चित्रः सूक्ष्मः सुकृतो यादवस्य अस्त्रे योगो वृष्णिसिंहस्य भूयान् ।
यथाविधं योगमाहुः प्रशस्तं सर्वैर्गुणैः सात्यकिस्तैरुपेतः ॥ ४४ ॥

युद्धनिपुण वीर पुरुष जैसे-जैसे अस्त्रोंके उपलब्धिको प्रशंसाके योग्य मानते हैं, उन सबसे तथा समस्त वीरोचित गुणोंसे वृष्णिसिंह सात्यकि सम्पन्न हैं। उन यदुकुलतिलकको बहुतसे उत्तम अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त है। उनका यह अस्त्रयोग विचित्र, सूक्ष्म और भलीभाँति अभ्यासमें लाया हुआ है ॥ ४४ ॥

हिरण्मयं श्वेतहयैश्चतुर्भिर्यदा युक्तं स्यन्दनं माधवस्य ।
द्रष्टा युद्धे सात्यकेर्वै सुयोधनस्तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः ॥ ४५ ॥

जब युद्धमें कृष्णके चार श्वेत घोडोंसे जुते हुए सुवर्णमय रथको पापात्मा मन्दबुद्धि सुयोधन देखेगा, तब उसे अवश्य संताप होगा ॥ ४५ ॥

यदा रथं हेममणिप्रकाशं श्वेताश्वयुक्तं वानरकेतुमुग्रम् ।
दृष्टा रणे संयतं केशवेन तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः ॥ ४६ ॥

जब सुवर्ण और मणियोंसे प्रकाशित होनेवाले मेरे भयंकर रथको जिसमें चार श्वेत अश्व जुते होंगे, जिसपर वानरध्वजा फहरा रही होगी तथा साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण जिसपर बैठकर सारथिका कार्य सँभालते होंगे, अकृतात्मा मन्दबुद्धि दुर्योधन देखेगा, तब मन-ही-मन संतप्त हो उठेगा ॥ ४६ ॥

यदा मौर्व्यास्तलनिष्पेषमुग्रं महाशब्दं वज्रनिष्पेषतुल्यम् ।
विधूयमानस्य महारणे मया गाण्डीवस्य श्रोष्यति मन्दबुद्धिः ॥ ४७ ॥

महान् संग्रामके समय जब मैं गाण्डीव धनुषकी डोरी खींचूँगा, उस समय मेरे हाथोंकी रगडसे वज्रपातके समान अत्यन्त भयंकर अवाज होगी, मन्दबुद्धि दुर्योधन जब गाण्डीवकी उस उग्र टंकारको सुनेगा ॥ ४७ ॥

तदा मूढो धृतराष्ट्रस्य पुत्रस्तप्ता युद्धे दुर्मतिर्दुःसहायः ।
दृष्ट्वा सैन्यं बाणवर्षान्धकारं प्रभज्यन्तं गोकुलवद् रणाग्रे ॥ ४८ ॥

तथा रणस्थलीके अग्रभागमें मेरी बाणवर्षासे फैले हुए अन्धकारमें इधर-उधर भागती हुई गौओंकी भाँति अपनी सेनाको युद्धसे पलायन करती देखेगा, तब दुष्ट सहायकोंसे युक्त उस दुर्बुद्धि एवं मूढ धृतराष्ट्रपुत्रके मनमें बडा संताप होगा ॥ ४८ ॥

बलाहकादुच्चरंतीव विद्युत्सहस्रघ्नी द्विषतां संगमेषु ।
अस्थिच्छिदो मर्मभिदः वमेच्छरांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ४९ ॥

जैसे मेघोंसे बिजली निकलती है, उसी प्रकार जब शत्रुओंके युद्धोंमें शत्रुओंके हृदयों और हड्डियोंको छिन्न भिन्न करने वाले बाणोंको मेरा धनुष उगलेगा तब इस युद्धको देखकर दुर्योधन पश्चात्ताप करेगा ॥ ४९ ॥

यदा द्रष्टा ज्यामुखाद्बाणसंघान्गाण्डीवमुक्तान्पततः शिताग्रान् ।
नागान्हयान्वर्मिणश्चाददानांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५० ॥

जब मेरे धनुषकी डोरीसे निकले हुए तीक्ष्ण अग्रभागवाले बाण कितने ही घोडों, हाथियों तथा कवचधारी योद्धाओंके प्राण लेना प्रारम्भ करेंगे, उस समय जब धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन यह सब देखेगा, तब युद्ध छेडनेकी भूलके कारण वह बहुत पछतायेगा ॥ ५० ॥

यदा मन्दः परावाणान्विमुक्तान्ममेषुभिर्ह्रियमाणान्प्रतीपम् ।
तिर्यग्विद्धांश्छिद्यमानान्क्षुरप्रैस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५१ ॥

युद्धमें दूसरे योद्धा जो बाण चलायेंगे, उन्हें मेरे बाण टक्कर लेकर पीछे लौटा देंगे । साथ ही मेरे दूसरे बाण शत्रुओंके शरसमूहको तिर्यग्भावसे विद्ध करके टुकडे-टुकडे कर डालेंगे। जब मन्दबुद्धि दुर्योधन यह सब देखेगा, तब उसे युद्ध छेडनेके कारण बडा पश्चात्ताप होगा ॥ ५१ ॥

यदा विपाठा मद्भुजविप्रमुक्ता द्विजाः फलानीव महीरुहाग्रात् ।
प्रच्छेत्तार उत्तमाङ्गानि यूनां तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५२ ॥

जब मेरे बाहुबलसे छूटे हुए विपाठ नामक बाण युवक योद्धाओंके मस्तकोंको उसी प्रकार काट-काटकर ढेर लगाने लगेंगे, जैसे पक्षी वृक्षोंके अग्रभागसे फल गिराकर उनके ढेर लगा देते हैं, उस समय यह सब देखकर दुर्योधनको बडा पश्चात्ताप होगा ॥ ५२ ॥

यदा द्रष्टा पततः स्यन्दनेभ्यो महागजेभ्योऽश्वगतांश्च योधान् ।
शरैर्हतान्पातितांश्चैव रङ्गे तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५३ ॥

जब दुर्योधन देखेगा कि उसके रथोंसे, बडे-बडे गजोंसे और घोडोंकी पीठपरसे भी असंख्य योद्धा मेरे बाणोंद्वारा मारे जाकर समरांगणमें गिरते चले जा रहे हैं, तब उसे युद्धके लिये भारी पछतावा होगा ॥ ५३ ॥

पदातिसंघान्रथसंघान्समन्ताद्व्यात्ताननः काल इवाततेषुः ।
प्रणोत्स्यामि ज्वलितैर्बाणवर्षैः शत्रूंस्तदा तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ५४ ॥

जब मैं सायकोंकी अविच्छिन्न वर्षा करते हुए मुख फैलाये खडे हुए कालकी भाँति अपने प्रज्वलित बाणोंकी बौछारोंसे शत्रुपक्षके झुंडके झुंड पैदलों तथा रथियोंके समूहोंको छिन्न-भिन्न करने लगूँगा, तब उस समय मन्दबुद्धि दुर्योधनको बडा संताप होगा ॥ ५४ ॥

सर्वा दिशः सम्पतता रथेन रजोध्वस्तं गाण्डिवेनापकृत्तम् ।
यदा द्रष्टा स्वबलं सम्प्रमूढं तदा पश्चात्तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ५५ ॥

मन्दबुद्धि धृतराष्ट्रपुत्र जब यह देखेगा कि सम्पूर्ण दिशाओंमें दौडनेवाले मेरे रथके द्वारा उडायी हुई धूलिसे आच्छादित हो उसकी सारी सेना धराशायी हो रही है और मेरे गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उसके समस्त सैनिक छिन्न-भिन्न होते चले जा रहे हैं, तब उसे बडा पछतावा होगा ॥ ५५ ॥

क्रान्दिग्भूतं छिन्नगात्रं विसंज्ञं दुर्योधनो द्रक्ष्यति सर्वसैन्यम् ।
हताश्ववीराग्र्यनरेन्द्रनागं पिपासितं श्रान्तपत्रं भयार्तम् ॥ ५६ ॥

दुर्योधन अपनी आँखों यह देखेगा कि उसकी सारी सेना भयसे भागने लगी है और उसको यह भी नहीं सूझता है कि किस दिशाकी ओर जाऊं ? कितने ही योद्धाओंके अंग प्रत्यंग छिन्न भिन्न हो गये हैं । समस्त सैनिक अचेत हो रहे हैं । हाथी, घोडे तथा वीराग्रगण्य नरेश मार डाले गये हैं । सारे वाहन थक गये हैं और सभी योद्धा प्यास तथा भयसे पीडित हो रहे हैं ॥५६ ॥

आर्तस्वरं हन्यमानं हतं च विकीर्णकेशास्थिकपालसंघम् ।
प्रजापतेः कर्म यथार्थनिष्ठितं तदा दृष्ट्वा लप्स्यते मन्दबुद्धिः ॥ ५७ ॥

बहुतेरे सैनिक आर्तस्वरसे हो रहे हैं कितने ही मारे गये और मारे जा रहे हैं । बहुतोंके केश, अस्थि तथा कपालसमूह सब ओर बिखरे पडे हैं । मानो विधाताका यथार्थ निश्चित विधान हो, इस प्रकार यह सब कुछ होकर ही रहेगा । यह सब देखकर उस समय मन्दबुद्धि दुर्योधनके मनमें बडा पश्चात्ताप होगा ॥ ५८ ॥

यदा रथे गाण्डिवं वासुदेवं दिव्यं शङ्खं पाञ्चजन्यं हयांश्च ।
तूणावक्षय्यौ देवदत्तं च मां च द्रष्टा युद्धे धार्तराष्ट्रः समेतान् ॥ ५८ ॥

जब धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन रथपर मेरे गाण्डीव धनुषको, सारथि भगवान् श्रीकृष्णको, उनके दिव्य पाञ्चजन्य शंखको, रथमें जुते हुए दिव्य घोडोंको, बाणोंसे भरे हुए दो अक्षय तूणीरोंको, मेरे देवदत्त नामक शंखको और मुझको एक साथ देखेगा, उस समय युद्धका परिणाम सोचकर उसे बडा संताप होगा ॥ ५८ ॥

उद्वर्तयन्दस्युसङ्घान्समेतान्प्रवर्तयन्युगमन्यद्युगान्ते ।
यदा धक्ष्याम्यग्निवत्कौरवेयांस्तदा तप्ता धृतराष्ट्रः सपुत्रः ॥ ५९ ॥

जिस समय युद्धके लिये एकत्र हुए इन डाकुओंके दलोंका संहार करके प्रलयकालके पश्चात् युगान्तर उपस्थित करता हुआ मैं अग्निके समान प्रज्वलित होकर कौरवोंको भस्म करने लगूँगा, उस समय पुत्रोंसहित महाराज धृतराष्ट्रको बडा संताप होगा ॥ ५९ ॥

सहभ्राता सहपुत्रः ससैन्यो भ्रष्टैश्वर्यः क्रोधवशोऽल्पचेताः ।
दर्पस्यान्ते विहिते वेपमानः पश्चान्मन्दस्तप्स्यति धार्तराष्ट्रः ॥ ६० ॥

सदा क्रोधके वशमें रहनेवाला अल्पबुद्धि मूढ दुर्योधन जब भाई, पुत्र तथा सेनाओंसहित ऐश्वर्यसे भ्रष्ट एवं आहत होकर कांपने लगेगा, उस समय सारा घमंड चूर चूर हो जानेपर उसे अपने कुकृत्योंके लिये बडा पश्चात्ताप होगा ॥ ६० ॥

पूर्वाह्णे मां कृतजप्यं कदाचिद्विप्रः प्रोवाचोदकान्ते मनोज्ञम् ।
कर्तव्यं ते दुष्करं कर्म पार्थ योद्धव्यं ते शत्रुभिः सव्यसाचिन् ॥ ६१ ॥

एक दिनकी बात है, मैं पूर्वाह्णकालमें संध्या-वन्दन एवं गायत्रीजप करके आचमनके पश्चात् बैठा हुआ था, उस समय एक ब्राह्मणने आकर एकान्तमें मुझसे यह मधुर वचन कहा— कुन्तीनन्दन! तुम्हें दुष्कर कर्म करना है। सव्यसाचिन्! तुम्हें अपने शत्रुओंके साथ युद्ध करना होगा ॥ ६१ ॥

इन्द्रो वा ते हरिवान्वज्रहस्तः पुरस्ताद्यातु समरेऽरीन्विनिघ्नन् ।
सुग्रीवयुक्तेन रथेन वा ते पश्चात्कृष्णो रक्षतु वासुदेवः ॥ ६२ ॥

बोलो, क्या चाहते हो? इन्द्र उच्चैःश्रवा घोड़ेपर बैठकर वज्र हाथमें लिये तुम्हारे आगे आगे समरभूमिमें शत्रुओंका नाश करते हुए चलें अथवा सुग्रीव आदि अश्वोंसे जुते हुए रथपर बैठकर वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण पीछेकी ओरसे तुम्हारी रक्षा करें ॥ ६२ ॥

वव्रे चाहं वज्रहस्तान्महेन्द्रादस्मिन्युद्धे वासुदेवं सहायम् ।
स मे लब्धो दस्युवधाय कृष्णो मन्ये चैतद्विहितं दैवतैर्मे ॥ ६३ ॥

उस समय मैंने वज्रपाणि इन्द्रको छोड़कर इस युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णको अपना सहायक चुना था, इस प्रकार इन डाकुओंके वधके लिये मुझे श्रीकृष्ण मिल गये हैं। मालूम होता है, देवताओंने ही मेरे लिये ऐसी व्यवस्था कर रक्खी है ॥ ६३ ॥

अयुध्यमानो मनसापि यस्य जयं कृष्णः पुरुषस्याभिनन्देत् ।
ध्रुवं सर्वान्सोऽभ्यतीयादमित्रान्सेन्द्रान्देवान्मानुषे नास्ति चिन्ता ॥ ६४ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध न करके मनसे भी जिस पुरुषकी विजयका अभिनन्दन करेंगे, निश्चयसे वह अपने समस्त शत्रुओंको, भले ही वे इन्द्र आदि देवता ही क्यों न हों, पराजित कर देता है, फिर मनुष्य-शत्रुके लिये तो चिन्ता ही क्या है? ॥ ६४ ॥

स बाहुभ्यां सागरमुत्तितीर्षेन्महोदधिं सलिलस्याप्रमेयम् ।
तेजस्विनं कृष्णमत्यन्तशूरं युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ॥ ६५ ॥

जो युद्धके द्वारा अत्यन्त शौर्यसम्पन्न तेजस्वी वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको जीतनेकी इच्छा करता है, वह अनन्त अपार जलनिधि समुद्रको दोनों बाँहोंसे तैरकर पार करना चाहता है ॥ ६५ ॥

×

गिरिं च इच्छेत तलेन भेत्तुं शिलोच्चयं श्वेतमतिप्रमाणम् ।
तस्यैव पाणिः सनखो विशीर्येन्न चापि किंचित्स गिरेस्तु कुर्यात् ॥ ६६ ॥

जो अत्यन्त विशाल प्रस्तरराशिपूर्ण श्वेत कैलासपर्वतको हथेलीसे मारकर विदीर्ण करना चाहता है, उस मनुष्यका नखसहित हाथ ही छिन्न-भिन्न हो जायगा। वह उस पर्वतका कुछ भी बिगाड नहीं सकता ॥ ६६ ॥

अग्निं समिद्धं शमयेद्भुजाभ्यां चन्द्रं च सूर्यं च निवारयेत ।
हरेद्देवानाममृतं प्रसह्य युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ॥ ६७ ॥

जो युद्धके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णको जीतना चाहता है, वह प्रज्वलित अग्निको दोनों हाथोंसे बुझानेकी चेष्टा करता है चन्द्रमा और सूर्यकी गतिको रोकना चाहता है तथा हठपूर्वक देवताओंका अमृत हर लानेका प्रयत्न करता है ॥ ६७ ॥

यो रुक्मिणीमेकरथेन भोज्यामुत्साद्य राज्ञां विषयं प्रसह्य ।
उवाह भार्यां यशसा ज्वलन्तीं यस्यां जज्ञे रौक्मिणेयो महात्मा ॥ ६८ ॥

जिन्होंने एकमात्र रथकी सहायतासे राजाओंको बलपूर्वक पराजित करके रूप, सौन्दर्य और सुयशके द्वारा प्रकाशित होनेवाली तथा उपभोगके योग्य उस परम सुन्दरी रुक्मिणीको पत्नीरूपसे ग्रहण किया, जिसके गर्भसे महामना प्रद्युम्नका जन्म हुआ है ॥ ६८ ॥

अयं गान्धारांस्तरसा सम्प्रमथ्य जित्वा पुत्रान्नग्नजितः समग्रान् ।
बद्धं मुमोच विनदन्तं प्रसह्य सुदर्शनीयं देवतानां ललामम् ॥ ६९ ॥

इन श्रीकृष्णने ही गान्धारदेशीय योद्धाओंको अपने वेगसे कुचलकर राजा नग्नजित्‌के समस्त पुत्रोंको पराजित किया और वहाँ कैदमें पडकर क्रन्दन करते हुए राजा सुदर्शनको, जो देवताओंके भी आदरणीय हैं, बन्धनमुक्त किया ॥ ६९ ॥

अयं कवाटे निजघान पाण्ड्यं तथा कलिङ्गान्दन्तकूरे ममर्द ।
अनेन दग्धा वर्षपूगान्विनाथा वाराणसी नगरी सम्बभूव ॥ ७० ॥

इन्होंने पाण्ड्यनरेशको किवाडके पल्लेसे मार डाला, भयंकर युद्धमें कलिङ्गदेशीय योद्धाओं-को कुचल डाला तथा इन्होंने ही काशीपुरीको इस प्रकार जलाया था कि वह बहुत वर्षों-तक अनाथ पडी रही ॥ ७० ॥

यं स्म युद्धे मन्यतेऽन्यैरजेयमेकलव्यं नाम निषादराजम् ।
वेगेनेव शैलमभिहत्य जम्भः शेते स कृष्णेन हतः परासुः ॥ ७१ ॥

जो निषादराज एकलव्य अन्योंके द्वारा युद्धमें अजेय माना जाता था, वह भी श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर प्राणशून्य हो सदाके लिये रणशय्यामें सो रहा है, ठीक उसी तरह, जैसे जम्भ नामक दैत्य स्वयं ही वेगपूर्वक पर्वतपर आघात करके प्राणशून्य हो महानिद्रामें निमग्न हो गया था ॥ ७१ ॥

तथोग्रसेनस्य सुतं प्रदुष्टं वृष्ण्यन्धकानां मध्यगतं तपन्तम् ।
अपातयद्बलदेवद्वितीयो हत्वा ददौ चोग्रसेनाय राज्यम् ॥ ७२ ॥
उग्रसेनका पुत्र कंस बडा दुष्ट था । वह जब भरी सभामें वृष्णि और अन्धकवंशी क्षत्रियोंके बीचमें बैठा हुआ था, श्रीकृष्णने बलदेवजीके साथ वहाँ जाकर उसे मार गिराया । इस प्रकार कंसका वध करके इन्होंने मथुराका राज्य उग्रसेनको दे दिया ॥ ७२ ॥

अयं सौभं योधयामास खस्थं विभीषणं मायया शाल्वराजम् ।
सौभद्वारि प्रत्यगृह्णाच्छतघ्नीं दोर्भ्यां क एनं विषहेत मर्त्यः ॥ ७३ ॥
इन्होंने सौभ नामक विमानपर बैठे हुए तथा मायाके द्वारा अत्यन्त भयंकर रूप धारण करके आये हुए आकाशमें स्थित शाल्वराजके साथ युद्ध किया और सौभ विमानघरके द्वारपर लगी हुई शतघ्नीको अपने दोनों हाथोंसे पकड लिया था । फिर इनका वेग कौन मनुष्य सह सकता है ? ॥ ७३ ॥

प्राग्ज्योतिषं नाम बभूव दुर्गं पुरं घोरमसुराणामसह्यम् ।
महाबलो नरकस्तत्र भौमो जहारादित्या मणिकुण्डले शुभे ॥ ७४ ॥
असुरोंका प्राग्ज्योतिषपुर नामसे प्रसिद्ध एक भयंकर किला था, जो शत्रुओंके लिये सर्वथा अजेय था। वहाँ भूमिपुत्र महाबली नरकासुर निवास करता था, जिसने देवमाता अदितिके सुन्दर मणिमय कुण्डल हर लिये थे ॥ ७४ ॥

न तं देवाः सह शक्रेण सेहिरे समागता आहरणाय भीताः ।
दृष्ट्वा च ते विक्रमं केशवस्य बलं तथैवास्त्रमवारणीयम् ॥ ७५ ॥
भयभीत देवता इन्द्रके साथ उस मणिमण्डलको हरनेके लिये आये, परंतु नरकासुरको युद्धमें वे सह न सके । तब देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णके अनिवार्य बल, पराक्रम और अस्त्रोंको देखकर ॥ ७५ ॥

जानन्तोऽस्य प्रकृतिं केशवस्य न्ययोजयन्दस्युवधाय कृष्णम् ।
स तत्कर्म प्रतिशुश्राव दुष्करमैश्वर्यवान्सिद्धिषु वासुदेवः ॥ ७६ ॥
तथा इनकी दयालु एवं दुष्टदमनकारिणी प्रकृतिको जानकर इन्हींसे पूर्वोक्त डाकू नरकासुरका वध करनेकी प्रार्थना की, तब समस्त कार्योंकी सिद्धिमें समर्थ भगवान् श्रीकृष्णने वह दुष्कर कार्य पूर्ण करना स्वीकार किया ॥ ७६ ॥

निर्मोचने षट्सहस्राणि हत्वा संछिद्य पाशान्सहसा क्षुरान्तान् ।
मुरं हत्वा विनिहत्यौघराक्षसं निर्मोचनं चापि जगाम वीरः ॥ ७७ ॥
फिर वीरवर श्रीकृष्णने निर्मोचन नगरीकी सीमापर जाकर सहसा तीखी धारवाले छः हजार लोहमय पाश काट दिये, फिर मुर दैत्यका वध और राक्षससमूहका नाश करके निर्मोचन नगरमें प्रवेश किया ॥ ७७ ॥

नमस्कृत्वा शान्तनवाय राज्ञे द्रोणायाथो सहपुत्राय चैव ।
शारद्वतायाप्रतिद्वन्द्विने च योत्स्याम्यहं राज्यमभीप्समानः ॥ ८४ ॥

मैं शान्तनुनन्दन महाराज भीष्मको, आचार्य द्रोणको, गुरुभाई अश्वत्थामाको और जिनका सामना कोई नहीं कर सकता, उन वीरवर कृपाचार्यको भी प्रणाम करके राज्य पानेकी इच्छा लेकर अवश्य युद्ध करूँगा ॥ ८४ ॥

धर्मेणास्त्रं नियतं तस्य मन्ये यो योत्स्यते पाण्डवैर्धर्मचारी ।
मिथ्याग्लहे निर्जिता वै नृशंसैः संवत्सरान्द्वादश पाण्डुपुत्राः ॥ ८५ ॥

जो पापबुद्धि मानव पाण्डवोंके साथ युद्ध करेगा, धर्मकी दृष्टिसे उसकी मृत्यु निकट आ गयी है, ऐसा मेरा विश्वास है। कारण कि इन क्रूर स्वभाववाले कौरवोंने हम सब लोगोंको कपटद्यूतमें जीतकर बारह वर्षोंके लिये वनमें निर्वासित कर दिया था; यद्यपि हम भी पाण्डुके ही पुत्र थे ॥ ८५ ॥

अवाप्य कृच्छ्रं विहितं ह्यरण्ये दीर्घं कालं चैकमज्ञातचर्याम् ।
ते ह्यकस्माज्जीवितं पाण्डवानां न मृष्यन्ते धार्तराष्ट्राः पदस्थाः ॥ ८६ ॥

हम वनमें दीर्घकालतक बडे कष्ट सहकर रहे हैं और एक वर्षतक हमें अज्ञातवास करना पडा है। ऐसी दशामें पाण्डवोंके जीतेजी वे कौरव अपने पदोंपर प्रतिष्ठित रहकर कैसे आनन्द भोगते रहेंगे ? ॥ ८६ ॥

ते चेदस्मान्युध्यमानाञ्जयेयुर्देवैरपीन्द्रप्रमुखैः सहायैः ।
धर्मादधर्मश्चरितो गरीयानिति ध्रुवं नास्ति कृतं च साधु ॥ ८७ ॥

यदि इन्द्र आदि देवताओंकी सहायता पाकर भी धृतराष्ट्रपुत्र हमें युद्धमें जीत लेंगे तो यह मानना पडेगा कि धर्मकी अपेक्षा पापाचारका ही महत्त्व अधिक है और संसारसे पुण्यकर्म-का अस्तित्व निश्चय ही उठ गया है ॥ ८७ ॥

न चेदिमं पुरुषं कर्मबद्धं न चेदस्मान्मन्यतेऽसौ विशिष्टान् ।
आशंसेऽहं वासुदेवद्वितीयो दुर्योधनं सानुबन्धं निहन्तुम् ॥ ८८ ॥

यदि दुर्योधन मनुष्यको कर्मोंके बन्धनसे बँधा हुआ नहीं मानता है अथवा यदि वह हमलोगोंको अपनेसे श्रेष्ठ तथा प्रबल नहीं समझता है, तो भी मैं यह आशा करता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णको अपना सहायक बनाकर मैं दुर्योधनको उसके सगे-सम्बन्धियोंसहित मार डालूँगा ॥ ८८ ॥

तत्रैव तेनास्य बभूव युद्धं महाबलेनातिबलस्य विष्णोः।
शेते स कृष्णेन हतः परासुर्वातेनेव मथितः कर्णिकारः ॥ ७८ ॥
वहीं उस महाबली नरकासुरके साथ अत्यन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्णका युद्ध हुआ। श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर वह प्राणोंसे हाथ धो बैठा और आँधीसे उखाड़े हुए कनेर वृक्षकी भाँति सदाके लिये रणभूमिमें सो गया ॥ ७८ ॥

आहृत्य कृष्णो मणिकुण्डले ते हत्वा च भौमं नरकं मुरं च।
श्रिया वृतो यशसा चैव धीमान्प्रत्याजगामाप्रतिमप्रभावः ॥ ७९ ॥
इस प्रकार अनुपम प्रभावशाली विद्वान् श्रीकृष्ण भूमिपुत्र नरकासुर तथा मुरका वध करके देवी अदितिके वे दोनों मणिमय कुण्डल वहाँसे लेकर विजयलक्ष्मी और उज्ज्वल यशसे सुशोभित हो अपनी पुरीमें लौट आये ॥ ७९ ॥

तस्मै वरानददंस्तत्र देवा दृष्ट्वा भीमं कर्म रणे कृतं तत्।
श्रमश्च ते युध्यमानस्य न स्यादाकाशे वा अप्सु चैव क्रमः स्यात् ॥ ८० ॥
युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णका वह भयंकर पराक्रम देखकर देवताओंने वहाँ इन्हें इस प्रकार वर दिये, केशव! युद्ध करते समय आपको कभी थकावट न हो, आकाश और जलमें भी आप अप्रतिहत गतिसे विचरें ॥ ८० ॥

शस्त्राणि गात्रे च न ते क्रमेरन्नित्येव कृष्णश्च ततः कृतार्थः।
एवंरूपे वासुदेवेऽप्रमेये महाबले गुणसम्पत् सदैव ॥ ८१ ॥
और आपके अङ्गोंमें कोई भी अस्त्र-शस्त्र चोट न पहुँचा सके। इस प्रकार वर पाकर श्रीकृष्ण पूर्णतः कृतकार्य हो गये हैं। इन असीम शक्तिशाली वासुदेवमें समस्त गुणसम्पत्ति सदैव विद्यमान है ॥ ८१ ॥

तमसह्यं विष्णुमनन्तवीर्यमाशंसते धार्तराष्ट्रो बलेन।
यदा ह्येनं तर्कयते दुरात्मा तच्चाप्ययं सहतेऽस्मान्समीक्ष्य ॥ ८२ ॥
ऐसे अनन्त पराक्रमी और अजेय श्रीकृष्णको धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन बलसे जीत लेनेकी आशा करता है। वह दुरात्मा सदैव इनका अनिष्ट करनेके विषयमें सोचता रहता है, परंतु हम-लोगोंकी ओर देखकर उसके इस अपराधको भी ये भगवान् सहते चले जा रहे हैं ॥ ८२ ॥

पर्यागतं मम कृष्णस्य चैव यो मन्यते कलहं सम्प्रयुज्य।
शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वं तद्वेदिता संयुगं तत्र गत्वा ॥ ८३ ॥
दुर्योधन मानता है कि मुझमें और श्रीकृष्णमें हठात् कलह करा दिया जा सकता है। पाण्डवोंका श्रीकृष्णके प्रति जो ममत्व अपनाया है, उसे मिटा दिया जा सकता है; परंतु कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें पहुँचनेपर उसे इन सब बातोंका ठीक ठीक पता चल जायगा ॥ ८३ ॥

तथा हि नो मन्यतेऽजातशत्रुः संसिद्धार्थो द्विषतां निग्रहाय ।
जनार्दनश्चाप्यपरोक्षविद्यो न संशयं पश्यति वृष्णिसिंहः ॥ ९४ ॥
अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर मानते हैं, मैं अपने शत्रुओंका दमन करनेमें निश्चय सफल होऊँगा। वृष्णिवंशके पराक्रमी वीर भगवान् श्रीकृष्णको भी सारी विद्याओंका अपरोक्ष ज्ञान है। वे भी हमारे इस मनोरथके सिद्ध होनेमें कोई संदेह नहीं देखते हैं ॥ ९४ ॥

अहं च जानामि भविष्यरूपं पश्यामि बुद्ध्या स्वयमप्रमत्तः ।
दृष्टिश्च मे न व्यथते पुराणी युध्यमाना धार्तराष्ट्रा न सन्ति ॥ ९५ ॥
मै भी स्वयं प्रमादशून्य होकर अपनी बुद्धिसे भावीका ऐसा ही स्वरूप देखता हूँ। मेरी चिरंतन दृष्टि कभी तिरोहित नहीं होती। उसके अनुसार मैं यह निश्चितरूपसे कह सकता हूँ कि युद्धभूमिमें उतरनेपर धृतराष्ट्रके पुत्र जीवित नहीं रह सकते ॥ ९५ ॥

अनालब्धं जृम्भति गाण्डिवं धनुरनालब्धा कम्पति मे धनुर्ज्या ।
बाणाश्च मे तूणमुखाद्विसृज्य मुहुर्मुहुर्गन्तुमुशन्ति चैव ॥ ९६ ॥
गाण्डीव धनुष बिना स्पर्श किये ही तना जा रहा है, मेरे धनुषकी डोरी बिना स्पर्शके ही हिलने लगी है और मेरे बाण बार-बार तरकससे निकलकर शत्रुओंकी ओर जानेके लिये उतावले हो रहे हैं ॥ ९६ ॥

सैक्यः कोशान्निःसरति प्रसन्नो हित्वेव जीर्णामुरगस्त्वचं स्वाम् ।
ध्वजे वाचो रौद्ररूपा वदन्ति कदा रथो योक्ष्यते ते किरीटिन् ॥ ९७ ॥
चमचमाती हुई तलवार म्यानसे इस प्रकार निकल रही है, मानो सर्प अपनी पुरानी केंचुल छोडकर चमकने लगा हो तथा मेरी ध्वजापर यह भयंकर वाणी गूँजती रहती है कि, हे अर्जुन! तुम्हारा रथ युद्धके लिये कब जोता जायगा ॥ ९७ ॥

गोमायुसंघाश्च वदन्ति रात्रौ रक्षांस्यथो निष्पतन्त्यन्तरिक्षात् ।
मृगाः शृगालाः शितिकण्ठाश्च काका गृध्रा बडाश्चैव तरक्षवश्च ॥ ९८ ॥
रातमें गीदडोंके दल कोलाहल मचाते हैं, राक्षस आकाशसे पृथिवीपर टूट पडते हैं तथा मांसाहारी पशु, सियार, मोर, कौआ, गीध, बगुला और चीते मेरे रथके समीप दौडे आते हैं ॥ ९८ ॥

सुपर्णपाताश्च पतन्ति पश्चाद् दृष्ट्वा रथं श्वेतहयप्रयुक्तम् ।
अहं ह्येकः पार्थिवान्सर्वयोधाञ्शरान्वर्षन्मृत्युलोकं नयेयम् ॥ ९९ ॥
श्वेत घोडोंसे जुते हुए मेरे रथको देखकर सुपर्णपत्र नामक पक्षी पीछेसे टूटे पडते हैं। इससे जान पडता है, मैं अकेला बाणोंकी वर्षा करके समस्त राजाओं और योद्धाओंको यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ ९९ ॥

न चेदिदं कर्म नरेषु बद्धं न विद्यते पुरुषस्य स्वकर्म।
इदं च तच्चापि समीक्ष्य नूनं पराजयो धार्तराष्ट्रस्य साधुः ॥ ८९ ॥
यदि यह मनुष्योंमें बंधा हुआ कर्म पुरुषका अपना कर्म नहीं होता तो भी मैं दुर्योधनके वर्तमान और पहलेके किये हुए पापकर्मका विचार करके निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि धृतराष्ट्रपुत्रकी पराजय अनिवार्य है और इसीमें जगत्की भलाई है ॥ ८९ ॥

प्रत्यक्षं वः कुरवो यद्ब्रवीमि युध्यमाना धार्तराष्ट्रा न सन्ति।
अन्यत्र युद्धात्कुरवः परीप्सन्न युध्यतां शेष इहास्ति कश्चित् ॥ ९० ॥
कौरवो! मैं तुम लोगोंके समक्ष यह स्पष्टरूपसे बता देना चाहता हूँ कि धृतराष्ट्रके पुत्र यदि युद्धभूमिमें उतरे तो जीवित नहीं बचेंगे। कौरवोंके जीवनकी रक्षा तभी हो सकती है, जब वे युद्धसे दूर रहें। युद्ध छिड जानेपर तो उनमेंसे कोई भी यहाँ शेष नहीं रहेगा ॥ ९० ॥

हत्वा त्वहं धार्तराष्ट्रान्सकर्णान्राज्यं कुरूणामवजेता समग्रम्।
यद्वः कार्यं तत्कुरुध्वं यथास्वमिष्टान्दारानात्मजांश्चोपभुङ्क्त ॥ ९१ ॥
मैं कर्णसहित धृतराष्ट्रपुत्रोंका वध करके कुरुदेशका सम्पूर्ण राज्य जीत लूँगा, अतः तुम्हारा जो जो कर्तव्य शेष हो, उसे पूरा कर लो। अपने वैभवके अनुसार प्रियतमा पत्नियोंके साथ सुख भोग लो और अपने शरीरके लिये भी जो अभीष्ट भोग हों, उनका उपभोग कर लो ॥ ९१ ॥

अप्येवं नो ब्राह्मणाः सन्ति वृद्धा बहुश्रुताः शीलवन्तः कुलीनाः।
सांवत्सरा ज्योतिषि चापि युक्ता नक्षत्रयोगेषु च निश्चयज्ञाः ॥ ९२ ॥
हमारे पास कितने ही ऐसे वृद्ध ब्राह्मण विद्यमान हैं, जो अनेक शास्त्रोंके विद्वान्, सुशील उत्तम कुलमें उत्पन्न, वर्षके शुभाशुभ फलोंको जाननेवाले, ज्योतिषशास्त्रके मर्मज्ञ तथा ग्रह-नक्षत्रोंके योगफलका निश्चितरूपसे ज्ञान रखनेवाले हैं ॥ ९२ ॥

उच्चावचं दैवयुक्तं रहस्यं दिव्याः प्रश्ना मृगचक्रा मुहूर्ताः।
क्षयं महान्तं कुरुसृंजयानां निवेदयन्ते पाण्डवानां जयं च ॥ ९३ ॥
वे दैवसम्बन्धी उन्नति एवं अवनतिके फलदायक रहस्य बता सकते हैं। प्रश्नोंके अलौकिक ढंगसे उत्तर देते हैं, जिससे भविष्य घटनाओंका ज्ञान हो जाता है। वे शुभाशुभ फलोंका वर्णन करनेके लिये सर्वतोभद्र आदि चक्रोंका भी अनुसंधान करते हैं और मुहूर्तशास्त्रके तो वे पण्डित ही हैं। वे सब लोग निश्चितरूपसे यह निवेदन करते हैं कि कौरवों और सृंजय-वंशके लोगोंका बडा भारी संहार होनेवाला है और इस महायुद्धमें पाण्डवोंकी विजय होगी ॥ ९३ ॥

समादहानः पृथगस्त्रमार्गान्यथाग्निरिद्धो गहनं निदाघे ।
स्थूणाकर्णं पाशुपतं च घोरं तथा ब्रह्मास्त्रं यच्च शक्रो विवेद ॥ १०० ॥
जैसे गर्मीमें प्रज्वलित हुई आग जब वनको जलाने लगती है, तब किसी भी वृक्षको बाकी नहीं छोडती, उसी प्रकार मैं शत्रुओंके वधके लिये सुसज्जित हो अस्त्रसंचालनकी विभिन्न रीतियोंका आश्रय ले स्थूणाकर्ण, महान् पाशुपतास्त्र, ब्रह्मास्त्र तथा जिसे इन्द्रने मुझे दिया था ॥ १०० ॥

वधे धृतो वेगवतः प्रमुञ्चन्नाहं प्रजाः किंचिदिहावशिष्ये ।
शान्तिं लप्स्ये परमो ह्येष भावः स्थिरो मम ब्रूहि गावल्गणे तान् ॥१०१॥
उस इन्द्रास्त्रका भी प्रयोग करूंगा और वेगशाली बाणोंकी वर्षा करके इस युद्धमें किसीको भी जीवित नहीं छोडूंगा। ऐसा करनेपर ही मुझे शान्ति मिलेगी। संजय ! तुम उनसे स्पष्ट कह देना कि मेरा यह दृढ और उत्तम निश्चय है ॥ १०१ ॥

नित्यं पुनः सचिवैर्यैरवोचद्देवानपीन्द्रप्रमुखान्सहायान् ।
तैर्मन्यते कलहं सम्प्रयुज्य स धार्तराष्ट्रः पश्यत मोहमस्य ॥ १०२ ॥
जो मंत्रीगण कहते हैं कि इन्द्र आदि समस्त देवताओंको भी पाकर उन्हें पराजित किये विना नहीं रहेंगे, उन्हीं हम पाण्डवोंके साथ यह दुर्योधन हठपूर्वक युद्ध करना चाहता है, इसका मोह तो देखो ॥ १०२ ॥

वृद्धो भीष्मः शान्तनवः कृपश्च द्रोणः सपुत्रो विदुरश्च धीमान् ।
एते सर्वे यद्वदन्ते तदस्तु आयुष्मन्तः कुरवः सन्तु सर्वे ॥ १०३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ १६५८ ॥

फिर भी मैं चाहता हूँ कि बूढे पितामह शान्तनुनन्दन भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान् विदुर ये सब लोग मिलकर जैसा कहें, वही हो। समस्त कौरव दीर्घायु बने रहें ॥ १०३ ॥

॥ श्रीमहाभारतके उद्योगपर्वमें सैंतालीसवाँ अध्याय ॥ ४७ ॥ १६५८ ॥

: ४८ :

वैशम्पायन उवाच

समवेतेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ १ ॥
वैशम्पायन बोले– भारत ! वहाँ एकत्र हुए उन समस्त राजाओंकी मण्डलीमें शान्तनुनन्दन भीष्मने दुर्योधनसे यह बात कही ॥ १ ॥

बृहस्पतिश्चोशना च ब्रह्माणं पर्युपस्थितौ ।
मरुतश्च सहेन्द्रेण वसवश्च सहाश्विनौ ॥ २ ॥

एक समयकी बात है, बृहस्पति और शुक्राचार्य ब्रह्माकी सेवामें उपस्थित हुए । उनके साथ इन्द्रसहित मरुद्गण, अश्विनौ वसुगण ॥ २ ॥

आदित्याश्चैव साध्याश्च ये च सप्तर्षयो दिवि ।
विश्वावसुश्च गन्धर्वः शुभाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ३ ॥

आदित्य, साध्य, सप्तर्षि, विश्वावसु गन्धर्व और श्रेष्ठ अप्सराएँ भी वहाँ मौजूद थीं ॥३॥

नमस्कृत्योपजग्मुस्ते लोकवृद्धं पितामहम् ।
परिवार्य च विश्वेशं पर्यासत दिवौकसः ॥ ४ ॥

ये सब देवता संसारके बडे बूढे पितामह ब्रह्माके पास गये और उन्हें प्रणाम करनेके पश्चात् उन लोकेश्वरको सब ओरसे घेरकर बैठ गये ॥ ४ ॥

तेषां मनश्च तेजश्चाप्याददानौ दिवौकसाम् ।
पूर्वदेवौ व्यतिक्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ५ ॥

इसी समय पुरातन देवता नरनारायण ऋषि उधर आ निकले और अपनी कान्ति तथा ओजसे उन सबके चित्त और तेजका अपहरणसा करते हुए उस स्थानको लाँघकर चले गये ॥ ५ ॥

बृहस्पतिश्च पप्रच्छ ब्रह्माणं काविमाविति ।
भवन्तं नोपतिष्ठेते तौ नः शंस पितामह ॥ ६ ॥

यह देख बृहस्पतिने ब्रह्मासे पूछा— पितामह ! ये दोनों कौन हैं, जिन्होंने आपका अभिनन्दन भी नहीं किया । हमें इनका परिचय दीजिये ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच

यावेतौ पृथिवीं द्यां च भासयन्तौ तपस्विनौ ।
ज्वलन्तौ रोचमानौ च व्याप्यातीतौ महाबलौ ॥ ७ ॥

ब्रह्मा बोले— बृहस्पते ! ये जो दोनों महान् शक्तिशाली तपस्वी पृथ्वी और आकाशको प्रकाशित करते हुए हमलोगोंका अतिक्रमण करके आगे बढ गये हैं ॥ ७ ॥

नरनारायणावेतौ लोकाल्लोकं समास्थितौ ।
ऊर्जितौ स्वेन तपसा महासत्त्वपराक्रमौ ॥ ८ ॥

वे दोनों नर और नारायण हैं । ये अपने तेजसे प्रज्वलित और कान्तिसे प्रकाशित हो रहे हैं । इनका धैर्य और पराक्रम महान् है । ये अपनी तपस्यासे अत्यन्त प्रभावशाली होनेके कारण भूलोकसे ब्रह्मलोकमें आये हैं ॥ ८ ॥

एतौ हि कर्मणा लोकानन्दयामासतुर्ध्रुवौ।
असुराणामभावाय देवगन्धर्वपूजितौ ॥ ९ ॥

इन्होंने अपने सत्कर्मोंसे निश्चय ही सम्पूर्ण लोकोंका आनन्द बढाया है। असुरोंका विनाश करनेके लिये देवता और गन्धर्व सभी इनकी पूजा करते हैं ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

जगाम शक्रस्तच्छ्रुत्वा यत्र तौ तेपतुस्तपः।
सार्धं देवगणैः सर्वैर्बृहस्पतिपुरोगमैः ॥ १० ॥

वैशम्पायन बोले—जनमेजय! ब्रह्माकी यह बात सुनकर इन्द्र बृहस्पति आदि सब देवताओंके साथ उस स्थानपर गये जहाँ उन दोनों ऋषियोंने तपस्या की थी ॥ १० ॥

तदा देवासुरे घोरे भये जाते दिवौकसाम्।
अयाचत महात्मानौ नरनारायणौ वरम् ॥ ११ ॥

उन दिनों देवासुर-संग्राम उपस्थित था और उसमें देवताओंको महान् भय प्राप्त हुआ था; अतः उन्होंने उन दोनों महात्मा नरनारायणसे वरदान माँगा ॥ ११ ॥

तावब्रूतां वृणीष्वेति तदा भरतसत्तम।
अथैतावब्रवीच्छक्रः साह्यं नः क्रियतामिति ॥ १२ ॥

भरतश्रेष्ठ! देवताओंकी प्रार्थना सुनकर उस समय उन दोनों ऋषियोंने इन्द्रसे कहा— तुम्हारी जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो। तब इन्द्रने उनसे कहा—भगवन्! आप हमारी सहायता करें' ॥ १२ ॥

ततस्तौ शक्रमब्रूतां करिष्यावो यदिच्छसि।
ताभ्यां च सहितः शक्रो विजिग्ये दैत्यदानवान् ॥ १३ ॥

तब नर-नारायण ऋषियोंने इन्द्रसे कहा—देवराज! तुम जो कुछ चाहते हो, वह हम करेंगे। फिर उन दोनोंको साथ लेकर इन्द्रने समस्त दैत्यों और दानवोंपर विजय पायी ॥ १३ ॥

नर इन्द्रस्य संग्रामे हत्वा शत्रून्परंतपः।
पौलोमान्कालखञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च ॥ १४ ॥

एक समय शत्रुओंको संताप देनेवाले नरस्वरूप अर्जुनने युद्धमें इन्द्रसे शत्रुता रखनेवाले सैकडों और हजारों पौलोम एवं कालखञ्ज नामक दानवोंका संहार किया ॥ १४ ॥

एष भ्रान्ते रथे तिष्ठन्भल्लेनापहरच्छिरः।
जम्भस्य ग्रसमानस्य यज्ञमर्जुन आहवे ॥ १५ ॥

उस समय ये नरस्वरूप अर्जुन सब ओर चक्कर लगानेवाले रथपर बैठे हुए थे, तो भी इन्होंने यज्ञको अपना ग्रास बनानेवाले जम्भ नामक असुरका मस्तक अपने एक भल्लसे काट गिराया ॥ १५ ॥

एष पारे समुद्रस्य हिरण्यपुरमारुजत् ।
हत्वा षष्टि सहस्राणि निवातकवचान्रणे ॥ १६ ॥

इन्होंने ही संग्राममें साठ हजार निवातकवचोंको मार करके समुद्रके उस पार बसे हुए दैत्योंके हिरण्यपुर नामक नगरको तहसनहस कर डाला ॥ १६ ॥

एष देवान्सहेन्द्रेण जित्वा परपुरञ्जयः ।
अतर्पयन्महाबाहुरर्जुनो जातवेदसम् ।
नारायणस्तथैवात्र भूयसोऽन्याञ्जघान ह ॥ १७ ॥

शत्रुओंके नगरपर विजय पानेवाले इन महाबाहु अर्जुनने खाण्डवदाहके समय इन्द्रसहित समस्त देवताओंको जीतकर अग्निदेवको पूर्णतः तृप्त किया था, इसी प्रकार नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने भी खाण्डवदाहके समय दूसरे बहुतसे हिंसक प्राणियोंको यमलोक पहुँचाया था ॥ १७ ॥

एवमेतौ महावीर्यौ तौ पश्यत समागतौ ।
वासुदेवार्जुनौ वीरौ समवेतौ महारथौ ॥ १८ ॥

इसी प्रकार ये दोनों महान् पराक्रमी हैं । दुर्योधन ! इस समय ये दोनों एक दूसरेसे मिल गये हैं, इस बातको तुमलोग अच्छी तरह देख और समझ लो परस्पर मिले हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन महारथी और वीर हैं ॥ १८ ॥

नरनारायणौ देवौ पूर्वदेवाविति श्रुतिः ।
अजेयौ मानुषे लोके सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ १९ ॥

वे ही पुरातन देवता नर और नारायण हैं; यह बात विख्यात है । इस मनुष्यलोकमें इन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी नहीं जीत सकते ॥ १९ ॥

एष नारायणः कृष्णः फल्गुनस्तु नरः स्मृतः ।
नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधाकृतम् ॥ २० ॥

ये श्रीकृष्ण नारायण हैं और अर्जुन नर माने गये हैं । नारायण और नर दोनों एक ही सत्ता हैं । परंतु लोकहितके लिये दो शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं ॥ २० ॥

एतौ हि कर्मणा लोकानश्नुवातेऽक्षयान्ध्रुवान् ।
तत्र तत्रैव जायेते युद्धकाले पुनः पुनः ॥ २१ ॥

ये दोनों अपने सत्कर्मके प्रभावसे अक्षय एवं ध्रुवलोकोंको व्याप्त करके स्थित हैं । लोकहितके लिये जब जब जहां जहां युद्धका अवसर आता है, तब तब वहां वहां ये बार बार अवतार ग्रहण करते हैं ॥ २१ ॥

तस्मात्कर्मैव कर्तव्यमिति होवाच नारदः ।
एतद्धि सर्वमाचष्ट वृष्णिचक्रस्य वेदवित् ॥ २२ ॥

दुष्टोंका दमन करके साधु पुरुषों एवं धर्मका संरक्षण ही इनका कर्तव्य है, ये सारी बातें वेदोंके ज्ञाता नारदजीने समस्त वृष्णिवंशियोंके सम्मुख कही थीं ॥ २२ ॥

शङ्खचक्रगदाहस्तं यदा द्रक्ष्यसि केशवम् ।
पर्याददानं चास्त्राणि भीमधन्वानमर्जुनम् ॥ २३ ॥

वत्स दुर्योधन ! जब तुम हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले कृष्ण तथा भयंकर धनुष धारण करनेवाले अर्जुन ॥ २३ ॥

सनातनौ महात्मानौ कृष्णावेकरथे स्थितौ ।
दुर्योधन तदा तात स्मर्तासि वचनं मम ॥ २४ ॥

इन दोनों सनातन पुरुष महात्माओंको एक ही रथपर बैठे हुए देखोगे, तब तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी ॥ २४ ॥

नो चेदयमभावः स्यात्कुरूणां प्रत्युपस्थितः ।
अर्थाच्च तात धर्माच्च तव बुद्धिरुपप्लुता ॥ २५ ॥

यदि तुमने मेरी बात नहीं मानी तो समझ लो, कौरवोंका विनाश अवश्य ही उपस्थित हो जायेगा । तात ! तुम्हारी बुद्धि अर्थ और धर्म दोनोंसे भ्रष्ट हो गयी है ॥ २५ ॥

न चेद्ग्रहीष्यसे वाक्यं श्रोतासि सुबहून्हतान् ।
तवैव हि मतं सर्वे कुरवः पर्युपासते ॥ २६ ॥

यदि मेरा कहना नहीं मानोगे तो एक दिन सुनोगे कि हमारे बहुतसे सगेसम्बन्धी मार डाले गये; क्योंकि सब कौरव तुम्हारे ही मतका अनुसरण करते हैं ॥ २६ ॥

त्रयाणामेव च मतं तत्त्वमेकोऽनुमन्यसे ।
रामेण चैव शप्तस्य कर्णस्य भरतर्षभ ॥ २७ ॥
दुर्जातेः सूतपुत्रस्य शकुनेः सौबलस्य च ।
तथा क्षुद्रस्य पापस्य भ्रातुर्दुःशासनस्य च ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! एक तुम्हीं ऐसे हो, जो कि परशुरामजीके द्वारा अभिशप्त खोटी जातिवाले सूतपुत्र कर्ण एवं सुबलपुत्र शकुनि तथा अपने नीच एवं पापात्मा भाई दुःशासन इन तीनोंके मतका अनुमोदन एवं अनुसरण करते हो ॥ २७-२८ ॥

कर्ण उवाच

नैवमायुष्मता वाच्यं यन्मामात्थ पितामह ।
क्षत्रधर्मे स्थितो ह्यस्मि स्वधर्मादनपेयिवान् ॥ २९ ॥

कर्ण बोला– पितामह ! आपने मेरे प्रति जिन शब्दोंका प्रयोग किया है, वे अनुचित हैं । आप जैसे वृद्ध पुरुषको ऐसी बातें मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये । मैं क्षत्रियधर्ममें स्थित हूँ और अपने धर्मसे कभी भ्रष्ट नहीं हुआ हूं ॥ २९ ॥

किं चान्यन्मयि दुर्वृत्तं येन मां परिगर्हसे ।
न हि मे वृजिनं किंचिद्धार्तराष्ट्रा विदुः क्वचित् ॥ ३० ॥

मुझमें कौनसा ऐसा दुराचार है जिसके कारण आप मेरी निन्दा करते हैं । महाराज धृतराष्ट्रके पुत्रोंने कभी मेरा कोई पापाचार देखा या जाना हो ऐसी बात नहीं है ॥ ३० ॥

राज्ञो हि धृतराष्ट्रस्य सर्वं कार्यं प्रियं मया ।
तथा दुर्योधनस्यापि स हि राज्ये समाहितः ॥ ३१ ॥

मुझे जिस प्रकार राजा धृतराष्ट्रका समस्त प्रिय कार्य करना चाहिये, उसी प्रकार दुर्योधनका भी करना उचित है; क्योंकि अब वे ही राज्यपर प्रतिष्ठित हैं ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच

कर्णस्य तु वचः श्रुत्वा भीष्मः शान्तनवः पुनः ।
धृतराष्ट्रं महाराजमाभाष्येदं वचोऽब्रवीत् ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन बोले– महाराज जनमेजय ! कर्णकी बात सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्मने राजा धृतराष्ट्रसे बोलकर पुनः इस प्रकार कहा ॥ ३२ ॥

यदयं कत्थते नित्यं हन्ताहं पाण्डवानिति ।
नायं कलापि सम्पूर्णा पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ३३ ॥

राजन् ! यह कर्ण जो प्रतिदिन यह डींग हाँका करता है कि मैं पाण्डवोंको मार डालूंगा, वह व्यर्थ है । मेरी रायमें यह महात्मा पाण्डवोंकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है ॥ ३३ ॥

अनयो योऽयमागन्ता पुत्राणां ते दुरात्मनाम् ।
तदस्य कर्म जानीहि सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ॥ ३४ ॥

तुम्हारे दुरात्मा पुत्रोंपर अन्यायके फलस्वरूप जो यह महान् संकट आनेवाला है, वह सब इस दूषित बुद्धिवाले सूतपुत्र कर्णकी ही करतूत समझो ॥ ३४ ॥

एनमाश्रित्य पुत्रस्ते मन्दबुद्धिः सुयोधनः ।
अवमन्यत तान्वीरान्देवपुत्रानरिंदमान् ॥ ३५ ॥

तुम्हारे मन्दबुद्धि पुत्र दुर्योधनने इसीका सहारा लेकर शत्रुओंका दमन करनेवाले उन वीर देवपुत्र पाण्डवोंका अपमान किया है ॥ ३५ ॥

किं चाप्यनेन तत्कर्म कृतं पूर्वं सुदुष्करम् ।
तैर्यथा पाण्डवैः सर्वैरेकैकेन कृतं पुरा ॥ ३६ ॥

आजसे पहले समस्त पाण्डवोंने मिलकर अथवा उनमेंसे एक एकने अलग अलग जैसे जैसे दुष्कर पराक्रम किये हैं, वैसा कौनसा कठिन पुरुषार्थ इस सूतपुत्रने पहले कभी किया है ? ॥ ३६ ॥

दृष्ट्वा विराटनगरे भ्रातरं निहतं प्रियम् ।
धनंजयेन विक्रम्य किमनेन तदा कृतम् ॥ ३७ ॥

जब विराटनगरमें अर्जुनने अपना पराक्रम दिखाते हुए इसके सामने ही इसके प्यारे भाईको मार डाला था, तब इसने सब कुछ अपनी आँखोंसे देखकर भी अर्जुनका क्या बिगाड लिया ? ॥ ३७ ॥

सहितान्हि कुरून्सर्वानभियातो धनंजयः ।
प्रमथ्य चाच्छिनद्गावः किमयं प्रोषितस्तदा ॥ ३८ ॥

जब धनंजयने अकेले ही समस्त कौरवोंपर आक्रमण किया और सबको मूर्छित करके उन गायें छीन ली थीं उस समय यह कर्ण क्या कहीं परदेश चला गया था ? ॥ ३८ ॥

गन्धर्वैर्घोषयात्रायां ह्रियते यत्सुतस्तव ।
क्व तदा सूतपुत्रोऽभूद्य इदानीं वृषायते ॥ ३९ ॥

घोषयात्राके समय जब गन्धर्वलोग तुम्हारे पुत्रको कैद करके लिये जा रहे थे, उस समय यह सूतपुत्र कहां था ? जो इस समय सांडकी तरह डंकार रहा है ॥ ३९ ॥

ननु तत्रापि पार्थेन भीमेन च महात्मना ।
यमाभ्यामेव चागम्य गन्धर्वास्ते पराजिताः ॥ ४० ॥

वहां भी तो महात्मा भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेवने ही मिलकर उन गन्धर्वोंको परास्त किया था ॥ ४० ॥

एतान्यस्य मृषोक्तानि बहूनि भरतर्षभ ।
विकत्थनस्य भद्रं ते सदा धर्मार्थलोपिनः ॥ ४१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारा भला हो । यह कर्ण व्यर्थ ही शेखी बघारता रहता है । इसकी कही हुई बहुतसी बातें इसी तरह झूठी हैं । यह तो धर्म और अर्थ दोनोंका ही लोप करनेवाला है ॥ ४१ ॥

भीष्मस्य तु वचः श्रुत्वा भारद्वाजो महामनाः ।
धृतराष्ट्रमुवाचेदं राजमध्येऽभिपूजयन् ॥ ४२ ॥

भीष्मकी यह बात सुनकर महामना द्रोणाचार्यने समस्त राजाओंके मध्यमें उनकी प्रशंसा करते हुए राजा धृतराष्ट्रसे इस प्रकार कहा ॥ ४२ ॥

यदाह भरतश्रेष्ठो भीष्मस्तत्क्रियतां नृप ।
न काममर्थलिप्सूनां वचनं कर्तुमर्हसि ॥ ४३ ॥

नरेश्वर ! भरतकुलतिलक भीष्मने जो कहा है, वही कीजिये । जो लोग अर्थ और कामके लोभी हैं, उनकी बातें आपको नहीं माननी चाहिये ॥ ४३ ॥

पुरा युद्धात्साधु मन्ये पाण्डवैः सह संगमम् ।
यद्वाक्यमर्जुनेनोक्तं संजयेन निवेदितम् ॥ ४४ ॥

मैं तो युद्धसे पहले पाण्डवोंके साथ संधि करना ही अच्छा समझता हूँ । अर्जुनने जो बात कही है और संजयने उनका जो संदेश यहाँ सुनाया है ॥ ४४ ॥

सर्वं तदभिजानामि करिष्यति च पाण्डवः ।
न ह्यस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति धनुर्धरः ॥ ४५ ॥

मैं वह सब जानता और समझता हूं । पाण्डुनन्दन अर्जुन वैसा करके ही रहेंगे । तीनों लोकोंमें अर्जुनके समान कोई धनुर्धर नहीं है ॥ ४५ ॥

अनादृत्य तु तद्वाक्यमर्थवद्द्रोणभीष्मयोः ।
ततः स संजयं राजा पर्यपृच्छत पाण्डवम् ॥ ४६ ॥

द्रोणाचार्य और भीष्मकी बातें सार्थक और सारगर्भित थीं; तथापि उनकी अवहेलना करके राजा धृतराष्ट्र पुनः संजयसे पाण्डवोंका समाचार पूछने लगे ॥ ४६ ॥

तदैव कुरवः सर्वे निराशा जीवितेऽभवन् ।
भीष्मद्रोणौ यदा राजा न सम्यगनुभाषते ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ १७१५ ॥

जब राजा धृतराष्ट्रने भीष्म और द्रोणाचार्यसे भी अच्छी तरह वार्तालाप नहीं किया, तभी समस्त कौरव अपने जीवनसे निराश हो गये ॥ ४७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें अडतालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ १७१५ ॥

: ४९ :

धृतराष्ट्र उवाच

किमसौ पाण्डवो राजा धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत।
श्रुत्वेमा बहुलाः सेनाः प्रत्यर्थेन समागताः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– संजय! हमारी प्रसन्नता और सहायताके लिये यहां हस्तिनापुरमें बहुतसी सेना एकत्र हो गयी है, यह समाचार सुनकर पाण्डवराज धर्मपुत्र युधिष्ठिरने क्या कहा? ॥ १ ॥

किमिच्छत्यभिसंरम्भाद्योत्स्यमानो युधिष्ठिरः।
कस्यस्विद्भ्रातृपुत्राणां चिन्तासु मुखमीक्षते ॥ २ ॥

सूत! भविष्यमें होनेवाले युद्धके लिये उद्यत होकर राजा युधिष्ठिर इस कर्मसे क्या चाहते हैं? उनके भाइयों और पुत्रोंमेंसे कौन कौनसे लोग चिन्तित होकर उनका मुंह जोहते रहते हैं? ॥ २ ॥

के स्विदेनं वारयन्ति शाम्य युध्येति वा पुनः।
निकृत्या कोपितं मन्दैर्धर्मज्ञं धर्मचारिणम् ॥ ३ ॥

धर्मके ज्ञाता और धर्मके आचरणमें सदा तत्पर रहनेवाले युधिष्ठिरको मेरे मन्दबुद्धि पुत्रोंने अपने कपटपूर्ण बर्तावसे कुपित कर दिया है। वहां कौन कौन ऐसे हैं, जो उन्हें बारं-बार शान्त रहनेकी सलाह देते हैं और कौन कौन ऐसे हैं जो उन्हें युद्ध करनेके लिए प्रेरित करते हैं? ॥ ३ ॥

संजय उवाच

राज्ञो मुखमुदीक्षन्ते पाञ्चालाः पाण्डवैः सह।
युधिष्ठिरस्य भद्रं ते स सर्वाननुशास्ति च ॥ ४ ॥

संजय बोले– महाराज! आपका कल्याण हो। पाञ्चाल और पाण्डव सभी राजा युधिष्ठिरके मुखकी ओर देखते रहते हैं और वे उन सबको विभिन्न कार्योंके लिये आज्ञा देते हैं ॥४॥

पृथग्भूताः पाण्डवानां पाञ्चालानां रथव्रजाः।
आयान्तमभिनन्दन्ति कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५ ॥

सामनेसे आते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरका पाण्डवों तथा पाञ्चालोंके रथसमूह पृथक् पृथक् श्रेणियोंमें खडे होकर अभिनन्दन करते हैं ॥ ५ ॥

तमः सूर्यमिवोद्यन्तं कौन्तेयं दीप्ततेजसम् ।
पाञ्चालाः प्रतिनन्दन्ति तेजोराशिमिवोद्यतम् ॥ ६ ॥

जैसे रात्रि उदयकालमें उद्दीप्त तेजस्वी सूर्यदेवका अभिनन्दन करती है, उसी प्रकार, मानो तेजके पुञ्जका उदय होता हो इस तरह दिखायी देनेवाले कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरका समस्त पाञ्चालगण अभिनन्दन करते हैं ॥ ६ ॥

आ गोपालाविपालेभ्यो नन्दमानं युधिष्ठिरम् ।
पाञ्चालाः केकया मत्स्याः प्रतिनन्दन्ति पाण्डवम् ॥ ७ ॥

ग्वालिये और गडरियोंसे लेकर पाञ्चाल, केकय और मत्स्यदेशोंके राजवंशतक सभी लोग पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरका सम्मान करते हैं ॥ ७ ॥

ब्राह्मण्यो राजपुत्र्यश्च विशां दुहितरश्च याः ।
क्रीडन्त्योऽभिसमायान्ति पार्थं संनद्धमीक्षितुम् ॥ ८ ॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी कन्याएँ भी खेलती खेलती युद्धके लिये सुसज्जित युधिष्ठिरको देखनेके लिये उनके पास आ जाती हैं ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संजयाचक्ष्व केनास्मान्पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।
धृष्टद्युम्नेन सेनान्धा सोमकाः किंबला इव ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र बोले– संजय ! बताओ, पाण्डवलोग धृष्टद्युम्नकी सेना तथा अन्यान्य सोमकवंशियोंकी विशाल वाहिनीके सिवा और किस किसकी सहायता पाकर हमलोगोंके साथ युद्ध करनेको उद्यत हुए हैं ? ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

गावल्गणिस्तु तत्पृष्टः सभायां कुरुसंसदि ।
निःश्वस्य सुभृशं दीर्घं मुहुः संचिन्तयन्निव ।
तत्रानिमित्ततो दैवात्सूतं कश्मलमाविशत् ॥ १० ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! कौरवोंकी सभामें राजा धृतराष्ट्रके इस प्रकार पूछनेपर संजय बारंबार लम्बी साँस खींचते हुए दीर्घकालतक गहरी चिन्तामें निमग्नसे हो गये और सहसा बिना किसी विशेष कारणके ही वे मूर्छित होकर गिर पडे ॥ १० ॥

×

तदाचचक्षे पुरुषः सभायां राजसंसदि ।
संजयोऽयं महाराज मूर्छितः पतितो भुवि ।
वाचं न सृजते कांचिद्धीनप्रज्ञोऽल्पचेतनः ॥ ११ ॥

तब चोबदारने उस राजसभामें धृतराष्ट्रसे कहा— महाराज ! ये संजय मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पडे हैं। उनकी बुद्धि और चेतना लुप्तसी हो रही है, अतः अभी कुछ बोल नहीं सकते ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अपश्यत्संजयो नूनं कुन्तीपुत्रान्महारथान् ।
तैरस्य पुरुषव्याघ्रैर्भृशमुद्वेजितं मनः ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्र बोले— निश्चय ही संजयने महारथी कुन्तीपुत्रोंको देखा है। जान पडता है, उन पुरुषसिंह पाण्डवोंने इसके मनको अत्यन्त उद्विग्न कर दिया है ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

संजयश्चेतनां लब्ध्वा प्रत्याश्वस्येदमब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रं महाराज सभायां कुरुसंसदि ॥ १३ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! इतनेमें ही संजयको चेत हो आया और वे आश्वस्त होकर कौरवसभामें धृतराष्ट्रसे बोले ॥ १३ ॥

दृष्टवानस्मि राजेन्द्र कुन्तीपुत्रान्महारथान् ।
मत्स्यराजगृहावासादवरोधेन कर्शितान् ।
शृणु यैर्हि महाराज पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ १४ ॥

राजेन्द्र ! मैंने महारथी कुन्तीपुत्रोंका दर्शन किया है। वे अज्ञातवासके समय मत्स्यनरेश विराटके घरमें छिपकर रहनेके कारण अत्यन्त दुबले हो गये हैं। महाराज ! पाण्डवोंने जिन लोगोंकी सहायता पाकर युद्धके लिये तैयारी की है, उनका परिचय देता हूँ, सुनिये ॥ १४ ॥

यो नैव रोषान्न भयान्न कामान्नार्थकारणात् ।
न हेतुवादाद्धर्मात्मा सत्यं जह्यात्कथंचन ॥ १५ ॥

महाराज ! जो धर्मात्मा न रोषसे, न भयसे, न कामसे, न अर्थके लिये और न बहाना बनाकर ही कभी सत्यका परित्याग कर सकते हैं, ॥ १५ ॥

यः प्रमाणं महाराज धर्मे धर्मभृतां वरः ।
अजातशत्रुणा तेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ १६ ॥

जो धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं और धर्मके विषयमें प्रमाण माने जाते हैं, उन अजातशत्रुके प्रभावसे पाण्डवोंने युद्धकी तैयारी की है ॥ १६ ॥

यस्य बाहुबले तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
यो वै सर्वान्महीपालान्वशे चक्रे धनुर्धरः ।
तेन वो भीमसेनेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ १७ ॥

बाहुबलमें जिनकी समानता करनेवाला इस भूमण्डलमें दूसरा कोई नहीं है, जिन्होंने केवल धनुष धारण करके युद्धमें समस्त भूपालोंको जीतकर अपने वशमें कर लिया था, उन भीमसेनके बलसे पाण्डवोंने आपलोगोंपर आक्रमण करनेका उद्योग आरम्भ किया है ॥ १७ ॥

निःसृतानां जतुगृहात्हिडिम्बात्पुरुषादकात् ।
य एषामभवद्द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ १८ ॥

जिनके कारण लाक्षाभवनसे निकलकर इस पृथ्वीपर जीवित बच गये, जिन्होंने मनुष्यभक्षी राक्षस हिडिम्बसे अपने भाईयोंकी रक्षा की, उस संकटके समय जो कुन्तीकुमार भीम इन पाण्डवोंके लिये द्वीपके समान आश्रयदाता हुए ॥ १८ ॥

याज्ञसेनीमथो यत्र सिन्धुराजोऽपकृष्टवान् ।
तत्रैषामभवद्द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ १९ ॥

जब सिन्धुराज जयद्रथने द्रौपदीका अपहरण किया थां, उस समय भी जिन कुन्तीकुमार वृकोदरने उन सबको द्वीपकी भांति आश्रय दिया था ॥ १९ ॥

यश्च तान्संगतान्सर्वान्पाण्डवान्वारणावते ।
दह्यतो मोचयामास तेन वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ २० ॥

तथा जिन्होंने वारणावत नगरमें एकत्र हुए समस्त पाण्डवोंको लाक्षागृहकी आगमें जलनेसे बचा लिया था, उन्हीं भीमसेनके बलसे पाण्डवोंने आपलोगोंके साथ युद्धकी तैयारी की है ॥ २० ॥

कृष्णायाश्चरता प्रीतिं येन क्रोधवशा हताः ।
प्रविश्य विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ॥ २१ ॥

जिन्होंने द्रौपदीपर अपना प्रेम जताते हुए अत्यन्त दुर्गम एवं भयंकर गन्धमादन पर्वतकी भूमिमें प्रवेश करके क्रोधवश नामवाले राक्षसोंको मार डाला ॥ २१ ॥

यस्य नागायुतं वीर्यं भुजयोः सारमर्पितम् ।
तेन वो भीमसेनेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ २२ ॥

जिनकी दोनों भुजाओंमें दस हजार हाथियोंके समान बल है, उन्हीं भीमसेनके बलसे पाण्डवोंने आपलोगोंपर आक्रमणका उद्योग किया है ॥ २२ ॥

कृष्णद्वितीयो विक्रम्य तुष्ट्यर्थं जातवेदसः ।
अजयद्यः पुरा वीरो युध्यमानं पुरंदरम् ॥ २३ ॥
जिन वीरशिरोमणिने पहले केवल भगवान् श्रीकृष्णके साथ जाकर अग्निदेवकी तृप्तिके लिये पराक्रम करके अपने साथ युद्ध करनेवाले देवराज इन्द्रको भी पराजित कर दिया ॥ २३ ॥

यः स साक्षान्महादेवं गिरिशं शूलपाणिनम् ।
तोषयामास युद्धेन देवदेवमुमापतिम् ॥ २४ ॥
जिन्होंने युद्धके द्वारा पर्वतपर शयन करनेवाले तथा हाथोंमें त्रिशूल लिये रहनेवाले साक्षात् देवाधिदेव महादेव उमापतिको भी संतुष्ट किया था ॥ २४ ॥

यश्च सर्वान्वशे चक्रे लोकपालान्धनुर्धरः ।
तेन वो विजयेनाजौ पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ २५ ॥
तथा जिन धनुर्धर वीरने समस्त लोकपालोंको भी हराकर अपने वशमें कर लिया, उन्हीं अर्जुनके बलपर पाण्डवलोग युद्धमें आपलोगोंसे भिडनेको तैयार हैं ॥ २५ ॥

यः प्रतीचीं दिशं चक्रे वशे म्लेच्छगणायुताम् ।
स तत्र नकुलो योद्धा चित्रयोधी व्यवस्थितः ॥ २६ ॥
कुरुनन्दन ! जिन्होंने सहस्रों म्लेच्छोंसे भरी हुई पश्चिम दिशाको जीतकर अपने अधीन कर लिया था, वे विचित्र रीतिसे युद्ध करनेमें कुशल योद्धा नकुल उधरसे युद्धके लिये तैयार खडे हैं ॥ २६ ॥

तेन वो दर्शनीयेन वीरेणातिधनुर्भृता ।
माद्रीपुत्रेण कौरव्य पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ २७ ॥
महान् धनुर्धर और अत्यन्त दर्शनीय वीर माद्रीपुत्र नकुलके बलसे पाण्डवोंने आपलोगोंपर आक्रमणकी तैयारी की है ॥ २७ ॥

यः काशीनङ्गमगधान्कलिङ्गांश्च युधाजयत् ।
तेन वः सहदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ २८ ॥
जिन्होंने युद्धमें काशी, अङ्ग, मगध तथा कलिंगदेशके राजाओंको पराजित किया है, उन वीरवर सहदेवके बलसे पाण्डव आपलोगोंसे भिडनेके लिये तैयार हुए हैं ॥ २८ ॥

यस्य वीर्येण सदृशाश्चत्वारो भुवि मानवाः ।
अश्वत्थामा धृष्टकेतुः प्रद्युम्नो रुक्मिरेव च ॥ २९ ॥
राजन् ! इस भूमण्डलमें अश्वत्थामा, धृष्टकेतु, रुक्मी, तथा प्रद्युम्न ये चार पुरुष ही बल और पराक्रममें जिनकी समानता कर सकते हैं ॥ २९ ॥

तेन वः सहदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ।
यवीयसा नृवीरेण माद्रीनन्दिकरेण च ॥ ३० ॥

जो माद्रीको आनन्द प्रदान करनेवाले तथा पाण्डवोंमें सबसे छोटे हैं, उन नरश्रेष्ठ वीर सहदेवके बलसे पाण्डव आपसे युद्ध करनेके लिये तैयार हैं ॥ ३० ॥

तपश्चचार या घोरं काशिकन्या पुरा सती ।
भीष्मस्य वधमिच्छन्ती प्रेत्यापि भरतर्षभ ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! पूर्वकालमें काशिराजकी जिस सती साध्वी कन्या अम्बाने भीष्मके वधकी इच्छासे घोर तपस्या की थी, वही मृत्युके पश्चात् ॥ ३१ ॥

पाञ्चालस्य सुता जज्ञे दैवाच्च स पुनः पुमान् ।
स्त्रीपुंसोः पुरुषव्याघ्र यः स वेद गुणागुणान् ॥ ३२ ॥

पाञ्चालराज द्रुपदकी पुत्री होकर उत्पन्न हुई, परंतु दैववश वह फिर पुरुष हो गयी । वह वीर पाञ्चालकुमार स्त्री और पुरुष दोनों शरीरोंके गुण और अवगुणको जानता है ॥ ३२ ॥

यः कलिङ्गान्समापेदे पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः ।
शिखण्डिना वः कुरवः कृतास्त्रेणाभ्ययुञ्जत ॥ ३३ ॥

कौरवो ! वह द्रुपदकुमार युद्धमें उन्मत्त होकर लडनेवाला है । उसीने कलिङ्ग देशीय क्षत्रियोंको पराजित किया था । उस अस्त्रवेत्ता वीरका नाम शिखण्डी है, जिसके बलपर पाण्डवोंने आपलोगोंसे युद्धकी तैयारी की है ॥ ३३ ॥

यां यक्षः पुरुषं चक्रे भीष्मस्य निधने किल ।
महेष्वासेन रौद्रेण पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ३४ ॥

जिसे स्थूणाकर्ण यक्षने पुरुष बना दिया था, भीष्मके वधकी इच्छा रखनेवाले उस भयंकर एवं महाधनुर्धर शिखण्डीके बलपर पाण्डव आपसे युद्ध करनेको तैयार हैं ॥ ३४ ॥

महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः ।
सुसृष्टकवचाः शूरास्तैश्च वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ ३५ ॥

केकयदेशके पांच राजकुमार जो परस्पर भाई हैं, सदा कवच बांधे युद्धके लिये उद्यत रहते हैं । वे महान् धनुर्धर शूरवीर हैं । उनके बलपर पाण्डवोंने आपलोगोंसे युद्धकी तैयारी की है ॥ ३५ ॥

यो दीर्घबाहुः क्षिप्रास्त्रो धृतिमान्सत्यविक्रमः ।
तेन वो वृष्णिवीरेण युयुधानेन संगरः ॥ ३६ ॥

जिनकी बडी बडी भुजाएँ हैं, जो बडी शीघ्रतासे अस्त्रसंचालन करते हैं तथा जो धीर एवं सत्यपराक्रमी हैं, उन वृष्णिवीर सात्यकिके साथ आपलोगोंका संग्राम होनेवाला है ॥३६॥

य आसीच्छरणं काले पाण्डवानां महात्मनाम् ।
रणे तेन विराटेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ३७ ॥

जो अज्ञातवासके समय महात्मा पाण्डवोंके आश्रयदाता थे, उन राजा विराटके बल पर पाण्डव युद्धके लिए तैय्यार हैं ॥ ३७ ॥

यः स काशिपती राजा वाराणस्यां महारथः ।
स तेषामभवद्योद्धा तेन वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ ३८ ॥

काशिदेशके अधिपति महारथी नरेश जो वाराणसीपुरीमें रहते हैं, पाण्डवोंकी ओरसे युद्ध करनेको तैयार हैं । उनको साथ लेकर पाण्डव आपलोगोंपर आक्रमण करनेके लिये तैयार हैं ॥ ३८ ॥

शिशुभिर्दुर्जयैः संख्ये द्रौपदेयैर्महात्मभिः ।
आशीविषसमस्पर्शैः पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ३९ ॥

द्रौपदीके महामना पुत्र देखनेमें बालक होनेपर भी समरभूमिमें दुर्जय हैं । उन्हें छेडना विषधर सर्पोंको छू लेनेके समान है । उनके बलपर भी पाण्डव आपलोगोंसे भिडनेकी तैयारी कर रहे हैं ॥ ३९ ॥

यः कृष्णसदृशो वीर्ये युधिष्ठिरसमो दमे ।
तेनाभिमन्युना संख्ये पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४० ॥

जो पराक्रममें भगवान् श्रीकृष्णके समान और इन्द्रियसंयममें युधिष्ठिरके तुल्य हैं, उन अभिमन्युको साथ लेकर पाण्डवोंने आपलोगोंसे युद्धकी तैयारी की है ॥ ४० ॥

यश्चैवाप्रतिमो वीर्ये धृष्टकेतुर्महायशाः ।
दुःसहः समरे क्रुद्धः शैशुपालिर्महारथः ।
तेन वश्चेदिराजेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४१ ॥

जिसके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं है, शिशुपालका वह महारथी पुत्र महायशस्वी धृष्टकेतु समरभूमिमें कुपित होनेपर शत्रुओंके लिये दुःसह हो उठता है । उस चेदिराजके साथ पाण्डवलोग आपपर आक्रमण करनेकी तैयारी कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

यः संश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः ।
तेन वो वासुदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४२ ॥

जैसे इन्द्र देवताओंके आश्रयदाता हैं, उसी प्रकार जो पाण्डवोंको शरण देनेवाले हैं, उन भगवान् वासुदेवके साथ पाण्डवोंने आपपर आक्रमण करनेकी तैयारी की है ॥ ४२ ॥

तथा चेदिपतेर्भ्राता शरभो भरतर्षभ ।
करकर्षेण सहितस्ताभ्यां वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ ४३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! चेदिराजके भाई शरभ अपने अनुज करकर्षके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये हैं । उन दोनोंको साथ लेकर उन्होंने आपसे युद्ध करनेका उद्योग किया है ॥४३॥

जारासंधिः सहदेवो जयत्सेनश्च तावुभौ ।
द्रुपदश्च महातेजा बलेन महता वृतः ।
त्यक्तात्मा पाण्डवार्थाय योत्स्यमानो व्यवस्थितः ॥ ४४ ॥

जरासंधपुत्र सहदेव और जयत्सेन दोनों तथा महातेजस्वी राजा द्रुपद विशाल सेनाके साथ आये हैं और पाण्डवोंके लिये अपने शरीर और प्राणोंकी परवाह न करके युद्ध करनेके लिये उद्यत हैं ॥ ४४ ॥

एते चान्ये च बहवः प्राच्योदीच्या महीक्षितः ।
शतशो यानपाश्रित्य धर्मराजो व्यवस्थितः ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ १७६० ॥

ये तथा और भी बहुतसे पूर्व तथा उत्तर दिशाओंमें रहनेवाले नरेश सैकडोंकी संख्यामें आकर वहां डटे हुए हैं, जिनका आश्रय लेकर महाराज युधिष्ठिर युद्धके लिये तैयार हैं ॥४५॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें उनचासवां अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ १७६० ॥

: ५० :

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वे एते महोत्साहा ये त्वया परिकीर्तिताः ।
एकतस्त्वेव ते सर्वे समेता भीम एकतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– संजय ! तुमने जिन लोगोंके नाम बताये हैं, ये सभी बडे उत्साही वीर हैं । इनमें भी जितने लोग वहां एकत्र हुए हैं, वे सब एक ओर और भीमसेन एक ओर है ॥१॥

भीमसेनाद्धि मे भूयो भयं संजायते महत् ।
क्रुद्धादमर्षणात्तात व्याघ्रादिव महारुरोः ॥ २ ॥

तात ! मुझे क्रोधमें भरे हुए अमर्षशील भीमसेनसे बडा डर लगता है; ठीक उसी तरह, जैसे महान् मृगको किसी व्याघ्रसे सदा भय बना रहता है ॥ २ ॥

जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् ।
भीतो वृकोदरात्तात सिंहात्पशुरिवाबलः ॥ ३ ॥

वत्स ! सिंहसे डरे हुए दूसरे पशुकी भाँति मैं भीमसेनसे भयभीत हो रातभर गर्म गर्म लंबी साँसें खींचता हुआ जागता रहता हूं ॥ ३ ॥

न हि तस्य महाबाहोः शक्रप्रतिमतेजसः ।
सैन्येऽस्मिन्प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद्युधि ॥ ४ ॥

महाबाहु भीम इन्द्रके समान तेजस्वी है । मैं अपनी सेनामें किसीको भी ऐसा नहीं देखता, जो भीमका सामना कर सके युद्धमें उसके वेगको सह सके ॥ ४ ॥

अमर्षणश्च कौन्तेयो दृढवैरश्च पाण्डवः ।
अनर्महासी सोन्मादस्तिर्यक्प्रेक्षी महास्वनः ॥ ५ ॥

कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र भीम असहनशील तथा वैरको दृढतापूर्वक पकडे रखनेवाला है । उसकी की हुई हंसी भी हंसीके लिये नहीं होती, वह उसे सत्य कर दिखाता है । उसका स्वभाव उद्धत है । वह टेढी निगाहसे देखता और बडी जोरसे गर्जना करता है ॥ ५ ॥

महावेगो महोत्साहो महाबाहुर्महाबलः ।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥ ६ ॥

वह महान् वेगशाली, अत्यन्त उत्साही, विशालबाहु और महाबली है । वह युद्ध करके मेरे मन्दबुद्धि पुत्रोंको अवश्य मार डालेगा ॥ ६ ॥

ऊरुग्राहगृहीतानां गदां बिभ्रद्वृकोदरः ।
कुरूणामृषभो युद्धे दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ७ ॥

हाथमें गदा लिये कुरुश्रेष्ठ वृकोदर भीम दण्डपाणि यमराजकी भांति युद्धमें बडे दुराग्रही मेरे पुत्रोंका निश्चय ही वध कर डालेगा ॥ ७ ॥

शैक्यायसमयीं घोरां गदां काञ्चनभूषिताम् ।
मनसाहं प्रपश्यामि ब्रह्मदण्डमिवोद्यताम् ॥ ८ ॥

भीमसेनकी स्वर्णभूषित तलवारके समान तीक्ष्ण ब्रह्मदण्डके समान उठी हुई भयंकर गदाको मैं अपनी मन रूपी आंखोंसे देख रहा हूं ॥ ८ ॥

यथा रुरूणां यूथेषु सिंहो जातबलश्चरेत् ।
मामकेषु तथा भीमो बलेषु विचरिष्यति ॥ ९ ॥

जैसे बलवान् सिंह मृगोंके यूथोंमें निःशङ्क विचरण करता है, उसी प्रकार भीमसेन मेरी विशाल वाहिनियोंमें बेखटके विचरेगा ॥ ९ ॥

सर्वेषां मम पुत्राणां स एकः क्रूरविक्रमः ।
बह्वाशी विप्रतीपश्च बाल्येऽपि रभसः सदा ॥ १० ॥

बाल्यकालमें भी मेरे सब पुत्रोंमें एकमात्र वह भीमसेन ही क्रूर पराक्रमी, बहुत अधिक खानेवाला, सबके प्रतिकूल चलनेवाला तथा सदा अत्यन्त वेगशाली था ॥ १० ॥

उद्वेपते मे हृदयं यदा दुर्योधनादयः ।
बाल्येऽपि तेन युध्यन्तो वारणेनेव मर्दिताः ॥ ११ ॥

उसकी याद आते ही मेरा हृदय कांपने लगता है। मेरे दुर्योधन आदि पुत्र बचपनमें भी जब उसके साथ खेलकूदमें लडते थे, तब वह गजराजकी भांति इन सबको मसल देता था ॥ ११ ॥

तस्य वीर्येण संक्लिष्टा नित्यमेव सुता मम ।
स एव हेतुर्भेदस्य भीमो भीमपराक्रमः ॥ १२ ॥

मेरे पुत्र उसके बल पराक्रमसे सदा ही कष्टमें पडे रहते थे। भयंकर पराक्रमी भीमसेन ही इस फूटकी जड है ॥ १२ ॥

ग्रसमानमनीकानि नरवारणवाजिनाम् ।
पश्यामीवाग्रतो भीमं क्रोधमूर्छितमाहवे ॥ १३ ॥

युद्धमें क्रोधसे मूर्छित हो मनुष्य, हाथी और घोडोंकी समस्त सेनाओंको कालका ग्रास बनाते जा रहे भीमको मैं अपने आगे देख रहा हूँ ॥ १३ ॥

अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे ।
संजयाचक्ष्व मे शूरं भीमसेनममर्षणम् ॥ १४ ॥

वह अस्त्रविद्यामें द्रोणाचार्य तथा अर्जुनके समान है, वेगमें वायुकी समानता करता है संजय ! मुझे अमर्षमें भरे हुए शूरवीर भीमसेनका समाचार सुनाओ ॥ १४ ॥

अतिलाभं तु मन्येऽहं यत्तेन रिपुघातिना ।
तदैव न हताः सर्वे मम पुत्रा मनस्विना ॥ १५ ॥

मैं तो यही सबसे बडा लाभ मानता हूँ कि उस शत्रुघाती मनस्वी वीरने, जब द्यूतक्रीडा हो रही थी उसी समय, मेरे सब पुत्रोंको नहीं मार डाला ॥ १५ ॥

येन भीमबला यक्षा राक्षसाश्च समाहताः ।
कथं तस्य रणे वेगं मानुषः प्रसहिष्यति ॥ १६ ॥

जिसने भयंकर बलशाली यक्षों तथा राक्षसोंका वध किया है, युद्धमें उसका वेग कोई मनुष्य कैसे सह सकेगा ? ॥ १६ ॥

न स जातु वशे तस्थौ मम बालोऽपि संजय।
किं पुनर्मम दुष्पुत्रैः क्लिष्टः सम्प्रति पाण्डवः ॥ १७ ॥

संजय! पाण्डुकुमार भीमसेन बचपनमें भी कभी मेरे वशमें नहीं रहा; फिर जब मेरे दुष्ट पुत्रोंने उसे बार बार कष्ट दिया है, तब वह इस समय मेरे वशमें कैसे हो सकता है? ॥१७॥

निष्ठुरः स च नैष्ठुर्याद्‌भज्येदपि न संनमेत्।
तिर्यक्प्रेक्षी संहतभ्रूः कथं शाम्येद्‌वृकोदरः ॥ १८॥

वह निष्ठुर है, अतः निष्ठुरतासे वह टूट भले ही जाय, पर झुक नहीं सकेगा। सदा टेढ़ी निगाहसे ही देखता है। उसकी भौंहें क्रोधके कारण परस्पर गुँथी रहती हैं। ऐसा भीमसेन कैसे शान्त हो सकेगा? ॥ १८ ॥

बृहदंसोऽप्रतिबलो गौरस्ताल इवोद्गतः।
प्रमाणतो भीमसेनः प्रादेशेनाधिकोऽर्जुनात् ॥ १९ ॥

गोरे रंगका वह शूरवीर भीमसेन ताड़के समान ऊँचा है। ऊँचाईमें वह अर्जुनसे एक बित्ता अधिक है, बलमें उसकी समता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ १९ ॥

जवेन वाजिनोऽत्येति बलेनात्येति कुञ्जरान्।
अव्यक्तजल्पी मध्वक्षो मध्यमः पाण्डवो बली ॥ २० ॥

वह स्पष्ट नहीं बोलता। उसकी आँखें सदा मधुके समान पिङ्गल वर्णकी दिखायी देती हैं। वह महाबली मध्यम पाण्डव अपने वेगसे घोड़ोंको भी लाँघ सकता है और बलसे हाथियोंको भी पराजित कर सकता है ॥ २० ॥

इति बाल्ये श्रुतः पूर्वं मया व्यासमुखात्पुरा।
रूपतो वीर्यतश्चैव याथातथ्येन पाण्डवः ॥ २१ ॥

मैंने बाल्यकालमें ही व्यासजीके मुखसे पहले इस पाण्डुपुत्रके अद्‌भुत रूप और पराक्रमका यथार्थ वर्णन सुना था ॥ २१ ॥

आयसेन स दण्डेन रथान्नागान्हयान्नरान्।
हनिष्यति रणे क्रुद्धो भीमः प्रहरतां वरः ॥ २२ ॥

शत्रुओंके ऊपर प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीमसेन समरभूमिमें कुपित होकर लौहदंडसे मेरे रथों, हाथियों, पैदल मनुष्यों और घोड़ोंका भी संहार कर डालेगा ॥ २२ ॥

अमर्षी नित्यसंरब्धो रौद्रः क्रूरपराक्रमः।
मया तात प्रतीपानि कुर्वन्पूर्वं विमानितः ॥ २३ ॥

तात संजय! सदा क्रोधमें भरा रहनेवाला अमर्षशील भयंकर पराक्रम करनेवाला यह भयंकर भीमसेनका मेरे प्रतिकूल आचरण करते समय मैंने पहले कई बार अपमान किया है ॥ २३ ॥

निष्कीर्णामायसीं स्थूलां सुपर्वां काञ्चनीं गदाम् ।
शतघ्नीं शतनिर्ह्रादां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः ॥ २४ ॥

सीधी, मोटी, अनेक भालोंवाली और सुवर्णसे विभूषित वह शत-शत वज्रपातके समान बड़े जोरसे आवाज करनेवाली और एक ही चोटमें सैकड़ोंको मारनेवाली उस लोहेकी गदाका आघात मेरे बेटे कैसे सह सकेंगे ? ॥ २४ ॥

अपारमप्लवागाधं समुद्रं शरवेगिनम् ।
भीमसेनमयं दुर्गं तात मन्दास्तितीर्षवः ॥ २५ ॥

तात ! भीमसेन एक दुर्गम अपार समुद्र है, इसे पार करनेके लिये न तो कोई नौका है और न इसकी कहीं थाह ही है; बाण ही इसका वेग है, मेरे मूर्ख पुत्र इस भीमसेनमय दुर्गम समुद्रको पार करना चाहते हैं ॥ २५ ॥

क्रोशतो मे न शृण्वन्ति बालाः पण्डितमानिनः ।
विषमं नावबुध्यन्ते प्रपातं मधुदर्शिनः ॥ २६ ॥

मैं चीखता-चिल्लाता रह जाता हूँ, परंतु अपनेको पण्डित समझनेवाले ये मूर्ख पुत्र मेरी बात नहीं सुनते हैं । ये केवल वृक्षकी ऊँची शाखामें लगे हुए शहदको देखते हैं, वहाँसे गिरनेका जो भयानक खटका है, उसकी ओर इनका ध्यान नहीं है ॥ २६ ॥

संयुगं ये करिष्यन्ति नररूपेण वायुना ।
नियतं चोदिता धात्रा सिंहेनेव महामृगाः ॥ २७ ॥

जैसे महान् मृग सिंहसे भिड़ जायँ, उसी प्रकार जो लोग उस मनुष्यरूपी वायुके साथ लड़नेके लिये युद्धभूमिमें उतरेंगे, उन्हें विधाताने ही मृत्युके लिये प्रेरित करके भेजा है, ऐसा मानना चाहिये ॥ २७ ॥

शैक्यां तात चतुष्किष्कुं षडस्रिममितौजसम् ।
प्रहितां दुःखसंस्पर्शां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः ॥ २८ ॥

तात संजय ! भीमसेनकी गदा छींकेपर रखने योग्य, चार हाथ लंबी और छः कोणोंसे विभूषित है । उस अत्यन्त तेजस्विनी गदाका स्पर्श भी दुःखदायक है । जब भीम उसे मेरे पुत्रोंपर चलायेगा, तब वे उसका आघात कैसे सह सकेंगे ? ॥ २८ ॥

गदां भ्रामयतस्तस्य भिन्दतो हस्तिमस्तकान् ।
सृक्किणी लेलिहानस्य बाष्पमुत्सृजतो मुहुः ॥ २९ ॥

भीमसेन जब क्रोधजनित आँसू बहाता और बार बार अपने ओष्ठप्रान्तको चाटता हुआ गदा घुमा-घुमाकर हाथियोंके मस्तक विदीर्ण करने लगेगा, ॥ २९ ॥

उद्दिश्य पातान्पततः कुर्वतो भैरवान्रवान् ।
प्रतीपान्पततो मत्तान्कुञ्जरान्प्रतिगर्जतः ॥ ३० ॥

सामने भयंकर गर्जना करनेवाले गजराजोंको लक्ष्य करके उनकी ओर दौडेगा, प्रतिकूल दिशाकी ओर भागनेवाले मदोन्मत्त हाथियोंकी गर्जनाके उत्तरमें स्वयं भी सिंहनाद करेगा ॥ ३० ॥

विगाह्य रथमार्गेषु वराजुद्दिश्य निघ्नतः ।
अग्नेः प्रज्वलितस्येव अपि मुच्येत मे प्रजाः ॥ ३१ ॥

और मेरे रथियोंकी सेनाओंमें घुसकर श्रेष्ठ वीरोंको चुन चुनकर मारने लगेगा, उस समय अग्निके समान प्रज्वलित होनेवाले भीमके हाथसे मेरे पुत्र कैसे जीवित बचेंगे ? ॥ ३१ ॥

वीथीं कुर्वन्महाबाहुर्द्रावयन्मम वाहिनीम् ।
नृत्यन्निव गदापाणिर्युगान्तं दर्शयिष्यति ॥ ३२ ॥

महाबाहु भीम मेरी सेनामें घुसकर अपने रथके लिये रास्ता बनाता, मेरी विशाल वाहिनी-को खदेडता और हाथमें गदा लिये नृत्यसा करता हुआ जब आगे बढेगा, तब प्रलय-कालका दृश्य उपस्थित कर देगा ॥ ३२ ॥

प्रभिन्न इव मातङ्गः प्रभञ्जन्पुष्पितान्द्रुमान् ।
प्रवेक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मे वृकोदरः ॥ ३३ ॥

जैसे मदकी धारा बहानेवाला मतवाला हाथी फूले हुए वृक्षोंको तोडता हुआ आगे बढता है, उसी प्रकार भीमसेन समरभूमिमें मेरे पुत्रोंकी सेनाके भीतर प्रवेश करेगा ॥ ३३ ॥

कुर्वन्रथान्विपुरुषान्विध्वजान्भग्नपुष्करान् ।
आरुजन्पुरुषव्याघ्रो रथिनः सादिनस्तथा ॥ ३४ ॥

संजय ! वह पुरुषसिंह भीम रथोंको रथी और ध्वजाओंसे शून्य करता हुआ, अवयवोंको तोडता हुआ एवं रथियों और घुडसवारोंके अङ्गभङ्ग कर डालेगा ॥ ३४ ॥

गङ्गावेग इवानूपांस्तीरजान्विविधान्द्रुमान् ।
प्रवेक्ष्यति महासेनां पुत्राणां मम संजय ॥ ३५ ॥

जैसे गङ्गाका बढता हुआ वेग जलमय प्रदेशमें स्थित हुए नाना प्रकारके तटवर्ती वृक्षोंको गिराकर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार भीम युद्धभूमिमें आकर मेरे पुत्रोंकी विशाल सेनामें घुसेगा ॥ ३५ ॥

वशं नूनं गमिष्यन्ति भीमसेनबलार्दिताः ।
मम पुत्राश्च भृत्याश्च राजानश्चैव संजय ॥ ३६ ॥

संजय ! निश्चय ही भीमसेनके बलसे पीडित हो मेरे पुत्र, सेवक तथा सहायक नरेश निश्चयसे उसके वशमें हो जायँगे ॥ ३६ ॥

येन राजा महावीर्यः प्रविश्यान्तःपुरं पुरा ।
वासुदेवसहायेन जरासंधो निपातितः ॥ ३७ ॥

भीमसेनने भगवान् श्रीकृष्णके साथ उसके अन्तःपुरमें जाकर महापराक्रमी नरेश जरासंधको मार गिराया ॥ ३७ ॥

कृत्स्नेयं पृथिवी देवी जरासंधेन धीमता ।
मागधेन्द्रेण बलिना वशे कृत्वा प्रतापिता ॥ ३८ ॥

जिस परम बुद्धिमान् और बलवान् महाबली मगधराज जरासंधने यह सारी पृथिवी अपने वशमें करके इसे पीडा देना प्रारम्भ किया था ॥ ३८ ॥

भीष्मप्रतापात्कुरवो नयेनान्धकवृष्णयः ।
ते न तस्य वशं जग्मुः केवलं दैवमेव वा ॥ ३९ ॥

भीष्मके प्रतापसे कुरुवंशी और नीतिबलसे अंधकवृष्णिवंशके लोग जो जरासंधके वशमें नहीं पडे, वह केवल दैवयोग ही था ॥ ३९ ॥

स गत्वा पाण्डुपुत्रेण तरसा बाहुशालिना ।
अनायुधेन वीरेण निहतः किं ततोऽधिकम् ॥ ४० ॥

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले वीर पाण्डुपुत्र भीमने वेगपूर्वक वहाँ जाकर बिना किसी अस्त्रशस्त्रके उस जरासंधको यमलोक पहुँचा दिया, इससे बढकर पराक्रम और क्या होगा ? ॥ ४० ॥

दीर्घकालेन संसिक्तं विषमाशीविषो यथा ।
स मोक्ष्यति रणे तेजः पुत्रेषु मम संजय ॥ ४१ ॥

संजय ! जैसे विषधर सर्प बहुत दिनोंसे संचित किये हुए विषको किसीपर उगलता है, उसी प्रकार भीमसेन भी दीर्घकालसे संचित अपने तेजको रणभूमिमें मेरे पुत्रोंपर छोडेगा ॥ ४१ ॥

महेन्द्र इव वज्रेण दानवान्देवसत्तमः ।
भीमसेनो गदापाणिः सूदयिष्यति मे सुतान् ॥ ४२ ॥

जैसे देवश्रेष्ठ इन्द्र वज्रसे दानवोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार हाथमें गदा लिये भीमसेन मेरे पुत्रोंका संहार कर डालेगा ॥ ४२ ॥

अविषह्यमनावार्यं तीव्रवेगपराक्रमम्।
पश्यामीवातिताम्राक्षमापतन्तं वृकोदरम् ॥ ४३ ॥

दुःसह आक्रमणवाले, अप्रतिहत गतिवाले, भयंकर वेग और पराक्रमसे युक्त तथा क्रोधसे लाल आंखें करके दौडे आनेवाले भीमको मैं देख सा रहा हूं ॥ ४३ ॥

अगदस्याप्यधनुषो विरथस्य विवर्मणः।
बाहुभ्यां युद्ध्यमानस्य कस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ॥ ४४ ॥

यदि वह गदा, धनुष, रथ और कवचको छोडकर केवल दोनों भुजाओंसे युद्ध करे तो भी उसके सामने कौन पुरुष ठहर सकता है ? ॥ ४४ ॥

भीष्मो द्रोणश्च विप्रोऽयं कृपः शारद्वतस्तथा।
जानन्त्येते यथैवाहं वीर्यज्ञस्तस्य धीमतः ॥ ४५ ॥

उस बुद्धिमान् भीमके बल और पराक्रमको जैसे मैं जानता हूं, उसी प्रकार ये भीष्म, विप्रवर द्रोणाचार्य तथा शरद्वान्के पुत्र कृप भी जानते हैं ॥ ४५ ॥

आर्यव्रतं तु जानन्तः संगरान्न बिभित्सवः।
सेनामुखेषु स्थास्यन्ति मामकानां नरर्षभाः ॥ ४६ ॥

तथापि ये नरश्रेष्ठ शिष्ट पुरुषोंके व्रतको जानते हैं, इसलिये युद्धसे न डरनेवाले ये भीष्मादि वीर मेरे पुत्रोंकी सेनाके अग्रभागमें डटे रहेंगे ॥ ४६ ॥

बलीयः सर्वतो दिष्टं पुरुषस्य विशेषतः।
पश्यन्नपि जयं तेषां न नियच्छामि यत्सुतान् ॥ ४७ ॥

पुरुषका भाग्य ही सबसे विशेष प्रबल है, क्योंकि मैं पाण्डवोंकी विजय समझकर भी अपने पुत्रोंको रोक नहीं पाता हूं ॥ ४७ ॥

ते पुराणं महेष्वासा मार्गमैन्द्रं समास्थिताः।
त्यक्ष्यन्ति तुमुले प्राणान्रक्षन्तः पार्थिवं यशः ॥ ४८ ॥

वे महाधनुर्धर भीष्म आदि पुरातन स्वर्गीय मार्गका आश्रय ले पार्थिव यशकी रक्षा करते हुए घमासान युद्धमें अपने प्राण त्याग देंगे ॥ ४८ ॥

यथैषां मामकास्तात तथैषां पाण्डवा अपि।
पौत्रा भीष्मस्य शिष्याश्च द्रोणस्य च कृपस्य च ॥ ४९ ॥

तात ! इनके लिये जैसे मेरे पुत्र हैं, वैसे ही पाण्डव भी हैं। दोनों ही भीष्मके पौत्र तथा द्रोण और कृपके शिष्य हैं ॥ ४९ ॥

यत्त्वस्मदाश्रयं किंचिद् दत्तमिष्टं च संजय ।
तस्यापचितिमार्यत्वात्कर्तारः स्थविरास्त्रयः ॥ ५० ॥

संजय ! भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य-ये तीनों वृद्ध श्रेष्ठ पुरुष हैं; अतः हमारे आश्रयमें रहकर इन्होंने जो कुछ भी दान यज्ञ आदि किया है, ये उसका बदला चुकायेंगे (युद्धमें दुर्योधनका ही साथ देंगे) ॥ ५० ॥

आददानस्य शस्त्रं हि क्षत्रधर्मं परीप्सतः ।
निधनं ब्राह्मणस्याजौ वरमेवाहुरुत्तमम् ॥ ५१ ॥

जो अस्त्र-शस्त्र धारण करके क्षात्रधर्मकी रक्षा करना चाहता है, उस ब्राह्मणके लिये संग्राममें होनेवाली मृत्युको ही श्रेष्ठ एवं उत्तम माना गया है ॥ ५१ ॥

स वै शोचामि सर्वान्वै ये युयुत्सन्ति पाण्डवान् ।
विक्रुष्टं विदुरेणादौ तदेतद्भयमागतम् ॥ ५२ ॥

जो लोग पाण्डवोंसे युद्ध करना चाहते हैं, उन सबके लिये मुझे बडा शोक हो रहा है । विदुरने पहले ही उच्च स्वरसे जिसकी घोषणा की थी, वही यह भय आज आ पहुँचा है ॥ ५२ ॥

न तु मन्ये विघाताय ज्ञानं दुःखस्य संजय ।
भवत्यतिबले ह्येतज्ज्ञानमप्युपघातकम् ॥ ५३ ॥

संजय ! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि ज्ञान दुःखका नाश नहीं कर सकता, अपितु प्रबल दुःख ही ज्ञानका भी नाश करनेवाला बन जाता है ॥ ५३ ॥

ऋषयो ह्यपि निर्मुक्ताः पश्यन्तो लोकसंग्रहान् ।
सुखे भवन्ति सुखिनस्तथा दुःखेन दुःखिताः ॥ ५४ ॥

जीवन्मुक्त महर्षि भी लोकव्यवहारकी ओर दृष्टि रखकर सुखके साधनोंसे सुखी और दुःखसे दुःखी होते हैं ॥ ५४ ॥

किं पुनर्योऽहमासक्तस्तत्र तत्र सहस्रधा ।
पुत्रेषु राज्यदारेषु पौत्रेष्वपि च बन्धुषु ॥ ५५ ॥

फिर जो पुत्र, राज्य, पत्नी, पौत्र तथा बन्धु बान्धवोंमें जहाँ तहाँ सहस्रों प्रकारसे मोहवश आसक्त हो रहा है, उसकी तो बात ही क्या है ? ॥ ५५ ॥

संशये तु महत्यस्मिन्किं नु मे क्षममुत्तमम् ।
विनाशं ह्येव पश्यामि कुरूणामनुचिन्तयन् ॥ ५६ ॥

इस महान् संकटके विषयमें मैं क्या उचित प्रतीकार कर सकता हूँ ? मुझे तो बार-बार विचार करनेपर कौरवोंका विनाश ही दिखायी पडता है ॥ ५६ ॥

द्यूतप्रमुखमाभाति कुरूणां व्यसनं महत्।
मन्देनैश्वर्यकामेन लोभात्पापमिदं कृतम् ॥ ५७ ॥

द्यूतक्रीडा आदिकी घटनाएँ ही कौरवोंपर भारी विपत्ति लानेका कारण प्रतीत होती हैं। ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले मूर्ख दुर्योधनने लोभवश यह पाप किया है॥ ५७ ॥

मन्ये पर्यायधर्मोऽयं कालस्यात्यन्तगामिनः।
चक्रे प्रधिरिवासक्तो नास्य शक्यं पलायितुम् ॥ ५८ ॥

मैं समझता हूं कि अत्यन्त तीव्र गतिसे चलनेवाले कालका ही यह क्रमशः प्राप्त होनेवाला नियम है। इस कालचक्रमें उसकी नेमिके समान मैं जुडा हुआ हूं, अतः मेरे लिये इससे दूर भागना सम्भव नहीं है॥ ५८ ॥

किं नु कार्यं कथं कुर्यां क्व नु गच्छामि संजय।
एते नश्यन्ति कुरवो मन्दाः कालवशं गताः ॥ ५९ ॥

संजय! क्या करूं, कैसे करूं और कहां चला जाऊं? ये मूर्ख कौरव कालके वशीभूत होकर नष्ट होना चाहते हैं॥ ५९ ॥

अवशोऽहं पुरा तात पुत्राणां निहते शते।
श्रोष्यामि निनदं स्त्रीणां कथं मां मरणं स्पृशेत् ॥ ६० ॥

तात! मेरे सौ पुत्र यदि युद्धमें मारे गये, तब विवश होकर मैं इनकी अनाथ स्त्रियोंका करुण क्रन्दन सुनूंगा। हाय! मेरी मृत्यु किस प्रकार हो सकती है?॥ ६० ॥

यथा निदाघे ज्वलनः समिद्धो दहेत्कक्षं वायुना चोद्यमानः।
गदाहस्तः पाण्डवस्तद्वदेव हन्ता मदीयान्सहितोऽर्जुनेन ॥ ६१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चाशोऽध्यायः॥ ५०॥ १८२१॥

जैसे गर्मीमें प्रज्वलित हुई अग्नि हवाका सहारा पाकर घास-फूस एवं जंगलको भी जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनसहित पाण्डुनन्दन भीम गदा हाथमें लेकर मेरे सब पुत्रोंको मार डालेगा॥ ६१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पचासवाँ अध्याय समाप्त॥ ५०॥ १८२१॥

: ५१ :

धृतराष्ट्र उवाच

यस्य वै नानृता वाचः प्रवृत्ता अनुशुश्रुमः ।
त्रैलोक्यमपि तस्य स्याद्योद्धा यस्य धनंजयः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले– संजय ! जिनके मुंहसे कभी कोई झूठ बात निकलती हमने नहीं सुनी हैं तथा जिनके पक्षमें धनंजय जैसे योद्धा हैं, उन धर्मराज युधिष्ठिरको भूमण्डलका कौन कहे, तीनों लोकोंका राज्य भी प्राप्त हो सकता है ॥ १ ॥

तस्यैव च न पश्यामि युधि गाण्डीवधन्वनः ।
अनिशं चिन्तयानोऽपि यः प्रतीयाद्रथेन तम् ॥ २ ॥

मैं निरन्तर सोचने विचारनेपर भी युद्धमें गाण्डीवधारी अर्जुनका ही सामना करनेवाले किसी ऐसे वीरको नहीं देखता, जो रथपर आरूढ हो उनके सम्मुख जा सके ॥ २ ॥

अस्यतः कर्णिनालीकान्मार्गणान्हृदयच्छिदः ।
प्रत्येता न समः कश्चिद्युधि गाण्डीवधन्वनः ॥ ३ ॥

हृदयको विदीर्ण कर देनेवाले कर्णी और नालीक आदि बाणोंकी निरन्तर वर्षा करनेवाले उन गाण्डीवधन्वा अर्जुनका युद्धमें सामना करनेवाला कोई भी समकक्ष योद्धा नहीं है ॥३॥

द्रोणकर्णौ प्रतीयातां यदि वीरौ नरर्षभौ ।
माहात्म्यात्संशयो लोके न त्वस्ति विजयो मम ॥ ४ ॥

यदि मनुष्योंमें अग्रगण्य वीरवर द्रोणाचार्य और कर्ण अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढें तो भी मुझे अर्जुनपर विजय प्राप्त होनेमें महान् संदेह रहेगा। पर मेरी जीत नहीं होगी यह तो संशयरहित है ॥ ४ ॥

घृणी कर्णः प्रमादी च आचार्यः स्थविरो गुरुः ।
समर्थो बलवान्पार्थो दृढधन्वा जितक्लमः ।
भवेत्सुतुमुलं युद्धं सर्वशोऽप्यपराजयः ॥ ५ ॥

क्योंकि कर्ण दयालु और प्रमादी है और आचार्य द्रोण वृद्ध होनेके साथ ही अर्जुनके गुरु हैं, कुन्तीपुत्र अर्जुन समर्थ और बलवान् हैं। उनका धनुष भी सुदृढ है। वे आलस्य और थकावटको जीत चुके हैं, अतः उनके साथ जो अत्यन्त भयंकर युद्ध छिडेगा, उसमें सब प्रकारसे उनकी ही विजय होगी ॥ ५ ॥

×

सर्वे ह्यस्त्रविदः शूराः सर्वे प्राप्ता महद्यशः ।
अपि सर्वामरैश्वर्यं त्यजेयुर्न पुनर्जयम् ।
वधे नूनं भवेच्छान्तिस्तयोर्वा फल्गुनस्य वा ॥ ६ ॥

समस्त पाण्डव अस्त्रविद्याके ज्ञाता, शूरवीर तथा महान् यशको प्राप्त हैं । वे समस्त देवताओंका ऐश्वर्य छोड सकते हैं, परंतु अपनी विजयसे मुँह नहीं मोडेंगे । निश्चय ही द्रोणाचार्य और कर्णका वध हो जानेपर अथवा अर्जुनके मारे जानेसे ही दोनों पक्षोंमें शान्ति हो सकती है ॥ ६ ॥

न तु जेतार्जुनस्यास्ति हन्ता चास्य न विद्यते ।
मन्युस्तस्य कथं शाम्येन्मन्दान्प्रति य उत्थितः ॥ ७ ॥

परंतु अर्जुनको जीतनेवाला तो कोई है ही नहीं, उन्हें मारनेवाला भी संसारमें कोई नहीं है । मेरे मन्दबुद्धि पुत्रोंके प्रति उनके हृदयमें जो क्रोध जाग उठा है, वह कैसे शान्त होगा ? ॥ ७ ॥

अन्येऽप्यस्त्राणि जानन्ति जीयन्ते च जयन्ति च ।
एकान्तविजयस्त्वेव श्रूयते फल्गुनस्य ह ॥ ८ ॥

दूसरे योद्धा भी अस्त्र चलाना जानते हैं, परंतु वे कभी हारते हैं और कभी जीतते भी हैं । केवल अर्जुन ही ऐसे हैं, जिनकी निरन्तर विजय ही सुनी जाती है ॥ ८ ॥

त्रयस्त्रिंशत्समाहूय खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ।
जिगाय च सुरान्सर्वान्नास्य वेद्मि पराजयम् ॥ ९ ॥

खाण्डवदाहके समय अर्जुनने मुख्य-मुख्य तैंतीस देवताओंको युद्धके लिये ललकारकर अग्निदेवको तृप्त किया और सभी देवताओंको जीत लिया । उनकी कभी पराजय हुई हो, इसका पता हमें आजतक नहीं लगा ॥ ९ ॥

यस्य यन्ता हृषीकेशः शीलवृत्तसमो युधि ।
ध्रुवस्तस्य जयस्तात यथेन्द्रस्य जयस्तथा ॥ १० ॥

तात ! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण, जिनका स्वभाव और आचार-व्यवहार भी अर्जुनके ही समान है, अर्जुनका रथ हाँकते हैं, अतः इन्द्रकी विजयकी भाँति उनकी भी विजय निश्चित है ॥ १० ॥

कृष्णावेकरथे यत्तावधिज्यं गाण्डिवं धनुः ।
युगपत्त्रीणि तेजांसि समेतान्यनुशुश्रुमः ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन एक रथपर उपस्थित हैं और गाण्डीव धनुपकी प्रत्यञ्चा चढी हुई है, इस प्रकार ये तीनों तेज एक ही साथ एकत्र हो गये हैं, यह हमारे सुननेमें आया है ॥ ११ ॥

नैव नोऽस्ति धनुस्ताहृङ्न योद्धा न च सारथिः ।
तच्च मन्दा न जानन्ति दुर्योधनवशानुगाः ॥ १२ ॥

हमलोगोंके यहाँ न तो वैसा धनुष है, न अर्जुन जैसा पराक्रमी योद्धा है और न श्रीकृष्णके समान सारथि ही है, परंतु दुर्योधनके वशीभूत हुए मेरे मूर्ख पुत्र इस बातको नहीं समझ पाते ॥ १२ ॥

शेषयेदशनिर्दीप्तो विपतन्मूर्ध्नि संजय ।
न तु शेषं शराः कुर्युरस्तास्तात किरीटिना ॥ १३ ॥

तात संजय ! अपने तेजसे जलता हुआ वज्र किसीके मस्तकपर पडकर सम्भव है, उसके जीवनको बचा दे, परंतु किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए बाण जिसे लग जायँगे, उसे जीवित नहीं छोडेंगे ॥ १३ ॥

अपि चास्यन्निवाभाति निघ्नन्निव च फल्गुनः ।
उद्धरन्निव कायेभ्यः शिरांसि शरवृष्टिभिः ॥ १४ ॥

मुझे तो वीर धनंजय युद्धमें बाणोंको चलाते, योद्धाओंके प्राण लेते और अपनी बाणवर्षा-द्वारा उनके शरीरोंसे मस्तकोंको काटते हुए-से प्रतीत हो रहे हैं ॥ १४ ॥

अपि बाणमयं तेजः प्रदीप्तमिव सर्वतः ।
गाण्डीवेद्धं दहेताजौ पुत्राणां मम वाहिनीम् ॥ १५ ॥

क्या गाण्डीव धनुषसे प्रकट हुआ बाणमय तेज सब ओर प्रज्वलित-सा होकर मेरे पुत्रोंकी विशाल वाहिनीको युद्धमें जलाकर भस्म कर डालेगा ? ॥ १५ ॥

अपि सा रथघोषेण भयार्ता सव्यसाचिनः ।
वित्रस्ता बहुला सेना भारती प्रतिभाति मे ॥ १६ ॥

मुझे स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि रथ-संचालनकी आवाज सुनकर भरतवंशियोंकी यह सेना सव्यसाची अर्जुनके भयसे पीडित और नाना प्रकारसे आतङ्कित हो जायगी ॥ १६ ॥

यथा कक्षं दहत्यग्निः प्रवृद्धः सर्वतश्चरन् ।
महार्चिरनिलोद्धूतस्तद्वद्धक्ष्यति मामकान् ॥ १७ ॥

जैसे वायुके वेगसे बढी हुई आग सब ओर फैलकर प्रचण्ड लपटोंसे युक्त हो घास-फूस अथवा जंगलको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार अर्जुन मेरे पुत्रोंको दग्ध कर डालेंगे ॥ १७ ॥

यदोद्वमन्निशितान्बाणसंघान्स्थातातताथी समरे किरीटी।
सृष्टोऽन्तकः सर्वहरो विधात्रा यथा भवेत्तद्वदवारणीयः ॥ १८ ॥
जिस समय शस्त्रपाणि किरीटधारी अर्जुन समरभूमिमें रोषपूर्वक पैने बाणसमूहोंकी वर्षा करेंगे, उस समय विधाताके रचे हुए सर्वसंहारक कालके समान उनसे पार पाना असम्भव हो जायगा ॥ १८ ॥

यदा ह्यभीक्ष्णं सुबहून्प्रकारान्श्रोतास्मि तानावसथे कुरूणाम्।
तेषां समन्ताच्च तथा रणाग्रे क्षयः किलायं भरतानुपैति ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ १८४० ॥

उस समय मैं महलोंमें बैठा हुआ बार-बार कौरवोंकी विविध अवस्थाओंकी कथा सुनता रहूँगा। अहो! युद्धके मुहानेपर निश्चय ही सब ओरसे यह भरतवंशका विनाश आ पहुंचा है ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ १८४० ॥

: ५२ :

धृतराष्ट्र उवाच

यथैव पाण्डवाः सर्वे पराक्रान्ता जिगीषवः।
तथैवाभिसरास्तेषां त्यक्तात्मानो जये धृताः ॥ १ ॥
धृतराष्ट्र बोले— संजय! जैसे समस्त पाण्डव पराक्रमी और विजयके अभिलाषी हैं, उसी प्रकार उनके सहायक भी विजयके लिये कटिबद्ध तथा उनके लिये अपने प्राण निछावर करनेको तैयार हैं ॥ १ ॥

त्वमेव हि पराक्रान्तानाचक्षीथाः परान्मम।
पाञ्चालान्केकयान्मत्स्यान्मागधान्वत्सभूमिपान् ॥ २ ॥
तुमने ही मेरे निकट पराक्रमशाली पाञ्चाल, केकय, मत्स्य, मागध तथा वत्सदेशीय उत्कृष्ट भूमिपालोंके नाम लिये हैं- ये सभी पाण्डवोंकी विजय चाहते हैं ॥ २ ॥

यश्च सेन्द्रानिमाँल्लोकानिच्छन्कुर्याद्वशे बली।
स श्रेष्ठो जगतः कृष्णः पाण्डवानां जये धृतः ॥ ३ ॥
इनके सिवा जो इच्छा करते ही इन्द्र आदि देवताओंसहित इन सम्पूर्ण लोकोंको अपने वशमें कर सकते हैं, वे श्रेष्ठ महाबली भगवान् श्रीकृष्ण भी पाण्डवोंको विजय दिलानेका दृढ निश्चय कर चुके हैं ॥ ३ ॥

समस्तामर्जुनाद्विद्यां सात्यकिः क्षिप्रमाप्तवान् ।
शैनेयः समरे स्थाता बीजवत्प्रवपञ्शरान् ॥ ४ ॥

शिनिके पौत्र सात्यकिने थोडे ही समयमें अर्जुनसे उनकी सारी अस्त्रविद्या सीख ली थी । इस युद्धमें वे भी बीजकी भाँति बाणोंको बोते हुए पाण्डवपक्षकी ओरसे खडे होंगे ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः क्रूरकर्मा महारथः ।
मामकेषु रणं कर्ता बलेषु परमास्त्रवित् ॥ ५ ॥

उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता और क्रूरतापूर्ण पराक्रम प्रकट करनेवाला पाञ्चालराजकुमार महारथी धृष्टद्युम्न भी मेरी सेनाओंमें घुसकर युद्ध करेगा ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरस्य च क्रोधादर्जुनस्य च विक्रमात् ।
यमाभ्यां भीमसेनाच्च भयं मे तात जायते ॥ ६ ॥

तात संजय ! मुझे युधिष्ठिरके क्रोधसे, अर्जुनके पराक्रमसे, दोनों भाई नकुल और सहदेवसे तथा भीमसेनसे बडा भय लगता है ॥ ६ ॥

अमानुषं मनुष्येन्द्रैर्जालं विततमन्तरा ।
मम सेनां हनिष्यन्ति ततः क्रोशामि संजय ॥ ७ ॥

संजय ! इन नरेशोंके द्वारा मेरी सेनाके भीतर जब अलौकिक अस्त्रोंका जालसा बिछा दिया जायगा, तब वह जाल मेरी सेनाओंको मार देगा इसीलिये मैं बिलख रहा हूँ ॥ ७ ॥

दर्शनीयो मनस्वी च लक्ष्मीवान्ब्रह्मवर्चसी ।
मेधावी सुकृतप्रज्ञो धर्मात्मा पाण्डुनन्दनः ॥ ८ ॥

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर दर्शनीय, मनस्वी, लक्ष्मीवान् , ब्रह्मर्षियोंके समान तेजस्वी, मेधावी, सुनिश्चित बुद्धिसे युक्त, धर्मात्मा, ॥ ८ ॥

मित्रामात्यैः सुसम्पन्नः सम्पन्नो योज्ययोजकैः ।
भ्रातृभिः श्वशुरैः पुत्रैरुपपन्नो महारथैः ॥ ९ ॥

मित्रों तथा मन्त्रियोंसे सम्पन्न, युद्धके लिये उद्योगशील सैनिकोंसे संयुक्त, महारथी भाइयों पुत्रों और श्वशुरोंसे सुरक्षित, ॥ ९ ॥

धृत्या च पुरुषव्याघ्रो नैभृत्येन च पाण्डवः ।
अनृशंसो वदान्यश्च ह्रीमान्सत्यपराक्रमः ॥ १० ॥

धैर्यवान् , मन्त्रणाको गुप्त रखनेवाले, पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी, दयालु, उदार, लज्जाशील, यथार्थ पराक्रमसे सम्पन्न, ॥ १० ॥

बहुश्रुतः कृतात्मा च वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।
तं सर्वगुणसम्पन्नं समिद्धमिव पावकम् ॥ ११ ॥

अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता, मनको वशमें रखनेवाले, वृद्धसेवी तथा जितेन्द्रिय हैं । इस प्रकार सर्वगुणसम्पन्न और प्रज्वलित अग्निके समान ताप देनेवाले ॥ ११ ॥

तपन्तमिव को मन्दः पतिष्यति पतङ्गवत् ।
पाण्डवाग्निमनावार्यं मुमूर्षुर्मूढचेतनः ॥ १२ ॥

उन युधिष्ठिरके सम्मुख युद्ध करनेके लिये कौन मूर्ख जा सकेगा ? कौन अचेत एवं मरणासन्न मनुष्य पतंगोंकी भाँति दुर्निवार पाण्डवरूपी अग्निमें जान-बूझकर गिरेगा ? ॥ १२ ॥

तनुरुच्चः शिखी राजा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥ १३ ॥

राजा युधिष्ठिर ऊंची ऊंची ज्वालाओंवाली अग्निके समान शुद्ध सोनेके समान तेजवाले हैं । वे युद्ध करके मेरे मूर्ख पुत्रोंका अवश्य विनाश कर डालेंगे ॥ १३ ॥

तैरयुद्धं साधु मन्ये कुरवस्तन्निबोधत ।
युद्धे विनाशः कृत्स्नस्य कुलस्य भविता ध्रुवम् ॥ १४ ॥

कौरवो ! मैं पाण्डवोंके साथ युद्ध न होना ही अच्छा मानता हूँ । तुमलोग इसे अच्छी तरह समझ लो । यदि युद्ध हुआ तो समस्त कुरुकुलका विनाश अवश्यम्भावी है ॥ १४ ॥

एषा मे परमा शान्तिर्यया शाम्यति मे मनः ।
यदि त्वयुद्धमिष्टं वो वयं शान्त्यै यतामहे ॥ १५ ॥

मेरी यही सर्वोत्तम शान्ति है । जिससे मेरे मनको शान्ति मिलती है । यदि तुम्हें भी युद्ध न होना ही अभीष्ट हो तो हम शान्तिके लिये प्रयत्न करें ॥ १५ ॥

न तु नः शिक्षमाणानामुपेक्षेत युधिष्ठिरः ।
जुगुप्सति ह्यधर्मेण मामेवोद्दिश्य कारणम् ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ १८५६ ॥

युधिष्ठिर शान्तिके लिए याचना करनेवाले हमारी उपेक्षा नहीं करेंगे । वे तो मुझे ही अधर्मपूर्वक कलह बढानेमें कारण मानकर मेरी निन्दा करते हैं फिर मेरे ही द्वारा शान्तिप्रस्ताव उपस्थित किये जानेपर वे क्यों नहीं सहमत होंगे ? ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ १८५६ ॥

: ५२ :

संजय उवाच

एवमेतन्महाराज यथा वदसि भारत ।
युद्धे विनाशः क्षत्रस्य गाण्डीवेन प्रदृश्यते ॥ १ ॥

संजय बोले— महाराज ! आप जैसा कह रहे हैं, वही ठीक है। भारत ! युद्धमें तो गाण्डीव धनुषके द्वारा क्षत्रियसमुदायका विनाश ही दिखायी देता है ॥ १ ॥

इदं तु नाभिजानामि तव धीरस्य नित्यशः ।
यत्पुत्रवशमागच्छेः सत्त्वज्ञः सव्यसाचिनः ॥ २ ॥

परंतु सदासे बुद्धिमान् माने जानेवाले आपके सम्बन्धमें मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि आप सव्यसाची अर्जुनके बल-पराक्रमको अच्छी तरह जानते हुए भी क्यों अपने पुत्रोंके अधीन हो रहे हैं ? ॥ २ ॥

नैष कालो महाराज तव शश्वत्कृतागसः ।
त्वया ह्येवादितः पार्था निकृता भरतर्षभ ॥ ३ ॥

भरतकुलभूषण महाराज ! आप स्वभावसे ही पाण्डवोंका अपराध करनेवाले हैं। इस कारण इस समय आपके द्वारा जो विचार व्यक्त किया गया है, यह सदा स्थिर रहनेवाला नहीं है। आपने आरम्भसे ही कुन्तीपुत्रोंके साथ कपटपूर्वक बर्ताव किया है ॥ ३ ॥

पिता श्रेष्ठः सुहृद्यश्च सम्यक्प्रणिहितात्मवान् ।
आस्थेयं हि हितं तेन न द्रोग्धा गुरुरुच्यते ॥ ४ ॥

जो पिताके पदपर प्रतिष्ठित है, श्रेष्ठ सुहृद् है और मनमें भलीभाँति सावधानी रखनेवाला है, उसे अपने आश्रितोंका हित-साधन ही करना चाहिये। द्रोह रखनेवाला पुरुष पिता अथवा गुरुजन नहीं कहला सकता ॥ ४ ॥

इदं जितमिदं लब्धमिति श्रुत्वा पराजितान् ।
द्यूतकाले महाराज स्मयसे स्म कुमारवत् ॥ ५ ॥

महाराज ! द्यूतक्रीडाके समय जब आप अपने पुत्रोंके मुखसे सुनते कि यह जीता, यह पाया तथा पाण्डवोंकी पराजय हो रही है, तब आप बालकोंकी तरह मुसकरा उठते थे ॥ ५ ॥

परुषाण्युच्यमानान्स्म पुरा पार्थानुपेक्षसे।
कृत्स्नं राज्यं जयन्तीति प्रपातं नानुपश्यसि ॥ ६ ॥

उस समय पाण्डवोंके प्रति कितनी ही कठोर बातें कही जा रही थीं, परंतु मेरे पुत्र सारा राज्य जीतते चले जा रहे हैं, यह जानकर आप उनकी उपेक्षा करते जाते थे। यह सब इनके भावी विनाश या पतनका कारण होगा, इसकी ओर आपकी दृष्टि नहीं जाती थी ॥६॥

पित्र्यं राज्यं महाराज कुरवस्ते सजाङ्गलाः।
अथ वीरैर्जितां भूमिमखिलां प्रत्यपद्यथाः ॥ ७ ॥

महाराज! कुरुजांगल देश ही आपका पैतृक राज्य है, किंतु शेष सारी पृथ्वी उन वीर पाण्डवोंने ही जीती है, जिसे आप पा गये हैं ॥ ७ ॥

बाहुवीर्यार्जिता भूमिस्तव पार्थैर्निवेदिता।
मयेदं कृतमित्येव मन्यसे राजसत्तम ॥ ८ ॥

नृपश्रेष्ठ! कुन्तीपुत्रोंने अपने बाहुबलसे जीतकर यह भूमि आपकी सेवामें समर्पित की है, परंतु आप उसे "मैंने ही यह सारा राज्य जीता है" ऐसा मानते हैं ॥ ८ ॥

ग्रस्तान्गन्धर्वराजेन मज्जतो ह्यप्लवेऽम्भसि।
आनिनाय पुनः पार्थः पुत्रांस्ते राजसत्तम ॥ ९ ॥

राजशिरोमणे! घोषयात्राके समय गन्धर्वराज चित्रसेनने आपके पुत्रोंको कैद कर लिया था। वे सबके सब बिना नावके पानीमें डूब रहे थे, उस समय उन्हें अर्जुन ही पुनः छुड़ाकर ले आये थे ॥ ९ ॥

कुमारवच्च स्मयसे द्यूते विनिकृतेषु यत्।
पाण्डवेषु वनं राजन्प्रव्रजत्सु पुनः पुनः ॥ १० ॥

राजन्! पाण्डवलोग जब द्यूतक्रीडामें छले गये और हारकर वनमें जाने लगे, उस समय आप बच्चोंकी तरह बारंबार मुसकराकर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे ॥ १० ॥

प्रवर्षतः शरव्रातानर्जुनस्य शितान्बहून्।
अप्यर्णवा विशुष्येयुः किं पुनर्मांसयोनयः ॥ ११ ॥

जब अर्जुन असंख्य तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगेंगे, उस समय समुद्र भी सूख जा सकते हैं, फिर हाडमांसके शरीरोंसे पैदा हुए प्राणियोंकी तो बात ही क्या है? ॥ ११ ॥

अस्यतां फल्गुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम्।
केशवः सर्वभूतानां चक्राणां च सुदर्शनम् ॥ १२ ॥

बाण चलानेवाले वीरोंमें अर्जुन श्रेष्ठ हैं, धनुषोंमें गाण्डीव उत्तम है, समस्त प्राणियोंमें भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं, आयुधोंमें सुदर्शन चक्र श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

वानरो रोचमानश्च केतुः केतुमतां वरः
एवमेतानि सरथो वहञ्श्वेतहयो रणे ।
क्षपयिष्यति नो राजन्कालचक्रमिवोद्यतम् ॥ १३ ॥

और पताकावाले ध्वजोंमें वानरसे उपलक्षित ध्वज ही श्रेष्ठ एवं प्रकाशमान है। राजन् ! इस प्रकार इन सभी श्रेष्ठतम वस्तुओंको अपने साथ लिये हुए जब श्वेत घोडोंवाले अर्जुन रथपर आरूढ हो रणभूमिमें उपस्थित होंगे, उस समय ऊपर उठे हुए कालचक्रके समान वे हम सब लोगोंका संहार कर डालेंगे ॥ १३ ॥

तस्याद्य वसुधा राजन्निखिला भरतर्षभ ।
यस्य भीमार्जुनौ योधौ स राजा राजसत्तम ॥ १४ ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ भरतभूषण महाराज ! अब तो यह सारी पृथ्वी उसीके अधिकारमें रहेगी, जिसकी ओरसे भीमसेन और अर्जुन जैसे योद्धा लडनेवाले होंगे। वही राजा होगा ॥१४॥

तथा भीमहतप्रायां मज्जन्तीं तव वाहिनीम् ।
दुर्योधनमुखा दृष्ट्वा क्षयं यास्यन्ति कौरवाः ॥ १५ ॥

इस प्रकार भीमके द्वारा मारी जाती हुई तथा दुःखसागरमें डूबती हुई तेरी सेनाको देखते देखते दुर्योधन आदि स्वयं भी नष्ट हो जायँगे ॥ १५ ॥

न हि भीमभयाद्भीता लप्स्यन्ते विजयं विभो ।
तव पुत्रा महाराज राजानश्चानुसारिणः ॥ १६ ॥

प्रभो ! महाराज ! आपके पुत्र तथा इनका साथ देनेवाले नरेश भीमसेनके भयसे भयभीत होकर कभी विजय नहीं पा सकेंगे ॥ १६ ॥

मत्स्यास्त्वामद्य नार्चन्ति पाञ्चालाश्च सकेकयाः ।
शाल्वेयाः शूरसेनाश्च सर्वे त्वामवजानते ।
पार्थं ह्येते गताः सर्वे वीर्यज्ञास्तस्य धीमतः ॥ १७ ॥

मत्स्यदेशके क्षत्रिय अब आपका आदर नहीं करते हैं। पाञ्चाल, केकय, शाल्व तथा शूरसेन देशोंके सभी राजा एवं राजकुमार आपकी अवहेलना करते हैं। वे सब परम बुद्धिमान् अर्जुनके पराक्रमको जानते हैं, अतः उन्हींके पक्षमें मिल गये हैं ॥ १७ ॥

×

अनर्हानेव तु वधे धर्मयुक्तान्विकर्मणा ।
सर्वोपायैर्नियन्तव्यः सानुगः पापपूरुषः ।
तव पुत्रो महाराज नात्र शोचितुमर्हसि ॥ १८ ॥

महाराज ! जो सदा धर्ममें तत्पर रहनेके कारण वध और क्लेश पानेके कदापि योग्य नहीं थे, उन्हें अपने दुष्ट कर्मोंसे सदा कष्ट पहुंचानेवाले आपके उस पापी पुत्र दुर्योधनको ही सभी उपायोंसे साथियोंसहित काबूमें रखना चाहिये । आप बारंबार इस तरह शोक न करें ॥ १८ ॥

द्यूतकाले मया चोक्तं विदुरेण च धीमता ।
यदिदं ते विलपितं पाण्डवान्प्रति भारत ।
अनीशेनेव राजेन्द्र सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ १८७५ ॥

द्यूतक्रीडाके समय मैंने तथा परम बुद्धिमान् विदुरने भी आपको यही सलाह दी थी, परंतु आपने ध्यान नहीं दिया। राजेन्द्र ! आपने जो पाण्डवोंके बल-पराक्रमकी चर्चा करके असमर्थकी भाँति विलाप किया है, यह सब व्यर्थ है ॥ १९ ॥

॥ श्रीमहाभारतमें उद्योगपर्वके तिरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ १८७५ ॥

: ५४ :

दुर्योधन उवाच

न भेतव्यं महाराज न शोच्या भवता वयम् ।
समर्थाः स्म परान्राजन्विजेतुं समरे विभो ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला— महाराज ! आप डरें नहीं; आपके द्वारा हम लोग शोक करने योग्य नहीं हैं । प्रभो ! हम समरभूमिमें शत्रुओंको जीतनेकी शक्ति रखते हैं ॥ १ ॥

वनं प्रव्राजितान्पार्थान्यदायान्मधुसूदनः ।
महता बलचक्रेण परराष्ट्रावमर्दिना ॥ २ ॥

पाण्डवोंको जब हमने वनमें भेज दिया, उस समय शत्रुओंके राष्ट्रोंको धूलमें मिला देनेवाले विशाल सैन्यसमूहके साथ श्रीकृष्ण यहाँ आये थे ॥ २ ॥

केकया धृष्टकेतुश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
राजानश्चान्वयुः पार्थान्बहवोऽन्येऽनुयायिनः ॥ ३ ॥

उनके साथ केकयराजकुमार, धृष्टकेतु, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न तथा और भी बहुतसे नरेश, जो पाण्डवोंके अनुयायी हैं, यहाँतक पधारे थे ॥ ३ ॥

इन्द्रप्रस्थस्य चादूरात्समाजग्मुर्महारथाः ।
व्यगर्हयंश्च संगम्य भवन्तं कुरुभिः सह ॥ ४ ॥

वे सभी महारथी इन्द्रप्रस्थके निकटतक आये और परस्पर मिलकर समस्त कौरवोंसहित आपकी निन्दा करने लगे ॥ ४ ॥

ते युधिष्ठिरमासीनमजिनैः प्रतिवासितम् ।
कृष्णप्रधानाः संहत्य पर्युपासन्त भारत ॥ ५ ॥

भारत ! वे नरेश श्रीकृष्णकी प्रधानतामें संगठित हो वनमें विराजमान मृगचर्मधारी युधिष्ठिरके समीप जाकर बैठे ॥ ५ ॥

प्रत्यादानं च राज्यस्य कार्यमूचुर्नराधिपाः ।
भवतः सानुबन्धस्य समुच्छेदं चिकीर्षवः ॥ ६ ॥

और सगे-सम्बन्धियोंसहित आपका मूलोच्छेद कर डालनेकी इच्छा रखकर कहने लगे—धृतराष्ट्रके हाथसे राज्यको लौटा लेना ही कर्तव्य है ॥ ६ ॥

श्रुत्वा चैतन्मयोक्तास्तु भीष्मद्रोणकृपास्तदा ।
ज्ञातिक्षयभयाद्राजन्भीतेन भरतर्षभ ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उनके इस निश्चयको सुनकर मैंने कुटुम्बीजनोंके वधकी आशङ्कासे भयभीत हो भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे इस प्रकार निवेदन किया ॥ ७ ॥

न ते स्थास्यन्ति समये पाण्डवा इति मे मतिः ।
समुच्छेदं हि नः कृत्स्नं वासुदेवश्चिकीर्षति ॥ ८ ॥

तात ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पाण्डवलोग अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर नहीं रहेंगे; क्योंकि वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण हम सब लोगोंका पूर्णतः विनाश कर डालना चाहते हैं ॥८॥

ऋते च विदुरं सर्वे यूयं वध्या महात्मनः ।
धृतराष्ट्रश्च धर्मज्ञो न वध्यः कुरुसत्तमः ॥ ९ ॥

केवल विदुरको छोडकर आप सब लोग मार डालनेके योग्य समझे गये हैं, यह बात मुझे मालूम हुई है। कुरुश्रेष्ठ धृतराष्ट्र धर्मज्ञ हैं, यह सोचकर उनका भी वध नहीं किया जायगा ॥ ९ ॥

समुच्छेदं च कृत्स्नं नः कृत्वा तात जनार्दनः ।
एकराज्यं कुरूणां स्म चिकीर्षति युधिष्ठिरे ॥ १० ॥

तात ! श्रीकृष्ण हमारा सर्वनाश करके कौरवोंका एक राज्य बनाकर उसे युधिष्ठिरको सौंपना चाहते हैं ॥ १० ॥

तत्र किं प्राप्तकालं नः प्रणिपातः पलायनम् ।
प्राणान्वा सम्परित्यज्य प्रतियुध्यामहे परान् ॥ ११ ॥

ऐसी अवस्थामें इस समय हमारा क्या कर्तव्य है ? हम उनके चरणोंपर गिरें, पीठ दिखाकर भाग जायँ अथवा प्राणोंका मोह छोडकर शत्रुओंका सामना करें ॥ ११ ॥

प्रतियुद्धे तु नियतः स्यादस्माकं पराजयः ।
युधिष्ठिरस्य सर्वे हि पार्थिवा वशवर्तिनः ॥ १२ ॥

उनके साथ युद्ध होनेपर हमारी पराजय निश्चित है, क्योंकि इस समय समस्त भूपाल राजा युधिष्ठिरके अधीन हैं ॥ १२ ॥

विरक्तराष्ट्राश्च वयं मित्राणि कुपितानि नः ।
धिक्कृताः पार्थिवैः सर्वैः स्वजनेन च सर्वशः ॥ १३ ॥

इस राज्यमें रहनेवाले सब लोग हमसे घृणा करते हैं । हमारे मित्र भी कुपित हो गये हैं । सम्पूर्ण नरेश और आत्मीयजन सभी हमें धिक्कार रहे हैं ॥ १३ ॥

प्रणिपाते न दोषोऽस्ति बन्धूनां शाश्वतीः समाः ।
पितरं त्वेव शोचामि प्रज्ञानेत्रं जनेश्वरम् ।
मत्कृते दुःखमापन्नं क्लेशं प्राप्तमनन्तकम् ॥ १४ ॥

अतः इस समय हमेशाके लिए भाइयोंके आगे झुक जानेमें मैं कोई दोष नहीं समझता केवल अपने प्रज्ञाचक्षु पिता महाराज धृतराष्ट्रके लिये ही शोक हो रहा है उन्होंने मेरे लिये अनन्त क्लेश और दुःख सहन किये है । ॥ १४ ॥

कृतं हि तव पुत्रैश्च परेषामवरोधनम् ।
मत्प्रियार्थं पुरैवैतद्विदितं ते नरोत्तम ॥ १५ ॥

नरश्रेष्ठ पिताजी ! आपके पुत्रों तथा मेरे भाइयोंने केवल मेरी प्रसन्नताके लिये शत्रुओंको सदा ही सताया है; ये सब बातें आप पहलेसे ही जानते हैं ॥ १५ ॥

ते राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सामात्यस्य महारथाः ।
वैरं प्रतिकरिष्यन्ति कुलोच्छेदेन पाण्डवाः ॥ १६ ॥

इसलिये वे महारथी पाण्डव मन्त्रियोंसहित महाराज धृतराष्ट्रके कुलका समूलोच्छेद करके अपने वैरका बदला लेंगे ॥ १६ ॥

ततो द्रोणोऽब्रवीद्भीष्मः कृपो द्रौणिश्च भारत ।
मत्वा मां महतीं चिन्तामास्थितं व्यथितेन्द्रियम् ॥ १७ ॥

भारत ! मेरी यह बात सुनकर आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामाने मुझे बडी भारी चिन्तामें पडकर सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे व्यथित हुआ जान आश्वासन देते हुए कहा ॥ १७ ॥

अभिद्रुग्धाः परे चेन्नो न भेतव्यं परंतप ।
असमर्थाः परे जेतुमस्मान्युधि जनेश्वर ॥ १८ ॥

परंतप ! यदि शत्रुपक्षके लोग हमसे द्रोह रखते हैं तो तुम्हें डरना नहीं चाहिये। हे राजन् ! शत्रुलोग युद्धमें उपस्थित होनेपर हमें जीतनेमें असमर्थ हैं ॥ १८ ॥

एकैकशः समर्थाः स्मो विजेतुं सर्वपार्थिवान् ।
आगच्छन्तु विनेष्यामो दर्पमेषां शितैः शरैः ॥ १९ ॥

हममेंसे एक एक वीर भी समस्त राजाओंको जीतनेकी शक्ति रखता है। शत्रुलोग आवें तो सही, हम अपने पैने बाणोंसे उनका घमंड चूर चूर कर देंगे ॥ १९ ॥

पुरैकेन हि भीष्मेण विजिताः सर्वपार्थिवाः ।
मृते पितर्यभिक्रुद्धो रथेनैकेन भारत ॥ २० ॥

भारत ! पहलेकी बात है, अपने पिता शान्तनुकी मृत्युके पश्चात् भीष्मजीने किसी समय अत्यन्त क्रोधमें भरकर एकमात्र रथकी सहायतासे अकेले ही सब राजाओंको जीत लिया था ॥ २० ॥

जघान सुबहूंस्तेषां संरब्धः कुरुसत्तमः ।
ततस्ते शरणं जग्मुर्देवव्रतमिमं भयात् ॥ २१ ॥

रोषमें भरे हुए कुरुश्रेष्ठ भीष्मने जब उनमेंसे बहुतसे राजाओंको मार डाला, तब वे डरके मारे पुनः इन्हीं देवव्रत भीष्मकी शरणमें आये ॥ २१ ॥

स भीष्मः सुसमर्थोऽयमस्माभिः सहितो रणे ।
परान्विजेतुं तस्मात्ते व्येतु भीर्भरतर्षभ ।
इत्येषां निश्चयो ह्यासीत्तत्कालममितौजसाम् ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ये ही पूर्ण सामर्थ्यशाली भीष्म युद्धमें शत्रुओंको जीतनेके लिये हमारे साथ हैं; अतः आपका भय दूर हो जाना चाहिये इन अमिततेजस्वी भीष्म आदिने उसी समय युद्धमें हमारा साथ देनेका दृढ निश्चय कर लिया था ॥ २२ ॥

पुरा परेषां पृथिवी कृत्स्नासीद्वशवर्तिनी ।
अस्मान्पुनरमी नाद्य समर्था जेतुमाहवे ।
छिन्नपक्षाः परे ह्यद्य वीर्यहीनाश्च पाण्डवाः ॥ २३ ॥

पहले यह सारी पृथ्वी हमारे शत्रुओंके काबूमें थी, किंतु अब हमारे हाथमें आ गयी है। हमारे ये शत्रु अब हमें युद्धमें जीतनेकी शक्ति नहीं रखते। सहायकोंके अभावमें पाण्डव पंख कटे हुए पक्षीके समान असहाय एवं पराक्रमशून्य हो गये हैं ॥ २३ ॥

अस्मत्संस्था च पृथिवी वर्तते भरतर्षभ ।
एकार्थाः सुखदुःखेषु मयानीताश्च पार्थिवाः ॥ २४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस समय यह पृथ्वी हमारे अधिकारमें है । हमने जिन राजाओंको यहाँ बुलाया है, ये सब सुख और दुःखमें भी हमारे साथ एकसा प्रयोजन रखते हैं हमारे सुख दुःखको अपना ही सुख दुःख मानते हैं ॥ २४ ॥

अप्यग्निं प्रविशेयुस्ते समुद्रं वा परंतप ।
मदर्थे पार्थिवाः सर्वे तद्विद्धि कुरुसत्तम ॥ २५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले कुरुश्रेष्ठ ! निश्चित मानिये, ये सब समागत नरेश मेरे लिये जलती आगमें भी प्रवेश कर सकते हैं और समुद्रमें भी कूद सकते हैं ॥ २५ ॥

उन्मत्तमिव चापि त्वां प्रहसन्तीह दुःखितम् ।
विलपन्तं बहुविधं भीतं परविकत्थने ॥ २६ ॥

इतनेपर भी शत्रुओंकी मिथ्या प्रशंसा सुनकर पागलसे हो उठे दुःखी एवं भयभीत होकर नाना प्रकारसे विलाप करनेवाले आपको देखकर ये राजालोग यहाँ हँस रहे हैं ॥ २६ ॥

एषां ह्येकैकशो राज्ञां समर्थः पाण्डवान्प्रति ।
आत्मानं मन्यते सर्वो व्येतु ते भयमागतम् ॥ २७ ॥

इन राजाओंमेंसे प्रत्येक अपने-आपको पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेमें समर्थ मानता है; अतः आपके मनमें जो भय आ गया है, वह निकल जाना चाहिये ॥ २७ ॥

सर्वां समग्रां सेनां मे वासवोऽपि न शक्नुयात् ।
हन्तुमक्षय्यरूपेयं ब्रह्मणाऽपि स्वयंभुवा ॥ २८ ॥

मेरी सम्पूर्ण सेनाको इन्द्र भी नहीं जीत सकते । स्वयम्भू ब्रह्मा भी इसका नाश नहीं कर सकते ॥ २८ ॥

युधिष्ठिरः पुरं हित्वा पञ्च ग्रामान्स याचति ।
भीतो हि मामकात्सैन्यात्प्रभावाच्चैव मे प्रभो ॥ २९ ॥

प्रभो ! युधिष्ठिर तो मेरी सेना तथा प्रभावसे इतने डर गये हैं कि राजधानी या नगर लेनेकी बात छोडकर अब पाँच गाँव माँगने लगे हैं ॥ २९ ॥

समर्थं मन्यसे यच्च कुन्तीपुत्रं वृकोदरम् ।
तन्मिथ्या न हि मे कृत्स्नं प्रभावं वेत्थ भारत ॥ ३० ॥

भारत ! आप जो कुन्तीकुमार भीमको बहुत शक्तिशाली मान रहे हैं, वह भी मिथ्या ही है; क्योंकि आप मेरे प्रभावको पूर्णरूपसे नहीं जानते ॥ ३० ॥

मत्समो हि गदायुद्धे पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
नासीत्कश्चिदतिक्रान्तो भविता न च कश्चन ॥ ३१ ॥

गदायुद्धमें मेरी समानता करनेवाला इस पृथ्वीपर नहीं कोई है, मुझसे ज्यादा गदावीर न भूतकालमें कोई हुआ था और न भविष्यमें ही कोई होगा ॥ ३१ ॥

युक्तो दुःखोचितश्चाहं विद्यापारगतस्तथा ।
तस्मान्न भीमान्नान्येभ्यो भयं मे विद्यते क्वचित् ॥ ३२ ॥

गदायुद्धका मेरा अभ्यास बहुत अच्छा है । मैंने गुरुके समीप क्लेशसहनपूर्वक रहकर अस्त्र-विद्या सीखी है और उसमें मैं पारङ्गत हो गया हूँ। अतः भीमसेनसे या दूसरे योद्धाओंसे मुझे कभी कोई भय नहीं है ॥ ३२ ॥

दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः ।
संकर्षणस्य भद्रं ते यत्तदैनमुपावसम् ॥ ३३ ॥

आपका कल्याण हो । बलरामजीका भी यही निश्चय है कि गदायुद्धमें दुर्योधनके समान दूसरा कोई नहीं है । यह बात उन्होंने उस समय कही थी, जब मैं उनके पास रहकर गदाकी शिक्षा ले रहा था ॥ ३३ ॥

युद्धे संकर्षणसमो बलेनाभ्यधिको भुवि ।
गदाप्रहारं भीमो मे न जातु विषहेद्युधि ॥ ३४ ॥

मैं युद्धमें बलरामके समान हूँ और बलमें इस भूतलपर सबसे बढकर हूँ । युद्धमें भीमसेन मेरी गदाका प्रहार कभी नहीं सह सकते ॥ ३४ ॥

एकं प्रहारं यं दद्यां भीमाय रुषितो नृप ।
स एवैनं नयेद्घोरं क्षिप्रं वैवस्वतक्षयम् ॥ ३५ ॥

महाराज ! मैं रोषमें भरकर भीमसेनपर गदाका जो एक बार प्रहार करूँ, वह अत्यन्त भयंकर एक ही आघात उन्हें शीघ्र ही यमलोक पहुँचा देगा ॥ ३५ ॥

इच्छेयं च गदाहस्तं राजन्द्रष्टुं वृकोदरम् ।
सुचिरं प्रार्थितो ह्येष मम नित्यं मनोरथः ॥ ३६ ॥

राजन् ! मैं चाहता हूँ कि युद्धमें गदा हाथमें लिये हुए भीमसेनको अपने सामने देखूँ । मैंने दीर्घकालसे अपने मनमें सदा इसी मनोरथके सिद्ध होनेकी इच्छा रखी है ॥ ३६ ॥

गदया निहतो ह्याजौ मया पार्थो वृकोदरः ।
विशीर्णगात्रः पृथिवीं परासुः प्रपतिष्यति ॥ ३७ ॥

युद्धमें मेरी गदासे आहत हुए कुन्तीपुत्र भीमसेनका शरीर छिन्न-भिन्न हो जायेगा और वे प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर जायेंगे ॥ ३७ ॥

गदाप्रहाराभिहतो हिमवानपि पर्वतः ।
सकृन्मया विशीर्येत गिरिः शतसहस्रधा ॥ ३८ ॥

यदि मैं एक बार अपनी गदाका आघात कर दूं, तो हिमालय पर्वत भी लाखों टुकडोंमें विदीर्ण हो जायेगा ॥ ३८ ॥

स चाप्येतद्विजानाति वासुदेवार्जुनौ तथा ।
दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः ॥ ३९ ॥

भीमसेन भी इस बातको जानते हैं । श्रीकृष्ण और अर्जुनको भी यह ज्ञात है। यह निश्चित है कि गदायुद्धमें दुर्योधनके समान दूसरा कोई नहीं है ॥ ३९ ॥

तत्ते वृकोदरमयं भयं व्येतु महाहवे ।
व्यपनेष्याम्यहं ह्येनं मा राजन्विमना भव ॥ ४० ॥

अतः, हे राजन् ! भीमसेनसे जो आपको भय हो रहा है, वह दूर हो जाना चाहिये । मैं महायुद्धमें उन्हें मार गिराऊँगा । इसलिये आप मनमें खेद न करें ॥ ४० ॥

तस्मिन्मया हते क्षिप्रमर्जुनं बहवो रथाः ।
तुल्यरूपा विशिष्टाश्च क्षेप्स्यन्ति भरतर्षभ ॥ ४१ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मेरेद्वारा भीमसेनके मारे जानेपर हमारे पक्षके बहुतसे रथी जो अर्जुनके समान या उनसे भी बढकर हैं, उनके ऊपर शीघ्रतापूर्वक बाणोंकी वर्षा करने लगेंगे ॥ ४१ ॥

भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः कर्णो भूरिश्रवास्तथा ।
प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्यः सिन्धुराजो जयद्रथः ॥ ४२ ॥

भारत ! भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्त, मद्रराज शल्य तथा सिन्धुराज जयद्रथ ॥ ४२ ॥

एकैक एषां शक्तस्तु हन्तुं भारत पाण्डवान् ।
समस्तास्तु क्षणेनैतान्नेष्यन्ति यमसादनम् ॥ ४३ ॥

इनमेंसे एक-एक वीर समस्त पाण्डवोंको मारनेकी शक्ति रखता है । यदि ये सब एक साथ मिल जायें तो क्षणभरमें उन सबको यमलोक पहुंचा दें ॥ ४३ ॥

समग्रा पार्थिवी सेना पार्थमेकं धनंजयम् ।
कस्मादशक्ता निर्जेतुमिति हेतुर्न विद्यते ॥ ४४ ॥

राजाओंकी समस्त सेना एकमात्र अर्जुनको परास्त करनेमें असमर्थ कैसे होगी ? इसके लिये कोई कारण नहीं है ॥ ४४ ॥

शरव्रातैस्तु भीष्मेण शतशोऽथ सहस्रशः।
द्रोणद्रौणिकृपैश्चैव गन्ता पार्थो यमक्षयम् ॥ ४५ ॥

भीष्म, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके चलाये हुए सैकड़ों हजारों बाणसमूहोंसे विद्ध होकर कुन्तीपुत्र अर्जुनको यमलोकमें जाना पड़ेगा ॥ ४५ ॥

पितामहो हि गाङ्गेयः शन्तनोरधि भारत।
ब्रह्मर्षिसदृशो जज्ञे देवैरपि दुरुत्सहः।
पित्रा ह्युक्तः प्रसन्नेन नाकामस्त्वं मरिष्यसि ॥ ४६ ॥

हे भरतनन्दन! हमारे पितामह गङ्गापुत्र भीष्म तो अपने पिता शान्तनुसे भी बढ़कर पराक्रमी हैं। ये ब्रह्मर्षियोंके समान प्रभावसे सम्पन्न होकर उत्पन्न हुए हैं। इनका वेग देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुःसह है। हे राजन्! उनके पिताने प्रसन्न होकर उन्हें यह वरदान दिया है कि तुम अपनी इच्छाके बिना नहीं मरोगे ॥ ४६ ॥

ब्रह्मर्षेश्च भरद्वाजाद्द्रोण्यां द्रोणो व्यजायत।
द्रोणाज्जज्ञे महाराज द्रौणिश्च परमास्त्रवित् ॥ ४७ ॥

दूसरे वीर आचार्य द्रोण हैं, जो ब्रह्मर्षि भरद्वाजके वीर्यसे दोनेमें उत्पन्न हुए हैं। महाराज! इन्हीं आचार्य द्रोणसे वीर अश्वत्थामाकी उत्पत्ति हुई है, जो अस्त्रविद्याके बहुत बड़े पण्डित हैं ॥ ४७ ॥

कृपश्चाचार्यमुख्योऽयं महर्षेर्गौतमादपि।
शरस्तम्बोद्भवः श्रीमानवध्य इति मे मतिः ॥ ४८ ॥

आचार्योंमें प्रधान कृप भी महर्षि गौतमके अंशसे सरकण्डोंके समूहमें उत्पन्न हुए हैं। ये श्रीमान् आचार्यपाद अवध्य हैं, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ४८ ॥

अयोनिजं त्रयं ह्येतत्पिता माता च मातुलः।
अश्वत्थाम्नो महाराज स च शूरः स्थितो मम ॥ ४९ ॥

महाराज! अश्वत्थामाके ये पिता, माता और मामा तीनों ही अयोनिज हैं। अश्वत्थामा भी शूरवीर एवं मेरे पक्षमें स्थित हैं ॥ ४९ ॥

सर्व एते महाराज देवकल्पा महारथाः।
शक्रस्यापि व्यथां कुर्युः संयुगे भरतर्षभ ॥ ५० ॥

राजन्! ये सभी योद्धा देवताओंके समान पराक्रमी एवं महारथी हैं। हे भरतश्रेष्ठ! ये चारों वीर युद्धमें देवराज इन्द्रको भी पीड़ा दे सकते हैं ॥ ५० ॥

×

भीष्मद्रोणकृपाणां च तुल्यः कर्णो मतो मम ।
अनुज्ञातश्च रामेण मत्समोऽसीति भारत ॥ ५१ ॥

भीष्म, द्रोण और कृप इन तीनोंके समान पराक्रमी तो अकेला कर्ण ही है, यह मेरी मान्यता है। हे भारत! परशुरामजीने कर्णको शिक्षा देनेके पश्चात् घर लौटनेकी आज्ञा देते हुए यह कहा था कि तुम अस्त्रशस्त्रोंके ज्ञानमें मेरे समान हो ॥ ५१ ॥

कुण्डले रुचिरे चास्तां कर्णस्य सहजे शुभे ।
ते शच्यर्थे महेन्द्रेण याचितः स परंतपः ।
अमोघया महाराज शक्त्या परमभीमया ॥ ५२ ॥

इसके सिवा कर्णको जन्मके साथ ही दो सुन्दर और कल्याणकारी कुण्डल प्राप्त हुए थे परंतु देवराज इन्द्रने शत्रुओंको संताप देनेवाले वीरवर कर्णसे शचीके लिये वे दोनों कुण्डल माँग लिये। महाराज! कर्णने बदलेमें अत्यन्त भयंकर एवं अमोघ शक्ति लेकर वे कुण्डल दिये थे ॥ ५२ ॥

तस्य शक्त्योपगूढस्य कस्माज्जीवेद्धनंजयः ।
विजयो मे ध्रुवं राजन्फलं पाणाविवाहितम् ।
अभिव्यक्तः परेषां च कृत्स्नो भुवि पराजयः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार उस अमोघ शक्तिसे सुरक्षित कर्णके सामने युद्धके लिये आकर अर्जुन कैसे जीवित रह सकते हैं? राजन्! हाथपर रखे हुए फलकी भाँति विजयकी प्राप्ति तो मुझे अवश्य ही होगी। भारत! इस पृथ्वीपर मेरे शत्रुओंकी पूर्णतः पराजय तो इसीसे स्पष्ट है ॥ ५३ ॥

अह्ना ह्येकेन भीष्मोऽयमयुतं हन्ति भारत ।
तत्समाश्च महेष्वासा द्रोणद्रौणिकृपा अपि ॥ ५४ ॥
संशप्तानि च वृन्दानि क्षत्रियाणां परंतप ।
अर्जुनं वयमस्मान्वा धनंजय इति स्म ह ॥ ५५ ॥

कि ये पितामह भीष्म प्रतिदिन दस हजार विपक्षी योद्धाओंका संहार करेंगे परंतप! द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य भी उन्हींके समान महाधनुर्धर हैं। इनके सिवा संशप्तक नामक क्षत्रियोंके समूह भी मेरे ही पक्षमें हैं; जो यह कहते हैं कि या तो हमलोग अर्जुनको मार डालेंगे, या धनंजय अर्जुन ही हमें मार डालेंगे, तभी हमारे उनके युद्धकी समाप्ति होगी ॥ ५४-५५ ॥

तांश्चालमिति मन्यन्ते सव्यसाचिवधे विभो ।
पार्थिवाः स भवान्राजन्नकस्माद् व्यथते कथम् ॥ ५६ ॥

वे सब नरेश अर्जुनके वधका दृढ निश्चय कर चुके हैं और उसके लिये अपनेको पर्याप्त समझते हैं । ऐसी दशामें आप उन पाण्डवोंसे भयभीत हो अकस्मात् व्यथित क्यों हो उठते हैं ? ॥ ५६ ॥

भीमसेने च निहते कोऽन्यो युध्येत भारत ।
परेषां तन्ममाचक्ष्व यदि वेत्थ परंतप ॥ ५७ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतनन्दन ! अर्जुन और भीमसेनके मारे जानेपर शत्रुओंके दलमें दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो युद्ध कर सकेगा ? यदि आप किसीको जानते हों तो बताइये ॥ ५७ ॥

पञ्च ते भ्रातरः सर्वे धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ।
परेषां सप्त ये राजन्योधाः परमकं बलं ॥ ५८ ॥

राजन् ! पाँचों भाई पाण्डव, धृष्टद्युम्न और सात्यकि ये कुल सात योद्धा ही शत्रुपक्षके परम बल माने जाते हैं ॥ ५८ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये भीष्मद्रोणकृपादयः ।
द्रौणिर्वैकर्तनः कर्णः सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः ॥ ५९ ॥

प्रजानाथ ! हमलोगोंके पक्षमें जो विशिष्ट योद्धा हैं, उनकी संख्या अधिक है; यथा भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि; अश्वत्थामा, वैकर्तन कर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक ॥ ५९ ॥

प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः ।
दुःशासनो दुर्मुखश्च दुःसहश्च विशांपते ॥ ६० ॥

प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्त, शल्य, अवन्तीके दोनों राजकुमार विन्द और अनुविन्द, जयद्रथ, दुःशासन, दुर्मुख, दुःसह ॥ ६० ॥

श्रुतायुश्चित्रसेनश्च पुरुमित्रो विविंशतिः ।
शलो भूरिश्रवाश्चोभौ विकर्णश्च तवात्मजः ॥ ६१ ॥

श्रुतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल, भूरिश्रवा तथा आपका पुत्र विकर्ण । इस प्रकार अपने पक्षके प्रमुख वीरोंकी संख्या शत्रुओंके प्रमुख वीरोंसे तीन गुनी अधिक है ॥ ६१ ॥

अक्षौहिण्यो हि मे राजन्दशैका च समाहृता ।
न्यूनाः परेषां सप्तैव कस्मान्मे स्यात्पराजयः ॥ ६२ ॥

महाराज ! अपने यहाँ ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ संग्रहीत हो गयी हैं, फिर परंतु शत्रुओंके पक्षमें हमसे बहुत कम कुल सात अक्षौहिणी सेनाएँ हैं; फिर मेरी पराजय कैसे हो सकती है ? ॥ ६२ ॥

बलं त्रिगुणतो हीनं योध्यं प्राह बृहस्पतिः ।
परेभ्यस्त्रिगुणा चेयं मम राजन्ननीकिनी ॥ ६३ ॥

राजन् ! बृहस्पतिका कथन है कि शत्रुओंकी सेना अपनेसे एक तिहाई भी कम हो तो उसके साथ अवश्य युद्ध करना चाहिये । परंतु मेरी यह सेना तो शत्रुओंकी अपेक्षा चार अक्षौहिणी अधिक है, इसलिये यह अन्तर मेरी सम्पूर्ण सेनाकी एक तिहाईसे भी अधिक है ॥ ६३ ॥

गुणहीनं परेषां च बहु पश्यामि भारत ।
गुणोदयं बहुगुणमात्मनश्च विशां पते ॥ ६४ ॥

भारत ! प्रजानाथ ! मैं देख रहा हूँ कि शत्रुओंका बल हमारी अपेक्षा अनेक प्रकारसे गुणहीन और न्यूनतम है, परंतु मेरा अपना बल सब प्रकारसे बहुत अधिक एवं गुणशाली है ॥६४॥

एतत्सर्वं समाज्ञाय बलाग्र्यं मम भारत ।
न्यूनतां पाण्डवानां च न मोहं गन्तुमर्हसि ॥ ६५ ॥

भरतनन्दन ! इन सभी दृष्टियोंसे मेरा बल अधिक है और पाण्डवोंका बहुत कम है, यह सब जानकर आपका व्याकुल एवं अधीर होना उचित नहीं है ॥ ६५ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा संजयं भूयः पर्यपृच्छत भारत ।
विधित्सुः प्राप्तकालानि ज्ञात्वा परपुरंजयः ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ १९४१ ॥

वैशंपायन बोले— जनमेजय ! ऐसा कहकर शत्रुनगरके विजयी दुर्योधनने शत्रुओंकी स्थिति जान लेनेके पश्चात् समयोचित कर्तव्योंकी जानकारीके लिये पुनः संजयसे प्रश्न किया ॥६६॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ १९४१ ॥

: ५५ :

दुर्योधन उवाच

अक्षौहिणीः सप्त लब्ध्वा राजभिः सह संजय ।
किं स्विदिच्छति कौन्तेयो युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोले— संजय ! सात अक्षौहिणी सेना पाकर राजाओंसहित कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर युद्धकी इच्छासे अब कौनसा कार्य करना चाहते हैं ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

अतीव मुदितो राजन्युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमावपि न बिभ्यतः । ॥ २ ॥

संजय बोले— राजन् ! युधिष्ठिर युद्धकी अभिलाषासे मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं। भीमसेन, अर्जुन तथा दोनों भाई नकुल-सहदेव भी भयभीत नहीं हैं ॥ २ ॥

रथं तु दिव्यं कौन्तेयः सर्वा विभ्राजयन्दिशः ।
मन्त्रं जिज्ञासमानः सन्बीभत्सुः समयोजयत् ॥ ३ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने तो अस्त्रप्रयोगसम्बन्धी मन्त्रकी परीक्षाके लिये अपने दिव्य रथकी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उसे जोत रक्खा था ॥ ३ ॥

तमपश्याम संनद्धं मेघं विद्युत्प्रभं यथा ।
स मन्त्रान्समभिध्याय हृष्यमाणोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥

उस समय स्वर्णमय कवच धारण किये अर्जुन हमें बिजलीके प्रकाशसे सुशोभित मेघके समान दिखायी दे रहे थे। उन्होंने उन मन्त्रोंका सम्यक् चिन्तन करके हर्षसे उल्लसित होकर मुझसे कहा ॥ ४ ॥

पूर्वरूपमिदं पश्य वयं जेष्याम संजय ।
बीभत्सुर्मां यथोवाच तथावैम्यहमप्युत ॥ ५ ॥

संजय ! हमलोग युद्धमें अवश्य विजयी होंगे । उस विजयका यह पूर्वचिह्न अभीसे प्रकट हो रहा है। तुम भी देख लो । राजन् ! अर्जुनने मुझसे जैसा कहा था , वैसा ही मैं भी समझता हूँ ॥ ५ ॥

दुर्योधन उवाच

प्रशंसस्यभिनन्दंस्तान्पार्थानक्षपराजितान् ।
अर्जुनस्य रथे ब्रूहि कथमश्वाः कथं ध्वजाः ॥ ६ ॥

दुर्योधन बोले— संजय ! तुम तो जुएमें हारे हुए कुन्तीपुत्रोंका अभिनन्दन करते हुए उनकी बडी प्रशंसा करते हो । बताओ तो सही, अर्जुनके रथमें कैसे घोडे और कैसे ध्वज हैं ? ॥६॥

संजय उवाच

भौवनः सह शक्रेण बहुचित्रं विशां पते ।
रूपाणि कल्पयामास त्वष्टा धात्रा सहाभिभो ॥ ७ ॥

संजय बोले- प्रजानाथ ! विश्वकर्मा त्वष्टा तथा प्रजापतिने इन्द्रके साथ मिलकर अर्जुनके रथकी ध्वजामें अनेक प्रकारके रूपोंकी रचना की है ॥ ७ ॥

ध्वजे हि तस्मिन्रूपाणि चक्रुस्ते देवमायया।
महाधनानि दिव्यानि महान्ति च लघूनि च ॥ ८ ॥

उन तीनोंने देवमायाके द्वारा उस ध्वजमें छोटी-बडी अनेक प्रकारकी बहुमूल्य एवं दिव्य मूर्तियोंका निर्माण किया है ॥ ८ ॥

सर्वा दिशो योजनमात्रमन्तरं स तिर्यगूर्ध्वं च रुरोध वै ध्वजः।
न संसज्जेत्तरुभिः संवृतोऽपि तथा हि माया विहिता भौवनेन ॥ ९ ॥

उस ध्वजने एक योजनतक सम्पूर्ण दिशाओं तथा अगल-बगल एवं ऊपरके अवकाशको व्याप्त कर रक्खा था। विश्वकर्माने ऐसी माया रच रक्खी है कि वह ध्वज वृक्षोंसे आवृत अथवा अवरुद्ध होनेपर भी कहीं अटकता नहीं है ॥ ९ ॥

यथाकाशे शक्रधनुः प्रकाशते न चैकवर्णं न च विद्म किं नु तत्।
तथा ध्वजो विहितो भौवनेन बह्वाकारं दृश्यते रूपमस्य ॥ १० ॥

जैसे आकाशमें बहुरंगा इन्द्रधनुष प्रकाशित होता है और यह समझमें नहीं आता कि वह क्या है ? ठीक ऐसा ही विश्वकर्माका बनाया हुआ वह रंग-बिरंगा ध्वज है। उसका रूप अनेक प्रकारका दिखायी देता है ॥ १० ॥

यथाग्निधूमो दिवमेति रुद्ध्वा वर्णान्बिभ्रत्तैजसं तच्छरीरम्।
तथा ध्वजो विहितो भौवनेन न चेद्भारो भविता नोत रोधः ॥ ११ ॥

जैसे अग्निसहित धूम तेजोमयरूपी शरीर और रंग धारण करके सब ओर फैलकर ऊपर आकाशकी ओर बढता जाता है, उसी प्रकार विश्वकर्माने उस ध्वजका निर्माण किया है। उसके कारण रथपर कोई भार नहीं बढता है और न उसकी गतिमें कहीं कोई रुकावट ही पैदा होती है ॥ ११ ॥

श्वेतास्तस्मिन्वातवेगाः सदश्वा दिव्या युक्ताश्चित्ररथेन दत्ताः।
शतं यत्तत्पूर्यते नित्यकालं हतं हतं दत्तवरं पुरस्तात् ॥ १२ ॥

अर्जुनके उस रथमें वायुके समान वेगशाली दिव्य एवं उत्तम जातिके श्वेत अश्व जुते हुए हैं, जिन्हें गन्धर्वराज चित्ररथने दिया था। उस रथमें पूरे सौ घोडे सदा जुते रहते हैं। उनमेंसे यदि कोई मारा जाता है तो पहलेके दिये हुए वरके प्रभावसे नया घोडा उत्पन्न होकर उसके स्थानकी पूर्ति कर देता है ॥ १२ ॥

तथा राज्ञो दन्तवर्णा बृहन्तो रथे युक्ता भान्ति तद्वीर्यतुल्याः।
ऋश्यप्रख्या भीमसेनस्य वाहा रणे वायोस्तुल्यवेगा बभूवुः ॥ १३ ॥

राजा युधिष्ठिरके रथमें भी वैसे ही शक्तिशाली श्वेतवर्णके विशाल अश्व जुते हुए हैं, जो अत्यन्त सुशोभित होते हैं। भीमसेनके घोडोंका रंग हिरणके समान रंग-बिरंगा है। वे उनके रथमें जोंते जानेपर वायुके समान तीव्र वेगसे चलते हैं ॥ १३ ॥

कल्माषाङ्गास्तित्तिरिचित्रपृष्ठा भ्रात्रा दत्ताः प्रीयता फल्गुनेन ।
भ्रातुर्वीरस्य स्वैस्तुरङ्गैर्विशिष्टा मुदा युक्ताः सहदेवं वहन्ति ॥ १४ ॥

अर्जुनने प्रसन्न होकर अपने छोटे भाई सहदेवको जो अश्व प्रदान किये थे, जिनके सम्पूर्ण अङ्ग विचित्र रंगके हैं और पृष्ठभाग भी तीतर पक्षीके समान चितकबरे प्रतीत होते हैं तथा जो वीर भाई अर्जुनके अपने अश्वोंकी अपेक्षा भी उत्कृष्ट हैं, ऐसे सुन्दर अश्व बडी प्रसन्नताके साथ सहदेवके रथका भार वहन करते हैं ॥ १४ ॥

माद्रीपुत्रं नकुलं त्वाजमीढं महेन्द्रदत्ता हरयो वाजिमुख्याः ।
समा वायोर्बलवन्तस्तरस्विनो वहन्ति वीरं वृत्रशत्रुं यथेन्द्रम् ॥ १५ ॥

देवराज इन्द्रके दिये हुए हरे रंगके उत्तम घोडे, जो वायुके समान बलवान तथा वेगवान् हैं, वे अजमीढ कुलको हर्षित करनेवाले माद्रीकुमार वीर नकुलके रथका भार उसी प्रकार वहन करते हैं, जैसे पहले वे वृत्रशत्रु देवेन्द्रका भार वहन किया करते थे ॥ १५ ॥

तुल्याश्चैभिर्वयसा विक्रमेण जवेन चैवाप्रतिरूपाः सदश्वाः ।
सौभद्रादीन्द्रौपदेयान्कुमारान्वहन्त्यश्वा देवदत्ता बृहन्तः ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ १९५७ ॥

अवस्था और बल-पराक्रममें पूर्वोक्त अश्वोंके ही समान महान् वेगशाली, अत्यन्त सुन्दर रूप-रंगवाले देवों द्वारा दिए गए उत्तम जातिके बडे बडे अश्व सुभद्रानन्दन अभिमन्युसहित द्रौपदीके पुत्रोंका भार वहन करते हैं ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ १९५७ ॥

: ५६ :

धृतराष्ट्र उवाच

कांस्तत्र संजयापश्यः प्रत्यर्थेन समागतान् ।
ये योत्स्यन्ते पाण्डवार्थे पुत्रस्य मम वाहिनीम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुमने वहाँ युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये आये हुए किन-किन राजाओंको देखा था, जो पाण्डवोंके हितके लिये मेरे पुत्रकी सेनाके साथ युद्ध करेंगे ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

मुख्यमन्धकवृष्णीनामपश्यं कृष्णमागतम्।
चेकितानं च तत्रैव युयुधानं च सात्यकिम् ॥ २ ॥

संजय बोले— राजन्! मैंने वहाँ आए वृष्णि और अन्धकवंशके प्रधान पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण तथा चेकितान और युयुधान सात्यकिको देखा ॥ २ ॥

पृथगक्षौहिणीभ्यां तौ पाण्डवानभिसंश्रितौ।
महारथौ समाख्यातावुभौ पुरुषमानिनौ ॥ ३ ॥

अपनेको पौरुषशाली वीर माननेवाले वे दोनों विख्यात महारथी अलग-अलग एक-एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये हैं ॥ ३ ॥

अक्षौहिण्याथ पाञ्चाल्यो दशभिस्तनयैर्वृतः।
सत्यजित्प्रमुखैर्वीरैर्धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥ ४ ॥

पाञ्चालनरेश द्रुपद धृष्टद्युम्न और सत्यजित् आदि दस वीर पुत्रोंसे घिरी हुई पांचाल देश-की एक अक्षौहिणी सेना आई है ॥ ४ ॥

द्रुपदो वर्धयन्मानं शिखण्डिपरिपालितः।
उपायात्सर्वसैन्यानां प्रतिच्छाद्य तदा वपुः ॥ ५ ॥

शिखण्डीद्वारा सुरक्षित हो कवच आदिसे सम्पूर्ण सैनिकोंके शरीरोंको आच्छादित करके उन सबकी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ द्रुपदका मान बढानेके लिये वहाँ आये हुए हैं ॥ ५ ॥

विराटः सह पुत्राभ्यां शङ्खेनैवोत्तरेण च।
सूर्यदत्तादिभिर्वीरैर्मदिराक्षपुरोगमैः ॥ ६ ॥

राजा विराट अपने दो पुत्रों शङ्ख और उत्तरको साथ लिये, वीर सूर्यदत्त और मदिराक्ष आदि ॥ ६ ॥

सहितः पृथिवीपालो भ्रातृभिस्तनयैस्तथा।
अक्षौहिण्यैव सैन्यस्य वृतः पार्थं समाश्रितः ॥ ७ ॥

भ्राताओं और अन्य पुत्रोंके साथ एक अक्षौहिणी सेनासे घिरे हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी सहायताके लिये उपस्थित हैं ॥ ७ ॥

जारासंधिर्मागधश्च धृष्टकेतुश्च चेदिराट्।
पृथक्पृथगनुप्राप्तौ पृथगक्षौहिणीवृतौ ॥ ८ ॥

जरासंधकुमार मगधनरेश सहदेव तथा चेदिराज धृष्टकेतु—ये दोनों भी अलग-अलग एक-एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये हैं ॥ ८ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च सर्वे लोहितकध्वजाः ।
अक्षौहिणीपरिवृताः पाण्डवानभिसंश्रिताः ॥ ९ ॥

लाल रंगकी ध्वजावाले जो पाँचों भाई केकयराज कुमार हैं, वे सभी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवोंकी सेवामें उपस्थित हुए हैं ॥ ९ ॥

एतानेतावतस्तत्र यानपश्यं समागतान् ।
ये पाण्डवार्थे योत्स्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥ १० ॥

मैंने इन सबको इतनी सेनाओंके साथ वहाँ आया हुआ देखा है । ये लोग पाण्डवोंके हितके लिये दुर्योधनकी सेनाके साथ युद्ध करेंगे ॥ १० ॥

यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् ।
स तस्य सेनाप्रमुखे धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ११ ॥

जो मनुष्यों, देवताओं, गन्धर्वों तथा असुरोंकी भी व्यूहरचना प्रणालीको जानते हैं, वे महामनस्वी धृष्टद्युम्न पाण्डवपक्षकी सेनाके अग्रभागमें सेनापति होकर रहेंगे ॥ ११ ॥

भीष्मः शान्तनवो राजन्भागः क्लृप्तः शिखण्डिनः ।
तं विराटोऽनु संयाता सह मत्स्यैः प्रहारिभिः ॥ १२ ॥

राजन् ! शान्तनुनन्दन भीष्मके वधका कार्य शिखण्डीको सौंपा गया है । राजा विराट मत्स्यदेशीय योद्धाओंके साथ शिखण्डीकी सहायताके लिये उसका अनुसरण करेंगे ॥ १२ ॥

ज्येष्ठस्य पाण्डुपुत्रस्य भागो मद्राधिपो बली ।
तौ तु तत्राब्रुवन्केचिद्विषमौ नो मताविति ॥ १३ ॥

बलवान् मद्रनरेश शल्य ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरके हिस्सेमें पडे हैं–युधिष्ठिर ही उनके साथ युद्ध करेंगे । परंतु यह बँटवारा सुनकर कुछ लोग वहां बोल उठे थे कि ये दोनों तो हमें परस्पर समान शक्तिशाली नहीं जान पडते ॥ १३ ॥

दुर्योधनः सहसुतः सार्धं भ्रातृशतेन च ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भीमसेनस्य भागतः ॥ १४ ॥

अपने सौ भाईयों तथा पुत्रोंसहित दुर्योधन और पूर्व एवं दक्षिण दिशाके कौरवसैनिक भीमसेनका भाग नियत किये गये हैं ॥ १४ ॥

अर्जुनस्य तु भागेन कर्णो वैकर्तनो मतः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ १५ ॥

वैकर्तन कर्ण, अश्वत्थामा, विकर्ण और सिंधुराज जयद्रथ–ये सब अर्जुनके हिस्सेमें पडे हैं ॥ १५ ॥

अशक्याश्चैव ये केचित्पृथिव्यां शूरमानिनः ।
सर्वांस्तानर्जुनः पार्थः कल्पयामास भागतः ॥ १६ ॥

इनके सिवा और भी अपनेको शूरवीर माननेवाले जो कोई नरेश इस भूमण्डलमें अजेय माने जाते हैं, उन सबको कुन्तीकुमार अर्जुनने अपना भाग निश्चित किया है ॥ १६ ॥

महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः ।
केकयानेव भागेन कृत्वा योत्स्यन्ति संयुगे ॥ १७ ॥

पाँच भाई केकयराजकुमार भी महान् धनुर्धर हैं। वे समराङ्गणमें अपने विरोधी केकय-देशीय योद्धाओंको ही अपना भाग अर्थात् वध्य वैरी मानकर युद्ध करेंगे ॥ १७ ॥

तेषामेव कृतो भागो मालवाः शाल्वकेकयाः ।
त्रिगर्तानां च द्वौ मुख्यौ यौ तौ संशप्तकाविति ॥ १८ ॥

मालव, शाल्य तथा त्रिगर्तदेशके सैनिक और संशप्तकसेनाके दो प्रमुख वीर भी उन केकयराजकुमारोंके ही भाग नियत किये गये हैं ॥ १८ ॥

दुर्योधनसुताः सर्वे तथा दुःशासनस्य च ।
सौभद्रेण कृतो भागो राजा चैव बृहद्बलः ॥ १९ ॥

दुर्योधन तथा दुःशासनके सभी पुत्र और राजा बृहद्बल सुभद्रानन्दन अभिमन्युके हिस्सेमें पड़े हैं ॥ १९ ॥

द्रौपदेया महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
धृष्टद्युम्नमुखा द्रोणमभियास्यन्ति भारत ॥ २० ॥

भरतनन्दन ! सुवर्णनिर्मित ध्वजाओंसे युक्त महाधनुर्धर द्रौपदीपुत्र भी धृष्टद्युम्नके साथ द्रोणपर आक्रमण करेंगे ॥ २० ॥

चेकितानः सोमदत्तं द्वैरथे योद्धुमिच्छति ।
भोजं तु कृतवर्माणं युयुधानो युयुत्सति ॥ २१ ॥

चेकितान द्वैरथ-संग्राममें सोमदत्तके साथ युद्ध करना चाहते हैं। सात्यकि भोजवंशी कृतवर्माके साथ युद्ध करनेको उत्सुक हैं ॥ २१ ॥

सहदेवस्तु माद्रेयः शूरः संक्रन्दनो युधि ।
स्वमंशं कल्पयामास श्यालं ते सुबलात्मजम् ॥ २२ ॥

महाराज ! युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी शूरवीर माद्रीनन्दन सहदेवने आपके साले सुबल-पुत्र शकुनिको अपना भाग निश्चित किया है ॥ २२ ॥

उलूकं चैव कैतव्यं ये च सारस्वता गणाः ।
नकुलः कल्पयामास भागं माद्रवतीसुतः ॥ २३ ॥

उस धूर्त जुआरी शकुनिका पुत्र जो उलूक है तथा जो सारस्वतप्रदेशके सैनिक हैं, उन सबको माद्रीकुमार नकुलने अपना भाग नियत किया है ॥ २३ ॥

ये चान्ये पार्थिवा राजन्प्रत्युद्यास्यन्ति संयुगे ।
समाह्वानेन तांश्चापि पाण्डुपुत्रा अकल्पयन् ॥ २४ ॥

राजन् ! दूसरे भी जो-जो नरेश आपकी ओरसे युद्धमें पदार्पण करेंगे, उन सबका भी नाम ले-लेकर पाण्डवोंने उन्हें अपना भाग निश्चित किया है ॥ २४ ॥

एवमेषामनीकानि प्रविभक्तानि भागशः ।
यत्ते कार्यं सपुत्रस्य क्रियतां तदकालिकम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार पाण्डवोंकी सेनाएँ पृथक्-पृथक् भागोंमें बँटी हुई हैं। अब पुत्रोंसहित आपका जो कर्तव्य हो, उसे अविलम्ब पूरा करें ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

न सन्ति सर्वे पुत्रा मे मूढा दुर्द्यूतदेविनः ।
येषां युद्धं बलवता भीमेन रणमूर्धनि ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र बोले— संजय ! समरभूमिके प्रमुख भागमें बलवान् भीमसेनके साथ जिनका युद्ध होनेवाला है, वे कपटपूर्ण जुआ खेलनेवाले मेरे सभी मूर्ख पुत्र अब नहींके बराबर हैं ॥ २६ ॥

राजानः पार्थिवाः सर्वे प्रोक्षिताः कालधर्मणा ।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्यन्ति पतंगा इव पावकम् ॥ २७ ॥

भूमण्डलके समस्त राजाओंका वध करनेके लिये मानो कालधर्मा यमराजने उनका प्रोक्षण संस्कार किया है; अतः जैसे पतंगे आगमें गिरते हैं, वैसे ही ये सब नरेश गाण्डीव धनुषकी आगमें समा जायँगे ॥ २७ ॥

विद्रुतां वाहिनीं मन्ये कृतवैरैर्महात्मभिः ।
तां रणे केऽनुयास्यन्ति प्रभग्नां पाण्डवैर्युधि ॥ २८ ॥

मैं तो समझता हूँ; जिनका हमलोगोंके साथ वैर ठन है, वे महात्मा पाण्डव समराङ्गणमें हमारी विशाल सेनाको अवश्य मार भगायेंगे । । खदेड़ी हुई उस सेनाका अनुसरण अथवा सहयोग कौन कर सकेंगे ? ॥

सर्वे ह्यतिरथाः शूराः कीर्तिमन्तः प्रतापिनः ।
सूर्यपावकयोस्तुल्यास्तेजसा समितिंजयाः ॥ २९ ॥

समस्त पाण्डव अतिरथी, शूरवीर, यशस्वी, प्रतापी, युद्धविजयी तथा अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी हैं ॥ २९ ॥

येषां युधिष्ठिरो नेता गोप्ता च मधुसूदनः ।
योधौ च पाण्डवौ वीरौ सव्यसाचिवृकोदरौ ॥ ३० ॥

संजय ! युधिष्ठिर जिनके नेता हैं, भगवान् मधुसूदन जिनके रक्षक हैं, पाण्डुपुत्र वीरवर अर्जुन और भीमसेन जिनके प्रमुख योद्धा हैं ॥ ३० ॥

नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
सात्यकिर्द्रुपदश्चैव धृष्टद्युम्नस्य चात्मजः ॥ ३१ ॥

नकुल, सहदेव, पृषत्वंशी धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रुपद, धृष्टकेतु, तथा धृष्टद्युम्नके पुत्र ॥३१॥

उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ।
शिखण्डी क्षत्रदेवश्च तथा वैराटिरुत्तरः ॥ ३२ ॥

पाञ्चालदेशीय उत्तमौजा, दुर्जय युधामन्यु, शिखण्डी, क्षत्रदेव, विराटकुमार उत्तर, ॥३२॥

काशयश्चेदयश्चैव मत्स्याः सर्वे च सृंजयाः ।
विराटपुत्र बभ्रुश्च पाञ्चालाश्च प्रभद्रकाः ॥ ३३ ॥

काशी, चेदि तथा मत्स्यदेशके सैनिक, सृंजयवंशी क्षत्रिय, विराटकुमार बभ्रु तथा पाञ्चालदेशीय प्रभद्रकगण ॥ ३३ ॥

येषामिन्द्रोऽप्यकामानां न हरेत्पृथिवीमिमाम् ।
वीराणां रणधीराणां ये भिन्द्युः पर्वतानपि ॥ ३४ ॥

जिनके पक्षमें युद्धके लिये उद्यत हैं, जिनकी इच्छाके बिना देवराज इन्द्र भी इस पृथ्वीका अपहरण नहीं कर सकते, जो वीर तथा रणधीर हैं, जो पर्वतोंको भी विदीर्ण कर सकते हैं ॥ ३४ ॥

तान्सर्वान्गुणसम्पन्नानमनुष्यप्रतापिनः ।
क्रोशतो मम दुष्पुत्रो योद्धुमिच्छति संजय ॥ ३५ ॥

जिनका प्रताप देवताओंके समान है तथा जो समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं, उन्हीं पाण्डवोंके साथ मेरा दुष्ट पुत्र दुर्योधन मेरे चीखते चिल्लाते हुए भी युद्ध करना चाहता है ॥ ३५ ॥

दुर्योधन उवाच

उभौ स्व एकजातीयौ तथोभौ भूमिगोचरौ ।
अथ कस्मात्पाण्डवानामेकतो मन्यसे जयम् ॥ ३६ ॥

दुर्योधन बोले– पिताजी ! हम कौरव तथा पाण्डव दोनों एक ही जातिके हैं और दोनों इसी भूमिपर रहते हैं । फिर एकमात्र पाण्डवोंकी ही विजय होगी, यह धारणा आपने कैसे बना ली ? ॥ ३६ ॥

पितामहं च द्रोणं च कृपं कर्णं च दुर्जयम् ।
जयद्रथं सोमदत्तमश्वत्थामानमेव च ॥ ३७ ॥

तात ! पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, दुर्जय वीर कर्ण, जयद्रथ, सोमदत्त तथा अश्वत्थामा ॥ ३७ ॥

सुचेतसो महेष्वासानिन्द्रोऽपि सहितोऽमरैः ।
अशक्तः समरे जेतुं किं पुनस्तात पाण्डवाः ॥ ३८ ॥

ये सभी उत्तम बुद्धिमान् और महान् धनुर्धर हैं ,देवताओंसहित इन्द्र भी इन्हें युद्धमें जीत नहीं सकते; फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३८ ॥

सर्वा च पृथिवी सृष्टा मदर्थे तात पाण्डवान् ।
आर्यान्धृतिमतः शूरानग्निकल्पान्प्रबाधितुम् ॥ ३९ ॥

तात ! यह सारी पृथ्वी मेरे लिये ही बनी है । ये सभी वीर, आर्य, धैर्यशील अग्निके समान तेजस्वी पाण्डवोंको रोकनेमें समर्थ हैं ॥ ३९ ॥

न मामकान्पाण्डवास्ते समर्थाः प्रतिवीक्षितुम् ।
पराक्रान्तो ह्यहं पाण्डून्सपुत्रान्योद्धुमाहवे ॥ ४० ॥

पाण्डव मेरे पक्षके इन वीरोंकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी समर्थ नहीं हैं । पुत्रोंसहित पाण्डवोंके साथ मैं अकेला ही समराङ्गणमें युद्ध करनेकी शक्ति रखता हूँ ॥ ४० ॥

मत्प्रियं पार्थिवाः सर्वे ये चिकीर्षन्ति भारत ।
ते तानावारयिष्यन्ति ऐणेयानिव तन्तुना ॥ ४१ ॥

भरतनन्दन ! जो भूपाल मेरा प्रिय करना चाहते हैं, वे सब उन पाण्डवोंको आगे बढनेसे उसी प्रकार रोक देंगे जैसे फंदेसे हिरनेके बच्चोंको रोका जाता है ॥ ४१ ॥

महता रथवंशेन शरजालैश्च मामकैः ।
अभिद्रुता भविष्यन्ति पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ४२ ॥

मेरे पक्षकी विशाल रथसेना तथा मेरे सैनिकोंके बाणसमूहोंसे आहत होकर पाञ्चाल और पाण्डव भाग खडे होंगे ॥ ४२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

उन्मत्त इव मे पुत्रो विलपत्येष संजय।
न हि शक्तो युधा जेतुं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ४३ ॥

धृतराष्ट्र बोले— संजय! मेरा यह पुत्र पागलके समान प्रलाप कर रहा है। यह युद्धमें धर्मराज युधिष्ठिरको कभी जीत नहीं सकता ॥ ४३ ॥

जानाति हि सदा भीष्मः पाण्डवानां यशस्विनाम्।
बलवत्तां सपुत्राणां धर्मज्ञानां महात्मनाम् ॥ ४४ ॥

पुत्रोंसहित धर्मज्ञ एवं यशस्वी महात्मा पाण्डव कितने बलशाली हैं, इस बातको भीष्म अच्छी तरह जानते हैं ॥ ४४ ॥

यतो नारोचयमहं विग्रहं तैर्महात्मभिः।
किं तु संजय मे ब्रूहि पुनस्तेषां विचेष्टितम् ॥ ४५ ॥

इसीलिये मुझे उन महात्माओंके साथ युद्ध छेडनेकी बात पसंद नहीं आयी। संजय! तुम पुनः मेरे सामने पाण्डवोंकी चेष्टाका वर्णन करो ॥ ४५ ॥

कस्तांस्तरस्विनो भूयः संदीपयति पाण्डवान्।
अर्चिष्मतो महेष्वासान्हविषा पावकानिव ॥ ४६ ॥

कौन ऐसा वीर है, जो वेगशाली और तेजस्वी महाधनुर्धर पाण्डवोंको बार बार उसी प्रकार उत्तेजित किया करता है जैसे घीकी आहुति डालनेसे आग प्रज्वलित हो उठती है ॥४६॥

संजय उवाच

धृष्टद्युम्नः सदैवैतान् संदीपयति भारत।
युध्यध्वमिति मा भैष्ट युद्धाद्भरतसत्तमाः ॥ ४७ ॥

संजय बोले— भारत! धृष्टद्युम्न सदा ही इन पाण्डवोंको उत्तेजित करते रहते हैं। वे कहते हैं, भरतकुलभूषण पाण्डवो! आपलोग युद्ध करें, उससे तनिक भी भयभीत न हों ॥ ४७ ॥

ये केचित्पार्थिवास्तत्र धार्तराष्ट्रेण संवृताः।
युद्धे समागमिष्यन्ति तुमुले कवचह्रदे ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके द्वारा एकत्र किये हुए जो जो नरेश अस्त्रशस्त्रोंकी मारकाटसे व्याप्त हुए भयानक संग्राममें मेरे सामने आयेंगे ॥ ४८ ॥

तान्सर्वानाह्वये क्रुद्धान्सानुबन्धान्समागतान् ।
अहमेकः समादास्ये तिमिर्मत्स्यानिवौदकान् ॥ ४९ ॥

वे कितने ही क्रोधमें भरे हुए क्यों न हों, सगे सम्बन्धियोंसहित रणभूमिमें आये हुए उन सभी राजाओंको मैं अकेला ही उसी प्रकार वशमें कर लूँगा, जैसे तिमिङ्गल नामक महामत्स्य जलकी दूसरी मछलियोंको निगल जाता है ॥ ४९ ॥

भीष्मं द्रोणं कृपं कर्णं द्रौणिं शल्यं सुयोधनम् ।
एतांश्चापि निरोत्स्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ५० ॥

भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य तथा दुर्योधन इन सबको मैं उसी भाँति आगे बढ़नेसे रोक दूँगा, जैसे किनारा समुद्रको रोके रखता है ॥ ५० ॥

तथा ब्रुवाणं धर्मात्मा प्राह राजा युधिष्ठिरः ।
तव धैर्यं च वीर्यं च पाञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
सर्वे समधिरूढाः स्म संग्रामान्नः समुद्धर ॥ ५१ ॥

इस प्रकार बोलते हुए धृष्टद्युम्नसे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने कहा— महाबाहो ! पाण्डवोंसहित समस्त पाञ्चाल वीर तुम्हारे धैर्य और पराक्रमका ही आश्रय लेकर युद्धके लिये उद्यत हुए हैं, इसलिये तुम्हीं इस संग्रामसे हमलोगोंका उद्धार करो ॥ ५१ ॥

जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ।
समर्थमेकं पर्याप्तं कौरवाणां युयुत्सताम् ।
भवता यद्विधातव्यं तन्नः श्रेयः परंतप ॥ ५२ ॥

मैं जानता हूँ कि तुम क्षत्रियधर्ममें प्रतिष्ठित हो और युद्धकी इच्छावाले समस्त कौरवोंके लिए अकेले ही तुम पर्याप्त हो । हे परंतप ! तुम जो कुछ करोगे, वही हमारे लिये मङ्गलकारी होगा ॥ ५२ ॥

संग्रामादपयातानां भग्नानां शरणैषिणाम् ।
पौरुषं दर्शयञ्शूरो यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ।
क्रीणीयात्तं सहस्रेण नीतिमन्नाम तत्पदम् ॥ ५३ ॥

जो वीर पुरुष अपना पौरुष प्रकट करते हुए युद्धभूमिसे पराजित होकर भागे हुए शरणार्थी सैनिकोंके सामने खडा होता और उनके भयका निवारण करता है, उसे सहस्रोंकी सम्पत्ति देकर भी खरीद ले अपने पक्षमें कर ले; यही नीतिज्ञ पुरुषोंका मत है ॥ ५३ ॥

स त्वं शूरश्च वीरश्च विक्रान्तश्च नरर्षभ ।
भयार्तानां परित्राता संयुगेषु न संशयः ॥ ५४ ॥

नरश्रेष्ठ ! इसमें संदेह नहीं कि तुम शूर, वीर और पराक्रमी हो तथा युद्धमें भयसे पीडित हुए सैनिकोंकी रक्षा कर सकते हो ॥ ५४ ॥

एवं ब्रुवति कौन्तेये धर्मात्मनि युधिष्ठिरे ।
धृष्टद्युम्न उवाचेदं मां वचो गतसाध्वसः ॥ ५५ ॥

धर्मात्मा कुन्तीकुमार युधिष्ठिर जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय धृष्टद्युम्नने भयरहित मुझसे यह वचन कहा ॥ ५५ ॥

सर्वाञ्जनपदान्सूत योधा दुर्योधनस्य ये ।
सबाह्लीकान्कुरून्ब्रूयाः प्रातिपेयाञ्शरद्वतः ॥ ५६ ॥

सूत ! वहाँ दुर्योधनके जितने योद्धा हैं, उनसे, समस्त देशवासियोंसे, बाह्लीक आदि प्रतीपवंशी कौरवोंसे, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यसे, ॥ ५६ ॥

सूतपुत्रं तथा द्रोणं सहपुत्रं जयद्रथम् ।
दुःशासनं विकर्णं च तथा दुर्योधनं नृपम् ॥ ५७ ॥

सूतपुत्र कर्णसे, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामासे तथा जयद्रथ, दुःशासन, विकर्ण, राजा दुर्योधन ॥ ५७ ॥

भीष्मं चैव ब्रूहि गत्वा त्वमाशु युधिष्ठिरं साधुनैवाभ्युपेत ।
मा वो वधीदर्जुनो देवगुप्तः
क्षिप्रं याचध्वं पाण्डवं लोकवीरम् ॥ ५८ ॥

और भीष्मसे भी शीघ्र जाकर मेरा यह संदेश कहो । वह संदेश इस प्रकार है— कौरवो ! राजा युधिष्ठिर सद्‌व्यवहारसे ही वशमें किये जा सकते हैं, युद्धसे नहीं । ऐसा अवसर न आने दो कि देवताओंद्वारा सुरक्षित वीरवर अर्जुन तुमलोगोंका वध कर डालें । विश्वविख्यात वीर पाण्डुकुमार अर्जुनसे क्षमायाचना करो ॥ ५८ ॥

नैतादृशो हि योधोऽस्ति पृथिव्यामिह कश्चन ।
यथाविधः सव्यसाची पाण्डवः शस्त्रवित्तमः ॥ ५९ ॥

सव्यसाची पाण्डुपुत्र अर्जुन जैसे शस्त्रोंके ज्ञाता हैं, वैसा योद्धा इस भूमण्डलमें दूसरा कोई नहीं है ॥ ५९ ॥

देवैर्हि सम्भृतो दिव्यो रथो गाण्डीवधन्वनः ।
न स जेयो मनुष्येण मा स्म कृध्वं मनो युधि ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ २०१७ ॥

गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले वीर अर्जुनका दिव्य रथ देवताओंद्वारा सुरक्षित है। कोई भी मनुष्य उन्हें जीत नहीं सकता, अतः तुमलोग अपने मनको युद्धकी ओर न जाने दो ॥ ६० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ २०१७ ॥

: ५७ :

धृतराष्ट्र उवाच

क्षत्रतेजा ब्रह्मचारी कौमारादपि पाण्डवः ।
तेन संयुगमेष्यन्ति मन्दा विलपतो मम ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— संजय ! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर क्षात्रतेजसे सम्पन्न हैं। उन्होंने कुमारावस्थासे ही विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन किया है, परंतु मेरे ये मूर्ख पुत्र मेरे विलापकी ओर ध्यान न देकर उन्हीं युधिष्ठिरके साथ युद्ध छेडनेवाले हैं ॥ १ ॥

दुर्योधन निवर्तस्व युद्धाद्भरतसत्तम ।
न हि युद्धं प्रशंसन्ति सर्वावस्थमरिंदम ॥ २ ॥

भरतकुलभूषण शत्रुदमन दुर्योधन! तुम युद्धसे निवृत्त हो जाओ। श्रेष्ठ पुरुष किसी भी दशामें युद्धकी प्रशंसा नहीं करते हैं ॥ २ ॥

अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम् ।
प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिंदम ॥ ३ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर! तुम पाण्डवोंको उनका यथोचित राज्यभाग दे दो। बेटा! मन्त्रियोंसहित तुम्हारे जीवननिर्वाहके लिये तो आधा राज्य पर्याप्त ही है ॥ ३ ॥

एतद्धि कुरवः सर्वे मन्यन्ते धर्मसंहितम् ।
यत्त्वं प्रशान्तिमिच्छेथाः पाण्डुपुत्रैर्महात्मभिः ॥ ४ ॥

समस्त कौरव यही धर्मानुकूल समझते हैं कि तुम महात्मा पाण्डवोंके साथ संधि करके आपसमें शान्ति बनाये रखनेकी बात स्वीकार कर लो ॥ ४ ॥

×

अङ्गेमां समवेक्षस्व पुत्र स्वामेव वाहिनीम्।
जात एव तव स्रावस्त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ॥ ५ ॥

वत्स! तुम इस अपनी ही सेनाकी ओर दृष्टिपात करो। यह तुम्हारा विनाशकाल ही उपस्थित हुआ है, परंतु तुम मोहवश इस बातको समझ नहीं रहे हो ॥ ५ ॥

न ह्यहं युद्धमिच्छामि नैतदिच्छति बाह्लिकः।
न च भीष्मो न च द्रोणो नाश्वत्थामा न संजयः ॥ ६ ॥
न सोमदत्तो नो शल्यो न कृपो युद्धमिच्छति।
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवास्तथा ॥ ७ ॥

देखो, न तो मैं युद्ध करना चाहता हूँ, न बाह्लीक इसकी इच्छा रखते हैं और न भीष्म, न द्रोण, न अश्वत्थामा, न संजय, न सोमदत्त, न शल्य तथा न कृपाचार्य ही युद्ध करना चाहते हैं। सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय और भूरिश्रवा भी युद्धके पक्षमें नहीं हैं ॥ ६-७ ॥

येषु सम्प्रतितिष्ठेयुः कुरवः पीडिताः परैः।
ते युद्धं नाभिनन्दन्ति तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥ ८ ॥

शत्रुओंसे पीडित होनेपर कौरवसैनिक जिनके आश्रयमें खडे हो सकते हैं, वे ही लोग युद्धका अनुमोदन नहीं कर रहे हैं। तात! उनके इस विचारको तुम्हें भी पसंद करना चाहिये ॥ ८ ॥

न त्वं करोषि कामेन कर्णः कारयिता तव।
दुःशासनश्च पापात्मा शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ९ ॥

मैं जानता हूँ, तुम अपनी इच्छासे युद्ध नहीं कर रहे हो, अपितु पापात्मा दुःशासन, कर्ण तथा सुबलपुत्र शकुनि ही तुमसे यह कार्य करा रहे हैं ॥ ९ ॥

दुर्योधन उवाच

नाहं भवति न द्रोणे नाश्वत्थाम्नि न संजये।
न विकर्णे न काम्बोजे न कृपे न च बाह्लिके ॥ १० ॥

दुर्योधन बोला— पिताजी! मैं न आप, न द्रोणाचार्य, न अश्वत्थामा, न संजय, न कर्ण, न काम्बोजनरेश, न कृपाचार्य, न बाह्लीक पर आश्रित हूँ ॥ १० ॥

सत्यव्रते पुरुमित्रे भूरिश्रवसि वा पुनः।
अन्येषु वा तावकेषु भारं कृत्वा समाह्वये ॥ ११ ॥

मैंने सत्यव्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा अथवा आपके अन्यान्य योद्धाओंपर सारा बोझ रखकर पाण्डवोंको युद्धके लिये आमन्त्रित नहीं किया है ॥ ११ ॥

अहं च तात कर्णश्च रणयज्ञं वितत्य वै ।
युधिष्ठिरं पशुं कृत्वा दीक्षितौ भरतर्षभ ॥ १२ ॥

तात ! भरतश्रेष्ठ ! मैंने तथा कर्णने रणयज्ञका विस्तार करके युधिष्ठिरको बलिपशु बनाकर उस यज्ञकी दीक्षा ले ली है ॥ १२ ॥

रथो वेदी स्रुवः खड्गो गदा स्रुक्कवचं सदः ।
चातुर्होत्रं च धुर्या मे शरा दर्भा हविर्यशः ॥ १३ ॥

इसमें रथ ही वेदी है, खड्ग स्रुवा है, गदा स्रुक् है, कवच मृगचर्म है, रथका भार वहन करनेवाले मेरे चारों घोडे ही चार होता हैं, बाण कुश हैं, और यश ही हविष्य है ॥१३॥

आत्मयज्ञेन नृपते इष्ट्वा वैवस्वतं रणे ।
विजित्य स्वयमेष्यावो हतामित्रौ श्रिया वृतौ ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! हम दोनों समराङ्गणमें अपने इस यज्ञके द्वारा यमराजका यजन करके शत्रुओंको मारकर विजयी हो विजय लक्ष्मीसे शोभा पाते हुए पुनः राजधानीमें लौटेंगे ॥ १४ ॥

अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ।
एते वयं हनिष्यामः पाण्डवान्समरे त्रयः ॥ १५ ॥

तात ! मैं, कर्ण तथा भाई दुःशासन हम तीन ही समरभूमिमें पाण्डवोंका संहार कर डालेंगे ॥ १५ ॥

अहं हि पाण्डवान्हत्वा प्रशास्ता पृथिवीमिमाम् ।
मां वा हत्वा पाण्डुपुत्रा भोक्तारः पृथिवीमिमाम् ॥ १६ ॥

या तो मैं ही पाण्डवोंको मारकर इस पृथ्वीका शासन करूँगा या पाण्डव ही मुझे मारकर भूमण्डलका राज्य भोगेंगे ॥ १६ ॥

त्यक्तं मे जीवितं राजन्धनं राज्यं च पार्थिव ।
न जातु पाण्डवैः सार्धं वसेयमहमच्युत ॥ १७ ॥

राज्यच्युत न होनेवाले महाराज ! मैं जीवन, राज्य, धन सब छोड सकता हूँ, परंतु पाण्डवोंके साथ मिलकर कदापि नहीं रह सकता ॥ १७ ॥

यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण मारिष ।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति ॥ १८ ॥

पूज्य पिताजी ! तीखी सूईके अग्रभागसे जितनी भूमि विंध सकती है, उतनी भी मैं पाण्डवोंको नहीं दे सकता ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वान्वस्तात शोचामि त्यक्तो दुर्योधनो मया।
ये मन्दमनुयास्यध्वं यान्तं वैवस्वतक्षयम् ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र बोले– तात कौरवगण ! दुर्योधनको तो मैंने त्याग दिया। यमलोकको जाते हुए उस मूर्खका तुम लोगोंमेंसे जो अनुसरण करेंगे, मैं उन सभी लोगोंके लिये शोकमें पडा हुआ हूँ ॥ १९ ॥

रुरूणामिव यूथेषु व्याघ्राः प्रहरतां वराः।
वरान्वरान्हनिष्यन्ति समेता युधि पाण्डवाः ॥ २० ॥

प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ व्याघ्र जैसे रुरु नामक मृगोंके झुंडोंमें घुसकर बडों बडोंको मार डालते हैं, उसी प्रकार योद्धाओंमें अग्रगण्य पाण्डव युद्धमें एकत्र होकर कौरवोंके प्रधान प्रधान वीरोंका वध कर डालेंगे ॥ २० ॥

प्रतीपमिव मे भाति युयुधानेन भारती।
व्यस्ता सीमन्तिनी त्रस्ता प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥ २१ ॥

मुझे तो प्रतीत हो रहा है कि पुरुषसे तिरस्कृत हुई नारीकी भांति इस भरतवंशियोंकी सेनाको विशाल बांहोंवाले वीर सात्यकिने अपने अधिकारमें करके रौंद डाला है और वह अब विपरीत दिशाकी ओर अस्तव्यस्त दशामें भागी जा रही है ॥ २१ ॥

सम्पूर्णं पूरयन्भूयो धनं पार्थस्य माधवः।
शैनेयः समरे स्थाता बीजवत्प्रवपञ्शरान् ॥ २२ ॥

मधुवंशी शनिपुत्र सात्यकि युधिष्ठिरके भरे-पूरे बल वैभवको और भी बढाते हुए, जैसे किसान खेतोंमें बीज बोता है, उसी प्रकार समर-भूमिमें बाण बिखेरते हुए खडे होंगे ॥ २२ ॥

सेनामुखे प्रयुद्धानां भीमसेनो भविष्यति।
तं सर्वे संश्रयिष्यन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥ २३ ॥

सेनामें समस्त पाण्डव योद्धाओंके आगे भीमसेन खडे होंगे और समस्त योद्धा उन्हें भय-रहित प्राकार चहारदीवारीके समान मानकर उन्हींका आश्रय लेंगे ॥ २३ ॥

यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरान्विनिपातितान्।
विशीर्णदन्तान्गिर्याभान्भिन्नकुम्भान्सशोणितान् ॥ २४ ॥

भीमसेनके द्वारा मारे गये, तोडे गए दांतोंवाले, टूटे हुए सिरोंवाले तथा खूनसे लथपथ पर्वतके समान हाथियोंको जब तुम देखोगे ॥ २४ ॥

तानभिप्रेक्ष्य संग्रामे विशीर्णानिव पर्वतान् ।
भीतो भीमस्य संस्पर्शात्स्मर्तासि वचनस्य मे ॥ २५ ॥

और रणभूमिमें टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतोंके समान उन्हें देखकर और भीमसेनके स्पर्शसे भी भयभीत होकर मेरी कही हुई बातोंको याद करोगे ॥ २५ ॥

निर्दग्धं भीमसेनेन सैन्यं हतरथद्विपम् ।
गतिमग्नेरिव प्रेक्ष्य स्मर्तासि वचनस्य मे ॥ २६ ॥

भीमसेन जब घोडे, रथ और हाथियोंसे भरी हुई सारी कौरवसेनाको अपनी क्रोधाग्निसे दग्ध करने लगेंगे, उस समय अग्निके समान उनका प्रबल वेग देखकर तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी ॥ २६ ॥

महद्वो भयमागामि न चेच्छाम्यथ पाण्डवैः ।
गदया भीमसेनेन हताः शममुपैष्यथ ॥ २७ ॥

तुमलोगोंपर बहुत बडा भय आनेवाला है । मैं नहीं चाहता कि पाण्डवोंके साथ तुम्हारा युद्ध हो । यदि हो गया तो तुमलोग भीमसेनकी गदासे मारे जाकर सदाके लिये शान्त हो जाओगे ॥ २७ ॥

महावनमिव छिन्नं यदा द्रक्ष्यसि पातितम् ।
बलं कुरूणां संग्रामे तदा स्मर्तासि मे वचः ॥ २८ ॥

काटकर गिराये हुए विशाल वनकी भाँति जब तुम कौरवसेनाको भीमसेनके द्वारा मार गिरायी हुई देखोगे, तब तुम्हें मेरे वचनोंका स्मरण हो आयेगा ॥ २८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतावदुक्त्वा राजा तु स सर्वान्पृथिवीपतीन् ।
अनुभाष्य महाराज पुनः पप्रच्छ संजयम् ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ २०४६ ॥

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रने वहाँ बैठे हुए समस्त भूपालोंसे उपर्युक्त बातें कहकर उन्हें समझा-बुझाकर पुनः संजयसे पूछा ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ २०४५ ॥

: ५८ :

धृतराष्ट्र उवाच

यदब्रूतां महात्मानो वासुदेवधनंजयौ।
तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—महाप्राज्ञ संजय ! महात्मा भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने जो कुछ कहा हो, वह मुझे बताओ; मैं तुम्हारे मुखसे उनके संदेश सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्यथा दृष्टौ मया कृष्णधनंजयौ।
ऊचतुश्चापि यद्वीरौ तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ २ ॥

संजयने कहा— हे भरतवंशी नरेश ! सुनिये। मैंने वीरवर श्रीकृष्ण और अर्जुनको जैसे देखा है और उन्होंने जो संदेश दिया है, वह आपको बता रहा हूं ॥ २ ॥

पादाङ्गुलीरभिप्रेक्षन्प्रयतोऽहं कृताञ्जलिः।
शुद्धान्तं प्राविशं राजन्नाख्यातुं नरदेवयोः ॥ ३ ॥

राजन् ! मैं नरदेव श्रीकृष्ण और अर्जुनसे आपका संदेश सुनानेके लिये मनको पूर्णतः संयममें रखकर अपने पैरोंकी अङगुलियोंपर ही दृष्टि लगाये और हाथ जोडे हुए उनके अन्तःपुरम गया ॥ ३ ॥

नैवाभिमन्युर्न यमौ तं देशमभियान्ति वै।
यत्र कृष्णौ च कृष्णा च सत्यभामा च भामिनी ॥ ४ ॥

जहाँ श्रीकृष्ण, अर्जुन, द्रौपदी और भामिनी सत्यभामा विराज रही थीं, उस स्थानमें कुमार अभिमन्यु तथा नकुल सहदेव भी नहीं जा सकते थे ॥ ४ ॥

उभौ मध्वासवक्षीबावुभौ चन्दनरूषितौ।
स्रग्विणौ वरवस्त्रौ तौ दिव्याभरणभूषितौ ॥ ५ ॥

वे दोनों मित्र मधुर पेय पीकर आनन्दविभोर हो रहे थे। उन दोनोंके श्रीअङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। वे सुन्दर वस्त्र और मनोहर पुष्पमाला धारण करके दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ५ ॥

नैकरत्नविचित्रं तु काञ्चनं महदासनम्।
विविधास्तरणास्तीर्णं यत्रासातामरिंदमौ ॥ ६ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर जिस विशाल आसनपर बैठे थे, वह सोनेका बना हुआ था। उसमें अनेक प्रकारके रत्न जटित होनेके कारण उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। उसपर भांति-भांतिके सुन्दर बिछौने बिछे हुए थे ॥ ६ ॥

अर्जुनोत्सङ्गगौ पादौ केशवस्योपलक्षये ।
अर्जुनस्य च कृष्णायां सत्यायां च महात्मनः ॥ ७ ॥

मैंने देखा, श्रीकृष्णके दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें थे और महात्मा अर्जुनका एक पैर द्रौपदीकी तथा दूसरा सत्यभामाकी गोदमें था ॥ ७ ॥

काञ्चनं पादपीठं तु पार्थो मे प्रादिशत्तदा ।
तदहं पाणिना स्पृष्ट्वा ततो भूमावुपाविशम् ॥ ८ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने उस समय मुझे बैठनके लिये एक सोनेका पादपीठ—पैर रखनेके पीढे की ओर संकेत कर दिया, परंतु मैं हाथसे उसका स्पर्शमात्र करके पृथ्वीपर ही बैठ गया ॥८॥

ऊर्ध्वरेखतलौ पादौ पार्थस्य शुभलक्षणौ ।
पादपीठादपहृतौ तत्रापश्यमहं शुभौ ॥ ९ ॥

बैठ जानेपर वहाँ मैंने पादपीठसे हटाये हुए अर्जुनके दोनों सुन्दर चरणोंको ध्यानपूर्वक देखा, उनके तलुओंमें ऊर्ध्वगामिनी रेखाएँ दृष्टिगोचर हो रही थीं और वे दोनों पैर शुभ-सूचक विविध लक्षणोंसे सम्पन्न थे ॥ ९ ॥

श्यामौ बृहन्तौ तरुणौ शालस्कन्धाविवोद्गतौ ।
एकासनगतौ दृष्ट्वा भयं मां महदाविशत् ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों श्यामवर्ण, बडे डील-डौलवाले, तरुण तथा शालवृक्षके स्कन्धोंके समान उन्नत हैं। उन दोनोंको एक आसनपर बैठे देख मेरे मनमें बडा भय समा गया ॥ १० ॥

इन्द्रविष्णुसमावेतौ मन्दात्मा नावबुध्यते ।
संश्रयाद् द्रोणभीष्माभ्यां कर्णस्य च विकत्थनात् ॥ ११ ॥

मैंने सोचा, इन्द्र और विष्णुके समान अचिन्त्य शक्तिशाली इन दोनों वीरोंको द्रोणाचार्य और भीष्मका भरोसा करके तथा कर्णकी डींगभरी बातें सुनकर मोहित हो कर मन्दबुद्धि दुर्योधन नहीं समझ पाता है ॥ ११ ॥

निदेशस्थाविमौ यस्य मानसस्तस्य लेत्स्यते ।
संकल्पो धर्मराजस्य निश्चयो मे तदाभवत् ॥ १२ ॥

ये दोनों महात्मा जिनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सदा उद्यत रहते हैं, उन धर्मराज युधिष्ठिरका मानसिक संकल्प अवश्य सिद्ध होगा; यही उस समय मेरा निश्चय हुआ था ॥ १२ ॥

सत्कृतश्चान्नपानाभ्यामाच्छन्नो लब्धसत्क्रियः ।
अञ्जलिं मूर्ध्नि संधाय तौ संदेशमचोदयम् ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् अन्न और जलके द्वारा मेरा सत्कार किया गया । यथोचित आदरसत्कार पाकर जब मैं बैठा, तब माथेपर अञ्जलि जोडकर मैंने उन दोनोंसे आपका संदेश कह सुनाया ॥ १३ ॥

धनुर्बाणोचितेनैकपाणिना शुभलक्षणम् ।
पादमानमयन्पार्थः केशवं समचोदयत् ॥ १४ ॥

तब अर्जुनने, जिसमें धनुषकी डोरीकी रगडसे चिह्न बन गया था, उस हाथसे भगवान् श्रीकृष्णके शुभसूचक लक्षणोंसे युक्त चरणको धीरे धीरे दबाते हुए उन्हें मुझको उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया ॥ १४ ॥

इन्द्रकेतुरिवोत्थाय सर्वाभरणभूषितः ।
इन्द्रवीर्योपमः कृष्णः संविष्टो माभ्यभाषत ॥ १५ ॥

तदनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी तथा समस्त आभूषणोंसे विभूषित श्रीकृष्ण इन्द्रध्वजके समान उठ बैठे और मुझसे बोले ॥ १५ ॥

वाचं स वदतां श्रेष्ठो ह्लादिनीं वचनक्षमाम् ।
त्रासनीं धार्तराष्ट्राणां मृदुपूर्वां सुदारुणाम् ॥ १६ ॥

मुझसे पहले तो मृदुल एवं मनको अह्लाद प्रदान करनेवाली प्रवचनयोग्य वाणी बोले । फिर वह वाणी अत्यन्त दारुणरूपमें प्रकट हुई, जो आपके पुत्रोंके लिये भय उपस्थित करनेवाली थी ॥ १६ ॥

वाचं तां वचनार्हस्य शिक्षाक्षरसमन्विताम् ।
अश्रौषमहमिष्टार्थां पश्चाद् हृदयशोषिणीम् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् बातचीतमें कुशल भगवान् श्रीकृष्णकी वह वाणी मेरे सुननेमें आयी, जिसका एक एक अक्षर शिक्षाप्रद था । वह अभीष्ट अर्थका प्रतिपादन करनेवाली तथा मनको सुखानेवाली थी ॥ १७ ॥

वासुदेव उवाच

संजयेदं वचो ब्रूया धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
शृण्वतः कुरुमुख्यस्य द्रोणस्यापि च शृण्वतः ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— संजय ! जब कुरुकुलके प्रधान पुरुष भीष्म तथा आचार्य द्रोण भी सुन रहे हों, उसी समय तुम बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रसे यह बात कहना ॥ १८ ॥

यजध्वं विपुलैर्यज्ञैर्विप्रेभ्यो दत्त दक्षिणाः ।
पुत्रैर्दारैश्च मोदध्वं महद्वो भयमागतम् ॥ १९ ॥

कौरवो ! नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान आरम्भ करो, ब्राह्मणोंको दक्षिणाएँ दो, पुत्रों और स्त्रियोंसे मिलजुलकर आनन्द भोग लो; क्योंकि तुम्हारे ऊपर बहुत बडा भय आ पहुँचा है ॥ १९ ॥

अर्थांस्त्यजत पात्रेभ्यः सुतान्प्राप्नुत कामजान् ।
प्रियं प्रियेभ्यश्चरत राजा हि त्वरते जये ॥ २० ॥

तुम सुपात्र व्यक्तियोंको धनका दान दे लो, अपनी इच्छाके अनुसार पुत्र पैदा कर लो तथा अपने प्रेमीजनोंका प्रिय कार्य सिद्ध कर लो; क्योंकि राजा युधिष्ठिर अब तुमलोगोंपर विजय पानेके लिये उतावले हो रहे हैं ॥ २० ॥

ऋणमेतत्प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति ।
यद्गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ॥ २१ ॥

जिस समय कौरवसभामें द्रौपदीका वस्त्र खींचा जा रहा था, मैं हस्तिनापुरसे बहुत दूर था। उस समय कृष्णाने आर्तभावसे गोविन्द कहकर जो मुझे पुकारा था, उसका मेरे ऊपर बहुत बडा ऋण है और यह ऋण बढता ही जा रहा है। अपराधी कौरवोंका संहार किये बिना उसका भार मेरे हृदयसे दूर नहीं हो सकता ॥ २१ ॥

तेजोमयं दुराधर्षं गाण्डीवं यस्य कार्मुकम् ।
मद्द्वितीयेन तेनेह वैरं वः सव्यसाचिना ॥ २२ ॥

जिनके पास अजेय तेजस्वी गाण्डीव नामक धनुष है और जिनका मित्र या सहायक दूसरा मैं हूँ, उन्हीं सव्यसाची अर्जुनके साथ यहाँ तुमने वैर बढाया है ॥ २२ ॥

मद्द्वितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमिच्छति ।
यो न कालपरीतो वाप्यपि साक्षात्पुरंदरः ॥ २३ ॥

जिसको कालने सब ओरसे घेर न लिया हो, ऐसा कौन पुरुष, भले ही साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, उस अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है, जिसका सहायक दूसरा मैं हूँ ॥ २३ ॥

बाहुभ्यामुद्वहेद्भूमिं दहेत्क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत्त्रिदिवाद्देवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ २४ ॥

जो अर्जुनको युद्धमें जीत ले, वह अपनी दोनों भुजाओंपर इस पृथ्वीको उठा सकता है, कुपित होकर इन समस्त प्रजाओंको भस्म कर सकता है और सम्पूर्ण देवताओंको स्वर्गसे नीचे गिरा सकता है ॥ २४ ॥

देवासुरमनुष्येषु यक्षगन्धर्वभोगिषु ।
न तं पश्याम्यहं युद्धे पाण्डवं योऽभ्ययाद्रणे ॥ २५ ॥

देवताओं, असुरों, मनुष्यों, यक्षों, गन्धर्वों तथा नागोंमें भी मुझे कोई ऐसा वीर नहीं दिखायी देता, जो पाण्डुनन्दन अर्जुनका सामना कर सके ॥ २५ ॥

यत्तद्विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ २६ ॥

विराटनगरमें अकेले अर्जुन और बहुतसे कौरवोंका जो अद्भुत और महान् संग्राम सुना जाता है, वही मेरे उपर्युक्त कथनकी सत्यताका पर्याप्त प्रमाण है ॥ २६ ॥

एकेन पाण्डुपुत्रेण विराटनगरे यदा ।
भग्नाः पलायन्त दिशः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ २७ ॥

जब विराटनगरमें एकमात्र पाण्डुकुमार अर्जुनसे पराजित हो तुम लोगोंने भागकर विभिन्न दिशाओंकी शरण ली थी, वह एक ही दृष्टान्त अर्जुनकी प्रबलताका पर्याप्त प्रमाण है ॥ २७ ॥

बलं वीर्यं च तेजश्च शीघ्रता लघुहस्तता ।
अविषादश्च धैर्यं च पार्थान्नान्यत्र विद्यते ॥ २८ ॥

बल, पराक्रम, तेज, शीघ्रकारिता, हाथोंकी फुर्ती, विषादहीनता तथा धैर्य ये सभी सद्गुण कुन्तीपुत्र अर्जुनके सिवा एक साथ दूसरे किसी पुरुषमें नहीं हैं ॥ २८ ॥

संजय उवाच

इत्यब्रवीद्धृषीकेशः पार्थमुद्धर्षयन्गिरा ।
गर्जन्समयवर्षीव गगने पाकशासनः ॥ २९ ॥

संजय बोले— जैसे इन्द्र आकाशमें गर्जता हुआ समयपर वर्षा करता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको अपनी वाणीसे आनन्दित करते हुए उपर्युक्त बात कही ॥ २९ ॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा किरीटी श्वेतवाहनः ।
अर्जुनस्तन्महद्वाक्यमब्रवील्लोमहर्षणम् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ २०७६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुनकर किरीटधारी श्वेतवाहन अर्जुनने भी उसी रोमाञ्चकारी महावाक्यको दुहरा दिया ॥ ३० ॥

॥ महाभारतमें उद्योगपर्वके अठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ २०७६ ॥

: ५९ :

वैशम्पायन उवाच

संजयस्य वचः श्रुत्वा प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ।
ततः संख्यातुमारेभे तद्वचो गुणदोषतः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले—जनमेजय ! संजयकी बात सुनकर प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रने उसके वचनके गुणदोषका विवेचन आरम्भ किया ॥ १ ॥

प्रसंख्याय च सौक्ष्म्येण गुणदोषान्विचक्षणः ।
यथावन्मतितत्त्वेन जयकामः सुतान्प्रति ॥ २ ॥

अपने पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले विद्वान् एवं बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने बुद्धितत्त्वके द्वारा उक्त वचनके सूक्ष्मसे सूक्ष्म गुणदोषोंकी यथावत् समीक्षा करके ॥ २ ॥

बलाबले विनिश्चित्य याथातथ्येन बुद्धिमान् ।
शक्तिं संख्यातुमारेभे तदा वै मनुजाधिपः ॥ ३ ॥

दोनों पक्षोंकी प्रबलता एवं निर्बलताका यथार्थरूपसे निश्चय कर लिया । तब उन नरेशने पुनः कौरवों और पाण्डवोंकी शक्तिपर विचार करना आरम्भ किया ॥ ३ ॥

देवमानुषयोः शक्त्या तेजसा चैव पाण्डवान् ।
कुरूञ्शक्त्याल्पतरया दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ४ ॥

पाण्डवोंमें दैवी शक्ति, मानवी शक्ति तथा तेज इन सभी दृष्टियोंसे उत्कृष्टता प्रतीत हुई और कौरवपक्षकी शक्ति अल्प जान पडी, इस प्रकार विचार करके धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे कहा ॥४॥

दुर्योधनेयं चिन्ता मे शश्वन्नाप्युपशाम्यति ।
सत्यं ह्येतदहं मन्ये प्रत्यक्षं नानुमानतः ॥ ५ ॥

वत्स दुर्योधन ! मेरी यह चिन्ता कभी दूर नहीं होती है, क्योंकि तुम्हारा पक्ष दुर्बल है । मैं यह बात अनुमानसे नहीं कहता हूँ, प्रत्यक्ष देख रहा हूँ; अतः इसको सत्य मानता हूँ ॥ ५ ॥

आत्मजेषु परं स्नेहं सर्वभूतानि कुर्वते ।
प्रियाणि चैषां कुर्वन्ति यथाशक्ति हितानि च ॥ ६ ॥

संसारके समस्त प्राणी अपने पुत्रोंपर अत्यन्त स्नेह करते हैं तथा अपनी शक्तिके अनुसार इनका प्रिय एवं हितसाधन करते हैं ॥ ६ ॥

एवमेवोपकर्तॄणां प्रायशो लक्षयामहे ।
इच्छन्ति बहुलं सन्तः प्रतिकर्तुं महत्प्रियम् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार प्रायः यह भी देखता हूँ कि साधु पुरुष उपकारी मनुष्योंके उपकारका बदला चुकानेके लिये उनका बारंबार महान् प्रिय कार्य करना चाहते हैं ॥ ७ ॥

अग्निः साचिव्यकर्ता स्यात्खाण्डवे तत्कृतं स्मरन् ।
अर्जुनस्यातिभीमेऽस्मिन्कुरुपाण्डुसमागमे ॥ ८ ॥

कौरव-पाण्डवोंके इस भयंकर संग्राममें अग्निदेव भी खाण्डववनमें अर्जुनके किये हुए उपकारको याद करके उनकी सहायता अवश्य करेंगे ॥ ८ ॥

जातगृध्याभिपन्नाश्च पाण्डवानामनेकशः ।
धर्मादयो भविष्यन्ति समाहूता दिवौकसः ॥ ९ ॥

इसके सिवा पाण्डवोंका जन्म अनेक देवताओंसे हुआ है, इसलिये अपने जाति बांधवोंके प्रेमसे युक्त होकर वे धर्म आदि देवता युधिष्ठिर आदिके बुलानेपर उनकी सहायताके लिये अवश्य पधारेंगे ॥ ९ ॥

भीष्मद्रोणकृपादीनां भयादशनिसंमितम् ।
रिरक्षिषन्तः संरम्भं गमिष्यन्तीति मे मतिः ॥ १० ॥

भीष्म, द्रोण और कृप आदिके भयसे पाण्डवोंकी रक्षा चाहते हुए देवतालोग भीष्म आदिपर वज्रके समान भयंकर क्रोध करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १० ॥

ते देवसहिताः पार्था न शक्याः प्रतिवीक्षितुम् ।
मानुषेण नरव्याघ्रा वीर्यवन्तोऽस्त्रपारगाः ॥ ११ ॥

नरश्रेष्ठ पाण्डव अस्त्रविद्याके पारङ्गत और पराक्रमी हैं, देवताओंके सहयोगको भी प्राप्त हुए उनकी ओर कोई मनुष्य आँख उठाकर देख भी नहीं सकता ॥ ११ ॥

दुरासदं यस्य दिव्यं गाण्डीवं धनुरुत्तमम् ।
वारुणौ चाक्षयौ दिव्यौ शरपूर्णौ महेषुधी ॥ १२ ॥

जिसके पास उत्तम एवं दुर्धर्ष दिव्य गाण्डीव धनुष है, वरुणके दिये हुए बाणोंसे भरे दो दिव्य अक्षय तूणीर हैं ॥ १२ ॥

वानरश्च ध्वजो दिव्यो निःसङ्गो धूमवद्गतिः ।
रथश्च चतुरन्तायां यस्य नास्ति समस्त्विषा ॥ १३ ॥

जिसका दिव्य वानरध्वज कहीं भी अटकता नहीं है, धूमकी भांति अप्रतिहत गतिसे सर्वत्र जा सकता है, समुद्रपर्यन्त समूची पृथ्वीपर जिसके रथके तेजकी समानता करनेवाला दूसरा कोई रथ नहीं है ॥ १३ ॥

महामेघनिभश्चापि निर्घोषः श्रूयते जनैः ।
महाशनिसमः शब्दः शात्रवाणां भयंकरः ॥ १४ ॥

जिसके रथका घर्घर शब्द सब लोगोंको महान् मेघोंकी गर्जनाके समान सुनायी पडता है तथा वज्रकी गडगडाहटके समान शत्रुसैनिकोंके मनमें भयका संचार कर देता है ॥ १४ ॥

यं चातिमानुषं वीर्ये कृत्स्नो लोको व्यवस्यति ।
देवानामपि जेतारं यं विदुः पार्थिवा रणे ॥ १५ ॥

जिसे सब लोग अलौकिक पराक्रमी मानते हैं, समस्त राजा भी जिसे युद्धमें देवताओं तकको पराजित करनेमें समर्थ समझते हैं ॥ १५ ॥

शतानि पञ्च चैवेषूनुद्वपन्निव दृश्यते ।
निमेषान्तरमात्रेण मुञ्चन्दूरं च पातयन् ॥ १६ ॥

जो पलक मारते मारते पांच सौ बाणोंको हाथमें लेता, छोडता और दूरस्थ लक्ष्योंको भी मार गिराता है; जो बाणोंको पृथ्वीमें बोता हुआ सा दीखता है ॥ १६ ॥

यमाह भीष्मो द्रोणश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च ।
मद्रराजस्तथा शल्यो मध्यस्था ये च मानवाः ॥ १७ ॥

जिसके विषयमें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य तथा तटस्थ मनुष्य भी ऐसा कहते हैं ॥ १७ ॥

युद्धायावस्थितं पार्थं पार्थिवैरतिमानुषैः ।
अशक्यं रथशार्दूलं पराजेतुमरिंदमम् ॥ १८ ॥

कि युद्धके लिये खडे हुए शत्रुदमन रथीश्रेष्ठ अर्जुनको पराजित करना अमानुषिक शक्ति रखनेवाले भूमिपालोंके लिये भी असम्भव है ॥ १८ ॥

क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्च बाणशतानि यः ।
सदृशं बाहुवीर्येण कार्तवीर्यस्य पाण्डवम् ॥ १९ ॥

जो एक वेगसे पांच सौ बाण चलाता है तथा जो बाहुबलमें कार्तवीर्य अर्जुनके समान है ॥ १९ ॥

तमर्जुनं महेष्वासं महेन्द्रोपेन्द्ररक्षितम् ।
निघ्नन्तमिव पश्यामि विमर्देऽस्मिन्महामृधे ॥ २० ॥

इन्द्र और विष्णुके समान पराक्रमी उस महाधनुर्धर पाण्डुनन्दन अर्जुनको मैं इस महासमरमें शत्रुसेनाओंका संहार करता हुआसा देख रहा हूं ॥ २० ॥

इत्येवं चिन्तयन्कृत्स्नमहोरात्राणि भारत।
अनिद्रो निःसुखश्चास्मि कुरूणां शमचिन्तया ॥ २१ ॥

भारत! मैं दिनरात यही सब सोचते सोचते नींद नहीं ले पाता हूं। कुरुवंशियोंमें कैसे शान्ति बनी रहे? इस चिन्तासे मेरा सारा सुख छिन गया है ॥ २१ ॥

क्षयोदयोऽयं सुमहान्कुरूणां प्रत्युपस्थितः।
अस्य चेत्कलहस्यान्तः शमादन्यो न विद्यते ॥ २२ ॥

कौरवोंके लिये यह महान् विनाशका अवसर उपस्थित हुआ है। तात! यदि इस कलहका अन्त करनेके लिये संधिके सिवा और कोई उपाय नहीं है ॥ २२ ॥

शमो मे रोचते नित्यं पार्थैस्तात न विग्रहः।
कुरुभ्यो हि सदा मन्ये पाण्डवाञ्शक्तिमत्तरान् ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ २०९९ ॥

तो मुझे सदा संधिकी बात अच्छी लगती है; कुन्तीपुत्रोंके साथ युद्ध छेडना ठीक नहीं है। मैं सदा पाण्डवोंको कौरवोंसे अधिक शक्तिशाली मानता हूं ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ २०९९ ॥

: ६० :

वैशम्पायन उवाच

पितुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः।
आधाय विपुलं क्रोधं पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय! पिताकी यह बात सुनकर अत्यन्त असहिष्णु दुर्योधनने भीतर-ही-भीतर भारी क्रोध करके पुनः इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

अशक्या देवसचिवाः पार्थाः स्युरिति यद्भवान्।
मन्यते तद्भयं व्येतु भवतो राजसत्तम ॥ २ ॥

नृपश्रेष्ठ! आप जो ऐसा मानते हैं कि कुन्तीके पुत्रोंको जीतना असम्भव है, क्योंकि देवता उनके सहायक हैं, यह ठीक नहीं है। आपके मनसे यह भय निकल जाना चाहिये ॥ २ ॥

अकामद्वेषसंयोगाद्द्रोहाल्लोभाच्च भारत।
उपेक्षया च भावानां देवा देवत्वमाप्नुवन् ॥ ३ ॥

भरतनन्दन! काम राग, द्वेष, संयोग, ममता, लोभ, द्रोह और क्रोधरूपी दोषोंसे रहित होनेके कारण तथा दूषित भावोंकी उपेक्षा कर देनेके कारण ही देवताओंने देवत्व प्राप्त किया है ॥ ३ ॥

इति द्वैपायनो व्यासो नारदश्च महातपाः।
जामदग्न्यश्च रामो नः कथामकथयत्पुरा ॥ ४ ॥

यह बात पूर्वकालमें द्वैपायन व्यास, महातपस्वी नारद तथा जमदग्निनन्दन परशुरामने हमलोगोंको बतायी थी ॥ ४ ॥

नैव मानुषवद्देवाः प्रवर्तन्ते कदाचन।
कामाल्लोभादनुक्रोशाद्द्वेषाच्च भरतर्षभ ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ! देवता मनुष्योंकी भाँति काम, क्रोध, लोभ और द्वेषभावसे किसी कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते हैं ॥ ५ ॥

यदि ह्यग्निश्च वायुश्च धर्म इन्द्रोऽश्विनावपि।
कामयोगात्प्रवर्तेरन्न पार्था दुःखमाप्नुयुः ॥ ६ ॥

यदि अग्नि, वायु, धर्म, इन्द्र तथा दोनों अश्विनीकुमार भी कामनाके वशीभूत होकर सब कार्योंमें प्रवृत्त होने लग जाते, तब तो कुन्तीपुत्रोंको कभी दुःख उठाना ही नहीं पडता ॥ ६ ॥

तस्मान्न भवता चिन्ता कार्यैषा स्यात्कदाचन।
दैवेष्वपेक्षका ह्येते शश्वद्भावेषु भारत ॥ ७ ॥

अतः, हे भरतनन्दन! आप किसी प्रकार भी ऐसी चिन्ता न करें; क्योंकि देवता सदा दिव्यभाव शम आदिकी ही अपेक्षा रखते हैं, काम क्रोध आदि आसुरभावोंकी नहीं ॥ ७ ॥

अथ चेत्कामसंयोगाद्द्वेषाल्लोभाच्च लक्ष्यते।
देवेषु देवप्रामाण्यं नैव तद्विक्रमिष्यति ॥ ८ ॥

तथापि यदि देवताओंमें कामनावश द्वेष और लोभ लक्षित होता है तो उनमें देवत्वका अभाव हो जानेके कारण उनकी वह शक्ति हमलोगोंपर कोई प्रभाव नहीं दिखा सकेगी, क्योंकि देवोंमें देवभावकी प्रधानता है ॥ ८ ॥

मयाभिमन्त्रितः शश्वज्जातवेदाः प्रशाम्यति।
दिधक्षुः सकलाँल्लोकान्परिक्षिप्य समन्ततः ॥ ९ ॥

वैसे तो मुझमें भी दैवबल है ही; यदि मैं अभिमन्त्रित कर दूँ तो सदा सम्पूर्ण लोकोंको जलाकर भस्म कर डालनेकी इच्छासे प्रज्वलित हुई आग भी सब ओरसे सिमिटकर मेरी प्रशंसा करने लग जाए ॥ ९ ॥

यद्वा परमकं तेजो येन युक्ता दिवौकसः।
ममाप्यनुपमं भूयो देवेभ्यो विद्धि भारत ॥ १० ॥

भारत! यदि कोई ऐसा उत्कृष्ट तेज है, जिससे देवता युक्त हैं, तो मुझे भी देवताओंसे ही अनुपम तेज प्राप्त हुआ है, यह आप अच्छी तरह जान लें ॥ १० ॥

प्रदीर्यमाणां वसुधां गिरीणां शिखराणि च।
लोकस्य पश्यतो राजन्स्थापयाम्यभिमन्त्रणात् ॥ ११ ॥

राजन् ! मैं सब लोगोंके देखते देखते विदीर्ण होती हुई पृथ्वी तथा टूटकर गिरते हुए पर्वत-शिखरोंको भी मन्त्रबलसे अभिमन्त्रित करके पहलेकी भांति स्थापित कर सकता हूं ॥ ११॥

चेतनाचेतनस्यास्य जङ्गमस्थावरस्य च।
विनाशाय समुत्पन्नं महाघोरं महास्वनम् ॥ १२ ॥

इस चेतन-अचेतन और स्थावर-जङ्गम जगत्के विनाशके लिये प्रकट हुई महान् कोलाहलकारी ॥ १२ ॥

अश्मवर्षं च वायुं च शमयामीह नित्यशः।
जगतः पश्यतोऽभीक्ष्णं भूतानामनुकम्पया ॥ १३ ॥

भयंकर शिलावृष्टि अथवा आँधीको भी मैं सदा समस्त प्राणियोंपर दया करके सबके देखते देखते यहीं शान्त कर सकता हूँ ॥ १३ ॥

स्तम्भितास्वप्सु गच्छन्ति मया रथपदातयः।
देवासुराणां भावानामहमेकः प्रवर्तिता ॥ १४ ॥

मेरे द्वारा स्तम्भित किये हुए जलके ऊपर रथ और पैदल सेनाएँ चल सकती हैं। एकमात्र मैं ही दैव तथा आसुर शक्तियोंको प्रकट करनेमें समर्थ हूं ॥ १४ ॥

अक्षौहिणीभिर्यान्देशान्यामि कार्येण केनचित्।
तत्रापो मे प्रवर्तन्ते यत्र यत्राभिकामये ॥ १५ ॥

मैं किसी कार्यके उद्देश्यसे जिन-जिन देशोंमें अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ लेकर जाता हूं, उनमें जहाँ-जहाँ मेरी इच्छा होती है, उन सभी स्थानोंमें मेरे लिये जल आदि सभी उपभोगके पदार्थ उपस्थित हो जाते हैं ॥ १५ ॥

भयानि विषये राजन्व्यालादीनि न सन्ति मे।
मत्तः सुप्तानि भूतानि न हिंसन्ति भयंकराः ॥ १६ ॥

मेरे राज्यमें सर्प आदि भयंकर जीव-जन्तु नहीं हैं। यदि कोई भयंकर प्राणी हों तो भी वे मेरे मन्त्रोंद्वारा सोए हुए जीव जन्तु कभी हिंसा नहीं करते ॥ १६ ॥

निकामवर्षी पर्जन्यो राजन्विषयवासिनाम्।
धर्मिष्ठाश्च प्रजाः सर्वा ईतयश्च न सन्ति मे ॥ १७ ॥

महाराज ! मेरे राज्यमें रहनेवाली प्रजाओंके लिये बादल प्रचुर जल बरसाता है, सम्पूर्ण प्रजाएँ धर्ममें तत्पर रहती हैं तथा मेरे राष्ट्रमें अनावृष्टि और अतिवृष्टि आदि किसी प्रकारका भी उपद्रव नहीं है ॥ १७ ॥

अश्विनावथ वाय्वग्नी मरुद्भिः सह वृत्रहा ।
धर्मश्चैव मया द्विष्टान्नोत्सहन्तेऽभिरक्षितुम् ॥ १८ ॥

जिनसे मैं द्वेष रखता हूं, उनकी रक्षाका साहस अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, मरुद्गणोंसहित इन्द्र तथा धर्ममें भी नहीं है ॥ १८ ॥

यदि ह्येते समर्थाः स्युर्मद्द्विषस्त्रातुमोजसा ।
न स्म त्रयोदश समाः पार्था दुःखमवाप्नुयुः ॥ १९ ॥

यदि ये लोग अनायास ही मेरे शत्रुओंकी रक्षा करनेमें समर्थ होते तो कुन्तीके पुत्र तेरह वर्षोंतक कष्ट नहीं भोगते ॥ १९ ॥

नैव देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः ।
शक्तास्त्रातुं मया द्विष्टं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २० ॥

पिताजी ! मैं आपसे यह सत्य कहता हूं कि न देवता, न गन्धर्व, न असुर तथा नाही राक्षस भी मेरे शत्रुकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं ॥ २० ॥

यदभिध्याम्यहं शश्वच्छुभं वा यदि वाशुभम् ।
नैतद्विपन्नपूर्वं मे मित्रेष्वरिषु चोभयोः ॥ २१ ॥

मैं अपने मित्रों और शत्रुओं दोनोंके विषयमें शुभ या अशुभ जैसा भी चिन्तन करता हूं, वह पहले कभी निष्फल नहीं हुआ है ॥ २१ ॥

भविष्यतीदमिति वा यद्ब्रवीमि परंतप ।
नान्यथा भूतपूर्वं तत्सत्यवागिति मां विदुः ॥ २२ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज ! मैं जो बात मुंहसे कह देता हूं कि यह इसी प्रकार होगा, मेरा वह कथन पहले कभी भी मिथ्या नहीं हुआ है । इसीलिये लोग मुझे सत्यवादी मानते हैं ॥ २२ ॥

लोकसाक्षिकमेतन्मे माहात्म्यं दिक्षु विश्रुतम् ।
आश्वासनार्थं भवतः प्रोक्तं न श्लाघया नृपः ॥ २३ ॥

राजन् ! मेरा यह माहात्म्य सब लोगोंकी आंखोंके समक्ष है; सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रसिद्ध है। मैंने आपके आश्वासनके लिये ही इसकी यहां चर्चा की है, आत्मप्रशंसा करनेके लिये नहीं ॥ २३ ॥

×

न ह्यहं श्लाघनो राजन्भूतपूर्वः कदाचन ।
असदाचरितं ह्येतद्यदात्मानं प्रशंसति ॥ २४ ॥

महाराज ! आजसे पहले मैंने कभी भी आत्मप्रशंसा नहीं की है; क्योंकि मनुष्य जो अपनी प्रशंसा करता है, यह अच्छे पुरुषोंका कार्य नहीं है ॥ २४ ॥

पाण्डवांश्चैव मत्स्यांश्च पाञ्चालान्केकयैः सह ।
सात्यकिं वासुदेवं च श्रोतासि विजितान्मया ॥ २५ ॥

आप किसी दिन सुनेंगे कि मैंने पाण्डवोंको, मत्स्यदेशके योद्धाओंको, केकयोंसहित पाञ्चालोंको तथा सात्यकि और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको भी जीत लिया है ॥ २५ ॥

सरितः सागरं प्राप्य यथा नश्यन्ति सर्वशः ।
तथैव ते विनङ्क्ष्यन्ति मामासाद्य सहान्वयाः ॥ २६ ॥

जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलकर सब प्रकारसे अपना अस्तित्व खो बैठती हैं, उसी प्रकार वे पाण्डव आदि योद्धा मेरे पास आनेपर अपने कुल-परिवारसहित नष्ट हो जायेंगे ॥ २६ ॥

परा बुद्धिः परं तेजो वीर्यं च परमं मयि ।
परा विद्या परो योगो मम तेभ्यो विशिष्यते ॥ २७ ॥

मेरी बुद्धि उत्तम है, तेज उत्कृष्ट है, बल-पराक्रम महान् है, विद्या बडी है तथा उद्योग भी सबसे बढकर है । ये सारी वस्तुएँ पाण्डवोंकी अपेक्षा मुझमें अधिक हैं ॥ २७ ॥

पितामहश्च द्रोणश्च कृपः शल्यः शलस्तथा ।
अस्त्रेषु यत्प्रजानन्ति सर्वं तन्मयि विद्यते ॥ २८ ॥

पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, शल्य तथा शल ये लोग अस्त्रविद्याके विषयमें जो कुछ जानते हैं, वह सारा ज्ञान मुझमें विद्यमान है ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वा संजयं भूयः पर्यपृच्छत भारत ।
ज्ञात्वा युयुत्सुः कार्याणि प्राप्तकालमरिंदम ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ २१२८ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले भरतवंशी जनमेजय ! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर धृतराष्ट्रने युद्धकी इच्छा रखनेवाले दुर्योधनके अभिप्रायको समझकर पुनः संजयसे समयोचित प्रश्न किया ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें साठवां अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ २१२८ ॥

: ६१ :

वैशम्पायन उवाच

तथा तु पृच्छन्तमतीव पार्थान्वैचित्रवीर्यं तमचिन्तयित्वा ।
उवाच कर्णो धृतराष्ट्रपुत्रं प्रहर्षयन्संसदि कौरवाणाम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! विचित्रवीर्यनन्दन धृतराष्ट्रको पहलेकी ही भाँति कुन्तीकुमार अर्जुनके विषयमें बारंबार प्रश्न करते देख उनकी कोई परवा न करके कर्णने कौरवसभामें दुर्योधनको हर्षित करते हुए कहा ॥ १ ॥

मिथ्या प्रतिज्ञाय मया यदस्त्रं रामाद् धृतं ब्रह्मपरं पुरस्तात् ।
विज्ञाय तेनास्मि तदैवमुक्तस्तवान्तकालेऽप्रतिभास्यतीति ॥ २ ॥

राजन् ! मैंने पूर्वकालमें झूठे ही अपनेको ब्राह्मण बताकर परशुरामजीसे जब ब्रह्मास्त्रकी शिक्षा प्राप्त कर ली, तब उन्होंने मेरा यथार्थ परिचय जानकर मुझसे इस प्रकार कहा— कर्ण ! अन्त समय आनेपर तुम्हें इस ब्रह्मास्त्रका स्मरण नहीं रहेगा ॥ २ ॥

महापराधे ह्यपि संनतेन महर्षिणाहं गुरुणा च शप्तः ।
शक्तः प्रदग्धुं ह्यपि तिग्मतेजाः ससागरामप्यवनिं महर्षिः ॥ ३ ॥

यद्यपि मेरे द्वारा उन महर्षिका महान् अपराध हुआ था, इस उन सज्जन गुरुदेवने जो मुझे शाप दिया, वे प्रचण्ड तेजस्वी महामुनि समुद्रसहित सारी पृथ्वीको भी दग्ध कर सकते हैं ॥ ३ ॥

प्रसादितं ह्यस्य मया मनोऽभूच्छुश्रूषया स्वेन च पौरुषेण ।
ततस्तदस्त्रं मम सावशेषं तस्मात्समर्थोऽस्मि ममैष भारः ॥ ४ ॥

मैंने अपने पुरुषार्थ तथा सेवाशुश्रूषासे उनके मनको प्रसन्न कर लिया था । वह ब्रह्मास्त्र अब भी मेरे पास है । अतः मैं पाण्डवोंको जीतनेमें समर्थ हूँ । यह सारा भार मुझपर छोड दिया जाय ॥ ४ ॥

निमेषमात्रं तमृषिप्रसादमवाप्य पाञ्चालकरूषमत्स्यान् ।
निहत्य पार्थांश्च स पुत्रपौत्राँल्लोकानहं शस्त्रजितान्प्रपत्स्ये ॥ ५ ॥

महर्षि परशुरामका कृपाप्रसाद पाकर मैं पलक मारते मारते पाञ्चाल, करूष तथा मत्स्य-देशीय योद्धाओं और कुन्तीकुमारोंको पुत्रपौत्रोंसहित मारकर शस्त्रद्वारा जीते हुए पुण्य-लोकोंमें जाऊँगा ॥ ५ ॥

पितामहस्तिष्ठतु ते समीपे द्रोणश्च सर्वे च नरेन्द्रमुख्याः ।
यथाप्रधानेन बलेन यात्वा पार्थान्हनिष्यामि ममैष भारः ॥ ६ ॥

पितामह भीष्म आपके ही पास रहें, आचार्य द्रोण तथा समस्त मुख्य मुख्य भूपाल भी आपके ही समीप रहें। मैं अपनी प्रधान सेनाके साथ जाकर अकेले ही सब कुन्तीकुमारोंको मार डालूँगा, इसका सारा भार मुझपर रहा ॥ ६ ॥

एवं ब्रुवाणं तमुवाच भीष्मः किं कत्थसे कालपरीतबुद्धे ।
न कर्ण जानासि यथा प्रधाने हते हताः स्युर्धृतराष्ट्रपुत्राः ॥ ७ ॥

कर्णको ऐसी बातें करते देख भीष्मने उससे कहा— कर्ण ! क्यों अपनी वीरताकी डींग हाँक रहा है ? जान पडता है, कालने तेरी बुद्धिको ग्रस लिया है। क्या तू नहीं जानता कि युद्धमें प्रधान वीरके मारे जानेपर सारे धृतराष्ट्रपुत्र ही मृतप्राय हो जायेंगे ॥ ७ ॥

यत्खाण्डवं दाहयता कृतं हि कृष्णद्वितीयेन धनंजयेन ।
श्रुत्वैव तत्कर्म नियन्तुमात्मा शक्यस्त्वया वै सह बान्धवेन ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णसहित अर्जुनने खाण्डववनका दाह करते समय जो पराक्रम किया था, उसे सुनकर ही बान्धवोंसहित तुझे अपने मनपर काबू रखना उचित था ॥ ८ ॥

यां चापि शक्तिं त्रिदशाधिपस्ते ददौ महात्मा भगवान्महेन्द्रः ।
भस्मीकृतां तां पतितां विशीर्णां चक्राहतां द्रक्ष्यसि केशवेन ॥ ९ ॥

देवेश्वर महात्मा भगवान् महेन्द्रने तुझे जो शक्ति प्रदान की है, उसे तू भगवान् केशवके चलाये हुए चक्रसे आहत हो गिरी हुई छिन्न भिन्न एवं दग्ध हुई अपनी आँखों देख लेगा ॥ ९ ॥

यस्ते शरः सर्पमुखो विभाति सदाग्र्यमाल्यैर्महितः प्रयत्नात् ।
स पाण्डुपुत्राभिहतः शरौघैः सह त्वया यास्यति कर्ण नाशम् ॥ १० ॥

तेरे पास जो सर्पमुख बाण प्रकाशित होता है और तू प्रयत्नपूर्वक सदा ही पुष्पमाला आदि श्रेष्ठ उपचारोंद्वारा जिसकी पूजा किया करता है, वह पाण्डुपुत्र अर्जुनके बाणसमूहोंसे छिन्न-भिन्न होकर तेरे साथ ही नष्ट हो जायेगा ॥ १० ॥

बाणस्य भौमस्य च कर्ण हन्ता किरीटिनं रक्षति वासुदेवः ।
यस्त्वादृशानां च गरीयसां च हन्ता रिपूणां तुमुले प्रगाढे ॥ ११ ॥

कर्ण ! बाणासुर और भौमासुरका वध करनेवाले वे वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण किरीटधारी अर्जुनकी रक्षा करते हैं, जो तेरे जैसे तथा तुझसे भी प्रबल शत्रुओंका भयंकर संग्राममें विनाश कर सकते हैं ॥ ११ ॥

कर्ण उवाच

असंशयं वृष्णिपतिर्यथोक्तस्तथा च भूयश्च ततो महात्मा।
अहं यदुक्तः परुषं तु किञ्चित्पितामहस्तस्य फलं शृणोतु ॥ १२ ॥

कर्ण बोले— इसमें संदेह नहीं कि वृष्णिकुलके स्वामी महात्मा श्रीकृष्णका जैसा प्रभाव बताया गया है, वे वैसे ही हैं। बल्कि उससे भी बढकर हैं। परंतु मेरे प्रति जो किञ्चित् कटुवचनका प्रयोग किया गया है; उसका परिणाम क्या होगा? यह पितामह भीष्म मुझसे सुन लें ॥ १२ ॥

न्यस्यामि शस्त्राणि न जातु संख्ये पितामहो द्रक्ष्यति मां सभायाम्।
त्वयि प्रशान्ते तु मम प्रभावं द्रक्ष्यन्ति सर्वे भुवि भूमिपालाः ॥ १३ ॥

मैं अपने अस्त्रशस्त्र रख देता हूँ। अब कभी पितामह मुझे इस सभामें अथवा युद्धभूमिमें नहीं देखेंगे। भीष्म! आपके शान्त हो जाने अर्थात् मर जाने पर ही समस्त भूपाल रणभूमिमें मेरा प्रभाव देखेंगे ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्त्वा स महाधनुष्मान्हित्वा सभां स्वं भवनं जगाम।
भीष्मस्तु दुर्योधनमेव राजन्मध्ये कुरूणां प्रहसन्नुवाच ॥ १४ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय! ऐसा कहकर महाधनुर्धर कर्ण सभा त्यागकर अपने घर चला गया। उस समय भीष्मने कौरवसभामें उसकी हँसी उडाते हुए दुर्योधनसे कहा ॥१४॥

सत्यप्रतिज्ञः किल सूतपुत्रस्तथा स भारं विषहेत कस्मात्।
व्यूहं प्रतिव्यूह्य शिरांसि भित्त्वा लोकक्षयं पश्यत भीमसेनात् ॥ १५ ॥

सूतपुत्र कर्ण कैसा सत्यप्रतिज्ञ निकला अर्थात् पहले पाण्डवोंको जीतनेकी प्रतिज्ञा करके अब युद्धसे मुंह मोडकर भाग गया, भला वैसा महान् भार वह कैसे संभाल सकता था? अब तुमलोग पाण्डवसेनाके व्यूहका सामना करनेके लिये अपनी सेनाका भी व्यूह बनाकर युद्ध करो और परस्पर एक दूसरेके मस्तक काटकर भीमसेनके हाथों सारे संसारका संहार देखो ॥ १५ ॥

आवन्त्यकालिङ्गजयद्रथेषु वेदिध्वजे तिष्ठति बाह्लिके च।
अहं हनिष्यामि सदा परेषां सहस्रशश्चायुतशश्च योधान् ॥ १६ ॥

अवन्तीनरेश, कलिंगराज, जयद्रथ, वेदिध्वज और वीर बाह्लिकके रहते हुए भी मैं सदा अकेला ही शत्रुओंके सहस्र-सहस्र एवं अयुत–अयुत योद्धाओंका संहार कर डालूंगा ॥ १६ ॥

यदैव रामे भगवत्यनिन्द्ये ब्रह्म ब्रुवाणः कृतवांस्तदस्त्रम् ।
तदैव धर्मश्च तपश्च नष्टं वैकर्तनस्याधमपूरुषस्य ॥ १७ ॥

जिस समय अनिन्दनीय भगवान् परशुरामजीके समीप कर्णने अपनेको ब्राह्मण बताकर ब्रह्मास्त्रकी शिक्षा ली, उसी समय उस नराधम सूतपुत्रके धर्म और तपका नाश हो गया ॥ १७ ॥

अथोक्तवाक्ये नृपतौ तु भीष्मे निक्षिप्य शस्त्राणि गते च कर्णे ।
वैचित्रवीर्यस्य सुतोऽल्पबुद्धिर्दुर्योधनः शान्तनवं बभाषे ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ २१४६ ॥

जनमेजय ! जब भीष्मने ऐसी बात कही और कर्ण हथियार फेंककर चला गया, उस समय मन्दबुद्धि धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने शान्तनुनन्दन भीष्मसे इस प्रकार कहा ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ २१४६ ॥

: ६२ :

दुर्योधन उवाच

सदृशानां मनुष्येषु सर्वेषां तुल्यजन्मनाम् ।
कथमेकान्ततस्तेषां पार्थानां मन्यसे जयम् ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—पितामह ! मनुष्योंमें हम और पाण्डव शिक्षाकी दृष्टिसे समान हैं, हमारा जन्म भी एक ही कुलमें हुआ है; फिर आप यह कैसे मानते हैं कि युद्धमें एकमात्र कुन्ती-कुमारोंकी ही विजय होगी ॥ १ ॥

सर्वे स्म समजातीयाः सर्वे मानुषयोनयः ।
पितामह विजानीषे पार्थेषु विजयं कथम् ॥ २ ॥

सभी समान जातिके हैं और सबके सब मनुष्ययोनिमें ही उत्पन्न हुए हैं । हे पितामह ! ऐसी दशामें भी आप कैसे जानते हैं कि विजय कुन्तीपुत्रोंकी ही होगी ॥ २ ॥

नाहं भवति न द्रोणे न कृपे न च बाह्लिके ।
अन्येषु च नरेन्द्रेषु पराक्रम्य समारभे ॥ ३ ॥

मैं न आपके, द्रोणाचार्य, न कृपाचार्य, न बाह्लिक तथा न अन्य राजाओंके पराक्रमका भरोसा करके ही युद्धका आरम्भ कर रहा हूं ॥ ३ ॥

अहं वैकर्तनः कर्णो भ्राता दुःशासनश्च मे ।
पाण्डवान्समरे पञ्च हनिष्यामः शितैः शरैः ॥ ४ ॥

मैं, विकर्तनपुत्र कर्ण तथा मेरा भाई दुःशासन हम तीन ही मिलकर युद्धभूमिमें पाँचों पाण्डवोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालेंगे ॥ ४ ॥

ततो राजन्महायज्ञैर्विविधैर्भूरिदक्षिणैः ।
ब्राह्मणांस्तर्पयिष्यामि गोभिरश्वैर्धनेन च ॥ ५ ॥

राजन् ! तदनन्तर पर्याप्त दक्षिणावाले विविध महायज्ञोंका अनुष्ठान करके गायें, घोडे और धन दानमें देकर ब्राह्मणोंको तृप्त करूंगा ॥ ५ ॥

विदुर उवाच

शकुनीनामिहार्थाय पाशं भूमावयोजयत् ।
कश्चिच्छाकुनिकस्तात पूर्वेषामिति शुश्रुम ॥ ६ ॥

विदुर बोले— तात ! हमने पूर्वपुरुषोंके मुखसे सुन रक्खा है कि किसी समय एक चिडीमारने चिडियोंको फंसानेके लिये पृथ्वीपर जाल फैलाया ॥ ६ ॥

तस्मिन्द्वौ शकुनौ बद्धौ युगपत्समपौरुषौ ।
तावुपादाय तं पाशं जग्मतुः खचरावुभौ ॥ ७ ॥

उस जालमें दो ऐसे पक्षी फँस गये, जो समान बलवाले और साथ-साथ विचरनेवाले थे। वे दोनों पक्षी उस समय उस जालको लेकर आकाशमें उड चले ॥ ७ ॥

तौ विहायसमाक्रान्तौ दृष्ट्वा शाकुनिकस्तदा ।
अन्वधावदनिर्विण्णो येन येन स्म गच्छतः ॥ ८ ॥

चिडीमार उन दोनोंको आकाशमें उडते देखकर भी खिन्न या हताश नहीं हुआ। वे जिधर-जिधर गये, उधर उधर ही वह उनके पीछे दौडता रहा ॥ ८ ॥

तथा तमनुधावन्तं मृगयुं शकुनार्थिनम् ।
आश्रमस्थो मुनिः कश्चिद्ददर्शाथ कृताह्निकः ॥ ९ ॥

उन दिनों उस वनमें कोई मुनि रहते थे, जो उस समय संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करके आश्रममें ही बैठे हुए थे। उन्होंने पक्षियोंको पकडनेके लिये उनका पीछा करते हुए उस व्याधको देखा ॥ ९ ॥

तावन्तरिक्षगौ शीघ्रमनुयान्तं महीचरम् ।
श्लोकेनानेन कौरव्य पप्रच्छ स मुनिस्तदा ॥ १० ॥

कुरुनन्दन ! उन आकाशचारी पक्षियोंके पीछे-पीछे भूमिपर पैदल दौडनेवाले उस व्याधसे मुनिने निम्नाङ्कित श्लोकके अनुसार प्रश्न किया ॥ १० ॥

विचित्रमिदमाश्चर्यं मृगहन्प्रतिभाति मे।
प्लवमानौ हि खचरौ पदातिरनुधावसि ॥ ११ ॥

अरे व्याध! मुझे यह बात बडी विचित्र और आश्चर्यजनक जान पडती है कि तू आकाशमें उडते हुए इन दोनों पक्षियोंके पीछे पृथ्वीपर पैदल दौड रहा है ॥ ११ ॥

शाकुनिक उवाच

पाशमेकमुभावेतौ सहितौ हरतो मम।
यत्र वै विवदिष्येते तत्र मे वशमेष्यतः ॥ १२ ॥

चिडीमार बोला—मुने! दोनों पक्षी आपसमें मिल गये हैं, अतः मेरे एकमात्र जालको लिये जा रहे हैं। अब ये जहाँ-कहीं एक दूसरेसे झगडेंगे, वहीं मेरे वशमें आ जायँगे ॥ १२ ॥

विदुर उवाच

तौ विवादमनुप्राप्तौ शकुनौ मृत्युसंधितौ।
विगृह्य च सुदुर्बुद्धी पृथिव्यां संनिपेततुः ॥ १३ ॥

विदुर बोले—राजन! तदनन्तर कुछ ही देरमें कालके वशीभूत हुए वे दोनों दुर्बुद्धि पक्षी आपसमें झगडने लगे और लडते-लडते पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १३ ॥

तौ युध्यमानौ संरब्धौ मृत्युपाशवशानुगौ।
उपसृत्यापरिज्ञातो जग्राह मृगयुस्तदा ॥ १४ ॥

जब मौतके फंदेमें फंसे हुए वे पक्षी अत्यन्त कुपित होकर एक दूसरेसे लड रहे थे, उसी समय चिडीमारने चुपचाप उनके पास आकर उन दोनोंको पकड लिया ॥ १४ ॥

एवं ये ज्ञातयोऽर्थेषु मिथो गच्छन्ति विग्रहम्।
तेऽमित्रवशमायान्ति शकुनाविव विग्रहात् ॥ १५ ॥

इसी प्रकार जो कुटुम्बीजन धन-सम्पत्तिके लिये आपसमें कलह करते हैं, वे उन्हीं दोनों पक्षियोंकी भाँति शत्रुओंके वशमें पड जाते हैं ॥ १५ ॥

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रश्नोऽथ समागमः।
एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ १६ ॥

साथ बैठकर भोजन करना, आपसमें प्रेमसे वार्तालाप करना, एक दूसरेके सुख-दुःखको पूछना और सदा मिलतेजुलते रहना—ये ही भाई-बन्धुओंके काम हैं, परस्पर विरोध करना कदापि उचित नहीं है ॥ १६ ॥

यस्मिन्काले सुमनसः सर्वे वृद्धानुपासते ।
सिंहगुप्तमिवारण्यमप्रधृष्या भवन्ति ते ॥ १७ ॥

जो शुद्ध हृदयवाले मनुष्य समय-समयपर बड़े-बूढ़ोंकी सेवा एवं सङ्ग करते रहते हैं, वे सिंहसे सुरक्षित वनके समान दूसरोंके लिये दुर्धर्ष हो जाते हैं, शत्रु उनके पास आनेका साहस नहीं करते ॥ १७ ॥

येऽर्थं संततमासाद्य दीना इव समासते ।
श्रियं ते सम्प्रयच्छन्ति द्विषद्भ्यो भरतर्षभ ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जो धनको पाकर भी सदा दीनोंके समान तृष्णासे पीडित रहते हैं, वे आपसमें कलह करके अपनी सम्पत्ति शत्रुओंको दे डालते हैं ॥ १८ ॥

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ १९ ॥

भरतकुलभूषण धृतराष्ट्र ! जैसे जलते हुए काष्ठ अलग-अलग कर दिये जानेपर जल नहीं पाते, केवल धुआं देते हैं और परस्पर मिल जानेपर प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार कुटुम्बीजन आपसी फूटके कारण अलग-अलग रहनेपर अशक्त हो जाते हैं तथा परस्पर संगठित होनेपर बलवान् एवं तेजस्वी होते हैं ॥ १९ ॥

इदमन्यत्प्रवक्ष्यामि यथा दृष्टं गिरौ मया ।
श्रुत्वा तदपि कौरव्य यथा श्रेयस्तथा कुरु ॥ २० ॥

कौरवनन्दन ! पूर्वकालमें किसी पर्वतपर मैंने जैसा देखा था, उसके अनुसार यह दूसरी बात बता रहा हूँ । इसे भी सुनकर आपको जिसमें अपनी भलाई जान पड़े, वही कीजिये ॥ २० ॥

वयं किरातैः सहिता गच्छामो गिरिमुत्तरम् ।
ब्राह्मणैर्देवकल्पैश्च विद्याजम्भकवातिकैः ॥ २१ ॥

एक समयकी बात है, हम बहुतसे भीलों और मंत्र-तंत्रादि जाननेवाले देवोपम ब्राह्मणोंके साथ उत्तरदिशामें गन्धमादन पर्वतपर गये थे ॥ २१ ॥

कुञ्जभूतं गिरिं सर्वमभितो गन्धमादनम् ।
दीप्यमानौषधिगणं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ २२ ॥

समस्त गन्धमादन पर्वत सब ओरसे कुञ्ज-सा जान पड़ता था । वहां दिव्य ओषधियां प्रकाशित हो रही थीं । सिद्ध और गन्धर्व उस पर्वतपर निवास करते थे ॥ २२ ॥

तत्र पश्यामहे सर्वे मधु पीतममाक्षिकम् ।
मरुप्रपाते विषमे निविष्टं कुम्भसम्मितम् ॥ २३ ॥

वहाँ हम सब लोगोंने देखा, पर्वतकी एक दुर्गम गुफामें, जहाँसे कोई कूल-किनारा न होनेके कारण गिरनेकी ही अधिक सम्भावना रहती है, एक घडे जितना बडा मधुकोष है। उसमेंका सारा शहद मक्खियों द्वारा पी लिया गया था, और इसीलिये वह मधुमक्खियोंसे रहित हो गया था ॥ २३ ॥

आशीविषै रक्ष्यमाणं कुबेरदयितं भृशम् ।
यत्प्राश्य पुरुषो मर्त्यो अमरत्वं निगच्छति ॥ २४ ॥

भयंकर विषधर सर्प उस मधुकी रक्षा करते थे। कुबेरको वह मधु अत्यन्त प्रिय था। इस मधुको पाकर मरणधर्मा मनुष्य भी अमरत्व प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥

अचक्षुर्लभते चक्षुर्वृद्धो भवति वै युवा ।
इति ते कथयन्ति स्म ब्राह्मणा जम्भसाधकाः ॥ २५ ॥

इसको पीनेसे अंधेको दृष्टि मिल जाती है और बूढा भी जवान हो जाता है, इस प्रकार हमारे साथ रहनेवाले औषधिशास्त्रज्ञ विद्वान् ब्राह्मणोंका कथन था ॥ २५ ॥

ततः किरातास्तद्दृष्ट्वा प्रार्थयन्तो महीपते ।
विनेशुर्विषमे तस्मिन्ससर्पे गिरिगह्वरे ॥ २६ ॥

महाराज ! उस समय उस मधुका अद्भुत गुण सुनकर और उसे प्रत्यक्ष देखकर भीलोंने उसे पानेकी चेष्टा की; परंतु सर्पोंसे भरी हुई उस दुर्गम पर्वतगुहामें जाकर वे सबके-सब नष्ट हो गये ॥ २६ ॥

तथैव तव पुत्रोऽयं पृथिवीमेक इच्छति ।
मधु पश्यति सम्मोहात्प्रपातं नानुपश्यति ॥ २७ ॥

इसीप्रकार आपका यह पुत्र दुर्योधन अकेला ही सारी पृथ्वीका राज्य भोगना चाहता है। यह मोहवश केवल मधुको ही देखता है, भावी पतन या विनाशकी ओर इसकी दृष्टि नहीं जाती है ॥ २७ ॥

दुर्योधनो योद्धुमनाः समरे सव्यसाचिना ।
न च पश्यामि तेजोऽस्य विक्रमं वा तथाविधम् ॥ २८ ॥

दुर्योधन समरभूमिमें सव्यसाची अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी बात सोचता है, परंतु मैं इसके भीतर अर्जुनके समान तेज या पराक्रम नहीं देखता ॥ २८ ॥

एकेन रथमास्थाय पृथिवी येन निर्जिता ।
प्रतीक्षमाणो यो वीरः क्षमते वीक्षितं तव ॥ २९ ॥

जिस वीरने अकेले ही रथपर बैठकर सारी पृथ्वीपर विजय पायी है, आज भी वह वीर आपकी मैत्रीपूर्ण दृष्टिकी प्रतीक्षा कर रहा है और आपकी आज्ञासे वह कौरवोंका सारा अपराध क्षमा कर सकता है ॥ २९ ॥

द्रुपदो मत्स्यराजश्च संक्रुद्धश्च धनंजयः ।
न शेषयेयुः समरे वायुयुक्ता इवाग्नयः ॥ ३० ॥

राजा द्रुपद, मत्स्यनरेश विराट और क्रोधमें भरा हुआ अर्जुन ये तीनों वायुका सहारा पाकर प्रज्वलित हुई त्रिविध अग्नियोंके समान जब युद्धभूमिमें आक्रमण करेंगे, तब किसीको जीता नहीं छोड़ेंगे ॥ ३० ॥

अङ्के कुरुष्व राजानं धृतराष्ट्र युधिष्ठिरम् ।
युध्यतोर्हि द्वयोर्युद्धे नैकान्तेन भवेज्जयः ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ २१७७ ॥

महाराज धृतराष्ट्र ! आप राजा युधिष्ठिरको अपनी गोदमें बैठा लीजिये; क्योंकि जब दोनों पक्षोंमें युद्ध छिड जायेगा, तब विजय किसकी होगी, यह निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ २१७७ ॥

: ६३ :

धृतराष्ट्र उवाच

दुर्योधन विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।
उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवाध्वगः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—बेटा दुर्योधन ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसपर ध्यान दो । तुम इस समय अनजान बटोहीके समान कुमार्गको भी सुमार्ग समझ रहे हो ॥ १ ॥

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां यत्तेजः प्रमिमीषसि ।
पञ्चानामिव भूतानां महतां सुमहात्मनाम् ॥ २ ॥

यही कारण है कि तुम पांच महाभूतोंके समान पांचों महातमा पाण्डवोंके तेजको मापनेकी इच्छा कर रहे हो ॥ २ ॥

युधिष्ठिरं हि कौन्तेयं परं धर्ममिहास्थितम् ।
परां गतिमसम्प्रेक्ष्य न त्वं वेत्तुमिहार्हसि ॥ ३ ॥

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर यहाँ उत्तम धर्मका आश्रय लेकर रहते हैं। तुम मृत्युको प्राप्त हुए बिना उन्हें जीत लोगे, यह कदापि सम्भव नहीं है ॥ ३ ॥

भीमसेनं च कौन्तेयं यस्य नास्ति समो बले ।
रणान्तकं तर्कयसे महावातमिव द्रुमः ॥ ४ ॥

जैसे वृक्ष प्रचण्ड आँधीको डाँट बतावे, उसी प्रकार तुम समरांगणमें कालके समान विचरनेवाले कुन्तीकुमार भीमसेनको, जिसके समान बलवान् इस भूतलपर दूसरा कोई नहीं है, मारनेका विचार करते हो ॥ ४ ॥

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं मेरुं शिखरिणामिव ।
युधि गाण्डीवधन्वानं को नु युध्येत बुद्धिमान् ॥ ५ ॥

जैसे पर्वतोंमें मेरु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त शस्त्रधारियोंमें गाण्डीवधारी अर्जुन श्रेष्ठ है। भला कौन बुद्धिमान् मनुष्य रणभूमिमें उसके साथ जूझनेका साहस करेगा ? ॥ ५ ॥

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः कमिवाद्य न शातयेत् ।
शत्रुमध्ये शरान्मुञ्चन्देवराडशनीमिव ॥ ६ ॥

जैसे देवराज इन्द्र वज्र छोडते हैं, उसीप्रकार पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न शत्रुओंकी सेनापर बाणोंकी वर्षा करता हुआ अब किसे छिन्न-भिन्न नहीं कर डालेगा ? ॥ ६ ॥

सात्यकिश्चापि दुर्धर्षः सम्मतोऽन्धकवृष्णिषु ।
ध्वंसयिष्यति ते सेनां पाण्डवेयहिते रतः ॥ ७ ॥

अन्धक और वृष्णिवंशका सम्माननीय योद्धा सात्यकि भी दुर्धर्ष वीर है। वह सदा पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहता है। युद्ध छिडनेपर वह तुम्हारी समस्त सेनाका संहार कर डालेगा ॥ ७ ॥

यः पुनः प्रतिमानेन त्रीँल्लोकानतिरिच्यते ।
तं कृष्णं पुण्डरीकाक्षं को नु युध्येत बुद्धिमान् ॥ ८ ॥

जो तुलनामें तीनों लोकोंसे भी बढकर हैं, उन कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके साथ कौन समझदार मनुष्य युद्ध करेगा ? ॥ ८ ॥

एकतो ह्यस्य दाराश्च ज्ञातयश्च सबान्धवाः ।
आत्मा च पृथिवी चेयमेकतश्च धनंजयः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णके लिये एक ओर स्त्री, कुटुम्बीजन, भाई-बन्धु अपना शरीर और यह सारा भूमण्डल है, तो दूसरी ओर अकेला अर्जुन हैं अर्थात् वे अर्जुनके लिये इन सबका त्याग कर सकते हैं ॥ ९ ॥

वासुदेवोऽपि दुर्धर्षो यतात्मा यत्र पाण्डवः ।
अविषह्यं पृथिव्यापि तद्बलं यत्र केशवः ॥ १० ॥

जहाँ अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाला दुर्धर्ष वीर पाण्डुपुत्र अर्जुन है, वहीं वासुदेवनन्दन श्रीकृष्ण भी रहते हैं और जिस सेनामें साक्षात् श्रीकृष्ण विराज रहे हों, उसका वेग समस्त भूमण्डलके लिये भी असह्य हो जाता है ॥ १० ॥

तिष्ठ तात सतां वाक्ये सुहृदामर्थवादिनाम् ।
वृद्धं शान्तनवं भीष्मं तितिक्षस्व पितामहम् ॥ ११ ॥

तात ! तुम सत्पुरुषों तथा तुम्हारे हितकी बात बतानेवाले सुहृदोंके कथनानुसार कार्य करो । वृद्ध शान्तनुनन्दन भीष्म तुम्हारे पितामह हैं । तुम उनकी प्रत्येक बात सहन करो ॥ ११ ॥

मां च ब्रुवाणं शुश्रूष कुरूणामर्थवादिनम् ।
द्रोणं कृपं विकर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥ १२ ॥

मैं भी कौरवोंके हितकी ही बात सोचता हूं; अतः मेरी भी सुनो । आचार्य द्रोण, कृप, विकर्ण और महाराज बाह्लीक ॥ १२ ॥

एते ह्यपि यथैवाहं मन्तुमर्हसि तांस्तथा ।
सर्वे धर्मविदो ह्येते तुल्यस्नेहाश्च भारत ॥ १३ ॥

ये भी तुम्हारे हितैषी ही हैं; अतः तुम्हें मेरे ही समान इनका भी समादर करना चाहिये । भरतनन्दन ! ये सब लोग धर्मके ज्ञाता हैं और दोनों पक्षके लोगोंपर समानभावसे स्नेह रखते हैं ॥ १३ ॥

यत्तद्विराटनगरे सह भ्रातृभिरग्रतः ।
उत्सृज्य गाः सुसंत्रस्तं बलं ते समशीर्यत ॥ १४ ॥

विराटनगरमें तुम्हारे भाईयोंसहित जो सारी सेना युद्धके लिये गयी थी, वह वहांकी समस्त गौओंको छोडकर अत्यन्त भयभीत हो तुम्हारे सामने ही भाग खडी हुई थी ॥ १४ ॥

यच्चैव तस्मिन्नगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १५ ॥

उस नगरमें जो एक अर्जुनका बहुतोंके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध हुआ सुना जाता है; वह एक ही दृष्टान्त उसकी प्रबलता और अजेयताके लिये पर्याप्त है ॥ १५ ॥

अर्जुनस्तत्तथाकार्षीत्किं पुनः सर्व एव ते ।
सभ्रातॄनभिजानीहि वृत्त्या च प्रतिपादय ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ २१९३ ॥

देखो, जब अकेले अर्जुनने इतना अद्भुत कार्य कर डाला, तब वे सब भाई मिल कर क्या नहीं कर सकते ? अतः तुम पाण्डवोंको अपना भाई ही समझो और उनकी वृत्ति स्वत्व उन्हें देकर उनके साथ भ्रातृत्व बढाओ ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें तिरेसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ २१९३ ॥

: ६४ :

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रः सुयोधनम् ।
पुनरेव महाभागः संजयं पर्यपृच्छत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! दुर्योधनसे ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् महाभाग धृतराष्ट्रने संजयसे पुनः प्रश्न किया ॥ १ ॥

ब्रूहि संजय यच्छेषं वासुदेवादनन्तरम् ।
यदर्जुन उवाच त्वां परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥

संजय ! बताओ, भगवान् श्रीकृष्णके पश्चात् अर्जुनने जो अन्तिम संदेश दिया था, उसे सुननेके लिये मेरे मनमें बडा कौतूहल हो रहा है ॥ २ ॥

संजय उवाच

वासुदेववचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
उवाच काले दुर्धर्षो वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ३ ॥

संजय बोले– महाराज ! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी बात सुनकर दुर्धर्ष वीर कुन्तीकुमार अर्जुनने उनके सुनते-सुनते यह समयोचित बात कही ॥ ३ ॥

पितामहं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च संजय ।
द्रोणं कृपं च कर्णं च महाराजं च बाह्लिकम् ॥ ४ ॥

संजय ! तुम शान्तनुनन्दन पितामह भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, महाराज बाह्लीक, ॥ ४ ॥

द्रौणिं च सोमदत्तं च शकुनिं चापि सौबलम् ।
दुःशासनं शलं चैव पुरुमित्रं विविंशतिम् ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा, सोमदत्त, सुबलपुत्र शकुनि, दुःशासन, शल, पुरुमित्र, विविंशति ॥ ५ ॥

विकर्णं चित्रसेनं च जयत्सेनं च पार्थिवम् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्मुखं चापि कौरवम् ॥ ६ ॥

विकर्ण, चित्रसेन, राजा जयत्सेन, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, कौरवयोद्धा दुर्मुख, ॥ ६ ॥

सैन्धवं दुःसहं चैव भूरिश्रवसमेव च ।
भगदत्तं च राजानं जलसन्धं च पार्थिवम् ॥ ७ ॥

सिंधुराज जयद्रथ, दुःसह, भूरिश्रवा, राजा भगदत्त, भूपाल जलसन्ध ॥ ७ ॥

ये चाप्यन्ये पार्थिवास्तत्र योद्धुं समागताः कौरवाणां प्रियार्थम् ।
मुमूर्षवः पाण्डवाग्नौ प्रदीप्ते समानीता धार्तराष्ट्रेण सूत ॥ ८ ॥

तथा अन्य जो-जो नरेश कौरवोंका प्रिय करनेके लिये युद्धके उद्देश्यसे वहाँ एकत्र हुए हैं, जिनकी मृत्यु बहुत ही निकट है, जिन्हें दुर्योधनने पाण्डवरूपी प्रज्वलित अग्निमें होमनेके लिये बुलाया है ॥ ८ ॥

यथान्यायं कौशलं वन्दनं च समागता मद्वचनेन वाच्याः ।
इदं ब्रूयाः संजय राजमध्ये सुयोधनं पापकृतां प्रधानम् ॥ ९ ॥

उन सबसे मिलकर मेरी ओरसे यथायोग्य प्रणाम आदि कहकर उनका कुशलमंगल पूछना । संजय ! तत्पश्चात् उन राजाओंके समुदायमें पापियोंमें प्रमुख दुर्योधनसे यह कहना ॥ ९ ॥

अमर्षणं दुर्मतिं राजपुत्रं पापात्मानं धार्तराष्ट्रं सुलुब्धम् ।
सर्वं ममैतद्वचनं समग्रं सहामात्यं संजय श्रावयेथाः ॥ १० ॥

हे संजय ! असहिष्णु, दुर्बुद्धि, पापाचारी और अत्यन्त लोभी उस धृतराष्ट्रके पुत्र राजकुमार दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंको मेरी कही हुई ये सारी बातें सुनाना ॥ १० ॥

एवं प्रतिष्ठाप्य धनंजयो मां ततोऽर्थवद्धर्मवच्चापि वाक्यम् ।
प्रोवाचेदं वासुदेवं समीक्ष्य पार्थो धीमाँल्लोहितान्तायताक्षः ॥ ११ ॥

इस प्रकार मुझे हस्तिनापुर जानेकी अनुमति देकर, जिनके विशाल नेत्रोंका कोना कुछ लाल रंगका है, उन परम बुद्धिमान् कुन्तीकुमार अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देखकर यह धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहा ॥ ११ ॥

यथा श्रुतं ते वदतो महात्मनो मधुप्रवीरस्य वचः समाहितम् ।
तथैव वाच्यं भवता हि मद्वचः समागतेषु क्षितिपेषु सर्वशः ॥ १२ ॥

संजय ! मधुवंशके प्रमुख वीर महात्मा श्रीकृष्णने एकाग्रचित्त होकर जो बात कही है और तुमने इसे जैसा सुना है, वह सब ज्यों-का-त्यों सुना देना। फिर समस्त समागत भूपालोंकी मण्डलीमें मेरी यह बात कहना ॥ १२ ॥

शराग्निधूमे रथनेमिनादिते धनुःस्रुवेणास्त्रबलापहारिणा ।
यथा न होमः क्रियते महामृधे तथा समेत्य प्रयतध्वमादृताः ॥ १३ ॥

राजाओ! महान् युद्धरूपी यज्ञमें जहाँ बाणोंके टकरानेसे पैदा होनेवाली आगका धुआँ फैलता रहता है, रथोंकी घर्घराहट ही वेदमन्त्रोंकी ध्वनिका काम देती है, शास्त्रबलसे सम्पादित होनेवाले यज्ञकी भांति अस्त्रबलसे ही फैलनेवाले धनुषरूपी स्रुवाके द्वारा मुझे जिस प्रकार कौरव सैन्य रूपी हविष्यकी आहुति न देनी पडे, उसके लिये तुम सब लोग सादर प्रयत्न करो ॥ १३ ॥

न चेत्प्रयच्छध्वममित्रघातिनो युधिष्ठिरस्यांशमभीप्सितं स्वकम् ।
नयामि वः साश्वपदातिकुञ्जरान्दिशं पितॄणामशिवां शितैः शरैः ॥ १४ ॥

यदि तुमलोग शत्रुघाती महाराज युधिष्ठिरका अपना अभीष्ट राज्यभाग नहीं लौटाओगे, तो मैं तुम्हें अपने तीखे बाणोंद्वारा घोडे, पैदल तथा हाथीसवारोंसहित यमलोककी अमङ्गलमयी दिशामें भेज दूंगा ॥ १४ ॥

ततोऽहमामन्त्र्य चतुर्भुजं हरिं धनंजयं चैव नमस्य सत्वरः ।
जवेन सम्प्राप्त इहामरद्युते तवान्तिकं प्रापयितुं वचो महत् ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ २२०८ ॥

देवताओंके समान तेजस्वी महाराज! इसके बाद मैं अर्जुनसे विदा ले चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके उनका वह महत्त्वपूर्ण संदेश आपके पास पहुंचानेके लिये बडे वेगसे तुरंत यहां चला आया हूं ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ २२०८ ॥

६५

वैशम्पायन उवाच

दुर्योधने धार्तराष्ट्रे तद्वचोऽप्रतिनन्दति ।
तूष्णीम्भूतेषु सर्वेषु समुत्तस्थुर्नरेश्वराः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने जब श्रीकृष्ण और अर्जुनके उस कथनका कुछ भी आदर नहीं किया और सब लोग चुप्पी साधकर रह गये, तब वहां बैठे हुए समस्त नरश्रेष्ठ भूपालगण वहांसे उठकर चले गये ॥ १ ॥

उत्थितेषु महाराज पृथिव्यां सर्वराजसु ।
रहिते संजयं राजा परिप्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ २ ॥

महाराज! भूमण्डलके सब राजा जब सभाभवनसे उठ गये, तब एकान्तमें राजा संजयसे पूछने लगा ॥ २ ॥

आशंसमानो विजयं तेषां पुत्रवशानुगः ।
आत्मनश्च परेषां च पाण्डवानां च निश्चयम् ॥ ३ ॥

तब अपने पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले तथा उन्हींके वशमें रहनेवाले राजा धृतराष्ट्रने अपनी, दूसरोंकी और पाण्डवोंकी जय-पराजयके विषयमें संजयका निश्चित मत जाननेके लिये उनसे कुछ और बातें पूछनी प्रारम्भ की ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

गावल्गणे ब्रूहि नः सारफल्गु स्वसेनायां यावदिहास्ति किंचित् ।
त्वं पाण्डवानां निपुणं वेत्थ सर्वं किमेषां ज्यायः किमु तेषां कनीयः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र बोले— गवल्गणपुत्र संजय! यहां अपनी सेनामें जो कुछ भी प्रबलता या दुर्बलता है, उसका हमसे वर्णन करो। इसी प्रकार पाण्डवोंकी भी सारी बातें तुम अच्छी तरह जानते हो, अतः बताओ; ये किन बातोंमें बढ़े-चढ़े हैं और उनमें कौन-कौन-सी त्रुटियां हैं? ॥ ४ ॥

त्वमेतयोः सारवित्सर्वदर्शी धर्मार्थयोर्निपुणो निश्चयज्ञः ।
स मे पृष्टः संजय ब्रूहि सर्वं युध्यमानाः कतरेऽस्मिन्न सन्ति ॥ ५ ॥

संजय! तुम इन दोनों पक्षोंके बलाबलको जाननेवाले, सर्वदर्शी, धर्म और अर्थके ज्ञानमें निपुण तथा निश्चित सिद्धान्तके ज्ञाता हो; अतः मेरे पूछनेपर सब बातें साफ-साफ कहो। युद्धमें प्रवृत्त होनेपर किस पक्षके लोग इस लोकमें जीवित नहीं रह सकते? ॥ ५ ॥

संजय उवाच

न त्वां ब्रूयां रहिते जातु किंचिदसूया हि त्वां प्रसहेत राजन्।
आनयस्व पितरं संशितव्रतं गान्धारीं च महिषीमाजमीढ ॥ ६ ॥

संजय बोले-- राजन्! एकान्तमें तो मैं आपसे कभी कोई बात नहीं कह सकता, क्योंकि इससे आपके हृदयमें दोषदर्शनकी भावना उत्पन्न होगी। अजमीढनन्दन! आप अपने महान् व्रतधारी पिता-व्यास और महारानी गान्धारीको भी यहां बुलवा लीजिये ॥ ६ ॥

तौ तेऽसूयां विनयेतां नरेन्द्र धर्मज्ञौ तौ निपुणौ निश्चयज्ञौ।
तयोस्तु त्वां संनिधौ तद्वदेयं कृत्स्नं मतं वासुदेवार्जुनाभ्याम् ॥ ७ ॥

नरेन्द्र! वे दोनों धर्मके ज्ञाता, विचारकुशल तथा सिद्धान्तको समझनेवाले हैं; अतः वे आपकी दोषदृष्टिका निवारण करेंगे। उन दोनोंके समीप मैं आपको श्रीकृष्ण और अर्जुनका जो विचार है, वह पूरा-पूरा बता दूंगा ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्तन्मतमाज्ञाय संजयस्यात्मजस्य च।
अभ्युपेत्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥

वैशम्पायन बोले-- तदनन्तर परम ज्ञानी श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास सभाभवनमें पहुंचकर संजय तथा अपने पुत्र धृतराष्ट्रके उस विचारको जानकर इस प्रकार बोले ॥ ८ ॥

सम्पृच्छते धृतराष्ट्राय संजय आचक्ष्व सर्वं यावदेषोऽनुयुङ्क्ते।
सर्वं यावद्वेत्थ तस्मिन्यथावद्याथातथ्यं वासुदेवेऽर्जुने च ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ २२१७ ॥

संजय! धृतराष्ट्र तुमसे जो कुछ जानना चाहते हैं, वह सब इन्हें बताओ। ये भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके विषयमें जो कुछ पूछते हैं, वह सब, जितना तुम जानते हो, उसके अनुसार यथार्थरूपसे कहो ॥ ९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ २२१७ ॥

६६

संजय उवाच

अर्जुनो वासुदेवश्च धन्विनौ परमार्चितौ ।
कामादन्यत्र सम्भूतौ सर्वाभावाय सम्मितौ ॥ १ ॥

संजय बोले— राजन् ! अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्ण दोनों बडे सम्मानित धनुर्धर हैं । वे (यद्यपि सदा साथ रहनेवाले नर और नारायण हैं, तथापि) लोककल्याणकी कामनासे पृथक्-पृथक् प्रकट हुए हैं और वे सब कुछ नष्ट करनेमें भी समर्थ हैं ॥ १ ॥

द्यामन्तरं समास्थाय यथायुक्तं मनस्विनः ।
चक्रं तद्वासुदेवस्य मायया वर्तते विभो ॥ २ ॥

प्रभो ! उदारचेता भगवान् वासुदेवका सुदर्शन नामक चक्र उनकी मायासे अलक्षित होकर उनके पास रहता है ! उसके मध्यभागका विस्तार लगभग साढे तीन हाथका है । वह भगवान्‌के संकल्पके अनुसार (विशाल एवं तेजस्वी रूप धारण करके शत्रुसंहारके लिये) प्रयुक्त होता है ॥ २ ॥

सापह्नवं पाण्डवेषु पाण्डवानां सुसम्मतम् ।
सारासारबलं ज्ञात्वा तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

पाण्डवों पर उसका प्रभाव प्रकट नहीं है । पाण्डवोंको वह अत्यन्त प्रिय है । सबके सार–असारभूत बलको जानकर मैं जो कुछ संक्षेपमें कहूं, उसे आप सुनें ॥ ३ ॥

नरकं शम्बरं चैव कंसं चैद्यं च माधवः ।
जितवान्घोरसंकाशान्क्रीडन्निव जनार्दनः ॥ ४ ॥

जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त भयंकर प्रतीत होनेवाले नरकासुर, शम्बरासुर, कंस तथा शिशुपालको भी खेल ही खेलमें जीत लिया ॥ ४ ॥

पृथिवीं चान्तरिक्षं च द्यां चैव पुरुषोत्तमः ।
मनसैव विशिष्टात्मा नयत्यात्मवशं वशी ॥ ५ ॥

पूर्णतः स्वाधीन एवं श्रेष्ठस्वरूप पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण मनके संकल्पमात्रसे ही भूतल, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोकको भी अपने अधीन कर सकते हैं ॥ ५ ॥

भूयो भूयो हि यद्राजन्पृच्छसे पाण्डवान्प्रति ।
सारासारबलं ज्ञातुं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ६ ॥

राजन् ! आप जो बारंबार पाण्डवोंके विषयमें, उनके सार या असारभूत बलको जाननेके लिये मुझसे पूछते रहते हैं, वह सब आप मुझसे सुनिये ॥ ६ ॥

एकतो वा जगत्कृत्स्नमेकतो वा जनार्दनः ।
सारतो जगतः कृत्स्नादतिरिक्तो जनार्दनः ॥ ७ ॥

एक ओर सम्पूर्ण जगत् हो और दूसरी ओर अकेले भगवान् श्रीकृष्ण हों, तो सारभूत बलकी दृष्टिसे वे भगवान् जनार्दन ही सम्पूर्ण जगत्से बढकर सिद्ध होंगे ॥ ७ ॥

भस्म कुर्याज्जगदिदं मनसैव जनार्दनः ।
न तु कृत्स्नं जगच्छक्तं भस्म कर्तुं जनार्दनम् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण अपने मानसिक संकल्पमात्रसे इस सम्पूर्ण जगत्को भस्म कर सकते हैं; परंतु उन्हें भस्म करनेमें यह सारा जगत् समर्थ नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः ।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ ९ ॥

जिस ओर सत्य, धर्म, लज्जा और सरलता है, उसी ओर भगावन् श्रीकृष्ण रहते हैं; और जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है ॥ ९ ॥

पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिवं च पुरुषोत्तमः ।
विचेष्टयति भूतात्मा क्रीडन्निव जनार्दनः ॥ १० ॥

समस्त प्राणियोंके आत्मा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण खेल-सा करते हुए ही पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोकका संचालन करते हैं ॥ १० ॥

स कृत्वा पाण्डवान्सत्रं लोकं सम्मोहयन्निव ।
अधर्मनिरतान्मूढान्दग्धुमिच्छति ते सुतान् ॥ ११ ॥

वे इस समय समस्त लोकको मोहित-सा करते हुए पाण्डवोंको साधन बताकर आपके अधर्मपरायण मूढ पुत्रोंको भस्म करना चाहते हैं ॥ ११ ॥

कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रं च केशवः ।
आत्मयोगेन भगवान्परिवर्तयतेऽनिशम् ॥ १२ ॥

ये भगवान् केशव ही अपनी योगशक्तिसे निरन्तर कालचक्र, संसारचक्र तथा युगचक्रको घुमाते रहते हैं ॥ १२ ॥

कालस्य च हि मृत्योश्च जङ्गमस्थावरस्य च ।
ईशते भगवानेकः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥

मैं आपसे यह सच कहता हूं कि एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही काल, मृत्यु तथा चराचर जगत्के स्वामी एवं शासक हैं ॥ १३ ॥

ईशन्नपि महायोगी सर्वस्य जगतो हरिः ।
कर्माण्यारभते कर्तुं कीनाश इव दुर्बलः　　　　॥ १४ ॥

महायोगी श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्के स्वामी एवं ईश्वर होते हुए भी दुर्बल किसानकी भाँति सदा नये-नये कर्मोंका आरम्भ करते रहते हैं ॥ १४ ॥

तेन वञ्चयते लोकान्मायायोगेन केशवः ।
ये तमेव प्रपद्यन्ते न ते मुह्यन्ति मानवाः　　　　॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ २२३२ ॥

भगवान् केशव अपनी मायाके प्रभावसे सब लोगोंको मोहमें डाले रहते हैं; किंतु जो मनुष्य केवल उन्हींकी शरण ले लेते हैं, वे उनकी मायासे मोहित नहीं होते हैं ॥ १५ ॥

। महाभारतके उद्योगपर्वमें छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ २२३२ ॥

: ६७ :

धृतराष्ट्र उवाच

कथं त्वं माधवं वेत्थ सर्वलोकमहेश्वरम् ।
कथमेनं न वेदाहं तन्ममाचक्ष्व संजय　　　　॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— संजय ! मधुवंशी भगवान् श्रीकृष्ण समस्त लोकोंके महान् ईश्वर हैं, इस बातको तुम कैसे जानते हो ? और मैं इन्हें इस रूपमें क्यों नहीं जानता ? इसका रहस्य मुझे बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

विद्या राजन्न ते विद्या मम विद्या न हीयते ।
विद्याहीनस्तमोध्वस्तो नाभिजानाति केशवम्　　　　॥ २ ॥

संजय बोले— राजन् ! आपकी विद्या वास्तवमें उत्तम विद्या नहीं है । और मेरी ज्ञानदृष्टि कभी लुप्त नहीं होती है। जो मनुष्य तत्त्वज्ञानसे शून्य है और जिसकी बुद्धि अज्ञानान्धकारसे विनष्ट हो चुकी है, वह श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता ॥ २ ॥

विद्यया तात जानामि त्रियुगं मधुसूदनम् ।
कर्तारमकृतं देवं भूतानां प्रभवाप्ययम्　　　　॥ ३ ॥

तात ! मैं ज्ञानदृष्टिसे ही प्राणियोंकी उत्पत्ति और विनाश करनेवाले त्रियुगस्वरूप भगवान् मधुसूदनको, जो सबके कर्ता हैं, परंतु किसीके कार्य नहीं हैं, जानता हूं ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

गावल्गणेऽत्र का भक्तिर्या ते नित्या जनार्दने।
यया त्वमभिजानासि त्रियुगं मधुसूदनम् ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र बोले— संजय! भगवान् श्रीकृष्णमें जो तुम्हारी नित्य भक्ति है, उसका स्वरूप क्या है? जिससे तुम त्रियुगस्वरूप भगवान् मधुसूदनके तत्त्वको जानते हो ॥ ४ ॥

संजय उवाच

मायां न सेवे भद्रं ते न वृथाधर्ममाचरे।
शुद्धभावं गतो भक्त्या शास्त्राद्वेद्मि जनार्दनम् ॥ ५ ॥

संजय बोले— महाराज! आपका कल्याण हो। मैं कभी माया (छल-कपट) का सेवन नहीं करता। व्यर्थ (पाखण्डपूर्ण) धर्मका आचरण नहीं करता। भगवान्‌की भक्तिसे मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है; अतः मैं शास्त्रके वचनोंसे भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपको यथावत् जानता हूं ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दुर्योधन हृषीकेशं प्रपद्यस्व जनार्दनम्।
आप्तो नः संजयस्तात शरणं गच्छ केशवम् ॥ ६ ॥

यह सुनकर धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे बोले— बेटा दुर्योधन! संजय हमलोगोंका विश्वासपात्र है। इसकी बातोंपर श्रद्धा करके तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंके प्रेरक जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय लो; उन्हींकी शरणमें जाओ ॥ ६ ॥

दुर्योधन उवाच

भगवान्देवकीपुत्रो लोकं चेन्निहनिष्यति।
प्रवदन्नर्जुने सख्यं नाहं गच्छेऽद्य केशवम् ॥ ७ ॥

दुर्योधन बोले— पिताजी! माना कि देवकीनन्दन श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं और वे इच्छा करते ही सम्पूर्ण लोकोंका संहार कर डालेंगे, तथापि वे अपनेको अर्जुनका मित्र बताते हैं; अतः अब मैं उनकी शरणमें नहीं जाऊँगा ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अवाग्गान्धारि पुत्रस्ते गच्छत्येष सुदुर्मतिः।
ईर्ष्युर्दुरात्मा मानी च श्रेयसां वचनातिगः ॥ ८ ॥

तब धृतराष्ट्र गान्धारीसे बोले— गान्धारी! तुम्हारा दुर्बुद्धि, दुरात्मा, ईर्ष्यालु और अभिमानी पुत्र श्रेष्ठ पुरुषोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके नरककी ओर जा रहा है ॥ ८ ॥

गान्धार्युवाच

ऐश्वर्यकाम दुष्टात्मन्वृद्धानां शासनातिग ।
ऐश्वर्यजीविते हित्वा पितरं मां च बालिश ॥ ९ ॥

गान्धारी बोले– हे ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले, बडोंकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले मूर्ख और दुष्टात्मा दुर्योधन ! इस ऐश्वर्य, जीवन, पिता और मुझ माताको भी त्यागकर ॥ ९ ॥

वर्धयन्दुर्हृदां प्रीतिं मां च शोकेन वर्धयन् ।
निहतो भीमसेनेन स्मर्तासि वचनं पितुः ॥ १० ॥

शत्रुओंकी प्रसन्नता और मेरा शोक बढाता हुआ जब तू भीमसेनके हाथों मारा जायेगा, उस समय तुझे पिताकी बातें याद आयेंगी ॥ १० ॥

व्यास उवाच

दयितोऽसि राजन्कृष्णस्य धृतराष्ट्र निबोध मे ।
यस्य ते संजयो दूतो यस्त्वां श्रेयसि योक्ष्यते ॥ ११ ॥

व्यास बोले– राजा धृतराष्ट्र ! मेरी बातोंपर ध्यान दो । वास्तवमें तुम श्रीकृष्णके प्रिय हो, तभी तो तुम्हें संजय जैसा दूत मिला है, जो तुम्हें कल्याणसाधनमें लगायेगा ॥ ११ ॥

जानात्येष हृषीकेशं पुराणं यच्च वै नवम् ।
शुश्रूषमाणमेकाग्रं मोक्ष्यते महतो भयात् ॥ १२ ॥

यह संजय पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्णको जानता है और उनका जो परमतत्त्व है, वह भी इसे ज्ञात है । यदि तुम एकाग्रचित्त होकर इसकी बातें सुनोगे तो यह तुम्हें महान् भयसे मुक्त कर देगा ॥ १२ ॥

वैचित्रवीर्य पुरुषाः क्रोधहर्षतमोवृताः ।
सिता बहुविधैः पाशैर्ये न तुष्टाः स्वकैर्धनैः ॥ १३ ॥

विचित्रवीर्यकुमार ! जो मनुष्य अपने धनसे संतुष्ट नहीं हैं और काम आदि विविध प्रकारके बन्धनोंसे बँधकर हर्ष और क्रोधके वशीभूत हो रहे हैं ॥ १३ ॥

यमस्य वशमायान्ति काममूढाः पुनः पुनः ।
अन्धनेत्रा यथैवान्धा नीयमानाः स्वकर्मभिः ॥ १४ ॥

वे काममोहित पुरुष अंधोंके नेतृत्वमें चलनेवाले अंधोंकी भांति अपने कर्मोंद्वारा प्रेरित होकर बारंबार यमराजके वशमें आते हैं ॥ १४ ॥

एष एकायनः पन्था येन यान्ति मनीषिणः ।
तं दृष्ट्वा मृत्युमत्येति महांस्तत्र न सज्जते ॥ १५ ॥

यह ज्ञानमार्ग एकमात्र परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है। जिसपर मनीषी ज्ञानी पुरुष चलते हैं, उस मार्गको देख या जान लेनेपर मनुष्य जन्म-मृत्युरूप संसारको लांघ जाता है और वह महात्मा पुरुष कभी इस संसारमें आसक्त नहीं होता है ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अङ्ग संजय मे शंस पन्थानमकुतोभयम् ।
येन गत्वा हृषीकेशं प्राप्नुयां शान्तिमुत्तमाम् ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—वत्स संजय ! तुम मुझे वह निर्भय मार्ग बताओ, जिससे चलकर मैं सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी परम मोक्षस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त कर सकूँ ॥ १६ ॥

संजय उवाच

नाकृतात्मा कृतात्मानं जातु विद्याज्जनार्दनम् ।
आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ॥ १७ ॥

संजय बोले—महाराज ! जिसने अपने मनको वशमें नहीं किया है, वह कभी नित्यसिद्ध परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको नहीं पासकता। अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें किये बिना दूसरा कोई कर्म उन परमात्माकी प्राप्तिका उपाय नहीं हो सकता ॥ १७ ॥

इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादतः ।
अप्रमादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम् ॥ १८ ॥

विषयोंकी ओर दौडनेवाली इन्द्रियोंकी भोगकामनाओंका पूर्ण सावधानीके साथ त्याग कर देना, प्रमादसे दूर रहना तथा किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना—ये तीन निश्चय ही तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण हैं ॥ १८ ॥

इन्द्रियाणां यमे यत्तो भव राजन्नतन्द्रितः ।
बुद्धिश्च मा ते च्यवतु नियच्छैतां यतस्ततः ॥ १९ ॥

राजन् ! आप आलस्य छोडकर इन्द्रियोंके संयममें तत्पर हो जाईये और अपनी बुद्धिको जैसे भी सम्भव हो, नियन्त्रणमें रखिये, जिससे वह अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट न हो ॥ १९ ॥

एतज्ज्ञानं विदुर्विप्रा ध्रुवमिन्द्रियधारणम् ।
एतज्ज्ञानं च पन्थाश्च येन यान्ति मनीषिणः ॥ २० ॥

इन्द्रियोंके दृढतापूर्वक संयममें रखना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मण इसीको ज्ञान मानते हैं। यह ज्ञान ही वह मार्ग है, जिससे मनीषी पुरुष चलते हैं ॥ २० ॥

अप्राप्यः केशवो राजन्निन्द्रियैरजितैर्नृभिः ।
आगमाधिगतो योगाद्वशी तत्त्वे प्रसीदति ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ २२५२ ॥

राजन् ! मनुष्य अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किये बिना भगवान् श्रीकृष्णको नहीं पा सकते । जिसने शास्त्रज्ञान और योगके प्रभावसे अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर रक्खा है, वही तत्त्वज्ञान पाकर प्रसन्न होता है ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सडसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥ २२५२ ॥

: ६८ :

धृतराष्ट्र उवाच

भूयो मे पुण्डरीकाक्षं संजयाचक्ष्व पृच्छते ।
नामकर्मार्थवित्तात प्राप्नुयां पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले–संजय ! तुम भगवान् श्रीकृष्णके नाम और कर्मोंका अभिप्राय जानते हो, अतः मेरे प्रश्नके अनुसार एक बार पुनः कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णका वर्णन करो ताकि मैं उन पुरुषोत्तम भगवान्को प्राप्त कर सकूं ॥ १ ॥

संजय उवाच

श्रुतं मे तस्य देवस्य नामनिर्वचनं शुभम् ।
यावत्तत्राभिजानेऽहमप्रमेयो हि केशवः ॥ २ ॥

संजय बोले–राजन् ! मैंने उस देव श्रीकृष्णके नामोंकी मङ्गलमयी व्युत्पत्ति सुन रक्खी है, उसमें जितना मुझे स्मरण है, उतना बता रहा हूँ । वास्तवमें तो भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंकी पहुँचसे परे हैं ॥ २ ॥

वसनात्सर्वभूतानां वसुत्वाद्देवयोनितः ।
वासुदेवस्ततो वेद्यो वृषत्वाद्वृष्णिरुच्यते ॥ ३ ॥

भगवान् समस्त प्राणियोंके निवासस्थान हैं तथा वे सब भूतोंमें वास करते हैं, इसलिये 'वसु' हैं एवं देवताओंकी उत्पत्तिके स्थान होनेसे और समस्त देवता उनमें वास करते हैं, इसलिये उन्हें 'देव' कहा जाता है । अतएव उनका नाम 'वासुदेव' है, ऐसा जानना चाहिये । वृषत् अर्थात् बलवान् होनेके कारण वे ही 'वृष्णि' कहलाते हैं ॥ ३ ॥

मौनाद्ध्यानाच्च योगाच्च विद्धि भारत माधवम्।
सर्वतत्त्वलयाच्चैव मधुहा मधुसूदनः ॥ ४ ॥

भारत! मौन, ध्यान और योगसे उनका बोध अथवा साक्षात्कार होता है; इसलिये आप उन्हें 'माधव' समझें! मधु शब्दसे प्रतिपादित पृथ्वी आदि सम्पूर्ण तत्त्वोंके उपादान एवं अधिष्ठान होनेके कारण मधुसूदन श्रीकृष्णको 'मधुहा' कहा गया है ॥ ४ ॥

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
कृष्णस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति शाश्वतः ॥ ५ ॥

'कृष्' धातु सत्ता अर्थका वाचक है और 'ण' शब्द आनन्द अर्थका बोध कराता है, इन दोनों भावोंसे युक्त होनेके कारण यदुकुलमें अवतीर्ण हुए नित्य आनन्दस्वरूप श्रीविष्णु 'कृष्ण' कहलाते हैं ॥ ५ ॥

पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षयमक्षरम्।
तद्भावात्पुण्डरीकाक्षो दस्युत्रासाज्जनार्दनः ॥ ६ ॥

नित्य, अक्षय, अविनाशी एवं परम भगवद्धामका नाम पुण्डरीक है। उसमें स्थित होकर जो अक्षतभावसे विराजते हैं, वे भगवान् 'पुण्डरीकाक्ष' कहलाते हैं। अथवा पुण्डरीककमलके समान उनके अक्षि नेत्र हैं, इसलिये उनका नाम पुण्डरीकाक्ष है। दस्युजनोंको त्रास अर्दन या पीडा देनेके कारण उनको 'जनार्दन' कहते हैं ॥ ६ ॥

यतः सत्त्वं न च्यवते यच्च सत्त्वान्न हीयते।
सत्त्वतः सात्वतस्तस्मादार्षभाद्वृषभेक्षणः ॥ ७ ॥

वे सत्वसे कभी च्युत नहीं होते और न सत्त्वसे अलग ही होते हैं, इसलिये सद्भावके सम्बन्धसे उनका नाम 'सात्वत' हैं। आर्ष कहते हैं वेदको, उससे भासित होनेके कारण भगवान्‌का एक नाम 'आर्षभ' है, आर्षभके योगसे ही वृषभेक्षण कहलाते हैं 'वृषभका' अर्थ है धर्म, वही ईक्षणनेत्रके समान उनका ज्ञापक है; इस व्युत्पत्तिके अनुसार वृषभेक्षण नामकी सिद्धि होती है ॥ ७ ॥

न जायते जनित्र्यां यदजस्तस्मादनीकजित्।
देवानां स्वप्रकाशत्वाद्दमाद्दामोदरं विदुः ॥ ८ ॥

शत्रुसेनाओंपर विजय पानेवाले ये भगवान् श्रीकृष्ण किसी जन्मदाताके द्वारा जन्म ग्रहण नहीं करते हैं, इसलिये 'अज' कहलाते हैं। देवता स्वयंप्रकाशरूप होते हैं, अतः उत्कृष्ट रूपसे प्रकाशित होनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णको 'उदर' कहा गया है और दम इन्द्रियसंयम नामक गुणसे सम्पन्न होनेके कारण उनका नाम 'दाम' है। इस प्रकार दाम और उदर इन दोनों शब्दोंके संयोगसे वे 'दामोदर' कहलाते हैं ॥ ८ ॥

हर्षात्सौख्यात्सुखैश्वर्याद्धृषीकेशत्वमश्नुते ।
बाहुभ्यां रोदसी बिभ्रन्महाबाहुरिति स्मृतः ॥ ९ ॥

वे हर्ष अर्थात् सुखसे युक्त होनेके कारण हृषीक हैं और सुख ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण 'ईश' कहे गये हैं । इस प्रकार वे भगवान् 'हृषीकेश' नाम धारण करते हैं । अपनी दोनों बाहुओंद्वारा भगवान् इस पृथ्वी और आकाशको धारण करते हैं, इसलिये उनका नाम 'महाबाहु' है ॥ ९ ॥

अधो न क्षीयते जातु यस्मात्तस्मादधोक्षजः ।
नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः ।
पूरणात्सदनाच्चैव ततोऽसौ पुरुषोत्तमः ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण कभी नीचे गिरकर क्षीण नहीं होते, अतः 'अधोक्षज' कहलाते हैं । वे नरों-जीवात्माओंके अयन आश्रय हैं, इसलिये उन्हें 'नारायण' भी कहते हैं । वे सर्वत्र परिपूर्ण हैं तथा सबके निवासस्थान हैं, इसलिये 'पुरुष' हैं और सब पुरुषोंमें उत्तम होनेके कारण उनकी 'पुरुषोत्तम' संज्ञा है ॥ १० ॥

असतश्च सतश्चैव सर्वस्य प्रभवाप्ययात् ।
सर्वस्य च सदा ज्ञानात्सर्वमेनं प्रचक्षते ॥ ११ ॥

वे सत् और असत् सबकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं तथा सर्वदा उन सबका ज्ञान रखते हैं; इसलिये उन्हें 'सर्व' कहते हैं ॥ ११ ॥

सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णः सत्यमत्र प्रतिष्ठितम् ।
सत्यात्सत्यं च गोविन्दस्तस्मात्सत्योऽपि नामतः ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण सत्यमें प्रतिष्ठित हैं और सत्य उनमें प्रतिष्ठित है । वे भगवान् गोविन्द सत्यसे भी उत्कृष्ट सत्य हैं । अतः उनका एक नाम 'सत्य' भी है ॥ १२ ॥

विष्णुर्विक्रमणादेव जयनाज्जिष्णुरुच्यते ।
शाश्वतत्वादनन्तश्च गोविन्दो वेदनाद्गवाम् ॥ १३ ॥

विक्रमण और सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण करनेके कारण वे भगवान् 'विष्णु' कहलाते हैं । वे सबपर विजय पानेसे 'जिष्णु', शाश्वत नित्य होनेसे 'अनन्त' तथा गौओं इन्द्रियोंके ज्ञाता और प्रकाशक होनेके कारण गांविन्दति इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'गोविन्द' कहलाते हैं ॥ १३ ॥

अतत्त्वं कुरुते तत्त्वं तेन मोहयते प्रजाः ।
एवंविधो धर्मनित्यो भगवान्मुनिभिः सह ।
आगन्ता हि महाबाहुरानृशंस्यार्थमच्युतः ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ २२६७ ॥

वे अपनी सत्ता-स्फूर्ति देकर असत्यको भी सत्य-सा कर देते हैं और इस प्रकार सारी प्रजाको मोहमें डाल देते हैं निरन्तर धर्ममें तत्पर रहनेवाले उन भगवान्‌का स्वरूप ऐसा ही है । अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण कौरवोंपर कृपा करनेके लिये मुनियोंके साथ यहाँ पधारनेवाले हैं ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें अडसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥ २२६७ ॥

: ६९ :

धृतराष्ट्र उवाच

चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि संजय द्रक्ष्यन्ति ये वासुदेवं समीपे ।
विभ्राजमानं वपुषा परेण प्रकाशयन्तं प्रदिशो दिशश्च ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— संजय ! जो लोग परम उत्तम श्रीअङ्गोंसे सुशोभित तथा दिशा-विदिशाओंको प्रकाशित करते हुए वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निकटसे दर्शन करेंगे, उन सफल नेत्रोंवाले मनुष्योंके सौभाग्यको पानेकी मैं भी अभिलाषा रखता हूँ ॥ १ ॥

ईरयन्तं भारतीं भारतानामभ्यर्चनीयां शङ्करीं सृंजयानाम् ।
बुभूषद्भिर्ग्रहणीयामनिन्द्यां परासूनामग्रहणीयरूपाम् ॥ २ ॥

भगवान् अत्यन्त मनोहर वाणीमें जो प्रवचन करेंगे, वह भरतवंशियों तथा सृंजयोंके लिये कल्याणकारी तथा आदरणीय होगा । ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंके लिये भगवान्‌की वह वाणी अनिन्द्य और शिरोधार्य होगी; परंतु जो मृत्युके निकट पहुँच चुके हैं, उन्हें वह अग्राह्य प्रतीत होगी ॥ २ ॥

समुद्यन्तं सात्वतमेकवीरं प्रणेतारमृषभं यादवानाम् ।
निहन्तारं क्षोभणं शात्रवाणां मुष्णन्तं च द्विषतां वै यशांसि ॥ ३ ॥

संसारके अद्वितीय वीर, सात्वतकुलके श्रेष्ठ पुरुष, यदुवंशियोंके माननीय नेता, शत्रुपक्षके योद्धाओंको क्षुब्ध करके उनका संहार करनेवाले तथा वैरियोंके यशको बलपूर्वक छीन लेनेवाले वे भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ उदित होंगे और नेत्रवाले लोग उनका दर्शन करके धन्य हो जायेंगे ॥ ३ ॥

द्रष्टारो हि कुरवस्तं समेता महात्मानं शत्रुहणं वरेण्यम् ।
ब्रुवन्तं वाचमनृशंसरूपां वृष्णिश्रेष्ठं मोहयन्तं मदीयान् ॥ ४ ॥

महात्मा, शत्रुहन्ता तथा सबके वरण करनेयोग्य वे वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्ण यहाँ आकर कृपापूर्ण कोमल वाक्य बोलेंगे और हमारे पक्षवर्ती राजाओंको मोहित करेंगे; इस अवस्थामें समस्त कौरव उन्हें देखेंगे ॥ ४ ॥

ऋषिं सनातनतमं विपश्चितं वाचः समुद्रं कलशं यतीनाम् ।
अरिष्टनेमिं गरुडं सुपर्णं पतिं प्रजानां भुवनस्य धाम ॥ ५ ॥

जो अत्यन्त सनातन ऋषि, ज्ञानी, वाणीके समुद्र और प्रयत्नशील साधकोंको कलशके जलकी भाँति सुलभ होनेवाले हैं, जिनके चरण समस्त विघ्नोंका निवारण करनेवाले हैं, सुन्दर पंखोंसे युक्त गरुड जिनके स्वरूप हैं, जो प्रजाजनोंके स्वामी तथा जगत्के आश्रय हैं ॥ ५ ॥

सहस्रशीर्षं पुरुषं पुराणमनादिमध्यान्तमनन्तकीर्तिम् ।
शुक्रस्य धातारमजं जनित्रं परं परेभ्यः शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो पुराणपुरुष हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जो अक्षय कीर्तिसे सुशोभित, बीज एवं वीर्यको धारण करनेवाले, अजन्मा, नित्य तथा परात्पर परमेश्वर हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ६ ॥

त्रैलोक्यनिर्माणकरं जनित्रं देवासुराणामथ नागरक्षसाम् ।
नराधिपानां विदुषां प्रधानमिन्द्रानुजं तं शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ समाप्तं यानसंधिपर्व ॥ २२७४ ॥

जो तीनों लोकोंका निर्माण करनेवाले हैं, जिन्होंने देवताओं, असुरों, नागों तथा राक्षसोंको भी जन्म दिया है तथा जो ज्ञानी नरेशोंके प्रधान हैं, इन्द्रके छोटे भाई वामनस्वरूप उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके उद्योगपर्वमें उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ यानसंधिपर्व समाप्त ॥ २२७४ ॥

: ७० :

वैशम्पायन उवाच

संजये प्रतियाते तु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
अभ्यभाषत दाशार्हमृषभं सर्वसात्वताम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– भारत ! इधर संजयके चले जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरने समस्त यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ दाशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णके पास पहुँचकर इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मे जनार्दन ।
न च त्वदन्यं पश्यामि यो न आपत्सु तारयेत् ॥ २ ॥

जनार्दन श्रीकृष्ण ! मित्रोंकी सहायताके लिये यही उपयुक्त अवसर आया है । मैं आपके सिवा दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो इस विपत्तिसे हमलोगोंका उद्धार करे ॥ २ ॥

त्वां हि माधव संश्रित्य निर्भया मोहदर्पितम् ।
धार्तराष्ट्रं सहामात्यं स्वयं समनुयुञ्ज्महे ॥ ३ ॥

हे माधव ! आपकी शरणमें आकर हम सब लोग निर्भय हो गये हैं और व्यर्थ ही घमंड दिखानेवाले धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन तथा उसके मन्त्रियोंको हम स्वयं युद्धके लिये ललकार रहे हैं ॥ ३ ॥

यथा हि सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीनरिंदम ।
तथा ते पाण्डवा रक्ष्याः पाह्यस्मान्महतो भयात् ॥ ४ ॥

शत्रुदमन ! जैसे आप वृष्णिवंशियोंकी सब प्रकारकी आपत्तियोंसे रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आपको पाण्डवोंकी भी रक्षा करनी चाहिये । प्रभो ! इस महान् भयसे आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

भगवानुवाच

अयमस्मि महाबाहो ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ।
करिष्यामि हि तत्सर्वं यत्त्वं वक्ष्यसि भारत ॥ ५ ॥

भगवान् बोले– महाबाहो ! यह मैं आपकी सेवाके लिये सर्वदा प्रस्तुत हूं । आप जो कुछ कहना चाहते हों, कहें । भारत ! आप जो-जो कहेंगे, वह सब कार्य मैं निश्चय ही पूर्ण करूंगा ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं ते धृतराष्ट्रस्य सपुत्रस्य चिकीर्षितम् ।
एतद्धि सकलं कृष्ण संजयो मां यदब्रवीत् ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर बोले— श्रीकृष्ण ! पुत्रोंसहित राजा धृतराष्ट्र क्या करना चाहते हैं, यह सब तो आपने सुन ही लिया । संजयने मुझसे जो कुछ कहा है, वह धृतराष्ट्रका ही मत है ॥ ६ ॥

तन्मतं धृतराष्ट्रस्य सोऽस्यात्मा विवृतान्तरः ।
यथोक्तं दूत आचष्टे वध्यः स्यादन्यथा ब्रुवन् ॥ ७ ॥

संजय धृतराष्ट्रका अभिन्नस्वरूप होकर आया था । उसने उन्हींके मनोभावको प्रकाशित किये हैं । दूत संजयने स्वामीकी कही हुई बातको ही दुहराया है; क्योंकि यदि वह उसके विपरीत कुछ कहता तो वधके योग्य माना जाता ॥ ७ ॥

अप्रदानेन राज्यस्य शान्तिमस्मासु मार्गति ।
लुब्धः पापेन मनसा चरन्नसममात्मनः ॥ ८ ॥

पापयुक्त मनसे राज्यका बडा लोभी धृतराष्ट्र अपने अनुरूप व्यवहार न करके राज्य दिये विना ही हमारे साथ संधिका मार्ग ढूंढ रहे हैं ॥ ८ ॥

यत्तद्द्वादश वर्षाणि वने निर्व्युषिता वयम् ।
छद्मना शरदं चैकां धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ९ ॥

प्रभो ! धृतराष्ट्रकी आज्ञासे तथा छलसे हम बारह वर्ष वनमें रहे और एक वर्ष अज्ञातवास किया ॥ ९ ॥

स्थाता नः समये तस्मिन्धृतराष्ट्र इति प्रभो ।
नाहास्म समयं कृष्ण तद्धि नो ब्राह्मणा विदुः ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण ! हमने यह समझा था कि धृतराष्ट्र अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहेंगे । हमने अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं की है; इस बातको हमारे साथ रहनेवाले सभी ब्राह्मण जानते हैं ॥ १० ॥

वृद्धो राजा धृतराष्ट्रः स्वधर्मं नानुपश्यति ।
पश्यन्वा पुत्रगृद्धित्वान्मन्दस्यान्वेति शासनम् ॥ ११ ॥

परंतु वृद्ध राजा धृतराष्ट्र अपने धर्मकी ओर नहीं देखते । पुत्रोंमें आसक्त होकर सदा उन्हींके अधीन रहनेके कारण तथा लोभी होनेके कारण वे अपने मूर्ख पुत्र दुर्योधनकी ही आज्ञाका अनुसरण करते हैं ॥ ११ ॥

सुयोधनमतं तिष्ठन्राजास्मासु जनार्दन ।
मिथ्या चरति लुब्धः सन्चरन्प्रियमिवात्मनः ॥ १२ ॥

जनार्दन ! उनका लोभ इतना बढ गया है कि वे दुर्योधनकी ही हाँ-में-हाँ मिलाते हैं और अपना ही प्रिय कार्य करते हुए हमारे साथ मिथ्या व्यवहार कर रहे हैं ॥ १२ ॥

इतो दुःखतरं किं नु यत्राहं मातरं ततः ।
संविधातुं न शक्नोमि मित्राणां वा जनार्दन ॥ १३ ॥

जनार्दन ! इससे बढकर महान् दुःखकी बात और क्या हो सकती है कि मैं अपनी माता तथा मित्रोंका भी अच्छी तरह भरण-पोषणतक नहीं कर सकता ॥ १३ ॥

काशिभिश्चेदिपाञ्चालैर्मत्स्यैश्च मधुसूदन ।
भवता चैव नाथेन पञ्च ग्रामा वृता मया ॥ १४ ॥

मधुसूदन ! यद्यपि काशी, चेदि, पाञ्चाल और मत्स्यदेशके वीर हमारे सहायक हैं और आप हमलोगोंके रक्षक और स्वामी हैं; (आपलोगोंकी सहायतासे हम सारा राज्य ले सकते हैं) तथापि मैंने केवल पांच ही गांव मांगे थे ॥ १४ ॥

कुशस्थलं वृकस्थलमासन्दी वारणावतम् ।
अवसानं च गोविन्द किञ्चिदेवात्र पञ्चमम् ॥ १५ ॥

गोविन्द ! मैंने धृतराष्ट्रसे यही कहा था कि तात ! आप हमें कुशस्थल, वृकस्थल, आसन्दी, वारणावत और अन्तिम पांचवां कोई-सा भी गांव, जिसे आप देना चाहें, दे दें॥ १५ ॥

पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा वा नगराणि वा ।
वसेम सहिता येषु मा च नो भरता नशन् ॥ १६ ॥

इस प्रकार हमारे लिये पांच गांव या नगर दे दें; जिनमें हम पांचों भाई एक साथ मिलकर रह सकें और हमारे कारण भरतवंशियोंका नाश न हो ॥ १६ ॥

न च तानपि दुष्टात्मा धार्तराष्ट्रोऽनुमन्यते ।
स्वाम्यमात्मनि मत्वासावतो दुःखतरं नु किम् ॥ १७ ॥

परंतु दुष्टात्मा दुर्योधन सवपर अपना ही अधिकार मानकर उन पांच गांवोंको भी देनेकी बात नहीं स्वीकार कर रहा है । इससे बढकर कष्टकी बात और क्या हो सकती है ? ॥१७॥

कुले जातस्य वृद्धस्य परवित्तेषु गृध्यतः ।
लोभः प्रज्ञानमाहन्ति प्रज्ञा हन्ति हता ह्रियम् ॥ १८ ॥

मनुष्य उत्तम कुलमें जन्म लेकर और वृद्ध होनेपर भी यदि दूसरोंके धनको लेना चाहता है तो वह लोभ उसकी विचारशक्तिको नष्ट कर देता है । विचारशक्ति नष्ट होनेपर उसकी लज्जाको भी नष्ट कर देती है ॥ १८ ॥

ह्रीर्हता बाधते धर्मं धर्मो हन्ति हतः श्रियम् ।
श्रीर्हता पुरुषं हन्ति पुरुषस्यास्वता वधः ॥ १९ ॥

नष्ट हुई लज्जा धर्मको नष्ट कर देती है। नष्ट हुआ धर्म मनुष्यकी सम्पत्तिका नाश कर देता है और नष्ट हुई सम्पत्ति उस मनुष्यका विनाश कर देती है, क्योंकि धनका अभाव ही मनुष्यका वध है ॥ १९ ॥

अस्वतो हि निवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदर्त्विजः ।
अपुष्पादफलाद्वृक्षाद्यथा तात पतत्रिणः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण! धनहीन पुरुषसे उसके भाई-बन्धु, सुहृद् और ऋषि लोग भी उसी प्रकार मुंह मोड लेते हैं, जैसे पक्षी पुष्प और फलसे हीन वृक्षको छोडकर उड जाते हैं ॥ २० ॥

एतच्च मरणं तात यदस्मात्पतितादिव ।
ज्ञातयो विनिवर्तन्ते प्रेतसत्त्वादिवासवः ॥ २१ ॥

तात! जैसे पतित मनुष्यके निकटसे लोग दूर भागते हैं और जैसे मृत शरीरसे प्राण निकल जाते हैं, उसी प्रकार मेरे कुटुम्बीजन भी जो मुझसे मुंह मोड रहे हैं, यही मेरे लिये मरण है ॥ २१ ॥

नातः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् ।
यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ २२ ॥

जहां आज और कल सबेरेके लिये भोजन नहीं दिखायी देता, उस दरिद्रतासे बढकर दूसरी कोई दुःखदायिनी अवस्था नहीं है; यह शम्बरका कथन है ॥ २२ ॥

धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ॥ २३ ॥

धनको उत्तम धर्मका साधक बताया गया है। धनमें सब कुछ प्रतिष्ठित है। संसारमें धनी मनुष्य ही जीवन धारण करते हैं। जो निर्धन हैं, वे तो मरे हुएके ही समान हैं ॥ २३ ॥

ये धनादपकर्षन्ति नरं स्वबलमाश्रिताः ।
ते धर्ममर्थं कामं च प्रमथ्नन्ति नरं च तम् ॥ २४ ॥

जो लोग अपने बलमें स्थित होकर किसी मनुष्यको धनसे वञ्चित कर देते हैं, वे उसके धर्म, अर्थ और कामको तो नष्ट करते ही हैं, उस मनुष्यको भी नष्ट कर देते हैं ॥ २४ ॥

×

एतामवस्थां प्राप्यैके मरणं वव्रिरे जनाः ।
ग्रामायैके वनायैके नाशायैके प्रवव्रजुः ॥ २५ ॥

इस निर्धन अवस्थाको पाकर कितने ही मनुष्योंने मृत्युका वरण किया है । कुछ लोग गाँव छोडकर दूसरे गाँवमें जा बसे हैं, कितने ही जंगलोंमें चले गये हैं और कितने ही मनुष्य प्राण देनेके लिये घरसे निकल पडे हैं ॥ २५ ॥

उन्मादमेके पुष्यन्ति यान्त्यन्ये द्विषतां वशम् ।
दास्यमेके निगच्छन्ति परेषामर्थहेतुना ॥ २६ ॥

कितने लोग पागल हो जाते हैं, बहुत से शत्रुओंके वशमें पड जाते हैं और कितने ही मनुष्य धनके लिये दूसरोंकी दासता स्वीकार कर लेते हैं ॥ २६ ॥

आपदेवास्य मरणात्पुरुषस्य गरीयसी ।
श्रियो विनाशस्तद्ध्यस्य निमित्तं धर्मकामयोः ॥ २७ ॥

धन-सम्पत्तिका नाश मनुष्यके लिये भारी विपत्ति ही है । वह मृत्युसे भी बढकर है, क्योंकि सम्पत्ति ही मनुष्यके धर्म और कामकी सिद्धिका कारण है ॥ २७ ॥

यदस्य धर्म्यं मरणं शाश्वतं लोकवर्त्म तत् ।
समन्तात्सर्वभूतानां न तदत्येति कश्चन ॥ २८ ॥

मनुष्यकी जो धर्मानुकूल मृत्यु है, वह परलोकके लिये सनातन मार्ग है । सम्पूर्ण प्राणियोंमेंसे कोई भी उस मृत्युका सब ओरसे उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥ २८ ॥

न तथा बाध्यते कृष्ण प्रकृत्या निर्धनो जनः ।
यथा भद्रां श्रियं प्राप्य तया हीनः सुखैधितः ॥ २९ ॥

श्रीकृष्ण ! जो जन्मसे ही निर्धन रहा है, उसे उस दरिद्रताके कारण उतना कष्ट नहीं पहुँचता, जितना कि कल्याणमयी सम्पत्तिको पाकर सुखमें ही पले हुए पुरुषको उस सम्पत्तिसे वञ्चित होनेपर होता है ॥ २९ ॥

स तदात्मापराधेन सम्प्राप्तो व्यसनं महत् ।
सेन्द्रान्गर्हयते देवान्नात्मानं च कथञ्चन ॥ ३० ॥

यद्यपि वह मनुष्य उस समय अपने ही अपराधसे भारी संकटमें पडता है, तथापि वह इसके लिये इन्द्र आदि देवताओंकी ही निन्दा करता है; अपनेको किसी प्रकार भी दोष नहीं देता है ॥ ३० ॥

न चास्मिन्सर्वशास्त्राणि प्रतरन्ति निगर्हणाम् ।
सोऽभिक्रुध्यति भृत्यानां सुहृदश्चाभ्यसूयति ॥ ३१ ॥

उस समय सम्पूर्ण शास्त्र भी, उसमें जो दोष हैं, उनसे उसे पार करानेमें समर्थ नहीं होते। वह सेवकोंपर कुपित होता और सगे-सम्बन्धियोंके दोष देखने लगता है ॥ ३१ ॥

तं तदा मन्युरेवैति स भूयः सम्प्रमुह्यति ।
स मोहवशमापन्नः क्रूरं कर्म निषेवते ॥ ३२ ॥

निर्धन अवस्थामें मनुष्यको केवल क्रोध आता है, जिससे वह पुनः मोहाच्छन्न हो जाता और विवेकशक्ति खो बैठता है। मोहके वशीभूत होकर वह क्रूरतापूर्ण कर्म करने लगता है॥ ३२ ॥

पापकर्मात्मयायैव संकरं तेन पुष्यति ।
संकरो नरकायैव सा काष्ठा पापकर्मणाम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार पापकर्मोंमें प्रवृत्त होनेके कारण वह वर्णसंकर संतानोंका पोषक होता है और वर्णसंकर केवल नरककी ही प्राप्ति कराता है। पापियोंकी यही अन्तिम गति है ॥ ३३ ॥

न चेत्प्रबुध्यते कृष्ण नरकायैव गच्छति ।
तस्य प्रबोधः प्रज्ञैव प्रज्ञाचक्षुर्न रिष्यति ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण ! यदि उसे फिरसे कर्तव्यका बोध नहीं होता, तो वह नरककी दिशामें ही बढता जाता है। कर्तव्यका बोध करानेवाली प्रज्ञा ही है। जिसे प्रज्ञारूपी नेत्र प्राप्त हैं, वह कभी नष्ट नहीं होता ॥ ३४ ॥

प्रज्ञालाभे हि पुरुषः शास्त्राण्येवान्ववेक्षते ।
शास्त्रनित्यः पुनर्धर्मं तस्य ह्रीरङ्गमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

प्रज्ञाकी प्राप्ति होनेपर पुरुष केवल शास्त्रवचनोंपर ही दृष्टि रखता है। शास्त्रमें रत होनेपर वह पुनः धर्म करता है। धर्मका उत्तम अंग है लज्जा, जो धर्मके साथ ही आ जाती है ॥ ३५ ॥

ह्रीमान्हि पापं प्रद्वेष्टि तस्य श्रीरभिवर्धते ।
श्रीमान्स यावद्भवति तावद्भवति पूरुषः ॥ ३६ ॥

लज्जाशील मनुष्य पापसे द्वेष रखकर उससे दूर हो जाता है। अतः उसकी धन-सम्पत्ति बढने लगती है। जो जितना ही श्रीसम्पन्न है, वह उतना ही पुरुष माना जाता है॥ ३६ ॥

धर्मनित्यः प्रशान्तात्मा कार्ययोगवहः सदा ।
नाधर्मे कुरुते बुद्धिं न च पापेषु वर्तते ॥ ३७ ॥

सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाला पुरुष शान्तचित्त होकर नित्य-निरन्तर सत्कर्मोंमें लगा रहता है। वह कभी अधर्ममें मन नहीं लगाता और न पापमें ही प्रवृत्त होता है ॥ ३७ ॥

अह्रीको वा विमूढो वा नैव स्त्री न पुनः पुमान्।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ ३८ ॥

जो निर्लज्ज अथवा मूर्ख है, वह न तो स्त्री है और न पुरुष ही है। उसका धर्म-कर्ममें अधिकार नहीं है। वह शूद्रके समान है ॥ ३८ ॥

ह्रीमानवति देवांश्च पितॄनात्मानमेव च।
तेनामृतत्वं व्रजति सा काष्ठा पुण्यकर्मणाम् ॥ ३९ ॥

लज्जाशील पुरुष देवताओंकी, पितरोंकी तथा अपनी भी रक्षा करता है। इससे वह अमृतत्वको प्राप्त होता है। वही पुण्यात्मा पुरुषोंकी परम गति है ॥ ३९ ॥

तदिदं मयि ते दृष्टं प्रत्यक्षं मधुसूदन।
यथा राज्यात्परिभ्रष्टो वसामि वसतीरिमाः ॥ ४० ॥

मधुसूदन! यह सब आपने मुझमें प्रत्यक्ष देखा है कि मैं किस प्रकार राज्यसे भ्रष्ट हुआ और कितने कष्टके साथ इन दिनों रह रहा हूँ ॥ ४० ॥

ते वयं न श्रियं हातुमलं न्यायेन केनचित्।
अत्र नो यतमानानां वधश्चेदपि साधु तत् ॥ ४१ ॥

अतः हमलोग किसी भी न्यायसे अपनी पैतृक सम्पत्तिका परित्याग करने योग्य नहीं हैं। इसके लिये प्रयत्न करते हुए यदि हमलोगोंका वध हो जाय तो वह भी अच्छा ही है ॥ ४१ ॥

तत्र नः प्रथमः कल्पो यद्वयं ते च माधव।
प्रशान्ताः समभूताश्च श्रियं तामश्नुवीमहि ॥ ४२ ॥

माधव! इस विषयमें हमारा पहला ध्येय यही है कि हम और कौरव आपसमें संधि करके शान्तभावसे रहकर उस सम्पत्तिका समानरूपसे उपभोग करें ॥ ४२ ॥

तत्रैषा परमा काष्ठा रौद्रकर्मक्षयोदया।
यद्वयं कौरवान्हत्वा तानि राष्ट्राण्यशीमहि ॥ ४३ ॥

दूसरा पक्ष यह है कि हम कौरवोंको मारकर सारा राज्य अपने अधिकारमें कर लें; परंतु यह भयंकर क्रूरतापूर्ण कर्मकी पराकाष्ठा होगी, क्योंकि इस दशामें कितने ही निरपराध मनुष्योंका संहार करनेके पश्चात् हमारी विजय होगी ॥ ४३ ॥

ये पुनः स्युरसम्बद्धा अनार्याः कृष्ण शत्रवः।
तेषामप्यवधः कार्यः किं पुनर्ये स्युरीदृशाः ॥ ४४ ॥

श्रीकृष्ण! जिनका अपने साथ कोई सम्बन्ध न हो तथा जो सर्वथा नीच एवं शत्रुभाव रखनेवाले हों, उनका भी वध करना उचित नहीं है। फिर जो सगे-सम्बन्धी, श्रेष्ठ और सुहृद् हैं, ऐसे लोगोंका वध कैसे उचित हो सकता है? ॥ ४४ ॥

ज्ञातयश्च हि भूयिष्ठाः सहाया गुरवश्च नः ।
तेषां वधोऽतिपापीयान्किं नु युद्धेऽस्ति शोभनम् ॥ ४५ ॥

हमारे विरोधियोंमें अधिकांश हमारे भाई-बन्धु, सहायक और गुरुजन हैं । उनका वध तो बहुत बडा पाप है । युद्धमें अच्छी बात क्या है ? कुछ नहीं ॥ ४५ ॥

पापः क्षत्रियधर्मोऽयं वयं च क्षत्रबान्धवाः ।
स नः स्वधर्मोऽधर्मो वा वृत्तिरन्या विगर्हिता ॥ ४६ ॥

क्षत्रियोंका यह युद्धरूप धर्म पापरूप ही है । हम भी क्षत्रिय ही हैं, अतः वह हमारा स्वधर्म पाप होनेपर भी हमें तो करना ही होगा, क्योंकि उसे छोडकर दूसरी किसी वृत्तिको अपनाना भी निन्दाकी बात होगी ॥ ४६ ॥

शूद्रः करोति शुश्रूषां वैश्या विपणिजीविनः ।
वयं वधेन जीवामः कपालं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥ ४७ ॥

शूद्र सेवाका कार्य करता है, वैश्य व्यापारसे जीविका चलाते हैं, हम क्षत्रिय युद्धमें दूसरोंका वध करके जीवननिर्वाह करते हैं और ब्राह्मणोंने अपनी जीविकाके लिये भिक्षापात्र चुन लिया है ॥ ४७ ॥

क्षत्रियः क्षत्रियं हन्ति मत्स्यो मत्स्येन जीवति ।
श्वा श्वानं हन्ति दाशार्ह पश्य धर्मो यथागतः ॥ ४८ ॥

क्षत्रिय क्षत्रियको मारता है, मछली मछलीको खाकर जीती है और कुत्ता कुत्तेको काटता है । दशार्हनन्दन ! देखिये; यही परम्परासे चला आनेवाला धर्म है ॥ ४८ ॥

युद्धे कृष्ण कलिर्नित्यं प्राणाः सीदन्ति संयुगे ।
बलं तु नीतिमात्राय हठे जयपराजयौ ॥ ४९ ॥

श्रीकृष्ण ! युद्धमें सदा कलह ही होता है और उसीके कारण प्राणोंका नाश होता है । मैं तो नीतिके लिये ही युद्ध करूँगा । फिर ईश्वरकी इच्छाके अनुसार जय हो या पराजय ॥ ४९ ॥

नात्मच्छन्देन भूतानां जीवितं मरणं तथा ।
नाप्यकाले सुखं प्राप्यं दुःखं वापि यदूत्तम ॥ ५० ॥

प्राणियोंके जीवन और मरण अपनी इच्छाके अनुसार नहीं होते, यही दशा जय और पराजयकी भी है । यदुश्रेष्ठ ! किसीको सुख अथवा दुःखकी प्राप्ति भी असमयमें नहीं होती ॥ ५० ॥

एको ह्यपि बहून्हन्ति घ्नन्त्येकं बहवोऽप्युत ।
शूरं कापुरुषो हन्ति अयशस्वी यशस्विनम् ॥ ५१ ॥

युद्धमें एक योद्धा भी बहुत-से सैनिकोंका संहार कर डालता है तथा बहुतसे योद्धा मिलकर भी किसी एकको ही मार पाते हैं। कभी कायर शूरवीरको मार देता है और अयशस्वी पुरुष यशस्वी वीरको पराजित कर देता है ॥ ५१ ॥

जयश्चैवोभयोर्दृष्ट उभयोश्च पराजयः ।
तथैवापचयो दृष्टो व्यपयाने क्षयव्ययौ ॥ ५२ ॥

कभी कभी तो दोनों पक्षोंकी विजय होती देखी गयी है और दोनोंकी पराजय ही दृष्टि-गोचर हुई है। हाँ, दोनोंके धन वैभवका नाश अवश्य देखा गया है। यदि कोई पक्ष पीठ दिखाकर भाग जाय तो उसे भी धन और जन दोनोंकी हानि उठानी पडती है ॥ ५२ ॥

सर्वथा वृजिनं युद्धं को घ्नन्न प्रतिहन्यते ।
हतस्य च हृषीकेश समौ जयपराजयौ ॥ ५३ ॥

इससे सिद्ध होता है कि युद्ध सर्वथा पापरूप ही है। दूसरोंको मारनेवाला कौन ऐसा पुरुष है, जो बदलेमें स्वयं भी मारा न जाता हो? हृषीकेश ! जो युद्धमें मारा गया, उसके लिये तो विजय और पराजय दोनों समान हैं ॥ ५३ ॥

पराजयश्च मरणान्मन्ये नैव विशिष्यते ।
यस्य स्याद्विजयः कृष्ण तस्याप्यपचयो ध्रुवम् ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्ण ! मैं तो ऐसा मानता हूँ कि पराजय मृत्युसे अच्छी वस्तु नहीं है। जिसकी विजय होती है, उसे भी निश्चय ही धन–जनकी भारी हानि उठानी पडती है ॥ ५४ ॥

अन्ततो दयितं घ्नन्ति केचिदप्यपरे जनाः ।
तस्याङ्ग बलहीनस्य पुत्रान्भ्रातॄनपश्यतः ।
निर्वेदो जीविते कृष्ण सर्वतश्चोपजायते ॥ ५५ ॥

युद्ध समाप्त होनेतक कितने ही विपक्षी सैनिक विजयी योद्धाके अनेक प्रियजनोंको मार डालते हैं। जो विजय पाता है, वह भी कुटुम्ब और धनसम्बन्धी बलसे शून्य हो जाता है। और कृष्ण ! जब वह युद्धमें मारे गये अपने पुत्रों और भाइयोंको नहीं देखता है, तो वह सब ओरसे विरक्त हो जाता है; उसे अपने जीवनसे भी वैराग्य हो जाता है ॥ ५५ ॥

ये ह्येव वीरा ह्रीमन्त आर्याः करुणवेदिनः ।
त एव युद्धे हन्यन्ते यवीयान्मुच्यते जनः ॥ ५६ ॥

जो लोग धीर वीर, लज्जाशील, श्रेष्ठ और दयालु हैं, वे ही प्रायः युद्धमें मारे जाते हैं और अधम श्रेणीके मनुष्य जीवित बच जाते हैं ॥ ५६ ॥

हत्वाप्यनुशयो नित्यं परानपि जनार्दन ।
अनुबन्धश्च पापोऽत्र शेषश्चाप्यवशिष्यते ॥ ५७ ॥

जनार्दन ! शत्रुओंको मारनेपर भी उनके लिये सदा मनमें पश्चात्ताप बना रहता है। भागे हुए शत्रुका पीछा करना अनुबन्ध कहलाता है, यह भी पापपूर्ण कार्य है । मारे जानेवाले शत्रुओंमेंसे कोई कोई बचा रह जाता है ॥ ५७ ॥

शेषो हि बलमासाद्य न शेषमवशेषयेत् ।
सर्वोच्छेदे च यतते वैरस्यान्तविधित्सया ॥ ५८ ॥

वह अवशिष्ट शत्रु शक्तिका संचय करके विजेताके पक्षमें जो लोग बचे हैं, उनमेंसे किसीको जीवित नहीं छोडना चाहता । वह शत्रुका अन्त कर डालनेकी इच्छासे विरोधी दलको सम्पूर्णरूपसे नष्ट कर देनेका प्रयत्न करता है ॥ ५८ ॥

जयो वैरं प्रसृजति दुःखमास्ते पराजितः ।
सुखं प्रशान्तः स्वपिति हित्वा जयपराजयौ ॥ ५९ ॥

विजयकी प्राप्ति भी चिरस्थायी शत्रुताकी सृष्टि करती है। पराजित पक्ष बडे दुःखसे समय बिताता है । जो किसीसे शत्रुता न रखकर शान्तिका आश्रय लेता है, वह जय-पराजयकी चिन्ता छोडकर सुखसे सोता है ॥ ५९ ॥

जातवैरश्च पुरुषो दुःखं स्वपिति नित्यदा ।
अनिर्वृतेन मनसा ससर्प इव वेश्मनि ॥ ६० ॥

किसीसे वैर बांधनेवाला पुरुष सर्पयुक्त गृहमें रहनेवालेकी भांति उद्विग्नचित्त होकर सदा दुःखकी नींद सोता है ॥ ६० ॥

उत्सादयति यः सर्वं यशसा स वियुज्यते ।
अकीर्तिं सर्वभूतेषु शाश्वतीं स नियच्छति ॥ ६१ ॥

जो शत्रुके कुलमें आबालवृद्ध सभी पुरुषोंका उच्छेद कर डालता है, वह वीरोचित यशसे वञ्चित हो जाता है । वह समस्त प्राणियोंमें सदा बनी रहनेवाली अपकीर्ति—निन्दाका भागी होता है ॥ ६१ ॥

न हि वैराणि शाम्यन्ति दीर्घकालकृतान्यपि ।
आख्यातारश्च विद्यन्ते पुमांश्चोत्पद्यते कुले ॥ ६२ ॥

दीर्घकालतक मनमें दबाये रखनेपर भी वैरकी आग सर्वथा बुझ नहीं पाती; क्योंकि यदि कोई उस कुलमें विद्यमान है, तो उससे पूर्वघटित वैर बढानेवाली घटनाओंको बतानेवाले बहुतसे लोग मिल जाते हैं ॥ ६२ ॥

न चापि वैरं वैरेण केशव व्युपशाम्यति ।
हविषाग्निर्यथा कृष्ण भूय एवाभिवर्धते ॥ ६३ ॥

केशव ! जैसे घी डालनेपर आग बुझनेके बजाय और अधिक प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार वैर करनेसे वैरकी आग शान्त नहीं होती, अधिकाधिक बढती ही जाती है ॥ ६३ ॥

अतोऽन्यथा नास्ति शान्तिर्नित्यमन्तरमन्ततः ।
अन्तरं लिप्समानानामयं दोषो निरन्तरः ॥ ६४ ॥

क्योंकि दोनों पक्षोंमें सदा कोई-न कोई छिद्र मिलनेकी सम्भावना रहती है इसलिये दोनों पक्षोंमेंसे एकका सर्वथा नाश हुए बिना पूर्णतः शान्ति नहीं प्राप्त होती है। जो लोग छिद्र ढूँढते रहते हैं, उनके सामने यह दोष निरन्तर प्रस्तुत रहता है ॥ ६४ ॥

पौरुषेयो हि बलवानाधिर्हृदयबाधनः ।
तस्य त्यागेन वा शान्तिर्निवृत्त्या मनसोऽपि वा ॥ ६५ ॥

यदि अपनेमें पुरुषार्थ है, तो पूर्व वैरको याद करके जो हृदयको पीडा देनेवाली प्रबल चिन्ता सदा बनी रहती है, उसे वैराग्यपूर्वक त्याग देनेसे ही शान्ति मिल सकती है; अथवा मनको उस वैर भावसे हटा लेनेपर उस चिन्ताका निवारण हो सकता है ॥ ६५ ॥

अथ वा मूलघातेन द्विषतां मधुसूदन ।
फलनिर्वृत्तिरिद्धा स्यात्तन्नृशंसतरं भवेत् ॥ ६६ ॥

अथवा शत्रुओंको समूल नष्ट कर देनेसे ही अभीष्ट फलकी सिद्धि हो सकती है। परंतु मधुसूदन ! यह बडी क्रूरताका कार्य होगा ॥ ६६ ॥

या तु त्यागेन शान्तिः स्यात्तदृते वध एव सः ।
संशयाच्च समुच्छेदाद्द्विषतामात्मनस्तथा ॥ ६७ ॥

राज्यको त्याग देनेसे उसके बिना जो शान्ति मिलती है, वह भी वधके ही समान है। क्योंकि उस दशामें शत्रुओंसे सदा यह संदेह बना रहता है कि ये अवसर देखकर प्रहार करेंगे और धन-सम्पत्तिसे वञ्चित होनेके कारण अपने विनाशकी सम्भावना भी रहती ही है ॥ ६७ ॥

न च त्यक्तुं तदिच्छामो न चेच्छामः कुलक्षयम् ।
अत्र या प्रणिपातेन शान्तिः सैव गरीयसी ॥ ६८ ॥

अतः हमलोग न तो राज्य त्यागना चाहते हैं और न कुलके विनाशकी ही इच्छा रखते हैं । यदि नम्रता दिखानेसे भी शान्ति हो जाय तो वही सबसे बढकर है ॥ ६८ ॥

सर्वथा यतमानानामयुद्धमभिकाङ्क्षताम् ।
सान्त्वे प्रतिहते युद्धं प्रसिद्धमपराक्रमम् ॥ ६९ ॥

यद्यपि हम युद्धकी इच्छा न रखकर साम, दाम और भेद सभी उपायोंसे राज्यकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न कर रहे हैं, तथापि यदि हमारी सामनीति असफल हुई तो युद्ध ही हमारा प्रधान कर्तव्य होगा; हम पराक्रम छोडकर बैठ नहीं सकते ॥ ६९ ॥

प्रतिघातेन सान्त्वस्य दारुणं सम्प्रवर्तते ।
तच्छुनामिव गोपादे पण्डितैरुपलक्षितम् ॥ ७० ॥

जब शान्तिके प्रयत्नोंमें बाधा आती है, तब भयंकर युद्ध स्वतः आरम्भ हो जाता है । पण्डितोंने इस युद्धकी उपमा कुत्तोंके कलहसे दी है ॥ ७० ॥

लाङ्गूलचालनं क्ष्वेडः प्रतिरावो विवर्तनम् ।
दन्तदर्शनमारावस्ततो युद्धं प्रवर्तते ॥ ७१ ॥

कुत्ते पहले पूँछ हिलाते हैं, फिर गुर्राते और गरजते हैं । तत्पश्चात् एक दूसरेके निकट पहुँचते हैं । फिर दाँत दिखाना और भूकना आरम्भ करते हैं । तत्पश्चात् उनमें युद्ध होने लगता है ॥ ७१ ॥

तत्र यो बलवान्कृष्ण जित्वा सोऽत्ति तदामिषम् ।
एवमेव मनुष्येषु विशेषो नास्ति कश्चन ॥ ७२ ॥

श्रीकृष्ण ! उनमें जो बलवान् होता है, वही उस मांसको खाता है, जिसके लिये कि उनमें लडाई हुई थी । यही दशा मनुष्योंकी है । इनमें कोई विशेषता नहीं है ॥ ७२ ॥

सर्वथा त्वेतदुचितं दुर्बलेषु बलीयसाम् ।
अनादरो विरोधश्च प्रणिपाती हि दुर्बलः ॥ ७३ ॥

यह सर्वथा उचित है कि बलवानोंकी दुर्बलोंके प्रति विरोध और अनादरबुद्धि हो । दुर्बल वही है, जो सदा झुकनेके लिये तैयार रहे ॥ ७३ ॥

×

पिता राजा च वृद्धश्च सर्वथा मानमर्हति ।
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च धृतराष्ट्रो जनार्दन ॥ ७४ ॥

जनार्दन ! पिता, राजा और वृद्ध सर्वथा समादरके ही योग्य हैं । अतः धृतराष्ट्र हमारे लिये सदा माननीय एवं पूजनीय हैं ॥ ७४ ॥

पुत्रस्नेहस्तु बलवान्धृतराष्ट्रस्य माधव ।
स पुत्रवशमापन्नः प्रणिपातं प्रहास्यति ॥ ७५ ॥

माधव ! धृतराष्ट्रमें अपने पुत्रके प्रति प्रबल आसक्ति है । वे पुत्रके वशमें होनेके कारण कभी झुकना नहीं स्वीकार करेंगे ॥ ७५ ॥

तत्र किं मन्यसे कृष्ण प्राप्तकालमनन्तरम् ।
कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेमाहि माधव ॥ ७६ ॥

माधव श्रीकृष्ण ! ऐसे कठिन कालके प्राप्त होनेपर आप क्या उचित समझते हैं ? हम कैसा बर्ताव करें, जिससे हमें अर्थ और धर्मसे भी वञ्चित न होना पडे ॥ ७६ ॥

ईदृशे ह्यर्थकृच्छ्रेऽस्मिन्कमन्यं मधुसूदन ।
उपसम्प्रष्टुमर्हामि त्वामृते पुरुषोत्तम ॥ ७७ ॥

पुरुषोत्तम मधुसूदन ! ऐसे महान् संकटके समय हम आपको छोडकर और किससे सलाह ले सकते हैं ? ॥ ७७ ॥

प्रियश्च प्रियकामश्च गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
को हि कृष्णास्ति नस्त्वादृक्सर्वनिश्चयवित्सुहृत् ॥ ७८ ॥

श्रीकृष्ण ! आपके समान हमारा प्रिय, हितैषी, समस्त कर्मोंके परिणामको जाननेवाला और सभी बातोंमें एक निश्चित सिद्धान्त रखनेवाला सुहृद् कौन है ? ॥ ७८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजं जनार्दनः ।
उभयोरेव वामर्थे यास्यामि कुरुसंसदम् ॥ ७९ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा– राजन् ! मैं दोनों पक्षोंके हितके लिये कौरवोंकी सभामें जाऊँगा ॥ ७९ ॥

शमं तत्र लभेयं चेद्युष्मदर्थमहापयन् ।
पुण्यं मे सुमहद्राजंश्चरितं स्यान्महाफलम् ॥ ८० ॥

वहाँ जाकर आपके लाभमें किसी प्रकारकी बाधा न पहुँचाते हुए यदि मैं दोनों पक्षोंमें संधि करा सका, तो समझूँगा कि मेरे द्वारा यह महान् फलदायक एवं बहुत बडा पुण्यकर्म सम्पन्न हो गया ॥ ८० ॥

मोचयेयं मृत्युपाशात्संरब्धान्कुरुसृञ्जयान् ।
पाण्डवान्धार्तराष्ट्रांश्च सर्वां च पृथिवीमिमाम् ॥ ८१ ॥

ऐसा होनेपर एक दूसरेके प्रति रोषमें भरे हुए इन कौरवों, सृंजयों, पाण्डवों और धृतराष्ट्र-पुत्रोंको तथा इस सारी पृथ्वीको भी मानो मैं मौतके फंदेसे छुडा लूँगा ॥ ८१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

न ममैतन्मतं कृष्ण यत्त्वं यायाः कुरून्प्रति ।
सुयोधनः सूक्तमपि न करिष्यति ते वचः ॥ ८२ ॥

युधिष्ठिर बोले— श्रीकृष्ण ! मेरा यह विचार नहीं है कि आप कौरवोंके यहां जायें; क्योंकि आपकी कही हुई अच्छी बातोंको भी दुर्योधन नहीं मानेगा ॥ ८२ ॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं सुयोधनवशानुगम् ।
तेषां मध्यावतरणं तव कृष्ण न रोचये ॥ ८३ ॥

इसके सिवा इस समय दुर्योधनके वशमें रहनेवाले भूमण्डलके सभी क्षत्रिय वहां एकत्र हुए हैं । उनके बीचमें आपका जाना मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ ८३ ॥

न हि नः प्रीणयेद्द्रव्यं न देवत्वं कुतः सुखम् ।
न च सर्वामरैश्वर्यं तव रोधेन माधव ॥ ८४ ॥

माधव ! यदि दुर्योधनने द्रोहवश आपको पकड लिया तो धन, सुख, देवत्व तथा सम्पूर्ण देवताओंका ऐश्वर्य भी हमें प्रसन्न नहीं कर सकेगा ॥ ८४ ॥

भगवानुवाच

जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम् ।
अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम् ॥ ८५ ॥

श्रीभगवान् बोले— महाराज ! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन कितना पापाचारी है, यह मैं जानता हूँ । तथापि वहां जाकर संधिके लिये प्रयत्न करनेपर हम सब लोग सम्पूर्ण जगत्के राजाओंकी दृष्टिमें निन्दाके पात्र न होंगे ॥ ८५ ॥

न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ८६ ॥

मेरे तिरस्कारके भयसे भी आप चिन्तित न हों, क्योंकि जैसे क्रोधमें भरे हुए सिंहके सामने दूसरे पशु नहीं ठहर सकते हैं, उसी प्रकार यदि मैं कोप करूँ, तो संसारके सारे भूपाल मिलकर भी युद्धमें मेरे सामने खडे नहीं हो सकते हैं ॥ ८६ ॥

अथ चेत्ते प्रवर्तेरन्मयि किंचिदसाम्प्रतम्।
निर्दहेयं कुरून्सर्वानिति मे धीयते मतिः ॥ ८७ ॥

यदि वे मेरे साथ थोड़ा-सा भी अनुचित बर्ताव करेंगे, तो मैं उन समस्त कौरवोंको जलाकर भस्म कर डालूँगा; यह मेरा निश्चित विचार है ॥ ८७ ॥

न जातु गमनं तत्र भवेत्पार्थ निरर्थकम्।
अर्थप्राप्तिः कदाचित्स्यादन्ततो वाप्यवाच्यता ॥ ८८ ॥

अतः, कुन्तीनन्दन! मेरा वहाँ जाना कदापि निरर्थक नहीं होगा। सम्भव है, वहाँ अपने अभीष्ट अर्थकी सिद्धि हो जाये और यदि काम न बना, तो भी हम निन्दासे तो बच ही जायेंगे ॥ ८८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

यत्तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान्।
कृतार्थं स्वस्तिमन्तं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम् ॥ ८९ ॥

युधिष्ठिर बोले— श्रीकृष्ण! आपकी जैसी रुचि हो, वही कीजिये। आपका कल्याण हो। आप प्रसन्नतापूर्वक कौरवोंके पास जाइये। आशा है, मैं पुनः आपको अपने कार्यमें सफल होकर यहाँ सकुशल लौटा हुआ देखूंगा ॥ ८९ ॥

विष्वक्सेन कुरून्गत्वा भारतान्शमयेः प्रभो।
यथा सर्वे सुमनसः सह स्यामः सुचेतसः ॥ ९० ॥

विष्वक्सेन प्रभो! आप कुरुदेशमें जाकर भरतवंशियोंको शान्त कीजिये, जिससे हम सब लोग शुद्ध हृदयसे प्रसन्नचित्त होकर एक साथ रह सकें ॥ ९० ॥

भ्राता चासि सखा चासि बीभत्सोर्मम च प्रियः।
सौहृदेनाविशङ्क्योऽसि स्वस्ति प्राप्नुहि भूतये ॥ ९१ ॥

आप हम लोगोंके भाई और मित्र हैं। अर्जुनके तथा मेरे भी प्रीतिभाजन हैं। आपके सौहार्दके विषयमें हमारे मनमें कोई शंका नहीं है। अतः आप उभय पक्षोंकी भलाईके लिये वहाँ जाइये। आपका कल्याण हो ॥ ९१ ॥

अस्मान्वेत्थ परान्वेत्थ वेत्थार्थं वेत्थ भाषितम्।
यद्यदस्मद्धितं कृष्ण तत्तद्वाच्यः सुयोधनः ॥ ९२ ॥

श्रीकृष्ण! आप हमको जानते हैं, कौरवोंको भी जानते हैं, हम दोनोंके स्वार्थोंसे भी आप अपरिचित नहीं हैं और बातचीत कैसे करनी चाहिये, यह भी आपको अच्छी तरह ज्ञात है। अतः जिस जिस बातसे हमारा हित हो, वह सब आप दुर्योधनको बतावें ॥ ९२ ॥

यद्यद्धर्मेण संयुक्तमुपपद्येद्धितं वचः ।
तत्तत्केशव भाषेथाः सान्त्वं वा यदि वेतरत् ॥ ९३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ २३६७ ॥

केशव ! जो जो बात धर्मसंगत, युक्तियुक्त और हितकर हो, वह सब कोमल हो या कठोर, आप अवश्य कहें ॥ ९३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ २३६७ ॥

: ७१ :

भगवानुवाच

संजयस्य श्रुतं वाक्यं भवतश्च श्रुतं मया ।
सर्वं जानाम्यभिप्रायं तेषां च भवतश्च यः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले– राजन् ! मैंने संजयकी और आपकी भी बातें सुनी हैं । कौरवोंका क्या अभिप्राय है, वह सब मैं जानता हूँ और आपका जो विचार है, उससे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ ॥ १ ॥

तव धर्माश्रिता बुद्धिस्तेषां वैराश्रिता मतिः ।
यदयुद्धेन लभ्येत तत्ते बहुमतं भवेत् ॥ २ ॥

आपकी बुद्धि धर्ममें स्थित है और उनकी बुद्धिने शत्रुताका आश्रय ले रक्खा है । आप तो विना युद्ध किये जो कुछ मिल जाये, उसीको बहुत समझेंगे ॥ २ ॥

न च तन्नैष्ठिकं कर्म क्षत्रियस्य विशां पते ।
आहुराश्रमिणः सर्वे यद्भैक्षं क्षत्रियश्चरेत् ॥ ३ ॥

हे प्रजापालक ! सभी आश्रमोंके विद्वानोंका यह मत है कि यदि क्षत्रिय भीख मांगने लग जाए, तो यह उसका कर्म नैष्ठिक स्वाभाविक कर्म नहीं है ॥ ३ ॥

जयो वधो वा संग्रामे धात्रा दिष्टः सनातनः ।
स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते ॥ ४ ॥

उसके लिये विधाताने यही सनातन कर्तव्य बताया है कि वह संग्राममें विजय प्राप्त करे अथवा वहीं प्राण दे दे । यही क्षत्रियका स्वधर्म है । दीनता अथवा कायरता उसके लिये प्रशंसाकी वस्तु नहीं है ॥ ४ ॥

न हि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर।
विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रूनरिंदम ॥ ५ ॥

महाबाहु युधिष्ठिर! दीनताका आश्रय लेनेसे क्षत्रियकी जीविका नहीं चल सकती। शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराज! अब पराक्रम दिखाइये और शत्रुओंका संहार कीजिये ॥ ५ ॥

अतिवृद्धाः कृतस्नेहा दीर्घकालं सहोषिताः।
कृतमित्राः कृतबला धार्तराष्ट्राः परंतप ॥ ६ ॥

परंतप! धृतराष्ट्रके पुत्र बडे लोभी हैं। इधर उन्होंने बहुतसे मित्र राजाओंका संग्रह कर लिया है और उनके साथ दीर्घकालतक रहकर अपने प्रति उनका स्नेह भी बढा लिया है। शिक्षा और अभ्यास आदिके द्वारा भी उन्होंने विशेष शक्तिका संचय कर लिया है ॥ ६ ॥

न पर्यायोऽस्ति यत्साम्यं त्वयि कुर्युर्विशां पते।
बलवत्तां हि मन्यन्ते भीष्मद्रोणकृपादिभिः ॥ ७ ॥

अतः, प्रजानाथ! ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे वे आपको आधा राज्य देकर आपके प्रति समता–सन्धि स्थापित करें। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि उनके पक्षमें हैं, इसलिये वे अपनेको आपसे अधिक बलवान् समझते हैं ॥ ७ ॥

यावच्च मार्दवेनैतान्राजन्नुपचरिष्यसि।
तावदेते हरिष्यन्ति तव राज्यमरिंदम ॥ ८ ॥

अतः, शत्रुदमन राजन्! जबतक आप इनके साथ नर्मीका बर्ताव करेंगे, तबतक ये आपके राज्यका अपहरण करनेकी ही चेष्टा करेंगे ॥ ८ ॥

नानुक्रोशान्न कार्पण्यान्न च धर्मार्थकारणात्।
अलं कर्तुं धार्तराष्ट्रास्तव काममरिंदम ॥ ९ ॥

शत्रुमर्दन नरेश! आप यह न समझें कि धृतराष्ट्रके पुत्र आपपर कृपा करके या अपनेको दीन दुर्बल मानकर अथवा धर्म एवं अर्थकी ओर दृष्टि रखकर आपका मनोरथ पूर्ण कर देंगे ॥ ९ ॥

एतदेव निमित्तं ते पाण्डवास्तु यथा त्वयि।
नान्वतप्यन्त कौपीनं तावत्कृत्वापि दुष्करम् ॥ १० ॥

पाण्डुनन्दन! कौरवोंके सन्धि न करनेका सबसे बडा कारण या प्रमाण तो यही है कि उन्होंने आपको कौपीन धारण कराकर तथा उतने दीर्घकालतकके लिये वनवासका दुष्कर कष्ट देकर भी कभी इसके लिये पश्चाताप नहीं किया ॥ १० ॥

पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य च धीमतः ।
पश्यतां कुरुमुख्यानां सर्वेषामेव तत्त्वतः ॥ ११ ॥

क्रूर दुर्योधनने उस समय पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, बुद्धिमान् विदुर, तथा कुरुकुलके सभी श्रेष्ठ पुरुषोंके देखते देखते ॥ ११ ॥

दानशीलं मृदुं दान्तं धर्मकाममनुव्रतम् ।
यत्त्वामुपधिना राजन्द्युतेनावञ्चयत्तदा ।
न चापत्रपते पापो नृशंसस्तेन कर्मणा ॥ १२ ॥

राजन् ! दानशील, कोमलस्वभाव, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, स्वभावतः धर्मपरायण आपको जूएमें छलसे ठग लिया और अपने उस कुकृत्यके लिये वह अबतक लज्जाका अनुभव नहीं करता है ॥ १२ ॥

तथाशीलसमाचारे राजन्मा प्रणयं कृथाः ।
वध्यास्ते सर्वलोकस्य किं पुनस्तव भारत ॥ १३ ॥

राजन् ! ऐसे कुटिलस्वभाव और खोटे आचरणवाले दुर्योधनके प्रति आप प्रेम न दिखावें। भारत ! धृतराष्ट्रके वे पुत्र तो सभी लोगोंके वध्य हैं; फिर आप उनका वध करें, इसके लिये तो कहना ही क्या है ? ॥ १३ ॥

वाग्भिस्त्वप्रतिरूपाभिरतुदत्सकनीयसम् ।
श्लाघमानः प्रहृष्टः सन्भाषते भ्रातृभिः सह ॥ १४ ॥

क्या आप वह दिन भूल गये, जब कि दुर्योधनने भाइयोंसहित आपको अपने अनुचित वचनोंद्वारा मार्मिक पीडा पहुँचायी थी। वह अत्यन्त हर्षसे फूलकर अपनी मिथ्या प्रशंसा करता हुआ अपने भाइयोंके साथ कहता था ॥ १४ ॥

एतावत्पाण्डवानां हि नास्ति किंचिदिह स्वकम् ।
नामधेयं च गोत्रं च तदप्येषां न शिष्यते ॥ १५ ॥

अब पाण्डवोंके पास इस संसारमें 'अपनी' कहनेके लिये इतनीसी भी कोई वस्तु नहीं रह गयी है। केवल नाम और गोत्र बचा है, परंतु वह भी शेष नहीं रहेगा ॥ १५ ॥

कालेन महता चैषां भविष्यन्ति पराभवः ।
प्रकृतिं ते भजिष्यन्ति नष्टप्रकृतयो जनाः ॥ १६ ॥

दीर्घकालके पश्चात् इनकी भारी पराजय होगी। इन मनुष्योंकी स्वाभाविक शूरता वीरता आदि नष्ट हो जायगी और ये प्राणत्याग करेंगे ॥ १६ ॥

एताश्चान्याश्च परुषा वाचः स समुदीरयन् ।
श्लाघते ज्ञातिमध्ये स्म त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ १७ ॥

जब आप वनकी ओर जाने लगे, उस समय भी वह बन्धु बान्धवोंके बीचमें ऊपर कही हुई तथा और भी बहुतसी कठोर बातें कहकर अपनी प्रशंसा करता रहा ॥ १७ ॥

ये तत्रासन्समानीतास्ते दृष्ट्वा त्वामनागसम् ।
अश्रुकण्ठा रुदन्तश्च सभायामासते तदा ॥ १८ ॥

जो लोग वहां बुलाये गये थे, वे सभी नरेश आपको निरपराध देखकर रोते और आँसू बहाते हुए रुँधे हुए कण्ठसे उस समय चुपचाप सभामें बैठे रहे ॥ १८ ॥

न चैनमभ्यनन्दंस्ते राजानो ब्राह्मणैः सह ।
सर्वे दुर्योधनं तत्र निन्दन्ति स्म सभासदः ॥ १९ ॥

ब्राह्मणोंसहित उन राजाओंने वहां दुर्योधनकी प्रशंसा नहीं की । उस समय सभी सभासद् उसकी निन्दा ही कर रहे थे ॥ १९ ॥

कुलीनस्य च या निन्दा वधश्चामित्रकर्शन ।
महागुणो वधो राजन्न तु निन्दा कुजीविका ॥ २० ॥

शत्रुसूदन ! कुलीन पुरुषके लिये निन्दा और वधमेंसे वध ही अत्यन्त गुणकारक है, निन्दा नहीं । निन्दा तो जीवनको घृणित बना देती है ॥ २० ॥

तदैव निहतो राजन्यदैव निरपत्रपः ।
निन्दितश्च महाराज पृथिव्यां सर्वराजसु ॥ २१ ॥

महाराज ! जब इस भूमण्डलके सभी राजाओंने निन्दा की, उसी समय उस निर्लज्ज दुर्योधनकी एक प्रकारसे मृत्यु हो गयी ॥ २१ ॥

ईषत्कार्यो वधस्तस्य यस्य चारित्रमीदृशम् ।
प्रस्कम्भनप्रतिस्तब्धश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ २२ ॥

जिसका चरित्र इतना गिरा हुआ है, उसका वध करना तो बहुत साधारण कार्य है । जिसकी जड कट गयी हो और जो गोल वेदीके आधार पर खडा हो, उस वृक्षकी भांति दुर्योधनके भी धराशायी होनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है ॥ २२ ॥

वध्यः सर्प इवानार्यः सर्वलोकस्य दुर्मतिः ।
जह्येनं त्वममित्रघ्न मा राजन्विचिकित्सिथाः ॥ २३ ॥

दुष्ट बुद्धिवाला दुराचारी दुर्योधन दुष्ट सर्पकी भांति सब लोगोंके लिये वध्य है । शत्रुओंका नाश करनेवाले महाराज ! आप दुविधामें न पड़ें, इस दुष्टको अवश्य मार डालें ॥ २३ ॥

सर्वथा त्वत्क्षमं चैतद्रोचते च ममानघ ।
यत्त्वं पितरि भीष्मे च प्रणिपातं समाचरेः ॥ २४ ॥

निष्पाप नरेश ! आप जो पितृतुल्य धृतराष्ट्र तथा पितामह भीष्मके प्रति प्रणाम एवं नम्रतापूर्ण बर्ताव करते हैं, वह सर्वथा आपके योग्य है । मैं भी इसे पसंद करता हूँ ॥ २४ ॥

अहं तु सर्वलोकस्य गत्वा छेत्स्यामि संशयम् ।
येषामस्ति द्विधाभावो राजन्दुर्योधनं प्रति ॥ २५ ॥

राजन् ! दुर्योधनके सम्बन्धमें जिन लोगोंका मन दुविधामें है, जो लोग उसके अच्छे या बुरे होनेका निर्णय नहीं कर सके हैं, उन सब लोगोंका संदेह मैं वहाँ जाकर दूर कर दूँगा ॥ २५ ॥

मध्ये राज्ञामहं तत्र प्रातिपौरुषिकान्गुणान् ।
तव संकीर्तयिष्यामि ये च तस्य व्यतिक्रमाः ॥ २६ ॥

मैं राजसभामें जुटे हुए भूपालोंकी मण्डलीमें आपके सर्वसाधारण गुणोंका वर्णन और दुर्योधनके दोषों तथा अपराधोंका उद्घाटन करूँगा ॥ २६ ॥

ब्रुवतस्तत्र मे वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
निशम्य पार्थिवाः सर्वे नानाजनपदेश्वराः ॥ २७ ॥

मेरे मुखसे धर्म और अर्थसे संयुक्त हितकर वचन सुनकर नाना जनपदोंके स्वामी समस्त भूपाल ॥ २७ ॥

त्वयि सम्प्रतिपत्स्यन्ते धर्मात्मा सत्यवागिति ।
तस्मिंश्चाधिगमिष्यन्ति यथा लोभादवर्तत ॥ २८ ॥

आपके विषयमें यह निश्चितरूपसे समझ लेंगे कि युधिष्ठिर धर्मात्मा तथा सत्यवादी हैं और दुर्योधनके सम्बन्धमें भी उन्हें यह निश्चय हो जायेगा कि उसने लोभसे प्रेरित होकर ही सारा अनुचित बर्ताव किया है ॥ २८ ॥

गर्हयिष्यामि चैवैनं पौरजानपदेष्वपि ।
वृद्धबालानुपादाय चातुर्वर्ण्यसमागमे ॥ २९ ॥

मैं वहाँ आये हुए चारों वर्णोंके आबालवृद्ध जनसमुदायको अपनाकर उनके सामने तथा पुरवासियों और देशवासियोंके समक्ष भी इस दुर्योधनकी निन्दा करूँगा ॥ २९ ॥

शमं चेद्याचमानस्त्वं न धर्मं तत्र लप्स्यसे ।
कुरून्विगर्हयिष्यन्ति धृतराष्ट्रं च पार्थिवाः ॥ ३० ॥

वहाँ शांतिके लिये याचना करनेपर भी आप वहाँ धर्मको न पा सकेंगे । सब राजा कौरवोंकी तथा धृतराष्ट्रकी ही निन्दा करेंगे ॥ ३० ॥

×

तस्मिँल्लोकपरित्यक्ते किं कार्यमवशिष्यते ।
हते दुर्योधने राजन्यदन्यत्क्रियतामिति ॥ ३१ ॥

सब लोग दुर्योधनको अन्यायी समझकर त्याग देंगे और वह निन्दनीय होनेके कारण नष्टप्राय: हो जायेगा । उस दशामें आपका दूसरा कौनसा कार्य शेष रह जाता है ? जिसे सम्पन्न किया जाये ॥ ३१ ॥

यात्वा चाहं कुरून्सर्वान्युष्मदर्थमहापयन् ।
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं लक्षयिष्ये च चेष्टितम् ॥ ३२ ॥

वहां पहुँचकर आपके स्वार्थकी सिद्धिमें तनिक भी त्रुटि न आने देते हुए मैं समस्त कौरवोंसे सन्धिस्थापनके लिये प्रयत्न करूँगा और उनकी चेष्टाओंपर दृष्टि रक्खूंगा ॥ ३२ ॥

कौरवाणां प्रवृत्तिं च गत्वा युद्धाधिकारिकाम् ।
निशाम्य विनिवर्तिष्ये जयाय तव भारत ॥ ३३ ॥

भारत ! मैं जाकर कौरवोंकी युद्धविषयक तैयारीकी बातें जान सुनकर आपकी विजयके लिये पुन: यहां लौट आऊंगा ॥ ३३ ॥

सर्वथा युद्धमेवाहमाशंसामि परैः सह ।
निमित्तानि हि सर्वाणि तथा प्रादुर्भवन्ति मे ॥ ३४ ॥

मुझे तो शत्रुओंके साथ सर्वथा युद्ध होनेकी ही सम्भावना दीख रही है; क्योंकि मेरे सामने ऐसे ही लक्षण प्रकट हो रहे हैं ॥ ३४ ॥

मृगाः शकुन्ताश्च वदन्ति घोरं हस्त्यश्वमुख्येषु निशामुखेषु ।
घोराणि रूपाणि तथैव चाग्निर्वर्णान्बहून्पुष्यति घोररूपान् ।
मनुष्यलोकक्षपणोऽथ घोरो नो चेदनुप्राप्त इहान्तकः स्यात् ॥ ३५ ॥

मृग पशु और पक्षी भयंकर शब्द कर रहे हैं । प्रदोषकालमें प्रमुख हाथियों और घोड़ोंके समुदायमें बड़ी भयानक आकृतियां प्रकट होती हैं । इसी प्रकार अग्निदेव भी नाना प्रकारके भयजनक वर्णों—रंगोंको धारण करते हैं । यदि मनुष्यलोकका संहार करनेवाली अत्यन्त भयंकर मृत्यु इनको नहीं प्राप्त हुई होती, तो ऐसी बातें देखनेमें नहीं आतीं ॥ ३५ ॥

शस्त्राणि पत्रं कवचान्रथांश्च नागान्ध्वजांश्च प्रतिपादयित्वा ।
योधाश्च सर्वे कृतनिश्रमास्ते भवन्तु हस्त्यश्वरथेषु यत्ताः ।
सांग्रामिकं ते यदुपार्जनीयं सर्वं समग्रं कुरु तन्नरेन्द्र ॥ ३६ ॥

अतः, नरेन्द्र ! आपके समस्त योद्धा युद्धके लिये दृढ निश्चय करके भांति भांतिके शस्त्र, पत्र, कवच, रथ, हाथी और घोड़ोंको सुसज्जित कर लें तथा उन हाथियों, घोड़ों, एवं रथोंपर सवार हो युद्ध करनेके निमित्त सदा तैयार रहें । इसके सिवा आपको युद्धोपयोगी जिन समस्त वस्तुओंका संग्रह करना है उन सबका भी आप संग्रह कर लीजिये ॥ ३६ ॥

दुर्योधनो न ह्यलमद्य दातुं जीवंस्तवैतन्नृपते कथंचित् ।
यत्ते पुरस्तादभवत्समृद्धं द्यूते हृतं पाण्डवमुख्य राज्यम् ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ २४०४ ॥

पाण्डवप्रवर ! नरेश्वर ! यह निश्चय मानिये, आपके पास पहले जो समृद्धिशाली राज्य-वैभव था और जिसे आपने जूएमें खो दिया था, वह सारा राज्य अब दुर्योधन अपने जीते जी आपको कभी नहीं दे सकता ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ २४०४ ॥

: ७२ :

भीमसेन उवाच

यथा यथैव शान्तिः स्यात्कुरूणां मधुसूदन ।
तथा तथैव भाषेथा मा स्म युद्धेन भीषयेः ॥ १ ॥

भीमसेन बोले— मधुसूदन ! आप कौरवोंके बीचमें वैसी ही बातें कहें, जिससे हमलोगोंमें शान्ति स्थापित हो सके । युद्धकी बात सुनाकर उन्हें भयभीत न कीजियेगा ॥ १ ॥

अमर्षी नित्यसंरब्धः श्रेयोद्वेषी महामनाः ।
नोग्रं दुर्योधनो वाच्यः साम्नैवैनं समाचरेः ॥ २ ॥

दुर्योधन असहनशील, क्रोधमें भरा रहनेवाला, श्रेयका विरोधी और मनमें बडे बडे हौसले रखनेवाला है । अतः उसके प्रति कठोर बात न कहियेगा, उसे सामनीतिके द्वारा ही समझानेका प्रयत्न कीजियेगा ॥ २ ॥

प्रकृत्या पापसत्त्वश्च तुल्यचेताश्च दस्युभिः ।
ऐश्वर्यमदमत्तश्च कृतवैरश्च पाण्डवैः ॥ ३ ॥

दुर्योधन स्वभावसे ही पापात्मा है । उसके हृदयमें डाकुओंके समान क्रूरता भरी रहती है । वह ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो गया है और पाण्डवोंके साथ सदा वैर बाँधे रहता है ॥३॥

अदीर्घदर्शी निष्ठूरी क्षेप्ता क्रूरपराक्रमः ।
दीर्घमन्युरनेयश्च पापात्मा निकृतिप्रियः ॥ ४ ॥

वह अदूरदर्शी, निष्ठुर वचन बोलनेवाला, परनिन्दक, क्रूर पराक्रमी, दीर्घकालतक क्रोधको मनमें संचित रखनेवाला, शिक्षा देने या सन्मार्गपर ले जाये जानेकी योग्यतासे रहित, पापात्मा तथा शठतासे प्रेम रखनेवाला है ॥ ४ ॥

म्रियेतापि न भज्येत नैव जह्यात्स्वकं मतम् ।
तादृशेन शमं कृष्ण मन्ये परमदुष्करम् ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! वह मर जायगा, किंतु झुक न सकेगा । अपना मत वह कभी नहीं छोड़ेगा । मैं समझता हूँ, ऐसे दुराग्रही मनुष्यके साथ संधि स्थापित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है ॥ ५ ॥

सुहृदामप्यवाचीनस्त्यक्तधर्मः प्रियानृतः ।
प्रतिहन्त्येव सुहृदां वाचश्चैव मनांसि च ॥ ६ ॥

दुर्योधन हितैषी सुहृदोंके भी विपरीत आचरण करनेवाला है । उसने धर्मको तो त्याग ही दिया है, झूठको भी प्रिय मानकर अपना लिया है । वह मित्रोंकी भी बातोंका खण्डन करता है और उनके हृदयको चोट पहुँचाता है ॥ ६ ॥

स मन्युवशमापन्नः स्वभावं दुष्टमास्थितः ।
स्वभावात्पापमन्वेति तृणैस्तुन्न इवोरगः ॥ ७ ॥

उसने क्रोधके वशीभूत होकर दुष्ट स्वभावका आश्रय ले रक्खा है । वह तिनकोंमें छिपे सर्पकी भांति स्वभावतः दूसरोंकी हिंसा करता है ॥ ७ ॥

दुर्योधनो हि यत्सेनः सर्वथा विदितस्तव ।
यच्छीलो यत्स्वभावश्च यद्बलो यत्पराक्रमः ॥ ८ ॥

भगवन् ! दुर्योधनकी सेना जैसी है, उसका शील और स्वभाव जैसा है, उसका बल और पराक्रम जिस प्रकारका है, वह सब कुछ आपको सब प्रकारसे ज्ञात है ॥ ८ ॥

पुरा प्रसन्नाः कुरवः सहपुत्रास्तथा वयम् ।
इन्द्रज्येष्ठा इवाभूम मोदमानाः सबान्धवाः ॥ ९ ॥

पूर्वकालमें पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंसहित कौरव और हमलोग इन्द्र आदि देवताओंकी भाँति परस्पर मिलकर बड़ी प्रसन्नता और आनन्दके साथ रहते थे ॥ ९ ॥

दुर्योधनस्य क्रोधेन भारता मधुसूदन ।
धक्ष्यन्ते शिशिरापाये वनानीव हुताशनैः ॥ १० ॥

परंतु, मधुसूदन ! जैसे शिशिरके अन्तमें अर्थात् ग्रीष्मकाल आनेपर वन दावानलसे जलने लगते हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण भरतवंशी इस समय दुर्योधनकी क्रोधाग्निसे जलनेवाले हैं ॥ १० ॥

अष्टादशेमे राजानः प्रख्याता मधुसूदन ।
ये समुच्चिच्छिदुर्ज्ञातीन्सुहृदश्च सबान्धवान् ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण ! आगे बताये जानेवाले ये अठारह विख्यात नरेश हैं, जिन्होंने बन्धुबान्धवोंसहित कुटुम्बीजनों तथा हितैषी सुहृदोंका संहार कर डाला था ॥ ११ ॥

असुराणां समृद्धानां ज्वलतामिव तेजसा ।
पर्यायकाले धर्मस्य प्राप्ते बलिरजायत ॥ १२ ॥

जैसे धर्मकी प्राप्तिके समय तेजसे प्रज्वलित होनेवाले समृद्धिशाली असुरोंमें बलि उत्पन्न हुआ था, ॥ १२ ॥

हैहयानामुदावर्तो नीपानां जनमेजयः ।
बहुलस्तालजङ्घानां कृमीणामुद्धतो वसुः ॥ १३ ॥

इसी प्रकार हैहयवंशमें उदावर्त, नीपकुलमें जनमेजय, तालजंघोंके वंशमें बहुल, कृमिकुलमें उद्दण्ड वसु, ॥ १३ ॥

अजबिन्दुः सुवीराणां सुराष्ट्राणां कुशर्द्धिकः ।
अर्कजश्च बलीहानां चीनानां धौतमूलकः ॥ १४ ॥

सुवीरोंके वंशमें अजबिंदु, सुराष्ट्रकुलमें कुशर्द्धिक, बलीहवंशमें अर्कज, चीनोंके कुलमें धौतमूलक, ॥ १४ ॥

हयग्रीवो विदेहानां वरप्रश्च महौजसाम् ।
बाहुः सुन्दरवेगानां दीप्ताक्षाणां पुरूरवाः ॥ १५ ॥

विदेहवंशमें हयग्रीव, महौजा नामक क्षत्रियोंके कुलमें वरप्र, सुन्दरवेग क्षत्रियोंमें बाहु, दीप्ताक्षकुलमें पुरूरवा ॥ १५ ॥

सहजश्चेदिमत्स्यानां प्रचेतानां बृहद्बलः ।
धारणश्चेन्द्रवत्सानां मुकुटानां विगाहनः ॥ १६ ॥

चेदि और मत्स्यदेशमें सहज, प्रचेतवंशमें बृहद्बल, चन्द्रवत्सकुलमें धारण, मुकुटवंशमें विगाहन ॥ १६ ॥

शमश्च नन्दिवेगानामित्येते कुलपांसनाः ।
युगान्ते कृष्ण सम्भूताः कुले कुपुरुषाधमाः ॥ १७ ॥

तथा नन्दिवेगकुलमें शम ये सभी कुलाङ्गार एवं नराधम क्षत्रिय युगान्तकाल आनेपर ऊपर बताये अनुसार भिन्न भिन्न कुलोंमें प्रकट हुए थे ॥ १७ ॥

अप्ययं नः कुरूणां स्याद्युगान्ते कालसम्भृतः ।
दुर्योधनः कुलाङ्गारो जघन्यः पापपूरुषः ॥ १८ ॥

पूर्वोक्त अठारह राजाओंकी भाँति यह कुलाङ्गार, नीच एवं पापपुरुष दुर्योधन भी इस द्वापर युगके अन्तमें कालसे प्रेरित हो हमारे कुरुकुलके विनाशका कारण होकर उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥

तस्मान्मृदु शनैरेनं ब्रूया धर्मार्थसंहितम् ।
कामानुबन्धबहुलं नोग्रमुग्रपराक्रमम् ॥ १९ ॥

अतः, भयंकर पराक्रमी श्रीकृष्ण ! आप उससे जो कुछ भी कहें, कोमल एवं मधुर वाणीमें धीरे धीरे कहें । आपका कथन धर्म एवं अर्थसे युक्त तथा हितकर हो । उसमें तनिक भी उग्रता न आने पावे । साथ ही इसका भी ध्यान रक्खें कि आपकी अधिकांश बातें उसकी रुचिके अनुकूल हों ॥ १९ ॥

अपि दुर्योधनं कृष्ण सर्वे वयमधश्चराः ।
नीचैर्भूत्वानुयास्यामो मा स्म नो भरता नशन् ॥ २० ॥

भगवन् ! हम सब लोग नीचे पैदल चलकर अत्यन्त नम्र होकर दुर्योधनका अनुसरण करते रहेंगे; परंतु हमारे कारणसे भरतवंशियोंका नाश न हो ॥ २० ॥

अप्युदासीनवृत्तिः स्याद्यथा नः कुरुभिः सह ।
वासुदेव तथा कार्यं न कुरूननयः स्पृशेत् ॥ २१ ॥

वासुदेव ! हमारा कौरवोंके साथ उदासीनभाव एवं तटस्थताका बर्ताव भी जैसे बना रहे, वैसा ही प्रयत्न आपको करना चाहिये । किसी प्रकार भी कौरवोंको अन्यायका स्पर्श नहीं होना चाहिये ॥ २१ ॥

वाच्यः पितामहो वृद्धो ये च कृष्ण सभासदः ।
भ्रातॄणामस्तु सौभ्रात्रं धार्तराष्ट्रः प्रशाम्यताम् ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण ! आप वहाँ बूढे पितामह भीष्म तथा अन्य सभासदोंसे ऐसा करनेके लिये ही कहें, जिससे सब भाइयोंमें सौहार्द बना रहे और दुर्योधन भी शान्त हो जाये ॥ २२ ॥

अहमेतद् ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति ।
अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयार्जुने ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ २४२७ ॥

मैं इस प्रकार शान्ति स्थापनके लिये कह रहा हूं । राजा युधिष्ठिर भी शान्तिकी ही प्रशंसा करते हैं और अर्जुन भी युद्धके इच्छुक नहीं हैं; क्योंकि अर्जुनमें बहुत अधिक दया भरी हुई है ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥ २४२७ ॥

: ७३ :

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः केशवः प्रहसन्निव।
अभूतपूर्वं भीमस्य मार्दवोपगतं वचः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— भीमसेनके मुखसे यह अभूतपूर्व मृदुतापूर्ण वचन सुनकर महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण हंसनेसे लगे ॥ १ ॥

गिरेरिव लघुत्वं तच्छीतत्वमिव पावके।
मत्वा रामानुजः शौरिः शार्ङ्गधन्वा वृकोदरम् ॥ २ ॥

जैसे पर्वतमें लघुता आ जायें और अग्निमें शीतलता प्रकट हो जाये, उसी प्रकार उनमें यह नम्रताका प्रादुर्भाव हुआ था। यह सोचकर शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले रामानुज श्रीकृष्ण अपने पास बैठे हुए वृकोदर भीमसेनको ॥ २ ॥

संतेजयंस्तदा वाग्भिर्मातरिश्वेव पावकम्।
उवाच भीममासीनं कृपयाभिपरिप्लुतम् ॥ ३ ॥

जो उस समय दयासे द्रवित हो रहे थे, अपने वचनोंद्वारा उसी प्रकार उत्तेजित करते हुए बोले, मानो वायु अग्निको उद्दीप्त कर रही हो ॥ ३ ॥

त्वमन्यदा भीमसेन युद्धमेव प्रशंससि।
वधाभिनन्दिनः क्रूरान्धार्तराष्ट्रान्मिमर्दिषुः ॥ ४ ॥

भीमसेन ! आजके सिवा और दिन तो तुम हिंसासे ही प्रसन्न होनेवाले क्रूर धृतराष्ट्रपुत्रोंको मसल डालनेकी इच्छा मनमें लेकर सदा युद्धकी ही प्रशंसा किया करते थे ॥ ४ ॥

न च स्वपिषि जागर्षि न्युब्जः शेषे परंतप।
घोरामशान्तां रुशतीं सदा वाचं प्रभाषसे ॥ ५ ॥

परंतप ! इन्हीं विचारोंमें डूबे रहनेके कारण तुम रातमें सोते भी नहीं थे, जागते ही रहते थे। कभी सोना ही पडा, तो औंधे मुँह लेट जाते और सदा घोर, अशान्त तथा रोषभरी बातें ही तुम्हारे मुँहसे निकलती थीं ॥ ५ ॥

निःश्वसन्नग्निवर्णेन संतप्तः स्वेन मन्युना।
अप्रशान्तमना भीम सधूम इव पावकः ॥ ६ ॥

भीम ! तुम बारंबार लंबी सांस खींचते हुए अपने ही अग्निके समान तेज क्रोधसे संतप्त होते थे, धुएँसे व्याप्त हुई अग्निकी भांति तुम्हारे अन्दर नित्यनिरन्तर अशान्ति छायी रहती थी ॥६॥

एकान्ते निष्टनञ्शेषे भारार्त इव दुर्बलः ।
अपि त्वां केचिदुन्मत्तं मन्यन्तेऽतद्विदो जनाः ॥ ७ ॥

भारी बोझसे पीडित दुर्बल मनुष्यकी भांति तुम एकान्तमें बैठकर जोरजोरसे सांस खींचते रहते थे । इसीलिये तुम्हें कुछ लोग, जो इस बातको नहीं जानते हैं, पागल मानते हैं ॥७॥

आरुज्य वृक्षान्निर्मूलान्गजः परिभुजन्निव ।
निघ्नन्पद्भिः क्षितिं भीम निष्टनन्परिधावसि ॥ ८ ॥

भीम ! जैसे हाथी वृक्षोंको जडमूलसहित उखाडकर उन्हें पैरोंकी ठोकरोंसे टूक टूक कर डालता है, उसी प्रकार तुम भी पैरोंसे पृथ्वीपर आघात करते हुए जोर जोरसे गर्जते और चारों ओर दौडते थे ॥ ८ ॥

नास्मिञ्जनेऽभिरमसे रहः क्षियसि पाण्डव ।
नान्यं निशि दिवा चापि कदाचिदभिनन्दसि ॥ ९ ॥

पाण्डुनन्दन ! तुम कभी इस जनसमुदायमें प्रसन्नताका अनुभव नहीं करते थे, सदा एकान्तमें ही बैठकर कालक्षेप करते थे । दिन हो या रात, तुम कभी किसी दूसरेका अभिनन्दन नहीं करते थे ॥ ९ ॥

अकस्मात्स्मयमानश्च रहस्यास्से रुदन्निव ।
जान्वोर्मूर्धानमाधाय चिरमास्से प्रमीलितः ॥ १० ॥

कभी सहसा हंस पडते और कभी एकान्त स्थानमें रोते हुएसे प्रतीत होते थे और कभी घुटनोंपर मस्तक रखकर दीर्घकालतक नेत्र बंद किये रहते थे ॥ १० ॥

भ्रुकुटिं च पुनः कुर्वन्नोष्ठौ च विलिहन्निव ।
अभीक्ष्णं दृश्यसे भीम सर्वं तन्मन्युकारितम् ॥ ११ ॥

भीमसेन ! मैंने बारबार तुम्हें भौंहें टेढी करके दोनों ओठोंको चाटते हुएसे देखा है । यह सब तुम्हारे क्रोधकी करतूत है ॥ ११ ॥

यथा पुरस्तात्सविता दृश्यते शुक्रमुच्चरन् ।
यथा च पश्चान्निर्मुक्तो ध्रुवं पर्येति रश्मिवान् ॥ १२ ॥

जैसे सूर्यदेव पूर्वदिशामें उदित होते हुए अपने तेजोमण्डलको प्रकट करते दिखायी देते हैं और पश्चिम दिशामें वे ही अंशुमाली अस्ताचलको जाकर निश्चितरूपसे मेरुपर्वतकी परिक्रमा करते हैं ॥ १२ ॥

तथा सत्यं ब्रवीम्येतन्नास्ति तस्य व्यतिक्रमः ।
हन्ताहं गदयाभ्येत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ १३ ॥

उनके इस नियममें कभी कोई अन्तर नहीं पडता; उसी प्रकार मैं यह सत्य कहता हूँ कि अमर्षशील दुर्योधनके पास जाकर अपनी गदासे उसके प्राण ले लूँगा । मेरे इस कथनमें कभी कोई अन्तर नहीं पड सकता ॥ १३ ॥

इति स्म मध्ये भ्रातॄणां सत्येनालभसे गदाम् ।
तस्य ते प्रशमे बुद्धिर्धीयतेऽद्य परंतप ॥ १४ ॥

इस प्रकार तुम अपने भाईयोंके बीचमें सत्यकी शपथ खाकर अपनी गदाको छूते हुए कहते थे । परंतप ! ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम जैसे वीरशिरोमणिकी बुद्धि आज शान्ति-स्थापनमें लग रही है, यह आश्चर्यकी बात है ! ॥ १४ ॥

अहो युद्धप्रतीपानि युद्धकाल उपस्थिते ।
पश्यसीवाप्रतीपानि किं त्वां भीर्भीम विन्दति ॥ १५ ॥

अहो ! युद्धका अवसर उपस्थित होनेपर पहलेसे युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले तुम्हारे विचार भी इतने बदल गए हैं कि विपरीत सोचने लगे हो । भीमसेन ! कहीं तुम्हें भी युद्धसे भय तो नहीं होने लगा है ॥ १५ ॥

अहो पार्थ निमित्तानि विपरीतानि पश्यसि ।
स्वप्नान्ते जागरान्ते च तस्मात्प्रशममिच्छसि ॥ १६ ॥

कुन्तीनन्दन ! बडे विस्मयकी बात है कि तुम्हें सोते और जागतेमें उलटे परिणामकी सूचना देनेवाले अपशकुन दिखायी देते हैं । इसीसे तुम शान्तिकी इच्छा प्रकट कर रहे हो ॥ १६ ॥

अहो नाशंससे किञ्चित्पुंस्त्वं क्लीब इवात्मनि ।
कश्मलेनाभिपन्नोऽसि तेन ते विकृतं मनः ॥ १७ ॥

अहो ! कायर और नपुंसककी भांति इस समय तुम अपनेमें कुछ भी पुरुषार्थ नहीं मानते । तुम्हारे ऊपर मोह छा गया है जिससे तुम्हारी मानसिक दशा बिगड गयी है ॥ १७ ॥

उद्वेपते ते हृदयं मनस्ते प्रविषीदति ।
ऊरुस्तम्भगृहीतोऽसि तस्मात्प्रशममिच्छसि ॥ १८ ॥

जान पडता है कि तुम्हारा हृदय कांपता है, मन शिथिल होता जाता है, तुम्हारी जांघें मानो अकड गयी हैं; इसीलिये तुम शान्ति चाहते हो ॥ १८ ॥

×

अनित्यं किल मर्त्यस्य चित्तं पार्थ चलाचलम् ।
वातवेगप्रचलिता अष्ठीला शाल्मलेरिव ॥ १९ ॥

पार्थ ! कहते हैं कि मनुष्यका चित्त सदा एक निश्चयपर अटल नहीं रहता । वह हवाके वेगसे हिलती हुई सेमलके फलकी गांठके समान डांवाडोल रहता है ॥ १९ ॥

तवैषा विकृता बुद्धिर्गवां वागिव मानुषी ।
मनांसि पाण्डुपुत्राणां मज्जयत्यप्लवानिव ॥ २० ॥

यदि गौएँ मनुष्योंकी बोली बोलें, तो वह जैसे बिगडी हुई होगी, उसी प्रकार तुम्हारी यह बुद्धि विकृत होकर अगाध समुद्रमें नावके बिना डूबनेवाले मनुष्योंकी भांति पाण्डवोंके मनको चिन्तामग्न किये देती है ॥ २० ॥

इदं मे महदाश्चर्यं पर्वतस्येव सर्पणम् ।
यदीदृशं प्रभाषेथा भीमसेनासमं वचः ॥ २१ ॥

भीमसेन ! तुम जो बात कह रहे हो, वह तुम्हारे योग्य कदापि नहीं है । जैसे पर्वतका चलना आश्चर्यकी बात है, उसी प्रकार तुम्हारे द्वारा किया हुआ यह शान्तिका प्रस्ताव मुझे महान् आश्चर्यमें डाल रहा है ॥ २१ ॥

स दृष्ट्वा स्वानि कर्माणि कुले जन्म च भारत ।
उत्तिष्ठस्व विषादं मा कृथा वीर स्थिरो भव ॥ २२ ॥

भारत ! तुम अपने कर्मोंकी ओर देखकर और जिस कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है, उसपर भी दृष्टिपात करके खडे हो जाओ । वीरवर ! विषाद न करो और अपने क्षत्रियोचित कर्मपर डट जाओ ॥ २२ ॥

न चैतदनुरूपं ते यत्ते ग्लानिररिंदम ।
यदोजसा न लभते क्षत्रियो न तदश्नुते ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ २४५० ॥

शत्रुदमन ! तुम्हारे चित्तमें जो ग्लानि उत्पन्न हुई है, यह तुम्हारे जैसे शूरवीरके योग्य कदापि नहीं है । क्योंकि क्षत्रिय जिसे ओज एवं पराक्रमसे प्राप्त नहीं करता, उसे अपने उपभोगमें नहीं ला सकता ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७३ ॥ २४५० ॥

: ७४ :

वैशम्पायन उवाच

तथोक्तो वासुदेवेन नित्यमन्युरमर्षणः ।
सदश्ववत्समाधावद्बभाषे तदनन्तरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर सदा क्रोध और अमर्षमें भरे रहनेवाले भीमसेन पहले सुशिक्षित घोडेकी भांति सरपट भागने लगे— जल्दी जल्दी बोलने लगे; फिर धीरे धीरे बोले ॥ १ ॥

अन्यथा मां चिकीर्षन्तमन्यथा मन्यसेऽच्युत ।
प्रणीतभावमत्यन्तं युधि सत्यपराक्रमम् ॥ २ ॥

अच्युत ! मैं करना तो कुछ और चाहता हूँ, परंतु आप समझ कुछ और ही रहे हैं । मेरा युद्धमें अत्यन्त अनुराग है और मेरा पराक्रम भी मिथ्या नहीं है ॥ २ ॥

वेत्थ दाशार्ह सत्त्वं मे दीर्घकालं सहोषितः ।
उत वा मां न जानासि प्लवन्ह्रद इवाप्लवः ।
तस्मादप्रतिरूपाभिर्वाग्भिर्मां त्वं समर्च्छसि ॥ ३ ॥

हे दशार्हनन्दन ! आप मेरे साथ बहुत समयतक रहे हैं, अतः आप मेरा स्वभाव और पराक्रम अच्छी तरह जानते ही होंगे । अथवा यह भी सम्भव है कि बिना नौकाके अगाध सरोवरमें तैरनेवाले पुरुषको जैसे उसकी गहराईका पता नहीं चलता, उसी तरह आप मुझे अच्छी तरह न जानते हों । इसीलिये आप अनुचित वचनोंद्वारा मुझपर आक्षेप कर रहे हैं ॥ ३ ॥

कथं हि भीमसेनं मां जानन्कश्चन माधव ।
ब्रूयादप्रतिरूपाणि यथा मां वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

माधव ! मुझ भीमसेनको अच्छी तरह जाननेवाला कोई भी मनुष्य मेरे प्रति ऐसे अयोग्य वचन, जैसे आप कह रहे हैं, कैसे कह सकता है ? ॥ ४ ॥

तस्मादिदं प्रवक्ष्यामि वचनं वृष्णिनन्दन ।
आत्मनः पौरुषं चैव बलं च न समं परैः ॥ ५ ॥

वृष्णिकुलनन्दन ! इसीलिये मैं आपसे अपने उस पौरुष तथा बलका वर्णन करना चाहता हूं, जिसकी समानता दूसरे लोग नहीं कर सकते ॥ ५ ॥

सर्वथा नार्यकर्मैतत्प्रशंसा स्वयमात्मनः।
अतिवादापविद्धस्तु वक्ष्यामि बलमात्मनः ॥ ६ ॥

यद्यपि स्वयं अपनी प्रशंसा करना सर्वथा नीच पुरुषोंका ही कार्य है, तथापि मेरे सम्मानके विपरीत बातें कहकर आपके द्वारा किए गए तिरस्कारसे पीडित होकर मैं अपने बलका बखान करता हूं ॥ ६ ॥

पश्येमे रोदसी कृष्ण ययोरासन्निमाः प्रजाः।
अचले चाप्यनन्ते च प्रतिष्ठे सर्वमातरौ ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण ! आप इस भूतल और स्वर्गलोकपर दृष्टिपात करें। इन्हीं दोनोंके भीतर ये समस्त प्रजाजन निवास करते हैं। ये दोनों सबके मातापिता हैं। इन्हें अचल एवं अनन्त माना गया है। ये दोनों अच्छी तरह प्रतिष्ठित हैं ॥ ७ ॥

यदीमे सहसा क्रुद्धे समेयातां शिले इव।
अहमेते निगृह्णीयां बाहुभ्यां सचराचरे ॥ ८ ॥

यदि ये दोनों लोक सहसा कुपित होकर दो शिलाओंकी भांति परस्पर टकराने लगें, तो मैं चराचर प्राणियोंसहित इन्हें अपनी दोनों भुजाओंसे रोक सकता हूँ ॥ ८ ॥

पश्यैतदन्तरं बाह्वोर्महापरिघयोरिव।
य एतत्प्राप्य मुच्येत न तं पश्यामि पूरुषम् ॥ ९ ॥

लोहेके विशाल परिघोंकी भांति मेरी इन मोटी भुजाओंका मध्यभाग कैसा है, यह देख लीजिये। मैं ऐसे किसी वीर पुरुषको नहीं देखता, जो इनके भीतर आकर फिर जीवित निकल जाये ॥ ९ ॥

हिमवांश्च समुद्रश्च वज्री च बलभित्स्वयम्।
मयाभिपन्नं त्रायेरन्बलमास्थाय न त्रयः ॥ १० ॥

जो मेरी पकडमें आ जायेगा, उसे हिमालय पर्वत, विशाल महासागर तथा बल नामक दैत्यका विनाश करनेवाले साक्षात् वज्रधारी इन्द्र ये तीनों अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी बचा नहीं सकते ॥ १० ॥

युध्येयं क्षत्रियान्सर्वान्पाण्डवेष्वाततायिनः।
अधः पादतलेनैतानधिष्ठास्यामि भूतले ॥ ११ ॥

पाण्डवोंके प्रति आततायी बने हुए इन समस्त क्षत्रियोंसे युद्ध कर सकता हूं और इन्हें मैं नीचे पृथ्वीपर गिराकर पैरोंतले रौंद सकता हूं ॥ ११ ॥

न हि त्वं नाभिजानासि मम विक्रममच्युत ।
यथा मया विनिर्जित्य राजानो वशगाः कृताः ॥ १२ ॥

अच्युत ! मैंने राजाओंको जिस प्रकार युद्धमें जीतकर अपने अधीन किया था, मेरे उस पराक्रमसे आप अपरिचित नहीं हैं ॥ १२ ॥

अथ चेन्मां न जानासि सूर्यस्येवोद्यतः प्रभाम् ।
विगाढे युधि सम्बाधे वेत्स्यसे मां जनार्दन ॥ १३ ॥

जनार्दन ! यदि कदाचित् आप मुझे या मेरे पराक्रमको न जानते हों तो जब भयंकर संहारकारी घमासान युद्ध प्रारम्भ होगा, उस समय उगते हुए सूर्यकी प्रभाके समान आप मुझे अवश्य जान लेंगे ॥ १३ ॥

किं मात्यवाक्षीः परुषैर्व्रणं सूच्या इवानघ ।
यथामति ब्रवीम्येतद्विद्धि मामधिकं ततः ॥ १४ ॥

हे निष्पाप कृष्ण ! जिस प्रकार कोई सुईसे घावको कुरेदे, उसी प्रकार आप अपने शब्दोंसे मुझे क्यों कुरेद रहे हैं, मैं अपनी बुद्धिके अनुसार यहां जो कुछ कह रहा हूँ, उससे भी बढ चढकर मुझे समझें ॥ १४ ॥

द्रष्टासि युधि सम्बाधे प्रवृत्ते वैशसेऽहनि ।
मया प्रणुन्नान्मातङ्गान्रथिनः सादिनस्तथा ॥ १५ ॥

जिस समय योद्धाओंसे खचाखच भरे हुए युद्धमें भयानक मारकाट मचेगी, उस दिन मुझे देखियेगा जब घमासान युद्धमें मतवाले हाथियों, रथियों तथा घुडसवारोंको धराशायी करना और फेंकना आरम्भ करूँगा ॥ १५ ॥

तथा नरानभिक्रुद्धं निघ्नन्तं क्षत्रियर्षभान् ।
द्रष्टा मां त्वं च लोकश्च विकर्षन्तं वरान्वरान् ॥ १६ ॥

और क्रुद्ध होकर दूसरे श्रेष्ठ क्षत्रियवीरोंका वध करने लगूँगा, उस समय आप और दूसरे लोग भी मुझे देखेंगे कि मैं किस प्रकार चुनचुनकर प्रधान प्रधान वीरोंका संहार कर रहा हूँ ॥ १६ ॥

न मे सीदन्ति मज्जानो न ममोद्वेपते मनः ।
सर्वलोकादभिक्रुद्धान्न भयं विद्यते मम ॥ १७ ॥

मेरी मज्जा शिथिल नहीं हो रही है और न मेरा हृदय ही कांप रहा है । यदि समस्त संसार भी अत्यन्त कुपित होकर मुझपर आक्रमण करे, तो भी उससे मुझे भय नहीं है ॥ १७ ॥

किं तु सौहृदमेवैतत्कृपया मधुसूदन ।
सर्वांस्तितिक्षे संक्लेशान्मा स्म नो भरता नशन् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुःसप्ततिमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ २४६८ ॥

हे मधुके हन्ता कृष्ण ! किंतु मैंने जो शांतिका प्रस्ताव किया है, यह तो केवल मेरा सौहार्द ही है । मैं दयावश सारे क्लेश सह लेनेको तैयार हूँ और चाहता हूँ कि हमारे कारण भरतवंशियोंका नाश न हो ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥ २४६८ ॥

: ७५ :

भगवानुवाच

भावं जिज्ञासमानोऽहं प्रणयादिदमब्रुवम् ।
न चाक्षेपान्न पाण्डित्यान्न क्रोधान्न विवक्षया ॥ १ ॥

भगवान् बोले– भीमसेन ! मैंने तो तुम्हारा मनोभाव जाननेके लिये ही प्रेमसे ये बातें कही हैं, तुमपर आक्षेप करने, पण्डिताई दिखाने, क्रोध प्रकट करने या व्याख्यान देनेकी इच्छासे कुछ नहीं कहा है ॥ १ ॥

वेदाहं तव माहात्म्यमुत ते वेद यद्बलम् ।
उत ते वेद कर्माणि न त्वां परिभवाम्यहम् ॥ २ ॥

मैं तुम्हारे माहात्म्यको जानता हूँ। तुममें जो बल और पराक्रम है, उससे भी परिचित हूँ और तुमने जो बडे बडे पराक्रम किये हैं, वे भी मुझसे छिपे नहीं हैं; अतः मैं तुम्हारा तिरस्कार नहीं करता ॥ २ ॥

यथा चात्मनि कल्याणं सम्भावयसि पाण्डव ।
सहस्रगुणमप्येतत्त्वयि सम्भावयाम्यहम् ॥ ३ ॥

पाण्डुनन्दन ! तुम अपनेमें जैसे कल्याणकारी गुणकी सम्भावना करते हो, उससे भी सहस्रगुने सद्गुणोंकी सम्भावना तुममें मैं करता हूं ॥ ३ ॥

यादृशे च कुले जन्म सर्वराजाभिपूजिते ।
बन्धुभिश्च सुहृद्भिश्च भीम त्वमसि तादृशः ॥ ४ ॥

भीमसेन ! समस्त राजाओंद्वारा सम्मानित जैसे प्रतिष्ठित कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है, अपने बन्धुओं और सुहृदोंसहित तुम वैसे ही प्रतिष्ठाके योग्य हो ॥ ४ ॥

जिज्ञासन्तो हि धर्मस्य संदिग्धस्य वृकोदर ।
पर्यायं न व्यवस्यन्ति दैवमानुषयोर्जनाः ॥ ५ ॥

वृकोदर ! दैवधर्म-प्रारब्ध और मानुषधर्म-पुरुषार्थका स्वरूप संदिग्ध है । लोग दैव और पुरुषार्थ दोनोंके परिणामको जानना चाहते हैं, परंतु किसी निश्चयतक पहुंच नहीं पाते ॥ ५ ॥

स एव हेतुर्भूत्वा हि पुरुषस्यार्थसिद्धिषु ।
विनाशेऽपि स एवास्य संदिग्धं कर्म पौरुषम् ॥ ६ ॥

क्योंकि उपर्युक्त पुरुषार्थ ही कभी पुरुषकी कार्यसिद्धिमें कारण बनकर कभी विनाशका भी हेतु बन जाता है । इस प्रकार जैसे दैवका फल संदिग्ध है, वैसे ही पुरुषार्थका भी. फल संदिग्ध है ॥ ६ ॥

अन्यथा परिदृष्टानि कविभिर्दोषदर्शिभिः ।
अन्यथा परिवर्तन्ते वेगा इव नभस्वतः ॥ ७ ॥

दोषदर्शी विद्वानोंद्वारा अन्य रूपमें देखे या विचारे हुए कर्म वायुके वेगोंकी भांति बदलकर किसी दूसरे ही रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं ॥ ७ ॥

समन्त्रितं सुनीतं च न्यायतश्चोपपादितम् ।
कृतं मानुष्यकं कर्म दैवेनापि विरुध्यते ॥ ८ ॥

अच्छी तरह विचारपूर्वक निश्चित किये हुए, उत्तम नीतिसे युक्त तथा न्यायपूर्वक सम्पादित किये हुए मानवसम्बन्धी पुरुषार्थसाध्य कर्म भी कभी दैववश बाधित हो जाते हैं, उनकी सिद्धिमें विघ्न पड जाता है ॥ ८ ॥

दैवमप्यकृतं कर्म पौरुषेण विहन्यते ।
शीतमुष्णं तथा वर्षं क्षुत्पिपासे च भारत ॥ ९ ॥

भारत ! दैवकृत कार्य भी समाप्त होनेसे पहले पुरुषार्थद्वारा नष्ट कर दिया जाता है । जैसे शीतका निवारण वस्त्रसे, गर्मीका व्यजनसे, वर्षाका छत्रसे और भूखप्यासका निवारण अन्न और जलसे हो जाता है ॥ ९ ॥

यदन्यद्दिष्टभावस्य पुरुषस्य स्वयंकृतम् ।
तस्मादनवरोधश्च विद्यते तत्र लक्षणम् ॥ १० ॥

प्रारब्धके अतिरिक्त जो पुरुषका स्वयं अपना किया हुआ कर्म है, उससे भी फलकी सिद्धि होती है । इस विषयमें यथेष्ट उदाहरण मिलते हैं ॥ १० ॥

लोकस्य नान्यतो वृत्तिः पाण्डवान्यत्र कर्मणः ।
एवंबुद्धिः प्रवर्तेत फलं स्यादुभयान्वयात् ॥ ११ ॥

पाण्डुनन्दन! पुरुषार्थको छोडकर दूसरे किसी साधनसे केवल दैवसे मनुष्यका जीवननिर्वाह नहीं हो सकता। ऐसा विचारकर उसे कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। फिर प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनोंके सम्बन्धसे फलकी प्राप्ति होगी ॥ ११ ॥

य एवं कृतबुद्धिः सन्कर्मस्वेव प्रवर्तते ।
नासिद्धौ व्यथते तस्य न सिद्धौ हर्षमश्नुते ॥ १२ ॥

जो अपनी बुद्धिमें ऐसा निश्चय करके कर्मोंमें ही प्रवृत्त होता है, वह फलकी सिद्धि न होनेपर दुःखी नहीं होता और फलकी प्राप्ति होनेपर भी हर्षका अनुभव नहीं करता ॥ १२ ॥

तत्रेयमर्थमात्रा मे भीमसेन विवक्षिता ।
नैकान्तसिद्धिर्मन्तव्या कुरुभिः सह संयुगे ॥ १३ ॥

भीमसेन! मुझे इस विषयमें अपना यह निश्चय बताना अभीष्ट है कि युद्धमें कौरवोंके साथ भिडनेपर तुम्हारी अवश्य ही विजय प्राप्त होगी, यह नहीं कहा जा सकता ॥ १३ ॥

नातिप्रणीतरश्मिः स्यात्तथा भवति पर्यये ।
विषादमच्छेद् ग्लानिं वा एतदर्थं ब्रवीमि ते ॥ १४ ॥

मनोभाव बदल जाये अथवा प्रारब्धके अनुसार कोई विपरीत घटना घटित हो जाये, तो भी सहसा अपने तेज और उत्साहको सर्वथा नहीं छोडना चाहिये। विषाद एवं ग्लानिका अनुभव नहीं करना चाहिये, यह बात भी मैंने तुम्हें आवश्यक समझकर बतायी है ॥ १४ ॥

श्वोभूते धृतराष्ट्रस्य समीपं प्राप्य पाण्डव ।
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं युष्मदर्थमहापयन् ॥ १५ ॥

पाण्डुनन्दन! कल सवेरे मैं राजा धृतराष्ट्रके समीप जाकर तुमलोगोंके स्वार्थकी सिद्धिमें तनिक भी बाधा न पहुंचाते हुए दोनों पक्षोंमें संधि करानेका प्रयत्न करूंगा ॥ १५ ॥

शमं चेत्ते करिष्यन्ति ततोऽनन्तं यशो मम ।
भवतां च कृतः कामस्तेषां च श्रेय उत्तमम् ॥ १६ ॥

यदि वे संधि स्वीकार कर लेंगे तो मुझे अक्षय यशकी प्राप्ति होगी। तुमलोगोंका मनोरथ भी पूर्ण होगा और कौरवोंका भी परम कल्याण होगा ॥ १६ ॥

ते चेदभिनिवेक्ष्यन्ति नाभ्युपैष्यन्ति मे वचः ।
कुरवो युद्धमेवात्र रौद्रं कर्म भविष्यति ॥ १७ ॥

यदि वे कौरव युद्धका ही आग्रह दिखायेंगे और मेरे संधि विषयक प्रस्तावको ठुकरा देंगे, तब यहां युद्ध ही होगा, जो भयंकर कर्म है ॥ १७ ॥

अस्मिन्युद्धे भीमसेन त्वयि भारः समाहितः ।
धूरर्जुनेन धार्या स्याद्बोढव्य इतरो जनः ॥ १८ ॥

भीमसेन ! इस युद्धमें सारा भार तुम्हारे ऊपर ही रक्खा जायेगा एवं अर्जुन इसकी धुरा धारण करेगा । अन्य लोगोंका भार भी तुम्हीं दोनोंको ढोना है ॥ १८ ॥

अहं हि यन्ता बीभत्सोर्भविता संयुगे सति ।
धनंजयस्यैष कामो न हि युद्धं न कामये ॥ १९ ॥

युद्ध आरम्भ होनेपर मैं अर्जुनका सारथि बनूंगा । यही अर्जुनकी इच्छा है । तुम यह न समझो कि मैं युद्ध होने देना नहीं चाहता ॥ १९ ॥

तस्मादाशङ्कमानोऽहं वृकोदर मतिं तव ।
तुदन्नक्लीबया वाचा तेजस्ते समदीपयम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ २४८८ ॥

वृकोदर ! इसीलिये जब तुम कायरतापूर्ण वचनोंद्वारा शान्तिका प्रस्ताव करने लगे, तब मुझे तुम्हारे युद्धविषयक विचारके बदल जानेका संदेह हुआ, जिसके कारण पूर्वोक्त बातें कहकर मैंने तुम्हारे तेजको उद्दीप्त किया ॥ २० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पिचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७५ ॥ २४८८ ॥

: ७६ :

अर्जुन उवाच

उक्तं युधिष्ठिरेणैव यावद्वाच्यं जनार्दन ।
तव वाक्यं तु मे श्रुत्वा प्रतिभाति परंतप ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– जनार्दन ! मुझे जो कुछ कहना था, वह सब तो महाराज युधिष्ठिरने ही कह दिया । शत्रुओंको संतप्त करनेवाले प्रभो ! आपकी बात सुनकर मुझे ऐसा जान पडता है ॥ १ ॥

नैव प्रशममत्र त्वं मन्यसे सुकरं प्रभो ।
लोभाद्वा धृतराष्ट्रस्य दैन्याद्वा समुपस्थितात् । ॥ २ ॥

कि आप धृतराष्ट्रके लोभ तथा हमारी प्रस्तुत दीनताके कारण संधि करानेका कार्य सरल नहीं समझ रहे हैं ॥ २ ॥

अफलं मन्यसे चापि पुरुषस्य पराक्रमम्।
न चान्तरेण कर्माणि पौरुषेण फलोदयः ॥ ३ ॥

अथवा आप मनुष्यके पराक्रमको निष्फल मानते हैं; क्योंकि पूर्वजन्मके कर्म प्रारब्धके बिना केवल पुरुषार्थसे किसी फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३ ॥

तदिदं भाषितं वाक्यं तथा च न तथैव च।
न चैतदेवं द्रष्टव्यमसाध्यमपि किंचन ॥ ४ ॥

आपने जो बात कही है, वह ठीक है; परंतु सदा वैसा ही हो, यह नहीं कहा जा सकता। किसी भी कार्यको असाध्य नहीं समझना चाहिये ॥ ४ ॥

किं चैतन्मन्यसे कृच्छ्रमस्माकं पापमादितः।
कुर्वन्ति तेषां कर्माणि येषां नास्ति फलोदयः ॥ ५ ॥

आप ऐसा मानते हैं कि हमारा यह वर्तमान कष्ट ही हमें पीडित करनेवाला है; परंतु वास्तवमें हमारे शत्रुओंके किये हुए वे कार्य ही हमें कष्ट दे रहे हैं, जिनका उनके लिये भी कोई विशेष फल नहीं है ॥ ५ ॥

सम्पाद्यमानं सम्यक्च स्यात्कर्म सफलं प्रभो।
स तथा कृष्ण वर्तस्व यथा शर्म भवेत्परैः ॥ ६ ॥

प्रभो! जिस कार्यको अच्छी तरह किया जाये, वह सफल हो सकता है। श्रीकृष्ण! आप ऐसा ही प्रयत्न करें, जिससे शत्रुओंके साथ हमारी संधि हो जाये ॥ ६ ॥

पाण्डवानां कुरूणां च भवान्परमकः सुहृत्।
सुराणामसुराणां च यथा वीर प्रजापतिः ॥ ७ ॥

वीरवर! जैसे प्रजापति ब्रह्मा देवताओं तथा असुरोंके भी प्रधान हितैषी हैं, उसी प्रकार आप हम पाण्डवों तथा कौरवोंके भी प्रधान सुहृद् हैं ॥ ७ ॥

कुरूणां पाण्डवानां च प्रतिपत्स्व निरामयम्।
अस्मद्धितमनुष्ठातुं न भव्ये तव दुष्करम् ॥ ८ ॥

इसलिये आप ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे कौरवों तथा पाण्डवोंके भी दुःखका निवारण हो जाये। मेरा विश्वास है कि हमारे लिये हितकर कार्य करना आपके लिये दुष्कर नहीं है ॥ ८ ॥

एवं चेत्कार्यतामेति कार्यं तव जनार्दन।
गमनादेवमेव त्वं करिष्यसि न संशयः ॥ ९ ॥

ऐसा करना आपके लिये अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य है। प्रभो! आप वहाँ जानेमात्रसे यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लेंगे इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ९ ॥

चिकीर्षितमथान्यत्ते तस्मिन्वीर दुरात्मनि ।
भविष्यति तथा सर्वं यथा तव चिकीर्षितम् ॥ १० ॥

वीर ! उस दुरात्मा दुर्योधनके प्रति आपको कुछ और करना अभीष्ट हो, तो जैसी आपकी इच्छा होगी, वह सब कार्य उसी रूपमें सम्पन्न होगा ॥ १० ॥

शर्म तैः सह वा नोऽस्तु तव वा यच्चिकीर्षितम् ।
विचार्यमाणो यः कामस्तव कृष्ण स नो गुरुः ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण ! कौरवोंके साथ हमारी संधि हो अथवा आप जो कुछ करना चाहते हों, वही हो । विचार करनेपर हम इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि आपकी जो इच्छा हो, वही हमारे लिये गौरव तथा समादरकी वस्तु है ॥ ११ ॥

न स नार्हति दुष्टात्मा वधं ससुतबान्धवः ।
येन धर्मसुते दृष्ट्वा न सा श्रीरुपमर्षिता ॥ १२ ॥

वह दुष्टात्मा दुर्योधन अपने पुत्रों और बन्धु बान्धवोंसहित वधके ही योग्य है, जो धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास आयी हुई सम्पत्ति देखकर उसे सहन न कर सका ॥ १२ ॥

यच्चाप्यपश्यतोपायं धर्मिष्ठं मधुसूदन ।
उपायेन नृशंसेन हृता दुर्द्यूतदेविना ॥ १३ ॥

इतना ही नहीं, जब कपटद्यूतका आश्रय लेनेवाले उस क्रूरात्माने किसी धर्मसम्मत उपाय युद्ध आदिको अपने लिये सफलता देनेवाला नहीं देखा, तब कपटपूर्ण उपायसे उस सम्पत्तिका अपहरण कर लिया ॥ १३ ॥

कथं हि पुरुषो जातः क्षत्रियेषु धनुर्धरः ।
समाहूतो निवर्तेत प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ॥ १४ ॥

क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुआ कोई भी धनुर्धर पुरुष किसीके द्वारा युद्धके लिये आमन्त्रित होनेपर कैसे पीछे हट सकता है ? भले ही वैसा करनेपर उसके लिये प्राणत्यागका संकट भी उपस्थित हो जाये ॥ १४ ॥

अधर्मेण जितान्दृष्ट्वा वने प्रव्रजितांस्तथा ।
वध्यतां मम वार्ष्णेय निर्गतोऽसौ सुयोधनः ॥ १५ ॥

वृष्णिकुलनन्दन ! हमलोग अधर्मपूर्वक जूएमें पराजित किये गये और वनमें भेज दिये गये । यह सब देखकर मैंने मन ही मन पूर्णरूपसे निश्चय कर लिया था कि दुर्योधन मेरे द्वारा वधके योग्य है ॥ १५ ॥

न चैतदद्भुतं कृष्ण मित्रार्थे यच्चिकीर्षसि ।
क्रिया कथं नु मुख्या स्यान्मृदुना वेतरेण वा ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण ! आप मित्रोंके हितके लिये जो कुछ करना चाहते हैं, वह आपके लिये अद्भुत नहीं है । मृदु अथवा कठोर, जिस उपायसे भी सम्भव है, किसी तरह अपना मुख्य कार्य सफल होना चाहिये ॥ १६ ॥

अथ वा मन्यसे ज्यायान्वधस्तेषामनन्तरम् ।
तदेव क्रियतामाशु न विचार्यमतस्त्वया ॥ १७ ॥

अथवा यदि आप अब कौरवोंका वध ही श्रेष्ठ मानते हों तो वही शीघ्रसे शीघ्र किया जावे । फिर इसके सिवा और किसी बातपर आपको विचार नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

जानासि हि यथा तेन द्रौपदी पापबुद्धिना ।
परिक्लिष्टा सभामध्ये तच्च तस्यापि मर्षितम् ॥ १८ ॥

आप जानते हैं, इस पापात्मा दुर्योधनने भरी सभामें द्रुपदकुमारी कृष्णाको कितना कष्ट पहुँचाया था, परंतु हमने उसके इस महान् अपराधको भी चुपचाप सह लिया था ॥१८॥

स नाम सम्यग्वर्तेत पाण्डवेष्विति माधव ।
न मे संजायते बुद्धिर्बीजमुप्तमिवोषरे ॥ १९ ॥

माधव ! वही दुर्योधन अब पाण्डवोंके साथ अच्छा बर्ताव करेगा, ऐसी बात मेरी बुद्धिमें जंच नहीं रही है । उसके साथ संधिका सारा प्रयत्न ऊसरमें बोये हुए बीजकी भांति व्यर्थ ही है ॥ १९ ॥

तस्माद्यन्मन्यसे युक्तं पाण्डवानां च यद्धितम् ।
तदाशु कुरु वार्ष्णेय यन्नः कार्यमनन्तरम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ २५०८ ॥

अतः, वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्ण ! आप पाण्डवोंके लिये अबसे करने योग्य जो उचित एवं हितकर कार्य मानते हों, वही यथासम्भव शीघ्र आरम्भ कीजिये ॥ २० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें छिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ २५०८ ॥

७७

भगवानुवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।
सर्वं त्विदं समायत्तं बीभत्सो कर्मणोर्द्वयोः ॥ १ ॥

भगवान् बोले-- महाबाहु पाण्डुकुमार ! तुम जैसा कहते हो, वैसा ही करना उचित है । अर्जुन! इसमें संदेह नहीं कि शान्ति और युद्ध इन दोनों कार्योंमेंसे किसी एकको हितकर समझकर अपनानेका सारा दायित्व मेरे हाथमें आ गया है ॥ १ ॥

क्षेत्रं हि रसवच्छुद्धं कर्षकेणोपपादितम् ।
ऋते वर्षं न कौन्तेय जातु निर्वर्तयेत्फलम् ॥ २ ॥

तथापि इसमें प्रारब्धकी अनुकूलता अपेक्षित है । कुन्तीनन्दन ! जुताई और सिंचाई करके कितना ही शुद्ध और सरस बनाया हुआ खेत क्यों न हो, कभी कभी वर्षाके बिना वह अच्छी उपज नहीं दे सकता ॥ २ ॥

तत्र वै पौरुषं ब्रूयुरासेकं यत्नकारितम् ।
तत्र चापि ध्रुवं पश्येच्छोषणं दैवकारितम् ॥ ३ ॥

जिस खेतमें जुताई और सिंचाई की गयी है, वहाँ यह पुरुषार्थ ही किया गया है; परंतु वहाँ भी दैववश सूखा पड गया, यह निश्चितरूपसे देखा जाता है, अतः पुरुषार्थकी सफलताके लिये प्रारब्धकी अनुकूलता आवश्यक है ॥ ३ ॥

तदिदं निश्चितं बुद्ध्या पूर्वैरपि महात्मभिः ।
दैवे च मानुषे चैव संयुक्तं लोककारणम् ॥ ४ ॥

इसीलिये पूर्वकालके महात्माओंने अपनी बुद्धिद्वारा यही निश्चय किया है कि लोकहितका साधन दैव तथा पुरुषार्थ दोनोंपर निर्भर है ॥ ४ ॥

अहं हि तत्करिष्यामि परं पुरुषकारतः ।
दैवं तु न मया शक्यं कर्म कर्तुं कथंचन ॥ ५ ॥

मैं पुरुषार्थसे जितना हो सकता है, उतना संधिस्थापनके लिये अधिकसे अधिक प्रयत्न करूंगा; परंतु प्रारब्धके विधानको किसी प्रकार भी टाल देना या बदल देना मेरे लिये सम्भव नहीं है ॥ ५ ॥

स हि धर्मं च सत्यं च त्यक्त्वा चरति दुर्मतिः ।
न हि संतप्यते तेन तथारूपेण कर्मणा ॥ ६ ॥

दुर्बुद्धि दुर्योधन सदा धर्म और लोकाचारको छोडकर ही चलता है; परंतु इस प्रकार धर्म और लोकके विरुद्ध कार्य करके भी वह उससे संतप्त नहीं होता ॥ ६ ॥

तां चापि बुद्धिं पापिष्ठां वर्धयन्त्यस्य मन्त्रिणः ।
शकुनिः सूतपुत्रश्च भ्राता दुःशासनस्तथा ॥ ७ ॥

इतनेपर भी उसके मन्त्री शकुनि, सूतपुत्र कर्ण तथा भाई दुःशासन ये उसकी अत्यन्त पापपूर्ण बुद्धिको बढावा देते रहते हैं ॥ ७ ॥

स हि त्यागेन राज्यस्य न शर्म समुपेष्यति ।
अन्तरेण वधात्पार्थ सानुबन्धः सुयोधनः ॥ ८ ॥

कुन्तीनन्दन ! अपने सगे सम्बन्धियोंसहित दुर्योधन जबतक मारा नहीं जायगा, तबतक वह राज्यभाग देकर कदापि संधि नहीं करेगा ॥ ८ ॥

न चापि प्रणिपातेन त्यक्तुमिच्छति धर्मराट् ।
याच्यमानस्तु राज्यं स न प्रदास्यति दुर्मतिः ॥ ९ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर भी नम्रतापूर्वक संधिके लिये अपना राज्य छोडना नहीं चाहते हैं। उधर दुर्बुद्धि दुर्योधन मांगनेपर भी राज्य नहीं देगा ॥ ९ ॥

न तु मन्ये स तद्वाच्यो यद्युधिष्ठिरशासनम् ।
उक्तं प्रयोजनं तत्र धर्मराजेन भारत ॥ १० ॥

भरतनन्दन ! धर्मराज युधिष्ठिरने केवल पाँच गाँवोंको मांगनेके लिये जो आज्ञा दी है तथा नम्रतापूर्ण वचनोंमें जो संधिका प्रयोजन बताया है, वह सब दुर्योधनसे कहना उचित नहीं है ऐसा मैं मानता हूं ॥ १० ॥

तथा पापस्तु तत्सर्वं न करिष्यति कौरवः ।
तस्मिंश्चाक्रियमाणेऽसौ लोकवध्यो भविष्यति ॥ ११ ॥

क्योंकि वह कुरुकुलकलंक पापात्मा उन सब बातोंको कभी स्वीकार नहीं करेगा। हमलोगोंका प्रस्ताव स्वीकार न करनेपर वह इस जगत्में अवश्य ही वधके योग्य हो जायेगा ॥ ११ ॥

मम चापि स वध्यो वै जगतश्चापि भारत ।
येन कौमारके यूयं सर्वे विप्रकृतास्तथा ॥ १२ ॥

भारत ! जिसने तुम सब लोगोंको कुमारावस्थामें भी सदा नाना प्रकारके कष्ट दिये हैं वह मेरा और सारे संसारका वध्य है ॥ १२ ॥

विप्रलुप्तं च वो राज्यं नृशंसेन दुरात्मना ।
न चोपशाम्यते पापः श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ १३ ॥

दुरात्मा एवं निर्दयीने तुम्हारे राज्यका भी अपहरण कर लिया है तथा वह पापी दुर्योधन युधिष्ठिरके पास सम्पत्ति देखकर शान्त नहीं रह सकता है ॥ १३ ॥

असकृच्चाप्यहं तेन त्वत्कृते पार्थ नोदितः।
न मया तद्गृहीतं च पापं तस्य चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥
कुन्तीनन्दन ! उसने मुझे भी तुम्हारी ओरसे फोडनेके लिये अनेक बार चेष्टा की है; परंतु मैंने उसके पापपूर्ण प्रस्तावको कभी स्वीकार नहीं किया है ॥ १४ ॥

जानासि हि महाबाहो त्वमप्यस्य परं मतम्।
प्रियं चिकीर्षमाणं च धर्मराजस्य मामपि ॥ १५ ॥
महाबाहो ! तुम जानते ही हो कि दुर्योधनकी भी मेरे विषयमें यही निश्चित धारणा है कि मैं धर्मराज युधिष्ठिरका प्रिय करना चाहता हूं ॥ १५ ॥

स जानंस्तस्य चात्मानं मम चैव परं मतम्।
अजानन्निव चाकस्मादर्जुनाद्याभिशङ्कसे ॥ १६ ॥
अर्जुन ! इस प्रकार तुम दुर्योधनके मनकी भावना तथा मेरे दृढ निश्चयको जानते हुए भी आज अनजानकी भांति क्यों मुझपर संदेह कर रहे हो ? ॥ १६ ॥

यच्चापि परमं दिव्यं तच्चाप्यवगतं त्वया।
विधानविहितं पार्थ कथं शर्म भवेत्परैः ॥ १७ ॥
कुन्तीकुमार ! जो देवताओंका परम दिव्य भूभार उतारनेके लिये निश्चित विधान है, उससे भी तुम सर्वथा परिचित हो, फिर शत्रुओंके साथ संधि कैसे हो सकती है ? ॥ १७ ॥

यत्तु वाचा मया शक्यं कर्मणा चापि पाण्डव।
करिष्ये तदहं पार्थ न त्वाशंसे शमं परैः ॥ १८ ॥
पाण्डुनन्दन ! मेरे द्वारा वाणी और प्रयत्नसे जो कुछ हो सकता है, वह मैं अवश्य करूँगा; परंतु, पार्थ ! मुझे यह तनिक भी आशा नहीं है कि शत्रुओंके साथ संधि हो जायेगी ॥१८॥

कथं गोहरणे ब्रूयादिच्छञ्शर्म तथाविधम्।
याच्यमानोऽपि भीष्मेण संवत्सरगतेऽध्वनि ॥ १९ ॥
विराटनगरमें गोहरणके समय तुम्हारे अज्ञातवासका वर्ष पूरा हो चुका था। उस समय भीष्मने मार्गमें दुर्योधनसे याचना की कि तुम पाण्डवोंको उनका राज्य देकर उनसे मेल कर लो, परंतु यह कल्याण और हितकी बात भी उसने किसी प्रकार स्वीकार नहीं की ॥१९॥

तदैव ते पराभूता यदा संकल्पितास्त्वया।
लवशः क्षणशश्चापि न च तुष्टः सुयोधनः ॥ २० ॥
जब तुमने कौरवोंको पराजित करनेका संकल्प किया, उसी समय वे पराजित हो गये। परंतु दुर्योधन तुमलोगोंपर क्षणभरके लिये किञ्चिन्मात्र भी संतुष्ट नहीं है ॥ २० ॥

सर्वथा तु मया कार्यं धर्मराजस्य शासनम् ।
विभाव्यं तस्य भूयश्च कर्म पापं दुरात्मनः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ २५२९ ॥

मुझे वहाँ जाकर सबसे पहले धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार संधिके लिये सब प्रकारसे प्रयत्न करना है। यदि यह सफल न हुआ तो फिर मुझे विचार करना होगा कि दुरात्मा दुर्योधनको उसके पापकर्मका दण्ड कैसे दिया जाये ? ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥ २५२९ ॥

: ७८ :

नकुल उवाच

उक्तं बहुविधं वाक्यं धर्मराजेन माधव ।
धर्मज्ञेन वदान्येन धर्मयुक्तं च तत्त्वतः ॥ १ ॥

नकुल बोले—माधव ! धर्मज्ञ और उदार धर्मराजने धर्मयुक्त और तात्त्विक बातें अनेक प्रकारसे कही हैं ॥ १ ॥

मतमाज्ञाय राज्ञश्च भीमसेनेन माधव ।
संशमो बाहुवीर्यं च ख्यापितं माधवात्मनः ॥ २ ॥

यदुकुलभूषण माधव ! राजाका मत जानकर भाई भीमसेनने भी पहले संधिस्थापनकी, फिर अपने बाहुबलकी बात बतायी है ॥ २ ॥

तथैव फल्गुनेनापि यदुक्तं तत्त्वया श्रुतम् ।
आत्मनश्च मतं वीर कथितं भवतासकृत् ॥ ३ ॥

वीर ! इसी प्रकार अर्जुनने भी जो कुछ कहा है, वह भी आपने सुन ही लिया है। आपका जो अपना मत है, उसे भी अनेक बार प्रकट किया है ॥ ३ ॥

सर्वमेतदतिक्रम्य श्रुत्वा परमतं भवान् ।
यत्प्राप्तकालं मन्येथास्तत्कुर्याः पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥

परंतु, पुरुषोत्तम ! इन सब बातोंको दूर कर और विपक्षियोंके मतको अच्छी तरह सुनकर आपको समयके अनुसार जो कर्तव्य उचित जान पडे, वही कीजियेगा ॥ ४ ॥

तस्मिंस्तस्मिन्निमित्ते हि मतं भवति केशव ।
प्राप्तकालं मनुष्येण स्वयं कार्यमरिंदम ॥ ५ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले केशव ! भिन्न भिन्न कारण उपस्थित होनेपर मनुष्योंके विचार भी भिन्न भिन्न प्रकारके हो जाते हैं; अतः मनुष्यको वही कार्य करना चाहिये, जो उसके योग्य और समयोचित हो ॥ ५ ॥

अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थः पुनर्भवति सोऽन्यथा ।
अनित्यमतयो लोके नराः पुरुषसत्तम ॥ ६ ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! किसी वस्तुके विषयमें सोचा कुछ और जाता है और हो कुछ और ही जाता है । संसारके मनुष्य स्थिर विचारवाले नहीं होते हैं ॥ ६ ॥

अन्यथा बुद्धयो ह्यासन्नस्मासु वनवासिषु ।
अदृश्येष्वन्यथा कृष्ण दृश्येषु पुनरन्यथा ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण ! जब हम वनमें निवास करते थे, उस समय हमारे विचार कुछ और ही थे, अज्ञातवासके समय वे बदलकर कुछ और हो गये और उस अवधिको पूर्ण करके जब हम सबके सामने प्रकट हुए हैं, तबसे हमलोगोंका विचार कुछ और हो गया है ॥ ७ ॥

अस्माकमपि वार्ष्णेय वने विचरतां तदा ।
न तथा प्रणयो राज्ये यथा सम्प्रति वर्तते ॥ ८ ॥

वृष्णिनन्दन ! वनमें विचरते समय राज्यके विषयमें हमारा वैसा आकर्षण नहीं था, जैसा इस समय है ॥ ८ ॥

निवृत्तवनवासान्नः श्रुत्वा वीर समागताः ।
अक्षौहिण्यो हि सप्तेमास्त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ ९ ॥

वीर जनार्दन ! हमलोग वनवासकी अवधि पूरी करके आ गये हैं; यह सुनकर आपकी कृपासे ये सात अक्षौहिणी सेनाएँ यहाँ एकत्र हो गयी हैं ॥ ९ ॥

इमान्हि पुरुषव्याघ्रानचिन्त्यबलपौरुषान् ।
आत्तशस्त्रान्रणे दृष्ट्वा न व्यथेदिह कः पुमान् ॥ १० ॥

यहाँ जो पुरुषसिंह वीर उपस्थित हैं, इनके बल और पौरुष अचिन्त्य हैं । रणभूमिमें इन्हें अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित देखकर किस पुरुषका हृदय भयभीत न हो उठेगा ? ॥ १० ॥

स भवान्कुरुमध्ये तं सान्त्वपूर्वं भयान्वितम् ।
ब्रूयाद्वाक्यं यथा मन्दो न व्यथेत सुयोधनः ॥ ११ ॥

आप कौरवोंके बीचमें उससे पहले सान्त्वनापूर्ण बातें कहियेगा और अन्तमें युद्धका भय भी दिखाइयेगा, जिससे मूर्ख दुर्योधनके मनमें व्यथा न हो ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरं भीमसेनं बीभत्सुं चापराजितम् ।
सहदेवं च मां चैव त्वां च रामं च केशव ॥ १२ ॥

केशव ! जो युद्धमें युधिष्ठिर, भीमसेन, किसीसे पराजित न होनेवाले अर्जुन, सहदेव, मेरा, आपका और बलराम, ॥ १२ ॥

×

सात्यकिं च महावीर्यं विराटं च सहात्मजम् ।
द्रुपदं च सहामात्यं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ १३ ॥

महापराक्रमी सात्यकि, पुत्रोंसहित विराट, मन्त्रियोंसहित द्रुपद, पृषतवंशी धृष्टद्युम्न, ॥ १३ ॥

काशिराजं च विक्रान्तं धृष्टकेतुं च चेदिपम् ।
मांसशोणितभृन्मर्त्यः प्रतियुध्येत को युधि ॥ १४ ॥

पराक्रमी काशिराज तथा चेदिनरेश धृष्टकेतुका सामना कर सके ऐसा मांस और रक्तधारी कौनसा मनुष्य है? अर्थात् इस संसारमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है, जो इन सबसे लोहा ले सके ॥ १४ ॥

स भवान्गमनादेव साधयिष्यत्यसंशयम् ।
इष्टमर्थं महाबाहो धर्मराजस्य केवलम् ॥ १५ ॥

महाबाहो ! आप वहां केवल जानेमात्रसे धर्मराजके अभीष्ट मनोरथको सिद्ध कर देंगे; इसमें संशय नहीं है ॥ १५ ॥

विदुरश्चैव भीष्मश्च द्रोणश्च सहबाह्लिकः ।
श्रेयः समर्था विज्ञातुमुच्यमानं त्वयानघ ॥ १६ ॥

निष्पाप श्रीकृष्ण ! विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य तथा बाह्लिक–ये आपके बतानेपर कल्याणकारी मार्गको समझनेमें समर्थ हैं ॥ १६ ॥

ते चैनमनुनेष्यन्ति धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।
तं च पापसमाचारं सहामात्यं सुयोधनम् ॥ १७ ॥

ये लोग राजा धृतराष्ट्र तथा मन्त्रियोंसहित पापाचारी दुर्योधनको समझा बुझाकर राहपर लायेंगे ॥ १७ ॥

श्रोता चार्थस्य विदुरस्त्वं च वक्ता जनार्दन ।
कमिवार्थं विवर्तन्तं स्थापयेतां न वर्त्मनि ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टसततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ २५४७ ॥

जनार्दन ! जहां विदुर किसी प्रयोजनको सुनें और आप उसका प्रतिपादन करें, वहां आप दोनों मिलकर किस बिगडते हुए कार्यको सिद्धिके मार्गपर नहीं ला देंगे ? ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें अठहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ २५४७ ॥

७९

सहदेव उवाच

यदेतत्कथितं राज्ञा धर्म एष सनातनः ।
यथा तु युद्धमेव स्यात्तथा कार्यमरिंदम ॥ १ ॥

सहदेव बोले— शत्रुदमन श्रीकृष्ण ! महाराज युधिष्ठिरने यहाँ जो कुछ कहा है, यह सनातन धर्म है; परंतु मेरा कथन यह है कि आपको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे युद्ध होकर ही रहे ॥ १ ॥

यदि प्रशममिच्छेयुः कुरवः पाण्डवैः सह ।
तथापि युद्धं दाशार्ह योजयेथाः सहैव तैः ॥ २ ॥

दशार्हनन्दन ! यदि कौरव पाण्डवोंके साथ संधि करना चाहें, तो भी आप उनके साथ युद्धकी ही योजना बनाइयेगा ॥ २ ॥

कथं नु दृष्ट्वा पाञ्चालीं तथा क्लिष्टां सभागताम् ।
अवधेन प्रशाम्येत मम मन्युः सुयोधने ॥ ३ ॥

पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको पीडितदशामें सभाके भीतर लायी गयी देखकर दुर्योधनके प्रति बढा हुआ मेरा क्रोध उसका वध किये बिना कैसे शान्त हो सकता है ? ॥ ३ ॥

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण धर्मराजश्च धार्मिकः ।
धर्ममुत्सृज्य तेनाहं योद्‌धुमिच्छामि संयुगे ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण ! यदि भीमसेन, अर्जुन तथा धर्मराज युधिष्ठिर धर्मका ही अनुसरण करते हैं तो मैं उस धर्मको छोडकर रणभूमिमें दुर्योधनके साथ युद्ध ही करना चाहता हूँ ॥ ४ ॥

सात्यकिरुवाच

सत्यमाह महाबाहो सहदेवो महामतिः ।
दुर्योधनवधे शान्तिस्तस्य कोपस्य मे भवेत् ॥ ५ ॥

सात्यकि बोले— महाबाहो ! परम बुद्धिमान् सहदेव ठीक कहते हैं । दुर्योधनके प्रति बढा हुआ मेरा क्रोध उसके वधसे ही शान्त होगा ॥ ५ ॥

जानासि हि यथा दृष्ट्वा चीराजिनधरान्वने ।
तवापि मन्युरुद्‌भूतो दुःखितान्प्रेक्ष्य पाण्डवान् ॥ ६ ॥

वनमें वल्कल और मृगचर्म धारण करके दुःखी हुए पाण्डवोंको देखकर आपका भी क्रोध उमड आया था, यह आप जानते ही हैं ॥ ६ ॥

तस्मान्माद्रीसुतः शूरो यदाह पुरुषर्षभः।
वचनं सर्वयोधानां तन्मतं पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥

अतः, पुरुषोत्तम ! पुरुषोंमें श्रेष्ठ माद्रीनन्दन शूरवीर सहदेवने जो बात कही है, वही हम सम्पूर्ण योद्धाओंका मत है ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं वदति वाक्यं तु युयुधाने महामतौ।
सुभीमः सिंहनादोऽभूद्योधानां तत्र सर्वशः ॥ ८ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! परम बुद्धिमान् सात्यकिके ऐसा कहते ही वहां सब ओरसे समस्त योद्धाओंका अत्यन्त भयंकर सिंहनाद शुरु हो गया ॥ ८ ॥

सर्वे हि सर्वशो वीरास्तद्वचः प्रत्यपूजयन्।
साधु साध्विति शैनेयं हर्षयन्तो युयुत्सवः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ २५५६ ॥

युद्धकी इच्छा रखनेवाले उन सभी वीरोंने साधु साधु कहकर सात्यकिका हर्ष बढाते हुए उनके वचनकी सर्वथा भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ ९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें उनासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥ २५५६ ॥

: ८० :

वैशम्पायन उवाच

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं हितम्।
कृष्णा दाशार्हमासीनमब्रवीच्छोककर्शिता ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे जनमेजय ! धर्मराज युधिष्ठिरके धर्म और अर्थसे युक्त वचनको सुनकर अत्यन्त शोकसे युक्त होकर द्रौपदी बैठे हुए कृष्णसे बोली ॥ १ ॥

सुता द्रुपदराजस्य स्वसितायतमूर्धजा।
सम्पूज्य सहदेवं च सात्यकिं च महारथम् ॥ २ ॥

उस द्रुपदराजकी पुत्री द्रौपदीके बडे काले एवं लम्बे बाल थे। वह महारथी सात्यकि एवं सहदेवकी पूजा करके बोली ॥ २ ॥

भीमसेनं च संशान्तं दृष्ट्वा परमदुर्मना।
अश्रुपूर्णेक्षणा वाक्यमुवाचेदं मनस्विनी ॥ ३ ॥

भीमसेनको अत्यन्त शान्त देख मनस्विनी द्रौपदीके मनमें बडा दुःख हुआ। उसकी आंखोंमें आंसू भर आये और वह श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोली- ॥ ३ ॥

विदितं ते महाबाहो धर्मज्ञ मधुसूदन।
यथा निकृतिमास्थाय भ्रंशिताः पाण्डवाः सुखात् ॥ ४ ॥

धर्मके ज्ञाता महाबाहु मधुसूदन! पाण्डवगण किस प्रकार छल कपटके द्वारा सुखसे वंचित कर दिए गए थे, यह आप जानते ही हैं ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सामात्येन जनार्दन।
यथा च संजयो राज्ञा मन्त्रं रहसि श्रावितः ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्रके पुत्रने अपने मंत्रियों सहित, हे कृष्ण! जो कुछ भी किया तथा राजा धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कहनेके लिये संजयको एकान्तमें जो मन्त्र अर्थात् अपना विचार सुनाकर यहां भेजा था, ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरेण दाशार्ह तच्चापि विदितं तव।
यथोक्तः संजयश्चैव तच्च सर्वं श्रुतं त्वया ॥ ६ ॥

तथा धर्मराजने संजयसे जैसी बातें कही थीं, उन सबको भी आपने सुन ही लिया है और वह सब आपको मालूम ही है ॥ ६ ॥

पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा इति महाद्युते।
कुशस्थलं वृकस्थलमासन्दी वारणावतम् ॥ ७ ॥

महातेजस्वी केशव! इन्होंने संजयसे इस प्रकार कहा था- 'तात! तुम हमें कुशस्थल, वृक्षस्थल, आसन्दी, वारणावत ॥ ७ ॥

अवसानं महाबाहो किञ्चिदेव तु पञ्चमम्।
इति दुर्योधनो वाच्यः सुहृदश्चास्य केशव ॥ ८ ॥

तथा अन्तिम पांचवां कोई एक गांव इन पांच गांवोंको ही दे दो' इस प्रकार, हे संजय! तुम दुर्योधन और उसके मित्रोंसे कहना ॥ ८ ॥

तच्चापि नाकरोद्वाक्यं श्रुत्वा कृष्ण सुयोधनः।
युधिष्ठिरस्य दाशार्ह ह्रीमतः संधिमिच्छतः ॥ ९ ॥

दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण! संधिकी इच्छा रखनेवाले लज्जाशील युधिष्ठिरका यह नम्रतापूर्ण वचन सुनकर भी उसे दुर्योधनने स्वीकार नहीं किया ॥ ९ ॥

अप्रदानेन राज्यस्य यदि कृष्ण सुयोधनः ।
संधिमिच्छेन्न कर्तव्यस्तत्र गत्वा कथञ्चन ॥ १० ॥

भगवन् ! आपके वहाँ जानेपर यदि दुर्योधन राज्य दिये बिना ही संधि करना चाहे तो आप इसे किसी तरह स्वीकार न कीजियेगा ॥ १० ॥

शक्ष्यन्ति हि महाबाहो पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
धार्तराष्ट्रबलं घोरं क्रुद्धं प्रतिसमासितुम् ॥ ११ ॥

महाबाहो ! पाण्डवलोग सृञ्जय वीरोंके साथ क्रोधमें भरी हुई दुर्योधनकी भयंकर सेनाका अच्छी तरह सामना कर सकते हैं ॥ ११ ॥

न हि साम्ना न दानेन शक्योऽर्थस्तेषु कश्चन ।
तस्मात्तेषु न कर्तव्या कृपा ते मधुसूदन ॥ १२ ॥

मधुसूदन ! कौरवोंके प्रति साम और दाननीतिका प्रयोग करनेसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता । अतः उनपर आपको कभी कृपा नहीं करनी चाहिये ॥ १२ ॥

साम्ना दानेन वा कृष्ण ये न शाम्यन्ति शत्रवः ।
मोक्तव्यस्तेषु दण्डः स्याज्जीवितं परिरक्षता ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण ! अपने जीवनकी रक्षा करनेवाले पुरुषको चाहिये कि जो शत्रु साम और दानसे शान्त न हों, उनपर दण्डका प्रयोग करे ॥ १३ ॥

तस्मात्तेषु महादण्डः क्षेप्तव्यः क्षिप्रमच्युत ।
त्वया चैव महाबाहो पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥ १४ ॥

अतः, महाबाहु अच्युत ! आपको तथा सृञ्जयोंसहित पाण्डवोंको उचित है कि वे उन शत्रुओंको शीघ्र ही महान् दण्ड दें ॥ १४ ॥

एतत्समर्थं पार्थानां तव चैव यशस्करम् ।
क्रियमाणं भवेत्कृष्ण क्षत्रस्य च सुखावहम् ॥ १५ ॥

यही कुन्तीकुमारोंके योग्य कार्य है । श्रीकृष्ण ! यदि यह किया जाये तो आपके भी यशका विस्तार होगा और समस्त क्षत्रिय समुदायको भी सुख मिलेगा ॥ १५ ॥

क्षत्रियेण हि हन्तव्यः क्षत्रियो लोभमास्थितः ।
अक्षत्रियो वा दाशार्ह स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥ १६ ॥

दशार्हनन्दन ! अपने धर्मका पालन करनेवाले क्षत्रियको चाहिये कि वह लोभका आश्रय लेनेवाले मनुष्यको, भले ही वह क्षत्रिय हो या अक्षत्रिय, अवश्य मार डाले ॥ १६ ॥

अन्यत्र ब्राह्मणात्तात सर्वपापेष्ववस्थितात् ।
गुरुर्हि सर्ववर्णानां ब्राह्मणः प्रसृताग्रभुक् ॥ १७ ॥

तात ! ब्राह्मणोंके सिवा दूसरे वर्णोंपर ही यह नियम लागू होता है । ब्राह्मण सब पापोंमें डूबा हो, तब भी उसे प्राणदण्ड नहीं देना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मण सब वर्णोंका गुरु तथा दानमें दी हुई वस्तुओंका सर्वप्रथम भोक्ता है अर्थात् पहला पात्र है ॥ १७ ॥

यथावध्ये भवेद्दोषो वध्यमाने जनार्दन ।
स वध्यस्यावधे दृष्ट इति धर्मविदो विदुः ॥ १८ ॥

जनार्दन ! जैसे अवध्यका वध करनेपर महान् दोष लगता है, उसी प्रकार वध्यका वध न करनेसे भी दोषकी प्राप्ति होती है । यह बात धर्मज्ञ पुरुष जानते हैं ॥ १८ ॥

यथा त्वां न स्पृशेदेष दोषः कृष्ण तथा कुरु ।
पाण्डवैः सह दाशार्ह सृञ्जयैश्च ससैनिकैः ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण ! आप सैनिकोंसहित सृञ्जयों, पाण्डवों तथा यादवोंके साथ ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे आपको यह दोष न छू सके ॥ १९ ॥

पुनरुक्तं च वक्ष्यामि विश्रम्भेण जनार्दन ।
का नु सीमन्तिनी मादृक्पृथिव्यामस्ति केशव ॥ २० ॥

जनार्दन ! आपपर अत्यन्त विश्वास होनेके कारण मैं अपनी कही हुई बातको पुनः दुहराती हूं । केशव ! इस पृथ्वीपर मेरे समान स्त्री कौन होगी ? ॥ २० ॥

सुता द्रुपदराजस्य वेदिमध्यात्समुत्थिता ।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी तव कृष्ण प्रिया सखी ॥ २१ ॥

मैं महाराज द्रुपदकी पुत्री हूं । यज्ञवेदीके मध्यभागसे मेरा जन्म हुआ है । श्रीकृष्ण ! मैं वीर धृष्टद्युम्नकी बहिन और आपकी प्रिय सखी हूं ॥ २१ ॥

आजमीढकुलं प्राप्ता स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः ।
महिषी पाण्डुपुत्राणां पञ्चेन्द्रसमवर्चसाम् ॥ २२ ॥

मैं परम प्रतिष्ठित अजमीढकुलमें ब्याहकर आयी हूं । महातमा राजा पाण्डुकी पुत्रवधू तथा पांच इन्द्रोंके समान तेजस्वी पाण्डुपुत्रोंकी पटरानी हूं ॥ २२ ॥

सुता मे पञ्चभिर्वीरैः पञ्च जाता महारथाः ।
अभिमन्युर्यथा कृष्ण तथा ते तव धर्मतः ॥ २३ ॥

पांच वीर पतियोंसे मैंने पांच महारथी पुत्रोंको जन्म दिया है । श्रीकृष्ण ! जैसे अभिमन्यु आपका भानजा है, उसी प्रकार मेरे पुत्र भी धर्मतः आपके भानजे ही हैं ॥ २३ ॥

साहं केशग्रहं प्राप्ता परिक्लिष्टा सभां गता।
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां त्वयि जीवति केशव ॥ २४ ॥

केशव ! इतनी सम्मानित और सौभाग्यशालिनी होनेपर भी मैं पाण्डवोंके देखते-देखते और आपके जीतेजी केश पकडकर सभामें लायी गयी और मेरा बारंबार अपमान किया गया एवं मुझे क्लेश दिया गया ॥ २४ ॥

जीवत्सु कौरवेयेषु पाञ्चालेष्वथ वृष्णिषु।
दासीभूतास्मि पापानां सभामध्ये व्यवस्थिता ॥ २५ ॥

कौरवों, पाञ्चालों और यदुवंशियोंके जीतेजी मैं पापी कौरवोंकी दासी बनी और उसी रूपमें सभाके बीच मुझे उपस्थित होना पडा ॥ २५ ॥

निरामर्षेष्वचेष्टेषु प्रेक्षमाणेषु पाण्डुषु।
त्राहि मामिति गोविन्द मनसा काङ्क्षितोऽसि मे ॥ २६ ॥

पाण्डव यह सब कुछ देख रहे थे, तो भी न तो इनका क्रोध ही जागा और न इन्होंने मुझे उनके हाथसे छुडानेकी चेष्टा ही की। उस समय मैंने अत्यन्त असहाय होकर मन-ही मन आपका चिन्तन किया और कहा— 'गोविन्द ! मेरी रक्षा कीजिये' प्रभो ! तब आपने ही कृपा करके मेरी लाज बचायी ॥ २६ ॥

यत्र मां भगवान्राजा श्वशुरो वाक्यमब्रवीत्।
वरं वृणीष्व पाञ्चालि वरार्हासि मतासि मे ॥ २७ ॥

उस सभामें मेरे ऐश्वर्यशाली श्वशुर राजा धृतराष्ट्रने मुझे आदर देते हुए कहा— 'पाञ्चाल-राजकुमारी ! तुम अपनी ओरसे मनोवाञ्छित वर पानेके योग्य हो, और तुम मुझे प्रिय हो, तुम कोई वर मांगो' ॥ २७ ॥

अदासाः पाण्डवाः सन्तु सरथाः सायुधा इति।
मयोक्ते यत्र निर्मुक्ता वनवासाय केशव ॥ २८ ॥

तब मैंने उनसे कहा— 'पाण्डव रथ और आयुधोंसहित दासभावसे मुक्त हो जायें।' केशव ! मेरे इतना कहनेपर ये लोग वनवासका कष्ट भोगनेके लिये दासभावसे मुक्त हुए थे ॥ २८ ॥

एवंविधानां दुःखानामभिज्ञोऽसि जनार्दन।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सभर्तृज्ञातिबान्धवान् ॥ २९ ॥

जनार्दन ! हमलोगोंपर ऐसे ऐसे महान् दुःख आते रहे हैं, जिन्हें आप अच्छी तरह जानते हैं। कमलनयन ! पति, कुटुम्बी तथा बान्धवजनोंसहित हमलोगोंकी आप रक्षा करें ॥ २९ ॥

नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ।
स्नुषा भवामि धर्मेण साहं दासीकृताभवम् ॥ ३० ॥

श्रीकृष्ण ! मैं धर्मतः भीष्म और धृतराष्ट्र दोनोंकी पुत्रवधू हूं, तो भी उनके सामने ही मुझे बलपूर्वक दासी बनाया गया ॥ ३० ॥

धिग्बलं भीमसेनस्य धिक्पार्थस्य धनुष्मताम् ।
यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३१ ॥

भगवन् ! ऐसी दशामें यदि दुर्योधन एक मुहूर्त भी जीवित रहता है तो अर्जुनके धनुप धारण और भीमसेनके बलको धिक्कार है ॥ ३१ ॥

यदि तेऽहमनुग्राह्या यदि तेऽस्ति कृपा मयि ।
धार्तराष्ट्रेषु वै कोपः सर्वः कृष्ण विधीयताम् ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्ण ! यदि मैं आपकी अनुग्रहभाजन हूं, यदि मुझपर आपकी कृपा है तो आप धृतराष्ट्रके पुत्रोंपर पूर्णरूपसे क्रोध कीजिये ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वा मृदुसंहारं वृजिनाग्रं सुदर्शनम् ।
सुनीलमसितापाङ्गी पुण्यगन्धाधिवासितम् ॥ ३३ ॥

ऐसा कहकर सुन्दर अङ्गोंवाली, श्यामलोचना, द्रुपदकुमारी देखनेमें अत्यन्त सुन्दर, घुंघराले, अत्यन्त काले, एकत्र आबद्ध होनेपर भी कोमल, सब प्रकारकी सुगन्धोंसे सुवासित, ॥३३॥

सर्वलक्षणसम्पन्नं महाभुजगवर्चसम् ।
केशपक्षं वरारोहा गृह्य सव्येन पाणिना ॥ ३४ ॥

सभी शुभ लक्षणोंसे सुशोभित तथा विशाल सर्पके समान कान्तिमान् अपने उन केशोंको बायें हाथमें लेकर ॥ ३४ ॥

पद्माक्षी पुण्डरीकाक्षमुपेत्य गजगामिनी ।
अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

हिरणके समान सुन्दर नयनोंवाली और हाथीके समान मस्त चालवाली द्रौपदी कमलनयन श्रीकृष्णके पास गयी और नेत्रोंमें आंसू भरकर इस प्रकार बोली ॥ ३५ ॥

अयं ते पुण्डरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः ।
स्मर्तव्यः सर्वकालेषु परेषां संधिमिच्छता ॥ ३६ ॥

कमललोचन श्रीकृष्ण ! शत्रुओंके साथ संधिकी इच्छासे आप जो जो कार्य या प्रयत्न करें, उन सबमें दुःशासनके हाथोंसे खींचे हुए इन केशोंको याद रक्खें ॥ ३६ ॥

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ संधिकामुकौ ।
पिता मे योत्स्यते वृद्धः सह पुत्रैर्महारथैः ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्ण ! यदि भीमसेन और अर्जुन कायर होकर कौरवोंके साथ संधिकी कामना करने लगे हैं, तो मेरे वृद्ध पिताजी अपने महारथी पुत्रोंके साथ शत्रुओंसे युद्ध करेंगे ॥ ३७ ॥

पञ्च चैव महावीर्याः पुत्रा मे मधुसूदन ।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यन्ति कुरुभिः सह ॥ ३८ ॥

मधुसूदन ! मेरे पांच महापराक्रमी पुत्र भी वीर अभिमन्युको प्रधान बनाकर कौरवोंके साथ संग्राम करेंगे ॥ ३८ ॥

दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांसुगुण्ठितम् ।
यद्यहं तं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ३९ ॥

यदि मैं दुःशासनकी सांवली भुजाको काटकर धूलमें लोटती न देखूं तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ ३९ ॥

त्रयोदश हि वर्षाणि प्रतीक्षन्त्या गतानि मे ।
निधाय हृदये मन्युं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ ४० ॥

प्रज्वलित अग्निके समान इस प्रचण्ड क्रोधको हृदयमें रखकर प्रतीक्षा करते मुझे तेरह वर्ष बीत गये ॥ ४० ॥

विदीर्यते मे हृदयं भीमवाक्शल्यपीडितम् ।
योऽयमद्य महाबाहुर्धर्मं समनुपश्यति ॥ ४१ ॥

आज भीमसेनके संधिके लिये कहे गये वचन रूपी बाणोंसे पीडित होनेके कारण मेरा हृदय फटा सा जाता है । हाय ! ये महाबाहु आज मेरे अपमानको भुलाकर केवल धर्मका ही ध्यान धर रहे हैं ॥ ४१ ॥

इत्युक्त्वा बाष्पसन्नेन कण्ठेनायतलोचना ।
रुरोद कृष्णा सोत्कम्पं सस्वरं बाष्पगद्गदम् ॥ ४२ ॥

इतना कहनेके बाद विशाललोचना द्रुपदकुमारी कृष्णाका कण्ठ आंसुओंसे रुँध गया । वह कांपती हुई अश्रुगद्गद वाणीमें फूट फूटकर रोने लगी ॥ ४२ ॥

स्तनौ पीनायतश्रोणी सहिताविभिवर्षती
द्रवीभूतमिवात्युष्णमुत्सृजद्वारि नेत्रजम् ॥ ४३ ॥

मोटे मोटे और बडे बडे नितम्बोंवाली द्रौपदी परस्पर सटे हुए स्तनोंपर नेत्रोंसे गरम गरम आंसुओंकी वर्षा करती हुई मानो अपने भीतरकी द्रवीभूत क्रोधाग्निको ही उन बाष्पबिन्दुओंके रूपमें बिखेर रही थी ॥ ४३ ॥

तामुवाच महाबाहुः केशवः परिसान्त्वयन् ।
अचिराद्द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः ॥ ४४ ॥

तब महाबाहु केशवने उसे सान्त्वना देते हुए कहा- कृष्णे ! तुम शीघ्र ही भरतवंशकी दूसरी स्त्रियोंको भी इसी प्रकार रुदन करते देखोगी ॥ ४४ ॥

एवं ता भीरु रोत्स्यन्ति निहतज्ञातिबान्धवाः ।
हतमित्रा हतबला येषां क्रुद्धासि भामिनि ॥ ४५ ॥

भामिनी ! जिनपर तुम कुपित हुई हो, उन विपक्षियोंकी स्त्रियां भी अपने कुटुम्बी, बन्धु-बान्धव, मित्रवृन्द तथा सेनाओंके मारे जानेपर इसी तरह रोयेंगी ॥ ४५ ॥

अहं च तत्करिष्यामि भीमार्जुनयमैः सह ।
युधिष्ठिरनियोगेन दैवाच्च विधिनिर्मितात् ॥ ४६ ॥

महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा तथा विधाताके रचे हुए अदृष्टसे प्रेरित हो भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवको साथ लेकर मैं भी वही करूँगा, जो तुम्हें अभीष्ट है ॥ ४६ ॥

धार्तराष्ट्राः कालपक्का न चेच्छृण्वन्ति मे वचः ।
शेष्यन्ते निहता भूमौ श्वशृगालादनीकृताः ॥ ४७ ॥

यदि कालके गालमें जानेवाले धृतराष्ट्रपुत्र मेरी बात नहीं सुनेंगे तो मारे जाकर धरतीपर लोटेंगे और कुत्तों तथा सियारोंके भोजन बन जायेंगे ॥ ४७ ॥

चलेद्धि हिमवाञ्शैलो मेदिनी शतधा भवेत् ।
द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत् ॥ ४८ ॥

हिमालय पर्वत अपनी जगहसे टल जाये, पृथ्वीके सैकड़ों टुकड़े हो जायें तथा नक्षत्रों-सहित आकाश टूट पड़े, परंतु मेरी यह बात झूठी नहीं हो सकती ॥ ४८ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे बाष्पो निगृह्यताम् ।
हतामित्राञ्श्रिया युक्तानचिराद्द्रक्ष्यसे पतीन् ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ॥ २६०५ ॥

कृष्णे ! अपने आंसुओंको रोको । मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूं, तुम शीघ्र ही सारे शत्रुओंको मरा हुआ और अपने पतियोंको राज्यलक्ष्मीसे सम्पन्न देखोगी ॥ ४९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥ ॥ २६०५ ॥

: ८१ :

अर्जुन उवाच

कुरूणामद्य सर्वेषां भवान्सुहृदनुत्तमः ।
सम्बन्धी दयितो नित्यमुभयोः पक्षयोरपि ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– श्रीकृष्ण ! आजकल आप ही समस्त कौरवोंके सर्वोत्तम सुहृद् तथा दोनों पक्षोंके नित्य प्रिय सम्बन्धी हैं ॥ १ ॥

पाण्डवैर्धार्तराष्ट्राणां प्रतिपाद्यमनामयम् ।
समर्थः प्रशमं चैषां कर्तुं त्वमसि केशव ॥ २ ॥

केशव ! पाण्डवोंसहित धृतराष्ट्रपुत्रोंका मङ्गल सम्पादन करना आपका कर्तव्य है । आप उभयपक्षमें संधि करानेकी शक्ति भी रखते हैं ॥ २ ॥

त्वमितः पुण्डरीकाक्ष सुयोधनममर्षणम् ।
शान्त्यर्थं भारतं ब्रूया यत्तद्वाच्यममित्रहन् ॥ ३ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्ण ! आप यहाँसे जाकर उस अमर्षशील भरतवंशी दुर्योधनसे ऐसी बातें करें, जो शान्तिस्थापनमें सहायक हों ॥ ३ ॥

त्वया धर्मार्थयुक्तं चेदुक्तं शिवमनामयम् ।
हितं नादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥ ४ ॥

यदि वह मूर्ख आपकी कही हुई धर्म और अर्थसे युक्त, संतापनाशक, कल्याणकारी एवं हितकर बातें नहीं मानेगा तो अवश्य ही उसे कालके गालमें जाना पडेगा ॥ ४ ॥

भगवानुवाच

धर्म्यमस्मद्धितं चैव कुरूणां यदनामयम् ।
एष यास्यामि राजानं धृतराष्ट्रमभीप्सया ॥ ५ ॥

भगवान् बोले– अर्जुन ! जो धर्मसंगत, हमलोगोंके लिये हितकर तथा कौरवोंके लिये भी मङ्गलकारक हो, वही कार्य करनेके लिये मैं राजा धृतराष्ट्रके समीप यात्रा करूँगा ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो व्यपेते तमसि सूर्ये विमल उद्गते ।
मैत्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! तदनन्तर जब रात्रिका अन्धकार दूर हुआ और निर्मल आकाशमें सूर्यदेवके उदित होनेपर उनकी कोमल किरणें सब ओर फैल गयीं । नक्षत्रमें मैत्र नामक मुहूर्त उपस्थित होनेपर ॥ ६ ॥

कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे ।
स्फीतसस्यसुखे काले कल्यः सत्त्ववतां वरः ॥ ७ ॥

सत्त्वगुणी पुरुषोंमें श्रेष्ठ एवं समर्थ श्रीकृष्णने यात्रा आरम्भ की । उन दिनों कार्तिक मासका रेवती नक्षत्र था शरदृतुका अन्त और हेमन्तका आरम्भ हो रहा था । सब ओर खूब उपजी हुई खेती लहलहा रही थी ॥ ७ ॥

मङ्गल्याः पुण्यनिर्घोषा वाचः शृण्वंश्च सूनृताः ।
ब्राह्मणानां प्रतीतानामृषीणामिव वासवः ॥ ८ ॥

भगवान् जनार्दनने सबसे पहले प्रातःकाल ऋषियोंके मुखसे मंगलपाठ सुननेवाले देवराज इन्द्रकी भाँति विश्वस्त ब्राह्मणोंके मुखसे परम मधुर मंगलकारक पुण्याहवाचन सुनते हुए स्नान किया ॥ ८ ॥

कृत्वा पौर्वाह्णिकं कृत्यं स्नातः शुचिरलंकृतः ।
उपतस्थे विवस्वन्तं पावकं च जनार्दनः ॥ ९ ॥

फिर उन्होंने पवित्र तथा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो संध्यावन्दन, सूर्योपस्थान एवं अग्निहोत्र आदि पूर्वाह्णकृत्य सम्पन्न किये ॥ ९ ॥

ऋषभं पृष्ठ आलभ्य ब्राह्मणानभिवाद्य च ।
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन्कल्याणमग्रतः ॥ १० ॥

इसके बाद बैलकी पीठ छूकर ब्राह्मणोंको नमस्कार किया और अग्निकी परिक्रमा करके अपने सामने प्रस्तुत की हुई कल्याणकारक वस्तुओंका दर्शन किया ॥ १० ॥

तत्प्रतिज्ञाय वचनं पाण्डवस्य जनार्दनः ।
शिनेर्नप्तारमासीनमभ्यभाषत सात्यकिम् ॥ ११ ॥

तदनन्तर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी बातोंपर विचार करके जनार्दनने अपने पास बैठे हुए शिनिपौत्र सात्यकिसे इस प्रकार कहा ॥ ११ ॥

रथ आरोप्यतां शङ्खश्चक्रं च गदया सह ।
उपासङ्गाश्च शक्त्यश्च सर्वप्रहरणानि च ॥ १२ ॥

युयुधान ! मेरे रथपर शङ्ख, चक्र, गदा, तूणीर, शक्ति तथा अन्य सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लाकर रख दो ॥ १२ ॥

दुर्योधनो हि दुष्टात्मा कर्णश्च सहसौबलः ।
न च शत्रुरवज्ञेयः प्राकृतोऽपि बलीयसा ॥ १३ ॥

कोई अत्यन्त बलवान् क्यों न हो, उसे अपने दुर्बल शत्रुकी भी अवहेलना नहीं करनी चाहिये; उससे सतर्क रहना चाहिये । फिर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि तो दुष्टात्मा ही हैं । उनसे तो सावधान रहनेकी अत्यन्त आवश्यकता है ॥ १३ ॥

ततस्तन्मतमाज्ञाय केशवस्य पुरःसराः ।
प्रसस्रुर्योजयिष्यन्तो रथं चक्रगदाभृतः ॥ १४ ॥

तब चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके अभिप्रायको जानकर उनके आगे चलनेवाले सेवक रथ जोतनेके लिये दौड पडे ॥ १४ ॥

तं दीप्तमिव कालाग्निमाकाशगमिवाध्वगम् ।
चन्द्रसूर्यप्रकाशाभ्यां चक्राभ्यां समलंकृतम् ॥ १५ ॥

वह रथ प्रलयकालीन अग्निके समान दीप्तिमान् विमानके सदृश शीघ्रगामी तथा सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजस्वी दो गोलाकार चक्रोंसे सुशोभित था ॥ १५ ॥

अर्धचन्द्रैश्च चन्द्रैश्च मत्स्यैः समृगपक्षिभिः ।
पुष्पैश्च विविधैश्चित्रं मणिरत्नैश्च सर्वशः ॥ १६ ॥

अर्धचन्द्र, चन्द्र, मत्स्य, मृग, पक्षी, नाना प्रकारके पुष्प तथा सभी तरहके मणि रत्नोंसे चित्रित एवं जटित होनेके कारण उसकी विचित्र शोभा हो रही थी ॥ १६ ॥

तरुणादित्यसंकाशं बृहन्तं चारुदर्शनम् ।
मणिहेमविचित्राङ्गं सुध्वजं सुपताकिनम् ॥ १७ ॥

वह तरुण सूर्यके समान प्रकाशमान, विशाल तथा देखनेमें मनोहर था । उनके सभी भागोंमें मणि एवं सुवर्ण जडे हुए थे । उस रथकी ध्वजा बहुत ही सुन्दर थी और उसपर उत्तम पताका फहरा रही थी ॥ १७ ॥

सूपस्करमनाधृष्यं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
यशोघ्नं प्रत्यमित्राणां यदूनां नन्दिवर्धनम् ॥ १८ ॥

उसमें सब प्रकारकी आवश्यक सामग्री सुन्दर ढंगसे रक्खी गयी थी । उसपर व्याघ्रचर्मका आवरण-पर्दा शोभा पाता था । वह रथ शत्रुओंके लिये दुर्धर्ष तथा उनके सुयशका नाश करनेवाला था । साथ ही उससे यदुवंशियोंके आनन्दकी वृद्धि होती थी ॥ १८ ॥

वाजिभिः सैन्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ।
स्नातैः सम्पादयांचक्रुः सम्पन्नैः सर्वसम्पदा ॥ १९ ॥

श्रीकृष्णके सेवकोंने सैन्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा बलाहक नामवाले चारों घोडोंको नहला-धुलाकर सब प्रकारके बहुमूल्य आभूषणोंद्वारा सुसज्जित करके उस रथमें जोत दिया ॥ १९ ॥

महिमानं तु कृष्णस्य भूय एवाभिवर्धयन् ।
सुघोषः पतगेन्द्रेण ध्वजेन युयुजे रथः ॥ २० ॥

इस प्रकार वह रथ श्रीकृष्णकी महत्ताको और अधिक बढाता हुआ गरुडचिह्नित ध्वजसे संयुक्त हो बडी शोभा पा रहा था । चलते समय उसके पहियोंसे गम्भीर ध्वनि होती थी ॥२०॥

तं मेरुशिखरप्रख्यं मेघदुन्दुभिनिस्वनम् ।
आरुरोह रथं शौरिर्विमानमिव पुण्यकृत् ॥ २१ ॥

मेरुपर्वतके शिखरोंकी भांति सुनहरी प्रभासे सुशोभित तथा मेघ और दुन्दुभियोंके समान गम्भीर नाद करनेवाले उस रथपर, जिस प्रकार पुण्यशाली विमानपर आरूढ होते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण आरूढ हुए ॥ २१ ॥

ततः सात्यकिमारोप्य प्रययौ पुरुषोत्तमः ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च रथघोषेण नादयन् ॥ २२ ॥

तदनन्तर सात्यकिको भी उसी रथपर बैठाकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने रथकी गम्भीर ध्वनिसे पृथ्वी और आकाशको गुंजाते हुए वहांसे प्रस्थान किया ॥ २२ ॥

व्यपोढाभ्रघनः कालः क्षणेन समपद्यत ।
शिवश्चानुववौ वायुः प्रशान्तमभवद्रजः ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् उस समय क्षणभरमें ही आकाशमें घिरे हुए बादल छिन्न भिन्न हो अदृश्य हो गये । शीतल, सुखद एवं अनुकूल वायु चलने लगी तथा धूलका उडना बंद हो गया ॥२३॥

प्रदक्षिणानुलोमाश्च मङ्गल्या मृगपक्षिणः ।
प्रयाणे वासुदेवस्य बभूवुरनुयायिनः ॥ २४ ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी उस यात्राके समय मङ्गलसूचक मृग और पक्षी उनके दाहिने तथा अनुकूल दिशामें जाते हुए उनका अनुसरण करने लगे ॥ २४ ॥

मङ्गल्यार्थपदैः शब्दैरन्ववर्तन्त सर्वशः ।
सारसाः शतपत्राश्च हंसाश्च मधुसूदनम् ॥ २५ ॥

सारस, शतपत्र तथा हंस पक्षी सब ओरसे मङ्गलसूचक शब्द करते हुए मधुसूदन श्रीकृष्णके पीछे पीछे जाने लगे ॥ २५ ॥

मन्त्राहुतिमहाहोमैर्हूयमानश्च पावकः ।
प्रदक्षिणशिखो भूत्वा विधूमः समपद्यत ॥ २६ ॥

मन्त्रपाठपूर्वक दी जानेवाली आहुतियोंसे युक्त बडे बडे होमयज्ञोंद्वारा हविष्य पाकर अग्नि-देव प्रदक्षिणक्रमसे उठनेवाली लपटोंके साथ प्रज्वलित हो धूमरहित हो गये ॥ २६ ॥

वसिष्ठो वामदेवश्च भूरिद्युम्नो गयः क्रथः ।
शुक्रनारदवाल्मीका मरुतः कुशिको भृगुः ॥ २७ ॥

वसिष्ठ, वामदेव, भूरिद्युम्न, गय, क्रथ, शुक्र, नारद, वाल्मीकि, मरुत, कुशिक तथा भृगु ॥ २७ ॥

ब्रह्मदेवर्षयश्चैव कृष्णं यदुसुखावहम्।
प्रदक्षिणमवर्तन्त सहिता वासवानुजम् ॥ २८ ॥
आदि देवर्षियों तथा ब्रह्मर्षियोंने एक साथ आकर यदुलोकको सुख देनेवाले इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की ॥ २८ ॥

एवमेतैर्महाभागैर्महर्षिगणसाधुभिः।
पूजितः प्रययौ कृष्णः कुरूणां सदनं प्रति ॥ २९ ॥
इस प्रकार इन महाभाग महर्षियों तथा साधु महात्माओंसे सम्मानित हो श्रीकृष्णने कुरु-कुलकी राजधानी हस्तिनापुरकी ओर प्रस्थान किया ॥ २९ ॥

तं प्रयान्तमनुप्रायात्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ३० ॥
क्षत्रियशिरोमणे! श्रीकृष्णके जाते समय उन्हें पहुँचानेके लिये कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर उनके पीछे पीछे चले। साथ ही भीमसेन, अर्जुन, माद्रीके दोनों पुत्र पाण्डुकुमार नकुल-सहदेव, ॥ ३० ॥

चेकितानश्च विक्रान्तो धृष्टकेतुश्च चेदिपः।
द्रुपदः काशिराजश्च शिखण्डी च महारथः ॥ ३१ ॥
पराक्रमी चेकितान, चेदिराज धृष्टकेतु, द्रुपद, काशिराज, महारथी शिखण्डी ॥ ३१ ॥

धृष्टद्युम्नः सपुत्रश्च विराटः केकयैः सह।
संसाधनार्थं प्रययुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ ३२ ॥
धृष्टद्युम्न, पुत्रों और केकयोंसहित राजा विराट् ये सभी क्षत्रिय अभीष्ट कार्यकी सिद्धि एवं शिष्टाचारका पालन करनेके लिये उनके पीछे गये ॥ ३२ ॥

ततोऽनुव्रज्य गोविन्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः।
राज्ञां सकाशे द्युतिमानुवाचेदं वचस्तदा ॥ ३३ ॥
इस प्रकार गोविन्दके पीछे कुछ दूर जाकर तेजस्वी धर्मराज युधिष्ठिरने राजाओंके समीप उनसे कुछ कहनेका विचार किया ॥ ३३ ॥

यो नैव कामान्न भयान्न लोभान्नार्थकारणात्।
अन्यायमनुवर्तेत स्थिरबुद्धिरलोलुपः ॥ ३४ ॥
जो कभी कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा अन्य किसी प्रयोजनके कारण भी अन्यायका अनुसरण नहीं कर सकते, जिनकी बुद्धि स्थिर है, जो लोभरहित, ॥ ३४ ॥

धर्मज्ञो धृतिमान्प्राज्ञः सर्वभूतेषु केशवः ।
ईश्वरः सर्वभूतानां देवदेवः प्रतापवान् ॥ ३५ ॥

धर्मज्ञ, धैर्यवान्, विद्वान् तथा सम्पूर्ण भूतोंके भीतर विराजमान हैं, वे भगवान् केशव देवताओंके भी देवता, सर्वश्रेष्ठ बलशाली तथा समस्त प्राणियोंके ईश्वर हैं ॥ ३५ ॥

तं सर्वगुणसम्पन्नं श्रीवत्सकृतलक्षणम् ।
सम्परिष्वज्य कौन्तेयः संदेष्टुमुपचक्रमे ॥ ३६ ॥

उन्हीं सर्वगुणसम्पन्न श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित भगवान् श्रीकृष्णको हृदयसे लगाकर कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने निम्नाङ्कित संदेश देना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

या सा बाल्यात्प्रभृत्यस्मान्पर्यवर्धयताबला ।
उपवासतपःशीला सदा स्वस्त्ययने रता ॥ ३७ ॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले जनार्दन! अबला होकर भी जिसने बाल्यकालसे ही हमें पालपोसकर बडा किया है, उपवास और तपस्यामें संलग्न रहना जिसका स्वभाव बन गया है, जो सदा कल्याणसाधनमें ही लगी रहती है, ॥ ३७ ॥

देवतातिथिपूजासु गुरुशुश्रूषणे रता ।
वत्सला प्रियपुत्रा च प्रियास्माकं जनार्दन ॥ ३८ ॥

देवताओं और अतिथियोंकी पूजामें तथा गुरुजनोंकी सेवा शुश्रूषामें जिसका अटूट अनुराग है, जो पुत्रवत्सला एवं पुत्रोंको प्यार करनेवाली है, जिसके प्रति हम पांचों भाईयोंका अत्यन्त प्रेम है ॥ ३८ ॥

सुयोधनभयाद्या नोऽत्रायतामित्रकर्शन ।
महतो मृत्युसम्बाधादुत्तरन्नौरिवार्णवात् ॥ ३९ ॥

जिसने दुर्योधनके भयसे हमारी रक्षा की है, जैसे नौका मनुष्यको समुद्रमें डूबनेसे बचाती है, उसी प्रकार जिसने मृत्युके महान् संकटसे हमारा उद्धार किया है ॥ ३९ ॥

अस्मत्कृते च सततं यया दुःखानि माधव ।
अनुभूतान्यदुःखार्हा तां स्म पृच्छेरनामयम् ॥ ४० ॥

और, माधव! जिसने हमलोगोंके कारण सदा दुःख ही भोगे हैं, उस दुःख न भोगनेके योग्य हमारी माता कुन्तीसे मिलकर आप उसका कुशल समाचार अवश्य पूछें ॥ ४० ॥

भृशमाश्वासयेश्चैनां पुत्रशोकपरिप्लुताम् ।
अभिवाद्य स्वजेथाश्च पाण्डवान्परिकीर्तयन् ॥ ४१ ॥

आप हम पाण्डवोंका समाचार बताते हुए हमारी माँसे मिलियेगा और प्रणाम करके पुत्रशोकसे पीडित हुई उस देवीको बहुत बहुत आश्वासन दीजियेगा ॥ ४१ ॥

×

ऊढात्प्रभृति दुःखानि श्वशुराणामरिंदम ।
निकारानतदर्हा च पश्यन्ती दुःखमश्नुते ॥ ४२ ॥

शत्रुदमन ! उसने विवाह करनेसे लेकर ही अपने श्वशुरके घरमें आकर नाना प्रकारके दुःख और कष्ट ही देखे तथा दुःख सहन करनेके योग्य न होनेपर भी जिसने दुःख अनुभव किये हैं और इस समय भी वह वहाँ कष्ट ही भोगती है ॥ ४२ ॥

अपि जातु स कालः स्यात्कृष्ण दुःखविपर्ययः ।
यदहं मातरं क्लिष्टां सुखं दध्यामरिंदम ॥ ४३ ॥

शत्रुनाशक श्रीकृष्ण ! क्या कभी वह समय भी आयेगा, जब हमारे सब दुःख दूर हो जायँगे और जब मैं दुःखमें पडी हुई अपनी माताको सुख दे सकूंगा ? ॥ ४३ ॥

प्रव्रजन्तोऽन्वधावत्सा कृपणा पुत्रगृद्धिनी ।
रुदतीमपहायैनामुपगच्छाम यद्वनम् ॥ ४४ ॥

जब हम वनको जा रहे थे, उस समय पुत्रस्नेहसे व्याकुल हो वह कातरभावसे रोती हुई हमारे पीछे पीछे दौडी आ रही थी, परंतु हमलोग उसे वहीं छोडकर वनमें चले गये ॥४४॥

न नूनं म्रियते दुःखैः सा चेज्जीवति केशव ।
तथा पुत्राधिभिर्गाढमार्ता ह्यानर्तसत्कृता ॥ ४५ ॥

आनर्तदेशके सम्मानित वीर केशव ! यह निश्चित नहीं है कि मनुष्य दुःखोंसे घबराकर मर ही जाता हो । इसलिये कदाचित् वह जीवित हो, तो भी पुत्रोंकी चिन्तासे अत्यन्त पीडित ही होगी ॥ ४५ ॥

अभिवाद्या तु सा कृष्ण त्वया मद्वचनाद्विभो ।
धृतराष्ट्रश्च कौरव्यो राजानश्च वयोधिकाः ॥ ४६ ॥

प्रभो ! मधुसूदन श्रीकृष्ण ! आप माताको प्रणाम करके मेरे कथनानुसार धृतराष्ट्र, दुर्योधन अन्यान्य वयोवृद्ध नरेश ॥ ४६ ॥

भीष्मं द्रोणं कृपं चैव महाराजं च बाह्लिकम् ।
द्रौणिं च सोमदत्तं च सर्वांश्च भरतान्पृथक् ॥ ४७ ॥

भीष्म, द्रोण, कृप, महाराज बाह्लीक, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, सोमदत्त, समस्त भरतवंशी क्षत्रियवृन्द ॥ ४७ ॥

विदुरं च महाप्राज्ञं कुरूणां मन्त्रधारिणम् ।
अगाधबुद्धिं धर्मज्ञं स्वजेथा मधुसूदन ॥ ४८ ॥

तथा कौरवोंके मन्त्रकी रक्षा करनेवाले, मर्मवेत्ता, अगाधबुद्धि एवं महाज्ञानी विदुरके पास जाकर इन सबको हृदयसे लगाइयेगा ॥ ४८ ॥

इत्युक्त्वा केशवं तत्र राजमध्ये युधिष्ठिरः ।
अनुज्ञातो निववृते कृष्णं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ४९ ॥

राजाओंके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर उनकी परिक्रमा करके आज्ञा ले लौट पड़े ॥ ४९ ॥

व्रजन्नेव तु बीभत्सुः सखायं पुरुषर्षभम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नं दाशार्हमपराजितम् ॥ ५० ॥

परंतु अर्जुनने पीछे पीछे जाते हुए ही शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अपराजित नरश्रेष्ठ अपने सखा दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णसे कहा— ॥ ५० ॥

यदस्माकं विभो वृत्तं पुरा वै मन्त्रनिश्चये ।
अर्धराज्यस्य गोविन्द विदितं सर्वराजसु ॥ ५१ ॥

गोविन्द ! पहले जब हमलोगोंमें गुप्त मन्त्रणा हुई थी, उस समय एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुंचकर हमने आधा राज्य लेकर ही संधि करनेका निर्णय किया था; इस बातको सभी राजा जानते हैं ॥ ५१ ॥

तच्चेद्दद्यादसङ्गेन सत्कृत्यानवमन्य च ।
प्रियं मे स्यान्महाबाहो मुच्येरन्महतो भयात् ॥ ५२ ॥

महाबाहो ! यदि दुर्योधन लोभ छोडकर अनादर न करके सत्कारपूर्वक हमें आधा राज्य लौटा दे तो मेरा प्रिय कार्य सम्पन्न हो जाये तथा समस्त कौरव महान् भयसे छुटकारा पा जायें ॥ ५२ ॥

अतश्चेदन्यथा कर्ता धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ।
अन्तं नूनं करिष्यामि क्षत्रियाणां जनार्दन ॥ ५३ ॥

जनार्दन ! यदि समुचित उपायको न जाननेवाला धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन इसके विपरीत आचरण करेगा तो मैं निश्चय ही उसके पक्षमें आये हुए समस्त क्षत्रियोंका संहार कर डालूंगा ॥ ५३ ॥

एवमुक्ते पाण्डवेन पर्यहृष्यद्वृकोदरः ।
मुहुर्मुहुः क्रोधवशात्प्रावेपत च पाण्डवः ॥ ५४ ॥

जनमेजय ! पाण्डुनन्दन अर्जुनके ऐसा कहनेपर पाण्डव भीमसेनको बडा हर्ष हुआ । वे क्रोधवश बारंबार कांपने लगे ॥ ५४ ॥

वेपमानश्च कौन्तेयः प्राक्रोशन्महतो रवान् ।
धनंजयवचः श्रुत्वा हर्षोत्सिक्तमना भृशम् ॥ ५५ ॥

अर्जुनकी पूर्वोक्त बातें सुनकर अत्यन्त हर्ष और उत्साहसे भरे हुए हृदयवाले कुन्तीकुमार भीमसेन कांपते कांपते ही बडे जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ५५ ॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा सम्प्रावेपन्त धन्विनः।
वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥ ५६ ॥
उनका वह सिंहनाद सुनकर समस्त धनुर्धर भयके मारे थरथर कांपने लगे। उनके सभी वाहनोंने मलमूत्र कर दिये ॥ ५६ ॥

इत्युक्त्वा केशवं तत्र तथा चोक्त्वा विनिश्चयम्।
अनुज्ञातो निववृते परिष्वज्य जनार्दनम् ॥ ५७ ॥
इस प्रकार श्रीकृष्णसे वार्तालाप करके उन्हें अपना निश्चय बता गले मिलकर अर्जुन श्रीकृष्णसे आज्ञा ले लौट आये ॥ ५७ ॥

तेषु राजसु सर्वेषु निवृत्तेषु जनार्दनः।
तूर्णमभ्यपतद्धृष्टः सैन्यसुग्रीववाहनः ॥ ५८ ॥
उन सब राजाओंके लौट जानेपर सैन्य और सुग्रीव आदिसे युक्त रथपर चलनेवाले जनार्दन श्रीकृष्ण बडे हर्षके साथ तीव्र गतिसे आगे बढे ॥ ५८ ॥

ते हया वासुदेवस्य दारुकेण प्रचोदिताः।
पन्थानमाचेमुरिव ग्रसमाना इवाम्बरम् ॥ ५९ ॥
दारुकके हांकनेपर भगवान् वासुदेवके वे अश्व इतने वेगसे चलने लगे, मानो समस्त मार्गको पी रहे हों और आकाशको ग्रस लेना चाहते हों ॥ ५९ ॥

अथापश्यन्महाबाहुर्ऋषीनध्वनि केशवः।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानान्स्थितानुभयतः पथि ॥ ६० ॥
तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णने मार्गमें कुछ महर्षियोंको उपस्थित देखा, जो रास्तेके दोनों ओर खडे थे और ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६० ॥

सोऽवतीर्य रथात्तूर्णमभिवाद्य जनार्दनः।
यथावत्तानृषीन्सर्वानभ्यभाषत पूजयन् ॥ ६१ ॥
तब भगवान् श्रीकृष्ण तुरंत ही रथसे उतर पडे और पूर्वोक्तरूपसे खडे हुए उन समस्त महर्षियोंको प्रणाम करके उनका समादर करते हुए बोले ॥ ६१ ॥

कच्चिल्लोकेषु कुशलं कच्चिद्धर्मः स्वनुष्ठितः।
ब्राह्मणानां त्रयो वर्णाः कच्चित्तिष्ठन्ति शासने ॥ ६२ ॥
महात्माओ ! सम्पूर्ण लोकोंमें कुशल तो है न ? क्या धर्मका अच्छी तरह अनुष्ठान हो रहा है ? क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अधीन रहते हैं न ? ॥ ६२ ॥

तेभ्यः प्रयुज्य तां पूजां प्रोवाच मधुसूदनः ।
भगवन्तः क्व संसिद्धाः का वीथी भवतामिह ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् उन महर्षियोंकी पूजा करके भगवान् मधुसूदनने फिर उनसे पूछा— महात्माओ ! आपने कहाँ सिद्धि प्राप्त की है? आपलोगोंका यहाँ कौनसा मार्ग है? ॥ ६३ ॥

किं वा भगवतां कार्यमहं किं करवाणि वः ।
केनार्थेनोपसम्प्राप्ता भगवन्तो महीतलम् ॥ ६४ ॥

अथवा आपलोगोंका क्या कार्य है? भगवन् ! मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूं? किस प्रयोजनसे आपलोग इस भूतलपर पधारे हैं? ॥ ६४ ॥

तमब्रवीज्जामदग्न्य उपेत्य मधुसूदनम् ।
परिष्वज्य च गोविन्दं पुरा सुचरिते सखा ॥ ६५ ॥

उस समय देवराजके सखा जमदग्निनन्दन परशुरामने मधुसूदन श्रीकृष्णके पास जाकर उन्हें हृदयसे लगाया और इस प्रकार कहा— ॥ ६५ ॥

देवर्षयः पुण्यकृतो ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः ।
राजर्षयश्च दाशार्ह मानयन्तस्तपस्विनः ॥ ६६ ॥

केशव ! पुण्यात्मा देवर्षिगण, अनेक शास्त्रोंके विद्वान् ब्रह्मर्षिगण तथा आपका सम्मान करनेवाले तपस्वी राजर्षिगण ॥ ६६ ॥

देवासुरस्य द्रष्टारः पुराणस्य महाद्युते ।
समेतं पार्थिवं क्षत्रं दिदृक्षन्तश्च सर्वतः ॥ ६७ ॥

जिन्होंने, हे महातेजस्वी कृष्ण ! पुरातन देवासुर संग्रामको अपनी आखोंसे देखा है । वे भूमण्डलके क्षत्रियनरेशोंको ॥ ६७ ॥

सभासदश्च राजानस्त्वां च सत्यं जनार्दन ।
एतन्महत्प्रेक्षणीयं द्रष्टुं गच्छाम केशव ॥ ६८ ॥

सभामें बैठे हुए भूपालोंको तथा सत्यस्वरूप आप भगवान् जनार्दनको देखना चाहते हैं । इस परम दर्शनीय वस्तुका दर्शन करनेके लिये ही हम हस्तिनापुरमें चल रहे हैं ॥ ६८ ॥

धर्मार्थसहिता वाचः श्रोतुमिच्छाम माधव ।
त्वयोच्यमानाः कुरुषु राजमध्ये परंतप ॥ ६९ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले माधव ! वहाँ कौरवों तथा अन्य राजाओंकी मण्डलीमें आपके द्वारा कही जानेवाली धर्म और अर्थसे युक्त बातोंको हम सुनना चाहते हैं ॥ ६९ ॥

भीष्मद्रोणादयश्चैव विदुरश्च महामतिः।
त्वं च यादवशार्दूल सभायां वै समेष्यथ ॥ ७० ॥

यदुकुलसिंह ! वहां कौरवसभामें भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख व्यक्ति, परम बुद्धिमान् विदुर तथा आप पधारेंगे ॥ ७० ॥

तव वाक्यानि दिव्यानि तत्र तेषां च माधव।
श्रोतुमिच्छाम गोविन्द सत्यानि च शुभानि च। ॥ ७१ ॥

गोविन्द ! माधव ! उस सभामें आपके तथा भीष्म आदिके मुखसे जो दिव्य, सत्य एवं शुभकर वचन प्रकट होंगे, उन सबको हमलोग सुनना चाहते हैं ॥ ७१ ॥

आपृष्टोऽसि महाबाहो पुनर्द्रक्ष्यामहे वयम्।
यात्वविघ्नेन वै वीर द्रक्ष्यामस्त्वां सभागतम् ॥ ७२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ २६७७ ॥

महाबाहो ! अब हमलोग आपसे पूछकर विदा ले रहे हैं, पुनः आपका दर्शन करेंगे। वीर ! आपकी यात्रा निर्विघ्न हो। सभामें आपका हम पुनः दर्शन करेंगे ॥ ७२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥ २६७७ ॥

: ८२ :

वैशम्पायन उवाच

प्रयान्तं देवकीपुत्रं परवीररुजो दश।
महारथा महाबाहुमन्वयुः शस्त्रपाणयः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! महाबाहु श्रीकृष्णके प्रस्थान करते समय विपक्षी वीरोंपर विजय पानेवाले शस्त्रधारी दस महारथी श्रीकृष्णके पीछे पीछे गए ॥ १ ॥

पदातीनां सहस्रं च सादिनां च परंतप।
भोज्यं च विपुलं राजन्प्रेष्याश्च शतशोऽपरे ॥ २ ॥

एक हजार पैदल योद्धा, एक हजार घुडसवार, प्रचुर खाद्य सामग्री तथा दूसरे सैकडों सेवक उनके साथ गये ॥ २ ॥

जनमेजय उवाच

कथं प्रयातो दाशार्हो महात्मा मधुसूदनः।
कानि वा व्रजतस्तस्य निमित्तानि महौजसः ॥ ३ ॥

जनमेजय बोले— दशार्हकुलतिलक महात्मा मधुसूदनने किस प्रकार यात्रा की ? उन महातेजस्वी श्रीकृष्णके जाते समय कौन कौनसे भले बुरे शकुन प्रकट हुए थे ? ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य प्रयाणे यान्यासन्नद्भुतानि महात्मनः ।
तानि मे शृणु दिव्यानि दैवान्यौत्पातिकानि च ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले— राजन् ! महात्मा श्रीकृष्णके प्रस्थान करते समय जो दिव्य शकुन और उत्पातसूचक अपशकुन प्रकट हुए थे, मुझसे उन सबका वर्णन सुनो ॥ ४ ॥

अनभ्रेऽशनिनिर्घोषः सविद्युत्समजायत ।
अन्वगेव च पर्जन्यः प्रावर्षद्विघने भृशम् ॥ ५ ॥

बिना बादलके ही आकाशमें बिजलीसहित वज्रकी गडगडाहट सुनायी देने लगी । उसके साथ ही पर्जन्यदेवताने मेघोंकी घटा न होनेपर भी प्रचुर जलकी वर्षा की ॥ ५ ॥

प्रत्यगूहुर्महानद्यः प्राङ्मुखाः सिन्धुसत्तमाः ।
विपरीता दिशः सर्वा न प्राज्ञायत किंचन ॥ ६ ॥

पूर्वकी ओर बहनेवाली सिन्धु आदि बडी बडी नदियोंका प्रवाह उलटकर पश्चिमकी ओर हो गया । सारी दिशाएँ विपरीत प्रतीत होने लगीं । कुछ भी समझमें नहीं आता था ॥६॥

प्राज्वलन्नग्नयो राजन्पृथिवी समकम्पत ।
उदपानाश्च कुम्भाश्च प्रासिञ्चञ्शतशो जलम् ॥ ७ ॥

राजन् ! सब ओर आग जलने लगी । धरती डोलने लगी । सैकडों जलाशय और कलश छलक छलककर जल गिराने लगे ॥ ७ ॥

तमःसंवृतमप्यासीत्सर्वं जगदिदं तदा ।
न दिशो नादिशो राजन्प्रज्ञायन्ते स्म रेणुना ॥ ८ ॥

राजन् ! यह सारा संसार धूलके कारण अन्धकारसे आच्छन्नसा हो गया । कौन दिशा है, कौन दिशा नहीं है, इसका ज्ञान नहीं हो पाता था ॥ ८ ॥

प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः खे शरीरं न दृश्यते ।
सर्वेषु राजन्देशेषु तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥

महाराज ! फिर बडे जोरसे कोलाहल होने लगा, पर आकाशमें कोई शब्द करनेवाला शरीर दिखाई नहीं देता था । सम्पूर्ण देशोंमें यह अद्भुतसी बात दिखायी दी ॥ ९ ॥

प्रामथ्नाद्धास्तिनपुरं वातो दक्षिणपश्चिमः ।
आरुजन्गणशो वृक्षान्परुषो भीमनिस्वनः ॥ १० ॥

दक्षिण पश्चिमसे आँधी उठी और हस्तिनापुरको मथने लगी । उसने झुंडके झुंड वृक्षोंको तोड उखाडकर धराशायी कर दिया । भयंकरसा शब्द होने लगा इस प्रकारके उत्पात हस्तिनापुरके आसपास घटित होते थे ॥ १० ॥

यत्र यत्र तु वार्ष्णेयो वर्तते पथि भारत।
तत्र तत्र सुखो वायुः सर्वं चासीत्प्रदक्षिणम् ॥ ११ ॥
भारत! वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण मार्गमें जहाँ जहाँ रहते थे, वहाँ वहाँ सुखदायिनी वायु चलती थी और सभी शुभ शकुन उनके दाहिने भागमें प्रकट होते थे ॥ ११ ॥

ववर्ष पुष्पवर्षं च कमलानि च भूरिशः।
समश्च पन्था निर्दुःखो व्यपेतकुशकण्टकः ॥ १२ ॥
उनपर फूलोंकी और बहुतसे खिले हुए कमलोंकी भी वृष्टि होती तथा सारा मार्ग कुश कण्टकसे शून्य और समतल होकर क्लेश और दुःखसे रहित हो जाता था ॥ १२ ॥

स गच्छन्ब्राह्मणै राजंस्तत्र तत्र महाभुजः।
अर्च्यते मधुपर्कैश्च सुमनोभिर्वसुप्रदः ॥ १३ ॥
सहस्रों ब्राह्मण विभिन्न स्थानोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते तथा मधुपर्कद्वारा उनकी पूजा करते थे। धनदाता भगवान्‌ने भी उन सबको यथेष्ट धन दिया ॥ १३ ॥

तं किरन्ति महात्मानं वन्यैः पुष्पैः सुगन्धिभिः।
स्त्रियः पथि समागम्य सर्वभूतहिते रतम् ॥ १४ ॥
मार्गमें कितनी ही स्त्रियाँ आकर सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत रहनेवाले उन महात्मा श्रीकृष्णके ऊपर वनके सुगन्धित फूलोंकी वर्षा करती थीं ॥ १४ ॥

स शालिभवनं रम्यं सर्वसस्यसमाचितम्।
सुखं परमधर्मिष्ठमत्यगाद्भरतर्षभ ॥ १५ ॥
भरतश्रेष्ठ! उस समय धर्मकार्यके लिये अत्यन्त उपयोगी तथा सम्पूर्ण सस्य सम्पत्तिसे भरे हुए अगहनी धानके मनोहर खेत देखते हुए भगवान् बडे सुखसे यात्रा कर रहे थे ॥१५॥

पश्यन्बहुपशून्ग्रामान्रम्यान्हृदयतोषणान्।
पुराणि च व्यतिक्रामन्राष्ट्राणि विविधानि च ॥ १६ ॥
रास्तेमें कितने ही ऐसे गाँव मिलते, जिनमें बहुतसे पशुओंका पालन पोषण होता था। वे देखनेमें अत्यन्त सुन्दर और मनको संतोष देनेवाले थे। उन सबको देखते और अनेकानेक नगरों एवं राष्ट्रोंको लाँघते हुए वे आगे बढते चले गये ॥ १६ ॥

नित्यहृष्टाः सुमनसो भारतैरभिरक्षिताः।
नोद्विग्नाः परचक्राणामनयानामकोविदाः ॥ १७ ॥
भरतवंशियोंद्वारा सुरक्षित होनेके कारण वे सदा हर्ष एवं उल्लाससे भरे रहते थे। उनका मन बहुत प्रसन्न था। उन्हें शत्रुओंकी सेनाओंसे उद्विग्न होनेका अवसर नहीं आता था। दुःख और संकट कैसा होता है, इसको वे जानते ही नहीं थे ॥ १७ ॥

उपप्लव्यादथायान्तं जनाः पुरनिवासिनः।
पथ्यतिष्ठन्त सहिता विष्वक्सेनदिदृक्षया ॥ १८ ॥

इधर उपप्लव्य नगरसे आते हुए भगवान् श्रीकृष्णको देखनेकी इच्छासे अनेक नागरिक रास्तेमें एक साथ खडे थे ॥ १८ ॥

ते तु सर्वे सुनामानमग्निमिद्धमिव प्रभुम्।
अर्चयामासुरर्च्यं तं देशातिथिमुपस्थितम् ॥ १९ ॥

उन सबने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी और अपने देशके पूजनीय अतिथि अत्यन्त यशस्वी भगवान् श्रीकृष्णका यथावत् पूजन किया ॥ १९ ॥

वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा।
प्रकीर्णरश्मावादित्ये विमले लोहितायति ॥ २० ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण जब वृकस्थलमें पहुंचे, उस समय नाना किरणोंसे मण्डित सूर्य अस्त होने लगे और पश्चिमके आकाशमें लाली छा गयी ॥ २० ॥

अवतीर्य रथात्तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।
रथमोचनमादिश्य संध्यामुपविवेश ह ॥ २१ ॥

तब भगवान्ने शीघ्र ही रथसे उतरकर उसे खोलनेकी आज्ञा दी और विधिपूर्वक शौच-स्नान करके वे संध्योपासना करने लगे ॥ २१ ॥

दारुकोऽपि हयान्मुक्त्वा परिचर्य च शास्त्रतः।
मुमोच सर्वं वर्माणि मुक्त्वा चैनानवासृजत् ॥ २२ ॥

दारुकने भी घोडोंको खोलकर शास्त्रविधिके अनुसार उनकी परिचर्या की और उनका सारा कवच आदि उतार दिया तथा उन्हें बन्धनमुक्त करके छोड दिया ॥ २२ ॥

अभ्यतीत्य तु तत्सर्वमुवाच मधुसूदनः।
युधिष्ठिरस्य कार्यार्थमिह वत्स्यामहे क्षपाम् ॥ २३ ॥

संध्या वन्दन आदि सारा कार्य समाप्त करके मधुसूदन श्रीकृष्णने कहा युधिष्ठिरका कार्य सिद्ध करनेके लिये आज रातमें हमलोग यहीं रहेंगे ॥ २३ ॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय चक्रुरावसथं नराः।
क्षणेन चान्नपानानि गुणवन्ति समार्जयन् ॥ २४ ॥

उनका यह विचार जानकर सेवकोंने वहीं डेरा डाल दिये। क्षणभरमें उन्होंने खाने पीनेके उत्तमोत्तम पदार्थ प्रस्तुत कर दिये ॥ २४ ॥

तस्मिन्ग्रामे प्रधानास्तु य आसन्ब्राह्मणा नृप ।
आर्याः कुलीना ह्रीमन्तो ब्राह्मीं वृत्तिमनुष्ठिताः ॥ २५ ॥

राजन् ! उस गाँवमें जो प्रमुख ब्राह्मण रहते थे, वे श्रेष्ठ, कुलीन, लज्जाशील और ब्राह्मणोचित वृत्तिका पालन करनेवाले थे ॥ २५ ॥

तेऽभिगम्य महात्मानं हृषीकेशमरिंदमम् ।
पूजां चक्रुर्यथान्यायमाशीर्मङ्गलसंयुताम् ॥ २६ ॥

उन्होंने शत्रुदमन महात्मा हृषीकेशके पास जाकर आशीर्वाद तथा मङ्गलपाठपूर्वक उनका यथोचित पूजन किया ॥ २६ ॥

ते पूजयित्वा दाशार्हं सर्वलोकेषु पूजितम् ।
न्यवेदयन्त वेश्मानि रत्नवन्ति महात्मने ॥ २७ ॥

सर्वलोकपूजित दशार्हनन्दन श्रीकृष्णकी पूजा करके उन्होंने उन महात्माको अपने रत्नसम्पन्न गृह समर्पित कर दिये अर्थात् अपने अपने घरोंमें ठहरनेके लिये प्रभुसे प्रार्थना की ॥ २७ ॥

तान्प्रभुः कृतमित्युक्त्वा सत्कृत्य च यथार्हतः ।
अभ्येत्य तेषां वेश्मानि पुनरायात्सहैव तैः ॥ २८ ॥

तब भगवान्‌ने यह कहकर कि यहां ठहरनेके लिये पर्याप्त स्थान है, उनका यथायोग्य सत्कार किया और उनके संतोषके लिये उन सबके घरोंपर जाकर पुनः उनके साथ ही लौट आये ॥ २८ ॥

सुमृष्टं भोजयित्वा च ब्राह्मणांस्तत्र केशवः ।
भुक्त्वा च सह तैः सर्वैरवसत्तां क्षपां सुखम् ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ २७०६ ॥

तत्पश्चात् केशवने वहीं उन ब्राह्मणोंको सुस्वादु अन्न भोजन कराया, फिर स्वयं भी भोजन करके उन सबके साथ उस रातमें वहां सुखपूर्वक निवास किया ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८२ ॥ २७०६ ॥

: ८३ :

वैशम्पायन उवाच

तथा दूतैः समाज्ञाय आयान्तं मधुसूदनम् ।
धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्भीष्ममर्चयित्वा महाभुजम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले—जनमेजय ! दूतोंके द्वारा भगवान् मधुसूदनके आगमनका समाचार जानकर वे धृतराष्ट्र महाबाहु भीष्मकी पूजा करके बोले ॥ १ ॥

द्रोणं च संजयं चैव विदुरं च महामतिम्।
दुर्योधनं च सामात्यं हृष्टरोमाब्रवीदिदम् ॥ २ ॥

साथ ही द्रोण, संजय तथा परम बुद्धिमान् विदुरका यथावत् सत्कार करके रोमांचयुक्त शरीरवाले मन्त्रियोंसहित दुर्योधनसे इस प्रकार कहा ॥ २ ॥

अद्भुतं महदाश्चर्यं श्रूयते कुरुनन्दन।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च कथयन्ति गृहे गृहे ॥ ३ ॥

कुरुनन्दन ! एक अद्भुत और अत्यन्त आश्चर्यकी बात सुनायी देती है। घरघरमें स्त्री-बालक और बूढे इसीकी चर्चा करते हैं ॥ ३ ॥

सत्कृत्याचक्षते चान्ये तथैवान्ये समागताः।
पृथग्वादाश्च वर्तन्ते चत्वरेषु सभासु च ॥ ४ ॥

जो यहांके निवासी हैं, वे तथा जो बाहरसे आये हुए हैं, वे भी आदरपूर्वक उसी बातको कहते हैं। चौराहोंपर और सभाओंमें भी पृथक् पृथक् वही चर्चा चलती है ॥ ४ ॥

उपायास्यति दाशार्हः पाण्डवार्थे पराक्रमी।
स नो मान्यश्च पूज्यश्च सर्वथा मधुसूदनः ॥ ५ ॥

वह बात यह है कि पाण्डवोंकी ओरसे परम पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण यहां पधारेंगे। वे मधुसूदन हमलोगोंके माननीय तथा सब प्रकारसे पूजनीय हैं ॥ ५ ॥

तस्मिन्हि यात्रा लोकस्य भूतानामीश्वरो हि सः
तस्मिन्धृतिश्च वीर्यं च प्रज्ञा चौजश्च माधवे ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण लोकोंका जीवन उन्हींपर निर्भर है, क्योंकि वे सम्पूर्ण भूतोंके अधीश्वर हैं। उन माधवमें धैर्य, पराक्रम, बुद्धि और तेज सब कुछ है ॥ ६ ॥

स मान्यतां नरश्रेष्ठः स हि धर्मः सनातनः।
पूजितो हि सुखाय स्यादसुखः स्यादपूजितः ॥ ७ ॥

उन नरश्रेष्ठ श्रीकृष्णका यहां सम्मान होना चाहिये; क्योंकि वे सनातन धर्मस्वरूप हैं। सम्मानित होनेपर वे हमारे लिये सुखदायक होंगे और सम्मानित न होनेपर हमारे दुःखके कारण बन जायँगे ॥ ७ ॥

स चेत्तुष्यति दाशार्ह उपचारैररिंदमः।
कृत्स्नान्सर्वानभिप्रायान्प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥ ८ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण यदि हमारे सत्कार साधनोंसे संतुष्ट हो जायँगे, तब हम समस्त राजाओंमें उनसे अपने सारे मनोरथ प्राप्त कर लेंगे ॥ ८ ॥

तस्य पूजार्थमद्यैव संविधत्स्व परंतप ।
सभाः पथि विधीयन्तां सर्वकामसमाहिताः ॥ ९ ॥

परंतप ! तुम श्रीकृष्णके स्वागत सत्कारके लिये आजसे ही तैयारी करो । मार्गमें अनेक विश्रामस्थान बनवाओ और उनमें सब प्रकारकी मनोनुकूल उपभोग सामग्री प्रस्तुत करो ॥ ९ ॥

यथा प्रीतिर्महाबाहो त्वयि जायेत तस्य वै ।
तथा कुरुष्व गान्धारे कथं वा भीष्म मन्यसे ॥ १० ॥

महाबाहु गान्धारीनन्दन ! तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे श्रीकृष्णके हृदयमें तुम्हारे प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाये । अथवा भीष्म ! इस विषयमें आपकी क्या सम्मति है ? ॥ १० ॥

ततो भीष्मादयः सर्वे धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।
ऊचुः परममित्येवं पूजयन्तोऽस्य तद्वचः ॥ ११ ॥

तब भीष्म आदि सब लोगोंने उस प्रस्तावकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा– बहुत उत्तम बात है ॥ ११ ॥

तेषामनुमतं ज्ञात्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
सभावास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे ॥ १२ ॥

उन सबकी अनुमति जानकर राजा दुर्योधनने उस समय जगह जगह सुन्दर सभामण्डप तथा विश्रामस्थान बनवानेके लिये आदेश जारी किया ॥ १२ ॥

ततो देशेषु देशेषु रमणीयेषु भागशः ।
सर्वरत्नसमाकीर्णाः सभाश्चक्रुरनेकशः ॥ १३ ॥

तब कारीगरोंने विभिन्न रमणीय प्रदेशोंमें अलग अलग सब प्रकारके रत्नोंसे सम्पन्न अनेक विश्रामस्थान बनाये ॥ १३ ॥

आसनानि विचित्राणि युक्तानि विविधैर्गुणैः ।
स्त्रियो गन्धानलंकारान्सूक्ष्माणि वसनानि च ॥ १४ ॥

नाना प्रकारके गुणोंसे युक्त विचित्र आसन, स्त्रियाँ, सुगन्धित पदार्थ, आभूषण, महीन वस्त्र ॥ १४ ॥

गुणवन्त्यन्नपानानि भोज्यानि विविधानि च ।
माल्यानि च सुगन्धीनि तानि राजा ददौ ततः ॥ १५ ॥

गुणकारक अन्न और पेय पदार्थ, भाँति भाँतिके भोजन तथा सुगन्धित पुष्पमालाएँ आदि वस्तुओंको राजा दुर्योधनने उन स्थानोंमें रखवाया ॥ १५ ॥

विशेषतश्च वासार्थं सभां ग्रामे वृकस्थले।
विदधे कौरवो राजा बहुरत्नां मनोरमाम् ॥ १६ ॥
विशेषतः वृकस्थलनामक ग्राममें निवास करनेके लिये कुरुराज दुर्योधनने जो विश्रामस्थान बनवाया था, वह बड़ा मनोरम तथा प्रचुर रत्नराशिसे सम्पन्न था ॥ १६ ॥

एतद्विधाय वै सर्वं देवार्हमतिमानुषम्।
आचख्यौ धृतराष्ट्राय राजा दुर्योधनस्तदा ॥ १७ ॥
मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ यह सब देवोचित व्यवस्था करके राजा दुर्योधनने धृतराष्ट्रको इसकी सूचना दे दी ॥ १७ ॥

ताः सभाः केशवः सर्वा रत्नानि विविधानि च।
असमीक्ष्यैव दाशार्ह उपायात्कुरुसद्म तत् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ २७२४ ॥

परंतु यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण उन विश्रामस्थानों तथा नाना प्रकारके रत्नोंकी ओर दृष्टिपाततक न करके कौरवोंके निवासस्थान हस्तिनापुरकी ओर बढ़ते चले गये ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८३ ॥ २७२४ ॥

: ८४ :

धृतराष्ट्र उवाच

उपप्लव्यादिह क्षत्तरुपायातो जनार्दनः।
वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहेष्यति ॥ १ ॥
धृतराष्ट्र बोले— विदुर ! मुझे सूचना मिली है कि भगवान् श्रीकृष्ण उपप्लव्यसे यहाँके लिये प्रस्थित हो गये हैं आज वृकस्थलमें ठहरे हैं तथा कल सबेरे ही इस नगरमें पहुँच जायेंगे ॥ १ ॥

आहुकानामधिपतिः पुरोगः सर्वसात्वताम्।
महामना महावीर्यो महामात्रो जनार्दनः ॥ २ ॥
भगवान् जनार्दन आहुकवंशी क्षत्रियोंके अधिपति तथा समस्त सात्वतों यादवोंके अगुआ हैं। उनका हृदय महान् है, पराक्रम भी महान् है तथा वे महान् सत्वगुणसे सम्पन्न हैं ॥ २ ॥

स्फीतस्य वृष्णिवंशस्य भर्ता गोप्ता च माधवः।
त्रयाणामपि लोकानां भगवान्प्रपितामहः ॥ ३ ॥
वे भगवान् माधव समृद्धिशाली यादव वंशके पोषक तथा संरक्षक हैं। पितामहके भी जनक होनेके कारण वे तीनों लोकोंके प्रपितामह हैं ॥ ३ ॥

वृष्ण्यन्धकाः सुमनसो यस्य प्रज्ञामुपासते ।
आदित्या वसवो रुद्रा यथा बुद्धिं बृहस्पतेः ॥ ४ ॥

जैसे आदित्य वसु तथा रुद्रगण बृहस्पतिकी बुद्धिका आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके लोग प्रसन्नचित्त होकर श्रीकृष्णकी ही बुद्धिके आश्रित रहते हैं ॥ ४ ॥

तस्मै पूजां प्रयोक्ष्यामि दाशार्हाय महात्मने ।
प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तन्मे कथयतः शृणु ॥ ५ ॥

धर्मज्ञ विदुर ! मैं तुम्हारे सामने ही उन महात्मा श्रीकृष्णको जो पूजा दूँगा, उसे बताता हूँ, सुनो ॥ ५ ॥

एकवर्णैः सुकृष्णाङ्गैर्बाह्लिजातैर्हयोत्तमैः ।
चतुर्युक्तान्रथांस्तस्मै रौक्मान्दास्यामि षोडश ॥ ६ ॥

एक रंगके, काले अंगोंवाले तथा बाह्लीकदेशमें उत्पन्न हुए उत्तम जातिके चार चार घोड़ोंसे जुते हुए सोलह सुवर्णमय रथ मैं श्रीकृष्णको भेंट करूंगा ॥ ६ ॥

नित्यप्रभिन्नान्मातङ्गानीषादन्तान्प्रहारिणः ।
अष्टानुचरमेकैकमष्टौ दास्यामि केशवे ॥ ७ ॥

कुरुनन्दन ! इनके सिवा मैं उन्हें आठ मतवाले हाथी भी दूँगा, जिनके मस्तकोंसे सदा मद चूता रहता है, जिनके दांत ईषादण्डके समान प्रतीत होते हैं तथा जो शत्रुओंपर प्रहार करनेमें कुशल हैं और जिन आठों गजराजोंमेंसे प्रत्येकके साथ आठ आठ सेवक हैं ॥ ७ ॥

दासीनामप्रजातानां शुभानां रुक्मवर्चसाम् ।
शतमस्मै प्रदास्यामि दासानामपि तावतः ॥ ८ ॥

साथ ही मैं उन्हें सुवर्णकीसी कान्तिवाली परम सुन्दरी सौ ऐसी दासियां दूँगा, जिनसे किसी संतानकी उत्पत्ति नहीं हुई है । दासियोंके ही बराबर दास भी दूँगा ॥ ८ ॥

आविकं बहु सुस्पर्शं पार्वतीयैरुपाहृतम् ।
तदप्यस्मै प्रदास्यामि सहस्राणि दशाष्ट च ॥ ९ ॥

मेरे यहां पर्वतीयोंसे भेंटमें मिले हुए भेडके ऊनसे बने हुए असंख्य कम्बल हैं, जो स्पर्श करनेपर बडे मुलायम जान पडते हैं; उनमेंसे अठारह हजार कम्बल भी मैं श्रीकृष्णको उपहारमें दूँगा ॥ ९ ॥

अजिनानां सहस्राणि चीनदेशोद्भवानि च ।
तान्यप्यस्मै प्रदास्यामि यावदर्हति केशवः ॥ १० ॥

चीनदेशमें उत्पन्न हुए सहस्रों मृगचर्म मेरे भण्डारमें सुरक्षित हैं; उनमेंसे श्रीकृष्ण जितने लेना चाहेंगे, उतने सबके सब उन्हें अर्पित कर दूँगा ॥ १० ॥

दिवा रात्रौ च भात्येष सुतेजा विमलो मणिः ।
तमप्यस्मै प्रदास्यामि तमप्यर्हति केशवः ॥ ११ ॥

मेरे पास यह एक अत्यन्त तेजस्वी निर्मल मणि है, जो दिन तथा रातमें भी प्रकाशित होती है, इसे भी मैं श्रीकृष्णको ही दूँगा; क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं ॥ ११ ॥

एकेनापि पतत्यह्ना योजनानि चतुर्दश ।
यानमश्वतरीयुक्तं दास्ये तस्मै तदप्यहम् ॥ १२ ॥

मेरे पास खच्चरियोंसे युक्त एक रथ है, जो एक दिनमें चौदह योजनतक चला जाता है, वह भी मैं उन्हींको अर्पित करूंगा ॥ १२ ॥

यावन्ति वाहनान्यस्य यावन्तः पुरुषाश्च ते ।
ततोऽष्टगुणमप्यस्मै भोज्यं दास्याम्यहं सदा ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णके साथ जितने वाहन और जितने सेवक आयेंगे उन सबको औसतसे आठगुना भोजन मैं प्रत्येक समय देता रहूंगा ॥ १३ ॥

मम पुत्राश्च पौत्राश्च सर्वे दुर्योधनादृते ।
प्रत्युद्यास्यन्ति दाशार्हं रथैर्मृष्टैरलंकृताः ॥ १४ ॥

दुर्योधनके सिवा मेरे सभी पुत्र और पौत्र वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो स्वच्छ सुन्दर रथोंपर बैठकर श्रीकृष्णकी अगवानीके लिये जायँगे ॥ १४ ॥

स्वलंकृताश्च कल्याण्यः पादैरेव सहस्रशः ।
वारमुख्या महाभागं प्रत्युद्यास्यन्ति केशवम् ॥ १५ ॥

सहस्रों सुन्दरी वाराङ्गनाएँ सुन्दर वेषभूषासे सज धजकर महाभाग केशवकी अगवानीके लिये पैदल ही जायँगी ॥ १५ ॥

नगरादपि याः काश्चिद्गमिष्यन्ति जनार्दनम् ।
द्रष्टुं कन्याश्च कल्याण्यस्ताश्च यास्यन्त्यनावृताः ॥ १६ ॥

जनार्दनका दर्शन करनेके लिये इस नगरसे जो भी कोई पर्दा न रखनेवाली कल्याणमयी कन्याएँ जाना चाहेंगी, वे जा सकेंगी ॥ १६ ॥

सस्त्रीपुरुषबालं हि नगरं मधुसूदनम् ।
उदीक्षते महात्मानं भानुमन्तमिव प्रजाः ॥ १७ ॥

जैसे प्रजा सूर्यदेवका दर्शन करती है, उसी प्रकार स्त्री, पुरुष और बालकोंसहित यह सारा नगर महात्मा मधुसूदनके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा है ॥ १७ ॥

महाध्वजपताकाश्च क्रियन्तां सर्वतोदिशम्।
जलावसिक्तो विरजाः पन्थास्तस्येति चान्वशात् ॥ १८॥

नगरमें चारों ओर विशाल ध्वजाएँ और पताकाएँ फहरा दी जायें और श्रीकृष्ण जिसपर आ रहे हों, उस राजपथपर जलका छिडकाव करके उसे धूलरहित बना दिया जाये, इस प्रकार राजा धृतराष्ट्रने आदेश दिया ॥ १८ ॥

दुःशासनस्य च गृहं दुर्योधनगृहाद्वरम्।
तदस्य क्रियतां क्षिप्रं सुसंमृष्टमलंकृतम् ॥ १९ ॥

इतना कहकर वे फिर बोले—दुःशासनका महल दुर्योधनके राजभवनसे भी श्रेष्ठ है। उसीको आज झाड पोंछकर सब प्रकारसे सुसज्जित कर दिया जाये ॥ १९ ॥

एतद्धि रुचिराकारैः प्रासादैरुपशोभितम्।
शिवं च रमणीयं च सर्वर्तुसुमहाधनम् ॥ २० ॥

यह महल सुन्दर आकारवाले भवनोंसे सुशोभित, कल्याणकारी, रमणीय, सभी ऋतुओंके वैभवसे सम्पन्न तथा अनन्त धनराशिसे समृद्ध है ॥ २० ॥

सर्वमस्मिन्गृहे रत्नं मम दुर्योधनस्य च।
यद्यदर्हेत्स वार्ष्णेयस्तत्तद्देयमसंशयम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ २७४५ ॥

मेरे और दुर्योधनके पास जो भी रत्न हैं, वे सब इसी घरमें रक्खे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण उनमेंसे जो जो रत्न लेना चाहें, वे सब उन्हें निःसंदेह दे दिये जायें ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ २७४५ ॥

: ८५ :

विदुर उवाच

राजन्बहुमतश्चासि त्रैलोक्यस्यापि सत्तमः।
संभावितश्च लोकस्य संमतश्चासि भारत ॥ १ ॥

विदुर बोले— राजन्! आप तीनों लोकोंके श्रेष्ठतम पुरुष हैं और सर्वत्र आपका बहुत सम्मान होता है। भारत! इस लोकमें भी आपकी बडी प्रतिष्ठा और सम्मान है ॥ १ ॥

यत्त्वमेवंगते ब्रूयाः पश्चिमे वयसि स्थितः।
शास्त्राद्वा सुप्रतर्काद्वा सुस्थिरः स्थविरो ह्यसि ॥ २ ॥

इस समय आप आन्तिम अवस्था बुढापे में स्थित हैं। ऐसी स्थितिमें आप जो कुछ कह रहे हैं; वह शास्त्रसे अथवा लौकिक युक्तिसे भी ठीक ही है। इस सुस्थिर विचारके कारण ही आप वास्तवमें स्थविर वृद्ध हैं ॥ २ ॥

लेखाश्मनीव भाः सूर्ये महोर्मिरिव सागरे ।
धर्मस्त्वयि महान्राजन्निति व्यवसिताः प्रजाः ॥ ३ ॥

राजन् ! जैसे चन्द्रमामें कला है, सूर्यमें प्रभा है और समुद्रमें उत्ताल तरंगें हैं, उसी प्रकार आपमें धर्मकी स्थिति है । यह समस्त प्रजा निश्चितरूपसे जानती है ॥ ३ ॥

सदैव भावितो लोको गुणौघैस्तव पार्थिव ।
गुणानां रक्षणे नित्यं प्रयतस्व सबान्धवः ॥ ४ ॥

भूपाल ! आपके सद्गुणसमूहसे सदा ही इस जगत्की उन्नति एवं प्रतिष्ठा हो रही है । अतः आप अपने बन्धुबान्धवोंसहित सदा ही इन सद्गुणोंकी रक्षाके लिये प्रयत्न कीजिये ॥ ४ ॥

आर्जवं प्रतिपद्यस्व मा बाल्याद्बहुधा नशीः ।
राज्यं पुत्रांश्च पौत्रांश्च सुहृदश्चापि सुप्रियान् ॥ ५ ॥

राजन् ! आप सरलताको अपनाइये । मूर्खतावश कुटिलताका आश्रय ले अपने अत्यन्त प्रिय पुत्रों, पौत्रों तथा सुहृदोंका महान् सर्वनाश न कीजिये ॥ ५ ॥

यत्त्वं दित्ससि कृष्णाय राजन्नतिथये बहु ।
एतदन्यच्च दाशार्हः पृथिवीमपि चार्हति ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! श्रीकृष्णको अतिथिरूपमें पाकर आप जो उन्हें बहुतसी वस्तुएं देना चाहते हैं, उन सबके साथ साथ वे आपसे इस समूची पृथ्वीके भी पानेके अधिकारी हैं ॥ ६ ॥

न तु त्वं धर्ममुद्दिश्य तस्य वा प्रियकारणात् ।
एतदिच्छसि कृष्णाय सत्येनात्मानमालभे ॥ ७ ॥

मैं सत्यकी शपथ खाकर अपने शरीरको छूकर कहता हूं कि आप धर्मपालनके उद्देश्यसे अथवा श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिये उन्हें वे सब वस्तुएं नहीं देना चाहते हैं ॥ ७ ॥

मायैषात्त्वमेवैतच्छद्मैतद् भूरिदक्षिण
जानामि ते मतं राजन्गूढं बाह्येन कर्मणा ॥ ८ ॥

यज्ञोंमें बहुतसी दक्षिणा देनेवाले महाराज ! मैं सच कहता हूं । यह सब आपकी माया और प्रवञ्चनामात्र है । आपके इन बाह्यव्यवहारोंमें छिपा हुआ जो आपका वास्तविक अभिप्राय है, उसे मैं समझता हूं ॥ ८ ॥

पञ्च पञ्चैव लिप्सन्ति ग्रामकान्पाण्डवा नृप ।
न च दित्ससि तेभ्यस्तांस्तच्छमं कः करिष्यसि ॥ ९ ॥

नरेन्द्र ! पांचों भाई पाण्डव आपसे केवल पांच गांव ही पाना चाहते हैं, परंतु आप उन्हें वे गांव भी नहीं देना चाहते हैं । फिर सन्धिद्वारा शान्तिस्थापन कौन करेगा ॥ ९ ॥

×

अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं त्वं जिहीर्षसि।
अनेनैवाभ्युपायेन पाण्डवेभ्यो बिभित्ससि ॥ १० ॥
आप तो धन देकर महाबाहु श्रीकृष्णको अपने पक्षमें लाना चाहते हैं और इस उपायसे आप उन्हें पाण्डवोंकी ओरसे फोडना चाहते हैं ॥ १० ॥

न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया।
अन्यो धनंजयात्कर्तुमेतत्तत्त्वं ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥
परंतु मैं आपको असली बात बताये देता हूं; आप धन देकर अथवा दूसरा कोई उद्योग या निन्दा करके श्रीकृष्णको अर्जुनसे पृथक् नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

वेद कृष्णस्य माहात्म्यं वेदास्य दृढभक्तिताम्।
अत्याज्यमस्य जानामि प्राणैस्तुल्यं धनंजयम् ॥ १२ ॥
मैं श्रीकृष्णके माहात्म्यको जानता हूं। श्रीकृष्णके प्रति अर्जुनकी जो सुदृढ भक्ति है, उससे भी परिचित हूं। अतः मैं यह निश्चितरूपसे जानता हूं कि श्रीकृष्ण अपने प्राणोंके समान प्रिय सखा अर्जुनको कभी त्याग नहीं सकते ॥ १२ ॥

अन्यत्कुम्भादपां पूर्णादन्यत्पादावसेचनात्।
अन्यत्कुशलसम्प्रश्नान्नैषिष्यति जनार्दनः ॥ १३ ॥
इसलिये आपकी दी हुई वस्तुओंमेंसे जलसे भरे हुए कलश, पैर धोनेके लिये जल और कुशल प्रश्नको छोडकर दूसरी किसी वस्तुको श्रीकृष्ण नहीं स्वीकार करेंगे ॥ १३ ॥

यत्त्वस्य प्रियमातिथ्यं मानार्हस्य महात्मनः।
तदस्मै क्रियतां राजन्मानार्हो हि जनार्दनः ॥ १४ ॥
राजन्! सम्माननीय महात्मा श्रीकृष्णका जो परम प्रिय आतिथ्य है, वह तो कीजिये ही; क्योंकि वे भगवान् जनार्दन सबके द्वारा सम्मान पानेके योग्य हैं ॥ १४ ॥

आशंसमानः कल्याणं कुरूनभ्येति केशवः।
येनैव राजन्नर्थेन तदेवास्मा उपाकुरु ॥ १५ ॥
महाराज! भगवान् केशव उभयपक्षके कल्याणकी इच्छा लेकर जिस प्रयोजनसे इस कुरु-देशमें आ रहे हैं, वही उन्हें उपहारमें दीजिये ॥ १५ ॥

शममिच्छति दाशार्हस्तव दुर्योधनस्य च।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तदस्य वचनं कुरु ॥ १६ ॥
राजेन्द्र! दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण आप, दुर्योधन तथा पाण्डवोंमें संधि कराकर शान्ति स्थापित करना चाहते हैं। अतः उनके इस कथनका पालन कीजिये इसीसे वे संतुष्ट होंगे ॥ १६ ॥

पितासि राजन्पुत्रास्ते वृद्धस्त्वं शिशवः परे ।
वर्तस्व पितृवत्तेषु वर्तन्ते ते हि पुत्रवत् ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ २७६२ ॥

महाराज ! आप पिता हैं और पाण्डव आपके पुत्र हैं । आप वृद्ध हैं और वे शिशु हैं । आप उनके प्रति पिताके समान स्नेहपूर्ण बर्ताव कीजिये । वे आपके प्रति सदा ही पुत्रोंकी भांति श्रद्धा भक्ति रखते हैं ॥ १७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पिचासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८५ ॥ २७६२ ॥

: ८६ :

दुर्योधन उवाच

यदाह विदुरः कृष्णे सर्वं तत्सत्यमुच्यते ।
अनुरक्तो ह्यसंहार्यः पार्थान्प्रति जनार्दनः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोले– पिताजी ! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्णके सम्बन्धमें विदुर जो कुछ कहते हैं, वह सब कुछ ठीक है । जनार्दन श्रीकृष्णका कुन्तीके पुत्रोंके प्रति अटूट अनुराग है; अतः उन्हें उनकी ओरसे फोडा नहीं जा सकता ॥ १ ॥

यत्तु सत्कारसंयुक्तं देयं वसु जनार्दने ।
अनेकरूपं राजेन्द्र न तद्देयं कदाचन ॥ २ ॥

राजेन्द्र ! आप जो जनार्दनको सत्कारपूर्वक बहुतसा धनरत्न भेंट करना चाहते हैं, वह कदापि उन्हें न दें ॥ २ ॥

देशः कालस्तथायुक्तो न हि नार्हति केशवः ।
मंस्यत्यधोक्षजो राजन्भयादर्चति मामिति ॥ ३ ॥

मैं इसलिये नहीं कहता कि श्रीकृष्ण उन वस्तुओंके अधिकारी नहीं हैं; अपितु इस दृष्टिसे मना कर रहा हूं कि वर्तमान देशकाल इस योग्य नहीं है कि उनका विशेष सत्कार किया जाय । राजन् ! इस समय तो श्रीकृष्ण यही समझेंगे कि यह डरके मारे मेरी पूजा कर रहा है ॥ ३ ॥

अवमानश्च यत्र स्यात्क्षत्रियस्य विशां पते ।
न तत्कुर्याद्बुधः कार्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥ ४ ॥

प्रजानाथ ! जहां क्षत्रियका अपमान होता हो, वहां समझदार क्षत्रियको वैसा कार्य नहीं करना चाहिये । यह मेरा निश्चित विचार है ॥ ४ ॥

स हि पूज्यतमो देवः कृष्णः कमललोचनः ।
त्रयाणामपि लोकानां विदितं मम सर्वथा ॥ ५ ॥

कमलके समान नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण लोकोंमें सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण परम पूजनीय पुरुष हैं, यह बात मुझे सब प्रकारसे विदित है ॥ ५ ॥

न तु तस्मिन्प्रदेयं स्यात्तथा कार्यगतिः प्रभो ।
विग्रहः समुपारब्धो न हि शाम्यत्यविग्रहात् ॥ ६ ॥

प्रभो ! तथापि मेरा मत है कि इस समय उन्हें कुछ नहीं देना चाहिये; क्योंकि ऐसी ही कार्यप्रणाली प्राप्त है । जब कलह आरम्भ हो गया है, तब अतिथिसत्कारद्वारा प्रेम दिखाने-मात्रसे उसकी शान्ति नहीं हो सकती ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मः कुरुपितामहः ।
वैचित्रवीर्यं राजानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! दुर्योधनकी यह बात सुनकर कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्म विचित्रवीर्यकुमार राजा धृतराष्ट्रसे इस प्रकार बोले— ॥ ७ ॥

सत्कृतोऽसत्कृतो वापि न क्रुद्ध्येत जनार्दनः ।
नालमन्यमवज्ञातुमवज्ञातोऽपि केशवः ॥ ८ ॥

राजन् ! श्रीकृष्णका कोई सत्कार करे या न करे, इससे वे कुपित नहीं होंगे । उनकी अवहेलना होनेपर श्रीकृष्ण किसी दूसरेकी अवहेलना करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ८ ॥

यत्तु कार्यं महाबाहो मनसा कार्यतां गतम् ।
सर्वोपायैर्न तच्छक्यं केनचित्कर्तुमन्यथा ॥ ९ ॥

महाबाहो ! श्रीकृष्ण जिस कार्यको करनेकी बात अपने मनमें ठान लेते हैं, उसे कोई सारे उपाय करके भी उलट नहीं सकता ॥ ९ ॥

स यद्ब्रूयान्महाबाहुस्तत्कार्यमविशङ्कया ।
वासुदेवेन तीर्थेन क्षिप्रं संशाम्य पाण्डवैः ॥ १० ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको मध्यस्थ बनाकर तुम शीघ्र ही पाण्डवोंके साथ संधि कर लो । महाबाहु श्रीकृष्ण जो कुछ कहें, उसे निःशङ्क होकर करना चाहिये ॥ १० ॥

धर्म्यमर्थ्यं च धर्मात्मा ध्रुवं वक्ता जनार्दनः ।
तस्मिन्वाच्याः प्रिया वाचो भवता बान्धवैः सह ॥ ११ ॥

धर्मात्मा भगवान् श्रीकृष्ण जो कुछ कहेंगे, वह निश्चय ही धर्म और अर्थके अनुकूल होगा । अतः तुम्हें अपने बन्धुबान्धवोंके साथ उनसे प्रिय वचन ही बोलना चाहिये ॥ ११ ॥

दुर्योधन उवाच

न पर्यायोऽस्ति यद्राजञ्श्रियं निष्केवलामहम्।
तैः सहेमामुपाश्नीयां जीवञ्जीवैः पितामह ॥ १२ ॥

दुर्योधन बोला— पितामह! नरेश्वर! अब इस बातकी कोई सम्भावना नहीं है कि मैं जीवनभर पाण्डवोंके साथ मिलकर इस सारी सम्पत्तिका उपभोग करूँ ॥ १२ ॥

इदं तु सुमहत्कार्यं शृणु मे यत्समर्थितम्।
परायणं पाण्डवानां नियंस्यामि जनार्दनम् ॥ १३ ॥

इस समय मैंने जो यह महान् कार्य करनेका निश्चय किया है, उसे सुनिये। पाण्डवोंके सबसे बडे सहारे श्रीकृष्णको यहाँ आनेपर मैं कैद कर लूंगा ॥ १३ ॥

तस्मिन्बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा।
पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहेष्यति ॥ १४ ॥

उनके कैद हो जानेपर समस्त यदुवंशी, इस भूमण्डलका राज्य तथा पाण्डव भी मेरी आज्ञाके अधीन हो जायँगे। श्रीकृष्ण कल सबेरे यहाँ आ ही जायँगे ॥ १४ ॥

अत्रोपायं यथा सम्यङ्न बुद्ध्येत जनार्दनः।
न चापायो भवेत्कश्चित्तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ १५ ॥

अतः इस विषयमें जो अच्छे उपाय हों, जिनसे श्रीकृष्णको इन बातोंका पता न लगे और मेरे इस मन्तव्यमें कोई विघ्न न पड सके, उन्हें आप मुझे बताइये ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा घोरं कृष्णाभिसंहितम्।
धृतराष्ट्रः सहामात्यो व्यथितो विमनाभवत् ॥ १६ ॥

वैशम्पायन बोले— राजन्! श्रीकृष्णसे छल करनेके विषयमें दुर्योधनकी वह भयंकर बात सुनकर धृतराष्ट्र अपने मन्त्रियोंके साथ बहुत दुःखी और उदास हो गये ॥ १६ ॥

ततो दुर्योधनमिदं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्वचः।
मैवं वोचः प्रजापाल नैष धर्मः सनातनः ॥ १७ ॥

तदनन्तर धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे कहा— प्रजापालक दुर्योधन! तुम ऐसी बात मुँहसे न निकालो। यह सनातन धर्म नहीं है ॥ १७ ॥

दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः।
अपापः कौरवेयेषु कथं बन्धनमर्हति ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण इस समय दूत बनकर आ रहे हैं। वे हमारे प्रिय और सम्बन्धी भी हैं तथा उन्होंने कौरवोंका कोई अपराध भी नहीं किया है। ऐसी दशामें वे कैद करनेके योग्य कैसे हो सकते हैं? ॥ १८ ॥

भीष्म उवाच

परीतो धृतराष्ट्रायं तव पुत्रः सुमन्दधीः ।
वृणोत्यनर्थं नत्वर्थं याच्यमानः सुहृद्गणैः ॥ १९ ॥

भीष्म बोले— धृतराष्ट्र ! तुम्हारा यह मन्दबुद्धि पुत्र कालके वशमें हो गया है । यह अपने हितैषी सुहृदोंके कहने समझानेपर भी अनर्थको ही अपना रहा है; अर्थको नहीं ॥ १९ ॥

इममुत्पथि वर्तन्तं पापं पापानुबन्धिनम् ।
वाक्यानि सुहृदां हित्वा त्वमप्यस्यानुवर्तसे ॥ २० ॥

तुम भी सगेसम्बन्धियोंकी बातें न मानकर कुमार्गपर चलनेवाले इस पापासक्त पापात्माका ही अनुसरण करते हो ॥ २० ॥

कृष्णमक्लिष्टकर्माणमासाद्यायं सुदुर्मतिः ।
तव पुत्रः सहामात्यः क्षणेन न भविष्यति ॥ २१ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णसे भिडकर तुम्हारा यह दुर्बुद्धि पुत्र अपने मन्त्रियोंसहित क्षणभरमें नष्ट हो जायेगा ॥ २१ ॥

पापस्यास्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः ।
नोत्सहेऽनर्थसंयुक्तां वाचं श्रोतुं कथंचन ॥ २२ ॥

इसने धर्मका सर्वथा त्याग कर दिया है । अब मैं इस दुर्बुद्धि, पापी एवं क्रूर दुर्योधनकी अनर्थभरी बातें किसी प्रकार भी नहीं सुनना चाहता ॥ २२ ॥

वैशंपायन उवाच

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो वृद्धः परममन्युमान् ।
उत्थाय तस्मात्प्रातिष्ठद्भीष्मः सत्यपराक्रमः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ २७८५ ॥

वैशम्पायन बोले— ऐसा कहकर भरतश्रेष्ठ सत्यपराक्रमी वृद्ध पितामह भीष्म अत्यन्त कुपित हो उस सभाभवनसे उठकर चले गये ॥ २३ ॥

॥ महाभारतमें उद्योगपर्वके छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥ २७८५ ॥

८७

वैशम्पायन उवाच

प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान्सर्वमाह्निकम्।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रययौ नगरं प्रति ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले—जनमेजय ! उधर वृकस्थलमें प्रातःकाल उठकर भगवान् श्रीकृष्णने सारा नित्यकर्म पूर्ण किया। फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वे हस्तिनापुरकी ओर चले ॥ १ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुमनुज्ञाप्य ततो नृप।
पर्यवर्तन्त ते सर्वे वृकस्थलनिवासिनः ॥ २ ॥

इसके बाद, हे राजन् ! तब वहाँसे जाते हुए महाबाहु श्रीकृष्णकी आज्ञा ले सम्पूर्ण वृकस्थल-निवासी वहाँसे लौट गये ॥ २ ॥

धार्तराष्ट्रास्तमायान्तं प्रत्युज्जग्मुः स्वलंकृताः।
दुर्योधनमृते सर्वे भीष्मद्रोणकृपादयः ॥ ३ ॥

दुर्योधनके सिवा धृतराष्ट्रके सभी पुत्र तथा भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि यथायोग्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो हस्तिनापुरकी ओर आते हुए श्रीकृष्णकी आगवानीके लिये गये ॥ ३ ॥

पौराश्च बहुला राजन्हृषीकेशं दिदृक्षवः।
यानैर्बहुविधैरन्ये पद्भिरेव तथापरे ॥ ४ ॥

राजन् ! श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये बहुतसे नागरिक भी नाना प्रकारकी सवारियोंपर बैठकर तथा अन्य कुछ लोग पैदल ही चलकर गये ॥ ४ ॥

स वै पथि समागम्य भीष्मेणाक्लिष्टकर्मणा।
द्रोणेन धार्तराष्ट्रैश्च तैर्वृतो नगरं ययौ ॥ ५ ॥

अनायास ही महान् पराक्रम कर दिखानेवाले भीष्म तथा द्रोणाचार्यसे मार्गमें ही मिलकर धृतराष्ट्रपुत्रोंसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥

कृष्णसम्माननार्थं च नगरं समलंकृतम्।
बभूवू राजमार्गाश्च बहुरत्नसमाचिताः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णके स्वागत सत्कारके लिये हस्तिनापुरको खूब सजाया गया था। वहाँका राजमार्ग भी अनेक प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित किया गया था ॥ ६ ॥

न स्म कश्चिद्‌गृहे राजंस्तदासीद्भरतर्षभ ।
न स्त्री न वृद्धो न शिशुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय भगवान् वासुदेवके दर्शनकी तीव्र इच्छाके कारण स्त्री, बालक अथवा वृद्ध कोई भी घरमें नहीं ठहर सका ॥ ७ ॥

राजमार्गे नरा न स्म संभवन्त्यवनिं गताः ।
तथा हि सुमहद्राजन्हृषीकेशप्रवेशने ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णके प्रवेशन करनेके समय राजमार्गपर बडी भीड हो गई थी। घरपर कोई नहीं था। सब बाहर आ गए थे ॥ ८ ॥

आवृतानि वरस्त्रीभिर्गृहाणि सुमहान्त्यपि ।
प्रचलन्तीव भारेण दृश्यन्ते स्म महीतले ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णको देखनेके लिये एकत्रित हुई सुन्दरी स्त्रियोंसे भरे हुए बडे बडे महल भी उनके भारसे इस भूतलपर विचलित होतेसे दिखायी देते थे ॥ ९ ॥

तथा च गतिमन्तस्ते वासुदेवस्य वाजिनः ।
प्रनष्टगतयोऽभूवन्राजमार्गे नरैर्वृते ॥ १० ॥

वहांकी प्रधान सडक लोगोंसे ऐसी खचाखच भर गयी थी कि श्रीकृष्णके वेगपूर्वक चलनेवाले घोडोंकी गति भी अवरुद्ध हो गयी ॥ १० ॥

स गृहं धृतराष्ट्रस्य प्राविशच्छत्रुकर्शनः ।
पाण्डुरं पुण्डरीकाक्षः प्रासादैरुपशोभितम् ॥ ११ ॥

शत्रुओंको क्षीण करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्रके अट्टलिकाओंसे सुशोभित उज्ज्वल भवनमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥

तिस्रः कक्ष्या व्यतिक्रम्य केशवो राजवेश्मनः ।
वैचित्रवीर्यं राजानमभ्यगच्छदरिंदमः ॥ १२ ॥

उस राजभवनकी तीन ड्यौढियोंको पार करके शत्रुसूदन केशव विचित्रवीर्यकुमार राजा धृतराष्ट्रके समीप गये ॥ १२ ॥

अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः ।
सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णके आते ही महायशस्वी प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र द्रोणाचार्य तथा भीष्मके साथ ही अपने आसनसे उठकर खडे हो गये ॥ १३ ॥

कृपश्च सोमदत्तश्च महाराजश्च बाह्लिकः ।
आसनेभ्योऽचलन्सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ १४ ॥

कृपाचार्य, सोमदत्त तथा महाराज बाह्लिक ये सब लोग जनार्दनका सम्मान करते हुए अपने आसनोंसे उठ गये ॥ १४ ॥

ततो राजानमासाद्य धृतराष्ट्रं यशस्विनम् ।
स भीष्मं पूजयामास वार्ष्णेयो वाग्भिरञ्जसा ॥ १५ ॥

तब वृष्णिनन्दन श्रीकृष्णने यशस्वी राजा धृतराष्ट्रसे मिलकर अपने उत्तम वचनोंद्वारा भीष्मका आदर किया ॥ १५ ॥

तेषु धर्मानुपूर्वीं तां प्रयुज्य मधुसूदनः ।
यथावयः समीयाय राजभिस्तत्र माधवः ॥ १६ ॥

यदुकुलतिलक मधुसूदन उन सबकी धर्मानुकूल पूजा करके अवस्थाक्रमके अनुसार वहां आये हुए समस्त राजाओंसे मिले ॥ १६ ॥

अथ द्रोणं सपुत्रं स बाह्लीकं च यशस्विनम् ।
कृपं च सोमदत्तं च समीयाय जनार्दनः ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् जनार्दन पुत्रसहित यशस्वी द्रोणाचार्य, बाह्लीक, कृपाचार्य तथा सोमदत्तसे मिले ॥ १७ ॥

तत्रासीदूर्जितं मृष्टं काञ्चनं महदासनम् ।
शासनाद्धृतराष्ट्रस्य तत्रोपाविशदच्युतः ॥ १८ ॥

वहां एक स्वच्छ और जगमगाता हुआ सुवर्णका विशाल सिंहासन रक्खा हुआ था । धृतराष्ट्रकी आज्ञासे भगवान् श्रीकृष्ण उसीपर विराजमान हुए ॥ १८ ॥

अथ गां मधुपर्कं चाप्युदकं च जनार्दने ।
उपजह्रुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रपुरोहिताः ॥ १९ ॥

तदनन्तर धृतराष्ट्रके पुरोहितलोग भगवान् जनार्दनके आतिथ्यसत्कारके लिये उत्तम गौ, मधुपर्क तथा जल ले आये ॥ १९ ॥

कृतातिथ्यस्तु गोविन्दः सर्वान्परिहसन्कुरून् ।
आस्ते सम्बन्धकं कुर्वन्कुरुभिः परिवारितः ॥ २० ॥

उनका आतिथ्य ग्रहण करके भगवान् गोविन्द हंसते हुए कौरवोंके साथ बैठ गये और सबसे अपने सम्बन्धके अनुसार यथायोग्य व्यवहार करते हुए कौरवोंसे घिरे हुए कुछ देर बैठे रहे ॥ २० ॥

×

सोऽर्चितो धृतराष्ट्रेण पूजितश्च महायशाः ।
राजानं समनुज्ञाप्य निराक्रामदरिंदमः ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्रसे पूजित एवं सम्मानित हो महायशस्वी शत्रुदमन श्रीकृष्ण उनकी अनुज्ञा ले उस राजभवनसे बाहर निकले ॥ २१ ॥

तैः समेत्य यथान्यायं कुरुभिः कुरुसंसदि ।
विदुरावसथं रम्यमुपातिष्ठत माधवः ॥ २२ ॥

फिर कौरव सभामें यथायोग्य सबसे मिलजुलकर यदुवंशी श्रीकृष्णने विदुरके रमणीय गृहमें पदार्पण किया ॥ २२ ॥

विदुरः सर्वकल्याणैरभिगम्य जनार्दनम् ।
अर्चयामास दाशार्हं सर्वकामैरुपस्थितम् ॥ २३ ॥

विदुरने अपने घर पधारे हुए दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके निकट जाकर समस्त मनोवाञ्छित भोगों तथा सम्पूर्ण माङ्गलिक वस्तुओंद्वारा उनका पूजन किया ॥ २३ ॥

कृतातिथ्यं तु गोविन्दं विदुरः सर्वधर्मवित् ।
कुशलं पाण्डुपुत्राणामपृच्छन्मधुसूदनम् ॥ २४ ॥

मधुसूदन श्रीकृष्ण जब उनका आतिथ्य ग्रहण कर चुके, तब सब धर्मोंके ज्ञाता विदुरने उनसे पाण्डवोंका कुशल समाचार पूछा ॥ २४ ॥

प्रीयमाणस्य सुहृदो विदुषो बुद्धिसत्तमः ।
धर्मनित्यस्य च तदा गतदोषस्य धीमतः ॥ २५ ॥

बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने प्रीति करनेवाले, मित्रवत् हितकारी, विद्वान्, सदा धर्मका व्यवहार करनेवाले तथा दोषसे हीन और बुद्धिमान् ॥ २५ ॥

तस्य सर्वं सविस्तारं पाण्डवानां विचेष्टितम् ।
क्षत्तुराचष्ट दाशार्हः सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ २८११ ॥

सुहृद् विदुरसे सभी बातोंको प्रत्यक्ष रूपसे देखनेवाले कृष्णने पाण्डवोंकी सारी चेष्टाएं विस्तारपूर्वक कह सुनायीं ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सतासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥ २८११ ॥

: ८८ :

वैशम्पायन उवाच

अथोपगम्य विदुरमपराह्णे जनार्दनः।
पितृष्वसारं गोविन्दः सोऽभ्यगच्छदरिंदमः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– राजन्! शत्रुदमन श्रीकृष्ण विदुरसे मिलनेके पश्चात् तीसरे पहरमें अपनी बुआ कुन्तीदेवीके पास गये ॥ १ ॥

सा दृष्ट्वा कृष्णमायान्तं प्रसन्नादित्यवर्चसम्।
कण्ठे गृहीत्वा प्राक्रोशत्पृथा पार्थाननुस्मरन् ॥ २ ॥

निर्मल सूर्यके समान तेजस्वी श्रीकृष्णको आते देख कुन्तीदेवी उनके गले लग गयीं और अपने पुत्रोंको याद करके फूट फूटकर रोने लगीं ॥ २ ॥

तेषां सत्त्ववतां मध्ये गोविन्दं सहचारिणम्।
चिरस्य दृष्ट्वा वार्ष्णेयं बाष्पमाहारयत्पृथा ॥ ३ ॥

अपने उन शक्तिशाली पुत्रोंके बीचमें रहकर उनके साथ विचरनेवाले वृष्णिकुलनन्दन गोविन्दको दीर्घकालके पश्चात् देखकर कुन्तीदेवी आंसुओंकी वर्षा करने लगीं ॥ ३ ॥

साब्रवीत्कृष्णमासीनं कृतातिथ्यं युधां पतिम्।
बाष्पगद्गदपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता ॥ ४ ॥

उन्होंने योद्धाओंके स्वामी श्रीकृष्णका अतिथि सत्कार किया। जब वे आतिथ्य ग्रहण करके आसनपर विराजमान हुए, तब सूखे मुँह और अश्रुगद्गद कण्ठसे कुन्तीदेवी इस प्रकार बोली ॥ ४ ॥

ये ते बाल्यात्प्रभृत्येव गुरुशुश्रूषणे रताः।
परस्परस्य सुहृदः संमताः समचेतसः ॥ ५ ॥

वत्स! मेरे पाण्डव, जो बाल्यकालसे ही गुरुजनोंकी सेवा शुश्रूषामें तत्पर रहते, परस्पर स्नेह रखते, सर्वत्र सम्मान पाते और मनमें सबके प्रति समानभाव रखते थे, शत्रुओंकी शठताके शिकार होकर राज्यसे हाथ धो बैठे और जनसमुदायमें रहनेयोग्य होकर भी निर्जन वनमें चले गये ॥ ५ ॥

निकृत्या भ्रंशिता राज्याज्जनार्हा निर्जनं गताः।
विनीतक्रोधहर्षाश्च ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ ६ ॥

मेरे बेटे हर्ष और क्रोधको जीत चुके थे। वे ब्राह्मणोंका हित साधन करनेवाले तथा सत्यवादी थे ॥ ६ ॥

त्यक्त्वा प्रियसुखे पार्था रुदन्तीमपहाय माम्।
अहार्षुश्च वनं यान्तः समूलं हृदयं मम ॥ ७ ॥

तथापि शत्रुओंके अन्यायसे विवश हो प्रियजन एवं सुखभोगसे मुंह मोड मुझे रोती विलखती छोडकर वे वनकी ओर चल दिये। केशव! वन जाते समय महात्मा पाण्डव मेरे हृदयको जडमूलसहित खींचकर अपने साथ ले गये ॥ ७ ॥

अतदर्हा महात्मानः कथं केशव पाण्डवाः।
ऊषुर्महावने तात सिंहव्याघ्रगजाकुले ॥ ८ ॥

वे वनवासके योग्य कदापि नहीं थे। फिर उन्हें यह कष्ट कैसे प्राप्त हुआ? मेरे पुत्र सिंह, व्याघ्र और हाथियोंसे भरे हुए उस वनमें कैसे रहे होंगे? ॥ ८ ॥

बाला विहीनाः पित्रा ते मया सततलालिताः।
अपश्यन्तः स्वपितरौ कथमूषुर्महावने ॥ ९ ॥

तात! वे बचपनमें ही पिताके प्यारसे वञ्चित हो गये थे। मैंने ही सदा उनका लालन-पालन किया। मातापिताको न देखते हुए उन्होंने उस महान् वनमें किस प्रकार निवास किया होगा? ॥ ९ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्मृदङ्गैर्वैणवैरपि।
पाण्डवाः समबोध्यन्त बाल्यात्प्रभृति केशव ॥ १० ॥

केशव! बाल्यावस्थासे ही पाण्डव शङ्ख और दुन्दुभियोंकी गम्भीर ध्वनिसे, मृदङ्गोंके मधुर नादसे तथा बांसुरीकी सुरीली तानसे जगाये जाते थे ॥ १० ॥

ये स्म वारणशब्देन हयानां हेषितेन च।
रथनेमिनिनादैश्च व्यबोध्यन्त सदा गृहे ॥ ११ ॥

उन दिनों हाथियोंके चिग्घाडने, घोडोंके हिनहिनाने तथा रथके पहियोंके घर्घरानेसे उनकी निद्रा टूटती थी ॥ ११ ॥

शङ्खभेरीनिनादेन वेणुवीणानुनादिना।
पुण्याहघोषमिश्रेण पूज्यमाना द्विजातिभिः ॥ १२ ॥

शङ्ख और भेरीकी तुमुल ध्वनि तथा वेणु और वीणाके मधुर स्वरसे और ब्राह्मणलोग पुण्याहवाचनके पवित्र घोषसे वे जगाए जाते थे ॥ १२ ॥

वस्त्रै रत्नैरलंकारैः पूजयन्तो द्विजन्मनः।
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिर्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥ १३ ॥

वे महात्मा ब्राह्मणोंके मङ्गलमय आशीर्वाद सुनकर उठते थे। एवं उठकर वे रत्नों, वस्त्रों एवं अलंकारोंके द्वारा ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥

अर्चितैरर्चनार्हैश्च स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ।
प्रासादाग्रेष्वबोध्यन्त राङ्क्वाजिनशायिनः ॥ १४ ॥

रंकु नामक चर्मपर सोनेवाले वे अपने महलोंमें पूज्योंके द्वारा पूजित होकर तथा भाट आदिकोंसे प्रशंसित होकर उठते थे ॥ १४ ॥

ते नूनं निनदं श्रुत्वा श्वापदानां महावने ।
न स्मोपयान्ति निद्रां वै अतदर्हा जनार्दन ॥ १५ ॥

जनार्दन ! वे ही पाण्डव उस विशाल वनमें हिंसक जन्तुओंके क्रूरतापूर्ण शब्द सुनकर अच्छी तरह नींद भी नहीं ले पाते रहे होंगे, यद्यपि इस दुरवस्थाके योग्य वे कभी नहीं थे ॥ १५ ॥

भेरीमृदङ्गनिनदैः शङ्खवैणवनिस्वनैः ।
स्त्रीणां गीतनिनादैश्च मधुरैर्मधुसूदन ॥ १६ ॥

मधुसूदन ! जो भेरी एवं मृदङ्गके नादसे, शङ्ख एवं वेणुकी ध्वनिसे तथा स्त्रियोंके गीतोंके मधुर शब्द ॥ १६ ॥

बन्दिमागधसूतैश्च स्तुवद्भिर्बोधिताः कथम् ।
महावने व्यबोध्यन्त श्वापदानां रुतेन ते ॥ १७ ॥

तथा सूत, मागध एवं बन्दीजनोंद्वारा की हुई स्तुति सुनकर जागते थे, वे ही बडे बडे जंगलोंमें हिंसक जन्तुओंके कठोर शब्द सुनकर किस प्रकार नींद तोडते रहे होंगे ? ॥ १७ ॥

ह्रीमान्सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामनुकम्पिता ।
कामद्वेषौ वशे कृत्वा सतां वर्त्मानुवर्तते ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण ! जो लज्जाशील, सत्यको धारण करनेवाले, जितेन्द्रिय तथा सब प्राणियोंपर दया करनेवाले हैं; जो काम, राग एवं द्वेषको वशमें करके सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करते हैं ॥ १८ ॥

अम्बरीषस्य मान्धातुर्ययातेर्नहुषस्य च ।
भरतस्य दिलीपस्य शिबेरौशीनरस्य च ॥ १९ ॥

जो अम्बरीष, मान्धाता, ययाति, नहुष, भरत, दिलीप एवं उशीनरपुत्र शिबि ॥ १९ ॥

राजर्षीणां पुराणानां धुरं धत्ते दुरुद्वहाम् ।
शीलवृत्तोपसम्पन्नो धर्मज्ञः सत्यसंगरः ॥ २० ॥

आदि प्राचीन राजर्षियोंके सदाचारपालनरूप, धारण करनेमें कठिन धर्मकी धुरीको धारण करते हैं; जिनमें शील और सदाचारकी सम्पत्ति भरी हुई है, जो धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ ॥ २० ॥

त्यक्त्वा प्रियसुखे पार्था रुदन्तीमपहाय माम् ।
अहार्षुश्च वनं यान्तः समूलं हृदयं मम ॥ ७ ॥

तथापि शत्रुओंके अन्यायसे विवश हो प्रियजन एवं सुखभोगसे मुंह मोड मुझे रोती बिलखती छोडकर वे वनकी ओर चल दिये । केशव ! वन जाते समय महात्मा पाण्डव मेरे हृदयको जडमूलसहित खींचकर अपने साथ ले गये ॥ ७ ॥

अतदर्हा महात्मानः कथं केशव पाण्डवाः ।
ऊषुर्महावने तात सिंहव्याघ्रगजाकुले ॥ ८ ॥

वे वनवासके योग्य कदापि नहीं थे । फिर उन्हें यह कष्ट कैसे प्राप्त हुआ ? मेरे पुत्र सिंह, व्याघ्र और हाथियोंसे भरे हुए उस वनमें कैसे रहे होंगे ? ॥ ८ ॥

बाला विहीनाः पित्रा ते मया सततलालिताः ।
अपश्यन्तः स्वपितरौ कथमूषुर्महावने ॥ ९ ॥

तात ! वे बचपनमें ही पिताके प्यारसे वञ्चित हो गये थे । मैंने ही सदा उनका लालन-पालन किया । मातापिताको न देखते हुए उन्होंने उस महान् वनमें किस प्रकार निवास किया होगा ? ॥ ९ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्मृदङ्गैर्वैणवैरपि ।
पाण्डवाः समबोध्यन्त बाल्यात्प्रभृति केशव ॥ १० ॥

केशव ! बाल्यावस्थासे ही पाण्डव शङ्ख और दुन्दुभियोंकी गम्भीर ध्वनिसे, मृदङ्गोंके मधुर नादसे तथा बांसुरीकी सुरीली तानसे जगाये जाते थे ॥ १० ॥

ये स्म वारणशब्देन हयानां हेषितेन च ।
रथनेमिनिनादैश्च व्यबोध्यन्त सदा गृहे ॥ ११ ॥

उन दिनों हाथियोंके चिग्घाडने, घोडोंके हिनहिनाने तथा रथके पहियोंके घर्घरानेसे उनकी निद्रा टूटती थी ॥ ११ ॥

शङ्खभेरीनिनादेन वेणुवीणानुनादिना ।
पुण्याहघोषमिश्रेण पूज्यमाना द्विजातिभिः ॥ १२ ॥

शङ्ख और भेरीकी तुमुल ध्वनि तथा वेणु और वीणाके मधुर स्वरसे और ब्राह्मणलोग पुण्याहवाचनके पवित्र घोषसे वे जगाए जाते थे ॥ १२ ॥

वस्त्रै रत्नैरलंकारैः पूजयन्तो द्विजन्मनः ।
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिर्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥ १३ ॥

वे महात्मा ब्राह्मणोंके मङ्गलमय आशीर्वाद सुनकर उठते थे । एवं उठकर वे रत्नों, वस्त्रों एवं अलंकारोंके द्वारा ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥

अर्चितैरर्चनार्हैश्च स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ।
प्रासादाग्रेष्वबोध्यन्त राङ्कवाजिनशायिनः ॥ १४ ॥

रंकु नामक चर्मपर सोनेवाले वे अपने महलोंमें पूज्योंके द्वारा पूजित होकर तथा भाट आदिकोंसे प्रशंसित होकर उठते थे ॥ १४ ॥

ते नूनं निनदं श्रुत्वा श्वापदानां महावने ।
न स्मोपयान्ति निद्रां वै अतदर्हा जनार्दन ॥ १५ ॥

जनार्दन ! वे ही पाण्डव उस विशाल वनमें हिंसक जन्तुओंके क्रूरतापूर्ण शब्द सुनकर अच्छी तरह नींद भी नहीं ले पाते रहे होंगे, यद्यपि इस दुरवस्थाके योग्य वे कभी नहीं थे ॥ १५ ॥

भेरीमृदङ्गनिनदैः शङ्खवैणवनिस्वनैः ।
स्त्रीणां गीतनिनादैश्च मधुरैर्मधुसूदन ॥ १६ ॥

मधुसूदन ! जो भेरी एवं मृदङ्गके नादसे, शङ्ख एवं वेणुकी ध्वनिसे तथा स्त्रियोंके गीतोंके मधुर शब्द ॥ १६ ॥

बन्दिमागधसूतैश्च स्तुवद्भिर्बोधिताः कथम् ।
महावने व्यबोध्यन्त श्वापदानां रुतेन ते ॥ १७ ॥

तथा सूत, मागध एवं बन्दीजनोंद्वारा की हुई स्तुति सुनकर जागते थे, वे ही बडे बडे जंगलोंमें हिंसक जन्तुओंके कठोर शब्द सुनकर किस प्रकार नींद तोडते रहे होंगे? ॥ १७ ॥

ह्रीमान्सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामनुकम्पिता ।
कामद्वेषौ वशे कृत्वा सतां वर्त्मानुवर्तते ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण ! जो लज्जाशील, सत्यको धारण करनेवाले, जितेन्द्रिय तथा सब प्राणियोंपर दया करनेवाले हैं; जो काम, राग एवं द्वेषको वशमें करके सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करते हैं ॥ १८ ॥

अम्बरीषस्य मान्धातुर्ययातेर्नहुषस्य च ।
भरतस्य दिलीपस्य शिबेरौशीनरस्य च ॥ १९ ॥

जो अम्बरीष, मान्धाता, ययाति, नहुष, भरत, दिलीप एवं उशीनरपुत्र शिबि ॥ १९ ॥

राजर्षीणां पुराणानां धुरं धत्ते दुरुद्वहाम् ।
शीलवृत्तोपसम्पन्नो धर्मज्ञः सत्यसंगरः ॥ २० ॥

आदि प्राचीन राजर्षियोंके सदाचारपालनरूप, धारण करनेमें कठिन धर्मकी धुरीको धारण करते हैं; जिनमें शील और सदाचारकी सम्पत्ति भरी हुई है, जो धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ ॥ २० ॥

राजा सर्वगुणोपेतस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत्।
अजातशत्रुर्धर्मात्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ॥ २१ ॥

और सर्वगुणसम्पन्न होनेके कारण इस भूमण्डलके ही नहीं, तीनों लोकोंके भी राजा हो सकते हैं; जिनका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता है, जिनका कोई शत्रु नहीं है, जो शुद्ध सोनेकेसे तेजवाले हैं ॥ २१ ॥

श्रेष्ठः कुरुषु सर्वेषु धर्मतः श्रुतवृत्ततः।
प्रियदर्शनो दीर्घभुजः कथं कृष्ण युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥

जो धर्मशास्त्रज्ञान और सदाचार सभी दृष्टियोंसे समस्त कौरवोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं; जो देखनेमें सभीको प्रिय लगते हैं; वे महाबाहु युधिष्ठिर इस समय कैसे हैं ? ॥ २२ ॥

यः स नागायुतप्राणो वातरंहा वृकोदरः।
अमर्षी पाण्डवो नित्यं प्रियो भ्रातुः प्रियंकरः ॥ २३ ॥

मधुसूदन ! जो पाण्डुनन्दन भीम दस हजार हाथियोंके समान शक्तिशाली है, जिसका वेग वायुके समान है, जो असहिष्णु होते हुए भी अपने भाईको सदा ही प्रिय है और भाईयोंका प्रिय करनेमें ही लगा रहता है ॥ २३ ॥

कीचकस्य च सज्ञातेर्यो हन्ता मधुसूदन।
शूरः क्रोधवशानां च हिडिम्बस्य बकस्य च ॥ २४ ॥

जिसने भाई-बन्धुओंसहित कीचकका विनाश किया है, जिस शूरवीरके हाथसे क्रोधवश नामक राक्षसोंका, हिडिम्बासुर तथा बकका भी संहार हुआ ॥ २४ ॥

पराक्रमे शक्रसमो वायुवेगसमो जवे।
महेश्वरसमः क्रोधे भीमः प्रहरतां वरः ॥ २५ ॥

जो पराक्रममें इन्द्र, बलमें वायुदेव तथा क्रोधमें महेश्वरके समान है, जो प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें सर्वश्रेष्ठ एवं भयंकर है ॥ २५ ॥

क्रोधं बलममर्षं च यो निधाय परंतपः।
जितात्मा पाण्डवोऽमर्षी भ्रातुस्तिष्ठति शासने ॥ २६ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाला जो पाण्डुपुत्र भीम अपने भीतर क्रोध, बल और अमर्षको रखते हुए भी मनको काबूमें रखकर सदा भाईकी आज्ञाके अधीन रहता है, जो स्वभावतः अमर्षशील है ॥ २६ ॥

तेजोराशिं महात्मानं बलौघममितौजसम् ।
भीमं प्रदर्शनेनापि भीमसेनं जनार्दन ।
तं ममाचक्ष्व वार्ष्णेय कथमद्य वृकोदरः ॥ २७ ॥

जिसमें तेजकी राशि संचित है, जो महात्मा, बली, अमिततेजस्वी तथा देखनेमें भी भयंकर है, वृष्णिनन्दन जनार्दन ! उस मेरे द्वितीय पुत्र भीमसेनका समाचार बताओ कि आजकल वह कैसे रहता है ? ॥ २७ ॥

आस्ते परिघबाहुः स मध्यमः पाण्डवोऽच्युत ।
अर्जुनेनार्जुनो यः स कृष्ण बाहुसहस्रिणा ।
द्विबाहुः स्पर्धते नित्यमतीतेनापि केशव ॥ २८ ॥

इस समय परिघके समान सुदृढ भुजाओंवाला मेरा मँझला पुत्र पाण्डुकुमार भीमसेन कैसा है ? श्रीकृष्ण ! जो अर्जुन दो भुजाओंसे युक्त होकर भी सदा प्राचीनकालके सहस्र भुजाधारी कार्तवीर्य अर्जुनके साथ स्पर्धा रखता है ॥ २८ ॥

क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्च बाणशतानि यः ।
इष्वस्त्रे सदृशो राज्ञः कार्तवीर्यस्य पाण्डवः ॥ २९ ॥

केशव ! जो एक ही वेगसे पाँच सौ बाण चलाता है, जो पाण्डव अर्जुन धनुर्विद्यामें राजा कार्तवीर्यके समान ही समझा जाता है ॥ २९ ॥

तेजसादित्यसदृशो महर्षिप्रतिमो दमे ।
क्षमया पृथिवीतुल्यो महेन्द्रसमविक्रमः ॥ ३० ॥

जिसका तेज सूर्यके समान है, इन्द्रियसंयममें महर्षियोंके, क्षमामें पृथ्वीके और पराक्रममें देवराज इन्द्रके समान है ॥ ३० ॥

आधिराज्यं महद्दीप्तं प्रथितं मधुसूदन ।
आहृतं येन वीर्येण कुरूणां सर्वराजसु ॥ ३१ ॥

मधुसूदन ! कौरवोंका यह विशाल साम्राज्य, जो सम्पूर्ण राजाओंमें प्रख्यात एवं प्रकाशित हो रहा है, जिसे अर्जुनने ही अपने पराक्रमसे बढाया है ॥ ३१ ॥

यस्य बाहुबलं घोरं कौरवाः पर्युपासते ।
स सर्वरथिनां श्रेष्ठः पाण्डवः सत्यविक्रमः ॥ ३२ ॥

समस्त कौरव जिसके भयंकर बाहुबलका भरोसा रखते हैं। जो सम्पूर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ तथा सत्यपराक्रमी है ॥ ३२ ॥

योऽपाश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः ।
स ते भ्राता सखा चैव कथमद्य धनंजयः ॥ ३३ ॥

जैसे देवताओंके आश्रय इन्द्र हैं, उसी प्रकार जो समस्त पाण्डवोंका अवलम्ब है, वह तुम्हारा भाई और मित्र अर्जुन इस समय कैसा है ? ॥ ३३ ॥

दयावान्सर्वभूतेषु ह्रीनिषेधो महास्त्रवित् ।
मृदुश्च सुकुमारश्च धार्मिकश्च प्रियश्च मे ॥ ३४ ॥

मधुसूदन श्रीकृष्ण ! जो समस्त प्राणियोंके प्रति दयालु लज्जाशील, महान् अस्त्रवेत्ता, कोमल, सुकुमार, धार्मिक तथा मुझे विशेष प्रिय है ॥ ३४ ॥

सहदेवो महेष्वासः शूरः समितिशोभनः ।
भ्रातॄणां कृष्ण शुश्रूषुर्धर्मार्थकुशलो युवा ॥ ३५ ॥

जो महाधनुर्धर शूरवीर सहदेव रणभूमिमें शोभा पानेवाला, सभी भाईयोंका सेवक, धर्म और अर्थके विवेचनमें कुशल तथा युवावस्थासे युक्त है ॥ ३५ ॥

सदैव सहदेवस्य भ्रातरो मधुसूदन ।
वृत्तं कल्याणवृत्तस्य पूजयन्ति महात्मनः ॥ ३६ ॥

कल्याणकारी आचारवाले जिस महात्मा सहदेवके आचार-व्यवहारकी सभी भाई प्रशंसा करते हैं ॥ ३६ ॥

ज्येष्ठापचायिनं वीरं सहदेवं युधां पतिम् ।
शुश्रूषुं मम वार्ष्णेय माद्रीपुत्रं प्रचक्ष्व मे ॥ ३७ ॥

जो बडे भाईके प्रति अनुरक्त, योधाओंका नेता और मेरी सेवामें तत्पर रहनेवाला है; उस माद्रीकुमार वीर सहदेवका समाचार मुझे बताओ ॥ ३७ ॥

सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
भ्रातॄणां कृष्ण सर्वेषां प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्ण ! जो सुकुमार, युवक, शौर्यसम्पन्न तथा दर्शनीय है, जो सभी भाईयोंके लिए बाहर विचरनेवाला प्रिय प्राणस्वरूप है ॥ ३८ ॥

चित्रयोधी च नकुलो महेष्वासो महाबलः ।
कच्चित्स कुशली कृष्ण वत्सो मम सुखैधितः ॥ ३९ ॥

जिसमें युद्धकी विचित्र कला शोभा पाती है, वह महान् धनुर्धर, महाबली एवं मुझसे पला हुआ मेरा पुत्र पाण्डुनन्दन नकुल सकुशल तो है न ? ॥ ३९ ॥

सुखोचितमदुःखार्हं सुकुमारं महारथम् ।
अपि जातु महाबाहो पश्येयं नकुलं पुनः ॥ ४० ॥

महाबाहो ! क्या मैं सुख भोगके योग्य, दुःख भोगनेके अयोग्य एवं सुकुमार महारथी नकुलको फिर कभी देख सकूंगी ? ॥ ४० ॥

पक्ष्मसम्पातजे काले नकुलेन विनाकृता ।
न लभामि सुखं वीर साद्य जीवामि पश्य माम् ॥ ४१ ॥

वीर ! आँखोंकी पलकें गिरनेमें जितना समय लगता है, उतनी देर भी नकुलसे अलग रहनेपर मैं धैर्य खो बैठती थी, परंतु अब इतने दिनोंसे उसे न देखकर भी जी रही हूँ । देखो, मैं कितनी निर्मम हूं ॥ ४१ ॥

सर्वैः पुत्रैः प्रियतमा द्रौपदी मे जनार्दन ।
कुलीना शीलसम्पन्ना सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ ४२ ॥

जनार्दन ! द्रुपदकुमारी कृष्णा मुझे अपने सभी पुत्रोंसे अधिक प्रिय है। वह कुलीन, शीलसे युक्त तथा समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न है ॥ ४२ ॥

पुत्रलोकात्पतिलोकान्वृण्वाना सत्यवादिनी ।
प्रियान्पुत्रान्परित्यज्य पाण्डवानन्वपद्यत ॥ ४३ ॥

पुत्रलोकसे पतिलोकको श्रेष्ठ समझकर उसका वरण करनेवाली सत्यवादिनी द्रौपदी अपने प्यारे पुत्रोंको भी त्यागकर पाण्डवोंका अनुसरण करती है ॥ ४३ ॥

महाभिजनसम्पन्ना सर्वकामैः सुपूजिता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी द्रौपदी कथमच्युत ॥ ४४ ॥

अच्युत ! मैंने सब प्रकारकी वस्तुएं देकर जिसका समादर किया है, वह परम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई सर्वकल्याणी महारानी द्रौपदी इन दिनों कैसी दशामें है ? ॥ ४४ ॥

पतिभिः पञ्चभिः शूरैरग्निकल्पैः प्रहारिभिः ।
उपपन्ना महेष्वासैर्द्रौपदी दुःखभागिनी ॥ ४५ ॥

हाय ! जो महाधनुर्धर, शूरवीर, युद्धकुशल तथा अग्नितुल्य तेजस्वी पांच पतियोंसे युक्त है, वह द्रुपदकुमारी कृष्णा भी दुःखभागिनी हो गयी ॥ ४५ ॥

चतुर्दशमिमं वर्षं यन्नापश्यमरिंदम ।
पुत्राधिभिः परिद्यूनां द्रौपदीं सत्यवादिनीम् ॥ ४६ ॥

शत्रुदमन ! यह चौदहवाँ वर्ष बीत रहा है। इतने दिनोंसे मैंने पुत्रोंके बिछोहसे संतप्त हुई सत्यवादिनी द्रौपदीको नहीं देखा है ॥ ४६ ॥

न नूनं कर्मभिः पुण्यैरश्नुते पुरुषः सुखम् ।
द्रौपदी चेत्तथावृत्ता नाश्नुते सुखमव्ययम् ॥ ४७ ॥

इस प्रकार सदाचार और सत्कर्मोंसे युक्त होने पर भी यदि द्रुपदकुमारी अक्षय सुख नहीं पा रही है, तब तो निश्चय ही यह कहना पडेगा कि मनुष्य पुण्यकर्मोंसे सुख नहीं पाता ॥ ४७ ॥

न प्रियो मम कृष्णाया बीभत्सुर्न युधिष्ठिरः ।
भीमसेनो यमौ वापि यदपश्यं सभागताम् ॥ ४८ ॥

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी मुझे द्रौपदीसे अधिक प्रिय नहीं हैं। उसी द्रौपदीको जब मैंने भरी सभामें लायी गयी देखा, ॥ ४८ ॥

न मे दुःखतरं किंचिद्भूतपूर्वं ततोऽधिकम् ।
यद्द्रौपदीं निवातस्थां श्वशुराणां समीपगाम् ॥ ४९ ॥

उससे बढकर महान् दुःख मुझे पहले कभी नहीं हुआ था। जब रजस्वला होनेके कारण एकान्तमें रहनेवाली द्रौपदीको ससुरोंके पास लाकर ॥ ४९ ॥

आनायितामनार्येण क्रोधलोभानुवर्तिना ।
सर्वे प्रैक्षन्त कुरव एकवस्त्रां सभागताम् ॥ ५० ॥

क्रोध और लोभके वशीभूत हुए दुष्ट दुर्योधनने खडी कर दिया। उस समय सभी कौरवोंने द्रौपदीको एक ही वस्त्रमें सभामें आई हुई देखा था ॥ ५० ॥

तत्रैव धृतराष्ट्रश्च महाराजश्च बाह्लिकः ।
कृपश्च सोमदत्तश्च निर्विण्णाः कुरवस्तथा ॥ ५१ ॥

वहीं राजा धृतराष्ट्र, महाराज बाह्लीक, कृपाचार्य, सोमदत्त तथा अन्यान्य कौरव खेदमें भरे हुए बैठे थे ॥ ५१ ॥

तस्यां संसदि सर्वस्यां क्षत्तारं पूजयाम्यहम् ।
वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया ॥ ५२ ॥

मैं तो उस कौरवसभामें सबसे अधिक आदर विदुरको देती हूं, जिन्होंने द्रौपदीके प्रति किये जानेवाले अन्यायका प्रकटरूपमें विरोध किया था। मनुष्य अपने सदाचारसे ही श्रेष्ठ होता है, धन और विद्यासे नहीं ॥ ५२ ॥

तस्य कृष्ण महाबुद्धेर्गम्भीरस्य महात्मनः ।
क्षत्तुः शीलमलंकारो लोकान्विष्टभ्य तिष्ठति ॥ ५३ ॥

श्रीकृष्ण! परम बुद्धिमान् गम्भीरस्वभाव महात्मा विदुरका शील ही आभूषण है, जो सम्पूर्ण लोकोंको व्याप्त विख्यात करके स्थित है ॥ ५३ ॥

सा शोकार्ता च हृष्टा च दृष्ट्वा गोविन्दमागतम् ।
नानाविधानि दुःखानि सर्वाण्येवान्वकीर्तयत् ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्णको आया हुआ देख कुन्तीदेवी शोकातुर तथा आनन्दित हो अपने ऊपर आये हुए नाना प्रकारके सम्पूर्ण दुःखोंका पुनः वर्णन करने लगीं ॥ ५४ ॥

पूर्वैराचरितं यत्तत्कुराजभिररिंदम ।
अक्षद्यूतं मृगवधः कच्चिदेषां सुखावहम् ॥५५॥

शत्रुदमन श्रीकृष्ण ! पहलेके दुष्ट राजाओंने जो जूआ और शिकारकी परिपाटी चला दी है, वह क्या इन सबके लिये सुखावह सिद्ध हुई है ? कदापि नहीं ॥ ५५ ॥

तन्मां दहति यत्कृष्णा सभायां कुरुसंनिधौ ।
धार्तराष्ट्रैः परिक्लिष्टा यथा नकुशलं तथा ॥ ५६ ॥

सभामें कौरवोंके समीप धृतराष्ट्रके पुत्रोंने द्रौपदीको जो ऐसा कष्ट पहुंचाया है, जिससे किसीका मङ्गल नहीं हो सकता, वह अपमान मेरे हृदयको दग्ध करता रहता है ॥५६॥

निर्वासनं च नगरात्प्रव्रज्या च परंतप ।
नानाविधानां दुःखानामावासोऽस्मि जनार्दन ।
अज्ञातचर्या बालानामवरोधश्च केशव ॥ ५७ ॥

परंतप जनार्दन ! पाण्डवोंका नगरसे निकाला जाना तथा उनका वनमें रहनेके लिये बाध्य होना आदि नाना प्रकारके दुःखोंका मैं अनुभव कर चुकी हूं । परंतप माधव ! मेरे बालकोंको अज्ञातभावसे रहना पडा है और अब राज्य न मिलनेसे उनकी जीविकाका भी अवरोध हो गया है ॥ ५७ ॥

न स्म क्लेशतमं मे स्यात्पुत्रैः सह परंतप ।
दुर्योधनेन निकृता वर्षमद्य चतुर्दशम् ॥ ५८ ॥

पुत्रोंके साथ मुझे इतना महान् क्लेश नहीं प्राप्त होना चाहिये। दुर्योधनने मेरे पुत्रोंको कपट-द्यूतके द्वारा राज्यसे वञ्चित कर दिया। उन्हें इस दुरवस्थामें रहते आज चौदहवाँ वर्ष बीत रहा है ॥ ५८ ॥

दुःखादपि सुखं न स्याद्यदि पुण्यफलक्षयः ।
न मे विशेषो जात्वासीद्धार्तराष्ट्रेषु पाण्डवैः ॥ ५९ ॥

यदि सुख भोगनेका अर्थ है पुण्यके फलका क्षय होना, तब तो पापके फलस्वरूप दुःख भोग लेनेके कारण अब हमें भी दुःखके बाद सुख मिलना ही चाहिये। श्रीकृष्ण ! मेरे मनमें पाण्डवों तथा धृतराष्ट्रपुत्रोंके प्रति कभी भेदभाव नहीं था ॥ ५९ ॥

तेन सत्येन कृष्ण त्वां हतामित्रं श्रिया वृतम् ।
अस्माद्विमुक्तं संग्रामात्पश्येयं पाण्डवैः सह ।
नैव शक्याः पराजेतुं सत्त्वं ह्येषां तथागतम् ॥ ६० ॥

इस सत्यके प्रभावसे निश्चय ही मैं देखूंगी कि तुम भावी संग्राममें शत्रुओंको मारकर पाण्डवों-सहित संकटसे मुक्त हो गये तथा राज्यलक्ष्मीने तुमलोगोंका ही वरण किया है । पाण्डवोंमें ऐसे सभी गुण मौजूद हैं, जिनके ही कारण शत्रु इन्हें परास्त नहीं कर सकते ॥ ६० ॥

पितरं त्वेव गर्हेयं नात्मानं न सुयोधनम् ।
येनाहं कुन्तिभोजाय धनं धूर्तैरिवार्पिता ॥ ६१ ॥

मैं जो कष्ट भोग रही हूं, इसके लिये न अपनेको दोष देती हूं, न दुर्योधनको; अपितु पिताकी ही निन्दा करती हूं, जिन्होंने मुझे राजा कुन्तिभोजके हाथमें उसी प्रकार दे दिया, जैसे कोई धूर्त धन देता है ॥ ६१ ॥

बालां मामार्यकस्तुभ्यं क्रीडन्तीं कन्दुहस्तकाम् ।
अददात्कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ॥ ६२ ॥

मैं अभी बालिका थी, हाथमें गेंद लेकर खेलती फिरती थी; उसी अवस्थामें तुम्हारे पिता-महने मित्रधर्मका पालन करते हुए अपने सखा महात्मा कुन्तिभोजके हाथमें मुझे दे दिया ॥ ६२ ॥

साहं पित्रा च निकृता श्वशुरैश्च परंतप ।
अत्यन्तदुःखिता कृष्ण किं जीवितफलं मम ॥ ६३ ॥

परंतप श्रीकृष्ण ! इस प्रकार मेरे पिता तथा श्वशुरोंने भी मेरे साथ वञ्चनापूर्ण बर्ताव किया है । इससे मैं अत्यन्त दुःखी हूं । मेरे जीवित रहनेसे क्या लाभ ? ॥ ६३ ॥

यन्मा वागब्रवीन्नक्तं सूतके सव्यसाचिनः ।
पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवं स्पृशेत् ॥ ६४ ॥

अर्जुनके जन्मकालमें जब मैं सूतिकागृहमें थी, उस रात्रिमें आकाशवाणीने मुझसे यह कहा था– भद्रे ! तेरा यह पुत्र सारी पृथ्वीको जीत लेगा । इसका यश स्वर्गलोकतक फैल जायेगा ॥ ६४ ॥

हत्वा कुरुन्ग्रामजन्ये राज्यं प्राप्य धनंजयः ।
भ्रातृभिः सह कौन्तेयस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥ ६५ ॥

यह गांवोंके कारण होनेवाले संग्राममें कौरवोंका संहार करके राज्यपर अधिकार कर लेगा, फिर अपने भाइयोंके साथ तीन अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करेगा, ॥ ६५ ॥

नाहं तामभ्यसूयामि नमो धर्माय वेधसे ।
कृष्णाय महते नित्यं धर्मो धारयति प्रजाः ॥ ६६ ॥

मैं इस आकाशवाणीको दोष नहीं देती, अपितु जगत्के स्रष्टा महाविष्णुस्वरूप धर्मको ही नमस्कार करती हूं । धर्म ही सदा समस्त प्रजाको धारण करता है ॥ ६६ ॥

धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय तथा सत्यं भविष्यति ।
त्वं चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं संपादयिष्यसि ॥ ६७ ॥

वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण ! यदि धर्म है तो तुम भी वह सब काम पूरा कर लोगे, और इस प्रकार वह आकाशवाणी सत्य होगी ॥ ६७ ॥

न मां माधव वैधव्यं नार्थनाशो न वैरिता ।
तथा शोकाय भवति यथा पुत्रैर्विनाभवः ॥ ६८ ॥

माधव ! वैधव्य, धनका नाश तथा कुटुम्बीजनोंके साथ बढा हुआ वैर-भाव इनसे मुझे उतना शोक नहीं होता, जितना कि पुत्रोंके विरहसे मुझे शोक हो रहा है ॥ ६८ ॥

याहं गाण्डीवधन्वानं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
धनंजयं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ६९ ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गाण्डीवधारी अर्जुनको जबतक मैं नहीं देख रही हूं, तबतक मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ ६९ ॥

इदं चतुर्दशं वर्षं यन्नापश्यं युधिष्ठिरम् ।
धनंजयं च गोविन्द यमौ तं च वृकोदरम् ॥ ७० ॥

गोविन्द ! चौदहवां वर्ष है, जबसे कि मैं युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल-सहदेवको नहीं देख पा रही हूं ॥ ७० ॥

जीवनाशं प्रनष्टानां श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ।
अर्थतस्ते मम मृतास्तेषां चाहं जनार्दन ॥ ७१ ॥

जनार्दन ! जो लोग प्राणोंका नाश होनेसे अदृश्य होते हैं, उनके लिये मनुष्य श्राद्ध करते हैं । यदि मृत्युका अर्थ अदृश्य हो जाना ही है तो मेरे लिये पाण्डव मर गये हैं और मैं भी उनके लिये मर चुकी हूं ॥ ७१ ॥

ब्रूया माधव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥ ७२ ॥

माधव ! तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे कहना– बेटा ! तुम्हारे धर्मकी बडी हानि हो रही है । तुम उसे व्यर्थ नष्ट न करो ॥ ७२ ॥

पराश्रया वासुदेव या जीवामि धिगस्तु माम् ।
वृत्तेः कृपणलब्धाया अप्रतिष्ठैव ज्यायसी　　॥ ७३ ॥

वासुदेव ! जो स्त्री दूसरोंके आश्रित होकर जीवननिर्वाह करती है, उसे धिक्कार है। दीनतासे प्राप्त हुई जीविकाकी अपेक्षा तो मर जाना ही उत्तम है ॥ ७३ ॥

अथो धनंजयं ब्रूया नित्योद्युक्तं वृकोदरम् ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः　　॥ ७४ ॥

श्रीकृष्ण ! तुम अर्जुन तथा युद्धके लिये सदा उद्यत रहनेवाले भीमसेनसे कहना कि क्षत्राणी जिस प्रयोजनके लिये पुत्र उत्पन्न करती है, उसे पूरा करनेका यह समय आ गया है ॥ ७४ ॥

अस्मिंश्चेदागते काले कालो वोऽतिक्रमिष्यति ।
लोकसम्भाविताः सन्तः सुनृशंसं करिष्यथ　　॥ ७५ ॥

यदि ऐसा समय आनेपर भी तुम युद्ध नहीं करोगे तो यह व्यर्थ बीत जायेगा । तुमलोग इस जगत्के सम्मानित पुरुष हो। यदि तुम कोई अत्यन्त घृणित कर्म कर डालोगे ॥ ७५ ॥

नृशंसेन च वो युक्तांस्त्यजेयं शाश्वतीः समाः ।
काले हि समनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवितम्　　॥ ७६ ॥

तो उस नृशंस कर्मसे युक्त होनेके कारण मैं तुम्हें सदाके लिये त्याग दूँगी । पुत्रो ! तुम्हें तो समय आनेपर अपने प्राणोंको भी त्याग देनेके लिये उद्यत रहना चाहिये ॥ ७६ ॥

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतौ सदा ।
विक्रमेणार्जितान्भोगान्वृणीतं जीवितादपि　　॥ ७७ ॥

गोविन्द ! तुम सदा क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले माद्रीनन्दन नकुल सहदेवसे भी कहना— पुत्रो ! तुम प्राणोंकी बाजी लगाकर भी पराक्रमसे प्राप्त किये हुए भोगोंको ही ग्रहण करना ॥ ७७ ॥

विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः ।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम　　॥ ७८ ॥

पुरुषोत्तम ! क्षत्रियधर्मसे जीवननिर्वाह करनेवाले मनुष्यके मनको पराक्रमसे प्राप्त हुआ धन ही सदा संतुष्ट रखता है ॥ ७८ ॥

गत्वा ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
अर्जुनं पाण्डवं वीरं द्रौपद्याः पदवीं चर　　॥ ७९ ॥

महाबाहो ! तुम पाण्डवोंके पास जाकर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पाण्डुनन्दन वीर अर्जुनसे कहना कि तुम द्रौपदीके बताये हुए मार्गपर चलो ॥ ७९ ॥

विदितौ हि तवात्यन्तं क्रुद्धाविव यथान्तकौ ।
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ॥ ८० ॥

श्रीकृष्ण ! तुम तो जानते ही हो; यदि भीमसेन और अर्जुन अत्यन्त कुपित हो जायँ तो वे यमराजके समान होकर देवताओंको भी मृत्युके मुखमें पहुँचा सकते हैं ॥ ८० ॥

तथोऽचैतदवज्ञानं यत्सा कृष्णा सभां गता ।
दुःशासनश्च कर्णश्च परुषाण्यभ्यभाषताम् ॥ ८१ ॥

द्रौपदीको जो सभामें उपस्थित होना पडा तथा दुःशासन और कर्णने जो उसके प्रति कठोर बातें कहीं, यह सब भीमसेन और अर्जुनका ही अपमान है ॥ ८१ ॥

दुर्योधनो भीमसेनमभ्यगच्छन्मनस्विनम् ।
पश्यतां कुरुमुख्यानां तस्य द्रक्ष्यति यत्फलम् ॥ ८२ ॥

दुर्योधनने प्रधान प्रधान कौरवोंके सामने मनस्वी भीमसेनका अपमान किया है । इसका जो फल मिलेगा, उसे वह देखेगा ॥ ८२ ॥

न हि वैरं समासाद्य प्रशाम्यति वृकोदरः ।
सुचिरादपि भीमस्य न हि वैरं प्रशाम्यति ।
यावदन्तं न नयति शात्रवाञ्शत्रुकर्शनः ॥ ८३ ॥

भीमसेन वैर हो जानेपर कभी शान्त नहीं होता । जबतक वह शत्रुपक्षका संहार नहीं कर डालता, भीमसेनका वैर तबतक दीर्घकालके बाद भी समाप्त नहीं होता है ॥ ८३ ॥

न दुःखं राज्यहरणं न च द्यूते पराजयः ।
प्रव्राजनं च पुत्राणां न मे तद्दुःखकारणम् ॥ ८४ ॥

राज्य छिन गया, यह कोई दुःखका कारण नहीं है । जूएमें पुत्रोंका पराजय हुआ, इसका भी मुझे दुःख नहीं है, पुत्रोंको वनमें भेज दिया गया, इससे भी मुझे दुःख नहीं हुआ है ॥ ८४ ॥

यत्तु सा बृहती श्यामा एकवस्त्रा सभां गता ।
अशृणोत्परुषा वाचस्ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ८५ ॥

परंतु मेरी श्रेष्ठ सुन्दरी वधूको एक वस्त्र धारण किये जो सभामें जाना पडा और दुष्टोंकी कठोर बातें सुननी पडीं, इससे बढकर महान् दुःखकी बात और क्या हो सकती है ? ॥८५॥

स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा ।
नाध्यगच्छत्तथा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥ ८६ ॥

सदा क्षत्रियधर्ममें अनुराग रखनेवाली मेरी सर्वाङ्गसुन्दरी बहू कृष्णा उस समय सनाथ होती हुई भी वहां किसीको अपना नाथ रक्षक न पा सकी ॥ ८६ ॥

यस्या मम सपुत्रायास्त्वं नाथो मधुसूदन ।
रामश्च बलिनां श्रेष्ठः प्रद्युम्नश्च महारथः ॥ ८७ ॥

मधुसूदन ! पुत्रोंसहित जिस कुन्तीके बलवानोंमें श्रेष्ठ बलराम, महारथी प्रद्युम्न तथा तुम रक्षक हो ॥ ८७ ॥

साहमेवंविधं दुःखं सहेऽद्य पुरुषोत्तम ।
भीमे जीवति दुर्धर्षे विजये चापलायिनि ॥ ८८ ॥

युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले विजयी अर्जुन और दुर्धर्ष भीमसेन सरीखे जिसके पुत्र जीवित हैं, वही मैं ऐसे ऐसे दुःख सह रही हूँ ॥ ८८ ॥

तत आश्वासयामास पुत्राधिभिरभिप्लुताम् ।
पितृष्वसारं शोचन्तीं शौरिः पार्थसखः पृथाम् ॥ ८९ ॥

तदनन्तर अर्जुनके मित्र भगवान् श्रीकृष्णने पुत्रोंकी चिन्ताओंमें डूबकर शोक करती हुई अपनी बुआ कुन्तीको इस प्रकार आश्वासन दिया ॥ ८९ ॥

का नु सीमन्तिनी त्वादृग्लोकेष्वस्ति पितृष्वसः ।
शूरस्य राज्ञो दुहिता आजमीढकुलं गता ॥ ९० ॥

बुआ ! संसारमें तुम जैसी सौभाग्यशालिनी नारी दूसरी कौन है ? तुम राजा शूरसेनकी पुत्री हो और महाराज अजमीढके कुलमें व्याहकर आयी हो ॥ ९० ॥

महाकुलीना भवती ह्रदाद्ध्रदमिवागता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥ ९१ ॥

तुम एक उच्च कुलकी कन्या हो और दूसरे उच्च कुलमें ब्याही गयी हो; मानो कमलिनी एक सरोवरसे दूसरे सरोवरमें आयी हो । एक दिन तुम सर्वकल्याणी महारानी थीं; तुम्हारे पतिदेवने सदा तुम्हारा विशेष सम्मान किया है ॥ ९१ ॥

वीरसूर्वीरपत्नी च सर्वैः समुदिता गुणैः ।
सुखदुःखे महाप्राज्ञे त्वादृशी सोढुमर्हति ॥ ९२ ॥

तुम वीरपत्नी, वीरजननी तथा समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हो । महाप्राज्ञे ! तुम्हारी जैसी विवेकशील स्त्रीको सुख और दुःख चुपचाप सहने चाहिये ॥ ९२ ॥

निद्रातन्द्री क्रोधहर्षौ क्षुत्पिपासे हिमातपौ ।
एतानि पार्था निर्जित्य नित्यं वीराः सुखे रताः ॥ ९३ ॥

तुम्हारे सभी वीर पुत्र निद्रा, तन्द्रा आलस्य, क्रोध, हर्ष, भूख प्यास तथा सर्दी गर्मी इन सबको जीतकर सदा सुखका उपभोग करते हैं ॥ ९३ ॥

त्यक्तग्राम्यसुखाः पार्था नित्यं वीरसुखप्रियाः ।
न ते स्वल्पेन तुष्येयुर्महोत्साहा महाबलाः ॥ ९४ ॥

तुम्हारे पुत्रोंने ग्राम्यसुखको त्याग दिया है, वीरोचित सुख ही उन्हें सदा प्रिय है। वे महान् उत्साही और महाबली हैं; अतः थोडेसे ऐश्वर्यसे संतुष्ट नहीं हो सकते ॥ ९४ ॥

अन्तं धीरा निषेवन्ते मध्यं ग्राम्यसुखप्रियाः ।
उत्तमांश्च परिक्लेशान्भोगांश्चातीव मानुषान् ॥ ९५ ॥

धीर पुरुष भोगोंकी अन्तिम स्थितिका सेवन करते हैं। ग्राम्य विषयभोगोंमें आसक्त पुरुष भोगोंकी मध्य स्थितिका ही सेवन करते हैं। वे धीर पुरुष कर्तव्यपालनके रूपमें प्राप्त बडेसे बडे क्लेशोंको सहर्ष सहन करके अन्तमें मनुष्यातीत भोगोंमें रमण करते हैं ॥ ९५ ॥

अन्तेषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे ।
अन्तप्राप्तिं सुखामाहुर्दुःखमन्तरमन्तयोः ॥ ९६ ॥

महापुरुषोंका कहना है कि अन्तिम सुखदुःखसे अतीत स्थितिकी प्राप्ति ही वास्तविक सुख है तथा सुखदुःखके बीचकी स्थिति ही दुःख है ॥ ९६ ॥

अभिवादयन्ति भवतीं पाण्डवाः सह कृष्णया ।
आत्मानं च कुशलिनं निवेद्याहुरनामयम् ॥ ९७ ॥

बुआ ! द्रौपदीसहित पाण्डवोंने तुम्हें प्रणाम कहलाया है और अपनेको सकुशल बताकर अपनी स्वस्थता भी सूचित की है ॥ ९७ ॥

अरोगान्सर्वसिद्धार्थान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पाण्डवान् ।
ईश्वरान्सर्वलोकस्य हतामित्राञ्छ्रिया वृतान् ॥ ९८ ॥

तुम शीघ्र ही देखोगी कि पाण्डव नीरोग अवस्थामें तुम्हारे सामने उपस्थित हैं, उनके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो गये हैं और वे अपने शत्रुओंका संहार करके साम्राज्य लक्ष्मीसे संयुक्त हो सम्पूर्ण जगत्के शासकपदपर प्रतिष्ठित हैं ॥ ९८ ॥

एवमाश्वासिता कुन्ती प्रत्युवाच जनार्दनम् ।
पुत्राधिभिरभिध्वस्ता निगृह्याबुद्धिजं तमः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार आश्वासन पाकर पुत्रों आदिसे दूर पडी हुई कुन्तीदेवीने अज्ञानजनित मोहका निरोध करके भगवान् जनार्दनसे कहा ॥ ९९ ॥

यद्यत्तेषां महाबाहो पथ्यं स्यान्मधुसूदन ।
यथा यथा त्वं मन्येथाः कुर्याः कृष्ण तथा तथा ॥ १०० ॥

महाबाहु मधुसूदन श्रीकृष्ण ! जो पाण्डवोंके लिये हितकर हो तथा जैसे जैसे कार्य करना तुम्हें उचित जान पडे, वैसे वैसे करो ॥ १०० ॥

अविलोपेन धर्मस्य अनिकृत्या परंतप।
प्रभावज्ञास्मि ते कृष्ण सत्यस्याभिजनस्य च ॥ १०१ ॥

परंतप श्रीकृष्ण ! धर्मका लोप न करते हुए, छल और कपटसे दूर रहकर समयोचित कार्य करना चाहिये। मैं तुम्हारी सत्यपरायणता और कुलमर्यादाका भी प्रभाव जानती हूँ ॥ १०१ ॥

व्यवस्थायां च मित्रेषु बुद्धिविक्रमयोस्तथा।
त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं तपो महत् ॥ १०२ ॥

प्रत्येक कार्यकी व्यवस्थामें, मित्रोंके संग्रहमें तथा बुद्धि और पराक्रममें भी जो तुम्हारा अद्भुत प्रभाव है, उससे मैं परिचित हूँ। हमारे कुलमें तुम्हीं धर्म हो, तुम्हीं सत्य हो, तुम्हीं महान् तप हो ॥ १०२ ॥

त्वं त्राता त्वं महद्ब्रह्म त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यथैवात्थ तथैवैतत्त्वयि सत्यं भविष्यति ॥ १०३ ॥

तुम्हीं रक्षक और तुम्हीं परब्रह्म परमात्मा हो। सब कुछ तुममें ही प्रतिष्ठित है। तुम जो कुछ कहते हो, वह सब तुम्हारे संनिधानमें सत्य होकर ही रहेगा ॥ १०३ ॥

तामामन्त्र्य च गोविन्दः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
प्रातिष्ठत महाबाहुर्दुर्योधनगृहान्प्रति ॥ १०४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ २९१५ ॥

तदनन्तर महाबाहु गोविन्द कुन्तीदेवीकी परिक्रमा करके उनसे आज्ञा ले दुर्योधनके घरकी ओर चल दिये ॥ १०४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें अठासीवां अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥ २९१५ ॥

: ८९ :

वैशम्पायन उवाच

पृथामामन्त्र्य गोविन्दः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
दुर्योधनगृहं शौरिरभ्यगच्छदरिंदमः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! शत्रुओंका दमन करनेवाले शूरनन्दन श्रीकृष्ण कुन्तीकी परिक्रमा करके एवं उनकी आज्ञा ले दुर्योधनके घर गये ॥ १ ॥

लक्ष्म्या परमया युक्तं पुरन्दरगृहोपमम्।
तस्य कक्ष्या व्यतिक्रम्य तिस्रो द्वाःस्थैरवारितः ॥ २ ॥

वह घर इन्द्रभवनके समान उत्तम शोभासे सम्पन्न था। द्वारपालोंने रोकटोक नहीं की। उस राजभवनकी तीन ड्योढियां पार करके ॥ २ ॥

ततोऽभ्रघनसंकाशं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम्।
श्रिया ज्वलन्तं प्रासादमारुरोह महायशाः ॥ ३ ॥

महायशस्वी श्रीकृष्ण एक ऐसे प्रासादपर आरूढ हुए, जो आकाशमें छाये हुए शरदृतुके बादलोंके समान श्वेत, पर्वतशिखरके समान ऊँचा तथा अपनी अद्भुत प्रभासे प्रकाशमान था ॥ ३ ॥

तत्र राजसहस्रैश्च कुरुभिश्चाभिसंवृतम्।
धार्तराष्ट्रं महाबाहुं ददर्शासीनमासने ॥ ४ ॥

वहाँ उन्होंने सिंहासनपर बैठे हुए धृतराष्ट्रपुत्र महाबाहु दुर्योधनको देखा, जो सहस्रों राजाओं तथा कौरवोंसे घिरा हुआ था ॥ ४ ॥

दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि सौबलम्।
दुर्योधनसमीपे तानासनस्थान्ददर्श सः ॥ ५ ॥

दुर्योधनके पास ही दुःशासन, कर्ण तथा सुबलपुत्र शकुनि ये भी आसनोंपर बैठे थे। श्रीकृष्णने उनको भी देखा ॥ ५ ॥

अभ्यागच्छति दाशार्हे धार्तराष्ट्रो महायशाः।
उदतिष्ठत्सहामात्यः पूजयन्मधुसूदनम् ॥ ६ ॥

दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके आते ही महायशस्वी दुर्योधन मधुसूदनका सम्मान करते हुए मन्त्रियों-सहित उठकर खडा हो गया ॥ ६ ॥

समेत्य धार्तराष्ट्रेण सहामात्येन केशवः।
राजभिस्तत्र वार्ष्णेयः समागच्छद्यथावयः ॥ ७ ॥

मन्त्रियोंसहित दुर्योधनसे मिलकर वृष्णिकुलभूषण केशव अवस्थाके अनुसार वहां सभी राजाओंसे यथायोग्य मिले ॥ ७ ॥

तत्र जाम्बूनदमयं पर्यङ्कं सुपरिष्कृतम्।
विविधास्तरणास्तीर्णमभ्युपाविशदच्युतः ॥ ८ ॥

उस राजसभामें सुन्दर रत्नोंसे विभूषित एक सुवर्णमय पर्यङ्क रक्खा हुआ था, जिसपर भांति भांतिके बिछौने बिछे हुए थे। भगवान् श्रीकृष्ण उसीपर विराजमान हुए ॥ ८ ॥

तस्मिन्गां मधुपर्कं च उपहृत्य जनार्दने।
निवेदयामास तदा गृहान्राज्यं च कौरवः ॥ ९ ॥

उस समय कुरुराजने जनार्दनकी सेवामें गौ, मधुपर्क, जल, गृह तथा राज्य सब कुछ निवेदन कर दिया ॥ ९ ॥

तत्र गोविन्दमासीनं प्रसन्नादित्यवर्चसम्।
उपासांचक्रिरे सर्वे कुरवो राजभिः सह ॥ १० ॥

उस पर्यङ्कपर बैठे हुए निर्मल सूर्यके समान तेजस्वी गोविन्दको बैठा देखकर राजाओंसहित समस्त कौरव उनके पास आकर बैठ गये ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा वार्ष्णेयं जयतां वरम्।
न्यमन्त्रयद्भोजनेन नाभ्यनन्दच्च केशवः ॥ ११ ॥

तदनन्तर राजा दुर्योधनने विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णको भोजनके लिये निमन्त्रित किया; परंतु केशवने उस निमन्त्रणको स्वीकार नहीं किया ॥ ११ ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णमब्रवीद्राजसंसदि।
मृदुपूर्वं शठोदर्कं कर्णमाभाष्य कौरवः ॥ १२ ॥

तब कुरुराज दुर्योधनने कर्णसे सलाह लेकर राजसभामें श्रीकृष्णसे पूछा। पूछते समय उसकी वाणीमें पहले तो मृदुता थी, परंतु अन्तमें शठता प्रकट होने लगी थी ॥ १२ ॥

कस्मादन्नानि पानानि वासांसि शयनानि च।
त्वदर्थमुपनीतानि नाग्रहीस्त्वं जनार्दन ॥ १३ ॥

दुर्योधन बोले— जनार्दन! आपके लिये अन्न, जल, वस्त्र और शय्या आदि जो वस्तुएं प्रस्तुत की गयीं, उन्हें आपने ग्रहण क्यों नहीं किया? ॥ १३ ॥

उभयोश्चाददः साह्यमुभयोश्च हिते रतः।
सम्बन्धी दयितश्चासि धृतराष्ट्रस्य माधव ॥ १४ ॥

आपने तो दोनों पक्षोंको ही सहायता दी है, आप उभयपक्षके हित साधनमें तत्पर हैं। माधव! महाराज धृतराष्ट्रके आप प्रिय सम्बन्धी भी हैं ॥ १४ ॥

त्वं हि गोविन्द धर्मार्थौ वेत्थ तत्त्वेन सर्वशः।
तत्र कारणमिच्छामि श्रोतुं चक्रगदाधर ॥ १५ ॥

चक्र और गदा धारण करनेवाले गोविन्द! आपको धर्म और अर्थका सम्पूर्णरूपसे यथार्थ ज्ञान भी है; फिर मेरा आतिथ्य ग्रहण न करनेका क्या कारण है; यह मैं सुनना चाहता हूं ॥ १५ ॥

स एवमुक्तो गोविन्दः प्रत्युवाच महामनाः।
ओघमेघस्वनः काले प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ १६ ॥

वैशम्पायन बोले— राजन्! इस प्रकार पूछे जानेपर उस समय महामनस्वी कमलनयन श्रीकृष्णने अपनी विशाल भुजा ऊपर उठाकर राजा दुर्योधनको सजल जलधरके समान गम्भीर वाणीमें उत्तर देना आरम्भ किया ॥ १६ ॥

अनम्बूकृतमग्रस्तमनिरस्तमसंकुलम् ।
राजीवनेत्रो राजानं हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥
उनका वह वचन परम उत्तम, युक्तिसंगत, दैन्यरहित, प्रत्येक अक्षरकी स्पष्टतासे सुशोभित तथा स्थानभ्रष्टता एवं संकीर्णता आदि दोषोंसे रहित था ॥ १७ ॥

कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव हि ।
कृतार्थं मां सहामात्यस्त्वमर्चिष्यसि भारत ॥ १८ ॥
भारत ! ऐसा नियम है कि दूत अपना प्रयोजन सिद्ध होनेपर ही भोजन और सम्मान स्वीकार करते हैं । तुम भी मेरा उद्देश्य सिद्ध हो जानेपर ही मेरा और मेरे मन्त्रियोंका सत्कार करना ॥ १८ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रो जनार्दनम् ।
न युक्तं भवतास्मासु प्रतिपत्तुमसाम्प्रतम् ॥ १९ ॥
यह सुनकर दुर्योधनने जनार्दनसे कहा आपको हमलोगोंके साथ ऐसा अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

कृतार्थं चाकृतार्थं च त्वां वयं मधुसूदन ।
यतामहे पूजयितुं गोविंद न च शक्नुमः ॥ २० ॥
गोविन्द मधुसूदन ! आपका उद्देश्य सफल हो या न हो, हमलोग तो आपके सम्मानका प्रयत्न करते ही हैं; किंतु हमें सफलता नहीं मिल रही है ॥ २० ॥

न च तत्कारणं विद्मो यस्मिन्नो मधुसूदन ।
पूजां कृतां प्रीयमाणैर्नामंस्थाः पुरुषोत्तम ॥ २१ ॥
मधुदैत्यका विनाश करनेवाले पुरुषोत्तम ! हमें ऐसा कोई कारण नहीं जान पडता, जिसके होनेसे आप हमारी प्रेमपूर्वक अर्पित की हुई पूजा ग्रहण न कर सकें ॥ २१ ॥

वैरं नो नास्ति भवता गोविन्द न च विग्रहः ।
स भवान्प्रसमीक्ष्यैतन्नेदृशं वक्तुमर्हति ॥ २२ ॥
गोविन्द ! आपके साथ हमलोगोंका न तो कोई वैर है और न झगडा ही है । इन सब बातोंका विचार करके आपको ऐसी बात नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रं जनार्दनः
अभिवीक्ष्य सहामात्यं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ २३ ॥
राजन् ! यह सुनकर दशार्हकुलभूषण जनार्दनने मन्त्रियोंसहित दुर्योधनकी ओर देखकर हंसते हुए से उत्तर दिया ॥ २३ ॥

नाहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नार्थकारणात् ।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथंचन ॥ २४ ॥

राजन् ! मैं कामसे, क्रोधसे, द्वेषसे, स्वार्थवश, बहानेबाजी अथवा लोभसे भी किसी प्रकार धर्मका त्याग नहीं कर सकता ॥ २४ ॥

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः ।
न च सम्प्रीयसे राजन्न चाप्यापद्गता वयम् ॥ २५ ॥

किसीके घरके अन्नका भोजन या तो प्रेमके कारण किया जाता है या आपत्तिमें पडनेपर । नरेश्वर ! प्रेम तो तुम नहीं रखते और किसी आपत्तिमें हम भी नहीं पडे हुए हैं ॥ २५ ॥

अकस्माद्द्विषसे राजञ्जन्मप्रभृति पाण्डवान् ।
प्रियानुवर्तिनो भ्रातॄन्सर्वैः समुदितान्गुणैः ॥ २६ ॥

राजन् ! पाण्डव तुम्हारे भाई ही हैं, वे अपने प्रेमियोंका साथ देनेवाले और समस्त सद्-गुणोंसे सम्पन्न हैं, तथापि तुम जन्मसे ही उनके साथ अकारण ही द्वेष करते हो ॥ २६ ॥

अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते ।
धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान्किं वक्तुमर्हति ॥ २७ ॥

विना कारण ही कुन्तीपुत्रोंके साथ द्वेष रखना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है । पाण्डव सदा अपने धर्ममें स्थित रहते हैं, अतः उनके विरुद्ध कौन क्या कह सकता है ? ॥ २७ ॥

यस्तान्द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु ।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ २८ ॥

जो पाण्डवोंसे द्वेष करता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है । तुम मुझे धर्मात्मा पाण्डवोंके साथ एकरूप हुआ ही समझो ॥ २८ ॥

कामक्रोधानुवर्ती हि यो मोहाद्विरुरुत्सते ।
गुणवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ २९ ॥

जो काम और क्रोधके वशीभूत होकर मोहवश किसी गुणवान् पुरुषके साथ विरोध करना चाहता है, उसे पुरुषोंमें अधम कहा गया है ॥ २९ ॥

यः कल्याणगुणाञ्ज्ञातीन्मोहाल्लोभाद्दिदृक्षते ।
सोऽजितात्माजितक्रोधो न चिरं तिष्ठति श्रियम् ॥ ३० ॥

जो कल्याणमय गुणोंसे युक्त अपने कुटुम्बीजनोंको मोह और लोभकी दृष्टिसे देखना चाहता है, वह अपने मन और क्रोधको न जीतनेवाला पुरुष दीर्घकालतक राजलक्ष्मीका उपभोग नहीं कर सकता ॥ ३० ॥

अथ यो गुणसम्पन्नान्हृदयस्याप्रियानपि ।
प्रियेण कुरुते वश्यांश्चिरं यशसि तिष्ठति ॥ ३१ ॥

जो अपने मनको प्रिय न लगनेवाले गुणवान् व्यक्तियोंको भी अपने प्रिय व्यवहारद्वारा वशमें कर लेता है, वह दीर्घकालतक यशस्वी बना रहता है ॥ ३१ ॥

सर्वमेतदभोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम् ।
क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः ॥ ३२ ॥

तुम्हारा यह सारा अन्न दुर्भावनासे दूषित है । अतः मेरे भोजन करने योग्य नहीं है । मेरे लिये तो यहाँ केवल विदुरका ही अन्न खाने योग्य है । यह मेरी निश्चित धारणा है ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्दुर्योधनममर्षणम् ।
निश्चक्राम ततः शुभ्राद्धार्तराष्ट्रनिवेशनात् ॥ ३३ ॥

अमर्षशील दुर्योधनसे ऐसा कहकर महाबाहु श्रीकृष्ण उसके भव्य भवनसे बाहर निकले ॥ ३३ ॥

निर्याय च महाबाहुर्वासुदेवो महामनाः ।
निवेशाय ययौ वेश्म विदुरस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥

वहाँसे निकलकर महामना महाबाहु भगवान् वासुदेव ठहरनेके लिये महात्मा विदुरके भवनमें गये ॥ ३४ ॥

तमभ्यगच्छद्द्रोणश्च कृपो भीष्मोऽथ बाह्लिकः ।
कुरवश्च महाबाहुं विदुरस्य गृहे स्थितम् ॥ ३५ ॥

तेऽभिगम्याब्रुवंस्तत्र कुरवो मधुसूदनम् ।
निवेदयामो वार्ष्णेय सरत्नांस्ते गृहान्वयम् ॥ ३६ ॥

उस समय द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म, बाह्लीक तथा अन्य कौरवोंने भी महाबाहु श्रीकृष्णका अनुसरण किया । विदुरके घरमें ठहरे हुए यदुवंशी वीर मधुसूदनसे वे सब कौरव बोले— वृष्णिनन्दन ! हम लोग रत्नधनसे सम्पन्न अपने घरोंको आपकी सेवामें समर्पित करते हैं ॥ ३५–३६ ॥

तानुवाच महातेजाः कौरवान्मधुसूदनः ।
सर्वे भवन्तो गच्छन्तु सर्वा मेऽपचितिः कृता ॥ ३७ ॥

तब महातेजस्वी मधुसूदनने कौरवोंसे कहा— आप सब लोग अपने घरोंको जायँ; आपके द्वारा मेरा सारा सम्मान सम्पन्न हो गया ॥ ३७ ॥

यातेषु कुरुषु क्षत्ता दाशार्हमपराजितम् ।
अभ्यर्चयामास तदा सर्वकामैः प्रयत्नवान् ॥ ३८ ॥

कौरवोंके चले जानेपर विदुरने कभी पराजित न होनेवाले दशार्हनन्दन श्रीकृष्णको समस्त मनोवाञ्छित वस्तुएँ समर्पित करके प्रयत्नपूर्वक उनका पूजन किया ॥ ३८ ॥

ततः क्षत्तान्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च ।
उपाहरदनेकानि केशवाय महात्मने ॥ ३९ ॥

तदनन्तर उन्होंने अनेक प्रकारके पवित्र एवं गुणकारक अन्न-पान महात्मा केशवको अर्पित किये ॥ ३९ ॥

तैस्तर्पयित्वा प्रथमं ब्राह्मणान्मधुसूदनः ।
वेदविद्भ्यो ददौ कृष्णः परमद्रविणान्यपि ॥ ४० ॥

मधुसूदनने उस अन्न-पानसे पहले ब्राह्मणोंको तृप्त किया, फिर उन्होंने उन वेदवेत्ताओंको श्रेष्ठ धन भी दिया ॥ ४० ॥

ततोऽनुयायिभिः सार्धं मरुद्भिरिव वासवः ।
विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ २९५६ ॥

तदनन्तर देवताओंसहित इन्द्रकी भाँति अनुचरोंसहित भगवान् श्रीकृष्णने विदुरके पवित्र एवं गुणकारक अन्नपान ग्रहण किये ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥ २९५६ ॥

९०

वैशम्पायन उवाच

तं भुक्तवन्तमाश्वस्तं निशायां विदुरोऽब्रवीत् ।
नेदं सम्यग्व्यवसितं केशवागमनं तव ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! रातमें जब भगवान् श्रीकृष्ण भोजन करके विश्राम कर रहे थे, उस समय विदुरने उनसे कहा— केशव ! आपने जो यहाँ आनेका विचार किया, यह मेरी समझमें अच्छा नहीं हुआ ॥ १ ॥

अर्थधर्मातिगो मूढः संरम्भी च जनार्दन ।
मानघ्नो मानकामश्च वृद्धानां शासनातिगः ॥ २ ॥

जनार्दन ! मन्दमति दुर्योधन धर्म और अर्थ दोनोंका उल्लङ्घन कर चुका है । वह क्रोधी, दूसरोंके सम्मानको नष्ट करनेवाला और स्वयं सम्मान चाहनेवाला है । उसने बड़े-बूढे गुरुजनोंके आदेशको भी ठुकरा दिया है ॥ २ ॥

धर्मशास्त्रातिगो मन्दो दुरात्मा प्रग्रहं गतः ।
अनेयः श्रेयसां पापो धार्तराष्ट्रो जनार्दन ॥ ३ ॥

प्रभो ! मूढ धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन धर्मशास्त्रोंकी भी आज्ञा नहीं मानता; सदा अपना ही हठ रखता है । उस दुरात्माको सन्मार्गपर ले आना असम्भव है ॥ ३ ॥

कामात्मा प्राज्ञमानी च मित्रध्रुक्सर्वशङ्कितः ।
अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तधर्मः प्रियानृतः ॥ ४ ॥

उसका मन भोगोंमें आसक्त है, वह अपनेको पण्डित मानता, मित्रोंके साथ द्रोह करता और सबको संदेहकी दृष्टिसे देखता है । वह स्वयं तो किसीका उपकार करता ही नहीं, दूसरोंके किये हुए उपकारको भी नहीं मानता । वह धर्मको त्यागकर असत्यसे ही प्रेम करने लगा है ॥ ४ ॥

एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्दोषैरेष समन्वितः ।
त्वयोच्यमानः श्रेयोऽपि संरम्भान्न ग्रहीष्यति ॥ ५ ॥

ये तथा और भी बहुतसे दोष उसमें भरे हुए हैं । आप उसे हितकी बात बतायेंगे, तो भी वह क्रोधवश उसे स्वीकार नहीं करेगा ॥ ५ ॥

सेनासमुदयं दृष्ट्वा पार्थिवं मधुसूदन ।
कृतार्थं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ॥ ६ ॥

मधुसूदन ! मूर्ख एवं बुद्धिहीन दुर्योधन राजाओंकी सेना एकत्र देखकर अपने-आपको कृत-कृत्य मानता है ॥ ६ ॥

एकः कर्णः पराञ्जेतुं समर्थ इति निश्चितम् ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः स शमं नोपयास्यति ॥ ७ ॥

दुर्बुद्धि दुर्योधनको तो इस बातका भी दृढ विश्वास है कि अकेला कर्ण ही शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ है; इसलिये वह कदापि संधि नहीं करेगा ॥ ७ ॥

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे द्रोणपुत्रे जयद्रथे ।
भूयसीं वर्तते वृत्तिं न शमे कुरुते मनः ॥ ८ ॥

वह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा तथा जयद्रथपर अधिक भरोसा रखता है; अतः उसके मनमें संधि करनेका विचार ही नहीं होता है ॥ ८ ॥

निश्चितं धार्तराष्ट्राणां सकर्णानां जनार्दन।
भीष्मद्रोणकृपान्पार्थो न शक्ताः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ९ ॥

जनार्दन! धृतराष्ट्रके सभी पुत्रों तथा कर्णकी यह निश्चित धारणा है कि कुन्तीके पुत्र भीष्म एवं द्रोणाचार्य आदि वीरोंकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हैं ॥ ९ ॥

संधिच्च धार्तराष्ट्राणां सर्वेषामेव केशव।
शमे प्रयतमानस्य तव सौभ्रात्रकाङ्क्षिणः ॥ १० ॥

केशव! आप संधिके लिये प्रयत्न करते हुए उनमें उत्तम भ्रातृभाव जगाना चाहते हैं; तो भी धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंने यह पक्का विचार कर लिया है ॥ १० ॥

न पाण्डवानामस्माभिः प्रतिदेयं यथोचितम्।
इति व्यवसितास्तेषु वचनं स्यान्निरर्थकम् ॥ ११ ॥

कि हमें पाण्डवोंको उनका यथोचित राज्यभाग नहीं देना चाहिये। यही उनका दृढ निश्चय है। इस प्रकार निश्चय कर लेनेपर उन दुष्टोंके प्रति आप जो कुछ भी कहेंगे, वह सब व्यर्थ ही होगा ॥ ११ ॥

यत्र सूक्तं दुरुक्तं च समं स्यान्मधुसूदन।
न तत्र प्रलपेत्प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः ॥ १२ ॥

मधुसूदन! जहाँ अच्छी और बुरी बातोंका एकसा ही परिणाम हो, वहां विद्वान् पुरुषको कुछ नहीं कहना चाहिये। वहां कोई बात कहना बहरोंके आगे राग अलापनेके समान व्यर्थ ही है ॥ १२ ॥

अविजानत्सु मूढेषु निर्मर्यादेषु माधव।
न त्वं वाक्यं ब्रुवन्युक्तश्चाण्डालेषु द्विजो यथा ॥ १३ ॥

माधव! जैसे चाण्डालोंके बीचमें किसी विद्वान् ब्राह्मणका उपदेश देना उचित नहीं है, उसी प्रकार उन मर्यादारहित मूर्ख और अज्ञानियोंके समीप आपका कुछ भी कहना मुझे ठीक नहीं जान पडता ॥ १३ ॥

सोऽयं बलस्थो मूढश्च न करिष्यति ते वचः।
तस्मिन्निरर्थकं वाक्यमुक्तं सम्पत्स्यते तव ॥ १४ ॥

मूढ दुर्योधन सैन्यसंग्रह करके अपनेको शक्तिशाली समझता है। वह आपकी बात नहीं मानेगा। उसके प्रति कहा हुआ आपका प्रत्येक वाक्य निरर्थक होगा ॥ १४ ॥

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां पापचेतसाम्।
तव मध्यावतरणं मम कृष्ण न रोचते ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण! वे सभी पापपूर्ण विचार लेकर बैठे हुए हैं; अतः उनके बीचमें आपका जाना मुझे अच्छा नहीं लगता है ॥ १५ ॥

दुर्बुद्धीनामशिष्टानां बहूनां पापचेतसाम्।
प्रतीपं वचनं मध्ये तव कृष्ण न रोचते ॥ १६ ॥

वे सबके सब दुर्बुद्धि, अशिष्ट और पापचित्त हैं। उनकी संख्या भी बहुत है। श्रीकृष्ण! आप उनके बीचमें जाकर कोई प्रतिकूल बात कहें, यह मुझे ठीक नहीं जान पडता ॥१६॥

अनुपासितवृद्धत्वाच्छ्रिया मोहाच्च दर्पितः।
वयोदर्पादमर्षाच्च न ते श्रेयो ग्रहीष्यति ॥ १७ ॥

दुर्योधनने कभी वृद्ध पुरुषोंका सेवन नहीं किया है। वह राज्यलक्ष्मीके मोहके कारण घमंडी हो रहा है। इसके सिवा उसे अपनी युवावस्थापर भी गर्व है और वह पाण्डवोंके प्रति सदा अमर्षसे भरा रहता है। अतः आपकी हितकर बात भी वह नहीं मानेगा ॥ १७ ॥

बलं बलवदप्यस्य यदि वक्ष्यसि माधव।
त्वय्यस्य महती शङ्का न करिष्यति ते वचः ॥ १८ ॥

माधव! दुर्योधनके पास प्रबल सैन्यबल है। इसके सिवा आपपर उसे महान् संदेह है। अतः आप यदि उससे अच्छी बात कहेंगे, तो भी वह आपकी बात नहीं मानेगा ॥१८॥

नेदमद्य युधा शक्यमिन्द्रेणापि सहामरैः।
इति व्यवसिताः सर्वे धार्तराष्ट्रा जनार्दन ॥ १९ ॥

जनार्दन! धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको यह दृढ विश्वास है कि देवताओंसहित इन्द्र भी इस समय युद्धके द्वारा हमारी इस सेनाको परास्त नहीं कर सकते ॥ १९ ॥

तेष्वेवमुपपन्नेषु कामक्रोधानुवर्तिषु।
समर्थमपि ते वाक्यमसमर्थं भविष्यति ॥ २० ॥

जो इस प्रकार निश्चय किये बैठे हैं और काम-क्रोधके ही पीछे चलनेवाले हैं, उनके प्रति आपका युक्तियुक्त एवं सार्थक वचन भी निरर्थक एवं असफल हो जायेगा ॥ २० ॥

मध्ये तिष्ठन्हस्त्यनीकस्य मन्दो रथाश्वयुक्तस्य बलस्य मूढः।
दुर्योधनो मन्यते वीतमन्युः कृत्स्ना मयेयं पृथिवी जितेति ॥ २१ ॥

रथियों और घुडसवारोंसे युक्त हाथियोंकी सेनाके बीचमें खडा होकर क्रोधसे रहित हुआ मन्दबुद्धि मूढ दुर्योधन यह समझता है कि यह सारी पृथ्वी मैंने जीत ली ॥ २१ ॥

आशंसते धृतराष्ट्रस्य पुत्रो महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम्।
तस्मिञ्शमः केवलो नोपलभ्यो बद्धं सन्तमागतं मन्यतेऽर्थम् ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्रका वह ज्येष्ठ पुत्र भूमण्डलका शत्रुरहित साम्राज्य पानेकी आशा रखता है। वह मनही मन यह संकल्प भी करता है कि जूएमें प्राप्त हुआ यह धन एवं राज्य अब मेरे ही अधिकारमें आबद्ध रहे; अतः उसके प्रति केवल संधिका प्रयत्न सफल न होगा ॥ २२ ॥

पर्यस्तेयं पृथिवी कालपक्वा दुर्योधनार्थे पाण्डवान्योद्धुकामाः ।
समागताः सर्वयोधाः पृथिव्यां राजानश्च क्षितिपालैः समेताः ॥ २३ ॥
जान पडता है, अब यह पृथ्वी कालसे परिपक्व होकर नष्ट होनेवाली है; क्योंकि राजाओंके साथ भूमण्डलके समस्त क्षत्रिय योद्धा दुर्योधनके लिये पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ एकत्र हुए हैं ॥ २३ ॥

सर्वे चैते कृतवैराः पुरस्तात्त्वया राजानो हृतसाराश्च कृष्ण ।
तवोद्वेगात्संश्रिता धार्तराष्ट्रान्सुसंहताः सह कर्णेन वीराः ॥ २४ ॥
श्रीकृष्ण! ये सबके सब वे ही भूपाल हैं, जिन्होंने पहले आपके साथ वैर ठाना था और जिनका सार-सर्वस्व आपने हर लिया था। ये लोग आपके भयसे धृतराष्ट्रपुत्रोंकी शरणमें आये हैं तथा कर्णके साथ संगठित हो वीरता दिखानेको उद्यत हुए हैं ॥ २४ ॥

त्यक्तात्मानः सह दुर्योधनेन हृष्टा योद्धुं पाण्डवान्सर्वयोधाः ।
तेषां मध्ये प्रविशेथा यदि त्वं न तन्मतं मम दाशार्ह वीर ॥ २५ ॥
ये सब योद्धा दुर्योधनके साथ मिल गये हैं और अपने प्राणोंका मोह छोडकर पाण्डवोंसे युद्ध करनेको तैयार हैं। दशार्हवंशी वीर! ऐसे विरोधियोंके बीचमें यदि आप जानेको उद्यत हैं तो यह मुझे ठीक नहीं जान पडता ॥ २५ ॥

तेषां समुपविष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम् ।
कथं मध्यं प्रपद्येथाः शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ २६ ॥
शत्रुसूदन! जहां दुष्टतापूर्ण विचार लिये बहुसंख्यक शत्रु बैठे हों, वहां उनके बीच आप कैसे जाना चाहते हैं? ॥ २६ ॥

सर्वथा त्वं महाबाहो देवैरपि दुरुत्सहः ।
प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जानामि तव शत्रुहन् ॥ २७ ॥
शत्रुहन्ता महाबाहु श्रीकृष्ण! यद्यपि सम्पूर्ण देवता भी सर्वथा आपके सामने टिक नहीं सकते हैं तथा आपका जो प्रभाव, पुरुषार्थ और बुद्धिबल है, उसे भी मैं जानता हूं; ॥ २७ ॥

या मे प्रीतिः पाण्डवेषु भूयः सा त्वयि माधव ।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च सौहृदाच्च ब्रवीम्यहम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ २९८४ ॥

तथापि माधव! पाण्डवोंपर जो मेरा प्रेम है, वही और उससे भी बढकर आपके प्रति है। अतः प्रेम, अधिक आदर और सौहार्दसे प्रेरित होकर मैं यह बात कह रहा हूं ॥ २८ ॥

महाभारतके उद्योगपर्वमें नब्बेवां अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥ २९८४ ॥

: ९१ :

भगवानुवाच

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयाद्विचक्षणः।
यथा वाच्यस्त्वद्विधेन सुहृदा मद्विधः सुहृत् ॥ १ ॥

भगवान् बोले– विदुर! एक महान् बुद्धिमान् पुरुष जैसी बात कह सकता है, विद्वान् मनुष्य जैसी सलाह दे सकता है, आप जैसे हितैषी पुरुषके लिये मेरे जैसे सुहृद्से जैसी बात कहनी उचित है ॥ १ ॥

धर्मार्थयुक्तं तथ्यं च यथा त्वय्युपपद्यते।
तथा वचनमुक्तोऽस्मि त्वयैतत्पितृमातृवत् ॥ २ ॥

और आपके मुखसे जैसा धर्म और अर्थसे युक्त सत्य वचन निकलना चाहिये, आपने मातापिताके समान स्नेहपूर्वक वैसी ही बात मुझसे कही है ॥ २ ॥

सत्यं प्राप्तं च युक्तं चाप्येवमेव यथात्थ माम्।
शृणुष्वागमने हेतुं विदुरावहितो भव ॥ ३ ॥

आपने मुझसे जो कुछ कहा है, वही सत्य, समयोचित और युक्तिसंगत है। तथापि विदुर! यहाँ मेरे आनेका जो कारण है, उसे सावधान होकर सुनिये ॥ ३ ॥

दौरात्म्यं धार्तराष्ट्रस्य क्षत्रियाणां च वैरिताम्।
सर्वमेतदहं जानन्क्षत्तः प्राप्तोऽद्य कौरवान् ॥ ४ ॥

विदुर! मैं धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी दुष्टता और क्षत्रिय योद्धाओंके वैरभाव इन सब बातोंको जानकर ही आज कौरवोंके पास आया हूं ॥ ४ ॥

पर्यस्तां पृथिवीं सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम्।
यो मोचयेन्मृत्युपाशात्प्राप्नुयाद्धर्ममुत्तमम् ॥ ५ ॥

अश्व, रथ और हाथियोंसहित यह सारी पृथ्वी विनष्ट होना चाहती है। जो इसे मृत्यु-पाशसे छुडानेका प्रयत्न करेगा, उसे ही उत्तम धर्म प्राप्त होगा ॥ ५ ॥

धर्मकार्यं यतञ्शक्त्या न चेच्छक्नोति मानवः।
प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः ॥ ६ ॥

मनुष्य यदि अपनी शक्तिभर किसी धर्मकार्यको करनेका प्रयत्न करते हुए भी उसमें सफलता न प्राप्त कर सके, तो भी उसे उसका पुण्य तो अवश्य ही प्राप्त हो जाता है। इस विषयमें मुझे संदेह नहीं है ॥ ६ ॥

मनसा चिन्तयन्पापं कर्मणा नाभिरोचयन्।
न प्राप्नोति फलं तस्य एवं धर्मविदो विदुः ॥ ७ ॥

इसी प्रकार यदि मनुष्य मनसे पापका चिन्तन करते हुए भी उसमें रुचि न होनेके कारण उसे क्रियाद्वारा सम्पादित न करे, तो उसे उस पापका फल नहीं मिलता है। ऐसा धर्मज्ञ पुरुष जानते हैं ॥ ७ ॥

सोऽहं यतिष्ये प्रशमं क्षत्तः कर्तुममायया।
कुरूणां सृञ्जयानां च संग्रामे विनशिष्यताम् ॥ ८ ॥

अतः विदुर ! मैं युद्धमें मर मिटनेको उद्यत हुए कौरवों तथा सृञ्जयोंमें संधि करानेका निश्छलभावसे प्रयत्न करूँगा ॥ ८ ॥

सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता।
कर्णदुर्योधनकृता सर्वे ह्येते तदन्वयाः ॥ ९ ॥

यह अत्यन्त भयंकर आपत्ति कर्ण और दुर्योधनद्वारा ही उपस्थित की गयी है; क्योंकि ये सभी नरेश इन्हीं दोनोंका अनुसरण करते हैं। अतः इस विपत्तिका प्रादुर्भाव कौरव-पक्षमें ही हुआ है ॥ ९ ॥

व्यसनैः क्लिश्यमानं हि यो मित्रं नाभिपद्यते।
अनुनीय यथाशक्ति तं नृशंसं विदुर्बुधाः ॥ १० ॥

जो किसी व्यसन या विपत्तिमें पड़कर क्लेश उठाते हुए मित्रको यथाशक्ति समझा बुझाकर उसका उद्धार नहीं करता है, उसे विद्वान् पुरुष निर्दय एवं क्रूर मानते हैं ॥ १० ॥

आ केशग्रहणान्मित्रमकार्यात्संनिवर्तयन्।
अवाच्यः कस्यचिद्भवति कृतयत्नो यथाबलम् ॥ ११ ॥

जो अपने मित्रको उसकी चोटी पकड़कर भी बुरे कार्यसे हटानेके लिये यथाशक्ति प्रयत्न करता है, वह किसीकी निन्दाका पात्र नहीं होता है ॥ ११ ॥

तत्समर्थं शुभं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम्।
धार्तराष्ट्रः सहामात्यो ग्रहीतुं विदुरार्हति ॥ १२ ॥

अतः, विदुर ! दुर्योधन और उसके मन्त्रियोंको मेरी शुभ, हितकर, युक्तियुक्त तथा धर्म और अर्थके अनुकूल बात अवश्य माननी चाहिये ॥ १२ ॥

हितं हि धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां तथैव च।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां च यतिष्येऽहममायया ॥ १३ ॥

मैं तो निष्कपटभावसे धृतराष्ट्रके पुत्रों, पाण्डवों तथा भूमण्डलके सभी क्षत्रियोंके हितका ही प्रयत्न करूंगा ॥ १३ ॥

हिते प्रयतमानं मां शङ्केद्दुर्योधनो यदि।
हृदयस्य च मे प्रीतिरानृण्यं च भविष्यति ॥ १४ ॥

इसप्रकार हितसाधनके लिये प्रयत्न करनेपर भी यदि दुर्योधन मुझपर शङ्का करेगा तो भी मेरे मनको तो प्रसन्नता ही होगी और मैं अपने कर्तव्यके भारसे उऋण हो जाऊंगा ॥ १४ ॥

ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाभिपद्यते।
सर्वयत्नेन मध्यस्थं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः ॥ १५ ॥

भाई–बन्धुओंमें परस्पर फूट होनेका अवसर आनेपर जो मित्र सर्वथा प्रयत्न करके उनमें मेल करानेके लिये मध्यस्थता नहीं करता, उसे विद्वान् पुरुष मित्र नहीं मानते हैं ॥ १५ ॥

न मां ब्रूयुरधर्मज्ञा मूढा असुहृदस्तथा।
शक्तो नावारयत्कृष्णः संरब्धान्कुरुपाण्डवान् ॥ १६ ॥

संसारके पापी, मूढ और शत्रुभाव रखनेवाले लोग मेरे विषयमें यह न कहें कि श्रीकृष्णने समर्थ होते हुए भी क्रोधसे भरे हुए कौरव-पाण्डवोंको युद्धसे नहीं रोका इसलिये भी मैं संधि करानेका प्रयत्न करूँगा ॥ १६ ॥

उभयोः साधयन्नर्थमहमागत इत्युत।
तत्र यत्नमहं कृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम् ॥ १७ ॥

मैं दोनों पक्षोंका स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये ही यहां आया हूं। इसके लिये पूरा प्रयत्न कर लेनेपर मैं लोगोंमें निन्दाका पात्र नहीं बनूँगा ॥ १७ ॥

मम धर्मार्थयुक्तं हि श्रुत्वा वाक्यमनामयम्।
न चेदादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥ १८ ॥

यदि मूर्ख दुर्योधन मेरे कष्टनिवारक एवं धर्म तथा अर्थके अनुकूल वचनोंको सुनकर भी उन्हें ग्रहण नहीं करेगा तो उसे दुर्भाग्यके अधीन होना पडेगा ॥ १८ ॥

अहापयन्पाण्डवार्थं यथावच्छमं कुरूणां यदि चाचरेयम्।
पुण्यं च मे स्याचरितं महार्थं मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥ १९ ॥

महात्मन्! यदि मैं पाण्डवोंके स्वार्थमें बाधा न आने देकर कौरवों तथा पाण्डवोंमें यथा-योग्य संधि करा सकूंगा तो मेरे द्वारा यह महान् पुण्यकर्म होगा और कौरव भी मृत्युके पाशसे मुक्त हो जायेंगे ॥ १९ ॥

अपि वाचं भाषमाणस्य काव्यां धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम् ।
अवेक्षेरन्धार्तराष्ट्राः समर्था मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः ॥ २० ॥

मैं शान्तिके लिये विद्वानोंद्वारा अनुमोदित धर्म और अर्थके अनुकूल हिंसारहित बात कहूँगा। यदि धृतराष्ट्रके पुत्र मेरी बातपर ध्यान देंगे तो उसे अवश्य मानेंगे तथा कौरव भी मुझे वास्तवमें शान्तिस्थापनके लिये ही आया हुआ जान मेरा आदर करेंगे ॥ २० ॥

न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ २१ ॥

जैसे क्रोधमें भरे हुए सिंहके सामने दूसरे पशु नहीं ठहर सकते, उसी प्रकार यदि मैं कुपित हो जाऊँ तो ये समस्त राजा लोग एक साथ मिलकर भी मेरा सामना करनेमें समर्थ न होंगे ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्त्वा वचनं वृष्णीनामृषभस्तदा ।
शयने सुखसंस्पर्शे शिश्ये यदुसुखावहः ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ २००६ ॥

वैशम्पायन बोले— राजन्! यदुकुलको सुख देनेवाले वृष्णिवंशविभूषण श्रीकृष्ण विदुरसे उपर्युक्त बात कहकर स्पर्शमात्रसे सुख देनेवाली शय्यापर सो गये ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९१ ॥ २००६ ॥

: ९२ :

वैशम्पायन उवाच

तथा कथयतोरेव तयोर्बुद्धिमतोस्तदा ।
शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय! उस समय बुद्धिमान् श्रीकृष्ण तथा विदुरके इस प्रकार वार्तालाप करते हुए ही वह नक्षत्रोंसे सुशोभित मङ्गलमयी रात्रि बहुतसी व्यतीत हो चुकी थी ॥ १ ॥

धर्मार्थकामयुक्ताश्च विचित्रार्थपदाक्षराः ।
शृण्वतो विविधा वाचो विदुरस्य महात्मनः ॥ २ ॥

महात्मा श्रीकृष्ण धर्म, अर्थ और कामके विषयमें अनेक प्रकारकी बातें कहते रहे। उनकी वाणीके पद, अर्थ और अक्षर बड़े विचित्र थे; अतः महात्मा विदुर भगवान्‌की कही हुई उन विविध वार्ताओंको प्रसन्नतापूर्वक सुनते रहे ॥ २ ॥

कथाभिरनुरूपाभिः कृष्णस्यामिततेजसः।
अकामस्येव कृष्णस्य सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ ३ ॥

इस प्रकार अमिततेजस्वी श्रीकृष्ण और विदुर दोनों ही एक दूसरेकी मनोनुकूल कथावार्तामें इतने तन्मय थे कि बिना इच्छाके ही उनकी वह रात्रि बहुतसी व्यतीत हो गयी थी ॥३॥

ततस्तु स्वरसम्पन्ना बहवः सूतमागधाः।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः केशवं प्रत्यबोधयन् ॥ ४ ॥

तदनन्तर मधुर स्वरसे युक्त बहुतसे सूत और मागध शङ्ख और दुन्दुभियोंके घोषसे भगवान् श्रीकृष्णको जगाने लगे ॥ ४ ॥

तत उत्थाय दाशार्हं ऋषभः सर्वसात्वताम्।
सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातःकार्यं जनार्दनः ॥ ५ ॥

तब समस्त यदुवंशियोंके शिरोमणि दशार्हनन्दन श्रीकृष्णने शय्यासे उठकर प्रातःकालका समस्त आवश्यक कर्म क्रमशः सम्पन्न किया ॥ ५ ॥

कृतोदकार्यजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः।
तत आदित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ॥ ६ ॥

संध्या-तर्पण और जप करके अग्निहोत्र करनेके पश्चात् माधवने अलंकृत होकर उदयकालमें सूर्यका उपस्थान किया ॥ ६ ॥

अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः।
संध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ॥ ७ ॥

इसी समय राजा दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि भी संध्योपासनामें लगे हुए अपराजित वीर दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके पास आये ॥ ७ ॥

आचक्षेतां तु कृष्णस्य धृतराष्ट्रं सभागतम्।
कुरूंश्च भीष्मप्रमुखान् राज्ञः सर्वांश्च पार्थिवान् ॥ ८ ॥

और उनसे इस प्रकार बोले— गोविन्द ! महाराज धृतराष्ट्र सभामें आ गये हैं। भीष्म आदि कौरव तथा अन्य समस्त भूपाल भी वहां उपस्थित हैं ॥ ८ ॥

त्वामर्थयन्ते गोविन्द दिवि शक्रमिवामराः।
तावभ्यनन्दद् गोविन्दः साम्ना परमवल्गुना ॥ ९ ॥

जैसे स्वर्गमें देवता इन्द्रका आवाहन करते हैं, इसी प्रकार भीष्म आदि सब लोग आपसे वहां दर्शन देनेकी प्रार्थना करते हैं। यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने परम मधुर सान्त्वना-पूर्ण वचनद्वारा उन दोनोंका अभिनन्दन किया ॥ ९ ॥

ततो विमल आदित्ये ब्राह्मणेभ्यो जनार्दनः ।
ददौ हिरण्यं वासांसि गाश्चाश्वांश्च परंतपः ॥ १० ॥

तदनन्तर निर्मल सूर्यदेवका उदय हो जानेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले भगवान् जनार्दनने ब्राह्मणोंको सुवर्ण, वस्त्र, गौ तथा घोडे दान किये ॥ १० ॥

विसृष्टवन्तं रत्नानि दाशार्हमपराजितम् ।
तिष्ठन्तमुपसंगम्य ववन्दे सारथिस्तदा ॥ ११ ॥

अनेक प्रकारके रत्नोंका दान करके खडे हुए उन अपराजित दाशार्ह वीरके पास जाकर सारथिने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया ॥ ११ ॥

तमुपस्थितमाज्ञाय रथं दिव्यं महामनाः ।
महाभ्रघननिर्घोषं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ १२ ॥

महान् सजल मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर शब्द करनेवाले तथा सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित हुए उस दिव्य रथको उपस्थित जान ॥ १२ ॥

अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा ब्राह्मणांश्च जनार्दनः ।
कौस्तुभं मणिमामुच्य श्रिया परमया ज्वलन् ॥ १३ ॥

अग्नि एवं ब्राह्मणोंको दाहिने करके, गलेमें कौस्तुभमणि डालकर, अपनी उत्कृष्ट शोभासे प्रकाशित होते हुए ॥ १३ ॥

कुरुभिः संवृतः कृष्णो वृष्णिभिश्चाभिरक्षितः ।
आतिष्ठत रथं शौरिः सर्वयादवनन्दनः ॥ १४ ॥

कौरवोंसे घिरकर एवं वृष्णिवंशी वीरोंसे सुरक्षित हो समस्त यादवोंको आनन्द प्रदान करनेवाले महामना शूरनन्दन जनार्दन श्रीकृष्ण उस रथपर आरूढ हुए ॥ १४ ॥

अन्वारुरोह दाशार्हं विदुरः सर्वधर्मवित् ।
सर्वप्राणभृतां श्रेष्ठं सर्वधर्मभृतां वरम् ॥ १५ ॥

समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण धर्मधारियोंमें उत्तम दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके पश्चात् समस्त धर्मोंके ज्ञाता विदुर भी उस रथपर जा बैठे ॥ १५ ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः ।
द्वितीयेन रथेनैनमन्वयातां परंतपम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीकृष्णके पीछे पीछे दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि भी दूसरे रथपर बैठकर चले ॥ १६ ॥

सात्यकिः कृतवर्मा च वृष्णीनां च महारथाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः कृष्णं रथैरश्वैर्गजैरपि ॥ १७ ॥

सात्यकि, कृतवर्मा तथा वृष्णिवंशीके दूसरे रथी भी हाथी, घोड़ों तथा रथोंपर बैठकर श्रीकृष्णके पीछेपीछे गये ॥ १७ ॥

तेषां हेमपरिष्कारा युक्ताः परमवाजिभिः ।
गच्छतां घोषिणश्चित्राश्चारु बभ्राजिरे रथाः ॥ १८ ॥

राजन् ! उन सबके जाते समय सोनेके आभूषणोंसे विभूषित, उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए एवं गम्भीर घोषयुक्त उनके विचित्र रथ बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ १८ ॥

सम्मृष्टसंसिक्तरजः प्रतिपेदे महापथम् ।
राजर्षिचरितं काले कृष्णो धीमाञ्श्रिया ज्वलन् ॥ १९ ॥

अपनी दिव्य कान्तिसे प्रकाशित होनेवाले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण यथासमय उस विशाल राजपथपर जा पहुँचे, जिसपर पूर्वकालके राजर्षि यात्रा करते थे। वहांकी धूल झाड़ दी गयी थी और सर्वत्र जलसे छिड़काव किया गया था ॥ १९ ॥

ततः प्रयाते दाशार्हे प्रावाद्यन्तैकपुष्कराः ।
शङ्खाश्च दध्मिरे तत्र वाद्यान्यन्यानि यानि च ॥ २० ॥

भगवान् श्रीकृष्णके प्रस्थान करनेपर ढोल, शङ्ख तथा दूसरे दूसरे बाजे एक साथ बज उठे ॥ २० ॥

प्रवीराः सर्वलोकस्य युवानः सिंहविक्रमाः ।
परिवार्य रथं शौरेरगच्छन्त परंतपाः ॥ २१ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले, सिंहके समान पराक्रमी तथा सम्पूर्ण जगत्के प्रख्यात तरुण वीर भगवान् श्रीकृष्णके रथको घेरकर चलते थे ॥ २१ ॥

ततोऽन्ये बहुसाहस्रा विचित्राद्भुतवाससः ।
असिप्रासायुधधराः कृष्णस्यासन्पुरःसराः ॥ २२ ॥

श्रीकृष्णके आगे चलनेवाले सैनिकोंकी संख्या कई सहस्र थी। उन सबने विचित्र एवं अद्भुत वस्त्र धारण कर रक्खे थे। उनके हाथोंमें खड्ग और प्रास आदि आयुध शोभा पाते थे ॥ २२ ॥

गजाः परःशतास्तत्र वराश्चाश्वाः सहस्रशः ।
प्रयान्तमन्वयुर्वीरं दाशार्हमपराजितम् ॥ २३ ॥

किसीसे पराजित न होनेवाले दशार्हवंशी वीर भगवान् श्रीकृष्णके पीछे उस यात्राके समय पांच सौ हाथी और सहस्रों रथ जा रहे थे ॥ २३ ॥

पुरं कुरूणां संवृत्तं द्रष्टुकामं जनार्दनम्।
सवृद्धबालं सस्त्रीकं रथ्यागतमरिंदमम् ॥ २४ ॥

जनमेजय! उस समय शत्रुनाशक भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये बालक, वृद्ध तथा स्त्रियोंसहित कौरवोंका सारा नगर सडकपर आ गया था ॥ २४ ॥

वेदिकापाश्रिताभिश्च समाक्रान्तान्यनेकशः।
प्रचलन्तीव भारेण योषिद्भिर्भवनान्युत ॥ २५ ॥

छतोंके सडककी ओरवाले भागपर बैठी हुई झुंडकी झुंड स्त्रियोंके भारसे मानो हस्तिनापुरके वे सारे भवन कम्पितसे हो रहे थे ॥ २५ ॥

संपूज्यमानः कुरुभिः संशृण्वन्विविधाः कथाः।
यथार्हं प्रतिसत्कुर्वन्प्रेक्षमाणः शनैर्ययौ ॥ २६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कौरवोंसे सम्मानित होते हुए, उनकी अनेक तरहकी बातें सुनते हुए और यथायोग्य उनका भी सत्कार करते हुए धीरे धीरे सबकी ओर देखते जा रहे थे ॥ २६ ॥

ततः सभां समासाद्य केशवस्यानुयायिनः।
सशङ्खैर्वेणुनिर्घोषैर्दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ २७ ॥

कौरवसभाके समीप पहुंचकर श्रीकृष्णके अनुगामी सेवकोंने शंख और वेणु आदि वाद्योंकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुंजा दिया ॥ २७ ॥

ततः सा समितिः सर्वा राज्ञाममिततेजसाम्।
सम्प्राकम्पत हर्षेण कृष्णागमनकाङ्क्षया ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् अमिततेजस्वी राजाओंकी वह सारी सभा भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी आकाङ्क्षाके कारण हर्षोल्लाससे चञ्चल हो उठी ॥ २८ ॥

ततोऽभ्याशगते कृष्णे समहृष्यन्नराधिपाः।
श्रुत्वा तं रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २९ ॥

श्रीकृष्णके निकट आनेपर उनके रथका मेघगर्जनाके समान गम्भीर घोष सुनकर सभी नरेश रोमाञ्चित हो उठे ॥ २९ ॥

आसाद्य तु सभाद्वारमृषभः सर्वसात्वताम्।
अवतीर्य रथाच्छौरिः कैलासशिखरोपमात् ॥ ३० ॥

सभाके द्वारपर पहुंचकर सर्वयादवशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने कैलासशिखरके समान समुज्ज्वल रथसे नीचे उतरकर ॥ ३० ॥

नगमेघप्रतीकाशां ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
महेन्द्रसदनप्रख्यां प्रविवेश सभां ततः ॥ ३१ ॥

पर्वतके समान विशाल और मेघके समान श्याम तथा तेजसे प्रज्वलितसी होनेवाली इन्द्रभवन-तुल्य उस कौरवसभाके भीतर प्रवेश किया ॥ ३१ ॥

पाणौ गृहीत्वा विदुरं सात्यकिं च महायशाः ।
ज्योतींष्यादित्यवद्राजन्कुरून्प्रच्छादयञ्श्रिया ॥ ३२ ॥

राजन् ! जैसे सूर्य अपनी प्रभासे आकाशके तारोंको तिरोहित कर देते हैं, उसी प्रकार महायशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी दिव्य कान्तिसे कौरवोंको आच्छादित करते हुए विदुर और सात्यकिका हाथ पकडे सभामें आये ॥ ३२ ॥

अग्रतो वासुदेवस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ।
वृष्णयः कृतवर्मा च आसन्कृष्णस्य पृष्ठतः ॥ ३३ ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके आगे आगे कर्ण और दुर्योधन थे और उनके पीछे कृतवर्मा तथा अन्य वृष्णिवंशी वीर थे ॥ ३३ ॥

धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य भीष्मद्रोणादयस्ततः ।
आसनेभ्योऽचलन्सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ ३४ ॥

उस समय भीष्म और द्रोणाचार्य आदि सब लोग भगवान् श्रीकृष्णका सम्मान करनेके लिये राजा धृतराष्ट्रको आगे करके अपने आसनोंसे उठकर आगे बढे ॥ ३४ ॥

अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्महामनाः ।
सहैव भीष्मद्रोणाभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥ ३५ ॥

दशार्हनन्दन श्रीकृष्णके आते ही महायशस्वी महामना प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणाचार्यके साथ ही उठ गये ॥ ३५ ॥

उत्तिष्ठति महाराजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे ।
तानि राजसहस्राणि समुत्तस्थुः समन्ततः ॥ ३६ ॥

महाराज धृतराष्ट्रके उठनेपर वहां चारों ओर बैठे हुए सहस्रों नरेश उठकर खडे हो गये ॥ ३६ ॥

आसनं सर्वतोभद्रं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
कृष्णार्थे कल्पितं तत्र धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ३७ ॥

राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वहां भगवान् श्रीकृष्णके लिये सुवर्णभूषित सर्वतोभद्र नामक सिंहासन रक्खा गया था ॥ ३७ ॥

स्मयमानस्तु राजानं भीष्मद्रोणौ च माधवः।
अभ्यभाषत धर्मात्मा राज्ञश्चान्यान्यथावयः ॥ ३८ ॥

उस समय धर्मात्मा भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराते हुए राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य तथा अवस्थाके अनुसार अन्य राजाओंसे भी वातालाप किया ॥ ३८ ॥

तत्र केशवमानर्चुः सम्यगभ्यागतं सभाम्।
राजानः पार्थिवाः सर्वे कुरवश्च जनार्दनम् ॥ ३९ ॥

वहां सभामें पधारे हुए भगवान् श्रीकृष्णका भूमण्डलके राजाओं तथा सभी कौरवोंने भलीभांति पूजन किया ॥ ३९ ॥

तत्र तिष्ठन्स दाशार्हो राजमध्ये परंतपः।
अपश्यदन्तरिक्षस्थानृषीन्परपुरंजयः ॥ ४० ॥

राजाओंके बीचमें खडे हुए शत्रुनगरविजयी परंतप श्रीकृष्णने आकाशमें कुछ ऋषिमुनियोंको खडे हुए देखा ॥ ४० ॥

ततस्तानभिसम्प्रेक्ष्य नारदप्रमुखानृषीन्।
अभ्यभाषत दाशार्हो भीष्मं शान्तनवं शनैः ॥ ४१ ॥

उन नारद आदि महर्षियोंको देखकर श्रीकृष्णने धीरेसे शान्तनुनन्दन भीष्मसे कहा ॥ ४१ ॥

पार्थिवीं समितिं द्रष्टुमृषयोऽभ्यागता नृप।
निमन्त्र्यन्तामासनैश्च सत्कारेण च भूयसा ॥ ४२ ॥

नरेश्वर! इस राज्यसभाको देखनेके लिये ऋषिगण पधारे हैं इन्हें अत्यन्त सत्कारपूर्वक आसन देकर निमन्त्रित किया जाये ॥ ४२ ॥

नैतेष्वनुपविष्टेषु शक्यं केनचिदासितुम्।
पूजा प्रयुज्यतामाशु मुनीनां भावितात्मनाम्। ॥ ४३ ॥

क्योंकि इनके बैठे बिना कोई भी बैठ नहीं सकता। पवित्र अन्तःकरणवाले इन मुनियोंकी शीघ्र पूजा की जानी चाहिये ॥ ४३ ॥

ऋषीञ्शान्तनवो दृष्ट्वा सभाद्वारमुपस्थितान्।
त्वरमाणस्ततो भृत्यानासनानीत्यचोदयत् ॥ ४४ ॥

शान्तनुनन्दन भीष्मने मुनियोंको देखकर सभाद्वारपर स्थित हुए राजकर्मचारियोंको बडी उतावलीके साथ आज्ञा दी कि आसन लाओ ॥ ४४ ॥

आसनान्यथ मृष्टानि महान्ति विपुलानि च।
मणिकाञ्चनचित्राणि समाजह्रुस्ततस्ततः ॥ ४५ ॥

तब सेवकोंने इधरउधरसे मणि एवं सुवर्ण जडे हुए शुद्ध, विशाल एवं विस्तृत आसन लाकर रख दिये ॥ ४५ ॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु गृहीतार्घेषु भारत ।
निषसादासने कृष्णो राजानश्च यथासनम् ॥ ४६ ॥

भारत ! अर्घ्य ग्रहण करके जब ऋषिलोग उन आसनोंपर बैठ गये, तब भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य राजाओंने भी अपना अपना आसन ग्रहण किया ॥ ४६ ॥

दुःशासनः सात्यकये ददावासनमुत्तमम् ।
विविंशतिर्ददौ पीठं काञ्चनं कृतवर्मणे ॥ ४७ ॥

दुःशासनने सात्यकिको उत्तम आसन दिया एवं विविंशतिने कृतवर्माको स्वर्णमय आसन प्रदान किया ॥ ४७ ॥

अविदूरेऽथ कृष्णस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ।
एकासने महात्मानौ निषीदतुरमर्षणौ ॥ ४८ ॥

अमर्षमें भरे हुए महामना कर्ण और दुर्योधन दोनों एक आसनपर श्रीकृष्णके पास ही बैठे थे ॥ ४८ ॥

गान्धारराजः शकुनिर्गान्धारैरभिरक्षितः ।
निषसादासने राजा सहपुत्रो विशां पते ॥ ४९ ॥

जनमेजय ! गान्धारदेशीय सैनिकोंसे सुरक्षित पुत्रसहित गान्धारराजशकुनि भी एक आसनपर बैठा था ॥ ४९ ॥

विदुरो मणिपीठे तु शुक्लस्पर्ध्याजिनोत्तरे ।
संस्पृशन्नासनं शौरेर्महामतिरुपाविशत् ॥ ५० ॥

परम बुद्धिमान् विदुर भगवान् श्रीकृष्णके आसनका स्पर्श करते हुए एक मणिमय चौकीपर, जिसके ऊपर श्वेत रङ्गका स्पृहणीय मृगचर्म बिछाया गया था, बैठे थे ॥ ५० ॥

चिरस्य दृष्ट्वा दाशार्हं राजानः सर्वपार्थिवाः ।
अमृतस्येव नातृप्यन्प्रेक्षमाणा जनार्दनम् ॥ ५१ ॥

सब राजा दीर्घकालके पश्चात् दशार्हकुलभूषण भगवान् जनार्दनको देखकर उन्हींकी ओर ऐसी एकटक दृष्टि लगाये रहे, कि मानो अमृत पी रहे हों । इस प्रकार उन्हें तृप्ति ही नहीं होती थी ॥ ५१ ॥

अतसीपुष्पसंकाशः पीतवासा जनार्दनः ।
व्यभ्राजत सभामध्ये हेम्नीवोपहितो मणिः ॥ ५२ ॥

अलसीके फूलकी भाँति मनोहर श्याम कान्तिवाले पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण उस सभाके मध्यभागमें स्वर्णपात्रमें रक्खी हुई नीलमणिके समान शोभा पा रहे थे ॥ ५२ ॥

ततस्तूष्णीं सर्वमासीद्गोविन्दगतमानसम् ।
न तत्र कश्चित्किञ्चिद्धि व्याजहार पुमान्क्वचित् ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ३०५९ ॥

उस समय वहाँ सबका मन भगवान् गोविंदमें ही लगा हुआ था। अतः सभी चुपचाप बैठे थे । कोई मनुष्य कहीं कुछ भी बोल नहीं रहा था ॥ ५३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें बयानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९२ ॥ ३०५९ ॥

: ९३ :

वैशम्पायन उवाच

तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु ।
वाक्यमभ्याददे कृष्णः सुदंष्ट्रो दुन्दुभिस्वनः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! जब सभामें सब राजा मौन होकर बैठ गये, तब सुन्दर दन्तावलिसे सुशोभित तथा दुन्दुभिके समान गम्भीर स्वरवाले यदुकुलतिलक भगवान् श्रीकृष्णने बोलना आरम्भ किया ॥ १ ॥

जीमूत इव घर्मान्ते सर्वां संश्रावयन्सभाम् ।
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधवः ॥ २ ॥

जैसे ग्रीष्मऋतुके अन्तमें बादल गर्जता है, उसी प्रकार उन्होंने गम्भीर गर्जनाके साथ सारी सभाको सुनाते हुए धृतराष्ट्रकी ओर देखकर इस प्रकार कहा ॥ २ ॥

कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत ।
अप्रयत्नेन वीराणामेतद्याचितुमागतः ॥ ३ ॥

भरतनन्दन ! मैं आपसे यह प्रार्थना करनेके लिये यहाँ आया हूँ कि क्षत्रियवीरोंका युद्धके लिए प्रयत्न किए बिना ही कौरवों और पाण्डवोंमें शान्तिस्थापन हो जाये ॥ ३ ॥

राजन्नान्यत्प्रवक्तव्यं तव निःश्रेयसं वचः ।
विदितं ह्येव ते सर्वं वेदितव्यमरिंदम ॥ ४ ॥

शत्रुदमन नरेश ! मुझे इसके सिवा दूसरी कोई कल्याणकारक बात आपसे नहीं कहनी है; क्योंकि जानने योग्य जितनी बातें हैं, वे सब आपको विदित ही हैं ॥ ४ ॥

इदमद्य कुलं श्रेष्ठं सर्वराजसु पार्थिव ।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं सर्वैः समुदितं गुणैः ॥ ५ ॥

भूपाल ! इस समय समस्त राजाओंमें यह कुरुवंश ही सर्वश्रेष्ठ है । इसमें शास्त्र एवं सदाचारका पूर्णतः आदर एवं पालन किया जाता है । यह कौरवकुल समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न है ॥ ५ ॥

कृपानुकम्पा कारुण्यमानृशंस्यं च भारत ।
तथार्जवं क्षमा सत्यं कुरुष्वेतद्विशिष्यते ॥ ६ ॥

भारत ! कुरुवंशियोंमें कृपा, अनुकम्पा, करुणा, अनृशंसता, सरलता, क्षमा और सत्य—ये सद्गुण अन्य राजवंशोंकी अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं ॥ ६ ॥

तस्मिन्नेवंविधे राजन्कुले महति तिष्ठति ।
त्वन्निमित्तं विशेषेण नेह युक्तमसाम्प्रतम् ॥ ७ ॥

राजन् ! ऐसे उत्तम गुणसम्पन्न एवं अत्यन्त प्रतिष्ठित कुलके होते हुए भी यदि इसमें आपके कारण कोई अनुचित कार्य हो, तो यह ठीक नहीं है ॥ ७ ॥

त्वं हि वारयिता श्रेष्ठः कुरूणां कुरुसत्तम ।
मिथ्या प्रचरतां तात बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ॥ ८ ॥

तात कुरुश्रेष्ठ ! यदि कौरवगण बाहर और भीतर प्रकट और गुप्तरूपसे मिथ्या आचरण असद्व्यवहार करने लगें, तो आप ही उन्हें रोककर सन्मार्गमें स्थापित करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः ।
धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत् ॥ ९ ॥

कुरुनन्दन ! दुर्योधनादि आपके पुत्र धर्म और अर्थको पीठ पीछे करके क्रूर मनुष्योंके समान आचरण करते हैं ॥ ९ ॥

अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः ।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु तद्वेत्थ भरतर्षभ ॥ १० ॥

पुरुषरत्न ! ये अपने ही श्रेष्ठ बन्धुओंके साथ अशिष्टतापूर्ण बर्ताव करते हैं । लोभने इनके हृदयको ऐसा वशीभूत कर लिया है कि इन्होंने धर्मकी मर्यादा तोड दी है । इस बातको आप अच्छी तरह जानते हैं ॥ १० ॥

सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता ।
उपेक्ष्यमाणा कौरव्य पृथिवीं घातयिष्यति ॥ ११ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! इस समय यह अत्यन्त भयंकर आपत्ति कौरवोंमें ही प्रकट हुई है । यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह समस्त भूमण्डलका विध्वंस कर डालेगी ॥ ११ ॥

शक्या चेयं शमयितुं त्वं चेदिच्छसि भारत ।
न दुष्करो ह्यत्र शमो मतो मे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

भारत ! यदि आप चाहते हों तो इस भयानक विपत्तिका अब भी निवारण किया जा सकता है। भरतश्रेष्ठ ! इन दोनों पक्षोंमें शान्ति स्थापित होना मैं कठिन कार्य नहीं मानता ॥ १२ ॥

त्वय्यधीनः शमो राजन्मयि चैव विशां पते ।
पुत्रान्स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान् ॥ १३ ॥

प्रजापालक कौरवनरेश ! इस समय इन दोनों पक्षोंमें संधि कराना आपके और मेरे अधीन है। आप अपने पुत्रोंको मर्यादामें रखिये और मैं पाण्डवोंको नियन्त्रणमें रक्खूँगा ॥ १३ ॥

आज्ञा तव हि राजेन्द्र कार्या पुत्रैः सहान्वयैः ।
हितं बलवदप्येषां तिष्ठतां तव शासने ॥ १४ ॥

राजेन्द्र ! आपके पुत्रोंको चाहिये कि वे अपने अनुयायियोंके साथ आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करें। आपके शासनमें रहनेसे ही इनका महान् हित हो सकता है ॥ १४ ॥

तव चैव हितं राजन्पाण्डवानामथो हितम् ।
शमे प्रयतमानस्य तव शासनकाङ्क्षिणाम् ॥ १५ ॥

राजन् ! यदि आप अपने पुत्रोंपर शासन करना चाहें और संधिके लिये प्रयत्न करें तो इसीमें आपका भी हित है और इसीसे पाण्डवोंका भी भला हो सकता है ॥ १५ ॥

स्वयं निष्फलमालक्ष्य संविधत्स्व विशां पते ।
सहभूतास्तु भरतास्तवैव स्युर्जनेश्वर ॥ १६ ॥

प्रजानाथ ! पाण्डवोंके साथ वैर और विवादका कोई अच्छा परिणाम नहीं हो सकता; यह विचारकर आप स्वयं ही संधिके लिये प्रयत्न करें। जनेश्वर ! ऐसा करनेसे भरतवंशी पाण्डव आपके ही सहायक होंगे ॥ १६ ॥

धर्मार्थयोस्तिष्ठ राजन्पाण्डवैरभिरक्षितः ।
न हि शक्यास्तथाभूता यत्नादपि नराधिप ॥ १७ ॥

राजन् ! आप पाण्डवोंसे सुरक्षित होकर धर्म और अर्थका अनुष्ठान कीजिये। नरेन्द्र ! आपको पाण्डवोंके समान संरक्षक प्रयत्न करनेपर भी नहीं मिल सकते ॥ १७ ॥

न हि त्वां पाण्डवैर्जेतुं रक्ष्यमाणं महात्मभिः ।
इन्द्रोऽपि देवैः सहितः प्रसहेत कुतो नृपाः ॥ १८ ॥

महात्मा पाण्डवोंसे सुरक्षित होनेपर आपको देवताओंसहित इन्द्र भी नहीं जीत सकते, फिर दूसरे किसी राजाकी तो बात ही क्या है ? ॥ १८ ॥

यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णो विविंशतिः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जिस पक्षमें भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक ॥ १९ ॥

सैन्धवश्च कलिङ्गश्च काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
युधिष्ठिरो भीमसेनः सव्यसाची यमौ तथा ॥ २० ॥

सिन्धुराज जयद्रथ, कलिङ्गराज, काम्बोजनरेश सुदक्षिण तथा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल-सहदेव ॥ २० ॥

सात्यकिश्च महातेजा युयुत्सुश्च महारथः ।
को नु तान्विपरीतात्मा युध्येत भरतर्षभ ॥ २१ ॥

महातेजस्वी सात्यकि तथा महारथी युयुत्सु हों; उस पक्षके योद्धाओंसे कौन विपरीत बुद्धि-वाला राजा युद्ध कर सकता है ? ॥ २१ ॥

लोकस्येश्वरतां भूयः शत्रुभिश्चाप्रधृष्यताम् ।
प्राप्स्यसि त्वममित्रघ्न सहितः कुरुपाण्डवैः ॥ २२ ॥

शत्रुसूदन नरेश ! कौरव और पाण्डवोंके साथ रहनेपर आप पुनः सम्पूर्ण जगत्के सम्राट् होकर शत्रुओंके लिये अजेय हो जायँगे ॥ २२ ॥

तस्य ते पृथिवीपालास्त्वत्समाः पृथिवीपते ।
श्रेयांसश्चैव राजानः संधास्यन्ते परंतप ॥ २३ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भूपाल ! उस दशामें जो राजा आपके समान या आपसे बडे हैं, वे भी आपके साथ संधि कर लेंगे ॥ २३ ॥

स त्वं पुत्रैश्च पौत्रैश्च भ्रातृभिः पितृभिस्तथा ।
सुहृद्भिः सर्वतो गुप्तः सुखं शक्ष्यसि जीवितुम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार आप अपने पुत्र, पौत्र, पिता, भाई और सुहृदोंद्वारा सर्वथा सुरक्षित रहकर सुखसे जीवन बिता सकेंगे ॥ २४ ॥

एतानेव पुरोधाय सत्कृत्य च यथा पुरा ।
अखिलां भोक्ष्यसे सर्वां पृथिवीं पृथिवीपते ॥ २५ ॥

पृथ्वीपते ! यदि आप पहलेकी भांति इन पाण्डवोंका ही सत्कार करके इन्हें आगे रक्खें तो इस सारी पृथ्वीका उपभोग करेंगे ॥ २५ ॥

एतैर्हि सहितः सर्वैः पाण्डवैः स्वैश्च भारत।
अन्यान्विजेष्यसे शत्रूनेष स्वार्थस्तवाखिलः ॥ २६ ॥

भारत! इन समस्त पाण्डवों तथा अपने पुत्रोंके साथ रहकर आप दूसरे शत्रुओंपर भी विजय प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार आपके सम्पूर्ण स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥ २६ ॥

तैरेवोपार्जितां भूमिं भोक्ष्यसे च परंतप।
यदि सम्पत्स्यसे पुत्रैः सहामात्यैर्नराधिप ॥ २७ ॥

शत्रुसंतापी नरेश! यदि आप मन्त्रियोंसहित अपने समस्त पुत्रों पाण्डवों और कौरवोंसे मिलकर रहेंगे तो उन्हींके द्वारा जीती हुई इस पृथ्वीका राज्य भोगेंगे ॥ २७ ॥

संयुगे वै महाराज दृश्यते सुमहान्क्षयः।
क्षये चोभयतो राजन्कं धर्ममनुपश्यसि ॥ २८ ॥

महाराज! युद्ध छिड़नेपर तो महान् संहार ही दिखायी देता है। राजन्! इस प्रकार दोनों पक्षका विनाश करानेमें आप कौनसा धर्म देखते हैं? ॥ २८ ॥

पाण्डवैर्निहतैः संख्ये पुत्रैर्वापि महाबलैः।
यद्विन्देथाः सुखं राजंस्तद्ब्रूहि भरतर्षभ ॥ २९ ॥

भरतश्रेष्ठ! यदि पाण्डव युद्धमें मारे गये अथवा आपके महाबली पुत्र ही नष्ट हो गये तो उस दशामें आपको कौनसा सुख मिलेगा? यह बताइये ॥ २९ ॥

शूराश्च हि कृतास्त्राश्च सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः।
पाण्डवास्तावकाश्चैव तान्रक्ष महतो भयात् ॥ ३० ॥

पाण्डव तथा आपके पुत्र सभी शूरवीर, अस्त्रविद्यामें पारङ्गत तथा युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले हैं। आप इन सबकी महान् भयसे रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

न पश्येम कुरून्सर्वान्पाण्डवांश्चैव संयुगे।
क्षीणानुभयतः शूरान्रथेभ्यो रथिभिर्हतान् ॥ ३१ ॥

युद्धके परिणामपर विचार करनेसे हमें समस्त कौरव और पाण्डव नष्टप्रायः दिखायी देते हैं। दोनों ही पक्षोंके शूरवीर रथियोंसे ही मारे जाकर नष्ट हो जायेंगे ॥ ३१ ॥

समवेताः पृथिव्यां हि राजानो राजसत्तम।
अमर्षवशमापन्ना नाशयेयुरिमाः प्रजाः ॥ ३२ ॥

नृपश्रेष्ठ! भूमण्डलके समस्त राजा यहाँ एकत्र हो अमर्षमें भरकर इन प्रजाओंका नाश करेंगे ॥ ३२ ॥

त्राहि राजन्निमं लोकं न नश्येयुरिमाः प्रजाः ।
त्वयि प्रकृतिमापन्ने शेषं स्यात्कुरुनन्दन ॥ ३३ ॥

कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले नरेश ! आप इस जगत्की रक्षा कीजिये; जिससे इन समस्त प्रजाओंका नाश न हो। आपके प्रकृतिस्थ होनेपर ये सब लोग बच जायेंगे ॥ ३३ ॥

शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्याः पुण्याभिजातयः ।
अन्योन्यसचिवा राजंस्तान्पाहि महतो भयात् ॥ ३४ ॥

राजन् ! ये सब नरेश शुद्ध, उदार, लज्जाशील, श्रेष्ठ, पवित्र कुलोंमें उत्पन्न और एक दूसरेके सहायक हैं। आप इन सबकी महान् भयसे रक्षा कीजिये ॥ ३४ ॥

शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम् ।
सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम् ॥ ३५ ॥

आप ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे ये भूपाल परस्पर मिलकर तथा एक साथ खा पीकर कुशलपूर्वक अपने अपने घरको वापस लौटें ॥ ३५ ॥

सुवाससः स्रग्विणश्च सत्कृत्य भरतर्षभ ।
अमर्षांश्च निराकृत्य वैराणि च परंतप ॥ ३६ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतकुलभूषण ! ये राजालोग उत्तम वस्त्र और सुन्दर हार पहन-कर अमर्ष और वैरको मनसे निकालकर यहाँसे सत्कारपूर्वक विदा हों ॥ ३६ ॥

हार्दं यत्पाण्डवेष्वासीत्प्राप्तेऽस्मिन्नायुषः क्षये ।
तदेव ते भवत्वद्य शश्वच्च भरतर्षभ ॥ ३७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अब आपकी आयु भी क्षीण हो चली है; इस बुढापेमें आपका पाण्डवोंके ऊपर वैसा ही स्नेह बना रहे, जैसा पहले था; पाण्डवों पर आपका यह प्यार हमेशाके लिए बना रहे ॥ ३७ ॥

बाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः ।
तान्पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ ॥ ३८ ॥

भरतर्षभ ! पाण्डव बाल्यावस्थामें ही पितासे बिछुड गये थे। आपने ही उन्हें पाल पोसकर बडा किया; अतः उनका और अपने पुत्रोंका न्यायपूर्वक पालन कीजिये ॥ ३८ ॥

भवतैव हि रक्ष्यास्ते व्यसनेषु विशेषतः ।
मा ते धर्मस्तथैवार्थो नश्येत भरतर्षभ ॥ ३९ ॥

भरतभूषण ! आपको ही पाण्डवोंकी सदा रक्षा करनी चाहिये। विशेषतः संकटके अवसर-पर तो आपके लिये उनकी रक्षा अत्यन्त आवश्यक है ही। कहीं ऐसा न हो कि पाण्डवोंसे वैर बाँधनेके कारण आपके धर्म और अर्थ दोनों नष्ट हो जाये ॥ ३९ ॥

आहुस्त्वां पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च।
भवतः शासनाद् दुःखमनुभूतं सहानुगैः ॥ ४० ॥

राजन्! पाण्डवोंने आपको प्रणाम करके प्रसन्न करते हुए यह संदेश कहलाया है— तात! आपकी आज्ञासे अनुचरोंसहित हमने भारी दुःख सहन किया है ॥ ४० ॥

द्वादशेमानि वर्षाणि वने निर्व्युषितानि नः।
त्रयोदशं तथाज्ञातैः सजने परिवत्सरम् ॥ ४१ ॥

बारह वर्षोंतक हमने निर्जन वनमें निवास किया है और तेरहवाँ वर्ष जनसमुदायसे भरे हुए नगरमें अज्ञात रहकर बिताया है ॥ ४१ ॥

स्थाता नः समये तस्मिन्पितेति कृतनिश्चयाः।
नाहास्म समयं तात तच्च नो ब्राह्मणा विदुः ॥ ४२ ॥

तात! आप हमारे ज्येष्ठ पिता हैं, अतः हमारे विषयमें की हुई अपनी प्रतिज्ञापर डटे रहेंगे अर्थात् वनवाससे लौटनेपर हमारा राज्य हमें प्रसन्नतापूर्वक लौटा देंगे ऐसा निश्चय करके ही हमने वनवास और अज्ञातवासकी शर्तको कभी नहीं तोडा है, इस बातको हमारे साथ रहे हुए ब्राह्मणलोग जानते हैं ॥ ४२ ॥

तस्मिन्नः समये तिष्ठ स्थितानां भरतर्षभ।
नित्यं संक्लेशिता राजन्स्वराज्यांशं लभेमहि ॥ ४३ ॥

भरतवंशशिरोमणे! हम उस प्रतिज्ञापर दृढतापूर्वक स्थित रहे हैं; अतः आप भी हमारे साथ की हुई अपनी प्रतिज्ञापर डटे रहें। राजन्! हमने सदा क्लेश उठाया है; अब हमें हमारा राज्यभाग प्राप्त होना चाहिये ॥ ४३ ॥

त्वं धर्ममर्थं युञ्जानः सम्यङ्नस्त्रातुमर्हसि।
गुरुत्वं भवति प्रेक्ष्य बहून्क्लेशांस्तितिक्ष्महे ॥ ४४ ॥

आप धर्म और अर्थके ज्ञाता हैं; अतः हमलोगोंकी रक्षा करनी आपको उचित है। आपमें गुरुत्व देखकर आप गुरुजन हैं, यह विचार करके आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये हम बहुतसे क्लेश चुपचाप सहते जा रहे हैं ॥ ४४ ॥

स भवान्मातृपितृवदस्मासु प्रतिपद्यताम्।
गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥ ४५ ॥

अब आप भी हमारे ऊपर माता पिताकी भाँति स्नेहपूर्ण बर्ताव कीजिये। भारत! गुरुजनोंके प्रति शिष्य एवं पुत्रोंका जो बर्ताव होना चाहिये, हम आपके प्रति उसीका पालन करते हैं ॥ ४५ ॥

पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिताः ।
संस्थापय पथिष्वस्मांस्तिष्ठ राजन्स्ववर्त्मनि ॥ ४६ ॥

हम पुत्रगण यदि कुमार्गपर जा रहे हों तो पिताके नाते आपका कर्तव्य है कि हमें सन्मार्गमें स्थापित करें। इसलिये आप स्वयं धर्मके सुन्दर मार्गपर स्थित होइये और हमें भी धर्मके मार्गपर ही लाईये ॥ ४६ ॥

आहुश्चेमां परिषदं पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
धर्मज्ञेषु सभासत्सु नेह युक्तमसाम्प्रतम् ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! आपके पुत्र पाण्डवोंने इस सभाके लिये भी यह संदेश दिया है आप समस्त सभासद्‌गण धर्मके ज्ञाता हैं। आपके रहते हुए यहां कोई अयोग्य कार्य हो, यह उचित नहीं है ॥ ४७ ॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ ४८ ॥

जहां सभासदोंके देखते देखते अधर्मके द्वारा धर्मका और मिथ्याके द्वारा सत्यका गला घोंटा जाता हो, वहां वे सभासद् नष्ट हुए माने जाते हैं ॥ ४८ ॥

विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते ।
न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ।
धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान् ॥ ४९ ॥

जिस सभामें अधर्मसे विद्ध हुआ धर्म प्रवेश करता है और सभासद्‌गण उस अधर्मरूपी काँटेको काटकर निकाल नहीं देते हैं, वहाँ उस काँटेसे सभासद् ही विद्ध होते हैं अर्थात उन्हें ही अधर्मसे लिप्त होना पडता है। जैसे नदी अपने तटपर उगे हुए वृक्षोंको गिराकर नष्ट कर देती है, उसी प्रकार वह अधर्मविद्ध धर्म ही उन सभासदोंका नाश कर डालता है ॥ ४९ ॥

ये धर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते ।
ते सत्यमाहुर्धर्मं च न्याय्यं च भरतर्षभ ॥ ५० ॥

भरतश्रेष्ठ ! जो पाण्डव सदा धर्मकी ओर ही दृष्टि रखते हैं और उसका विचार करके चुपचाप बैठे हैं, वे जो राज्य लौटा देनेका अनुरोध करते हैं, वह सत्य, धर्मसम्मत और न्यायसंगत है ॥ ५० ॥

शक्यं किमन्यद्वक्तुं ते दानादन्यज्जनेश्वर।
ब्रुवन्तु वा महीपालाः सभायां ये समासते।
धर्मार्थौ सम्प्रधार्यैव यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ५१ ॥

जनेश्वर! आपसे पाण्डवोंका राज्य लौटा देनेके सिवा दूसरी कौनसी बात यहाँ कही जा सकती है। इस सभामें जो भूमिपाल बैठे हैं, वे धर्म और अर्थका विचार करके स्वयं बतावें, मैं ठीक कहता हूँ या नहीं ॥ ५१ ॥

प्रमुञ्चेमान्मृत्युपाशात्क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभ।
प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा मन्युवशमन्वगाः ॥ ५२ ॥

क्षत्रियरत्न! आप इन क्षत्रियोंको मौतके फंदेसे छुडाइये। भरतश्रेष्ठ! शान्त हो जाइये, क्रोधके वशीभूत न होइये ॥ ५२ ॥

पित्र्यं तेभ्यः प्रदायांशं पाण्डवेभ्यो यथोचितम्।
ततः सपुत्रः सिद्धार्थो भुङ्क्ष्व भोगान्परंतप ॥ ५३ ॥

परंतप! पाण्डवोंको यथोचित पैतृक राज्यभाग देकर अपने पुत्रोंके साथ सफलमनोरथ हो मनोवाञ्छित भोग भोगिये ॥ ५३ ॥

अजातशत्रुं जानीषे स्थितं धर्मे सतां सदा।
सपुत्रे त्वयि वृत्तिं च वर्तते यां नराधिप ॥ ५४ ॥

नरेश्वर! आप जानते हैं कि अजातशत्रु युधिष्ठिर सदा सत्पुरुषोंके धर्मपर स्थित हैं। उनका पुत्रोंसहित आपके प्रति जो वर्ताव है, उससे भी आप अपरिचित नहीं हैं ॥ ५४ ॥

दाहितश्च निरस्तश्च त्वामेवोपाश्रितः पुनः।
इन्द्रप्रस्थं त्वयैवासौ सपुत्रेण विवासितः ॥ ५५ ॥

आप लोगोंने उन्हें लाक्षागृहकी आगमें जलवाया तथा राज्य और देशसे निकाल दिया; तो भी वे पुनः आपकी ही शरणमें आये हैं। पुत्रोंसहित आपने ही युधिष्ठिरको यहाँसे निकाल कर इन्द्रप्रस्थका निवासी बनाया ॥ ५५ ॥

स तत्र निवसन्सर्वान्वशमानीय पार्थिवान्।
त्वन्मुखानकरोद्राजन्न च त्वामत्यवर्तत ॥ ५६ ॥

वहाँ रहकर उन्होंने समस्त राजाओंको अपने वशमें किया और उन्हें आपका मुखापेक्षी बना दिया। राजन्! तो भी युधिष्ठिरने कभी आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया ॥ ५६ ॥

तस्यैवं वर्तमानस्य सौबलेन जिहीर्षता ।
राष्ट्राणि धनधान्यं च प्रयुक्तः परमोपधिः　　　॥ ५७ ॥

ऐसे साधु बर्तावबाले युधिष्ठिरके राज्य तथा धनधान्यका अपहरण कर लेनेकी इच्छासे सुबलपुत्र शकुनिने जूएके बहाने अपना महान् कपटजाल फैलाया ॥ ५७ ॥

स तामवस्थां सम्प्राप्य कृष्णां प्रेक्ष्य सभागताम् ।
क्षत्रधर्मादमेयात्मा नाकम्पत युधिष्ठिरः　　　॥ ५८ ॥

उस दयनीय अवस्थामें पहुंचकर अपनी महारानी कृष्णाको सभामें तिरस्कारपूर्वक लायी गयी देखकर भी महामना युधिष्ठिर अपने क्षत्रियधर्मसे विचलित नहीं हुए ॥ ५८ ॥

अहं तु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत ।
धर्मादर्थात्सुखाच्चैव मा राजन्नीनशः प्रजाः　　　॥ ५९ ॥

भारत ! मैं तो आपका और पाण्डवोंका भी कल्याण ही चाहता हूं। राजन् ! आप समस्त प्रजाको धर्म, अर्थ और सुखसे वञ्चित न कीजिये ॥ ५९ ॥

अनर्थमर्थं मन्वाना अर्थं वानर्थमात्मनः ।
लोभेऽतिप्रसृतान्पुत्रान्निगृह्णीष्व विशां पते　　　॥ ६० ॥

इस समय आप अनर्थको ही अर्थ और अर्थको ही अपने लिये अनर्थ माननेवाले तथा लोभमें अत्यन्त आसक्त अपने पुत्रोंको, हे प्रजानाथ ! काबूमें लाइये ॥ ६० ॥

स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिंदमाः ।
यत्ते पथ्यतमं राजंस्तस्मिंस्तिष्ठ परंतप　　　॥ ६१ ॥

राजन् ! शत्रुओंका दमन करनेवाले कुन्तीके पुत्र आपकी सेवाके लिये भी तैयार हैं और युद्धके लिये भी प्रस्तुत हैं । परंतप ! जो आपके लिये विशेष हितकर जान पडे, उसी मार्गका अवलम्बन कीजिये ॥ ६१ ॥

तद्वाक्यं पार्थिवाः सर्वे हृदयैः समपूजयन् ।
न तत्र कश्चिद्वक्तुं हि वाचं प्राक्रामदग्रतः　　　॥ ६२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ३१२१ ॥

श्रीकृष्णके उस कथनका समस्त राजाओंने हृदयसे आदर किया । वहां उसके उत्तरमें कोई भी कुछ कहनेके लिये अग्रसर न हो सका ॥ ६२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥ ३१२१ ॥

×

: ९४ :

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्नभिहिते वाक्ये केशवेन महात्मना ।
स्तिमिता हृष्टरोमाण आसन्सर्वे सभासदः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय! महात्मा श्रीकृष्णके ऐसी बात कहनेपर सम्पूर्ण सभासद् चकित हो गये। उनके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया ॥ १ ॥

कः स्विदुत्तरमेतस्माद्वक्तुमुत्सहते पुमान् ।
इति सर्वे मनोभिस्ते चिन्तयन्ति स्म पार्थिवाः ॥ २ ॥

ये सब भूपाल मन ही मन यह सोचने लगे कि भगवान्‌के इन वचनोंका उत्तर कौन मनुष्य दे सकता है? ॥ २ ॥

तथा तेषु च सर्वेषु तूष्णीम्भूतेषु राजसु ।
जामदग्न्य इदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ ३ ॥

इस प्रकार उन सब राजाओंके मौन ही रह जानेपर जमदग्निनन्दन परशुरामने कौरवसभामें इस प्रकार कहा ॥ ३ ॥

इमामेकोपमां राजञ्शृणु सत्यामशङ्कितः ।
तां श्रुत्वा श्रेय आदत्स्व यदि साध्विति मन्यसे ॥ ४ ॥

राजन्! तुम निःशङ्क होकर मेरी यह उदाहरणयुक्त बात सुनो। सुनकर यदि इसे कल्याणकारी और उत्तम समझो तो स्वीकार करो ॥ ४ ॥

राजा दम्भोद्भवो नाम सार्वभौमः पुराभवत् ।
अखिलां बुभुजे सर्वां पृथिवीमिति नः श्रुतम् ॥ ५ ॥

पूर्वकालकी बात है, दम्भोद्भव नामसे प्रसिद्ध एक सार्वभौम सम्राट् इस सम्पूर्ण अखण्ड भूमण्डलका राज्य भोगते थे; यह हमारे सुननेमें आया है ॥ ५ ॥

स स्म नित्यं निशापाये प्रातरुत्थाय वीर्यवान् ।
ब्राह्मणान्क्षत्रियांश्चैव पृच्छन्नास्ते महारथः ॥ ६ ॥

वे महारथी और पराक्रमी नरेश प्रतिदिन रात बीतनेपर प्रातःकाल उठकर ब्राह्मणों और क्षत्रियोंसे इस प्रकार पूछा करते थे ॥ ६ ॥

अस्ति कश्चिद्विशिष्टो वा मद्विधो वा भवेद्युधि ।
शूद्रो वैश्यः क्षत्रियो वा ब्राह्मणो वापि शस्त्रभृत् ॥ ७ ॥

क्या इस जगत्‌में कोई ऐसा शस्त्रधारी शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण है, जो युद्धमें मुझसे बढ़कर अथवा मेरे समान भी हो सके? ॥ ७ ॥

इति ब्रुवन्नन्वचरत्स राजा पृथिवीमिमाम् ।
दर्पेण महता मत्तः कंचिदन्यमचिन्तयन् ॥ ८ ॥

इसी प्रकार पूछते हुए वे राजा दम्भोद्भव महान् गर्वसे उन्मत्त हो दूसरे किसीको कुछ भी न समझते हुए इस पृथ्वीपर विचरने लगे ॥ ८ ॥

तं स्म वैद्या अकृपणा ब्राह्मणाः सर्वतोऽभयाः ।
प्रत्यषेधन्त राजानं श्लाघमानं पुनः पुनः ॥ ९ ॥

उस समय सर्वथा निर्भय, उदार एवं विद्वान् ब्राह्मणोंने बारंबार आत्मप्रशंसा करनेवाले उन नरेशको मना किया ॥ ९ ॥

प्रतिषिध्यमानोऽप्यसकृत्पृच्छत्येव स वै द्विजान् ।
अभिमानी श्रिया मत्तस्तमूचुर्ब्राह्मणास्तदा ॥ १० ॥

ब्राह्मणोंके मना करनेपर भी महाघमंडी, ऐश्वर्य मदसे मतवाला वह राजा ब्राह्मणोंसे बार बार पूछता था तब एक दिन ब्राह्मणोंने उससे कहा ॥ १० ॥

तपस्विनो महात्मानो वेदव्रतसमन्विताः ।
उदीर्यमाणं राजानं क्रोधदीप्ता द्विजातयः ॥ ११ ॥

वेदमें प्रतिपादित व्रतोंको करनेवाले महात्मा तपस्वी ब्राह्मण क्रोधसे तमतमा उठे और बार बार वही प्रश्न पूछनेवाले उस राजासे इस प्रकार बोले ॥ ११ ॥

अनेकजननं सख्यं ययोः पुरुषसिंहयोः ।
तयोस्त्वं न समो राजन्भवितासि कदाचन ॥ १२ ॥

जिन पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी दो पुरुषोंकी मित्रता अनेक तरहके ऐश्वर्योंको उत्पन्न करनेवाली है । हे राजन् ! उनकी समानता तुम कभी भी न कर सकोगे ॥ १२ ॥

एवमुक्तः स राजा तु पुनः पप्रच्छ तान्द्विजान् ।
क्व तौ वीरौ क्वजन्मानौ किंकर्माणौ च कौ च तौ ॥ १३ ॥

उनके ऐसा कहनेपर राजाने पुनः उन ब्राह्मणोंसे पूछा— वे दोनों वीर कहां हैं ? उनका जन्म किस स्थानमें हुआ है ? उनके कर्म कौन कौनसे हैं और उनके नाम क्या हैं ? ॥ १३ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

नरो नारायणश्चैव तापसाविति नः श्रुतम् ।
आयातौ मानुषे लोके ताभ्यां युध्यस्व पार्थिव ॥ १४ ॥

ब्राह्मण बोले— भूपाल ! हमने सुना है कि वे नरनारायण नामवाले तपस्वी हैं और इस समय मनुष्यलोकमें आये हैं । तुम उन्हीं दोनोंके साथ युद्ध करो ॥ १४ ॥

श्रूयते तौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ।
तपो घोरमनिर्देश्यं तप्येते गन्धमादने ॥ १५ ॥

सुना है, वे दोनों महात्मा नर और नारायण गन्धमादन पर्वतपर ऐसी घोर तपस्या कर रहे हैं, जिसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता ॥ १५ ॥

राम उवाच

स राजा महतीं सेनां योजयित्वा षडङ्गिनीम् ।
अमृष्यमाणः सम्प्रायाद्यत्र तावपराजितौ ॥ १६ ॥

परशुराम बोले– राजाको यह सहन नहीं हुआ । उन्होंने रथ, हाथी, घोडे, पैदल, शकट और ऊंट इन छः अङ्गोंसे युक्त विशाल सेनाको सुसज्जित करके उस स्थानकी यात्रा की, जहां कभी पराजित न होनेवाले वे दोनों महात्मा विद्यमान थे ॥ १६ ॥

स गत्वा विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ।
मृगयाणोऽन्वगच्छत्तौ तापसावपराजितौ ॥ १७ ॥

राजा उनकी खोज करते हुए दुर्गम एवं भयंकर गन्धमादन पर्वतपर अपराजित उन तपस्वी महात्माओंके पास जा पहुंचे ॥ १७ ॥

तौ दृष्ट्वा क्षुत्पिपासाभ्यां कृशौ धमनिसंततौ ।
शीतवातातपैश्चैव कर्शितौ पुरुषोत्तमौ ।
अभिगम्योपसंगृह्य पर्यपृच्छदनामयम् ॥ १८ ॥

वे दोनों पुरुषरत्न भूख प्याससे दुर्बल हो गये थे । उनके सारे अङ्गोंमें फैली हुई नस-नाडियां स्पष्ट दिखायी देती थीं । वे सर्दी गर्मी और हवाका कष्ट सहते सहते अत्यन्त कृशकाय हो रहे थे। निकट जाकर उनके चरणोंमें नमस्कार करके दम्भोद्भवने उन दोनोंका कुशल समाचार पूछा ॥ १८ ॥

तमर्चित्वा मूलफलैरासनेनोदकेन च ।
न्यमन्त्रयेतां राजानं किं कार्यं क्रियतामिति ॥ १९ ॥

तब नर और नारायणने राजाका स्वागत सत्कार करके आसन, जल और फल मूल देकर उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया। तदनन्तर पूछा कि हम आपकी क्या सेवा करें ? ॥ १९ ॥

दम्भोद्भव उवाच

बाहुभ्यां मे जिता भूमिर्निहताः सर्वशत्रवः ।
भवद्भ्यां युद्धमाकाङ्क्षन्नुपयातोऽस्मि पर्वतम् ।
आतिथ्यं दीयतामेतत्काङ्क्षितं मे चिरं प्रति ॥ २० ॥

दम्भोद्भव बोला— मैंने अपने बाहुबलसे सारी पृथ्वीको जीत लिया है तथा सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार कर डाला है। अब आप दोनोंसे युद्ध करनेकी इच्छा लेकर इस पर्वतपर आया हूं। यही मेरा चिरकालसे अभिलषित मनोरथ है । आप अतिथि सत्कारके रूपमें इसे ही पूर्ण कर दीजिये ॥ २० ॥

नरनारायणावूचतुः

अपेतक्रोधलोभोऽयमाश्रमो राजसत्तम ।
न ह्यस्मिन्नाश्रमे युद्धं कुतः शस्त्रं कुतोऽनृजुः ।
अन्यत्र युद्धमाकाङ्क्ष बहवः क्षत्रियाः क्षितौ ॥ २१ ॥

नर-नारायण बोले-- नृपश्रेष्ठ ! हमारा यह आश्रम क्रोध और लोभसे रहित है। इस आश्रममें कभी युद्ध नहीं होता, फिर अस्त्र शस्त्र और कुटिल मनोवृत्तिका मनुष्य यहाँ कैसे रह सकता है ? इस पृथ्वीपर बहुतसे क्षत्रिय हैं, अतः आप कहीं और जाकर युद्धकी अभिलाषा पूर्ण कीजिये ॥ २१ ॥

राम उवाच

उच्यमानस्तथापि स्म भूय एवाभ्यभाषत ।
पुनः पुनः क्षम्यमाणः सान्त्व्यमानश्च भारत ।
दम्भोद्भवो युद्धमिच्छन्नाह्वयत्येव तापसौ ॥ २२ ॥

परशुराम बोले-- भारत ! उन दोनों महात्माओंने बारंबार ऐसा कहकर राजासे क्षमा माँगी और उन्हें विविध प्रकारसे सान्त्वना दी। तथापि दम्भोद्भव युद्धकी इच्छासे उन दोनों तापसोंको कहते और ललकारते ही रहे ॥ २२ ॥

ततो नरस्त्विषीकाणां मुष्टिमादाय कौरव ।
अब्रवीदेहि युध्यस्व युद्धकामुक क्षत्रिय ॥ २३ ॥

भरतनन्दन ! तब महात्मा नरने हाथमें एक मुट्ठी सींक लेकर कहा, युद्ध चाहनेवाले क्षत्रिय ! आ, युद्ध कर ॥ २३ ॥

सर्वशस्त्राणि चादत्स्व योजयस्व च वाहिनीम् ।
अहं हि ते विनेष्यामि युद्धश्रद्धामितः परम् ॥ २४ ॥

अपने सारे अस्त्र शस्त्र ले ले। सारी सेनाको तैयार कर ले, मैं आजसे तेरे युद्धविषयक निश्चयको दूर कर दूंगा ॥ २४ ॥

दम्भोद्भव उवाच

यद्येतदस्त्रमस्मासु युक्तं तापस मन्यसे ।
एतेनापि त्वया योत्स्ये युद्धार्थी ह्यहमागतः ॥ २५ ॥

दम्भोद्भव बोले-- तापस! यदि आप यही अस्त्र हमारे लिये उपयुक्त मानते हैं तो मैं इसके होनेपर भी आपके साथ युद्ध अवश्य करूंगा; क्योंकि मैं युद्धके लिये ही यहाँ आया हूं ॥ २५ ॥

राम उवाच

इत्युक्त्वा शरवर्षेण सर्वतः समवाकिरत् ।
दम्भोद्भवस्तापसं तं जिघांसुः सहसैनिकः ॥ २६ ॥

परशुराम बोले-- ऐसा कहकर सैनिकोंसहित दम्भोद्भवने तपस्वी नरको मार डालनेकी इच्छासे सब ओरसे उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २६ ॥

तस्य तानस्यतो घोरानिषून्परतनुच्छिदः ।
कदर्थीकृत्य स मुनिरिषीकाभिरपानुदत् ॥ २७ ॥

शत्रुके शरीरको छिन्न भिन्न कर देनेवाले उन बाणोंका प्रहार करनेवाले दम्भोद्भवकी कोई परवा न करके सींकोंसे ही उन भयंकर बाणोंको दूर कर दिया ॥ २७ ॥

ततोऽस्मै प्रासृजद्घोरमैषीकमपराजितः ।
अस्त्रमप्रतिसंधेयं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २८ ॥

तब किसीसे पराजित न होनेवाले महर्षि नरने उनके ऊपर भयंकर ऐषीकास्त्रका प्रयोग किया; जिसका निवारण करना असम्भव था। यह एक अद्भुतसी घटना हुई ॥ २८ ॥

तेषामक्षीणि कर्णांश्च नस्तकांश्चैव मायया ।
निर्भिद्यवेधी स मुनिरिषीकाभिः समर्पयत् ॥ २९ ॥

इस प्रकार लक्ष्यवेध करनेवाले नर मुनिने मायाद्वारा सींकके बाणोंसे ही दम्भोद्भवके सैनिकोंकी आँखों, कानों और मस्तकोंको बींध डाला ॥ २९ ॥

स दृष्ट्वा श्वेतमाकाशमिषीकाभिः समाचितम् ।
पादयोर्न्यपतद्राजा स्वस्ति मेऽस्त्विति चाब्रवीत् ॥ ३० ॥

राजा दम्भोद्भव सींकोंसे भरे हुए समूचे आकाशको श्वेतवर्ण हुआ देखकर मुनिके चरणोंमें गिर पडे और बोले— भगवन् ! मेरा कल्याण हो ॥ ३० ॥

तमब्रवीन्नरो राजञ्शरण्यः शरणैषिणाम् ।
ब्रह्मण्यो भव धर्मात्मा मा च स्मैवं पुनः कृथाः ॥ ३१ ॥

राजन् ! शरण चाहनेवालोंको शरण देनेवाले भगवान् नरने उनसे कहा— आजसे तुम ब्राह्मणहितैषी और धर्मात्मा बनो । फिर कभी ऐसा साहस न करना ॥ ३१ ॥

मा च दर्पसमाविष्टः क्षेप्सीः कांश्चित्कदाचन ।
अल्पीयांसं विशिष्टं वा तत्ते राजन्परं हितम् ॥ ३२ ॥

राजन् ! आजसे फिर कभी घमंडमें आकर अपनेसे बडे या छोटे किन्हीं राजाओंपर किसी प्रकार भी आक्षेप न करना । इसीमें तुम्हारा बहुत बडा हित है ॥ ३२ ॥

कृतप्रज्ञो वीतलोभो निरहंकार आत्मवान् ।
दान्तः क्षान्तो मृदुः क्षेमः प्रजाः पालय पार्थिव ॥ ३३ ॥

भूपाल ! तुम विनीतबुद्धि, लोभशून्य, अहंकाररहित, मनस्वी, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, कोमलस्वभाव और कल्याणकारी होकर प्रजाका पालन करो ॥ ३३ ॥

अनुज्ञातः स्वस्ति गच्छ मैवं भूयः समाचरेः ।
कुशलं ब्राह्मणान्पृच्छेरावयोर्वचनाद्भृशम् ॥ ३४ ॥

मैंने तुम्हें आज्ञा दे दी, तुम्हारा कल्याण हो, जाओ । फिर ऐसा बर्ताव न करना । विशेषतः हम दोनोंके कहनेसे तुम ब्राह्मणोंसे उनका कुशल समाचार पूछते रहना ॥ ३४ ॥

ततो राजा तयोः पादावभिवाद्य महात्मनोः ।
प्रत्याजगाम स्वपुरं धर्मं चैवाचिनोद्भृशम् ॥ ३५ ॥

तदनन्तर राजा दम्भोद्भव उन दोनों महात्माओंके चरणोंमें प्रणाम करके अपनी राजधानीमें लौट आये और विशेषरूपसे धर्मका संग्रह करने लगे ॥ ३५ ॥

सुमहच्चापि तत्कर्म यन्नरेण कृतं पुरा ।
ततो गुणैः सुबहुभिः श्रेष्ठो नारायणोऽभवत् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार पूर्वकालमें महात्मा नरने वह महान् कर्म किया था । उनसे भी बहुत गुणोंकी अधिकताके कारण भगवान् नारायण श्रेष्ठ हुए ॥ ३६ ॥

तस्माद्यावद्धनुःश्रेष्ठे गाण्डीवेऽस्त्रं न युज्यते ।
तावत्त्वं मानमुत्सृज्य गच्छ राजन्धनंजयम् ॥ ३७ ॥

अतः, राजन् ! जबतक श्रेष्ठ धनुष गाण्डीवपर दिव्य अस्त्रोंका संधान नहीं किया जाता, तबतक ही तुम अभिमान छोडकर अर्जुनसे मिल जाओ ॥ ३७ ॥

काकुदीकं शुकं नाकमक्षिसंतर्जनं तथा ।
संतानं नर्तनं घोरमास्यमोदकमष्टमम् ॥ ३८ ॥

काकुदीक–प्रस्वापन, शुक–मोहन, नाक–उन्मादन, अक्षिसंतर्जन–त्रासन, संतान–दैवत, नर्तन–पशाच, घोर–राक्षस और आस्यमोदक–याम्य– ये आठ प्रकारके अस्त्र हैं ॥ ३८ ॥

एतैर्विद्धा सर्व एव मरणं यान्ति मानवाः ।
उन्मत्ताश्च विचेष्टन्ते नष्टसंज्ञा विचेतसः ॥ ३९ ॥

इन अस्त्रोंसे विद्ध होनेपर सभी मनुष्य मृत्युको प्राप्त होते हैं । इन अस्त्रोंके प्रयोगसे कुछ लोग उन्मत्त हो जाते हैं और वैसी ही चेष्टाएं करने लगते हैं ॥ ३९ ॥

स्वपन्ते च प्लवन्ते च छर्दयन्ति च मानवाः ।
मूत्रयन्ते च सततं रुदन्ति च हसन्ति च ॥ ४० ॥

कई मनुष्य सोने लगते हैं । कुछ उछलते-कूदते और छींकते हैं । कितने ही मलमूत्र करने लग जाते हैं और कुछ लोग निरंतर रोते-हंसते रहते हैं ॥ ४० ॥

असंख्येया गुणाः पार्थे तद्विशिष्टो जनार्दनः ।
त्वमेव भूयो जानासि कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ ४१ ॥

महाराज ! अर्जुनमें असंख्य गुण हैं एवं भगवान् जनार्दन तो उनसे भी बढकर हैं । तुम भी कुन्तीपुत्र अर्जुनको अच्छी तरह जानते हो ॥ ४१ ॥

नरनारायणौ यौ तौ तावेवार्जुनकेशवौ ।
विजानीहि महाराज प्रवीरौ पुरुषर्षभौ ॥ ४२ ॥

जो दोनों महात्मा नर और नारायणके नामसे प्रसिद्ध हैं, वे ही अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं । हे महाराज ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि वे दोनों पुरुषरत्न सर्वश्रेष्ठ वीर हैं ॥ ४२ ॥

यद्येतदेवं जानासि न च मामतिशङ्कसे ।
आर्यां मतिं समास्थाय शाम्य भारत पाण्डवैः ॥ ४३ ॥

भारत ! यदि तुम इस बातको इस रूपमें जानते हो और मुझपर तुम्हें तनिक भी संदेह नहीं है, तो मेरे कहनेसे श्रेष्ठबुद्धिका आश्रय लेकर पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥४३॥

अथ चेन्मन्यसे श्रेयो न मे भेदो भवेदिति ।
प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा च युद्धे मनः कृथाः ॥ ४४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यदि तुम्हारी यह इच्छा हो कि हम लोगोंमें फूट न हो और इसीमें तुम अपना कल्याण समझो, तब तो संधि करके शान्त हो जाओ और युद्धमें मन न लगाओ ॥४४॥

भवतां च कुरुश्रेष्ठ कुलं बहुमतं भुवि ।
तत्तथैवास्तु भद्रं ते स्वार्थमेवानुचिन्तय ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ ३१६६ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! तुम्हारा कुल इस पृथ्वीपर बहुत प्रतिष्ठित है । यह उसीप्रकार सम्मानित बना रहे और तुम्हारा कल्याण हो, इसके लिये अपने वास्तविक स्वार्थका ही चिन्तन करो ॥४५॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें चौरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९४ ॥ ३१६६ ॥

: ९५ :

वैशंपायन उवाच

जामदग्न्यवचः श्रुत्वा कण्वोऽपि भगवानृषिः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! जमदग्निनन्दन परशुरामका यह वचन सुनकर भगवान् कण्व मुनिने भी कौरवसभामें दुर्योधनसे यह बात कही ॥ १ ॥

अक्षयश्चाव्ययश्चैव ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तथैव भगवन्तौ तौ नरनारायणावृषी ॥ २ ॥

राजन् ! जैसे लोकपितामह ब्रह्मा अक्षय और अविनाशी हैं, उसी प्रकार वे दोनों भगवान् नर-नारायण ऋषि भी हैं ॥ २ ॥

आदित्यानां हि सर्वेषां विष्णुरेकः सनातनः ।
अजय्यश्चाव्ययश्चैव शाश्वतः प्रभुरीश्वरः ॥ ३ ॥

अदितिके सभी पुत्रोंमें अथवा सम्पूर्ण आदित्योंमें एकमात्र भगवान् विष्णु ही अजेय, अविनाशी, नित्य विद्यमान एवं सर्वसमर्थ सनातन परमेश्वर हैं ॥ ३ ॥

निमित्तमरणास्त्वन्ये चन्द्रसूर्यौ मही जलम् ।
वायुरग्निस्तथाकाशं ग्रहास्तारागणास्तथा ॥ ४ ॥

अन्य सब लोग तो किसी न किसी निमित्तसे मृत्युको प्राप्त होते ही हैं । चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रह तथा नक्षत्र– ये सभी नाशवान् हैं ॥ ४ ॥

×

ते च क्षयान्ते जगतो हित्वा लोकत्रयं सदा ।
क्षयं गच्छन्ति वै सर्वे सृज्यन्ते च पुनः पुनः ॥ ५ ॥

जगत्‌का विनाश होनेके पश्चात् ये चन्द्र, सूर्य आदि तीनों लोकोंका सदाके लिये परित्याग करके नष्ट हो जाते हैं । फिर सृष्टिकालमें इन सबकी बारंबार सृष्टि होती है ॥ ५ ॥

मुहूर्तमरणास्त्वन्ये मानुषा मृगपक्षिणः ।
तिर्यग्योन्यश्च ये चान्ये जीवलोकचराः स्मृताः ॥ ६ ॥

इनके सिवा ये दूसरे जो मनुष्य, पशु, पक्षी तथा जीवलोकमें विचरनेवाले अन्यान्य तिर्यग्योनिके प्राणी हैं, वे अल्पकालमें ही कालके गालमें चले जाते हैं ॥ ६ ॥

भूयिष्ठेन तु राजानः श्रियं भुक्त्वायुषः क्षये ।
मरणं प्रतिगच्छन्ति भोक्तुं सुकृतदुष्कृतम् ॥ ७ ॥

राजालोग भी प्रायः राजलक्ष्मीका उपभोग करके आयुकी समाप्ति होनेपर अपने पाप-पुण्यका फल भोगनेके लिये पुनः मृत्युकी तरफ जाते हैं ॥ ७ ॥

स भवान्धर्मपुत्रेण शमं कर्तुमिहार्हति ।
पाण्डवाः कुरवश्चैव पालयन्तु वसुंधराम् ॥ ८ ॥

राजन् ! आपको धर्मपुत्र युधिष्ठिरके साथ संधि कर लेनी चाहिये। मैं चाहता हूं कि पाण्डव तथा कौरव दोनों मिलकर इस पृथ्वीका पालन करें ॥ ८ ॥

बलवानहमित्येव न मन्तव्यं सुयोधन ।
बलवन्तो हि बलिभिर्दृश्यन्ते पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥

सुयोधन ! तुम्हें यह नहीं मानना चाहिये कि मैं ही सबसे अधिक बलवान् हूं; क्योंकि संसारमें बलवानोंसे भी बलवान् पुरुष देखे जाते हैं ॥ ९ ॥

न बलं बलिनां मध्ये बलं भवति कौरव ।
बलवन्तो हि ते सर्वे पाण्डवा देवविक्रमाः ॥ १० ॥

कुरुनन्दन ! बलवानोंके बीचमें सैनिकबलको बल नहीं समझा जाता है । समस्त पाण्डव देवताओंके समान पराक्रमी हैं; अतः वे ही तुम्हारी अपेक्षा बलवान् हैं ॥ १० ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मातलेर्दातुकामस्य कन्यां मृगयतो वरम् ॥ ११ ॥

इस प्रसङ्गमें कन्यादान करनेके लिये वर ढूँढनेवाले मातलिके इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं ॥ ११ ॥

मतस्त्रैलोक्यराजस्य मातलिर्नाम सारथिः ।
तस्यैकैव कुले कन्या रूपतो लोकविश्रुता ॥ १२ ॥

त्रिलोकीनाथ इन्द्रके प्रिय सारथिका नाम मातलि है । उनके कुलमें उन्हींकी एक कन्या थी, जो अपने रूपके कारण सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात थी ॥ १२ ॥

गुणकेशीति विख्याता नाम्ना सा देवरूपिणी ।
श्रिया च वपुषा चैव स्त्रियोऽन्याः सातिरिच्यते ॥ १३ ॥

वह देवरूपिणी कन्या गुणकेशीके नामसे प्रसिद्ध थी । गुणकेशी अपनी शोभा तथा सुन्दर शरीरकी दृष्टिसे उस समयकी सम्पूर्ण स्त्रियोंसे श्रेष्ठ थी ॥ १३ ॥

तस्याः प्रदानसमयं मातलिः सह भार्यया ।
ज्ञात्वा विममृशे राजंस्तत्परः परिचिन्तयन् ॥ १४ ॥

राजन् ! उसके विवाहका समय आया जान मातलिने एकाग्रचित्त हो उसीके विषयमें चिन्तन करते हुए अपनी पत्नीके साथ विचार-विमर्श किया ॥ १४ ॥

धिक्खल्वलघुशीलानामुच्छ्रितानां यशस्विनाम् ।
नराणामृद्धसत्त्वानां कुले कन्याप्ररोहणम् ॥ १५ ॥

जिनका शीलस्वभाव श्रेष्ठ है, जो ऊँचे कुलमें उत्पन्न हुए यशस्वी तथा उत्तम बलवाले हैं; ऐसे लोगोंके कुलमें कन्याका उत्पन्न होना दुःखकी ही बात है ॥ १५ ॥

मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते ।
कुलत्रयं संशयितं कुरुते कन्यका सताम् ॥ १६ ॥

कन्या मातृकुलको, पितृकुलको तथा जहां वह ब्याही जाती है, उस कुलको अर्थात् सत्पुरुषोंके इन तीनों कुलोंको संशयमें डाल देती है ॥ १६ ॥

देवमानुषलोकौ द्वौ मानसेनैव चक्षुषा ।
अवगाह्यैव विचितौ न च मे रोचते वरः ॥ १७ ॥

मैंने मानसदृष्टिके आधारपर देवलोक तथा मनुष्यलोक दोनोंमें अच्छी तरह घूम--फिरकर कन्याके लिये वरका अन्वेषण किया है, पर वहाँ भी वर मुझे पसंद नहीं आ रहा है ॥ १७ ॥

न देवान्नैव दितिजान्न गन्धर्वान्न मानुषान् ।
अरोचयं वरकृते तथैव बहुलानृषीन् ॥ १८ ॥

मैंने वरके लिये बहुतसे देवताओं, दैत्यों, गन्धर्वों और मनुष्यों तथा ऋषियोंको भी देखा; परंतु कोई मुझे पसंद नहीं आया ॥ १८ ॥

आर्यया तु स सम्मन्त्र्य सह रात्रौ सुधर्मया ।
मातलिर्नागलोकाय चकार गमने मतिम् ॥ १९ ॥

तब मातलिने रातमें अपनी पत्नी सुधर्माके साथ सलाह करके नागलोकमें जानेका विचार किया ॥ १९ ॥

न मे देवमनुष्येषु गुणकेश्याः समो वरः ।
रूपतो दृश्यते कश्चिन्नागेषु भविता ध्रुवम् ॥ २० ॥

वे अपनी पत्नीसे बोले-- देवि ! देवताओं और मनुष्योंमें तो गुणकेशीके योग्य कोई, रूपवान् वर नहीं दिखायी देता। नागलोकमें कोई न कोई उसके योग्य वर अवश्य होगा ॥ २० ॥

इत्यामन्त्र्य सुधर्मां स कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
कन्यां शिरस्युपाघ्राय प्रविवेश महीतलम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ ३१८७ ॥

सुधर्मासे ऐसी सलाह करके मातलिने इष्टदेवकी परिक्रमा की और कन्याका मस्तक सूंघकर रसातलमें प्रवेश किया ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें पिच्चानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥ ३१८७ ॥

: ९६ :

कण्व उवाच

मातलिस्तु व्रजन्मार्गे नारदेन महर्षिणा ।
वरुणं गच्छता द्रष्टुं समागच्छद्यदृच्छया ॥ १ ॥

कण्व मुनि बोले-- राजन् ! उसी समय नागलोकके मार्गमें जाते हुए मातलिकी वरुणदेवतासे मिलनेके लिये उधर जाते हुए नारदके साथ अकस्मात् भेंट हो गयी ॥ १ ॥

नारदोऽथाब्रवीदेनं क भवान्गन्तुमुद्यतः ।
स्वेन वा सूत कार्येण शासनाद्वा शतक्रतोः ॥ २ ॥

नारदने उनसे पूछा-- देवसारथे ! तुम कहाँ जानेको उद्यत हुए हो ? तुम्हारी यह यात्रा किसी निजी कार्यसे है अथवा देवेन्द्रके आदेशसे हुई है ? ॥ २ ॥

मातलिर्नारदेनैवं सम्पृष्टः पथि गच्छता ।
यथावत्सर्वमाचष्ट स्वकार्यं वरुणं प्रति ॥ ३ ॥

तब वरुणकी ओर जाते हुए नारदजीके द्वारा मार्गमें इस प्रकार पूछे जानेपर मातलिने उनसे अपना सारा कार्य यथावत्‌रूपसे बताया ॥ ३ ॥

तमुवाचाथ स मुनिर्गच्छावः सहिताविति ।
सलिलेशदिदृक्षार्थमहमप्युद्यतो दिवः ॥ ४ ॥

तब उन मुनिने मातलिसे कहा कि हम दोनों साथ--साथ चलें। मैं भी जलके स्वामी वरुणदेवके दर्शन करनेकी इच्छासे देवलोकसे आ रहा हूं ॥ ४ ॥

अहं ते सर्वमाख्यास्ये दर्शयन्वसुधातलम् ।
दृष्ट्वा तत्र वरं कंचिद्रोचयिष्याव मातले ॥ ५ ॥

मैं तुम्हें पृथ्वीके नीचेके लोकोंको दिखाते हुए वहाँकी सब वस्तुओंका परिचय दूंगा । मातले ! वहाँ हम दोनों किसी योग्य वरको देखकर पसंद करेंगे ॥ ५ ॥

अवगाह्य ततो भूमिमुभौ मातलिनारदौ ।
ददृशाते महात्मानौ लोकपालमपां पतिम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर मातलि और नारद दोनों महात्माओंने पृथ्वीके भीतर प्रवेश करके जलके स्वामी लोकपाल वरुणके दर्शन किए ॥ ६ ॥

तत्र देवर्षिसदृशीं पूजां प्राप स नारदः ।
महेन्द्रसदृशीं चैव मातलिः प्रत्यपद्यत ॥ ७ ॥

नारदजीको यहाँ देवर्षियोंके योग्य और मातलिको देवराज इन्द्रके समान आदर--सत्कार प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥

तावुभौ प्रीतमनसौ कार्यवत्तां निवेद्य ह ।
वरुणेनाभ्यनुज्ञातौ नागलोकं विचेरतुः ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् उन दोनोंने प्रसन्नचित्त होकर वरुणदेवतासे अपना कार्य निवेदन किया और उनकी आज्ञा लेकर वे नागलोकमें विचरने लगे ॥ ८ ॥

नारदः सर्वभूतानामन्तर्भूमिनिवासिनाम् ।
जानंश्चकार व्याख्यानं यन्तुः सर्वमशेषतः ॥ ९ ॥

नारद पाताललोकमें निवास करनेवाले सभी प्राणियोंको जानते थे । अतः उन्होंने इन्द्र-सारथि मातलिको वहाँकी सब वस्तुओंके विषयमें विस्तारपूर्वक बताना आरम्भ किया ॥९॥

नारद उवाच

दृष्टस्ते वरुणस्तात पुत्रपौत्रसमावृतः ।
पश्योदकपतेः स्थानं सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ॥ १० ॥

नारद बोले-- सूत ! तुमने पुत्रों और पौत्रोंसे घिरे हुए वरुणदेवताका दर्शन किया है। देखो, यह जलेश्वर वरुणका समृद्धिशाली सर्वतोभद्रा निवासस्थान है ॥ १० ॥

एष पुत्रो महाप्राज्ञो वरुणस्येह गोपतेः ।
एष तं शीलवृत्तेन शौचेन च विशिष्यते ॥ ११ ॥

ये गोपति वरुणके परम बुद्धिमान् पुत्र हैं; जो अपने उत्तम स्वभाव, सदाचार और पवित्रताके कारण अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं ॥ ११ ॥

एषोऽस्य पुत्रोऽभिमतः पुष्करः पुष्करेक्षणः ।
रूपवान्दर्शनीयश्च सोमपुत्र्या वृतः पतिः ॥ १२ ॥

वरुणदेवके इन प्रिय पुत्रका नाम पुष्कर है। इनके नेत्र विकसित कमलके समान सुशोभित हैं। ये रूपवान् तथा दर्शनीय हैं। इसीलिये सोमकी पुत्रीने इनका पतिरूपसे वरण किया है ॥ १२ ॥

ज्योत्स्नाकालीति यामाहुर्द्वितीयां रूपतः श्रियम् ।
आदित्यस्यैव गोः पुत्रो ज्येष्ठः पुत्रः कृतः स्मृतः ॥ १३ ॥

सोमकी जो दूसरी पुत्री हैं, वे ज्योत्स्नाकालीके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा रूपमें साक्षात् लक्ष्मीके समान जान पडती हैं। उन्होंने अदितिदेवीके ज्येष्ठ पुत्र सूर्यदेवको अपना श्रेष्ठ पति बनाया एवं माना है ॥ १३ ॥

भवनं पश्य वारुण्या यदेतत्सर्वकाञ्चनम् ।
यां प्राप्य सुरतां प्राप्ताः सुराः सुरपतेः सखे ॥ १४ ॥

महेन्द्रमित्र ! देखो, यह वारुणीका भवन है, जो सब ओरसे सुवर्णका ही बना हुआ है। यहाँ पहुंचकर ही देवगण वास्तवमें देवत्वलाभ करते हैं ॥ १४ ॥

एतानि हृतराज्यानां दैतेयानां स्म मातले ।
दीप्यमानानि दृश्यन्ते सर्वप्रहरणान्युत ॥ १५ ॥

मातले ! जिनके राज्य छीन लिये गए हैं, उन दैत्योंके ये दीप्यमान सम्पूर्ण आयुध दिखायी देते हैं ॥ १५ ॥

अक्षयाणि किलैतानि विवर्तन्ते स्म मातले ।
अनुभावप्रयुक्तानि सुरैरवजितानि ह ॥ १६ ॥

देवसारथे ! ये सारे अस्त्र--शस्त्र अक्षय हैं और प्रहार करनेपर शत्रुको आहत करके पुनः अपने स्वामीके हाथमें लौट आते हैं। पहले दैत्यलोग अपनी शक्तिके अनुसार इनका प्रयोग करते थे, परंतु अब देवताओंने इन्हें जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया है ॥१६॥

अत्र राक्षसजात्यश्च भूतजात्यश्च मातले ।
दिव्यप्रहरणाश्चासन्पूर्वदैवतनिर्मिताः ॥ १७ ॥

मातले ! इन स्थानोंमें राक्षस और भूत जातिके लोग रहते हैं। यहां पूर्वदेवों अर्थात् दैत्योंके द्वारा बनाये हुए बहुतसे दिव्यास्त्र भी रहते हैं ॥ १७ ॥

अग्निरेष महार्चिष्माञ्जागर्ति वरुणह्रदे ।
वैष्णवं चक्रमाविद्धं विधूमेन हविष्मता ॥ १८ ॥

ये महातेजस्वी अग्निदेव वरुणदेवताके सरोवरमें प्रकाशित होते हैं। इन धूमरहित अग्निदेवने भगवान् विष्णुके सुदर्शन–चक्रको भी अवरुद्ध कर दिया था ॥ १८ ॥

एष गाण्डीमयश्चापो लोकसंहारसंभृतः ।
रक्ष्यते दैवतैर्नित्यं यतस्तद्गाण्डिवं धनुः ॥ १९ ॥

वज्रकी गांठको 'गाण्डी' कहा गया है। यह धनुष उसीका बना हुआ है, इसलिये गाण्डीव कहलाता है। जगत्‌का संहार करनेके लिये इसका निर्माण हुआ है। देवतालोग सदा इसकी रक्षा करते हैं ॥ १९ ॥

एष कृत्ये समुत्पन्ने तत्तद्धारयते बलम् ।
सहस्रशतसंख्येन प्राणेन सततं ध्रुवम् ॥ २० ॥

यह धनुष आवश्यकता पडनेपर लाखगुनी शक्तिसे सम्पन्न हो वैसे-वैसे ही बलको भी धारण करता है और सदा अविचल बना रहता है ॥ २० ॥

अशास्यानपि शास्त्येष रक्षोबन्धुषु राजसु ।
सृष्टः प्रथमजो दण्डो ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना ॥ २१ ॥

ब्रह्मवादी ब्रह्माने पहले इस प्रचण्ड धनुषका निर्माण किया था। यह राक्षससदृश राजाओंमेंसे अदम्य नरेशोंका भी दमन कर डालता है ॥ २१ ॥

एतच्छस्त्रं नरेन्द्राणां महच्छक्रेण भाषितम् ।
पुत्राः सलिलराजस्य धारयन्ति महोदयम् ॥ २२ ॥

यह धनुष राजाओंके लिये एक महान् अस्त्र है इसका वर्णन इन्द्रने भी किया है। इस महान् अभ्युदयकारी धनुषको जलेश वरुणके पुत्र धारण करते हैं ॥ २२ ॥

एतत्सलिलराजस्य छत्रं छत्रगृहे स्थितम् ।
सर्वतः सलिलं शीतं जीमूत इव वर्षति ॥ २३ ॥

और यह सलिलराज वरुणका छत्र है, जो छत्रगृहमें रखा हुआ है। यह छत्र मेघकी भाँति सब ओरसे शीतल जल बरसाता रहता है ॥ २३ ॥

एतच्छत्रात्परिभ्रष्टं सलिलं सोमनिर्मलम् ।
तमसा मूर्छितं याति येन नार्छति दर्शनम् ॥ २४ ॥

इस छत्रसे गिरा हुआ चन्द्रमाके समान निर्मल जल अन्धकारसे आच्छन्न होकर बहता है, जिससे दृष्टिपथमें नहीं आता है ॥ २४ ॥

बहून्यद्भुतरूपाणि द्रष्टव्यानीह मातले ।
तव कार्योपरोधस्तु तस्माद्गच्छाव माचिरम् ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ ॥ ३२१२ ॥

मातले ! इस वरुणलोकमें देखने योग्य बहुतसी अद्भुत वस्तुएँ हैं; परंतु सबको देखनेसे तुम्हारे कार्यमें रुकावट पडेगी इसलिये हमलोग शीघ्र ही यहांसे नागलोकमें चलें ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें छियानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९६ ॥ ॥ ३२१२ ॥

: ९७ :

नारद उवाच

एतत्तु नागलोकस्य नाभिस्थाने स्थितं पुरम् ।
पातालमिति विख्यातं दैत्यदानवसेवितम् ॥ १ ॥

नारद बोले–मातले ! यह जो नागलोकके नाभिस्थान अर्थात् मध्यभागमें स्थित नगर दिखायी देता है, इसे पाताल कहते हैं । इस नगरमें दैत्य और दानव निवास करते हैं ॥ १ ॥

इदमद्भिः समं प्राप्ता ये केचिद्ध्रुवजंगमाः ।
प्रविशन्तो महानादं नदन्ति भयपीडिताः ॥ २ ॥

यहां जो कोई भूतलके जङ्गम प्राणी जलके साथ बहकर आ जाते हैं, वे इस पातालमें पहुँचनेपर भयसे पीडित हो वडे जोरसे चीत्कार करने लगते हैं ॥ २ ॥

अत्रासुरोऽग्निः सततं दीप्यते वारिभोजनः ।
व्यापारेण धृतात्मानं निबद्धं समबुध्यत ॥ ३ ॥

यहां जलका ही आहार करनेवाली आसुर अग्नि सदा उद्दीप्त रहती है । उसे यत्नपूर्वक मर्यादामें स्थापित किया गया है । वह अग्नि अपने आपको देवताओंद्वारा नियन्त्रित समझती है; इसलिये सब ओर फैल नहीं पाती ॥ ३ ॥

अत्रामृतं सुरैः पीत्वा निहितं निहतारिभिः ।
अतः सोमस्य हानिश्च वृद्धिश्चैव प्रदृश्यते ॥ ४ ॥

देवताओंने अपने शत्रुओंका संहार करके अमृत पीकर उसका अवशिष्ट भाग यहीं रख दिया था । इसीलिये अमृतमय सोमकी हानि और वृद्धि देखी जाती है ॥ ४ ॥

अत्र दिव्यं हयशिरः काले पर्वणि पर्वणि ।
उत्तिष्ठति सुवर्णाभं वार्भिरापूरयञ्जगत् ॥ ५ ॥

यहाँ अदितिनन्दन हयग्रीव विष्णु सुवर्णमय कान्ति धारण करके प्रत्येक पर्वमें वेदध्वनिके द्वारा जगत्‌को परिपूर्ण करते हुए ऊपरको उठते हैं ॥ ५ ॥

यस्मादत्र समाग्रास्ताः पतन्ति जलमूर्तयः ।
तस्मात्पातालमित्येतत्ख्यायते पुरमुत्तमम् ॥ ६ ॥

जलस्वरूप जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सब यहाँ पर्याप्तरूपसे गिरती हैं, इसलिये पतन्ति अलम् इस व्युत्पत्तिके अनुसार पात+अलम्—इन दोनों शब्दोंके योगसे यह उत्तम नगर 'पाताल' कहलाता है ॥ ६ ॥

ऐरावतोऽस्मात्सलिलं गृहीत्वा जगतो हितः ।
मेघेष्वासुञ्चते शीतं यन्महेन्द्रः प्रवर्षति ॥ ७ ॥

जगत्‌का हित करनेवाला ऐरावत यहींसे शीतल जल लेकर मेघोंमें स्थापित करता है, जिसे देवराज इन्द्र भूतलपर बरसाते हैं ॥ ७ ॥

अत्र नानाविधाकारास्तिमयो नैकरूपिणः ।
अप्सु सोमप्रभां पीत्वा वसन्ति जलचारिणः ॥ ८ ॥

नाना प्रकारकी आकृति तथा भाँति भाँतिके रूपवाले जलचारी तिमि ह्वेल मत्स्य चन्द्रमाकी किरणोंका पान करते हुए यहाँ जलमें निवास करते हैं ॥ ८ ॥

अत्र सूर्यांशुभिर्भिन्नाः पातालतलमाश्रिताः ।
मृता दिवसतः सूत पुनर्जीवन्ति ते निशि ॥ ९ ॥

मातले ! ये पातालनिवासी जीवजन्तु यहाँ दिनमें सूर्यकी किरणोंसे संतप्त हो मृतप्राय अवस्थामें पहुँच जाते हैं; परंतु रात होनेपर अमृतमयी चन्द्ररश्मियोंके सम्पर्कसे पुनः जी उठते हैं ॥ ९ ॥

उदये नित्यशश्चात्र चन्द्रमा रश्मिभिर्वृतः ।
अमृतं स्पृश्य संस्पर्शात्संजीवयति देहिनः ॥ १० ॥

यहाँ प्रतिदिन उदय होनेवाले चन्द्रमा अपनी किरणमयी भुजाओंसे अमृतका स्पर्श कराकर उसके द्वारा यहाँके मरणासन्न जीवोंको जीवन प्रदान करते हैं ॥ १० ॥

अत्र तेऽधर्मनिरता बद्धाः कालेन पीडिताः ।
दैतेया निवसन्ति स्म वासवेन हृतश्रियः ॥ ११ ॥

इन्द्रने जिनकी सम्पत्ति हर ली है, वे अधर्मपरायण दैत्य कालसे बद्ध एवं पीडित होकर इसी स्थानमें निवास करते हैं ॥ ११ ॥

अत्र भूतपतिर्नाम सर्वभूतमहेश्वरः ।
भूतये सर्वभूतानामचरत्तप उत्तमम् ॥ १२ ॥

सर्वभूतमहेश्वर भगवान् भूतनाथने सम्पूर्ण प्राणियोंके कल्याणके लिये यहाँ उत्तम तपस्या की थी ॥ १२ ॥

अत्र गोव्रतिनो विप्राः स्वाध्यायाम्नायकर्शिताः ।
त्यक्तप्राणा जितस्वर्गा निवसन्ति महर्षयः ॥ १३ ॥

वेदपाठसे दुर्बल हुए तथा प्राणोंकी परवाह न करके तपस्याद्वारा स्वर्गलोकपर विजय पानेवाले गोव्रतधारी ब्राह्मण महर्षिगण यहाँ निवास करते हैं ॥ १३ ॥

यत्रतत्रशयो नित्यं येनकेनचिदाशितः ।
येनकेनचिदाच्छन्नः स गोव्रत इहोच्यते ॥ १४ ॥

जो जहाँ कहीं भी सो लेता है, जिस किसी फल मूल आदिसे भोजनका कार्य चला लेता है तथा वल्कल आदि जिस किसी वस्तुसे भी शरीरको ढक लेता है, वही यहाँ 'गोव्रतधारी' कहलाता है ॥ १४ ॥

ऐरावतो नागराजो वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
प्रसूताः सुप्रतीकस्य वंशे वारणसत्तमाः ॥ १५ ॥

यहाँ नागराज ऐरावत, वामन, कुमुद और अञ्जन नामक श्रेष्ठ गज सुप्रतीकके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ १५ ॥

पश्य यद्यत्र ते कश्चिद्रोचते गुणतो वरः ।
वरयिष्याव तं गत्वा यत्नमास्थाय मातले ॥ १६ ॥

मातले! देखो, यदि यहाँ तुम्हें कोई गुणवान् वर पसंद हो तो हम दोनों चलकर यत्नपूर्वक उसका वरण करें ॥ १६ ॥

अण्डमेतज्जले न्यस्तं दीप्यमानमिव श्रिया ।
आ प्रजानां निसर्गाद्धि नोद्भिद्यति न सर्पति ॥ १७ ॥

जलके भीतर यह एक अण्डा रक्खा हुआ है, जो यहाँ अपनी प्रभासे उद्भासितसा हो रहा है । जबसे प्रजाजनोंकी सृष्टि आरम्भ हुई है, तबसे लेकर अबतक यह अण्डा न तो फूटता है और न अपने स्थानसे इधर उधर जाता ही है ॥ १७ ॥

नास्य जातिं निसर्गं वा कथ्यमानं शृणोमि वै ।
पितरं मातरं वापि नास्य जानाति कश्चन ॥ १८ ॥

इसकी जाति अथवा स्वभावके विषयमें कभी किसीको कुछ कहते नहीं सुना है । इसके पिता और माताको भी कोई नहीं जानता है ॥ १८ ॥

अतः किल महानग्निरन्तकाले समुत्थितः ।
धक्ष्यते मातले सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १९ ॥

मातले ! कहते हैं, प्रलयकालमें इस अण्डेके भीतरसे बडी भारी आग प्रकट होगी, जो चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीको भस्म कर डालेगी ॥ १९ ॥

कण्व उवाच

मातलिस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा नारदस्याथ भाषितम् ।
न मेऽत्र रोचते कश्चिदन्यतो व्रज माचिरम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ३२३२ ॥

कण्व बोले—नारदका यह भाषण सुनकर मातलिने कहा यहां मुझे कोई भी वर पसंद नहीं आया; अतः शीघ्र ही अन्यत्र कहीं चलिये ॥ २० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सत्तानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९७ ॥ ३२३२ ॥

: ९८ :

नारद उवाच

हिरण्यपुरमित्येतत्ख्यातं पुरवरं महत् ।
दैत्यानां दानवानां च मायाशतविचारिणाम् ॥ १ ॥

नारद बोले—मातले ! यह हिरण्यपुर नामक श्रेष्ठ एवं विशाल नगर है, जहां सैकडों माया-ओंके साथ विचरनेवाले दैत्यों और दानवोंका निवासस्थान है ॥ १ ॥

अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा ।
मयेन मनसा सृष्टं पातालतलमाश्रितम् ॥ २ ॥

असुरोंके विश्वकर्मा मयने अपने मानसिक संकल्पके अनुसार महान् प्रयत्न करके पाताल-लोकके भीतर इस नगरका निर्माण किया है ॥ २ ॥

अत्र मायासहस्राणि विकुर्वाणा महौजसः ।
दानवा निवसन्ति स्म शूरा दत्तवराः पुरा ॥ ३ ॥

यहां सहस्रों मायाओंका प्रयोग करनेवाले और महान् बल पराक्रमसे सम्पन्न वे शूरवीर दानव निवास करते हैं, जिन्हें पूर्वकालमें अवध्य होनेका वरदान प्राप्त हो चुका है ॥ ३ ॥

नैते शक्रेण नान्येन वरुणेन यमेन वा ।
शक्यन्ते वशमानेतुं तथैव धनदेन च ॥ ४ ॥

इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर तथा और कोई देवता भी इन्हें वशमें नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

अमुराः कालखञ्जाश्च तथा विष्णुपदोद्भवाः।
नैर्ऋता यातुधानाश्च ब्रह्मवेदोद्भवाश्च ये ॥ ५ ॥

भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न हुए कालखञ्ज नामक असुर तथा ब्रह्माजीके पैरोंसे प्रकट हुए नैर्ऋत और यातुधान नामक राक्षस ॥ ५ ॥

दंष्ट्रिणो भीमरूपाश्च वातवेगपराक्रमाः।
मायावीर्योपसंपन्ना निवसन्त्यात्मरक्षिणः ॥ ६ ॥

जो बडी बडी दाढोंवाले, भयंकर रूपसे युक्त, पवनके समान पराक्रमी एवं मायाबलसे सम्पन्न अपनी रक्षा करते हुए इस नगरमें निवास करते हैं ॥ ६ ॥

निवातकवचा नाम दानवायुद्धदुर्मदाः।
जानासि च यथा शक्रो नैताञ्शक्नोति बाधितुम् ॥ ७ ॥

यहीं निवातवचन नामक दानव निवास करते हैं, जो युद्धमें उन्मत्त होकर लडते हैं। तुम तो जानते ही हो कि इन्द्र भी इन्हें पराजित करनेमें समर्थ नहीं हो रहे हैं ॥ ७ ॥

बहुशो मातले त्वं च तव पुत्रश्च गोमुखः।
निर्भग्नो देवराजश्च सहपुत्रः शचीपतिः ॥ ८ ॥

मातले ! तुम, तुम्हारा पुत्र गोमुख तथा पुत्रसहित शचीपति देवराज इन्द्र भी अनेक बार इनके सामनेसे मैदान छोडकर भाग चुके हैं ॥ ८ ॥

पश्य वेश्मानि रौक्माणि मातले राजतानि च।
कर्मणा विधियुक्तेन युक्तान्युपगतानि च ॥ ९ ॥

मातले ! देखो, इनके ये सोने और चांदीके भवन कितनी शोभा पा रहे हैं। इनका निर्माण शिल्पशास्त्रीय विधानके अनुसार हुआ है तथा ये सभी महल एक दूसरेसे सटे हुए हैं ॥ ९ ॥

वैडूर्यहरितानीव प्रवालरुचिराणि च।
अर्कस्फटिकशुभ्राणि वज्रसारोज्ज्वलानि च ॥ १० ॥

इन सबमें वैडूर्यमणि जडी हुई है जिससे इनकी विचित्र शोभा हो रही है। स्थान स्थानपर मूंगोंसे सुसज्जित होनेके कारण इनका सौन्दर्य अधिक बढ गया है आकके फूल और स्फटिकमणिके समान ये उज्ज्वल दिखायी देते हैं तथा उत्तम हीरोंसे जटित होनेके कारण उनकी दीप्ति अधिक बढ गयी है ॥ १० ॥

पार्थिवानीव चाभान्ति पुनर्नगमयानि च ।
शैलानीव च दृश्यन्ते तारकाणीव चाप्युत ॥ ११ ॥
इनमेंसे कुछ तो मिट्टीके बने हुएसे जान पडते हैं, कुछ पत्थरोंसे निर्मित प्रतीत होते हैं, ये ऐसे दिखाई देते हैं, मानों तारोंसे जडे हुए ये पर्वत ही हों ॥ ११ ॥

सूर्यरूपाणि चाभान्ति दीप्ताग्निसदृशानि च ।
मणिजालविचित्राणि प्रांशूनि निबिडानि च ॥ १२ ॥
ये सूर्य तथा प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे हैं । मणियोंकी झालरोंसे इनकी विचित्र छटा दृष्टिगोचर हो रही है । ये सभी भवन ऊंचे और घने हैं ॥ १२ ॥

नैतानि शक्यं निर्देष्टुं रूपतो द्रव्यतस्तथा ।
गुणतश्चैव सिद्धानि प्रमाणगुणवन्ति च ॥ १३ ॥
हिरण्यपुरके ये भवन कितने सुन्दर हैं और किन किन द्रव्योंसे बने हुए हैं, इसका निरूपण नहीं किया जा सकता । अपने उत्तम गुणोंके कारण इनकी बडी प्रसिद्धि है । लम्बाई चौडाई तथा सर्वगुणसम्पन्नताकी दृष्टिसे ये सभी प्रशंसाके योग्य हैं ॥ १३ ॥

आक्रीडान्पश्य दैत्यानां तथैव शयनान्युत ।
रत्नवन्ति महार्हाणि भाजनान्यासनानि च ॥ १४ ॥
देखो, दैत्योंके उद्यान एवं क्रीडास्थान कितने सुन्दर हैं । इनकी शय्याएं भी इनके अनुरूप ही हैं । इनके उपयोगमें आनेवाले पात्र और आसन भी रत्नजटित एवं बहुमूल्य हैं ॥१४॥

जलदाभांस्तथा शैलांस्तोयप्रस्रवणान्वितान् ।
कामपुष्पफलांश्चैव पादपान्कामचारिणः ॥ १५ ॥
यहांके पर्वत मेघोंके समान जान पडते हैं, वहांसे जलके झरने गिर रहे हैं । इन वृक्षोंकी ओर दृष्टिपात करो, ये सभी इच्छानुसार फल और फूल देनेवाले तथा कामचारी हैं॥ १५॥

मातले कश्चिदत्रापि रुचितस्ते वरो भवेत् ।
अथ वान्यां दिशं भूमेर्गच्छाव यदि मन्यसे ॥ १६ ॥
मातले ! यहां भी तुम्हें कोई सुन्दर वर प्राप्त हो सकता है । अथवा तुम्हारी राय हो, तो इस भूमिकी किसी दूसरी दिशाकी ओर चलें ॥ १६ ॥

कण्व उवाच

मातलिस्त्वब्रवीदेनं भाषमाणं तथाविधम् ।
देवर्षे नैव मे कार्यं विप्रियं त्रिदिवौकसाम् ॥ १७ ॥
कण्व बोले– तब ऐसी बातें करनेवाले नारदसे मातलिने कहा– देवर्षे ! मुझे कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये, जो देवताओंको अप्रिय लगे ॥ १७ ॥

असुराः कालखञ्जाश्च तथा विष्णुपदोद्भवाः ।
नैर्ऋता यातुधानाश्च ब्रह्मवेदोद्भवाश्च ये ॥ ५ ॥

भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न हुए कालखञ्ज नामक असुर तथा ब्रह्माजीके पैरोंसे प्रकट हुए नैर्ऋत और यातुधान नामक राक्षस ॥ ५ ॥

दंष्ट्रिणो भीमरूपाश्च वातवेगपराक्रमाः ।
मायावीर्योपसंपन्ना निवसन्त्यात्मरक्षिणः ॥ ६ ॥

जो बडी बडी दाढोंवाले, भयंकर रूपसे युक्त, पवनके समान पराक्रमी एवं मायाबलसे सम्पन्न अपनी रक्षा करते हुए इस नगरमें निवास करते हैं ॥ ६ ॥

निवातकवचा नाम दानवा युद्धदुर्मदाः ।
जानासि च यथा शक्रो नैताञ्शक्नोति बाधितुम् ॥ ७ ॥

यहीं निवातकवच नामक दानव निवास करते हैं, जो युद्धमें उन्मत्त होकर लडते हैं। तुम तो जानते ही हो कि इन्द्र भी इन्हें पराजित करनेमें समर्थ नहीं हो रहे हैं ॥ ७ ॥

बहुशो मातले त्वं च तव पुत्रश्च गोमुखः ।
निर्भग्नो देवराजश्च सहपुत्रः शचीपतिः ॥ ८ ॥

मातले ! तुम, तुम्हारा पुत्र गोमुख तथा पुत्रसहित शचीपति देवराज इन्द्र भी अनेक बार इनके सामनेसे मैदान छोडकर भाग चुके हैं ॥ ८ ॥

पश्य वेश्मानि रौक्माणि मातले राजतानि च ।
कर्मणा विधियुक्तेन युक्तान्युपगतानि च ॥ ९ ॥

मातले ! देखो, इनके ये सोने और चांदीके भवन कितनी शोभा पा रहे हैं। इनका निर्माण शिल्पशास्त्रीय विधानके अनुसार हुआ है तथा ये सभी महल एक दूसरेसे सटे हुए हैं ॥ ९ ॥

वैडूर्यहरितानीव प्रवालरुचिराणि च ।
अर्कस्फटिकशुभ्राणि वज्रसारोज्ज्वलानि च ॥ १० ॥

इन सबमें वैडूर्यमणि जडी हुई है जिससे इनकी विचित्र शोभा हो रही है। स्थान स्थानपर मूंगोंसे सुसज्जित होनेके कारण इनका सौन्दर्य अधिक बढ गया है आकके फूल और स्फटिकमणिके समान ये उज्ज्वल दिखायी देते हैं तथा उत्तम हीरोंसे जटित होनेके कारण उनकी दीप्ति अधिक बढ गयी है ॥ १० ॥

पार्थिवानीव चाभान्ति पुनर्नगमयानि च ।
शैलानीव च दृश्यन्ते तारकाणीव चाप्युत ॥ ११ ॥

इनमेंसे कुछ तो मिट्टीके बने हुएसे जान पडते हैं, कुछ पत्थरोंसे निर्मित प्रतीत होते हैं, ये ऐसे दिखाई देते हैं, मानों तारोंसे जडे हुए ये पर्वत ही हों ॥ ११ ॥

सूर्यरूपाणि चाभान्ति दीप्ताग्निसदृशानि च ।
मणिजालविचित्राणि प्रांशूनि निबिडानि च ॥ १२ ॥

ये सूर्य तथा प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे हैं । मणियोंकी झालरोंसे इनकी विचित्र छटा दृष्टिगोचर हो रही है । ये सभी भवन ऊंचे और घने हैं ॥ १२ ॥

नैतानि शक्यं निर्देष्टुं रूपतो द्रव्यतस्तथा ।
गुणतश्चैव सिद्धानि प्रमाणगुणवन्ति च ॥ १३ ॥

हिरण्यपुरके ये भवन कितने सुन्दर हैं और किन किन द्रव्योंसे बने हुए हैं, इसका निरूपण नहीं किया जा सकता । अपने उत्तम गुणोंके कारण इनकी बडी प्रसिद्धि है । लम्बाई चौडाई तथा सर्वगुणसम्पन्नताकी दृष्टिसे ये सभी प्रशंसाके योग्य हैं ॥ १३ ॥

आक्रीडान्पश्य दैत्यानां तथैव शयनान्युत ।
रत्नवन्ति महार्हाणि भाजनान्यासनानि च ॥ १४ ॥

देखो, दैत्योंके उद्यान एवं क्रीडास्थान कितने सुन्दर हैं । इनकी शय्याएं भी इनके अनुरूप ही हैं । इनके उपयोगमें आनेवाले पात्र और आसन भी रत्नजटित एवं बहुमूल्य हैं ॥१४॥

जलदाभांस्तथा शैलांस्तोयप्रस्रवणान्वितान् ।
कामपुष्पफलांश्चैव पादपान्कामचारिणः ॥ १५ ॥

यहांके पर्वत मेघोंके समान जान पडते हैं, वहांसे जलके झरने गिर रहे हैं । इन वृक्षोंकी ओर दृष्टिपात करो, ये सभी इच्छानुसार फल और फूल देनेवाले तथा कामचारी हैं॥ १५॥

मातले कश्चिदत्रापि रुचितस्ते वरो भवेत् ।
अथ वान्यां दिशं भूमेर्गच्छाव यदि मन्यसे ॥ १६ ॥

मातले ! यहां भी तुम्हें कोई सुन्दर वर प्राप्त हो सकता है । अथवा तुम्हारी राय हो, तो इस भूमिकी किसी दूसरी दिशाकी ओर चलें ॥ १६ ॥

कण्व उवाच

मातलिस्त्वब्रवीदेनं भाषमाणं तथाविधम् ।
देवर्षे नैव मे कार्यं विप्रियं त्रिदिवौकसाम् ॥ १७ ॥

कण्व बोले– तब ऐसी बातें करनेवाले नारदसे मातलिने कहा– देवर्षे ! मुझे कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये, जो देवताओंको अप्रिय लगे ॥ १७ ॥

नित्यानुषक्तवैरा हि भ्रातरो देवदानवाः ।
अरिपक्षेण सम्बन्धं रोचयिष्याम्यहं कथम् ॥ १८ ॥

यद्यपि देवता और दानव परस्पर भाई ही हैं, तथापि इनमें सदा वैरभाव बना रहता है। ऐसी दशामें मैं शत्रुपक्षके साथ अपनी पुत्रीका सम्बन्ध कैसे पसंद करूंगा ॥ १८ ॥

अन्यत्र साधु गच्छावो द्रष्टुं नार्हामि दानवान् ।
जानामि तु तथात्मानं दित्सात्मकमलं यथा ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ ३२५१ ॥

इसलिये अच्छा यही होगा कि हमलोग किसी दूसरी जगह चलें। मैं दानवोंसे सक्षात्कार भी नहीं कर सकता । मैं अपनी कन्या देनेकी अभिलाषा भी अच्छी तरह जानता हूं ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें अठ्ठानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९८ ॥ ३२५१ ॥

: ९९ :

नारद उवाच

अयं लोकः सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम् ।
विक्रमे गमने भारे नैषामस्ति परिश्रमः ॥ १ ॥

नारद बोले– मातले ! यह सर्पभोजी गरुडवंशी पक्षियोंका लोक है, जिन्हें पराक्रम प्रकट करने, दूरतक उडने और महान् भार ढोनेमें तनिक भी परिश्रम नहीं होता ॥ १ ॥

वैनतेयसुतैः सूत षड्भिस्ततमिदं कुलम् ।
सुमुखेन सुनाम्ना च सुनेत्रेण सुवर्चसा ॥ २ ॥
सुरूपपक्षिराजेन सुबलेन च मातले ।
वर्धितानि प्रसूत्या वै विनताकुलकर्तृभिः ॥ ३ ॥

देवसारथि मातले ! यहां विनतानन्दन गरूडके छः पुत्रोंने अपनी वंशपरम्पराका विस्तार किया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं– सुमुख, सुनामा, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरूप तथा पक्षिराज सुबल । विनताके वंशकी वृद्धि करनेवालोंने अपनी सन्तानोंसे इस कुलको बढाया ॥ २-३ ॥

पक्षिराजाभिजात्यानां सहस्राणि शतानि च ।
कश्यपस्य ततो वंशे जातैर्भूतिविवर्धनैः ॥ ४ ॥

कश्यपकुलमें उत्पन्न हुए तथा ऐश्वर्यका विस्तार करनेवाले इन छहों पक्षियोंने गरुडजातिकी सेकडों और सहस्रों शाखाओंका विस्तार किया है ॥ ४ ॥

सर्वे ह्येते श्रिया युक्ताः सर्वे श्रीवत्सलक्षणाः ।
सर्वे श्रियमभीप्सन्तो धारयन्ति बलान्युत ॥ ५ ॥

ये सभी श्रीसम्पन्न तथा श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित हैं । सभी धन सम्पत्तिकी कामना रखते हुए अपने अनन्त बल धारण करते हैं ॥ ५ ॥

कर्मणा क्षत्रियाश्चैते निर्घृणा भोगिभोजिनः ।
ज्ञातिसंक्षयकर्तृत्वाद्ब्राह्मण्यं न लभन्ति वै ॥ ६ ॥

ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होकर भी ये कर्मसे क्षत्रिय हैं । इनमें दया नहीं होती है । ये सर्पोंको ही अपना आहार बनाते हैं । इस प्रकार अपने भाई बन्धुओं—नागोंका संहार करनेके कारण इन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं है ॥ ६ ॥

नामानि चैषां वक्ष्यामि यथा प्राधान्यतः शृणु ।
मातले श्लाघ्यमेतद्धि कुलं विष्णुपरिग्रहम् ॥ ७ ॥

मातले ! अब मैं इनके कुछ प्रधान व्यक्तियोंके नाम बताऊंगा, तुम श्रवण करो । इनके कुलपर भगवान् विष्णुकी कृपा होनेके कारण प्रशंसनीय है ॥ ७ ॥

दैवतं विष्णुरेतेषां विष्णुरेव परायणम् ।
हृदि चैषां सदा विष्णुर्विष्णुरेव गतिः सदा ॥ ८ ॥

भगवान् विष्णु ही इनके देवता हैं । वे ही इनके परम आश्रय हैं । भगवान् विष्णु इनके हृदयमें सदा विराजते हैं और वे विष्णु ही सदा इनकी गति हैं ॥ ८ ॥

सुवर्णचूडो नागाशी दारुणश्चण्डतुण्डकः ।
अनलश्चानिलश्चैव विशालाक्षोऽथ कुण्डली ॥ ९ ॥

सुवर्णचूड, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्डक, अनल, अनिल, विशालाक्ष और कुण्डली ॥ ९ ॥

काश्यपिर्ध्वजविष्कम्भो वैनतेयोऽथ वामनः ।
वातवेगो दिशाचक्षुर्निमेषो निमिषस्तथा ॥ १० ॥

काश्यपि ध्वज विष्कम्भ, वैनतेय, वामन, वातवेग दिशाचक्षु, निमेष, निमिष, ॥ १० ॥

त्रिवारः सप्तवारश्च वाल्मीकिर्द्वीपकस्तथा ।
दैत्यद्वीपः सरिद्द्वीपः सारसः पद्मकेसरः ॥ ११ ॥

त्रिवार, सप्तवार, वाल्मीकि, द्वीपक, दैत्यद्वीप, सरिद्द्वीप, सारस, पद्मकेसर ॥ ११ ॥

सुमुखः सुखकेतुश्च चित्रबर्हस्तथानघः ।
मेघकृत्कुमुदो दक्षः सर्पान्तः सोमभोजनः ॥ १२ ॥

सुमुख, सुखकेतु, चित्रबर्ह, अनघ, मेघकृत्, कुमुद, दक्ष, सर्पान्त, सोमभोजन ॥ १२ ॥

गुरुभारः कपोतश्च सूर्यनेत्रश्चिरान्तकः ।
विष्णुधन्वा कुमारश्च परिबर्हो हरिस्तथा ॥ १३ ॥

गुरुभार, कपोत, सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधन्वा, कुमार, परिबर्ह, हरि ॥ १३ ॥

सुस्वरो मधुपर्कश्च हेमवर्णस्तथैव च ।
मलयो मातरिश्वा च निशाकरदिवाकरौ ॥ १४ ॥

सुस्वर, मधुपर्क, हेमवर्ण, मलय, मातरिश्वा, निशाकर तथा दिवाकर ॥ १४ ॥

एते प्रदेशमात्रेण मयोक्ता गरुडात्मजाः ।
प्राधान्यतोऽथ यशसा कीर्तिताः प्राणतश्च ते ॥ १५ ॥

इस प्रकार संक्षेपसे मैंने इन मुख्य मुख्य गरुड संतानोंका वर्णन किया है। ये सभी यशस्वी तथा महाबली तथा नम्र हैं ॥ १५ ॥

यद्यत्र न रुचिः काचिदेहि गच्छाव मातले ।
तं नयिष्यामि देशं त्वां रुचिं यत्रोपलप्स्यसे ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ ३२६७ ॥

मातले ! यदि इनमें तुम्हारी कोई रुचि न हो तो आओ, अन्यत्र चलें। अब मैं तुम्हें उस स्थानपर ले जाऊंगा, जहां तुम्हें रुचि अवश्य मिल जायेगी ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें निन्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९९ ॥ ३२६७ ॥

: 100 :

नारद उवाच

इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम् ।
यत्रास्ते सुरभिर्माता गवाममृतसम्भवा ॥ १ ॥

नारद बोले— मातले ! यह पृथ्वीका सातवां तल है, जिसका नाम रसातल है। यहां अमृतसे उत्पन्न हुई गोमाता सुरभि निवास करती हैं ॥ १ ॥

क्षरन्ती सततं क्षीरं पृथिवीसारसम्भवम् ।
षण्णां रसानां सारेण रसमेकमनुत्तमम् ॥ २ ॥

ये सुरभि पृथ्वीके सारतत्त्वसे प्रकट, छः रसोंके सारभागसे संयुक्त एवं सर्वोत्तम, अनिर्वचनीय एकरसरूप क्षीरको सदा अपने स्तनोंसे प्रवाहित करती रहती हैं ॥ २ ॥

अमृतेनाभितृप्तस्य सारमुद्गिरतः पुरा ।
पितामहस्य वदनादुदतिष्ठदनिन्दिता ॥ ३ ॥

पूर्वकालमें जब ब्रह्मा अमृतपान करके तृप्त हो उनका सारभाग अपने मुखसे निकाल रहे थे, उसी समय उनके मुखसे अनिन्दिता सुरभिका प्रादुर्भाव हुआ था ॥ ३ ॥

यस्याः क्षीरस्य धाराया निपतन्त्या महीतले ।
ह्रदः कृतः क्षीरनिधिः पवित्रं परमुत्तमम् ॥ ४ ॥

पृथ्वीपर निरन्तर गिरती हुई उस सुरभिके क्षीरकी धारासे एक अनन्त ह्रद बन गया, जिसे क्षीरसागर कहते हैं। वह परम पवित्र है ॥ ४ ॥

पुष्पितस्येव फेनस्य पर्यन्तमनुवेष्टितम् ।
पिबन्तो निवसन्त्यत्र फेनपा मुनिसत्तमाः ॥ ५ ॥

क्षीरसागरसे जो फ़ेन उत्पन्न होता है, वह पुष्पके समान जान पडता है। वह फेन क्षीर-समुद्रके तटपर फैला रहता है, जिसे पीते हुए फेनपसंज्ञक बहुतसे मुनिश्रेष्ठ इस रसातलमें निवास करते हैं ॥ ५ ॥

फेनपा नाम नाम्ना ते फेनाहाराश्च मातले ।
उग्रे तपसि वर्तन्ते येषां बिभ्यति देवताः ॥ ६ ॥

मातले ! फ़ेनका आहार करनेके कारण वे महर्षिगण फेनप नामसे विख्यात हैं। वे बडी कठोर तपस्यामें संलग्न रहते हैं। उनसे देवतालोग भी डरते हैं ॥ ६ ॥

अस्याश्चतस्रो धेन्वोऽन्या दिक्षु सर्वासु मातले ।
निवसन्ति दिशापाल्यो धारयन्त्यो दिशः स्मृताः ॥ ७ ॥

मातले ! सुरभिकी पुत्रीस्वरूपा चार अन्य धेनुएं हैं, जो सब दिशाओंमें निवास करती हैं। वे दिशाओंका धारण-पोषण करनेवाली हैं ॥ ७ ॥

पूर्वां दिशं धारयते सुरूपा नाम सौरभी ।
दक्षिणां हंसका नाम धारयत्यपरां दिशम् ॥ ८ ॥

सुरूपा नामवाली धेनु पूर्व दिशाको धारण करती है तथा उससे भिन्न दक्षिण दिशाका हंसका नामवाली धेनु धारण-पोषण करती है ॥ ८ ॥

पश्चिमा वारुणी दिक्च धार्यते वै सुभद्रया ।
महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया ॥ ९ ॥

मातले ! महाप्रभावशालिनी विश्वरूपा सुभद्रा नामवाली सुरभिकन्याके द्वारा वरुणदेवकी पश्चिम दिशा धारण की जाती है ॥ ९ ॥

सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम् ।
उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम् ॥ १० ॥

चौथी धेनुका नाम सर्वकामदुघा है । मातले ! वह धर्मयुक्त कुबेरसम्बन्धिनी उत्तर दिशाको धारण-पोषण करती है ॥ १० ॥

आसां तु पयसा मिश्रं पयो निर्मथ्य सागरे ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा देवैरसुरसंहितैः ॥ ११ ॥

देवसारथे ! देवताओंने असुरोंसे मिलकर मन्दराचलको मथानी बनाकर इन्हीं धेनुओंके दूधसे मिश्रित क्षीरसागरकी दुग्धराशिका मन्थन करके ॥ ११ ॥

उद्धृता वारुणी लक्ष्मीरमृतं चापि मातले ।
उच्चैःश्रवाश्चाश्वराजो मणिरत्नं च कौस्तुभम् ॥ १२ ॥

उससे वारुणी, लक्ष्मी एवं अमृतको प्रकट किया । तत्पश्चात् उस समुद्रमन्थनसे अश्वराज उच्चैःश्रवा तथा मणिरत्न कौस्तुभका भी प्रादुर्भाव हुआ था ॥ १२ ॥

सुधाहारेषु च सुधां स्वधाभोजिषु च स्वधाम् ।
अमृतं चामृताशेषु सुरभिः क्षरते पयः ॥ १३ ॥

सुरभि अपने स्तनोंसे जो दूध बहाती है, वह सुधाभोजी लोगोंके लिये सुधा, स्वधाभोजी पितरोंके लिये स्वधा तथा अमृतभोजी देवताओंके लिये अमृतरूप है ॥ १३ ॥

अत्र गाथा पुरा गीता रसातलनिवासिभिः ।
पौराणी श्रूयते लोके गीयते या मनीषिभिः ॥ १४ ॥

यहाँ रसातलनिवासियोंने पूर्वकालमें जो पुरातन गाथा गायी थी, वह अब भी लोकमें सुनी जाती है और मनीषी पुरुष उसका गान करते हैं ॥ १४ ॥

न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे ।
परिवासः सुखस्तादृग्रसातलतले यथा ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ३२८२ ॥

वह गाथा इस प्रकार है— न नागलोकमें, न स्वर्गलोकमें तथा न स्वर्गलोकके विमानमें निवास करना भी वैसा सुखदायक है जैसा रसातलमें रहनेसे सुख प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें सौवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०० ॥ ३२८२ ॥

: १०१ :

नारद उवाच

इयं भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता।
यादृशी देवराजस्य पुरीवर्यामरावती ॥ १ ॥

नारद बोले– मातले! यह नागराज वासुकिद्वारा सुरक्षित उनकी भोगवती नामक पुरी है। देवराज इन्द्रकी सर्वश्रेष्ठ नगरी अमरावतीकी तरह ही यह भी सुखसमृद्धिसे सम्पन्न है ॥ १ ॥

एष शेषः स्थितो नागो येनेयं धार्यते सदा।
तपसा लोकमुख्येन प्रभावमहता मही ॥ २ ॥

ये शेषनाग स्थित हैं, जो अपने लोकप्रसिद्ध तपोबलसे प्रभावसहित इस सारी पृथ्वीको सदा सिरपर धारण करते हैं ॥ २ ॥

श्वेतोच्चयनिभाकारो नानाविधविभूषणः।
सहस्रं धारयन्मूर्ध्नां ज्वालाजिह्वो महाबलः ॥ ३ ॥

भगवान् शेषका शरीर कैलास पर्वतके समान श्वेत है। ये सहस्र मस्तक धारण करते हैं। इनकी जिह्वा अग्निकी ज्वालाके समान जान पडती है। ये महाबली अनन्त तरहके आभूषणोंसे विभूषित होते हैं ॥ ३ ॥

इह नानाविधाकारा नानाविधविभूषणाः।
सुरसायाः सुता नागा निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ४ ॥

वहां सुरसाके पुत्र नागगण शोक-संतापसे रहित होकर निवास करते हैं। इनके रूप-रंग और आभूपण अनेक प्रकारके हैं ॥ ४ ॥

मणिस्वस्तिकचक्राङ्काः कमण्डलुकलक्षणाः।
सहस्रसंख्या बलिनः सर्वे रौद्राः स्वभावतः ॥ ५ ॥

ये सभी नाग सहस्रोंकी संख्यामें यहाँ रहते हैं। ये सबके सब अत्यन्त बलवान् तथा स्वभावसे ही भयंकर हैं। इनमेंसे किन्हींके शरीरमें मणिका, किन्हींके स्वस्तिकका, किन्हींके चक्रका और किन्हींके शरीरमें कमण्डलुका चिह्न है ॥ ५ ॥

सहस्रशिरसः केचित्केचित्पञ्चशताननाः।
शतशीर्षास्तथा केचित्केचित्त्रिशिरसोऽपि च ॥ ६ ॥

कुछ नागोंके एक सहस्र सिर होते हैं, किन्हींके पांच सौ, किन्हींके एक सौ और किन्हींके तीन ही सिर होते हैं ॥ ६ ॥

द्विपञ्चशिरसः केचित्केचित्सप्तमुखास्तथा।
महाभोगा महाकायाः पर्वताभोगभोगिनः ॥ ७ ॥

कोई दो सिरवाले, कोई पांच सिरवाले और कोई सात मुखवाले होते हैं। किन्हींके बडे-बडे फन, किन्हींके दीर्घ शरीर और किन्हींके पर्वतके समान स्थूल शरीर होते हैं ॥ ७ ॥

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
नागानामेकवंशानां यथाश्रेष्ठांस्तु मे शृणु ॥ ८ ॥

यहां एक एक वंशके नागोंकी कई हजार, कई लाख तथा कई अर्बुद संख्या है। मैं कुछ श्रेष्ठ नागोंका संक्षिप्त परिचय देता हूँ, सुनो ॥ ८ ॥

वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनंजयौ।
कालीयो नहुषश्चैव कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ ९ ॥

वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनंजय, कालीय, नहुष, कम्बल और अश्वतर ॥ ९ ॥

बाह्यकुण्डो मणिर्नागस्तथैवापूरणः खगः।
वामनश्चैलपत्रश्च कुकुरः कुकुणस्तथा ॥ १० ॥

बाह्यकुण्ड, मणिनाग, आपूरण, खग, वामन, एलपत्र, कुकुर, कुकुण, ॥ १० ॥

आर्यको नन्दकश्चैव तथा कलशपोतकौ।
कैलासकः पिञ्जरको नागश्चैरावतस्तथा ॥ ११ ॥

आर्यक, नन्दक, कलश, पोतक, कैलासक, पिंजरक, तथा ऐरावत, नाग ॥ ११ ॥

सुमनोमुखो दधिमुखः शङ्खो नन्दोपनन्दकौ।
आप्तः कोटनकश्चैव शिखी निष्ठूरिकस्तथा ॥ १२ ॥

सुमनोमुख, दधिमुख, शंख, नन्द, उपनन्दक, आप्त, कोटनक, शिखी, निष्ठूरिक, ॥१२॥

तित्तिरिर्हस्तिभद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः।
द्वौ पद्मौ पुण्डरीकश्च पुष्पो मुद्गरपर्णकः ॥ १३ ॥

तित्तिरि, हस्तिभद्र, कुमुद, माल्यपिण्डक, पद्मनामक दो नाग, पुण्डरीक, पुष्प, मुद्गरपर्णक, ॥ १३ ॥

करवीरः पीठरकः संवृत्तो वृत्त एव च।
पिण्डारो बिल्वपत्रश्च मूषिकादः शिरीषकः ॥ १४ ॥

करवीर, पीठरक, संवृत्त, वृत्त, पिण्डार, बिल्वपत्र, मूषिकाद, शिरीषक, ॥ १४ ॥

दिलीपः शङ्खशीर्षश्च ज्योतिष्कोऽथापराजितः ।
कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च कुमारः कुशकस्तथा ॥ १५ ॥

दिलीप, शंखशीर्ष, ज्योतिष्क, अपराजित, कौरव्य, धृतराष्ट्र, कुमार, कुशक, ॥ १५ ॥

विरजा धारणश्चैव सुबाहुर्मुखरो जयः ।
बधिरान्धौ विकुण्डश्च विरसः सुरसस्तथा ॥ १६ ॥
एते चान्ये च बहवः कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः ।
मातले पश्य यद्यत्र कश्चित्ते रोचते वरः ॥ १७ ॥

विरजा, धारण, सुबाहु, मुखर, जय, बधिर, अन्ध, विकुण्ड, विरस तथा सुरस-ये और दूसरे बहुतसे नाग कश्यपके वंशज हैं। मातले! यदि यहाँ कोई वर तुम्हें पसंद हो तो देखो ॥ १६–१७ ॥

कण्व उवाच

मातलिस्त्वेकमव्यग्रः सततं संनिरीक्ष्य वै ।
पप्रच्छ नारदं तत्र प्रीतिमानिव चाभवत् ॥ १८ ॥

कण्व मुनि बोले– राजन्! तब मातलि स्थिरता-पूर्वक एक नागका निरीक्षण करके प्रसन्नसे हो उठे और उन्होंने नारदजीसे पूछा ॥ १८ ॥

स्थितो य एष पुरतः कौरव्यस्यार्यकस्य च ।
द्युतिमान्दर्शनीयश्च कस्यैष कुलनन्दनः ॥ १९ ॥

देवर्षे! यह जो कौरव्य और आर्यकके आगे कान्तिमान् और दर्शनीय नागकुमार खडा है, किसके कुलको आनन्दित करनेवाला है? ॥ १९ ॥

कः पिता जननी चास्य कतमस्यैष भोगिनः ।
वंशस्य कस्यैष महान्केतुभूत इव स्थितः ॥ २० ॥

इसके पिता-माता कौन हैं? यह किस नागका पौत्र है तथा किसके वंशकी महान् ध्वजाके समान शोभा बढा रहा है! ॥ २० ॥

प्रणिधानेन धैर्येण रूपेण वयसा च मे ।
मनः प्रविष्टो देवर्षे गुणकेश्याः पतिर्वरः ॥ २१ ॥

देवर्षे! यह अपनी एकाग्रता, धैर्य, रूप तथा तरुण अवस्थाके कारण मेरे मनमें समा गया है, यही गुणकेशीका श्रेष्ठ पति होनेके योग्य है ॥ २१ ॥

मातलिं प्रीतमनसं दृष्ट्वा सुमुखदर्शनात्।
निवेदयामास तदा माहात्म्यं जन्म कर्म च ॥ २२ ॥

राजन्! मातलिको सुमुखके दर्शनसे प्रसन्नचित्त देखकर नारदजीने उस समय उस नागकुमारके जन्म, कर्म और महत्त्वका परिचय देना आरम्भ किया ॥ २२ ॥

ऐरावतकुले जातः सुमुखो नाम नागराट्।
आर्यकस्य मतः पौत्रो दौहित्रो वामनस्य च ॥ २३ ॥

मातले! यह नागराज सुमुख है, जो ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुआ है। यह आर्यकका पौत्र और वामनका दौहित्र है ॥ २३ ॥

एतस्य हि पिता नागश्चिकुरो नाम मातले।
नचिराद्वैनतेयेन पञ्चत्वमुपपादितः ॥ २४ ॥

सूत! इसके पिता नागराज चिकुर थे, जिन्हें थोडे ही दिन पहले गरुडने अपना ग्रास बना लिया है ॥ २४ ॥

ततोऽब्रवीत्प्रीतमना मातलिर्नारदं वचः।
एष मे रुचितस्तात जामाता भुजगोत्तमः ॥ २५ ॥

तब मातलिने प्रसन्नचित्त होकर नारदजीसे कहा—तात! यह श्रेष्ठ नाग मुझे अपना जामाता बनानेके योग्य जंच गया ॥ २५ ॥

क्रियतामत्र यत्नो हि प्रीतिमानस्म्यनेन वै।
अस्मै नागपतेर्दातुं प्रियां दुहितरं मुने ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ ३३०८ ॥

मैं इससे बहुत प्रसन्न हूं। आप इसीके लिये यत्न कीजिये। मुने! मैं इसी नागपतिको अपनी प्यारी पुत्री देना चाहता हूं ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ एकवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०१ ॥ ३३०८ ॥

: १०२ :

नारद उवाच

सूतोऽयं मातलिर्नाम शक्रस्य दयितः सुहृत्।
शुचिः शीलगुणोपेतस्तेजस्वी वीर्यवान्बली ॥ १ ॥

नारदजी बोले—नागराज। ये इन्द्रके प्रिय सखा और सारथि मातलि हैं। इनमें पवित्रता, सुशीलता और समस्त सद्गुण भरे हुए हैं। ये तेजस्वी होनेके साथ बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ १ ॥

शक्रस्यायं सखा चैव मन्त्री सारथिरेव च ।
अल्पान्तरप्रभावश्च वासवेन रणे रणे ॥ २ ॥

इन्द्रके मित्र, मन्त्री और सारथि सब कुछ यही हैं। प्रत्येक युद्धमें ये इन्द्रके साथ रहते हैं। इनका प्रभाव इन्द्रसे कुछ ही कम है ॥ २ ॥

अयं हरिसहस्रेण युक्तं जैत्रं रथोत्तमम् ।
देवासुरेषु युद्धेषु मनसैव नियच्छति ॥ ३ ॥

ये देवासुर-संग्राममें सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए देवराजके विजयशील श्रेष्ठ रथका अपने मानसिक संकल्पसे ही संचालन और नियन्त्रण करते हैं ॥ ३ ॥

अनेन विजितानश्वैर्दोर्भ्यां जयति वासवः ।
अनेन प्रहृते पूर्वं बलभित्प्रहरत्युत ॥ ४ ॥

ये अपने अश्वोंद्वारा जिन शत्रुओंको जीत लेते हैं, उन्हींको देवराज इन्द्र अपने बाहुबलसे पराजित करते हैं। पहले इनके द्वारा प्रहार हो जानेपर ही बलनाशक इन्द्र शत्रुओंपर प्रहार करते हैं ॥ ४ ॥

अस्य कन्या वरारोहा रूपेणासदृशी भुवि ।
सत्त्वशीलगुणोपेता गुणकेशीति विश्रुता ॥ ५ ॥

इनके एक सुन्दरी कन्या है, जिसके रूपकी समानता भूमण्डलमें कहीं नहीं है। उसका नाम है गुणकेशी। वह सत्य, शील और सद्गुणोंसे सम्पन्न है ॥ ५ ॥

तस्यास्य यत्नाचरतस्त्रैलोक्यममरद्युते ।
सुमुखो भवतः पौत्रो रोचते दुहितुः पतिः ॥ ६ ॥

देवोपम कान्तिवाले नागराज! ये मातलि बड़े प्रयत्नसे कन्याके लिये वर ढूंढनेके निमित्त तीनों लोकोंमें विचरते हुए यहाँ आये हैं। आपका पौत्र सुमुख इन्हें अपनी कन्याका पति होने योग्य प्रतीत हुआ है, उसीको इन्होंने पसंद किया है ॥ ६ ॥

यदि ते रोचते सौम्य भुजगोत्तम माचिरम् ।
क्रियतामार्यक क्षिप्रं बुद्धिः कन्याप्रतिग्रहे ॥ ७ ॥

सौम्य नागप्रवर आर्यक! यदि आपको भी यह सम्बन्ध भलीभाँति रुचिकर जान पड़े तो शीघ्र ही इनकी पुत्रीको ब्याह लानेका निश्चय कीजिये ॥ ७ ॥

यथा विष्णुकुले लक्ष्मीर्यथा स्वाहा विभावसोः ।
कुले तव तथैवास्तु गुणकेशी सुमध्यमा ॥ ८ ॥

जैसे भगवान् विष्णुके घरमें लक्ष्मी और अग्निके घरमें स्वाहा शोभा पाती हैं, उसी प्रकार सुन्दरी गुणकेशी तुम्हारे कुलमें प्रतिष्ठित हो ॥ ८ ॥

पौत्रस्यार्थे भवांस्तस्माद्गुणकेशीं प्रतीच्छतु।
सदृशीं प्रतिरूपस्य वासवस्य शचीमिव ॥ ९ ॥

अतः आप अपने पौत्रके लिये गुणकेशीको स्वीकार करें। जैसे इन्द्रके अनुरूप शची हैं, उसी प्रकार आपके सुयोग्य पौत्रके योग्य गुणकेशी है ॥ ९ ॥

पितृहीनमपि ह्येनं गुणतो वरयामहे।
बहुमानाच्च भवतस्तथैवैरावतस्य च।
सुमुखस्य गुणैश्चैव शीलशौचदमादिभिः ॥ १० ॥

आपके और ऐरावतके प्रति हमारे हृदयमें विशेष सम्मान है और यह सुमुख भी शील, शौच और इन्द्रियसंयम आदि गुणोंसे सम्पन्न है, इसलिये इसके पितृहीन होनेपर भी हम गुणोंके कारण इसका वरण करते हैं ॥ १० ॥

अभिगम्य स्वयं कन्यामयं दातुं समुद्यतः।
मातलेस्तस्य सम्मानं कर्तुमर्हो भवानपि ॥ ११ ॥

ये मातलि स्वयं चलकर कन्यादान करनेको उद्यत हैं। आपको भी इनका सम्मान करना चाहिये ॥ ११ ॥

कण्व उवाच

स तु दीनः प्रहृष्टश्च प्राह नारदमार्यकः।
म्रियमाणे तथा पौत्रे पुत्रे च निधनं गते ॥ १२ ॥

कण्व मुनि बोले— कुरुनन्दन! तब नागराज आर्यक प्रसन्न होकर दीनभावसे बोले— देवर्षे! मेरा पुत्र मारा गया और पौत्रका भी उसी प्रकार मृत्युने वरण किया है ॥ १२ ॥

न मे नैतद्बहुमतं देवर्षे वचनं तव।
सखा शक्रस्य संयुक्तः कस्यायं नेप्सितो भवेत् ॥ १३ ॥

देवर्षे! मेरी दृष्टिमें आपके इस वचनका कम आदर नहीं है और ये मातलि तो इन्द्रके साथ रहनेवाले उनके सखा हैं; अतः ये किसको प्रिय नहीं लगेंगे? ॥ १३ ॥

कारणस्य तु दौर्बल्याच्चिन्तयामि महामुने।
अस्य देहकरस्तात मम पुत्रो महाद्युते।
भक्षितो वैनतेयेन दुःखार्तास्तेन वै वयम् ॥ १४ ॥

परंतु माननीय महामुने! कारणकी दुर्बलतासे मैं चिन्तामें पड़ा रहता हूं। महाद्युते! इस बालकका पिता, जो मेरा पुत्र था गरुडका भोजन बन गया। इस दुःखसे हमलोग पीडित हैं ॥ १४ ॥

पुनरेव च तेनोक्तं वैनतेयेन गच्छता ।
आसेनान्येन सुमुखं भक्षयिष्य इति प्रभो ॥ १५ ॥

प्रभो ! जब गरुड यहांसे जाने लगे, तब पुनः यह कहते गये कि दूसरे महीनेमें मैं सुमुखको भी खा जाऊंगा ॥ १५ ॥

ध्रुवं तथा तद्भविता जानीमस्तस्य निश्चयम् ।
तेन हर्षः प्रनष्टो मे सुपर्णवचनेन वै ॥ १६ ॥

अवश्य ही ऐसा ही होगा; क्योंकि हम गरुडके निश्चयको जानते हैं। गरुडके उस कथनसे मेरी हंसी-खुशी नष्ट हो गयी है ॥ १६ ॥

मातलिस्त्वब्रवीदेनं बुद्धिरत्र कृता मया ।
जामातृभावेन वृतः सुमुखस्तव पुत्रजः ॥ १७ ॥

राजन् ! तब मातलिने आर्यकसे कहा– मैंने इस विषयमें एक विचार किया है । वह तो निश्चय ही है कि मैंने आपके पौत्रको जामाताके रूपमें स्वीकार कर लिया है ॥ १७ ॥

सोऽयं मया च सहितो नारदेन च पन्नगः ।
त्रिलोकेशं सुरपतिं गत्वा पश्यतु वासवम् ॥ १८ ॥

अतः यह नागकुमार मेरे और नारदके साथ त्रिलोकीनाथ देवराज इन्द्रके पास चलकर उनका दर्शन करे ॥ १८ ॥

शेषेणैवास्य कार्येण प्रज्ञास्याम्यहमायुषः ।
सुपर्णस्य विघाते च प्रयतिष्यामि सत्तम ॥ १९ ॥

साधुशिरोमणे ! तदनन्तर मैं अवशिष्ट कार्यद्वारा इसकी आयुके विषयमें जानकारी प्राप्त करूंगा और इस बातकी भी कोशिश करूंगा कि गरुड इसे न मार सकें ॥ १९ ॥

सुमुखश्च मया सार्धं देवेशमभिगच्छतु ।
कार्यसंसाधनार्थाय स्वस्ति तेऽस्तु भुजंगम ॥ २० ॥

नागराज ! आपका कल्याण हो । सुमुख अपने अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये मेरे साथ देवराज इन्द्रके पास चले ॥ २० ॥

ततस्ते सुमुखं गृह्य सर्व एव महौजसः ।
ददृशुः शक्रमासीनं देवराजं महाद्युतिम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर उन सभी महातेजस्वी सज्जनोंने सुमुखको साथ लेकर स्वर्गके सिंहासनपर विराजमान परम कान्तिमान् देवराज इन्द्रका दर्शन किया ॥ २१ ॥

संगत्या तत्र भगवान्विष्णुरासीच्चतुर्भुजः ।
ततस्तत्सर्वमाचख्यौ नारदो मातलिं प्रति ॥ २२ ॥

दैवयोगसे वहाँ चतुर्भुज भगवान् विष्णु भी उपस्थित थे। तदनन्तर देवर्षि नारदने मातलिसे सम्बन्ध रखनेवाला सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २२ ॥

ततः पुरंदरं विष्णुरुवाच भुवनेश्वरम् ।
अमृतं दीयतामस्मै क्रियताममरैः समः ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने लोकेश्वर इन्द्रसे कहा— देवराज ! तुम सुमुखको अमृत दे दो और इसे देवताओंके समान बना दो ॥ २३ ॥

मातलिर्नारदश्चैव सुमुखश्चैव वासव ।
लभन्तां भवतः कामात्काममेतं यथेप्सितम् ॥ २४ ॥

वासव ! इस प्रकार मातलि, नारद और सुमुख— ये सभी तुमसे इच्छानुसार अमृतका दान पाकर अपना यह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण कर लें ॥ २४ ॥

पुरंदरोऽथ संचिन्त्य वैनतेयपराक्रमम् ।
विष्णुमेवाब्रवीदेनं भवानेव ददात्विति ॥ २५ ॥

तब देवराज इन्द्रने गरुडके पराक्रमका विचार करके भगवान् विष्णुसे कहा— आप ही इसे उत्तम आयु प्रदान कीजिये ॥ २५ ॥

विष्णुरुवाच

ईशस्त्वमसि लोकानां चराणामचराश्च ये ।
त्वया दत्तमदत्तं कः कर्तुमुत्सहते विभो ॥ २६ ॥

विष्णु बोले— प्रभो ! तुम सम्पूर्ण जगत्में जितने भी चराचर प्राणी हैं, उन सबके ईश्वर हो। तुम्हारी दी हुई आयुको बिना दी हुईके समान कर अर्थात् मिटानेका साहस कौन कर सकता है ? ॥ २६ ॥

कण्व उवाच

प्रादाच्छक्रस्ततस्तस्मै पन्नगायायुरुत्तमम् ।
न त्वेनममृतप्राशं चकार बलवृत्रहा ॥ २७ ॥

कण्व बोले— तब इन्द्रने उस नागको लम्बी आयु प्रदान की, परंतु बलासुर और वृत्रासुरका विनाश करनेवाले इन्द्रने उसे अमृतभोजी नहीं बनाया ॥ २७ ॥

लब्ध्वा वरं तु सुमुखः सुमुखः सम्बभूव ह ।
कृतदारो यथाकामं जगाम च गृहान्प्रति ॥ २८ ॥

इन्द्रका वर पाकर सुमुखका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वह विवाह करके इच्छानुसार अपने घर चला गया ॥ २८ ॥

नारदस्त्वार्यकश्चैव कृतकार्यौ मुदा युतौ ।
प्रतिजग्मतुरभ्यर्च्य देवराजं महाद्युतिम् ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ ३३३७ ॥

नारद और आर्यक दोनों ही कृतकृत्य हो महातेजस्वी देवराजकी अर्चना करके प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने स्थानको चले गये ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ दोवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०२ ॥ ३३३७ ॥

: १०३ :

कण्व उवाच

गरुडस्तत्तु शुश्राव यथावृत्तं महाबलः ।
आयुःप्रदानं शक्रेण कृतं नागस्य भारत ॥ १ ॥

कण्व मुनि बोले– भारत ! महाबली गरुडने इन्द्रके द्वारा सुमुखको आयु प्रदान किए जानेका सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे सुना ॥ १ ॥

पक्षवातेन महता रुद्ध्वा त्रिभुवनं खगः ।
सुपर्णः परमक्रुद्धो वासवं समुपाद्रवत् ॥ २ ॥

यह सुनते ही आकाशचारी गरुड अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने पंखोंकी प्रचण्ड वायुसे तीनों लोकोंको कम्पित करते हुए इन्द्रके समीप दौडे आये ॥ २ ॥

गरुड उवाच

भगवन्किमवज्ञानात्क्षुधां प्रति भये मम ।
कामकारवरं दत्त्वा पुनश्चलितवानसि ॥ ३ ॥

गरुड बोले– भगवान् ! आपने अवहेलना करके मेरी भूखमें क्यों बाधा पहुंचायी है ? एक बार मुझे इच्छानुसार कार्य करनेका वरदान देकर अब फिर उससे विचलित क्यों हुए हैं ? ॥ ३ ॥

निसर्गात्सर्वभूतानां सर्वभूतेश्वरेण मे ।
आहारो विहितो धात्रा किमर्थं वार्यते त्वया ॥ ४ ॥

समस्त प्राणियोंके स्वामी विधाताने सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि करते समय मेरा आहार निश्चित कर दिया था। फिर आप किसलिये उसमें बाधा उपस्थित करते हैं ? ॥ ४ ॥

वृतश्चैष महानागः स्थापितः समयश्च मे ।
अनेन च मया देव भर्तव्यः प्रसवो महान् ॥ ५ ॥

देव ! मैंने उस महानागको अपने भोजनके लिये चुन लिया था। इसके लिये समय भी निश्चित कर दिया था और उसीके द्वारा मुझे अपने विशाल परिवारका भरण-पोषण करना था ॥ ५ ॥

एतस्मिंस्त्वन्यथाभूते नान्यं हिंसितुमुत्सहे ।
क्रीडसे कामकारेण देवराज यथेच्छकम् ॥ ६ ॥

अब मेरी बातके विपरीत हो जानेपर भी अर्थात् इसे दीर्घायु प्राप्त हो जानेपर भी अब मैं उसके बदलेमें दूसरेकी हिंसा नहीं कर सकता। देवराज ! आप स्वेच्छाचारको अपनाकर मनमाने खेल कर रहे हैं ॥ ६ ॥

सोऽहं प्राणान्विमोक्ष्यामि तथा परिजनो मम ।
ये च भृत्या मम गृहे प्रीतिमान्भव वासव ॥ ७ ॥

वासव ! अब मैं प्राण त्याग दूँगा। मेरे परिवारमें तथा मेरे घरमें जो भरण-पोषण करने योग्य प्राणी हैं, वे भी भोजनके अभावमें प्राण दे देंगे। अब आप संतुष्ट होइये ॥ ७ ॥

एतच्चैवाहमर्हामि भूयश्च बलवृत्रहन् ।
त्रैलोक्यस्येश्वरो योऽहं परभृत्यत्वमागतः ॥ ८ ॥

बल और वृत्रासुरका वध करनेवाले देवराज ! मैं इसी व्यवहारके योग्य हूं; क्योंकि तीनों लोकोंका शासन करनेमें समर्थ होकर भी मैंने दूसरेकी सेवा स्वीकार की है ॥ ८ ॥

त्वयि तिष्ठति देवेश न विष्णुः कारणं मम ।
त्रैलोक्यराज राज्यं हि त्वयि वासव शाश्वतम् ॥ ९ ॥

देवेश्वर ! त्रिलोकीनाथ ! आपके रहते भगवान् विष्णु भी मेरी जीविका रोकनेमें कारण नहीं हो सकते; क्योंकि, वासव ! तीनों लोकोंके राज्यका भार सदा आपके ही ऊपर है ॥ ९ ॥

ममापि दक्षस्य सुता जननी कश्यपः पिता ।
अहमप्युत्सहे लोकान्समस्तान्वोढुमञ्जसा ॥ १० ॥

मेरी माता भी प्रजापति दक्षकी पुत्री हैं। मेरे पिता भी महर्षि कश्यप ही हैं। मैं भी अनायास ही सम्पूर्ण लोकोंका भार वहन कर सकता हूं ॥ १० ॥

असह्यं सर्वभूतानां ममापि विपुलं बलम् ।
मयापि सुमहत्कर्म कृतं दैतेयविग्रहे ॥ ११ ॥

मुझमें भी सारे प्राणियों द्वारा न सहे जासकनेवाला विशाल बल है । मैंने भी दैत्योंके साथ युद्ध छिडनेपर महान् पराक्रम प्रकट किया है ॥ ११ ॥

श्रुतश्रीः श्रुतसेनश्च विवस्वान्रोचनामुखः ।
प्रसभः कालकाक्षश्च मयापि दितिजा हताः ॥ १२ ॥

मैंने भी श्रुतश्री श्रुतसेन विवस्वान्, रोचनामुख, प्रसभ और कालकाक्ष नामक दैत्योंको मारा है ॥ १२ ॥

यत्तु ध्वजस्थानगतो यत्नात्परिचराम्यहम् ।
वहामि चैवानुजं ते तेन मामवमन्यसे ॥ १३ ॥

तथापि मैं जो रथकी ध्वजामें रहकर यत्नपूर्वक आपके छोटे भाई विष्णुकी सेवा करता और उनको वहन करता हूं इसीसे आप मेरी अवहेलना करते हैं ॥ १३ ॥

कोऽन्यो भारसहो ह्यस्ति कोऽन्योऽस्ति बलवत्तरः ।
मया योऽहं विशिष्टः सन्वहामीमं सबान्धवम् ॥ १४ ॥

मेरे सिवा दूसरा कौन है, जो भगवान् विष्णुका महान् भार सह सके ? कौन मुझसे अधिक बलवान् है ? मैं सबसे विशिष्ट शक्तिशाली होकर भी बन्धु बान्धवोंसहित इन विष्णुभवान्का भार वहन करता हूं ॥ १४ ॥

अवज्ञाय तु यत्तेऽहं भोजनाद्व्यपरोपितः ।
तेन मे गौरवं नष्टं त्वत्तश्चास्माच्च वासव ॥ १५ ॥

वासव ! आपने मेरी अवज्ञा करके जो मेरा भोजन छीन लिया है, उसके कारण आपके और विष्णुके द्वारा मेरा सारा गौरव नष्ट हो गया ॥ १५ ॥

अदित्यां य इमे जाता बलविक्रमशालिनः ।
त्वमेषां किल सर्वेषां विशेषाद्बलवत्तरः ॥ १६ ॥

विष्णो ! अदितिके गर्भसे जो ये बल और पराक्रमसे सुशोभित देवता उत्पन्न हुए हैं, इन सबमें विशेषताकी दृष्टिसे अधिक शक्तिशाली आप ही हैं ॥ १६ ॥

सोऽहं पक्षैकदेशेन वहामि त्वां गतक्लमः ।
विमृश त्वं शनैस्तात को न्वत्र बलवानिति ॥ १७ ॥

तात ! आपको मैं अपनी पांखके एक भागपर बिठाकर बिना किसी थकावटके ढोता रहता हूं । धीरेसे आप ही विचार करें कि यहां कौन सबसे अधिक बलवान् है ? ॥ १७ ॥

कण्व उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा खगस्योदर्कदारुणम् ।
अक्षोभ्यं क्षोभयंस्तार्क्ष्यमुवाच रथचक्रभृत् ॥ १८ ॥

कण्व मुनि बोले-- राजन् ! गरुडकी भयंकर परिणाम उपस्थित करनेवाली ये बातें सुनकर रथाङ्गपाणि श्रीविष्णुने किसीसे क्षुब्ध न होनेवाले पक्षिराजको क्षुब्ध करते हुए कहा-- ॥ १८ ॥

गरुत्मन्मन्यसेऽऽत्मानं बलवन्तं सुदुर्बलम् ।
अलमस्मत्समक्षं ते स्तोतुमात्मानमण्डज ॥ १९ ॥

गरुत्मन् ! तुम हो तो अत्यन्त दुर्बल, परंतु अपने आपको बडा भारी बलवान् मानते हो। अण्डज ! मेरे सामने फिर कभी अपनी प्रशंसा न करना ॥ १९ ॥

त्रैलोक्यमपि मे कृत्स्नमशक्तं देहधारणे ।
अहमेवात्मनात्मानं वहामि त्वां च धारये ॥ २० ॥

सारी त्रिलोकी मिलकर भी मेरे शरीरका भार वहन करनेमें असमर्थ है । मैं ही अपने द्वारा अपनेको ढोता हूं और तुमको भी धारण करता हूं ॥ २० ॥

इमं तावन्ममैकं त्वं बाहुं सव्येतरं वह ।
यद्येनं धारयस्येकं सफलं ते विकत्थितम् ॥ २१ ॥

अच्छा, पहले तुम मेरी केवल दाहिनी भुजाका भार वहन करो । यदि इस एकको ही धारण कर लोगे तो तुम्हारी यह सारी आत्मप्रशंसा सफल समझी जायेगी ॥ २१ ॥

ततः स भगवांस्तस्य स्कन्धे बाहुं समासजत् ।
निपपात स भारार्तो विह्वलो नष्टचेतनः ॥ २२ ॥

इतना कहकर भगवान् विष्णुने गरुडके कंधेपर अपनी दाहिनी बांह रख दी । उसके बोझसे पीडित एवं विह्वल एवं चेतना रहित होकर गरुड गिर पडे ॥ २२ ॥

यावान्हि भारः कृत्स्नायाः पृथिव्याः पर्वतैः सह ।
एकस्या देहशाखायास्तावद्भारममन्यत ॥ २३ ॥

पर्वतोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका जितना भार हो सकता है, उतना ही उस एक बांहका भार है, यह गरुडको अनुभव हुआ ॥ २३ ॥

न त्वेनं पीडयामास बलेन बलवत्तरः ।
ततो हि जीवितं तस्य न व्यनीनशदच्युतः ॥ २४ ॥

अत्यन्त बलशाली भगवान् अच्युतने गरुडको बलपूर्वक दबाया नहीं था; इसीलिये उनके जीवनका नाश नहीं हुआ ॥ २४ ॥

विपक्षः स्रस्तकायश्च विचेता विह्वलः खगः ।
मुमोच पत्राणि तदा गुरुभारप्रपीडितः ॥ २५ ॥

उस महान् भारसे अत्यन्त पीडित हो गरुडके पंख विकृत हो गए। उनका सारा शरीर शिथिल हो गया। उन्होंने अचेत और विह्वल होकर अपने पंख छोड दिये॥ २५ ॥

स विष्णुं शिरसा पक्षी प्रणम्य विनतासुतः ।
विचेता विह्वलो दीनः किंचिद्वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

तदनन्तर अचेत एवं विह्वल हुए विनतापुत्र पक्षिराज गरुडने भगवान् विष्णुके चरणोंमें प्रणाम किया और दीनभावसे कुछ बात कही ॥ २६ ॥

भगवँल्लोकसारस्य सदृशेन वपुष्मता ।
भुजेन स्वैरमुक्तेन निष्पिष्टोऽस्मि महीतले ॥ २७ ॥

'भगवन् ! संसारके मूर्तिमान् सारतत्त्व–सदृश आपकी इस भुजाके द्वारा, जिसे आपने स्वाभाविक ही मेरे ऊपर रख दिया था, मैं पिसकर पृथ्वीपर गिर गया हूँ ॥ २७ ॥

क्षन्तुमर्हसि मे देव विह्वलस्याल्पचेतसः ।
बलदाहविदग्धस्य पक्षिणो ध्वजवासिनः ॥ २८ ॥

हे देव ! विव्हल होने के कारण अचेतन, आपके बलरूपी अग्निसे जल जानेवाले तथा अपने ध्वजा पर रहनेवाले मुझ साधारण पक्षीको क्षमा कीजिए ॥ २८ ॥

न विज्ञातं बलं देव मया ते परमं विभो ।
तेन मन्याम्यहं वीर्यमात्मनोऽसदृशं परैः ॥ २९ ॥

विभो ! मुझे आपके महान् बलका पता नहीं था। देव ! इसीसे मैं अपने बल और पराक्रमको दूसरोंके समान ही नहीं, उनसे बहुत बढ चढकर मानता था' ॥ २९ ॥

ततश्चक्रे स भगवान्प्रसादं वै गरुत्मतः ।
मैवं भूय इति स्नेहात्तदा चैनमुवाच ह ॥ ३० ॥

गरुडके ऐसा कहनेपर भगवान्ने उनपर कृपादृष्टि की और उस समय स्नेहपूर्वक उनसे कहा— 'फिर कभी इस प्रकार घमंड न करना' ॥ ३० ॥

तथा त्वमपि गान्धारे यावत्पाण्डुसुतान्रणे ।
नासादयसि तान्वीरांस्तावज्जीवसि पुत्रक ॥ ३१ ॥

गान्धारीनन्दन वत्स दुर्योधन ! इसी तरह तुम भी जबतक रणभूमिमें उन वीर पाण्डवोंको अपने सामने नहीं पाते, तभीतक जीवन धारण करते हो ॥ ३१ ॥

भीमः प्रहरतां श्रेष्ठो वायुपुत्रो महाबलः ।
धनंजयश्चेन्द्रसुतो न हन्यातां तु कं रणे ॥ ३२ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ महाबली भीम वायुके पुत्र हैं । अर्जुन भी इन्द्रके पुत्र हैं । ये दोनों मिलकर युद्धमें किसे नहीं मार डालेंगे ? ॥ ३२ ॥

विष्णुर्वायुश्च शक्रश्च धर्मस्तौ चाश्विनावुभौ ।
एते देवास्त्वया केन हेतुना शक्यमीक्षितुम् ॥ ३३ ॥

धर्मस्वरूप विष्णु, वायु, इन्द्र और वे दोनों अश्विनीकुमार इतने देवता तुम्हारे विरुद्ध हैं । तुम किस कारणसे इन देवताओंकी ओर देखनेका भी साहस कर सकते हो ? ॥ ३३ ॥

तदलं ते विरोधेन शमं गच्छ नृपात्मज ।
वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि ॥ ३४ ॥

अतः, राजकुमार ! इस विरोधसे तुम्हें कुछ मिलनेवाला नहीं है । पाण्डवोंके साथ संधि कर लो । भगवान् श्रीकृष्णको सहायक बनाकर इनके द्वारा तुम अपने कुलकी रक्षा कर सकते हो ॥ ३४ ॥

प्रत्यक्षो ह्यस्य सर्वस्य नारदोऽयं महातपाः ।
माहात्म्यं यत्तदा विष्णोर्योऽयं चक्रगदाधरः ॥ ३५ ॥

इन महातपस्वी नारदने उस समय भगवान् विष्णुके माहात्म्यको प्रत्यक्ष देखा था । वे चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु ही ये ‘ श्रीकृष्ण ’ हैं ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा निःश्वसन्भ्रुकुटीमुखः ।
राधेयमभिसम्प्रेक्ष्य जहास स्वनवत्तदा ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! कण्वका यह कथन सुनकर दुर्योधनकी भौंहें तन गयीं । वह लम्बी साँस खींचता हुआ राधानन्दन कर्णकी ओर देखकर जोर जोरसे हँसने लगा ॥ ३६ ॥

कदर्थीकृत्य तद्वाक्यमृषेः कण्वस्य दुर्मतिः ।
ऊरुं गजकराकारं ताडयन्निदमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

उस दुर्बुद्धिने कण्व मुनिके वचनोंकी अवहेलना करके हाथीकी सूँडके समान चढाव उतारवाली अपनी मोटी जाँघपर हाथ पीटकर इस प्रकार कहा-- ॥ ३७ ॥

यथैवेश्वरसृष्टोऽस्मि यद्भावि या च मे गतिः ।
तथा महर्षे वर्तामि किं प्रलापः करिष्यति ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ३३७५ ॥

महर्षे ! मुझे ईश्वरने जैसा बनाया है, जो होनहार और जैसी मेरी अवस्था है, उसीके अनुसार मैं वर्ताव करता हूँ । आपलोगोंका यह प्रलाप क्या करेगा ?' ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ १०३ ॥ ३३७५ ॥

: १०४ :

जनमेजय उवाच

अनर्थे जातनिर्बन्धं परार्थे लोभमोहितम् ।
अनार्यकेष्वभिरतं मरणे कृतनिश्चयम् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले— भगवन् ! दुर्योधनका अनर्थकारी कार्योंमें ही अधिक आग्रह था । पराये धनके प्रति अधिक लोभ रखनेके कारण वह मोहित हो गया था । दुर्जनोंमें ही उसका अनुराग था । उसने मरनेका ही निश्चय कर लिया था ॥ १ ॥

ज्ञातीनां दुःखकर्तारं बन्धूनां शोकवर्धनम् ।
सुहृदां क्लेशदातारं द्विषतां हर्षवर्धनम् ॥ २ ॥

वह कुटुम्बीजनोंके लिये दुःखदायक और भाई बन्धुओंके शोकको बढानेवाला था । सुहृदोंको क्लेश पहुँचाता और शत्रुओंका हर्ष बढाता था ॥ २ ॥

कथं नैनं विमार्गस्थं वारयन्तीह बान्धवाः ।
सौहृदाद्वा सुहृत्स्निग्धो भगवान्वा पितामहः ॥ ३ ॥

ऐसे कुमार्गपर चलनेवाले इस दुर्योधनको उसके भाई बन्धु रोकते क्यों नहीं थे ? कोई सुहृद्, स्नेही अथवा पितामह भगवान् व्यास उसे सौहार्दवश मना क्यों नहीं करते थे ? ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

उक्तं भगवता वाक्यमुक्तं भीष्मेण यत्क्षमम् ।
उक्तं बहुविधं चैव नारदेनापि तच्छृणु ॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले—राजन् ! भगवान् वेदव्यासने भी दुर्योधनसे उसके हितकी बात कही । भीष्मने भी जो उचित कर्तव्य था, वह बताया । इसके सिवा नारदने भी नाना प्रकारके उपदेश दिये । वह सब तुम सुनो ॥ ४ ॥

×

नारद उवाच

दुर्लभो वै सुहृच्छ्रोता दुर्लभश्च हितः सुहृत्।
तिष्ठते हि सुहृद्यत्र न बन्धुस्तत्र तिष्ठति ॥ ५ ॥

नारद बोले—अकारण हित चाहनेवाले सुहृद्की बातोंको जो मन लगाकर सुने, ऐसा श्रोता दुर्लभ है। हितैषी सुहृद् भी दुर्लभ ही है; क्योंकि महान् संकटमें सुहृद् ही खडा हो सकता है, वहां भाईबन्धु नहीं ठहर सकते ॥ ५ ॥

श्रोतव्यमपि पश्यामि सुहृदां कुरुनन्दन।
न कर्तव्यश्च निर्बन्धो निर्बन्धो हि सुदारुणः ॥ ६ ॥

कुरुनन्दन! मैं देखता हूँ कि तुम्हें अपने सुहृदोंके उपदेशको सुननेकी विशेष आवश्यकता है; अतः तुम्हें किसी एक बातका दुराग्रह नहीं रखना चाहिये। दुराग्रहका परिणाम बडा भयंकर होता है ॥ ६ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यथा निर्बन्धतः प्राप्तो गालवेन पराजयः ॥ ७ ॥

इस विषयमें विज्ञ पुरुष इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि महर्षि गालवने हठ या दुराग्रहके कारण पराजय प्राप्त की थी ॥ ७ ॥

विश्वामित्रं तपस्यन्तं धर्मो जिज्ञासया पुरा।
अभ्यगच्छत्स्वयं भूत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ८ ॥

पहलेकी बात है, साक्षात् धर्मराज महर्षि भगवान् वसिष्ठका रूप धारण करके तपस्यामें लगे हुए विश्वामित्रके पास उनकी परीक्षा लेनेके लिये आये ॥ ८ ॥

सप्तर्षीणामन्यतमं वेषमास्थाय भारत।
बुभुक्षुः क्षुधितो राजन्नाश्रमं कौशिकस्य ह ॥ ९ ॥

भारत! धर्म सप्तर्षियोंमेंसे एक वसिष्ठका वेष धारण करके भूखसे पीडित हो भोजनकी इच्छासे विश्वामित्रके आश्रमपर आये ॥ ९ ॥

विश्वामित्रोऽथ सम्भ्रान्तः श्रपयामास वै चरुम्।
परमान्नस्य यत्नेन न च स प्रत्यपालयत् ॥ १० ॥

विश्वामित्रने बडी उतावलीके साथ उनके लिये उत्तम भोजन देनेकी इच्छासे यत्नपूर्वक चरुपाक बनाना आरम्भ किया; परंतु ये अतिथिदेवता उनकी प्रतीक्षा न कर सके ॥ १० ॥

अन्नं तेन तदा भुक्तमन्यैर्दत्तं तपस्विभिः।
अथ गृह्यान्नमत्युष्णं विश्वामित्रोऽप्युपागमत् ॥ ११ ॥

उन्होंने जब दूसरे तपस्वी मुनियोंका दिया हुआ अन्न खा लिया, तब विश्वामित्र भी अत्यन्त उष्ण भोजन लेकर उनकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ ११ ॥

भुक्तं मे तिष्ठ तावत्त्वमित्युक्त्वा भगवान्ययौ ।
विश्वामित्रस्ततो राजन्स्थित एव महाद्युतिः ॥ १२ ॥

उस समय भगवान् धर्म यह कहकर कि मैंने भोजन कर लिया, अब तुम रहने दो, वहांसे चल दिये । राजन् ! तब महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि वहां उसी अवस्थामें खडे ही रह गये ॥ १२ ॥

भक्तं प्रगृह्य मूर्ध्ना तद्बाहुभ्यां पार्श्वतोऽगमत् ।
स्थितः स्थाणुरिवाभ्याशे निश्चेष्टो मारुताशनः ॥ १३ ॥

विश्वामित्रने दोनों हाथोंसे उस भोजनपात्रको थामकर माथेपर रख लिया और बगलमें गए तथा आश्रमके समीप ही ठूँठे पेडकी भांति वे निश्चेष्ट खडे रहे । उस अवस्थामें केवल वायु ही उनका आहार था ॥ १३ ॥

तस्य शुश्रूषणे यत्नमकरोद्गालवो मुनिः ।
गौरवाद्बहुमानाच्च हार्देन प्रियकाम्यया ॥ १४ ॥

उन दिनों उनके प्रति गौरवबुद्धि, विशेष आदरसम्मानका भाव तथा प्रेमभक्ति होनेके कारण उनकी प्रसन्नताके लिये गालवमुनि यत्नपूर्वक उनकी सेवाशुश्रूषामें लगे रहते थे ॥१४॥

अथ वर्षशते पूर्णे धर्मः पुनरुपागमत् ।
वासिष्ठं वेषमास्थाय कौशिकं भोजनेप्सया ॥ १५ ॥

तदनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर पुनः धर्मदेव वसिष्ठ मुनिका वेष धारण करके भोजनकी इच्छासे विश्वामित्र मुनिके पास आये ॥ १५ ॥

स दृष्ट्वा शिरसा भक्तं ध्रियमाणं महर्षिणा ।
तिष्ठता वायुभक्षेण विश्वामित्रेण धीमता ॥ १६ ॥

उन्होंने भक्त तथा परम बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्रको केवल वायु पीकर रहते हुए सिरपर भोजनपात्र रक्खे हुए देखा ॥ १६ ॥

प्रतिगृह्य ततो धर्मस्तथैवोष्णं तथा नवम् ।
भुक्त्वा प्रीतोऽस्मि विप्रर्षे तमुक्त्वा स मुनिर्गतः ॥ १७ ॥

धर्मने वह भोजन ले लिया । वह अन्न उसी प्रकार तुरंतकी तैयार की हुई रसोईके समान गरम था । उसे खाकर वे बोले– 'ब्रह्मर्षे ! मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूँ ।' ऐसा कहकर मुनिवेषधारी धर्मदेव चले गये ॥ १७ ॥

क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः ।
धर्मस्य वचनात्प्रीतो विश्वामित्रस्तदाभवत् ॥ १८ ॥

क्षत्रियत्वसे ऊँचे उठकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए विश्वामित्रको धर्मके वचनसे उस समय बडी प्रसन्नता हुई ॥ १८ ॥

विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य गालवस्य तपस्विनः ।
शुश्रूषया च भक्त्या च प्रीतिमानित्युवाच तम् ।
अनुज्ञातो मया वत्स यथेष्टं गच्छ गालव ॥ १९ ॥

वे अपने शिष्य तपस्वी गालव मुनिकी सेवाशुश्रूषा तथा भक्तिसे संतुष्ट होकर उससे बोले– हे गालव ! मैं तुम्हें जानेकी अनुमति देता हूँ, तुम जहां चाहो जा सकते हो ॥१९॥

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गालवो मुनिसत्तमम् ।
प्रीतो मधुरया वाचा विश्वामित्रं महाद्युतिम् ॥ २० ॥

उनके इस प्रकार आदेश देनेपर गालवने प्रसन्नता प्रकट करते हुए मधुर वाणीमें महातेजस्वी मुनिवर विश्वामित्रसे इस प्रकार पूछा- ॥ २० ॥

दक्षिणां कां प्रयच्छामि भवते गुरुकर्मणि ।
दक्षिणाभिरुपेतं हि कर्म सिध्यति मानवम् ॥ २१ ॥

भगवन् ! मैं आपको गुरुदक्षिणाके रूपमें क्या दूँ ? मनुष्यका कर्म दक्षिणासे युक्त होनेपर ही सफल होता है ॥ २१ ॥

दक्षिणानां हि सृष्टानामपवर्गेण भुज्यते ।
स्वर्गे क्रतुफलं सद्भिर्दक्षिणा शान्तिरुच्यते ।
किमाहरामि गुर्वर्थं ब्रवीतु भगवानिति ॥ २२ ॥

दक्षिणा देनेवाले पुरुषको ही सिद्धि प्राप्त होती है। दक्षिणा देनेवाला मनुष्य ही स्वर्गमें यज्ञका फल पाता है । वेदमें दक्षिणाको ही शान्तिप्रद बताया गया है । अतः, पूज्य गुरुदेव ! बतावें कि मैं क्या गुरुदक्षिणा ले आऊँ ? ॥ २२ ॥

जानमानस्तु भगवाञ्जितः शुश्रूषणेन च ।
विश्वामित्रस्तमसकृद्गच्छ गच्छेत्यचोदयत् ॥ २३ ॥

गालवकी सेवाशुश्रूषासे भगवान् विश्वामित्र उनके वशमें हो गये थे। अतः उनके उपकारको समझते हुए विश्वामित्रने उनसे बार बार कहा– 'जाओ, जाओ' ॥ २३ ॥

असकृद्गच्छ गच्छेति विश्वामित्रेण भाषितः ।
किं ददानीति बहुशो गालवः प्रत्यभाषत ॥ २४ ॥

उनके द्वारा बारंबार 'जाओ, जाओ' की आज्ञा मिलनेपर भी गालवने अनेक बार आग्रहपूर्वक पूछा– 'मैं आपको क्या गुरुदक्षिणा दूँ ?' ॥ २४ ॥

निर्बन्धतस्तु बहुशो गालवस्य तपस्विनः ।
किंचिदागतसंरम्भो विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥

तपस्वी गालवके बहुत आग्रह करनेपर विश्वामित्रको कुछ क्रोध आ गया; अतः उन्होंने इस प्रकार कहा ॥ २५ ॥

एकतःश्यामकर्णानां शतान्यष्टौ ददस्व मे ।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां गच्छ गालव माचिरम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ ३४०१ ॥

गालव ! तुम मुझे चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले तथा जिनके एक कान काले हों ऐसे आठ सौ घोडे दो । जाओ, देर न करो ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥ १०४ ॥ ३४०१ ॥

: १०५ :

नारद उवाच

एवमुक्तस्तदा तेन विश्वामित्रेण धीमता ।
नास्ते न शेते नाहारं कुरुते गालवस्तदा ॥ १ ॥

नारद बोले– राजन् ! उस समय परम बुद्धिमान् विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर गालव मुनि तबसे न कहीं बैठते, न सोते और न भोजन ही करते थे ॥ १ ॥

त्वगस्थिभूतो हरिणश्चिन्ताशोकपरायणः ।
शोचमानोऽतिमात्रं स दह्यमानश्च मन्युना ॥ २ ॥

अत्यन्त शोक करते और चिन्ताकी आगमें दग्ध होते हुए दुःखी गालव मुनि चिन्ता और शोकमें डूबे रहनेके कारण पाण्डुवर्णके हो गये । उनके शरीरमें अस्थिचर्ममात्र ही शेष रह गये थे ॥ २ ॥

कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थाः संचयः कुतः ।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां शतान्यष्टौ कुतो मम ॥ ३ ॥

मेरे ऐसे मित्र कहां, जो धनसे पुष्ट हों ? मुझे कहांसे धन प्राप्त होगा ? कहां मेरे लिये धन संग्रह करके रक्खा हुआ है ? और कहांसे मुझे चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णवाले आठ सौ घोडे प्राप्त होंगे ? ॥ ३ ॥

कुतो मे भोजनश्रद्धा सुखश्रद्धा कुतश्च मे ।
श्रद्धा मे जीवितस्यापि छिन्ना किं जीवितेन मे ॥ ४ ॥

ऐसी दशामें मुझे भोजनकी रुचि कहांसे हो ? सुख भोगनेकी इच्छा कहांसे हो ? और इस जीवनसे भी मुझे क्या प्रयोजन है ? इस जीवनको सुरक्षित रखनेके लिये मेरा जो उत्साह था, वह भी नष्ट हो गया ॥ ४ ॥

अहं पारं समुद्रस्य पृथिव्या वा परं परात्।
गत्वात्मानं विमुञ्चामि किं फलं जीवितेन मे ॥ ५ ॥

मैं समुद्रके उस पार अथवा पृथ्वीसे बहुत दूर जाकर इस शरीरको त्याग दूँगा। अब मेरे लिये जीवित रहनेसे क्या लाभ है ? ॥ ५ ॥

अधनस्याकृतार्थस्य त्यक्तस्य विविधैः फलैः।
ऋणं धारयमाणस्य कुतः सुखमनीहया ॥ ६ ॥

जो निर्धन है, जिसके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि नहीं हुई है तथा जो नाना प्रकारके शुभ कर्मफलोंसे वञ्चित होकर केवल ऋणका बोझ ढो रहा है, ऐसे मनुष्यको विना उद्यमके जीवन धारण करनेसे क्या सुख होगा ? ॥ ६ ॥

सुहृदां हि धनं भुक्त्वा कृत्वा प्रणयमीप्सितम्।
प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम् ॥ ७ ॥

जो इच्छानुसार प्रेमसम्बन्ध स्थापित करके सुहृदोंका धन भोगकर उनका प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ हो, उसके जीनेसे मर जाना ही अच्छा है ॥ ७ ॥

प्रतिश्रुत्य करिष्येति कर्तव्यं तदकुर्वतः।
मिथ्यावचनदग्धस्य इष्टापूर्तं प्रणश्यति ॥ ८ ॥

जो करूँगा ऐसा कहकर किसी कार्यको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर ले, परंतु आगे चलकर उस कर्तव्यका पालन न कर सके, उस असत्यभाषणसे दग्ध हुए पुरुषके इष्ट और आपूर्त सभी नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥

न रूपमनृतस्यास्ति नानृतस्यास्ति संततिः।
नानृतस्याधिपत्यं च कुत एव गतिः शुभा ॥ ९ ॥

सत्यसे शून्य मनुष्यका जीवन नहींके बराबर है। मिथ्यावादीको संतति नहीं प्राप्त होती। झूठेको प्रभुत्व नहीं मिलता, फिर उसे शुभ गति कैसे प्राप्त हो सकती है ? ॥ ९ ॥

कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम्।
अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ १० ॥

कृतघ्न मनुष्यको सुयश कहाँ ? स्थान या प्रतिष्ठा कहाँ और सुख भी कहाँ है ? कृतघ्न मानव अविश्वसनीय होता है, उसका कभी उद्धार नहीं होता ॥ १० ॥

न जीवत्यधनः पापः कुतः पापस्य तन्त्रणम्।
पापो ध्रुवमवाप्नोति विनाशं नाशयन्कृतम् ॥ ११ ॥

निर्धन एवं पापी मनुष्यका जीवन वास्तवमें जीवन नहीं है। पापी मनुष्य अपने कुटुम्बका पोषण भी कैसे कर सकता है ? पापात्मा निर्धन पुरुष अपने पुण्य कर्मोंका नाश करता हुआ स्वयं भी निश्चय ही नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

सोऽहं पापः कृतघ्नश्च कृपणश्चानृतोऽपि च।
गुरोर्यः कृतकार्यः संस्तत्करोमि न भाषितम्।
सोऽहं प्राणान्विमोक्ष्यामि कृत्वा यत्नमनुत्तमम् ॥ १२ ॥

मैं पापी, कृतघ्न, कृपण और मिथ्यावादी हूं, जिसने गुरुसे तो अपना काम करा लिया, परंतु स्वयं जो उन्हें देनेकी प्रतिज्ञा की है, उसकी पूर्ति नहीं कर पा रहा हूं। अतः मैं कोई उत्तम प्रयत्न करके अपने प्राणोंका परित्याग कर दूंगा ॥ १२ ॥

अर्थना न मया काचित्कृतपूर्वा दिवौकसाम्।
मानयन्ति च मां सर्वे त्रिदशा यज्ञसंस्तरे ॥ १३ ॥

मैंने आजसे पहले देवताओंसे भी कभी कोई याचना नहीं की है। सब देवता यज्ञमें मेरा समादर करते हैं ॥ १३ ॥

अहं तु विबुधश्रेष्ठं देवं त्रिभुवनेश्वरम्।
विष्णुं गच्छाम्यहं कृष्णं गतिं गतिमतां वरम् ॥ १४ ॥

अब मैं त्रिभुवनके स्वामी एवं जङ्गम जीवोंके सर्वश्रेष्ठ आश्रय, सुरश्रेष्ठ सच्चिदानन्दघन भगवान् विष्णुकी शरणमें जाता हूं ॥ १४ ॥

भोगा यस्मात्प्रतिष्ठन्ते व्याप्य सर्वान्सुरासुरान्।
प्रयतो द्रष्टुमिच्छामि महायोगिनमव्ययम् ॥ १५ ॥

जिनकी कृपासे समस्त देवताओं और असुरोंको भी यथेष्ट भोग प्राप्त होते हैं, उन्हीं अविनाशी योगी भगवान् विष्णुका मैं जाकर दर्शन करना चाहता हूं ॥ १५ ॥

एवमुक्ते सखा तस्य गरुडो विनतात्मजः।
दर्शयामास तं प्राह संहृष्टः प्रियकाम्यया ॥ १६ ॥

गालवके इस प्रकार कहनेपर उनके सखा विनतानन्दन गरुडने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका प्रिय करनेकी इच्छासे उन्हें दर्शन दिया और इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥

सुहृद्भवान्मम मतः सुहृदां च मतः सुहृत्।
ईप्सितेनाभिलाषेण योक्तव्यो विभवे सति ॥ १७ ॥

गालव! तुम मेरे प्रिय सुहृद् हो और मेरे सुहृदोंके भी प्रिय सुहृद् हो। सुहृदोंका यह कर्तव्य है कि यदि उनके पास धन वैभव हो तो वे उसका अपने सुहृद्का अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करनेके लिये उपयोग करें ॥ १७ ॥

विश्वकश्चास्ति मे विप्र वासवावरजो द्विज ।
पूर्वमुक्तस्त्वदर्थं च कृतः कामश्च तेन मे ॥ १८ ॥

'ब्रह्मन् ! मेरे सबसे बडे वैभव हैं इन्द्रके छोटे भाई भगवान् विष्णु । मैंने पहले तुम्हारे लिये उनसे निवेदन किया था और उन्होंने मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार करके मेरा मनोरथ पूर्ण किया था ॥ १८ ॥

स भवानेतु गच्छाव नयिष्ये त्वां यथासुखम् ।
देशं पारं पृथिव्या वा गच्छ गालव माचिरम् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ३४२० ॥

अतः आओ, हम दोनों चलें । गालव ! मैं तुम्हें सुखपूर्वक ऐसे देशमें पहुंचा दूंगा, जो पृथ्वीके अन्तर्गत तथा समुद्रके उस पार है । चलो, विलम्ब न करो ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ पांचवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०५ ॥ ३४२० ॥

: १०६ :

सुपर्ण उवाच

अनुशिष्टोऽस्मि देवेन गालवाज्ञातयोनिना ।
ब्रूहि कामनुसंयामि द्रष्टुं प्रथमतो दिशम् ॥ १ ॥

गरुड बोले– गालव ! अनादिदेव भगवान् विष्णुने मुझे आज्ञा दी है कि मैं तुम्हारी सहायता करूं । अतः तुम अपनी इच्छाके अनुसार बताओ कि मैं सबसे पहले किस दिशाकी ओर चलूं ? ॥ १ ॥

पूर्वां वा दक्षिणां वाहमथ वा पश्चिमां दिशम् ।
उत्तरां वा द्विजश्रेष्ठ कुतो गच्छामि गालव ॥ २ ॥

द्विजश्रेष्ठ गालव ! बोलो, मैं पूर्व, दक्षिण, पश्चिम अथवा उत्तरमेंसे किस दिशाकी ओर चलूं ? ॥ २ ॥

यस्यामुदयते पूर्वं सर्वलोकप्रभावनः ।
सविता यत्र संध्यायां साध्यानां वर्तते तपः ॥ ३ ॥

विप्रवर ! जिस दिशामें सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न एवं प्रभावित करनेवाले भगवान् सूर्य प्रथम उदित होते हैं, जिस दिशामें संध्याके समय साध्यगण तपस्या करते हैं ॥ ३ ॥

यस्यां पूर्वं मतिर्जाता यया व्याप्तमिदं जगत् ।
चक्षुषी यत्र धर्मस्य यत्र चैव प्रतिष्ठितः ॥ ४ ॥

जिस दिशामें गायत्रीजपके द्वारा पहले वह बुद्धि उत्पन्न हुई है, जिसने सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रक्खा है, धर्मके युगलनेत्रस्वरूप चन्द्रमा और सूर्य पहले जिस दिशामें उदित होते हैं और प्रायः पूर्वाभिमुख होकर धर्मानुष्ठान किये जानेके कारण जहां धर्म प्रतिष्ठित हुआ है ॥ ४ ॥

हुतं यतो मुखैर्हव्यं सर्पते सर्वतोदिशम् ।
एतद्द्वारं द्विजश्रेष्ठ दिवसस्य तथाध्वनः ॥ ५ ॥

तथा जिस दिशामें पवित्र हविष्यका हवन करनेपर वह आहुति सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल जाती है, वही यह पूर्वदिशा दिन एवं सूर्यमार्गका द्वार है ॥ ५ ॥

यत्र पूर्वं प्रसूता वै दाक्षायण्यः प्रजाः स्त्रियः ।
यस्यां दिशि प्रवृद्धाश्च कश्यपस्यात्मसम्भवाः ॥ ६ ॥

जिस दिशामें प्रजापति दक्षकी अदिति आदि कन्याओंने सबसे पहले प्रजावर्गको उत्पन्न किया था और जिसमें प्रजापति कश्यपकी संतानें वृद्धिको प्राप्त हुई हैं ॥ ६ ॥

यतोमूला सुराणां श्रीर्यत्र शक्रोऽभ्यषिच्यत ।
सुरराज्येन विप्रर्षे देवैश्चात्र तपश्चितम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मर्षे ! देवताओंकी लक्ष्मीका मूलस्थान पूर्व दिशा ही है । जिसमें इन्द्रका देवसम्राट्‌के पदपर प्रथम अभिषेक हुआ है और इसी दिशामें देवताओंने तपस्या की है ॥ ७ ॥

एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मन्पूर्वेत्येषा दिगुच्यते ।
यस्मात्पूर्वतरे काले पूर्वमेवावृता सुरैः ॥ ८ ॥

ब्रह्मन् ! इन्हीं सब कारणोंसे इस दिशाको पूर्व कहते हैं; क्योंकि अत्यन्त पूर्वकालमें पहले यही दिशा देवताओंसे आवृत हुई थी ॥ ८ ॥

अत एव च पूर्वेषां पूर्वामाशामवेक्षताम् ।
पूर्वकार्याणि कार्याणि दैवानि सुखमीप्सता ॥ ९ ॥

अतएव इसे सबकी आदि दिशा समझो । सुखकी अभिलाषा रखनेवाले लोगोंको देवसम्बन्धी सारे कार्य पहले इसी दिशामें करने चाहिये ॥ ९ ॥

अत्र वेदाञ्जगौ पूर्वं भगवाँल्लोकभावनः ।
अत्रैवोक्ता सवित्रासीत्सावित्री ब्रह्मवादिषु ॥ १० ॥

लोकस्रष्टा भगवान् ब्रह्माने पहले इसी दिशामें वेदोंका गान किया था और सविता देवताने ब्रह्मवादी मुनियोंको यहीं सावित्रीमन्त्रका उपदेश किया था ॥ १० ॥

अत्र दत्तानि सूर्येण यजूंषि द्विजसत्तम।
अत्र लब्धवरैः सोमः सुरैः क्रतुषु पीयते ॥ ११ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशामें सूर्यदेवने महर्षि याज्ञवल्क्यको शुक्लयजुर्वेदके मन्त्र दिये थे और इसी दिशामें वरदानको प्राप्त किए हुए देवतालोग यज्ञोंमें उस सोमरसका पान करते हैं ॥ ११ ॥

अत्र तृप्ता हुतवहाः स्वां योनिमुपभुञ्जते।
अत्र पातालमाश्रित्य वरुणः श्रियमाप च ॥ १२ ॥

इसी दिशामें यज्ञोंद्वारा तृप्त हुए अग्निगण अपने योनिस्वरूप जलका उपभोग करते हैं। यहीं वरुणने पातालका आश्रय लेकर लक्ष्मीको प्राप्त किया था ॥ १२ ॥

अत्र पूर्वं वसिष्ठस्य पौराणस्य द्विजर्षभ।
सूतिश्चैव प्रतिष्ठा च निधनं च प्रकाशते ॥ १३ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशामें पुरातन महर्षि वसिष्ठकी उत्पत्ति हुई है। यहीं उन्हें प्रतिष्ठा सप्तर्षियोंमें स्थानकी प्राप्ति हुई है और इसी दिशामें उन्हें निमिके शापसे देहत्याग करना पडा है ॥ १३ ॥

ॐकारस्यात्र जायन्ते सूतयो दशतीर्दश।
पिबन्ति मुनयो यत्र हविर्धाने स्म सोमपाः ॥ १४ ॥

इसी दिशामें प्रणव अर्थात् वेदकी सहस्रों शाखाएँ प्रकट हुई हैं और उसीमें सोमपायी महर्षिगण हविष्यके यज्ञमें सोमका पान करते हैं ॥ १४ ॥

प्रोक्षिता यत्र बहवो वराहाद्या मृगा वने।
शक्रेण यत्र भागार्थे दैवतेषु प्रकल्पिताः ॥ १५ ॥

इसी दिशामें देवराज इन्द्रने यज्ञभागकी सिद्धिके लिये वनमें जंगली सूअर आदि हिंसक पशुओंको प्रोक्षित करके देवताओंको सौंपा था ॥ १५ ॥

अत्राहिताः कृतघ्नाश्च मानुषाश्चासुराश्च ये।
उदयंस्तान्हि सर्वान्वै क्रोधाद्धन्ति विभावसुः ॥ १६ ॥

इस दिशामें उदित होनेवाले भगवान् सूर्य जो दूसरोंका अहित करनेवाले एवं कृतघ्न मनुष्य और असुर होते हैं, उन सबका क्रोधपूर्वक विनाश करते उनकी आयु क्षीण कर देते हैं ॥ १६॥

एतद्द्वारं त्रिलोकस्य स्वर्गस्य च सुखस्य च।
एष पूर्वो दिशाभागो विशावैनं यदीच्छसि ॥ १७ ॥

गालव ! यह पूर्व दिग्विभाग ही त्रिलोकीका, स्वर्गका और सुखका भी द्वार है। तुम्हारी इच्छा हो तो हम दोनों इसमें प्रवेश करें ॥ १७ ॥

प्रियं कार्यं हि मे तस्य यस्यास्मि वचने स्थितः ।
ब्रूहि गालव यास्यामि शृणु चाप्यपरां दिशम् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ ३४३८ ॥

मैं जिनकी आज्ञाके अधीन हूँ, उन भगवान् विष्णुका प्रिय कार्य मुझे अवश्य करना है; अतः गालव ! बताओ, क्या मैं पूर्व दिशामें चलूँ अथवा दूसरी दिशाका भी वर्णन सुन लो ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ छैवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ ३४३८ ॥

: १०७ :

सुपर्ण उवाच

इयं विवस्वता पूर्वं श्रौतेन विधिना किल ।
गुरवे दक्षिणा दत्ता दक्षिणेत्युच्यतेऽथ दिक् ॥ १ ॥

गरुड बोले– गालव ! यह प्रसिद्ध है कि पूर्वकालमें भगवान् सूर्यने वेदोक्त विधिके अनुसार यज्ञ करके आचार्य कश्यपको दक्षिणारूपसे इस दिशाका दान किया था, इसीलिये इसे दक्षिण दिशा कहते हैं ॥ १ ॥

अत्र लोकत्रयस्यास्य पितृपक्षः प्रतिष्ठितः ।
अत्रोष्मपानां देवानां निवासः श्रूयते द्विज ॥ २ ॥

ब्रह्मन् ! तीनों लोकोंके पितृगण इसी दिशामें प्रतिष्ठित हैं तथा ऊष्मप नामक देवताओंका निवास भी इसी दिशामें सुना जाता है ॥ २ ॥

अत्र विश्वे सदा देवाः पितृभिः सार्धमासते ।
इज्यमानाः स्म लोकेषु सम्प्राप्तास्तुल्यभागताम् ॥ ३ ॥

पितरोंके साथ विश्वेदेवगण सदा दक्षिण दिशामें ही वास करते हैं। वे समस्त लोकोंमें पूजित हो श्राद्धमें पितरोंके समान ही भाग प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

एतद् द्वितीयं धर्मस्य द्वारमाचक्षते द्विज ।
त्रुटिशो लवशश्चात्र गण्यते कालनिश्चयः ॥ ४ ॥

विप्रवर ! विद्वान् पुरुष इस दक्षिण दिशाको धर्मदेवताका दूसरा द्वार कहते हैं। यहीं चित्रगुप्त आदिके द्वारा त्रुटि और लव आदि सूक्ष्मसे सूक्ष्म कालांशोंपर दृष्टि रखते हुए प्राणियोंकी आयुकी निश्चित गणना की जाती है ॥ ४ ॥

अत्र देवर्षयो नित्यं पितृलोकर्षयस्तथा ।
तथा राजर्षयः सर्वे निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ५ ॥

देवर्षि, पितृलोकके ऋषि तथा समस्त राजर्षिगण दुःखरहित हो सदा इसी दिशामें निवास करते हैं ॥ ५ ॥

अत्र धर्मश्च सत्यं च कर्म चात्र निशाम्यते ।
गतिरेषा द्विजश्रेष्ठ कर्मणात्मावसादिनः ॥ ६ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशामें रहकर चित्रगुप्त आदिके द्वारा धर्मराजके निकट प्राणियोंके धर्म, सत्य तथा साधारण कर्मोंके विषयमें सुना जाता है । मृत प्राणी तथा उनके कर्म इसी दिशाका आश्रय लेते हैं ॥ ६ ॥

एषा दिक् सा द्विजश्रेष्ठ यां सर्वः प्रतिपद्यते ।
वृता त्वनवबोधेन सुखं तेन न गम्यते ॥ ७ ॥

विप्रवर ! यह वह दिशा है, जिसमें मृत्युके पश्चात् सभी प्राणियोंको जाना पडता है । यह सदा अज्ञानान्धकारसे आवृत रहती है, इसलिये इसमें सुखपूर्वक यात्रा सम्भव नहीं हो पाती है ॥ ७ ॥

नैर्ऋतानां सहस्राणि बहून्यत्र द्विजर्षभ ।
सृष्टानि प्रतिकूलानि द्रष्टव्यान्यकृतात्मभिः ॥ ८ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! ब्रह्माजीने इस दिशामें प्रतिकूल स्वभाव एवं आचरणवाले सहस्रों राक्षसोंकी सृष्टि की है, जिनका दर्शन अशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंको ही होता है ॥ ८ ॥

अत्र मन्दरकुञ्जेषु विप्रर्षिसदनेषु च ।
गन्धर्वा गान्ति गाथा वै चित्तबुद्धिहरा द्विज ॥ ९ ॥

ब्रह्मन् ! इसी दिशामें गन्धर्वगण मन्दराचलके कुञ्जों और ब्रह्मर्षियोंके आश्रमोंमें मन और बुद्धिको आकर्षित करनेवाली गाथाओंका गान करते हैं ॥ ९ ॥

अत्र सामानि गाथाभिः श्रुत्वा गीतानि रैवतः ।
गतदारो गतामात्यो गतराज्यो वनं गतः ॥ १० ॥

पूर्वकालमें यहीं राजा रैवत गाथाओंके रूपमें सामगान सुनते सुनते अपनी स्त्री, मन्त्री तथा राज्यसे भी वियुक्त हो वनमें चले गये थे ॥ १० ॥

अत्र सावर्णिना चैव यवक्रीतात्मजेन च ।
मर्यादा स्थापिता ब्रह्मन्यां सूर्यो नातिवर्तते ॥ ११ ॥

ब्रह्मन् ! इस दिशामें सावर्णि मनु तथा यवक्रीतके पुत्रने सूर्यकी गतिके लिये मर्यादा सीमा स्थापित की थी, जिसका सूर्यदेव कभी उल्लङ्घन नहीं करते हैं ॥ ११ ॥

अत्र राक्षसराजेन पौलस्त्येन महात्मना ।
रावणेन तपश्चीर्त्वा सुरेभ्योऽमरत्वं वृतम् ॥ १२ ॥

पुलस्त्यवंशी राक्षसराज महामना रावणने इसी दिशामें तपस्या करके देवताओंसे अवध्य होनेका वरदान प्राप्त किया था ॥ १२ ॥

अत्र वृत्तेन वृत्रोऽपि शक्रशत्रुत्वमीयिवान् ।
अत्र सर्वासवः प्राप्ताः पुनर्गच्छन्ति पञ्चधा ॥ १३ ॥

इसी दिशामें घटित हुई घटनाके कारण वृत्रासुर देवराज इन्द्रका शत्रु बन बैठा था। दक्षिण दिशामें ही आकर सबके प्राण पुनः प्राण-अपान आदिके भेदसे पाँच भागोंमें बंट जाते हैं अर्थात् प्राणी नूतन देह धारण करते हैं ॥ १३ ॥

अत्र दुष्कृतकर्माणो नराः पच्यन्ति गालव ।
अत्र वैतरणी नाम नदी वितरणैर्वृता ।
अत्र गत्वा सुखस्यान्तं दुःखस्यान्तं प्रपद्यते ॥ १४ ॥

गालव! इसी दिशामें पापाचारी मनुष्य नरकोंकी आगमें पकाये जाते हैं। दक्षिणमें ही वह वैतरणी नदी है, जो वैतरणी नरकके अधिकारी पापियोंसे घिरी रहती है। मनुष्य इसी दिशामें जाकर सुख और दुःखके अन्तको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

अत्रावृत्तो दिनकरः क्षरते सुरसं पयः ।
काष्ठां चासाद्य धानिष्ठां हिममुत्सृजते पुनः ॥ १५ ॥

इसी दक्षिण दिशामें लौटनेपर अर्थात् उत्तरायणके अन्तिम भागमें पहुंचकर दक्षिणायनके आरम्भमें आनेपर जब कि वर्षाऋतु रहती है, सूर्यदेव सुस्वादु जलकी वर्षा करते हैं। फिर धनिष्ठ नक्षत्रसे युक्त उत्तर दिशामें पहुंचकर अर्थात् उत्तरायणके प्रारम्भमें जब कि शिशिर ऋतु रहती है, वे ओले गिराते हैं ॥ १५ ॥

अत्राहं गालव पुरा क्षुधार्तः परिचिन्तयन् ।
लब्धवान्युध्यमानौ द्वौ बृहन्तौ गजकच्छपौ ॥ १६ ॥

गालव! पूर्वकालकी बात है, मैं भूखसे पीडित होकर भारी चिन्तामें पड गया था, परंतु इसी दिशामें आनेपर दो विशाल प्राणी हाथी और कछुआ मेरे हाथ लग गये, जो आपसमें लड रहे थे ॥ १६ ॥

अत्र शक्रधनुर्नाम सूर्याज्जातो महानृषिः ।
विदुर्यं कपिलं देवं येनात्ताः सगरात्मजाः ॥ १७ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी महर्षि कर्दमसे उत्पन्न हुए चक्र धनु नामक महर्षि इसी दिशामें रहते थे, जिन्हें सब लोग कपिलदेवके नामसे जानते हैं। उन्होंने ही सगरके पुत्रोंको भस्म कर दिया था ॥ १७ ॥

अत्र सिद्धाः शिवा नाम ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
अधीत्य सखिलान्वेदानालभन्ते यमक्षयम् ॥ १८ ॥

इसी दिशामें शिव नामसे प्रसिद्ध कुछ सिद्ध ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारंगत पण्डित थे । उन्होंने वालखिल्यसूक्त सहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके तत्त्वज्ञानद्वारा अक्षय मोक्ष प्राप्त कर लिया ॥ १८ ॥

अत्र भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ।
तक्षकेण च नागेन तथैवैरावतेन च ॥ १९ ॥

दक्षिणमें ही वासुकिद्वारा पालित तथा तक्षक एवं ऐरावत नागद्वारा सुरक्षित भोगवती नामक पुरी है ॥ १९ ॥

अत्र निर्याणकालेषु तमः सम्प्राप्यते महत् ।
अभेद्यं भास्करेणापि स्वयं वा कृष्णवर्त्मना ॥ २० ॥

मृत्युके पश्चात् इस दिशामें जानेवाले प्राणीको ऐसे घोर अन्धकारका सामना करना पडता है, जो साक्षात् अग्नि एवं सूर्यके लिये भी अभेद्य है ॥ २० ॥

एष तस्यापि ते मार्गः परितापस्य गालव ।
ब्रूहि मे यदि गन्तव्यं प्रतीचीं शृणु वा मम ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ ३४५९ ॥

गालव ! तुम मेरे द्वारा परिचर्या पाने सेवा ग्रहण करनेके योग्य हो, अतः तुम्हें यह दक्षिण मार्ग बताया है; यदि इस दिशामें चलना हो तो मुझसे कहो अथवा अब तीसरी पश्चिम दिशाका वर्णन सुनो ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ सातवां अध्याय समाप्त ॥ १०७ ॥ ३४५९ ॥

: १०८ :

सुपर्ण उवाच

इयं दिग्दयिता राज्ञो वरुणस्य तु गोपतेः ।
सदा सलिलराजस्य प्रतिष्ठा चादिरेव च ॥ १ ॥

गरुड बोले– गालव ! यह जो सामनेकी दिशा है, जलके स्वामी दिक्पाल राजा वरुणको सदा ही अत्यन्त प्रिय है । यही उनका आश्रय और उत्पत्तिस्थान है ॥ १ ॥

अत्र पश्चादहः सूर्यो विसर्जयति भाः स्वयम् ।
पश्चिमेत्यभिविख्याता दिगियं द्विजसत्तम ॥ २ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! दिनके पश्चात् सूर्यदेव इसी दिशामें स्वयं अपनी किरणोंका विसर्जन करते हैं, इसलिये यह पश्चिमके नामसे विख्यात है ॥ २ ॥

यादसामत्र राज्येन सलिलस्य च गुप्तये ।
कश्यपो भगवान्देवो वरुणं स्माभ्यषेचयत् ॥ ३ ॥

पूर्वकालमें भगवान् कश्यपदेवने जलजन्तुओंका आधिपत्य और जलकी रक्षा करनेके लिये इसी दिशामें वरुणका अभिषेक किया था ॥ ३ ॥

अत्र पीत्वा समस्तान्वै वरुणस्य रसांस्तु षट् ।
जायते तरुणः सोमः शुक्लस्यादौ तमिस्रहा ॥ ४ ॥

अन्धकारका नाश करनेवाले चन्द्रमा वरुणके निकट रहकर छः प्रकारके सम्पूर्ण रसोंका पान करके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको इसी दिशामें नूतनताको प्राप्त होकर उदित होते हैं ॥ ४ ॥

अत्र पश्चात्कृता दैत्या वायुना संयतास्तदा ।
निःश्वसन्तो महानागैरर्दिताः सुषुपुर्द्विज ॥ ५ ॥

ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें वायुदेवने अपने महान् वेगसे यहां युद्धमें दैत्योंको पराङ्मुख, आबद्ध और पीडित किया था, जिससे वे लम्बी सांस छोडते हुए धराशायी हो गये थे ॥ ५ ॥

अत्र सूर्यं प्रणयिनं प्रतिगृह्णाति पर्वतः ।
अस्तो नाम यतः संध्या पश्चिमा प्रतिसर्पति ॥ ६ ॥

इसी दिशामें अस्ताचल है, जो अपने प्रीतिपात्र सूर्यदेवको प्रतिदिन ग्रहण करता है। वहींसे पश्चिम संध्याका प्रसार होता है ॥ ६ ॥

अतो रात्रिश्च निद्रा च निर्गता दिवसक्षये ।
जायते जीवलोकस्य हर्तुमर्धमिवायुषः ॥ ७ ॥

इसी दिशासे दिनके अन्तमें मानो जीव जगत्की आधी आयु हर लेनेके लिये रात्रि एवं निद्राका प्राकट्य होता है ॥ ७ ॥

अत्र देवीं दितिं सुप्तामात्मप्रसवधारिणीम् ।
विगर्भामकरोच्छक्रो यत्र जातो मरुद्गणः ॥ ८ ॥

इसी दिशामें देवराज इन्द्रने सोयी हुई गर्भवती दितिदेवीके उदरमें प्रवेश करके उसके गर्भका उच्छेद किया था, जिससे मरुद्गणोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ८ ॥

अत्र मूलं हिमवतो मन्दरं याति शाश्वतम्।
अपि वर्षसहस्रेण न चास्यान्तोऽधिगम्यते ॥ ९ ॥

इसी दिशामें हिमालयका मूलभाग सदा मन्दराचलतक फैलकर उसका स्पर्श करता है। सहस्रों वर्षोंमें भी इसका अन्त पाना असम्भव है। ॥ ९ ॥

अत्र काञ्चनशैलस्य काञ्चनाम्बुवहस्य च।
उदधेस्तीरमासाद्य सुरभिः क्षरते पयः ॥ १० ॥

इसी दिशामें सुवर्णमय पर्वत मन्दराचल तथा स्वर्णमय कमलोंसे सुशोभित क्षीरसागरके तटपर पहुंचकर सुरभिदेवी अपने दूधका निर्झर बहाती हैं ॥ १० ॥

अत्र मध्ये समुद्रस्य कबन्धः प्रतिदृश्यते।
स्वर्भानोः सूर्यकल्पस्य सोमसूर्यौ जिघांसतः ॥ ११ ॥

पश्चिम दिशामें ही समुद्रके भीतर सूर्यके समान तेजस्वी उस राहुका कबन्ध धड दिखायी देता है, जो सूर्य और चन्द्रमाको मार डालनेकी इच्छा रखता है ॥ ११ ॥

सुवर्णशिरसोऽप्यत्र हरिरोम्णः प्रगायतः।
अदृश्यस्याप्रमेयस्य श्रूयते विपुलो ध्वनिः ॥ १२ ॥

इसी दिशामें पिङ्गलवर्णके केशोंसे सुशोभित, अप्रमेय प्रभावशाली एवं अदृश्यमूर्ति मुनिवर सुवर्णशिरा सामगान करते हैं। उनके उस गीतकी विपुल ध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है ॥ १२ ॥

अत्र ध्वजवती नाम कुमारी हरिमेधसः।
आकाशे तिष्ठ तिष्ठेति तस्थौ सूर्यस्य शासनात् ॥ १३ ॥

इसी दिशामें हरिमेधा मुनिकी कुमारी कन्या ध्वजवती निवास करती है, जो सूर्यदेवकी ठहरो ठहरो इस आज्ञासे आकाशमें स्थित है ॥ १३ ॥

अत्र वायुस्तथा वह्निरापः खं चैव गालव।
आह्निकं चैव नैशं च दुःखस्पर्शं विमुञ्चति।
अतः प्रभृति सूर्यस्य तिर्यगावर्तते गतिः ॥ १४ ॥

गालव! वायु, अग्नि, जल और आकाश—ये सब इस दिशामें रात्रि और दिनके दुःखदायी स्पर्शका परित्याग करते हैं अर्थात् यहाँ इनका स्पर्श सदा सुखद ही होता है। इसी दिशासे सूर्यदेव तिरछी गतिसे चक्कर लगाना आरम्भ करते हैं ॥ १४ ॥

अत्र ज्योतींषि सर्वाणि विशन्त्यादित्यमण्डलम् ।
अष्टाविंशतिरात्रं च चङ्क्रम्य सह भानुना ।
निष्पतन्ति पुनः सूर्यात्सोमसंयोगयोगतः ॥ १५ ॥

यहीं सम्पूर्ण ज्योतियाँ सूर्यमण्डलमें प्रवेश करती हैं । अभिजित् सहित अट्ठाईस नक्षत्रोंमेंसे प्रत्येक अट्ठाईसवें दिन सूर्यके साथ विचरण करके अमावस्याके बाद फिर सूर्यमण्डलसे पृथक् हो जाता है ॥ १५ ॥

अत्र नित्यं स्रवन्तीनां प्रभवः सागरोदयः ।
अत्र लोकत्रयस्यापस्तिष्ठन्ति वरुणाश्रयाः ॥ १६ ॥

इसी दिशासे उन अधिकांश नदियोंका प्राकट्य हुआ है, जिनके जलसे समुद्रकी पूर्ति होती रहती है । यहींके वरुणालयमें त्रिभुवनके लिये उपयोगी जलराशि संचित है ॥ १६ ॥

अत्र पन्नगराजस्याप्यनन्तस्य निवेशनम् ।
अनादिनिधनस्यात्र विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

यहीं नागराज अनन्तका निवास तथा आदि अन्तसे रहित भगवान् विष्णुका सर्वोत्कृष्ट स्थान है ॥ १७ ॥

अत्रानलसखस्यापि पवनस्य निवेशनम् ।
महर्षेः कश्यपस्यात्र मारीचस्य निवेशनम् ॥ १८ ॥

इसी दिशामें अग्निदेवके सखा वायुदेवका भवन तथा मरीचिनन्दन महर्षि कश्यपका आश्रम है ॥ १८ ॥

एष ते पश्चिमो मार्गो दिग्द्वारेण प्रकीर्तितः ।
ब्रूहि गालव गच्छावो बुद्धिः का द्विजसत्तम ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ ३४७८ ॥

द्विजश्रेष्ठ गालव ! इस प्रकार मैंने तुम्हें संक्षेपसे पश्चिमका मार्ग बताया है । अब बताओ, तुम्हारा क्या विचार है ? हम दोनों किस दिशाकी ओर चलें ? ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ आठवां अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥ ३४७८ ॥

: १०९ :

सुपर्ण उवाच

यस्मादुत्तार्यते पापाद्यस्मान्निःश्रेयसोऽश्नुते ।
तस्मादुत्तारणफलादुत्तरेत्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥

गरुड बोले— गालव ! इस मार्गसे जानेपर मनुष्यका पापसे उद्धार हो जाता है और वह कल्याणमय स्वर्गीय सुखोंका उपभोग करता है; अतः इस उत्तारण अर्थात् संसारसागरसे पाप उतारनेके फलसे इस दिशाको उत्तरदिशा कहते हैं ॥ १ ॥

उत्तरस्य हिरण्यस्य परिवापस्य गालव ।
मार्गः पश्चिमपूर्वाभ्यां दिग्भ्यां वै मध्यमः स्मृतः ॥ २ ॥

गालव ! यह उत्तर दिशा उत्कृष्ट सुवर्ण आदि निधियोंकी अधिष्ठान है इसलिये भी इसका नाम उत्तर है । यह उत्तर मार्ग पश्चिम और पूर्व दिशाओंका मध्यवर्ती बताया गया है ॥२॥

अस्यां दिशि वरिष्ठायामुत्तरायां द्विजर्षभ ।
नासौम्यो नाविधेयात्मा नाधर्म्यो वसते जनः ॥ ३ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! इस गौरवशालिनी दिशामें ऐसे लोगोंका वास नहीं है, जो सौम्य स्वभावके न हों, जिन्होंने अपने मनको वशमें न किया हो तथा जो धर्मका पालन न करते हों ॥ ३ ॥

अत्र नारायणः कृष्णो जिष्णुश्चैव नरोत्तमः ।
बदर्यामाश्रमपदे तथा ब्रह्मा च शाश्वतः ॥ ४ ॥

इसी दिशामें बदरिकाश्रमतीर्थ है, जहाँ सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायण, विजयशील नरश्रेष्ठ नर और सनातन ब्रह्मा निवास करते हैं ॥ ४ ॥

अत्र वै हिमवत्पृष्ठे नित्यमास्ते महेश्वरः ।
अत्र राज्येन विप्राणां चन्द्रमाश्चाभ्यषिच्यत ॥ ५ ॥

उत्तरमें ही हिमालयके शिखरपर प्रलयकालीन नित्य निवास करते हैं । उत्तर दिशामें ही चन्द्रमाका द्विजराजके पदपर अभिषेक हुआ था ॥ ५ ॥

अत्र गङ्गां महादेवः पतन्तीं गगनाच्च्युताम् ।
प्रतिगृह्य ददौ लोके मानुषे ब्रह्मवित्तम ॥ ६ ॥

वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गालव ! यहीं आकाशसे गिरती हुई गङ्गाको महादेवजीने अपने मस्तकपर धारण किया और उन्हें मनुष्यलोकमें छोड दिया ॥ ६ ॥

अत्र देव्या तपस्तप्तं महेश्वरपरीप्सया ।
अत्र कामश्च रोषश्च शैलश्चोमा च सम्बभुः ॥ ७ ॥

यहीं पार्वतीदेवीने भगवान् महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये कठोर तपस्या की थी और इसी दिशामें महादेवजीको मोहित करनेके लिये काम प्रकट हुआ । फिर उसके ऊपर भगवान् शंकरका क्रोध हुआ । उस अवसरपर गिरिराज हिमालय और उमा भी वहाँ विद्यमान थीं इस प्रकार ये सब लोग वहाँ एक ही समयमें प्रकाशित हुए ॥ ७ ॥

अत्र राक्षसयक्षाणां गन्धर्वाणां च गालव ।
आधिपत्येन कैलासे धनदोऽप्यभिषेचितः ॥ ८ ॥

गालव ! इसी दिशामें कैलास पर्वतपर राक्षस, यक्ष और गन्धर्वोंका आधिपत्य करनेके लिये धनदाता कुबेरका अभिषेक हुआ था ॥ ८ ॥

अत्र चैत्ररथं रम्यमत्र वैखानसाश्रमः ।
अत्र मन्दाकिनी चैव मन्दरश्च द्विजर्षभ ॥ ९ ॥

उत्तर दिशामें ही रमणीय चैत्ररथवन और वैखानस ऋषियोंका आश्रम है । द्विजश्रेष्ठ ! यहीं मन्दाकिनी नदी और मन्दराचल हैं ॥ ९ ॥

अत्र सौगन्धिकवनं नैर्ऋतैरभिरक्ष्यते ।
शाड्वलं कदलीस्कन्धमत्र संतानका नगाः ॥ १० ॥

इसी दिशामें राक्षसगण सौगन्धिकवनकी रक्षा करते हैं । यहीं हरी हरी घासोंसे सुशोभित कदलीवन है और यहीं कल्पवृक्ष शोभा पाते हैं ॥ १० ॥

अत्र संयमनित्यानां सिद्धानां स्वैरचारिणाम् ।
विमानान्यनुरूपाणि कामभोग्यानि गालव ॥ ११ ॥

गालव ! इसी दिशामें सदा संयम नियमका पालन करनेवाले स्वच्छन्दचारी सिद्धोंके इच्छानुसार भोगोंसे सम्पन्न एवं मनोनुकूल विमान विचरते हैं ॥ ११ ॥

अत्र ते ऋषयः सप्त देवी चारुन्धती तथा ।
अत्र तिष्ठति वै स्वातिरत्रास्या उदयः स्मृतः ॥ १२ ॥

इसी दिशामें अरुन्धतीदेवी और सप्तर्षि प्रकाशित होते हैं । इसीमें स्वाती नक्षत्रका निवास है और यहीं उसका उदय होता है ॥ १२ ॥

अत्र यज्ञं समारुह्य ध्रुवं स्थाता पितामहः ।
ज्योतींषि चन्द्रसूर्यौ च परिवर्तन्ति नित्यशः ॥ १३ ॥

इसी दिशामें ब्रह्मा यज्ञानुष्ठानमें प्रवृत्त होकर नियमितरूपसे निवास करते हैं । नक्षत्र, चन्द्रमा तथा सूर्य भी सदा इसीमें परिभ्रमण करते हैं ॥ १३ ॥

अत्र गायन्तिकाद्वारं रक्षन्ति द्विजसत्तमाः ।
धाम्ना नाम महात्मानो मुनयः सत्यवादिनः ॥ १४ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! इसी दिशामें धाम नामसे प्रसिद्ध सत्यवादी महात्मा मुनि श्रीगायन्तिकाद्वारकी रक्षा करते हैं ॥ १४ ॥

न तेषां ज्ञायते मूर्तिर्नाकृतिर्न तपश्चितम् ।
परिवर्तसहस्राणि कामभोग्यानि गालव ॥ १५ ॥

उनकी मूर्ति, आकृति तथा संचित तपस्याका परिमाण किसीको ज्ञात नहीं होता है । गालव ! वे सहस्रों युगान्तकालतककी आयु इच्छानुसार भोगते हैं ॥ १५ ॥

यथा यथा प्रविशति तस्मात्परतरं नरः ।
तथा तथा द्विजश्रेष्ठ प्रविलीयति गालव ॥ १६ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! मनुष्य ज्यों ज्यों इस द्वारसे आगे बढता है, वैसे ही वैसे वहाँकी हिमराशिमें गलता जाता है ॥ १६ ॥

न तत्केनचिदन्येन गतपूर्वं द्विजर्षभ ।
ऋते नारायणं देवं नरं वा जिष्णुमव्ययम् ॥ १७ ॥

विप्रवर गालव ! साक्षात् भगवान् नारायण तथा विजयशील अविनाशी महात्मा नरको छोडकर दूसरा कोई मनुष्य पहले कभी उस द्वारसे आगे नहीं गया है ॥ १७ ॥

अत्र कैलासमित्युक्तं स्थानमैलविलस्य तत् ।
अत्र विद्युत्प्रभा नाम जज्ञिरेऽप्सरसो दश ॥ १८ ॥

इसी दिशामें कैलासपर्वत है, जो कुबेरका स्थान बताया गया है । यहीं विद्युत्प्रभा नामसे प्रसिद्ध दस अप्सराएँ उत्पन्न हुई थीं ॥ १८ ॥

अत्र विष्णुपदं नाम क्रमता विष्णुना कृतम् ।
त्रिलोकविक्रमे ब्रह्मन्नुत्तरां दिशमाश्रितम् ॥ १९ ॥

ब्रह्मन् ! त्रिलोकीको नापते समय भगवान् विष्णुने इसी दिशामें अपना चरण रक्खा था । उत्तर दिशामें भगवान् विष्णुका वह चरणचिह्न हरिकी पैंडी आज भी मौजूद है ॥ १९ ॥

अत्र राज्ञा मरुत्तेन यज्ञेनेष्टं द्विजोत्तम ।
उशीरबीजे विप्रर्षे यत्र जाम्बूनदं सरः ॥ २० ॥

द्विजश्रेष्ठ ! ब्रह्मर्षे ! उत्तर दिशाके ही उशीरबीज नामक स्थानमें, जहाँ सुवर्णमय सरोवर है, राजा मरुत्तने यज्ञ किया था ॥ २० ॥

जीमूतस्यात्र विप्रर्षेरुपतस्थे महात्मनः ।
साक्षाद्धैमवतः पुण्यो विमलः कमलाकरः ॥ २१ ॥

इसी दिशामें ब्रह्मर्षि महात्मा जीमूतके समक्ष हिमालयकी पवित्र एवं निर्मल स्वर्णनिधि सोनेकी खान प्रकट हुई थी ॥ २१ ॥

ब्राह्मणेषु च यत्कृत्स्नं स्वन्तं कृत्वा धनं महत् ।
वव्रे धनं महर्षिः स जैमूतं तद्धनं ततः ॥ २२ ॥

उस सम्पूर्ण विशाल धनराशिको उन्होंने ब्राह्मणोंमें बाँटकर उसका सदुपयोग किया और ब्राह्मणोंसे यह वर माँगा कि यह धन मेरे नामसे प्रसिद्ध हो । इस कारण वह धन जैमूत नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २२ ॥

अत्र नित्यं दिशापालाः सायं प्रातर्द्विजर्षभ ।
कस्य कार्यं किमिति वै परिक्रोशन्ति गालव ॥ २३ ॥

विप्रवर गालव ! यहाँ प्रतिदिन सबेरे और सन्ध्याके समय सभी दिक्पाल एकत्र हो उच्च स्वरसे यह पूछते हैं कि किसको क्या काम है ? ॥ २३ ॥

एवमेषा द्विजश्रेष्ठ गुणैरन्यैर्दिगुत्तरा ।
उत्तरेति परिख्याता सर्वकर्मसु चोत्तरा ॥ २४ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! इन सब कारणोंसे तथा अन्यान्य गुणोंके कारण यह दिशा उत्कृष्ट है और समस्त शुभ कर्मोंके लिये भी यही उत्तम मानी गयी है । इसलिये इसे उत्तर कहते हैं ॥ २४ ॥

एता विस्तरशस्तात तव संकीर्तिता दिशः ।
चतस्रः क्रमयोगेन कामाशां गन्तुमिच्छसि ॥ २५ ॥

तात ! इस प्रकार मैंने क्रमशः चारों दिशाओंका तुम्हारे सामने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । कहो, किस दिशामें चलना चाहते हो ? ॥ २५ ॥

उद्यतोऽहं द्विजश्रेष्ठ तव दर्शयितुं दिशः ।
पृथिवीं चाखिलां ब्रह्मंस्तस्मादारोह मां द्विज ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ ३५०४ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! मैं तुम्हें सम्पूर्ण पृथ्वी तथा समस्त दिशाओंका दर्शन करानेके लिये उद्यत हूँ; अतः तुम मेरी पीठपर बैठ जाओ ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ नौवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०९ ॥ ३५०४ ॥

: ११० :

गालव उवाच

गरुत्मन्भुजगेन्द्रारे सुपर्ण विनतात्मज ।
नय मां तार्क्ष्य पूर्वेण यत्र धर्मस्य चक्षुषी ॥ १ ॥

गालव बोले– गरुत्मन् ! भुजगराजशत्रो ! सुपर्ण ! विनतानन्दन ! तार्क्ष्य ! तुम मुझे पूर्व दिशाकी ओर ले चलो, जहां धर्मके नेत्रस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं ॥ १ ॥

पूर्वमेतां दिशं गच्छ या पूर्वं परिकीर्तिता ।
दैवतानां हि सांनिध्यमत्र कीर्तितवानसि ॥ २ ॥

जिस दिशाका तुमने सबसे पहले वर्णन किया है, उसी दिशाकी ओर पहले चलो; क्योंकि उस दिशामें तुमने देवताओंका सांनिध्य बताया है ॥ २ ॥

अत्र सत्यं च धर्मश्च त्वया सम्यक्प्रकीर्तितः ।
इच्छेयं तु समागन्तुं समस्तैर्दैवतैरहम् ।
भूयश्च तान्सुरान्द्रष्टुमिच्छेयमरुणानुज ॥ ३ ॥

तथा वहीं सत्य और धर्मकी स्थितिका भी भलीभाँति प्रतिपादन किया है। अरुणके छोटे भाई गरुड ! मैं सम्पूर्ण देवताओंसे मिलना और पुनः उन सबका दर्शन करना चाहता हूँ ॥३॥

नारद उवाच

तमाह विनतासूनुरारोहस्वेति वै द्विजम् ।
आरुरोहाथ स मुनिर्गरुडं गालवस्तदा ॥ ४ ॥

नारद बोले– तब विनतानन्दन गरुडने विप्रवर गालवसे कहा– तुम मेरे ऊपर चढ जाओ। तब गालवमुनि गरुडकी पीठपर जा बैठे ॥ ४ ॥

गालव उवाच

क्रममाणस्य ते रूपं दृश्यते पन्नगाशन ।
भास्करस्येव पूर्वाह्णे सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥ ५ ॥

गालव बोले– सर्पभोजी गरुड ! पूर्वाह्णकालमें सहस्र किरणोंसे सुशोभित भुवनभास्कर सूर्यका स्वरूप जैसा दिखायी देता है, आकाशमें उडते समय तुम्हारा स्वरूप भी वैसा ही दृष्टि-गोचर होता है ॥ ५ ॥

पक्षवातप्रणुन्नानां वृक्षाणामनुगामिनाम्।
प्रस्थितानामिव समं पश्यामीह गतिं खग ॥ ६ ॥

खेचर ! तुम्हारे पङ्खोंकी हवासे उखडकर ये वृक्ष पीछे पीछे चले आ रहे हैं । मैं इनकी भी ऐसी तीव्र गति देख रहा हूँ, मानो ये भी हमलोगोंके साथ चलनेके लिये प्रस्थित हुए हों ॥ ६ ॥

ससागरवनामुर्वी सशैलवनकाननाम्।
आकर्षन्निव चाभासि पक्षवातेन खेचर ॥ ७ ॥

आकाशचारी गरुड ! तुम अपने पङ्खोंके वेगसे उठी हुई वायुद्वारा समुद्रकी जलराशि, पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीको अपनी ओर खींचते से जान पडते हो ॥७॥

समीननागनक्रं च खमिवारोप्यते जलम्।
वायुना चैव महता पक्षवातेन चानिशम् ॥ ८ ॥

पंखोंके हिलानेसे निरन्तर उठती हुई प्रचण्ड वायुके वेगसे मत्स्य, जलहस्ती तथा मगरों-सहित समुद्रका जल तुम्हारे द्वारा मानो आकाशमें उछाल दिया जाता है ॥ ८ ॥

तुल्यरूपाननान्मत्स्यांस्तिमिमत्स्यांस्तिमिंगिलान्।
नागांश्च नरवक्त्रांश्च पश्याम्युन्मथितानिव ॥ ९ ॥

जिनके आकार और मुख एक से हैं ऐसे मत्स्योंको, तिमि और तिमिंगिलोंको तथा हाथी, घोडे और मनुष्योंके समान मुखवाले जल जन्तुओंको मैं उन्मथित हुए से देखता हूँ ॥ ९ ॥

महार्णवस्य च रवैः श्रोत्रे मे बधिरीकृते।
न शृणोमि न पश्यामि नात्मनो वेद्मि कारणम् ॥ १० ॥

महासागरकी इन भीषण गर्जनाओंने मेरे कान बहरे कर दिये हैं । मैं न तो सुन पाता हूँ, न देख पाता हूँ और न अपने बचावका कोई उपाय ही समझ पाता हूँ ॥ १० ॥

शनैः साधु भवान्यातु ब्रह्महत्यामनुस्मरन्।
न दृश्यते रविस्तात न दिशो न च खं खग ॥ ११ ॥

तात गरुड ! तुमसे कहीं ब्रह्महत्या न हो जाय, इसका ध्यान रखते हुए धीरे धीरे चलो । मुझे इस समय न तो सूर्य दिखायी देता है, न दिशाएँ सूझती हैं और न आकाश ही दृष्टि-गोचर होता है ॥ ११ ॥

तम एव तु पश्यामि शरीरं ते न लक्षये।
मणीव जात्यौ पश्यामि चक्षुषी तेऽहमण्डज ॥ १२ ॥

मुझे केवल अन्धकार ही दिखायी देता है। मैं तुम्हारे शरीरको नहीं देख पाता हूँ। अण्डज! तुम्हारी दोनों आँखें मुझे उत्तम जातिकी दो मणियोंके समान चमकती दिखायी देती हैं ॥ १२ ॥

शरीरे तु न पश्यामि तव चैवात्मनश्च ह।
पदे पदे तु पश्यामि सलिलादग्निमुत्थितम् ॥ १३ ॥

मैं न तो तुम्हारे शरीरको देखता हूँ और न अपने शरीरको। मुझे पग पगपर जलोंसे उठती हुई आगकी लपटें दिखायी देती हैं ॥ १३ ॥

स मे निर्वाप्य सहसा चक्षुषी शाम्यते पुनः।
तन्निवर्त महान्कालो गच्छतो विनतात्मज ॥ १४ ॥

विनतानन्दन! तुम उस आगको सहसा बुझाकर पुनः दोनों नेत्रोंको भी शान्त करो और तुम्हारी गतिमें जो इतना महान् वेग है, इसे रोको ॥ १४ ॥

न मे प्रयोजनं किंचिद्गमने पन्नगाशन।
संनिवर्त महावेग न वेगं विषहामि ते ॥ १५ ॥

गरुड! इस यात्रासे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, अतः लौट चलो। महावेगवान्! मैं तुम्हारे वेगको नहीं सह सकता ॥ १५ ॥

गुरवे संश्रुतानीह शतान्यष्टौ हि वाजिनाम्।
एकतःश्यामकर्णानां शुभ्राणां चन्द्रवर्चसाम् ॥ १६ ॥

मैंने गुरुको ऐसे आठ सौ घोडे देनेकी प्रतिज्ञा की है, जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिसे युक्त हों और जिनके कान एक ओरसे श्याम रंगके हों ॥ १६ ॥

तेषां चैवापवर्गाय मार्गं पश्यामि नाण्डज।
ततोऽयं जीवितत्यागे दृष्टो मार्गो मयात्मनः ॥ १७ ॥

किंतु, अण्डज! उन घोडोंके दिये जानेका कोई मार्ग मुझे नहीं दिखायी देता है। इसीलिये मैंने अपने जीवनके परित्यागका ही मार्ग चुना है ॥ १७ ॥

नैव मेऽस्ति धनं किंचिन्न धनेनान्वितः सुहृत्।
न चार्थेनापि महता शक्यमेतद्व्यपोहितुम् ॥ १८ ॥

मेरे पास थोडा भी धन नहीं है, कोई धनी मित्र भी नहीं है और यह कार्य ऐसा है कि प्रचुर धनराशिका व्यय करनेसे भी सिद्ध नहीं हो सकता ॥ १८ ॥

नारद उवाच

एवं बहु च दीनं च ब्रुवाणं गालवं तदा ।
प्रत्युवाच व्रजन्नेव प्रहसन्विनतात्मजः ॥ १९ ॥

नारद बोले– इस प्रकार बहुत दीन वचन बोलते हुए महर्षि गालवसे विनतानन्दन गरुडने चलते हुए ही हँसकर कहा– ॥ १९ ॥

नातिप्रज्ञोऽसि विप्रर्षे योऽऽत्मानं त्यक्तुमिच्छसि ।
न चापि कृत्रिमः कालः कालो हि परमेश्वरः ॥ २० ॥

ब्रह्मर्षे ! यदि तुम अपने प्राणोंका परित्याग करना चाहते हो तो विशेष बुद्धिमान् नहीं हो; क्योंकि मृत्यु कृत्रिम नहीं होती उसका अपनी इच्छासे निर्माण नहीं किया जा सकता। वह तो परमेश्वरका ही स्वरूप है ॥ २० ॥

किमहं पूर्वमेवेह भवता नाभिचोदितः ।
उपायोऽत्र महानस्ति येनैतदुपपद्यते ॥ २१ ॥

तुमने पहले ही मुझसे यह बात क्यों नहीं कह दी ? मेरी दृष्टिमें एक महान् उपाय है, जिससे कार्य सिद्ध हो सकता है ॥ २१ ॥

तदेष ऋषभो नाम पर्वतः सागरोरसि ।
अत्र विश्रम्य भुक्त्वा च निवर्तिष्याव गालव ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ॥ ३५२६ ॥

गालव ! समुद्रके निकट यह ऋषभ नामक पर्वत है, जहाँ विश्राम और भोजन करके हम दोनों लौट चलेंगे ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११० ॥ ॥ ३५२६ ॥

: १११ :

नारद उवाच

ऋषभस्य ततः शृङ्गे निपत्य द्विजपक्षिणौ ।
शाण्डिलीं ब्राह्मणीं तत्र ददृशाते तपोन्विताम् ॥ १ ॥

नारद बोले– तदनन्तर गालव और गरुडने ऋषभ पर्वतके शिखरपर उतरकर वहाँ तपस्विनी शाण्डिली ब्राह्मणीको देखा ॥ १ ॥

अभिवाद्य सुपर्णस्तु गालवश्चाभिपूज्य ताम् ।
तया च स्वागतेनोक्तौ विष्टरे संनिषीदतुः ॥ २ ॥
गरुडने उसे प्रणाम किया और गालवने उसका आदर सम्मान किया। तदनन्तर उसने भी उन दोनोंका स्वागत करके उन्हें आसनपर बैठनेके लिये कहा। उसकी आज्ञा पाकर वे दोनों वहाँ आसनपर बैठ गये ॥ २ ॥

सिद्धमन्नं तया क्षिप्रं बलिमन्त्रोपबृंहितम् ।
भुक्त्वा तृप्तावुभौ भूमौ सुप्तौ तावन्नमोहितौ ॥ ३ ॥
तपस्विनीने उन्हें बलिवैश्वदेवसे बचा हुआ अभिमन्त्रित सिद्धान्न अर्पण किया। उसे खाकर वे दोनों तृप्त हो गये और भूमिपर ही सो गये। तत्पश्चात् निद्राने उन्हें अचेत कर दिया ॥ ३ ॥

मुहूर्तात्प्रतिबुद्धस्तु सुपर्णो गमनेप्सया ।
अथ भ्रष्टतनूजाङ्गमात्मानं ददृशे खगः ॥ ४ ॥
दो ही घडीके बाद मनमें वहांसे जानेकी इच्छा लेकर गरुड जाग उठे। उठनेपर उन्होंने अपने शरीरको दोनों पंखोंसे रहित देखा ॥ ४ ॥

मांसपिण्डोपमोऽभूत्स मुखपादान्वितः खगः ।
गालवस्तं तथा दृष्ट्वा विषण्णः पर्यपृच्छत ॥ ५ ॥
आकाशचारी गरुड मुख और हाथोंसे युक्त होते हुए भी उन पंखोंके विना मांसके लोंदे से हो गये। उन्हें उस दशामें देखकर गालवका मन उदास हो गया और उन्होंने पूछा— ॥५॥

किमिदं भवता प्राप्तमिहागमनजं फलम् ।
वासोऽयमिह कालं तु कियन्तं नौ भविष्यति ॥ ६ ॥
सखे ! तुम्हें यहां आनेका यह क्या फल मिला ? इस अवस्थामें हम दोनोंको यहां कितने समयतक रहना पडेगा ? ॥ ६ ॥

किं नु ते मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।
न ह्ययं भवतः स्वल्पो व्यभिचारो भविष्यति ॥ ७ ॥
तुमने अपने मनमें कौनसा अशुभ चिन्तन किया है, जो धर्मको दूषित करनेवाला रहा है। मैं समझता हूं, तुम्हारे द्वारा यहां कोई थोडा धर्मविरुद्ध कार्य नहीं हुआ होगा ॥ ७ ॥

सुपर्णोऽथाब्रवीद्विप्रं प्रध्यातं वै मया द्विज ।
इमां सिद्धामितो नेतुं तत्र यत्र प्रजापतिः ॥ ८ ॥
तब गरुडने विप्रवर गालवसे बोला— ब्रह्मन् ! मैंने तो अपने मनमें यही सोचा था कि इस सिद्ध तपस्विनीको वहां पहुंचा दूं, जहां प्रजापति ब्रह्मा हैं ॥ ८ ॥

यत्र देवो महादेवो यत्र विष्णुः सनातनः ।
यत्र धर्मश्च यज्ञश्च तत्रेयं निवसेदिति ॥ ९ ॥

जहाँ महादेव हैं, जहाँ सनातन भगवान् विष्णु हैं तथा जहाँ धर्म एवं यज्ञ है, वहीं इसे निवास करना चाहिये ॥ ९ ॥

सोऽहं भगवतीं याचे प्रणतः प्रियकाम्यया ।
मयैतन्नाम प्रध्यातं मनसा शोचता किल ॥ १० ॥

अतः मैं भगवती शाण्डिलीके चरणोंमें पडकर यह प्रार्थना करता हूँ कि मैंने अपने चिन्तनशील मनके द्वारा आपका प्रिय करनेकी इच्छासे ही यह बात सोची है ॥ १० ॥

तदेवं बहुमानात्ते मयेहानीप्सितं कृतम् ।
सुकृतं दुष्कृतं वा त्वं माहात्म्यात्क्षन्तुमर्हसि ॥ ११ ॥

आपके प्रति विशेष आदरका भाव होनेसे ही मैंने इस स्थानपर ऐसा चिन्तन किया है, जो सम्भवतः आपको अभीष्ट नहीं रहा है । मेरे द्वारा यह पुण्य हुआ हो या पाप, अपने ही माहात्म्यसे आप मेरे इस अपराधको क्षमा कर दें ॥ ११ ॥

सा तौ तदाब्रवीत्तुष्टा पतगेन्द्रद्विजर्षभौ ।
न भेतव्यं सुपर्णोऽसि सुपर्ण त्यज सम्भ्रमम् ॥ १२ ॥

यह सुनकर तपस्विनी बहुत संतुष्ट हुई । उसने उस समय पक्षिराज गरुड और विप्रवर गालवसे कहा— 'सुपर्ण ! तुम्हारे पंख और भी सुन्दर हो जायँगे; अतः तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये । तुम घबराहट छोडो ॥ १२ ॥

निन्दितास्मि त्वया वत्स न च निन्दां क्षमाम्यहम् ।
लोकेभ्यः स परिभ्रश्येद्यो मां निन्देत पापकृत् ॥ १३ ॥

वत्स ! तुमने मेरी निन्दा की है, मैं निन्दा नहीं सहन करती हूँ । जो पापी मेरी निन्दा करेगा, वह पुण्यलोकोंसे तत्काल भ्रष्ट हो जायेगा ॥ १३ ॥

हीनयालक्षणैः सर्वैस्तथानिन्दितया मया ।
आचारं प्रतिगृह्णन्त्या सिद्धिः प्राप्तेयमुत्तमा ॥ १४ ॥

समस्त अशुभ लक्षणोंसे हीन और अनिन्दित रहकर सदाचारका पालन करते हुए ही मैंने यह उत्तम सिद्धि प्राप्त की है ॥ १४ ॥

आचाराल्लभते धर्ममाचाराल्लभते धनम् ।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १५ ॥

आचार ही धर्मको सफल बनाता है, आचार ही धनरूपी फल देता है, आचारसे मनुष्यको सम्पत्ति प्राप्त होती है और आचार ही अशुभ लक्षणोंका भी नाश कर देता है ॥ १५ ॥

तदायुष्मन्खगपते यथेष्टं गम्यतामितः ।
न च ते गर्हणीयापि गर्हितव्याः स्त्रियः क्वचित् ॥ १६ ॥

अतः आयुष्मन् पक्षिराज ! अब तुम यहाँसे अपने अभीष्ट स्थानको जाओ । आजसे तुम्हें मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये । मेरी ही क्यों, कहीं किसी भी स्त्रीकी निन्दा करनी उचित नहीं है ॥ १६ ॥

भवितासि यथापूर्वं बलवीर्यसमन्वितः ।
बभूवतुस्ततस्तस्य पक्षौ द्रविणवत्तरौ ॥ १७ ॥

अब तुम पहलेकी ही भाँति बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो जाओगे । शाण्डिलीके इतना कहते ही गरुडकी पांखें पहलेसे भी अधिक शक्तिशाली हो गयीं ॥ १७ ॥

अनुज्ञातश्च शाण्डिल्या यथागतमुपागमत् ।
नैव चासादयामास तथारूपांस्तुरंगमान् ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् शाण्डिलीकी आज्ञा ले वे जैसे आये थे, वैसे ही चले गये । वे गालवके बताये अनुसार श्यामकर्ण घोडे नहीं पा सके ॥ १८ ॥

विश्वामित्रोऽथ तं दृष्ट्वा गालवं चाध्वनि स्थितम् ।
उवाच वदतां श्रेष्ठो वैनतेयस्य संनिधौ ॥ १९ ॥

इधर गालवको राहमें आते देख वक्ताओंमें श्रेष्ठ विश्वामित्र खडे हो गये और गरुडके समीप उनसे इस प्रकार बोले ॥ १९ ॥

यस्त्वया स्वयमेवार्थः प्रतिज्ञातो मम द्विज ।
तस्य कालोऽपवर्गस्य यथा वा मन्यते भवान् ॥ २० ॥

ब्रह्मन् ! तुमने स्वयं ही जिस धनको देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसे देनेका समय आ गया है । फिर तुम जैसा ठीक समझो, करो ॥ २० ॥

प्रतीक्षिष्याम्यहं कालमेतावन्तं तथा परम् ।
यथा संसिध्यते विप्र स मार्गस्तु निशाम्यताम् ॥ २१ ॥

मैं इतने ही समयतक और तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा । ब्रह्मन् ! जिस प्रकार तुम्हें सफलता मिल सके, उस मार्गका विचार करो ॥ २१ ॥

सुपर्णोऽथाब्रवीद्दीनं गालवं भृशदुःखितम् ।
प्रत्यक्षं खल्विदानीं मे विश्वामित्रो यदुक्तवान् ॥ २२ ॥

तदनन्तर दीन और अत्यन्त दुःखी हुए गालव मुनिसे गरुडने कहा— द्विजश्रेष्ठ गालव ! विश्वामित्रने मेरे सामने जो कुछ कहा है ॥ २२ ॥

तदागच्छ द्विजश्रेष्ठ मन्त्रयिष्याव गालव ।
नादत्त्वा गुरवे शक्यं कृत्स्नमर्थं त्वयासितुम् ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ ३५४९ ॥

आओ, उसके विषयमें हम दोनों सलाह करें । तुम्हें अपने गुरुको उनका सारा धन चुकाये बिना चुप नहीं बैठना चाहिये ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥ ३५४९ ॥

: ११२ :

नारद उवाच

अथाह गालवं दीनं सुपर्णः पततां वरः ।
निर्मितं वह्निना भूमौ वायुना वैधितं तथा ।
यस्माद्धिरण्मयं सर्वं हिरण्यं तेन चोच्यते ॥ १ ॥

नारद बोले— तदनन्तर पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडने दीन दुःखी गालव मुनिसे इस प्रकार कहा— पृथ्वीके भीतर जो उसका सारतत्त्व है उसे तपाकर अग्निने जिसका निर्माण किया है और उस अग्निको उद्दीप्त करनेवाली वायुने जिसका शोधन किया है, उस सुवर्णको हिरण्य कहते हैं । यह सम्पूर्ण जगत् हिरण्यप्रधान है; इसलिये भी उसे हिरण्य कहते हैं ॥ १ ॥

धत्ते धारयते चेदमेतस्मात्कारणाद्धनम् ।
तदेतत्त्रिषु लोकेषु धनं तिष्ठति शाश्वतम् ॥ २ ॥

वह इस जगत्को स्वयं तो धारण करता ही है, दूसरोंसे भी धारण कराता है । इस कारण उस सुवर्णका नाम धन है । यह धन तीनों लोकोंमें सदा स्थित रहता है ॥ २ ॥

नित्यं प्रोष्ठपदाभ्यां च शुक्रे धनपतौ तथा ।
मनुष्येभ्यः समादत्ते शुक्रश्चित्तार्जितं धनम् । ॥ ३ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद इन दो नक्षत्रोंमेंसे किसी एकके साथ शुक्रवारका योग हो तो अग्निदेव कुबेरके लिये अपने संकल्पसे धनका निर्माण करके उसे मनुष्योंको दे देते हैं ॥ ३ ॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यै रक्ष्यते धनदेन च ।
एवं न शक्यते लब्धुमलब्धव्यं द्विजर्षभ ॥ ४ ॥

पूर्वभाद्रपदके देवता अजैकपाद्, उत्तरभाद्रपदके देवता अहिर्बुध्न्य और कुबेर— ये तीनों उस धनकी रक्षा करते हैं । इस प्रकार किसीको भी ऐसा धन नहीं मिल सकता, जो प्रारब्धवश उसे मिलनेवाला न हो ॥ ४ ॥

ऋते च धनमश्वानां नावाप्तिर्विद्यते तव ।
अर्थं याचात्र राजानं कंचिद्राजर्षिवंशजम् ।
अपीड्य राजा पौरान्हि यो नौ कुर्यात्कृतार्थिनौ ॥ ५ ॥

और धनके विना तुम्हें श्यामकर्ण घोड़ोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये मेरी राय यह है कि तुम राजर्षियोंके कुलमें उत्पन्न हुए किसी ऐसे राजाके पास चलकर धनके लिये याचना करो, जो पुरवासियोंको पीडा दिये विना ही हम दोनोंको धन देकर कृतार्थ कर सके ॥ ५ ॥

अस्ति सोमान्ववाये मे जातः कश्चिन्नृपः सखा ।
अभिगच्छावहे तं वै तस्यास्ति विभवो भुवि ॥ ६ ॥

चन्द्रवंशमें उत्पन्न एक राजा हैं, जो मेरे मित्र हैं। हम दोनों उन्हींके पास चलें। इस भूतलपर उनके पास अवश्य ही धन है ॥ ६ ॥

ययातिर्नाम राजर्षिर्नाहुषः सत्यविक्रमः ।
स दास्यति मया चोक्तो भवता चार्थितः स्वयम् ॥ ७ ॥

मेरे उन मित्रका नाम है राजर्षि ययाति, जो महाराज नहुषके पुत्र हैं। वे सत्यपराक्रमी वीर हैं। तुम्हारे मांगने और मेरे कहनेपर वे स्वयं ही तुम्हें धन देंगे ॥ ७ ॥

विभवश्चास्य सुमहानासीद्धनपतेरिव ।
एवं स तु धनं विद्वान्दानेनैव व्यशोधयत् ॥ ८ ॥

उनके पास धनाध्यक्ष कुबेरकी भांति महान् वैभव रहा है। विद्वन्! इस प्रकार दान लेकर ही तुम गुरुदक्षिणाका ऋण चुका दो ॥ ८ ॥

तथा तौ कथयन्तौ च चिन्तयन्तौ च यत्क्षमम् ।
प्रतिष्ठाने नरपतिं ययातिं प्रत्युपस्थितौ ॥ ९ ॥

इस प्रकार परस्पर बातें करते और उचित कर्तव्यको मन ही मन सोचते हुए वे दोनों प्रतिष्ठानपुरमें राजा ययातिके दरबारमें उपस्थित हुए ॥ ९ ॥

प्रतिगृह्य च सत्कारमर्घादिं भोजनं वरम् ।
पृष्टश्चागमने हेतुमुवाच विनतासुतः ॥ १० ॥

राजाके द्वारा सत्कारपूर्वक दिये हुए श्रेष्ठ अर्घ्य पाद्य आदि ग्रहण करके विनतानन्दन गरुडने उनके पूछनेपर अपने आगमनका प्रयोजन इस प्रकार बताया ॥ १० ॥

अयं मे नाहुष सखा गालवस्तपसो निधिः ।
विश्वामित्रस्य शिष्योऽभूद्वर्षाण्ययुतशो नृप ॥ ११ ॥

नहुषनन्दन! ये तपोनिधि गालव मेरे मित्र हैं। राजन्! ये दस हजार वर्षोंतक महर्षि विश्वामित्रके शिष्य रहे हैं ॥ ११ ॥

सोऽयं तेनाभ्यनुज्ञात उपकारेप्सया द्विजः ।
तमाह भगवन्कां ते ददानि गुरुदक्षिणाम् ॥ १२ ॥

विश्वामित्रने इनकी सेवाके बदले इनका भी उपकार करनेकी इच्छासे इन्हें घर जानेकी आज्ञा दे दी। तब इन्होंने उनसे पूछा— भगवन् ! मैं आपको क्या गुरुदक्षिणा दूँ ? ॥ १२ ॥

असकृत्तेन चोक्तेन किंचिदागतमन्युना ।
अयमुक्तः प्रयच्छेति जानता विभवं लघु ॥ १३ ॥

इनके बार बार आग्रह करनेपर विश्वामित्रको कुछ क्रोध आ गया; अतः इनके पास धनका अभाव है, यह जानते हुए भी उन्होंने इनसे कहा ॥ १३ ॥

एकतःश्यामकर्णानां शुभ्राणां शुद्धजन्मनाम् ।
अष्टौ शतानि मे देहि हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥ १४ ॥

गालव ! मुझे अच्छी जातिमें उत्पन्न हुए ऐसे आठ सौ घोडे दो, जिनकी अङ्गकान्ति चन्द्रमाके समान उज्ज्वल और कान एक ओरसे श्याम रंगके हों ॥ १४ ॥

गुर्वर्थो दीयतामेष यदि गालव मन्यसे ।
इत्येवमाह सक्रोधो विश्वामित्रस्तपोधनः ॥ १५ ॥

गालव ! यदि तुम मेरी बात मानो तो यही गुरुदक्षिणा ला दो। तपोधन विश्वामित्रने यह बात कुपित होकर ही कही थी ॥ १५ ॥

सोऽयं शोकेन महता तप्यमानो द्विजर्षभः ।
अशक्तः प्रतिकर्तुं तद्भवन्तं शरणं गतः ॥ १६ ॥

अतः ये द्विजश्रेष्ठ गालव महान् शोकसे संतप्त हो गुरुदक्षिणा चुकानेमें असमर्थ हो गये हैं और इसीलिये आपकी शरणमें आये हैं ॥ १६ ॥

प्रतिगृह्य नरव्याघ्र त्वत्तो भिक्षां गतव्यथः ।
कृत्वापवर्गं गुरवे चरिष्यति महत्तपः ॥ १७ ॥

पुरुषसिंह ! आपसे भिक्षा ग्रहण करके गुरुको पूर्वोक्त धन देकर ये क्लेशरहित हो महान् तपमें संलग्न हो जायँगे ॥ १७ ॥

तपसः संविभागेन भवन्तमपि योक्ष्यते ।
स्वेन राजर्षितपसा पूर्णं त्वां पूरयिष्यति ॥ १८ ॥

अपनी तपस्याके एक अंशसे ये आपको भी संयुक्त करेंगे। यद्यपि आप अपनी राजर्षि-जनोचित तपस्यासे पूर्ण हैं, तथापि ये अपने ब्राह्मतपसे आपको और भी परिपूर्ण करेंगे ॥ १८ ॥

यावन्ति रोमाणि हये भवन्ति हि नरेश्वर।
तावतो वाजिदा लोकान्प्राप्नुवन्ति महीपते ॥ १९ ॥

नरेश्वर! भूपाल! यहाँ दान किये हुए घोडेके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, घोडेका दान करनेवाले लोगोंको परलोकमें उतने ही घोडे प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

पात्रं प्रतिग्रहस्यायं दातुं पात्रं तथा भवान्।
शङ्खे क्षीरमिवासक्तं भवत्वेतत्तथोपमम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ ३५६९ ॥

ये गालव दान लेनेके सुयोग्य पात्र हैं और आप दान करनेके श्रेष्ठ अधिकारी हैं। जैसे शङ्खमें दूध रक्खा गया हो, उसी प्रकार इनके हाथमें दिये हुए आपके इस दानकी शोभा होगी ॥ २० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११२ ॥ ३५६९ ॥

: ११३ :

नारद उवाच

एवमुक्तः सुपर्णेन तथ्यं वचनमुत्तमम्।
विमृश्यावहितो राजा निश्चित्य च पुनः पुनः ॥ १ ॥

यष्टा क्रतुसहस्राणां दाता दानपतिः प्रभुः।
ययातिर्वत्सकाशीश इदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

नारद बोले— गरुडने जब इस प्रकार यथार्थ और उत्तम बात कही, तब बार बार विचार करके तथा निश्चय करके तब सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले दाता, दानपति, प्रभावशाली तथा राजोचित तेजसे प्रकाशित होनेवाले सम्पूर्ण नरेशोंके स्वामी महाराज ययातिने इस प्रकार कहा ॥ १-२ ॥

दृष्ट्वा प्रियसखं तार्क्ष्यं गालवं च द्विजर्षभम्।
निदर्शनं च तपसो भिक्षां श्लाघ्यां च कीर्तिताम् ॥ ३ ॥

राजाने पहले अपने प्रिय मित्र गरुड तथा तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप विप्रवर गालवको अपने यहाँ उपस्थित देख और उनकी बतायी हुई स्पृहणीय भिक्षाकी बात सुनकर मनमें इस प्रकार विचार किया ॥ ३ ॥

अतीत्य च नृपानन्यानादित्यकुलसम्भवान् ।
मत्सकाशमनुप्राप्तावेतौ बुद्धिमवेक्ष्य च ॥ ४ ॥

ये दोनों सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए दूसरे अनेक राजाओंको छोडकर मेरे पास आये हैं । ऐसा विचार कर वे बोले ॥ ४ ॥

अद्य मे सफलं जन्म तारितं चाद्य मे कुलम् ।
अद्यायं तारितो देशो मम तार्क्ष्य त्वयानघ ॥ ५ ॥

निष्पाप गरुड ! आज मेरा जन्म सफल हो गया । आज मेरे कुलका उद्धार हो गया और आज आपने मेरे इस सम्पूर्ण देशको भी तार दिया ॥ ५ ॥

वक्तुमिच्छामि तु सखे यथा जानासि मां पुरा ।
न तथा वित्तवानस्मि क्षीणं वित्तं च मे सखे ॥ ६ ॥

सखे ! फिर भी मैं एक बात कहना चाहता हूं । आप पहलेसे मुझे जैसा धनवान् समझते हैं, वैसा धनसम्पन्न अब मैं नहीं रह गया हूँ । मित्र ! मेरा वैभव इन दिनों क्षीण हो गया है ॥ ६ ॥

न च शक्तोऽस्मि ते कर्तुं मोघमागमनं खग ।
न चाशामस्य विप्रर्षेर्वितथां कर्तुमुत्सहे ॥ ७ ॥

आकाशचारी गरुड ! इस दशामें भी मैं आपके आगमनको निष्फल करनेमें असमर्थ हूं और इन ब्रह्मर्षिकी आशाको भी मैं विफल करना नहीं चाहता ॥ ७ ॥

तत्तु दास्यामि यत्कार्यमिदं सम्पादयिष्यति ।
अभिगम्य हताशो हि निवृत्तो दहते कुलम् ॥ ८ ॥

अतः मैं एक ऐसी वस्तु दूँगा, जो इस कार्यका सम्पादन कर देगी । अपने पास आकर कोई याचक हताश हो जाये तो वह लौटनेपर आशा भंग करनेवाले राजाके समूचे कुलको दग्ध कर देता है ॥ ८ ॥

नातः परं वैनतेय किंचित्पापिष्ठमुच्यते ।
यथाशानाशनं लोके देहि नास्तीति वा वचः ॥ ९ ॥

विनतानन्दन ! लोकमें कोई 'दीजिये' कहकर कुछ माँगे और उससे यह कह दिया जाय कि 'जाओ मेरे पास नहीं है,' इस प्रकार याचककी आशाको भंग करनेसे जितना पाप लगता है, इससे बढकर पापकी दूसरी कोई बात नहीं कही जाती है ॥ ९ ॥

हताशो ह्यकृतार्थः सन्हतः सम्भावितो नरः ।
हिनस्ति तस्य पुत्रांश्च पौत्रांश्चाकुर्वतोऽर्थिनाम् ॥ १० ॥

कोई श्रेष्ठ मनुष्य जब कहीं याचना करके हताश एवं असफल होता है, तब वह मरे हुएके समान हो जाता है और अपना हित न करनेवाले धनीके पुत्रों तथा पौत्रोंका नाश कर डालता है ॥ १० ॥

तस्माच्चतुर्णां वंशानां स्थापयित्री सुता मम ।
इयं सुरसुतप्रख्या सर्वधर्मोपचायिनी ॥ ११ ॥

अतः मेरी जो यह पुत्री है, यह चार कुलोंकी स्थापना करनेवाली है । इसकी कान्ति देव-कन्याके समान है । यह सम्पूर्ण धर्मोंकी वृद्धि करनेवाली है ॥ ११ ॥

सदा देवमनुष्याणामसुराणां च गालव ।
काङ्क्षिता रूपतो बाला सुता मे प्रतिगृह्यताम् ॥ १२ ॥

गालव ! इसके रूप सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर देवता, मनुष्य तथा असुर सभी लोग सदा इसे पानेकी अभिलाषा रखते हैं; अतः आप मेरी इस पुत्रीको ही ग्रहण कीजिये ॥ १२ ॥

अस्याः शुल्कं प्रदास्यन्ति नृपा राज्यमपि ध्रुवम् ।
किं पुनः श्यामकर्णानां हयानां द्वे चतुःशते ॥ १३ ॥

इसके शुल्कके रूपमें राजालोग निश्चय ही अपना राज्य भी आपको दे देंगे; फिर आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ १३ ॥

स भवान्प्रतिगृह्णातु ममेमां माधवीं सुताम् ।
अहं दौहित्रवान्स्यां वै वर एष मम प्रभो ॥ १४ ॥

अतः, प्रभो ! आप मेरी इस पुत्री माधवीको ग्रहण करें और मुझे यह वर दें कि मैं दौहित्र-वान् अर्थात् नातियोंसे युक्त होऊँ ॥ १४ ॥

प्रतिगृह्य च तां कन्यां गालवः सह पक्षिणा ।
पुनर्द्रक्ष्याव इत्युक्त्वा प्रतस्थे सह कन्यया ॥ १५ ॥

तब गरुडसहित गालवने उस कन्याको लेकर कहा—अच्छा, हम फिर कभी मिलेंगे। राजासे ऐसा कहकर गालवमुनि कन्याके साथ वहाँसे चल दिये ॥ १५ ॥

उपलब्धमिदं द्वारमश्वानामिति चाण्डजः ।
उक्त्वा गालवमापृच्छ्य जगाम भवनं स्वकम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर गरुड भी यह कहकर कि अब तुम्हें घोड़ोंकी प्राप्तिका यह द्वार प्राप्त हो गया, गालवसे विदा ले अपने घरको चले गये ॥ १६ ॥

गते पतगराजे तु गालवः सह कन्यया।
चिन्तयानः क्षमं दाने राज्ञां वै शुल्कतोऽगमत् ॥ १७ ॥

पक्षिराज गरुडके चले जानेपर गालव उस कन्याके साथ यह सोचते हुए चल दिये कि राजाओंमेंसे कौन ऐसा नरेश है, जो इस कन्याका शुल्क देनेमें समर्थ हो ॥ १७ ॥

सोऽगच्छन्मनसेक्ष्वाकुं हर्यश्वं राजसत्तमम्।
अयोध्यायां महावीर्यं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥ १८ ॥

वे मन ही मन विचार करके अयोध्यामें इक्ष्वाकुवंशी नृपतिशिरोमणि महापराक्रमी हर्यश्वके पास गये, जो चतुरङ्गिणी सेनासे सम्पन्न थे ॥ १८ ॥

कोशधान्यबलोपेतं प्रियपौरं द्विजप्रियम्।
प्रजाभिकामं शाम्यन्तं कुर्वाणं तप उत्तमम् ॥ १९ ॥

वे कोष, धन धान्य और सैनिकबल सबसे सम्पन्न थे। पुरवासी प्रजा उन्हें बहुत ही प्रिय थी। ब्राह्मणोंके प्रति उनका अधिक प्रेम था। वे प्रजावर्गके हितकी इच्छा रखते थे। उनका मन भोगोंसे विरक्त एवं शान्त था। वे उत्तम तपस्यामें लगे हुए थे ॥ १९ ॥

तमुपागम्य विप्रः स हर्यश्वं गालवोऽब्रवीत्।
कन्येयं मम राजेन्द्र प्रसवैः कुलवर्धिनी ॥ २० ॥

राजा हर्यश्वके पास जाकर विप्रवर गालवने कहा— राजेन्द्र! मेरी यह कन्या अपनी संतानों-द्वारा वंशकी वृद्धि करनेवाली है ॥ २० ॥

इयं शुल्केन भार्यार्थे हर्यश्व प्रतिगृह्यताम्।
शुल्कं ते कीर्तयिष्यामि तच्छ्रुत्वा सम्प्रधार्यताम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ ३५९० ॥

तुम शुल्क देकर इसे अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करो। हर्यश्व! मैं तुम्हें पहले इसका शुल्क बताऊँगा। उसे सुनकर तुम अपने कर्तव्यका निश्चय करो ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ ११३ ॥ ३५९० ॥

: ११४ :

नारद उवाच

हर्यश्वस्त्वब्रवीद्राजा विचिन्त्य बहुधा ततः।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य प्रजाहेतोर्नृपोत्तमः ॥ १ ॥

नारद बोले— तदनन्तर नृपश्रेष्ठ राजा हर्यश्वने उस कन्याके विषयमें बहुत सोच विचारकर संतानोत्पादनकी इच्छासे गरम गरम लम्बी सांस खींचकर मुनिसे इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

उन्नतेषून्नता षट्सु सूक्ष्मा सूक्ष्मेषु सप्तसु ।
गम्भीरा त्रिषु गम्भीरेष्वियं रक्ता च पञ्चसु ॥ २ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! इस कन्याके छः अङ्ग जो ऊंचे होने चाहिये, ऊंचे हैं । पांच अङ्ग जो सूक्ष्म होने चाहिये, सूक्ष्म हैं । तीन अङ्ग जो गम्भीर होने चाहिये, गम्भीर हैं तथा इसके पांच अङ्ग रक्तवर्णके हैं ॥ २ ॥×

बहुदेवासुरालोका बहुगन्धर्वदर्शना ।
बहुलक्षणसम्पन्ना बहुप्रसवधारिणी ॥ ३ ॥

यह बहुतसे देवताओं तथा असुरोंके लिये भी दर्शनीय है । इसे गन्धर्वविद्या संगीतका भी अच्छा ज्ञान है । यह बहुतसे शुभ लक्षणोंद्वारा सुशोभित तथा अनेक संतानोंको जन्म देनेमें समर्थ है ॥ ३ ॥

समर्थेयं जनयितुं चक्रवर्तिनमात्मजम् ।
ब्रूहि शुल्कं द्विजश्रेष्ठ समीक्ष्य विभवं मम ॥ ४ ॥

विप्रवर ! आपकी यह कन्या चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ है; अतः आप मेरे वैभवको देखते हुए इसके लिये समुचित शुल्क बताइये ॥ ४ ॥

गालव उवाच

एकतःश्यामकर्णानां शतान्यष्टौ ददस्व मे ।
हयानां चन्द्रशुभ्राणां देशजानां वपुष्मताम् ॥ ५ ॥

गालव बोले— राजन् ! आप मुझे अच्छे देश और अच्छी जातिमें उत्पन्न हृष्टपुष्ट अङ्गों-वाले आठ सौ ऐसे घोडे प्रदान कीजिये, जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिसे विभूषित हों तथा उनके कान एक ओरसे श्यामवर्णके हों ॥ ५ ॥

ततस्तव भवित्रीयं पुत्राणां जननी शुभा ।
अरणीव हुताशानां योनिरायतलोचना ॥ ६ ॥

यह शुल्क चुका देनेपर मेरी यह विशाल नेत्रोंवाली शुभलक्षणा कन्या अग्नियोंको प्रकट करने-वाली अरणीकी भांति आपके तेजस्वी पुत्रोंकी जननी होगी ॥ ६ ॥

नारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो राजा हर्यश्वः काममोहितः ।
उवाच गालवं दीनो राजर्षिर्ऋषिसत्तमम् ॥ ७ ॥

नारद बोले— यह वचन सुनकर काममोहित हुए राजर्षि महाराज हर्यश्व मुनिश्रेष्ठ गालवसे अत्यन्त दीन होकर बोले ॥ ७ ॥

× दो नितम्ब, दो जांघें, ललाट और नासिका— ये छै अंग ऊंचे हैं। उंगलियोंके पर्व, केश, रोम, नख और त्वचा— ये पांच अंग सूक्ष्म हैं। स्वर, अन्तःकरण और नाभि— ये तीन गंभीर हैं। और हथेली, पैरोंके तलुवे, दोनों ही नेत्रोंके नेत्रप्रान्त तथा नख— ये पांच अंग लाल हैं।

द्वे मे शते संनिहिते हयानां यद्विधास्तव ।
एष्टव्याः शतशस्त्वन्ये चरन्ति मम वाजिनः ॥ ८ ॥

ब्रह्मन् ! आपको जैसे घोडे लेने अभीष्ट हैं, वैसे तो मेरे यहां इन दिनों दो ही सौ घोडे मौजूद हैं; किंतु दूसरी जातिके कई सौ घोडे यहां विचरते हैं ॥ ८ ॥

सोऽहमेकमपत्यं वै जनयिष्यामि गालव ।
अस्यामेतं भवान्कामं सम्पादयतु मे वरम् ॥ ९ ॥

अतः, गालव ! मैं इस कन्यासे केवल एक संतान उत्पन्न करूंगा । आप मेरे इस श्रेष्ठ मनोरथको पूर्ण करें ॥ ९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु सा कन्या गालवं वाक्यमब्रवीत् ।
मम दत्तो वरः कश्चित्केनचिद्ब्रह्मवादिना ॥ १० ॥

यह सुनकर उस कन्याने महर्षि गालवसे बोला- 'मुने ! मुझे किन्हीं वेदवादी महात्माने यह एक वर दिया था' ॥ १० ॥

प्रसूत्यन्ते प्रसूत्यन्ते कन्यैव त्वं भविष्यसि ।
स त्वं ददस्व मां राज्ञे प्रतिगृह्य हयोत्तमान् ॥ ११ ॥

कि तुम प्रत्येक प्रसवके अन्तमें फिर कन्या ही हो जाओगी । अतः आप दो सौ उत्तम घोडे लेकर मुझे राजाको सौंप दें ॥ ११ ॥

नृपेभ्यो हि चतुर्भ्यस्ते पूर्णान्यष्टौ शतानि वै ।
भविष्यन्ति तथा पुत्रा मम चत्वार एव च ॥ १२ ॥

इस प्रकार चार राजाओंसे दो दो सौ घोडे लेनेपर आपके आठ सौ घोडे पूरे हो जायेंगे और मेरे भी चार ही पुत्र होंगे ॥ १२ ॥

क्रियतां मम संहारो गुर्वर्थं द्विजसत्तम ।
एषा तावन्मम प्रज्ञा यथा वा मन्यसे द्विज ॥ १३ ॥

विप्रवर ! इसी तरह आप गुरुदक्षिणाके लिये मेरा उपयोग करें, यही मेरी मान्यता है । फिर आप जैसा ठीक समझें, वैसा करें ॥ १३ ॥

एवमुक्तस्तु स मुनिः कन्यया गालवस्तदा ।
हर्यश्वं पृथिवीपालमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

कन्याके ऐसा कहनेपर उस समय गालव मुनिने भूपाल हर्यश्वसे यह बात कही ॥ १४ ॥

इयं कन्या नरश्रेष्ठ हर्यश्व प्रतिगृह्यताम् ।
चतुर्भागेन शुल्कस्य जनयस्वैकमात्मजम् ॥ १५ ॥

नरश्रेष्ठ हर्यश्व ! नियत शुल्कका चौथाई भाग देकर आप इस कन्याको ग्रहण करें और इसके गर्भसे केवल एक पुत्र उत्पन्न कर लें ॥ १५ ॥

प्रतिगृह्य स तां कन्यां गालवं प्रतिनन्द्य च ।
समये देशकाले च लब्धवान्सुतमीप्सितम् ॥ १६ ॥

तब राजाने गालव मुनिका अभिनन्दन करके उस कन्याको ग्रहण किया और उचित देश-कालमें उसके द्वारा एक मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त किया ॥ १६ ॥

ततो वसुमना नाम वसुभ्यो वसुमत्तरः ।
वसुप्रख्यो नरपतिः स बभूव वसुप्रदः ॥ १७ ॥

तदनन्तर उनका वह पुत्र वसुमनाके नामसे विख्यात हुआ । वह वसुओंके समान कान्तिमान् तथा उनकी अपेक्षा भी अधिक धन रत्नोंसे सम्पन्न और धनका खुले हाथ दान करनेवाला नरेश हुआ ॥ १७ ॥

अथ काले पुनर्धीमान्गालवः प्रत्युपस्थितः ।
उपसंगम्य चोवाच हर्यश्वं प्रीतमानसम् ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् उचित समयपर बुद्धिमान् गालव पुनः वहां उपस्थित हुए और प्रसन्नचित्त राजा हर्यश्वसे मिलकर इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥

जातो नृप सुतस्तेऽयं बालभास्करसंनिभः ।
कालो गन्तुं नरश्रेष्ठ भिक्षार्थमपरं नृपम् ॥ १९ ॥

नरश्रेष्ठ नरेश ! आपको यह सूर्यके समान तेजस्वी पुत्र प्राप्त हो गया । अब इस कन्याके साथ घोड़ोंकी याचना करनेके लिये दूसरे राजाके यहां जानेका अवसर उपस्थित हुआ है ॥१९॥

हर्यश्वः सत्यवचने स्थितः स्थित्वा च पौरुषे ।
दुर्लभत्वाद्धयानां च प्रददौ माधवीं पुनः ॥ २० ॥

राजा हर्यश्व सत्य वचनपर दृढ रहनेवाले थे । उन्होंने पुरुषार्थमें समर्थ होकर भी छः सौ श्यामकर्ण घोडे दुर्लभ होनेके कारण माधवीको पुनः लौटा दिया ॥ २० ॥

माधवी च पुनर्दीप्तां परित्यज्य नृपश्रियम् ।
कुमारी कामतो भूत्वा गालवं पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ २१ ॥

माधवी पुनः इच्छानुसार कुमारी होकर अयोध्याकी उज्ज्वल राजलक्ष्मीका परित्याग करके गालवमुनिके पीछे पीछे चली गयी ॥ २१ ॥

त्वय्येव तावत्तिष्ठन्तु हया इत्युक्त्वा द्विजः ।
प्रययौ कन्यया सार्धं दिवोदासं प्रजेश्वरम् ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ ३६१२ ॥

जाते समय ब्राह्मणने राजा हर्यश्वसे कहा— महाराज ! आपके दिये हुए दो सौ श्यामकर्ण घोडे अभी आपके ही पास धरोहरके रूपमें रहें। ऐसा कहकर गालवमुनि उस राजकन्याके साथ राजा दिवोदासके यहां गये ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ ११४ ॥ ३६१२ ॥

११५

गालव उवाच

महावीर्यो महीपालः काशीनामीश्वरः प्रभुः ।
दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिर्नराधिपः ॥ १ ॥

मार्गमें गालव राजकन्या माधवीसे बोले— भद्रे ! काशीके अधिपति भीमसेनकुमार शक्तिशाली राजा दिवोदास महापराक्रमी एवं विख्यात भूमिपाल है ॥ १ ॥

तत्र गच्छावहे भद्रे शनैरागच्छ मा शुचः ।
धार्मिकः संयमे युक्तः सत्यश्चैव जनेश्वरः ॥ २ ॥

उन्हींके पास हम दोनो चलें । तुम धीरे धीरे चली आओ । मनमें किसी प्रकारका शोक न करो । राजा दिवोदास धर्मात्मा, संयमी तथा सत्यपरायण हैं ॥ २ ॥

नारद उवाच

तमुपागम्य स मुनिर्न्यायतस्तेन सत्कृतः ।
गालवः प्रसवस्यार्थे तं नृपं प्रत्यचोदयत् ॥ ३ ॥

नारद बोले— राजा दिवोदासके यहां जानेपर गालव मुनिका उनके द्वारा यथोचित सत्कार किया गया । तदनन्तर गालवने पूर्ववत् उन्हें भी शुल्क देकर उस कन्यासे एक संतान उत्पन्न करनेके लिये प्रेरित किया ॥ ३ ॥

दिवोदास उवाच

श्रुतमेतन्मया पूर्वं किमुक्त्वा विस्तरं द्विज ।
काङ्क्षितो हि ममैषोऽर्थः श्रुत्वैतद्द्विजसत्तम ॥ ४ ॥

दिवोदास बोले— ब्रह्मन् ! यह सब वृत्तान्त मैंने पहलेसे ही सुन रक्खा है । अब इसे विस्तारपूर्वक कहनेकी क्या आवश्यकता है ? द्विजश्रेष्ठ ! आपके प्रस्तावको सुनते ही मेरे मनमें यह पुत्रोत्पादनकी अभिलाषा जाग उठी है ॥ ४ ॥

एतच्च मे बहुमतं यदुत्सृज्य नराधिपान्।
मामेवमुपयातोऽसि भावि चैतदसंशयम् ॥ ५ ॥

यह मेरे लिये बडे सम्मानकी बात है कि आप दूसरे राजाओंको छोडकर मेरे पास इस रूपमें प्रार्थी होकर आये हैं। निःसंदेह ऐसा ही भावी है ॥ ५ ॥

स एष विभवोऽस्माकमश्वानामपि गालव।
अहमप्येकमेवास्यां जनयिष्यामि पार्थिवम् ॥ ६ ॥

गालव! मेरे पास भी दो ही सौ श्यामकर्ण घोडे हैं; अतः मैं भी इसके गर्भसे एक ही राजकुमारको उत्पन्न करूंगा ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा द्विजश्रेष्ठः प्रादात्कन्यां महीपतेः।
विधिपूर्वं च तां राजा कन्यां प्रतिगृहीतवान् ॥ ७ ॥

तब बहुत अच्छा कहकर विप्रवर गालवने वह कन्या राजाको दे दी। राजाने भी उसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ७ ॥

रेमे स तस्यां राजर्षिः प्रभावत्यां यथा रविः।
स्वाहायां च यथा वह्निर्यथा शच्यां च वासवः ॥ ८ ॥

राजर्षि दिवोदास माधवीमें अनुरक्त होकर उसके साथ रमण करने लगे। जैसे सूर्य प्रभावतीके, अग्नि स्वाहाके, देवेन्द्र शचीके ॥ ८ ॥

यथा चन्द्रश्च रोहिण्यां यथा धूमोर्णया यमः।
वरुणश्च यथा गौर्यां यथा चर्द्ध्यां धनेश्वरः ॥ ९ ॥

चन्द्रमा रोहिणीके, यमराज धूमोर्णाके, वरुण गौरीके, कुबेर ऋद्धिके, ॥ ९ ॥

यथा नारायणो लक्ष्म्यां जाह्नव्यां च यथोदधिः।
यथा रुद्रश्च रुद्राण्यां यथा वेद्यां पितामह ॥ १० ॥

नारायण लक्ष्मीके, समुद्र गङ्गाके, रुद्रदेव रुद्राणीके, पितामह ब्रह्मा वेदीके, ॥ १० ॥

अदृश्यन्त्यां च वासिष्ठो वसिष्ठश्चाक्षमालया।
च्यवनश्च सुकन्यायां पुलस्त्यः संध्यया यथा ॥ ११ ॥

वासिष्ठनन्दन शक्ति अदृश्यन्तीके, वसिष्ठ अक्षमाला अरुन्धतीके, च्यवन सुकन्याके, पुलस्त्य संध्याके, ॥ ११ ॥

अगस्त्यश्चापि वैदर्भ्यां सावित्र्यां सत्यवान्यथा।
यथा भृगुः पुलोमायामदित्यां कश्यपो यथा ॥ १२ ॥

अगस्त्य विदर्भराजकुमारी लोपामुद्राके, सत्यवान् सावित्रीके, भृगु पुलोमाके, कश्यप अदितिके, ॥ १२ ॥

रेणुकायां यथार्चीको हैमवत्यां च कौशिकः ।
बृहस्पतिश्च तारायां शुक्रश्च शतपर्वया ॥ १३ ॥

जमदग्नि रेणुकाके, कुशिकवंशी विश्वामित्र हैमवतीके, बृहस्पति ताराके, शुक्र शतपर्वाके, ॥ १३ ॥

यथा भूम्यां भूमिपतिरुर्वश्यां च पुरूरवाः ।
ऋचीकः सत्यवत्यां च सरस्वत्यां यथा मनुः ॥ १४ ॥

भूमिपति भूमिके, पुरूरवा उर्वशीके, ऋचीक सत्यवतीके, मनु सरस्वतीके ॥ १४ ॥

तथा तु रममाणस्य दिवोदासस्य भूपतेः ।
माधवी जनयामास पुत्रमेकं प्रतर्दनम् ॥ १५ ॥

साथ रमण करते हैं, उसी प्रकार अपने साथ रमण करनेवाले राजा दिवोदासके वीर्यसे माधवीने प्रतर्दन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १५ ॥

अथाजगाम भगवान्दिवोदासं स गालवः ।
समये समनुप्राप्ते वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १६ ॥

तदनन्तर समय आनेपर भगवान् गालव मुनि पुनः दिवोदासके पास आये और उनसे इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥

निर्यातयतु मे कन्यां भवांस्तिष्ठन्तु वाजिनः ।
यावदन्यत्र गच्छामि शुल्कार्थं पृथिवीपते ॥ १७ ॥

पृथ्वीनाथ ! अब आप मुझे राजकन्याको लौटा दें। आपके दिये हुए घोड़े अभी आपके ही पास रहें। मैं इस समय शुल्क प्राप्त करनेके लिये अन्यत्र जा रहा हूँ ॥ १७ ॥

दिवोदासोऽथ धर्मात्मा समये गालवस्य ताम् ।
कन्यां निर्यातयामास स्थितः सत्ये महीपतिः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ ३६२० ॥

धर्मात्मा राजा दिवोदास अपनी की हुई सत्य प्रतिज्ञापर अटल रहनेवाले थे; अतः उन्होंने गालवको वह कन्या लौटा दी ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥ ३६२० ॥

म

११६

नारद उवाच

तथैव सा श्रियं त्यक्त्वा कन्या भूत्वा यशस्विनी ।
माधवी गालवं विप्रमन्वयात्सत्यसंगरा ॥ १ ॥

नारद बोले— तदनन्तर वह यशस्विनी राजकन्या माधवी सत्यके पालनमें तत्पर हो काशी-नरेशकी उस राजलक्ष्मीको त्यागकर विप्रवर गालवके साथ चली गयी ॥ १ ॥

गालवो विमृशन्नेव स्वकार्यगतमानसः ।
जगाम भोजनगरं द्रष्टुमौशीनरं नृपम् ॥ २ ॥

गालवका मन अपने कार्यकी सिद्धिके चिन्तनमें लगा था । उन्होंने मन ही मन कुछ सोचते हुए राजा उशीनरसे मिलनेके लिये भोजनगरकी यात्रा की ॥ २ ॥

तमुवाचाथ गत्वा स नृपतिं सत्यविक्रमम् ।
इयं कन्या सुतौ द्वौ ते जनयिष्यति पार्थिवौ ॥ ३ ॥

उन सत्यपराक्रमी नरेशके पास जाकर गालवने उनसे कहा— राजन् ! यह कन्या आपके लिये पृथ्वीका शासन करनेमें समर्थ दो पुत्र उत्पन्न करेगी ॥ ३ ॥

अस्यां भवानवाप्तार्थो भविता प्रेत्य चेह च ।
सोमार्कप्रतिसंकाशौ जनयित्वा सुतौ नृप ॥ ४ ॥

नरेश्वर ! इसके गर्भसे सूर्य और चन्द्रमाके समान दो तेजस्वी पुत्र पैदा करके आप लोक और परलोकमें भी पूर्णकाम होंगे ॥ ४ ॥

शुल्कं तु सर्वधर्मज्ञ हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
एकतःश्यामकर्णानां देयं मह्यं चतुःशतम् ॥ ५ ॥

समस्त धर्मोंके ज्ञाता भूपाल ! आप इस कन्याके शुल्कके रूपमें मुझे ऐसे चार सौ अश्व प्रदान करें, जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित तथा एक ओरसे श्यामवर्णके कानोंवाले हों ॥ ५ ॥

गुर्वर्थोऽयं समारम्भो न हयैः कृत्यमस्ति मे ।
यदि शक्यं महाराज क्रियतां मा विचार्यताम् ॥ ६ ॥

मैंने गुरुदक्षिणा देनेके लिये यह उद्योग आरम्भ किया है अन्यथा मुझे इन घोड़ोंकी कोई आवश्यकता नहीं है । महाराज ! यदि आपके लिये यह शुल्क देना सम्भव हो तो विचार करके यह कार्य सम्पन्न कीजिये ॥ ६ ॥

अनपत्योऽसि राजर्षे पुत्रौ जनय पार्थिव ।
पितॄन्पुत्रप्लवेन त्वमात्मानं चैव तारय ॥ ७ ॥

राजर्षे ! पृथ्वीपते ! आप संतानहीन हैं । अतः इससे दो पुत्र उत्पन्न कीजिये और पुत्ररूपी नौकाद्वारा पितरोंका तथा अपना भी उद्धार कीजिये ॥ ७ ॥

न पुत्रफलभोक्ता हि राजर्षे पात्यते दिवः ।
न याति नरकं घोरं यत्र गच्छन्त्यनात्मजाः ॥ ८ ॥

राजर्षे ! पुत्रजनित पुण्यफलका उपभोग करनेवाला मनुष्य कभी स्वर्गसे नीचे नहीं गिराया जाता और संतानहीन मनुष्य जिस प्रकार घोर नरकमें पडते हैं, उस प्रकार वह नहीं पडता ॥ ८ ॥

एतच्चान्यच्च विविधं श्रुत्वा गालवभाषितम् ।
उशीनरः प्रतिवचो ददौ तस्य नराधिपः ॥ ९ ॥

गालवकी कही हुई ये तथा और भी बहुतसी बातें सुनकर राजा उशीनरने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ९ ॥

श्रुतवानस्मि ते वाक्यं यथा वदसि गालव ।
विधिस्तु बलवान्ब्रह्मन्प्रवणं हि मनो मम ॥ १० ॥

विप्रवर गालव ! आप जैसा कहते हैं, वे सब बातें मैंने सुन लीं ! परंतु विधाता प्रबल है। मेरा मन इससे संतान उत्पन्न करनेके लिये उत्सुक हो रहा है ॥ १० ॥

शते द्वे तु ममाश्वानामीदृशानां द्विजोत्तम ।
इतरेषां सहस्राणि सुबहूनि चरन्ति मे ॥ ११ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! आपको जिनकी आवश्यकता है, ऐसे अश्व तो मेरे पास दो ही सौ हैं । दूसरी जातिके तो कई सहस्र घोडे मेरे यहाँ विचरते हैं ॥ ११ ॥

अहमप्येकमेवास्यां जनयिष्यामि गालव ।
पुत्रं द्विज गतं मार्गं गमिष्यामि परैरहम् ॥ १२ ॥

अतः ब्रह्मर्षि गालव ! मैं भी इस कन्याके गर्भसे एक ही पुत्र उत्पन्न करूँगा । दूसरे लोग जिस मार्गपर चले हैं, उसीपर मैं भी चलूँगा ॥ १२ ॥

मूल्येनापि समं कुर्यां तवाहं द्विजसत्तम ।
पौरजानपदार्थं तु ममार्थो नात्मभोगतः ॥ १३ ॥

द्विजप्रवर ! मैं घोडोंका मूल्य देकर आपका सारा शुल्क चुका दूं, यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि मेरा धन पुरवासियों तथा जनपदनिवासियोंके लिये है, अपने उपभोगमें लानेके लिये नहीं ॥ १३ ॥

काम्यतो हि धनं राजा पारक्यं यः प्रयच्छति ।
न स धर्मेण धर्मात्मन्युज्यते यशसा न च ॥ १४ ॥

धर्मात्मन् ! जो राजा पराये धनका अपनी इच्छाके अनुसार दान करता है, उसे धर्म और यशकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ १४ ॥

सोऽहं प्रतिग्रहीष्यामि ददात्वेतां भवान्मम ।
कुमारीं देवगर्भाभामेकपुत्रभवाय मे ॥ १५ ॥

अतः आप देवकन्याके समान सुन्दरी इस राजकुमारीको केवल एक पुत्र उत्पन्न करनेके लिये मुझे दें । मैं ग्रहण करूँगा ॥ १५ ॥

तथा तु बहुकल्याणमुक्तवन्तं नराधिपम् ।
उशीनरं द्विजश्रेष्ठो गालवः प्रत्यपूजयत् ॥ १६ ॥

इस प्रकार कल्याणयुक्त बातें कहनेवाले राजा उशीनरकी विप्रवर गालवने भूरि भूरि प्रशंसा की ॥ १६ ॥

उशीनरं प्रतिग्राह्य गालवः प्रययौ वनम् ।
रेमे स तां समासाद्य कृतपुण्य इव श्रियम् ॥ १७ ॥

उशीनरको वह कन्या सौंपकर गालवमुनि वनको चले गये । जैसे पुण्यात्मा पुरुष राज्य-लक्ष्मीको प्राप्त करे, उसी प्रकार उस राजकन्याको पाकर राजा उशीनर उसके साथ रमण करने लगे ॥ १७ ॥

कन्दरेषु च शैलानां नदीनां निर्झरेषु च ।
उद्यानेषु विचित्रेषु वनेषूपवनेषु च ॥ १८ ॥

उन्होंने पर्वतोंकी कन्दराओंमें, नदियोंके सुरम्य तटोंपर, झरनोंके आसपास, विचित्र उद्यानोंमें, वनों और उपवनोंमें, ॥ १८ ॥

हर्म्येषु रमणीयेषु प्रासादशिखरेषु च ।
वातायनविमानेषु तथा गर्भगृहेषु च ॥ १९ ॥

रमणीय अट्टालिकाओंमें, प्रासादशिखरोंपर, वायुके मार्गसे उडनेवाले विमानोंपर तथा पृथ्वीके भीतर बने हुए गर्भगृहोंमें माधवीके साथ विहार किया ॥ १९ ॥

ततोऽस्य समये जज्ञे पुत्रो बालरविप्रभः ।
शिबिर्नाम्नाभिविख्यातो यः स पार्थिवसत्तमः ॥ २० ॥

तदनन्तर यथासमय उसके गर्भसे राजाको एक पुत्र प्राप्त हुआ, जो बालसूर्यके समान तेजस्वी था । वही बडा होनेपर नृपश्रेष्ठ महाराज शिबिके नामसे विख्यात हुआ ॥ २० ॥

उपस्थाय स तं विप्रो गालवः प्रतिगृह्य च ।
कन्यां प्रयातस्तां राजन्दृष्टवान्विनतात्मजम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ३६५१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् विप्रवर गालव राजाके दरबारमें उपस्थित हुए और उस कन्याको वापस लेकर वहाँसे चल दिये ! मार्गमें उन्हें विनतानन्दन गरुड दिखायी दिये ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११६ ॥ ३६५१ ॥

: ११७ :

नारद उवाच

गालवं वैनतेयोऽथ प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
दिष्ट्या कृतार्थं पश्यामि भवन्तमिह वै द्विज ॥ १ ॥

नारद बोले– उस समय विनतानन्दन गरुडने गालव मुनिसे हँसते हुए कहा– ब्रह्मन् ! बडे सौभाग्यकी बात है कि आज मैं तुम्हें यहाँ कृतकृत्य देख रहा हूँ ॥ १ ॥

गालवस्तु वचः श्रुत्वा वैनतेयेन भाषितम् ।
चतुर्भागावशिष्टं तदाचख्यौ कार्यमस्य हि ॥ २ ॥

गरुडकी कही हुई यह बात सुनकर गालव बोले– अभी गुरुदक्षिणाका एक चौथाई भाग बाकी रह गया है, जिसे शीघ्र पूरा करना है ॥ २ ॥

सुपर्णस्त्वब्रवीदेनं गालवं पततां वरः ।
प्रयत्नस्ते न कर्तव्यो नैष सम्पत्स्यते तव ॥ ३ ॥

तब उडनेवालोंमें श्रेष्ठ गरुडने गालवसे कहा– अब तुम्हें इसके लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण नहीं होगा ॥ ३ ॥

पुरा हि कन्यकुब्जे वै गाधेः सत्यवतीं सुताम् ।
भार्यार्थेऽवरयत्कन्यामृचीकस्तेन भाषितः ॥ ४ ॥

पूर्वकालकी बात है, कान्यकुब्जमें राजा गाधिकी कुमारी पुत्री सत्यवतीको अपनी पत्नी बनानेके लिये ऋचीक मुनिने राजासे उसे माँगा । तब राजाने ऋचीकसे कहा ॥ ४ ॥

एकतःश्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
भगवन्दीयतां मह्यं सहस्रमिति गालव ॥ ५ ॥

भगवन् ! मुझे कन्याके शुल्करूपमें एक हजार ऐसे घोडे दीजिये, जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान हों तथा एक ओरसे उनके कान श्याम रंगके हों ॥ ५ ॥

ऋचीकस्तु तथेत्युक्त्वा वरुणस्यालयं गतः ।
अश्वतीर्थे हयाँल्लब्ध्वा दत्तवान्पार्थिवाय वै ॥ ६ ॥

गालव ! तब ऋचीक मुनि 'तथास्तु' कहकर वरुणके लोकमें गये और वहां अश्वतीर्थमें वैसे घोडे प्राप्त करके उन्होंने राजा गाधिको दे दिये ॥ ६ ॥

इष्ट्वा ते पुण्डरीकेण दत्ता राज्ञा द्विजातिषु ।
तेभ्यो द्वे द्वे शते क्रीत्वा प्राप्तास्ते पार्थिवैस्तदा ॥ ७ ॥

राजाने पुण्डरीक नामक यज्ञ करके वे सभी घोडे ब्राह्मणोंको दक्षिणारूपमें बांट दिये । तदनन्तर राजाओंने उनसे दो दो सौ घोडे खरीदकर अपने पास रख लिये ॥ ७ ॥

अपराण्यपि चत्वारि शतानि द्विजसत्तम ।
नीयमानानि संतारे हृतान्यासन्वितस्तया
एवं न शक्यमप्राप्यं प्राप्तुं गालव कर्हिचित् ॥ ८ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! मार्गमें एक जगह नदीको पार करना पडा । इन छः सौ घोडोंके साथ चार सौ और थे । नदी पार करनेके लिये ले जाते समय वे चार सौ घोडे वितस्ता झेलमकी प्रखर धारामें बह गये । गालव ! इस प्रकार इस देशमें इन छः सौ घोडोंके सिवा दूसरे घोडे अप्राप्य हैं । अतः उन्हें कहीं भी पाना असम्भव है ॥ ८ ॥

इमामश्वशताभ्यां वै द्वाभ्यां तस्मै निवेदय ।
विश्वामित्राय धर्मात्मन्षड्भिरश्वशतैः सह ।
ततोऽसि गतसम्मोहः कृतकृत्यो द्विजर्षभ ॥ ९ ॥

मेरी राय यह है कि शेष दो सौ घोडोंके बदले यह कन्या ही विश्वामित्रको समर्पित कर दो । धर्मात्मन् ! इन छः सौ घोडोंके साथ विश्वामित्रकी सेवामें इस कन्याको ही दे दो । द्विजश्रेष्ठ ! ऐसा करनेसे तुम्हारी सारी घबराहट दूर हो जायगी और तुम सर्वथा कृतकृत्य हो जाओगे ॥ ९ ॥

गालवस्तं तथेत्युक्त्वा सुपर्णसहितस्ततः ।
आदायाश्वांश्च कन्यां च विश्वामित्रमुपागमत् ॥ १० ॥

तब बहुत अच्छा कहकर गालव गरुडके साथ वे छः सौ घोडे और वह कन्या लेकर विश्वामित्रके पास आये ॥ १० ॥

गालव उवाच

अश्वानां काङ्क्षितार्थानां षडिमानि शतानि वै ।
शतद्वयेन कन्येयं भवता प्रतिगृह्यताम् ॥ ११ ॥

आकर गालवने कहा—गुरुदेव ! आप जैसे चाहते थे वैसे ही ये छः सौ घोडे आपकी सेवामें प्रस्तुत हैं और शेष दो सौके बदले आप इस कन्याको ग्रहण करें ॥ ११ ॥

अस्यां राजर्षिभिः पुत्रा जाता वै धार्मिकास्त्रयः ।
चतुर्थं जनयत्वेकं भवानपि नरोत्तम ॥ १२ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! राजर्षियोंने इसके गर्भसे तीन धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किये हैं। अब आप भी एक पुत्र उत्पन्न कीजिये, जिसकी संख्या चौथी होगी ॥ १२ ॥

पूर्णान्येवं शतान्यष्टौ तुरगाणां भवन्तु ते ।
भवतो ह्यनृणो भूत्वा तपः कुर्यां यथासुखम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार आपके आठ सौ घोडोंकी संख्या पूरी हो जाये और मैं आपसे उऋण होकर सुखपूर्वक तपस्या करूँ, ऐसी कृपा कीजिये ॥ १३ ॥

नारद उवाच

विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा गालवं सह पक्षिणा ।
कन्यां च तां वरारोहामिदमित्यब्रवीद्वचः ॥ १४ ॥

नारद बोले— विश्वामित्रने गरुडसहित गालवकी ओर देखकर इस परम सुन्दरी कन्यापर भी दृष्टिपात किया और इस प्रकार कहा— ॥ १४ ॥

किमियं पूर्वमेवेह न दत्ता मम गालव ।
पुत्रा ममैव चत्वारो भवेयुः कुलभावनाः ॥ १५ ॥

गालव ! तुमने पहले ही इसे यहीं क्यों नहीं दे दिया, जिससे मुझे ही वंशप्रवर्तक चार पुत्र प्राप्त हो जाते ॥ १५ ॥

प्रतिगृह्णामि ते कन्यामेकपुत्रफलाय वै ।
अश्वाश्चाश्रममासाद्य तिष्ठन्तु मम सर्वशः ॥ १६ ॥

अच्छा, अब मैं एक पुत्ररूपी फलकी प्राप्तिके लिये तुमसे इस कन्याको ग्रहण करता हूँ। ये घोडे मेरे आश्रममें आकर सब ओर चरें ॥ १६ ॥

स तया रममाणोऽथ विश्वामित्रो महाद्युतिः ।
आत्मजं जनयामास माधवीपुत्रमष्टकम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार महातेजस्वी विश्वामित्र मुनिने उसके साथ रमण करते हुए यथासमय उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न किया। माधवीके उस पुत्रका नाम अष्टक था ॥ १७ ॥

जातमात्रं सुतं तं च विश्वामित्रो महाद्युतिः ।
संयोजयार्थैस्तथा धर्मैरश्वैस्तैः समयोजयत् ॥ १८ ॥

पुत्रके उत्पन्न होते ही महातेजस्वी विश्वामित्रने उसे धर्म, अर्थ तथा उन अश्वोंसे सम्पन्न कर दिया ॥ १८ ॥

अथाष्टकः पुरं प्रायात्तदा सोमपुरप्रभम् ।
निर्यात्य कन्यां शिष्याय कौशिकोऽपि वनं ययौ ॥ १९ ॥

तदनन्तर अष्टक चन्द्रपुरीके समान प्रकाशित होनेवाली विश्वामित्रकी राजधानीमें गया और विश्वामित्र भी अपने शिष्य गालवको वह कन्या लौटाकर वनमें चले गये ॥ १९ ॥

गालवोऽपि सुपर्णेन सह निर्यात्य दक्षिणाम् ।
मनसाभिप्रतीतेन कन्यामिदमुवाच ह ॥ २० ॥

गरुडसहित गालव भी गुरुदक्षिणा देकर मन ही मन अत्यन्त संतुष्ट हो राजकन्या माधवीसे इस प्रकार बोले ॥ २० ॥

जातो दानपतिः पुत्रस्त्वया शूरस्तथापरः ।
सत्यधर्मरतश्चान्यो यज्वा चापि तथापरः ॥ २१ ॥

सुन्दरी ! तुम्हारा पहला पुत्र दानपति, दूसरा शूरवीर, तीसरा सत्यधर्मपरायण और चौथा यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला होगा ॥ २१ ॥

तदागच्छ वरारोहे तारितस्ते पिता सुतैः ।
चत्वारश्चैव राजानस्तथाहं च सुमध्यमे ॥ २२ ॥

सुमध्यमे ! तुमने इन पुत्रोंके द्वारा अपने पिताको तो तारा ही है, उन चार राजाओंका भी उद्धार कर दिया है । अतः अब हमारे साथ आओ ॥ २२ ॥

गालवस्त्वभ्यनुज्ञाय सुपर्णं पन्नगाशनम् ।
पितुर्निर्यात्य तां कन्यां प्रययौ वनमेव ह ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ ३६७४ ॥

ऐसा कहकर सर्पभोजी गरुडसे आज्ञा ले उस राजकन्याको पुनः उसके पिता ययातिके यहाँ लौटाकर गालव वनमें ही चले गये ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ ११७ ॥ ३६७४ ॥

: ११८ :

नारद उवाच

स तु राजा पुनस्तस्याः कर्तुकामः स्वयंवरम् ।
उपगम्याश्रमपदं गङ्गायमुनसंगमे ॥ १ ॥

नारद बोले–तदनन्तर राजा ययाति पुनः माधवीके स्वयंवरका विचार करके गङ्गा यमुनाके संगमपर बने हुए अपने आश्रममें जाकर रहने लगे ॥ १ ॥

गृहीतमाल्यदामां तां रथमारोप्य माधवीम् ।
पूरुर्यदुश्च भगिनीमाश्रमे पर्यधावताम् ॥ २ ॥

फिर हाथमें हार लिये बहिन माधवीको रथपर बिठाकर पूरु और यदु ये दोनों भाई आश्रमपर गये ॥ २ ॥

नागयक्षमनुष्याणां पतत्रिमृगपक्षिणाम् ।
शैलद्रुमवनौकानामासीत्तत्र समागमः ॥ ३ ॥

उस स्वयंवरमें नाग, यक्ष, मनुष्य, गन्धर्व, पशु, पक्षी तथा पर्वत, वृक्ष और वनोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंका शुभागमन हुआ ॥ ३ ॥

नानापुरुषदेशानामीश्वरैश्च समाकुलम् ।
ऋषिभिर्ब्रह्मकल्पैश्च समन्तादावृतं वनम् ॥ ४ ॥

प्रयागका वह वन अनेक जनपदोंके राजाओंसे व्याप्त हो गया और ब्रह्माके समान तेजस्वी ब्रह्मर्षियोंने उस स्थानको सब ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

निर्दिश्यमानेषु तु सा वरेषु वरवर्णिनी ।
वरानुत्क्रम्य सर्वांस्तान्वरं वृतवती वनम् ॥ ५ ॥

उस समय जब माधवीको वहाँ आये हुए वरोंका परिचय दिया जाने लगा, तब उस वरवर्णिनी कन्याने सारे वरोंको छोडकर तपोवनका ही वररूपमें वरण कर लिया ॥ ५ ॥

अवतीर्य रथात्कन्या नमस्कृत्वा च बन्धुषु ।
उपगम्य वनं पुण्यं तपस्तेपे ययातिजा ॥ ६ ॥

ययातिनन्दिनी कुमारी माधवी रथसे उतरकर अपने पिता, भाई, बन्धु आदि कुटुम्बियोंको नमस्कार करके पुण्य तपोवनमें चली गयी और वहाँ तपस्या करने लगी ॥ ६ ॥

उपवासैश्च विविधैर्दीक्षाभिर्नियमैस्तथा ।
आत्मनो लघुतां कृत्वा बभूव मृगचारिणी ॥ ७ ॥

वह उपवासपूर्वक विविध प्रकारकी दीक्षाओं तथा नियमोंका पालन करती हुई अपने मनको रागद्वेषादि दोषोंसे रहित करके वनमें मृगीके समान विचरने लगी ॥ ७ ॥

वैडूर्याङ्कुरकल्पानि मृदूनि हरितानि च ।
चरन्ती शष्पमुख्यानि तिक्तानि मधुराणि च ॥ ८ ॥

इस क्रमसे माधवी वैडूर्यमणिके अङ्कुरोंके समान सुशोभित, चिकनी, तिक्त, मधुर एवं हरी हरी घास चरती ॥ ८ ॥

स्रवन्तीनां च पुण्यानां सुरसानि शुचीनि च ।
पिबन्ती वारिमुख्यानि शीतानि विमलानि च ॥ ९ ॥

पवित्र नदियोंके शुद्ध, शीतल, निर्मल एवं सुस्वादु जल पीती ॥ ९ ॥

वनेषु मृगराजेषु सिंहविप्रोषितेषु च ।
दावाग्निविप्रमुक्तेषु शून्येषु गहनेषु च ॥ १० ॥

और मृगराज सिंहोंसे रहित एवं दावानलशून्य निर्जन घने वनोंमें ॥ १० ॥

चरन्ती हरिणैः सार्धं मृगीव वनचारिणी ।
चचार विपुलं धर्मं ब्रह्मचर्येण संवृता ॥ ११ ॥

मृगोंके साथ वनचारिणी मृगीकी भाँति विचरण करती थी। ब्रह्मचर्य पालन करनेवाली उसने महान् धर्मका आचरण किया ॥ ११ ॥

ययातिरपि पूर्वेषां राज्ञां वृत्तमनुष्ठितः ।
बहुवर्षसहस्रायुरयुजत्कालधर्मणा ॥ १२ ॥

राजा ययाति भी पूर्ववर्ती राजाओंके सदाचारका पालन करते हुए अनेक सहस्र वर्षोंकी आयु पूरी करके मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

पूरुर्यदुश्च द्वौ वंशौ वर्धमानौ नरोत्तमौ ।
ताभ्यां प्रतिष्ठितो लोके परलोके च नाहुषः ॥ १३ ॥

उनके पुत्रोंमेंसे दो पुत्र नरश्रेष्ठ पूरु और यदु उस कुलमें अभ्युदयशील थे। उन्हीं दोनोंसे नहुषपुत्र ययाति इस लोक और परलोकमें भी प्रतिष्ठित हुए ॥ १३ ॥

महीयते नरपतिर्ययातिः स्वर्गमास्थितः ।
महर्षिकल्पो नृपतिः स्वर्गाग्र्यफलभुग्विभुः ॥ १४ ॥

राजन्! महाराज ययाति महर्षियोंके समान पुण्यात्मा एवं तपस्वी थे। वे स्वर्गमें जाकर वहाँके श्रेष्ठ फलका उपभोग करने लगे ॥ १४ ॥

बहुवर्षसहस्राख्ये काले बहुगुणे गते ।
राजर्षिषु निषण्णेषु महीयःसु महर्षिषु ॥ १५ ॥

इस प्रकार वहाँ अनेक गुणोंसे युक्त कई हजार वर्षोंका समय व्यतीत हो गया। ययातिका चित्त अपना स्वर्गीय वैभव देखकर स्वयं ही आश्चर्यचकित हो उठा ॥ १५ ॥

अवमेने नरान्सर्वान्देवानृषिगणांस्तथा ।
ययातिर्मूढविज्ञानो विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १६ ॥

उनकी बुद्धिपर मोह छा गया और वे महान् समृद्धिशाली महत्तम राजर्षियोंके अपने समीप बैठे होनेपर भी सम्पूर्ण देवताओं, मनुष्यों तथा महर्षियोंकी भी अवहेलना करने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तं बुबुधे देवः शक्रो बलनिषूदनः ।
ते च राजर्षयः सर्वे धिग्धिगित्येवमब्रुवन् ॥ १७ ॥

तदनन्तर बलसूदन इन्द्रदेवको ययातिकी इस अवस्थाका पता लग गया । वे सम्पूर्ण राजर्षिगण भी उस समय ययातिको धिक्कारने लगे ॥ १७ ॥

विचारश्च समुत्पन्नो निरीक्ष्य नहुषात्मजम् ।
को न्वयं कस्य वा राज्ञः कथं वा स्वर्गमागतः ॥ १८ ॥

नहुषपुत्र ययातिको देखकर स्वर्गवासियोंमें यह विचार खडा हो गया—यह कौन है ? किस राजाका पुत्र है ? और कैसे स्वर्गमें आ गया है ? ॥ १८ ॥

कर्मणा केन सिद्धोऽयं क्व वानेन तपश्चितम् ।
कथं वा ज्ञायते स्वर्गे केन वा ज्ञायतेऽप्युत ॥ १९ ॥

इसे किस कर्मसे सिद्धि प्राप्त हुई है ? इसने कहाँ तपस्या की है ? स्वर्गमें किस प्रकार इसे जाना जाये अथवा कौन यहाँ इसको जानता है ? ॥ १९ ॥

एवं विचारयन्तस्ते राजानं स्वर्गवासिनः ।
दृष्ट्वा पप्रच्छुरन्योन्यं ययातिं नृपतिं प्रति ॥ २० ॥

इस प्रकार विचार करते हुए स्वर्गवासी ययातिके विषयमें एक दूसरेकी ओर देखकर प्रश्न करने लगे ॥ २० ॥

विमानपालाः शतशः स्वर्गद्वाराभिरक्षिणः ।
पृष्टा आसनपालाश्च न जानीमेत्यथाब्रुवन् ॥ २१ ॥

सैंकडों विमानरक्षकों, स्वर्गके द्वारपालों तथा सिंहासनके रक्षकोंसे पूछा गया; किंतु सबने यही उत्तर दिया— हम इन्हें नहीं जानते ॥ २१ ॥

सर्वे ते ह्यावृतज्ञाना नाभ्यजानन्त तं नृपम् ।
स मुहूर्तादथ नृपो हतौजा अभवत्तदा ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ ३६९६ ॥

उन सबके ज्ञानपर पर्दा पड गया था; अतः वे उन राजाको नहीं पहचान सके । फिर तो दो ही घडीमें राजा ययातिका तेज नष्ट हो गया ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११८ ॥ ३६९६ ॥

: ११९ :

नारद उवाच

अथ प्रचलितः स्थानादासनाच्च परिच्युतः ।
कम्पितेनैव मनसा धर्षितः शोकवह्निना ॥ १ ॥

नारद बोले– राजन् ! तत्पश्चात् ययाति अपने सिंहासनसे गिरकर उस स्वर्गीय स्थानसे भी विचलित हो गये । उनका हृदय काँप सा उठा और शोकाग्नि उन्हें दग्ध करने लगी ॥१॥

म्लानस्रग्भ्रष्टविज्ञानः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ।
विघूर्णन्स्रस्तसर्वाङ्गः प्रभ्रष्टाभरणाम्बरः ॥ २ ॥

उन्होंने जो दिव्य कुसुमोंकी माला पहन रक्खी थी, वह मुरझा गयी । उनकी ज्ञानशक्ति लुप्त होने लगी । मुकुट और बाजूबन्द शरीरसे अलग हो गये । उन्हें चक्कर आने लगा । उनके सारे अङ्ग शिथिल हो गये और वस्त्र तथा आभूषण भी खिसक खिसककर गिरने लगे ॥ २ ॥

अदृश्यमानस्तान्पश्यन्नपश्यंश्च पुनः पुनः ।
शून्यः शून्येन मनसा प्रपतिष्यन्महीतलम् ॥ ३ ॥

वे अन्धकारसे आवृत होनेके कारण स्वयं स्वर्गवासियोंको नहीं दिखायी देते थे; परंतु वे उन्हें बार बार देखते और कभी नहीं भी देख पाते थे । पृथ्वीपर गिरनेसे पहले शून्यसे होकर शून्य हृदयसे राजा यह चिन्ता करने लगे ॥ ३ ॥

किं मया मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् ।
येनाहं चलितः स्थानादिति राजा व्यचिन्तयत् ॥ ४ ॥

कि मैंने कहीं अपने मनसे किस धर्मदूषक अशुभ वस्तुका चिन्तन तो नहीं किया है, जिसके कारण मुझे अपने स्थानसे भ्रष्ट होना पडा ॥ ४ ॥

ते तु तत्रैव राजानः सिद्धाश्चाप्सरसस्तथा ।
अपश्यन्त निरालम्बं ययातिं तं परिच्युतम् ॥ ५ ॥

स्वर्गके राजर्षि, सिद्ध और अप्सरा सभीने स्वर्गसे भ्रष्ट हो अवलम्बशून्य हुए राजा ययातिको देखा ॥ ५ ॥

अथैत्य पुरुषः कश्चित्क्षीणपुण्यनिपातकः ।
ययातिमब्रवीद्राजन्देवराजस्य शासनात् ॥ ६ ॥

राजन् ! इतनेमें ही पुण्यरहित पुरुषोंको स्वर्गसे नीचे गिरानेवाला कोई पुरुष देवराजकी आज्ञासे वहाँ आकर ययातिसे इस प्रकार बोला ॥ ६ ॥

अतीव मदमत्तस्त्वं न कंचिन्नावमन्यसे ।
मानेन भ्रष्टः स्वर्गस्ते नार्हस्त्वं पार्थिवात्मज ।
न च प्रज्ञायसे गच्छ पतस्वेति तमब्रवीत् ॥ ७ ॥

राजपुत्र ! तुम अत्यन्त मदमत्त हो और कोई भी ऐसा महान् पुरुष यहाँ नहीं है, जिसका तुम तिरस्कार न करते हो । इस मानके कारण ही तुम अपने स्थानसे गिर रहे हो। अब तुम यहाँ रहनेके योग्य नहीं हो । तुम्हें यहाँ कोई नहीं जानता है; अतः जाओ, नीचे गिरो ॥ ७ ॥

पतेयं सत्स्विति वचस्त्रिरुक्त्वा नहुषात्मजः ।
पतिष्यंश्चिन्तयामास गतिं गतिमतां वरः ॥ ८ ॥

जब उसने ऐसा कहा, तब नहुषपुत्र ययाति तीन बार ऐसा कहकर नीचे जाने लगे कि मैं सत्पुरुषोंके बीचमें गिरूं । जङ्गम प्राणियोंमें श्रेष्ठ ययाति गिरते समय अपनी गतिके विषयमें चिन्ता कर रहे थे ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु नैमिषे पार्थिवर्षभान् ।
चतुरोऽपश्यत नृपस्तेषां मध्ये पपात सः ॥ ९ ॥

इसी समय उन्होंने नैमिषारण्यमें चार श्रेष्ठ राजाओंको देखा और उन्हींके बीचमें वे गिरने लगे ॥ ९ ॥

प्रतर्दनो वसुमनाः शिबिरौशीनरोऽष्टकः ।
वाजपेयेन यज्ञेन तर्पयन्ति सुरेश्वरम् ॥ १० ॥

वहाँ प्रतर्दन, वसुमना, औशीनर शिबि तथा अष्टक ये चार नरेश वाजपेययज्ञके द्वारा देवेश्वर श्रीहरिको तृप्त कर रहे थे ॥ १० ॥

तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ।
ययातिरुपजिघ्रन्वै निपपात महीं प्रति ॥ ११ ॥

उनके यज्ञका धूम मानो स्वर्गका द्वार बनकर उपस्थित हुआ था । ययाति उसीको सूंघते हुए पृथ्वीकी ओर गिर रहे थे ॥ ११ ॥

भूमौ स्वर्गे च सम्बद्धां नदीं धूममयीं नृपः ।
सगङ्गामिव गच्छन्तीमालम्ब्य जगतीपतिः ॥ १२ ॥

भूतलसे स्वर्गतक धूममयी नदी सी प्रवाहित हो रही थी, मानो आकाशगङ्गा भूमिपर जा रही हो । भूपाल ययाति उसी धूमलेखाका अवलम्बन करके ॥ १२ ॥

श्रीमत्स्ववभृथाग्र्येषु चतुर्षु प्रतिबन्धुषु।
मध्ये निपतितो राजा लोकपालोपमेषु च ॥ १३ ॥

लोकपालोंके समान तेजस्वी तथा अवभृथ स्नानसे पवित्र अपने चारों सम्बन्धियोंके बीचमें गिरे ॥ १३ ॥

चतुर्षु हुतकल्पेषु राजसिंहमहाग्निषु ।
पपात मध्ये राजर्षिर्ययातिः पुण्यसंक्षये ॥ १४ ॥

वे चारों श्रेष्ठ राजा उन चार विशाल अग्नियोंके समान तेजस्वी थे, जो हविष्यकी आहुति पाकर प्रज्ज्वलित हो रहे हों । राजर्षि ययाति अपना पुण्य क्षीण होनेपर उन्हींके मध्यभागमें गिरे ॥ १४ ॥

तमाहुः पार्थिवाः सर्वे प्रतिमानमिव श्रियः ।
को भवान्कस्य वा बन्धुर्देशस्य नगरस्य वा ॥ १५ ॥

अपनी दिव्य कान्तिसे उद्भासित होनेवाले उन महाराजसे सभी भूपालोंने पूछा— आप कौन हैं ? किसके भाई बन्धु हैं तथा किस देश और नगरमें आपका निवासस्थान है ? ॥१५॥

यक्षो वाप्यथ वा देवो गन्धर्वो राक्षसोऽपि वा ।
न हि मानुषरूपोऽसि को वार्थः काङ्क्षितस्त्वया ॥ १६ ॥

आप यक्ष हैं या देवता ? गन्धर्व हैं या राक्षस ? आपका स्वरूप मनुष्यों जैसा नहीं है । बताइये, आप कौनसा प्रयोजन सिद्ध करना चाहते हैं ॥ १६ ॥

ययातिरुवाच

ययातिरस्मि राजर्षिः क्षीणपुण्यश्च्युतो दिवः ।
पतेयं सत्स्विति ध्यायन्भवत्सु पतितस्ततः ॥ १७ ॥

ययाति बोले— मैं राजर्षि ययाति हूं । अपना पुण्य क्षीण होनेके कारण स्वर्गसे नीचे गिर गया हूं । गिरते समय मेरे मनमें यह चिन्तन चल रहा था कि मैं सत्पुरुषोंके बीचमें गिरूं । अतः आपलोगोंके बीचमें आ पडा हूं ॥ १७ ॥

राजान ऊचुः

सत्यमेतद्भवतु ते काङ्क्षितं पुरुषर्षभ ।
सर्वेषां नः क्रतुफलं धर्मश्च प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥

राजा बोले— पुरुषशिरोमणे ! आपका यह मनोरथ सफल हो । आप हम सब लोगोंके यज्ञोंका फल और धर्म ग्रहण करें ॥ १८ ॥

ययातिरुवाच

नाहं प्रतिग्रहधनो ब्राह्मणः क्षत्रियो ह्यहम् ।
न च मे प्रवणा बुद्धिः परपुण्यविनाशने　　॥ १९ ॥

ययाति बोले— प्रतिग्रह ही जिसका धन है, वह ब्राह्मण मैं नहीं हूं । मैं तो क्षत्रिय हूं । अतः मेरी बुद्धि पराये पुण्यका ग्रहण करके उनका पुण्यक्षय करनेके लिये उद्यत नहीं है ॥ १९ ॥

नारद उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु मृगचर्यात्क्रमागताम् ।
माधवीं प्रेक्ष्य राजानस्तेऽभिवाद्येदमब्रुवन्　　॥ २० ॥

नारद बोले— इसी समय उन राजाओंने माधवीको देखा, जो मृगोंकी भांति उन्हींके साथ विचरती हुई क्रमशः वहां आ पहुंची थी । उसे प्रणाम करके राजाओंने इस प्रकार पूछा— ॥ २० ॥

किमागमनकृत्यं ते किं कुर्मः शासनं तव ।
आज्ञाप्या हि वयं सर्वे तव पुत्रास्तपोधने　　॥ २१ ॥

तपोधने ! यहां आपके पधारनेका क्या प्रयोजन है ? हम आपकी किस आज्ञाका पालन करें ? हम सभी आपके पुत्र हैं; अतः हमें आप योग्य सेवाके लिये आज्ञा प्रदान करें ॥२१॥

तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा माधवी परया मुदा ।
पितरं समुपागच्छद्ययातिं सा ववन्द च　　॥ २२ ॥

उनकी ये बातें सुनकर बडी प्रसन्नतासे माधवी अपने पिता ययातिके पास गयी और उसने उन्हें प्रणाम किया ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा मूर्ध्ना नतान्पुत्रांस्तापसी वाक्यमब्रवीत् ।
दौहित्रास्तव राजेन्द्र मम पुत्रा न ते पराः ।
इमे त्वां तारयिष्यन्ति दिष्टमेतत्पुरातनम्　　॥ २३ ॥

तदनन्तर तपस्विनी माधवीने उन पुत्रोंके सिरपर हाथ रखकर अपने पितासे कहा— राजेन्द्र ! ये सभी आपके दौहित्र अर्थात् नाती और मेरे पुत्र हैं, पराये नहीं हैं, ये आपको तार देंगे । दौहित्रोंके द्वारा मातामह—नानाका यह उद्धार पुरातन वेदशास्त्रमें स्पष्ट देखा गया है ॥२३॥

अहं ते दुहिता राजन्माधवी मृगचारिणी।
मयाप्युपचितो धर्मस्ततोऽर्धं प्रतिगृह्यताम् ॥ २४ ॥

राजन्! इस तपोवनमें मृगोंके समान जीवनचर्या बनाकर विचरनेवाली मैं आपकी पुत्री माधवी हूँ। पृथ्वीनाथ! मैंने भी महान् धर्मका संचय किया है। उसका आधा भाग आप ग्रहण करें ॥ २४ ॥

यस्माद्राजन्नराः सर्वे अपत्यफलभागिनः।
तस्मादिच्छन्ति दौहित्रान्यथा त्वं वसुधाधिप ॥ २५ ॥

राजन्! सब मनुष्य अपनी संतानोंके किये हुए सत्कर्मोंके फलके भागी होते हैं। इसीलिये वे दौहित्रोंकी इच्छा करते हैं, जैसे आपने की थी ॥ २५ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा।
अभिवाद्य नमस्कृत्य मातामहमथाब्रुवन् ॥ २६ ॥
उच्चैरनुपमैः स्निग्धैः स्वरैरापूर्य मेदिनीम्।
मातामहं नृपतयस्तारयन्तो दिवश्च्युतम् ॥ २७ ॥

तब उन सभी राजाओंने अपनी माताके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और स्वर्गभ्रष्ट नानाको भी नमस्कार करके अपने उच्च, अनुपम और स्नेहपूर्ण स्वरसे पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए उन्हें तारनेके उद्देश्यसे उनसे कुछ कहनेका विचार किया ॥ २६–२७ ॥

अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम्।
तपसो मेऽष्टभागेन स्वर्गमारोहतां भवान् ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ ३७२४ ॥

इसी बीचमें उस वनसे गालव मुनि भी वहाँ आ पहुंचे तथा राजासे इस प्रकार बोले—महाराज! आप मेरी तपस्याका आठवां भाग लेकर उसके बलसे स्वर्गलोकमें पहुंच जायं ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ ११९ ॥ ३७२४ ॥

: १२० :

नारद उवाच

प्रत्यभिज्ञातमात्रोऽथ सद्भिस्तैर्नरपुङ्गवः ।
ययातिर्दिव्यसंस्थानो बभूव विगतज्वरः ॥ १ ॥

नारद बोले– उन सत्पुरुषोंके द्वारा पहचाने जानेमात्रसे नरश्रेष्ठ राजा ययातिकी आकृति दिव्य हो गयी थी । वे शोक और चिन्तासे रहित हो गए ॥ १ ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ।
दिव्यगन्धगुणोपेतो न पृथ्वीमस्पृशत्पदा ॥ २ ॥

उन्होंने दिव्य हार और दिव्य वस्त्र धारण कर लिए । दिव्य आभूषण उनके अङ्गोंकी शोभा बढाने लगे तथा वे दिव्य सुगन्धसे सुवासित होने लगे । वे अपने पैरोंसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं कर रहे थे ॥ २ ॥

ततो वसुमनाः पूर्वमुच्चैरुच्चारयन्वचः ।
ख्यातो दानपतिर्लोके व्याजहार नृपं तदा ॥ ३ ॥

तदनन्तर लोकमें दानपतिके नामसे विख्यात राजा वसुमना पहले उच्च स्वरसे शब्दोंका उच्चारण करते हुए महाराज ययातिसे इस प्रकार बोले ॥ ३ ॥

प्राप्तवानस्मि यल्लोके सर्ववर्णेष्वगर्हया ।
तदप्यथ च दास्यामि तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ४ ॥

मैंने जगत्में सभी वर्णोंकी निन्दासे दूर रहकर जो पुण्य प्राप्त किया है, वह भी आपको दे रहा हूं । आप उस पुण्यसे संयुक्त हों ॥ ४ ॥

यत्फलं दानशीलस्य क्षमाशीलस्य यत्फलम् ।
यच्च मे फलमाधाने तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ५ ॥

दानशील पुरुषको जो पुण्यफल प्राप्त होता है, क्षमाशील मनुष्यको जो फल मिलता है तथा अग्निस्थापन आदि वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानसे मुझे जिस फलकी प्राप्ति होनेवाली है, उन सभी प्रकारके पुण्यफलोंसे आप सम्पन्न हों ॥ ५ ॥

ततः प्रतर्दनोऽप्याह वाक्यं क्षत्रियपुङ्गवः ।
यथा धर्मरतिर्नित्यं नित्यं युद्धपरायणः ॥ ६ ॥

तदनन्तर क्षत्रियशिरोमणि प्रतर्दनने यह बात कही कि मैं जिस प्रकार सदा धर्ममें तत्पर रहा हूँ, सर्वदा न्याययुक्त युद्धमें संलग्न होता आया हूँ ॥ ६ ॥

प्राप्तवानस्मि यल्लोके क्षत्रवंशोद्भवं यशः ।
वीरशब्दफलं चैव तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ७ ॥

तथा संसारमें मैंने जो क्षत्रियवंशके अनुरूप यश एवं वीर शब्दके योग्य पुण्यफलका अर्जन किया है, उससे आप संयुक्त हों ॥ ७ ॥

शिबिरौशीनरो धीमानुवाच मधुरां गिरम् ।
यथा बालेषु नारीषु वैहार्येषु तथैव च ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् उशीनरपुत्र बुद्धिमान् शिबिने मधुर वाणीमें कहा—मैंने बालकोंमें, स्त्रियोंमें, हास-परिहासके योग्य सम्बन्धियोंमें ॥ ८ ॥

संगरेषु निपातेषु तथापद्व्यसनेषु च ।
अनृतं नोक्तपूर्वं मे तेन सत्येन खं व्रज ॥ ९ ॥

युद्धमें, आपत्तियोंमें तथा संकटोंमें भी पहले कभी असत्यभाषण नहीं किया है। उस सत्यके प्रभावसे आप स्वर्गलोकमें जाइये ॥ ९ ॥

यथा प्राणांश्च राज्यं च राजन्कर्म सुखानि च ।
त्यजेयं न पुनः सत्यं तेन सत्येन खं व्रज ॥ १० ॥

राजन् ! मैं अपने प्राण, राज्य एवं मनोवाञ्छित सुखभोगको भी त्याग सकता हूँ, परंतु सत्यको नहीं छोड सकता। उस सत्यके प्रभावसे आप स्वर्गलोकमें जाइये ॥ १० ॥

यथा सत्येन मे धर्मो यथा सत्येन पावकः ।
प्रीतः शक्रश्च सत्येन तेन सत्येन खं व्रज ॥ ११ ॥

यदि मेरे सत्यसे धर्मदेव संतुष्ट हैं, यदि मेरे सत्यसे अग्निदेव प्रसन्न हैं तथा यदि मेरे सत्य-भाषणसे देवराज इन्द्र भी तृप्त हुए हैं तो उस सत्यके प्रभावसे आप स्वर्गलोकमें जाइये ॥ ११ ॥

अष्टकस्त्वथ राजर्षिः कौशिको माधवीसुतः ।
अनेकशतयज्वानं वचनं प्राह धर्मवित् ॥ १२ ॥

इसके बाद माधवीके छोटे पुत्र कुशिकवंशी धर्मज्ञ राजर्षि अष्टकने कई सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले ययातिके पास जाकर यह कहा ॥ १२ ॥

शतशः पुण्डरीका मे गोसवाश्च चिताः प्रभो ।
क्रतवो वाजपेयाश्च तेषां फलमवाप्नुहि ॥ १३ ॥

प्रभो ! मैंने सैकडों पुण्डरीक, गोसव तथा वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। आप उन सबका फल प्राप्त करें ॥ १३ ॥

न मे रत्नानि न धनं न तथान्ये परिच्छदाः ।
क्रतुष्वनुपयुक्तानि तेन सत्येन खं व्रज ॥ १४ ॥

मेरे पास कोई भी रत्न, धन अथवा अन्य सामग्री ऐसी नहीं है, जिसका मैंने यज्ञोंमें उपयोग न किया हो । इस सत्य–कर्मके प्रभावसे आप स्वर्गलोकमें जाइये ॥ १४ ॥

यथा यथा हि जल्पन्ति दौहित्रास्तं नराधिपम् ।
तथा तथा वसुमतीं त्यक्त्वा राजा दिवं ययौ ॥ १५ ॥

ययातिके दौहित्र जैसे-जैसे उनके प्रति उपर्युक्त बातें कहते थे, वैसे-ही-वैसे वे महाराज इस भूतलको छोडते हुए स्वर्गलोककी ओर बढते चले गये ॥ १५ ॥

एवं सर्वे समस्तास्ते राजानः सुकृतैस्तदा ।
ययातिं स्वर्गतो भ्रष्टं तारयामासुरञ्जसा ॥ १६ ॥

इस प्रकार अपने सम्पूर्ण सत्कर्मोंके द्वारा उन सब राजाओंने स्वर्गसे गिरे हुए राजा ययातिको अनायास ही तार दिया ॥ १६ ॥

दौहित्राः स्वेन धर्मेण यज्ञदानकृतेन वै ।
चतुर्षु राजवंशेषु सम्भूताः कुलवर्धनाः ।
मातामहं महाप्राज्ञं दिवमारोपयन्त ते ॥ १७ ॥

अपने वंशकी वृद्धि करनेवाले ययातिके वे चारों दौहित्र चार राजवंशोंमें उत्पन्न हुए थे । उन्होंने अपने यज्ञ-दानादिजनित धर्मसे उन महाप्राज्ञ मातामह ययातिको स्वर्गलोकमें पहुंचा दिया ॥ १७ ॥

राजान ऊचुः

राजधर्मगुणोपेताः सर्वधर्मगुणान्विताः ।
दौहित्रास्ते वयं राजन्दिवमारोह पार्थिव ॥ १८ ॥

॥ इति श्री महाभारते उद्योगपर्वणि विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ ३७४२ ॥

राजा बोले–राजन् ! पृथ्वीपते ! हम राजधर्म तथा राजोचित गुणोंसे युक्त, सम्पूर्ण धर्मों तथा समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न आपके दौहित्र हैं । आप हमारे पुण्य लेकर स्वर्गलोकपर आरूढ होइये ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२० ॥ ३७४२ ॥

१२१

नारद उवाच

सद्भिरारोपितः स्वर्गं पार्थिवैर्भूरिदक्षिणैः ।
अभ्यनुज्ञाय दौहित्रान्ययातिर्दिवमास्थितः ॥ १ ॥

नारद बोले– प्रचुर दक्षिणा देनेवाले उन श्रेष्ठ राजाओंने राजा ययातिको स्वर्गपर चढा दिया। राजा ययाति अपने उन दौहित्रोंको विदा देकर स्वर्गलोकमें जा पहुँचे ॥ १ ॥

अभिवृष्टश्च वर्षेण नानापुष्पसुगन्धिना ।
परिष्वक्तश्च पुण्येन वायुना पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥

वहां उनके ऊपर नाना प्रकारके सुगन्धयुक्त पुष्पोंकी वर्षा हुई। पवित्र सौरभसे सुवासित पावन समीर उनका सब ओरसे आलिङ्गन कर रहा था ॥ २ ॥

अचलं स्थानमारुह्य दौहित्रफलनिर्जितम् ।
कर्मभिः स्वैरुपचितो जज्वाल परया श्रिया ॥ ३ ॥

दौहित्रोंके पुण्यफलसे प्राप्त हुए अविचल स्थानको पाकर अपने सत्कर्मोंसे बढे हुए राजा ययाति उत्कृष्ट शोभासे प्रकाशित होने लगे ॥ ३ ॥

उपगीतोपनृत्तश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
प्रीत्या प्रतिगृहीतश्च स्वर्गे दुन्दुभिनिस्वनैः ॥ ४ ॥

गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदायोंने उनके सुयशका गान करते हुए उनके समीप नृत्य करके उन्हें प्रसन्न किया। स्वर्गलोकमें दुन्दुभि आदि वाद्योंकी गम्भीर ध्वनिके साथ अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनको अपनाया गया ॥ ४ ॥

अभिष्टुतश्च विविधैर्देवराजर्षिचारणैः ।
अर्चितश्चोत्तमार्घेण दैवतैरभिनन्दितः ॥ ५ ॥

नाना प्रकारके देवर्षियों, राजर्षियों तथा चारणोंने उनका स्तवन किया। देवताओंने उत्तम अर्घ्य निवेदन करके उनका पूजन और अभिनन्दन किया ॥ ५ ॥

प्राप्तः स्वर्गफलं चैव तमुवाच पितामहः ।
निर्वृतं शान्तमनसं वचोभिस्तर्पयन्निव ॥ ६ ॥

इस प्रकार ययातिने उत्तम स्वर्गफल पाया तदनन्तर संतुष्ट एवं शान्तचित्त हुए ययातिको अपने मधुर वचनोंद्वारा पूर्णतः तृप्त करते हुए-से पितामह ब्रह्मा उनसे इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥

चतुष्पादस्त्वया धर्मश्चितो लोक्येन कर्मणा।
अक्षयस्तव लोकोऽयं कीर्तिश्चैवाक्षया दिवि।
पुनस्तवाद्य राजर्षे सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ७ ॥

राजन्! तुमने लोकहितकारी सत्कर्मद्वारा चारों चरणोंसे युक्त धर्मका संग्रह किया; अतः तुम्हें यह अक्षय स्वर्गलोक प्राप्त हुआ और स्वर्गमें तुम्हारी क्षीण न होनेवाली कीर्ति फैल गयी। हे राजर्षे! आप फिर तुम्हारे पुण्य कर्मोंसे यह स्वर्ग प्राप्त हुआ है ॥ ७ ॥

आवृतं तमसा चेतः सर्वेषां स्वर्गवासिनाम्।
येन त्वां नाभिजानन्ति ततोऽज्ञात्वासि पातितः ॥ ८ ॥

उस समय समस्त स्वर्गवासियोंका चित्त तमोगुणसे व्याप्त हो गया था, जिससे वे तुम्हें नहीं जानते या नहीं पहचानते थे; अतः सबके लिये अज्ञात होनेके कारण तुम स्वर्गसे नीचे गिरा दिये गये ॥ ८ ॥

प्रीत्यैव चासि दौहित्रैस्तारितस्त्वमिहागतः।
स्थानं च प्रतिपन्नोऽसि कर्मणा स्वेन निर्जितम्।
अचलं शाश्वतं पुण्यमुत्तमं ध्रुवमव्ययम् ॥ ९ ॥

फिर तुम्हारे दौहित्रोंने प्रेमपूर्वक तुम्हें तार दिया है, जिससे तुम पुनः यहां आ गये हो। अब तुमने अपने दौहित्रोंद्वारा प्राप्त कर्मसे जीते हुए अविचल, शाश्वत, पुण्यमय, उत्तम, ध्रुव तथा अविनाशी स्थान प्राप्त किया है ॥ ९ ॥

ययातिरुवाच

भगवन्संशयो मेऽस्ति कश्चित्तं छेत्तुमर्हसि।
न ह्यन्यमहमर्हामि प्रष्टुं लोकपितामह ॥ १० ॥

ययाति बोले— भगवन्! मेरे मनमें कोई संदेह है, जिसका निवारण आप ही कर सकते हैं। लोकपितामह! मैं इस प्रश्नको और किसीके सामने रखना उचित नहीं समझता ॥ १० ॥

बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम्।
अनेकक्रतुदानौघैरर्जितं मे महत्फलम् ॥ ११ ॥

मैंने कई हजार वर्षोंतक अनेकानेक यज्ञों और दानोंके द्वारा जिस महान् पुण्यफलका उपार्जन किया था और जिसे प्रजापालनरूपी धर्मके द्वारा उत्तरोत्तर बढाया था ॥ ११ ॥

कथं तदल्पकालेन क्षीणं येनास्मि पातितः ।
भगवन्वेत्थ लोकांश्च शाश्वतान्मम निर्जितान् ॥ १२ ॥

वह सब थोडे ही समयमें नष्ट कैसे हो गया ? जिससे मैं यहांसे नीचे गिरा दिया गया। भगवन् ! महाद्युते ! मुझे मेरे सत्कर्मोंद्वारा जो सनातन लोक प्राप्त हुए थे, उन्हें आप जानते हैं ॥ १२ ॥

पितामह उवाच

बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्धितम् ।
अनेकक्रतुदानौघैर्यत्त्वयोपार्जितं फलम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मा बोले-- राजेन्द्र ! तुमने कई हजार वर्षोंतक अनेकानेक यज्ञों और दानोंके द्वारा जिस पुण्यफलका उपार्जन किया और प्रजापालनरूपी धर्मके द्वारा जिसे उत्तरोत्तर बढाया ॥ १३ ॥

तदनेनैव दोषेण क्षीणं येनासि पातितः ।
अभिमानेन राजेन्द्र धिक्कृतः स्वर्गवासिभिः ॥ १४ ॥

वह सब इस अभिमानरूपी दोषके कारण ही नष्ट हो गया था, जिससे तुम नीचे गिराये गये। तुम्हारे अभिमानके ही कारण स्वर्गलोकके निवासियोंने तुम्हें धिक्कार दिया था ॥ १४ ॥

नायं मानेन राजर्षे न बलेन न हिंसया ।
न शाठ्येन न मायाभिर्लोको भवति शाश्वतः ॥ १५ ॥

राजर्षे ! वह पुण्यलोक न अभिमानसे, न बलसे, न हिंसासे, न शठतासे और न भांति-भांतिकी मायाओंसे ही सुस्थिर होता है ॥ १५ ॥

नावमान्यास्त्वया राजन्नवरोत्कृष्टमध्यमाः ।
न हि मानप्रदग्धानां कश्चिदस्ति समः क्वचित् ॥ १६ ॥

राजन् ! तुम्हें ऊंचे, नीचे एवं मध्यम वर्गके लोगोंका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। जो लोग अभिमानकी आगमें जल रहे हैं, उनके उस संतापको शान्त करनेका कहीं कोई उपाय नहीं है ॥ १६ ॥

पतनारोहणमिदं कथयिष्यन्ति ये नराः ।
विषमाण्यपि ते प्राप्तास्तरिष्यन्ति न संशयः ॥ १७ ॥

जो मनुष्य तुम्हारे स्वर्गसे गिरने और पुनः आरूढ होनेके इस वृत्तान्तको आपसमें कहें-सुनेंगे, वे संकटमें पडनेपर भी उससे पार हो जायँगे; इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥

नारद उवाच

एष दोषोऽभिमानेन पुरा प्राप्तो ययातिना ।
निर्बन्धतश्चातिमात्रं गालवेन महीपते ॥ १८ ॥

नारद बोले— राजन् ! इस प्रकार पूर्वकालमें राजा ययाति अपने अभिमानके कारण संकटमें पड गये थे और अत्यन्त आग्रह एवं हठके कारण महर्षि गालवको भी महान् क्लेश सहन करना पडा था ॥ १८ ॥

श्रोतव्यं हितकामानां सुहृदां भूतिमिच्छताम् ।
न कर्तव्यो हि निर्बन्धो निर्बन्धो हि क्षयोदयः ॥ १९ ॥

अतः तुम्हें तुम्हारे हितकी इच्छा रखनेवाले सुहृदोंकी बात अवश्य सुननी और माननी चाहिये । दुराग्रह कभी नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह विनाशके पथपर ले जानेवाला है ॥ १९ ॥

तस्मात्त्वमपि गान्धारे मानं क्रोधं च वर्जय ।
संधत्स्व पाण्डवैर्वीर संरम्भं त्यज पार्थिव ॥ २० ॥

अतः, गान्धारीनन्दन ! तुम भी अभिमान और क्रोधको त्याग दो । वीर नरेश ! तुम पाण्डवोंसे संधि कर लो और क्रोधके आवेशको सदाके लिये छोड दो ॥ २० ॥

ददाति यत्पार्थिव यत्करोति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ।
न तस्य नाशोऽस्ति न चापकर्षो नान्यस्तदश्नाति स एव कर्ता ॥ २१ ॥

भूपाल ! मनुष्य जो दान देता है, जो कर्म करता है, जो तपस्यामें प्रवृत्त होता है और जो होम यज्ञ आदिका अनुष्ठान करता है, उसके इस कर्मका न तो नाश होता है और न उसमें कोई कमी ही होती है । उसके कर्मको दूसरा कोई नहीं भोगता । कर्ता स्वयं ही अपने शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है ॥ २१ ॥

इदं महाख्यानमनुत्तमं मतं बहुश्रुतानां गतरोषरागिणाम् ।
समीक्ष्य लोके बहुधा प्रधाविता त्रिवर्गदृष्टिः पृथिवीमुपाश्नुते ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ ३७६४ ॥

यह महत्त्वपूर्ण उपाख्यान उन महापुरुषोंका है, जो अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता तथा रोष और रागसे रहित थे । यह सबके लिये परम उत्तम और हितकर है। लोकमें इसपर नाना प्रकारसे विचार करके निश्चित किये हुए सिद्धान्तको अपना कर धर्म, अर्थ और कामपर दृष्टि रखनेवाला पुरुष इस पृथ्वीका उपभोग करता है ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२१ ॥ ३७६४ ॥

: १२२ :

धृतराष्ट्र उवाच

भगवन्नेवमेवैतद्यथा वदसि नारद ।
इच्छामि चाहमप्येवं न त्वीशो भगवन्नहम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले— भगवन् नारद ! आप जैसा कहते हैं, वह ठीक है । मैं भी यही चाहता हूँ; परंतु मेरा कोई वश नहीं चलता है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा ततः कृष्णमभ्यभाषत भारत ।
स्वर्ग्यं लोक्यं च मामात्थ धर्म्यं न्याय्यं च केशव ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! नारदसे ऐसा कहकर धृतराष्ट्रने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा— केशव ! आपने मुझसे जो बात कही है, इहलोक और स्वर्गलोकमें हितकर, धर्मसम्मत और न्यायसंगत है ॥ २ ॥

न त्वहं स्ववशस्तात क्रियमाणं न मे प्रियम् ।
अङ्ग दुर्योधनं कृष्ण मन्दं शास्त्रातिगं मम ॥ ३ ॥

तात ! जनार्दन ! मैं अपने वशमें नहीं हूँ । जो कुछ किया जा रहा है, वह मुझे प्रिय नहीं है । प्रिय श्रीकृष्ण ! शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले मेरे इस मूर्ख पुत्र दुर्योधनको ॥ ३ ॥

अनुनेतुं महाबाहो यतस्व पुरुषोत्तम ।
सुहृत्कार्यं तु सुमहत्कृतं ते स्याज्जनार्दन ॥ ४ ॥

हे महाबाहो पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! आप ही समझा बुझाकर राहपर लानेका प्रयत्न कीजिये । यदि आप इसे संधिके लिये राजी कर लें तो आपके द्वारा सुहृदोंका यह बहुत बडा कार्य सम्पन्न हो जायेगा ॥ ४ ॥

ततोऽभ्यावृत्य वार्ष्णेयो दुर्योधनममर्षणम् ।
अब्रवीन्मधुरां वाचं सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् ॥ ५ ॥

तब सम्पूर्ण धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले वृष्णिनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अमर्षशील दुर्योधनकी ओर घूमकर मधुर वाणीमें उससे बोले— ॥ ५ ॥

दुर्योधन निबोधेदं मद्वाक्यं कुरुसत्तम ।
शमर्थं ते विशेषेण सानुबन्धस्य भारत ॥ ६ ॥

कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन ! तुम मेरी यह बात सुनो । भारत ! मैं विशेषतः सगेसम्बन्धियोंसहित तुम्हारे कल्याणके लिये ही तुम्हें कुछ परामर्श दे रहा हूं ॥ ६ ॥

महाप्राज्ञ कुले जातः साध्वेतत्कर्तुमर्हसि ।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥ ७ ॥

हे परम बुद्धिमान् दुर्योधन ! तुम महापुरुषोंके कुलमें उत्पन्न हुए हो । स्वयं भी शास्त्रोंके ज्ञान तथा सद्व्यवहारसे सम्पन्न हो । तुममें सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं; अतः तुम्हें मेरी यह अच्छी सलाह अवश्य माननी चाहिये ॥ ७ ॥

दौष्कुलेया दुरात्मानो नृशंसा निरपत्रपाः ।
त एतदीदृशं कुर्युर्यथा त्वं तात मन्यसे ॥ ८ ॥

तात ! जिसे तुम ठीक समझते हो, ऐसा अधम कार्य तो वे लोग करते हैं, जो नीच कुलमें उत्पन्न हुए हैं तथा जो दुष्टचित्त, क्रूर एवं निर्लज्ज हैं ॥ ८ ॥

धर्मार्थयुक्ता लोकेऽस्मिन्प्रवृत्तिर्लक्ष्यते सताम् ।
असतां विपरीता तु लक्ष्यते भरतर्षभ ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस जगत्में सत्पुरुषोंका व्यवहार धर्म और अर्थसे युक्त देखा जाता है और दुष्टोंका बर्ताव ठीक इसके विपरीत दृष्टिगोचर होता है ॥ ९ ॥

विपरीता त्वियं वृत्तिरसकृल्लक्ष्यते त्वयि ।
अधर्मश्चानुबन्धोऽत्र घोरः प्राणहरो महान् ॥ १० ॥

तुम्हारे भीतर यह विपरीत वृत्ति बार बार देखनेमें आती है । भारत ! इस समय तुम्हारा जो दुराग्रह है, वह अधर्ममय ही है । यह भयंकर हठ महान् प्राणनाशक है ॥ १० ॥

अनेकशस्त्वनिमित्तमयशस्यं च भारत ।
तमनर्थं परिहरन्नात्मश्रेयः करिष्यसि ॥ ११ ॥

हे भारत ! यह तुम्हारा हठ बिना कारण और अप्रशंसनीय है । परंतप ! यदि तुम उस अनर्थकारी दुराग्रहको छोड दो तो अपना कल्याण कर सकोगे ॥ ११ ॥

भ्रातॄणामथ भृत्यानां मित्राणां च परंतप ।
अधर्म्यादयशस्याच्च कर्मणस्त्वं प्रमोक्ष्यसे ॥ १२ ॥

साथ ही भाइयों, सेवकों तथा मित्रोंका भी महान् हित साधन करोगे । ऐसा करनेपर तुम्हें अधर्म और अपयशकी प्राप्ति करानेवाले कर्मसे छुटकारा मिल जायेगा ॥ १२ ॥

प्राज्ञैः शूरैर्महोत्साहैरात्मवद्भिर्बहुश्रुतैः ।
संधत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ ॥ १३ ॥

अतः, भरतकुलभूषण पुरुषसिंह ! तुम ज्ञानी, परम उत्साही, शूरवीर, मनस्वी एवं अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ १३ ॥

तद्धितं च प्रियं चैव धृतराष्ट्रस्य धीमतः।
पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य महामतेः ॥ १४ ॥

यही परम बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको भी प्रिय एवं हितकर जान पडता है। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, महामति विदुर ॥ १४ ॥

कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः।
अश्वत्थाम्नो विकर्णस्य संजयस्य विशां पते ॥ १५ ॥

हे प्रजापालक दुर्योधन! कृपाचार्य, सोमदत्त, बुद्धिमान् बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण, संजय ॥ १५ ॥

ज्ञातीनां चैव भूयिष्ठं मित्राणां च परंतप।
शमे शर्म भवेत्तात सर्वस्य जगतस्तथा ॥ १६ ॥

तथा अन्यान्य कुटुम्बीजनों एवं मित्रोंको भी यही अधिक प्रिय है। हे परंतप तात! संधि होनेपर ही सम्पूर्ण जगत्‌का भला हो सकता है ॥ १६ ॥

ह्रीमानसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान्।
तिष्ठ तात पितुः शास्त्रे मातुश्च भरतर्षभ ॥ १७ ॥

तुम श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न, लज्जाशील, शास्त्रज्ञ और क्रूरतासे रहित हो। अतः, भरतश्रेष्ठ! तुम पिता और माताके शासनके अधीन रहो ॥ १७ ॥

एतच्छ्रेयो हि मन्यन्ते पिता यच्छास्ति भारत।
उत्तमापद्गतः सर्वः पितुः स्मरति शासनम् ॥ १८ ॥

भारत! पिता जो कुछ शिक्षा देते हैं, उसीको श्रेष्ठ पुरुष अपने लिये कल्याणकारी मानते हैं। भारी आपत्तिमें पडनेपर सब लोग अपने पिताके उपदेशका ही स्मरण करते हैं ॥१८॥

रोचते ते पितुस्तात पाण्डवैः सह संगमः।
सामात्यस्य कुरुश्रेष्ठ तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥ १९ ॥

तात! मन्त्रियोंसहित तुम्हारे पिताको पाण्डवोंके साथ संधि कर लेना ही अच्छा जान पडता है। कुरुश्रेष्ठ! यही तुम्हें भी पसंद आना चाहिये ॥ १९ ॥

श्रुत्वा यः सुहृदां शास्त्रं मर्त्यो न प्रतिपद्यते।
विपाकान्ते दहत्येनं किम्पाकमिव भक्षितम् ॥ २० ॥

जो मनुष्य सुहृदोंके मुखसे शास्त्रसम्मत उपदेश सुनकर भी उसे स्वीकार नहीं करता है, उसका यह अस्वीकार उसे परिणाममें उसी प्रकार शोकदग्ध करता है, जैसे खाया हुआ इन्द्रायण फल पाचनके अन्तमें दाह उत्पन्न करनेवाला होता है ॥ २० ॥

यस्तु निःश्रेयसं वाक्यं मोहान्न प्रतिपद्यते।
स दीर्घसूत्रो हीनार्थः पश्चात्तापेन युज्यते ॥ २१ ॥

जो मोहवश अपने हितकी बात नहीं मानता है, वह दीर्घसूत्री मनुष्य अपने स्वार्थसे भ्रष्ट होकर केवल पश्चात्तापका भागी होता है ॥ २१ ॥

यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा प्राप्तमेवाभिपद्यते।
आत्मनो मतमुत्सृज्य स लोके सुखमेधते ॥ २२ ॥

जो मानव अपने कल्याणकी बात सुनकर प्राप्त हुएको ही ग्रहण करता है, वह संसारमें सुखपूर्वक उन्नतिशील होता है ॥ २२ ॥

योऽर्थकामस्य वचनं प्रातिकूल्यान्न मृष्यते।
शृणोति प्रतिकूलानि द्विषतां वशमेति सः ॥ २३ ॥

जो अपनी ही भलाई चाहनेवाले अपने सुहृद्के वचनोंको मनके प्रतिकूल होनेके कारण नहीं सहन करता है और उन असुहृदोंके प्रतिकूल कहे हुए वचनोंको ही सुनता है, वह शत्रुओंके अधीन हो जाता है ॥ २३ ॥

सतां मतमतिक्रम्य योऽसतां वर्तते मते।
शोचन्ते व्यसने तस्य सुहृदो नचिरादिव ॥ २४ ॥

जो मनुष्य सत्पुरुषोंकी सम्मतिका उल्लङ्घन करके दुष्टोंके मतके अनुसार चलता है, उसके सुहृद् उसे शीघ्र ही विपत्तिमें पड़ा देख शोकके भागी होते हैं ॥ २४ ॥

मुख्यानमात्यानुत्सृज्य यो निहीनान्निषेवते।
स घोरामापदं प्राप्य नोत्तारमधिगच्छति। ॥ २५ ॥

जो अपने मुख्यमन्त्रियोंको छोड़कर नीच प्रकृतिके लोगोंका सेवन करता है, वह भयंकर विपत्तिमें फँसकर अपने उद्धारका कोई मार्ग नहीं देख पाता है ॥ २५ ॥

योऽसत्सेवी वृथाचारो न श्रोता सुहृदां सदा।
परान्वृणीते स्वान्द्वेष्टि तं गौः शपति भारत ॥ २६ ॥

भारत! जो सदा दुष्ट पुरुषोंका संग करनेवाला और मिथ्याचारी होकर अपने श्रेष्ठ सुहृदोंकी बात नहीं सुनता है, दूसरोंको अपनाता और आत्मीयजनोंसे द्वेष रखता है, उसे यह पृथ्वी त्याग देती है ॥ २६ ॥

स त्वं विरुध्य तैर्वीरैरन्येभ्यस्त्राणमिच्छसि।
अशिष्टेभ्योऽसमर्थेभ्यो मूढेभ्यो भरतर्षभ ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ! तुम उन वीर पाण्डवोंसे विरोध करके दूसरे अशिष्ट, असमर्थ और मूढ मनुष्योंसे अपनी रक्षा चाहते हो ॥ २७ ॥

को हि शक्रसमाञ्ज्ञातीनतिक्रम्य महारथान्।
अन्येभ्यस्त्राणमाशंसेत्त्वदन्यो भुवि मानवः ॥ २८ ॥

इस भूतलपर तुम्हारे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है, जो इन्द्रके समान पराक्रमी एवं महारथी बन्धु बान्धवोंको त्यागकर दूसरोंसे अपनी रक्षाकी आशा करेगा ? ॥ २८ ॥

जन्मप्रभृति कौन्तेया नित्यं विनिकृतास्त्वया।
न च ते जातु कुप्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ २९ ॥

तुमने जन्मसे ही कुन्तीपुत्रोंके साथ सदा शठतापूर्ण बर्ताव किया है, परंतु वे इसके लिये कभी कुपित नहीं हुए हैं; क्योंकि पाण्डव धर्मात्मा हैं ॥ २९ ॥

मिथ्याप्रचरितास्तात जन्मप्रभृति पाण्डवाः।
त्वयि सम्यङ्महाबाहो प्रतिपन्ना यशस्विनः ॥ ३० ॥

तात महाबाहो ! यद्यपि तुमने पाण्डवोंके साथ जन्मसे ही छलकपटका बर्ताव किया है, तथापि वे यशस्वी पाण्डव तुम्हारे प्रति सदा सद्भाव ही रखते आये हैं ॥ ३० ॥

त्वयापि प्रतिपत्तव्यं तथैव भरतर्षभ।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु मा मन्युवशमन्वगाः ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुम्हें भी अपने उन श्रेष्ठ बन्धुओंके प्रति वैसा ही बर्ताव करना चाहिये। तुम क्रोधके वशीभूत न होओ ॥ ३१ ॥

त्रिवर्गयुक्ता प्राज्ञानामारम्भा भरतर्षभ।
धर्मार्थावनुरुध्यन्ते त्रिवर्गासम्भवे नराः ॥ ३२ ॥

भरतभूषण ! विद्वान् एवं बुद्धिमान् पुरुषोंका प्रत्येक कार्य धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंकी सिद्धिके अनुकूल ही होता है। यदि तीनोंकी सिद्धि असम्भव हो तो बुद्धिमान् मानव धर्म और अर्थका ही अनुसरण करते हैं ॥ ३२ ॥

पृथक्तु विनिविष्टानां धर्मं धीरोऽनुरुध्यते।
मध्यमोऽर्थं कलिं बालः काममेवानुरुध्यते ॥ ३३ ॥

पृथक् पृथक् स्थित हुए धर्म, अर्थ और काममेंसे किसी एकको चुनना हो तो धीर पुरुष धर्मका ही अनुसरण करता है, मध्यम श्रेणीका मनुष्य कलहके कारणभूत अर्थको ही ग्रहण करता है और अधम श्रेणीका अज्ञानी पुरुष कामको ही पाना चाहता है ॥ ३३ ॥

इन्द्रियैः प्रसृतो लोभाद्धर्मं विप्रजहाति यः।
कामार्थावनुपायेन लिप्समानो विनश्यति ॥ ३४ ॥

जो अधम मनुष्य इन्द्रियोंके वशीभूत होकर लोभवश धर्मको छोड़ देता है, वह अयोग्य उपायोंसे अर्थ और कामकी लिप्सामें पड़कर नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

कामार्थौ लिप्समानस्तु धर्ममेवादितश्चरेत् ।
न हि धर्मादपैत्यर्थः कामो वापि कदाचन ॥ ३५ ॥

अर्थ और काम प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालेको पहले धर्मका ही आचरण करना चाहिये; क्योंकि अर्थ या काम कभी धर्मसे पृथक् नहीं होता ॥ ३५ ॥

उपायं धर्ममेवाहुस्त्रिवर्गस्य विशां पते ।
लिप्समानो हि तेनाशु कक्षेऽग्निरिव वर्धते ॥ ३६ ॥

प्रजानाथ ! विद्वान् पुरुष धर्मको ही त्रिवर्गकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय बताते हैं। अतः जो धर्मके द्वारा अर्थ और कामको पाना चाहता है, वह शीघ्र ही उसी प्रकार उन्नतिकी दिशामें आगे बढ जाता है, जैसे सूखे तिनकोंमें लगी हुई आग बढ जाती है ॥ ३६ ॥

स त्वं तातानुपायेन लिप्ससे भरतर्षभ ।
आधिराज्यं महद्दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ ३७ ॥

तात ! भरतश्रेष्ठ ! तुम समस्त राजाओंमें विख्यात इस विशाल एवं उज्ज्वल साम्राज्यको अनुचित उपायसे पाना चाहते हो ॥ ३७ ॥

आत्मानं तक्षति ह्येष वनं परशुना यथा ।
यः सम्यग्वर्तमानेषु मिथ्या राजन्प्रवर्तते ॥ ३८ ॥

राजन् ! जो उत्तम व्यवहार करनेवाले सत्पुरुषोंके साथ असद्व्यवहार करता है, वह कुल्हाडीसे जंगलकी भाँति उस दुर्व्यवहारसे अपने आपको ही काटता है ॥ ३८ ॥

न तस्य हि मतिं छिन्द्याद्यस्य नेच्छेत्पराभवम् ।
अविच्छिन्नस्य धीरस्य कल्याणे धीयते मतिः ॥ ३९ ॥

मनुष्य जिसका पराभव न करना चाहे, उसकी बुद्धिका उच्छेद न करे। जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं हुई है, उसी पुरुषका मन कल्याणकारी कार्योंमें प्रवृत्त होता है ॥ ३९ ॥

त्यक्तात्मानं न बाधेत त्रिषु लोकेषु भारत ।
अप्यन्यं प्राकृतं किंचित्किमु तान्पाण्डवर्षभान् ॥ ४० ॥

भरतनन्दन ! मनुष्य तीनों लोकोंमें किसी प्राकृत निम्न श्रेणीके पुरुषको भी, जिसने आत्मसमर्पण कर दिया दुःखी न करे, फिर श्रेष्ठ पाण्डवोंके अपमानकी तो बात ही क्या है ? ॥ ४० ॥

अमर्षवशमापन्नो न किंचिद्बुध्यते नरः ।
छिद्यते ह्याततं सर्वं प्रमाणं पश्य भारत ॥ ४१ ॥

ईर्ष्याके वशमें रहनेवाला मनुष्य किसी बातको ठीकसे समझ नहीं पाता। भरतनन्दन ! देखो, ईर्ष्यालु मनुष्यके समक्ष प्रस्तुत किये हुए सम्पूर्ण विस्तृत प्रमाण भी उच्छिन्न से हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

श्रेयस्ते दुर्जनात्तात पाण्डवैः सह संगमः ।
तैर्हि सम्प्रीयमाणस्त्वं सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥ ४२ ॥

तात ! किसी दुष्ट मनुष्यका साथ करनेकी अपेक्षा पाण्डवोंके साथ मेल मिलाप रखना तुम्हारे लिये विशेष कल्याणकारी है । पाण्डवोंसे प्रेम रखनेपर तुम सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लोगे ॥ ४२ ॥

पाण्डवैर्निर्जितां भूमिं भुञ्जानो राजसत्तम ।
पाण्डवान्पृष्ठतः कृत्वा त्राणमाशंससेऽन्यतः ॥ ४३ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तुम पाण्डवोंद्वारा विजित राज्यका उपभोग कर रहे हो, तो भी उन्हींको पीछे करके अर्थात् उनकी अवहेलना करके दूसरोंसे अपनी रक्षाकी आशा रखते हो ॥ ४३ ॥

दुःशासने दुर्विषहे कर्णे चापि ससौबले ।
एतेष्वैश्वर्यमाधाय भूतिमिच्छसि भारत ॥ ४४ ॥

भारत ! तुम दुःशासन, दुर्विषह, कर्ण और शकुनि इन सबपर अपने ऐश्वर्यका भार रखकर उन्नतिकी इच्छा रखते हो ॥ ४४ ॥

न चैते तव पर्याप्ता ज्ञाने धर्मार्थयोस्तथा ।
विक्रमे चाप्यपर्याप्ताः पाण्डवान्प्रति भारत ॥ ४५ ॥

भारतनन्दन ! ये तुम्हें ज्ञान, धर्म और अर्थकी प्राप्ति करानेमें समर्थ नहीं हैं और पाण्डवोंके सामने पराक्रम प्रकट करनेमें भी ये असमर्थ ही हैं ॥ ४५ ॥

न हीमे सर्वराजानः पर्याप्ताः सहितास्त्वया ।
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य प्रेक्षितुं मुखमाहवे ॥ ४६ ॥

तुम्हारे सहित ये सब राजालोग भी युद्धमें कुपित हुए भीमसेनके मुखकी ओर आँख उठाकर देख ही नहीं सकते हैं ॥ ४६ ॥

इदं संनिहितं तात समग्रं पार्थिवं बलम् ।
अयं भीष्मस्तथा द्रोणः कर्णश्चायं तथा कृपः ॥ ४७ ॥

तात ! तुम्हारे निकट जो यह समस्त राजाओंकी सेना एकत्र हुई है, यह तथा भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य ॥ ४७ ॥

भूरिश्रवाः सौमदत्तिरश्वत्थामा जयद्रथः ।
अशक्ताः सर्व एवैते प्रतियोद्धुं धनंजयम् ॥ ४८ ॥

सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, अश्वत्थामा और जयद्रथ ये सभी मिलकर भी अर्जुनका सामना करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ४८ ॥

अजेयो ह्यर्जुनः क्रुद्धः सर्वैरपि सुरासुरैः ।
मानुषैरपि गन्धर्वैर्मा युद्धे चेत आधिथाः ॥ ४९ ॥

सम्पूर्ण देवता और असुर भी क्रोधसे भरे अर्जुनको जीत नहीं सकते । वे समस्त मनुष्यों और गन्धर्वोंके द्वारा भी अजेय हैं, अतः तुम युद्धका विचार मत करो ॥ ४९ ॥

दृश्यतां वा पुमान्कश्चित्समग्रे पार्थिवे बले ।
योऽर्जुनं समरे प्राप्य स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहान् ॥ ५० ॥

राजाओंकी इन सम्पूर्ण सेनाओंमें किसी ऐसे पुरुषपर दृष्टिपात तो करो, जो युद्धमें अर्जुनका सामना करके कुशलपूर्वक अपने घर लौट सके ? ॥ ५० ॥

किं ते जनक्षयेणेह कृतेन भरतर्षभ ।
यस्मिञ्जिते जितं ते स्यात्पुमानेकः स दृश्यताम् ॥ ५१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यह नरसंहार करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? तुम अपने पक्षमें किसी ऐसे पुरुषको ढूँढ निकालो, जो उस अर्जुनपर विजय पा सके, जिसके जीते जानेपर तुम्हारे पक्षकी विजय मान ली जाये ॥ ५१ ॥

यः स देवान्सगन्धर्वान्सयक्षासुरपन्नगान् ।
अजयत्खाण्डवप्रस्थे कस्तं युध्येत मानवः ॥ ५२ ॥

जिन्होंने खाण्डववनमें गन्धर्वों, यक्षों, असुरों और नागोंसहित सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया था, उन अर्जुनके साथ कौन मनुष्य युद्ध कर सकेगा ? ॥ ५२ ॥

तथा विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् ।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ५३ ॥

इसके सिवा विराटनगरमें जो बहुतसे महारथी योद्धाओंके साथ एक अर्जुनके युद्धकी अत्यन्त अद्भुत घटना सुनी जाती है, वह एक ही युद्धके भावी परिणामको बतानेके लिये पर्याप्त है ॥ ५३ ॥

तमजेयमनाधृष्यं विजेतुं जिष्णुमच्युतम् ।
आशंससीह समरे वीरमर्जुनमूर्जितम् ॥ ५४ ॥

अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले उन अजेय, दुर्धर्ष एवं विजयशील बलशाली वीर अर्जुनको तुम युद्धमें जीतनेकी आशा रखते हो, यह बडे आश्चर्यकी बात है ! ॥ ५४ ॥ ५

मद्द्वितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमर्हति ।
युद्धे प्रतीपमायान्तमपि साक्षात्पुरंदरः ॥ ५५ ॥

फिर मैं जिसका सारथी बनकर साथ रहूँ और वह अर्जुन प्रतिपक्षी होकर युद्धके लिये आये, उस समय साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हों, कौन अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहेगा ? ॥ ५५ ॥

बाहुभ्यामुद्धरेद् भूमिं दहेत्क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत्त्रिदिवाद्देवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ ५६ ॥

जो समरभूमिमें अर्जुनको जीत सकता है वह मानो अपनी दोनों भुजाओंपर पृथ्वीको उठा सकता है, कुपित होनेपर इस समस्त प्रजाको दग्ध कर सकता है और देवताओंको स्वर्गसे नीचे गिरा सकता है ॥ ५६ ॥

पश्य पुत्रांस्तथा भ्रातॄञ्ज्ञातीन्सम्बन्धिनस्तथा ।
त्वत्कृते न विनश्येयुरेते भरतसत्तम ॥ ५७ ॥

भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ दुर्योधन ! अपने इन पुत्रों, भाइयों, कुटुम्बीजनों और सगे सम्बन्धियों-की ओर तो देखो । ये तुम्हारे कारण नष्ट न हो जायँ ॥ ५७ ॥

अस्तु शेषं कौरवाणां मा पराभूदिदं कुलम् ।
कुलघ्न इति नोच्येथा नष्टकीर्तिर्नराधिप ॥ ५८ ॥

नरेश्वर ! कौरववंश बचा रहे, इस कुलका पराभव न हो और तुम भी अपनी कीर्तिका नाश करके कुलघाती न कहलाओ ॥ ५८ ॥

त्वामेव स्थापयिष्यन्ति यौवराज्ये महारथाः ।
महाराज्ये च पितरं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ५९ ॥

महारथी पाण्डव तुम्हींको युवराजके पदपर स्थापित करेंगे और तुम्हारे पिता राजा धृतराष्ट्रको महाराजके पदपर बनाये रक्खेंगे ॥ ५९ ॥

मा तात श्रियमायान्तीमवमंस्थाः समुद्यताम् ।
अर्धं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्स्यसि ॥ ६० ॥

तात ! अपने घरमें आनेके लिए उद्यत हुई राजलक्ष्मीका अपमान न करो । कुन्तीके पुत्रोंको आधा राज्य देकर स्वयं विशाल सम्पत्तिका उपभोग करो ॥ ६० ॥

पाण्डवैः संशमं कृत्वा कृत्वा च सुहृदां वचः ।
सम्प्रीयमाणो मित्रैश्च चिरं भद्राण्यवाप्स्यसि ॥ ६१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ ३८१५ ॥

पाण्डवोंके साथ संधि करके और अपने हितैषी सुहृदोंकी बात मानकर मित्रोंके साथ प्रसन्नता-पूर्वक रहते हुए तुम दीर्घकालतक कल्याणके भागी बने रहोगे ॥ ६१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२२ ॥ ३८१५ ॥

: १२३ :

वैशम्पायन उवाच

ततः शान्तनवो भीष्मो दुर्योधनममर्षणम् ।
केशवस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच भरतर्षभ ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णका पूर्वोक्त वचन सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्मने ईर्ष्या और क्रोधमें भरे रहनेवाले दुर्योधनसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

कृष्णेन वाक्यमुक्तोऽसि सुहृदां शममिच्छता ।
अनुपश्यस्व तत्तात मा मन्युवशमन्वगाः ॥ २ ॥

तात ! भगवान् श्रीकृष्णने सुहृदोंमें परस्पर शान्ति बनाये रखनेकी इच्छासे जो बात कही है, उस पर अच्छी तरह विचार करो । क्रोधके वशीभूत न होओ ॥ २ ॥

अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः ।
श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि ॥ ३ ॥

तात ! महात्मा केशवकी बात न माननेसे तुम कभी श्रेय, सुख और कल्याण नहीं पा सकोगे ॥ ३ ॥

धर्म्यमर्थ्यं महाबाहुराह त्वां तात केशवः ।
तदर्थमभिपद्यस्व मा राजन्नीनशः प्रजाः ॥ ४ ॥

वत्स ! महाबाहु केशवने तुमसे धर्म और अर्थके अनुकूल ही बात कही है । राजन् ! तुम उसे स्वीकार कर लो, प्रजाका विनाश न करो ॥ ४ ॥

इमां श्रियं प्रज्वलितां भारतीं सर्वराजसु ।
जीवतो धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्याद्भ्रंशयिष्यसि ॥ ५ ॥

बेटा ! सभी राजाओंमें प्रकाशित होनेवाली इस लक्ष्मीको तुम अपनी दुष्टताके कारण धृतराष्ट्रके जीते जी नष्ट कर दोगे ॥ ५ ॥

आत्मानं च सहामात्यं सपुत्रपशुबान्धवम् ।
सहमित्रमसद्बुद्ध्या जीविताद्भ्रंशयिष्यसि ॥ ६ ॥

साथ ही अपनी इस दुष्ट बुद्धिके कारण तुम पुत्र, पशु, बान्धवजन मित्रों तथा मन्त्रियों-सहित अपने आपको भी जीवनसे वञ्चित कर दोगे ॥ ६ ॥

अतिक्रामन्केशवस्य तथ्यं वचनमर्थवत् ।
पितुश्च भरतश्रेष्ठ विदुरस्य च धीमतः ॥ ७ ॥
मा कुलघ्नोऽन्तपुरुषो दुर्मतिः कापथं गमः ।
मातरं पितरं चैव वृद्धौ शोकाय मा ददः ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! केशवका वचन सत्य और सार्थक है । तुम उनके, अपने पिताके तथा बुद्धिमान् विदुरके वचनोंकी अवहेलना करके कुमार्गपर न चलो । कुलघाती, कुपुरुष और कुबुद्धिसे कलङ्कित न बनो तथा अपने वृद्ध माता पिताको शोक मत दो ॥ ७-८ ॥

अथ द्रोणोऽब्रवीत्तत्र दुर्योधनमिदं वचः ।
अमर्षवशमापन्नं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ॥ ९ ॥

तदनन्तर रोषके वशीभूत होकर बारंबार लम्बी साँस खींचनेवाले दुर्योधनसे द्रोणाचार्यने इस प्रकार कहा– ॥ ९ ॥

धर्मार्थयुक्तं वचनमाह त्वां तात केशवः ।
तथा भीष्मः शान्तनवस्तज्जुषस्व नराधिप ॥ १० ॥

तात ! भगवान् श्रीकृष्ण और शान्तनुनन्दन भीष्मने धर्म और अर्थसे युक्त बात कही है । नरेश्वर ! तुम उसे स्वीकार करो ॥ १० ॥

प्राज्ञौ मेधाविनौ दान्तावर्थकामौ बहुश्रुतौ ।
आहतुस्त्वां हितं वाक्यं तदादत्स्व परंतप ॥ ११ ॥

राजन् ! ये दोनों महापुरुष विद्वान्, मेधावी, जितेन्द्रिय, तुम्हारा भला चाहनेवाले और अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता हैं । इन्होंने तुमसे हितकी ही बात कही है, अतः तुम इसको स्वीकार करो ॥ ११ ॥

अनुतिष्ठ महाप्राज्ञ कृष्णभीष्मौ यदूचतुः ।
मा वचो लघुबुद्धीनां समास्थास्त्वं परंतप ॥ १२ ॥

महामते ! श्रीकृष्ण और भीष्मने जो कुछ कहा है, उसका पालन करो । परंतप ! तुम तुच्छ बुद्धिवाले लोगोंकी बातपर आस्था मत रक्खो ॥ १२ ॥

ये त्वां प्रोत्साहयन्त्येते नैते कृत्याय कर्हिचित् ।
वैरं परेषां ग्रीवायां प्रतिमोक्ष्यन्ति संयुगे ॥ १३ ॥

जो लोग तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित कर रहे हैं, ये कभी तुम्हारे काम नहीं आ सकते । ये युद्धका अवसर आनेपर वैरका बोझ दूसरेके कंधेपर डाल देंगे ॥ १३ ॥

मा कुरूञ्जीघनः सर्वान्पुत्रान्भ्रातॄंस्तथैव च ।
वासुदेवार्जुनौ यत्र विद्ध्यजेयं बलं हि तत् ॥ १४ ॥

समस्त कुरुओं, पुत्रों और भाइयोंकी हत्या न कराओ । जिनकी ओर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, उन्हें युद्धमें अजेय समझो ॥ १४ ॥

एतच्चैव मतं सत्यं सुहृदोः कृष्णभीष्मयोः ।
यदि नादास्यसे तात पश्चात्तप्स्यसि भारत ॥ १५ ॥

तात ! भरतनन्दन ! तुम्हारा वास्तविक हित चाहनेवाले श्रीकृष्ण और भीष्मका यही यथार्थ मत है । यदि तुम इसे ग्रहण नहीं करोगे तो पीछे पछताओगे ॥ १५ ॥

यथोक्तं जामदग्न्येन भूयानेव ततोऽर्जुनः ।
कृष्णो हि देवकीपुत्रो देवैरपि दुरुत्सहः ॥ १६ ॥

जमदग्निनन्दन परशुरामने जैसा बताया है, ये अर्जुन उससे भी महान् हैं और देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण तो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुःसह हैं ॥ १६ ॥

किं ते सुखप्रियेणेह प्रोक्तेन भरतर्षभ ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथेच्छसि तथा कुरु ।
न हि त्वामुत्सहे वक्तुं भूयो भरतसत्तम ॥ १७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुम्हें सुखद और प्रिय लगनेवाली अधिक बातें कहनेसे क्या लाभ ? ये सब बातें जो हमें कहनी थीं, कह दीं । अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो । भरतवंशविभूषण ! अब तुमसे और कुछ कहनेके लिये मेरे मनमें उत्साह नहीं है ॥ १७ ॥

तस्मिन्वाक्यान्तरे वाक्यं क्षत्तापि विदुरोऽब्रवीत् ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥ १८ ॥

जब द्रोणाचार्य अपनी बात कह रहे थे, उसी समय विदुर भी अमर्षमें भरे हुए धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी ओर देखकर बीचमें ही कहने लगे ॥ १८ ॥

दुर्योधन न शोचामि त्वामहं भरतर्षभ
इमौ तु वृद्धौ शोचामि गान्धारीं पितरं च ते । ॥ १९ ॥

भरतभूषण दुर्योधन ! मैं तुम्हारे लिये शोक नहीं करता । मुझे तो तुम्हारे इन बूढे माता-पिता गान्धारी और धृतराष्ट्रके लिये भारी शोक हो रहा है ॥ १९ ॥

यावनाथौ चरिष्येते त्वया नाथेन दुर्हृदा ।
हतमित्रौ हतामात्यौ लूनपक्षाविव द्विजौ ॥ २० ॥

क्योंकि ये दोनों तुम जैसे दुष्ट सहायकके कारण मित्रों और मन्त्रियोंके मारे जानेपर पंख कटे हुए पक्षियोंकी भाँति अनाथ असहाय होकर विचरेंगे ॥ २० ॥

भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम् ।
कुलघ्नमीदृशं पापं जनयित्वा कुपूरुषम् ॥ २१ ॥

तुम्हारे जैसे पापी और कुलघाती कुपुरुष पुत्रको जन्म देनेके कारण ये दोनों शोकमग्न हो भिक्षुककी भाँति इस पृथ्वीपर इधर उधर भटकते फिरेंगे ॥ २१ ॥

अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ।
आसीनं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् राजा धृतराष्ट्रने राजाओंसे घिरकर भाइयोंके साथ बैठे हुए दुर्योधनसे कहा ॥ २२ ॥

दुर्योधन निबोधेदं शौरिणोक्तं महात्मना ।
आदत्स्व शिवमत्यन्तं योगक्षेमवदव्ययम् ॥ २३ ॥

दुर्योधन ! मेरी इस बातपर ध्यान दो । महात्मा श्रीकृष्णने जो बात बतायी है, वह अत्यन्त कल्याणकारक, योगक्षेमकी प्राप्ति करानेवाली तथा दीर्घकालतक स्थिर रहनेवाली है, तुम इसे स्वीकार करो ॥ २३ ॥

अनेन हि सहायेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
इष्टान्सर्वानभिप्रायान्प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥ २४ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले इन भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे हमलोग समस्त राजाओंमें सम्मानित रहकर अपने सभी अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लेंगे ॥ २४ ॥

सुसंहितः केशवेन गच्छ तात युधिष्ठिरम् ।
चर स्वस्त्ययनं कृत्स्नं भारतानामनामयम् ॥ २५ ॥

तात ! भगवान् श्रीकृष्णसे मिलकर तुम युधिष्ठिरके पास जाओ और पूर्णरूपसे मङ्गल सम्पादन करो, जिससे भरतवंशियोंको कोई क्षति न उठानी पड़े ॥ २५ ॥

वासुदेवेन तीर्थेन तात गच्छस्व संगमम् ।
कालप्राप्तमिदं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः ॥ २६ ॥

तात ! भगवान् श्रीकृष्णको मध्यस्थ बनाकर अब शान्ति धारण करो । मैं तुम्हारे लिये यही समयोचित कर्तव्य मानता हूँ । दुर्योधन ! तुम मेरी इस आज्ञाका उल्लङ्घन न करो ॥ २६ ॥

शमं चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
त्वदर्थमभिजल्पन्तं न तवास्त्यपराभवः ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ ॥ ३८५२ ॥

यदि तुम शान्तिके लिये प्रार्थना करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका जो तुम्हारे हितकी बात बता रहे हैं, तिरस्कार करोगे, इनकी आज्ञा नहीं मानोगे तो तुम्हारा पराभव हुए बिना नहीं रह सकता ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२३ ॥ ॥ ३८५२ ॥

: १२४ :

वैशम्पायन उवाच

धृतराष्ट्रवचः श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ समव्यथौ ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! धृतराष्ट्रका कथन सुनकर युद्धमें जनसंहारकी सम्भावनासे समानरूपसे दुःखका अनुभव करनेवाले भीष्म और द्रोणाचार्यने गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले दुर्योधनसे इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

यावत्कृष्णावसंनद्धौ यावत्तिष्ठति गाण्डिवम् ।
यावद्धौम्यो न सेनाग्नौ जुहोतीह द्विषद्बलम् ॥ २ ॥

वत्स ! जबतक श्रीकृष्ण और अर्जुन कवच धारण करके युद्धके लिये उद्यत नहीं होते हैं, जबतक गाण्डीव धनुष घरमें रक्खा हुआ है, जबतक धौम्य मुनि सेनारूपी अग्निमें शत्रुओंकी सेनाके शक्तिकी आहुति नहीं डालते हैं ॥ २ ॥

यावन्न प्रेक्षते क्रुद्धः सेनां तव युधिष्ठिरः ।
ह्रीनिषेधो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ३ ॥

और जबतक लज्जाशील महाधनुर्धर युधिष्ठिर तुम्हारी सेनापर क्रोधपूर्ण दृष्टि नहीं डालते हैं, तभीतक यह भावी जनसंहार शान्त हो जाना चाहिये ॥ ३ ॥

यावन्न दृश्यते पार्थः स्वेष्वनीकेष्ववस्थितः ।
भीमसेनो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ४ ॥

जबतक कुन्तीपुत्र महाधनुर्धर भीमसेन अपनी सेनाके अग्रभागमें खडे नहीं दिखायी देते हैं, तभीतक यह मारकाटका संकल्प शान्त हो जाना चाहिये ॥ ४ ॥

यावन्न चरते मार्गान्पृतनामभिहर्षयन् ।
यावन्न शातयत्याजौ शिरांसि गजयोधिनाम् ॥ ५ ॥

दुर्योधन ! जबतक भीमसेन अपनी सेनाका हर्ष बढाते हुए युद्धके विभिन्न मार्गोंमें विचरण नहीं कर रहे हैं, जबतक भीमसेन हाथीसवारोंके सिरोंको युद्धमें नहीं काटते हैं ॥ ५ ॥

गदया वीरघातिन्या फलानीव वनस्पतेः ।
कालेन परिपक्कानि तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ६ ॥

जबतक भीम अपनी वीरघातिनी गदाके द्वारा समयानुसार पके हुए वृक्षके फलोंकी भांति संग्रामभूमिमें गजारोही योद्धाओंके मस्तकोंको काट काटकर नहीं गिरा रहे हैं, तभीतक तुम्हारा युद्धविषयक संकल्प शान्त हो जाना चाहिये ॥ ६ ॥

नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विराटश्च शिखण्डी च शैशुपालिश्च दंशिताः ॥ ७ ॥

नकुल, सहदेव, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, विराट, शिखण्डी तथा शिशुपालपुत्र धृष्टकेतु ॥ ७ ॥

यावन्न प्रविशन्त्येते नक्रा इव महार्णवम् ।
कृतास्त्राः क्षिप्रमस्यन्तस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ८ ॥

ये अस्त्रविद्यामें निपुण महान् वीर कवच धारण करके महासागरमें घुसे हुए ग्राहोंकी भाँति तुम्हारी सेनाके भीतर जबतक प्रवेश नहीं करते हैं, तभीतक यह जनसंहारका संकल्प शान्त हो जाना चाहिये ॥ ८ ॥

यावन्न सुकुमारेषु शरीरेषु महीक्षिताम् ।
गार्ध्रपत्राः पतन्त्युग्रास्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ९ ॥

जबतक इन भूमिपालोंके सुकुमार शरीरोंपर गीधकी पाँखोंसे युक्त भयंकर बाण नहीं गिर रहे हैं, तभीतक युद्धका संकल्प शान्त हो जाये ॥ ९ ॥

चन्दनागुरुदिग्धेषु हारनिष्कधरेषु च ।
नोरःसु यावद्योधानां महेष्वासैर्महेषवः ॥ १० ॥
कृतास्त्रैः क्षिप्रमस्यद्भिर्दूरपातिभिरायसाः ।
अभिलक्ष्यैर्निपात्यन्ते तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ११ ॥

सामने आते ही लक्ष्यको मार गिरानेवाले, शीघ्रतापूर्वक बाण चलाने और दूरतकका लक्ष्य बींधनेवाले, अस्त्रविद्याके पारंगत महाधनुर्धर विपक्षी वीर जबतक तुम्हारे योद्धाओंके चन्दन और अगुरुसे चर्चित तथा हार और निष्क धारण करनेवाले वक्षःस्थलोंपर विशाल बाणोंकी वर्षा नहीं करते, तभीतक तुम्हें युद्धका विचार त्याग देना चाहिये ॥ १०-११ ॥

अभिवादयमानं त्वां शिरसा राजकुञ्जरः ।
पाणिभ्यां प्रतिगृह्णातु धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥

हम चाहते हैं कि नृपश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम करते देख दोनों हाथोंसे पकड कर हृदयसे लगा लें ॥ १२ ॥

ध्वजाङ्कुशपताकाङ्कं दक्षिणं ते सुदक्षिणः ।
स्कन्धे निक्षिपतां बाहुं शान्तये भरतर्षभ ॥ १३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उत्तम दक्षिणा देनेवाले युधिष्ठिर ध्वजा, अंकुश और पताकाओंके चिह्नसे सुशोभित अपनी दाहिनी भुजाको जगत्में शान्ति स्थापित करनेके लिये तुम्हारे कंधेपर रक्खें ॥ १३ ॥

रत्नौषधिसमेतेन रक्ताङ्गुलितलेन च ।
उपविष्टस्य पृष्ठं ते पाणिना परिमार्जतु ॥ १४ ॥

तथा तुम्हें पास बिठाकर रत्न एवं ओषधियोंसे युक्त लाल हथेलीवाले हाथसे तुम्हारी पीठको धीरे धीरे सहलायें ॥ १४ ॥

शालस्कन्धो महाबाहुस्त्वां स्वजानो वृकोदरः ।
साम्नाभिवदतां चापि शान्तये भरतर्षभ ॥ १५ ॥

भरतभूषण ! शालवृक्षके तनेके समान ऊंचे डील डौलवाले महाबाहु भीमसेन भी शान्तिके लिये तुम्हें हृदयसे लगाकर तुमसे मीठी मीठी बातें करें ॥ १५ ॥

अर्जुनेन यमाभ्यां च त्रिभिस्तैरभिवादितः ।
मूर्ध्नि तान्समुपाघ्राय प्रेम्णाभिवद पार्थिव ॥ १६ ॥

राजन् ! अर्जुन और नकुल, सहदेव ये तीनों भाई तुम्हें प्रणाम करें और तुम उनके मस्तक सूँघकर उनके साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप करो ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा त्वां पाण्डवैर्वीरैर्भ्रातृभिः सह संगतम् ।
यावदानन्दजाश्रूणि प्रमुञ्चन्तु नराधिपाः ॥ १७ ॥

तुम्हें अपने वीर भाई पाण्डवोंके साथ मिला हुआ देख ये सब नरेश अपने नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहायें ॥ १७ ॥

घुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्महीक्षिताम् ।
पृथिवी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरो भव ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ ३८७० ॥

राजाओंकी सभी राजधानियोंमें यह घोषणा करा दी जाय कि कौरव-पाण्डवोंका सारा झगडा समाप्त होकर परस्पर प्रेमपूर्वक उनका समस्त कार्य सम्पन्न हो गया । फिर तुम और युधिष्ठिर परस्पर भ्रातृभाव रखते हुए इस राज्यका समानरूपसे उपभोग करो, तुम्हारी सारी चिन्ताएँ दूर हो जायँ ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२४ ॥ ३८७० ॥

: १२५ :

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा दुर्योधनो वाक्यमप्रियं कुरुसंसदि।
प्रत्युवाच महाबाहुं वासुदेवं यशस्विनम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय! कौरवसभामें यह अप्रिय वचन सुनकर दुर्योधनने यशस्वी महाबाहु वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ १ ॥

प्रसमीक्ष्य भवानेतद्वक्तुमर्हति केशव।
मामेव हि विशेषेण विभाष्य परिगर्हसे ॥ २ ॥

केशव! आपको अच्छी तरह सोचकर विचार ऐसी बातें कहनी चाहिये। आप तो विशेषरूपसे मुझे ही दोषी ठहराकर मेरी निन्दा कर रहे हैं ॥ २ ॥

भक्तिवादेन पार्थानामकस्मान्मधुसूदन।
भवान्गर्हयते नित्यं किं समीक्ष्य बलाबलम् ॥ ३ ॥

मधुसूदन! आप पाण्डवोंके प्रेमकी दुहाई देकर जो अकारण ही सदा हमारी निन्दा करते रहते हैं, इसका क्या कारण है? क्या आप हमलोगोंके बलाबलका विचार करके ऐसा करते हैं? ॥ ३ ॥

भवान्क्षत्ता च राजा च आचार्यो वा पितामहः।
मामेव परिगर्हन्ते नान्यं कंचन पार्थिवम् ॥ ४ ॥

मैं देखता हूँ, आप, विदुर, पिता, आचार्य अथवा पितामह भीष्म सभी लोग केवल मुझपर ही दोषारोपण करते हैं; दूसरे किसी राजापर नहीं ॥ ४ ॥

न चाहं लक्षये कंचिद्व्यभिचारमिहात्मनः।
अथ सर्वे भवन्तो मां विद्विषन्ति सराजकाः ॥ ५ ॥

परंतु मुझे यहाँ अपना कोई दोष नहीं दिखायी देता है। इधर राजा धृतराष्ट्रसहित आप सब लोग अकारण ही मुझसे द्वेष रखने लगे हैं ॥ ५ ॥

न चाहं कंचिदत्यर्थमपराधमरिंदम।
विचिन्तयन्प्रपश्यामि सुसूक्ष्ममपि केशव ॥ ६ ॥

शत्रुदमन केशव! मैं अत्यन्त सोच विचारकर दृष्टि डालता हूँ, तो भी मुझे अपना कोई सूक्ष्मसे सूक्ष्म अपराध भी नहीं दृष्टिगोचर होता है ॥ ६ ॥

प्रियाभ्युपगते द्यूते पाण्डवा मधुसूदन।
जिताः शकुनिना राज्यं तत्र किं मम दुष्कृतम् ॥ ७ ॥

मधुसूदन! पाण्डवोंको जूएका खेल बडा प्रिय था। इसीलिये वे उसमें प्रवृत्त हुए। फिर यदि मामा शकुनिने उनका राज्य जीत लिया तो इसमें मेरा क्या अपराध हो गया?॥ ७ ॥

यत्पुनर्द्रविणं किंचित्तत्राजीयन्त पाण्डवाः।
तेभ्य एवाभ्यनुज्ञातं तत्तदा मधुसूदन ॥ ८ ॥

मधुसूदन! उस जूएमें पाण्डवोंने जो कुछ भी धन हारा था, वह सब उसी समय उन्हींको लौटा दिया गया था ॥ ८ ॥

अपराधो न चास्माकं यत्ते ह्यक्षपराजिताः।
अजेया जयतां श्रेष्ठ पार्थाः प्रव्राजिता वनम् ॥ ९ ॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण! यदि अजेय पाण्डव जूएमें पुनः पराजित हो गये और वनमें जानेको विवश हुए तो यह हमलोगोंका अपराध नहीं है ॥ ९ ॥

केन चाप्यपवादेन विरुध्यन्तेऽरिभिः सह।
अशक्ताः पाण्डवाः कृष्ण प्रहृष्टाः प्रत्यमित्रवत् ॥ १० ॥

कृष्ण! हमारे किस अपराधसे असमर्थ पाण्डव शत्रुओंके साथ मिलकर हमारा विरोध करते हैं और ऐसा करके भी सहज शत्रुकी भाँति प्रसन्न हो रहे हैं ॥ १० ॥

किमस्माभिः कृतं तेषां कस्मिन्वा पुनरागसि।
धार्तराष्ट्राञ्जिघांसन्ति पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ॥ ११ ॥

हमने उनका क्या बिगाडा है? वे पाण्डव हमारे किस अपराधपर सृञ्जयोंके साथ मिलकर हम धृतराष्ट्रपुत्रोंका वध करना चाहते हैं?॥ ११ ॥

न चापि वयमुग्रेण कर्मणा वचनेन वा।
वित्रस्ताः प्रणमामेह भयादपि शतक्रतोः ॥ १२ ॥

हमलोग किसीके भयंकर कर्म अथवा भयानक वचनसे भयभीत होकर साक्षात् इन्द्रके सामने भी नतमस्तक नहीं हो सकते ॥ १२ ॥

न च तं कृष्ण पश्यामि क्षत्रधर्ममनुष्ठितम्।
उत्सहेत युधा जेतुं यो नः शत्रुनिबर्हण ॥ १३ ॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीकृष्ण! मैं क्षत्रिय धर्मका अनुष्ठान करनेवाले किसी भी ऐसे वीरको नहीं देखता, जो युद्धमें हम सब लोगोंको जीतनेका साहस कर सके ॥ १३ ॥

न हि भीष्मकृपद्रोणाः सगणा मधुसूदन ।
देवैरपि युधा जेतुं शक्याः किमुत पाण्डवैः ॥ १४ ॥

मधुसूदन ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्यको तो अपने गणोंसे युक्त होकर तो देवता भी युद्धमें नहीं जीत सकते; फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ १४ ॥

स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो यदि माधव संयुगे ।
शस्त्रेण निधनं काले प्राप्स्यामः स्वर्गमेव तत् ॥ १५ ॥

माधव ! अपने धर्मपर दृष्टि रखते हुए यदि हमलोग युद्धमें किसी समय अस्त्रोंके आघातसे मृत्युको प्राप्त हो जायँ तो वह भी हमारे लिये स्वर्गकी ही प्राप्ति करानेवाली होगी ॥ १५ ॥

मुख्यश्चैवैष नो धर्मः क्षत्रियाणां जनार्दन ।
यच्छयीमहि संग्रामे शरतल्पगता वयम् ॥ १६ ॥

जनार्दन ! हम क्षत्रियोंका यही प्रधान धर्म है कि संग्राममें, हमें बाणशय्यापर सोनेका अवसर प्राप्त हो ॥ १६ ॥

ते वयं वीरशयनं प्राप्स्यामो यदि संयुगे ।
अप्रणम्यैव शत्रूणां न नस्तप्स्यति माधव ॥ १७ ॥

अतः, माधव ! हम अपने शत्रुओंके सामने नतमस्तक न होकर यदि युद्धमें वीरशय्याको प्राप्त हों तो इससे हमारे भाई बन्धुओंको संताप नहीं होगा ॥ १७ ॥

कश्च जातु कुले जातः क्षत्रधर्मेण वर्तयन् ।
भयाद् वृत्तिं समीक्ष्यैवं प्रणमेदिह कस्यचित् ॥ १८ ॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर क्षत्रियधर्मके अनुसार जीवननिर्वाह करनेवाला कौन ऐसा महापुरुष होगा, जो क्षत्रियोचित वृत्तिपर दृष्टि रखते हुए भी इस प्रकार भयके कारण कभी शत्रुके सामने मस्तक झुकायेगा ? ॥ १८ ॥

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कस्यचित् ॥ १९ ॥

वीर पुरुषको चाहिये कि वह सदा उद्योग ही करे, किसीके सामने नतमस्तक न हो; क्योंकि उद्योग करना ही पुरुषका कर्तव्य-पुरुषार्थ है । वीर पुरुष असमयमें ही नष्ट भले ही हो जाये, परंतु कभी शत्रुके सामने सिर न झुकावे ॥ १९ ॥

इति मातङ्गवचनं परीप्सन्ति हितेप्सवः ।
धर्माय चैव प्रणमेद् ब्राह्मणेभ्यश्च मद्विधः ॥ २० ॥

अपना हित चाहनेवाले मनुष्य मातङ्ग मुनिके उपर्युक्त वचनको ही ग्रहण करते हैं; अतः मेरे जैसा पुरुष केवल धर्म तथा ब्राह्मणको ही प्रणाम कर सकता है, शत्रुओंको नहीं ॥ २० ॥

अचिन्तयन्कंचिदन्यं यावज्जीवं तथाचरेत्।
एष धर्मः क्षत्रियाणां मतमेतच्च मे सदा ॥ २१ ॥

वह दूसरे किसीको कुछ भी न समझकर जीवनभर ऐसा ही आचरण उद्योग करता रहे; यही क्षत्रियोंका धर्म है और सदाके लिये मेरा मत भी यही है ॥ २१ ॥

राज्यांशश्चाभ्यनुज्ञातो यो मे पित्रा पुराभवत्।
न स लभ्यः पुनर्जातु मयि जीवति केशव ॥ २२ ॥

केशव! मेरे पिताने पूर्वकालमें जो राज्यभाग मेरे अधीन कर दिया है, उसे कोई मेरे जीते जी फिर कदापि नहीं पा सकता ॥ २२ ॥

यावच्च राजा ध्रियते धृतराष्ट्रो जनार्दन।
न्यस्तशस्त्रा वयं ते वाप्युपजीवाम माधव ॥ २३ ॥

जनार्दन! जबतक राजा धृतराष्ट्र जीवित हैं, तबतक हमें और पाण्डवोंको हथियार न उठाकर शान्तिपूर्वक जीवन बिताना चाहिये ॥ २३ ॥

अप्रदेयं पुरा दत्तं राज्यं परवतो मम।
अज्ञानाद्वा भयाद्वापि मयि बाले जनार्दन ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण! पहले भी जो पाण्डवोंको राज्यका अंश दिया गया था, वह उन्हें देना उचित नहीं था; परंतु मैं उन दिनों बालक एवं पराधीन था, अतः अज्ञान अथवा भयसे जो कुछ उन्हें दे दिया गया था ॥ २४ ॥

न तदद्य पुनर्लभ्यं पाण्डवैर्वृष्णिनन्दन।
ध्रियमाणे महाबाहो मयि सम्प्रति केशव ॥ २५ ॥
यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण माधव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान्प्रति ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ ३८९६ ॥

हे वृष्णिनंदन! उसे अब पाण्डव पुनः नहीं पा सकते। महाबाहो केशव! इस समय मुझ दुर्योधनके जीते जी॥ पाण्डवोंको भूमिका उतना अंश भी नहीं दिया जा सकता, जितना कि एक बारीक सूईकी नोकसे छिद सकता है ॥ २५-२६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२५॥ ३८९६ ॥

: १२८ :

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रहस्य दाशार्हः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले—जनमेजय ! दुर्योधनकी बातें सुनकर श्रीकृष्णके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये । वे हंसकर कौरवसभामें दुर्योधनसे पुनः इस प्रकार बोले ॥ १ ॥

लप्स्यसे वीरशयनं काममेतदवाप्स्यसि ।
स्थिरो भव सहामात्यो विमर्दो भविता महान् ॥ २ ॥

दुर्योधन ! तुझे रणभूमिमें वीर शय्या प्राप्त होगी । तेरी यह इच्छा अवश्य पूर्ण होगी । तू मन्त्रियोंसहित धैर्यपूर्वक रह । अब बहुत बडा नरसंहार होनेवाला है ॥ २ ॥

यच्चैवं मन्यसे मूढ न मे कश्चिद्व्यतिक्रमः ।
पाण्डवेष्विति तत्सर्वं निबोधत नराधिपाः ॥ ३ ॥

मूढ ! तू जो ऐसा मानता है कि पाण्डवोंके प्रति मेरा कोई अपराध ही नहीं है तो इसके सम्बन्धमें मैं सब बातें बताता हूँ । राजाओ ! आपलोग भी ध्यान देकर सुनें ॥ ३ ॥

श्रिया संतप्यमानेन पाण्डवानां महात्मनाम् ।
त्वया दुर्मन्त्रितं द्यूतं सौबलेन च भारत ॥ ४ ॥

भारत ! महात्मा पाण्डवोंकी बढती हुई समृद्धिसे संतप्त होकर तूने ही शकुनिके साथ यह दुष्ट विचार किया था कि पाण्डवोंके साथ जूआ खेला जाये ॥ ४ ॥

कथं च ज्ञातयस्तात श्रेयांसः साधुसम्मताः ।
तथान्याय्यमुपस्थातुं जिह्मेनाजिह्मचारिणः ॥ ५ ॥

तात ! अन्यथा सदा सरलतापूर्ण बर्ताव करनेवाले और साधु सम्मानित तेरे श्रेष्ठ बन्धु पाण्डव यहाँ तुम जैसे कपटीके साथ अन्याययुक्त द्यूतके लिये कैसे उपस्थित हो सकते थे ? ॥ ५ ॥

अक्षद्यूतं महाप्राज्ञ सतामरतिनाशनम् ।
असतां तत्र जायन्ते भेदाश्च व्यसनानि च ॥ ६ ॥

महामते ! जूएका खेल तो सत्पुरुषोंकी बुद्धिको भी नाश करनेवाला है और यदि दुष्ट पुरुष उसमें प्रवृत्त हों तो उनमें बडा भारी कलह होता है तथा उन सबपर बहुत से संकट छा जाते हैं ॥ ६ ॥

तदिदं व्यसनं घोरं त्वया द्यूतमुखं कृतम् ।
असमीक्ष्य सदाचारैः सार्धं पापानुबन्धनैः ॥ ७ ॥

तूने ही सदाचारकी ओर लक्ष्य न रखकर पापासक्त पुरुषोंके सहित भयंकर विपत्तिके कारणभूत ये द्यूतक्रीडा आदि कार्य किये हैं ॥ ७ ॥

कश्चान्यां ज्ञातिभार्यां वै विप्रकर्तुं तथार्हति ।
आनीय च सभां वक्तुं यथोक्ता द्रौपदी त्वया ॥ ८ ॥

तेरे सिवा दूसरा कौन ऐसा अधम होगा, जो अपने बडे भाईकी पत्नीको सभामें लाकर उसके साथ वैसा अनुचित बात करेगा, जैसा कि तूने द्रौपदीके प्रति स्पष्टरूपसे न कहने योग्य बातें कहकर दुर्व्यवहार किया है ॥ ८ ॥

कुलीना शीलसम्पन्ना प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
महिषी पाण्डुपुत्राणां तथा विनिकृता त्वया ॥ ९ ॥

द्रौपदी उत्तम कुलमें उत्पन्न, शील और सदाचारसे सम्पन्न तथा पाण्डवोंके लिये प्राणोंसे भी अधिक आदरणीय उन सबकी महारानी है । तथापि तूने उसके प्रति अत्याचार किया ॥ ९ ॥

जानन्ति कुरवः सर्वे यथोक्ताः कुरुसंसदि ।
दुःशासनेन कौन्तेयाः प्रव्रजन्तः परंतपाः ॥ १० ॥

जिस समय शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार पाण्डव वनको जा रहे थे, उस समय दुःशासनने कौरवसभामें उनके प्रति जैसी कठोर बातें कही थीं, उन्हें सभी कौरव जानते हैं ॥ १० ॥

सम्यग्वृत्तेष्वलुब्धेषु सततं धर्मचारिषु ।
स्वेषु बन्धुषु कः साधुश्चरेदेवमसाम्प्रतम् ॥ ११ ॥

सदा धर्ममें ही तत्पर रहनेवाले लोभरहित सदाचारी अपने बन्धुओंके प्रति कौन साधु पुरुष ऐसा अयोग्य बर्ताव करेगा ? ॥ ११ ॥

नृशंसानामनार्याणां परुषाणां च भाषणम् ।
कर्णदुःशासनाभ्यां च त्वया च बहुशः कृतम् ॥ १२ ॥

दुर्योधन ! तूने कर्ण और दुःशासनके साथ अनेक बार निर्दयी तथा अनार्य पुरुषोंकीसी बातें कही हैं ॥ १२ ॥

सह मात्रा प्रदग्धुं तान्बालकान्वारणावते ।
आस्थितः परमं यत्नं न समृद्धं च तत्तव ॥ १३ ॥

तूने वारणावत नगरमें बाल्यावस्थामें पाण्डवोंको उनकी मातासहित जला डालनेका महान् प्रयत्न किया था, परंतु तेरा वह उद्देश्य सफल न हो सका ॥ १३ ॥

ऊषुश्च सुचिरं कालं प्रच्छन्नाः पाण्डवास्तदा ।
मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥ १४ ॥

उन दिनों पाण्डव अपनी माताके साथ सुदीर्घकालतक एकचक्रा नगरीमें किसी ब्राह्मणके घरमें छिपे रहे ॥ १४ ॥

विषेण सर्पबन्धैश्च यतिताः पाण्डवास्त्वया ।
सर्वोपायैर्विनाशाय न समृद्धं च तत्तव ॥ १५ ॥

तूने भीमसेनको विष देकर, सर्पसे कटाकर और बँधे हुए हाथ पैरोंसहित जलमें डुबाकर इन सभी उपायोंद्वारा पाण्डवोंको नष्ट कर देनेका प्रयत्न किया है, परंतु तेरा यह प्रयास भी सफल न हो सका ॥ १५ ॥

एवंबुद्धिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान् ।
कथं ते नापराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १६ ॥

ऐसे ही विचार रखकर तू पाण्डवोंके प्रति सदा कपटपूर्ण बर्ताव करता आया है, फिर कैसे मान लिया जाये कि महात्मा पाण्डवोंके प्रति तेरा कोई अपराध ही नहीं है ॥ १६ ॥

कृत्वा बहून्यकार्याणि पाण्डवेषु नृशंसवत् ।
मिथ्यावृत्तिरनार्यः सन्नद्य विप्रतिपद्यसे ॥ १७ ॥

क्रूरकर्मी मनुष्योंकी भाँति तू पाण्डवोंके प्रति बहुतसे अयोग्य बर्ताव करके मिथ्याचारी और अनार्य होकर भी आज अपने उन अपराधोंके प्रति अनभिज्ञता प्रकट करता है ॥ १७ ॥

मातापितृभ्यां भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।
शाम्येति मुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव ॥ १८ ॥

माता-पिता, भीष्म, द्रोण और विदुर सबने तुझसे बार बार कहा है कि तू संधि कर ले, शान्त हो जा, परंतु, भूपाल ! तू शान्त होनेका नाम ही नहीं लेता ॥ १८ ॥

शमे हि सुमहानर्थस्तव पार्थस्य चोभयोः ।
न च रोचयसे राजन्किमन्यद्बुद्धिलाघवात् ॥ १९ ॥

राजन् ! शान्ति स्थापित होनेपर तेरा और युधिष्ठिरका दोनोंका ही महान् लाभ है, परंतु तुझे यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगता । इसे बुद्धिकी मन्दताके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ॥ १९ ॥

न शर्म प्राप्स्यसे राजन्नुत्क्रम्य सुहृदां वचः ।
अधर्म्यमयशस्यं च क्रियते पार्थिव त्वया ॥ २० ॥

राजन् ! तू हितैषी सुहृदोंकी आज्ञाका उल्लंघन करके कल्याणका भागी नहीं हो सकेगा । भूपाल ! तू सदा अधर्म और अपयशका कार्य करता है ॥ २० ॥

एवं ब्रुवति दाशार्हे दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःशासन इदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ २१ ॥

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण ये सब बातें कह रहे थे, उसी समय दुःशासनने बीचमें ही अमर्षशील दुर्योधनसे कौरव-सभामें ही कहा ॥ २१ ॥

न चेत्संधास्यसे राजन्स्वेन कामेन पाण्डवैः ।
बद्ध्वा किल त्वां दास्यन्ति कुन्तीपुत्राय कौरवाः ॥ २२ ॥

राजन् ! यदि आप अपनी इच्छासे पाण्डवोंके साथ संधि नहीं करेंगे तो जान पडता है, कौरवलोग आपको बाँधकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके हाथमें सौंप देंगे ॥ २२ ॥

वैकर्तनं त्वां च मां च त्रीनेतान्मनुजर्षभ ।
पाण्डवेभ्यः प्रदास्यन्ति भीष्मो द्रोणः पिता च ते ॥ २३ ॥

नरश्रेष्ठ ! पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और पिता ये कर्णको, आपको और मुझे इन तीनोंको ही पाण्डवोंके अधिकारमें दे देंगे ॥ २३ ॥

भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।
क्रुद्धः प्रातिष्ठतोत्थाय महानाग इव श्वसन् ॥ २४ ॥

भाईकी यह बात सुनकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अत्यन्त कुपित हो फुफकारते हुए महान् सर्पकी भाँति लम्बी साँसें खींचता हुआ वहाँसे उठकर चल दिया ॥ २४ ॥

विदुरं धृतराष्ट्रं च महाराजं च बाह्लिकम् ।
कृपं च सोमदत्तं च भीष्मं द्रोणं जनार्दनम् ॥ २५ ॥

विदुर, धृतराष्ट्र, महाराज बाह्लीक, कृपाचार्य, सोमदत्त, भीष्म, द्रोणाचार्य और भगवान् श्रीकृष्ण ॥ २५ ॥

सर्वानेताननादृत्य दुर्मतिर्निरपत्रपः ।
अशिष्टवदमर्यादो मानी मान्यावमानिता ॥ २६ ॥

इन सबका अनादर करके वह दुर्बुद्धि, निर्लज्ज, अशिष्ट पुरुषोंकी भाँति मर्यादाशून्य, अभिमानी तथा माननीय पुरुषोंका अपमान करनेवाला वहाँसे चल पडा ॥ २६ ॥

तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य भ्रातरो मनुजर्षभम्।
अनुजग्मुः सहामात्या राजानश्चापि सर्वशः ॥ २७ ॥

नरश्रेष्ठ दुर्योधनको वहाँसे जाते देख उसके भाई, मन्त्री तथा सहयोगी नरेश सबके सब उठकर उसके साथ चल दिये ॥ २७ ॥

सभायामुत्थितं क्रुद्धं प्रस्थितं भ्रातृभिः सह।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ २८ ॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनको भाइयोंसहित सभासे उठकर जाते देख शान्तनुनन्दन भीष्मने कहा ॥ २८ ॥

धर्मार्थावभिसंत्यज्य संरम्भं योऽनुमन्यते।
हसन्ति व्यसने तस्य दुर्हृदो नचिरादिव ॥ २९ ॥

जो धर्म और अर्थका परित्याग करके क्रोधका ही अनुसरण करता है, उसे शीघ्र ही विपत्तिमें पडा देख उसके शत्रुगण हँसी उडाते हैं ॥ २९ ॥

दुरात्मा राजपुत्रोऽयं धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित्।
मिथ्याभिमानी राज्यस्य क्रोधलोभवशानुगः ॥ ३० ॥

राजा धृतराष्ट्रका यह दुरात्मा पुत्र दुर्योधन लक्ष्यसिद्धिके उपायके विपरीत कार्य करनेवाला तथा क्रोध और लोभके वशीभूत रहनेवाला है। इसे राजा होनेका मिथ्या अभिमान है ॥ ३० ॥

कालपक्वमिदं मन्ये सर्वक्षत्रं जनार्दन।
सर्वे ह्यनुसृता मोहात्पार्थिवाः सह मन्त्रिभिः ॥ ३१ ॥

जनार्दन ! मैं इन समस्त क्षत्रियगणोंको कालसे पके हुए फलकी भाँति मौतके मुँहमें जानेवाला मानता हूँ। तभी तो ये सबके सब मोहवश अपने मन्त्रियोंके साथ दुर्योधनका अनुसरण करते हैं ॥ ३१ ॥

भीष्मस्याथ वचः श्रुत्वा दाशार्हः पुष्करेक्षणः।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वानभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

भीष्मका यह कथन सुनकर महापराक्रमी दशार्हकुलनन्दन कमलनयन श्रीकृष्णने भीष्म और द्रोण आदि सब लोगोंसे इस प्रकार कहा ॥ ३२ ॥

सर्वेषां कुरुवृद्धानां महानयमतिक्रमः।
प्रसह्य मन्दमैश्वर्ये न नियच्छत यन्नृपम् ॥ ३३ ॥

कुरुकुलके सभी बडे बूढों लोगोंका यह बहुत बडा अन्याय है कि आप लोग इस मूर्ख दुर्योधनको राजाके पदपर बिठाकर अब इसका बलपूर्वक नियन्त्रण नहीं कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

तत्र कार्यमहं मन्ये कालप्राप्तमरिंदमाः ।
क्रियमाणे भवेच्छ्रेयस्तत्सर्वं शृणुतानघाः ॥ ३४ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले निष्पाप कौरवो ! इस विषयमें मैंने समयोचित कर्तव्यका निश्चय कर लिया है, जिसका पालन करनेपर सबका भला होगा । वह सब मैं बता रहा हूं, आपलोग सुनें ॥ ३४ ॥

प्रत्यक्षमेतद्भवतां यद्वक्ष्यामि हितं वचः ।
भवतामानुकूल्येन यदि रोचेत भारताः ॥ ३५ ॥

मैं तो हितकी बात बताने जा रहा हूं । उसका आपलोगोंको भी प्रत्यक्ष अनुभव है । भरतवंशियो ! यदि वह आपके अनुकूल होनेके कारण ठीक जान पडे तो आप उसे काममें ला सकते हैं ॥ ३५ ॥

भोजराजस्य वृद्धस्य दुराचारो ह्यनात्मवान् ।
जीवतः पितुरैश्वर्यं हृत्वा मृत्युवशं गतः ॥ ३६ ॥

बूढे भोजराज उग्रसेनका पुत्र कंस बडा दुराचारी एवं अजितेन्द्रिय था । वह अपने पिताके जीतेजी उनका सारा ऐश्वर्य लेकर स्वयं राजा बन बैठा था, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह मृत्युके अधीन हो गया ॥ ३६ ॥

उग्रसेनसुतः कंसः परित्यक्तः स बान्धवैः ।
ज्ञातीनां हितकामेन मया शस्तो महामृधे ॥ ३७ ॥

समस्त भाई बन्धुओंने उसका त्याग कर दिया था, अतः सजातीय बन्धुओंके हितकी इच्छासे मैंने महान् युद्धमें उस उग्रसेनपुत्र कंसको मार डाला ॥ ३७ ॥

आहुकः पुनरस्माभिर्ज्ञातिभिश्चापि सत्कृतः ।
उग्रसेनः कृतो राजा भोजराजन्यवर्धनः ॥ ३८ ॥

तदनन्तर हम सब कुटुम्बीजनोंने मिलकर भोजवंशी क्षत्रियोंकी उन्नति करनेवाले आहुक उग्रसेनको सत्कारपूर्वक पुनः राजा बना दिया ॥ ३८ ॥

कंसमेकं परित्यज्य कुलार्थे सर्वयादवाः ।
सम्भूय सुखमेधन्ते भारतान्धकवृष्णयः ॥ ३९ ॥

भरतनन्दन ! कुलकी रक्षाके लिये एकमात्र कंसका परित्याग करके अन्धक और वृष्णिक आदि कुलोंके समस्त यादव परस्पर संगठित हो सुखसे रहते और उत्तरोत्तर उन्नति कर रहे हैं ॥ ३९ ॥

अपि चाप्ययदद्राजन्परमेष्ठी प्रजापतिः ।
व्यूढे देवासुरे युद्धेऽभ्युद्यतेष्वायुधेषु च ॥ ४० ॥

राजन् ! इसके सिवा एक और उदाहरण लीजिये । एक समय प्रजापति ब्रह्माने जो बात कही थी, वही बता रहा हूं । देवता और असुर युद्धके लिये मोर्चे बाँधकर खडे थे। सबके अस्त्र शस्त्र प्रहारके लिये ऊपर उठ गये थे ॥ ४० ॥

द्वैधीभूतेषु लोकेषु विनश्यत्सु च भारत ।
अब्रवीत्सृष्टिमान्देवो भगवाँल्लोकभावनः ॥ ४१ ॥

सारा संसार दो भागोंमें बंटकर नष्ट होना चाहता था । भारत ! उस अवस्थामें सृष्टिकी रचना करनेवाले लोकभावन भगवान् ब्रह्माने स्पष्टरूपसे बता दिया ॥ ४१ ॥

पराभविष्यन्त्यसुरा दैतेया दानवैः सह ।
आदित्या वसवो रुद्रा भविष्यन्ति दिवौकसः ॥ ४२ ॥

कि इस युद्धमें दानवोंसहित दैत्यों तथा असुरोंकी पराजय होगी । आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देवता विजयी होंगे ॥ ४२ ॥

देवासुरमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
अस्मिन्युद्धे सुसंयत्ता हनिष्यन्ति परस्परम् ॥ ४३ ॥

देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग तथा राक्षस ये युद्धमें अत्यन्त कुपित होकर एक दूसरेका वध करेंगे ॥ ४३ ॥

इति मत्वाब्रवीद्धर्मं परमेष्ठी प्रजापतिः ।
वरुणाय प्रयच्छैतान्बद्ध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४४ ॥

यह भावी परिणाम जानकर परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माने धर्मराजसे यह बात कही— तुम इन दैत्यों और दानवोंको बांधकर वरुणदेवको सौंप दो ॥ ४४ ॥

एवमुक्तस्ततो धर्मो नियोगात्परमेष्ठिनः ।
वरुणाय ददौ सर्वान्बद्ध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४५ ॥

उनके ऐसा कहनेपर धर्मने ब्रह्माकी आज्ञाके अनुसार सम्पूर्ण दैत्यों और दानवोंको बांधकर वरुणको सौंप दिया ॥ ४५ ॥

तान्बद्ध्वा धर्मपाशैश्च स्वैश्च पाशैर्जलेश्वरः ।
वरुणः सागरे यत्तो नित्यं रक्षति दानवान् ॥ ४६ ॥

तबसे जलके स्वामी वरुण उन्हें धर्मपाश एवं वारुणपाशमें बाँधकर प्रतिदिन सावधान रहकर उन दानवोंको समुद्रकी सीमामें ही रखते हैं ॥ ४६ ॥

तथा दुर्योधनं कर्णं शकुनिं चापि सौबलम् ।
बद्ध्वा दुःशासनं चापि पाण्डवेभ्यः प्रयच्छत ॥ ४७ ॥

भरतवंशियो ! उसी प्रकार आपलोग दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा दुःशासनको बंदी बनाकर पाण्डवोंके हाथमें दे दें ॥ ४७ ॥

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ ४८ ॥

समस्त कुलकी भलाईके लिये एक पुरुषको एक गाँवके हितके लिये कुलको, जनपदके भलेके लिये एक गाँवको और आत्मकल्याणके लिये समस्त भूमण्डलको त्याग दे ॥ ४८ ॥

राजन्दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः ।
त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ ३९४५ ॥

राजन् ! आप दुर्योधनको कैद करके पाण्डवोंसे संधि कर लें । क्षत्रियशिरोमणे ! ऐसा न हो कि आपके कारण समस्त क्षत्रियोंका विनाश हो जाये ॥ ४९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२६ ॥ ३९४५ ॥

१२७

वैशम्पायन उवाच

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
विदुरं सर्वधर्मज्ञं त्वरमाणोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर राजा धृतराष्ट्रने सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता विदुरसे शीघ्रतापूर्वक कहा— ॥ १ ॥

गच्छ तात महाप्राज्ञां गान्धारीं दीर्घदर्शिनीम् ।
आनयेह तया सार्धमनुनेष्यामि दुर्मतिम् ॥ २ ॥

तात ! जाओ, परम बुद्धिमती और दूरदर्शिनी गान्धारीदेवीको यहाँ बुला लाओ । मैं उसीके साथ इस दुर्बुद्धिको समझा बुझाकर राहपर लानेकी चेष्टा करूँगा ॥ २ ॥

यदि सापि दुरात्मानं शमयेद्दुष्टचेतसम् ।
अपि कृष्णस्य सुहृदस्तिष्ठेम वचने वयम् ॥ ३ ॥

यदि वह भी उस दुष्टचित्त दुरात्माको शान्त कर सके तो हमलोग अपने सुहृद् श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन कर सकते हैं ॥ ३ ॥

अपि लोभाभिभूतस्य पन्थानमनुदर्शयेत् ।
दुर्बुद्धेर्दुःसहायस्य समर्थं ब्रुवती वचः ॥ ४ ॥

संभव है कि गांधारी इस लोभी, दुर्बुद्धि और दुष्ट सहायकोंसे युक्त दुर्योधनको समझा बुझा कर उत्तम मार्गपर ला सके ॥ ४ ॥

अपि नो व्यसनं घोरं दुर्योधनकृतं महत् ।
शमयेच्चिररात्राय योगक्षेमवदव्ययम् ॥ ५ ॥

यदि ऐसा हुआ तो दुर्योधनके द्वारा उपस्थित किया हुआ हमारा महान् एवं भयंकर संकट दीर्घकालके लिये शान्त हो जायेगा और चिरस्थायी योगक्षेमकी प्राप्ति सुलभ होगी ॥५॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिनीम् ।
आनयामास गान्धारीं धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ६ ॥

राजाकी यह बात सुनकर विदुर धृतराष्ट्रके आदेशसे दूरदर्शिनी गान्धारीदेवीको वहां बुला ले आये ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

एष गान्धारि पुत्रस्ते दुरात्मा शासनातिगः ।
ऐश्वर्यलोभादैश्वर्यं जीवितं च प्रहास्यति ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र बोले– गान्धारि ! तुम्हारा वह दुरात्मा पुत्र गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है । वह ऐश्वर्यके लोभमें पडकर राज्य और प्राण दोनों गँवा देगा ॥ ७ ॥

अशिष्टवदमर्यादः पापैः सह दुरात्मभिः ।
सभाया निर्गतो मूढो व्यतिक्रम्य सुहृद्वचः ॥ ८ ॥

मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाला वह मूढ दुरात्मा अशिष्ट पुरुषकी भांति हितैषी सुहृदोंकी आज्ञाको ठुकराकर अपने पापी साथियोंके साथ सभासे बाहर निकल गया है ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच

सा भर्तुर्वचनं श्रुत्वा राजपुत्री यशस्विनी ।
अन्विच्छन्ती महच्छ्रेयो गान्धारी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! पतिका यह वचन सुनकर यशस्विनी राजपुत्री गान्धारीको महान् कल्याणका अनुसंधान करती हुई इस प्रकार बोली ॥ ९ ॥

आनयेह सुतं क्षिप्रं राज्यकामुकमातुरम् ।
न हि राज्यमशिष्टेन शक्यं धर्मार्थलोपिना ॥ १० ॥

महाराज ! राज्यकी कामनासे आतुर हुए अपने पुत्रको शीघ्र बुलावाइये । धर्म और अर्थका लोप करनेवाला कोई भी अशिष्ट पुरुष राज्य नहीं पा सकता ॥ १० ॥

त्वं ह्येवात्र भृशं गर्ह्यो धृतराष्ट्र सुतप्रियः ।
यो जानन्पापतामस्य तत्प्रज्ञामनुवर्तसे ॥ ११ ॥

महाराज ! आपको अपना बेटा बहुत प्रिय है, अतः वर्तमान परिस्थितिके लिये आप ही अत्यन्त निन्दनीय हैं; क्योंकि आप उसके पापपूर्ण विचारोंको जानते हुए भी सदा उसीके बुद्धिका अनुसरण करते हैं ॥ ११ ॥

स एष काममन्युभ्यां प्रलब्धो मोहमास्थितः ।
अशक्योऽद्य त्वया राजन्विनिवर्तयितुं बलात् ॥ १२ ॥

राजन् ! इस दुर्योधनको काम और क्रोधने अपने वशमें कर लिया है, यह मोहमें फँस गया है; अतः आज आपका इसे बलपूर्वक पीछे लौटाना असम्भव है ॥ १२ ॥

राज्यप्रदाने मूढस्य बालिशस्य दुरात्मनः ।
दुःसहायस्य लुब्धस्य धृतराष्ट्रोऽश्नुते फलम् ॥ १३ ॥

दुष्ट सहायकोंसे युक्त, मूढ, अज्ञानी, लोभी और दुरात्मा पुत्रको अपना राज्य सौंप देनेका फल महाराज धृतराष्ट्र स्वयं भोग रहे हैं ॥ १३ ॥

कथं हि स्वजने भेदमुपेक्षेत महामतिः ।
भिन्नं हि स्वजनेन त्वां प्रसहिष्यन्ति शत्रवः ॥ १४ ॥

कोई भी बुद्धिमान् स्वजनोंमें फैलती हुई फूटकी उपेक्षा कैसे कर सकता है ? राजन् ! स्वजनोंमें फूट डालकर उनसे पृथक् होनेवाले आपको सभी शत्रु पराभूत करेंगे ॥ १४ ॥

या हि शक्या महाराज साम्ना दानेन वा पुनः ।
निस्तर्तुमापदः स्वेषु दण्डं कस्तत्र पातयेत् ॥ १५ ॥

महाराज ! जिस आपत्तिको साम अथवा भेदनीतिसे पार किया जा सकता है, उसके लिये आत्मीयजनोंपर दण्डका प्रयोग कौन करेगा ? ॥ १५ ॥

शासनाद् धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनममर्षणम् ।
मातुश्च वचनात्क्षत्ता सभां प्रावेशयत्पुनः ॥ १६ ॥

पिता धृतराष्ट्रके आदेश और माता गान्धारीकी आज्ञासे विदुर असहिष्णु दुर्योधनको पुनः सभामें बुला ले आये ॥ १६ ॥

स मातुर्वचनाकाङ्क्षी प्रविवेश सभां पुनः ।
अभिताम्रेक्षणः क्रोधान्निःश्वसन्निव पन्नगः ॥ १७ ॥

दुर्योधनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं । वह फुफकारते हुए सर्पकी भाँति लम्बी साँसें खींचता हुआ माताकी बात सुननेकी इच्छासे सभाभवनमें पुनः प्रविष्ट हुआ ॥ १७ ॥

तं प्रविष्टमभिप्रेक्ष्य पुत्रमुत्पथमास्थितम् ।
विगर्हमाणा गान्धारी समर्थं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥

अपने कुमार्गगामी पुत्रको पुनः सभाके भीतर आया देख गान्धारी उसकी निन्दा करती हुई शान्तिस्थापनके लिये इस प्रकार बोली— ॥ १८ ॥

दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम पुत्रक ।
हितं ते सानुबन्धस्य तथायत्यां सुखोदयम् ॥ १९ ॥

बेटा दुर्योधन ! मेरी यह बात सुनो। जो सगे सम्बन्धियोंसहित तुम्हारे लिये हितकारक और भविष्यमें सुखकी प्राप्ति करानेवाली है ॥ १९ ॥

भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चापचितिः कृता ।
भवेद्द्रोणमुखानां च सुहृदां शाम्यता त्वया ॥ २० ॥

यदि तुम शान्त हो जाओ तो तुम्हारे द्वारा भीष्मकी, पिताकी, मेरी तथा द्रोण आदि अन्य हितैषी सुहृदोंकी पूजा सम्पन्न हो जायेगी ॥ २० ॥

न हि राज्यं महाप्राज्ञ स्वेन कामेन शक्यते ।
अवाप्तुं रक्षितुं वापि भोक्तुं वा भरतर्षभ ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! महामते ! कोई भी अपनी इच्छामात्रसे राज्यकी प्राप्ति, रक्षा अथवा उपभोग नहीं कर सकता ॥ २१ ॥

न ह्यवश्येन्द्रियो राज्यमश्नीयाद्दीर्घमन्तरम् ।
विजितात्मा तु मेधावी स राज्यमभिपालयेत् ॥ २२ ॥

जिसने अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है, वह दीर्घकालतक राज्यका उपभोग नहीं कर सकता। जिसने अपने मनको जीत लिया है, वह मेधावी पुरुष ही राज्यकी रक्षा कर सकता है ॥ २२ ॥

कामक्रोधौ हि पुरुषमर्थेभ्यो व्यपकर्षतः ।
तौ तु शत्रू विनिर्जित्य राजा विजयते महीम् ॥ २३ ॥

काम और क्रोध मनुष्यको धनसे दूर खींच ले जाते हैं। उन दोनों शत्रुओंको जीत लेनेपर राजा इस पृथ्वीपर विजय पाता है ॥ २३ ॥

लोकेश्वरप्रभुत्वं हि महदेतद्दुरात्मभिः ।
राज्यं नामेप्सितं स्थानं न शक्यमभिरक्षितुम् ॥ २४ ॥

जनेश्वर ! यह महान् प्रभुत्व ही राज्य नामक अभीष्ट स्थान है। जिनकी अन्तरात्मा दूषित है, वे इसकी रक्षा नहीं कर सकते ॥ २४ ॥

इन्द्रियाणि महत्प्रेप्सुर्नियच्छेदर्थधर्मयोः ।
इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिर्वर्धतेऽग्निरिवेन्धनैः ॥ २५ ॥

महत्पदको प्राप्त करनेकी इच्छावाला पुरुष अपनी इन्द्रियोंको अर्थ और धर्ममें नियन्त्रित करे । इन्द्रियोंको जीत लेनेपर बुद्धि उसी प्रकार बढती है, जैसे ईंधन डालनेसे आग प्रज्वलित हो उठती है ॥ २५ ॥

अविधेयानि हीमानि व्यापादयितुमप्यलम् ।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ २६ ॥

जैसे उद्दण्ड घोडे काबूमें न होनेपर मूर्ख सारथिको मार्गमें ही मार डालते हैं, उसी प्रकार यदि इन इन्द्रियोंको काबूमें न रक्खा जाये तो ये मनुष्यका नाश करनेके लिये भी पर्याप्त हैं ॥ २६ ॥

अविजित्य य आत्मानममात्यान्विजिगीषते ।
अजितात्माजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥ २७ ॥

जो पहले अपने मनको न जीतकर मन्त्रियोंको जीतनेकी इच्छा करता है और जो अपने मन को और अपने मंत्रियोंको जीत नहीं सका है वह विवश होकर राज्य और जीवन दोनोंसे वञ्चित हो जाता है ॥ २७ ॥

आत्मानमेव प्रथमं देशरूपेण यो जयेत् ।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥ २८ ॥

अतः पहले अपने मनको ही एक देश मानकर इसे जीते, तत्पश्चात् मन्त्रियों और शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छा करे । ऐसा करनेसे उसकी विजय पानेकी अभिलाषा कभी व्यर्थ नहीं होती है ॥ २८ ॥

वश्येन्द्रियं जितामात्यं धृतदण्डं विकारिषु ।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥ २९ ॥

जिसने अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर रक्खा है, मन्त्रियोंपर विजय पा ली है तथा जो अपराधियोंको दण्ड प्रदान करता है, खूब सोच समझकर कार्य करनेवाले उस धीर पुरुषकी लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है ॥ २९ ॥

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुभौ ।
कामक्रोधौ शरीरस्थौ प्रज्ञानं तौ विलुम्पतः ॥ ३० ॥

छोटे छिद्रवाले जालसे ढकी हुई दो मछलियोंकी भांति ये काम और क्रोध भी शरीरके भीतर ही छिपे हुए हैं, जो मनुष्यके ज्ञानको नष्ट कर देते हैं ॥ ३० ॥

याभ्यां हि देवाः स्वर्यातुः स्वर्गस्यापिदधुर्मुखम्।
बिभ्यतोऽनुपरागस्य कामक्रोधौ स्म वर्धितौ ॥ ३१ ॥

इन्हीं दोनों काम और क्रोध के द्वारा देवताओंने स्वर्गमें जानेवाले पुरुषके लिये उस लोकका दरवाजा बंद कर रक्खा है। वीतराग पुरुषसे डरकर ही देवताओंने स्वर्गप्राप्तिके प्रतिबन्धक काम और क्रोधकी वृद्धि की है ॥ ३१ ॥

कामं क्रोधं च लोभं च दम्भं दर्पं च भूमिपः।
सम्यग्विजेतुं यो वेद स महीमभिजायते ॥ ३२ ॥

जो राजा काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और दर्पको अच्छी तरह जीतनेकी कला जानता है वही इस पृथ्वीका शासन कर सकता है ॥ ३२ ॥

सततं निग्रहे युक्त इन्द्रियाणां भवेन्नृपः।
ईप्सन्नर्थं च धर्मं च द्विषतां च पराभवम् ॥ ३३ ॥

अतः अर्थ, धर्म तथा शत्रुओंका पराभव चाहनेवाले राजाको सदा अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखनेका प्रयत्न करना चाहिये ॥ ३३ ॥

कामाभिभूतः क्रोधाद्वा यो मिथ्या प्रतिपद्यते।
स्वेषु चान्येषु वा तस्य न सहाया भवन्त्युत ॥ ३४ ॥

जो राजा काम अथवा क्रोधसे अभिभूत होकर स्वजनों या दूसरोंके प्रति मिथ्या बर्ताव कपट एवं अन्याययुक्त आचरण करता है, उसके कोई सहायक नहीं होते ॥ ३४ ॥

एकीभूतैर्महाप्राज्ञैः शूरैररिनिबर्हणैः।
पाण्डवैः पृथिवीं तात भोक्ष्यसे सहितः सुखी ॥ ३५ ॥

तात! परस्पर संगठित होनेके कारण एकीभूत हुए हुए परम ज्ञानी, शूरवीर तथा शत्रुसंहारमें समर्थ पाण्डवोंके साथ मिल कर ही तुम सुखपूर्वक इस पृथ्वीका राज्य भोग सकोगे ॥ ३५ ॥

यथा भीष्मः शान्तनवो द्रोणश्चापि महारथः।
आहतुस्तात तत्सत्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३६ ॥

तात! शान्तनुनन्दन भीष्म तथा महारथी द्रोणाचार्य जैसा कह रहे हैं, वह सर्वथा सत्य है। वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुन अजेय हैं ॥ ३६ ॥

प्रपद्यस्व महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
प्रसन्नो हि सुखाय स्यादुभयोरेव केशवः ॥ ३७ ॥

अतः अनायास ही महान् कर्म करनेवाले महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लो; क्योंकि भगवान् केशव प्रसन्न होनेपर दोनों ही पक्षोंको सुखी बना सकते हैं ॥ ३७ ॥

सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने ।
प्राज्ञानां कृतविद्यानां स नरः शत्रुनन्दनः ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य अपना भला चाहनेवाले ज्ञानी एवं विद्वान् सुहृदोंके शासनमें नहीं रहता, उनके उपदेशके अनुसार नहीं चलता, वह शत्रुओंका आनन्द बढानेवाला होता है ॥ ३८ ॥

न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम् ।
न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत आधिथाः ॥ ३९ ॥

तात ! युद्ध करनेमें कल्याण नहीं है, उससे धर्म और अर्थकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर सुख तो मिल ही कैसे सकता है ? युद्धमें सदा विजय ही हो, यह बात भी निश्चित नहीं है; अतः उसमें मन न लगाओ ॥ ३९ ॥

भीष्मेण हि महाप्राज्ञ पित्रा ते बाह्लिकेन च ।
दत्तोंऽशः पाण्डुपुत्राणां भेदाद्भीतैररिंदम ॥ ४० ॥

शत्रुदमन ! महाप्राज्ञ ! आपसकी फूटके भयसे ही पितामह भीष्मने, तुम्हारे पिताने और महाराज बाह्लीकने भी पाण्डवोंको राज्यका भाग प्रदान किया है ॥ ४० ॥

तस्य चैतत्प्रदानस्य फलमद्यानुपश्यसि ।
यद् भुङ्क्षे पृथिवीं सर्वां शूरैर्निहतकण्टकाम् ॥ ४१ ॥

उसीके देनेका आज तुम यह प्रत्यक्ष फल देखते हो कि उन शूरवीर पाण्डवों द्वारा निष्कण्टक बनायी हुई इस सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोग रहे हो ॥ ४१ ॥

प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिंदम ।
यदीच्छसि सहामात्यो भोक्तुमर्धं महाक्षितास् ॥ ४२ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले पुत्र ! यदि तुम अपने मन्त्रियोंसहित राज्य भोगना चाहते हो तो पाण्डवोंको उनका यथोचित भाग—आधा राज्य दे दो ॥ ४२ ॥

अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवनम् ।
सुहृदां वचने तिष्ठन्यशः प्राप्स्यसि भारत ॥ ४३ ॥

भारत ! भूमण्डलका आधा राज्य मन्त्रियोंसहित तुम्हारे जीवननिर्वाहके लिये पर्याप्त है । तुम सुहृदोंकी आज्ञाके अनुसार चलकर सुयश प्राप्त करोगे ॥ ४३ ॥

श्रीमद्भिरात्मवद्भिर्हि बुद्धिमद्भिर्जितेन्द्रियैः ।
पाण्डवैर्विग्रहस्तात भ्रंशयेन्महतः सुखात् ॥ ४४ ॥

तात ! श्रीमान्, मनस्वी, बुद्धिमान् तथा जितेन्द्रिय पाण्डवोंके साथ होनेवाला कलह तुम्हें महान् सुखसे वञ्चित कर देगा ॥ ४४ ॥

निगृह्य सुहृदां मन्युं शाधि राज्यं यथोचितम्।
स्वमंशं पाण्डुपुत्रेभ्यः प्रदाय भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तुम पाण्डवोंको उनका राज्यभाग देकर सुहृदोंके बढते हुए क्रोधको शान्त कर दो और अपने राज्यका यथोचित रीतिसे शासन करते रहो ॥ ४५ ॥

अलमह्ना निकारोऽयं त्रयोदश समाः कृतः।
शमयैनं महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम् ॥ ४६ ॥

बेटा ! पाण्डवोंको जो तेरह वर्षोंके लिये निर्वासित कर दिया गया, यही उनका महान् अपकार हुआ है। महामते ! तुम्हारे काम और क्रोधसे इस अपकारकी और भी वृद्धि हुई है। अब तुम संधिके द्वारा इसे शान्त कर दो ॥ ४६ ॥

न चैष शक्तः पार्थानां यस्त्वदर्थमभीप्सति।
सूतपुत्रो दृढक्रोधो भ्राता दुःशासनश्च ते ॥ ४७ ॥

तुम जो कुन्तीके पुत्रोंका धन हडप लेना चाहते हो ऐसा करनेकी तुम्हारी शक्ति नहीं है। क्रोधको दृढतापूर्वक धारण करनेवाला सूतपुत्र कर्ण तथा तुम्हारा भाई दुःशासन– ये दोनों भी ऐसा करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ४७ ॥

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे भीमसेने धनंजये।
धृष्टद्युम्ने च संक्रुद्धे न स्युः सर्वाः प्रजा ध्रुवम् ॥ ४८ ॥

जिस समय भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण तथा भीमसेन, अर्जुन और धृष्टद्युम्न– ये अत्यंत कुपित होकर परस्पर युद्ध करेंगे, उस समय सारी प्रजाका विनाश अवश्यम्भावी है ॥४८॥

अमर्षवशमापन्नो मा कुरूंस्तात जीघनः।
सर्वा हि पृथिवी स्पृष्टा त्वत्पाण्डवकृते वधम् ॥ ४९ ॥

तात ! तुम क्रोधके वशीभूत होकर समस्त कौरवोंका वध न कराओ। तुम्हारे लिये इस सम्पूर्ण भूमण्डलका विनाश न हो ॥ ४९ ॥

यच्च त्वं मन्यसे मूढ भीष्मद्रोणकृपादयः।
योत्स्यन्ते सर्वशक्त्येति नैतदद्योपपद्यते ॥ ५० ॥

मूढ ! तुम जो यह समझ रहे हो कि भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि अपनी पूरी शक्ति लगाकर मेरी ओरसे युद्ध करेंगे, यह इस समय कदापि सम्भव नहीं है ॥ ५० ॥

समं हि राज्यं प्रीतिश्च स्थानं हि विजितात्मनाम्।
पाण्डवेष्वथ युष्मासु धर्मस्त्वभ्यधिकस्ततः ॥ ५१ ॥

क्योंकि इन आत्मजयी पुरुषोंकी दृष्टिमें इस राज्यका पाण्डवों अथवा तुमलोगोंके पास रहना समान ही है। इनके हृदयमें दोनोंके लिये एकसा ही प्रेम और स्थान है तथा राज्यसे भी बढकर ये धर्मको महत्त्व देते हैं ॥ ५१ ॥

राजपिण्डभयादेते यदि हास्यन्ति जीवितम् ।
न हि शक्ष्यन्ति राजानं युधिष्ठिरमुदीक्षितुम् ॥ ५२ ॥

इस राज्यका इन्होंने जो अन्न खाया है, उसके भयसे यद्यपि ये तुम्हारी ओरसे लड़कर अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे, तथापि राजा युधिष्ठिरकी ओर कभी वक्रदृष्टिसे नहीं देख सकेंगे ॥ ५२ ॥

न लोभादर्थसम्पत्तिर्नराणामिह दृश्यते ।
तदलं तात लोभेन प्रशाम्य भरतर्षभ ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ ३९९८ ॥

तात भरतश्रेष्ठ ! इस संसारमें केवल लोभ करनेसे किसीको धनकी प्राप्ति होती नहीं दिखायी देती; अतः लोभसे कुछ सिद्ध होनेवाला नहीं है। तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ ५३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ सत्ताइसवां अध्याय समाप्त ॥ १२७ ॥ ३९९८ ॥

: १२८ :

वैशम्पायन उवाच

तत्तु वाक्यमनादृत्य सोऽर्थवन्मातृभाषितम् ।
पुनः प्रतस्थे संरम्भात्सकाशमकृतात्मनाम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— जनमेजय ! माताके कहे हुए उस नीतियुक्त वचनका अनादर करके दुर्योधन पुनः क्रोधपूर्वक वहांसे उठकर उन्हीं अजितात्मा मन्त्रियोंके पास चला गया ॥ १ ॥

ततः सभाया निर्गम्य मन्त्रयामास कौरवः ।
सौबलेन मताक्षेण राज्ञा शकुनिना सह ॥ २ ॥

उस सभाभवनसे निकलकर दुर्योधनने द्यूतविद्याके जानकार सुबलपुत्र राजा शकुनिके साथ गुप्तरूपसे मन्त्रणा की ॥ २ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ।
दुःशासनचतुर्थानामिदमासीद्विचेष्टितम् ॥ ३ ॥

उस समय दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा दुःशासन इन चारोंका निश्चय इस प्रकार हुआ ॥ ३ ॥

पुरायमस्मान्गृह्णाति क्षिप्रकारी जनार्दनः ।
सहितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ॥ ४ ॥

वे परस्पर कहने लगे शीघ्रतापूर्वक प्रत्येक कार्य करनेवाले श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्र और भीष्मके साथ मिलकर जबतक हमें कैद करें, उसके पहले ॥ ४ ॥

वयमेव हृषीकेशं निगृह्णीम बलादिव ।
प्रसह्य पुरुषव्याघ्रमिन्द्रो वैरोचनिं यथा ॥ ५ ॥

हमलोग ही बलपूर्वक इन पुरुषसिंह हृषीकेशको उसी तरह बन्दी बना लें, जिस तरह इन्द्रने विरोचनपुत्र बलिको बांध लिया था ॥ ५ ॥

श्रुत्वा गृहीतं वार्ष्णेयं पाण्डवा हतचेतसः ।
निरुत्साहा भविष्यन्ति भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णको कैद हुआ सुनकर पाण्डव दांत तोडे हुए सर्पोंके समान अचेत और हतोत्साह हो जायँगे ॥ ६ ॥

अयं ह्येषां महाबाहुः सर्वेषां शर्म वर्म च ।
अस्मिन्गृहीते वरदे ऋषभे सर्वसात्वताम् ।
निरुद्यमा भविष्यन्ति पाण्डवाः सोमकैः सह ॥ ७ ॥

ये महाबाहु श्रीकृष्ण ही समस्त पाण्डवोंके कल्याणसाधक और कवचकी भांति रक्षा करनेवाले हैं । सम्पूर्ण यदुवंशियोंके शिरोमणि तथा वरदायक इस श्रीकृष्णके बन्दी बना लिये जानेपर सोमकोंसहित सब पाण्डव उद्योगशून्य हो जायँगे ॥ ७ ॥

तस्माद्वयमिहैवैनं केशवं क्षिप्रकारिणम् ।
क्रोशतो धृतराष्ट्रस्य बद्ध्वा योत्स्यामहे रिपून् ॥ ८ ॥

इसलिये हम यहीं शीघ्रतापूर्वक कार्य करनेवाले केशवको राजा धृतराष्ट्रके चीखने चिल्लानेपर भी कैद करके शत्रुओंके साथ युद्ध करें ॥ ८ ॥

तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम् ।
इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुध्यत सात्यकिः ॥ ९ ॥

विद्वान् सात्यकि इशारेसे ही दूसरोंके मनकी बात समझ लेनेवाले थे । वे उन दुष्टचित्त पापियोंके उस पापपूर्ण अभिप्रायको शीघ्र ही ताड गये ॥ ९ ॥

तदर्थमभिनिष्क्रम्य हार्दिक्येन सहास्थितः ।
अब्रवीत्कृतवर्माणं क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ॥ १० ॥

फिर उसके प्रतीकारके लिये वे सभासे बाहर निकलकर कृतवर्मासे मिले और इस प्रकार बोले तुम शीघ्र ही अपनी सेनाको तैयार कर लो ॥ १० ॥

व्यूढानीकः सभाद्वारमुपतिष्ठस्व दंशितः ।
यावदाख्याम्यहं चैतत्कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे ॥ ११ ॥

और स्वयं भी कवच धारण करके व्यूहाकार खडी हुई सेनाके साथ सभाभवनके द्वारपर डटे रहो । तबतक मैं अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको कौरवोंके षड्यन्त्रकी सूचना दिये देता हूँ ॥ ११ ॥

स प्रविश्य सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव ।
आचष्ट तमभिप्रायं केशवाय महात्मने ॥ १२ ॥

ऐसा कहकर वीर सात्यकिने सभामें प्रवेश किया, मानो सिंह पर्वतकी कन्दरामें घुस रहा हो । वहां जाकर उन्होंने महात्मा केशवसे कौरवोंका अभिप्राय बताया ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चान्वभाषत ।
तेषामेतमभिप्रायमाचचक्षे स्मयन्निव ॥ १३ ॥

फिर धृतराष्ट्र और विदुरको भी इसकी सूचना दी । सात्यकिने किंचित् मुसकराते हुए से उन कौरवोंके इस अभिप्रायको इस प्रकार बताया ॥ १३ ॥

धर्मादपेतमर्थाच्च कर्म साधुविगर्हितम् ।
मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चावाप्यं कथंचन ॥ १४ ॥

सभासदो ! कुछ मूर्ख कौरव एक ऐसा नीच कर्म करना चाहते हैं, जो धर्म, अर्थ और काम सभी दृष्टियोंसे साधुपुरुषोंद्वारा निन्दित है । यद्यपि इस कार्यमें उन्हें किसी प्रकार सफलता नहीं प्राप्त हो सकती ॥ १४ ॥

पुरा विकुर्वते मूढाः पापात्मानः समागताः ।
धर्षिताः काममन्युभ्यां क्रोधलोभवशानुगाः ॥ १५ ॥

क्रोध और लोभके वशीभूत हो काम एवं रोषसे तिरस्कृत होकर कुछ पापात्मा एवं मूढ मानव यहां आकर भारी बखेडा पैदा करना चाहते हैं ॥ १५ ॥

इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ।
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः ॥ १६ ॥

जैसे बालक और जड बुद्धिवाले लोग जलती आगको कपडेमें बांधना चाहें, उसी प्रकार ये मन्दबुद्धि कौरव इन कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको यहां कैद करना चाहते हैं ॥ १६ ॥

सात्यकेस्तद्वचः श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिवान् ।
धृतराष्ट्रं महाबाहुमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ १७ ॥

सात्यकिका यह सुनकर दूरदर्शी विदुरने कौरवसभामें महाबाहु धृतराष्ट्रसे कहा ॥ १७ ॥

राजन्परीतकालास्ते पुत्राः सर्वे परंतप ।
अयशस्यमशक्यं च कर्म कर्तुं समुद्यताः ॥ १८ ॥

परंतप नरेश ! जान पडता है, आपके सभी पुत्र सर्वथा कालके अधीन हो गये हैं । इसीलिये वे यह अकीर्तिकारक और असम्भव कर्म करनेको उतारू हुए हैं ॥ १८ ॥

इमं हि पुण्डरीकाक्षमभिभूय प्रसह्य च।
निग्रहीतुं किलेच्छन्ति सहिता वासवानुजम् ॥ १९ ॥

सुननेमें आया है कि वे सब संगठित होकर इन पुरुषसिंह इन्द्रके छोटे भाई कमलनयन श्रीकृष्णको तिरस्कृत करके हठपूर्वक कैद करना चाहते हैं। ॥ १९ ॥

इमं पुरुषशार्दूलमप्रधृष्यं दुरासदम्।
आसाद्य न भविष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥ २० ॥

पर इन दुर्धर्ष वीर तथा किसीके भी पकड़में न आनेवाले इन श्रीकृष्णके पास आकर सभी विरोधी जलती आगमें गिरनेवाले पतंगोंके समान नष्ट हो जायँगे ॥ २० ॥

अयमिच्छन्हि तान्सर्वान्यतमानाञ्जनार्दनः।
सिंहो मृगानिव क्रुद्धो गमयेद्यमसादनम् ॥ २१ ॥

जैसे क्रोधमें भरा हुआ सिंह हरिणोंको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार ये भगवान् श्रीकृष्ण यदि चाहें तो क्रुद्ध होनेपर समस्त विपक्षी योद्धाओंको यमलोक पहुँचा सकते हैं ॥ २१ ॥

न त्वयं निन्दितं कर्म कुर्यात्कृष्णः कथंचन।
न च धर्मादपक्रामेदच्युतः पुरुषोत्तमः ॥ २२ ॥

परंतु ये पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण किसी प्रकार भी निन्दित अथवा पापकर्म नहीं कर सकते और न कभी धर्मसे ही पीछे हट सकते हैं ॥ २२ ॥

विदुरेणैवमुक्ते तु केशवो वाक्यमब्रवीत्।
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य सुहृदां शृण्वतां मिथः ॥ २३ ॥

विदुरके ऐसा कहनेपर भगवान् केशवने समस्त सुहृदोंके सुनते हुए राजा धृतराष्ट्रकी ओर देखकर कहा ॥ २३ ॥

राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा।
एते वा मामहं वैनाननुजानीहि पार्थिव ॥ २४ ॥

राजन्! ये दुष्ट कौरव यदि कुपित होकर मुझे बलपूर्वक पकड़ सकते हों तो आप इन्हें आज्ञा दे दीजिये। फिर देखिये, ये मुझे पकड़ पाते हैं या मैं इन्हें बन्दी बनाता हूँ ॥२४॥

एतान्हि सर्वान्संरब्धान्नियन्तुमहमुत्सहे।
न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यां पापं कथंचन ॥ २५ ॥

यद्यपि क्रोधमें भरे हुए इन समस्त कौरवोंको मैं बाँध लेनेकी शक्ति रखता हूँ, तथापि मैं किसी प्रकार भी कोई निन्दित कर्म अथवा पाप नहीं कर सकता ॥ २५ ॥

पाण्डवार्थे हि लुभ्यन्तः स्वार्थाद्धास्यन्ति ते सुताः।
एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥

आपके पुत्र पाण्डवोंका धन लेनेके लिये लुभाये हुए हैं, परंतु इन्हें अपने धनसे भी हाथ धोना पडेगा। यदि ये ऐसा ही चाहते हैं, तब तो युधिष्ठिरका काम बन गया ही समझें ॥ २६ ॥

अद्यैव त्वहमेतांश्च ये चैतानन्नु भारत।
निगृह्य राजन्पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्कृतं भवेत् ॥ २७ ॥

भारत! मैं आज ही इन कौरवों तथा इनके अनुगामियोंको कैद करके यदि कुन्तीपुत्रोंके हाथमें सौंप दूँ तो क्या बुरा होगा? ॥ २७ ॥

इदं तु न प्रवर्तेयं निन्दितं कर्म भारत।
संनिधौ ते महाराज क्रोधजं पापबुद्धिजम् ॥ २८ ॥

परंतु, भारत! महाराज! आपके समीप मैं क्रोध अथवा पापबुद्धिसे होनेवाला यह निन्दित कर्म नहीं प्रारम्भ करूंगा ॥ २८ ॥

एष दुर्योधनो राजन्यथेच्छति तथास्तु तत्।
अहं तु सर्वान्समथाननुजानामि भारत ॥ २९ ॥

हे भारत! यह दुर्योधन जैसा चाहता है वैसा ही हो। मैं आपके सभी पुत्रोंको इसके लिये आज्ञा देता हूं ॥ २९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु विदुरं धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत।
क्षिप्रमानय तं पापं राज्यलुब्धं सुयोधनम् ॥ ३० ॥
सहमित्रं सहामात्यं ससोदर्यं सहानुगम्।
शक्नुयां यदि पन्थानमवतारयितुं पुनः ॥ ३१ ॥

यह सुनकर धृतराष्ट्रने विदुरसे बोला— तुम उस पापात्मा राज्यलोभी दुर्योधनको उसके मित्रों, मन्त्रियों, भाइयों तथा अनुगामी सेवकोंसहित शीघ्र मेरे पास बुला लाओ। यदि पुनः उसे सन्मार्गपर उतार सकूं तो अच्छा होगा ॥ ३०-३१ ॥

ततो दुर्योधनं क्षत्ता पुनः प्रावेशयत्सभाम्।
अकामं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥ ३२ ॥

तब विदुर राजाओंसे घिरे हुए दुर्योधनको उसकी इच्छा न होते हुए भी भाइयोंसहित पुनः सभामें ले आये ॥ ३२ ॥

अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत।
कर्णदुःशासनाभ्यां च राजभिश्चाभिसंवृतम् ॥ ३३ ॥
उस समय कर्ण, दुःशासन तथा अन्य राजाओंसे भी घिरे हुए दुर्योधनसे राजा धृतराष्ट्रने कहा ॥ ३३ ॥

नृशंस पापभूयिष्ठ क्षुद्रकर्मसहायवान्।
पापैः सहायैः संहत्य पापं कर्म चिकीर्षसि ॥ ३४ ॥
नृशंस महापापी! नीच कर्म करनेवाले ही तेरे सहायक हैं। तू उन पापी सहायकोंसे मिलकर पापकर्म ही करना चाहता है ॥ ३४ ॥

अशक्यमयशस्यं च सद्भिश्चापि विगर्हितम्।
यथा त्वादृशको मूढो व्यवस्येत्कुलपांसनः ॥ ३५ ॥
वह कर्म ऐसा है, जिसकी साधु पुरुषोंने सदा निन्दा की है। वह अपयशकारक तो है ही, तू उसे कर भी नहीं सकता; परंतु तेरे जैसा कुलाङ्गार और मूर्ख मनुष्य उसे करनेकी चेष्टा करता है ॥ ३५ ॥

त्वमिमं पुण्डरीकाक्षमप्रधृष्यं दुरासदम्।
पापैः सहायैः संहत्य निग्रहीतुं किलेच्छसि ॥ ३६ ॥
सुनता हूं, तू अपने पापी सहायकोंसे मिलकर इन दुर्धर्ष एवं दुर्जय वीर कमलनयन श्रीकृष्णको कैद करना चाहता है ॥ ३६ ॥

यो न शक्यो बलात्कर्तुं देवैरपि सवासवैः।
तं त्वं प्रार्थयसे मन्द बालश्चन्द्रमसं यथा ॥ ३७ ॥
ओ मूढ! इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी जिन्हें बलपूर्वक अपने वशमें नहीं कर सकते, उन्हींको तू बंदी बनाना चाहता है। तेरी यह चेष्टा वैसी ही है, जैसे कोई बालक चन्द्रमा-को पकडना चाहता हो ॥ ३७ ॥

देवैर्मनुष्यैर्गन्धर्वैरसुरैरुरगैश्च यः।
न सोढुं समरे शक्यस्तं न बुध्यसि केशवम् ॥ ३८ ॥
देवता, मनुष्य, गन्धर्व, असुर और नाग भी संग्रामभूमिमें जिनका वेग नहीं सह सकते, उन भगवान् श्रीकृष्णको तू नहीं जानता ॥ ३८ ॥

दुर्ग्रहः पाणिना वायुर्दुःस्पर्शः पाणिना शशी।
दुर्धरा पृथिवी मूर्ध्ना दुर्ग्रहः केशवो बलात् ॥ ३९ ॥
जैसे वायुको हाथसे पकडना दुष्कर है, चन्द्रमाको हाथसे छूना कठिन है और पृथ्वीको सिरपर धारण करना असम्भव है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको बलपूर्वक पकडना दुष्कर है ॥ ३९ ॥

इत्युक्ते धृतराष्ट्रेण क्षत्तापि विदुरोऽब्रवीत् ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥ ४० ॥

धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर विदुरने भी अमर्षमें भरे हुए धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥ ४० ॥

सौभद्वारे वानरेन्द्रो द्विविदो नाम नामतः ।
शिलावर्षेण महता छादयामास केशवम् ॥ ४१ ॥

सौभद्वारमें द्विविद नामसे प्रसिद्ध एक वानरोंका राजा रहता था, जिसने एक दिन पत्थरोंकी बडी भारी वर्षा करके भगवान् श्रीकृष्णको आच्छादित कर दिया ॥ ४१ ॥

ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वयत्नेन माधवम् ।
ग्रहीतुं नाशकत्तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४२ ॥

वह पराक्रम करके सभी उपायोंसे श्रीकृष्णको पकडना चाहता था, परंतु इन्हें कभी पकड न सका । उन्हीं श्रीकृष्णको तुम बलपूर्वक अपने वशमें करना चाहते हो ! ॥ ४२ ॥

निर्मोचने षट्सहस्राः पाशैर्बद्ध्वा महासुराः ।
ग्रहीतुं नाशकंश्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४३ ॥

निर्मोचनमें छः हजार बडे बडे असुरोंने भगवान्को पाशोंमें बांध लिया। ये असुर भी जिन्हें बंदी न बना सके, उन्हींको तुम बलपूर्वक वशमें करना चाहते हो ॥ ४३ ॥

प्राग्ज्योतिषगतं शौरिं नरकः सह दानवैः ।
ग्रहीतुं नाशकत्तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४४ ॥

पहलेकी बात है, प्राग्ज्योतिषपुरमें गये हुए श्रीकृष्णको दानवोंसहित नरकासुरने भी वहां बंदी बनानेकी चेष्टा की; परंतु वह भी वहां सफल न हो सका । उन्हींको तुम बलपूर्वक अपने वशमें करना चाहते हो ॥ ४४ ॥

अनेन हि हता बाल्ये पूतना शिशुना तथा ।
गोवर्धनो धारितश्च गवार्थे भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इन्होंने ही बाल्यावस्थामें बच्चेके रूपमें पूतनाका वध किया था और गौओंकी रक्षाके लिये अपने हाथपर गोवर्धन पर्वतको धारण किया था ॥ ४५ ॥

अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः ।
अश्वराजश्च निहतः कंसश्चारिष्टमाचरन् ॥ ४६ ॥

अरिष्टासुर, धेनुक, महाबली चाणूर, अश्वराज केशी और कंस भी लोकहितके विरुद्ध आचरण करनेपर श्रीकृष्णके ही हाथसे मारे गये थे ॥ ४६ ॥

जरासंधश्च वक्रश्च शिशुपालश्च वीर्यवान्।
बाणश्च निहतः संख्ये राजानश्च निषूदिताः ॥ ४७ ॥

जरासंध, दंतवक्र, पराक्रमी शिशुपाल और बाणासुर भी इन्हींके हाथसे मारे गये हैं तथा अन्य बहुतसे राजाओंका भी इन्होंने ही संहार किया है ॥ ४७ ॥

वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चामितौजसा।
पारिजातं च हरता जितः साक्षाच्छचीपतिः ॥ ४८ ॥

अमित तेजस्वी श्रीकृष्णने राजा वरुणपर विजय पायी है। इन्होंने अग्निदेवको भी पराजित किया है और पारिजातहरण करते समय साक्षात् शचीपति इन्द्रको भी जीता है ॥ ४८ ॥

एकार्णवे शयानेन हतौ तौ मधुकैटभौ।
जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हतः ॥ ४९ ॥

इन्होंने एकार्णवके जलमें सोते समय मधु और कैटभनामक दैत्योंको मारा था और दूसरा शरीर धारण करके हयग्रीव नामक राक्षसका भी इन्होंने ही वध किया था ॥ ४९ ॥

अयं कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे।
यद्यदिच्छेदयं शौरिस्तत्तत्कुर्यादयत्नतः ॥ ५० ॥

ये ही सबके कर्ता हैं, इनका दूसरा कोई कर्ता नहीं है। सबके पुरुषार्थके कारण भी यही हैं। ये भगवान् श्रीकृष्ण जो जो इच्छा करें, वह सब अनायास ही कर सकते हैं ॥ ५० ॥

तं न बुध्यसि गोविन्दं घोरविक्रममच्युतम्।
आशीविषमिव क्रुद्धं तेजोराशिमनिर्जितम् ॥ ५१ ॥

अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले इन भगवान् गोविन्दका पराक्रम भयंकर है। तुम इन्हें अच्छी तरह नहीं जानते। ये क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पके समान भयानक हैं। ये सत्पुरुषोंद्वारा प्रशंसित एवं तेजकी राशि हैं ॥ ५१ ॥

प्रधर्षयन्महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
पतङ्गोऽग्निमिवासाद्य सामात्यो न भविष्यसि ॥ ५२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ ४०५० ॥

अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णका तिरस्कार करनेपर तुम अपने मन्त्रियोंसहित उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे जैसे पतंगा आगमें पडकर भस्म हो जाता है ॥ ५२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ अट्ठाइसवां अध्याय समाप्त ॥ १२८ ॥ ४०५० ॥

: १२९ :

वैशम्पायन उवाच

विदुरेणैवमुक्ते तु केशवः शत्रुपूगहा ।
दुर्योधनं धार्तराष्ट्रमभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! विदुरके ऐसा कहनेपर शत्रुसमूहका संहार करनेवाले शक्तिशाली श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा– ॥ १ ॥

एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधन ।
परिभूय च दुर्बुद्धे ग्रहीतुं मां चिकीर्षसि ॥ २ ॥

दुर्बुद्धि दुर्योधन ! तू मोहवश जो मुझे अकेला मान रहा है और इसलिये मेरा तिरस्कार करके जो मुझे पकडना चाहता है, यह तेरा अज्ञान है ॥ २ ॥

इहैव पाण्डवाः सर्वे तथैवान्धकवृष्णयः ।
इहादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च महर्षिभिः ॥ ३ ॥

देख, सब पाण्डव यहीं हैं । अन्धक और वृष्णिवंशके वीर भी यहीं मौजूद हैं । आदित्यगण, रुद्रगण तथा महर्षियोंसहित वसुगण भी यहीं हैं ॥ ३ ॥

एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा ।
तस्य संस्मयतः शौरेर्विद्युद्रूपा महात्मनः ।
अङ्गुष्ठमात्रास्त्रिदशा मुमुचुः पावकार्चिषः ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर विपक्षी वीरोंका विनाश करनेवाले भगवान् केशव उच्चस्वरसे अट्टहास करने लगे । हँसते समय उन महात्मा श्रीकृष्णके श्रीअङ्गोंमें स्थित विद्युत्के समान कान्तिवाले तथा अँगूठेके बराबर छोटे शरीरवाले देवता आगकी लपटें छोडने लगे ॥ ४ ॥

तस्य ब्रह्मा ललाटस्थो रुद्रो वक्षसि चाभवत् ।
लोकपाला भुजेष्वासन्नग्निरास्यादजायत ॥ ५ ॥

उनके ललाटमें ब्रह्मा और वक्षःस्थलमें रुद्रदेव विद्यमान थे । समस्त लोकपाल उनकी भुजाओंमें स्थित थे । मुखसे अग्निकी लपटें निकलने लगीं । ॥ ५ ॥

आदित्याश्चैव साध्याश्च वसवोऽथाश्विनावपि ।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवास्तथैव च ।
बभूवुश्चैव रूपाणि यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥ ६ ॥

आदित्य, साध्य, वसु, दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्रसहित मरुद्गण, विश्वेदेव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस भी उनके विभिन्न अङ्गोंमें प्रकट हो गये ॥ ६ ॥

प्रादुरास्तां तथा दोर्भ्यां संकर्षणधनंजयौ।
दक्षिणेऽथार्जुनो धन्वी हली रामश्च सव्यतः ॥ ७ ॥

उनकी दोनों भुजाओंसे बलराम और अर्जुनका प्रादुर्भाव हुआ। दाहिनी भुजामें धनुर्धर अर्जुन और बायींमें हलधर बलराम विद्यमान थे ॥ ७ ॥

भीमो युधिष्ठिरश्चैव माद्रीपुत्रौ च पृष्ठतः।
अन्धका वृष्णयश्चैव प्रद्युम्नप्रमुखास्ततः ॥ ८ ॥

भीमसेन, युधिष्ठिर तथा माद्रीनन्दन नकुल सहदेव भगवान्‌के पृष्ठभागमें स्थित थे। प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी योद्धा ॥ ८ ॥

अग्रे बभूवुः कृष्णस्य समुद्यतमहायुधाः।
शङ्खचक्रगदाशक्तिशार्ङ्गलाङ्गलनन्दकाः ॥ ९ ॥

हाथोंमें विशाल आयुध धारण किये भगवान्‌के अग्रभागमें प्रकट हुए। शंख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्गधनुष, हल तथा नन्दक नामक खड्ग ॥ ९ ॥

अदृश्यन्तोद्यतान्येव सर्वप्रहरणानि च।
नानाबाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वशः ॥ १० ॥

ये ऊपर उठे हुए ही समस्त आयुध श्रीकृष्णकी अनेक भुजाओंमें देदीप्यमान दिखायी देते थे ॥ १० ॥

नेत्राभ्यां नस्ततश्चैव श्रोत्राभ्यां च समन्ततः।
प्रादुरासन्महारौद्राः सधूमाः पावकार्चिषः।
रोमकूपेषु च तथा सूर्यस्येव मरीचयः ॥ ११ ॥

उनके नेत्रोंसे, नासिकाके छिद्रोंसे और दोनों कानोंसे सब ओर अत्यन्त भयंकर धूमयुक्त आगकी लपटें प्रकट हो रही थीं। समस्त रोमकूपोंसे सूर्यके समान दिव्य किरणें छिटक रही थीं ॥ ११ ॥

तं दृष्ट्वा घोरमात्मानं केशवस्य महात्मनः
न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः ॥ १२ ॥

महात्मा श्रीकृष्णके उस भयंकर स्वरूपको देखकर समस्त राजाओंके मनमें भय समा गया और उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये ॥ १२ ॥

ऋते द्रोणं च भीष्मं च विदुरं च महामतिम् ।
संजयं च महाभागमृषींश्चैव तपोधनान् ।
प्रादात्तेषां स भगवान्दिव्यं चक्षुर्जनार्दनः ॥ १३ ॥

द्रोणाचार्य, भीष्म, परम बुद्धिमान् विदुर, महाभाग संजय तथा तपस्याके धनी महर्षियोंको छोडकर अन्य सब लोगोंकी आँखें बंद हो गयी थीं। इन द्रोण आदिको भगवान् जनार्दनने स्वयं ही दिव्यदृष्टि प्रदान की थी अतः वे आँख खोलकर उन्हें देखनेमें समर्थ हो सके ॥ १३ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं माधवस्य सभातले ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात च ॥ १४ ॥

उस सभाभवनमें भगवान् श्रीकृष्णका वह परम आश्चर्यमय रूप देखकर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ १४ ॥

चचाल च मही कृत्स्ना सागरश्चापि चुक्षुभे ।
विस्मयं परमं जग्मुः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ १५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय सारी पृथ्वी डगमगाने लगी, समुद्र भी क्षुब्ध हो गया और समस्त भूपाल अत्यन्त विस्मित हो गये ॥ १५ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रः संजहार वपुः स्वकम् ।
तां दिव्यामद्भुतां चित्रामृद्धिमत्तामरिंदमः ॥ १६ ॥

तदनन्तर शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह श्रीकृष्णने अपने इस स्वरूपको, उस दिव्य, अद्भुत एवं विचित्र ऐश्वर्यको समेट लिया ॥ १६ ॥

ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च ।
ऋषिभिस्तैरनुज्ञातो निर्ययौ मधुसूदनः ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् वे मधुसूदन ऋषियोंसे आज्ञा ले सात्यकि और कृतवर्माका हाथ पकडे सभाभवनसे चल दिये ॥ १७ ॥

ऋषयोऽन्तर्हिता जग्मुस्ततस्ते नारदादयः ।
तस्मिन्कोलाहले वृत्ते तदद्भुतमभूत्तदा ॥ १८ ॥

उनके जाते ही नारद आदि महर्षि भी अदृश्य हो गये । वह सारा कोलाहल शान्त हो गया । यह सब एक अद्भुतसी घटना हुई थी ॥ १८ ॥

तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य कौरवाः सह राजभिः ।
अनुजग्मुर्नरव्याघ्रं देवा इव शतक्रतुम् ॥ १९ ॥

पुरुषसिंह श्रीकृष्णको जाते देख राजाओंसहित समस्त कौरव भी उनके पीछे पीछे गये, मानो देवता देवराज इन्द्रका अनुसरण कर रहे हों ॥ १९ ॥

अचिन्तयन्नमेयात्मा सर्वं तद्राजमण्डलम् ।
निश्चक्राम ततः शौरिः सधूम इव पावकः ॥ २० ॥

परंतु अप्रमेयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण उस समस्त नरेशमण्डलकी कोई परवा न करके धूमयुक्त अग्निकी भाँति सभाभवनसे बाहर निकल आये ॥ २० ॥

ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
हेमजालविचित्रेण लघुना मेघनादिना ॥ २१ ॥

इसके बाद बहुतसी छोटी छोटी घंटियोंसे युक्त सोनेकी विचित्र जालियोंसे सुशोभित, वेगसे जाते समय मेघके समान शब्द करनेवाले, महान् ॥ २१ ॥

सूपस्करेण शुभ्रेण वैयाघ्रेण वरूथिना ।
सैन्यसुग्रीवयुक्तेन प्रत्यदृश्यत दारुकः ॥ २२ ॥

सब तरहकी सामग्रियोंसे सुसज्जित, व्याघ्रचर्मके आवरणसे युक्त, रक्षाके अन्य साधनोंसे युक्त तथा सैन्य और सुग्रीव नामक घोड़ोंसे युक्त उस रथके साथ सारथि दारुक दिखाई दिया ॥ २२ ॥

तथैव रथमास्थाय कृतवर्मा महारथः ।
वृष्णीनां सम्मतो वीरो हार्दिक्यः प्रत्यदृश्यत ॥ २३ ॥

इसी प्रकार वृष्णिवंशके सम्मानित वीर हृदिकपुत्र महारथी कृतवर्मा भी एक दूसरे रथपर बैठे दिखायी दिये ॥ २३ ॥

उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिंदमम् ।
धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाभ्यभाषत ॥ २४ ॥

शत्रुदमन भगवान् श्रीकृष्णका रथ उपस्थित है और अब ये यहाँसे चले जायँगे; ऐसा जानकर महाराज धृतराष्ट्रने पुनः उनसे कहा ॥ २४ ॥

यावद्बलं मे पुत्रेषु पश्यस्येतज्जनार्दन ।
प्रत्यक्षं ते न ते किंचित्परोक्षं शत्रुकर्शन ॥ २५ ॥

शत्रुसूदन जनार्दन ! पुत्रोंपर मेरा बल कितना काम करता है, यह आप देख ही रहे हैं। सब कुछ आपकी आँखोंके सामने है; आपसे कुछ भी छिपा नहीं है ॥ २५ ॥

कुरूणां शममिच्छन्तं यतमानं च केशव ।
विदित्वैतामवस्थां मे नातिशङ्कितुमर्हसि ॥ २६ ॥

केशव ! मैं भी चाहता हूँ कि कौरव-पाण्डवोंमें संधि हो जाय और मैं इसके लिये प्रयत्न भी करता रहता हूँ; परंतु मेरी इस अवस्थाको समझकर आपको मेरे ऊपर संदेह नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥

न मे पापोऽस्त्यभिप्रायः पाण्डवान्प्रति केशव ।
ज्ञातमेव हि ते वाक्यं यन्मयोक्तः सुयोधनः ॥ २७ ॥

केशव ! पाण्डवोंके प्रति मेरा भाव पापपूर्ण नहीं है। मैंने दुर्योधनसे जो हितकी बात बतायी है, वह आपको ज्ञात ही है ॥ २७ ॥

जानन्ति कुरवः सर्वे राजानश्चैव पार्थिवाः ।
शमे प्रयतमानं मां सर्वयत्नेन माधव ॥ २८ ॥

माधव ! मैं सब उपायोंसे शान्तिस्थापनके लिये प्रयत्नशील हूँ, इस बातको ये समस्त कौरव तथा बाहरसे आये हुए राजालोग भी जानते हैं ॥ २८ ॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
द्रोणं पितामहं भीष्मं क्षत्तारं बाह्लिकं कृपम् ॥ २९ ॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्र, आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, विदुर, बाह्लीक तथा कृपाचार्यसे कहा ॥ २९ ॥

प्रत्यक्षमेतद्भवतां यद्वृत्तं कुरुसंसदि ।
यथा चाशिष्टवन्मन्दो रोषादसकृदुत्थितः ॥ ३० ॥

कौरवसभामें जो घटना घटित हुई है, उसे आप लोगोंने प्रत्यक्ष देखा है । मूर्ख दुर्योधन किस प्रकार अशिष्टकी भाँति आज रोषपूर्वक सभासे बार बार उठकर चला गया था ॥ ३० ॥

वदत्यनीशमात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
आपृच्छे भवतः सर्वान्गमिष्यामि युधिष्ठिरम् ॥ ३१ ॥

महाराज धृतराष्ट्र भी अपने आपको असमर्थ बता रहे हैं । अतः अब मैं आप सब लोगोंसे आज्ञा चाहता हूँ । मैं युधिष्ठिरके पास जाऊँगा ॥ ३१ ॥

आमन्त्र्य प्रस्थितं शौरिं रथस्थं पुरुषर्षभम् ।
अनुजग्मुर्महेष्वासाः प्रवीरा भरतर्षभाः ॥ ३२ ॥

नरश्रेष्ठ जनमेजय ! तत्पश्चात् रथपर बैठकर प्रस्थानके लिये उद्यत हुए भगवान् श्रीकृष्णसे पूछकर भरतवंशके महाधनुर्धर उत्कृष्ट वीर उनके पीछे कुछ दूरतक गये ॥ ३२ ॥

भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता धृतराष्ट्रोऽथ बाह्लिकः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च युयुत्सुश्च महारथः ॥ ३३ ॥

उन वीरोंके नाम इस प्रकार हैं— भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र, बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण और महारथी युयुत्सु ॥ ३३ ॥

ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना ।
कुरूणां पश्यतां प्रायात्पृथां द्रष्टुं पितृष्वसाम् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ ॥ ४०८४ ॥

तदनन्तर किंकिणीविभूषित उस विशाल एवं उज्ज्वल रथके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण समस्त कौरवोंके देखते देखते अपनी बुआ कुन्तीसे मिलनेके लिये गये ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२९ ॥ ४०८४ ॥

: १३० :

वैशम्पायन उवाच

प्रविश्याथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च ।
आचख्यौ तत्समासेन यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– जनमेजय ! कुन्तीके घरमें जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके भगवान् श्रीकृष्णने कौरव सभामें जो कुछ हुआ था, वह सब समाचार उन्हें संक्षेपसे कह सुनाया ॥१॥

वासुदेव उवाच

उक्तं बहुविधं वाक्यं ग्रहणीयं सहेतुकम् ।
ऋषिभिश्च मया चैव न चासौ तद्गृहीतवान् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण बोले– मैंने तथा महर्षियोंने भी नाना प्रकारके युक्तियुक्त वचन, जो सर्वथा ग्रहण करनेयोग्य थे, सभामें कहे, परंतु दुर्योधनने उन्हें नहीं माना ॥ २ ॥

कालपक्वमिदं सर्वं दुर्योधनवशानुगम् ।
आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान्प्रति ॥ ३ ॥

जान पडता है, दुर्योधनके वशमें होकर उसीके पीछे चलनेवाला यह सारा क्षत्रियसमुदाय कालसे परिपक्व हो गया है। अतः शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है। अब मैं तुमसे आज्ञा चाहता हूँ, यहाँसे शीघ्र ही पाण्डवोंके पास जाऊँगा ॥ ३ ॥

किं वाच्याः पाण्डवेयास्ते भवत्या वचनान्मया ।
तद्ब्रूहि त्वं महाप्राज्ञे शुश्रूषे वचनं तव ॥ ४ ॥

महाप्राज्ञे ! मुझे पाण्डवोंसे तुम्हारा क्या संदेश कहना होगा, उसे बताओ । मैं तुम्हारी बात सुनना चाहता हूँ ॥ ४ ॥

कुन्त्युवाच

ब्रूयाः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥ ५ ॥

कुन्ती बोली– केशव ! तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरके पास जाकर इस प्रकार कहना–बेटा ! तुम्हारे प्रजापालनरूप धर्मकी बडी हानि हो रही है। तुम उस धर्मपालनके अवसरको व्यर्थ न खोओ ॥ ५ ॥

श्रोत्रियस्येव ते राजन्मन्दकस्याविपश्चितः ।
अनुवाकहता बुद्धिर्धर्ममेवैकमीक्षते ॥ ६ ॥

राजन् ! जैसे वेदके अर्थको न जाननेवाले अज्ञ वेदपाठीकी बुद्धि केवल वेदके मन्त्रोंकी आवृत्ति करनेमें ही नष्ट हो जाती है और केवल मन्त्रपाठमात्र धर्मपर ही दृष्टि रहती है, उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि भी केवल शान्तिधर्मको ही देखती है ॥ ६ ॥

अङ्गावेक्षस्व धर्मं त्वं यथा सृष्टः स्वयम्भुवा ।
उरस्तः क्षत्रियः सृष्टो बाहुवीर्योपजीविता ।
क्रूराय कर्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने ॥ ७ ॥

बेटा ! ब्रह्माने तुम्हारे लिये जैसे धर्मकी सृष्टि की है, उसीपर दृष्टिपात करो । उन्होंने अपनी दोनों जंघाओंसे क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है, अतः क्षत्रिय बाहुबलसे ही जीविका चलानेवाला होता है । वे युद्धरूपी कठोर कर्मके लिये रचे गये हैं तथा सदा प्रजापालनरूपी धर्ममें प्रवृत्त होते हैं ॥ ७ ॥

शृणु चात्रोपमामेकां या वृद्धेभ्यः श्रुता मया ।
मुचुकुन्दस्य राजर्षेरददात्पृथिवीमिमाम् ।
पुरा वैश्रवणः प्रीतो न चासौ तां गृहीतवान् ॥ ८ ॥

मैं इस विषयमें एक उदाहरण देती हूँ, जिसे मैंने बडे बूढोंके मुँहसे सुन रक्खा है। पूर्वकालकी बात है, धनाध्यक्ष कुबेर राजर्षि मुचुकुन्दपर प्रसन्न होकर उन्हें ये सारी पृथ्वी दे रहे थे; परंतु उन्होंने उसे ग्रहण नहीं किया ॥ ८ ॥

बाहुवीर्यार्जितं राज्यमश्नीयामिति कामये ।
ततो वैश्रवणः प्रीतो विस्मितः समपद्यत ॥ ९ ॥

वे बोले– देव ! मेरी इच्छा है कि मैं अपने बाहुबलसे उपार्जित राज्यका उपभोग करूँ । इससे कुबेर बडे प्रसन्न और विस्मित हुए ॥ ९ ॥

×

मुचुकुन्दस्ततो राजा सोऽन्वशासद्वसुन्धराम् ।
बाहुवीर्यार्जितां सम्यक्क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ १० ॥

तदनन्तर क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले राजा मुचुकुन्दने अपने बाहुबलसे प्राप्त की हुई इस पृथ्वीका न्यायपूर्वक शासन किया ॥ १० ॥

यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः ।
चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा भारत विन्दति ॥ ११ ॥

भारत ! राजाके द्वारा सुरक्षित हुई प्रजा यहाँ जिस धर्मका अनुष्ठान करती है, उसका चौथाई भाग उस राजाको मिल जाता है ॥ ११ ॥

राजा चरति चेद्धर्मं देवत्वायैव कल्पते ।
स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति ॥ १२ ॥

यदि राजा धर्मका पालन करता है तो उसे देवत्वकी प्राप्ति होती है और यदि वह अधर्म करता है तो नरकमें ही पडता है ॥ १२ ॥

दण्डनीतिः स्वधर्मेण चातुर्वर्ण्यं नियच्छति ।
प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यश्च यच्छति ॥ १३ ॥

राजाकी दण्डनीति यदि उसके द्वारा स्वधर्मके अनुसार प्रयुक्त हुई तो वह चारों वर्णोंको नियन्त्रणमें रखती और अधर्मसे निवृत्त करती है ॥ १३ ॥

दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक्कात्स्न्र्येन वर्तते ।
तदा कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तते ॥ १४ ॥

यदि राजा दण्डनीतिके प्रयोगमें पूर्णतः न्यायसे काम लेता है तो जगत्में सत्ययुग नामक उत्तम काल आ जाता है ॥ १४ ॥

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम् ॥ १५ ॥

राजाका कारण काल है या कालका कारण राजा है, ऐसा संदेह तुम्हारे मनमें नहीं उठना चाहिये; क्योंकि राजा ही कालका कारण होता है ॥ १५ ॥

राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च ।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥ १६ ॥

राजा ही सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका स्रष्टा है । चौथे युग कलिके प्रकट होनेमें भी वही कारण है ॥ १६ ॥

कृतस्य कारणाद्राजा स्वर्गमत्यन्तमश्नुते ।
त्रेतायाः कारणाद्राजा स्वर्गं नात्यन्तमश्नुते ।
प्रवर्तनाद् द्वापरस्य यथाभागमुपाश्नुते　　　॥ १७ ॥

अपने सत्कर्मोंद्वारा सत्ययुग उपस्थित करनेके कारण राजाको अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। त्रेताकी प्रवृत्ति करनेसे भी स्वर्गकी प्राप्ति होती है, किंतु वह अक्षय नहीं होता। द्वापर उपस्थित करनेसे उसे यथाभाग पुण्य और पापका फल प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समाः ।
राजदोषेण हि जगत्स्पृश्यते जगतः स च　　　॥ १८ ॥

कलियुग उपस्थित करनेपर वह दुष्कर्मी राजा अनेक वर्षोंतक नरकमें ही निवास करता है। राजाका दोष जगत्‌को और जगत्‌का दोष राजाको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

राजधर्मानवेक्षस्व पितृपैतामहोचितान् ।
नैतद् राजर्षिवृत्तं हि यत्र त्वं स्थातुमिच्छसि　　　॥ १९ ॥

बेटा! तुम्हारे पिता पितामहोंने जिनका पालन किया है, उन राजधर्मोंकी ओर ही देखो। तुम जिसका आश्रय लेना चाहते हो, वह राजर्षियोंका आचार अथवा राजधर्म नहीं है ॥ १९ ॥

न हि वैक्लव्यसंसृष्ट आनृशंस्ये व्यवस्थितः ।
प्रजापालनसम्भूतं किंचित्प्राप फलं नृपः　　　॥ २० ॥

जो सदा दयाभावमें ही स्थित हो विह्वल बना रहता है, ऐसे किसी भी पुरुषने प्रजापालन-जनित किसी पुण्यफलको कभी नहीं प्राप्त किया है ॥ २० ॥

न ह्येतामाशिषं पाण्डुर्न चाहं न पितामहः ।
प्रयुक्तवन्तः पूर्वं ते यया चरसि मेधया　　　॥ २१ ॥

तुम जिस बुद्धिके सहारे चलते हो, उसके लिये न तो तुम्हारे पिता पाण्डुने, न मैंने और न पितामहने ही पहले कभी आशीर्वाद दिया था अर्थात् तुममें वैसी बुद्धि होनेकी कामना किसीने नहीं की थी ॥ २१ ॥

यज्ञो दानं तपः शौर्यं प्रजासंतानमेव च ।
माहात्म्यं बलमोजश्च नित्यमाशंसितं मया　　　॥ २२ ॥

मैं तो सदा यही मनाती रही हूँ कि तुम्हें यज्ञ, दान, तप, शौर्य, प्रजा, संतान, महत्त्व, बल और ओजकी प्राप्ति हो ॥ २२ ॥

नित्यं स्वाहा स्वधा नित्यं ददुर्मानुषदेवताः ।
दीर्घमायुर्धनं पुत्रान्सम्यगाराधिताः शुभाः ॥ २३ ॥

कल्याणकारी ब्राह्मणोंकी भलीभाँति आराधना करनेपर वे भी सदा देवयज्ञ, पितृयज्ञ, दीर्घायु, धन और पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये ही आशीर्वाद देते थे ॥ २३ ॥

पुत्रेष्वाशासते नित्यं पितरो दैवतानि च ।
दानमध्ययनं यज्ञं प्रजानां परिपालनम् ॥ २४ ॥

देवता और पितर अपने उपासकों तथा वंशजोंसे सदा दान, स्वाध्याय, यज्ञ तथा प्रजा-पालनकी ही आशा रखते हैं ॥ २४ ॥

एतद्धर्ममधर्मं वा जन्मनैवाभ्यजायथाः ।
ते स्थ वैद्याः कुले जाता अवृत्त्या तात पीडिताः ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण ! मेरा यह कथन धर्मसंगत है या अधर्मयुक्त, यह तुम स्वभावसे ही जानते हो। तात ! वे पाण्डव उत्तम कुलमें उत्पन्न और विद्वान् होकर भी इस समय जीविकाके अभावसे पीडित हैं ॥ २५ ॥

यत्तु दानपतिं शूरं क्षुधिताः पृथिवीचराः ।
प्राप्य तृप्ताः प्रतिष्ठन्ते धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः ॥ २६ ॥

भूतलपर विचरनेवाले भूखे मानव जहाँ दानपति, शूरवीर क्षत्रियके समीप पहुँचकर अन्न पानसे पूर्णतः संतुष्ट हो अपने घरको जाते हैं, वहाँ उससे बढ़कर दूसरा धर्म क्या हो सकता है ? ॥ २६ ॥

दानेनान्यं बलेनान्यं तथा सूनृतयापरम् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्राज्यं प्राप्येह धार्मिकः ॥ २७ ॥

धर्मात्मा पुरुष यहाँ राज्य पाकर किसीको दानसे, किसीको बलसे और किसीको मधुर वाणीद्वारा संतुष्ट करे । इस प्रकार सब ओरसे आये हुए लोगोंको दान, मान आदिसे संतुष्ट करके अपना ले ॥ २७ ॥

ब्राह्मणः प्रचरेद्भैक्षं क्षत्रियः परिपालयेत् ।
वैश्यो धनार्जनं कुर्याच्छूद्रः परिचरेच्च तान् ॥ २८ ॥

ब्राह्मण भिक्षावृत्तिसे जीविका चलावे, क्षत्रिय प्रजाका पालन करे, वैश्य धनोपार्जन करे और शूद्र उन तीनों वर्णोंकी सेवा करे ॥ २८ ॥

भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषिर्नैवोपपद्यते ।
क्षत्रियोऽसि क्षतात्त्राता बाहुवीर्योपजीविता ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर ! तुम्हारे लिये भिक्षावृत्तिका तो सर्वथा निषेध है और खेती तुम्हारे योग्य नहीं है । तुम तो दूसरोंको क्षतिसे त्राण देनेवाले क्षत्रिय हो । तुम्हें तो बाहुबलसे ही जीविका चलानी चाहिये ॥ २९ ॥

पित्र्यमंशं महाबाहो निमग्नं पुनरुद्धर ।
साम्ना दानेन भेदेन दण्डेनाथ नयेन च ॥ ३० ॥

महाबाहो ! तुम्हारा पैतृक राज्यभाग शत्रुओंके हाथमें पडकर लुप्त हो गया है, तुम साम, दान, भेद अथवा दण्डनीतिसे पुनः उसका उद्धार करो ॥ ३० ॥

इतो दुःखतरं किं नु यदहं हीनबान्धवा ।
परपिण्डमुदीक्षामि त्वां सूत्वामित्रनन्दन ॥ ३१ ॥

शत्रुओंका आनन्द बढानेवाले पाण्डव ! इससे बढकर दुःखकी बात और क्या हो सकती है कि मैं तुम्हें जन्म देकर भी बन्धुबान्धवोंसे हीन नारीकी भांति जीविकाके लिये दूसरोंके दिये हुए अन्नपिण्डकी आशा लगाये ऊपर देखती रहती हूँ ॥ ३१ ॥

युध्यस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ।
मा गमः क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम् ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ ४११६ ॥

अतः तुम राजधर्मके अनुसार युद्ध करो । कायर बनकर अपने बाप-दादाओंका नाम मत डुबाओ और भाइयोंसहित पुण्यसे वञ्चित होकर पापमयी गतिको न प्राप्त होओ ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३० ॥ ४११६ ॥

: १३१ :

कुन्त्युवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
विदुरायाश्च संवादं पुत्रस्य च परंतप ॥ १ ॥

कुन्ती बोली— शत्रुओंको संताप देनेवाले श्रीकृष्ण ! [illegible] प्रसंगमें विद्वान् पुरुष विदुरा और उसके पुत्रके संवादरूप इस पुरातन इतिहासका [illegible] या करते हैं ॥ १ ॥

अत्र श्रेयश्च भूयश्च यथा सा वक्तुमर्हति ।
यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ॥ २ ॥

इस इतिहासमें जो कल्याणकारी उपदेश है, उसे उस जैसी स्त्रियां ही कह सकती हैं। उत्तम कुलमें उत्पन्न, यशस्विनी, तेजस्विनी, मानिनी, ॥ २ ॥

क्षत्रधर्मरता धन्या विदुरा दीर्घदर्शिनी ।
विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥ ३ ॥

जितेन्द्रिया, क्षत्रियधर्मपरायणा और दूरदर्शिनी विदुरा नामकी एक राजपुत्री थी। राजाओंकी मण्डलीमें उनकी बडी ख्याति थी। वे अनेक शास्त्रोंको जाननेवाली और महापुरुषोंके उपदेश सुनकर उससे लाभ उठानेवाली थीं ॥ ३ ॥

विदुरा नाम वै सत्या जगर्हे पुत्रमौरसम् ।
निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ।
अनन्दनमधर्मज्ञं द्विषतां हर्षवर्धनम् ॥ ४ ॥

एक बार वह सत्यशीला विदुरा सिन्धुराजसे पराजित अत्यन्त दीनभाववाले, सोये हुए, मित्रोंको आनन्द न देनेवाले, धर्मको न जाननेवाले तथा शत्रुओंके आनंदको बढानेवाले अपने सगे पुत्रकी निन्दा करते हुए बोली ॥ ४ ॥

न मया त्वं न पित्रासि जातः क्वाभ्यागतो ह्यसि ।
निर्मन्युरुपशाखीयः पुरुषः क्लीबसाधनः ॥ ५ ॥

तू मेरी कोखसे पैदा ही नहीं हुआ। तेरे पिताने भी तुझे उत्पन्न नहीं किया; फिर तुझ जैसा कायर कहाँसे आ गया ? तू सर्वथा क्रोधशून्य है, क्षत्रियोंमें गणना करनेयोग्य नहीं है। तू नाममात्रका पुरुष है। तेरे मन आदि सभी साधन नपुंसकोंके समान हैं ॥ ५ ॥

यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह ।
मात्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः ।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंस्तभ ॥ ६ ॥

क्या तू जीवनभरके लिये निराश हो गया ? अरे ! अब भी तो उठ और अपने कल्याणके लिये पुनः युद्धका भार वहन कर। अपनेको दुर्बल मानकर स्वयं ही अपनी अवहेलना न कर, इस आत्माका थोडे धनसे भरणपोषण न कर, मनको परम कल्याणमय बनाकर उसे शुभ संकल्पोंसे सम्पन्न करके भयको सर्वथा त्याग दे और दृढतासे खडा हो जा ॥ ६ ॥

उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः ।
अमित्रान्नन्दयन्सर्वान्निर्मानो बन्धुशोकदः ॥ ७ ॥

ओ कायर! उठ, खडा हो, इस तरह शत्रुसे पराजित होकर उन्हें आनन्द देता हुआ वंचित होकर बन्धुबान्धवोंको शोकमें डालता हुआ तू आज प्रतिष्ठासे घरमें शयन न कर अर्थात् उद्योगशून्य न हो जा ॥ ७ ॥

सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः ।
सुसंतोषः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥ ८ ॥

जैसे छोटी नदी थोडे जलसे अनायास ही भर जाती है और चूहेकी अञ्जलि थोडे अन्नसे ही भर जाती है, उसी प्रकार कायरको संतोष दिलाना बहुत सुगम है, वह थोडेसे ही संतुष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

अप्यरेरारुजन्दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज ।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रम ॥ ९ ॥

तू शत्रुरूपी साँपके दाँत तोडता हुआ तत्काल मृत्युको प्राप्त हो जा । प्राण जानेका संदेह हो तो भी शत्रुके साथ युद्धमें पराक्रम ही प्रकट कर ॥ ९ ॥

अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन् ।
विनदन्वाथ वा तूष्णीं व्योम्नि वापरिशङ्कितः ॥ १० ॥

आकाशमें निःशङ्क होकर उडनेवाले बाज पक्षीकी भाँति रणभूमिमें निर्भय विचरता हुआ तू गर्जना करके अथवा चुप रहकर शत्रुके छिद्र देखता रह ॥ १० ॥

त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद्वज्रहतो यथा ।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः ॥ ११ ॥

कायर ! तू इस प्रकार बिजलीके मारे हुए मुर्देकी भाँति यहाँ क्यों निश्चेष्ट होकर पडा है ? बस, तू खडा हो जा, शत्रुओंसे पराजित होकर यहाँ पडा मत रह ॥ ११ ॥

मास्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा ।
मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माधो भूस्तिष्ठ चोर्जितः ॥ १२ ॥

तू दीन होकर अस्त न हो जा । अपने शौर्यपूर्ण कर्मसे प्रसिद्धि प्राप्त कर । तू मध्यम, अधम अथवा निकृष्ट भावका आश्रय न ले, वरन् युद्धभूमिमें सिंहनाद करके डट जा ॥ १२ ॥

अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि विज्वल।
मा तुषाग्निरिवानर्चिः काकरङ्खा जिजीविषुः।
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ॥ १३ ॥

तू तिन्दुककी जलती हुई लकडीके समान दो घडीके लिये भी प्रज्ज्वलित हो उठ, थोडी देरके ही लिये सही, शत्रुके सामने महान् पराक्रम प्रकट कर; परंतु जीनेकी इच्छासे भूसीकी ज्वालारहित आगके समान केवल धूआँ न कर। मन्द पराक्रमसे काम न ले, दो घडी भी प्रज्वलित रहना अच्छा; परंतु दीर्घकालतक धूआँ छोडते हुए सुलगना अच्छा नहीं ॥ १३ ॥

मा ह स्म कस्यचिद्गेहे जनी राज्ञः खरीमृदुः
कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाजिं यावदुत्तमम्।
धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चात्मानं विगर्हते ॥ १४ ॥

किसी भी राजाके घरमें अत्यन्त कोमल स्वभावके पुरुषका जन्म न हो। वीर पुरुष युद्धमें जाकर यथाशक्ति उत्तम पुरुषार्थ प्रकट करके धर्मके ऋणसे उऋण होता है और अपनी निन्दा नहीं कराता है ॥ १४ ॥

अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचन्ति पण्डिताः।
आनन्तर्यं चारभते न प्राणानां धनायते ॥ १५ ॥

विद्वान् पुरुषको अभीष्ट फलकी प्राप्ति हो या न हो, वह उसके लिये शोक नहीं करता। वह अपनी पूरी शक्तिके अनुसार प्राणपर्यन्त निरन्तर चेष्टा करता है और अपने लिये धनकी इच्छा नहीं करता ॥ १५ ॥

उद्भावयस्व वीर्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्।
धर्मं पुत्राग्रतः कृत्वा किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १६ ॥

बेटा! धर्मको आगे रखकर या तो पराक्रम प्रकट कर अथवा उस गतिको प्राप्त हो जा, जो समस्त प्राणियोंके लिये निश्चित है, अन्यथा इसप्रकार कायरतासे किसलिये जी रहा है? ॥ १६ ॥

इष्टापूर्तं हि ते क्लीब कीर्तिश्च सकला हता।
विच्छिन्नं भोगमूलं ते किंनिमित्तं हि जीवसि ॥ १७ ॥

कायर! तेरे इष्ट और आपूर्त कर्म नष्ट हो गये, सारी कीर्ति धूलमें मिल गयी और भोगका मूल साधन राज्य भी छिन गया, अब तू किसलिये जी रहा है? ॥ १७ ॥

शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जङ्घायां प्रपतिष्यता ।
विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत्कथंचन ।
उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृतं स्मरन् ॥ १८ ॥

मनुष्य डूबते समय अथवा ऊँचेसे नीचे गिरते समय भी शत्रुकी टाँग अवश्य पकड़े और ऐसा करते समय यदि अपना मूलोच्छेद हो जाय तो भी किसी प्रकार विषाद न करे। अच्छी जातिके घोडे न तो थकते हैं और न शिथिल ही होते हैं। उनके इस कार्यको स्मरण करके अपने ऊपर रक्खे हुए युद्ध आदिके भारको उद्योगपूर्वक वहन करे ॥ १८ ॥

कुरु सत्त्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः ।
उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि ॥ १९ ॥

बेटा ! तू धैर्य और स्वाभिमानका अवलम्बन कर। अपने पुरुषार्थको जान और तेरे कारण डूबे हुए इस वंशका तू स्वयं ही उद्धार कर ॥ १९ ॥

यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम्
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥ २० ॥

जिसके महान् और अद्भुत पुरुषार्थ एवं चरित्रकी सब लोग चर्चा नहीं करते हैं, वह मनुष्य अपने द्वारा जनसंख्याकी वृद्धिमात्र करनेवाला है। मेरी दृष्टिमें न तो वह स्त्री है और न पुरुष ही है ॥ २० ॥

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥ २१ ॥

दान, तपस्या, शूरवीरता, विद्या तथा धनोपार्जनमें जिसके सुयशका सर्वत्र बखान नहीं होता है, वह मनुष्य अपनी माताका पुत्र नहीं, मलमूत्रमात्र ही है ॥ २१ ॥

श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा ।
जनान्योऽभिभवत्यन्यान्कर्मणा हि स वै पुमान् ॥ २२ ॥

जो शास्त्रज्ञान, तपस्या, धन-सम्पत्ति अथवा पराक्रमके द्वारा दूसरे लोगोंको पराजित कर देता है, वह उसी श्रेष्ठ कर्मके द्वारा पुरुष कहलाता है ॥ २२ ॥

न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि ।
नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम् ॥ २३ ॥

तुझे हिजड़ों, कापालिकों, क्रूर मनुष्यों तथा कायरोंके लिये उचित भिक्षा आदि निन्दनीय वृत्तिका आश्रय कभी नहीं लेना चाहिये; क्योंकि वह अपयश फैलानेवाली और दुःखदायिनी होती है ॥ २३ ॥

×

यस्यैनमभिनन्देयुरमित्राः पुरुषं कृशम्।
लोकस्य समवज्ञातं निहीनासनवाससम् ॥ २४ ॥

जिस दुर्बल मनुष्यका शत्रुपक्षके लोग अभिनन्दन करते हों, जो सब लोगोंके द्वारा अपमानित होता हो, जिसके आसन और वस्त्र निकृष्ट श्रेणीके हों ॥ २४ ॥

अहोलाभकरं दीनमल्पजीवनमल्पकम्।
नेदृशं बन्धुमासाद्य बान्धवः सुखमेधते ॥ २५ ॥

जो थोडे लाभसे ही संतुष्ट होकर विस्मय प्रकट करता हो, जो सब प्रकारसे दीन, क्षुद्र जीवन बितानेवाला और ओछे स्वभावका हो, ऐसे बन्धुको पाकर उसके भाई-बन्धु सुखी नहीं होते ॥ २५ ॥

अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात्प्रवासिताः।
सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिंचनाः ॥ २६ ॥

तेरी कायरताके कारण हमलोग इस राज्यसे निर्वासित होनेपर सम्पूर्ण मनोवाञ्छित सुखोंसे हीन, स्थानभ्रष्ट और अकिंचन हो जीविकाके अभावमें ही मर जायँगे ॥ २६ ॥

अवर्णकारिणं सत्सु कुलवंशस्य नाशनम्।
कलिं पुत्रप्रवादेन संजय त्वामजीजनम् ॥ २७ ॥

संजय ! तू सत्पुरुषोंके बीचमें अशोभन कार्य करनेवाला है, कुल और वंशकी प्रतिष्ठाका नाश करनेवाला है। जान पडता है, तेरे रूपमें पुत्रके नामपर मैंने कलि पुरुषको ही जन्म दिया है ॥ २७ ॥

निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम्।
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ॥ २८ ॥

कोई भी तेजस्विनी स्त्री ऐसे क्रोध तथा उत्साहरहित, बलहीन, शत्रुको आनन्द देनेवाले कुपुत्रको कभी उत्पन्न न करे ॥ २८ ॥

मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान्।
ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम् ॥ २९ ॥

तू धुंआ पैदा करनेके लिए बहुत देरतक न जल, अपितु, भले ही क्षण या मुहूर्तके लिए सही, शत्रुओंके सिरपर जल और शत्रुके सैनिकोंको मार ॥ २९ ॥

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी।
क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥ ३० ॥

क्रोधयुक्त और क्षमारहित होनाही यथार्थमें पुरुषका पौरुषत्व है। जो पुरुष सदा क्षमासे युक्त और क्रोधशून्य रहता है, वह न स्त्री है और न पुरुषही ॥ ३० ॥

सन्तोषो वै श्रियं हन्ति तथानुक्रोश एव च ।
अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत् ॥ ३१ ॥

सन्तोष तथा क्रोधका न होना दोनों सम्पत्तिका नाश करनेवाले हैं। उसी तरह शत्रुके विरुद्ध उठकर न खडा होना तथा उससे डरना ये भी दोनों सम्पत्तिके नाशक हैं। निरुत्साही पुरुष राज्य आदि बडे फल कभी नहीं पा सकता ॥ ३१ ॥

एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चात्मानमात्मना ।
आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम् ॥ ३२ ॥

हे पुत्र ! इससे तू इन सब ऊपर कहे हुए दोषोंसे स्वयंको मुक्त कर तथा अपना हृदय लोहेकी भांति कठोर बना करके अपना राज्य पुनः प्राप्त करनेका प्रयत्न कर ॥ ३२ ॥

परं विषहते यस्मात्तस्मात्पुरुष उच्यते ।
तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद्य इह जीवति ॥ ३३ ॥

परं अर्थात् शत्रुके हमलोंका मुकाबला करनेके कारण ही मनुष्य पुरुष कहा जाता है; पर जो पुरुष स्त्रियोंके समान घरमें बैठकर इस लोकमें जीता रहता है, उसका जीना व्यर्थ ही कहा जाता है ॥ ३३ ॥

शूरस्योर्जितसत्त्वस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
दिष्टभावं गतस्यापि विघसे मोदते प्रजा ॥ ३४ ॥

सिंहके समान प्रबल प्रतापका विस्तार करनेवाले, ऊंचे चित्तवाले, शूरवीर राजाके मर जानेपर भी उसके शासन तथा अधिकारमें रहनेवाली प्रजा सुख भोगती हुई हृष्ट पुष्ट बनी रहती है ॥ ३४ ॥

य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम् ।
अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः ॥ ३५ ॥

जो बुद्धिमान् राजा अपने प्रिय और सुखको त्यागकर भी राजलक्ष्मीकी खोजमें प्रवृत्त होता है, वह शीघ्रही अपने मंत्रियोंका हर्ष और आनन्द बढाता है ॥ ३५ ॥

पुत्र उवाच

किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ।
किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३६ ॥

पुत्र बोला– यदि मेरे मर जानेपर तुम मुझे ही न देखोगी तो फिर तुम्हें इस सम्पूर्ण पृथ्वीके मिल जानेपर भी तुम्हारे लिए उसका क्या उपयोग ? तथा राज्य, भूषण, भोग सुख और जीनेहीसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ३६ ॥

मातोवाच

किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः ।
ये त्वाहतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान्व्रजन्तु नः ॥ ३७ ॥

माता बोली— मेरी यही अभिलाषा है, कि धनसे रहित नीच लोग जो लोक पाते हैं, हमारे शत्रु लोग वही लोक पावें, और आदरसे युक्त तेजस्वी पुरुष जिस लोकमें जाते हैं; हम लोगोंके बन्धु बान्धव तथा सुहृद् लोग उसी लोकमें गमन करें ॥ ३७ ॥

भृत्यैर्विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम् ।
कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्तिथाः ॥ ३८ ॥

हे तात ! सेवकोंसे अपमानित होनेवाले और पराये अन्नसे जीवन धारण करनेवाले दीन, बलहीन और मलिनचित्तवाले लोगोंकी वृत्तिका अवलम्बन मत कर ॥ ३८ ॥

अनु त्वां तात जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा ।
पर्जन्यमिव भूतानि देवा इव शतक्रतुम् ॥ ३९ ॥

हे तात ! सम्पूर्ण प्राणी जैसे वर्षा करनेवाले मेघ पर जीवित रहते तथा देवता लोग जैसे इन्द्रके आश्रय पर जीवित रहते हैं, वैसेही हे तात ! ब्राह्मण लोग तथा सुहृद् पुरुष तुम्हारे द्वारा अपनी जीविका पावें ॥ ३९ ॥

यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि सञ्जय ।
पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत् ॥ ४० ॥

हे संजय ! अच्छे प्रकारसे पके हुए फलोंसे युक्त वृक्षका आसरा लेकर जैसे पक्षी गण जीवन धारण करते हैं, उसी भांतिसे सब प्राणी लोग जिस भाग्यवान् पुरुषका आसरा लेकर अपनी जीविका निर्वाह किया करते हैं, ऐसे ही भाग्यवान् पुरुषका जीवन सार्थक है ॥ ४० ॥

यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम् ।
त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥ ४१ ॥

इन्द्रके बाहुबलसे बढे हुए देवताओंके समान जिस महावीर पुरुषके प्रचण्ड प्रतापके सहारे उसके बन्धुबान्धवोंका सुख बढता है, संसारमें उसीका जीवन सार्थक है ॥ ४१ ॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः ।
स लोके लभते कीर्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥ ४२ ॥

॥ इति श्री महाभारते उद्योगपर्वणि एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ ४१५८ ॥

जो पुरुष अपने बाहुबलके सहारे जीवनके समयको बिताता है, वह इस लोकमें कीर्तिमान् होकर अन्तमें कल्याणमयी परम गति पाता है ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३१ ॥ ४१५८ ॥

: १३२ :

विदुरोवाच

अथैतस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि ।
निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्यचिरादिव ॥ १ ॥

विदुरा बोली– हे पुत्र ! जो तुम ऐसी हीन अवस्थामें पुरुषार्थ छोड देना चाहते हो तो शीघ्र ही अधम पुरुषोंसे सेवित नीच मार्गमें गमन करोगे ॥ १ ॥

यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात् ।
क्षत्रियो जीविताकाङ्क्षी स्तेन इत्येव तं विदुः ॥ २ ॥

क्षत्रिय कुलमें जन्म ग्रहण करके जो पुरुष जीवित रहनेकी आकांक्षासे अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रम तथा अपना बल प्रकट करके अपने तेजको प्रकाशित नहीं करता; पण्डित लोग उसको चोरही समझते हैं ॥ २ ॥

अर्थवन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च ।
नैव सम्प्राप्नुवन्ति त्वां मुमूर्षुमिव भेषजम् ॥ ३ ॥

मृत्युसे ग्रस्त रोगीके लिए जिस प्रकार औषधियां प्रभावहीन हो जाती हैं, उसी प्रकार अर्थसे युक्त, युक्ति सम्मत, गुणोंसे भरे हुए ये उत्तम वचन तुम्हारे लिए प्रभावहीन प्रतीत हो रहे हैं ॥ ३ ॥

सन्ति वै सिन्धुराजस्य सन्तुष्टा बहवो जनाः ।
दौर्बल्यादासते मूढा व्यसनौघप्रतीक्षिणः ॥ ४ ॥

सिन्धुराजके बहुत से पक्षपाती उससे सन्तुष्ट हैं । पर वे मूर्ख अपनी निर्बलताके कारणसे स्वामीके व्यसनमें फंसनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ४ ॥

सहायोपचयं कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः।
अनुदुष्येयुरपरे पश्यन्तस्तव पौरुषम् ॥ ५॥
इसके अतिरिक्त जो पुरुष स्पष्ट रूपसे उसके साथ शत्रुता करते हैं, वह लोग पुरुषार्थको देखकर तुम्हारे साथ ही उसके विरुद्ध युद्ध करनेमें प्रवृत्त होंगे ॥ ५ ॥

तैः कृत्वा सह सङ्घातं गिरिदुर्गालयांश्चर।
काले व्यसनमाकाङ्क्षन्नैवायमजरामरः ॥ ६ ॥
इससे तुम उन्हीं सब लोगोंके साथ मिलकर समयके अनुसार शत्रुके व्यसनमें फंसनेकी प्रतीक्षा करते हुए दुर्ग-रूपी पर्वतका आश्रय ग्रहण करो। यह तुम्हारा शत्रु सिन्धुराज अजर अथवा अमर नहीं है ॥ ६ ॥

सञ्जयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत्त्वयि।
अन्वर्थनामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः ॥ ७ ॥
हे मेरे पुत्र! तुम्हारा नाम संजय अर्थात् शत्रुओंको अच्छीतरह जीतनेवाला है, परन्तु संजयका कार्य मैं तुममें कुछ भी नहीं देख रही हूँ, अतः तुम अपने नामको व्यर्थ न करके उसको सार्थक बनावो ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टिर्महाप्राज्ञो बालं त्वां ब्राह्मणोऽब्रवीत्।
अयं प्राप्य महत्कृच्छ्रं पुनर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ८ ॥
तुम्हारी बालक अवस्थामें एक अचूक दृष्टिवाले महा बुद्धिमान् ज्योतिषी ब्राह्मणने कहा था, कि यह बालक पहिले अत्यन्त कष्टमें पडकर अन्तमें बहुत उन्नतिशील होगा ॥ ८ ॥

तस्य स्मरन्ती वचनमाशंसे विजयं तव।
तस्मात्तात ब्रवीमि त्वां वक्ष्यामि च पुनः पुनः ॥ ९ ॥
उस ब्राह्मणका वचन स्मरण करके मैं तुम्हारे विजयकी आशा करती हूं; और इसी कारण हे तात! तुमको प्रेरणा दे रही हूं तथा वार वार इसी भांतिसे प्रेरणा देती रहूंगी ॥ ९ ॥

यस्य ह्यर्थाभिनिर्वृत्तौ भवन्त्याप्यायिताः परे।
तस्यार्थसिद्धिर्नियता नयेष्वर्थानुसारिणः ॥ १० ॥
जो पुरुष स्वयं यथार्थ नीतिके अनुसार कार्य करता है, और दूसरे लोग भी जिसके कार्यके सिद्ध होनेपर प्रसन्न और तृप्त होते हैं; उसका मनोरथ अवश्य पूर्ण होता है ॥ १० ॥

समृद्धिरसमृद्धिर्वा पूर्वेषां मम सञ्जय।
एवं विद्वान्युद्धमना भव मा प्रत्युपाहर ॥ ११ ॥
हे सञ्जय! इस कार्यके करनेसे मेरे पूर्व सञ्चित विषयका चाहे नाश होवे, अथवा वृद्धि होवे, मैं कभी भी निवृत्त न होऊंगा, इस प्रकारसे दृढ सङ्कल्प करके तुम युद्धके निमित्त उद्योग करो, तुम उसके विपरीत कर्म मत करो ॥ ११ ॥

नातः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् ।
यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ १२ ॥

शम्बर मुनिने कहा है, जिस घरमें आज अन्न नहीं है और कलके लिए भी नहीं, सदा ऐसी ही चिन्ता लगी रहती है, उससे बढकर पापी पुरुषकी और दूसरी कौनसी दशा होगी ? ॥ १२ ॥

पतिपुत्रवधादेतत्परमं दुःखमब्रवीत् ।
दारिद्र्यमिति यत्प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत् ॥ १३ ॥

पति और पुत्रके वधसे जैसा दुःख होता है, उससे भी बढकर यह दरिद्रताका दुःख है इस प्रकार शम्बर मुनिने कहा है । दरिद्रताके दुःखका दूसरा नाम ही मृत्यु है ॥ १३ ॥

अहं महाकुले जाता ह्रदाद्ध्रदमिवागता ।
ईश्वरी सर्वकल्याणैर्भर्त्रा परमपूजिता ॥ १४ ॥

मैं उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा पतिके द्वारा सब कल्याणोंके द्वारा अच्छी तरह सत्कृत तथा सब पर शासन करनेवाली हूँ, मैं अपने पिताके कुलसे पतिके कुलमें उसी प्रकार लाई गई हूँ, जिस प्रकार एक कमलिनी एक तालाबसे दूसरे तालाबमें ले जाई जाती है ॥ १४ ॥

महार्हमाल्याभरणां सुमृष्टाम्बरवाससम् ।
पुरा दृष्ट्वा सुहृद्वर्गो मामपश्यत्सुदुर्गताम् ॥ १५ ॥

पहिले मेरे सुहृद् लोगोंने मुझको महामूल्यवान् माला और सब भूषणोंसे भूषित तथा नाना सुगन्ध और सुन्दर वस्त्रोंसे युक्त देखा है, इस समय वे मुझे अत्यन्त दुःखमें पडी हुई देख रहे हैं ॥ १५ ॥

यदा मां चैव भार्यां च द्रष्टासि भृशदुर्बले ।
न तदा जीवितेनार्थो भविता तव सञ्जय ॥ १६ ॥

हे सञ्जय ! तुम जिस समय मुझे और अपनी स्त्रीको दीन, हीन तथा अत्यन्त दुःखित देखोगे, उस समय तुम्हारे इस जीवित रहनेका कोई उपयोग नहीं रहेगा ॥ १६ ॥

दासकर्मकरान्भृत्यानाचार्यर्त्विक्पुरोहितान् ।
अवृत्त्यास्मान्प्रजहतो दृष्ट्वा किं जीवितेन ते ॥ १७ ॥

दास-दासी, सेवक, गुरु, ऋत्विक्, पुरोहित आदि सब जीविका–प्राप्तिके अभावमें हम लोगोंको छोडकर चले जायेंगे, इसको देखकर तुम्हारे जीनेसे क्या प्रयोजन रहेगा ? ॥ १७ ॥

यदि कृत्यं न पश्यामि तवाद्येह यथा पुरा ।
श्लाघनीयं यशस्यं च का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ १८ ॥

तुम पहिले प्रशंसाके योग्य यशको प्रकट करनेवाले जिन सब कर्मोंका अनुष्ठान करते थे, यदि उनको अब मैं न देखूंगी, तो मेरे हृदयमें शान्ति किस प्रकारसे हो सकेगी ? ॥ १८ ॥

नेति चेद्ब्राह्मणान्ब्रूयां दीर्यते हृदयं मम ।
न ह्यहं न च मे भर्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान् ॥ १९ ॥

कोई ब्राह्मण जब मुझसे कुछ वस्तु मांगेगा, तब उससे मैं नहीं है यह कहूंगी, तो मेरा हृदय टुकडे टुकडे हो जायेगा; क्योंकि पहिले मैं तथा मेरे स्वामीने ब्राह्मणोंके मांगनेपर नहीं है यह कभी भी नहीं कहा ॥ १९ ॥

वयमाश्रयणीयाः स्म नाश्रितारः परस्य च ।
सान्यानाश्रित्य जीवन्ती परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ २० ॥

सब लोग हमारे ही सहारे रहते थे और हम लोग कभी किसीके सहारे नहीं रहे, अतः यदि दूसरेके आश्रयमें होकर जीविका निर्वाह करना पडेगा, तो मैं अवश्य ही शरीरको त्याग दूंगी ॥ २० ॥

अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः ।
कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान्सञ्जीवयस्व नः ॥ २१ ॥

हे पुत्र ! अतः अपार दुःख सागरमें पडे हुए हम लोगोंको पार करनेके लिए तुम ही एक-मात्र अवलम्ब बनो। नौकारहित विपद्रूपी समुद्रसे उबारनेके निमित्त तुम ही नौका स्वरूप बनो । इस समय हमारे रहनेके लिए स्थान नहीं है, अतः तुम उस स्थानका निर्माण करो और मरे हुएके समान पडे हुए हम लोगोंको तुम जीवित करो ॥ २१ ॥

सर्वे ते शत्रवः सह्या न चेज्जीवितुमिच्छसि ।
अथ चेदीदृशीं वृत्तिं क्लीबामभ्युपपद्यसे ॥ २२ ॥
निर्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैतां पापजीविकाम् ।
एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥ २३ ॥

यदि तुम अपने जीनेकी इच्छा त्याग दो, तो सब शत्रुओंसे युद्ध कर सकते हो; और यदि ऐसे ही क्लीबवृत्तिका अवलम्बन किये हुए, दुःखयुक्त और उत्साह रहित होकर रहना पडे, तो भी तुम शीघ्र ही इस पापमय जीवनको त्याग दो । जो पुरुष पराक्रमी होता है, वह एक ही शत्रुको मारकर पृथ्वीमें यश पाता है ॥ २२–२३ ॥

इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ।
माहेन्द्रं च ग्रहं लेभे लोकानां चेश्वरोऽभवत् ॥ २४ ॥

इन्द्र एक ही वृत्रासुरको मारकर महेन्द्र बन गये और उन्हें महेन्द्रका पद अर्थात् स्थान प्राप्त हो गया और वे सब लोकोंके राजा हो गए ॥ २४ ॥

नाम विश्राव्य वा संख्ये शत्रूनाहूय दंशितान्।
सेनाग्रं चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥ २५ ॥
यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद्यशः।
तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥ २६ ॥

उत्साहसे युक्त वीर पुरुष जब रणभूमिमें अपना नाम सुनाकर उनको आव्हान देकर शत्रुओंकी सेनाके अग्रभागको छिन्न भिन्न करके अपने पराक्रमसे मुख्य मुख्य सेनापतियोंको मारता है और जब वह वीर भयंकर युद्धसे महान् यशको प्राप्त करता है तभी उसके शत्रु भयभीत होकर इस वीरके सामने झुकते हैं ॥ २५–२६ ॥

त्यक्त्वात्मानं रणे दक्षं शूरं कापुरुषा जनाः।
अवशाः पूरयन्ति स्म सर्वकामसमृद्धिभिः ॥ २७ ॥

परन्तु जो पुरुष नपुंसकताका अवलम्बन करता है, वह युद्धमें अपनेको समर्पित करके विवश होकर युद्धविद्याके जाननेवाले पराक्रमी शत्रुके सब मनोरथोंको पूर्ण करके उसे तृप्त करता है ॥ २७ ॥

राज्यं वाप्युग्रविभ्रंशं संशयो जीवितस्य वा।
प्रलब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥ २८ ॥

उत्साह और साहससे युक्त पुरुष चाहे राज्यका नाश हो जाये अथवा प्राण ही संकटमें पड जाये, शत्रुको पानेपर उसका पूरी तरहसे नाश कर देते हैं ॥ २८ ॥

स्वर्गद्वारोपमं राज्यमथ वाप्यमृतोपमम्।
रुद्धमेकायने मत्वा पतोल्मुक इवारिषु ॥ २९ ॥

हे संजय! केवल पराक्रमको प्रकट करनेहीसे स्वर्गका द्वार अथवा अमृतके समान राज्यपद मिलता है। वही द्वार तुम्हारे लिए अब बन्द हो गया है, इस बातको हृदयमें रखकर तुम जलती हुई अग्निके समान शत्रुओंके बीचमें प्रवेश करो ॥ २९ ॥

जहि शत्रून्रणे राजन्स्वधर्ममनुपालय।
मा त्वा पश्येत्सुकृपणं शत्रुः श्रीमान्कदाचन ॥ ३० ॥

हे क्षत्रिय! रणभूमिमें शत्रुओंका नाश करो और अपने धर्मका पालन करो। जिससे कोई तुमको गरीब और तुम्हारे शत्रुको धनवान् न देख सके ॥ ३० ॥

×

अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम्।
अपि त्वां नानुपश्येयं दीना दीनमवस्थितम् ॥ ३१ ॥

दुःखसे युक्त मैं शोक करते हुए हमारे पक्षके लोगोंके द्वारा तथा हर्षित होते हुए शत्रु सैनिकोंके द्वारा घिर जानेके कारण अत्यन्त दीन अवस्थामें तुम्हें न देखूं ॥ ३१ ॥

उष्य सौवीरकन्याभिः श्लाघस्वार्थैर्यथा पुरा।
मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशं गमः ॥ ३२ ॥

हे पुत्र ! तुम पहिलेकी भांति हर्षयुक्त चित्तसे वीरोंके योग्य कार्य करके सौवीर कन्याओंके बीचमें बडाई और आनन्दके पात्र बनो, उत्साहरहित और पराक्रमसे हीन होकर कभी सिन्धुदेशकी कन्याओंके वशमें मत होओ ॥ ३२ ॥

युवा रूपेण संपन्नो विद्ययाभिजनेन च।
यस्त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः।
वोढव्ये धुर्यनडुवन्मन्ये मरणमेव तत् ॥ ३३ ॥

ऐसे रूप, गुणसे युक्त, सब विद्याओंसे भूपित, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए जगत्में विख्यात, यशस्वी युवा पुरुषका बैलकी भांति दूसरेकी आज्ञामें चलना उसकी मृत्यु ही है ॥ ३३ ॥

यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम्।
पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥ ३४ ॥

यदि मैं तुम्हें दूसरेके वशमें पडकर उसकी खुशामद करते हुए उसके पीछे गमन करते हुए देखूंगी, तो मेरे हृदयमें शान्ति कैसे हो सकेगी ? ॥ ३४ ॥

नास्मिञ्जातु कुले जातो गच्छेद्योऽन्यस्य पृष्ठतः।
न त्वं परस्यानुधुरं तात जीवितुमर्हसि ॥ ३५ ॥

दूसरेके पीछे पीछे चलनेवाला पुरुष तुम्हारे इस कुलमें कभी नहीं उत्पन्न हुआ; हे पुत्र ! इससे दूसरेका सेवक होकर तुमको कभी जीना नहीं चाहिए ॥ ३५ ॥

अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत्परिशाश्वतम्।
पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि ॥ ३६ ॥

क्षत्रियोंका जो सदासे एकरूप अविकल हृदय है, वह मुझको भलीभांति मालूम है। पहलेसे भी पहले तथा बाद की अपेक्षा भी बादमें उत्पन्न हुए पण्डितोंने उस विषयमें जो कुछ वचन कहे हैं, उसकोभी मैं जानती हूं ॥ ३५ ॥

यो वै कश्चिदिहाजातः क्षत्रियः क्षत्रधर्मवित् ।
भयाद्वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित् ॥ ३७ ॥

पृथ्वीके बीच किसी प्रसिद्ध क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर जो पुरुष सब धर्मोंकी यथार्थ बातोंको जाननेवाला क्षत्रिय वीर है, वह भयके कारण अपना जीवन बचानेके लिए भी किसी के आगे झुके नहीं ॥ ३७ ॥

उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् ।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कस्यचित् ॥ ३८ ॥

उद्यम ही पुरुषका पुरुषार्थ है, इससे सदा उद्योगी ही बनना चाहिये कभी भी किसीके सामने झुकना नहीं चाहिए । रणभूमिमें भले ही बोटी बोटी कट जाए, फिर भी किसीके सामने झुके नहीं ॥ ३८ ॥

मातङ्गो मत्त इव च परीयात्सुमहामनाः
ब्राह्मणेभ्यो नमेन्नित्यं धर्मायैव च सञ्जय ॥ ३९ ॥

हे संजय ! मनस्वी वीरपुरुष मदसे मत्त हाथीके समान निर्भय होकर सब स्थानोंमें भ्रमण करे और धर्मका पालन करनेके लिए वह केवल ब्राह्मणोंके सामने ही झुके ॥ ३९ ॥

नियच्छन्नितरान्वर्णान्विनिघ्नन्सर्वदुष्कृतः ।
ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत् ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ ४१९८ ॥

इसके अतिरिक्त और सब वर्णोंको बलपूर्वक अपने वशमें करके और सब दुष्टता करनेवालोंको नष्ट करके बहुतसी सहायतासे युक्त अथवा सहायतासे रहित होकर भी वह अपने जीवनके समयतक इसी प्रकारके कर्म तथा अनुष्ठान करता रहे ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३२ ॥ ४१९८ ॥

: १३३ :

पुत्र उवाच

कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदयं कृतम् ।
मम मातस्त्वकरुणे वैरप्रज्ञे ह्यमर्षणे ॥ १ ॥

पुत्र बोला– हे क्रोधयुक्त, करुणारहित, शत्रुताका विचार करनेवाली माता ! मालूम होता है, कि अत्यन्त कठोर लोहेसे ब्रह्माने तुम्हारे इस हृदयको बनाया है ॥ १ ॥

अहो क्षत्रसमाचारो यत्र मामपरं यथा ।
ईदृशं वचनं ब्रूयाद्भवती पुत्रमेकजम् ॥ २ ॥

अहो ! क्षत्रिय धर्म क्या ही विचित्र है, कि जिसके कारण तुम मुझको दूसरी स्त्रीके पुत्रकी भांति समझकर अपने इकलौते पुत्रसे ऐसे वचन बोल रही हो ॥ २ ॥

किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ।
किमाभरणकृत्यं ते किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३ ॥

यदि तुम मुझे ही न देखोगी, तो तुम्हारे इस समस्त पृथ्वीके राज्य, भूषण, भोग, सुख और जीनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? ॥ ३ ॥

मातोवाच

सर्वारम्भा हि विदुषां तात धर्मार्थकारणात् ।
तानेवाभिसमीक्ष्याहं सञ्जय त्वामचूचुदम् ॥ ४ ॥

माता बोली– हे पुत्र ! बुद्धिमान् मनुष्योंके सम्पूर्ण कर्म ही धर्म और अर्थसे युक्त होते हैं; उसी धर्म और अर्थकी ओर लक्ष्य करके युद्ध करनेके लिये तुम्हें प्रेरणा दे रही हूँ ॥ ४ ॥

स समीक्ष्यक्रमोपेतो मुख्यः कालोऽयमागतः ।
अस्मिंश्चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे
असम्भावितरूपस्त्वं सुनृशंसं करिष्यसि ॥ ५ ॥

अपने पराक्रमको प्रकाशित करनेका यह मुख्य समय उपस्थित हो गया है, इससे यदि तुम इस उपस्थित समयमें अपने कर्त्तव्य कार्यका अनुष्ठान न करोगे, तो तुम लोगोंके बीचमें मानरहित होकर मेरा अत्यन्त ही अहित करोगे ॥ ५ ॥

तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि सञ्जय ।
खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहेतुकम् ॥ ६ ॥

हे संजय ! तुमको अपयशसे ग्रस्त होता हुआ देखकर भी यदि मैं प्रीतिपूर्वक उसके निवारण करनेके निमित्त कुछ वचन न कहूं तो ऐसे पुत्रस्नेहको पण्डित लोग सामर्थ्यरहित विना कारणकी प्रीति और गधीके प्रेमके समान निरर्थक स्नेह कहते हैं ॥ ६ ॥

सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज मूर्खनिषेवितम् ।
अविद्या वै महत्यस्ति यामिमां संश्रिताः प्रजाः ॥ ७ ॥

हे संजय ! इससे तुम मूर्ख लोगोंके मानने योग्य और बुद्धिमानोंमें निन्दित इस बुरे मार्गको त्याग दो। इस पृथ्वीमें अविद्या बहुत है इसी अविद्यापर सभी प्रजायें आश्रित हैं ॥ ७ ॥

तव स्याद्यदि सद्वृत्तं तेन मे त्वं प्रियो भवेः ।
धर्मार्थगुणयुक्तेन नेतरेण कथञ्चन ।
दैवमानुषयुक्तेन सद्भिराचरितेन च ॥ ८ ॥

धर्म अर्थ आदि गुणसे युक्त, देवता और मनुष्योंके द्वारा मान्य, साधु पुरुषोंके मानने योग्य उत्तम आचरण पर यदि तुम चलोगे, तभी तुम मेरे प्रिय बन सकोगे, अन्यथा तुम किसी भी प्रकार मेरे प्रिय नहीं बन सकते ॥ ८ ॥

यो ह्येवमविनीतेन रमते पुत्रनप्तृणा ।
अनुत्थानवता चापि मोघं तस्य प्रजाफलम् ॥ ९ ॥

जो पुरुष उन्नति न करनेवाले अपने पुत्र और पौत्रोंके ऊपर प्रीति करते हैं, उनके प्रजाका फलही व्यर्थ है ॥ ९ ॥

अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दितानि च ।
सुखं नैवेह नामुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः ॥ १० ॥

मनुष्योंके योग्य कर्तव्य कर्मका अनुष्ठान न करनेवाले और निन्दित तथा बुरे कर्मके करनेमें बहुत ही हठ करनेवाले अधम पुरुषोंको इस लोक तथा परलोकमें सुख नहीं मिल सकता ॥ १० ॥

युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः सञ्जयेह जयाय च ।
क्रूराय कर्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने ।
जयन्वा वध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्रसलोकताम् ॥ ११ ॥

हे संजय ! तुम यह निश्चय जान रक्खो, कि इस संसारमें क्षत्रियोंकी उत्पत्ति युद्ध करके जय प्राप्त करनेके लिए, हमेशा क्रूर काम करनेके लिए तथा प्रजाओंका पालन करनेके लिए ही हुई है । क्षत्रिय पुरुष चाहे शत्रुओंको जीते अथवा रणभूमिमें मारा ही जाये; दोनों भांति उसे इन्द्रलोक मिलता है ॥ ११ ॥

न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद्विद्यते सुखम् ।
यदमित्रान्वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमश्नुते ॥ १२ ॥

अमित्रोंको वशमें करके क्षत्रिय पुरुष जिस प्रकारके सुखका उपभोग करता है; वैसा सुख पुण्ययुक्त स्वर्गके इन्द्र भवनमें भी नहीं मिल सकता ॥ १२ ॥

मन्युना दह्यमानेन पुरुषेण मनस्विना ।
निकृतेनेह बहुशः शत्रून्प्रतिजिगीषया ॥ १३ ॥

मनस्वी पुरुष शत्रुको जीतनेकी इच्छासे युक्त होकर ही शत्रुसे पराजित होनेके कारण उत्पन्न हुए क्रोधकी जलनको दूर कर सकता है ॥ १३ ॥

आत्मानं वा परित्यज्य शत्रून्वा विनिपात्य वै ।
अतोऽन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत् ॥ १४ ॥

वह या तो स्वयं मर जाए अथवा शत्रुओंको मारे, इसके अतिरिक्त और किसी प्रकारसे उसके हृदयमें शान्ति नहीं हो सकती ॥ १४ ॥

इह प्राज्ञो हि पुरुषः स्वल्पमप्रियमिच्छति ।
यस्य स्वल्पं प्रियं लोके ध्रुवं तस्याल्पमप्रियम् ॥ १५ ॥

इस संसारमें बुद्धिमान् पुरुष बहुत थोडी वस्तुमें प्रीति नहीं करते हैं; थोडी वस्तु जिसे प्यारी होती है, वह अवश्य ही एक दिन उसके अनिष्टका कारण बन जाती है ॥ १५ ॥

प्रियाभावाच्च पुरुषो नैव प्राप्नोति शोभनम् ।
ध्रुवं चाभावमभ्येति गत्वा गङ्गेव सागरम् ॥ १६ ॥

क्योंकि प्रिय वस्तुओंके अत्यन्त अभाव होजानेपर फिर पुरुषके कल्याणकी संभावना नहीं रहती, अपितु समुद्रमें लीन हुई गङ्गाकी भांति उसका भी पूरी तरहसे अभाव हो जाता है ॥ १६ ॥

पुत्र उवाच

नेयं मतिस्त्वया वाच्या मातः पुत्रे विशेषतः ।
कारुण्यमेवात्र पश्य भूत्वेह जडमूकवत् ॥ १७ ॥

पुत्र बोला– हे माता ! विशेष करके अपने पुत्रके लिए इस प्रकारकी बात कहना तुमको उचित नहीं है । इस समय जड अथवा गूंगेकी भांति शान्तभावसे रहकर केवल करुणा दिखाना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ १७ ॥

मातोवाच

अतो मे भूयसी नन्दिर्यदेवमनुपश्यसि ।
चोद्यं मां चोदयस्येतद्भृशं वै चोदयामि ते ॥ १८ ॥

माता बोली–हे पुत्र ! तुम जैसा विचार करते हो, उससे तुम्हारे ऊपर मेरी अधिक प्रीति उत्पन्न होरही है । मेरे विषयमें जैसा वचन कहना उचित है, तुम वैसा ही कह रहे हो, और मैं भी उसके अनुसार तुमको प्रेमसे युक्त प्रेरणा दे रही हूं ॥ १८ ॥

अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्वसैन्धवान् ।
अहं पश्यामि विजयं कृत्स्नं भाविनमेव ते ॥ १९ ॥

तुम्हारे हाथसे पहिले सम्पूर्ण सैन्धववीरों को मरवाकर बादमें तुम्हारी अत्यन्त प्रशंसा करूंगी। भविष्यमें तुम्हारी जो सब प्रकारसे विजय होगी, उसको मैं प्रत्यक्ष रूपसे देख रही हूं ॥१९॥

पुत्र उवाच

अकोशस्यासहायस्य कुतः स्विद्विजयो मम।
इत्यवस्थां विदित्वेमामात्मनात्मनि दारुणाम्।
राज्याद्भावो निवृत्तो मे त्रिदिवादिव दुष्कृतेः ॥ २० ॥

पुत्र बोला– मेरे पास धन, बल, सहाय आदि कुछ भी नहीं है; तब फिर मेरी जीत कैसे हो सकती है? अपनी ऐसी दारुण अवस्थाको जानकर मैं खुद ही आशाको छोडकर चुप हूं और दुष्कर्मोंसे जिस प्रकार स्वर्ग–प्राप्तिकी आशा नहीं की जाती, उसी प्रकार मैंने राज्य पानेकी आशा छोड दी है ॥ २० ॥

ईदृशं भवती कञ्चिदुपायमनुपश्यति।
तन्मे परिणतप्रज्ञे सम्यक्प्रब्रूहि पृच्छते।
करिष्यामि हि तत्सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ २१ ॥

हे महाबुद्धिमती! जिससे मैं कृतकार्य होसकूं, तुम यदि वैसा कुछ उपाय जानती हो, तो तुमसे पूछनेवाले मेरे लिए विशेष रूपसे कहो; तुम्हारे उस वचनका मैं सम्पूर्ण रूपसे पालन करूंगा ॥ २१ ॥

मातोवाच

पुत्रात्मा नावमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे ॥ २२ ॥

माता बोली– हे पुत्र! पहले की असफलताओंको देखकर अपनी आत्माको तुच्छ मत समझो क्योंकि कभी तो न मिलनेवाली सम्पत्तिभी मिल जाती है, और कभी प्राप्त धनका भी नाश हो जाता है ॥ २२ ॥

अमर्षेणैव चाप्यर्था नारब्धव्याः सुबालिशैः।
सर्वेषां कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता ॥ २३ ॥

मूर्खतासे केवल क्रोधके वशमें होकर ही किसी कार्यका आरम्भ करना उचित नहीं है। हे तात! सब प्रकारके कर्मों के फलकी सिद्धिके विषयमें हमेशा अनित्यता होती ही है ॥२३॥

अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च।
अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते ॥ २४ ॥

जो पुरुष फलकी अनित्यन्ताको जान करके भी कर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होता है; उसके अभिलाषाकी सिद्धि होती भी है, और नहीं भी होती ॥ २४ ॥

ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम् ।
अथ द्वैगुण्यमीहायां फलं भवति वा न वा ॥ २५ ॥

पर जो कर्म ही नहीं करते उनके बारेमें एक बात तो निश्चित ही है कि उनके कर्मके फलका हमेशा अभाव ही रहता है । पर कार्यमें प्रवृत्त होनेसे कार्यके फलकी सिद्धि होना और न होना दोनोंकी ही सम्भावना होती है ॥ २५ ॥

यस्य प्रागेव विदिता सर्वार्थानामनित्यता ।
नुदेद्वृद्धिसमृद्धी स प्रतिकूले नृपात्मज ॥ २६ ॥

हे राजपुत्र ! आरम्भ करनेके पहिले ही जो पुरुष सब कार्योंकी अनित्यताको जान करके उद्यम करता है, वह अपने लिये प्रतिकूल हुए अपनी वृद्धि–पीडा और शत्रुओंकी समृद्धि दोनोंको दूर करता है ॥ २६ ॥

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ।
मङ्गलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणैश्चेश्वरैः सह ॥ २७ ॥

इसलिये निश्चित ही कार्य सिद्ध होगा ऐसा विचार कर उत्साहसे युक्त हो और देवों और ब्राह्मणोंकी पूजा करके तथा अन्य मंगल कार्योंको करके तू उठ जा, जागृत हो जा और ऐश्वर्यप्राप्तिके कार्यमें जुट जा ॥ २७ ॥

प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिर्भवति पुत्रक ।
अभिवर्तति लक्ष्मीस्तं प्राचीमिव दिवाकरः ॥ २८ ॥

हे पुत्र ! बुद्धिमान् राजाकी बहुत शीघ्र ही उन्नति होती है और पूर्व दिशा जैसे भगवान् सूर्यका आलिङ्गन करती है, वैसेही लक्ष्मीदेवी खुद ही उस पुरुषसिंहका आलिङ्गन करती है ॥ २८ ॥

निदर्शनान्युपायांश्च बहून्युद्धर्षणानि च ।
अनुदर्शितरूपोऽसि पश्यामि कुरु पौरुषम् ।
पुरुषार्थमभिप्रेतं समाहर्तुमिहार्हसि ॥ २९ ॥

हे संजय ! मैंने जो यह सब प्रमाण, उपाय और उत्साहसे युक्त वचन तुमसे कहे हैं, मैं तुमको उसीके योग्य देख रही हूं; इससे तुम सब शङ्काओंको त्यागके अपने पराक्रमको प्रकाशित करो इस समय तुम अभिलषित पुरुषार्थ करनेमें समर्थ हो ॥ २९ ॥

क्रुद्धाँल्लुब्धान्परिक्षीणानवक्षिप्तान्विमानितान्।
स्पर्धिनश्चैव ये केचित्तान्युक्त उपधारय ॥ ३० ॥

तुम्हारे शत्रुके ऊपर जो लोग क्रुद्ध हैं, जो लोभके वशमें हैं, जो लोग उससे दुःखित हैं, जो लोग गर्वमें भरे हुए हैं; जिनका उसने अपमान किया है; और जो उसके साथ युद्ध करना चाहते हैं; तुम यत्नपूर्वक उन लोगोंको अपनी ओर मिला लो ॥ ३० ॥

एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान्।
महावेग इवोद्धूतो मातरिश्वा बलाहकान् ॥ ३१ ॥

इस प्रकारके कार्य करनेसे ही, जैसे वायु प्रबल बादलोंके समूहको छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकारसे इन बहुतसे मनुष्योंको अपने वशमें करनेसे तुम अवश्य ही समर्थ हो जाओगे ॥ ३१ ॥

तेषामग्रप्रदायी स्याः कल्योत्थायी प्रियंवदः।
ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरो धास्यन्ति च ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

तुम उन्हें पहले वेतन देकर सन्तुष्ट करो, स्वयं भी सामर्थ्यशाली और उत्साही रहो, उनके साथ प्यारसे बोलो और अपने कार्यकी सिद्धिके लिए शीघ्र ही प्रयत्न करो तब और लोग भी तुम्हारा प्रिय करेंगे तथा तुम्हें अपना स्वामी तथा अग्रणी बनावेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥

यदैव शत्रुर्जानीयात्सपत्नं त्यक्तजीवितम्।
तदैवास्मादुद्विजते सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥ ३३ ॥

जब शत्रु जानता है, कि मेरा वैरी अपने प्राणकी आशा त्याग करके युद्धके निमित्त उपस्थित हुआ है; तभी वह घरमें वास करनेवाले सर्पकी भांति उससे डरता है ॥ ३३ ॥

तं विदित्वा पराक्रान्तं वशे न कुरुते यदि।
निर्वादैर्निर्वदेदेनमन्ततस्तद्भविष्यति ॥ ३४ ॥

उसको अत्यन्त प्रबल जानकर यदि वह वशमें करनेकी कोशिश नहीं करेगा, तो अवश्य सामदानके प्रयोगसे अपने अनुकूल करनेकी इच्छा करेगा, ऐसा होनेपर एक प्रकारसे उसको वशमें करना सिद्ध हो जायेगा ॥ ३४ ॥

निर्वादादास्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिर्भविष्यति।
धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च ॥ ३५ ॥

क्योंकि सन्धिको स्थापित करके स्थान तथा राज्यको पानेसे कभी धनकी भी वृद्धि होगी, पुरुषके धनवान् होनेसे मित्र लोग उसे मानते तथा उसका आसरा ग्रहण करते हैं ॥ ३५ ॥

स्खलितार्थं पुनस्तात सन्त्यजन्त्यपि बान्धवाः।
अप्यस्मिन्नाश्रयन्ते च जुगुप्सन्ति च तादृशम् ॥ ३६ ॥

परन्तु यदि वह दैव संयोगसे धन तथा सम्पत्तिसे भ्रष्ट हो जावे, तो मित्र लोग और भाई बन्धु उसको छोडकर चले जाते हैं; केवल छोडके ही नहीं जाते, बल्कि उस पर विश्वास भी नहीं करते तथा उसकी निन्दा करनेमें भी सङ्कोच नहीं करते ॥ ३६ ॥

शत्रुं कृत्वा यः सहायं विश्वासमुपगच्छति।
अतः सम्भाव्यमेवैतद्यद्राज्यं प्राप्नुयादिति ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ ४२२५ ॥

जो पुरुष शत्रुको सहायक बनाकर उसका विश्वास करता है; उसको किसी समय उसका राज्य मिल सकेगा, यह केवल सम्भावना मात्र ही होती है। परन्तु यथार्थमें उसकी वह आशा कभी सफल नहीं हो सकती ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३३ ॥ ४२२५ ॥

: १३४ :

मातोवाच

नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्याञ्चिदापदि।
अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्तेत दीर्णवत् ॥ १ ॥

माता बोली– हे सञ्जय! चाहे कैसी ही आपत्ति क्यों न आवे, राजाको उससे डरके व्याकुल होना कभी उचित नहीं है, यदि मनमें कोई डर उत्पन्न भी हो जावे, तो बाहर उस डरको कभी भी प्रकट नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥

दीर्णं हि दृष्ट्वा राजानं सर्वमेवानुदीर्यते।
राष्ट्रं बलममात्याश्च पृथक्कुर्वन्ति ते मतिम् ॥ २ ॥

क्योंकि राजाको भयभीत देखकर राज्य, बल, अमात्य आदि सभी भयसे व्याकुल होकर उत्साहरहित हो जाते हैं और वे भिन्न भिन्न विचार करने लग जाते हैं ॥ २ ॥

शत्रूनेके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः।
अन्वेके प्रजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद्विमानिताः ॥ ३ ॥

ऐसी अवस्थाके आनेपर कुछ तो शत्रुओंसे मिल जाते हैं, तो कुछ स्वामीको छोड देते हैं, और जिनका उसने पहले अपमान किया हुआ होता है, वे अवसर पाकर अपने स्वामी पर आक्रमण करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥

य एवात्यन्तसुहृदस्त एनं पर्युपासते ।
अशक्तयः स्वस्तिकामा बद्धवत्सा इडा इव ।
शोचन्तमनुशोचन्ति प्रतीतानिव बान्धवान् ॥ ४ ॥

इनके अतिरिक्त जो लोग उसके अत्यन्त ही सुहृद् हैं, वे ही केवल सामर्थ्यरहित होकर भी, जिसका वत्स बंधा हुआ है ऐसे धेनुके समान स्वामीकी भक्तिके अनुसार उसकी परतन्त्रताको स्वीकार करके उसके कल्याणकी अभिलाषासे उसकी सेवा करते हैं। भाई बन्धुको पतित देखकर जैसे बन्धु बान्धव लोग दुःख और शोक प्रकट करते हैं, वैसे ही विश्वास पात्र सुहृद् इष्टमित्र भी स्वामीको बुरी अवस्थामें पडा हुआ देखकर शोक प्रकाशित करते हैं ॥ ४ ॥

अपि ते पूजिताः पूर्वमपि ते सुहृदो मताः ।
ये राष्ट्रमभिमन्यन्ते राज्ञो व्यसनमीयुषः ।
मा दीदरस्त्वं सुहृदो मा त्वां दीर्णं प्रहासिषुः ॥ ५ ॥

इससे स्वामीको व्यसनमें पडा हुआ देखकर जो लोग तनमनसे उसके राज्यकी रक्षा चाहते हैं, वही लोग यथार्थमें मित्र हैं, ऐसे जो तुम्हारे सुहृद् हैं, उनका तुमने पहले सम्मान भी किया है। हे पुत्र! ऐसे सुहृद पुरुषोंको तुम कभी भी भयसे व्याकुल मत करना। तुमको भयभीत देखकर वह लोग तुम्हें त्याग न देवें ॥ ५ ॥

प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जिज्ञासन्त्या मया तव ।
उल्लपन्त्या समाश्वासं बलवानिव दुर्बलम् ॥ ६ ॥

तुम्हारे प्रभाव, पराक्रम और बुद्धिके जाननेकी अभिलाषासे मैंने जो यह सब वचन कहे हैं, वह तुममें विश्वास पैदा करनेके लिए उसी प्रकार कहे हैं, जिस प्रकार एक बलवान् निर्बलसे कहता है ॥ ६ ॥

यद्येतत्संविजानासि यदि सम्यग्ब्रवीम्यहम् ।
कृत्वासौम्यमिवात्मानं जयायोत्तिष्ठ सञ्जय ॥ ७ ॥

हे संजय! यदि यह यथार्थ रूपसे तुम्हें उत्तम जंचे और यदि मैं यथार्थ बात ही कह रही होऊं तो अपनेको कठोर बनाकर तुम अपने विजयके निमित्त उठ खडे होओ ॥ ७ ॥

अस्ति नः कोशनिचयो महानविदितस्तव ।
तमहं वेद नान्यस्तमुपसम्पादयामि ते ॥ ८ ॥

हे संजय! हम लोगोंका एक बहुत बडा धनका कोश है, वह तुमको नहीं मालूम। मुझे छोडकर और कोई भी उस खजानेके स्थानको नहीं जानता है; उस स्थानमें जो बहुतसा धन है, वह सम्पूर्ण तुमको देती हूं ॥ ८ ॥

सन्ति नैकशता भूयः सुहृदस्तव सञ्जय।
सुखदुःखसहा वीर शतार्हा अनिवर्तिनः ॥ ९ ॥

हे वीर! इसके अतिरिक्त तुम्हारे कई सौ इष्ट मित्र तथा सुहृद लोग भी विद्यमान हैं; वे सब ही तुम्हारे सुख दुःखके साथी और युद्धमें कभी भी पीछे न हटनेवाले तथा सैंकडों शत्रुओंको मारनेवाले हैं ॥ ९ ॥

तादृशा हि सहाया वै पुरुषस्य बुभूषतः।
ईषदुज्जिहतः किञ्चित्सचिवाः शत्रुकर्शनाः ॥ १० ॥

हे शत्रुनाशन! कोई कल्याणको चाहनेवाला पुरुष बलपूर्वक यदि किसी कार्यको करनेका अनुष्ठान करे तो ऐसे शत्रुनाशी सहायक लोग ही उसके मन्त्री बन कर सब कार्य करते हैं ॥ १० ॥

पुत्र उवाच

कस्य त्वीदृशकं वाक्यं श्रुत्वापि स्वल्पचेतसः।
तमो न व्यपहन्येत सुचित्रार्थपदाक्षरम् ॥ ११ ॥

पुत्र बोला– हे माता! उत्तम पद, अक्षर और अर्थोंसे भरे हुए तुम्हारे इन वचनोंको सुनकर किस थोडीसी बुद्धिवालेका भी अज्ञानान्धकार नष्ट नहीं हो जाएगा? ॥ ११ ॥

उदके धूरियं धार्या सर्तव्यं प्रवणे मया।
यस्य मे भवती नेत्री भविष्यद्भूतदर्शिनी ॥ १२ ॥

हे माता! भूत और भविष्यको देखनेवाली तुम जब मुझे इतनी उत्तम शिक्षा दे रही हो; तब मेरे लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है। मैं जलमें डूबे हुएके समान या तो पैतृक राज्यका उद्धार करूंगा अथवा रणभूमिमें प्राणको त्यागकर स्वर्गलोकमें जाऊंगा ॥ १२ ॥

अहं हि वचनं त्वत्तः शुश्रूषुरपरापरम्।
किञ्चित्किञ्चित्प्रतिवदंस्तूष्णीमासं मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥

तुम्हारे उपदेशके वचनोंको सुननेके लिए ही मैं प्रायः मौन रूपसे सुन रहा था; केवल बीच बीचमें कुछ थोडासा जवाब दे दिया करता था ॥ १३ ॥

अतृप्यन्नमृतस्येव कृच्छ्राल्लब्धस्य बान्धवात्।
उद्यच्छाम्येष शत्रूणां नियमाय जयाय च ॥ १४ ॥

अत्यन्त दुर्लभ अमृतके पीनेसे जैसे तृप्ति नहीं होती; वैसे ही तुम्हारे अमृत रूपी वचनोंके सुननेसे मेरी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। शत्रुओंके नाश और अपनी विजयकी प्राप्तिके लिए अब मैं उद्यत हूँ ॥ १४ ॥

कुन्त्युवाच

सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणुन्नो वाक्यसायकैः।
तच्चकार तथा सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ १५ ॥

कुन्ती बोली—विदुराके ऐसे कठोर वचनरूपी बाणोंसे विद्ध होने पर उत्तम घोडेकी भांति उत्साहित होकर माताकी आज्ञाके अनुसार संजयने सब कार्योंको शीघ्र ही पूर्ण किया ॥१५॥

इदमुद्धर्षणं भीमं तेजोवर्धनमुत्तमम्।
राजानं श्रावयेन्मन्त्री सीदन्तं शत्रुपीडितम् ॥ १६ ॥

कोई राजा यदि शत्रुओंसे पीडित होकर भी उत्साह शून्य हो, तो शत्रुओंके नाश करनेवाले तेजको बढानेवाला यह उत्तम वृत्तान्त उसके मंत्रियोंके द्वारा उसे अवश्य सुनाया जाना चाहिए ॥ १६ ॥

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।
महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति ॥ १७ ॥

विजय चाहनेवाले पुरुषको जय नामक इस कथाको अवश्य सुनना चाहिये। जो पुरुष एक बार भी इस कथाको चित्त लगाकर सुनता है, वह शीघ्र ही सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतने और शत्रुओंके नाश करनेमें समर्थ होता है ॥ १७ ॥

इदं पुंसवनं चैव वीराजननमेव च।
अभीक्ष्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥ १८ ॥

गर्भिणी स्त्री वीर पुत्रको उत्पन्न करनेकी इच्छासे इस पुंसवन और वीर पुत्रको उत्पन्न करनेवाली कथाको बार बार सुनकर अवश्य ही शूरवीर पुत्र उत्पन्न करती है ॥ १८ ॥

विद्याशूरं तपःशूरं दमशूरं तपस्विनम्।
ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं साधुवादेन सम्मतम् ॥ १९ ॥

वह स्त्री अवश्यही विद्यावीर, तपस्या वीर, दम वीर, तपस्वी, दिव्य शोभासे प्रकाशित, साधु पुरुषोंमें गिनने योग्य ॥ १९ ॥

अर्चिष्मन्तं बलोपेतं महाभागं महारथम्।
धृष्टवन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥ २० ॥

महातेजस्वी, महाबली, भाग्यवान, महारथ, अजेय, विजयी, सबको जीतनेवाले, पर स्वयं अपराजित ॥ २० ॥

नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम् ।
तदर्थं क्षत्रिया सूते वीरं सत्यपराक्रमम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ ४२५६ ॥

दुष्टोंपर शासन करनेवाले, धर्मात्माओंकी रक्षा करनेवाले, सत्यपराक्रमी, वीर पुत्रकी माता हो सकती है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३४ ॥ ४२५६ ॥

: १३५ :

कुन्त्युवाच

अर्जुनं केशव ब्रूयास्त्वयि जाते स्म सूतके ।
उपोपविष्टा नारीभिराश्रमे परिवारिता ॥ १ ॥

कुन्ती बोली– हे कृष्ण ! तुम मेरी ओरसे अर्जुनको कहना, कि हे पुत्र ! तुमको उत्पन्न करनेके समय जब मैं आश्रममें स्त्रियोंके बीचमें घिरी हुई बैठी थी ॥ १ ॥

अथान्तरिक्षे वागासीद्दिव्यरूपा मनोरमा ।
सहस्राक्षसमः कुन्ति भविष्यत्येष ते सुतः ॥ २ ॥

उसी समय आकाशसे यह मनोहर देववाणी हुई थी, हे कुन्ती ! तुम्हारा यह पुत्र साक्षात् इन्द्रके समान होगा ॥ २ ॥

एष जेष्यति संग्रामे कुरून्सर्वान्समागतान् ।
भीमसेनद्वितीयश्च लोकमुद्वर्तयिष्यति ॥ ३ ॥

भीमसेनकी सहायतासे यह युद्धमें आए हुए सम्पूर्ण कौरवोंको जीत लेगा और शत्रुओंको व्याकुल कर देगा ॥ ३ ॥

पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवस्पृशम् ।
हत्वा कुरून्ग्रामजन्ये वासुदेवसहायवान् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णकी सहायतासे यह सारी पृथ्वीको जीतेगा और इसका यश द्युलोकको छूनेवाला होगा । संग्राम भूमिमें उपस्थित हुए सम्पूर्ण कौरवोंको जीतकर ॥ ४ ॥

पित्र्यमंशं प्रनष्टं च पुनरप्युद्धरिष्यति ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमांस्त्रीन्मेधानाहरिष्यति ॥ ५ ॥

हरण किए हुए अपने पैतृक राज्यका अंश फिर प्राप्त करेगा; और भाइयोंके साथ मिलकर यह श्रीमान् अर्जुन तीन महायज्ञ पूर्ण करेगा ॥ ५ ॥

तं सत्यसन्धं बीभत्सुं सव्यसाचिनमच्युत ।
यथाहमेवं जानामि बलवन्तं दुरासदम्
तथा तदस्तु दाशार्ह यथा वागभ्यभाषत ॥ ६ ॥

हे कृष्ण ! वह सव्यसाची अर्जुन जैसा सत्यप्रतिज्ञ शत्रुओंसे जीतने के अयोग्य और बलवान् है, उसे जितना मैं जानती हूँ उतना ही तुम भी जानते हो; इस कारण देववाणी जो हुई है, वह जिससे सिद्ध होवे, वही करना ॥ ६ ॥

धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय तथा सत्यं भविष्यति ।
त्वं चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि ॥ ७ ॥

हे कृष्ण ! यदि धर्म है, तो अवश्य ये सब वचन सत्य होंगे, तुम ही सब प्रकारके यत्नोंसे उसको पूर्ण करोगे ॥ ७ ॥

नाहं तदभ्यसूयामि यथा वागभ्यभाषत ।
नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः ॥ ८ ॥

उस आकाशवाणीमें जो वचन सुने गये हैं, मैं किसी प्रकारसे भी उनके ऊपर दोष नहीं दे सकती । भगवान् धर्मको सब प्रकारसे नमस्कार है, धर्म ही सम्पूर्ण प्रजाओंको धारण करता है ॥ ८ ॥

एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।
न हि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः ॥ ९ ॥

हे कृष्ण ! अर्जुनसे ऐसा कहकर सदा उद्यम करनेवाले उद्योगी भीमसेनसे भी यह वचन कहना; क्षत्रियोंकी नारी जिस दिनके लिये पुत्रको उत्पन्न करती है, उसके योग्य समय अब उपस्थित हो गया है । पुरुषश्रेष्ठ वीर लोग कभी वैरीको पाकर चुपचाप बैठे नहीं रहते हैं ॥ ९ ॥

विदिता ते सदा बुद्धिर्भीमस्य न स शाम्यति ।
यावदन्तं न कुरुते शत्रूणां शत्रुकर्शनः ॥ १० ॥

हे कृष्ण ! भीमकी बुद्धि तुम्हें सदासे विदित है; वह शत्रुओंका नाश करनेवाला भीमसेन जबतक शत्रुओंका नाश नहीं कर लेता, तबतक शान्त भी नहीं होता ॥ १० ॥

सर्वधर्मविशेषज्ञां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः ।
ब्रूया माधव कल्याणीं कृष्णां कृष्ण यशस्विनीम् ॥ ११ ॥

हे कृष्ण ! महात्मा पाण्डुराजकी सुयोग्य पुत्रवधू, सब कार्यों को विशेष रूपसे जाननेवाली, यशस्विनी, कल्याणी द्रौपदीसे भी तुम मेरी ओरसे यह वचन कहना ॥ ११ ॥

युक्तमेतन्महाभागे कुले जाते यशस्विनि।
यन्मे पुत्रेषु सर्वेषु यथावत्त्वमवर्तिथाः ॥ १२ ॥

हे महाभागे! हे यशस्विनि! हे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई मनस्विनि! हमारे सब पुत्रोंके साथ तुमने जो साध्वी स्त्रीके अनुसार यथार्थ आचरण किया है, वह तुम्हारे योग्य ही है ॥ १२ ॥

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ।
विक्रमेणार्जितान्भोगान्वृणीतं जीवितादपि ॥ १३ ॥

हे पुरुषोत्तम कृष्ण! इसके अनन्तर क्षत्रियोंके धर्ममें सदा रत रहनेवाले दोनों माद्रीपुत्रोंसे कहना, हे पुत्रो! तुम अपने पराक्रमसे प्राप्त किए भोगोंको अपने जीवनसे भी बढकर समझो ॥ १३ ॥

विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ॥ १४ ॥

क्योंकि, हे पुरुषोत्तम! अपने पुरुषार्थसे प्राप्त किए गए धन ही क्षत्रियधर्मके आधार पर जीनेवाले मनुष्यके मनको प्रसन्न करते हैं ॥ १४ ॥

यच्च वः प्रेक्षमाणानां सर्वधर्मोपचायिनी।
पाञ्चाली परुषाण्युक्ता को नु तत्क्षन्तुमर्हति ॥ १५ ॥

तुम्हारे संमुख धर्मके अनुसार आचरण करनेवाली द्रौपदीसे जो कठोर वचन कहे गए, उसको कौन क्षत्रिय पुरुष सह सकता है? ॥ १५ ॥

न राज्यहरणं दुःखं द्यूते चापि पराजयः।
प्रव्राजनं सुतानां वा न मे तद्दुःखकारणम् ॥ १६ ॥

हे कृष्ण! पुत्रोंके राज्यके हारे जाने, जुवेमें हारने और उनके वनवास जानेसे भी मुझे उतना दुःख नहीं हुआ ॥ १६ ॥

यत्तु सा बृहती श्यामा सभायां रुदती तदा।
अश्रौषीत्परुषा वाचस्तन्मे दुःखतरं मतम् ॥ १७ ॥

जब सभामें उस नवयुवती और सुन्दरी द्रौपदीको रोते हुए वे कठोर वचन सुनने पडे, वही मेरे लिए अत्यन्त दुःखदायक है ॥ १७ ॥

स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा।
नाध्यगच्छत्तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥ १८ ॥

क्षत्रिय धर्ममें सदा रत रहनेवाली, स्त्री धर्मसे युक्त, सुन्दरी द्रौपदी अत्यन्त श्रेष्ठ पतियों-वाली होकर भी उस समय किसी रक्षक को नहीं पा सकी ॥ १८ ॥

तं वै ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं द्रौपद्याः पदवीं चर । ॥ १९ ॥

हे महाबाहो ! कृष्ण ! सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह अर्जुनसे यह वचन कहना, कि वह द्रौपदीहीके बताये हुए मार्गसे चले ॥ १९ ॥

विदितौ हि तवात्यन्तं क्रुद्धाविव यमान्तकौ ।
भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ॥ २० ॥

भीम अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होनेपर मानो दो यमकी मूर्ति धारण करके देवताओंको भी नष्ट कर सकते हैं; यह तुमको भली भांति मालूम है ॥ २० ॥

तयोश्चैतदवज्ञानं यत्सा कृष्णा सभागता ।
दुःशासनश्च यद्भीमं कटुकान्यभ्यभाषत ।
पश्यतां कुरुवीराणां तच्च संस्मारयेः पुनः ॥ २१ ॥

उन लोगोंके ऐसे पराक्रमी होनेपर भी जो उनकी प्यारी स्त्री द्रौपदी सभामें बुलाई गई थी, इससे बढकर और अपमानका विषय दूसरा क्या होगा ? हे जनार्दन ! कौरव वीरोंके बीचमें भीमसेनसे भी जो दुःशासनने कठोर वचन कहा था, उसको भी तुम फिर स्मरण करा देना ॥ २१ ॥

पाण्डवान्कुशलं पृच्छेः सपुत्रान्कृष्णया सह ।
मां च कुशलिनीं ब्रूयास्तेषु भूयो जनार्दन ।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुत्रान्मे परिपालय ॥ २२ ॥

हे जनार्दन ! मेरी ओरसे पुत्र और द्रौपदीके सहित पाण्डवोंसे कुशल वार्ता पूछना और मेरी भी कुशल उनसे कहना। इस समय तुम सब विघ्नोंसे रहित होकर शुभ मार्गसे प्रस्थान करो और वहां पहुंचकर मेरे पुत्रोंका प्रतिपालन करो ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच

अभिवाद्याथ तां कृष्णः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
निश्चक्राम महाबाहुः सिंहखेलगतिस्ततः ॥ २३ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर सिंहकीसी मस्त गतिवाले महाबाहु श्रीकृष्ण कुन्तीको प्रणाम और उसकी प्रदक्षिणा करके उसके भवनसे बाहर आ गए ॥ २३ ॥

ततो विसर्जयामास भीष्मादीन्कुरुपुङ्गवान् ।
आरोप्य च रथे कर्णं प्रायात्सात्यकिना सह ॥ २४ ॥

इसके बाद भीष्म आदि कौरवश्रेष्ठोंको वहींपर विदा करके केवल कर्णको अपने रथपर चढाकर सात्यकीके सहित वहांसे चले ! ॥ २४ ॥

ततः प्रयाते दाशार्हे कुरवः सङ्गता मिथः।
जजल्पुर्महदाश्चर्यं केशवे परमाद्भुतम् ॥ २५ ॥

श्रीकृष्णके चले जानेपर सब कौरव एक स्थानमें इकट्ठे होकर उनके परम अद्भुत महा आश्चर्यसे युक्त वृत्तान्तकी बात करने लगे ॥ २५ ॥

प्रमूढा पृथिवी सर्वा मृत्युपाशसिता कृता।
दुर्योधनस्य बालिश्यान्नैतदस्तीति चाब्रुवन् ॥ २६ ॥

सबने मिलकर यह कहा कि, यह सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल मोहसे युक्त होकर मृत्युके वशमें हो गया है। दुर्योधनके मूर्खतारूपी दोषसे अवश्य ही यह सम्पूर्ण राष्ट्र तथा प्रजा नहीं रहेगी ॥ २६ ॥

ततो निर्याय नगरात्प्रययौ पुरुषोत्तमः।
मन्त्रयामास च तदा कर्णेन सुचिरं सह ॥ २७ ॥

इधर पुरुषोत्तम कृष्ण नगरसे निकलनेके बाद कर्णसे बहुत देरतक मंत्रणा करके आगे चले गए ॥ २७ ॥

विसर्जयित्वा राधेयं सर्वयादवनन्दनः।
ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत् ॥ २८ ॥

सब यादवोंको प्रसन्न करनेवाले श्रीकृष्णने राधापुत्र कर्णको छोडकर अत्यन्त शीघ्रताके सहित अपने रथके घोडोंको चलाया ॥ २८ ॥

ते पिबन्त इवाकाशं दारुकेण प्रचोदिताः।
हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुतरंहसः ॥ २९ ॥

मन और वायुके समान शीघ्र चलनेवाले वे महा वेगवान् घोडे दारुक सारथीके हांकनेपर ऐसे चले, कि जैसे आकाशको ही निगलने जा रहे हों ॥ २९ ॥

ते व्यतीत्य तमध्वानं क्षिप्रं श्येना इवाशुगाः।
उच्चैः सूर्यमुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमावहन् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ ४२८६ ॥

अत्यन्त शीघ्रतासे उडनेवाले बाज पक्षीकी भांति अनेक मार्ग और नगरोंको लांघकर वे घोडे शार्ङ्गधनुषको धारण करनेवाले कृष्णको उपप्लव्य नगरमें ले आये ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३५ ॥ ४२८६ ॥

: १३६ :

वैशम्पायन उवाच

कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले—कुन्तीके वचन सुनकर महारथी द्रोणाचार्य और भीष्म शासनका उल्लङ्घन करनेवाले दुर्योधनसे यह वचन बोले ॥ १ ॥

श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र कुन्त्याः कृष्णस्य सन्निधौ ।
वाक्यमर्थवदव्यग्रमुक्तं धर्म्यमनुत्तमम् ॥ २ ॥

हे पुरुषसिंह ! कृष्णसे कुन्तीने जिन सब धर्म और अर्थसे युक्त और निर्भयता पूर्वक वचनोंको कहा, उसको तुमने सुना है ? ॥ २ ॥

तत्करिष्यन्ति कौन्तेया वासुदेवस्य सम्मतम् ।
न हि ते जातु शाम्येरन्नृते राज्येन कौरव ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णके लिए भी मान्य उन वचनोंका पालन उसके पुत्र अवश्य ही करेंगे । हे कौरव ! विना राज्य लिये कभी शान्त न होंगे ॥ ३ ॥

क्लेशिता हि त्वया पार्था धर्मपाशसितास्तदा ।
सभायां द्रौपदी चैव तैश्च तन्मर्षितं तव ॥ ४ ॥

पहिले तुमने धर्मपाशमें बंधे हुए उन पाण्डवोंको बहुत दुःख दिया है। सभाके बीच तुमने द्रौपदीको भी अत्यन्त दुःख दिया है ॥ ४ ॥

कृतास्त्रं ह्यर्जुनं प्राप्य भीमं च कृतनिश्रमम् ।
गाण्डीवं चेषुधी चैव रथं च ध्वजमेव च ।
सहायं वासुदेवं च न क्षंस्यति युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥

इस समय सब शस्त्रोंके जाननेवाले अर्जुन, परिश्रमको करनेवाले भीमसेन, गाण्डीव धनुष, दोनों अक्षय तूणीर, कपिध्वजासे युक्त रथ, और महापराक्रमी श्रीकृष्णकी सहायता पाकर राजा युधिष्ठिर अब किसी प्रकारसे भी तुम्हें क्षमा नहीं करेंगे ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा पार्थेन धीमता ।
विराटनगरे पूर्वं सर्वे स्म युधि निर्जिताः ॥ ६ ॥

हे महाबाहो ! इसके पहिले वीरोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् अर्जुनने जो अकेले ही हम लोगोंको युद्धमें जीत लिया था उस सब वृत्तान्तको तुम जानते ही हो ॥ ६ ॥

दानवान्घोरकर्माणो निवातकवचान्युधि ।
रौद्रमस्त्रं समादाय दग्धवानस्त्रवह्निना ॥ ७ ॥
इसके अतिरिक्त निवातकवच नामक घोर कर्म करनेवाले दानवोंको युद्धमें अर्जुनने रुद्रास्त्र लेकर अस्त्ररूपी अग्निसे जला दिया था ॥ ७ ॥

कर्णप्रभृतयश्चेमे त्वं चापि कवची रथी ।
मोक्षिता घोषयात्रायां पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ८ ॥
तथा घोषयात्राके समय कर्ण आदि सब महारथी योद्धा और कवचको धारण करके रथमें बैठे हुए तुम भी अर्जुनके बाहुबलसे ही गन्धर्वोंके हाथसे छूटे थे। यह सब कर्म ही उन पाण्डवोंके पराक्रमको दर्शानेके लिए काफी हैं ॥ ८ ॥

प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ।
रक्षेमां पृथिवीं सर्वां मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गताम् ॥ ९ ॥
हे पुरुषश्रेष्ठ ! अतः तुम अपने भाई पाण्डवोंके साथ सन्धि स्थापित कर लो। मृत्युके मुखमें पडे हुए इस सम्पूर्ण पृथ्वीका उद्धार करो ॥ ९ ॥

ज्येष्ठो भ्राता धर्मशीलो वत्सलः श्लक्ष्णवाक्शुचिः ।
तं गच्छ पुरुषव्याघ्रं व्यपनीयेह किल्बिषम् ॥ १० ॥
उनमें युधिष्ठिर तुम्हारे जेष्ठ भाई धर्मात्मा, भाइयोंपर वात्सल्य भाव प्रकट करनेवाले, मधुर वाणीवाले तथा पवित्र हैं। अतः तुम पाप बुद्धिको त्यागकर ऐसे पुरुषश्रेष्ठ वीरोंके साथ मिल जाओ ॥ १० ॥

दृष्टश्चेत्त्वं पाण्डवेन व्यपनीतशरासनः ।
प्रसन्नभ्रुकुटिः श्रीमान्कृता शान्तिः कुलस्य नः ॥ ११ ॥
युधिष्ठिर यदि तुमको धनुषसे रहित, सीधी भ्रुकुटी, और शान्तमूर्तिवाला देखें; तभी कौरवोंके कुलमें शान्ति हो सकती है ॥ ११ ॥

तमभ्येत्य सहामात्यः परिष्वज्य नृपात्मजम् ।
अभिवादय राजानं यथापूर्वमरिन्दम ॥ १२ ॥
हे शत्रुनाशक नृपनन्दन ! तुम मंत्रियोंके सहित राजा युधिष्ठिरके पास जाकर पहिलेकी भांति उनका आलिङ्गन करके उन्हें प्रणाम करो ॥ १२ ॥

अभिवादयमानं त्वां पाणिभ्यां भीमपूर्वजः ।
प्रतिगृह्णातु सौहार्दात्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥
भीमके बडे भाई कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर तुमको प्रणाम करते हुए देखकर प्रीतिपूर्वक अपने दोनों हाथोंसे ग्रहण करें ॥ १३ ॥

सिंहस्कन्धोरुबाहुस्त्वां वृत्तायतमहाभुजः ।
परिष्वजतु बाहुभ्यां भीमः प्रहरतां वरः ॥ १४ ॥

लम्बी भुजा, और सिंहके समान कन्धे वाले तथा गोल गोल तथा चौडी तथा बडी भुजाओंवाले और प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीमसेन दोनों भुजाओंसे तुम्हारा आलिङ्गन करें ॥ १४॥

सिंहग्रीवो गुडाकेशस्ततस्त्वां पुष्करेक्षणः ।
अभिवादयतां पार्थः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥ १५ ॥

उसके अनन्तर सिंहके समान सुन्दर ग्रीवावाले कमलनयन कुन्तीपुत्र, धनको जीतनेवाले अर्जुन तुम्हें प्रणाम करें ॥ १५ ॥

आश्विनेयौ नरव्याघ्रौ रूपेणाप्रतिमौ भुवि ।
तौ च त्वां गुरुवत्प्रेम्णा पूजया प्रत्युदीयताम् ॥ १६ ॥

पृथ्वीपर रूपमें अद्वितीय अश्विनीकुमारोंके पुत्र नकुल और सहदेव प्रीतिपूर्वक गुरुकी भांति तुम्हारी आराधना करें ॥ १६ ॥

मुञ्चन्त्वानन्दजाश्रूणि दाशार्हप्रमुखा नृपाः ।
सङ्गच्छ भ्रातृभिः सार्धं मानं सन्त्यज्य पार्थिव ॥ १७ ॥

कृष्ण आदि सब मुख्य राजा तुम लोगोंका मिलना देखकर पुलकित होकर आनन्दपूर्वक आंसुओंकी धारा बहावें । हे राजन् ! तुम अभिमान छोडकर भाईयोंके साथ मिलो ॥ १७ ॥

प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां ततस्त्वं भ्रातृभिः सह ।
समालिङ्ग्य च हर्षेण नृपा यान्तु परस्परम् ॥ १८ ॥

तब तुम भाईयोंके साथ मिलकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यपर शासन करो । इकट्ठे हुए सम्पूर्ण राजा आपसमें मिलकर हर्षपूर्वक अपने अपने देश जायें ॥ १८ ॥

अलं युद्धेन राजेन्द्र सुहृदां शृणु कारणम् ।
ध्रुवं विनाशो युद्धे हि क्षत्रियाणां प्रदृश्यते ॥ १९ ॥

हे पृथ्वीनाथ ! युद्ध करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है । सुहृद लोगोंकी बात मानकर तुम युद्धमें प्रवृत्त मत होओ, क्योंकि युद्धमें क्षत्रियोंके कुलका विनाश स्पष्ट रूपसे दीख रहा है ॥ १९ ॥

ज्योतींषि प्रतिकूलानि दारुणा मृगपक्षिणः ।
उत्पाता विविधा वीर दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः ॥ २० ॥

हे वीर ! प्रकाशमान ज्योतियां प्रतिकूल हो रही हैं, हरिण और पक्षी आदि सब जीवजन्तु भयङ्कर भाव धारण किये हुए हैं । क्षत्रियोंके नाश विषयमें और भी बहुतसे भयङ्कर उत्पात दिखाई पड रहे हैं ॥ २० ॥

विशेषत इहास्माकं निमित्तानि विनाशने।
उल्काभिर्हि प्रदीप्ताभिर्वध्यते पृतना तव ॥ २१ ॥
विशेष करके हम लोगोंमें ही हमारे विनाशके सूचक सब अशकुनोंकी अधिक उत्पत्ति होरही है। तुम्हारी सेनाके ऊपर जलता हुआ उल्कापात हो रहा है। और उससे तुम्हारी सेनाका नाश हो रहा है ॥ २१ ॥

वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशां पते।
गृध्रास्ते पर्युपासन्ते सैन्यानि च समन्ततः ॥ २२ ॥
हे प्रजापालक! सवारीके वाहन मानो हर्षसे रहित हो कर रुदन कर रहे हैं। अशुभ फल देनेवाले गिद्ध आदि पक्षी सेनाके चारों ओर उड रहे हैं ॥ २२ ॥

नगरं न यथापूर्वं तथा राजनिवेशनम्।
शिवाश्चाशिवनिर्घोषा दीप्तां सेवन्ति वै दिशम् ॥ २३ ॥
नगर और राजभवनकी शोभा पहिलेके समान अब नहीं है। सियार आदि पशु भयङ्कर शब्द करते हुए सब जलती हुई दिशाओंमें घूम रहे हैं ॥ २३ ॥

कुरु वाक्यं पितुर्मातुरस्माकं च हितैषिणाम्।
त्वय्यायत्तो महाबाहो शमो व्यायाम एव च ॥ २४ ॥
हे महाबाहो! अतः तुम पिता माता और हित चाहनेवाले हम लोगोंके वचनोंको मानो। शान्ति और युद्ध दोनों ही तुम्हारे अधिकारमें हैं ॥ २४ ॥

न चेत्करिष्यसि वचः सुहृदामरिकर्शन।
तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीडिताम् ॥ २५ ॥
हे शत्रुनाशन! यदि तुम सुहृद् पुरुषोंकी बातोंको न मानोगे, तो अपनी सेनाको अर्जुनके बाणोंसे पीडित होते देखकर अवश्य ही तुमको पश्चात्ताप करना पडेगा ॥ २५ ॥

भीमस्य च महानादं नदतः शुष्मिणो रणे।
श्रुत्वा स्मर्तासि मे वाक्यं गाण्डीवस्य च निस्वनम्।
यद्येतदपसव्यं ते भविष्यति वचो मम ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ ४३१२ ॥

संग्रामभूमिमें तेजस्वी भयङ्कर शब्द करने वाले भीमसेनके सिंहनाद और गाण्डीव धनुष के प्रचण्ड शब्दको सुनकर मेरे इन वचनोंको तुम याद करोगे। इस समय मेरे ये वचन तुम्हें भले ही विपरीत दिखाई दे रहे हैं पर आगे चलकर ये सब सच होंगे ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३६ ॥ ४३१२ ॥

: १३७ :

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु विमनास्तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ।
संहत्य च भ्रुवोर्मध्यं न किञ्चिद्‌व्याजहार ह ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– भीष्म और द्रोणाचार्यके ऐसे वचन सुनकर उदासीन चित्तवाला दुर्योधन नीची गर्दन करके दोनों भौंओंके मध्यस्थानको सिकोडकर तिरछी दृष्टिसे पृथ्वीकी ओर देखने लगा और उसने कुछ भी उत्तर न दिया ॥ १ ॥

तं वै विमनसं दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्यान्योन्यमन्तिकात् ।
पुनरेवोत्तरं वाक्यमुक्तवन्तौ नरर्षभौ ॥ २ ॥

उसको इस प्रकारसे उदासीन देखकर वे दोनों वीरपुरुष एक दूसरेका मुंह देखकर फिर दुर्योधनसे यह वचन बोले ॥ २ ॥

भीष्म उवाच

शुश्रूषुमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यसंगरम् ।
प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम् ॥ ३ ॥

भीष्म बोले– सेवा करनेवाले, पापरहित, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवचन कहनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुनके विरुद्ध युद्ध करना पडेगा इससे बढकर और कौनसा दुःख होगा ? ॥ ३ ॥

द्रोण उवाच

अश्वत्थाम्नि यथा पुत्रे भूयो मम धनञ्जये ।
बहुमानः परो राजन्संनतिश्च कपिध्वजे ॥ ४ ॥

द्रोणाचार्य बोले– हे राजन् ! अपने पुत्र अश्वत्थामाके ऊपर मेरी जैसी प्रीति है; अर्जुनके ऊपर उससे भी अधिक है । अश्वत्थामा जिस प्रकारसे मेरा मान और प्रतिष्ठा करता है, अर्जुन उससे भी अधिक मान, प्रतिष्ठा तथा नम्रता प्रकट करता है ॥ ४ ॥

तं चेत्पुत्रात्प्रियतरं प्रतियोत्स्ये धनञ्जयम् ।
क्षत्रधर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५ ॥

क्षत्रिय धर्मका पालन करनेके कारण यदि मुझे पुत्रसे भी प्रिय उस अर्जुनके साथ युद्ध करना पडे तो इस क्षत्रियोंकी जीविकाको धिक्कार है ॥ ५ ॥

यस्य लोके समो नास्ति कश्चिदन्यो धनुर्धरः।
मत्प्रसादात्स बीभत्सुः श्रेयानन्यैर्धनुर्धरैः ॥ ६ ॥

इस लोकमें जिसके समान धनुर्धारी और कोई भी नहीं है, वह अर्जुन मेरी ही कृपासे दूसरे धनुर्धारियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हुआ है ॥ ६ ॥

मित्रध्रुग्दुष्टभावश्च नास्तिकोऽथानृजुः शठः।
न सत्सु लभते पूजां यज्ञे मूर्ख इवागतः ॥ ७ ॥

जो पुरुष मित्रद्रोही, दुष्ट स्वभाव, नास्तिक, विनय रहित और शठतासे युक्त होता है, वह यज्ञके स्थानमें आये हुए मूर्खके समान कभी भी सज्जनोंमें पूजित नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

वार्यमाणोऽपि पापेभ्यः पापात्मा पापमिच्छति।
चोद्यमानोऽपि पापेन शुभात्मा शुभमिच्छति ॥ ८ ॥

पापी मनुष्य बार बार रोके जाने पर भी जैसे पापकर्मका ही आचरण करता है; उसी प्रकारसे पुण्यात्मा पुरुष पापकर्मोंसे सदा उत्तेजित किये जानेपर भी केवल पुण्यकर्म ही करता है ॥८॥

मिथ्योपचरिता ह्येते वर्तमाना ह्यनु प्रिये।
अहितत्वाय कल्पन्ते दोषा भरतसत्तम ॥ ९ ॥

हे भरतसत्तम ! तुमने शठता द्वारा पाण्डवोंको अलग किया है, तोभी वे लोग तुम्हारे प्रिय कार्यके करनेमें ही रत हैं; तुम्हारे दोषही इस अहितका कारण बन रहे हैं ॥ ९ ॥

त्वमुक्तः कुरुवृद्धेन मया च विदुरेण च।
वासुदेवेन च तथा श्रेयो नैवाभिपद्यसे ॥ १० ॥

कौरवोंमें बूढे और बुद्धिमान् विदुर, मैं द्रोणाचार्य और श्रीकृष्ण आदि सब लोग तुम्हारे हितके निमित्त उपदेश करते हैं; परन्तु तुम अपने कल्याणकी बात स्वीकार नहीं करते हो ॥ १० ॥

अस्ति मे बलमित्येव सहसा त्वं तितीर्षसि।
सग्राहनक्रमकरं गङ्गावेगमिवोष्णगे ॥ ११ ॥

मुझमें अत्यन्त बल है यही समझ कर तुम मगरमच्छ घडियाल आदिसे युक्त महा समुद्रको तरनेकी इच्छासे वर्षाकालमें उमडते हुए गङ्गाके वेगकी भांति सहसा पाण्डवोंकी सेनाके पार जानेकी अभिलाषा करते हो ॥ ११ ॥

वास एव यथा हि त्वं प्रावृण्वानोऽद्य मन्यसे।
स्रजं त्यक्तामिव प्राप्य लोभाद्यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥ १२ ॥

दूसरेके पहने हुए वस्त्रको पहननेके अथवा दूसरेके द्वारा त्यागी हुई मालाको धारण करनेके समान तुम युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मी पाकर उसे अपना ही समझते हो ॥ १२ ॥

द्रौपदीसहितं पार्थं सायुधैर्भ्रातृभिर्वृतम् ।
वनस्थमपि राज्यस्थः पाण्डवं कोऽतिजीवति ॥ १३ ॥

शस्त्रधारी भाइयोंसे घिरे हुए युधिष्ठिरके द्रौपदी सहित वनमें निवास करनेपर भी कौन वीर पुरुष राज्यपद पर रहकर भी उन्हें जीत सकता है ? ॥ १३ ॥

निदेशे यस्य राजानः सर्वे तिष्ठन्ति किङ्कराः ।
तमैलविलमासाद्य धर्मराजो व्यराजत ॥ १४ ॥

सम्पूर्ण राजा जिसके आज्ञाकारी तथा सेवक बने हैं; उस धनके स्वामी कुबेर समुठभेड होने पर जो युधिष्ठिर ज्यादा शोभित हुए ॥ १४ ॥

कुबेरसदनं प्राप्य ततो रत्नान्यवाप्य च ।
स्फीतमाक्रम्य ते राष्ट्रं राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥ १५ ॥

पाण्डव लोग कुबेर के राजभवनमें जाकर अनेक प्रकारके रत्नोंको पाकर अब इस समय तुम्हारी इस बहुत विशाल पृथ्वीके राज्यपर आक्रमण करके अपने राज्यके बढानेकी अभिलाषा करते हैं ॥ १५ ॥

दत्तं हुतमधीतं च ब्राह्मणास्तर्पिता धनैः ।
आवयोर्गतमायुश्च कृतकृत्यौ च विद्धि नौ ॥ १६ ॥

हे राजन् ! हम लोगोंकी तो आयु गतप्राय हुई है, हम लोगोंने अपनी शक्तिके अनुसार दान कर लिए, अध्ययन और होम भी सम्पन्न किए तथा धनसे ब्राह्मणोंको तृप्त भी किया, इससे हम लोगोंको तो एक प्रकारसे तुम कृतकृत्य ही समझो ॥ १६ ॥

त्वं तु हित्वा सुखं राज्यं मित्राणि च धनानि च ।
विग्रहं पाण्डवैः कृत्वा महद्व्यसनमाप्स्यसि ॥ १७ ॥

पाण्डवोंके साथ युद्ध करके तुम राज्य, सुख, मित्र, धन आदि सब वस्तुओंको त्यागकर महा घोर व्यसनमें पडोगे ॥ १७ ॥

द्रौपदी यस्य चाशास्ते विजयं सत्यवादिनी ।
तपोघोरव्रता देवी न त्वं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ १८ ॥

महाघोर तपस्या और व्रत करनेवाली तथा सत्य बोलनेवाली द्रौपदी जिनके विजयकी अभिलाषा करती है, उन पाण्डवोंको तुम जीत नहीं सकोगे ? ॥ १८ ॥

मन्त्री जनार्दनो यस्य भ्राता यस्य धनञ्जयः ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण जिनके मन्त्री और अर्जुन जिनके भाई हैं ऐसे प्रतापी सभी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरको तुम किस प्रकारसे जीत सकोगे ? ॥ १९ ॥

×

सहाया ब्राह्मणा यस्य धृतिमन्तो जितेन्द्रियाः ।
तमुग्रतपसं वीरं कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ २० ॥

इन्द्रियोंको जीतनेवाले तपस्वी और बुद्धिमान् ब्राह्मण जिस युधिष्ठिरकी सहायता कर रहे हैं, उसे महा पराक्रमी सत्यवादी वीर पुरुषको तुम किस प्रकारसे पराजित कर सकोगे? ॥२०॥

पुनरुक्तं च वक्ष्यामि यत्कार्यं भूतिमिच्छता ।
सुहृदा मज्जमानेषु सुहृत्सु व्यसनार्णवे ॥ २१ ॥

मित्रोंके विपत्तिरूपी समुद्रमें डूबनेके समयमें कल्याण चाहनेवाले सुहृद् पुरुषोंको जैसा कहना उचित है, उसीके अनुसार मैं फिर कहता हूं ॥ २१ ॥

अलं युद्धेन तैर्वीरैः शाम्य त्वं कुरुवृद्धये ।
मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च पराभवम् ॥ २२ ॥

॥ इति महाभारते उद्योगपर्वणि सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥ समाप्तं भगवद्यानपर्व ॥४३३४॥

युद्ध मत करो, कुरुकुलकी वृद्धिके लिए उन पुरुषसिंह पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लो। तुम पुत्र, मंत्री और सेनाके सहित पराभवको मत प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३७॥ भगवद्यानपर्व समाप्त ॥४३३४॥

: १३८ :

धृतराष्ट्र उवाच

राजपुत्रैः परिवृतस्तथामात्यैश्च संजय ।
उपारोप्य रथे कर्णं निर्यातो मधुसूदनः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे संजय ! श्रीकृष्ण मंत्रियों और राजपुत्रोंसे घिरकर कर्णको रथपर बैठाकर नगरसे बाहर हुए थे ॥ १ ॥

किमब्रवीद्रथोपस्थे राधेयं परवीरहा ।
कानि सान्त्वानि गोविन्दः सूतपुत्रे प्रयुक्तवान् ॥ २ ॥

उन शत्रुनाशन कृष्णने रथपर बैठे हुए सूतपुत्र कर्णसे क्या कहा था और गोविन्दने सूतपुत्र कर्णके साथ किस तरहकी मधुरवाणीका प्रयोग किया था ॥ २ ॥

ओघमेघस्वनः काले यत्कृष्णः कर्णमब्रवीत् ।
मृदु वा यदि वा तीक्ष्णं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३ ॥

हे संजय ! वर्षाकालके मेघके समान गंभीर स्वरवाले जनार्दन कृष्णने राधापुत्र कर्णसे जो कुछ कहा था, वह कोमल रहा हो अथवा कठोर, उसे तुम मुझे सुनाओ ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

आनुपूर्व्येण वाक्यानि श्लक्ष्णानि च मृदूनि च।
प्रियाणि धर्मयुक्तानि सत्यानि च हितानि च ॥ ४ ॥
हृदयग्रहणीयानि राधेयं मधुसूदनः।
यान्यब्रवीदमेयात्मा तानि मे शृणु भारत ॥ ५ ॥

संजय बोले– हे भारत! उन अचिन्त्यात्मा मधुसूदन कृष्णने राधापुत्र कर्णसे जो क्रमसे तीक्ष्ण और कोमल, प्रिय धर्मयुक्त, सत्य, हितकर और हृदयंगम वचन कहे थे, उन्हें हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ४–५ ॥

वासुदेव उवाच

उपासितास्ते राधेय ब्राह्मणा वेदपारगाः।
तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनानसूयया ॥ ६ ॥

वासुदेव बोले– हे कर्ण! तुमने वेदोंके जाननेवाले बहुतसे ब्राह्मणोंकी उपासना की है; और पापरहित होकर निष्ठा और श्रद्धाके सहित अनेक तत्त्वोंके अर्थको भी जान लिया है ॥६॥

त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान्सनातनान्।
त्वं ह्येव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः ॥ ७ ॥

अतः, हे कर्ण! तुम सनातन वेदवादको यथार्थरूपसे जानते हो, और सूक्ष्मसे सूक्ष्म सब धर्मशास्त्रके मर्मको भी तुम ही जानते हो ॥ ७ ॥

कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते।
वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः ॥ ८ ॥

पुत्र जो कन्याके गर्भसे पैदा होता है, वह चाहे कानीन अर्थात् विवाहसे पूर्व ही पैदा हो गया हो अथवा सहोढ अर्थात् विवाहके समय गर्भमें रहनेके कारण विवाहके बाद पैदा हुआ हो, शास्त्रको जाननेवाले पण्डित लोग कन्याके पाणिग्रहण करनेवाले पुरुषको ही उस पुत्रका पिता कहते हैं ॥ ८ ॥

सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः।
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि ॥ ९ ॥

अतः, कुन्तीकी कन्या अवस्थामें तुम्हारा जन्म होनेसे धर्मशास्त्रकी आज्ञाके अनुसार तुम भी धर्मपूर्वक पाण्डुहीके पुत्र हो। अतः आओ, धर्मशास्त्रके नियमानुसार तुम्हीं युधिष्ठिरसे पहिले राजा बनोगे ॥ ९ ॥

पितृपक्षे हि ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः ।
द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ ॥ १० ॥

तुम्हारे पितृपक्षमें पृथावंशी और मातृपक्षमें वृष्णिवंशी हैं; हे पुरुषर्षभ ! इन दोनों पक्षोंको तुम सदा अपना सहायक ही समझो ॥ १० ॥

मया सार्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः ।
अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात् ॥ ११ ॥

हे तात ! आज ही मेरे साथ तुम इस स्थानसे प्रस्थान करो । हे तात ! तुम युधिष्ठिरसे पहिले ही कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए हो; यह बात पाण्डवोंको आज विदित होजाये ॥ ११ ॥

पादौ तव ग्रहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।
द्रौपदेयास्तथा पञ्च सौभद्रश्चापराजितः ॥ १२ ॥

पांचों भाई पाण्डव द्रौपदीके पांचों पुत्र, तथा अपराजित सुभद्रानन्दन अभिमन्यु ये सभी तुम्हारे पैर छूयेंगे ॥ १२ ॥

राजानो राजपुत्राश्च पाण्डवार्थे समागताः ।
पादौ तव ग्रहीष्यन्ति सर्वे चान्धकवृष्णयः ॥ १३ ॥

साथही और पाण्डवोंके कार्यके निमित्त इकट्ठे हुए अन्धक और वृष्णि आदि सम्पूर्ण राजा तथा राजपुत्र लोग तुम्हारी चरण वन्दना करेंगे ॥ १३ ॥

हिरण्मयांश्च ते कुम्भान्राजतान्पार्थिवांस्तथा ।
ओषध्यः सर्वबीजानि सर्वरत्नानि वीरुधः ॥ १४ ॥
राजन्या राजकन्याश्चाप्यानयन्त्वभिषेचनम् ।
षष्ठे च त्वां तथा काले द्रौपद्युपगमिष्यति ॥ १५ ॥

सुवर्ण चांदी आदिके कलशोंमें सब औषधी, सब धान्य, सम्पूर्ण रत्न और लता आदि समस्त सामग्रियोंको तुम्हारे अभिषेकके निमित्त राजा और राजकन्यायें लाकर उपस्थित करेंगी; पाण्डवोंकी प्यारी द्रुपदनन्दिनी द्रौपदी भी तुम्हें पाण्डुपुत्र मानकर वर्षके छठवें भाग अर्थात् वर्षभरमें दो महिने तुम्हारे समीप उपस्थित होगी ॥ १४-१५ ॥

अद्य त्वामभिषिञ्चन्तु चातुर्वैद्या द्विजातयः ।
पुरोहितः पाण्डवानां व्याघ्रचर्मण्यवस्थितम् ॥ १६ ॥

पाण्डवोंके चारों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मण लोग तथा उनके पुरोहित धौम्य आज ही वाघके चमडे पर बैठे हुए तुमको पृथ्वीके राज्यके ऊपर अभिषेक करके सिंहासन पर बैठावें ॥ १६ ॥

तथैव भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ।
द्रौपदेयास्तथा पञ्च पाञ्चालाश्चेदयस्तथा ॥ १७ ॥

पुरुषश्रेष्ठ पांचों भाई पाण्डव तथा द्रौपदीके पांचों पुत्र, पाञ्चाल और चेदिवंशीय क्षत्रिय लोग ॥ १७ ॥

अहं च त्वाभिषेक्ष्यामि राजानं पृथिवीपतिम् ।
युवराजोऽस्तु ते राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥

तथा मैं सब कोई मिलकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यपर राजाके रूपमें तुम्हारा अभिषेक करेंगे । कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर तुम्हारे युवराज बनें ॥ १८ ॥

गृहीत्वा व्यजनं श्वेतं धर्मात्मा संशितव्रतः ।
उपान्वारोहतु रथं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १९ ॥

धर्मात्मा और व्रतशील वे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर श्वेतच्छत्र धारण करके तुम्हारे पीछे रथपर चढकर चलें ॥ १९ ॥

छत्रं च ते महच्छ्वेतं भीमसेनो महाबलः ।
अभिषिक्तस्य कौन्तेय कौन्तेयो धारयिष्यति ॥ २० ॥

हे कुन्तीपुत्र ! राज्यपर तुम्हारा अभिषेक होनेपर महा बलवान् कुन्तीपुत्र भीमसेन तुम्हारे ऊपर श्वेतछत्र धारण करके खडे हों ॥ २० ॥

किङ्किणीशतनिर्घोषं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
रथं श्वेतहयैर्युक्तमर्जुनो वाहयिष्यति ॥ २१ ॥

अर्जुन सैंकडों किङ्किणिके शब्दोंसे पूरित बाघके चमडेसे घिरे हुए श्वेतवर्णके घोडोंसे युक्त तुम्हारे उत्तम रथको चलावें ॥ २१ ॥

अभिमन्युश्च ते नित्यं प्रत्यासन्नो भविष्यति ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च पञ्च ये ॥ २२ ॥
पाञ्चालास्त्वानुयास्यन्ति शिखण्डी च महारथः ।
अहं च त्वानुयास्यामि सर्वे चान्धकवृष्णयः ।
दाशार्हाः परिवारास्ते दाशार्णाश्च विशां पते ॥ २३ ॥

उनका पुत्र अभिमन्यु सदा तुम्हारी सेवामें उपस्थित रहेगा, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके जो पांचों पुत्र हैं, महारथी शिखण्डी और पाञ्चाल देशीय दूसरे सम्बन्धी लोग भी तुम्हारे अनुगामी बनें । हे राजन् ! अन्धक, वृष्णि, दाशार्ह और दशार्णवंशीय राजा तुम्हारे परिवारके सदस्य हों, और मैं भी तुम्हारा अनुयायी बनूंगा ॥ २२–२३ ॥

भुंक्ष्व राज्यं महाबाहो भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ।
जपैर्होमैश्च संयुक्तो मङ्गलैश्च पृथग्विधैः ॥ २४ ॥

हे महाबाहो ! अतः तुम जप, होम और अनेक तरहके मङ्गल कर्मोंसे युक्त होकर सहोदर पाण्डवोंके सहित राज्यका उपभोग करो ॥ २४ ॥

पुरोगमाश्च ते सन्तु द्रविडाः सह कुन्तलैः ।
आन्ध्रास्तालचराश्चैव चूचुपा वेणुपास्तथा ॥ २५ ॥

द्रविड कुन्तल, आन्ध्र, तालचर, चूचुप और वेणुप देशीय राजा लोग तुम्हारे आगे आगे चलें ॥ २५ ॥

स्तुवन्तु त्वाद्य बहुशः स्तुतिभिः सूतमागधाः ।
विजयं वसुषेणस्य घोषयन्तु च पाण्डवाः ॥ २६ ॥

सूत, मागध, वन्दी लोग अनेक प्रकारसे तुम्हारी स्तुति करें। पाण्डव लोग भी 'वसुषेणकी जय' ऐसा कहकर सब ओरसे तुम्हारी विजयकी घोषणा करें ॥ २६ ॥

स त्वं परिवृतः पार्थैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
प्रशाधि राज्यं कौन्तेय कुन्तीं च प्रतिनन्दय ॥ २७ ॥

हे कौन्तेय ! नक्षत्रोंमें घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति तुम भाइयोंसे घिरकर राज्यपर शासन करो और कुन्तीका आनन्द भी बढाओ ॥ २७ ॥

मित्राणि ते प्रहृष्यन्तु व्यथन्तु रिपवस्तथा ।
सौभ्रात्रं चैव तेऽद्यास्तु भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥ ४३६२ ॥

तुम्हारे इष्ट मित्र प्रसन्न और शत्रुलोग दुःखित हों; भ्राताके रूपमें आज ही पाण्डवोंके साथ तुम्हारा मिलाप हो ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ १३८ ॥ ४३६२ ॥

: १३९ :

कर्ण उवाच

असंशयं सौहृदान्मे प्रणयाच्चात्थ केशव ।
सख्येन चैव वार्ष्णेय श्रेयस्कामतयैव च ॥ १ ॥

कर्ण बोले– हे वृष्णिनन्दन कृष्ण ! तुम जो मित्रता, प्रीति, हितैषितासे युक्त मेरे निमित्त इन सब वचनोंको कह रहे हो, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १ ॥

सर्वं चैवाभिजानामि पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः।
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणां यथा त्वं कृष्ण मन्यसे ॥ २ ॥
हे कृष्ण! तुम जैसा मानते हो, वह सब सत्य है, धर्मशास्त्रके अनुसार धर्मपूर्वक मैं पाण्डुराजका ही पुत्र हूं यह सब मैं जानता हूं ॥ २ ॥

कन्या गर्भं समाधत्त भास्करान्मां जनार्दन।
आदित्यवचनाच्चैव जातं मां सा व्यसर्जयत् ॥ ३ ॥
हे जनार्दन! माताने कन्या अवस्थामें सूर्यदेवके अंशसे मुझे गर्भमें धारण किया था, और उत्पन्न होते ही सूर्यदेवके वचनके अनुसार उसने मुझे छोड दिया था ॥ ३ ॥

सोऽस्मि कृष्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः।
कुन्त्या त्वहमपाकीर्णो यथा न कुशलं तथा ॥ ४ ॥
हे शत्रुनाशन कृष्ण! इस प्रकार उत्पन्न होनेसे धर्मशास्त्रके अनुसार मैं पाण्डुराजहीका पुत्र कहा जा सकता हूं, परन्तु कुन्तीने मेरी कुछ भी चिन्ता न करके अपने हाथसे त्याग दिया ॥ ४ ॥

सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैव अनयद्गृहान्।
राधायाश्चैव मां प्रादात्सौहार्दान्मधुसूदन ॥ ५ ॥
तब, हे मधुसूदन कृष्ण! सूतजातीय अधिरथ नामक पुरुष मुझे देखते ही प्रीतिसे अपने घरमें ले गया और उसने अपनी प्यारी स्त्री राधाके हाथमें दे दिया था ॥ ५ ॥

मत्स्नेहाच्चैव राधायाः सद्यः क्षीरमवातरत्।
सा मे मूत्रं पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ॥ ६ ॥
हे कृष्ण! तब पुत्रके स्नेहसे युक्त होकर राधाके दोनों स्तनोंमें दूधकी धारा उत्पन्न हो गई और अपने पुत्रके समान उसने मेरा मल–मूत्र भी साफ किया था ॥ ६ ॥

तस्याः पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम्।
धर्मविद्धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः ॥ ७ ॥
अतः धर्मको जाननेवाला और सदा धर्मशास्त्रको सुननेवाला मेरे समान पुरुष किस प्रकारसे उनके पिण्डका लोप करनेमें समर्थ हो सकता है? ॥ ७ ॥

तथा मामभिजानाति सूतश्चाधिरथः सुतम्।
पितरं चाभिजानामि तमहं सौहृदात्सदा ॥ ८ ॥
विशेष करके राधाकी भांति अधिरथ भी प्रीति पूर्वक मुझे अपना पुत्र ही समझता है, और मैं भी सदासे प्रेमके कारण उनको पिता ही समझता हूं ॥ ८ ॥

स हि मे जातकर्मादि कारयामास माधव।
शास्त्रदृष्टेन विधिना पुत्रप्रीत्या जनार्दन ॥ ९ ॥
हे माधव जनार्दन ! पुत्रप्रेमके वशमें होकर उन्होंने शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार ब्राह्मणोंसे मेरा जातिकर्म आदि सब संस्कार कराये ॥ ९ ॥

नाम मे वसुषेणेति कारयामास वै द्विजैः।
भार्याश्चोढा मम प्राप्ते यौवने तेन केशव ॥ १० ॥
ब्राह्मणोंके द्वारा उन्होंने मेरा नाम "वसुषेण" रखवाया तथा हे केशव ! और युवा अवस्थाके प्राप्त होनेपर कन्याओंके साथ मेरा ब्याह भी कराया ॥ १० ॥

तासु पुत्राश्च पौत्राश्च मम जाता जनार्दन।
तासु मे हृदयं कृष्ण सञ्जातं कामबन्धनम् ॥ ११ ॥
हे मधुसूदन जनार्दन ! उनके गर्भसे मेरे पुत्र और पौत्र आदि उत्पन्न हुए हैं और उन ही लोगोंके साथ मेरा हृदय तथा वासनाबन्धन जुडा हुआ है ॥ ११ ॥

न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः।
हर्षाद्भयाद्वा गोविन्द अनृतं वक्तुमुत्सहे ॥ १२ ॥
अतः, हे गोविन्द ! बहुतसा सुवर्णका ढेर और सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलके मिलने तथा हर्ष और भयसे भी मैं झूठ नहीं बोल सकता ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात्।
मया त्रयोदश समा भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥ १३ ॥
हे कृष्ण ! राजा धृतराष्ट्रके कुलमें मैं दुर्योधनके आसरे रहकर तेरह वर्षसे निष्कण्टक राज्यका भोग कर रहा हूं ॥ १३ ॥

इष्टं च बहुभिर्यज्ञैः सह सूतैर्मयासकृत्।
आवाहाश्च विवाहाश्च सह सूतैः कृता मया ॥ १४ ॥
इतने दिनोंमें सूतोंके मैंने बहुतसे यज्ञ आदिके शुभकर्मोंका कई बार अनुष्ठान किया है। मेरा विवाह और व्यवहार आदि सब कार्य सूतजातिमें हुआ है ॥ १४ ॥

मां च कृष्ण समाश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः।
दुर्योधनेन वार्ष्णेय विग्रहश्चापि पाण्डवैः ॥ १५ ॥
हे वृष्णिनन्दन कृष्ण ! मेरा ही आसरा लेकर राजा दुर्योधन शस्त्रोंको इकट्ठा करने एवं पाण्डवोंके साथ विरोध करके युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए हैं ॥ १५ ॥

तस्माद्रणे द्वैरथे मां प्रत्युद्यातारमच्युत ।
वृतवान्परमं हृष्टः प्रतीपं सव्यसाचिनः ॥ १६ ॥

उसी कारणसे, हे अच्युत श्रीकृष्ण! दुर्योधनने प्रसन्न होकर द्वैरथ युद्धमें अर्जुनके विरुद्ध जानकर उससे युद्ध करनेके निमित्त मुझको ही निश्चित किया है ॥ १६ ॥

वधाद्बन्धाद्भयाद्वापि लोभाद्वापि जनार्दन ।
अनृतं नोत्सहे कर्त्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १७ ॥

हे जनार्दन कृष्ण! अब मैं वध, बन्धन, भय और लोभसे विचलित होकर उस बुद्धिमान् धृतराष्ट्रपुत्रके साथ किसी प्रकारसे भी मिथ्या आचरण करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ ॥ १७ ॥

यदि ह्यद्य न गच्छेयं द्वैरथं सव्यसाचिना ।
अकीर्तिः स्याद्धृषीकेश मम पार्थस्य चोभयोः ॥ १८ ॥

हे हृषीकेश! यदि अब अर्जुनके साथ मैं द्वैरथयुद्धमें प्रवृत्त नहीं होऊंगा, तो मेरी तथा अर्जुन दोनोंही की अकीर्ति होगी ॥ १८ ॥

असंशयं हितार्थाय ब्रूयास्त्वं मधुसूदन ।
सर्वं च पाण्डवाः कुर्युस्त्वद्वशित्वान्न संशयः ॥ १९ ॥

हे मधुसूदन कृष्ण! तुम निःसन्देह यह सब वचन हमारे हितके निमित्त ही कहते हो, और तुम्हारे वशमें चलनेके कारण पाण्डव लोग भी तुम्हारे कहे हुए सब कार्योंको पूर्ण करेंगे, उसमें भी मुझको कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥

मन्त्रस्य नियमं कुर्यास्त्वमत्र पुरुषोत्तम ।
एतदत्र हितं मन्ये सर्वयादवनन्दन ॥ २० ॥

हे यादवनन्दन मधुसूदन! इस समय तो तुम पाण्डवोंसे " कर्ण कुन्तीका पुत्र है " यह बात छिपाकर ही रखना। यही मुझे सब प्रकारसे उत्तम प्रतीत होता है ॥ २० ॥

यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संशितव्रतः ।
कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ॥ २१ ॥

हे शत्रुनाशन! क्योंकि यदि व्रतशील धर्मात्मा युधिष्ठिर मुझे कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुआ प्रथम पुत्र जान लेंगे, तो वह स्वयं राज्य कभी स्वीकार नहीं करेंगे ॥ २१ ॥

प्राप्य चापि महद्राज्यं तदहं मधुसूदन ।
स्फीतं दुर्योधनायैव सम्प्रदद्यामरिन्दम ॥ २२ ॥

और हे शत्रुनाशी मधुसूदन! मैं भी उस समृद्ध और विशाल राज्यको ग्रहण करके दुर्योधनको ही दे दूंगा ॥ २२ ॥

×

स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः।
नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ॥२३॥

इसलिए तुम जिसके मन्त्री हो और अर्जुन जिसके मुख्य वीर योद्धा हैं ऐसे वे धर्मात्मा युधिष्ठिर ही सदाके लिये राजा बन रहें ॥ २३ ॥

पृथिवी तस्य राष्ट्रं च यस्य भीमो महारथः।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च माधव ॥ २४ ॥

हे माधव ! महारथी भीम, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदीके पुत्र जिन के पृष्ठरक्षक हैं, उसी युधिष्ठिरकी ही यह सम्पूर्ण पृथ्वी और राज्य हो ॥ २४ ॥

उत्तमौजा युधामन्युः सत्यधर्मा च सोमकिः।
चैद्यश्च चेकितानश्च शिखण्डी चापराजितः ॥ २५ ॥

उत्तमौजा और युधामन्यु, सत्यधर्मा, सोमकी, चैद्य, चेकितान, अपराजित शिखण्डी ॥२५॥

इन्द्रगोपकवर्णाश्च केकया भ्रातरस्तथा।
इन्द्रायुधसवर्णश्च कुन्तिभोजो महारथः ॥ २६ ॥

लाल वर्णके केकय देशी भाई इन्द्रधनुषके समान वर्णवाला महारथी कुन्तिभोज ॥ २६ ॥

मातुलो भीमसेनस्य सेनजिच्च महारथः।
शङ्खः पुत्रो विराटस्य निधिस्त्वं च जनार्दन ॥ २७ ॥

भीमसेनका मामा महारथी सेनजित, विराटपुत्र शङ्ख और समुद्रकी भांति सब कार्योंको पूर्ण करने वाले तुम ॥ २७ ॥

महानयं कृष्ण कृतः क्षत्रस्य समुदानयः।
राज्यं प्राप्तमिदं दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ २८ ॥

इस प्रकार, हे कृष्ण ! और भी बहुतसे मुख्य मुख्य राजा लोग इकट्ठे हुए हैं। यह प्राप्त हुआ हुआ राज्य सब राजाओंमें विख्यात है ॥ २८ ॥

धार्तराष्ट्रस्य वार्ष्णेय शस्त्रयज्ञो भविष्यति।
अस्य यज्ञस्य वेत्ता त्वं भविष्यसि जनार्दन।
आध्वर्यवं च ते कृष्ण क्रतावस्मिन्भविष्यति ॥ २९ ॥

हे वार्ष्णेय ! इस समय धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनको बडे भारी शस्त्ररूपी यज्ञका अनुष्ठान करना पडेगा और हे कृष्ण ! तुम उस यज्ञके करानेवाले ब्रह्मा होगे और इस यज्ञमें तुमको ही अध्वर्युका कार्य करना होगा ॥ २९ ॥

होता चैवात्र बीभत्सुः सन्नद्धः स कपिध्वजः ।
गाण्डीवं स्रुक्तथाज्यं च वीर्यं पुंसां भविष्यति ॥ ३० ॥

गाण्डीव धनुषधारी कपिध्वजासे युक्त अर्जुन इस यज्ञमें होताका कार्य करेंगे । गाण्डीव धनुष स्रुक् और वीरोंका पराक्रम ही उसमें घृत होगा ॥ ३० ॥

ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णं च माधव ।
मन्त्रास्तत्र भविष्यन्ति प्रयुक्ताः सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥

हे कृष्ण ! शस्त्रोंके चलानेके समय पराक्रमी अर्जुन पाशुपत, ब्रह्मास्त्र, ऐन्द्र और स्थूणाकर्ण आदि जो सब मन्त्र चलायेंगे, वह सब यज्ञीय मन्त्रोंके समान होंगे ॥ ३१ ॥

अनुयातश्च पितरमधिको वा पराक्रमे ।
ग्रावस्तोत्रं स सौभद्रः सम्यक्तत्र करिष्यति ॥ ३२ ॥

पराक्रममें पिताके समान अथवा उससे भी अधिक बलवान् सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ग्रावस्तोत्र गाने वाला बनेगा ॥ ३२ ॥

उद्गातात्र पुनर्भीमः प्रस्तोता सुमहाबलः ।
विनदन्स नरव्याघ्रो नागानीकान्तकृद्रणे ॥ ३३ ॥

रणभूमिमें महा घोर शब्द करनेवाले हाथियोंकी सेनाके निमित्त कालस्वरूप महाबली पराक्रमी पुरुषसिंह भीमसेन सामवेदी मन्त्रोंको जाननेवाले उद्गाताका कार्य करेंगे ॥ ३३ ॥

स चैव तत्र धर्मात्मा शश्वद्राजा युधिष्ठिरः ।
जपैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वं कारयिष्यति ॥ ३४ ॥

जप होमसे युक्त स्वयं धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर होमके ब्रह्माके कार्यको करेंगे ॥ ३४ ॥

शङ्खशब्दाः समुरजा भेर्यश्च मधुसूदन ।
उत्कृष्टसिंहनादाश्च सुब्रह्मण्यो भविष्यति ॥ ३५ ॥

हे मधुसूदन ! शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, नगाडेके बाजे और वीरोंके सिंहनाद सुब्रह्मण्यके मन्त्र-स्वरूप वचन होंगे ॥ ३५ ॥

नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ यशस्विनौ ।
शामित्रं तौ महावीर्यौ सम्यक्तत्र करिष्यतः ॥ ३६ ॥

यशस्वी बलवान् माद्रीनन्दन नकुल और सहदेव इस यज्ञके निमित्त उत्तम शमिताका कर्म करेंगे ॥ ३६ ॥

कल्माषदण्डा गोविन्द विमला रथशक्तयः ।
यूपाः समुपकल्पन्तामस्मिन्यज्ञे जनार्दन ॥ ३७ ॥

हे जनार्दन कृष्ण ! विचित्र वर्णोंकी ध्वजाओंवाले सब उत्तम रथोंका समूह इस यज्ञमें यूपरूप होंगे ॥ ३७ ॥

कर्णिनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहणाः ।
तोमराः सोमकलशाः पवित्राणि धनूंषि च ॥ ३८ ॥

कर्णि, नालीक, नाराच वत्सदन्त आदि शस्त्र उपबृंहण होंगे, तोमर सोमके कलश होंगे, और धनुष पवित्र अर्थात् दर्भ होंगे ॥ ३८ ॥

असयोऽत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च ।
हविस्तु रुधिरं कृष्ण अस्मिन्यज्ञे भविष्यति ॥ ३९ ॥

हे कृष्ण ! उस यज्ञमें तलवार कपाल, मस्तक पुरोडाश तथा वीरोंका बहनेवाला रक्त हविरूप होगा ॥ ३९ ॥

इध्माः परिधयश्चैव शक्त्योऽथ विमला गदाः ।
सदस्या द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शारद्वतः ॥ ४० ॥

शक्ति अग्निको उद्दीपन करनेवाली समिधा, तथा चमचमाती गदा अर्थात् परिघ आहुतिकी रक्षाके निमित्त दोनों किनारेकी लकडी द्रोणाचार्य तथा शरद्वतपुत्र कृपाचार्यके शिष्यलोग इस यज्ञके सदस्य होंगे ॥ ४० ॥

इषवोऽत्र परिस्तोमा मुक्ता गाण्डीवधन्वना ।
महारथप्रयुक्ताश्च द्रोणद्रौणिप्रचोदिताः ॥ ४१ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुन और द्रोणाचार्य अश्वत्थामा आदि महारथी वीर जिन अस्त्रशस्त्रोंको छोडेंगे वह सब परिस्तोम अर्थात् यज्ञपात्र होंगे ॥ ४१ ॥

प्रातिप्रास्थानिकं कर्म सात्यकिः स करिष्यति ।
दीक्षितो धार्तराष्ट्रोऽत्र पत्नी चास्य महाचमूः ॥ ४२ ॥

अध्वर्युके आदेशानुसार काम करनेवाले प्रतिप्रस्थाताका काम सात्यकि करेगा इस शस्त्र यज्ञमें धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन यजमानके रूपमें दीक्षित होगा और उसकी महासेना यजमानपत्नी होगी ॥ ४२ ॥

घटोत्कचोऽत्र शामित्रं करिष्यति महाबलः ।
अतिरात्रे महाबाहो वितते यज्ञकर्मणि ॥ ४३ ॥

हे महाबाहो ! इस प्रकारसे इस अतिरात्र यज्ञके कर्मका विस्तार होनेपर भीमसेनका पुत्र घटोत्कच उस यज्ञमें शमिताका कार्य करेगा ॥ ४३ ॥

दक्षिणा त्वस्य यज्ञस्य धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
वैताने कर्मणि तते जातो यः कृष्ण पावकात् ॥ ४४ ॥

हे कृष्ण ! प्रतापी धृष्टद्युम्न जो द्रुपदकी सभामें यज्ञके कर्म आरम्भ करनेपर अग्निमें उत्पन्न हुआ है, वही इस यज्ञमें दक्षिणा स्वरूप होगा ॥ ४४ ॥

यदब्रुवमहं कृष्ण कटुकानि स्म पाण्डवान् ।
प्रियार्थं धार्तराष्ट्रस्य तेन तप्येऽद्य कर्मणा ॥ ४५ ॥

हे कृष्ण! दुर्योधनकी प्रीतिके निमित्त मैंने पाण्डवोंसे जो कुछ कठोर वचन कहे थे, उस नीच कर्मके कारण इस समय संतप्त हो रहा हूं ॥ ४५ ॥

यदा द्रक्ष्यसि मां कृष्ण निहतं सव्यसाचिना ।
पुनश्चितिस्तदा चास्य यज्ञस्याथ भविष्यति ॥ ४६ ॥

हे कृष्ण! जब तुम मुझको अर्जुनके बाणोंसे मरा हुआ देखोगे, तब वह मेरी मृत्यु इस यज्ञकी पुनश्चिति अर्थात् सोमाभिषवण होगा ॥ ४६ ॥

दुःशासनस्य रुधिरं यदा पास्यति पाण्डवः ।
आनर्दं नर्दतः सम्यक्तदा सुत्यं भविष्यति ॥ ४७ ॥

भीमसेन जब महाघोर शब्द करके दुःशासनके रुधिरको पीवेगा, वही सोमरसका पान समझा जायेगा ॥ ४७ ॥

यदा द्रोणं च भीष्मं च पाञ्चाल्यौ पातयिष्यतः ।
तदा यज्ञावसानं तद्भविष्यति जनार्दन ॥ ४८ ॥

हे कृष्ण! जब पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न और शिखण्डी द्रोणाचार्य और भीष्मको मारेंगे, तब ही इस यज्ञकी समाप्ति होगी अर्थात् कुछ समयके लिए यज्ञ रुक जाएगा ॥ ४८ ॥

दुर्योधनं यदा हन्ता भीमसेनो महाबलः ।
तदा समाप्स्यते यज्ञो धार्तराष्ट्रस्य माधव ॥ ४९ ॥

महाबली भीमसेन जब धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको मार डालेगा, तभी हे माधव! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनका यह यज्ञ समाप्त होगा ॥ ४९ ॥

स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य सङ्गताः ।
हतेश्वरा हतसुता हतनाथाश्च केशव ॥ ५० ॥

हे कृष्ण! धृतराष्ट्रकी पुत्रवधू तथा उन पुत्रवधुओंकी पुत्रवधुयें जब स्वामी और पुत्रसे हीन होकर ॥ ५० ॥

गान्धार्या सह रोदन्त्यः श्वगृध्रकुरराकुले ।
स यज्ञेऽस्मिन्नवभृथो भविष्यति जनार्दन ॥ ५१ ॥

गान्धारीके सहित रोदन करेंगी, तभी कुत्ते, गिद्ध और सियारोंसे युक्त इस शस्त्र यज्ञकी समाप्ति होकर अवभृथ स्नान होगा ॥ ५१ ॥

विद्यावृद्धा वयोवृद्धाः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ।
वृथामृत्युं न कुर्वीरंस्त्वत्कृते मधुसूदन ॥ ५२ ॥

हे क्षत्रियश्रेष्ठ कृष्ण ! विद्या और अवस्थामें वृद्ध क्षत्रियलोग तुम्हारे निमित्त व्यर्थ मृत्युको स्वीकार न करें ॥ ५२ ॥

शस्त्रेण निधनं गच्छेत्समृद्धं क्षत्रमण्डलम् ।
कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे त्रैलोक्यस्यापि केशव ॥ ५३ ॥

तीनों लोकोंमें पवित्र पुण्यभूमि इस कुरुक्षेत्रमें इकट्ठे होकर पराक्रमी क्षत्रियलोग शस्त्रसे मरकर स्वर्गलोकको जावें ॥ ५३ ॥

तदत्र पुण्डरीकाक्ष विधत्स्व यदभीप्सितम् ।
यथा कार्त्स्न्येन वार्ष्णेय क्षत्रं स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

हे पुण्डरीकाक्ष ! इस विषयमें तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा ही करो; ताकि यह सब क्षत्रिय समुदाय स्वर्गलोकको प्राप्त करे ॥ ५४ ॥

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च जनार्दन ।
तावत्कीर्तिभवः शब्दः शाश्वतोऽयं भविष्यति ॥ ५५ ॥

हे जनार्दन कृष्ण ! इस पृथ्वीपर जबतक पर्वत और नदी विद्यमान रहेंगे तबतक तुम्हारा यह कीर्तिशब्द सदा कायम रहेगा ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणाः कथयिष्यन्ति महाभारतमाहवम् ।
समागमेषु वार्ष्णेय क्षत्रियाणां यशोधरम् ॥ ५६ ॥

हे वृष्णिकुलोत्पन्न कृष्ण ! शत्रुओंको यशोधन प्राप्त करानेवाले इस महाभारत युद्धकी कथा जनसमूहमें ब्राह्मण कहते रहेंगे ॥ ५६ ॥

समुपानय कौन्तेयं युद्धाय मम केशव ।
मन्त्रसंवरणं कुर्वन्नित्यमेव परन्तप ॥ ५७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ ४४१९ ॥

हे परन्तप कृष्ण ! कर्ण कुन्तीका पुत्र है इस बातको गुप्त रखकर तुम अर्जुनको युद्धके निमित्त मेरे सम्मुख उपस्थित करना ॥ ५७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ उन्तालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १३९ ॥ ४४१९ ॥

: १४० :

संजय उवाच

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा केशवः परवीरहा ।
उवाच प्रहसन्वाक्यं स्मितपूर्वमिदं तदा ॥ १ ॥

संजय बोले– तब शत्रुओंके वीरोंका नाश करनेवाले भगवान् कृष्ण कर्णकी यह बात सुनकर हंसते हुए उनसे फिर यह वचन कहने लगे ॥ १ ॥

अपि त्वां न तपेत्कर्ण राज्यलाभोपपादना ।
मया दत्तां हि पृथिवीं न प्रशास्तितुमिच्छसि ॥ २ ॥

हे कर्ण ! राज्य प्राप्त करनेका उपाय क्या तुम्हें उत्तम नहीं जंचता है ? मैं तुमको समस्त पृथ्वीके राज्यको देनेके लिये तैय्यार हूं, तो भी तुम उस पर शासन करना नहीं चाहते हो ॥ २ ॥

ध्रुवो जयः पाण्डवानामितीदं न संशयः कश्चन विद्यतेऽत्र ।
जयध्वजो दृश्यते पाण्डवस्य समुच्छ्रितो वानरराज उग्रः ॥ ३ ॥

इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि पाण्डवोंकी अवश्य ही विजय होगी । पाण्डुपुत्र अर्जुनका जयध्वज उग्र वानरराज फहराता हुआ दिखाई पड रहा है ॥ ३ ॥

दिव्या माया विहिता भौवनेन समुच्छ्रिता इन्द्रकेतुप्रकाशा ।
दिव्यानि भूतानि भयावहानि दृश्यन्ति चैवात्र भयानकानि ॥ ४ ॥

विश्वकर्माने उस कपिध्वजाको दिव्य मायासे ऐसा विस्तृत किया है, कि मालूम पडता है, कि इन्द्रधनुषके समान प्रकाशित और अनेक पताकाओंसे युक्त है, और भय दिखानेवाले भूत, प्रेत, राक्षस आदि दिव्यभूत भी उसपर दिखाई पडते हैं ॥ ४ ॥

न सज्जते शैलवनस्पतिभ्य ऊर्ध्वं तिर्यग्योजनमात्ररूपः ।
श्रीमान्ध्वजः कर्ण धनञ्जयस्य समुच्छ्रितः पावकतुल्यरूपः ॥ ५ ॥

हे कर्ण ! अर्जुनके ऊपर फहरानेवाली एक योजन और सम्मुख एक योजनके घेरेमें वह शोभायुक्त ध्वजा जलती हुई अग्निके समान ऐसी बनाई गई है, कि उसकी गति पर्वत वृक्ष आदिसे भी नहीं रुक सकती ॥ ५ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
ऐन्द्रमस्त्रं विकुर्वाणमुभे चैवाग्निमारुते ॥ ६ ॥
गाण्डीवस्य च निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ७ ॥

रणभूमिमें कृष्ण–सारथीके सहित जब श्वेतवाहन अर्जुनको तुम आग्नेय, वायव्य, ऐन्द्र आदि शस्त्रोंको चलाते हुए देखोगे, और साक्षात् वज्रके समान गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनोगे, तो उस समय मूर्तिमान् कलिदेवकी उत्पत्ति होगी। सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका उस समय चिन्ह भी न दीख पडेगा ॥ ६–७ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
जपहोमसमायुक्तं स्वां रक्षन्तं महाचमूम् ॥ ८ ॥
आदित्यमिव दुर्धर्षं तपन्तं शत्रुवाहिनीम् ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ९ ॥

जब देखोगे, कि जप होमसे युक्त धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर खुद ही रणभूमिमें आकर अपनी महासेनाकी रक्षा कर रहे हैं, और सूर्यके समान प्रज्वलित होनेके कारण दुर्धर्ष होकर शत्रु सेनाको पीडित कर रहे हैं, उस समय सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका कोई भी लक्षण नहीं दीख पडेगा ॥ ८–९ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीत्वा नृत्यन्तमाहवे ॥ १० ॥

जब देखोगे, कि महाबली भीमसेन युद्धमें दुःशासनके रुधिरको पीकर युद्धभूमिमें ही नृत्य कर रहे हैं ॥ १० ॥

प्रभिन्नमिव मातङ्गं प्रतिद्विरदघातिनम् ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ११ ॥

और रणभूमिमें दूसरे हाथीको मारनेवाले मत्त हाथीके समान प्रतीत हो रहे हैं, उस समय सत्ययुग, त्रेता और द्वापर कुछ भी नहीं रहेगा ॥ ११ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
वाहिनीं धार्तराष्ट्राणां क्षोभयन्तौ गजाविव ॥ १२ ॥
विगाढे शस्त्रसम्पाते परवीररथारुजौ ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १३ ॥

जब देखोगे, कि शस्त्रास्त्रोंकी पडनेवाली झडीमें भी महारथी और शत्रुओंके वीरों और रथोंको नष्ट करनेवाले वे दोनों नकुल और सहदेव रणभूमिमें मतवाले हाथीके समान धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेनाको विकल कर रहे हैं, उस समय तुम्हें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका कोई भी ज्ञान नहीं रहेगा ॥ १२–१३ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे द्रोणं शान्तनवं कृपम् ।
सुयोधनं च राजानं सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ १४ ॥
युद्धायापततस्तूर्णं वारितान्सव्यसाचिना ।
न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १५ ॥

जब तुम देखोगे, कि संग्राममें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, महाराज सुयोधन, सिन्धुराज जयद्रथ आदि महारथ योद्धाओंके रणभूमिमें आनेपर वे धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके द्वारा शीघ्र ही बाणोंसे पीछे हटा दिए गए हैं, तो उस समय सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका कुछ भी ज्ञान नहीं रहेगा ॥ १४-१५ ॥

ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम् ।
सौम्योऽयं वर्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः ॥ १६ ॥

हे कर्ण ! तुम यहांसे जाकर भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे यह वचन कहना, कि यह महीना सब प्रकारसे उत्तम है, इस महीनेमें भक्ष्य भोज्य और काठ बहुत मिलेंगे ॥ १६ ॥

पक्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमक्षिकः ।
निष्पङ्को रसवत्तोयो नात्युष्णशिशिरः सुखः ॥ १७ ॥

इस मासमें जंगल पकी वनस्पतियोंसे समृद्ध होते हैं, फलवाले भी होते हैं। मक्खियोंका उपद्रव बहुत थोडा रहता है; मार्गमें कीचड नहीं है; जल उत्तम रससे युक्त है, वायु थोडा उष्ण और ठण्डा है, इसलिए यह महीना सुखका देनेवाला है ॥ १७ ॥

सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति ।
संग्रामं योजयेत्तत्र तां ह्याहुः शक्रदेवताम् ॥ १८ ॥

आजसे सातवें दिन अमावास्या होगी; पण्डित लोग इन्द्रको इस तिथिका देवता कहते हैं, अतः उसी दिन युद्धका आरम्भ हो ॥ १८ ॥

तथा राज्ञो वदेः सर्वान्ये युद्धायाभ्युपागताः ।
यद्वो मनीषितं तद्वै सर्वं सम्पादयामि वः ॥ १९ ॥

इसके अतिरिक्त जो राजा युद्धके निमित्त उपस्थित हुए हैं; उनसे भी कहना, कि तुम लोगोंकी जो अभिलाषा है, मैं उसको सब प्रकारसे पूर्ण करूंगा ॥ १९ ॥

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।
प्राप्य शस्त्रेण निधनं प्राप्स्यन्ति गतिमुत्तमाम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥ ४४२९ ॥

दुर्योधनके वशमें रहनेवाले सब राजा और राजपुत्र शस्त्रसे मृत्युको प्राप्त करके उत्तम गति पायेंगे ॥ २० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४० ॥ ४४२९ ॥

×

: १४१ :

सञ्जय उवाच

केशवस्य तु तद्वाक्यं कर्णः श्रुत्वा हितं शुभम् ।
अब्रवीदभिसम्पूज्य कृष्णं मधुनिषूदनम् ।
जानन्मां किं महाबाहो सम्मोहयितुमिच्छसि ॥ १ ॥

संजय बोले– श्रीकृष्णके यह हितकारी वचन सुनकर कर्ण उन मधुसूदनकी यथा उचित पूजा करके यह वचन बोले– हे महाबाहो! तुम जान बूझकर मुझको मोहित करनेकी इच्छा क्यों करते हो? ॥ १ ॥

योऽयं पृथिव्याः कात्स्न्र्येन विनाशः समुपस्थितः ।
निमित्तं तत्र शकुनिरहं दुःशासनस्तथा ।
दुर्योधनश्च नृपतिर्धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥ २ ॥

पृथ्वी मण्डलका जो यह पूर्णरूपसे विनाश होनेवाला है, उसके कारण शकुनि, मैं, दुःशासन और धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन हैं ॥ २ ॥

असंशयमिदं कृष्ण महद्युद्धमुपस्थितम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च घोरं रुधिरकर्दमम् ॥ ३ ॥

हे कृष्ण! कौरव पाण्डवोंसे जो महा संग्राम उपस्थित होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। पृथ्वी अवश्य इस युद्धमें रुधिरके कीचडसे भर जायेगी ॥ ३ ॥

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।
रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम् ॥ ४ ॥

दुर्योधनके वशमें रहनेवाले सब राजा और राजपुत्र अवश्यही युद्धक्षेत्रमें शस्त्ररूपी आगमें जलकर यमपुरी पहुचेंगे ॥ ४ ॥

स्वप्ना हि बहवो घोरा दृश्यन्ते मधुसूदन ।
निमित्तानि च घोराणि तथोत्पाताः सुदारुणाः ॥ ५ ॥

हे कृष्ण! अनेक प्रकारके बुरे स्वप्न, भयङ्कर अशकुन और सब प्रकारके दारुण उत्पात सदा ही दीख पडते हैं ॥ ५ ॥

पराजयं धार्तराष्ट्रे विजयं च युधिष्ठिरे ।
शंसन्त इव वार्ष्णेय विविधा लोमहर्षणाः ॥ ६ ॥

हे वृष्णिनन्दन! ये रोंगटे खडे कर देनेवाले अपशकुन युधिष्ठिरके विजय और दुर्योधनके पराजयकी स्पष्ट रूपसे सूचना देते हैं ॥ ६ ॥

प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः ।
शनैश्चरः पीडयति पीडयन्प्राणिनोऽधिकम् ॥ ७ ॥

हे कृष्ण ! तीक्ष्ण ग्रह तेजस्वी शनैश्चर प्राणियोंको अधिक पीडा देनेके निमित्त प्रजापति दैवत रोहिणी नक्षत्रको पीडित कर रहा है ॥ ७ ॥

कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन ।
अनुराधां प्रार्थयते मैत्रं संशमयन्निव ॥ ८ ॥

हे मधुसूदन ! मंगल टेढी चालसे जेष्ठानक्षत्र पर आकर मित्रकुलके संहार करनेके निमित्त मित्रदैवत नक्षत्रको लुप्त करके अनुराधासे सङ्गम करनेकी अभिलाषा कर रहा है ॥ ८ ॥

नूनं महद्भयं कृष्ण कुरूणां समुपस्थितम् ।
विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रां पीडयते ग्रहः ॥ ९ ॥

हे कृष्ण ! राहुग्रह चित्राको विशेष रूपसे पीडित कर रहा है । इससे, हे वार्ष्णेय ! निश्चय कौरवोंके लिये महाभय उपस्थित हो गया है ॥ ९ ॥

सोमस्य लक्ष्म व्यावृत्तं राहुरर्कमुपेष्यति ।
दिवश्चोल्काः पतन्त्येताः सनिर्घाताः सकम्पनाः ॥ १० ॥

चन्द्रमाके भीतर जो छाया रहती है, वह अपने स्थानसे पृथक् मालूम होरही है। राहु सर्वदा सूर्यके समीपमें रहना चाहता है । आकाशसे आघात और कम्पसे युक्त उल्कापात हो रहा है ॥ १० ॥

निष्टनन्ति च मातङ्गा मुञ्चन्त्यश्रूणि वाजिनः ।
पानीयं यवसं चापि नाभिनन्दन्ति माधव ॥ ११ ॥

हाथी भयंकर रूपसे चिंघाड रहे हैं । घोडे अकारण ही रोदन कर रहे हैं । और, हे कृष्ण ! वे अब घास और पानीकी अभिलाषा नहीं करते ॥ ११ ॥

प्रादुर्भूतेषु चैतेषु भयमाहुरुपस्थितम् ।
निमित्तेषु महाबाहो दारुणं प्राणिनाशनम् ॥ १२ ॥

हे महाबाहु कृष्ण ! इन सब विषयोंके जाननेवाले पण्डितोंने कहा है, कि इन सब बुरे अशकुनोंके उत्पन्न होनेपर प्राणियोंका संहार करनेवाला महाघोर भय उपस्थित होता है ॥ १२ ॥

अल्पे भुक्ते पुरीषं च प्रभूतमिह दृश्यते।
वाजिनां वारणानां च मनुष्याणां च केशव ॥ १३ ॥
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु सर्वेषु मधुसूदन।
पराभवस्य तल्लिङ्गमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १४ ॥

हे महाबाहो कृष्ण! हाथी, घोडे, मनुष्य आदि थोडा भोजन करके भी अधिक मलोत्सर्ग कर रहे हैं, ये सब लक्षण दुर्योधनकी सभी सेनाओंमें दीख पड रहे हैं। बुद्धिमान् पण्डित इसको पराजयका लक्षण बताते हैं ॥ १३-१४ ॥

प्रहृष्टं वाहनं कृष्ण पाण्डवानां प्रचक्षते।
प्रदक्षिणा मृगाश्चैव तत्तेषां जयलक्षणम् ॥ १५ ॥

हे कृष्ण! दूसरी तरफ पाण्डवोंके सब वाहन हृष्टपुष्ट हैं और हरिण आदि शुभ शकुनके जाननेवाले पशु उनकी दहिनी ओरसे गमन करते हैं; यह उन लोगोंके विजयका ही लक्षण है ॥ १५ ॥

अपसव्या मृगाः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य केशव।
वाचश्चाप्यशरीरिण्यस्तत्पराभवलक्षणम् ॥ १६ ॥

परन्तु, हे केशव! ये हरिण आदि पशु दुर्योधनकी बांयी ओरसे चलते हैं, और अमानुषी वाणी सुनाई पडती है, यह सब पराजयके ही लक्षण हैं ॥ १६ ॥

मयूराः पुष्पशकुना हंसाः सारसचातकाः।
जीवञ्जीवकसङ्घाश्चाप्यनुगच्छन्ति पाण्डवान् ॥ १७ ॥

मोर, पुष्पपक्षी, हंस, सारस, चातक और जी जी अर्थात् जीवित रह का शब्द करनेवाले चकोर आदि पाण्डवोंके अनुगामी रहे हैं ॥ १७ ॥

गृध्राः काका बडाः श्येना यातुधानाः शलावृकाः।
मक्षिकाणां च सङ्घाता अनुगच्छन्ति कौरवान् ॥ १८ ॥

परन्तु कौरवोंके पीछे गिद्ध, कौए, कंक, बाज, राक्षस, भेडिए तथा मक्खियोंके झुण्ड चल रहे हैं ॥ १८ ॥

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु भेरीणां नास्ति निस्वनः।
अनाहताः पाण्डवानां नदन्ति पटहाः किल ॥ १९ ॥

दुर्योधनकी सेनामें बजाये जानेपर भी भेरी आदि बाजोंका शब्द भी नहीं होता; परन्तु पाण्डवोंके युद्धके बाजे बिना बजाये ही बजने लगते हैं ॥ १९ ॥

उदपानाश्च नर्दन्ति यथा गोवृषभास्तथा ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु तत्पराभवलक्षणम् ॥ २० ॥

हे माधव ! दुर्योधनकी सेनाके स्नान करनेवाले स्थान कूएं, बावली आदिसे वृषभके समान शब्द सुनाई देते हैं, ये सब उनके पराभवके लक्षण हैं ॥ २० ॥

मांसशोणितवर्षं च वृष्टं देवेन माधव ।
तथा गन्धर्वनगरं भानुमन्तमुपस्थितम् ।
सप्राकारं सपरिखं सवप्रं चारुतोरणम् ॥ २१ ॥

हे माधव ! देवता लोग मांस और रुधिरकी वर्षा करते हैं, अकस्मात् सुन्दर तेज और प्राकार, परिख, तट आदिसे युक्त गन्धर्व नगर आकाशमें सूर्यके पास दीख रहा है ॥ २१ ॥

कृष्णश्च परिघस्तत्र भानुमावृत्य तिष्ठति ।
उदयास्तमये सन्ध्ये वेदयानो महद्भयम् ।
एका सृग्वाशते घोरं तत्पराभवलक्षणम् ॥ २२ ॥

वहांपर कृष्णवर्ण प्रचण्ड परिघ सूर्यको आच्छादित किए हुए है। सूर्योदय और सूर्यास्तकी सन्ध्याके समय उत्पन्न हुए महाभयको प्रकट करते हुए सियार रातदिन भयंकर रूपसे चिल्लाते हैं, ये सब पराजयके लक्षण हैं ॥ २२ ॥

कृष्णग्रीवाश्च शकुना लम्बमाना भयानकाः ।
सन्ध्यामभिमुखा यान्ति तत्पराभवलक्षणम् ॥ २३ ॥

काली गर्दनवाले लम्बे और भयानक पक्षी सन्ध्याके समय कौरवोंकी तरफ उडते आते हैं। यह पराभवका चिन्ह है ॥ २३ ॥

ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि गुरूंश्च मधुसूदन ।
भृत्यान्भक्तिमतश्चापि तत्पराभवलक्षणम् ॥ २४ ॥

सेनाके पुरुष पहिले ब्राह्मणोंसे फिर गुरुओंसे द्वेष करते हैं और फिर भक्तिसे युक्त सेवकोंसे भी द्वेष करते हैं । हे मधुसूदन कृष्ण ! यह सब ही पराजयके लक्षण हैं ॥ २४ ॥

पूर्वा दिग्लोहिताकारा शस्त्रवर्णा च दक्षिणा ।
आमपात्रप्रतीकाशा पश्चिमा मधुसूदन ॥ २५ ॥

हे मधुसूदन ! पूर्व दिशा रक्तवर्ण दीखती है । शस्त्रके रूपके समान दक्षिण दिशाका वर्ण हो गया है और पश्चिम दिशाका रूप विना पके हुए मिट्टीके पात्रके समान है ॥ २५ ॥

प्रदीप्ताश्च दिशः सर्वा धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
महद्भयं वेदयन्ति तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥ २६ ॥

हे कृष्ण ! दुर्योधनको सब दिशाएं जलती हुई सी दिखाई देती हैं और इस प्रकार उस उत्पातके दर्शनसे मानों वे बडे भारी भयका बोध कराती हैं ॥ २६ ॥

सहस्रपादं प्रासादं स्वप्नान्ते स्म युधिष्ठिरः ।
अधिरोहन्मया दृष्टः सह भ्रातृभिरच्युत ॥ २७ ॥

हे कृष्ण ! मैंने स्वप्नमें देखा है, कि भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिर सहस्र खम्भोंसे युक्त एक ऊंचे महलके ऊपर चढ रहे हैं ॥ २७ ॥

श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे ते शुक्लवाससः ।
आसनानि च शुभ्राणि सर्वेषामुपलक्षये ॥ २८ ॥

वह सब लोग अत्यन्त उत्तम सफेद वस्त्रोंको धारण करके श्वेतवर्णके छत्रसे युक्त दिखाई दिए । उन लोगोंके आसन भी श्वेत वर्णके ही दीख पडे ॥ २८ ॥

तव चापि मया कृष्ण स्वप्नान्ते रुधिराविला ।
आन्त्रेण पृथिवी दृष्टा परिक्षिप्ता जनार्दन ॥ २९ ॥

हे जनार्दन कृष्ण ! उस समय स्वप्नके अन्तमें मैंने यह भी देखा था, कि तुम्हारी यह सारी पृथ्वी रुधिरसे भरी हुई आंतोंसे पटी हुई है ॥ २९ ॥

अस्थिसञ्चयमारूढश्चामितौजा युधिष्ठिरः ।
सुवर्णपात्र्यां संहृष्टो भुक्तवान्घृतपायसम् ॥ ३० ॥

और महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर प्रसन्न होकर हड्डियोंके ढेरके ऊपर बैठकर सुवर्णपात्रमें घृत और दूधको पी रहे हैं ॥ ३० ॥

युधिष्ठिरो मया दृष्टो ग्रसमानो वसुन्धराम् ।
त्वया दत्तामिमां व्यक्तं भोक्ष्यते स वसुन्धराम् ॥ ३१ ॥

और यह भी देखा; कि युधिष्ठिर सब पृथ्वीको निगल रहे हैं, इससे अवश्य ही बोध होता है कि वह तुम्हारे दिये हुए इस सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलके राज्यको भोगेंगे ॥ ३१ ॥

उच्चं पर्वतमारूढो भीमकर्मा वृकोदरः ।
गदापाणिर्नरव्याघ्रो वीक्षन्निव महीमिमाम् ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिरकी भांति पुरुषसिंह भीमसेन भी इस पृथ्वीको देखते हुए हाथमें गदा लेकर ऊंचे पर्वत पर चढे हुए हैं ॥ ३२ ॥

क्षपयिष्यति नः सर्वान्स सुव्यक्तं महारणे ।
विदितं मे हृषीकेश यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३३ ॥

इससे मुझे यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि वह इस उपस्थित संग्राम में हम सब लोगोंका नाश करेगा । हे कृष्ण ! जिस स्थानपर धर्म रहता है, वहां पर ही जय होती है, इसे मैं खूब जानता हूं ॥ ३३ ॥

पाण्डुरं गजमारूढो गाण्डीवी स धनञ्जयः ।
त्वया सार्धं हृषीकेश श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३४ ॥

हे कृष्ण ! गाण्डीव धनुषको ग्रहण करनेवाले अर्जुन अतिशय तेजसे प्रदीप्त होते हुए तुम्हारे सहित पाण्डुरवर्ण हाथीके ऊपर चढकर परम शोभासे शोभित हो रहे थे ॥ ३४ ॥

यूयं सर्वान्वधिष्यध्वं तत्र मे नास्ति संशयः ।
पार्थिवान्समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान् ॥ ३५ ॥

हे कृष्ण ! सब बातोंके मर्मको भलीभांति विचार करके देखनेसे यही प्रतीत होता है, कि तुम लोग सब कोई मिलकर रणभूमिमें दुर्योधन तथा उसके अनुयायी सभी राजाओंका नाश कर दोगे, उसमें मुझको कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
शुद्धकेयूरकण्ठत्राः शुक्लमाल्याम्बरावृत्ताः ॥ ३६ ॥
अधिरूढा नरव्याघ्रा नरवाहनमुत्तमम् ।
त्रय एते महामात्राः पाण्डुरच्छत्रवाससः ॥ ३७ ॥

हे कृष्ण ! फिर भी मैंने यह देखा, कि नकुल, सहदेव और सात्यकी यह तीनों पुरुषसिंह महारथी वीर सफेद मोतियोंके बाहुभूषण और कण्ठहार तथा श्वेत रङ्गके कवच, माला और वस्त्रोंसे भूषित होकर उत्तम मनुष्योंकी सवारी अर्थात् पालकीमें विराजमान हैं; उन तीनों महापुरुषोंके सिरके ऊपर पाण्डुरवर्ण छत्र शोभित है ॥ ३६-३७ ॥

श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते त्रय एव जनार्दन ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु तान्विजानीहि केशव ॥ ३८ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
रक्तोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे माधव पार्थिवाः ॥ ३९ ॥

हे जनार्दन ! दुर्योधनकी सेनामें इन तीनों पुरुषोंको श्वेत उष्णीष धारण किये हुए मैंने देखा था। हे कृष्ण ! तुम उन्हें अच्छी तरह जान लो। हे महाबाहो कृष्ण ! वे अश्वत्थामा, कृपाचार्य, यदुवंशीय श्रेष्ठ कृतवर्मा थे और इनके अतिरिक्त सब राजा लोगोंके सिर लाल रङ्गके वस्त्रोंसे बंधे हुए दीख पडे ॥ ३८-३९ ॥

उष्ट्रयुक्तं समारूढौ भीष्मद्रोणौ जनार्दन।
मया सार्धं महाबाहो धार्तराष्ट्रेण चाभिभो ॥ ४० ॥
अगस्त्यशास्तां च दिशं प्रयाताः स्म जनार्दन।
अचिरेणैव कालेन प्राप्स्यामो यमसादनम् ॥ ४१ ॥

हे शत्रुनाशक महाबाहो कृष्ण ! भीष्म और द्रोणाचार्य मुझे और दुर्योधनको साथ लेकर ऊंटसे चलाये हुए विमानमें बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर चले जा रहे थे, इससे हे जनार्दन! यह निश्चय प्रतीत हो रहा है, कि हम लोग शीघ्र ही यमपुरीको प्राप्त करेंगे ॥ ४०-४१ ॥

अहं चान्ये च राजानो यच्च तत्क्षत्रमण्डलम्।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्याम इति मे नास्ति संशयः ॥ ४२ ॥

हे जनार्दन कृष्ण ! मैं तथा सब राजा तथा दूसरा भी जो क्षत्रियोंका समूह है वह सब गाण्डीव धनुषके प्रतापरूपी अग्निमें भस्म हो जायेगा, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है ॥४२॥

कृष्ण उवाच

उपस्थितविनाशेयं नूनमद्य वसुन्धरा।
तथा हि मे वचः कर्ण नोपैति हृदयं तव ॥ ४३ ॥

कृष्ण बोले– हे कर्ण ! जब मेरी हितकारी बात तुम्हारे हृदयमें नहीं पैठती है, तब इस संपूर्ण पृथ्वीकी प्रजाओंका नाशका समय निश्चय ही उपस्थित हो गया है ॥ ४३ ॥

सर्वेषां तात भूतानां विनाशे समुपस्थिते।
अनयो नयसङ्काशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ४४ ॥

हे तात ! जब सब प्राणियोंके नाश होनेका समय उपस्थित हो गया है, तब उत्तम नीतिके समान प्रतीत होनेवाली दुष्टनीति भी हृदयसे दूर नहीं होती ॥ ४४ ॥

कर्ण उवाच

अपि त्वा कृष्ण पश्याम जीवन्तोऽस्मान्महारणात्।
समुत्तीर्णा महाबाहो वीरक्षयविनाशनात् ॥ ४५ ॥

कर्ण बोले– हे कृष्ण ! इस वीरवंशके नाश करनेवाले महायुद्धसे पार होकर जीते रहेंगे, तो तुमसे मिलेंगे ॥ ४५ ॥

अथ वा सङ्गमः कृष्ण स्वर्गे नो भविता ध्रुवम्।
तत्रेदानीं समेष्यामः पुनः सार्धं त्वयानघ ॥ ४६ ॥

नहीं तो, हे कृष्ण ! स्वर्गलोकमें तो अवश्य ही फिर हम लोगोंका मिलाप होगा। हे पापरहित ! अतः अब उस ही स्थानपर तुम्हारे साथ मेरा मिलाप सम्भव है ॥ ४६ ॥

सञ्जय उवाच

इत्युक्त्वा माधवं कर्णः परिष्वज्य च पीडितम् ।
विसर्जितः केशवेन रथोपस्थादवातरत् ॥ ४७ ॥

संजय बोले– राधापुत्र कर्ण कृष्णसे ऐसा वचन कहकर उनका अच्छी प्रकारके आलिङ्गन करके वहांसे विदा हो कृष्णके रथसे उतर गए ॥ ४७ ॥

ततः स्वरथमास्थाय जाम्बूनदविभूषितम् ।
सहास्माभिर्निववृते राधेयो दीनमानसः ॥ ४८ ॥

इसके बाद राधाके पुत्र कर्ण सुवर्णसे भूषित अपने रथपर चढकर दीनतायुक्त चित्तसे हम लोगोंके साथ हस्तिनापुर लौट आए ॥ ४८ ॥

ततः शीघ्रतरं प्रायात्केशवः सहसात्यकिः ।
पुनरुच्चारयन्वाणीं याहि याहीति सारथिम् ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥ ४४८८ ॥

तदनन्तर सात्यकीके सहित कृष्णने सारथीसे 'चलो चलो' इस प्रकार बार बार कहकर रथ हांकनेको कहा; और उन्होंने वहांसे शीघ्र ही प्रस्थान किया ॥ ४९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ इकतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १४१ ॥ ४४८८ ॥

: १४२ :

वैशम्पायन उवाच

असिद्धानुनये कृष्णे कुरुभ्यः पाण्डवान्गते ।
अभिगम्य पृथां क्षत्ता शनैः शोचन्निवाब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– दुर्योधनको समझानेके कार्यमें असफल होकर श्रीकृष्णके कौरवोंकी मण्डलीसे निकलकर पाण्डवोंके समीप चले जानेपर विदुर कुन्तीके समीप जाकर धीमे स्वरसे शोक प्रकट करते हुए कहने लगे ॥ १ ॥

जानासि मे जीवपुत्रे भावं नित्यमनुग्रहे ।
क्रोशतो न च गृह्णीते वचनं मे सुयोधनः ॥ २ ॥

हे जीवित पुत्रोंवाली ! युद्ध न होना ही मुझे उत्तम जंचता है, वह तुमको भलीभांति विदित ही है, परन्तु मेरे सहस्रों बार कहनेपर भी दुर्योधन किसी प्रकारसे मेरा वचन स्वीकार नहीं करता ॥ २ ॥

×

उपपन्नो ह्यसौ राजा चेदिपाञ्चालकेकयैः ।
भीमार्जुनाभ्यां कृष्णेन युयुधानयमैरपि ॥ ३ ॥
उपप्लव्ये निविष्टोऽपि धर्ममेव युधिष्ठिरः ।
काङ्क्षते ज्ञातिसौहार्दाद्बलवान्दुर्बलो यथा ॥ ४ ॥

राजा युधिष्ठिर चेदी, पाञ्चाल, केकय, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कृष्ण और सात्यकी आदि वीरोंकी सहायतासे अत्यन्त बलवान् होकर भी अपने राज्यको छोडकर विराटनगरमें निवास कर रहे हैं; तो भी जातिका हित विचारकर निर्बल पुरुषोंकी भांति केवल धर्महीका पालन कर रहे हैं ॥ ३-४ ॥

राजा तु धृतराष्ट्रोऽयं वयोवृद्धो न शाम्यति ।
मत्तः पुत्रमदेनैव विधर्मे पथि वर्तते ॥ ५ ॥

परन्तु यह राजा धृतराष्ट्र बूढे होकर भी किसी प्रकारसे शान्त नहीं होते हैं, वह पुत्रके मदसे मत्त होकर केवल अधर्म हीके मार्गसे चल रहे हैं ॥ ५ ॥

जयद्रथस्य कर्णस्य तथा दुःशासनस्य च ।
सौबलस्य च दुर्बुद्ध्या मिथोभेदः प्रवर्तते ॥ ६ ॥

अतः जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन और शकुनिकी दुष्टबुद्धिसे दोनों कुलोंके बीच युद्ध होगा ॥ ६ ॥

अधर्मेण हि धर्मिष्ठं हृतं वै राज्यमीदृशम् ।
येषां तेषामयं धर्मः सानुबन्धो भविष्यति ॥ ७ ॥

यथार्थ धर्मनिष्ठ पुरुषका इस प्रकार अधर्मसे राज्य हर कर अधर्मका कार्य किया है, वही धर्म अवश्य ही उनकी सफलतामें सहायक होगा ॥ ७ ॥

ह्रियमाणे बलाद्धर्मे कुरुभिः को न संज्वरेत् ।
असाम्ना केशवे याते समुद्योक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ८ ॥

कौरवों द्वारा बलपूर्वक धर्मके नष्ट किए जानेपर उससे किस पुरुषके हृदयमें दुःख नहीं होगा ? हे देवि ! कृष्ण जब सन्धि-स्थापन नहीं कर सके, तब पाण्डवोंके समीप चले गये; अब पाण्डवलोग युद्धके लिए अवश्य ही उद्योग करेंगे ॥ ८ ॥

ततः कुरूणामनयो भविता वीरनाशनः ।
चिन्तयन्न लभे निद्रामहःसु च निशासु च ॥ ९ ॥

तब कौरवोंकी यह अनीति ही क्षत्रिय वीरोंके नाशका कारण बनेगी, इन्हीं सब बातोंकी चिन्ता करके मुझे दिन और रात नींद ही नहीं आती है ॥ ९ ॥

श्रुत्वा तु कुन्ती तद्वाक्यमर्थकामेन भाषितम् ।
अनिष्टनन्ती दुःखार्ता मनसा विममर्श ह ॥ १० ॥

परम हितैषी विदुरके द्वारा कहे गए यह वचन सुनकर कुन्ती अत्यन्त ही दुःखित होकर लम्बी सांस लेती हुई अपने मनमें यह चिन्ता करने लगी ॥ १० ॥

धिगस्त्वर्थं यत्कृतेऽयं महाञ्ज्ञातिवधे क्षयः ।
वर्त्स्यते सुहृदां ह्येषां युद्धेऽस्मिन्वै पराभवः ॥ ११ ॥

धनको धिक्कार है कि जिसके निमित्त यह महाभयंकर जाति वध उपस्थित हुआ है । इस युद्धमें सुहृद् पुरुषोंका ही पराभव होगा ॥ ११ ॥

पाण्डवाश्चेदिपाञ्चाला यादवाश्च समागताः ।
भारतैर्यदि योत्स्यन्ति किं नु दुःखमतः परम् ॥ १२ ॥

पाण्डव चेदि, पाञ्चाल और यदुवंशियोंके साथ मिलकर यदि कौरवोंसे युद्ध करेंगे, तो इससे अधिक दुःखका विषय और कौनसा होगा ? ॥ १२ ॥

पश्ये दोषं ध्रुवं युद्धे तथा युद्धे पराभवम् ।
अधनस्य मृतं श्रेयो न हि ज्ञातिक्षये जयः ॥ १३ ॥

संग्राममें मुझे अवश्य ही दोष दीख पडता है, और युद्ध करनेसे अपने पक्षके पराभवकी संभावना दीखती है; क्योंकि धनहीन पुरुषका मरना ही उत्तम है। और अनगिनत जातिके लोगोंका वध करके जय मिलना भी उत्तम नहीं है ॥ १३ ॥

पितामहः शान्तनव आचार्यश्च युधां पतिः ।
कर्णश्च धार्तराष्ट्रार्थं वर्धयन्ति भयं मम ॥ १४ ॥

योद्धाओंमें मुख्य शान्तनुपुत्र पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण ये लोग दुर्योधनके सहाय हैं; इससे मुझे बहुत भय लगता है ॥ १४ ॥

नाचार्यः कामवाञ्शिष्यैर्द्रोणो युध्येत जातुचित् ।
पाण्डवेषु कथं हार्दं कुर्यान्न च पितामहः ॥ १५ ॥

परंतु मुझे यही प्रतीत होता है, कि अपने प्रिय शिष्योंके साथ आचार्य द्रोण कभी अपनी इच्छाके अनुसार युद्ध नहीं करेंगे, पितामह भीष्म ही भला पाण्डवोंके ऊपर क्यों न प्रीति करेंगे ? ॥ १५ ॥

अयं त्वेको वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
मोहानुवर्ती सततं पापो द्वेष्टि च पाण्डवान् ॥ १६ ॥

तब मिथ्या मोहमें पडा हुआ एक मात्र कर्ण ही सब अनिष्ट कर्मोंका मूल है । यह दुष्टात्मा नीचबुद्धि दुर्योधनके मोहमें पडकर सदा ही पाण्डवोंसे द्वेष किया करता है ॥ १६ ॥

अहत्यनर्थे निर्बन्धी बलवांश्च विशेषतः ।
कर्णः सदा पाण्डवानां तन्मे दहति साम्प्रतम् ॥ १७ ॥

जिससे उन लोगोंको दुःख मिले, उसके निमित्त यह सदा दुष्टबुद्धिका प्रयोग किया करता है; विशेषतः वह स्वयं भी महावली है उसके दुष्ट कार्य ही मेरे अन्तःकरणको भस्म कर रहे हैं ॥ १७ ॥

आशंसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽहं पाण्डवान्प्रति ।
प्रसादयितुमासाद्य दर्शयन्ती यथातथम् ॥ १८ ॥

इससे आज मैं उसके समीप जाकर सम्पूर्ण गूढ रहस्योंका स्पष्टीकरण करके जिससे पाण्डवोंके ऊपर उसका चित्त प्रसन्न होवे, ऐसी चेष्टा करूंगी ॥ १८ ॥

तोषितो भगवान्यत्र दुर्वासा मे वरं ददौ ।
आह्वानं देवसंयुक्तं वसन्त्याः पितृवेश्मनि ॥ १९ ॥

भगवान् दुर्वासा मुनिने मेरी सेवासे प्रसन्न होकर मुझे एक मन्त्र बताके यह वर दिया था, कि तुम पुत्रकी इच्छासे जिस देवताको आवाहन करोगी, वही तुम्हारे समीप चला आवेगा ॥ १९ ॥

साहमन्तःपुरे राज्ञः कुन्तिभोजपुरस्कृता ।
चिन्तयन्ती बहुविधं हृदयेन विदूयता ॥ २० ॥

पिता कुन्तिभोज राजाके अन्तःपुरमें वास करती हुई मैं उस प्रकारका विचित्र वर पाकर अपने हृदयमें अनेक प्रकारका दुःख महसूस करती हुई अनेक प्रकारकी चिन्ता करने लगी ॥ २० ॥

बलाबलं च मन्त्राणां ब्राह्मणस्य च वाग्बलम् ।
स्त्रीभावाद्बालभावाच्च चिन्तयन्ती पुनः पुनः ॥ २१ ॥

मंत्रका बल और ब्राह्मणके वचनकी परीक्षा करनेके निमित्त मुझे बालस्वभाव और स्त्रीस्वभावके कारण अत्यन्तही अभिलाषा उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥

धात्र्या विश्रब्धया गुप्ता सखीजनवृता तदा ।
दोषं परिहरन्ती च पितुश्चारित्ररक्षिणी ॥ २२ ॥

परन्तु उस समय विश्वासपात्री दासियोंसे रक्षित और सखियोंसे घिरी हुई थी; विशेष कर किस प्रकारसे मुझे दोष न होवे, तथा पिताके चरित्रमें भी कोई कलङ्क न लगे ॥२२॥

कथं नु सुकृतं मे स्यान्नापराधवती कथम्।
भवेयमिति संचिन्त्य ब्राह्मणं तं नमस्य च ॥ २३ ॥
कौतूहलात्तु तं लब्ध्वा बालिश्यादाचरं तदा।
कन्या सती देवमर्कमासादयमहं ततः ॥ २४ ॥

किस प्रकारसे मेरा सुकृत नष्ट न हो, और किस भांति मैं अपराधिनी न होऊं इसी प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल होकर अत्यन्तही कौतूहलसे मैंने दुर्वासा ऋषिको प्रणाम करके अपनी मूर्खताके कारण उस कामको किया और कन्या अवस्थाहीमें उस मन्त्रका उच्चारण करके सूर्यदेवका आवाहन किया ॥ २३-२४ ॥

योऽसौ कानीनगर्भो मे पुत्रवत्परिवर्तितः।
कस्मान्न कुर्याद्वचनं पथ्यं भ्रातृहितं तथा ॥ २५ ॥

इससे जो पुरुष कन्या अवस्थामें मेरे गर्भसे उत्पन्न होकर पुत्रके समान रक्षित हुआ था, वह अपने भाइयोंके हितार्थ मेरे कहे हुए वचनोंको क्यों नहीं स्वीकार करेगा ॥ २५ ॥

इति कुन्ती विनिश्चित्य कार्यं निश्चितमुत्तमम्।
कार्यार्थमभिनिर्याय ययौ भागीरथीं प्रति ॥ २६ ॥

कुन्ती ऐसा विचारकर अपने कार्यको निश्चय करके कर्णसे भेंट करनेके निमित्त भागीरथीके तीरपर गई ॥ २६ ॥

आत्मजस्य ततस्तस्य घृणिनः सत्यसङ्गिनः।
गङ्गातीरे पृथाशृण्वदुपाध्ययननिस्वनम् ॥ २७ ॥

वहां गंगाके किनारे परम दयालु सत्यव्रत करनेवाले अपने पुत्रके उपासनाके शब्दको उसने सुना ॥ २७ ॥

प्राङ्मुखस्योर्ध्वबाहोः सा पर्यतिष्ठत पृष्ठतः।
जप्यावसानं कार्यार्थं प्रतीक्षन्ती तपस्विनी ॥ २८ ॥

तब वह तपस्विनी माता अपना प्रयोजन सिद्ध करनेकी इच्छासे उसके जपकी समाप्तिकी इच्छा करती हुई पूर्व दिशाकी ओर मुंह किए और ऊपर बांह उठाये हुए उस कर्णके पीछे जा खडी हुई ॥ २८ ॥

अतिष्ठत्सूर्यतापार्ता कर्णस्योत्तरवाससि।
कौरव्यपत्नी वार्ष्णेयी पद्ममालेव शुष्यती ॥ २९ ॥

वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुई पाण्डुराजकी भार्या सुकुमारी कुन्ती बहुत समयतक सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशमें रहनेके कारण कमलकी मालाके समान मुरझाती हुई कर्णके उत्तरीय वस्त्रकी छायाका सहारा लेकर वहांपर खडी रही ॥ २९ ॥

आ पृष्ठतापाज्जप्त्वा स परिवृत्त्य यतव्रतः ।
दृष्ट्वा कुन्तीमुपातिष्ठदभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
यथान्यायं महातेजा मानी धर्मभृतां वरः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥ ४५१८ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ सत्यव्रत करनेवाले अत्यन्त तेजस्वी महामानी सूर्यपुत्र कर्णने, जबतक अच्छी प्रकारसे पीठपर सूर्यका तेज नहीं पहुंचा, तबतक जप करके पीछे घूमा और वहां कुन्तीको देखकर हाथ जोडकर बोला ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ बयालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४२ ॥ ४५१८ ॥

: १४३ :

कर्ण उवाच

राधेयोऽहमाधिरथिः कर्णस्त्वामभिवादये ।
प्राप्ता किमर्थं भवती ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १ ॥

कर्ण बोले– राधा और अधिरथका पुत्र कर्ण, मैं तुमको प्रणाम करता हूं, तुम किस निमित्त मेरे पास आई हो, बोलो– तुम्हारा कौनसा कार्य मैं करूं ॥ १ ॥

कुन्त्युवाच

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता ।
नासि सूतकुले जातः कर्ण तद्विद्धि मे वचः ॥ २ ॥

कुन्ती बोली– हे कर्ण ! तुम कुन्तीपुत्र हो, राधापुत्र नहीं हो; अधिरथ भी तुम्हारा पिता नहीं है; तुम सूतकुलमें भी उत्पन्न नहीं हुए हो । मैं तुम्हारे जन्मका गूढ वृत्तान्त कहती हूं, उसे तुम सुनो ॥ २ ॥

कानीनस्त्वं मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः ।
कुन्तिभोजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ॥ ३ ॥

हे पुत्र ! मैंने कन्या अवस्थामें पहिले ही तुमको गर्भमें धारण किया था, इससे तुम मेरे ही सबसे ज्येष्ठ कानीन पुत्र हो; तुम कुन्तिभोजके भवनमें उत्पन्न हुए थे अतः तुम पृथा अर्थात् मुझ कुन्तीके पुत्र हो ॥ ३ ॥

प्रकाशकर्मा तपनो योऽयं देवो विरोचनः ।
अजीजनत्त्वां मय्येष कर्ण शस्त्रभृतां वरम् ॥ ४ ॥

हे कर्ण ! यह जो सब लोगोंको प्रकाश देनेवाले भगवान् सूर्य सदा आकाशमण्डलमें विराजमान रहते हैं, इन्हींने सभी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तुमको मेरे गर्भसे उत्पन्न किया था ॥ ४ ॥

कुण्डली बद्धकवचो देवगर्भः श्रिया वृतः ।
जातस्त्वमसि दुर्धर्ष मया पुत्र पितुर्गृहे ॥ ५ ॥

हे महातेजस्वी पुत्र ! मेरे पिताके महलमें तुम देवकुमारकी भाँति सुन्दर कवच और कुण्डलके सहित अत्यन्त शोभासे युक्त होकर मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥

स त्वं भ्रातॄनसम्बुद्ध्वा मोहाद्यदुपसेवसे ।
धार्तराष्ट्रान्न तद्युक्तं त्वयि पुत्र विशेषतः ॥ ६ ॥

इस समय भाइयोंसे जान पहचान न रहनेके कारण तुम मोहमें पडकर दुर्योधनकी सेवा कर रहे हो। विशेषतः तुम्हारे जैसे पुरुषके लिये यह कार्य किसी भी प्रकारसे उचित नहीं है ॥६॥

एतद्धर्मफलं पुत्र नराणां धर्मनिश्चये ।
यत्तुष्यन्त्यस्य पितरो माता चाप्येकदर्शिनी ॥ ७ ॥

पुत्रकी सहायतासे उसके पितर और अपने पुत्रको स्नेहकी दृष्टिसे देखनेवाली उसकी माता सन्तोष पाती है, यही, हे पुत्र ! धर्म निश्चयमें पुत्रसे पुरुषोंको प्राप्त होनेवाला धर्मफल बताया गया है ॥ ७ ॥

अर्जुनेनार्जितां पूर्वं हृतां लोभादसाधुभिः ।
आच्छिद्य धार्तराष्ट्रेभ्यो भुंक्ष्व यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥ ८ ॥

पहिले अर्जुनकी भुजासे उपार्जित की हुई राजलक्ष्मी दुष्टोंके द्वारा हरण की गई है, युधिष्ठिरकी वह राजलक्ष्मी धृतराष्ट्रपुत्रोंसे बलपूर्वक छीनकर उसका तुम स्वयं भोग करो ॥ ८ ॥

अद्य पश्यन्तु कुरवः कर्णार्जुनसमागमम् ।
सौभ्रात्रेण तदालक्ष्य सन्नमन्तामसाधवः ॥ ९ ॥

कौरव लोग आज कर्ण अर्जुनका समागम देखें । ये दुष्ट लोग तुम लोगोंको भ्रातारूपसे मिलते हुए देखकर हार स्वीकार करें ॥ ९ ॥

कर्णार्जुनौ वै भवतां यथा रामजनार्दनौ ।
असाध्यं किं नु लोके स्याद्युवयोः सहितात्मनोः ॥ १० ॥

कर्ण और अर्जुनकी जोडी भी बलराम और कृष्णकी जोडीके समान विख्यात हो । तुम दोनोंके एकत्र हो जानेपर इस लोकमें ऐसा कौनसा कार्य है, जो पूर्ण न हो सकेगा ? ॥१०॥

कर्ण शोभिष्यसे नूनं पञ्चभिर्भ्रातृभिर्वृतः।
वेदैः परिवृतो ब्रह्मा यथा वेदाङ्गपञ्चमैः ॥ ११ ॥

हे कर्ण! तुम पांच सहोदर भाइयोंसे युक्त होकर राजसिंहासनपर उसी प्रकार शोभित होओगे, जिस प्रकार देवोंसे घिरे हुए ब्रह्मा अथवा पंचांगोंसे घिरे हुए वेद, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥

उपपन्नो गुणैः श्रेष्ठो ज्येष्ठः श्रेष्ठेषु बन्धुषु।
सूतपुत्रेति मा शब्दः पार्थस्त्वमसि वीर्यवान् ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥ ४५३० ॥

तुम सब गुणोंसे पूर्ण और मेरे सब पुत्रोंसे जेठे हो; अतः "सूतपुत्र" इस शब्दका उपयोग अपने लिए कभी न करना, तुम महावीर्यवान् पार्थ अर्थात् पृथाके पुत्र हो ॥ १२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ तैतालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४३ ॥ ४५३० ॥

: १४४ :

वैशम्पायन उवाच

ततः सूर्यान्निश्चरितां कर्णः शुश्राव भारतीम्।
दुरत्ययां प्रणयिनीं पितृवद्भास्करेरिताम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तब कर्णने सूर्यमण्डलसे निकली हुई एक स्नेहमयी आकाशवाणी सुनी, भगवान् सूर्यने खुदही पुत्रप्रेमके वशमें होकर कल्याण करनेवाले शुभ वचन कहे थे ॥ १ ॥

सत्यमाह पृथा वाक्यं कर्ण मातृवचः कुरु।
श्रेयस्ते स्यान्नरव्याघ्र सर्वमाचरतस्तथा ॥ २ ॥

हे कर्ण! कुन्तीने सत्य ही कहा है, तुम माताके वचनका पालन करो। हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! कुन्तीके वचनके अनुसार कार्य करनेसे तुम्हारा मङ्गल ही होगा ॥ २ ॥

एवमुक्तस्य मात्रा च स्वयं पित्रा च भानुना।
चचाल नैव कर्णस्य मतिः सत्यधृतेस्तदा ॥ ३ ॥

माता कुन्ती और पिता सूर्यदेवके वचन सुनकर भी सत्य प्रतिज्ञा करने वाले वीर कर्णकी बुद्धि जरा भी विचलित न हुई ॥ ३ ॥

कर्ण उवाच

न ते न श्रद्दधे वाक्यं क्षत्रिये भाषितं त्वया ।
धर्मद्वारं ममैतत्स्यान्नियोगकरणं तव ॥ ४ ॥

कर्ण बोले– हे क्षत्रियजननी ! तुमने जो कहा, कि मेरी आज्ञाका पालन करना ही तुम्हारे लिए धर्मका द्वार है; इस वचन पर मैं श्रद्धा नहीं करता ऐसी बात नहीं ॥ ४ ॥

अकरोन्मयि यत्पापं भवती सुमहात्ययम् ।
अवकीर्णोऽस्मि ते तेन तद्यशःकीर्तिनाशनम् ॥ ५ ॥

हे माता ! जन्मते ही जो तुमने मुझे त्याग कर मेरे प्राणोंको नष्ट करनेका महाघोर बुरा और अधर्मका कार्य किया था उसीसे मेरा यश तथा कीर्त्ति आदि नष्ट होगये हैं ॥ ५ ॥

अहं च क्षत्रियो जातो न प्राप्तः क्षत्रसत्क्रियाम् ।
त्वत्कृते किं नु पापीयः शत्रुः कुर्यान्ममाहितम् ॥ ६ ॥

भले ही मैं क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुआ होऊं तो भी तुम्हारे कारणसे क्षत्रियोंके योग्य मेरा कोई भी संस्कार नहीं होने पाया । मेरा क्या कोई शत्रु भी तुमसे अधिक बुरा आचरण मेरे साथ कर सकता है ? ॥ ६ ॥

क्रियाकाले त्वनुक्रोशमकृत्वा त्वमिमं मम ।
हीनसंस्कारसमयमद्य मां समचूचुदः ॥ ७ ॥

कैसे आश्चर्यका विषय है, कि तुम दया करनेके समय कुछ भी मेरे हितका कार्य न करके इस समय जब कि दया करनेका समय बीत चुका है अपनी आज्ञाका पालन करवानेके निमित्त मुझे उपदेश दे रही हो ॥ ७ ॥

न वै मम हितं पूर्वं मातृवच्चेष्टितं त्वया ।
सा मां सम्बोधयस्यद्य केवलात्महितैषिणी ॥ ८ ॥

पहिले तुमने माताके समान मेरा कोई भी हितका कार्य नहीं किया, पर अब तुम केवल अपने कल्याणकी इच्छासे ही मुझको पुत्र कहके सम्बोधित कर रही हो ॥ ८ ॥

कृष्णेन सहितात्को वै न व्यथेत धनञ्जयात् ।
कोऽद्य भीतं न मां विद्यात्पार्थानां समितिं गतम् ॥ ९ ॥

कृष्णकी सहायतासे युक्त अर्जुनसे कौन पुरुष भयभीत न होगा ? इसलिए यदि आज मैं पाण्डवोंकी सभामें जाकर उनसे मिल जाऊँ तो कौन मुझको भयभीत नहीं समझेगा ? ॥९॥

×

अज्ञातो विदितः पूर्वं युद्धकाले प्रकाशितः ।
पाण्डवान्यदि गच्छामि किं मां क्षत्रं वदिष्यति ॥ १० ॥

पहिले मैं उन लोगोंके भाईके रूपमें प्रसिद्ध नहीं था, इस समय युद्धका अवसर आनेपर यदि मैं स्वयंको उनका भाई कहने लग जाऊँ और उनसे जाकर मिल जाऊँ तो यह सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी मण्डली मुझको क्या कहेगी ? ॥ १० ॥

सर्वकामैः संविभक्तः पूजितश्च सदा भृशम् ।
अहं वै धार्तराष्ट्राणां कुर्यां तदफलं कथम् ॥ ११ ॥

जिसमें मुझे सुख मिले, ऐसा सब प्रकारका भोग और भोजनकी वस्तुओंसे धृतराष्ट्रपुत्रोंने आजतक मेरा अत्यन्त ही सत्कार किया है; उसको मैं इस समय निष्फल कैसे कर सकता हूँ ? ॥ ११ ॥

उपनह्य परैर्वैरं ये मां नित्यमुपासते ।
नमस्कुर्वन्ति च सदा वसवो वासवं यथा ॥ १२ ॥

शत्रुओंके साथ वैर करके जो लोग सदा ही मेरी उपासना किया करते हैं; और जैसे वसु इन्द्रको प्रणाम करते हैं, वैसे ही जो लोग मुझे सदा प्रणाम किया करते हैं ॥ १२ ॥

मम प्राणेन ये शत्रूञ्शक्ताः प्रतिसमासितुम् ।
मन्यन्तेऽद्य कथं तेषामहं भिन्द्यां मनोरथम् ॥ १३ ॥

जो लोग मेरे प्राणके सहारेसे शत्रुओंको जीतनेकी अभिलाषा करते हैं, आज उन लोगोंका वह मनोरथ मैं किस प्रकारसे विफल कर सकता हूँ? ॥ १३ ॥

मया प्लवेन संग्रामं तितीर्षन्ति दुरत्ययम् ।
अपारे पारकामा ये त्यजेयं तानहं कथम् ॥ १४ ॥

अपार समुद्रको भी पार करजानेकी इच्छा करनेवाले दुर्योधन आदि महाघोर युद्धमें मुझे नौका बनाकर उसे पार होनेकी इच्छा करते हैं, उनको इस समय मैं कैसे छोड दूँ? ॥१४॥

अयं हि कालः सम्प्राप्तो धार्तराष्ट्रोपजीविनाम् ।
निर्वेष्टव्यं मया तत्र प्राणानपरिरक्षता ॥ १५ ॥

जो लोग दुर्योधनके उपजीवी हैं, उनके कर्त्तव्य कर्मका यही यथार्थ समय उपस्थित हुआ है । अतः इस समय अपने प्राणकी आशाको छोड करके भी उसके उपकारका प्रत्युपकार मुझे करना चाहिए ॥ १५ ॥

कृतार्थाः सुभृता ये हि कृत्यकाल उपस्थिते ।
अनवेक्ष्य कृतं पापा विकुर्वन्त्यनवस्थिताः ॥ १६ ॥
राजकिल्बिषिणां तेषां भर्तृपिण्डापहारिणाम् ।
नैवायं न परो लोको विद्यते पापकर्मणाम् ॥ १७ ॥

जो सब अधम पुरुष स्वामीके समीपमें अन्न वस्त्र पाकर कार्यके समयमें अनायास ही उसको छोडकर चले जाते हैं, उन स्वामीके पिण्डको हरण करनेवाले राजद्रोही कृतघ्न महापापियोंके निमित्त यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं रहता ॥ १६-१७ ॥

धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामर्थे योत्स्यामि ते सुतैः ।
बलं च शक्तिं चास्थाय न वै त्वय्यनृतं वदे ॥ १८ ॥

मैं तुमसे मिथ्या नहीं बोलता । मैं धृतराष्ट्रपुत्रोंके निमित्त सम्पूर्ण बल और शक्तिको लगाकर तुम्हारे पुत्रोंके साथ युद्ध अवश्य करूंगा ॥ १८ ॥

आनृशंस्यमथो वृत्तं रक्षन्सत्पुरुषोचितम् ।
अतोऽर्थकरमप्येतन्न करोम्यद्य ते वचः ॥ १९ ॥

दया, धर्म और सत्पुरुषोंके पवित्र चरित्रकी अवश्यही मुझको रक्षा करनी पडेगी । अतः यथार्थमें हितकारी होनेपर भी इस समय मैं तुम्हारी बातोंका पालन किसी भी प्रकारसे नहीं कर सकता ॥ १९ ॥

न तु तेऽयं समारम्भो मयि मोघो भविष्यति ।
वध्यान्विषह्यान्संग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान् ।
युधिष्ठिरं च भीमं च यमौ चैवार्जुनादृते ॥ २० ॥

तथापि मुझसे जो तुमने इतना अनुरोध किया है, वह भी निष्फल नहीं होगा, मैं युद्धमें प्रवृत्त होकर केवल अर्जुनके अतिरिक्त तुम्हारे युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव इन चार पुत्रोंको, वे वधके योग्य भले ही हों, मैं कभी नहीं मारूंगा ॥ २० ॥

अर्जुनेन समं युद्धं मम यौधिष्ठिरे बले ।
अर्जुनं हि निहत्याजौ सम्प्राप्तं स्यात्फलं मया ।
यशसा चापि युज्येयं निहतः सव्यसाचिना ॥ २१ ॥

युधिष्ठिरकी सेनामें केवल अर्जुनके साथ ही मेरा युद्ध होगा; क्योंकि युद्धमें अर्जुनको मारनेहीसे यथेष्ट फल प्राप्त करूंगा अथवा सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मरकर यशसे युक्त होकर स्वर्गलोक जाऊंगा ॥ २१ ॥

न ते जातु नशिष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनि ।
निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि ॥ २२ ॥

हे यशस्विनि ! तुम्हारे पांच पुत्रोंका कभी नाश न होगा, क्योंकि अर्जुनके मरनेसे कर्णको मिलाकर तुम्हारे पांच पुत्र रहेंगे; और मेरे मरनेपर अर्जुनके सहित वही पांच पुत्र रहेंगे ॥२२॥

वैशम्पायन उवाच

इति कर्णवचः श्रुत्वा कुन्ती दुःखात्प्रवेपती ।
उवाच पुत्रमाश्लिष्य कर्णं धैर्यादकम्पितम् ॥ २३ ॥

वैशम्पायन बोले— कर्णके इस वचनको सुनकर कुन्ती दुःख और शोकसे कांपती हुई अत्यंत धैर्यशाली होनेके कारण न कांपनेवाले उस महावीर पुरुषका आलिङ्गन करके यह वचन बोली ॥ २३ ॥

एवं वै भाव्यमेतेन क्षयं यास्यन्ति कौरवाः ।
यथा त्वं भाषसे कर्ण दैवं तु बलवत्तरम् ॥ २४ ॥

हे पुत्र ! तुम जो कहते हो, वही सम्भव तथा सत्य प्रतीत होता है; इस उपस्थित युद्धमें कौरवोंका नाश होगा, दैवका बल ही सबसे प्रबल है ॥ २४ ॥

त्वया चतुर्णां भ्रातॄणामभयं शत्रुकर्शन ।
दत्तं तत्प्रतिजानीहि सङ्गरप्रतिमोचनम् ॥ २५ ॥

हे शत्रुनाशन ! तुमने जो युधिष्ठिर आदि चारों भाइयोंको अभयदान किया है, तुम्हारी यह प्रतिज्ञा पूर्ण रीतिसे सत्य होवे, इसका ध्यान रखना ॥ २५ ॥

अनामयं स्वस्ति चेति पृथाथो कर्णमब्रवीत् ।
तां कर्णोऽभ्यवदत्प्रीतस्ततस्तौ जग्मतुः पृथक् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥ ४५५६ ॥

तब कुन्ती कर्णसे यह वचन बोली, हे पुत्र ! तुम्हारा कल्याण होवे, तुम रोगरहित होकर कुशलतासे रहो। कर्णने भी प्रसन्न होकर सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया और इसके बाद वे दोनों अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ चौवालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १४४ ॥ ४५५६ ॥

॥ १४५ ॥

वैशम्पायन उवाच

आगम्य हास्तिनपुरादुपप्लव्यमरिन्दमः ।
पाण्डवानां यथावृत्तं केशवः सर्वमुक्तवान् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– इधर शत्रुनाशक कृष्णने हस्तिनापुरसे विराटके उपप्लव्य नगरमें पहुंचकर पाण्डवोंसे कौरवोंका सम्पूर्ण वृत्तान्त आदिसे अन्ततक कहा ॥ १ ॥

सम्भाष्य सुचिरं कालं मन्त्रयित्वा पुनः पुनः ।
स्वमेवावसथं शौरिर्विश्रामार्थं जगाम ह ॥ २ ॥

वहुत समयतक वातचीत और बार बार सलाह मशविरा करके कृष्ण विश्रामके लिए अपने निवास भवनमें गए ॥ २ ॥

विसृज्य सर्वान्नृपतीन्विराटप्रमुखांस्तदा ।
पाण्डवा भ्रातरः पञ्च भानावस्तंगते सति ॥ ३ ॥
सन्ध्यामुपास्य ध्यायन्तस्तमेव गतमानसाः ।
आनाय्य कृष्णं दाशार्हं पुनर्मन्त्रममन्त्रयन् ॥ ४ ॥

भगवान् सूर्यके अस्त हो जानेपर पांचों भाई पाण्डवोंने विराट आदि राजाओंको विदा करके संध्योपासना की और कृष्णमें ही उनका मन लगा हुआ होनेके कारण कृष्णके वचन सुननेकी अभिलाषासे शीघ्र ही उन्हें अपने पासमें बुलाकर फिर विचार करने लगे ॥३-४॥

युधिष्ठिर उवाच

त्वया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।
किमुक्तः पुण्डरीकाक्ष तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे पुण्डरीकाक्ष ! हस्तिनापुरमें जाकर तुमने दुर्योधनसे क्या क्या वचन कहे थे, वे हमसे कहो ॥ ५ ॥

वासुदेव उवाच

मया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः ।
तथ्यं पथ्यं हितं चोक्तो न च गृह्णाति दुर्मतिः ॥ ६ ॥

वासुदेव बोले– मैंने हस्तिनापुरमें जाकर सभामें जो उत्तम, पथ्य और हितकारी वचन थे, वे ही वचन दुर्योधनसे कहे थे, परन्तु नीचबुद्धि दुर्योधनने किसी प्रकारसे भी मेरे उन वचनोंको स्वीकार नहीं किया ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

तस्मिन्नुत्पथमापन्ने कुरुवृद्धः पितामहः।
किमुक्तवान्हृषीकेश दुर्योधनममर्षणम्।
आचार्यो वा महाबाहो भारद्वाजः किमब्रवीत् ॥ ७ ॥

राजा युधिष्ठिर बोले— हे हृषीकेश जनार्दन ! दुर्योधनके नीच मार्गका अवलम्बन करनेपर कौरवोंमें बूढे पितामह भीष्मने उस क्रोधी दुर्योधनसे क्या कहा था ? हे महाबाहो ! भरद्वाज-नन्दन आचार्य द्रोणाचार्यने क्या कहा था ? ॥ ७ ॥

पिता यवीयानस्माकं क्षत्ता धर्मभृतां वरः।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तः किमाह धृतराष्ट्रजम् ॥ ८ ॥

धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ तथा हमारे छोटे पिता विदुरने, जो सदा ही हम लोगोंके शोक और दुःखसे व्याकुल रहते हैं, दुर्योधनसे क्या कहा था ? ॥ ८ ॥

किं च सर्वे नृपतयः सभायां ये समासते।
उक्तवन्तो यथातत्त्वं तद्ब्रूहि त्वं जनार्दन ॥ ९ ॥

और सब राजाओंने, जो सभामें बैठे हुए थे, कैसे वचन कहे थे ? हे जनार्दन ! वह सब हमसे कहो ॥ ९ ॥

उक्तवान्हि भवान्सर्वं वचनं कुरुमुख्ययोः।
कामलोभाभिभूतस्य मन्दस्य प्राज्ञमानिनः ॥ १० ॥
अप्रियं हृदये मह्यं तन्न तिष्ठति केशव।
तेषां वाक्यानि गोविन्द श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ॥ ११ ॥

हे कृष्ण ! मेरी तरफसे आपने तथा कुरुश्रेष्ठ भीष्म और द्रोणने काम और लोभसे अभिभूत उस पण्डितम्मन्य मूर्ख दुर्योधनके हितके लिए जो अप्रिय वचन कहे थे, वे वचन, हे केशव ! उसके हृदयमें प्रविष्ट नहीं होते। हे विभो गोविन्द ! मैं उनलोगोंके वचनोंको सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १०–११ ॥

यथा च नाभिपद्येत कालस्तात तथा कुरु।
भवान्हि नो गतिः कृष्ण भवान्नाथो भवान्गुरुः ॥ १२ ॥

जिससे योग्य समय बीत न जावे, ऐसा करो। हे तात ! हे कृष्ण ! तुम ही हम लोगोंकी गति, प्रभु और गुरु हो ॥ १२ ॥

वासुदेव उवाच

शृणु राजन्यथा वाक्यमुक्तो राजा सुयोधनः ।
मध्ये कुरूणां राजेन्द्र सभायां तन्निबोध मे ॥ १३ ॥

वासुदेव बोले— हे राजेन्द्र ! कौरवोंकी सभामें राजा दुर्योधनसे जैसा वचन कहा गया था, उसे मैं कहता हूं, तुम चित्त लगाकर सुनो ॥ १३ ॥

मया वै श्राविते वाक्ये जहास धृतराष्ट्रजः ।
अथ भीष्मः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

मेरा जो कुछ वक्तव्य था, उसको सुनानेपर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन हंसने लगा, इससे भीष्म अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर उससे यह वचन कहने लगे ॥ १४ ॥

दुर्योधन निबोधेदं कुलार्थे यद्ब्रवीमि ते ।
तच्छ्रुत्वा राजशार्दूल स्वकुलस्य हितं कुरु ॥ १५ ॥

हे दुर्योधन ! कुलकी रक्षाके निमित्त मैं जो तुमसे यह वचन कहता हूं, उसको अच्छी प्रकारसे सुनकर, हे राजसिंह ! अपने कुलका हित करो ॥ १५ ॥

मम तात पिता राजञ्शन्तनुर्लोकविश्रुतः ।
तस्याहमेक एवासं पुत्रः पुत्रवतां वरः ॥ १६ ॥

हे तात ! पुत्रवालोंमें श्रेष्ठ मेरे पिता शन्तनु लोकमें विख्यात थे; पहिले मैं ही उनका एकमात्र पुत्र था ॥ १६ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना द्वितीयः स्यात्कथं सुतः ।
एकपुत्रमपुत्रं वै प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १७ ॥

पण्डित लोग एक पुत्रको पुत्र ही नहीं गिनते; इसलिए उसने सोचा कि मेरे दूसरा पुत्र कैसे हो ? ॥ १७ ॥

न चोच्छेदं कुलं यायाद्विस्तीर्येत कथं यशः ।
तस्याहमीप्सितं बुद्ध्वा कालीं मातरमावहम् ॥ १८ ॥

जिस प्रकार मेरे कुलका उच्छेद न हो, किस प्रकारसे मेरा यश विस्तृत हो, इसी प्रकारकी उन्हें चिन्ता हुई । पिताके मनोरथको जानकर मैंने व्यासदेवकी माता योजनगन्धाके साथ पिताका विवाह कराया ॥ १८ ॥

प्रतिज्ञां दुष्करां कृत्वा पितुरर्थे कुलस्य च।
अराजा चोर्ध्वरेताश्च यथा सुविदितं तव।
प्रतीतो निवसाम्येष प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ १९ ॥

कुलरक्षा और पिताके मनोरथको पूर्ण करनेके निमित्त मैंने कठिन प्रतिज्ञा करके इस कार्यको सिद्ध किया था। उसी प्रतिज्ञाके कारणसे मैं राजा नहीं हो सका और सदासे ब्रह्मचर्य-व्रत अवलम्बन किये हुए रहता हूं; वह तुम्हें भलीभांति विदित ही है। अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण कर मैं सन्तुष्ट चित्तसे जीवन धारण कर रहा हूं ॥ १९ ॥

तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रीमान्कुरुकुलोद्वहः।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कनीयान्मम पार्थिवः ॥ २० ॥

समयके अनुसार इस सत्यवती माताके गर्भसे मेरे छोटे भाई कुरुकुलको बढानेवाले धर्मात्मा महाबाहु राजा विचित्रवीर्यका जन्म हुआ ॥ २० ॥

स्वर्याते ऽहं पितरि तं स्वराज्ये संन्यवेशयम्।
विचित्रवीर्यं राजानं भृत्यो भूत्वा ह्यधश्चरः ॥ २१ ॥

पिताके स्वर्ग लोक चले जानेके बाद मैंने अपने छोटे भाईका लक्ष्मीसे युक्त अपने राज्य-पर अभिषेक किया। विचित्रवीर्य राजा हुए और मैं उनका अनुजीवी होकर राज्यकी रक्षा करता रहा ॥ २१ ॥

तस्याहं सदृशान्दारान्राजेन्द्र समुदावहम्।
जित्वा पार्थिवसङ्घातमपि ते बहुशः श्रुतम् ॥ २२ ॥

हे राजन्! विवाहका समय उपस्थित होनेपर मैंने योग्य कन्याके साथ उनका विवाह कराया। उस विवाहके समय मैंने जो अनेक राजाओंको पराजित किया था; उसे तुमने कई बार सुना है ॥ २२ ॥

ततो रामेण समरे द्वन्द्वयुद्धमुपागमम्।
स हि रामभयादेभिर्नागरैर्विप्रवासितः।
दारेष्वतिप्रसक्तश्च यक्ष्माणं समपद्यत ॥ २३ ॥

उसके बाद जब मैं परशुरामके साथ द्वन्द्व-युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ था, तब सब प्रजा भयसे विकल होकर विचित्रवीर्यको दूसरे स्थानमें ले गई। वह बुद्धिहीन भ्राता स्त्रीमें अत्यन्त ही आसक्त होकर यक्ष्मा रोगसे मर गया ॥ २३ ॥

यदा त्वराजके राष्ट्रे न ववर्ष सुरेश्वरः।
तदाभ्यधावन्मामेव प्रजाः क्षुद्भयपीडिताः ॥ २४ ॥

इस प्रकार कुरुराज्य राजासे रहित होने पर उस राज्यमें इन्द्रने जल नहीं बरसाया। तब सम्पूर्ण प्रजा भय और क्षुधासे पीडित होकर मेरे निकट आई ॥ २४ ॥

प्रजा ऊचुः

उपक्षीणाः प्रजाः सर्वा राजा भव भवाय नः।
ईतयो नुद भद्रं ते शान्तनोः कुलवर्धन ॥ २५ ॥

प्रजा बोली– हे शान्तनुनन्दन ! हे कुलको बढानेवाले भीष्म ! राज्यके राजासे रहित होनेके कारण तुम्हारी सम्पूर्ण प्रजायें नष्टप्रायः हो रही हैं; अतः हमलोगोंके कल्याणके लिए इस समय तुम राज्यके भारको ग्रहण करो ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम ईतियोंको दूर करो ॥ २५ ॥

पीडयन्ते ते प्रजाः सर्वा व्याधिभिर्भृशदारुणैः।
अल्पावशिष्टा गाङ्गेय ताः परित्रातुमर्हसि ॥ २६ ॥

हे गङ्गानन्दन ! बहुत भयंकर व्याधियोंसे सम्पूर्ण प्रजा नष्ट हो रही है; जो थोडेसे पुरुष बच गए हैं, उनकी आप रक्षा करें ॥ २६ ॥

व्याधीन्प्रणुद्य वीर त्वं प्रजा धर्मेण पालय।
त्वयि जीवति मा राष्ट्रं विनाशमुपगच्छतु ॥ २७ ॥

हे वीर ! तुम इन व्याधियोंको दूर करो और प्रजाका धर्मसे पालन करो, तुम्हारे जीतेजी राष्ट्र नाशको प्राप्त न हो ॥ २७ ॥

भीष्म उवाच

प्रजानां क्रोशतीनां वै नैवाक्षुभ्यत मे मनः।
प्रतिज्ञां रक्षमाणस्य सद्वृत्तं स्मरतस्तथा ॥ २८ ॥

भीष्म बोले–प्रजाओंके इस प्रकार चिल्लाने पर भी मेरा चित्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ, साधुपुरुषोंके चरित और सदाचारको स्मरण करके मैं अपनी पहिली प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेहीमें तत्पर रहा ॥ २८ ॥

ततः पौरा महाराज माता काली च मे शुभा।
भृत्याः पुरोहिताचार्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः।
मामूचुर्भृशसन्तप्ता भव राजेति सन्ततम् ॥ २९ ॥

हे महाराज ! तब सम्पूर्ण पुरवासी और मेरी कल्याणी माता सत्यवती, सेवक, पुरोहित और सब शास्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मण लोगोंने भी बहुत दुःखी होकर मुझसे बहुत बार कहा कि तुम राजा हो जाओ ॥ २९ ॥

×

प्रतीपरक्षितं राष्ट्रं त्वां प्राप्य विनशिष्यति।
स त्वमस्मद्धितार्थं वै राजा भव महामते ॥ ३० ॥

हे महाबुद्धिमान् ! हम लोगोंके हितके निमित्त तुम राजसिंहासन पर बैठो। तुम्हारे विद्यमान् रहने पर भी तुम्हारे पितामह प्रतीप महाराजके द्वारा रक्षित इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका विनाश हो रहा है, यह बहुत ही दुःखका विषय है ॥ ३० ॥

इत्युक्तः प्राञ्जलिर्भूत्वा दुःखितो भृशमातुरः।
तेभ्यो न्यवेदयं तत्र प्रतिज्ञां पितृगौरवात्।
ऊर्ध्वरेता ह्यराजा च कुलस्याऽर्थे पुनः पुनः ॥ ३१ ॥

उन लोगोंके इस वचनको सुनकर मैंने अत्यन्त दुःखित और आतुर होके हाथ जोडकर उनसे अपने पिताके गौरवके लिए की गई अपनी प्रतिज्ञाके बारेमें निवेदन किया; कुलकी रक्षाके निमित्त राज्यरहित होकर ब्रह्मचर्यव्रत करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ३१ ॥

ततोऽहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मातरं सम्प्रसादयम्।
नाम्ब शन्तनुना जातः कौरवं वंशमुद्वहन्।
प्रतिज्ञां वितथां कुर्यामिति राजन्पुनः पुनः ॥ ३२ ॥
विशेषतस्त्वदर्थं च धुरि मा मां नियोजय।
अहं प्रेष्यश्च दासश्च तवाम्ब सुतवत्सले ॥ ३३ ॥

इसके बाद हाथ जोडकर मैंने माताको भी यह वचन कहकर शान्त किया—'हे माता ! शन्तनुसे उत्पन्न हुआ तथा कौरववंशका उद्धार करनेवाला मैं विशेष करके तुम्हारे लिए की गई अपनी प्रतिज्ञाको झूठी न करूं, इसलिए तुम मुझे राज्यकी धुरामें मत जोडो। हे पुत्रवत्सला माता ! मैं तो तुम्हारा दास और आज्ञाकारी हूँ' यह बात मैंने अपनी मातासे बार बार कही ॥ ३२-३३ ॥

एवं तामनुनीयाहं मातरं जनमेव च।
अयाचं भ्रातृदारेषु तदा व्यासं महामुनिम् ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! मैं माता और पुरवासियोंसे ऐसी विनती करके अन्तमें भ्रातृजायाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करनेके निमित्त महामुनि व्यासदेवसे प्रार्थना की ॥ ३४ ॥

सह मात्रा महाराज प्रसाद्य तमृषिं तदा।
अपत्यार्थमयाचं वै प्रसादं कृतवांश्च सः।
त्रीन्स पुत्रानजनयत्तदा भरतसत्तम ॥ ३५ ॥

उसके निमित्त माताने भी उनसे बहुत अनुरोध किया और मैंने भी उनसे बहुत प्रार्थना की और पुत्रोंके लिए मैंने उनसे याचना की। हे भरतसत्तम ! व्यासदेवने हमलोगोंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३५ ॥

अन्धः करणहीनेति न वै राजा पिता तव ।
राजा तु पाण्डुरभवन्महात्मा लोकविश्रुतः ॥ ३६ ॥

उनमेंसे तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र अन्धे उत्पन्न हुए थे; अतः वे राजा न हो सके । सब लोकोंमें विख्यात महात्मा पाण्डु राजा हुए थे ॥ ३६ ॥

स राजा तस्य ते पुत्राः पितुर्दायाद्यहारिणः ।
मा तात कलहं कार्षी राज्यस्यार्धं प्रदीयताम् ॥ ३७ ॥

वह जब राजा हुए थे, तब वे उनके पुत्र अवश्य ही उस राज्यको पानेके अधिकारी हैं । हे पुत्र ! अतः तुम झगडा मत करो; राज्यका आधा भाग पाण्डवोंको अवश्य प्रदान करो ॥ ३७॥

मयि जीवति राज्यं कः सम्प्रशासेत्पुमानिह ।
मावमंस्था वचो मह्यं शममिच्छामि वः सदा ॥ ३८ ॥

मेरे जीवित रहते हुए कौनसा पुरुष राज्य चलानेमें समर्थ हो सकता है ? अतः तुम मेरे वचनका तिरस्कार मत करो । मैं सदा तुम लोगोंमें शान्तिकी ही इच्छा करता हूं ॥३८॥

न विशेषोऽस्ति मे पुत्र त्वयि तेषु च पार्थिव ।
मतमेतत्पितुस्तुभ्यं गान्धार्या विदुरस्य च ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे और पाण्डवोंके बारेमें मेरे मनमें जरा भी भेद नहीं है । मैंने तुमसे जैसा वचन कहा है, वही मत तुम्हारे माता पिता और विदुरका भी है ॥ ३९ ॥

श्रोतव्यं यदि वृद्धानां मातिशङ्कीर्वचो मम ।
नाशयिष्यसि मा सर्वमात्मानं पृथिवीं तथा ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥ ४५९६ ॥

हे तात ! बूढोंके वचनको अवश्य सुनना और मानना चाहिये, अतः तुम मेरे इन वचनोंमें कुछ भी शङ्का न करो तथा अपना और अपनी इस पृथ्वीका नाश न करावो ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ १४५ ॥ ४५९६ ॥

: १४६ :

वासुदेव उवाच

भीष्मेणोक्ते ततो द्रोणो दुर्योधनमभाषत ।
मध्ये नृपाणां भद्रं ते वचनं वचनक्षमः ॥ १ ॥

वासुदेव बोले- हे राजन् ! तेरा कल्याण हो, भीष्मके वचनोंके समाप्त होनेपर बुद्धिमान् द्रोणाचार्य भी सब राजाओंके सम्मुख ही उससे यह वचन बोले ॥ १ ॥

प्रातीपः शन्तनुस्तात कुलस्यार्थे यथोत्थितः ।
यथा देवव्रतो भीष्मः कुलस्यार्थे स्थितोऽभवत् ॥ २ ॥

हे तात ! प्रतीपनन्दन शन्तनु जैसे कुलकी रक्षामें सदा उद्यत थे और उनके पुत्र देवव्रत भीष्म भी कुलरक्षाके निमित्त जिस प्रकार उद्यत हैं ॥ २ ॥

तथा पाण्डुर्नरपतिः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
राजा कुरूणां धर्मात्मा सुव्रतः सुसमाहितः ॥ ३ ॥

वैसे ही सत्यवादी कुरुकुलमें जितेन्द्रिय और धर्मधुरन्धर समाधिनिष्ठ सत्यव्रतसे युक्त पाण्डुराजाने भी किया ॥ ३ ॥

ज्येष्ठाय राज्यमददाद् धृतराष्ट्राय धीमते ।
यवीयसस्तथा क्षत्तुः कुरुवंशविवर्धनः ॥ ४ ॥

कुरुकुलको बढानेवाले पाण्डुने स्वयं राजा होनेपर भी अपने बडे भाई बुद्धिमान् धृतराष्ट्र और छोटे भाई विदुरको अपना राज्याधिकार दे दिया था ॥ ४ ॥

ततः सिंहासने राजन्स्थापयित्वैनमच्युतम् ।
वनं जगाम कौरव्यो भार्याभ्यां सहितोऽनघ ॥ ५ ॥

राजन् ! निष्पाप कुरुश्रेष्ठ राजा पाण्डु इन अच्युत धृतराष्ट्रको सिंहासन पर बैठाकर अपनी दोनों रानियोंके साथ वनको चले गये थे ॥ ५ ॥

नीचैः स्थित्वा तु विदुर उपास्ते स्म विनीतवत् ।
प्रेष्यवत्पुरुषव्याघ्रो वालव्यजनमुत्क्षिपन् ॥ ६ ॥

तब पुरुषसिंह विदुर अपनी स्वाभाविक सरलतासे धृतराष्ट्रके समीप खडे होकर सेवककी भांति हाथमें चंवर लेकर उनकी सेवा करने लगे; ॥ ६ ॥

ततः सर्वाः प्रजास्तात धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
अन्वपद्यन्त विधिवद्यथा पाण्डुं नराधिपम् ॥ ७ ॥

हे तात ! सम्पूर्ण प्रजायें राजा पाण्डुकी भांति नियमके अनुसार अपने राजा धृतराष्ट्रका सम्मान करने लगीं ॥ ७ ॥

विसृज्य धृतराष्ट्राय राज्यं स विदुराय च ।
चचार पृथिवीं पाण्डुः सर्वां परपुरञ्जयः ॥ ८ ॥

पराये देशको जीतनेवाले पाण्डुराज धृतराष्ट्र और विदुरके हाथमें राज्यका भार सौंपकर सम्पूर्ण पृथ्वीमें घूमने लगे ॥ ८ ॥

कोशसंजनने दाने भृत्यानां चान्ववेक्षणे ।
भरणे चैव सर्वस्य विदुरः सत्यसङ्गरः ॥ ९ ॥

उसके बाद सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले विदुर खजानेका संचय करने, दान देने और सेवकोंका प्रतिपालन करनेमें नियुक्त हुए ॥ ९ ॥

सन्धिविग्रहसंयुक्तो राज्ञः संवाहनक्रियाः ।
अवैक्षत महातेजा भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ १० ॥

शत्रुओंके राष्ट्रको जीतनेवाले महा तेजस्वी भीष्म सन्धि विग्रह तथा राजाओंको नजराना आदि भिजवाना आदि कार्योंको देखने लगे ॥ १० ॥

सिंहासनस्थो नृपतिर्धृतराष्ट्रो महाबलः ।
अन्वास्यमानः सततं विदुरेण महात्मना ॥ ११ ॥

महाबलशाली राजा धृतराष्ट्रके सिंहासनपर बैठनेपर महात्मा विदुर सदा उनके समीप उपस्थित रहते थे ॥ ११ ॥

कथं तस्य कुले जातः कुलभेदं व्यवस्यसि ।
सम्भूय भ्रातृभिः सार्धं भुङ्क्ष्व भोगाञ्जनाधिप ॥ १२ ॥

हे प्रजानाथ ! अतः तुम इसी धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न होकर क्यों कुलके नाश करनेमें प्रवृत्त हो रहे हो, तुम भाइयोंके साथ मिलकर भोगोंका भोग करो ॥ १२ ॥

ब्रवीम्यहं न कार्पण्यान्नार्थहेतोः कथञ्चन ।
भीष्मेण दत्तमश्नामि न त्वया राजसत्तम ॥ १३ ॥

हे राजसत्तम ! युद्धसे डरके अथवा धनके लोभमें पडकर मैं तुमसे यह वचन नहीं कह रहा हूं। मैं तो भीष्मके दिये हुए अन्नका भोग करता हूं, तुम्हारे दिये हुए अन्नका नहीं ॥१३॥

नाहं त्वत्तोऽभिकाङ्क्षिष्ये वृत्त्युपायं जनाधिप ।
यतो भीष्मस्ततो द्रोणो यद्भीष्मस्त्वाह तत्कुरु ॥ १४ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे समीप जीवनके निमित्त अन्नग्रहण करनेकी मेरी कभी भी अभिलाषा न होगी। भीष्म जिस ओर रहेंगे, उसी ओर द्रोण भी रहेगा, इसीलिए भीष्म जैसा कहते हैं, वैसा ही करो ॥ १४ ॥

दीयतां पाण्डुपुत्रेभ्यो राज्यार्धमरिकर्शन ।
सममाचार्यकं तात तव तेषां च मे सदा ॥ १५ ॥

हे शत्रुओंके नाशक ! पाण्डु-पुत्रोंको राज्यका आधा भाग दे डालो। हे तात ! मैंने तुम्हारे और उन लोगोंके आचार्यका कार्य समान ही किया है; अतः दोनों ओर मेरी समान ही प्रीति है ॥ १५ ॥

अश्वत्थामा यथा मह्यं तथा श्वेतहयो मम।
बहुना किं प्रलापेन यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १६ ॥

मुझे अश्वत्थामा जैसा प्रिय है, अर्जुन भी वैसा ही प्यारा है। और अधिक बातोंके कहनेकी क्या आवश्यकता है; जहांपर धर्म रहता है, वहींपर जय होती है ॥ १६ ॥

एवमुक्ते महाराज द्रोणेनामिततेजसा।
व्याजहार ततो वाक्यं विदुरः सत्यसङ्गरः।
पितुर्वदनमन्वीक्ष्य परिवृत्य च धर्मवित् ॥ १७ ॥

महातेजस्वी द्रोणाचार्यके इस प्रकार कह चुकनेपर सत्यवादी, सब धर्मोंके जाननेवाले बुद्धिमान् विदुर अपने पिता शन्तनुनन्दन भीष्मका मुंह देखकर फिर दुर्योधनकी तरफ मुंह करके यह वचन कहने लगे ॥ १७ ॥

देवव्रत निबोधेदं वचनं मम भाषतः।
प्रनष्टः कौरवो वंशस्त्वयायं पुनरुद्धृतः ॥ १८ ॥

हे देवव्रती भीष्म! मैं जो कुछ कहता हूं, उसे एकबार तुम एकाग्र चित्तसे सुनो। तुमने इस नष्टप्रायः कौरवकुलका फिरसे उद्धार किया है ॥ १८ ॥

तन्मे विलपमानस्य वचनं समुपेक्षसे।
कोऽयं दुर्योधनो नाम कुलेऽस्मिन्कुलपांसनः ॥ १९ ॥
यस्य लोभाभिभूतस्य मतिं समनुवर्तसे।
अनार्यस्याकृतज्ञस्य लोभोपहतचेतसः।
अतिक्रामति यः शास्त्रं पितुर्धर्मार्थदर्शिनः ॥ २० ॥

तो भी मेरे बारबार विलाप और आर्त्तनाद करनेवाले मेरे वचनोंकी उपेक्षा कर रहे हो? जिस लोभी, अनार्य, कृतघ्न, लोभसे नष्ट हुई बुद्धिवाले दुर्योधनकी बातोंका तुम अनुसरण करते हो, जो अपने धर्मवेत्ता पिताकी बातका उल्लंघन करता है, ऐसे इस कुलदूषक दुर्योधनकी इस कुलमें हस्ती ही क्या है? ॥ १९-२० ॥

एते नश्यन्ति कुरवो दुर्योधनकृतेन वै।
यथा ते न प्रणश्येयुर्महाराज तथा कुरु ॥ २१ ॥

दुर्योधनकी करतूतोंसे इस कौरवोंके कुलका नाश हो जायेगा; अतः, हे महाराज! जिससे इस कुलका नाश न हो वैसा ही तुम करो ॥ २१ ॥

मां चैव धृतराष्ट्रं च पूर्वमेव महाद्युते ।
चित्रकार इवालेख्यं कृत्वा मा स्म विनाशय ।
प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा यथा संहरते तथा ॥ २२ ॥

हे महातेजस्वी ! तुम मुझे, धृतराष्ट्र तथा और दूसरे पुरुषोंको चित्रकारके द्वारा चित्रमें लिखे पुतलोंकी भांति बनाकर कुलका विनाश मत करवाओ । हे महाबाहो ! प्रजापति ब्रह्मा जैसे सृष्टिको रचकर फिर समयके अनुसार उसका संहार करते हैं, उसी प्रकार प्रथम इस कुरु-कुलका उद्धार करके अब उसका विनाश मत करवाओ ॥ २२ ॥

नोपेक्षस्व महाबाहो पश्यमानः कुलक्षयम् ।
अथ तेऽद्य मतिर्नष्टा विनाशे प्रत्युपस्थिते ।
वनं गच्छ मया सार्धं धृतराष्ट्रेण चैव ह ॥ २३ ॥

तुमने स्वयं जिस कुलकी रक्षा की है, उसका नाश होता देखकर भी चुपचाप न बैठे रहो । पर यदि भावी संहारका समय उपस्थित हुआ जानकर यदि तुम्हारी बुद्धि भ्रममें पड गई हो तो तुम मुझे और धृतराष्ट्रको साथ लेकर वनवासके निमित्त प्रस्थान करो ॥ २३ ॥

बद्ध्वा वा निकृतिप्रज्ञं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ।
साध्विदं राज्यमद्यास्तु पाण्डवैरभिरक्षितम् ॥ २४ ॥

नहीं तो आज ही इस नीचबुद्धि दुष्ट दुर्योधनको बांध दो और आज ही यह सम्पूर्ण पृथ्वी पाण्डवों द्वारा अच्छी तरह सुरक्षित हो जाए ॥ २४ ॥

प्रसीद राजशार्दूल विनाशो दृश्यते महान् ।
पाण्डवानां कुरूणां च राज्ञां चामिततेजसाम् ॥ २५ ॥

हे राजशार्दूल ! कुरु पाण्डव तथा दूसरे सब राजाओंके नाश होनेका समय उपस्थित हो गया है; अतः अब प्रसन्न हो जाओ ॥ २५ ॥

विरराmैवमुक्त्वा तु विदुरो दीनमानसः ।
प्रध्यायमानः स तदा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ २६ ॥

इस प्रकार उस भयंकर संग्रामकी याद करके बार बार लम्बी सांसें लेते हुए दीन चित्तवाले विदुर यह कहकर चुप हो गए ॥ २६ ॥

ततोऽथ राज्ञः सुबलस्य पुत्री धर्मार्थयुक्तं कुलनाशभीता ।
दुर्योधनं पापमतिं नृशंसं राज्ञां समक्षं सुतमाह कोपात् ॥ २७ ॥

तब कुलनाशके भयसे डरी हुई, सुबलराजपुत्री गान्धारी राजाओंके सम्मुख ही दुष्ट पापबुद्धि दुर्योधनको सम्बोधन करके क्रोधसे भरे हुए पर धर्म और अर्थसे युक्त यह वचन बोली ॥२७॥

ये पार्थिवा राजसभां प्रविष्टा ब्रह्मर्षयो ये च सभासदोऽन्ये ।
शृण्वन्तु वक्ष्यामि तवापराधं पापस्य सामात्यपरिच्छदस्य ॥ २८ ॥

अरे नीचबुद्धि ! इस सभामें जो सब राजा, ब्रह्मर्षि तथा दूसरे सभासद् लोग बैठे हुए हैं, वे सब सुनें, मैं मंत्रियों सहित तुझ पापीके अपराधका वर्णन करती हूं ॥ २८ ॥

राज्यं कुरूणामनुपूर्वभोग्यं क्रमागतो नः कुलधर्म एषः ।
त्वं पापबुद्धेऽतिनृशंसकर्मन्राज्यं कुरूणामनयाद्विहंसि ॥ २९ ॥

अरे नीचबुद्धि दुर्योधन ! कौरवोंका राज्य सदासे कुल-परम्पराके क्रमसे चला आता है, यही हम लोगोंके कुलका क्रमागत धर्म है। अरे नीचकर्म करनेवाले पापी ! तू दुष्ट नीतिके वशमें होकर उस धर्मको त्यागकर सदाके लिये कुरुराज्यका नाश करनेमें प्रवृत्त हो रहा है ॥ २९ ॥

राज्ये स्थितो धृतराष्ट्रो मनीषी तस्यानुजो विदुरो दीर्घदर्शी ।
एतावतिक्रम्य कथं नृपत्वं दुर्योधन प्रार्थयसेऽद्य मोहात् ॥ ३० ॥

दुर्योधन ! बुद्धिमान् धृतराष्ट्र और उनके भाई दीर्घदर्शी विदुर ये ही राज्यपदपर प्रतिष्ठित थे, उन दोनोंकी बातोंका उल्लंघन करके इस समय तू मोहमें पडकर कुलकी मर्यादाको लांघकर क्यों राज्यको ग्रहण करनेकी अभिलाषा करता है ? ॥ ३० ॥

राजा च क्षत्ता च महानुभावौ भीष्मे स्थिते परवन्तौ भवेताम् ।
अयं तु धर्मज्ञतया महात्मा न राज्यकामो नृवरो नदीजः ॥ ३१ ॥

भीष्मके जीवित रहते राजा धृतराष्ट्र और महा बुद्धिमान् विदुर भी स्वाधीन नहीं हो सकते; परन्तु इन पुरुषसिंह महात्मा गङ्गानन्दन भीष्म ने धर्मको पालन करनेके निमित्त राज्यकी इच्छा छोड दी है ॥ ३१ ॥

राज्यं तु पाण्डोरिदमप्रधृष्यं तस्याद्य पुत्राः प्रभवन्ति नान्ये ।
राज्यं तदेतन्निखिलं पाण्डवानां पैतामहं पुत्रपौत्रानुगामि ॥ ३२ ॥

इसी कारण यह अजेय राज्य पाण्डुराजको दे दिया गया था। अतः अब उनके पुत्र ही राजा हो सकते हैं, दूसरे नहीं। केवल पाण्डव ही पुत्र पौत्र आदिके क्रमसे इस सम्पूर्ण राज्यको भोगनेके अधिकारी हैं ॥ ३२ ॥

यद्वै ब्रूते कुरुमुख्यो महात्मा देवव्रतः सत्यसन्धो मनीषी ।
सर्वं तदस्माभिरहत्य धर्मं ग्राह्यं स्वधर्मं परिपालयद्भिः ॥ ३३ ॥

अत्यन्त बुद्धि और पराक्रमसे युक्त सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले, कौरवोंमें मुख्य, महात्मा, पितामह भीष्म जो वचन कहते हैं; उसे स्वीकार करके सब भांतिसे उसीके अनुसार कार्य करना धर्मका पालन करनेवाले हम लोगोंका परम धर्म है ॥ ३३ ॥

अनुज्ञया चाथ महाव्रतस्य ब्रूयान्नृपो यद्विदुरस्तथैव ।
कार्यं भवेत्तत्सुहृद्भिर्नियुज्य धर्मं पुरस्कृत्य सुदीर्घकालम् ॥ ३४ ॥

महाव्रती भीष्मकी आज्ञासे ये राजा धृतराष्ट्र और विदुर जो कहेंगे वही दीर्घकालसे चले आनेवाले धर्मके अनुकुल होगा और वही सब सुहृदोंको करना भी चाहिए ॥ ३४ ॥

न्यायागतं राज्यमिदं कुरूणां युधिष्ठिरः शास्तु वै धर्मपुत्रः ।
प्रचोदितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा पुरस्कृतः शान्तनवेन चैव ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥ ४६२१ ॥

महाराज धृतराष्ट्र और भीष्मसे सम्मानित होकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर न्यायसे उन्हें मिले हुए इस कुरुराज्यपर बहुत दिनतक शासन करें ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ छियालिसवां अध्याय समाप्त ॥ १४६ ॥ ४६२१ ॥

: १४७ :

वासुदेव उवाच

एवमुक्ते तु गान्धार्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
दुर्योधनमुवाचेदं नृपमध्ये जनाधिप ॥ १ ॥

वासुदेव बोले— हे महाराज ! गान्धारीके इस प्रकार कह चुकने पर राजा धृतराष्ट्र सब राजाओंके बीचमें दुर्योधनसे यह वचन कहने लगे ॥ १ ॥

दुर्योधन निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक ।
तथा तत्कुरु भद्रं ते यद्यस्ति पितृगौरवम् ॥ २ ॥

हे पुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं जो कुछ तुमसे कह रहा हूँ उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो और यदि पिताके ऊपर तुम्हारी भक्ति होवे, तो मैं जो वचन कहता हूं, तुम उसीका अनुष्ठान करो ॥ २ ॥

सोमः प्रजापतिः पूर्वं कुरूणां वंशवर्धनः ।
सोमाद्बभूव षष्ठो वै ययातिर्नहुषात्मजः ॥ ३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! पहिले प्रजानाथ सोम कौरवोंके वंशको बढानेवाले हुए थे; नहुषपुत्र राजा ययाति सोमसे छठी पीढीमें उत्पन्न हुए थे ॥ ३ ॥

तस्य पुत्रा बभूवुश्च पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।
तेषां यदुर्महातेजा ज्येष्ठः समभवत्प्रभुः ॥ ४ ॥

उनके राजऋषियोंमें मुख्य पांचपुत्र थे; उनमें महातेजस्वी यदु सबमें बडे थे, अतः वही सबके स्वामी हुए ॥ ४ ॥

×

पूरुर्यवीयांश्च ततो योऽस्माकं वंशवर्धनः।
शर्मिष्ठायाः सम्प्रसूतो दुहितुर्वृषपर्वणः ॥ ५ ॥

हे तात ! उनके छोटे पुत्रका नाम पुरु था, वही हम लोगोंके वंशके बढानेवाले हुए। वृषपर्वाराजाकी पुत्री शर्मिष्ठाके गर्भसे उनका जन्म हुआ था ॥ ५ ॥

यदुश्च भरतश्रेष्ठ देवयान्याः सुतोऽभवत्।
दौहित्रस्तात शुक्रस्य काव्यस्यामिततेजसः ॥ ६ ॥

हे तात भरतश्रेष्ठ ! यदु देवयानीके पुत्र और महा तेजस्वी ज्ञानी शुक्राचार्यके दौहित्र थे ॥ ६ ॥

यादवानां कुलकरो बलवान्वीर्यसम्मतः।
अवमेने स तु क्षत्रं दर्पपूर्णः सुमन्दधीः ॥ ७ ॥

उसी महावीरसे यदुवंशियोंके कुलकी उत्पत्ति हुई। घमण्डके कारण दुष्टबुद्धिके वशमें होकर उन्होंने सम्पूर्ण क्षत्रियोंको अपमानित किया ॥ ७ ॥

न चातिष्ठत्पितुः शास्त्रे बलदर्पविमोहितः।
अवमेने च पितरं भ्रातृंश्चाप्यपराजितः ॥ ८ ॥

बलके घणमडसे मोहित होकर पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया था। उस महापराक्रमी यदुने पिता और भाईयोंका अनादर किया ॥ ८ ॥

पृथिव्यां चतुरन्तायां यदुरेवाभवद्बली।
वशे कृत्वा स नृपतीनवसन्नागसाह्वये ॥ ९ ॥

चारों समुद्रसे युक्त इस पृथ्वीमें यदुही महावली था, उसने सभी राजाओंको वशमें करके हस्तिनापुरमें निवास किया ॥ ९ ॥

तं पिता परमक्रुद्धो ययातिर्नहुषात्मजः।
शशाप पुत्रं गान्धारे राज्याच्च व्यपरोपयत् ॥ १० ॥

हे पुत्र ! नहुषनन्दन ययातिने अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर उस नीचबुद्धि पुत्रको शाप दिया और राज्यसे भी पृथक् कर दिया ॥ १० ॥

ये चैनमन्ववर्तन्त भ्रातरो बलदर्पितम्।
शशाप तानपि क्रुद्धो ययातिस्तनयानथ ॥ ११ ॥

पुरुषसिंह ययातिके जो और तीन पुत्र बलके अभिमानमें भरे हुए यदुके अनुयायी हुए उन्हें भी राजा ययातिने क्रुद्ध होकर शाप दिया ॥ ११ ॥

यवीयांसं ततः पूरुं पुत्रं स्ववशवर्तिनम्।
राज्ये निवेशयामास विधेयं नृपसत्तमः ॥ १२ ॥

तदनन्तर उन राजश्रेष्ठ ययातिने अपनी आज्ञामें रहनेवाले और विनीत छोटे पुत्र पुरुको राज्यपर बैठाया ॥ १२ ॥

एवं ज्येष्ठोऽप्ययथोत्सिक्तो न राज्यमभिजायते ।
यवीयांसोऽभिजायन्ते राज्यं वृद्धोपसेवया ॥ १३ ॥

श्रेष्ठ होनेपर भी दुष्टता तथा नीचबुद्धिताके कारण ज्येष्ठ पुत्र पिताके राज्यसे पृथक् किया जाता है, और कनिष्ठपुत्र भी वृद्धोंकी सेवा आदि गुणोंसे युक्त होने पर राज्यपद पाता है ॥ १३ ॥

तथैव सर्वधर्मज्ञः पितुर्मम पितामहः ।
प्रतीपः पृथिवीपालस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १४ ॥

ऐसा ही और एक प्रमाण है । मेरे प्रपितामह पृथ्वीनाथ प्रतीप सब धर्मोंके जाननेवाले और तीनों लोकोंमें विख्यात होकर धर्मके अनुसार राज्यशासन करते थे ॥ १४ ॥

तस्य पार्थिवसिंहस्य राज्यं धर्मेण शासतः ।
त्रयः प्रजज्ञिरे पुत्रा देवकल्पा यशस्विनः ॥ १५ ॥

हे तात ! धर्मपूर्वक राज्यका शासन करनेवाले उन राजसिंहके वीर्यसे महा यशस्वी देवोंके समान तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥

देवापिरभवज्ज्येष्ठो बाह्लीकस्तदनन्तरम् ।
तृतीयः शान्तनुस्तात धृतिमान्मे पितामहः ॥ १६ ॥

उनमें देवापि बडे, बाह्लिक दूसरे और हमारे पितामह धृतिमान् शन्तनु तीसरे पुत्र थे ॥ १६ ॥

देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तमः ।
धार्मिकः सत्यवादी च पितुः शुश्रूषणे रतः ॥ १७ ॥

राजश्रेष्ठ महातेजस्वी देवापि कुष्ठ रोगसे अत्यन्त ही पीडित थे; यह परम धर्मात्मा, सत्यवादी, पिताकी सेवामें रत रहते थे ॥ १७ ॥

पौरजानपदानां च सम्मतः साधुसत्कृतः ।
सर्वेषां बालवृद्धानां देवापिर्हृदयङ्गमः ॥ १८ ॥

पुरवासी और राष्ट्रवासियोंके प्यारे, साधु पुरुषोंका सत्कार करनेवाले होनेके कारण वह देवापि सभी बच्चे और बूढोंके हृदयोंमें उतरे हुए थे ॥ १८ ॥

प्राज्ञश्च सत्यसन्धश्च सर्वभूतहिते रतः ।
वर्तमानः पितुः शास्त्रे ब्राह्मणानां तथैव च ॥ १९ ॥

वे बहुत बुद्धिमान्, सत्यशील एवं सब प्राणियोंके हितके कार्यमें रत, पिता और ब्राह्मणोंकी आज्ञामें चलनेवाले पुरुष थे ॥ १९ ॥

बाह्लीकस्य प्रियो भ्राता शन्तनोश्च महात्मनः।
सौभ्रात्रं च परं तेषां सहितानां महात्मनाम् ॥ २० ॥

वे महात्मा बाह्लिक और शन्तनुके प्रिय भ्राता थे। उन महातेजस्वी तीनों भाइयोंमें अत्यन्त ही प्रीति थी ॥ २० ॥

अथ कालस्य पर्याये वृद्धो नृपतिसत्तमः।
सम्भारानभिषेकार्थं कारयामास शास्त्रतः।
मङ्गलानि च सर्वाणि कारयामास चाभिभूः ॥ २१ ॥

समयके अनुसार वृद्ध राजसत्तम महाराज प्रतीपने बडे पुत्रके शास्त्रके अनुसार राज्याभिषेकके निमित्त सब सामग्री इकट्ठी की और उन राजाने सभी मंगल काम करवाये ॥ २१ ॥

तं ब्राह्मणाश्च वृद्धाश्च पौरजानपदैः सह।
सर्वे निवारयामासुर्देवापेरभिषेचनम् ॥ २२ ॥

परन्तु ब्राह्मणों और वृद्धोंने पुरवासियोंके साथ मिलकर प्रतीपको देवापिके अभिषेचनके इस कार्यसे रोका ॥ २२ ॥

स तच्छ्रुत्वा तु नृपतिरभिषेकनिवारणम्।
अश्रुकण्ठोऽभवद्राजा पर्यशोचत चात्मजम् ॥ २३ ॥

पुत्रके राज्याभिषेकके रुकनेसे राजाका गला भर आया और दुःखित होकर वह अपने लडकेके लिए बहुत ही शोक करने लगा ॥ २३ ॥

एवं वदान्यो धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च सोऽभवत्।
प्रियः प्रजानामपि संस्त्वग्दोषेण प्रदूषितः ॥ २४ ॥

इस प्रकारसे देवापि विनीतभाव, धर्मात्मा, सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले और प्रजाके प्रीतिपात्र होकर भी केवल चर्म-दोषके कारणसे राज्य नहीं प्राप्त कर सके ॥ २४ ॥

हीनाङ्गं पृथिवीपालं नाभिनन्दन्ति देवताः।
इति कृत्वा नृपश्रेष्ठं प्रत्यषेधन्द्विजर्षभाः ॥ २५ ॥

राजाका शरीर विकल होनेसे देवताको प्रसन्नता नहीं होती; इसी कारण ब्राह्मणोंने उन्हें राज्यपर बिठानेसे रोका था ॥ २५ ॥

ततः प्रव्यथितात्मासौ पुत्रशोकसमन्वितः।
ममार तं मृतं दृष्ट्वा देवापिः संश्रितो वनम् ॥ २६ ॥

तब अभिषेक रुक जानेके कारण बहुत दुःखी हुआ हुआ तथा पुत्रके शोकसे पीडित वह राजा प्रतीप मर गया और उसे मरा हुआ देखकर दुःखी होकर देवापि भी वन चला गया ॥ २६ ॥

बाह्लीको मातुलकुले त्यक्त्वा राज्यं व्यवस्थितः ।
पितृभ्रातॄन्परित्यज्य प्राप्तवान्पुरमृद्धिमत् ॥ २७ ॥

हे राजन् ! महाराज बाह्लिक अपने मातामहका राज्य पाकर भाइयोंको त्यागके पहिलेहीसे मातामह नानाके यहां रहते थे । वहां उन्हें समृद्धिशाली नगरोंका राज्य मिल गया ॥ २७॥

बाह्लीकेन त्वनुज्ञातः शन्तनुर्लोकविश्रुतः ।
पितर्युपरते राजन्राजा राज्यमकारयत् ॥ २८ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार पिताके स्वर्गलोक चले जानेपर संसारमें प्रसिद्ध शन्तनुने ही बाह्लिककी आज्ञाके अनुसार राज्यका भार ग्रहण किया ॥ २८ ॥

तथैवाहं मतिमता परिचिन्त्येह पाण्डुना ।
ज्येष्ठः प्रभ्रंशितो राज्याद्धीनाङ्ग इति भारत ॥ २९ ॥

हे भारत ! देवापिके समान बुद्धिमान् पाण्डुने भी अच्छी तरह विचार करके, ज्येष्ठ होने पर भी मुझे हीनांग समझकर, हे भारत ! राज्यसे भ्रष्ट कर दिया ॥ २९ ॥

पाण्डुस्तु राज्यं संप्राप्तः कनीयानपि सन्नृपः ।
विनाशे तस्य पुत्राणामिदं राज्यमरिन्दम ।
मय्यभागिनि राज्याय कथं त्वं राज्यमिच्छसि ॥ ३० ॥

छोटे पुत्र होकर भी पाण्डुने राज्य प्राप्त किया । हे शत्रुनाशक ! अतः अब राजा पाण्डुके न रहनेपर यह राज्य उसके पुत्रोंका ही है । मैं जिस राज्यका भागी नहीं हो सका उस राज्यकी तुम क्यों अभिलाषा करते हो ? ॥ ३० ॥

युधिष्ठिरो राजपुत्रो महात्मा न्यायागतं राज्यमिदं च तस्य ।
स कौरवस्यास्य जनस्य भर्ता प्रशासिता चैव महानुभावः ॥ ३१ ॥

महात्मा युधिष्ठिर राजाके पुत्र हैं, इससे यह राज्य भी उन्हींको न्यायके अनुसार मिलना चाहिए; वही धर्मात्मा इस कुरुकुलका पालन पोषण और शासन करनेवाले हैं ॥ ३१ ॥

स सत्यसन्धः सततप्रमत्तः शास्त्रे स्थितो बन्धुजनस्य साधुः ।
प्रियः प्रजानां सुहृदानुकम्पी जितेन्द्रियः साधुजनस्य भर्ता ॥ ३२ ॥

वह सत्यवादी सदा सावधान, सदा शास्त्रोंके अनुसार व्यवहार करनेवाले भाइयोंका मान करनेवाले, प्रजाओंकी प्रीतिके पात्र, मित्रोंके ऊपर दया करनेवाले, जितेन्द्रिय और साधु पुरुषोंका पालन करनेवाले हैं ॥ ३२ ॥

क्षमा तितिक्षा दम आर्जवं च सत्यव्रतत्वं श्रुतमप्रमादः ।
भूतानुकम्पा ह्यनुशासनं च युधिष्ठिरे राजगुणाः समस्ताः ॥ ३३ ॥

एक राजामें क्षमा, सहनशीलता, दम, दया, विनय, सत्यनिष्ठा, शास्त्रज्ञान, अप्रमाद, सब प्राणियोंके ऊपर कृपा, और नियमके अनुसार सबका शासन करना आदि जो सब गुण होने चाहिए वे सभी गुण युधिष्ठिरमें हैं ॥ ३३ ॥

अराजपुत्रस्त्वमनार्यवृत्तो लुब्धस्तथा बन्धुषु पापबुद्धिः ।
क्रमागतं राज्यमिदं परेषां हर्तुं कथं शक्ष्यसि दुर्विनीतः ॥ ३४ ॥

पर, दुर्योधन! विनय रहित तुम राजाके पुत्र न होकर विशेष करके नीच पुरुषोंके चरित्रसे युक्त, महालोभी और बन्धुबान्धवोंकी बुराई करनेमें सदा तत्पर होकर क्रमसे आते हुए इस पाण्डवोंके राज्यको कैसे छीन सकोगे ॥ ३४ ॥

प्रयच्छ राज्यार्धमपेतमोहः सवाहनं त्वं सपरिच्छदं च ।
ततोऽवशेषं तव जीवितस्य सहानुजस्यैव भवेन्नरेन्द्र ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥ ४६६६ ॥

तुम अब भी मोह और लोभ छोड कर पाण्डवोंको वाहन और सब वस्तुओंके सहित राज्यका आधा भाग प्रदान कर दो तभी, हे राजन्! तुम्हारे और तुम्हारे भाइयोंका जीवन बच सकेगा ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४७ ॥ ४६६६ ॥

: १४८ :

वासुदेव उवाच

एवमुक्ते तु भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण न च मन्दोऽन्वबुध्यत ॥ १ ॥

वासुदेव बोले– इसी प्रकारसे भीष्म, द्रोण, विदुर गान्धारी और राजा धृतराष्ट्रने अपने अपने उपदेश वचनोंको दुर्योधनसे कहा; परन्तु उस मूर्खने किसीकी बात पर ध्यान नहीं दिया ॥ १ ॥

अवधूयोत्थितः क्रुद्धो रोषात्संरक्तलोचनः ।
अन्वद्रवन्त तं पश्चाद्राजानस्त्यक्तजीविताः ॥ २ ॥

क्रोधसे लाल लाल आंखें करके वह सबकी बातोंका अनादर करके क्रोधपूर्वक सभासे उठकर चला गया । जो सब राजालोग उसके निमित्त अपने प्राणतक देनेके लिए उद्यत थे, वे भी उठकर उसके पीछे पीछे चले गए ॥ २ ॥

आज्ञापयच्च राज्ञस्तान्पार्थिवान्दुष्टचेतसः ।
प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः ॥ ३ ॥

दुर्योधनने इन दुष्ट बुद्धि राजाओंको बारबार यही आज्ञा दी; आज पुष्य नक्षत्र है, अतः आज ही तुम लोग कुरुक्षेत्र चले जाओ ॥ ३ ॥

ततस्ते पृथिवीपालाः प्रययुः सहसैनिकाः ।
भीष्मं सेनापतिं कृत्वा संहृष्टाः कालचोदिताः ॥ ४ ॥

तब वे सब राजा कालके वशमें होकर भीष्मको सेनापति बनाकर अत्यन्त हर्षके सहित अपनी सेनाके सहित युद्धके निमित्त चल दिए ॥ ४ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च पार्थिवानां समागताः ।
तासां प्रमुखतो भीष्मस्तालकेतुर्व्यरोचत ।
यदत्र युक्तं प्राप्तं च तद्विधत्स्व विशां पते ॥ ५ ॥

हे महाराज ! राजाओंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना युद्धके निमित्त इकट्ठी होकर तालचिन्हकी ध्वजासे युक्त महावीर भीष्मको सबके आगे करके बहुत सुशोभित है । अब जैसा योग्य और समयोचित कार्य करना हो, आप उसका विधान कीजिये ॥ ५ ॥

उक्तं भीष्मेण यद्वाक्यं द्रोणेन विदुरेण च ।
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण समक्षं मम भारत ।
एतत्ते कथितं राजन्यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥ ६ ॥

हे भरतवंशी राजन् ! मेरे सामने कौरवोंकी सभामें भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी और राजा धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे जो कुछ वचन कहे थे, वे सब मैंने आपसे कह दिये ॥ ६ ॥

साम आदौ प्रयुक्तं मे राजन्सौभ्रात्रमिच्छता ।
अभेदात्कुरुवंशस्य प्रजानां च विवृद्धये ॥ ७ ॥

हे राजन् ! जिससे आप लोगोंमें भ्रातृभाव स्थापित हो सके, ऐसे प्रसिद्धवंशका नाश न हो, तथा प्रजाओंकी वृद्धि हो, यही समझकर मैंने पहिले सामवादका प्रयोग किया था ॥७॥

पुनर्भेदश्च मे युक्तो यदा साम न गृह्यते ।
कर्मानुकीर्तनं चैव देवमानुषसंहितम् ॥ ८ ॥

परन्तु मैंने देखा, कि सामवादका कुछ प्रभाव नहीं हो रहा है; तो मैंने भेदका प्रयोग किया और आपके दैवी तथा मानुषी कर्मोंको कह सुनाया ॥ ८ ॥

यदा नाद्रियते वाक्यं सामपूर्वं सुयोधनः ।
तदा मया समानीय भेदिताः सर्वपार्थिवाः ॥ ९ ॥

हे भारत ! दुर्योधनने जब शान्तिके निमित्त कहे हुए मेरे वचनोंका अनादर किया, तब मैंने सब राजाओंको एकत्रित करके उनमें भेद उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया ॥ ९ ॥

अद्भुतानि च घोराणि दारुणानि च भारत ।
अमानुषाणि कर्माणि दर्शितानि च मे विभो ॥ १० ॥

हे विभो भारत! तब मैंने महाघोर अद्भुत दारुण और अमानुषी कर्म भी दिखाए ॥१०॥

भर्त्सयित्वा तु राज्ञस्तांस्तृणीकृत्य सुयोधनम् ।
राधेयं भीषयित्वा च सौबलं च पुनः पुनः ॥ ११ ॥

इकट्ठे हुए राजाओंको बारबार फटकारकर, दुर्योधनका तिनकेके समान अनादर करके, कर्णको और शकुनिको बार बार भय दिखाके ॥ ११ ॥

न्यूनतां धार्तराष्ट्राणां निन्दां चैव पुनः पुनः ।
भेदयित्वा नृपान्सर्वान्वाग्भिर्मन्त्रेण चासकृत् ॥ १२ ॥

धृतराष्ट्र पुत्रोंकी कमी दिखलाकर एवं निन्दा करके और बार बार अपने वचनोंसे और मंत्रोंसे सभी राजाओंमें भेद डालकर ॥ १२ ॥

पुनः सामाभिसंयुक्तं सम्प्रदानमथाब्रुवम् ।
अभेदात्कुरुवंशस्य कार्ययोगात्तथैव च ॥ १३ ॥

अन्तमें मैंने फिर शान्तिके निमित्त साम वचनोंका प्रयोग किया । कुरुवंशके मङ्गल और कार्यकी सिद्धिके निमित्त मैंने दुर्योधनको राज्य देनेकी बात भी कही ॥ १३ ॥

ते बाला धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य विदुरस्य च ।
तिष्ठेयुः पाण्डवाः सर्वे हित्वा मानमधश्चराः ॥ १४ ॥

मैंने कहा– वे सभी बालक तेजस्वी पाण्डव मान और प्रभुताको त्यागकर धृतराष्ट्र , भीष्म और विदुरकी आज्ञामें रहेंगे ॥ १४ ॥

प्रयच्छन्तु च ते राज्यमनीशास्ते भवन्तु च ।
यथाह राजा गाङ्गेयो विदुरश्च तथास्तु तत् ॥ १५ ॥

वे तुम्हींको राज्य समर्पित करके स्वयं आज्ञाकारी होकर रहेंगे । तुम्हारे हितके निमित्त धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुर जो कुछ कहें, वही होवे ॥ १५ ॥

सर्वं भवतु ते राज्यं पञ्च ग्रामान्विसर्जय ।
अवश्यं भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम ॥ १६ ॥

हे राजश्रेष्ठ ! सारा राज्य तुम्हारा ही हो, केवल पांच गांव पाण्डवोंको प्रदान कर दो । हे राजसत्तम ! तुम्हारे पिताको उनका अवश्य पालन करना चाहिए ॥ १६ ॥

एवमुक्तस्तु दुष्टात्मा नैव भागं व्यमुञ्चत ।
दण्डं चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नान्यथा ॥ १७ ॥

इस प्रकार कहनेपर भी वह दुष्टात्मा किसी प्रकारसे राज्यका अंश देनेमें संमत नहीं हुआ । हे राजन् ! अतः उस दुष्ट और पापीके विषयमें चौथे उपाय दण्डके अतिरिक्त और कुछ भी मैं नहीं देखता ॥ १७ ॥

निर्याताश्च विनाशाय कुरुक्षेत्रं नराधिपाः ।
एतत्ते कथितं सर्वं यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १८ ॥

उसकी सहायताके निमित्त बुद्धिहीन राजा लोग भी अपने विनाशके लिए कुरुक्षेत्र गये हैं । कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ था; वे सब बातें मैंने तुमसे कह दी हैं ॥ १८ ॥

न ते राज्यं प्रयच्छन्ति विना युद्धेन पाण्डव ।
विनाशहेतवः सर्वे प्रत्युपस्थितमृत्यवः ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥
समाप्तं कर्णोपनिवादपर्व ॥ ४६८५ ॥

उनकी मृत्यु समीप आ गई है, और वे सब मनुष्य विनाशके कारण बननेवाले हैं, इस लिए, हे पाण्डव युधिष्ठिर ! वे युद्धके विना राज्य नहीं देंगे ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ अडतालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४८ ॥
कर्णोपनिवादपर्व समाप्त ॥ ४६८५ ॥

: १४९ :

वैशम्पायन उवाच

जनार्दनवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातॄनुवाच धर्मात्मा समक्षं केशवस्य ह ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– श्रीकृष्णके वचन सुनकर धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर उनके सम्मुख ही अपने भाइयोंसे बोले ॥ १ ॥

श्रुतं भवद्भिर्यद्वृत्तं सभायां कुरुसंसदि ।
केशवस्यापि यद्वाक्यं तत्सर्वमवधारितम् ॥ २ ॥

कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ था, वह सब तुम लोगोंने सुना; और श्रीकृष्णका भी जो कुछ कहना था, उसे भी तुमने सुना ॥ २ ॥

तस्मात्सेनाविभागं मे कुरुध्वं नरसत्तमाः ।
अक्षौहिण्यस्तु सप्तैताः समेता विजयाय वै ॥ ३ ॥

अतः, हे नरश्रेष्ठो ! तुम मेरी सेनाका विभाग करो यह सात अक्षौहिणी सेना विजयके निमित्त इकट्ठी हुई है ॥ ३ ॥

तासां मे पतयः सप्त विख्यातास्तान्निबोधत ।
द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ४ ॥

जो विख्यात सात महारथी मेरी इन सेनाओंके पति होंगे, उनका नाम सुनो– द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी ॥ ४ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च भीमसेनश्च वीर्यवान् ।
एते सेनाप्रणेतारो वीराः सर्वे तनुत्यजः ॥ ५ ॥

सात्यकि, चेकितान और वीर्यवान् भीमसेन, यही सात वीर पुरुष इस सेनाके नायक होंगे। ये सब लोग प्राणकी आशा त्याग करके युद्धके निमित्त तैय्यार हैं ॥ ५ ॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः ।
ह्रीमन्तो नीतिमन्तश्च सर्वे युद्धविशारदाः ।
इष्वस्त्रकुशलाश्चैव तथा सर्वास्त्रयोधिनः ॥ ६ ॥

ये वेद विद्याको जाननेवाले, शूरवीर, उत्तम-चरित्र और व्रतसे युक्त, लज्जाशील, नीतिसे युक्त, युद्धविद्याको जाननेवाले, बाण आदि अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें निपुण, और सब प्रकारके अस्त्रोंसे युद्ध करनेवाले वीर योद्धा हैं ॥ ६ ॥

सप्तानामपि यो नेता सेनानां प्रविभागवित् ।
यः सहेत रणे भीष्मं शरार्चिःपावकोपमम् ॥ ७ ॥

परन्तु जो पुरुष इन सातों सेनाओंके विभागको जाननेवाला तथा सेनापति होने योग्य हो और संग्राममें बाणरूपी शिखासे युक्त अग्निके समान तेजस्वी भीष्मका सामना कर सके ॥७॥

त्वं तावत्सहदेवात्र प्रब्रूहि कुरुनन्दन ।
स्वमतं पुरुषव्याघ्र को नः सेनापतिः क्षमः ॥ ८ ॥

हे कुरुनन्दन पुरुषसिंह सहदेव ! अपना मत प्रकट करो कि हमारे बीचमें कौनसा सेनापति ऐसा करनेमें समर्थ है ॥ ८ ॥

सहदेव उवाच

संयुक्त एकदुःखश्च वीर्यवांश्च महीपतिः ।
यं समाश्रित्य धर्मज्ञं स्वमंशमनुयुञ्ज्महे ॥ ९ ॥
मत्स्यो विराटो बलवान्कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
प्रसहिष्यति संग्रामे भीष्मं तांश्च महारथान् ॥ १० ॥

सहदेव बोले– जिस धर्मात्मा पुरुषका आसरा लेकर हम लोग अपने पैतृक–राज्यके अंशको पानेकी अभिलाषा करते हैं, वही सब लक्षणोंसे युक्त हमारे साथ संयुक्त होकर हमारे सुख दुःखको ही अपना सुख दुःख समझनेवाले वीर्यवान् राजा सब शस्त्र और युद्धविद्यामें निपुण बलवान् मत्स्यराज विराट युद्धमें भीष्म तथा दूसरे महारथी वीरोंका सामना कर सकेंगे ॥ ९-१० ॥

वैशम्पायन उवाच

तथोक्ते सहदेवेन वाक्ये वाक्यविशारदः ।
नकुलोऽनन्तरं तस्मादिदं वचनमाददे ॥ ११ ॥

वैशम्पायन बोले— सहदेवके ऐसी बात कहनेपर बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ नकुल यह वचन बोले ॥ ११ ॥

वयसा शास्त्रतो धैर्यात्कुलेनाभिजनेन च ।
ह्रीमान्कुलान्वितः श्रीमान्सर्वशास्त्रविशारदः ॥ १२ ॥

जो अवस्था, शास्त्र, धीरज, कुल और स्वजनसमूहसे युक्त, लज्जाशील, उत्तम कुलमें उत्पन्न, लक्ष्मीवान्, सब शास्त्रोंके जाननेवाले ॥ १२ ॥

वेद चास्त्रं भरद्वाजाद्दुर्धर्षः सत्यसङ्गरः ।
यो नित्यं स्पर्धते द्रोणं भीष्मं चैव महाबलम् ॥ १३ ॥

पराक्रमी, सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले हैं; जिन्होंने भरद्वाजसे शस्त्रविद्या सीखी है, जो सदा महाबलवान् भीष्म और द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेकी अभिलाषा करते हैं ॥ १३ ॥

श्लाघ्यः पार्थिवसंघस्य प्रमुखे वाहिनीपतिः ।
पुत्रपौत्रैः परिवृतः शतशाख इव द्रुमः ॥ १४ ॥

राजाओंमें अग्रणी और प्रशंसाके योग्य जो सेनापति पुत्र पौत्रके सहित सौ शाखाओंसे युक्त वृक्षकी भांति मालूम पडते हैं; ॥ १४ ॥

यस्तताप तपो घोरं सदारः पृथिवीपतिः ।
रोषाद्द्रोणविनाशाय वीरः समितिशोभनः ॥ १५ ॥

जिस पृथ्वीनाथने क्रोधमें भरकर द्रोणाचार्यके वध करनेके निमित्त स्त्रीके सहित महाघोर तपस्या की थी तथा जो वीर युद्धमें शोभित होनेवाले हैं ॥ १५ ॥

पितेवास्मान्समाधत्ते यः सदा पार्थिवर्षभः ।
श्वशुरो द्रुपदोऽस्माकं सेनामग्रे प्रकर्षतु ॥ १६ ॥

जो हमारे ससुर होकर भी पिताके समान हम लोगोंका पालन करते हैं; वही राजाओंमें श्रेष्ठ द्रुपदराज हम लोगोंके सेनानायक बनें ॥ १६ ॥

स द्रोणभीष्मावायान्तौ सहेदिति मतिर्मम ।
स हि दिव्यास्त्रविद्राजा सखा चाङ्गिरसो नृपः ॥ १७ ॥

मेरी समझमें वे आक्रमण करनेवाले भीष्म और द्रोणाचार्यके सम्मुख युद्ध कर सकेंगे; क्योंकि वह सब दिव्य शस्त्रोंके जाननेवाले, प्रतापी और द्रोणाचार्यके सखा हैं ॥ १७ ॥

माद्रीसुताभ्यामुक्ते तु स्वमते कुरुनन्दनः ।
वासाविर्वासवसमः सव्यसाच्यब्रवीद्वचः ॥ १८ ॥

इस प्रकार माद्रीपुत्रोंके अपने अपने अभिप्राय प्रकट करनेपर इन्द्रके समान वीर तथा इन्द्रपुत्र कुरुनन्दन अर्जुन बोले ॥ १८ ॥

योऽयं तपःप्रभावेन ऋषिसन्तोषणेन च ।
दिव्यः पुरुष उत्पन्नो ज्वालावर्णो महाबलः ॥ १९ ॥

अग्निकी शिखाके समान वर्णसे युक्त यह जो महाबलशाली तपस्याके प्रभाव और ऋषियोंके सन्तोषसे उत्पन्न हुआ है ॥ १९ ॥

धनुष्मान्कवची खड्गी रथमारुह्य दंशितः ।
दिव्यैर्हयवरैर्युक्तमग्निकुण्डात्समुत्थितः ॥ २० ॥

धनुष, कवच, खड्ग धारण करके और दिव्य और श्रेष्ठ घोडोंसे युक्त रथमें बैठकर अग्नि-कुण्डसे उत्पन्न हुआ है ॥ २० ॥

गर्जन्निव महामेघो रथघोषेण वीर्यवान् ।
सिंहसंहननो वीरः सिंहविक्रान्तविक्रमः ॥ २१ ॥

वीर्यवान्, सिंहके समान आक्रमण करनेवाले तथा सिंहके समान पराक्रमवाले जिसके रथका घोष बादलोंकी गरजके समान है ॥ २१ ॥

सिंहोरस्को महाबाहुः सिंहवक्षा महाबलः ।
सिंहप्रगर्जनो वीरः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ॥ २२ ॥

जो सिंहके समान शरीरवाला, बडी भुजाओंवाला, सिंहके समान सीनेवाला, महाबली, सिंहके समान गरजनेवाला, वीर, सिंहके समान कंधोंवाला और महातेजस्वी है ॥ २२ ॥

सुभ्रूः सुदंष्ट्रः सुहनुः सुबाहुः सुमुखोऽकृशः ।
सुजत्रुः सुविशालाक्षः सुपादः सुप्रतिष्ठितः ॥ २३ ॥

जो सुन्दर भौंहोंवाला, उत्तम दांतोंवाला, उत्तम ठोढीवाला, उत्तम भुजाओंवाला, उत्तम मुख-वाला, उत्तम स्वस्थ शरीरवाला, उत्तम कंधोंवाला, उत्तम और बडी बडी आंखोंवाला, उत्तम पैरोंवाला और अच्छी प्रकार स्थित होनेवाला है ॥ २३ ॥

अभेद्यः सर्वशस्त्राणां प्रभिन्न इव वारणः ।
जज्ञे द्रोणविनाशाय सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ २४ ॥

किसी भी शस्त्रसे न कटनेवाला, मतवाले हाथीके समान अत्यन्त बलसे युक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय पुरुष द्रोणाचार्यके वधके निमित्त उत्पन्न हुआ है ॥ २४ ॥

धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सहेद्भीष्मस्य सायकान् ।
वज्राशनिसमस्पर्शान्दीप्तास्यानुरगानिव ॥ २५ ॥

मेरे विचारमें वही धृष्टद्युम्न भीष्मके वज्रके समान कठोर जलते हुए मुखवाले सांपोंके समान बाणोंको सह सकेगा ॥ २५ ॥

यमदूतसमान्वेगे निपाते पावकोपमान् ।
रामेणाजौ विषहितान्वज्रनिष्पेषदारुणान् ॥ २६ ॥

वेगमें यमदूतके समान, पतनमें अग्निके समान, युद्धमें अकेले परशुरामके द्वारा सहन किए गए और वज्रके समान महा कठोर उनके सब बाणोंको सह सकेगा ॥ २६ ॥

पुरुषं तं न पश्यामि यः सहेत महाव्रतम् ।
धृष्टद्युम्नमृते राजन्निति मे धीयते मतिः ॥ २७ ॥

हे महाराज ! मेरा यह निश्चित विचार है, कि मैं एकमात्र धृष्टद्युम्नके अतिरिक्त और ऐसे किसी पुरुषको भी नहीं देखता, जो युद्धमें महाव्रती भीष्मके बाणोंको सहनेमें समर्थ हो सके ॥ २७ ॥

क्षिप्रहस्तश्चित्रयोधी मतः सेनापतिर्मम ।
अभेद्यकवचः श्रीमान्मातङ्ग इव यूथपः ॥ २८ ॥

अतः शीघ्रतासे बाण फेंकनेवाला, अनेक प्रकारसे युद्ध करनेवाला, अभेद्य कवच धारण करनेवाला यही श्रीमान् धृष्टद्युम्न यूथपति मतवाले हाथीके समान हम लोगोंका सेनापति बनाया जावे ॥ २८ ॥

भीमसेन उवाच

वधार्थं यः समुत्पन्नः शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
वदन्ति सिद्धा राजेन्द्र ऋषयश्च समागताः ॥ २९ ॥

भीमसेन बोले– हे राजेन्द्र ! आए हुए सिद्ध और ऋषियोंने कहा है कि भीष्मके वधके लिए ही द्रुपदका पुत्र जो शिखण्डी उत्पन्न हुआ है ॥ २९ ॥

यस्य संग्राममध्येषु दिव्यमस्त्रं विकुर्वतः ।
रूपं द्रक्ष्यन्ति पुरुषा रामस्येव महात्मनः ॥ ३० ॥

मनुष्य लोग संग्रामभूमिमें दिव्य अस्त्रोंको चलानेवाले जिस पुरुषसिंहके बलको महात्मा परशुरामके समान देखेंगे ॥ ३० ॥

न तं युद्धेषु पश्यामि यो विभिन्द्याच्छिखण्डिनम् ।
शस्त्रेण समरे राजन्सन्नद्धं स्यन्दने स्थितम् ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! युद्धमें सावधान, रथमें स्थित उस द्रुपदपुत्र शिखण्डीको शस्त्रसे जो मार सके; ऐसा कोई पुरुष मैं नहीं देखता हूं ॥ ३१ ॥

द्वैरथे विषहेज्ञान्यो भीष्मं राजन्महाव्रतम् ।
शिखण्डिनमृते वीरं स मे सेनापतिर्मतः ॥ ३२ ॥

हे महाराज ! वीर शिखण्डीके अतिरिक्त और कोई पुरुष द्वैरथ युद्धमें महाव्रत करनेवाले भीष्मसे मुकाबला नहीं कर सकता । अतः मेरे विचारमें वही शिखण्डी हम लोगोंका सेनापति बनाया जावे ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सर्वस्य जगतस्तात सारासारं बलाबलम् ।
सर्वं जानाति धर्मात्मा गतमेष्यच्च केशवः ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे तात ! धर्मात्मा कृष्ण, इस सम्पूर्ण जगत्के सार असार बलाबल और जो कुछ बीत गया या जो कुछ आगे होनेवाला है, वह सब कुछ जानते हैं ॥ ३३ ॥

यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु नो वाहिनीपतिः ।
कृतास्त्रो ह्यकृतास्त्रो वा वृद्धो वा यदि वा युवा ॥ ३४ ॥

अतः दाशार्ह कृष्ण जिसके लिए कहेंगे, वह सब शास्त्रोंको जाननेवाला हो अथवा न हो, बालक हो, चाहे बूढा हो; वह निश्चयसे हमारा सेनापति बनाया जायेगा ॥ ३४ ॥

एष नो विजये मूलमेष तात विपर्यये ।
अत्र प्राणाश्च राज्यं च भावाभावौ सुखासुखे ॥ ३५ ॥

हे तात ! कृष्ण ही हम लोगोंके जय और पराजयके मूल हैं, हम लोगोंका प्राण, राज्य, भले-बुरे कर्म, सुख-दुःख इनहींमें प्रतिष्ठित हैं ॥ ३५ ॥

एष धाता विधाता च सिद्धिरत्र प्रतिष्ठिता ।
यमाह कृष्णो दाशार्हः स नः सेनापतिः क्षमः ।
ब्रवीतु वदतां श्रेष्ठो निशा समतिवर्तते ॥ ३६ ॥

हम लोगोंके यही धाता और विधाता हैं; हम लोगोंकी सिद्धि भी इन्हींमें प्रतिष्ठित है, दाशार्ह कृष्ण जिसके लिए कहेंगे, वही हमारा सेनापति बनेगा । अब रात्रि बीतनेवाली है अतः बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ कृष्ण उस पुरुषको बतावें ॥ ३६ ॥

ततः सेनापतिं कृत्वा कृष्णस्य वशवर्तिनम् ।
रात्रिशेषे व्यतिक्रान्ते प्रयास्यामो रणाजिरम् ।
अधिवासितशस्त्राश्च कृतकौतुकमङ्गलाः ॥ ३७ ॥

उसके बाद उस कृष्णके वशमें रहनेवालेको सेनापति बनाकर हम सब गंध आदिसे शस्त्रोंकी पूजा करके और अन्य मङ्गल कर्मोंको सिद्ध करके बची हुई रातके बीत जानेपर युद्धके निमित्त यात्रा करेंगे ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।
अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन बोले– उन बुद्धिमान् धर्मराजके उन वचनोंको सुनकर कमलके समान आंखों-वाले कृष्ण अर्जुनके मुखको देखकर युधिष्ठिरसे बोले ॥ ३८ ॥

ममाप्येते महाराज भवद्भिर्य उदाहृताः ।
नेतारस्तव सेनायाः शूरा विक्रान्तयोधिनः ।
सर्व एते समर्था हि तव शत्रून्प्रमर्दितुम् ॥ ३९ ॥

महाराज ! तुमने अपनी सेनाके सेनापति बनानेके लिए जिन सब पराक्रमी महारथी योद्धा-ओंका नाम गिनाया है; उसमें मैं भी सहमत हूं; क्योंकि ये सब लोग तुम्हारे शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं ॥ ३९ ॥

इन्द्रस्यापि भयं ह्येते जनयेयुर्महाहवे ।
किं पुनर्धार्तराष्ट्राणां लुब्धानां पापचेतसाम् ॥ ४० ॥

लोभसे युक्त पापी चित्तवाले धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी तो बात ही क्या है; ये लोग महायुद्धमें इन्द्रको भी भयभीत कर सकते हैं ॥ ४० ॥

मयापि हि महाबाहो त्वत्प्रियार्थमरिंदम ।
कृतो यत्नो महांस्तत्र शमः स्यादिति भारत ।
धर्मस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम् ॥ ४१ ॥

हे महाबाहो शत्रुनाशक भरतवंशी युधिष्ठिर ! तुम्हारे प्रियकार्यको सिद्ध करनेके लिए मैंने वहांपर भी बहुत यत्न किया कि शान्ति हो जाए, इसलिए अब हम धर्मके ऋणसे उऋण हो गये हैं; अब दोष देनेवाला पुरुष भी हम लोगोंकी निन्दा न कर सकेगा ॥ ४१ ॥

कृतार्थं मन्यते बालः सोऽऽत्मानमविचक्षणः ।
धार्तराष्ट्रो बलस्थं च मन्यतेऽऽत्मानमातुरः ॥ ४२ ॥

युद्धके लिए आतुर वह नीचबुद्धि मूर्ख दुर्योधन अपनेको कृतार्थ समझता है और अपनेको बहुत बडा बलशाली और समर्थ समझता है ॥ ४२ ॥

युज्यतां वाहिनी साधु वधसाध्या हि ते मताः ।
न धार्तराष्ट्राः शक्ष्यन्ति स्थातुं दृष्ट्वा धनञ्जयम् ॥ ४३ ॥

अतः सब अपनी सेनाको तैय्यार करें, मेरे विचारसे वे कौरव वधसे ही सुधरेंगे। धृतराष्ट्रके पुत्र धनंजय अर्जुनको देखकर ठहरनेमें भी समर्थ नहीं होंगे ॥ ४३ ॥

भीमसेनं च संक्रुद्धं यमौ चापि यमोपमौ ।
युयुधानद्वितीयं च धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ४४ ॥
अभिमन्युं द्रौपदेयान्विराटद्रुपदावपि ।
अक्षौहिणीपतींश्चान्यान्नरेन्द्रान्दृढविक्रमान् ॥ ४५ ॥

इसीतरह क्रोधी भीमसेन, यमके समान भयंकर नकुल और सहदेव, अद्वितीय वीर युयुधान, शत्रुनाशक धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, द्रौपदीके पांचों पुत्र, विराट, द्रुपद और अक्षौहिणी सेनाके स्वामी तथा अत्यन्त पराक्रमी राजाओंको देखकर धृतराष्ट्रके पुत्र कभी संमुख न खडे हो सकेंगे ॥ ४४-४५ ॥

सारवद्बलमस्माकं दुष्प्रधर्षं दुरासदम् ।
धार्तराष्ट्रबलं संख्ये वधिष्यति न संशयः ॥ ४६ ॥

हम लोगोंकी यह तेजस्विनी बलवती सेना युद्धमें अवश्य ही दुर्योधनकी सेनाका नाश करेगी इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४६ ॥

एवमुक्ते तु कृष्णेन सम्प्रहृष्यन्नरोत्तमाः ।
तेषां प्रहृष्टमनसां नादः समभवन्महान् ॥ ४७ ॥

कृष्णके ऐसा कहने पर सम्पूर्ण राजा अत्यन्त ही आनन्दित हुए । सबके हर्षयुक्त होनेपर उन लोगोंकी बीच बडी भारी हर्षसे भरी हुई ध्वनि सुनाई पडी ॥ ४७ ॥

योग इत्यथ सैन्यानां त्वरतां सम्प्रधावताम् ।
हयवारणशब्दश्च नेमिघोषश्च सर्वतः ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥ ४८ ॥

आतुर होकर इधर उधर दौडनेवाले वे कहने लगे— "रथ चलाओ, सेना सजाओ ।" तब घोडों और हाथियोंका शब्द होने लगा, रथोंकी धुरायें घरघराने लगीं, और सर्वत्र शंख, भेरी, नगाडे आदि बाजोंके बजनेसे महान् शब्द उत्पन्न हुआ ॥ ४८ ॥

प्रयास्यतां पाण्डवानां ससैन्यानां समन्ततः ।
गङ्गेव पूर्णा दुर्धर्षा समदृश्यत वाहिनी ॥ ४९ ॥

युद्धके निमित्त चारों ओर प्रस्थान करनेवाली वह पाण्डवोंकी सेना जलसे भरी हुई गङ्गाकी भाँति अजेय दिखाई देने लगी ॥ ४९ ॥

अग्रानीके भीमसेनो माद्रीपुत्रौ च दंशितौ ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
प्रभद्रकाश्च पाञ्चाला भीमसेनमुखा ययुः ॥ ५० ॥

सेनाके आगे भीमसेन, कवचधारी नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और पृषद्वंशी धृष्टद्युम्न चले और प्रभद्रक तथा पाञ्चाल योद्धा भी भीमसेनको आगे करके चले ॥ ५० ॥

ततः शब्दः समभवत्समुद्रस्येव पर्वणि ।
हृष्टानां सम्प्रयातानां घोषो दिवमिवास्पृशत् ॥ ५१ ॥

तब जैसे अमावस और पूर्णमासीको समुद्र गर्जता है, उसी तरहका शब्द हुआ तथा उस प्रस्थान करनेवाली सेनाके महा–कोलाहलसे युक्त शब्द आकाशमण्डलको स्पर्श करने लगा ॥ ५१ ॥

प्रहृष्टा दंशिता योधाः परानीकविदारणाः ।
तेषां मध्ये ययौ राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५२ ॥

शत्रुओंकी सेनाको नष्ट करनेवाले सब वीर योद्धा अत्यन्त ही प्रसन्न थे । उन लोगोंके बीचमें कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर चले ॥ ५२ ॥

शकटापणवेशाश्च यानयुग्यं च सर्वशः ।
कोशयन्त्रायुधं चैव ये च वैद्याश्चिकित्सकाः ॥ ५३ ॥

शकट, विक्रीके पदार्थ, डेरे, सवारी, खजाना, यन्त्र, शस्त्रास्त्र, वैद्य, अस्त्रचिकित्सक ॥ ५३ ॥

फल्गु यच्च बलं किञ्चित्तथैव कृशदुर्बलम् ।
तत्संगृह्य ययौ राजा ये चापि परिचारकाः ॥ ५४ ॥

दृढ, बलशाली तथा निर्बल और कृश सेना तथा जो परिचारक थे उन सबको लेकर राजा युधिष्ठिर चले ॥ ५४ ॥

उपप्लव्ये तु पाञ्चाली द्रौपदी सत्यवादिनी ।
सह स्त्रीभिर्निववृते दासीदाससमावृता ॥ ५५ ॥

द्रुपदनन्दिनी सत्यवादिनी द्रौपदी दास–दासियोंसे युक्त होकर स्त्रियोंके साथ उपप्लव्य नगरको लौट आई ॥ ५५ ॥

×

कृत्वा मूलप्रतीकारान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
स्कन्धावारेण महता प्रययुः पाण्डुनन्दनाः ॥ ५६ ॥

हे राजन्! सभी पाण्डव प्राकार आदि स्थावर तथा शूरवीर योद्धारूपी चल साधनोंसे सब प्रकारकी रक्षा करके बडी भारी सेना लेकर चल दिए ॥ ५६ ॥

ददतो गां हिरण्यं च ब्राह्मणैरभिसंवृताः ।
स्तूयमाना ययू राजन्रथैर्मणिविभूषितैः ॥ ५७ ॥

हे राजन् जनमेजय! वे पाण्डव ब्राह्मणोंको गौ, सुवर्ण, रत्न आदि दान करते और स्तुति सुनते हुए सुवर्ण और मणियोंसे भूषित रथपर चढकर चले ॥ ५७ ॥

केकया धृष्टकेतुश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः ।
श्रेणिमान्वसुदानश्च शिखण्डी चापराजितः ॥ ५८ ॥

केकय-देशीय पांचों राजपुत्र, धृष्टकेतु, पराक्रमी काशिराजपुत्र, श्रेणिमान्, वसुदान और अपराजित शिखण्डी ॥ ५८ ॥

हृष्टास्तुष्टाः कवचिनः सशस्त्राः समलंकृताः ।
राजानमन्वयुः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ५९ ॥

आदि वीरगण हृष्ट एवं सन्तुष्ट हो कवचसे तथा शस्त्रास्त्रोंसे युक्त होकर राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर उनके पीछे चले ॥ ५९ ॥

जघनार्धे विराटश्च यज्ञसेनश्च सोमकिः ।
सुधर्मा कुन्तिभोजश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ॥ ६० ॥

सेनाके पीछेके भागमें विराट्, द्रुपद, सोमकि, सुधर्मा, कुन्तिभोज और धृष्टद्युम्नके पुत्र चले ॥ ६० ॥

रथायुतानि चत्वारि हयाः पञ्चगुणास्ततः ।
पत्तिसैन्यं दशगुणं सादिनामयुतानि षट् ॥ ६१ ॥

पाण्डवोंकी सेनामें चालीस हजार रथ, रथोंसे पांच गुने ज्यादा अर्थात् दो लाख घोडे, रथोंसे दस गुने ज्यादा अर्थात् चार लाख पैदल तथा साठ हजार हाथी थे ॥ ६१ ॥

अनाधृष्टिश्चेकितानश्चेदिराजोऽथ सात्यकिः ।
परिवार्य ययुः सर्वे वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ६२ ॥

अनाधृष्टि, चेकितान, चेदिराज धृष्टकेतु और सात्यकी ये लोग अर्जुन और कृष्णको घेरकर चले ॥ ६२ ॥

आसाद्य तु कुरुक्षेत्रं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
पाण्डवाः समदृश्यन्त नर्दन्तो वृषभा इव ॥ ६३ ॥

इस प्रकारसे व्यूह बनाकर शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले पाण्डव कुरुक्षेत्रमें पहुंचकर गर्जनेवाले वृषभोंके समूहकी भांति दिखाई देने लगे ॥ ६३ ॥

तेऽवगाह्य कुरुक्षेत्रं शङ्खान्दध्मुररिंदमाः ।
तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ६४ ॥

वे शत्रुनाशक वीर कुरुक्षेत्रमें जाकर अपने अपने शङ्ख बजाने लगे और कृष्ण तथा अर्जुनने भी अपने अपने शङ्ख बजाये ॥ ६४ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
निशम्य सर्वसैन्यानि समहृष्यन्त सर्वशः ॥ ६५ ॥

वज्रके समान पाञ्चजन्य शंखका स्फूर्तिदायक शब्द सुनकर सब सैनिक-पुरुषोंके रोवें खडे हो गये ॥ ६५ ॥

शङ्खदुन्दुभिसंसृष्टः सिंहनादस्तरस्विनाम् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरांश्चान्वनादयत् ॥ ६६ ॥

इसके अनन्तर सम्पूर्ण तेजस्वियोंके सिंहनादका शब्द, शंख, नगाडे आदि बाजोंका शब्द पृथ्वी, आकाश और समुद्रमें गूंजने लगा ॥ ६६ ॥

ततो देशे समे स्निग्धे प्रभूतयवसेन्धने ।
निवेशयामास तदा सेनां राजा युधिष्ठिरः ॥ ६७ ॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने तृण और ईन्धनसे समृद्ध, समतल और सुन्दर भूमिमें अपनी सेना ठहरायी ॥ ६७ ॥

परिहृत्य श्मशानानि देवतायतनानि च ।
आश्रमांश्च महर्षीणां तीर्थान्यायतनानि च ॥ ६८ ॥

श्मशान, देवालय, महर्षियोंके आश्रम, तीर्थ और मन्दिरोंको छोडकर ॥ ६८ ॥

मधुरानूषरे देशे शिवे पुण्ये महीपतिः ।
निवेशं कारयामास कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ६९ ॥

मनको हरनेवाली सुन्दर उपजाऊ और पवित्रभूमिमें अपनी सेनाके निवासका स्थान महाराज कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने निश्चित किया ॥ ६९ ॥

ततश्च पुनरुत्थाय सुखी विश्रान्तवाहनः ।
प्रययौ पृथिवीपालैर्वृतः शतसहस्रशः ॥ ७० ॥

इसके अनन्तर वाहन आदिको सुखसे विश्राम कराकर फिर उठकर सैंकडों, सहस्रों, राजाओंके सहित प्रस्थान किया ॥ ७० ॥

विद्राव्य शतशो गुल्मान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ।
पर्यक्रामत्समन्ताच्च पार्थेन सह केशवः ॥ ७१ ॥

इधर अर्जुनके सहित कृष्ण दुर्योधनकी चौकियोंपर नियुक्त सैकडों सैनिक-पुरुषोंको भगाते हुए चारों ओर घूमने लगे ॥ ७१ ॥

शिबिरं मापयामास धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
सात्यकिश्च रथोदारो युयुधानः प्रतापवान् ॥ ७२ ॥

द्रुपदनन्दन धृष्टद्युम्न, महारथी, रथिश्रेष्ठ सात्यकी और महापराक्रमी युयुधानने शिविरका स्थान मापकर निश्चित किया ॥ ७२ ॥

आसाद्य सरितं पुण्यां कुरुक्षेत्रे हिरण्वतीम् ।
सूपतीर्थां शुचिजलां शर्करापङ्कवर्जिताम् ॥ ७३ ॥
खानयामास परिखां केशवस्तत्र भारत ।
गुप्त्यर्थमपि चादिश्य बलं तत्र न्यवेशयत् ॥ ७४ ॥

हे भारत ! कुरुक्षेत्रमें हिरण्वती नामकी सुन्दर जलसे भरी हुई पवित्र नदीके कङ्कड और कीचडसे रहित पवित्रतीर्थको देखकर वहांपर श्रीकृष्णने परिखा खुदवाई । और उसकी रक्षाके निमित्त उत्तम प्रकारसे प्रबन्ध करके वहां सेना स्थापित कर दी ॥ ७३–७४ ॥

विधिर्यः शिबिरस्यासीत्पाण्डवानां महात्मनाम् ।
तद्विधानि नरेन्द्राणां कारयामास केशवः ॥ ७५ ॥

महात्मा पाण्डवोंके शिबिरका जो आकार प्रकार था वैसा ही शिबिर इतर राजाओंके निमित्त भी श्रीकृष्णने तैयार करवाया ॥ ७५ ॥

प्रभूतजलकाष्ठानि दुराधर्षतराणि च ।
भक्ष्यभोज्योपपन्नानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७६ ॥

वहांपर बहुत जल, ईंधन, खाने योग्य पदार्थोंसे भरपूर, शत्रुओंके द्वारा अजेय ऐसे सैंकडों हजारों शिबिर श्रीकृष्णने तैय्यार करवाये ॥ ७६ ॥

शिबिराणि महार्हाणि राज्ञां तत्र पृथक्पृथक् ।
विमानानीव राजेन्द्र निविष्टानि महीतले ॥ ७७ ॥

हे राजेन्द्र ! राजाओंके वे अलग अलग महामूल्यवान् शिबिर पृथ्वीपर विमानके समान दिखाई देने लगे ॥ ७७ ॥

तत्रासञ्शिल्पिनः प्राज्ञाः शतशो दत्तवेतनाः ।
सर्वोपकरणैर्युक्ता वैद्याश्च सुविशारदाः ॥ ७८ ॥

वहांपर नियमित वेतनको पानेवाले सैकडों बुद्धिमान् शिल्पी और अपने सभी साधनोंसे सम्पन्न चिकित्सा-शास्त्रमें कुशल वैद्य उपस्थित थे ॥ ७८ ॥

ज्याधनुर्वर्मशस्त्राणां तथैव मधुसर्पिषोः ।
सर्जरसपांसूनां राशयः पर्वतोपमाः ॥ ७९ ॥

राजा युधिष्ठिरने सब शिविरोंमें धनुष, धनुषकी डोरी, वर्म, शस्त्र, मधु, घृत, भक्षण करनेके योग्य रसके पर्वतके समान ढेर खडे कर दिए ॥ ७९ ॥

बहूदकं सुयवसं तुषाङ्गारसमन्वितम् ।
शिबिरे शिबिरे राजा सञ्चकार युधिष्ठिरः ॥ ८० ॥

उत्तम तृण, बहुत जल, तुष और कोयला आदि सब आवश्यकीय वस्तुओंको राजा युधिष्ठिरने हर एक शिबिरमें रखवा दिया ॥ ८० ॥

महायन्त्राणि नाराचास्तोमरर्ष्टिपरश्वधाः ।
धनूंषि कवचादीनि ह्यभूवन्नृणां तदा ॥ ८१ ॥

वहांपर बडे बडे यन्त्र, नाराच, तोमर, ऋष्टि, परश्वध, धनुष, कवच, आदि मनुष्योंको हर्षित करते थे ॥ ८१ ॥

गजाः कण्टकसन्नाहा लोहवर्मोत्तरच्छदाः ।
अदृश्यंस्तत्र गिर्याभाः सहस्रशतयोधिनः ॥ ८२ ॥

सैंकडों और हजारोंसे झूजनेवाले, भालोंसे युक्त लोहेके कवच पहने हुए पर्वताकार हाथी वहां दिखाई देते थे ॥ ८२ ॥

निविष्टान्पाण्डवांस्तत्र ज्ञात्वा मित्राणि भारत ।
अभिसस्रुर्यथोद्देशं सबलाः सहवाहनाः ॥ ८३ ॥

हे भारत ! पाण्डवोंको कुरुक्षेत्रमें पहुंचा हुआ जानकर मित्र राजा लोग सेना और वाहनोंसे युक्त होकर उसी स्थानपर गये ॥ ८३ ॥

चरितब्रह्मचर्यास्ते सोमपा भूरिदक्षिणाः ।
जयाय पाण्डुपुत्राणां समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ ८४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥ ॥ ४७६९ ॥

ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान और सोमपान करनेवाले तथा ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा देनेवाले राजा लोग पाण्डवोंके विजयके निमित्त वहांपर जा पहुंचे ॥ ८४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ उनचासवां अध्याय समाप्त ॥ १४९ ॥ ४७६९ ॥

१५०

जनमेजय उवाच

युधिष्ठिरं सहानीकमुपयान्तं युयुत्सया ।
सन्निविष्टं कुरुक्षेत्रे वासुदेवेन पालितम् ॥ १ ॥

राजा जनमेजय बोले– हे महामुनि ! युद्ध करनेकी इच्छासे कृष्णसे पालित युधिष्ठिरको सेना सहित कुरुक्षेत्रमें आया हुआ ॥ १ ॥

विराटद्रुपदाभ्यां च सपुत्राभ्यां समन्वितम् ।
केकयैर्वृष्णिभिश्चैव पार्थिवैः शतशो वृतम् ॥ २ ॥

तथा पुत्रके सहित विराट, द्रुपद, केकय और यदुवंशी आदि सैंकडों राजाओंसे युक्त ॥२॥

महेन्द्रमिव चादित्यैरभिगुप्तं महारथैः ।
श्रुत्वा दुर्योधनो राजा किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ ३ ॥

आदित्योंसे इन्द्रके समान महारथी वीरोंसे रक्षित, युधिष्ठिरके आगमनको सुनकर राजा दुर्योधनने क्या किया ? ॥ ३ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ।
सम्भ्रमे तुमुले तस्मिन्यदासीत्कुरुजाङ्गले ॥ ४ ॥

हे तपोधन ! उस महासेनाके कुरुक्षेत्रमें उपस्थित होनेपर जो जो वृत्तान्त हुआ था; वह विस्तारपूर्वक मैं सुनना चाहता हूं ॥ ४ ॥

व्यथयेयुर्हि देवानां सेनामपि समागमे ।
पाण्डवा वासुदेवश्च विराटद्रुपदौ तथा ॥ ५ ॥

पाण्डव, श्रीकृष्ण, विराट, द्रुपद ये सभी युद्धमें देवोंकी सेनाको भी पीडित कर सकते थे ॥ ५ ॥

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ।
युयुधानश्च विक्रान्तो देवैरपि दुरासदः ॥ ६ ॥

इनके अलावा पंचाल देशीय धृष्टद्युम्न, महारथी शिखण्डी, और अत्यन्त ही पराक्रमी युयुधानसे युक्त होकर वे देवोंके लिए भी अजेय हो सकते थे ॥ ६ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ।
कुरूणां पाण्डवानां च यद्यदासीद्विचेष्टितम् ॥ ७ ॥

हे तपोधन ! कौरव-पाण्डवोंमें जो जो वृत्तान्त हुआ था, उसका तुम विस्तारपूर्वक वर्णन करो, मैं सब सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रतियाते तु दाशार्हे राजा दुर्योधनस्तदा ।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चाब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजेन्द्र ! श्रीकृष्णके कुरुसभासे चले जानेपर राजा दुर्योधन कर्ण, दुःशासन और शकुनिसे यह वचन बोले ॥ ८ ॥

अकृतेनैव कार्येण गतः पार्थानधोक्षजः ।
स एनान्मन्युनाविष्टो ध्रुवं वक्ष्यत्यसंशयम् ॥ ९ ॥

कृष्ण जब यहांसे अपने कार्यमें असफल होकर पाण्डवोंके समीपमें गये हैं, तब अवश्य ही क्रोधमें भरके वे पाण्डवोंको भी उत्तेजित करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥

इष्टो हि वासुदेवस्य पाण्डवैर्मम विग्रहः ।
भीमसेनार्जुनौ चैव दाशार्हस्य मते स्थितौ ॥ १० ॥

पाण्डवोंके सहित हम लोगोंका युद्ध होवे, यह कृष्णकी अभिलाषा है । भीम, अर्जुन भी कृष्णके कहनेके अनुसार चलनेवाले हैं ॥ १० ॥

अजातशत्रुरप्यद्य भीमार्जुनवशानुगः ।
निकृतश्च मया पूर्वं सह सर्वैः सहोदरैः ॥ ११ ॥

अजातशत्रु युधिष्ठिर भी आजकल भीम और अर्जुनके वशमें हैं । पहिले वह सब भाइयोंके सहित मुझसे अपमानित किये गये थे ॥ ११ ॥

विराटद्रुपदौ चैव कृतवैरौ मया सह ।
तौ च सेनाप्रणेतारौ वासुदेववशानुगौ ॥ १२ ॥

मैंने जिनके साथ पहले शत्रुता की थी, वे विराट और द्रुपद भी कृष्णके वशमें होकर युधिष्ठिरकी सेनाके नायक हो गए हैं ॥ १२ ॥

भविता विग्रहः सोऽयं तुमुलो लोमहर्षणः ।
तस्मात्सांग्रामिकं सर्वं कारयध्वमतन्द्रिताः ॥ १३ ॥

अतः अब रोवेंको खडा करनेवाला महाघोर संग्राम होगा, अतः तुम लोग आलस्यको छोडकर युद्धके योग्य सब वस्तुओंको इकट्ठी करो ॥ १३ ॥

शिबिराणि कुरुक्षेत्रे क्रियन्तां वसुधाधिपाः ।
सुपर्याप्तावकाशानि दुरादेयानि शत्रुभिः ॥ १४ ॥

हे राजाओ ! कुरुक्षेत्रमें बहुत दूरतक शत्रुओंसे बहुत दूर शिबिर खडे करवा दो ॥ १४ ॥

आसन्नजलकाष्ठानि शतशोऽथ सहस्रशः।
अच्छेद्याहारमार्गाणि रत्नोच्चयचितानि च।
विविधायुधपूर्णानि पताकाध्वजवन्ति च ॥ १५ ॥

जलसे पूर्ण तलावोंके तथा जहां ईंधन बहुत मिल सके ऐसी जगहके समीप तथा जहांपर आहार ले जाये जानेवाले मार्गको शत्रु रोक न सकें ऐसे स्थानोंमें अनेकों रत्नोंसे जडे हुए बहुतसे शस्त्र और ध्वजा पताकाओंसे युक्त सैकडों सहस्रों शिविर तैयार कराओ ॥ १५ ॥

समाश्च तेषां पन्थानः क्रियन्तां नगराद्बहिः।
प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति माचिरम् ॥ १६ ॥

नगरके बाहर सेनाके लिए जाने योग्य सब मार्गोंको समान तथा साफ करा दो, आज ही ढिंढोरा पिटवा दो कि कल युद्धके निमित्त यात्रा की जायगी, देर मत करो ॥ १६ ॥

ते तथेति प्रतिज्ञाय श्वोभूते चक्रिरे तथा।
हृष्टरूपा महात्मानो विनाशाय महीक्षिताम् ॥ १७ ॥

वह सब महात्मा राजा लोग प्रसन्न होकर बोले, ऐसा ही होगा और ऐसी प्रतिज्ञा करके दूसरे दिन राजाओंके विनाशके निमित्त सब प्रबन्ध कर दिया ॥ १७ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तच्छ्रुत्वा राजशासनम्।
आसनेभ्यो महार्हेभ्य उदतिष्ठन्नमर्षिताः ॥ १८ ॥

तदनन्तर इकट्ठे हुए वे सब क्रोधित हुए राजा राजाज्ञाको सुनकर बहुमूल्य आसनोंसे उठे ॥ १८ ॥

बाहून्परिघसङ्काशान्संस्पृशन्तः शनैः शनैः।
काञ्चनाङ्गददीप्तांश्च चन्दनागरुभूषितान् ॥ १९ ॥

मणि-सुवर्णसे भूषित, चन्दन और अगरसे सुवासित तथा परिघके समान अपनी भुजाओंको धीरे धीरे स्पर्श करने लगे ॥ १९ ॥

उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुण्डरीकनिभैः करैः।
अन्तरीयोत्तरीयाणि भूषणानि च सर्वशः ॥ २० ॥

और अपने कमलोंके समूहके समान सुशोभित करोंसे पगडियां, वस्त्र, उत्तरीय और तरह तरहके भूषण पहिनने लगे ॥ २० ॥

ते रथान्रथिनः श्रेष्ठा हयांश्च हयकोविदाः।
सज्जयन्ति स्म नागांश्च नागशिक्षासु निष्ठिताः ॥ २१ ॥

रथविद्यामें निपुण राजा रथको, अश्वविद्यामें निपुण राजा घोडोंको, और हाथियोंकी शिक्षामें निपुण पुरुष हाथियोंको सजाने लगे ॥ २१ ॥

अथ वर्माणि चित्राणि काञ्चनानि बहूनि च ।
विविधानि च शस्त्राणि चक्रुः सज्जानि सर्वशः ॥ २२ ॥

उसके अनन्तर वीरोंने सुवर्णसे भूषित चित्रविचित्र वर्म और नाना प्रकारके अनेक अस्त्रोंको सब तरहसे तैय्यार किया ॥ २२ ॥

पदातयश्च पुरुषाः शस्त्राणि विविधानि च ।
उपाजन्हुः शरीरेषु हेमचित्राण्यनेकशः ॥ २३ ॥

पैदल चलनेवाले वीरोंने भी अपने शरीरपर सोनेसे मढे हुए कई प्रकारके शस्त्रोंको धारण किया ॥ २३॥

तदुत्सव इवोदग्रं सम्प्रहृष्टनरावृतम् ।
नगरं धार्तराष्ट्रस्य भारतासीत्समाकुलम् ॥ २४ ॥

हे भारत ! अत्यन्त ही प्रसन्न चित्तवाले वीर पुरुषोंसे घिरा हुए दुर्योधनका वह नगर, हे जनमेजय ! उत्सवके समयकी भांति मालूम होने लगा ॥ २४ ॥

जनौघसलिलावर्तो रथनागाश्वमीनवान् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः कोशसञ्चयरत्नवान् ॥ २५ ॥

जनसमूह ही जिसमें भंवरे हैं, रथ, घोडे और हाथी ही मछलियां हैं, शंख, भेरी और नगाडोंका शब्द ही जिसका गर्जन है, खजाना ही जिसमें रत्न हैं ॥ २५ ॥

चित्राभरणवर्मोर्मिः शस्त्रनिर्मलफेनवान् ।
प्रासादमालाद्रिवृतो रथ्यापणमहाह्रदः ॥ २६ ॥

विचित्र भूषण और वर्म लहरोंके समान हैं तथा सब शस्त्र समुद्रके निर्मल फेनके समान हैं, ऊंचे मन्दिरोंका समूह ही जिसमें पर्वतके समान हैं, रास्ते और बाजार ही जिसके महाह्रद हैं ॥ २६ ॥

योधचन्द्रोदयोद्भूतः कुरुराजमहार्णवः ।
अदृश्यत तदा राजंश्चन्द्रोदय इवार्णवः ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥ ४७९६ ॥

इस प्रकारका कुरुराजरूपी महासमुद्र योधारूपी चन्द्रमाके उदय होनेपर ऐसा दिखाई देता था, जैसे सचमुचके चन्द्रमाके उदय होने पर पानीका समुद्र ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ पचासवां अध्याय समाप्त ॥ १५० ॥ ४७९६ ॥

×

: १७१ .

वैशम्पायन उवाच

वासुदेवस्य तद्वाक्यमनुस्मृत्य युधिष्ठिरः।
पुनः पप्रच्छ वार्ष्णेयं कथं मन्दोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके पहिले कहे हुए वचनोंको स्मरण करके फिर उनसे पूछा, हे कृष्ण! मूर्ख दुर्योधनने किस प्रकारसे इस वचनको कहा था? ॥ १ ॥

अस्मिन्नभ्यागते काले किं च नः क्षममच्युत।
कथं च वर्तमाना वै स्वधर्मान्न च्यवेमहि ॥ २ ॥

हे अच्युत! इस उपस्थित समयमें हमारा क्या सामर्थ्य है और कैसे कार्यका अनुष्ठान करनेसे हम धर्मसे पतित न होंगे? ॥ २ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च।
वासुदेव मतज्ञोऽसि मम सभ्रातृकस्य च ॥ ३ ॥

हे महाबाहो वासुदेव! तुम दुर्योधन, कर्ण, सुबलराजाके पुत्र शकुनि और भाइयोंके सहित मेरे अभिप्रायको भी जानते हो ॥ ३ ॥

विदुरस्यापि ते वाक्यं श्रुतं भीष्मस्य चोभयोः।
कुन्त्याश्च विपुलप्रज्ञ प्रज्ञा कार्त्स्न्येन ते श्रुता ॥ ४ ॥

हे महाबुद्धिमन्! तुमने विदुर, भीष्म इन दोनोंके वचनोंको सुना है और कुन्तीके अभिप्रायको भी अच्छी प्रकारसे सुना है ॥ ४ ॥

सर्वमेतदतिक्रम्य विचार्य च पुनः पुनः।
यन्नः क्षमं महाबाहो तद्ब्रवीह्यविचारयन् ॥ ५ ॥

पर इस समय तुम उन सब बातोंको छोड करके और बार बार विचार करके जिस कार्यको करनेसे मेरा मङ्गल होवे, वैसी ही युक्ति तुम विना किसी तरहकी शंकाके मुझसे कहो ॥५॥

श्रुत्वैतद्धर्मराजस्य धर्मार्थसहितं वचः।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषः कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरके धर्म और अर्थसे भरे हुए ऐसे वचन सुनकर बादल और नगाडेके समान गंभीर आवाजसे यह वचन बोले ॥ ६ ॥

उक्तवानस्मि यद्वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम्।
न तु तन्निकृतिप्रज्ञे कौरव्ये प्रतितिष्ठति ॥ ७ ॥

मैंने जो धर्म अर्थसे युक्त हितकारी वचनोंको कहा था, नीचबुद्धि दुर्योधन पर उनका कोई प्रभाव नहीं पडा ॥ ७ ॥

न च भीष्मस्य दुर्मेधाः शृणोति विदुरस्य वा।
मम वा भाषितं किञ्चित्सर्वमेवातिवर्तते ॥ ८ ॥

उस दुष्टात्माने भीष्म, विदुर, मेरे तथा किसीके वचनोंको भी नहीं स्वीकार किया। वह सबकी बातोंका उल्लंघन करके अपनी इच्छाके अनुसार ही कार्य करता है ॥ ८ ॥

न स कामयते धर्मं न स कामयते यशः।
जितं स मन्यते सर्वं दुरात्मा कर्णमाश्रितः ॥ ९ ॥

वह दुष्टबुद्धि न धर्मकी इच्छा करता है और न यशकी अभिलाषा करता है; वह कर्णका आसरा लेकर अपने मनमें मैंने सबको जीत लिया ऐसा ही समझता है ॥ ९ ॥

बन्धमाज्ञापयामास मम चापि सुयोधनः।
न च तं लब्धवान्कामं दुरात्मा शासनातिगः ॥ १० ॥

उस पापबुद्धि दुष्ट दुर्योधनने मुझको भी कैद करनेकी आज्ञा दी थी; पर दुष्टबुद्धिवाला तथा बडोंकी आज्ञाओंका उल्लंघन करनेवाला वह दुर्योधन अपनी अभिलाषा पूरी न कर सका ॥ १० ॥

न च भीष्मो न च द्रोणो युक्तं तत्राहतुर्वचः।
सर्वे तमनुवर्तन्ते ऋते विदुरमच्युत ॥ ११ ॥

हे अच्युत युधिष्ठिर! उस विषयमें उस समय भीष्म, द्रोण आदि किसीने भी युक्तियुक्त वचनोंको नहीं कहा था। एकमात्र विदुरको छोडकर और सब लोग उसके अनुगामी हो गए थे ॥ ११ ॥

शकुनिः सौबलश्चैव कर्णदुःशासनावपि।
त्वय्ययुक्तान्यभाषन्त मूढा मूढममर्षणम् ॥ १२ ॥

सुबलपुत्र शकुनि, कर्ण और दुःशासन आदि मूर्खोंने भी उस क्रोधी और मूर्ख दुर्योधनके सामने तुम्हारे विषयमें अनेक प्रकारके बुरे वचनोंको कहा था ॥ १२ ॥

किं च तेन मयोक्तेन यान्यभाषन्त कौरवाः।
संक्षेपेण दुरात्मासौ न युक्तं त्वयि वर्तते ॥ १३ ॥

मेरे कहनेके बाद दुर्योधनने तथा अन्य कौरवोंने जिन सब वचनोंको कहा है, उनके वर्णन करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है; उसका संक्षेप यही है, कि वह तुमसे उचित व्यवहार नहीं करना चाहता ॥ १३ ॥

न पार्थिवेषु सर्वेषु य इमे तव सैनिकाः।
यत्पापं यन्न कल्याणं सर्वं तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥

जो तुम्हारे ये सैनिक हैं और जो राजा हैं, उन सबमें मिलाकर भी जितना पाप और अकल्याण न होगा, उतने पाप और अकल्याण उस अकेले दुर्योधनमें भरे पडे हैं ॥ १४ ॥

न चापि वयमत्यर्थं परित्यागेन कर्हिचित् ।
कौरवैः शममिच्छामस्तत्र युद्धमनन्तरम् ॥ १५ ॥

हम लोग भी मर्यादासे ज्यादा त्याग करके कौरवोंके साथ शान्ति नहीं स्थापित कर सकते; अतः अब ऐसी अवस्थामें युद्ध ही करना उचित है ॥ १५ ॥

तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे वासुदेवस्य भाषितम् ।
अब्रुवन्तो मुखं राज्ञः समुदैक्षन्त भारत ॥ १६ ॥

हे भारत ! श्रीकृष्णके इस वचनको सुनकर सम्पूर्ण राजा कुछ भी न कहकर महाराज युधिष्ठिरके मुंहकी ओर देखने लगे ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरस्त्वभिप्रायमुपलभ्य महीक्षिताम् ।
योगमाज्ञापयामास भीमार्जुनयमैः सह ॥ १७ ॥

तब राजा युधिष्ठिरने सब राजाओंके अभिप्रायको जानकर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवको युद्धकी तैयारी करनेकी आज्ञा दी ॥ १७ ॥

ततः किलकिलाभूतमनीकं पाण्डवस्य ह ।
आज्ञापिते तदा योगे समहृष्यन्त सैनिकाः ॥ १८ ॥

तब पाण्डवोंकी सेनामें महाघोर कोलाहल होने लगा । युद्धके तैयारीकी आज्ञाको सुनकर सेनाके पुरुष अत्यन्त ही आनन्दित और प्रसन्न हुए ॥ १८ ॥

अवध्यानां वधं पश्यन्धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
निष्टनन्भीमसेनं च विजयं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

परन्तु धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर अवध्य पुरुषोंके वधका विचार करके दुःखी होते हुए भीम और अर्जुनसे यह वचन बोले ॥ १९ ॥

यदर्थं वनवासश्च प्राप्तं दुःखं च यन्मया ।
सोऽयमस्मानुपैत्येव परोऽनर्थः प्रयत्नतः ॥ २० ॥

जिसको टालनेके लिए ही मैंने वनवास स्वीकार करके अत्यन्त क्लेश सहन किया था; वही महा अनर्थ जबर्दस्ती हम लोगोंके सामने उपस्थित हो रहा है ॥ २० ॥

तस्मिन्यत्नः कृतोऽस्माभिः स नो हीनः प्रयत्नतः ।
अकृते तु प्रयत्नेऽस्मानुपावृत्तः कलिर्महान् ॥ २१ ॥

इस विषयमें हम लोगोंने जो यत्न किया, वह हमारा प्रयत्न निष्फल हुआ और कुछ भी यत्न न करनेपर भी यह महा भयङ्कर कलि अर्थात् आपसी युद्ध उपस्थित हुआ है॥२१॥

कथं ह्यवध्यैः संग्रामः कार्यः सह भविष्यति।
कथं हत्वा गुरून्वृद्धान्विजयो नो भविष्यति ॥ २२ ॥
मारे जानेके अयोग्य माननीय पुरुषोंके साथ कैसे युद्ध हो सकता है? वृद्ध, गुरु आदि पुरुषोंका वध करके मेरी किस प्रकारसे विजय होगी? ॥ २२ ॥

तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्य सव्यसाची परन्तपः।
यदुक्तं वासुदेवेन श्रावयामास तद्वचः ॥ २३ ॥
धर्मराज युधिष्ठिरके वचनको सुनकर परन्तप अर्जुन श्रीकृष्णके कहे हुए सब वचनोंका स्मरण कराकर यह वचन बोले ॥ २३ ॥

उक्तवान्देवकीपुत्रः कुन्त्याश्च विदुरस्य च।
वचनं तत्त्वया राजन्निखिलेनावधारितम् ॥ २४ ॥
हे राजन्! देवकीनन्दन कृष्णने कुन्ती और विदुरके कहे हुए जिन सब वचनोंको सुनाया; उन्हें तुमने पूरी तरह ध्यानसे सुना है ॥ २४ ॥

न च तौ वक्ष्यतोऽधर्ममिति मे नैष्ठिकी मतिः।
न चापि युक्तं कौन्तेय निवर्तितुमयुध्यतः ॥ २५ ॥
मेरा यह निश्चित मत है कि वे लोग किसी भी प्रकारसे अधर्मयुक्त वचन नहीं कहेंगे, और फिर, हे कुन्तीपुत्र! विना युद्ध किये हम लोगोंका निवृत्त होना भी उचित नहीं है ॥ २५ ॥

तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽपि सव्यसाचिवचस्तदा।
स्मयमानोऽब्रवीत्पार्थमेवमेतदिति ब्रुवन् ॥ २६ ॥
अर्जुनके वचनको सुनकर कृष्ण भी हंसकर युधिष्ठिरसे बोले कि यह जो अर्जुन कह रहा है, वह सब कुछ ठीक ही है ॥ २६ ॥

ततस्ते धृतसङ्कल्पा युद्धाय सहसैनिकाः।
पाण्डवेया महाराज तां रात्रिं सुखमावसन् ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥ ४८२३ ॥

हे महाराज! इसके अनन्तर पाण्डवोंने युद्ध करनेके लिए सङ्कल्प करके सेनाके पुरुषोंके सहित परम सुखसे वह रात बिताई ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५१ ॥ ४८२३ ॥

: १५२ :

वैशम्पायन उवाच

व्युषितायां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्ततः ।
व्यभजत्तान्यनीकानि दश चैकं च भारत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत! तब रातके बीत जानेपर राजा दुर्योधनने अपनी दस और एक अर्थात् ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका नियमके अनुसार विभाग किया ॥ १ ॥

नरहस्तिरथाश्वानां सारं मध्यं च फल्गु च ।
सर्वेष्वेतेष्वनीकेषु सन्दिदेश महीपतिः ॥ २ ॥

महाराज दुर्योधनने इन सम्पूर्ण सेनाओंमें मनुष्य, हाथी, घोडे, रथ आदिमें उत्तम, मध्यम और श्रेष्ठका विचार करके सेनाके रहनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ २ ॥

× सानुकर्षाः सतूणीराः सवरूथाः सतोमराः
सोपासङ्गाः सशक्तीकाः सनिषङ्गाः सपोथिकाः ॥ ३ ॥

अनुकर्ष, तूणीर, वरूथ तोमर, उपासंग, शक्ति, निषंग, पोथिक ॥ ३ ॥

सध्वजाः सपताकाश्च सशरासनतोमराः ।
रज्जुभिश्च विचित्राभिः सपाशाः सपरिस्तराः ॥ ४ ॥

ध्वजा, पताका, धनुष, तोमर, कई प्रकारके रस्से, फांसे, नाना तरहके कपडे ॥ ४ ॥

सकचग्रहविक्षेपाः सतैलगुडवालुकाः ।
साशीविषघटाः सर्वे ससर्जरसपांसवः ॥ ५ ॥

कचग्रह-विक्षेप तथा शत्रुओंपर गरम गरम फेंकनेके लिए तैल, गुड, वालू, सर्पसे युक्त घडे, धूपके चूर्ण ॥ ५ ॥

सघण्टाफलकाः सर्वे वासीवृक्षादनान्विताः ।
व्याघ्रचर्मपरीवारावृत्ताश्च द्वीपिचर्मभिः ॥ ६ ॥

घण्टफलक अर्थात् घण्टासे युक्त तीक्ष्ण अस्त्र, वासी, वृक्षादन अर्थात् लोहेके कांटे, वाघके चमडेके तथा चीतेके चमडेसे मढे हुए रथ ॥ ६ ॥

× अनुकर्ष— रथके टूट जानेपर उसकी मरम्मतके लिए रथके नीचे बांधे गए डण्डे। तूणीर— रथोंसे ले जाये जानेवाले बडे बडे तरकश । वरूथ— बाघके चमडेसे बनाया गया रथका कवच । तोमर— हाथसे फेंके जानेवाले कंटीले डण्डे । उपासंग— हाथी और घोडों पर रखकर ले जाए जानेवाले तरकश । शक्ति— लोह दण्ड । निषंग— सैनिकोंकी पीठ पर बंधनेवाले तरकश । कचग्रह-विक्षेप— बालोंके द्वारा शत्रुको पकडने के लिए अग्रभागमें चिपकनेवाले पदार्थसे युक्त डण्डे ।

सवरूथः सशृङ्गाश्च सप्रासविविधायुधाः ।
सकुठाराः सकुद्दालाः सतैलक्षौमसर्पिषः ॥ ७ ॥

वरूथ, शृंग, प्रास, विविध आयुध, कुदाल, कुठार आदि बहुतसे शस्त्र, तेल तथा घीमें भिगाये हुए रेशमी वस्त्र—जिसका भस्म घावपर लगाया जाता है—आदि अनेक प्रकारकी युद्धके योग्य सब सामग्रीसे युक्त ॥ ७ ॥

चित्रानीकाः सुवपुषो ज्वलिता इव पावकाः ।
तथा कवचिनः शूराः शस्त्रेषु कृतनिश्रमाः ॥ ८ ॥

उत्तम शरीरवाले पुरुषोंसे भरी हुई चित्र विचित्र सेनायें जलती हुई अग्निके समान दीखने लगीं । कवच धारण करनेवाले, शूर, शस्त्रोंको चलानेमें निपुण ॥ ८ ॥

कुलीना हययोनिज्ञाः सारथ्ये विनिवेशिताः ।
बद्धारिष्टा बद्धकक्षा बद्धध्वजपताकिनः ॥ ९ ॥

घोडोंकी विद्याको जाननेवाले, ऋष्ट आदि आयुधोंको बांधे हुए, कमर बांधे हुए, ध्वज और पताकाओंको बांधे हुए कुलीन वीर लोग सारथिके काममें नियुक्त हुए ॥ ९ ॥

चतुर्युजो रथाः सर्वे सर्वे शस्त्रसमायुताः ।
संहृष्टवाहनाः सर्वे सर्वे शतशरासनाः ॥ १० ॥

रथमें चार चार घोडे जोते गये; सभी शस्त्रास्त्र रख दिए गए, सभी सवारियां हृष्टपुष्ट थीं और सभीके पास सैकडों धनुष थे ॥ १० ॥

धुर्ययोर्हययोरेकस्तथान्यौ पार्ष्णिसारथी ।
तौ चापि रथिनां श्रेष्ठौ रथी च हयवित्तथा ॥ ११ ॥

रथके आगेके दोनों घोडोंके निमित्त एक सारथी और रथके चक्रके पीछे दो सारथी नियुक्त किये गये । ऐसे ही रथके ऊपर उत्तम सारथी, रथी और घोडोंकी विद्याको जाननेवाले वीर पुरुषोंसे रक्षित ॥ ११ ॥

नगराणीव गुप्तानि दुरादेयानि शत्रुभिः ।
आसन्रथसहस्राणि हेममालीनि सर्वशः ॥ १२ ॥

सुवर्णकी मालासे युक्त शत्रुओंके द्वारा जीते जानेके अयोग्य, सुरक्षित नगरोंके समान दीखने वाले सहस्रों रथ चारों ओर दीखने लगे ॥ १२ ॥

यथा रथास्तथा नागा बद्धकक्ष्याः स्वलंकृताः ।
बभूवुः सप्त पुरुषा रत्नवन्त इवाद्रयः ॥ १३ ॥

रथहीकी तरह ही सुवर्णके भूषणोंसे भूपित किये गये हाथियोंके हौदेमें सात सात वीर पुरुषोंके चढनेपर ऐसी शोभा हुई जैसे रत्नोंके सहित पर्वत शोभायमान होता है ॥ १३ ॥

द्वावङ्कुशधरौ तेषु द्वावुत्तमधनुर्धरौ ।
द्वौ वरासिधरौ राजन्नेकः शक्तिपताकधृक् ॥ १४ ॥

इन सात वीरोंमें दो अंकुश ग्रहण करनेवाले, दो उत्तम धनुर्धारी, दो तलवार चलानेवाले और, हे राजन् ! एक शक्ति तथा पताका धारण करनेवाला था ॥ १४ ॥

गजैर्मत्तैः समाकीर्णं सर्वमायुधकोशकैः ।
तद्बभूव बलं राजन्कौरव्यस्य सहस्रशः ॥ १५ ॥

हे महाराज ! राजा दुर्योधनकी वह सेना सभी तरहके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित हजारों मतवाले हाथियोंसे युक्त थी ॥ १५ ॥

विचित्रकवचामुक्तैः सपताकैः स्वलंकृतैः ।
सादिभिश्चोपसंपन्ना आसन्नयुतशो हयाः ॥ १६ ॥

विचित्र रूपके कवच, फहरानेवाली पताका, उत्तम भूषणोंसे युक्त सवारोंके सहित हजारों घोडे थे ॥ १६ ॥

सुसंग्राह्याः सुसंतोषा हेमभाण्डपरिच्छदाः ।
अनेकशतसाहस्रास्ते च सादिवशे स्थिताः ॥ १७ ॥

जो उत्तम होनेके कारण झुण्डमें रहते थे, अच्छी तरह तृप्त थे, अनेकों तरहके सोनेके जेवरोंसे सजे हुए थे, ऐसे हजारों घोडे उन घुडसवारोंके वशमें थे ॥ १७ ॥

नानारूपविकाराश्च नानाकवचशस्त्रिणः ।
पदातिनो नरास्तत्र बभूवुर्हेममालिनः ॥ १८ ॥

नाना प्रकारके भूषण, शस्त्रों, तथा कवचोंको पहने, सुवर्णकी मालासे युक्त होकर अगणित पैदल चलनेवाले वीर योद्धा सजके खडे हुए ॥ १८ ॥

रथस्यासन्दश गजा गजस्य दश वाजिनः ।
नरा दश हयस्यासन्पादरक्षाः समन्ततः ॥ १९ ॥

एक एक रथके साथ दस हाथी, एक एक हाथी पर दस दस घोडे और एक एक घोडेके पीछे दस दस पैदल चलनेवाले वीर योद्धा पादरक्षक बनकर चारों ओरसे चलने लगे ॥ १९ ॥

रथस्य नागाः पञ्चाशन्नागस्यासञ्शतं हयाः ।
हयस्य पुरुषाः सप्त भिन्नसन्धानकारिणः ॥ २० ॥

उसी प्रकार एक रथके पीछे पचास हाथी और एक हाथीके पीछे सौ घोडे और हर घोडेके पीछे तोडफोडकी तत्काल मरम्मत करनेमें कुशल ऐसे सात सात पुरुषोंकी नियुक्ति की गई ॥ २० ॥

सेना पञ्चशतं नागा रथास्तावन्त एव च ।
दश सेना च पृतना पृतना दश वाहिनी ॥ २१ ॥

पांचसौ रथ और पांच सौ हाथियोंकी एक सेना, दस सेनाओंको मिलाकर एक पृतना, दस पृतनाओंको मिलाकर एक वाहिनी होती है ॥ २१ ॥

वाहिनी पृतना सेना ध्वजिनी सादिनी चमूः ।
अक्षौहिणीति पर्यायैर्निरुक्ताथ वरूथिनी ।
एवं व्यूढान्यनीकानि कौरवेयेण धीमता ॥ २२ ॥

इस रीतिसे वाहिनी, पृतना, सेना, ध्वजिनी, सादिनी, चमू, वरूथिनी अक्षौहिणी आदि समानार्थक शब्दोंसे सेनाका निर्देश किया जाता है। बुद्धिमान् राजा दुर्योधनने इसप्रकार सेनाके व्यूहकी रचना की ॥ २२ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च संख्याताः सप्त चैव ह ।
अक्षौहिण्यस्तु सप्तैव पाण्डवानामभूद्बलम् ।
अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणामभूद्बलम् ॥ २३ ॥

दोनों ओरकी सम्पूर्ण सेना दस, एक और सात अर्थात् अट्ठारह अक्षौहिणी हुई; उनमेंसे पाण्डवोंकी सेना सात अक्षौहिणी थी और कौरवोंकी सेना ग्यारह अक्षौहिणी थी ॥ २३ ॥

नराणां पञ्चपञ्चाशदेषा पत्तिर्विधीयते ।
सेनामुखं च तिस्रस्ता गुल्म इत्यभिसंज्ञितः ॥ २४ ॥

पचपन मनुष्योंकी एक पत्ति कही जाती है, उन तीन पत्तियोंका एक सेनामुख वा गुल्म होता है ॥ २४ ॥

दश गुल्मा गणस्त्वासीद्गणास्त्वयुतशोऽभवन् ।
दुर्योधनस्य सेनासु योत्स्यमानाः प्रहारिणः ॥ २५ ॥

और दस गुल्मोंका एक गण कहा जाता है; दुर्योधनकी सेनाओंमें ऐसे सहस्रों गण युद्ध करनेवाले और शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले थे ॥ २५ ॥

तत्र दुर्योधनो राजा शूरान्बुद्धिमतो नरान् ।
प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतींस्तदा ॥ २६ ॥

महाबाहु राजा दुर्योधनने अच्छी प्रकारसे विचार करके पराक्रमी बुद्धिमान् मनुष्योंको अपनी सेनाका सेनापति बनाया ॥ २६ ॥

पृथगक्षौहिणीनां च प्रणेतॄन्नरसत्तमान् ।
विधिपूर्वं समानीय पार्थिवानभ्यषेचयत् ॥ २७ ॥

सब श्रेष्ठ राजाओंको नियमके अनुसार पृथक् पृथक् अक्षौहिणीका नायक बनाकर सबका यथा उचित सम्मान करके उन राजाओंका सेनापतिके पद पर अभिषेक किया ॥ २७ ॥

×

कृपं द्रोणं च शल्यं च सैन्धवं च महारथम् ।
सुदक्षिणं च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च ॥ २८ ॥

वे राजा ये थे– कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, महारथी जयद्रथ, काम्बोजराज, सुदक्षिण और कृतवर्मा ॥ २८ ॥

द्रोणपुत्रं च कर्णं च भूरिश्रवसमेव च ।
शकुनिं सौबलं चैव बाह्लीकं च महारथम् ॥ २९ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबलपुत्र शकुनि और महारथी बाह्लिक ॥ २९ ॥

दिवसे दिवसे तेषां प्रतिवेलं च भारत ।
चक्रे स विविधाः संज्ञाः प्रत्यक्षं च पुनः पुनः ॥ ३० ॥

हे भारत ! वह दुर्योधन प्रतिदिन तथा हरघडी अपने सम्मुख ही इन लोगोंको अनेक प्रकारसे संबोधित करने लगे ॥ ३० ॥

तथा विनियताः सर्वे ये च तेषां पदानुगाः ।
बभूवुः सैनिका राजन्राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥
समाप्तमभिनिर्याणपर्व ॥ ४८५४ ॥

हे राजन् ! इसी प्रकार नियममें बद्ध होकर वह सब पराक्रमी राजा और उनके पृष्ठरक्षक वीर योद्धा लोग राजा दुर्योधनके प्रिय कार्यके साधन करनेके निमित्त एकत्रित हुए ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ बावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५२ ॥
अभिनिर्याणपर्व समाप्त ॥ ४८५४ ॥

: १५३ :

वैशम्पायन उवाच

ततः शान्तनवं भीष्मं प्राञ्जलिर्धृतराष्ट्रजः ।
सह सर्वैर्महीपालैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन सब राजाओंके साथ मिलकर हाथ जोडकर शन्तनुनन्दन भीष्मसे यह वचन बोले ॥ १ ॥

ऋते सेनाप्रणेतारं पृतना सुमहत्यपि ।
दीर्यते युद्धमासाद्य पिपीलिकपुटं यथा ॥ २ ॥

हे पितामह ! सेनापतिके विना अत्यन्त बडी सेना होनेपर भी युद्धमें पहुंच कर चींटियोंके समूहके समान शत्रुओंसे पीडित होकर तितर बितर हो जाती है ॥ २ ॥

न हि जातु द्वयोर्बुद्धिः समा भवति कर्हिचित् ।
शौर्यं च नाम नेतॄणां स्पर्धते च परस्परम् ॥ ३ ॥

क्योंकि दो पुरुषोंकी बुद्धि कभी समान नहीं होती और युद्धमें नेताओंके शौर्य आपसमें स्पर्धा करते हैं ॥ ३ ॥

श्रूयते च महाप्राज्ञ हैहयानमितौजसः ।
अभ्ययुर्ब्राह्मणाः सर्वे समुच्छ्रितकुशध्वजाः ॥ ४ ॥

हे महाबुद्धिमन् ! सुना जाता है, कि एकवार ब्राह्मणोंने कुशको ध्वजा बनाकर महातेजस्वी हैहयवंशियोंपर आक्रमण किया ॥ ४ ॥

तानन्वयुस्तदा वैश्याः शूद्राश्चैव पितामह ।
एकतस्तु त्रयो वर्णा एकतः क्षत्रियर्षभाः ॥ ५ ॥

हे पितामह ! उस समय वैश्य और शूद्र लोग भी उनके अनुगामी हुए । इस प्रकारसे एक ओर तो केवल क्षत्रिय और दूसरी ओर तीनों वर्ण हो गए ॥ ५ ॥

ते स्म युद्धेष्वभज्यन्त त्रयो वर्णाः पुनः पुनः ।
क्षत्रियास्तु जयन्त्येव बहुलं चैकतो बलम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर युद्धके आरम्भ होनेपर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंका बार बार पराजय होने लगा, और एक पक्षमें एकत्रित हुए उस प्रचण्ड सैन्यको क्षत्रियोंने जीत लिया ॥ ६ ॥

ततस्ते क्षत्रियानेव पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः ।
तेभ्यः शशंसुर्धर्मज्ञा याथातथ्यं पितामह ॥ ७ ॥

हे पितामह ! तब उन ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे ही इसका कारण पूछा और धर्मात्मा क्षत्रियोंने भी उन लोगोंको यही यथार्थ उत्तर दिया ॥ ७ ॥

वयमेकस्य शृणुमो महाबुद्धिमतो रणे ।
भवन्तस्तु पृथक्सर्वे स्वबुद्धिवशवर्तिनः ॥ ८ ॥

कि हम लोग युद्धमें एक ही महाबुद्धिमान् मनुष्यके वचनके अनुसार चलते हैं और आप लोग सब कोई अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार कार्य करते हैं ॥ ८ ॥

ततस्ते ब्राह्मणाश्चक्रुरेकं सेनापतिं द्विजम् ।
नयेषु कुशलं शूरमजयन्क्षत्रियांस्ततः ॥ ९ ॥

हे पितामह ! इसके बाद उन ब्राह्मणोंने नीति जाननेवाले एक महा पराक्रमी और बुद्धिमान् ब्राह्मणको अपना सेनापति बनाया और इसीसे क्षत्रियोंको युद्धमें जीता ॥ ९ ॥

एवं ये कुशलं शूरं हिते स्थितमकल्मषम्।
सेनापतिं प्रकुर्वन्ति ते जयन्ति रणे रिपून् ॥ १० ॥

इसी प्रकार जो पुरुष नीतिसे युक्त, पराक्रमी, हितैषी, पापरहित किसी पुरुषको अपना सेनापति बनाते हैं; वे युद्धमें शत्रुओंको जीत लेते हैं ॥ १० ॥

भवानुशनसा तुल्यो हितैषी च सदा मम।
असंहार्यः स्थितो धर्मे स नः सेनापतिर्भव ॥ ११ ॥

आप शुक्राचार्यके समान नीतिज्ञ, हमारे हितकी अभिलाषा करनेवाले, अवध्य और धर्मात्मा हैं; अतः आप हमारे सेनापति होइये ॥ ११ ॥

रश्मीवतामिवादित्यो वीरुधामिव चन्द्रमाः।
कुबेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥ १२ ॥

जैसे तेजस्वी पदार्थोंमें आदित्य, ओषधियोंमें चन्द्रमा, यक्षोंमें कुबेर, मरुतोंमें इन्द्र ॥ १२ ॥

पर्वतानां यथा मेरुः सुपर्णः पततामिव।
कुमार इव भूतानां वसूनामिव हव्यवाट् ॥ १३ ॥

पर्वतोंमें सुमेरु, पक्षियोंमें गरुड, भूतोंमें कुमार कार्तिकेय और वसुओंमें अग्नि मुख्य हैं; उसी प्रकार आप हम कौरवोंमें मुख्य हैं ॥ १३ ॥

भवता हि वयं गुप्ताः शक्रेणेव दिवौकसः।
अनाधृष्या भविष्यामस्त्रिदशानामपि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

इन्द्रसे रक्षित देवताओंकी भांति हम लोग आपके बाहुबलसे रक्षित होकर देवताओंसे भी न जीते जाने योग्य होंगे; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥

प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः।
वयं त्वामनुयास्यामः सौरभेया इवर्षभम् ॥ १५ ॥

आप देवताओंमें अग्रणी स्वामी कार्तिककी भांति हम लोगोंके आगे चलें, हम लोग महावृषभके पीछे बछडोंकी भांति तुम्हारे पीछे चलेंगे ॥ १५ ॥

भीष्म उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत।
यथैव हि भवन्तो मे तथैव मम पाण्डवाः ॥ १६ ॥

भीष्म बोले– हे महाबाहो भारत! तुम जो कुछ कहते हो, वह सब ठीक है; परन्तु मेरे लिए जैसे तुम लोग प्रिय हो; वैसे ही पाण्डव भी हैं ॥ १६ ॥

अपि चैव मया श्रेयो वाच्यं तेषां नराधिप।
योद्धव्यं तु तवार्थाय यथा स समयः कृतः ॥ १७॥
हे राजेन्द्र! इसलिए मुझे उन लोगोंके भी कल्याणको ध्यानमें रखना पडेगा और जैसी मैंने प्रतिज्ञा की थी उसके अनुसार तुम्हारी तरफसे युद्ध भी करना पडेगा ॥ १७॥

न तु पश्यामि योद्धारमात्मनः सदृशं भुवि।
ऋते तस्मान्नरव्याघ्रात्कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥ १८॥
उस एकमात्र पुरुषसिंह, कुन्तीके पुत्र अर्जुनके अतिरिक्त मैं इस पृथ्वीमें ऐसा कोई वीर योद्धा भी नहीं देखता जो मेरे समान हो सके ॥ १८॥

स हि वेद महाबाहुर्दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः।
न तु मां विवृतो युद्धे जातु युद्ध्येत पाण्डवः ॥ १९॥
वह महाबाहु पाण्डुपुत्र अर्जुन अनेक दिव्य अस्त्रोंको जानता है; परन्तु वह पाण्डुपुत्र अर्जुन भी रणभूमिमें प्रकट होकर कभी मेरे साथ युद्ध नहीं कर सकेगा ॥ १९॥

अहं स च क्षणेनैव निर्मनुष्यमिदं जगत्।
कुर्यां शस्त्रबलेनैव ससुरासुरराक्षसम् ॥ २०॥
मैं और वह अर्जुन दोनों मिलकर अपने शस्त्रोंके बलकी सहायतासे क्षणभरमें ही देवता असुर और राक्षसोंके सहित इस सम्पूर्ण जगत्को मनुष्यहीन कर सकते हैं ॥ २०॥

न त्वेवोत्सादनीया मे पाण्डोः पुत्रा नराधिप।
तस्माद्योधान्हनिष्यामि प्रयोगेणायुतं सदा ॥ २१॥
परन्तु, हे राजन्! पाण्डुपुत्रोंको मैं किसी भी प्रकारसे नष्ट करना नहीं चाहता। इसलिए मैं अपने शस्त्रोंको चलाकर प्रतिदिन उन पाण्डवोंके दस हजार वीर योद्धाओंको मारूंगा ॥ २१॥

एवमेषां करिष्यामि निधनं कुरुनन्दन।
न चेत्ते मां हनिष्यन्ति पूर्वमेव समागमे ॥ २२॥
हे कुरुनन्दन! रणभूमिमें यदि पहिले ही मुझे न मार देंगे, तो मैं इसी प्रकारसे उन लोगोंके सम्पूर्ण वीर योद्धाओंका नाश कर दूंगा ॥ २२॥

सेनापतिस्त्वहं राजन्समयेनापरेण ते।
भविष्यामि यथाकामं तन्मे श्रोतुमिहार्हसि ॥ २३॥
हे राजन्! मैं दूसरी एक शर्तपर ही तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुम्हारा सेनापति हो सकूंगा वह शर्त तुम मुझसे सुनो ॥ २३॥

कर्णो वा युद्ध्यतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते ।
स्पर्धते हि सदात्यर्थं सूतपुत्रो मया रणे ॥ २४ ॥

हे राजन् ! या तो कर्ण ही पहिले युद्ध करे अथवा मैं ही प्रथम युद्ध करूंगा, क्योंकि यह सूतपुत्र युद्धमें मेरे साथ बहुत ही स्पर्धा किया करता है ॥ २४ ॥

कर्ण उवाच

नाहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन्कथञ्चन ।
हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्वना ॥ २५ ॥

कर्ण बोले— हे राजन् ! गङ्गानन्दन भीष्मके जीते रहते मैं किसी प्रकारसे भी युद्ध न करूंगा परन्तु भीष्मके मारे जानेपर गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाले अर्जुनके साथ युद्ध अवश्य करूंगा ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः सेनापतिं चक्रे विधिवद्भूरिदक्षिणम् ।
धृतराष्ट्रात्मजो भीष्मं सोऽभिषिक्तो व्यरोचत ॥ २६ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनने ब्राह्मणोंको बहुतसी दक्षिणा देकर भीष्मको विधिपूर्वक सेनापति बनाया और सेनापतिके पदपर अभिषिक्त होकर भीष्म भी बहुत सुशोभित हुए ॥ २६ ॥

ततो भेरीश्च शङ्खांश्च शतशश्चैव पुष्करान् ।
वादयामासुरव्यग्राः पुरुषा राजशासनात् ॥ २७ ॥

तब राजाकी आज्ञा पाकर बाजे बजानेवाले पुरुष निर्भीकतासे अनेक प्रकारके बाजे, शङ्ख, भेरी आदि बजाने लगे ॥ २७ ॥

सिंहनादाश्च विविधा वाहनानां च निःस्वनाः ।
प्रादुरासन्ननभ्रे च वर्षं रुधिरकर्दमम् ॥ २८ ॥

वीरोंके सिंहनाद और हाथी घोडोंके शब्द सुनाई देने लगे। विना बादलके ही रुधिरकी वर्षा होकर पृथ्वी कीचडसे युक्त हो गई ॥ २८ ॥

निर्घाताः पृथिवीकम्पा गजबृंहितनिःस्वनाः ।
आसंश्च सर्वयोधानां पातयन्तो मनांस्युत ॥ २९ ॥

अकस्मात् भूकम्प और हाथियोंकी भयङ्कर चिङ्घाड सम्पूर्ण वीर योद्धाओंके अन्तःकरणको पीडित करते हुए प्रकट होने लगे ॥ २९ ॥

वाचश्चाप्यशरीरिण्यो दिवश्चोल्काः प्रपेदिरे ।
शिवाश्च भयवेदिन्यो नेदुर्दीप्तस्वरा भृशम् ॥ ३० ॥

आकाशसे अशरीरीवाणी सुनाई दी और उल्कापात होने लगे । भयको सूचित करनेवाले सियारोंके झुण्ड भी बार बार महाघोर शब्द करने लगे ॥ ३० ॥

सेनापत्ये यदा राजा गाङ्गेयमभिषिक्तवान् ।
तदैतान्युग्ररूपाणि अभवन्शतशो नृप ॥ ३१ ॥

हे राजन् जनमेजय ! राजा दुर्योधनने जब भीष्मका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया, उसी समय इसी प्रकारसे सैकडों भयङ्कर उत्पात दीख पडे ॥ ३१ ॥

ततः सेनापतिं कृत्वा भीष्मं परबलार्दनम् ।
वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान्निष्कैर्गोभिश्च भूरिशः ॥ ३२ ॥

शत्रुनाशक भीष्मको सेनापति बनानेके बाद राजा दुर्योधनने अनेक गौ और धन देकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया ॥ ३२ ॥

वर्धमानो जयाशीर्भिर्निर्ययौ सैनिकैर्वृतः ।
आपगेयं पुरस्कृत्य भ्रातृभिः सहितस्तदा ।
स्कन्धावारेण महता कुरुक्षेत्रं जगाम ह ॥ ३३ ॥

उनके आशीर्वादसे वर्द्धित होकर तथा भीष्मको आगे करके दुर्योधन अपने भाइयों और सैनिक-पुरुषोंसे घिरकर चल पडा और इसप्रकार महासेनाको लेकर वह कुरुक्षेत्रमें जा पहुंचा ॥ ३३ ॥

परिक्रम्य कुरुक्षेत्रं कर्णेन सह कौरवः ।
शिबिरं मापयामास समे देशे जनाधिपः ॥ ३४ ॥

तदनन्तर उस कुरुकुलोत्पन्न राजा दुर्योधनने कर्णके साथ सम्पूर्ण कुरुक्षेत्रमें घूमकर समतल भूमिमें शिबिर स्थापित कराया ॥ ३४ ॥

मधुरानूषरे देशे प्रभूतयवसेन्धने ।
यथैव हास्तिनपुरं तद्वच्छिबिरमाबभौ ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥ ४८८९ ॥

बहुत अनाज और ईंधनसे युक्त उर्वरा भूमिमें स्थापित हुए वे सब शिबिर हस्तिनापुरकी भांति दिखाई देने लगे ॥ ३५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ तिरेपनवां अध्याय समाप्त ॥ १५३ ॥ ४८८९ ॥

: १७४ :

जनमेजय उवाच

आपगेयं महात्मानं भीष्मं शस्त्रभृतां वरम्।
पितामहं भारतानां ध्वजं सर्वमहीक्षिताम् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– वे गंगापुत्र भीष्म, महात्मा सारे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, सभी राजाओंमें ध्वजके समान ऊंचे स्थानपर विराजनेवाले और भरतवंशियोंके पितामह थे ॥ १ ॥

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया पृथिवीसमम्।
समुद्रमिव गाम्भीर्ये हिमवन्तमिव स्थिरम् ॥ २ ॥

बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, क्षमामें पृथ्वीके समान, गम्भीरतामें समुद्रके समान, स्थिरतामें हिमालयके समान ॥ २ ॥

प्रजापतिमिवौदार्ये तेजसा भास्करोपमम्।
महेन्द्रमिव शत्रूणां ध्वंसनं शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥

उदारतामें प्रजापति ब्रह्माके समान, तेजमें सूर्यके समान, बाणोंकी वर्षासे इन्द्रकी भांति शत्रुओंके संहार करनेवाले थे ॥ ३ ॥

रणयज्ञे प्रतिभये स्वाभीले लोमहर्षणे।
दीक्षितं चिररात्राय श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

ऐसे भीष्म महाभयङ्कर और रोंगटे खडे करनेवाले रणयज्ञमें सदाके लिए दीक्षित हो गए हैं, यह सुनकर ॥ ४ ॥

किमब्रवीन्महाबाहुः सर्वधर्मविशारदः।
भीमसेनार्जुनौ वापि कृष्णो वा प्रत्यपद्यत ॥ ५ ॥

सब धर्मोंमें कुशल महाबाहु युधिष्ठिर इस विषयमें क्या बोले, भीम तथा अर्जुनहीने क्या कहा और कृष्णहीने ही क्या कहा ? ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

आपद्धर्मार्थकुशलो महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः।
सर्वान्भ्रातॄन्समानीय वासुदेवं च सात्वतम्।
उवाच वदतां श्रेष्ठः सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– आपद् धर्मको जाननेवाले, बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ, महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर अपने सभी भाइयोंको और सात्वत कुलमें उत्पन्न कृष्णको बुलाकर मीठे वचनसे ऐसा कहने लगे ॥ ६ ॥

पर्याक्रामत सैन्यानि यत्तास्तिष्ठत दंशिताः ।
पितामहेन वो युद्धं पूर्वमेव भविष्यति ।
तस्मात्सप्तसु सेनासु प्रणेतॄन्मम पश्यत ॥ ७ ॥

तुम लोग तैयार तथा सज्जित होकर सावधानीसे सब सेनामें भ्रमण करो। पहिले ही दिन पितामह भीष्मके साथ तुम लोगोंका युद्ध होगा; अतः मेरी सात अक्षौहिणी सेनाके लिए सात सेनापतियोंकी नियुक्ति करो ॥ ७ ॥

वासुदेव उवाच

यथार्हति भवान्वक्तुमस्मिन्काल उपस्थिते ।
तथेदमर्थवद्वाक्यमुक्तं ते भरतर्षभ ॥ ८ ॥

वासुदेव बोले– हे भरतर्षभ ! इस उपस्थित समयमें आपके समान पुरुषको जैसा कहना उचित है, आपने वैसेही अर्थसे भरे हुए वचन कहे हैं ॥ ८ ॥

रोचते मे महाबाहो क्रियतां यदनन्तरम् ।
नायकास्तव सेनायामभिषिच्यन्तु सप्त वै ॥ ९ ॥

हे महाबाहो ! यह सम्पूर्ण रूपसे हम लोगोंको उत्तम प्रतीत होता है, अतः शीघ्र ही इस कर्त्तव्य-कर्मका अनुष्ठान होना उचित है, अपनी सेनामें सात पुरुषोंको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त कीजिए ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रुपदमानाय्य विराटं शिनिपुङ्गवम् ।
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं धृष्टकेतुं च पार्थिवम् ।
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं सहदेवं च मागधम् ॥ १० ॥
एतान्सप्त महाभागान्वीरान्युद्धाभिनन्दिनः ।
सेनाप्रणेतॄन्विधिवदभ्यषिञ्चद्युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥

वैशम्पायन बोले– तब राजा युधिष्ठिरने द्रुपद, विराट, शिनिपुंगव सात्यकि, पांचालदेशीय धृष्टद्युम्न, राजा धृष्टकेतु, पांचालराज शिखण्डी और मगधराज सहदेव, युद्धमें आनन्द प्राप्त करनेवाले इन सात महात्मा वीरोंको बुलाकर विधिपूर्वक अपनी सेनाका नायक बनाकर उनका अभिषेक किया ॥ १०-११ ॥

सर्वसेनापतिं चात्र धृष्टद्युम्नमुपादिशत् ।
द्रोणान्तहेतोरुत्पन्नो य इद्धाज्जातवेदसः ॥ १२ ॥

जो यज्ञकी प्रदीप्त अग्निसे द्रोणाचार्यके वधके निमित्त उत्पन्न हुआ था, उस धृष्टद्युम्नको सम्पूर्ण सेनाका सेनापति बनाया ॥ १२ ॥

×

सर्वेषामेव तेषां तु समस्तानां महात्मनाम् ।
सेनापतिपतिं चक्रे गुडाकेशं धनञ्जयम् ॥ १३ ॥

और इन सब महात्माओं और सब सेनाओंके ऊपर अर्जुनको सब सेनापतियोंका पति बनाया ॥ १३ ॥

अर्जुनस्यापि नेता च संयन्ता चैव वाजिनाम् ।
सङ्कर्षणानुजः श्रीमान्महाबुद्धिर्जनार्दनः ॥ १४ ॥

बलदेवके भाई महाबुद्धिमान् श्रीमान् कृष्ण अर्जुनके भी नायक तथा उनके घोडोंको वशमें रखनेवाले सारथी बने ॥ १४ ॥

तद्दृष्ट्वोपस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम् ।
प्राविशद्भवनं राज्ञः पाण्डवस्य हलायुधः ॥ १५ ॥

हे महाराज ! हलधारी बलदेव सब प्राणियोंका नाश करनेवाले इस युद्धको समीप ही उपस्थित हुआ जानकर पाण्डवराजा युधिष्ठिरके भवनमें गए ॥ १५ ॥

सहाक्रूरप्रभृतिभिर्गदसाम्बोल्मुकादिभिः ।
रौक्मिणेयाहुकसुतैश्चारुदेष्णपुरोगमैः ॥ १६ ॥
वृष्णिमुख्यैरधिगतैर्व्याघ्रैरिव बलोत्कटैः ।
अभिगुप्तो महाबाहुर्मरुद्भिरिव वासवः ॥ १७ ॥

वे व्याघ्रके समान बलशाली अक्रूर, गद, साम्ब, उल्मुक, रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न, आहुकके पुत्रों और चारुदेष्ण आदि यदुवंशियोंसे, मरुतोंसे रक्षित इन्द्रके समान, रक्षित होकर पाण्डवोंके समीप आकर उपस्थित हुए ॥ १६-१७ ॥

नीलकौशेयवसनः कैलासशिखरोपमः ।
सिंहखेलगतिः श्रीमान्मदरक्तान्तलोचनः ॥ १८ ॥

वे बलराम नीले रंगके रेशमी वस्त्र पहने हुए थे, कैलासके शिखरके समान ऊंचे, सिंहकीसी चालवाले, श्रीमान् थे और मदके कारण उनकी आंखोंके कोने लाल हो गए थे ॥ १८ ॥

तं दृष्ट्वा धर्मराजश्च केशवश्च महाद्युतिः ।
उदतिष्ठत्तदा पार्थो भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १९ ॥

बलरामको आते हुए देखकर धर्मराज, महातेजस्वी श्रीकृष्ण, भयंकर कर्म करनेवाले पृथापुत्र भीमसेन उठकर खडे हो गए ॥ १९ ॥

गाण्डिवधन्वा ये चान्ये राजानस्तत्र केचन ।
पूजयांचक्रुरभ्येत्य ते स्म सर्वे हलायुधम् ॥ २० ॥

उसके साथ ही गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाले अर्जुन और अन्य सब राजालोग उठकर खडे हुए और पास आकर उन्होंने बलरामकी पूजा की ॥ २० ॥

ततस्तं पाण्डवो राजा करे पस्पर्श पाणिना ।
वासुदेवपुरोगास्तु सर्व एवाभ्यवादयन् ॥ २१ ॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने अपने हाथोंसे उनके करतलको स्पर्श किया और कृष्ण आदि सब पुरुषोंने उन्हें प्रणाम किया ॥ २१ ॥

विराटद्रुपदौ वृद्धावभिवाद्य हलायुधः ।
युधिष्ठिरेण सहित उपाविशदरिन्दमः ॥ २२ ॥

शत्रुनाशक बलराम अवस्थामें बूढे द्रुपद और विराटको प्रणाम करके युधिष्ठिरके सहित आसनपर बैठे ॥ २२ ॥

ततस्तेषूपविष्टेषु पार्थिवेषु समन्ततः ।
वासुदेवमभिप्रेक्ष्य रौहिणेयोऽभ्यभाषत ॥ २३ ॥

तदनन्तर सब राजाओंके चारों ओर बैठ जानेपर रोहिणीनन्दन बलदेव श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखकर यह वचन बोले ॥ २३ ॥

भवितायं महारौद्रो दारुणः पुरुषक्षयः ।
दिष्टमेतद्ध्रुवं मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २४ ॥

यह मनुष्योंको नष्ट करनेवाला महाभयंकर युद्ध होगा । मैं यह मानता हूं कि दैवकी ऐसी ही इच्छा है; कोई इसको किसी प्रकारसे नहीं रोक सकेगा ॥ २४ ॥

अस्माद्युद्धात्समुत्तीर्णानपि वः ससुहृज्जनान् ।
अरोगानक्षतैर्देहैः पश्येयमिति मे मतिः ॥ २५ ॥

इस समय मैं यही चाहता हूं, कि तुमको सुहृद् पुरुषोंके सहित इस युद्धसे उत्तीर्ण, अरोग तथा घावसे रहित शरीरवाला देखूं ॥ २५ ॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं कालपक्वमसंशयम् ।
विमर्दः सुमहान्भावी मांसशोणितकर्दमः ॥ २६ ॥

पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रिय कालके वशमें होके इस युद्धमें इकट्ठे हुए हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । यह युद्ध बडा भयंकर होगा और मांस और रुधिरके कीचडसे यह पृथ्वी अवश्य ही भर जायेगी ॥ २६ ॥

उक्तो मया वासुदेवः पुनः पुनरुपह्वरे।
सम्बन्धिषु समां वृत्तिं वर्तस्व मधुसूदन ॥ २७ ॥

हे युधिष्ठिर! मैंने एकान्तमें कृष्णसे बार बार कहा था, कि हे मधुसूदन! तुम दोनों सम्बन्धियोंसे समान व्यवहार करो ॥ २७ ॥

पाण्डवा हि यथास्माकं तथा दुर्योधनो नृपः।
तस्यापि क्रियतां युक्त्या सपर्येति पुनः पुनः ॥ २८ ॥

जैसे पाण्डव हमारे सम्बन्धी हैं, वैसे ही राजा दुर्योधन भी है, अतः समान सम्बन्धियोंको समान ही सहायता देनी चाहिए; दुर्योधनको भी सहायता देकर उसका सम्मान करो ॥ २८ ॥

तच्च मे नाकरोद्वाक्यं त्वदर्थे मधुसूदनः।
निविष्टः सर्वभावेन धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥ २९ ॥

परन्तु तुम्हारे कारण कृष्णने मेरी बात स्वीकार नहीं की। अर्जुनके स्नेहसे ये तुम्हारी ही ओर सब प्रकारसे तत्पर हैं ॥ २९ ॥

ध्रुवो जयः पाण्डवानामिति मे निश्चिता मतिः।
तथा ह्यभिनिवेशोऽयं वासुदेवस्य भारत ॥ ३० ॥

हे भारत! पाण्डवोंकी ही जय होगी, यह मेरा निश्चित मत है। क्योंकि, हे भारत! कृष्णकी ऐसी ही इच्छा है ॥ ३० ॥

न चाहमुत्सहे कृष्णमृते लोकमुदीक्षितुम्।
ततोऽहमनुवर्तामि केशवस्य चिकीर्षितम् ॥ ३१ ॥

मैं भी कृष्णके विना इस संसारका उपभोग नहीं करना चाहता, इसी कारण कृष्णके अभिप्रायके अनुसार ही चलता हूं ॥ ३१ ॥

उभौ शिष्यौ हि मे वीरौ गदायुद्धविशारदौ।
तुल्यस्नेहोऽस्म्यतो भीमे तथा दुर्योधने नृपे ॥ ३२ ॥

गदायुद्धको जाननेवाले भीम और दुर्योधन दोनों ही मेरे शिष्य हैं, इसलिए दोनोंके ऊपर मेरी समान ही प्रीति है ॥ ३२ ॥

तस्माद्यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम्।
न हि शक्ष्यामि कौरव्यान्नश्यमानानुपेक्षितुम् ॥ ३३ ॥

अतः अब मैं सरस्वती तीर्थ करनेके लिए जाऊँगा; कौरवोंको अपने सम्मुख नष्ट होता हुआ देखकर उनकी उपेक्षा न कर सकूंगा ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञातश्च पाण्डवैः ।
तीर्थयात्रां ययौ रामो निवर्त्य मधुसूदनम् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥ ४९२३ ॥

महाबाहु बलराम ऐसा कहकर पाण्डवोंसे विदा हुए और कृष्णको लौटकर उन्होंने तीर्थ यात्राके निमित्त प्रस्थान किया ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ चौवनवां अध्याय समाप्त ॥ १५४ ॥ ४९२३ ॥

: १५५ :

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मकस्य महात्मनः ।
हिरण्यलोम्नो नृपतेः साक्षादिन्द्रसखस्य वै ॥ १ ॥
आहृतीनामधिपतेर्भोजस्यातियशस्विनः ।
दाक्षिणात्यपतेः पुत्रो दिक्षु रुक्मीति विश्रुतः ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले— इसी समय दक्षिणदेशके अधिपति, भोजवंशी, अत्यन्त यशस्वी, साक्षात् इन्द्रके मित्र, हिरण्यलोम नामक नृपति महात्मा भीष्मकका रुक्मी नामसे सब दिशाओंमें विख्यात आहृतियोंका राजा पाण्डवोंके पास आया ॥ १–२ ॥

यः किंपुरुषसिंहस्य गन्धमादनवासिनः ।
शिष्यः कृत्स्नं धनुर्वेदं चतुष्पादमवाप्तवान् ॥ ३ ॥

उस रुक्मीने गन्धमादन पर रहनेवाले किन्नरोंमें श्रेष्ठ द्रुमका शिष्य होकर उससे चारों पादोंसे युक्त धनुर्वेदको सम्पूर्ण रूपसे पढा था ॥ ३ ॥

यो माहेन्द्रं धनुर्लेभे तुल्यं गाण्डीवतेजसा ।
शार्ङ्गेण च महाबाहुः संमितं दिव्यमक्षयम् ॥ ४ ॥

गाण्डीव और शार्ङ्ग धनुषके समान दिव्य और अक्षय महेन्द्रके विजय धनुषको इस महाबाहुने प्राप्त किया था ॥ ४ ॥

त्रीण्येवैतानि दिव्यानि धनूंषि दिविचारिणाम् ।
वारुणं गाण्डिवं तत्र माहेन्द्रं विजयं धनुः ॥ ५ ॥

वरुणका गाण्डीव, इन्द्रका विजय और विष्णुका शार्ङ्ग ये तीनों ही धनुप देवोंमें दिव्य और अत्यन्त तेजस्वी विख्यात हैं ॥ ५ ॥

शार्ङ्गं तु वैष्णवं प्राहुर्दिव्यं तेजोमयं धनुः।
धारयामास यत्कृष्णः परसेनाभयावहम् ॥ ६ ॥
उनमेंसे शत्रुसेनाका नाश करनेवाला, दिव्य, तेजस्वी विष्णुका शार्ङ्ग धनुष कृष्ण धारण करते थे ॥ ६ ॥

गाण्डीवं पावकाल्लेभे खाण्डवे पाकशासनिः।
द्रुमाद्रुक्मी महातेजा विजयं प्रत्यपद्यत ॥ ७ ॥
इन्द्रके पुत्र अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निसे गाण्डीव धनुष पाया था, और महातेजस्वी रुक्मीने द्रुमके निकट जाकर विजयधनुष प्राप्त किया था ॥ ७ ॥

सञ्छिद्य मौरवान्पाशान्निहत्य मुरमोजसा।
निर्जित्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले ॥ ८ ॥
श्रीकृष्णने मुर दैत्यके अस्त्रमय सब पाशोंको काटकर और भूमिपुत्र नरकासुरको असुरोंके सहित मारकर आदितिके मणिजटित दोनों कुण्डल ॥ ८ ॥

षोडश स्त्रीसहस्राणि रत्नानि विविधानि च।
प्रतिपेदे हृषीकेशः शार्ङ्गं च धनुरुत्तमम् ॥ ९ ॥
सोलह हजार कुमारीकन्या अनेक तरहके रत्न और उत्तम धनुष शार्ङ्गको प्राप्त किया था ॥९॥

रुक्मी तु विजयं लब्ध्वा धनुर्मेघसमस्वनम्।
विभीषयन्निव जगत्पाण्डवानभ्यवर्तत ॥ १० ॥
रुक्मी मेघके समान शब्दवाले विजय धनुषको पाकर मानो सम्पूर्ण भूमिको भयभीत करता हुआ पाण्डवोंके पास गया ॥ १० ॥

नामृष्यत पुरा योऽसौ स्वबाहुबलदर्पितः।
रुक्मिण्या हरणं वीरो वासुदेवेन धीमता ॥ ११ ॥
अपनी भुजाओंके बलसे गर्वित वीर रुक्मी बुद्धिमान् कृष्णके द्वारा किए गए रुक्मिणी-हरणको न सह सका ॥ ११ ॥

कृत्वा प्रतिज्ञां नाहत्वा निवर्तिष्यामि केशवम्।
ततोऽन्वधावद्वार्ष्णेयं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ १२ ॥
यह उसने प्रतिज्ञा की थी, कि मैं कृष्णको विना मारे लौटूंगा नहीं। ऐसी प्रतिज्ञा करके उसने सभी अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृष्णका पीछा किया था ॥ १२ ॥

सेनया चतुरङ्गिण्या महत्या दूरपातया।
विचित्रायुधवर्मिण्या गङ्गयेव प्रवृद्धया ॥ १३ ॥
वह बढी हुई गंगाकी भांति विचित्र आयुध और कवचोंसे युक्त तथा दूरसे ही अपने लक्ष्यको बींधनेवाली अपनी चतुरंगिणी महासेनाके सहित कृष्णसे लडने गया था ॥ १३ ॥

स समासाद्य वार्ष्णेयं योगानामीश्वरं प्रभुम्।
व्यंसितो व्रीडितो राजन्नाजगाम स कुण्डिनम् ॥ १४ ॥

तब वृष्णिनन्दन योगेश्वर समर्थ कृष्णके समीप पहुंचकर उनसे लडकर पराजित हुआ और हे राजन्! लज्जित होकर कुण्डिन ग्राममें फिर लौटकर नहीं आया ॥ १४ ॥

यत्रैव कृष्णेन रणे निर्जितः परवीरहा।
तत्र भोजकटं नाम कृतं नगरमुत्तमम् ॥ १५ ॥

शत्रुनाशक रुक्मी जिस स्थानपर कृष्णसे लडकर हार गया था वहांपर उसने भोजकट नामक एक उत्तम नगर बसाया ॥ १५ ॥

सैन्येन महता तेन प्रभूतगजवाजिना।
पुरं तद्भुवि विख्यातं नाम्ना भोजकटं नृप ॥ १६ ॥

हे महाराज! अनेक हाथी घोडे और सेनासे युक्त वह नगर भोजकट नामसे संसारमें विख्यात है ॥ १६ ॥

स भोजराजः सैन्येन महता परिवारितः।
अक्षौहिण्या महावीर्यः पाण्डवान्समुपागमत् ॥ १७ ॥

वही महातेजस्वी भोजराज बहुतसी सेनामेंसे एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवोंके पास आया ॥ १७ ॥

ततः स कवची खड्गी शरी धन्वी तली रथी।
ध्वजेनादित्यवर्णेन प्रविवेश महाचमूम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर वह कवच, तलवार, बाण, शरासन और रथको धारण करनेवाले रुक्मीने सूर्यके वर्णवाली ध्वजाके सहित उस महासेनामें प्रवेश किया ॥ १८ ॥

विदितः पाण्डवेयानां वासुदेवप्रियेप्सया।
युधिष्ठिरस्तु तं राजा प्रत्युद्गम्याभ्यपूजयत् ॥ १९ ॥

वह पाण्डवोंको बताकर कृष्णका प्रिय करनेकी इच्छासे पाण्डवोंके पास गया। तब राजा युधिष्ठिरने दूरहीसे उठकर उसकी यथा उचित पूजा की ॥ १९ ॥

स पूजितः पाण्डुपुत्रैर्यथान्यायं सुसत्कृतः।
प्रतिपूज्य च तान्सर्वान्विश्रान्तः सहसैनिकः।
उवाच मध्ये वीराणां कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ २० ॥

रुक्मीने पाण्डवोंसे यथा उचित पूजित और सम्मानित होकर उन लोगोंमें भी अवस्थाके अनुसार सबकी यथायोग्य पूजा करके सेनाके सहित विश्राम किया, तदनन्तर वीरोंके बीचमें अर्जुनसे यह वचन कहा ॥ २० ॥

सहायोऽस्मि स्थितो युद्धे यदि भीतोऽसि पाण्डव।
करिष्यामि रणे साह्यमसह्यं तव शत्रुभिः ॥ २१ ॥

हे पाण्डव! इस युद्धमें यदि तुम शत्रुओंसे डरते हो, तो मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। शत्रुओंके साथ होनेवाले इस युद्धमें मैं तुम्हारी अद्वितीय सहायता करूंगा ॥ २१ ॥

न हि मे विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन।
निहत्य समरे शत्रूंस्तव दास्यामि फल्गुन ॥ २२ ॥

इस पृथ्वीके बीच ऐसा पराक्रमी कोई भी पुरुष नहीं है, जो मेरे समान हो सके। हे अर्जुन! मैं अकेला ही युद्धमें शत्रुओंको मारकर यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हें प्रदान करूंगा ॥ २२ ॥

इत्युक्तो धर्मराजस्य केशवस्य च सन्निधौ।
शृण्वतां पार्थिवेन्द्राणामन्येषां चैव सर्वशः ॥ २३ ॥
वासुदेवमभिप्रेक्ष्य धर्मराजं च पाण्डवम्।
उवाच धीमान्कौन्तेयः प्रहस्य सखिपूर्वकम् ॥ २४ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर, कृष्ण तथा दूसरे सभी राजाओंके बीचमें रुक्मीके यह वचन सुनकर कृष्ण और युधिष्ठिरके मुखकी ओर देख कर हंसते हुए धीरभावसे अर्जुन मित्रबुद्धिसे उससे यह वचन बोले ॥ २३-२४ ॥

युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः।
सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत्सखा मम ॥ २५ ॥

हे वीर रुक्म! घोषयात्राके समयमें जब महाबली गन्धर्वोंके साथ मैंने युद्ध किया था, उस समय मेरी सहायता करनेवाला मेरा मित्र कौन था? ॥ २५ ॥

तथा प्रतिभये तस्मिन्देवदानवसंकुले।
खाण्डवे युध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥ २६ ॥

खाण्डव वनमें देवता और दानवोंसे जब मैंने घोर युद्ध किया था, उस समय किसने मेरी सहायता की थी? ॥ २६ ॥

निवातकवचैर्युद्धे कालकेयैश्च दानवैः।
तत्र मे युध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥ २७ ॥

जब निवातकवच और कालकेय दानवोंके साथ मैंने युद्ध किया था, तब कौन मेरा सहायक हुआ था? ॥ २७ ॥

तथा विराटनगरे कुरुभिः सह सङ्गरे।
युध्यतो बहुभिस्तात कः सहायोऽभवन्मम ॥ २८ ॥

जिस समय विराटनगरमें रणमें मैंने अनेक कौरवोंसे युद्ध किया था, उस समय किसने मेरी सहायता की थी? ॥ २८ ॥

उपजीव्य रणे रुद्रं शक्रं वैश्रवणं यमम् ।
वरुणं पावकं चैव कृपं द्रोणं च माधवम् ॥ २९ ॥

युद्धके निमित्त रुद्र, इन्द्र कुबेर, वरुण, यम, अग्नि, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और कृष्णकी आराधना करके ॥ २९ ॥

धारयन्गाण्डिवं दिव्यं धनुस्तेजोमयं दृढम् ।
अक्षय्यशरसंयुक्तो दिव्यास्त्रपरिबृंहितः ॥ ३० ॥

दिव्य तेजसे युक्त दृढ गाण्डीवधनुषको धारण करके तथा अक्षय तूणीर और दिव्य-शस्त्रोंसे युक्त हूं ॥ ३० ॥

कौरवाणां कुले जातः पाण्डोः पुत्रो विशेषतः ।
द्रोणं व्यपदिशञ्शिष्यो वासुदेवसहायवान् ॥ ३१ ॥

तथा कौरवोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, विशेषकर मैं पाण्डुका पुत्र हूँ, द्रोणाचार्य जैसे गुरुका शिष्य हूँ, कृष्ण जैसे मेरे सहायक हैं ॥ ३१ ॥

कथमस्मद्विधो ब्रूयाद्भीतोऽस्मीत्ययशस्करम् ।
वचनं नरशार्दूल वज्रायुधमपि स्वयम् ॥ ३२ ॥

फिर भी 'मैं डर गया हूं' यह यशका लोप करनेवाला वचन साक्षात् इन्द्रसे भी मेरे जैसा पुरुष कैसे कह सकता है ? ॥ ३२ ॥

नास्मि भीतो महाबाहो सहायार्थश्च नास्ति मे ।
यथाकामं यथायोगं गच्छ वान्यत्र तिष्ठ वा ॥ ३३ ॥

हे महाबाहो ! न मुझे कुछ डर है, और न मुझे सहायताकी ही आवश्यकता है, हे महाबाहो ! अतः यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यहांसे दूसरे स्थान पर जाओ अथवा इसी स्थान पर निवास करो ॥ ३३ ॥

विनिवर्त्य ततो रुक्मी सेनां सागरसन्निभाम् ।
दुर्योधनमुपागच्छत्तथैव भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

हे भरतर्षभ जनमेजय ! तब रुक्मी उस समुद्रके समान अपनी सेनाको लौटाकर राजा दुर्योधनके पास भी उसी प्रकारसे गया ॥ ३४ ॥

तथैव चाभिगम्यैनमुवाच स नराधिपः ।
प्रत्याख्यातश्च तेनापि स तदा शूरमानिना ॥ ३५ ॥

वह राजा उसके पास भी जाकर भी वैसे ही वचन बोला; और उस शूरमानी दुर्योधनने भी उससे कहा, कि मुझको सहायताकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३५ ॥

×

द्वावेव तु महाराज तस्माद्युद्धाद्व्यपेयतुः।
रौहिणेयश्च वार्ष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिपः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार वृष्णिकुलमें उत्पन्न हुए रोहिणीपुत्र बलराम और राजा रुक्मी– ये दो ही पुरुष इस युद्धसे पृथक् रहे ॥ ३६ ॥

गते रामे तीर्थयात्रां भीष्मकस्य सुते तथा।
उपाविशन्पाण्डवेया मन्त्राय पुनरेव हि ॥ ३७ ॥

बलरामके तीर्थयात्राके निमित्त चले जानेपर और भीष्मकके पुत्र रुक्मीके लौट जानेपर पाण्डव फिर विचार करनेके लिए इकट्ठे हुए ॥ ३७ ॥

समितिर्धर्मराजस्य सा पार्थिवसमाकुला।
शुशुभे तारकाचित्रा द्यौश्चन्द्रेणेव भारत ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥ ४९६१ ॥

हे महाराज ! राजाओंसे भरी हुई धर्मराज युधिष्ठिरकी वह सभा तारोंसे चित्रित चन्द्रमासे युक्त आकाशमण्डलकी भांति शोभित होने लगी ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ १५५ ॥ ४९६१ ॥

: १५६ :

जनमेजय उवाच

तथा व्यूढेष्वनीकेषु कुरुक्षेत्रे द्विजर्षभ।
किमकुर्वन्त कुरवः कालेनाभिप्रचोदिताः ॥ १ ॥

राजा जनमेजय बोले– हे द्विजसत्तम ! कुरुक्षेत्रमें इस प्रकारसे सम्पूर्ण सेनाके व्यूहबद्ध होने पर कालसे प्रेरित कौरवोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा व्यूढेष्वनीकेषु यत्तेषु भरतर्षभ।
धृतराष्ट्रो महाराज सञ्जयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भरतश्रेष्ठ राजन् ! सब सेनाके इस प्रकारसे व्यूहबद्ध होकर खडे होने पर राजा धृतराष्ट्रने संजयसे यह वचन कहा ॥ २ ॥

एहि सञ्जय मे सर्वमाचक्ष्वानवशेषतः।
सेनानिवेशे यद्वृत्तं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ३ ॥

हे संजय ! आओ और कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके कुरुक्षेत्रमें इकट्ठी होनेपर वहां जो कुछ वृत्तान्त हुआ, उसका सम्पूर्ण वर्णन तुम मेरे सामने करो ॥ ३ ॥

दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषं चाप्यनर्थकम् ।
यदहं जानमानोऽपि युद्धदोषान्क्षयोदयान् ॥ ४ ॥
तथापि निकृतिप्रज्ञं पुत्रं दुर्द्यूतदेविनम् ।
न शक्नोमि नियन्तुं वा कर्तुं वा हितमात्मनः ॥ ५ ॥

मैं पुरुषार्थको व्यर्थ जान कर दैवको ही श्रेष्ठ समझता हूं; क्योंकि विनाशका परिणाम और युद्धके दोषोंको भलीभांति जानकर भी मैं अपने कपट बुद्धिवाले, जुआ खेलनेवाले पुत्रको शासनमें नहीं रख सकता और इस प्रकार अपना हित नहीं कर सकता ॥ ४-५ ॥

भवत्येव हि मे सूत बुद्धिर्दोषानुदर्शिनी ।
दुर्योधनं समासाद्य पुनः सा परिवर्तते ॥ ६ ॥

हे सूत ! वस्तुतः मेरी बुद्धि युद्धसे होनेवाले दोषोंको जानती तो है परन्तु दुर्योधनके मिलनेपर वह मेरी बुद्धि पलट जाती है ॥ ६ ॥

एवं गते वै यद्भावि तद्भविष्यति सञ्जय ।
क्षत्रधर्मः किल रणे तनुत्यागोऽभिपूजितः ॥ ७ ॥

हे संजय ! अब ऐसी अवस्थामें जो होना है वही होगा; क्योंकि युद्धमें शरीरका त्याग करना भी क्षत्रियोंका प्रशंसनीय धर्म है ॥ ७ ॥

सञ्जय उवाच

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथार्हसि ।
न तु दुर्योधने दोषमिममासक्तुमर्हसि ।
शृणुष्वानवशेषेण वदतो मम पार्थिव ॥ ८ ॥

संजय बोले– हे महाराज ! आप जो इच्छा करते हैं वह आपके योग्य ही प्रश्न है, यह ठीक है; परन्तु इस दोषको दुर्योधनके ऊपर लादना आपको उचित नहीं है । हे राजन् ! मैं जो वचन कहता हूं, उनको पूरी तरह सुनो ॥ ८ ॥

य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः ।
एनसा न स दैवं वा कालं वा गन्तुमर्हति ॥ ९ ॥

जो मनुष्य अपने किये हुए बुरे कर्मका अशुभ फल पाता है, उस पापके लिए काल तथा ईश्वरको दोषी ठहराना ठीक नहीं ॥ ९ ॥

महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत् ।
स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥ १० ॥

हे महाराज ! मनुष्योंमें जो पुरुष निन्दनीय कर्मका अनुष्ठान करता है, वह बुरे कर्मके आचरण करनेसे सब लोगोंके द्वारा वधके योग्य हो जाता है ॥ १० ॥

निकारा मनुजश्रेष्ठ पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया ।
अनुभूताः सहामात्यैर्निकृतैरधिदेवने ॥ ११ ॥

हे राजेन्द्र ! पाण्डवोंने जुएमें हारकर केवल आपके मुखको देखकर ही इष्ट मित्रोंके सहित सब प्रकारसे अपमान और तिरस्कार सहन किया था ॥ ११ ॥

हयानां च गजानां च राज्ञां चामिततेजसाम् ।
वैशसं समरे वृत्तं यत्तन्मे शृणु सर्वशः ॥ १२ ॥

युद्धमें घोडे, हाथी और महातेजस्वी राजाओंके नाश होनेका जो वृत्तान्त है, उसे आप मुझसे पूर्ण रीतिसे सुनें ॥ १२ ॥

स्थिरो भूत्वा महाराज सर्वलोकक्षयोदयम् ।
यथाभूतं महायुद्धे श्रुत्वा मा विमना भव ॥ १३ ॥

हे महाराज ! आप स्थिर होकर सब प्राणियोंके नाश करनेवाले इस महायुद्धके वृत्तान्तको सुनें और सुनकर आप दुःखी न हों ॥ १३ ॥

न ह्येव कर्ता पुरुषः कर्मणोः शुभपापयोः ।
अस्वतन्त्रो हि पुरुषः कार्यते दारुयन्त्रवत् ॥ १४ ॥

क्योंकि पुरुष शुभ तथा अशुभ कर्मोंका स्वयं कर्त्ता नहीं होता, वह कठपुतलीकी भांति दूसरेके वशमें होकर ही कर्म करता है ॥ १४ ॥

केचिदीश्वरनिर्दिष्टाः केचिदेव यदृच्छया ।
पूर्वकर्मभिरप्यन्ये त्रैधमेतद्विकृष्यते ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥
समाप्तं भीष्माभिषेचनपर्व ॥ ४९७६ ॥

शुभ और अशुभ कर्मके विषयमें तीन प्रकारके मत कहे जाते हैं । कोई कोई कहते हैं, कि मनुष्य ईश्वरके वशमें होकर सब कर्म करता है, कोई कहते हैं, कि पुरुष अपनी इच्छाके अनुसार कर्म करता है और कोई कहते हैं, कि पिछले जन्ममें किए गए कर्मोंके फलके अनुसार ही इस जन्ममें भी कर्म करता है ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५६ ॥
भीष्माभिषेचनपर्व समाप्त ॥ ४९७६ ॥

: १५७ :

संजय उवाच

हिरण्वत्यां निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
दुर्योधनो महाराज कर्णेन सह भारत ॥ १ ॥
सौबलेन च राजेन्द्र तथा दुःशासनेन च ।
आहूयोपह्वरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

संजय बोले– हे राजश्रेष्ठ महाराज ! जब महात्मा पाण्डवोंने हिरण्वती नदीके किनारे अपने शिविर स्थापित किए, तब, हे राजन् ! दुर्योधनने कर्णके साथ बातचीत करके तथा सुबल-पुत्र शकुनि और दुःशासनकी सम्मतिसे एकान्त स्थानमें उलूकको बुलाकर यह वचन कहा ॥ १-२ ॥

उलूक गच्छ कैतव्य पाण्डवान्सहसोमकान् ।
गत्वा मम वचो ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ३ ॥

हे कितव-नन्दन उलूक ! तुम सोमकवंशियोंसे युक्त पाण्डवोंके समीप जाओ और वहां पर जाकर कृष्णके संमुख अर्जुनसे मेरे इस वचनको कहो ॥ ३ ॥

इदं तत्समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च युद्धं लोकभयङ्करम् ॥ ४ ॥

कई वर्षोंसे जिसका विचार हो रहा था, वह महाभयंकर कुरु-पाण्डवोंका युद्ध अब आकर उपस्थित हो गया है ॥ ४ ॥

यदेतत्कत्थनावाक्यं सञ्जयो महदब्रवीत् ।
मध्ये कुरूणां कौन्तेय तस्य कालोऽयमागतः ।
यथा वः सम्प्रतिज्ञातं तत्सर्वं क्रियतामिति ॥ ५ ॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! कौरवोंकी सभामें संजयने आकर तुम्हारे पराक्रमकी बडी प्रशंसा की थी, उस पराक्रमको प्रकट करनेका समय अब आ पहुंचा है । तुम लोगोंने जिस प्रकारसे प्रतिज्ञा की थी, अब उन सब प्रतिज्ञाओंको पूरा करो ॥ ५ ॥

अमर्षं राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥ ६ ॥

हे पाण्डव ! अपमान, राज्यका छिन जाना वनवासका दुःख इन सभी दुःखोंका और द्रौपदीके क्लेशका स्मरण करके अब तुम पुरुष बन जाओ अर्थात् पराक्रम दिखाओ ॥६॥

यदर्थं क्षत्रिया सूते गर्भं तदिदमागतम् ।
बलं वीर्यं च शौर्यं च परं चाप्यस्त्रलाघवम्
पौरुषं दर्शयन्युद्धे कोपस्य कुरु निष्कृतिम् ॥ ७ ॥

क्षत्रियोंकी माता जिस कार्यके लिए पुत्रको उत्पन्न करती है, उसका समय अब उपस्थित हो गया है । अतः युद्धमें बल, वीर्य, पराक्रम और अत्यन्त शीघ्रतासे अस्त्र चलाकर अपने पराक्रमको प्रकट करते हुए अपने क्रोधका बदला लो ॥ ७ ॥

परिक्लिष्टस्य दीनस्य दीर्घकालोषितस्य च ।
न स्फुटेद्धृदयं कस्य ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्य च ॥ ८ ॥

ऐश्वर्यसे भ्रष्ट, बहुत दिनतक वनवासमें अत्यन्त ही क्लेश पाकर किसका हृदय फट न जाएगा ? ॥ ८ ॥

कुले जातस्य शूरस्य परवित्तेषु गृध्यतः ।
आच्छिन्नं राज्यमाक्रम्य कोपं कस्य न दीपयेत् ॥ ९ ॥

कुलीन, शूर, दूसरेके धन पर लालच न करनेवाले ऐसे मनुष्यका राज्य मेरे जैसा कोई व्यक्ति छीन ले, तो उसका क्रोध कैसे नहीं भडकेगा अर्थात् अवश्य भडकेगा ॥ ९ ॥

यत्तदुक्तं महद्वाक्यं कर्मणा तद्विभाव्यताम् ।
अकर्मणा कत्थितेन सन्तः कुपुरुषं विदुः ॥ १० ॥

तुमने जो अपनी बहुत बडाई की थी, उस बडाईको कर्मसे पूरा करो । विना कर्म किये अपनी मिथ्या बडाई करनेपर पण्डित लोग उसे अधम-पुरुष कहते हैं ॥ १० ॥

अमित्राणां वशे स्थानं राज्यस्य पुनरुद्भवः ।
द्वावर्थौ युध्यमानस्य तस्मात्कुरुत पौरुषम् ॥ ११ ॥
अस्मान्वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ।
अथ वा निहतोऽस्माभिर्वीरलोकं गमिष्यसि ॥ १२ ॥

शत्रुओंके वशमेंसे छुटकारा पाना और राज्यका फिरसे उद्धार करना; ये दो ही प्रयोजन युद्ध करनेवाले वीरके होते हैं अतः बल और पराक्रम दोनोंको प्रकट करके उसे पूर्ण करो या तो हमें हराकर इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करो, अथवा हमारे द्वारा मारे जाकर तुम वीरलोकको प्राप्त करोगे ॥ ११-१२ ॥

राष्ट्रात्प्रव्राजनं क्लेशं वनवासं च पाण्डव ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥ १३ ॥

हे पाण्डव ! राज्यसे भ्रष्ट होना, वनवास और द्रौपदीके दुःखको स्मरण करके तुम पुरुष बनो ॥ १३ ॥

अप्रियाणां च वचने प्रव्रजत्सु पुनः पुनः।
अमर्षं दर्शयाद्य त्वममर्षो ह्येव पौरुषम् ॥ १४ ॥

और तुम्हारे वन जाते हुए शत्रुओंके तुल्य कठोर वचनोंको वार वार कहनेवाले दुःशासन आदि पुरुषोंके वचनको स्मरण करके भी तुम अपना क्रोध प्रकट करो। क्योंकि क्रोधमें ही पौरुष रहता है ॥ १४ ॥

क्रोधो बलं तथा वीर्यं ज्ञानयोगोऽस्त्रलाघवम्।
इह ते पार्थ दृश्यन्तां संग्रामे पुरुषो भव ॥ १५ ॥

हे पार्थ ! युद्धमें तुम्हारा क्रोध, वल, वीर्य, ज्ञान और शीघ्र शस्त्रका चलाना व्यक्त हो, तुम युद्ध करो, और पुरुष बनो ॥ १५ ॥

तं च तूबरकं मूढं बह्वाशिनमविद्यकम्।
उलूक मद्वचो ब्रूया असकृद्भीमसेनकम् ॥ १६ ॥

हे उलूक ! वडे वडे सींगवाले वैलके समान उस वहुत भोजन करनेवाले, विद्याशून्य और मूर्ख भीमसेनसे भी वार वार मेरे इस वचनको कहना ॥ १६ ॥

अशक्तेनैव यच्छप्तं सभामध्ये वृकोदर।
दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ॥ १७ ॥

हे भीम ! अशक्त होनेपर भी तुमने सभामें जो शाप दिया था और सभाके वीचमें तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, वह मिथ्या न हो, यदि शक्ति हो, तो दुःशासनके रुधिरका पान करो ॥ १७ ॥

लोहाभिहारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम्।
पुष्टास्तेऽश्वा भृता योधाः श्वो युध्यस्व सकेशवः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥ ४९९४ ॥

तुम्हारे लोहेके शस्त्रास्त्र भी अभी मोथरे नहीं हुए है, कुरुक्षेत्रकी भूमि भी अभी कीचडसे रहित स्वच्छ है। तुम्हारे घोडे भी अभी तरोताजा हैं और सैनिक भी वेतन पाकर प्रसन्न हैं, अतः कृष्णको साथमें लेकर तुम कल युद्ध करो ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ १५७ ॥ ४९९४ ॥

: १५८ :

सञ्जय उवाच

सेनानिवेशं संप्राप्य कैतव्यः पाण्डवस्य ह ।
समागतः पाण्डवेयैर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १ ॥

संजय बोले– पाण्डवोंकी सेना–शिविरमें पहुंचकर कितवपुत्र उलूक पाण्डवोंके समीप जाकर राजा युधिष्ठिरसे यह वचन बोला ॥ १ ॥

अभिज्ञो दूतवाक्यानां यथोक्तं ब्रुवतो मम ।
दुर्योधनसमादेशं श्रुत्वा न क्रोद्धुमर्हसि ॥ २ ॥

आप दूतके कर्मको जानते ही हैं, अतः दुर्योधनने मुझसे जो कुछ कहा है, वह सब यथार्थ रूपसे कहूंगा, सुनकर मेरे ऊपर क्रोध न कीजियेगा ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

उलूक न भयं तेऽस्ति ब्रूहि त्वं विगतज्वरः ।
यन्मतं धार्तराष्ट्रस्य लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे उलूक ! तुम्हें कुछ भी भय नहीं है, अदीर्घदर्शी लो भी दुर्योधनका जो कुछ अभिप्राय है, तुम उसे निर्भीक होकर कह सुनाओ ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच

ततो द्युतिमतां मध्ये पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सृञ्जयानां च सर्वेषां कृष्णस्य च यशस्विनः ॥ ४ ॥
द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ ।
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ॥ ५ ॥

संजय बोले– तब उलूक महातेजस्वी महात्मा पाण्डव, सभी सृञ्जय, यशस्वी कृष्ण, पुत्रोंके सहित द्रुपद और विराटके समीप तथा अन्य सब राजाओंके बीचमें यह वचन कहने लगा ॥ ४-५ ॥

इदं त्वामब्रवीद्राजा धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
शृण्वतां कुरुवीराणां तन्निबोध नराधिप ॥ ६ ॥

हे राजा युधिष्ठिर ! महात्मा राजा दुर्योधनने सब कौरवोंके संमुख तुमसे यह वचन कहा है; तुम उसे सुनो ॥ ६ ॥

पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चानायिता सभाम् ।
शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ॥ ७ ॥

हे पाण्डव ! तुम स्वयं जुएमें पराजित हुए थे और द्रौपदी भी सभामें बुलाई गई थी, अतः अपने पौरुषमें अभिमान करनेवाला पुरुष अवश्य क्रोधित हो सकता है ॥ ७ ॥

द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद्विवासिताः ।
संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषिताः ॥ ८ ॥

हमने तुमको राज्यसे भ्रष्ट होकर बारह वर्ष वनमें रहनेके लिए भेजा था और तुम भी एक वर्षतक दासवृत्तिका अवलम्बन करके विराटके घरमें रहे थे ॥ ८ ॥

अमर्षं राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥ ९ ॥

अतः, हे पाण्डव ! अपमान राज्यका हरण, वनवास और द्रौपदीके दुःखको स्मरण करके पुरुष बनो अर्थात् अपना पुरुषार्थ प्रकट करो ॥ ९ ॥

अशक्तेन च यच्छप्तं भीमसेनेन पाण्डव ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ॥ १० ॥

हे पाण्डव ! निर्बल होनेपर भी भीमने जो प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार उसमें यदि शक्ति है, तो वह दुःशासनके रुधिरका पान करे ॥ १० ॥

लोहाभिहारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम् ।
समः पन्था भृता योधाः श्वो युध्यस्व सकेशवः ॥ ११ ॥

तुम्हारे सब शस्त्रोंके संस्कार हो चुके हैं, कुरुक्षत्र भी इस समय कीचडसे रहित है, मार्ग भी समतल है, सैनिक भी वेतन पाकर प्रसन्न हैं, अतः कलही कृष्णके साथ मिलकर युद्ध करो ॥ ११ ॥

असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे ।
आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ १२ ॥

हे कौन्तेय ! जैसे कोई बुद्धिहीन मनुष्य गन्धमादन पर्वतके शिखरपर चढनेकी इच्छा करता है, उसी प्रकार तुम युद्धमें बिना भीष्मका सामना किए ही अपनी व्यर्थ बडाई क्यों करते हो ? ॥ १२ ॥

द्रोणं च युध्यतां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि ।
अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥ १३ ॥

युद्धमें इन्द्रके समान युद्ध करनेवाले, योधाओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको विना पराजित किये ही तुम किस तरह राज्य ग्रहण करनेकी इच्छा करते हो ? ॥ १३ ॥

ब्राह्मे धनुषि चाचार्यं वेदयोरन्तरं द्वयोः।
युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकधरमच्युतम् ॥ १४ ॥
द्रोणं मोहाद्युधा पार्थ यज्जिगीषसि तन्मृषा।
न हि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥ १५ ॥

हे पार्थ ! तुम जो मन्त्रवेद और धनुर्वेदमें आचार्य, दोनों विद्याओंमें पारंगत, युद्धमें सदा अग्रभागमें रहनेवाले, अपराजित, महापराक्रमी और महातेजस्वी सेनापति द्रोणाचार्यको मोहमें आकर युद्धके द्वारा जीतनेकी अभिलाषा करते हो, वह सब तुम्हारा उद्योग व्यर्थ ही है। क्योंकि वायुने कभी सुमेरु पर्वतको उखाड फेंका हो, ऐसा हमने कभी नहीं सुना ॥ १४-१५ ॥

अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वापि निपतेन्महीम्।
युगं वा परिवर्तेत यद्येवं स्याद्यथात्थ माम् ॥ १६ ॥

यदि वायु कभी सुमेरु पर्वतको उडा सके, द्युलोक भी पृथ्वीपर गिर पडे अथवा कालचक्र परिवर्त्तित हो जावे, तभी तुम मुझसे जो कुछ कहते हो वह सब सम्भव हो सकता है ॥१६॥

को ह्याभ्यां जीविताकाङ्क्षी प्राप्याञ्जमरिमर्दनम्।
गजो वाजी नरो वापि पुनः स्वस्ति गृहान्व्रजेत् ॥ १७ ॥

ऐसा कौनसा हाथीसवार, घुडसवार और मनुष्य है, जो जीनेकी इच्छा करता हुआ भीष्म और द्रोण इन दोनोंसे अस्त्र लेकर युद्ध करे और कुशलतापूर्वक अपने घर लौट जाए॥१७॥

कथमाभ्यामभिध्यातः संसृष्टो दारुणेन वा।
रणे जीवन्विमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन् ॥ १८ ॥

युद्धमें भीष्म और द्रोणने जिसको मारनेका निश्चय कर लिया है अथवा उनके अस्त्रकी चोटसे विद्ध होकर पांवसे पृथ्वीको स्पर्श करनेवाला कौन मरण-धर्मशील मनुष्य जीतेजी बच सकता है ? ॥ १८ ॥

किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां न बुध्यसे राजचमूं समेताम्।
दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ॥ १९ ॥

तुम कुंएमें रहनेवाले मेढककी भांति मूढ होकर देवताओंसे रक्षित स्वर्गपुरीकी भांति, राजाओंसे रक्षित, देवोंकी सेनाके समान अपराजय, अनेक राजाओंकी सेनाओंसे युक्त मेरी शक्तिको जान नहीं पा रहे हो॥ १९ ॥

प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यैरुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च।
शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमध्यदेशैर्म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः ॥ २० ॥

यह सेना पूर्वीय, प्रतीच्य, दाक्षिणात्य, औदीच्य, काम्बोज, शक, खश, शाल्व, मत्स्य, कुरु-मध्य, म्लेच्छ, पुलिन्द, द्रविड, आन्ध्र, कांच्य आदि असंख्य राजाओंसे रक्षित है ॥२०॥

नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम् ।
मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥ २१ ॥

अल्पबुद्धिवाले! तुम संग्राममें इस अपार गङ्गावेगके समान पूर्णरूपसे बढे हुए अतएव अपराजेय, नाना भांतिके असंख्य वीर योद्धाओं और हाथियोंकी सेनाके बीच स्थित मेरे साथ युद्ध करनेकी किस प्रकारसे अभिलाषा करते हो? ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अभ्यावृत्य पुनर्जिष्णुमुलूकः प्रत्यभाषत ॥ २२

उलूक धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर फिर अर्जुनकी ओर मुख फेरकर कहने लगा ॥ २२ ॥

अकत्थमानो युध्यस्व कत्थसेऽर्जुन किं बहु ।
पर्यायात्सिद्धिरेतस्य नैतत्सिध्यति कत्थनात् ॥ २३ ॥

रे अर्जुन! तू झूठी बडाई त्यागकर युद्ध क्यों नहीं करता? बेकार ही अपनी बहुत प्रशंसा क्यों करता है? केवल बातोंहीसे युद्ध नहीं सिद्ध होता, पूरी रीतिसे पराक्रमको प्रकट करनेपर ही उसकी सिद्धि होती है ॥ २३ ॥

यदीदं कत्थनात्सिध्येत्कर्म लोके धनञ्जय ।
सर्वे भवेयुः सिद्धार्था बहु कत्थेत दुर्गतः ॥ २४ ॥

रे अर्जुन! लोकमें यदि अपनी बडाई करनेहीसे सब कर्म सिद्ध हो जायें, तो सभी सिद्ध मनोरथवाले हो जाएं, क्योंकि बहुत दरिद्री भी आत्मप्रशंसा कर सकता है ॥ २४ ॥

जानामि ते वासुदेवं सहायं जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम् ।
जानाम्येतत्त्वादृशो नास्ति योद्धा राज्यं च ते जानमानो हरामि ॥ २५ ॥

मैं तेरे सहायक कृष्णको भी जानता हूं, तालके समान ऊंचे गाण्डीव धनुषको भी जानता हूं और तेरे समान कोई वीर योद्धा नहीं है, इसे भी जानता हूं, और यह जानकर भी तेरे राज्यका हरण किए हुए हूं ॥ २५ ॥

न तु पर्यायधर्मेण राज्यं प्राप्नोति भूयसीम् ।
मनसैव हि भूतानि धाता प्रकुरुते वशे ॥ २६ ॥

रे पार्थ! मनुष्य छल आदि कर्मसे कभी राज्य नहीं प्राप्त कर सकता; विधाता ही एकमात्र अपने संकल्पसे सबको उसके वशमें करता है ॥ २६ ॥

त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव ।
भूयश्चैव प्रशासिष्ये निहत्य त्वां सबान्धवम् ॥ २७ ॥

मैंने तेरह वर्षोंतक तेरे राज्यका भोग किया; और तू केवल विलाप ही करता रह गया अब तुझको बन्धुबान्धवोंके सहित मारकर बहुत दिनतक इस सम्पूर्ण राज्यका शासन करूँगा ॥ २७ ॥

क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद्यत्त्वं दासपणे जितः।
क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फल्गुन ॥ २८ ॥

रे अर्जुन! जब तू दासभावकी बाजीपर पराजित हुआ था, उस समय तेरा गाण्डीव धनुष कहां था और उस समय भीमसेनका बल भी कहां चला गया था? ॥ २८ ॥

सगदाद्भीमसेनाच्च पार्थाच्चैव सगाण्डिवात्।
न वै मोक्षस्तदा वोऽभूद्विना कृष्णामनिन्दिताम् ॥ २९ ॥

उस समय निन्दारहित द्रौपदीके अतिरिक्त गदाधारी भीम और गाण्डीवधारीके अर्जुनके हाथोंसे भी तुम लोगोंकी मुक्ति नहीं हुई थी ॥ २९ ॥

सा वो दास्यं समापन्नान्मोक्षयामास भामिनी।
अमानुष्यसमायुक्तान्दास्यकर्मण्यवस्थितान् ॥ ३० ॥

तुम लोग अमानुषी दासभावको प्राप्त कर हम लोगोंके दासकर्ममें स्थित थे, उस समय भामिनी द्रौपदीने ही दास बने हुए तुम लोगोंको मुक्त किया था ॥ ३० ॥

अवोचं यत्षण्ढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत्।
धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥ ३१ ॥

मैंने जो तुमको षण्ढतिल अर्थात् नपुंसक कहा था, वह यथार्थ ही है; क्योंकि आगे जाकर अर्जुनने विराटनगरमें वेणी धारण की ही थी ॥ ३१ ॥

सूदकर्मणि च श्रान्तं विराटस्य महानसे।
भीमसेनेन कौन्तेय यच्च तन्मम पौरुषम् ॥ ३२ ॥

हे कुन्तीपुत्र! और विराटकी पाकशालामें भीम जो रसोइयेका काम करते करते थक जाता था, वह मेरा ही पराक्रम था ॥ ३२ ॥

एवमेव सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः।
श्रेण्यां कक्ष्यां च वेण्यां च संयुगे यः पलायते ॥ ३३ ॥

जो संग्राममें भागता है उस क्षत्रियको श्रेणी– अन्तःपुरमें वेणी धारण करवाकर अर्थात् नपुंसक बनाकर ही क्षत्रियजन दण्ड दिया करते हैं ॥ ३३ ॥

न भयाद्वासुदेवस्य न चापि तव फल्गुन।
राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युध्यस्व सहकेशवः ॥ ३४ ॥

रे अर्जुन! मैं न कृष्णके भयसे अथवा न तेरे ही भयसे कभी राज्य दूंगा, अतः कृष्णके साथ मिलकर मुझसे युद्ध कर ॥ ३४ ॥

न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वा विभीषणी ।
आत्तशस्त्रस्य मे युद्धे वहन्ति प्रतिगर्जना: ॥ ३५ ॥

क्योंकि संग्राममें शस्त्रधारी मेरे सम्मुख माया, इन्द्रजाल और बाजीगरी कभी भयंकर नहीं हो सकती; बल्कि वह क्रोधहीको उत्पन्न करती है ॥ ३५ ॥

वासुदेवसहस्रं वा फल्गुनानां शतानि वा ।
आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥ ३६ ॥

जिसका वाण कभी व्यर्थ नहीं जाता ऐसे मेरे सम्मुख आकर सहस्रों कृष्ण और सैकडों अर्जुन भी दसों दिशाओंमें भाग जाएंगे ॥ ३६ ॥

संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम् ।
प्रतरेमं महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥ ३७ ॥

तू भीष्मके साथ संग्राम कर अथवा मस्तकसे पर्वतको तोड अथवा बाहुओंमें इस अथाह पुरुष–सागरको पार कर जा ॥ ३७ ॥

शारद्वतमहामीनं विविंशतिझषाकुलम् ।
बृहद्बलसमुच्चालं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ॥ ३८ ॥

इस अगम पुरुषसागरमें कृपाचार्य महामीन, विविंशति मछलियोंका समुह बृहद्बल महातरङ्ग, और सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवा तिमिङ्गिल ह्वेल हैं ॥ ३८ ॥

दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं सुषेणचित्रायुधनागनक्रम् ।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥ ३९ ॥

दुःशासन प्रवाह, कर्ण और शल्य मत्स्य, सुषेण और चित्रायुध नाग और मगर, जयद्रथ पर्वत, पुरुमित्र गम्भीरता, दुर्मर्षण जल और शकुनि झरना है ॥ ३९ ॥

शस्त्रौघमक्षय्यमतिप्रवृद्धं यदावगाह्य श्रमनष्टचेताः ।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धवस्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥ ४० ॥

रे पार्थ ! इस अक्षय शस्त्रप्रवाहसे युक्त पूर्ण रीतिसे वढे हुए पुरुष–सागरको तरता हुआ जब तू परिश्रमसे थक कर चेतनारहित हो जावेगा और तेरे बन्धुबान्धव मारे जावेंगे तब तेरा मन बहुत संताप प्राप्त करेगा अर्थात् तब तू बहुत संतप्त होगा ॥ ४० ॥

तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाशुचेर्निवर्तितां पार्थ महीप्रशासनात्।
राज्यं प्रशास्तुं हि सुदुर्लभं त्वया बुभूषता स्वर्ग इवातपस्विना ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥ ॥ ५०३५ ॥

हे पार्थ ! पापी मनुष्यका चित्त जैसे स्वर्गकी अभिलाषासे निवृत्त होजाता है, वैसे ही पृथ्वीको शासन करनेकी अभिलाषासे तेरा अन्तःकरण भी निवृत्त हो जावेगा, क्योंकि तपसे हीन पुरुषके स्वर्ग पानेकी आशाके समान इस प्रशंसनीय राज्यको प्राप्त करना तेरे लिए बहुत ही कठिन कार्य है ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५८ ॥ ५०३५ ॥

: १५९ :

सञ्जय उवाच

उलूकस्त्वर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत्।
आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन्वाक्यशलाकया ॥ १ ॥

संजय बोले– हे महाराज ! उलूकने क्रोधसे पूरित विषधारी सर्पके समान वचनरूपी शलाकासे अर्जुनको और ज्यादा पीडित करते हुए दुर्योधनके कहे हुए सब वचनोंको फिर कहना आरम्भ किया ॥ १ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रुषिताः पाण्डवा भृशम्।
प्रागेव भृशसंक्रुद्धाः कैतव्येन प्रधर्षिताः ॥ २ ॥

पाण्डवलोग पहिलेहींसे क्रुद्ध हो रहे थे; इस समय उसके उन वचनोंको सुनकर विशेष करके कितवपुत्र उलूकके द्वारा भी तिरस्कृत होकर और ज्यादा क्रोधमें भर गये ॥ २ ॥

नासनेष्ववतिष्ठन्त बाहूंश्चैव विचिक्षिपुः।
आशीविषा इव क्रुद्धा वीक्षाञ्चक्रुः परस्परम् ॥ ३ ॥

वे अपने आसनोंपर बैठे नहीं रह सके अर्थात् उठकर खडे हो गए। और भुजाओंको फटकारने लगे तथा क्रुद्ध हुए हुए भयंकर विषधर सांपोंके समान एक दूसरेके मुखकी ओर देखने लगे ॥ ३ ॥

अवाक्शिरा भीमसेनः समुदैक्षत केशवम्।
नेत्राभ्यां लोहितान्ताभ्यामाशीविष इव श्वसन् ॥ ४ ॥

भीमसेन नीची गर्दन करके महाविषधारी सर्पकी भांति सांस लेते हुए लाल प्रान्त भागवाले नेत्रोंसे कृष्णकी ओर देखने लगे ॥ ४ ॥

आर्तं बालात्मजं दृष्ट्वा क्रोधेनाभिहतं भृशम् ।
उत्स्मयन्निव दाशार्हः कैतव्यं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥

तब कृष्णने वायुपुत्र भीमसेनको अत्यन्तक्रुद्ध और व्याकुल देखकर हंसकर कितवपुत्र उलूकसे कहा ॥ ५ ॥

प्रयाहि शीघ्रं कैतव्य ब्रूयाश्चैव सुयोधनम् ।
श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथास्तु तत् ॥ ६ ॥

हे उलूक ! तुम शीघ्र यहांसे जाकर दुर्योधनसे कहो, कि तुम्हारा वचन भी सुना गया और अर्थ भी ग्रहण किया गया । तेरा जैसा विचार है, वैसा ही होगा ॥ ६ ॥

मद्वचश्चापि भूयस्ते वक्तव्यः स सुयोधनः ।
श्व इदानीं प्रदृश्येथाः पुरुषो भव दुर्मते ॥ ७ ॥

हे उलूक ! तुम मेरे इस वचनको भी दुर्योधनसे कहना, कि कल इस समय हमारा पराक्रम देख लेना और, हे दुष्टबुद्धे ! तू भी पुरुष हो ॥ ७ ॥

मन्यसे यच्च मूढ त्वं न योत्स्यति जनार्दनः ।
सारथ्येन वृतः पार्थैरिति त्वं न बिभेषि च ॥ ८ ॥

रे मूढ ! तू जो ऐसा समझता है, कि पाण्डवोंने कृष्णको केवल सारथी कर्मके लिए चुना है, इससे वह युद्ध न करेंगे; ऐसा समझ कर ही जो तू निर्भय हो रहा है ॥ ८ ॥

जघन्यकालमप्येतद्भवेद्यत्सर्वपार्थिवान् ।
निर्दहेयमहं क्रोधात्तृणानीव हुताशनः ॥ ९ ॥

वैसा अन्तिम समयमें भी न होगा; क्योंकि क्रुद्ध होनेपर मैं तृणसमूहको भस्म करनेवाले अग्निकी भांति सब राजाओंको भस्म कर सकता हूं ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरनियोगात्तु फल्गुनस्य महात्मनः ।
करिष्ये युध्यमानस्य सारथ्यं विदितात्मनः ॥ १० ॥

किन्तु युधिष्ठिरकी आज्ञासे युद्धमें प्रवृत्त हुए आत्मज्ञानी महात्मा अर्जुनके रथका सारथी ही बनूंगा ॥ १० ॥

यद्युत्पतसि लोकांस्त्रीन्यद्याविशसि भूतलम् ।
तत्र तत्रार्जुनरथं प्रभाते द्रक्ष्यसेऽग्रतः ॥ ११ ॥

तू यदि तीनों लोकको भी लांघकर भाग जावे अथवा पृथ्वीमें भी घुस जाये, तो भी अगले दिन तू उसी उसी स्थानपर अर्जुनके रथको आगे आगे देखेगा ॥ ११ ॥

यच्चापि भीमसेनस्य मन्यसे मोघगर्जितम्।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतमित्यवधार्यताम् ॥ १२ ॥

तू भीमसेनका गरजना व्यर्थ समझता है; परन्तु तू यह समझ ले कि भीमने दुःशासनके रुधिरका पान कर ही लिया है ॥ १२ ॥

न त्वां समीक्षते पार्थो नापि राजा युधिष्ठिरः।
न भीमसेनो न यमौ प्रतिकूलप्रभाषिणम् ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनऽपष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥ ५०४८ ॥

और यह भी जान ले कि विरुद्ध वचन बोलनेवाले तुझे अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव कोई भी कुछ भी नहीं समझते ॥ १३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५९ ॥ ५०४८ ॥

: १६० :

संजय उवाच

दुर्योधनस्य तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः।
नेत्राभ्यामतिताम्राभ्यां कैतव्यं समुदैक्षत ॥ १ ॥

संजय बोले— दुर्योधनके वचनोंको सुनकर भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने अत्यन्त लाल लाल नेत्रोंसे उलूकको देखा ॥ १ ॥

स केशवमभिप्रेक्ष्य गुडाकेशो महायशाः।
अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ २ ॥

महायशस्वी अर्जुन कृष्णकी तरफ देखकर तथा अपनी विशाल भुजाओंको फैलाकर कितवपुत्र उलूकसे यह वचन बोले ॥ २ ॥

स्ववीर्यं यः समाश्रित्य समाह्वयति वै परान्।
अभीतः पूरयञ्शक्तिं स वै पुरुष उच्यते ॥ ३ ॥

जो पुरुष अपने पराक्रमका सहारा लेकर निर्भय होकर तथा अपनी शक्तिको भरपूर संग्रहीत करके शत्रुओंको युद्धके लिए निमंत्रित करता है उसको ही पुरुष कहा जाता है ॥ ३ ॥

परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान्।
क्षत्रबन्धुरशक्तत्वाल्लोके स पुरुषाधमः ॥ ४ ॥

परन्तु जो पराये बलका सहारा लेकर शत्रुओंको आवाहन करता है, उसे पुरुषोंमें असमर्थ अधम क्षत्रिय–पुरुष कहते हैं ॥ ४ ॥

स त्वं परेषां वीर्येण मन्यसे वीर्यमात्मनः ।
स्वयं कापुरुषो मूढ पराँश्च क्षेप्तुमिच्छसि ॥ ५ ॥

रे मूर्ख ! तू भी पराये बलके कारण अपनेको बलवान् समझ रहा है और स्वयं कापुरुष होकर भी दूसरोंपर कापुरुष होनेका आक्षेप करना चाहता है ॥ ५ ॥

यस्त्वं वृद्धं सर्वराज्ञां हितबुद्धिं जितेन्द्रियम् ।
मरणाय महाबुद्धिं दीक्षयित्वा विकत्थसे ॥ ६ ॥

तू जो सब राजाओंमें बूढे, हित करनेवाले, इन्द्रियोंको जीतनेवाले, महाबुद्धिमान् भीष्मको मरनेके लिए तैयार करके अपनी वृथा बडाई कर रहा है ॥ ६ ॥

भावस्ते विदितोऽस्माभिर्दुर्बुद्धे कुलपांसन ।
न हनिष्यन्ति गाङ्गेयं पाण्डवा घृणयेति च ॥ ७ ॥

उसका अभिप्राय हम लोगोंको विदित है । रे कुलकलंकी दुष्टबुद्धे ! तेरा यह अभिप्राय है, कि पाण्डव दया करके गंगानन्दन भीष्मको नहीं मारेंगे ॥ ७ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्र विकत्थसे ।
हन्तास्मि प्रथमं भीष्मं मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ८ ॥

रे दुर्योधन ! तू जिसके बलका सहारा लेकर वृथा गर्व कर रहा है; उसी भीष्मको मैं सब धनुर्धारियोंके देखते देखते सबसे पहिले मारूंगा ॥ ८ ॥

कैतव्य गत्वा भरतान्समेत्य सुयोधनं धार्तराष्ट्रं ब्रवीहि ।
तथेत्याह अर्जुनः सव्यसाची निशाव्यपाये भविता विमर्दः ॥ ९ ॥

हे उलूक ! तुम कौरवोंके बीचमें जाकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनसे यह वचन कहो, कि सव्य-साची अर्जुनने भी यही वचन कहा है; रात बीतनेपर सवेरे ही युद्ध आरम्भ होगा ॥९॥

यद्वोऽब्रवीद्वाक्यमदीनसत्त्वो मध्ये कुरूणां हर्षयन्सत्यसन्धः ।
अहं हन्ता पाण्डवानामनीकं शाल्वेयकांश्चेति ममैष भारः ॥ १० ॥

महापराक्रमी सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले भीष्मने कुरुगणके बीच सबके आनन्दको बढाते हुए यह जो कहा है कि "मैं पाण्डवोंकी सेना और शाल्वके लोगोंको युद्धमें मारूंगा, इसका भार मेरे ही ऊपर है ॥ १० ॥

हन्यामहं द्रोणमृते हि लोकं न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः ।
ततो हि ते लब्धतमं च राज्यं क्षयं गताः पांडवाश्चेति भावः ॥ ११ ॥

मैं द्रोणाचार्यके विना भी अकेला ही सब लोगोंका संहार कर सकता हूं; अतः पाण्डवोंसे तुम्हें कुछ भय नहीं है।" भीष्मके इस कथनसे तुम ऐसा मान बैठे हो कि सब राज्य तुम्हारा ही हो गया है और पाण्डव लोग सदाके लिये नष्ट हो गए हैं ॥ ११ ॥

×

स दर्पपूर्णो न समीक्षसे त्वमनर्थमात्मन्यपि वर्तमानम्।
तस्मादहं ते प्रथमं समूहे हन्ता समक्षं कुरुवृद्धमेव ॥ १२ ॥

इस कारण तुम अभिमानके कारण मतवाले होकर, अपनेमें जो सब अनर्थ विद्यमान हैं, उन्हें भी तुम नहीं देख पाते हो। इसलिए तुम्हारे संमुख ही मैं कुरुओंमें सबसे वृद्ध भीष्मको युद्धमें सबसे पहिले मारूंगा ॥ १२ ॥

सूर्योदये युक्तसेनः प्रतीक्ष्य ध्वजी रथी रक्षत सत्यसन्धम्।
अहं हि वः पश्यतां द्वीपमेनं रथाद्भीष्मं पातयितास्मि बाणैः ॥ १३ ॥

सूर्यके उदय होते ही तुम रथी, ध्वजधारी और सेनासे युक्त होकर सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले भीष्मकी रक्षा करो, क्योंकि तुम लोगोंके संमुख ही मैं द्वीप अर्थात् रक्षकस्वरूप महावीर भीष्मको अपने तेज बाणोंकी सहायतासे रथमेंसे पृथ्वीपर मारकर गिराऊंगा ॥ १३ ॥

श्वोभूते कत्थनावाक्यं विज्ञास्यति सुयोधनः।
अर्दितं शरजालेन मया दृष्ट्वा पितामहम् ॥ १४ ॥

दुर्योधन कल पितामह भीष्मको मेरे बाणोंसे पीडित होता हुआ देखकर अपनी बडाई फलको जान जाएगा ॥ १४ ॥

यदुक्तश्च सभामध्ये पुरुषो ह्रस्वदर्शनः।
क्रुद्धेन भीमसेनेन भ्राता दुःशासनस्तव ॥ १५ ॥
अधर्मज्ञो नित्यवैरी पापबुद्धिर्नृशंसकृत्।
सत्यां प्रतिज्ञां नचिराद्द्रक्ष्यसे तां सुयोधन ॥ १६ ॥

रे दुर्योधन! भीमसेनने क्रोधसे भर कर सभाके बीचमें तुम्हारे भाई नीच अधर्मी, सदा वैरी, पापी, दुष्ट, अधम पुरुष दुःशासनसे जो कुछ वचन कहा था, उस सत्य–प्रतिज्ञाको तू शीघ्र ही पूरी होते देखेगा ॥ १५-१६ ॥

अभिमानस्य दर्पस्य क्रोधपारुष्ययोस्तथा।
नैष्ठुर्यस्यावलेपस्य आत्मसम्भावनस्य च ॥ १७ ॥

अभिमान, गर्व, क्रोध, कडे वचन, निष्ठुरता, दर्प, अपनी बडाई ॥ १७ ॥

नृशंसतायास्तैक्ष्ण्यस्य धर्मविद्वेषणस्य च।
अधर्मस्यातिवादस्य वृद्धातिक्रमणस्य च ॥ १८ ॥

निर्दयता, टेढापन, धर्मसे द्वेष, अधर्म, निन्दा, बूढोंके वचनोंका अनादर ॥ १८ ॥

दर्शनस्य च वक्रस्य कृत्स्नस्यापनयस्य च।
द्रक्ष्यसि त्वं फलं तीव्रमचिरेण सुयोधन ॥ १९ ॥

हमारी तरफ वक्रता या टेढपनसे देखनेका तथा हमारे सम्पूर्ण राज्यके हरनेका आदि सब बुरे कर्मोंका फल भी, हे सुयोधन! तू शीघ्र ही भली भांति देखेगा ॥ १९ ॥

वासुदेवाद्वितीये हि मयि क्रुद्धे नराधिप ।
आशा ते जीविते मूढ राज्ये वा केन हेतुना ॥ २० ॥

रे राजन् ! रे मूढ ! कृष्णको सहाय बनाकर मेरे क्रुद्ध होनेपर तेरे प्राण और राज्यकी आशा कैसे की जा सकती है ? ॥ २० ॥

शान्ते भीष्मे तथा द्रोणे सूतपुत्रे च पातिते ।
निराशो जीविते राज्ये पुत्रेषु च भविष्यसि ॥ २१ ॥

मैं जिस समय भीष्म और द्रोणाचार्य शान्त अर्थात् गतप्राण हो जाएंगे और सूतपुत्र कर्णको भी मार गिरा दूंगा, तब तू अपने जीवन, राज्य और पुत्रसे निराश हो जायेगा ॥ २१ ॥

भ्रातॄणां निधनं दृष्ट्वा पुत्राणां च सुयोधन ।
भीमसेनेन निहतो दुष्कृतानि स्मरिष्यसि ॥ २२ ॥

रे सुयोधन ! तू अपने भाई और पुत्रोंका मरना सुनकर और स्वयं भीमसेनकी गदासे विकल होकर अपने किये हुए सब पापोंको स्मरण करेगा ॥ २२ ॥

न द्वितीयां प्रतिज्ञां हि प्रतिज्ञास्यति केशवः ।
सत्यं ब्रवीम्यहं ह्येतत्सर्वं सत्यं भविष्यति ॥ २३ ॥

रे धूर्त्त ! केशव दोबार कभी प्रतिज्ञा करना नहीं जानता । तुझसे सत्य ही कहता हूं, कि मैंने जो कुछ वचन कहे हैं, वे सब सत्य होंगे ॥ २३ ॥

इत्युक्तः कैतवो राजंस्तद्वाक्यमुपधार्य च ।
अनुज्ञातो निववृते पुनरेव यथागतम् ॥ २४ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार कहे जाने पर कितवपुत्र उलूक उन वातोंको अच्छी तरह समझ और याद करके युधिष्ठिरसे आज्ञा लेकर जैसा आया था, वैसा ही लौट गया ॥ २४ ॥

उपावृत्य तु पाण्डुभ्यः कैतव्यो धृतराष्ट्रजम् ।
गत्वा यथोक्तं तत्सर्वमुवाच कुरुसंसदि ॥ २५ ॥

पाण्डवोंके पाससे लौटकर कितव-पुत्र उलूकने धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनके पास जाकर कौरवोंकी सभामें सब बातें ठीक ठीक कह सुनाईं ॥ २५ ॥

केशवार्जुनयोर्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः ।
दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चाभ्यभाषत ॥ २६ ॥

तब, भरतश्रेष्ठ ! दुर्योधन कृष्ण अर्जुनके वचनोंको सुनकर दुःशासन, कर्ण और शकुनिसे बोला ॥ २६ ॥

आज्ञापयत राज्ञश्च बलं मित्रबलं तथा।
यथा प्रागुदयात्सर्वा युक्ता तिष्ठत्यनीकिनी ॥ २७ ॥

कि तुम लोग राजाओं और अपनी सेनाओंमें यह आज्ञा कर दो कि सूर्यके उदय होनेसे पहिले ही सम्पूर्ण सेना युद्धके लिए सजके खडी रहे ॥ २७ ॥

ततः कर्णसमादिष्टा दूताः प्रत्वरिता रथैः।
उष्ट्रवामीभिरप्यन्ये सदश्वैश्च महाजवैः ॥ २८ ॥

तदनन्तर कर्णकी आज्ञा पाते ही दूत लोग रथ, ऊंट और वेगवान् घोडोंपर चढकर ॥२८॥

तूर्णं परिययुः सेनां कृत्स्नां कर्णस्य शासनात्।
आज्ञापयन्तो राज्ञस्तान्योगः प्रागुदयादिति ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६०॥ समाप्तमुलूकयानपर्व ॥५०७७॥

कर्णकी आज्ञाके अनुसार सब सेनामें घूमकर सूर्यके उदय होनेके पहिले सेनाको युद्धके निमित्त सजाकर तैयार रखनेकी आज्ञा देनेके लिये गये ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ साठवां अध्याय समाप्त ॥१६०॥ उलूकयानपर्व समाप्त ॥५०७७॥

: १६१ :

सञ्जय उवाच

उलूकस्य वचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
सेनां निर्यापयामास धृष्टद्युम्नपुरोगमाम् ॥ १ ॥

संजय बोले– उलूककी बात सुनकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्नके नेतृत्वमें युद्ध करनेवाली सेनाको युद्धके लिए यात्रा करनेकी आज्ञा दे दी ॥ १ ॥

पदातिनीं नागवतीं रथिनीमश्ववृन्दिनीम्।
चतुर्विधबलां भीमामकम्प्यां पृथिवीमिव ॥ २ ॥

पृथ्वीके समान स्थिर, पैदल, हाथी, रथ और घोडोंसे युक्त वह भयंकर चतुराङ्गिनी सेना ॥ २ ॥

भीमसेनादिभिर्गुप्तां सार्जुनैश्च महारथैः।
धृष्टद्युम्नवशां दुर्गां सागरस्तिमितोपमाम् ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नके वशमें चलती हुई, अर्जुन भीम आदि महारथी वीरोंसे रक्षित होकर कठिनतासे पार जाने योग्य समुद्रकी भांति दीखने लगी ॥ ३ ॥

तस्यास्त्वग्रे महेष्वासः पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः ।
द्रोणप्रेप्सुरनीकानि धृष्टद्युम्नो प्रकर्षति ॥ ४ ॥

महाधनुर्धारी, द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करनेवाला युद्ध करनेमें अत्यन्त साहसी धृष्टद्युम्न उस सेनाके आगे होकर सैनिकोंका नेतृत्व कर रहा था ॥ ४ ॥

यथाबलं यथोत्साहं रथिनः समुपादिशत् ।
अर्जुनं सूतपुत्राय भीमं दुर्योधनाय च ॥ ५ ॥

इस धृष्टद्युम्नने बल और उत्साहके अनुसार रथियोंको युद्ध करनेके लिए आज्ञा दी। कर्णके लिए अर्जुनको, दुर्योधनके लिए भीमको ॥ ५ ॥

अश्वत्थाम्ने च नकुलं शैब्यं च कृतवर्मणे ।
सैन्धवाय च वार्ष्णेयं युयुधानमुपादिशत् ॥ ६ ॥

अश्वत्थामाके लिए नकुलको, कृतवर्माके लिए शैब्यको और जयद्रथके लिए वृष्णिवंशीय युयुधानको नियुक्त किया ॥ ६ ॥

शिखण्डिनं च भीष्माय प्रमुखे समकल्पयत् ।
सहदेवं शकुनये चेकितानं शलाय च ॥ ७ ॥

भीष्मके लिए शिखण्डीको आगे नियुक्त किया । शकुनिके लिए सहदेवको, शलके लिए चेकितानको ॥ ७ ॥

धृष्टकेतुं च शल्याय गौतमायोत्तमौजसम् ।
द्रौपदेयांश्च पञ्चभ्यस्त्रिगर्तेभ्यः समादिशत् ॥ ८ ॥

शल्यके लिए धृष्टकेतुको, कृपाचार्यके लिए उत्तमौजाको और त्रिगर्तोंसे युद्ध करनेके लिए द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको नियुक्त किया ॥ ८ ॥

वृषसेनाय सौभद्रं शेषाणां च महीक्षिताम् ।
समर्थं तं हि मेने वै पार्थादभ्याधिकं रणे ॥ ९ ॥

वृषसेन और शेषराजाओंसे युद्ध करनेके लिए अभिमन्युको नियुक्त किया; क्योंकि उस अभिमन्युको वह अर्जुनसे भी युद्ध करनेमें अधिक सामर्थ्यवान् समझता था ॥ ९ ॥

एवं विभज्य योधांस्तान्पृथक्च सह चैव ह ।
ज्वालावर्णो महेष्वासो द्रोणमंशमकल्पयत् ॥ १० ॥

तेजस्वी अग्निकी ज्वालाके समान वर्णवाले, महाधनुर्धारी सेनापति धृष्टद्युम्नने सब योद्धाओंका पृथक् पृथक् और इकट्ठे रूपमें विभाग करके द्रोणाचार्यको अपना अंश निश्चित किया ॥ १० ॥

धृष्टद्युम्नो महेष्वासः सेनापतिपतिस्ततः ।
विधिवद्व्यूह्य मेधावी युद्धाय धृतमानसः ॥ ११ ॥

इस प्रकार महाधनुर्धारी, सेनापतियोंका भी पति, युद्ध करनेकी इच्छावाला बुद्धिमान् धृष्टद्युम्न व्यूह बनाकर युद्धके लिए तैयार होकर ॥ ११ ॥

यथादिष्टान्यनीकानि पाण्डवानामयोजयत् ।
जयाय पाण्डुपुत्राणां यत्तस्तस्थौ रणाजिरे ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ ५०८९ ॥

सम्पूर्ण पाण्डवोंकी सेनाको सजाकर· पाण्डवोंके जयके निमित्त रणभूमिमें आकर खडा हुआ ॥ १२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६१ ॥ ५०८९ ॥

: १६२ :

धृतराष्ट्र उवाच

प्रतिज्ञाते फल्गुनेन वधे भीष्मस्य संजय ।
किमकुर्वन्त मे मन्दाः पुत्रा दुर्योधनादयः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले– हे संजय ! अर्जुनने युद्धमें भीष्मके वध करनेकी प्रतिज्ञा की, इसको सुनकर मेरे नीचबुद्धि पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

हतमेव हि पश्यामि गाङ्गेयं पितरं रणे ।
वासुदेवसहायेन पार्थेन दृढधन्वना ॥ २ ॥

कृष्णकी सहायतासे युक्त दृढ धनुर्धारी अर्जुनने युद्धमें अपने पिता गङ्गानन्दन भीष्मका वध मानों कर ही डाला है, ऐसा ही मैं समझता हूँ ॥ २ ॥

स चापरिमितप्रज्ञस्तच्छ्रुत्वा पार्थभाषितम् ।
किमुक्तवान्महेष्वासो भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ ३ ॥

हे संजय ! अर्जुनकी प्रतिज्ञा सुनकर वह महाबुद्धिमान्, महाधनुर्धारी, शत्रुओंपर प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीष्मने क्या कहा ? ॥ ३ ॥

सेनापत्यं च सम्प्राप्य कौरवाणां धुरन्धरः ।
किमचेष्टत गाङ्गेयो महाबुद्धिपराक्रमः ॥ ४ ॥

कौरवोंमें धुरन्धर, महाबुद्धि और पराक्रमसे युक्त भीष्मने सेनापति बनकर किस प्रकारसे उद्योग किया ? ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्तत्सञ्जयस्तस्मै सर्वमेव न्यवेदयत् ।
यथोक्तं कुरुवृद्धेन भीष्मेणामिततेजसा ॥ ५ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर संजयने अत्यन्त तेजस्वी कौरवोंमें वृद्ध भीष्मने जैसा कहा था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त धृतराष्ट्रसे कह सुनाया ॥ ५ ॥

सञ्जय उवाच

सेनापत्यमनुप्राप्य भीष्मः शान्तनवो नृप ।
दुर्योधनमुवाचेदं वचनं हर्षयन्निव ॥ ६ ॥

संजय बोले— हे राजन् ! शन्तनुपुत्र भीष्म सेनापति होकर दुर्योधनको आनन्दित करते हुए यह वचन बोले ॥ ६ ॥

नमस्कृत्वा कुमाराय सेनान्ये शक्तिपाणये ।
अहं सेनापतिस्तेऽद्य भविष्यामि न संशयः ॥ ७ ॥

मैं शक्तिको हाथमें धारण करनेवाले सेनापति स्वामिकार्त्तिकको नमस्कार करके आज तुम्हारा सेनापति बनूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

सेनाकर्मण्यभिज्ञोऽस्मि व्यूहेषु विविधेषु च ।
कर्म कारयितुं चैव भृतानप्यभृतांस्तथा ॥ ८ ॥

मैं सेनाका कर्म और अनेक भांतिके व्यूह रचनेमें निपुण हूं और वेतन पानेवाले तथा मित्रतासे इकट्ठे हुए सैनिक पुरुषोंसे जैसा कर्म कराना उचित है, वह भी जानता हूं ॥८॥

यात्रायानेषु युद्धेषु लब्धप्रशमनेषु च ।
भृशं वेद महाराज यथा वेद बृहस्पतिः ॥ ९ ॥

हे महाराज ! युद्धयात्रा, युद्ध और दूसरेके शस्त्रोंका निवारण तथा प्रतीकार करनेके बारेमें मैं उतना ही ज्ञानवान् हूँ जितने कि बृहस्पति ॥ ९ ॥

व्यूहानपि महारम्भान्दैवगान्धर्वमानुषान् ।
तैरहं मोहयिष्यामि पाण्डवान्व्येतु ते ज्वरः ॥ १० ॥

मैं जो देवता, गन्धर्व और मनुष्य सम्बन्धीय सब व्यूहकी रचना करना जानता हूं, उसीसे पाण्डवोंको मोहित करूंगा; अतः तुम अपनी सब चिन्ता दूर करो ॥ १० ॥

सोऽहं योत्स्यामि तत्त्वेन पालयंस्तव वाहिनीम् ।
यथावच्छास्त्रतो राजन्व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ११ ॥

हे राजन् ! तुम्हारी सेनाकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए मैं शास्त्रके अनुसार निष्कपट चित्तसे युद्ध करूंगा, अतः तुम अपनी सब मानासिक चिन्ता और शोक दूर करो ॥ ११ ॥

दुर्योधन उवाच

न विद्यते मे गाङ्गेय भयं देवासुरेष्वपि।
समस्तेषु महाबाहो सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १२ ॥

दुर्योधन बोले– हे महाबाहो गङ्गानन्दन भीष्म ! मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूं कि सम्पूर्ण देवता और असुरोंसे भी मुझे भय नहीं है ॥ १२ ॥

किं पुनस्त्वयि दुर्धर्षे सेनापत्ये व्यवस्थिते।
द्रोणे च पुरुषव्याघ्रे स्थिते युद्धाभिनन्दिनि ॥ १३ ॥

फिर तुम्हारे समान महावीर पुरुषके सेनापति होने और पुरुषसिंह द्रोणाचार्यके प्रसन्नतापूर्वक युद्धमें उपस्थित होनेपर मुझे भय नहीं रहेगा, इसमें कौनसा सन्देह है ? ॥ १३ ॥

भवद्भ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां स्थिताभ्यां विजयो मम।
न दुर्लभं कुरुश्रेष्ठ देवराज्यमपि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! पुरुषोंमें मुख्य आप दोनों महावीर पुरुषोंके स्थित होनेपर मेरी निश्चय ही विजय होगी; विजयकी तो बात ही क्या है, देवताओंका राज्य भी मेरे लिए मुझे दुर्लभ नहीं है ॥ १४ ॥

रथसंख्यां तु कार्त्स्न्येन परेषामात्मनस्तथा।
तथैवातिरथानां च वेत्तुमिच्छामि कौरव ॥ १५ ॥

हे कौरव ! अब शत्रुओंकी और आपकी सेनामें कितने रथी और अतिरथी हैं, उनको मैं जाननेकी इच्छा करता हूं ॥ १५ ॥

पितामहो हि कुशलः परेषामात्मनस्तथा।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वैः सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ १६ ॥

हे पितामह ! आप अपने और शत्रुपक्षके वीरोंको अच्छी तरह जानते हैं, अतः मैं इन सम्पूर्ण राजाओंके सहित इस वृत्तान्तको सुननेकी अभिलाषा करता हूं ॥ १६ ॥

भीष्म उवाच

गान्धारे शृणु राजेन्द्र रथसंख्यां स्वके बले।
ये रथाः पृथिवीपाल तथैवातिरथाश्च ये ॥ १७ ॥

भीष्म बोले– हे गान्धारीनन्दन राजेन्द्र ! अपनी सेनामें रथियोंकी संख्या सुनो, हे राजन् ! जो लोग रथी और अतिरथी हैं, उनको मैं गिनता हूं ॥ १७ ॥

बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
रथानां तव सेनायां यथामुख्यं तु मे शृणु ॥ १८ ॥

हे राजन् ! तुम्हारी सेनामें कई सहस्र, कई लाख और अनेक अर्बुद रथी हैं; उनमें जो मुख्य हैं, उनका नाम कहता हूं, तुम सुनो ॥ १८ ॥

भवानग्रे रथोदारः सह सर्वैः सहोदरैः ।
दुःशासनप्रभृतिभिर्भ्रातृभिः शतसंमितैः ॥ १९ ॥

दुःशासन आदि सौ भाईयोंके सहित तुम स्वयं एक प्रधान रथी हो ॥ १९ ॥

सर्वे कृतप्रहरणाश्छेद्यभेद्यविशारदाः ।
रथोपस्थे गजस्कन्धे गदायुद्धेऽसिचर्मणि ॥ २० ॥

तुम सभी भाई शस्त्र चलानेके विषयमें कृतकार्य और छेदन, भेदन आदि सब विषयोंको जाननेवाले हो । तुम लोग रथ और हाथियोंपर चढके जैसे लडनेवाले हो, वैसे ही गदा, युद्ध तलवार आदि शस्त्रोंको भी चलानेवाले हो ॥ २० ॥

संयन्तारः प्रहर्तारः कृतास्त्रा भारसाधनाः ।
इष्वस्त्रे द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥ २१ ॥

तुम लोग शस्त्रोंके संहार, प्रहारमें कुशल तथा महान् कार्य करनेवाले हो तथा धनुर्विद्यामें द्रोणाचार्य और शरद्वतके पुत्र कृपाचार्यके शिष्य हो ॥ २१ ॥

एते हनिष्यन्ति रणे पाञ्चालान्युद्धदुर्मदान् ।
कृतकिल्बिषाः पाण्डवेयैर्धार्तराष्ट्रा मनस्विनः ॥ २२ ॥

यह मनस्वी धार्त्तराष्ट्रगण पाण्डवोंके ऊपर क्रुद्ध होकर युद्धमें मतवाले पाञ्चाल वीरोंको मारेंगे ॥ २२ ॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ सर्वसेनापतिस्तव ।
शत्रून्विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान् ।
न त्वात्मनो गुणान्वक्तुमर्हामि विदितोऽस्मि ते ॥ २३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! तुम सबका सेनापति मैं भी तुम्हारे शत्रु पाण्डवोंको तिनकेके समान समझता हुआ सबका नाश करूंगा । हे राजन् ! अपना गुण सम्पूर्ण रूपसे वर्णन करना मेरे लिए उचित नहीं है, मैं जैसा हूं, उसे तुम जानते ही हो ॥ २३ ॥

कृतवर्मा त्वतिरथो भोजः प्रहरतां वरः ।
अर्थसिद्धिं तव रणे करिष्यति न संशयः ॥ २४ ॥

प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ अतिरथी भोजराज कृतवर्मा भी युद्धमें तुम्हारे अर्थकी सिद्धि करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥

शस्त्रविद्भिरनाधृष्यो दूरपाती दृढायुधः ।
हनिष्यति रिपूंस्तुभ्यं महेन्द्रो दानवानिव ॥ २५ ॥

शस्त्रोंको जाननेवालोंके द्वारा भी अपराजेय दृढशस्त्र और दूरतक अस्त्रोंके चलानेमें समर्थ ये इन्द्र जैसे दानवोंका संहार करते हैं, वैसे ही तुम्हारे लिए शत्रुओंकी सेनाको नष्ट करेंगे ॥ २५ ॥

मद्रराजो महेष्वासः शल्यो मेऽतिरथो मतः ।
स्पर्धते वासुदेवेन यो वै नित्यं रणे रणे ॥ २६ ॥

मेरी समझमें महाधनुर्धारी मद्रराज शल्य भी एक मुख्य अतिरथी हैं, यह शल्य युद्धमें कृष्णसे सदा लडनेकी इच्छा करते हैं ॥ २६ ॥

भागिनेयान्निजांस्त्यक्त्वा शल्यस्ते रथसत्तमः ।
एष योत्स्यति संग्रामे कृष्णं चक्रगदाधरम् ॥ २७ ॥

विशेष करके रथियोंमें श्रेष्ठ शल्य अपने भांजे पाण्डवोंको छोड करके तुम्हारे पास आ गए हैं, ये चक्र और गदाको धारण करनेवाले कृष्णके साथ युद्धमें अवश्य लडेंगे ॥ २७ ॥

सागरोर्मिसमैर्वेगैः प्लावयन्निव शात्रवान् ।
भूरिश्रवाः कृतास्त्रश्च तव चापि हितः सुहृत् ॥ २८ ॥

अतः यह समुद्रके तरंगके समान अपने वेगोंसे शत्रुओंको वहाते हुए अस्त्र चलानेमें निपुण भूरिश्रवा भी तेरा हित करनेवाला और मित्र है ॥ २८ ॥

सौमदत्तिर्महेष्वासो रथयूथपयूथपः ।
बलक्षयममित्राणां सुमहान्तं करिष्यति ॥ २९ ॥

महाधनुर्धारी रथयूथपतियोंका भी रथपति सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा भी शत्रुओंकी सेनाका खूब विध्वंस करेगा ॥ २९ ॥

सिन्धुराजो महाराज मतो मे द्विगुणो रथः ।
योत्स्यते समरे राजन्विक्रान्तो रथसत्तमः ॥ ३० ॥

हे महाराज ! सिंधुराज जयद्रथको मैं द्विगुणरथ समझता हूं; यह रथियोंमें श्रेष्ठ सम्पूर्ण रूपसे पराक्रम प्रकाशित करके शत्रुओंसे युद्ध करेगा ॥ ३० ॥

द्रौपदीहरणे पूर्वं परिक्लिष्टः स पाण्डवैः ।
संस्मरंस्तं परिक्लेशं योत्स्यते परवीरहा ॥ ३१ ॥

हे राजन् ! द्रौपदीहरणके समयमें पाण्डवोंने जो इसे अत्यन्त क्लेश दिया था, उसे पूर्ण रीतिसे स्मरण करके यह शत्रुनाशी वीर युद्धमें प्रवृत्त होगा ॥ ३१ ॥

एतेन हि तदा राजंस्तप आस्थाय दारुणम् ।
सुदुर्लभो वरो लब्धः पाण्डवान्योद्धुमाहवे ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! उस समयमें इसने बहुत कठिन तपस्या करके महादेवसे पाण्डवोंसे युद्धमें लडनेके लिए अत्यन्त दुर्लभ वर पाया था ॥ ३२ ॥

स एष रथशार्दूलस्तद्वैरं संस्मरन्रणे ।
योत्स्यते पाण्डवांस्तात प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥३३॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥ ५१२२ ॥

अतः, हे तात ! यह राजशार्दूल जयद्रथ युद्धमें उस वैरका स्मरण करके अपने प्रिय प्राणको त्याग करके भी पाण्डवोंसे युद्ध करेगा ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ बासठवां अध्याय समाप्त ॥ १६२ ॥ ५१२२ ॥

: १६३ :

भीष्म उवाच

सुदक्षिणस्तु काम्बोजो रथ एकगुणो मतः ।
तवार्थसिद्धिमाकाङ्क्षन्योत्स्यते समरे परैः ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे राजसत्तम ! काम्बोज राज सुदक्षिण एकगुना रथी है; तुम्हारी अर्थसिद्धिकी इच्छा करके यह शत्रुओंसे युद्ध करेगा ॥ १ ॥

एतस्य रथसिंहस्य तवार्थे राजसत्तम ।
पराक्रमं यथेन्द्रस्य द्रक्ष्यन्ति कुरवो युधि ॥ २ ॥

हे राजाओंमें श्रेष्ठ दुर्योधन ! कौरव लोग युद्धमें तुम्हारे निमित्त शस्त्र चलानेवाले इस रथसिंहका इन्द्रके समान पराक्रम देखेंगे ॥ २ ॥

एतस्य रथवंशो हि तिग्मवेगप्रहारिणाम् ।
काम्बोजानां महाराज शलभानामिवायतिः ॥ ३ ॥

हे महाराज ! तीक्ष्ण अस्त्रोंका वेगसे प्रहार करनेवाले कम्बोज देशीय वीरोंकी यह रथपंक्ति टिड्डीदलके समान अत्यन्त विस्तृत है ॥ ३ ॥

नीलो माहिष्मतीवासी नीलवर्मधरस्तव ।
रथवंशेन शत्रूणां कदनं वै करिष्यति ॥ ४ ॥

हे महाराज ! माहिष्मतीनगरका वासी नीले कवचको धारण करनेवाला नीलराज भी रथी है; यह अपने रथके समूहसे तुम्हारे शत्रुओंका नाश करेगा ॥ ४ ॥

कृतवैरः पुरा चैव सहदेवेन पार्थिवः ।
योत्स्यते सततं राजंस्तवार्थे कुरुसत्तम ॥ ५ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ राजन् ! पहिले सहदेवने राजासे शत्रुता की थी अतः तुम्हारे निमित्त यह स्थिर होकर युद्ध करेगा ॥ ५ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ समेतौ रथसत्तमौ।
कृतिनौ समरे तात दृढवीर्यपराक्रमौ ॥ ६ ॥

हे तात! महाबलवान्, पराक्रमी, युद्धकर्मको जाननेवाले अवन्तिदेशीय विन्द और अनुविन्द उत्तम रथीके रूपमें विख्यात हैं ॥ ६ ॥

एतौ तौ पुरुषव्याघ्रौ रिपुसैन्यं प्रधक्ष्यतः।
गदाप्रासासिनाराचैस्तोमरैश्च भुजच्युतैः ॥ ७ ॥

अपने हाथसे प्रहार किए गए गदा, प्रास, तलवार और तोमर आदि शस्त्रोंको चलाकर ये दोनों पुरुषसिंह शत्रुओंकी सेनाको भस्म करते रहेंगे ॥ ७ ॥

युद्धाभिकामौ समरे क्रीडन्ताविव यूथपौ।
यूथमध्ये महाराज विचरन्तौ कृतान्तवत् ॥ ८ ॥

दो यूथपति हाथी जिस प्रकार आपसमें खेल करते हैं, उसी तरह युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले ये दोनों युद्धमें शत्रुसेनाके बीच यमराजके समान विचरेंगे ॥ ८ ॥

त्रिगर्ता भ्रातरः पञ्च रथोदारा मता मम।
कृतवैराश्च पार्थेन विराटनगरे तदा ॥ ९ ॥

हे राजेन्द्र! त्रिगर्त्तके पांचों भाई मेरे मतमें रथश्रेष्ठ हैं। विराटनगरमें अर्जुनने इनके साथ शत्रुता की थी ॥ ९ ॥

मकरा इव राजेन्द्र समुद्धततरङ्गिणीम्।
गङ्गां विक्षोभयिष्यन्ति पार्थानां युधि वाहिनीम् ॥ १० ॥

अतः घडियाल मगर जैसे तरङ्गसे युक्त भरी हुई गंगाको मथते हैं उसी प्रकार युद्धमें ध्वजाधारी पाण्डवोंकी सेनाको भी ये लोग तितर बितर कर देंगे ॥ १० ॥

ते रथाः पञ्च राजेन्द्र येषां सत्यरथो मुखम्।
एते योत्स्यन्ति समरे संस्मरन्तः पुरा कृतम् ॥ ११ ॥

सत्यरथ जिनमें प्रधान है, ऐसे ये पांच त्रिगर्त रथी हैं, । ये सभी अर्जुनके द्वारा पहले किए गए कामोंको याद करके युद्धमें लडेंगे ॥ ११ ॥

व्यलीकं पाण्डवेयेन भीमसेनानुजेन ह।
दिशो विजयता राजञ्श्वेतवाहेन भारत ॥ १२ ॥

हे भारत! पहिले भीमसेनके छोटे भाई श्वेत घोडोंवाले अर्जुनने दिग्विजयमें प्रवृत्त होकर इन लोगोंका अनिष्ट किया था, उसको पूरी रीतिसे स्मरण करके ये लोग युद्ध करेंगे ॥ १२ ॥

ते हनिष्यन्ति पार्थानां समासाद्य महारथान्।
वरान्वरान्महेष्वासान्क्षत्रियाणां धुरन्धराः ॥ १३ ॥

ये सब धुरन्धर वीर युद्धमें इकट्ठे होकर पाण्डवसेनाके श्रेष्ठ श्रेष्ठ धनुर्धारी क्षत्रिय महारथियोंको मारेंगे ॥ १३ ॥

लक्ष्मणस्तव पुत्रस्तु तथा दुःशासनस्य च।
उभौ तौ पुरुषव्याघ्रौ संग्रामेष्वनिवर्तिनौ ॥ १४ ॥
तरुणौ सुकुमारौ च राजपुत्रौ तरस्विनौ।
युद्धानां च विशेषज्ञौ प्रणेतारौ च सर्वशः ॥ १५ ॥

हे राजन्! तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण और दुःशासनका पुत्र, संग्रामसे न भागनेवाले, पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी ये दोनों तरुण और सुकुमार राजकुमार महातेजस्वी, युद्धके कार्य जाननेवाले और शस्त्र चलानेमें निपुण हैं ॥ १४–१५ ॥

रथौ तौ रथशार्दूल मतौ मे रथसत्तमौ।
क्षत्रधर्मरतौ वीरौ महत्कर्म करिष्यतः ॥ १६ ॥

हे रथियोंमें श्रेष्ठ दुर्योधन! ये दोनों रथी अत्यन्त श्रेष्ठ रथी हैं, ऐसा मेरा विचार है। ये दोनों वीर क्षत्रिय धर्ममें स्थित होकर युद्धमें महान् कर्म करेंगे ॥ १६ ॥

दण्डधारो महाराज रथ एको नरर्षभः।
योत्स्यते समरं प्राप्य स्वेन सैन्येन पालितः ॥ १७ ॥

हे महाराज! मनुष्योंमें श्रेष्ठ दण्डधार एकगुने रथी हैं, ये रणभूमिमें जाकर अपनी सेनासे रक्षित होकर तुम्हारे निमित्त युद्ध करेंगे ॥ १७ ॥

बृहद्बलस्तथा राजा कौसल्यो रथसत्तमः।
रथो मम मतस्तात दृढवेगपराक्रमः ॥ १८ ॥

हे तात! महावेगवान् पराक्रमी रथी श्रेष्ठ कौसलराज बृहद्बल भी मेरे मतमें रथी है ॥ १८ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे स्वां चमूं सम्प्रहर्षयन्।
उग्रायुधो महेष्वासो धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्रपुत्रोंके हितकार्यमें रत होकर यह अस्त्रशस्त्रको धारण करनेवाला महाधनुर्धारी यह बृहद्बल रणभूमिमें अपनी सेनाको आनन्दित करते हुए युद्ध करेगा ॥ १९ ॥

कृपः शारद्वतो राजन्रथयूथपयूथपः।
प्रियान्प्राणान्परित्यज्य प्रधक्ष्यति रिपूंस्तव ॥ २० ॥

हे राजन्! रथसमूहके स्वामियोंके भी स्वामी शरद्वतपुत्र कृपाचार्य अपना प्रिय प्राण त्याग कर भी तुम्हारे शत्रुओंका नाश करेंगे ॥ २० ॥

गौतमस्य महर्षेर्य आचार्यस्य शरद्वतः ।
कार्तिकेय इवाजेयः शरस्तम्बात्सुतोऽभवत् ॥ २१ ॥
एष सेनां बहुविधां विविधायुधकार्मुकाम् ।
अग्निवत्समरे तात चरिष्यति विमर्दयन् ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ ५१४४ ॥

हे तात ! अजेय स्वामि कार्त्तिकके समान जो शरस्तम्बसे आचार्य शरद्वतवंशी महर्षि गौतमके वीर्य द्वारा उत्पन्न हुए थे; ये वही वीरवर पुरुष युद्धमें अनेक तरहके धनुषें और शस्त्रोंको धारण करनेवाली अनेक तरहकी शत्रुओंकी सेनाको भस्म करते हुए साक्षात् अग्निके समान रणभूमिमें घूमेंगे ॥ २१-२२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ तिरेसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६३ ॥ ५१४४ ॥

: १६४ :

भीष्म उवाच

शकुनिर्मातुलस्तेऽसौ रथ एको नराधिप ।
प्रयुज्य पाण्डवैर्वैरं योत्स्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे नरनाथ ! तुम्हारा मामा शकुनि भी एकरथी है; पाण्डवोंके साथ शत्रुता करके यह अवश्य युद्ध करेगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १ ॥

एतस्य सैन्या दुर्धर्षाः समरेऽप्रतियायिनः ।
विकृतायुधभूयिष्ठा वायुवेगसमा जवे ॥ २ ॥

युद्धमें कभी पीछे न हरनेवाले इस वीरकी सेना अनेक शस्त्रोंको धारण करनेवाली और अत्यन्त बलवान् तथा वेगमें वायुके वेगके समान है ॥ २ ॥

द्रोणपुत्रो महेष्वासः सर्वेषामति धन्विनाम् ।
समरे चित्रयोधी च दृढास्त्रश्च महारथः ॥ ३ ॥

महाधनुर्धारी महारथी द्रोणाचार्यका पुत्र अश्वत्थामा सब धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, युद्धमें महावीर योद्धा और दृढ शस्त्रधारी है ॥ ३ ॥

एतस्य हि महाराज यथा गाण्डीवधन्वनः ।
शरासनाद्विनिर्मुक्ताः संसक्ता यान्ति सायकाः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाले अर्जुनकी भांति इसके शरासनसे छूटे हुए सब बाण शत्रुओंके ऊपर इकट्ठे हो कर जाते हैं ॥ ४ ॥

नैष शक्यो मया वीरः संख्यातुं रथसत्तमः ।
निर्दहेदपि लोकांस्त्रीनिच्छन्नेष महायशाः ॥ ५ ॥

मैं इस रथीश्रेष्ठ महावीर पुरुषके गुणोंको गिनानेमें असमर्थ हूं, यह महायशस्वी इच्छा करनेपर तीनों लोकोंको भी भस्म कर सकता है ॥ ५ ॥

क्रोधस्तेजश्च तपसा सम्भृतोऽऽश्रमवासिना ।
द्रोणेनानुगृहीतश्च दिव्यैरस्त्रैरुदारधीः ॥ ६ ॥

आश्रममें रहनेवाले इस अश्वत्थामाने अपने तपसे क्रोध और तेजको प्राप्त किया है, उदारबुद्धिसे युक्त इसने द्रोणाचार्यकी कृपासे सब दिव्य अस्त्रशस्त्रोंको भी प्राप्त किया है ॥६॥

दोषस्त्वस्य महानेको येनैष भरतर्षभ ।
न मे रथो नातिरथो मतः पार्थिवसत्तम ॥ ७ ॥

परन्तु, हे राजश्रेष्ठ ! इसमें एक ही महान् दोष ऐसा है, कि जिसके कारण, हे भरतश्रेष्ठ ! मैं इसे रथी वा अति रथी कुछ भी नहीं कह सकता ॥ ७ ॥

जीवितं प्रियमत्यर्थमायुष्कामः सदा द्विजः ।
न ह्यस्य सदृशः कश्चिदुभयोः सेनयोरपि ॥ ८ ॥

हे राजन् ! यह ब्राह्मण सदा आयुकी इच्छा करनेवाला है; अतः जीवन इसे अत्यन्त ही प्यारा । है जो हो, दोनों सेनाओंके बीच कोई भी योद्धा इसके समान नहीं है ॥ ८ ॥

हन्यादेकरथेनैव देवानामपि वाहिनीम् ।
वपुष्मांस्तलघोषेण स्फोटयेदपि पर्वतान् ॥ ९ ॥

यह अश्वत्थामा एक ही रथसे देवताओंकी सेनाका भी वध कर सकता है और यह सुन्दर शरीरवाला अश्वत्थामा अपने हाथकी चोटोंसे पर्वतोंको भी तोडनेमें समर्थ है ॥ ९ ॥

असंख्येयगुणो वीरः प्रहर्ता दारुणद्युतिः ।
दण्डपाणिरिवासह्यः कालवत्प्रचरिष्यति ॥ १० ॥

यह अत्यन्त गुणशाली महातेजस्वी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीरवर दण्डधारी अश्वत्थामा कालके समान असह्य होकर शत्रुओंकी सेनामें भ्रमण करेगा ॥ १० ॥

युगान्ताग्निसमः क्रोधे सिंहग्रीवो महामतिः ।
एष भारत युद्धस्य पृष्ठं संशमयिष्यति ॥ ११ ॥

हे भारत ! क्रोधमें प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर, सिंहकी सी गर्दनवाला यह महाबुद्धिमान् अश्वत्थामा युद्धके अवशिष्ट भागको पूर्ण कर देगा ॥ ११ ॥

पिता त्वस्य महातेजा वृद्धोऽपि युवभिर्वरः ।
रणे कर्म महत्कर्ता तत्र मे नास्ति संशयः ॥ १२ ॥

इसके पिता महातेजस्वी द्रोणाचार्य बूढे होकर भी तरुण पुरुषोंसे श्रेष्ठ हैं, संग्राममें ये अत्यन्त ही बडे कार्य करेंगे, उसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥

अस्त्रवेगानिलोद्धूतः सेनाकक्षेन्धनोत्थितः ।
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि प्रधक्ष्यति जये धृतः ॥ १३ ॥

सेनारूपी तृणसे उत्पन्न अस्त्रशस्त्रोंके वेगरूपी पवनसे बढी हुई अग्निमें यह रणस्थित द्रोण निःसंदेह युधिष्ठिरकी सेनाको भस्म कर देंगे ॥ १३ ॥

रथयूथपयूथानां यूथपः स नरर्षभः
भारद्वाजात्मजः कर्ता कर्म तीव्रं हिताय वः ॥ १४ ॥

अतः रथके समूहोंके स्वामियोंके समूहोंके भी यूथपति यह पुरुषश्रेष्ठ भरद्वाजनन्दन तुम्हारे हितके लिये महान् कर्म करेंगे ॥ १४ ॥

सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
गच्छेदन्तं सृञ्जयानां प्रियस्त्वस्य धनञ्जयः ॥ १५ ॥

सब मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आचार्य यह बूढे आचार्य सम्पूर्ण सृन्जयोंके कालस्वरूप हो सकते हैं; परन्तु अर्जुन इनको बहुत ही प्यारा है ॥ १५ ॥

नैष जातु महेष्वासः पार्थमक्लिष्टकारिणम् ।
हन्यादाचार्यकं दीप्तं संस्मृत्य गुणनिर्जितम् ॥ १६ ॥

यह महाधनुर्धारी द्रोणाचार्य अपने आचार्य-कर्मको स्मरण करके अपने गुणोंसे जीतनेवाले तेजस्वी और सभी तरहके कर्मोंको करनेवाले अर्जुनको नहीं मारेंगे ॥ १६ ॥

श्लाघत्येष सदा वीरः पार्थस्य गुणविस्तरैः ।
पुत्रादभ्यधिकं चैव भारद्वाजोऽनुपश्यति ॥ १७ ॥

हे वीर ! अर्जुनके गुणोंसे मोहित होकर आचार्य द्रोण सदा उसकी प्रशंसा किया करते हैं और उसके ऊपर इनकी पुत्रसे भी अधिक प्रीति है ॥ १७ ॥

हन्यादेकरथेनैव देवगन्धर्वदानवान् ।
एकीभूतानपि रणे दिव्यैरस्त्रैः प्रतापवान् ॥ १८ ॥

यह अत्यन्त प्रतापी महावीर द्रोणाचार्य एक रथसे ही अपने दिव्य अस्त्रोंकी सहायतासे देवता, गन्धर्व और सम्पूर्ण दानवोंकी इकट्ठी हुई हुई सेनाको भी मार सकते हैं ॥ १८ ॥

पौरवो राजशार्दूलस्तव राजन्महारथः ।
मतो मम रथो वीर परवीररथारुजः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे शत्रुओंके रथोंके नाश करनेवाले यह पुरुषसिंह पौरव मेरे मतमें रथश्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

स्वेन सैन्येन सहितः प्रतपञ्शत्रुवाहिनीम् ।
प्रधक्ष्यति स पाञ्चालान्कक्षं कृष्णगतिर्यथा ॥ २० ॥

अग्नि जैसे सूखे तृण और लकडियोंको जला देती है; वैसे ही अपनी सेनासे शत्रुओंकी सेनाको पीडित करते हुए ये पाञ्चाल वीरोंको भस्म कर देंगे ॥ २० ॥

सत्यव्रतो रथवरो राजपुत्रो महारथः ।
तव राजन्रिपुबले कालवत्प्रचरिष्यति ॥ २१ ॥

हे राजन् ! महारथी राजपुत्र रथियोंमें श्रेष्ठ सत्यव्रत भी साक्षात् कालके समान शत्रुओंकी सेनामें भ्रमण करेगा ॥ २१ ॥

एतस्य योधा राजेन्द्र विचित्रकवचायुधाः ।
विचरिष्यन्ति संग्रामे निघ्नन्तः शात्रवांस्तव ॥ २२ ॥

हे राजेन्द्र ! इसके विचित्र कवच और शस्त्रोंको धारण करनेवाले वीर योद्धा युद्धमें तुम्हारे शत्रुओंको मारते हुए रणभूमिमें भ्रमण करेंगे ॥ २२ ॥

वृषसेनो रथाग्र्यस्ते कर्णपुत्रो महारथः ।
प्रधक्ष्यति रिपूणां ते बलानि बलिनां वरः ॥ २३ ॥

हे राजन् ! रथके आगे रहनेवाला कर्णका पुत्र वृषसेन तुम्हारा एक मुख्य रथी है । बलवानोंमें श्रेष्ठ वह वृषसेन तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाको जला देगा ॥ २३ ॥

जलसन्धो महातेजा राजन्रथवरस्तव ।
त्यक्ष्यते समरे प्राणान्मागधः परवीरहा ॥ २४ ॥

हे राजन् ! तुम्हारा रथीश्रेष्ठ शत्रुनाशक महातेजस्वी मगधदेशीय जलसन्ध प्राण देकर भी युद्ध करेगा ॥ २४ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः ।
रथेन वा महाबाहुः क्षपयञ्शत्रुवाहिनीम् ॥ २५ ॥

हाथीकी पीठपर बैठकर संग्राम करनेमें कुशल यह महाबाहु रथपर चढकर शत्रुकी सेनाको नष्ट करता हुआ संग्राममें युद्ध करेगा ॥ २५ ॥

×

रथ एष महाराज मतो मम नरर्षभः ।
त्वदर्थे त्यक्ष्यति प्राणान्सहसैन्यो महारणे ॥ २६ ॥

हे महाराज ! यह पुरुषसिंह मेरे मतमें रथी है; तुम्हारे निमित्त संग्राममें यह सेनाके सहित अपना प्राणत्याग भी कर सकेगा ॥ २६ ॥

एष विक्रान्तयोधी च चित्रयोधी च सङ्गरे ।
वीतभीश्चापि ते राजञ्शात्रवैः सह योत्स्यते ॥ २७ ॥

हे राजन् ! यह संग्राममें अनेक तरहसे युद्ध करनेवाला महापराक्रमी योद्धा है, अतः यह निर्भय होकर तुम्हारे शत्रुओंसे युद्ध करेगा ॥ २७ ॥

बाह्लीकोऽतिरथश्चैव समरे चानिवर्तिता ।
मम राजन्मतो युद्धे शूरो वैवस्वतोपमः ॥ २८ ॥

हे राजन् ! युद्धमें अपराजित साक्षात् यमके समान अत्यन्त बलशाली और युद्धमें महापराक्रमी बाह्लिक मेरे मतमें अतिरथी है ॥ २८ ॥

न ह्येष समरं प्राप्य निवर्तेत कथञ्चन ।
यथा सततगो राजन्नाभिहत्य परान्रणे ॥ २९ ॥

वायुकी तरह हमेशा चलनेवाले ये युद्धमें जाकर वहां शत्रुओंको विना मारे युद्धसे लौटनेवाले नहीं हैं ॥ २९ ॥

सेनापतिर्महाराज सत्यवांस्ते महारथः ।
रणेष्वद्भुतकर्मा च रथः पररथारुजः ॥ ३० ॥

हे महाराज ! तुम्हारा सेनापति महारथ सत्यवान् युद्धमें अद्भुत कर्म करनेवाला रथी और शत्रुओंके रथियोंको पीडित करनेवाला है ॥ ३० ॥

एतस्य समरं दृष्ट्वा न व्यथास्ति कथञ्चन ।
उत्स्मयन्नभ्युपैत्येष परान्रथपथे स्थितान् ॥ ३१ ॥

युद्ध देखकर इसको किसी प्रकारका भी भय नहीं होता; वह रथोंके मार्गमें स्थित शत्रुओंपर हंसते हंसते आक्रमण करता है ॥ ३१ ॥

एष चारिषु विक्रान्तः कर्म सत्पुरुषोचितम् ।
कर्त्ता विमर्दे सुमहत्त्वदर्थे पुरुषोत्तमः ॥ ३२ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाला यह पुरुषसिंह युद्धमें तुम्हारे निमित्त सत्पुरुषोंके योग्य अत्यन्त बडे कार्य करेगा ॥ ३२ ॥

अलायुधो राक्षसेन्द्रः क्रूरकर्मा महाबलः ।
हनिष्यति परान्राजन्पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! क्रूर कर्म करनेवाला महाबलवान् राक्षसेन्द्र अलायुध पहिलेके वैरको स्मरण करके शत्रुओंको मारेगा ॥ ३३ ॥

एष राक्षससैन्यानां सर्वेषां रथसत्तमः ।
मायावी दृढवैरश्च समरे विचरिष्यति ॥ ३४ ॥

यह सम्पूर्ण राक्षसोंकी सेनाके बीच रथसत्तम, अनेक मायाओंको जाननेवाला और दृढ शत्रुता करनेवाला है; यह रणभूमिमें शत्रुओंकी सेनामें भ्रमण करेगा ॥ ३४ ॥

प्राग्ज्योतिषाधिपो वीरो भगदत्तः प्रतापवान् ।
गजाङ्कुशधरश्रेष्ठो रथे चैव विशारदः ॥ ३५ ॥

हे राजेन्द्र ! प्राग्ज्योतिषपुरका प्रतापी राजा भगदत्त हाथियोंपर बैठकर युद्ध करनेमें और रथविद्यामें भी निपुण है ॥ ३५ ॥

एतेन युद्धमभवत्पुरा गाण्डीवधन्वनः ।
दिवसान्सुबहून्राजन्नुभयोर्जयगृद्धिनोः ॥ ३६ ॥

पहिले गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनका इसके साथ युद्ध हुआ था, दोनोंने अपने अपने जयकी अभिलाषासे बहुत दिनतक युद्ध किया था ॥ ३६ ॥

ततः सखायं गान्धारे मानयन्पाकशासनम् ।
अकरोत्संविदं तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ३७ ॥

हे गान्धारीके पुत्र दुर्योधन ! बादमें अपने मित्र पाकशासन इन्द्रको मध्यस्थ मानकर इसने महात्मा पाण्डव अर्जुनके साथ सन्धि कर ली थी ॥ ३७ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः ।
ऐरावतगतो राजा देवानामिव वासवः ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥ ५१८२ ॥

हाथीपर चढकर युद्ध करनेमें कुशल यह राजा भगदत्त देवताओंके बीच ऐरावत हाथीपर चढे हुए इन्द्रकी भांति शत्रुओंसे युद्ध करेगा ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ चौसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६४ ॥ ५१८२ ॥

: १६७ :

भीष्म उवाच

अचलो वृषकश्चैव भ्रातरौ सहितावुभौ ।
रथौ तव दुराधर्षौ शत्रून्विध्वंसयिष्यतः ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे राजन् ! तुम्हारी सेनामें अत्यन्त साहसी अचल और वृषक ये दोनों भाई रथी हैं और ये दोनों ही शत्रुओंका विध्वंस कर देंगे ॥ १ ॥

बलवन्तौ नरव्याघ्रौ दृढक्रोधौ प्रहारिणौ ।
गान्धारमुख्यौ तरुणौ दर्शनीयौ महाबलौ ॥ २ ॥

ये दोनों ही बलवान्, पुरुषोंमें सिंहके समान वीर, बहुत क्रोधी, शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले तरुण, देखनेमें सुन्दर, महाबली और गान्धारोंमें मुख्य हैं ॥ २ ॥

सखा ते दयितो नित्यं य एष रणकर्कशः ।
प्रोत्साहयति राजंस्त्वां विग्रहे पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥

हे भारत ! तुम्हारा प्यारा मित्र, जो बहुत रणवीर है, जो पाण्डवोंके साथ लडनेके लिए हमेशा तुम्हें उत्साहित करता रहता है ॥ ३ ॥

परुषः कत्थनो नीचः कर्णो वैकर्तनस्तव ।
मन्त्री नेता च बन्धुश्च मानी चात्यन्तमुच्छ्रितः ॥ ४ ॥

मन्त्री, नायक, अभिमानी, बन्धु, अत्यन्त ऊंची अभिलाषा करनेवाला, कठोर शब्दोंको बोलनेवाला, अपनी प्रशंसा करनेवाला, नीचपुरुष, सूर्यपुत्र कर्ण है ॥ ४ ॥

एष नैव रथः पूर्णो नाप्येवातिरथो नृप ।
वियुक्तः कवचेनैष सहजेन विचेतनः ।
कुण्डलाभ्यां च दिव्याभ्यां वियुक्तः सततं घृणी ॥ ५ ॥

हे राजन् ! न वह पूर्णतया रथी ही है और न पूर्णतया अतिरथी ही है। यह मूर्ख अत्यन्त दयालु होनेके कारण अपने गर्भसे उत्पन्न हुए कवचसे रहित हो गया है, तथा दिव्य कुण्डलोंसे भी रहित हो गया है ॥ ५ ॥

अभिशापाच्च रामस्य ब्राह्मणस्य च भाषणात् ।
करणानां वियोगाच्च तेन मेऽर्धरथो मतः ।
नैष फल्गुनमासाद्य पुनर्जीवन्विमोक्ष्यते ॥ ६ ॥

परशुरामके शाप, ब्राह्मणके वचन और कवच कुण्डल आदि साधनोंसे रहित होनेके कारण मेरे मतमें यह अर्धरथी ही है। युद्धमें अर्जुनके सम्मुख आकर यह कभी जीता न बचेगा ॥६॥

सञ्जय उवाच

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
एवमेतद्यथात्थ त्वं न मिथ्यास्तीति किंचन ॥ ७ ॥

संजय बोले– इसके बाद सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु द्रोणाचार्य बोले– हे भीष्म ! तुमने जो कुछ कहा, सब सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है ॥ ७ ॥

रणे रणेऽतिमानी च विमुखश्चैव दृश्यते ।
घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥ ८ ॥

कर्ण प्रत्येक युद्धमें बडा घमण्ड करता है, परन्तु हर बार युद्धसे विमुख होते हुए भी दीख पडता है; यह दयालु और प्रमादी कर्ण मेरे मतमें भी अर्धरथी ही है ॥ ८ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु राधेयः क्रोधादुत्फुल्ललोचनः ।
उवाच भीष्मं राजेन्द्र तुदन्वाग्भिः प्रतोदवत् ॥ ९ ॥

हे राजश्रेष्ठ जनमेजय ! तब इस वचनको सुनकर राधापुत्र कर्ण क्रोधसे दोनों नेत्र लाल करके चाबुकके समान वचनोंसे भीष्मको पीडित करते हुए यह वचन बोला ॥ ९ ॥

पितामह यथेष्टं मां वाक्शरैरुपकृन्तसि ।
अनागसं सदा द्वेषादेवमेव पदे पदे ।
मर्षयामि च तत्सर्वं दुर्योधनकृतेन वै ॥ १० ॥

हे पितामह ! मैं निरपराधी हूं तो भी तुम केवल द्वेषके कारण ऐसे वचनरूपी बाणोंसे मुझको पद पदमें छेदते रहते हो, तो भी दुर्योधनके निमित्त मैं तुम्हारी सब बातोंको सहता रहता हूं ॥ १० ॥

त्वं तु मां मन्यसेऽशक्तं यथा कापुरुषं तथा ।
भवानर्धरथो मह्यं मतो नास्त्यत्र संशयः ॥ ११ ॥

तुम मुझे कापुरुषकी भांति अशक्त समझते हो । मेरी दृष्टिमें तुम भी अर्धरथी हो, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ११ ॥

सर्वस्य जगतश्चैव गाङ्गेय न मृषा वदे ।
कुरूणामहितो नित्यं न च राजावबुध्यते ॥ १२ ॥

हे गंगापुत्र भीष्म ! मैं झूठ नहीं बोलता, तुम सभी संसार और सभी कुरुओंका हमेशा अहित करते रहते हो, पर राजा दुर्योधन इस बातको नहीं जानते ॥ १२ ॥

को हि नाम समानेषु राजसूदात्तकर्मसु ।
तेजोवधमिमं कुर्याद्विभेदयिषुराहवे ।
यथा त्वं गुणनिर्देशादपराधं चिकीर्षसि ॥ १३ ॥

गुण बताकर तुम जैसी मेरी बुराई करनेकी इच्छा करते हो, युद्धमें समान गुणोंसे युक्त उदार राजाओंके बीच फूट डालनेकी इच्छासे कौन पुरुष इस प्रकार दूसरोंको तेजहीन करेगा ? ॥ १३ ॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः ।
महारथत्वं संख्यातुं शक्यं क्षत्रस्य कौरव ॥ १४ ॥

हे कौरव ! अवस्था, पके हुए केश, धन अथवा बन्धुवान्धवोंसे क्षत्रियोंकी महारथत्वकी संख्या कोई नहीं कर सकता ॥ १४ ॥

बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः ।
धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाधिकाः ॥ १५ ॥

क्षत्रिय बलके कारण, ब्राह्मण मन्त्रके कारण, वैश्य धनके कारण और शूद्र अवस्थाके कारण बडे तथा श्रेष्ठ कहे जाते हैं ॥ १५ ॥

यथेच्छकं स्वयं ग्राहाद्रथानतिरथांस्तथा ।
कामद्वेषसमायुक्तो मोहात्प्रकुरुते भवान् ॥ १६ ॥

परन्तु तुम केवल मोहसे युक्त और काम-क्रोधमें आसक्त होकर अपनी इच्छाके अनुसार रथियों और अतिरथियोंकी गणना करके सबमें भेद उत्पन्न कर रहे हो ॥ १६ ॥

दुर्योधन महाबाहो साधु सम्यगवेक्ष्यताम् ।
त्यज्यतां दुष्टभावोऽयं भीष्मः किल्बिषकृत्तव ॥ १७ ॥

हे महाबाहो दुर्योधन ! तुम पूरी तरहसे विचार करके इस दुष्ट अभिप्रायवाले तथा तुम्हारा अहित करनेवाले भीष्मका शीघ्र ही परित्याग कर दो ॥ १७ ॥

भिन्ना हि सेना नृपते दुःसन्धेया भवत्युत ।
मौलापि पुरुषव्याघ्र किमु नाना समुत्थिता ॥ १८ ॥

क्योंकि एकबार फूट पड जानेपर सेनाको फिरसे जोडना बहुत ही कठिन हो जाता है । हे राजेन्द्र ! जो अनेक देशोंसे राजा एक ही कार्यके लिए यहांपर आकर इकट्ठे हुए हैं; उनकी बात तो दूर है, फूट पड जानेसे मूल सेना अर्थात् तुम्हारी अपनी सेना भी उत्साह-रहित हो जावेगी ॥ १८ ॥

एषां द्वैधं समुत्पन्नं योधानां युधि भारत ।
तेजोवधो नः क्रियते प्रत्यक्षेण विशेषतः ॥ १९ ॥

हे भारत ! भीष्म इन सम्पूर्ण योद्धाओंके संमुख ही हमें तेजहीन कर रहे हैं; अतः युद्धके विषयमें इन सैनिक पुरुषोंके हृदयमें दुविधा उत्पन्न हो गई है ॥ १९ ॥

रथानां क्व च विज्ञानं क्व च भीष्मोऽल्पचेतनः ।
अहमावारयिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २० ॥

कहां रथियोंका ज्ञान और कहां यह अल्पबुद्धि भीष्म ? मैं अकेले ही पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश कर दूंगा ॥ २० ॥

आसाद्य मामसोघेषुं गमिष्यन्ति दिशो दश ।
पाण्डवाः सहपञ्चालाः शार्दूलं वृषभा इव ॥ २१ ॥

जैसे सिंहके पासमें आनेपर वृषभ इधर उधर भाग जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा लोग अव्यर्थ- बाणोंको चलानेवाले मेरे सामने आकर दसों दिशाओंमें भाग जायेंगे ॥ २१ ॥

क्व च युद्धविमर्दो वा मन्त्राः सुव्याहृतानि वा ।
क्व च भीष्मो गतवया मन्दात्मा कालमोहितः ॥ २२ ॥

कहां युद्धमें होनेवाला संहार, कहां समयानुसार दी गई सलाह, कहां समयपर बोले गए मधुर वचन और कहां बूढा, मन्दात्मा और कालसे मोहित भीष्म अर्थात् भीष्म ऊपरकी सभी बातोंसे अनभिज्ञ है ॥ २२ ॥

स्पर्धते हि सदा नित्यं सर्वेण जगता सह ।
न चान्यं पुरुषं कश्चिन्मन्यते मोघदर्शनः ॥ २३ ॥

यह सब जगत्के साथ युद्ध करनेकी हमेशा अभिलाषा करता है और ऐसा असत्यदर्शी भीष्म किसीको भी पुरुष नहीं समझता अर्थात् सभीको नपुंसक और कायर समझता है ॥ २३ ॥

श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम् ।
न त्वेवाप्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः ॥ २४ ॥

शास्त्रमें ऐसी आज्ञा है, कि बूढोंकी बातोंको सुनना चाहिए, परन्तु अति वृद्ध पुरुषोंके वचन नहीं सुनने चाहिये; क्योंकि पण्डितोंके विचारमें वे अतिवृद्ध फिर बालभावको प्राप्त हो जाते हैं ॥ २४ ॥

अहमेको हनिष्यामि पाण्डवान्नात्र संशयः ।
सुयुद्धे राजशार्दूल यशो भीष्मं गमिष्यति ॥ २५ ॥

हे राजशार्दूल ! मैं अकेले ही इस युद्धमें पाण्डवोंको मार दूंगा, इसमें कोई संशय नहीं है । परन्तु मेरे द्वारा उत्तम युद्ध करनेपर भी यश भीष्महीको मिलेगा ॥ २५ ॥

कृतः सेनापतिस्त्वेष त्वया भीष्मो नराधिप।
सेनापतिं गुणो गन्ता न तु योधान्कथञ्चन ॥ २६ ॥

हे राजन्! क्योंकि युद्धमें किए गए पराक्रमका यश सेनापतिको ही मिलता है, सैनिकोंको नहीं। तुमने भी भीष्मको ही सेनापति बनाया है, इसलिए मेरे द्वारा युद्धको जीतनेपर भी समरविजेताका यश भीष्मको ही जाएगा, मुझे नहीं ॥ २६ ॥

नाहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन्कथञ्चन।
हते तु भीष्मे योद्धास्मि सर्वैरेव महारथैः ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ ५२०९ ॥

इसलिए, हे राजन्! गङ्गानन्दन भीष्मके जीवित रहते मैं किसी भी प्रकारसे युद्ध नहीं करूंगा, भीष्मके मारे जानेपर ही मैं सब महारथी वीरोंके साथ युद्ध करूंगा ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६५ ॥ ५२०९ ॥

: १६६ :

भीष्म उवाच

समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान्सागरोपमः।
धार्तराष्ट्रस्य संग्रामे वर्षपूगाभिचिन्तितः ॥ १ ॥

भीष्म बोले– धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके इस संग्राममें जिसका विचार अनेकों वर्षोंसे चला आ रहा था, ऐसा यह अत्यन्त महान् अथवा सागर जैसे प्रचण्ड भारका बीडा मैंने उठाया है ॥ १ ॥

तस्मिन्नभ्यागते काले प्रतप्ते लोमहर्षणे।
मिथोभेदो न मे कार्यस्तेन जीवसि सूतज ॥ २ ॥

अतः उस रोवेंको खडे करनेवाले भयङ्कर युद्धके समयके उपस्थित हो जानेपर आपसमें फूट डालना मेरा काम नहीं है, इसी कारण तू अबतक जीता बचा हुआ है ॥ २ ॥

न ह्यहं नाद्य विक्रम्य स्थविरोऽपि शिशोस्तव।
युद्धश्रद्धां रणे छिन्द्यां जीवितस्य च सूतज ॥ ३ ॥

हे सूतपुत्र! मैं बूढा होकर भी बालकरूपी तुम्हारे ऊपर अपना पराक्रम प्रकट करके तुम्हारी युद्धकी लालसा और जीनेकी आशा मिटा नहीं सकता हूं ऐसी बात नहीं अर्थात् अवश्य मिटा सकता हूं ॥ ३ ॥

जामदग्न्येन रामेण महास्त्राणि प्रमुञ्चता ।
न मे व्यथाभवत्काचित्त्वं तु मे किं करिष्यसि ॥ ४ ॥

हे सूतपुत्र ! तेरे गुरु जमदग्निपुत्र परशुराम अपने सब महा अस्त्र-शस्त्रोंको चलाकर भी मुझे पीडित नहीं कर सके तो फिर तू ही मुझे क्या पीडित कर सकेगा ? ॥ ४ ॥

कामं नैतत्प्रशंसन्ति सन्तोऽऽत्मबलसंस्तवम् ।
वक्ष्यामि तु त्वां सन्तप्तो निहीन कुलपांसन ॥ ५ ॥

रे दुष्ट पुरुषाधम ! सत्पुरुष लोग कभी अपने मुंहसे अपनी प्रशंसा नहीं करते, परन्तु मैं क्रुद्ध होकर तुझसे कहता हूं ॥ ५ ॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिराज्ञः स्वयंवरे ।
निर्जित्यैकरथेनैव यत्कन्यास्तरसा हृताः ॥ ६ ॥

काशिराजके स्वयंवरमें इकट्ठे हुए सम्पूर्ण क्षत्रिय राजाओंको मैंने एक रथसे ही जीतकर कन्याओंका बलपूर्वक हरण किया था ॥ ६ ॥

ईदृशानां सहस्राणि विशिष्टानामथो पुनः ।
मयैकेन निरस्तानि ससैन्यानि रणाजिरे ॥ ७ ॥

रणभूमिमें ऐसे सहस्रों तथा इनसे भी श्रेष्ठ सेनाओंके सहित अनेक क्षत्रिय राजाओंको मैंने अकेले ही पराजित किया था ॥ ७ ॥

त्वां प्राप्य वैरपुरुषं कुरूणामनयो महान् ।
उपस्थितो विनाशाय यतस्व पुरुषो भव ॥ ८ ॥

साक्षात् वैररूपी तुझ पुरुषको पाकर कौरवोंमें बहुत बडा अनर्थ उन्हींके विनाशके लिए उपस्थित हो गया है, इसलिए शत्रुओंके नाशके लिए यत्न कर और पुरुष बन ॥ ८ ॥

युद्धयस्व पार्थं समरे येन विस्पर्धसे सह ।
द्रक्ष्यामि त्वां विनिर्मुक्तमस्माद्युद्धात्सुदुर्मते ॥ ९ ॥

रे नीचबुद्धि कर्ण ! जिसके साथ तू सदा युद्धकी अभिलाषा किया करता है, उस अर्जुनके साथ रणभूमिमें युद्ध कर, मैं तुझे इस युद्धसे जीते जागते छूटा हुआ देखना चाहता हूँ अर्थात् यह एक असंभव बात है ॥ ९ ॥

संजय उवाच

तमुवाच ततो राजा धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
मामवेक्षस्व गाङ्गेय कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ १० ॥

संजय बोले– तदनन्तर महामनवाले धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनने भीष्मसे कहा; कि हे गंगानन्दन ! मेरी ओर दृष्टि कीजिये, देखिये यह एक बहुत बडा कार्य सामने आ खडा हुआ है ॥ १० ॥

×

चिन्त्यतामिदमेवाग्रे मम निःश्रेयसं परम्।
उभावपि भवन्तौ मे महत्कर्म करिष्यतः ॥ ११ ॥

अतः जिसमें मेरा परम मङ्गल होवे, आप उसीका सबसे पहले विचार करें। आप दोनों ही मेरा बहुत बडा कार्य करने वाले हैं ॥ ११ ॥

भूयश्च श्रोतुमिच्छामि परेषां रथसत्तमान्।
ये चैवातिरथास्तत्र ये चैव रथयूथपाः ॥ १२ ॥

अब मैं शत्रुओंके रथसत्तम पुरुषोंके नाम सुननेकी इच्छा करता हूं; वहांपर जो अतिरथी और यूथपति हैं उनके नाम जानना चाहता हूँ ॥ १२ ॥

बलाबलममित्राणां श्रोतुमिच्छामि कौरव।
प्रभातायां रजन्यां वै इदं युद्धं भविष्यति ॥ १३ ॥

हे कौरव! मैं शत्रुओंके बलाबलको सुननेकी अभिलाषा करता हूं, क्योंकि रात्रिके बीतनेपर सबेरा होते ही यह युद्ध आरम्भ हो जाएगा ॥ १३ ॥

भीष्म उवाच

एते रथास्ते संख्यातास्तथैवातिरथा नृप।
ये चाप्यर्धरथा राजन्पाण्डवानामतः शृणु ॥ १४ ॥

भीष्म बोले– हे राजेन्द्र! तुम्हारी सेनाके इन सब रथी, अतिरथी और अर्धरथियोंको गिना दिया, अब पाण्डवोंके रथी आदियोंकी संख्या सुनो ॥ १४ ॥

यदि कौतूहलं तेऽद्य पाण्डवानां बले नृप।
रथसंख्यां महाबाहो सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ १५ ॥

हे राजन्! पाण्डवोंके बलके जाननेके बारेमें यदि आज तुम्हें कौतूहल है, तो सब राजाओंके सहित उन लोगोंकी रथसंख्या सुनो ॥ १५ ॥

स्वयं राजा रथोदारः पाण्डवः कुन्तिनन्दनः।
अग्निवत्समरे तात चरिष्यति न संशयः ॥ १६ ॥

हे तात! स्वयं कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर एक श्रेष्ठ रथी हैं, वे युद्धमें अग्निके समान भ्रमण करेंगे; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥

भीमसेनस्तु राजेन्द्र रथोऽष्टगुणसम्मितः।
नागायुतबलो मानी तेजसा न स मानुषः ॥ १७ ॥

हे राजन्! युद्धमें भीमसेन आठ रथियोंके बराबर बलशाली है। वह दस हजार हाथियोंके बलसे युक्त अभिमानी है और तेजमें भी वह मनुष्य नहीं है अर्थात् मनुष्योंसे वह बढकर है ॥ १७ ॥

माद्रीपुत्रौ च रथिनौ द्वावेव पुरुषर्षभौ ।
अश्विनाविव रूपेण तेजसा च समन्वितौ ॥ १८ ॥

पुरुषश्रेष्ठ दोनों माद्रीपुत्र रथी और रूप तथा तेजमें साक्षात् अश्विनीकुमारके समान हैं ॥१८॥

एते चमूमुखगताः स्मरन्तः क्लेशमात्मनः ।
रुद्रवत्प्रचरिष्यन्ति तत्र मे नास्ति संशयः ॥ १९ ॥

ये सेनाके अग्रभागमें रहकर अपने क्लेशोंको स्मरण करके रुद्रके समान शत्रुसेनामें भ्रमण करेंगे, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ १९ ॥

सर्वे एव महात्मानः शालस्कंधा इवोद्गताः ।
प्रादेशेनाधिकाः पुम्भिरन्यैस्ते च प्रमाणतः ॥ २० ॥

वे सभी महात्मा पाण्डव साल वृक्षके समान ऊंचे कंधोंवाले और दूसरे पुरुषोंसे उंचाईमें बीतभर अधिक हैं ॥ २० ॥

सिंहसंहननाः सर्वे पाण्डुपुत्रा महाबलाः ।
चरितब्रह्मचर्याश्च सर्वे चातितपस्विनः ॥ २१ ॥

हे तात ! ये पुरुषसिंह महाबली पाण्डुपुत्र ब्रह्मचर्यव्रतके अनुष्ठान करनेवाले होनेके कारण सिंहके समान आक्रमण करनेवाले और अत्यधिक तपस्वी हैं ॥ २१ ॥

ह्रीमन्तः पुरुषव्याघ्रा व्याघ्रा इव बलोत्कटाः ।
जवे प्रहारे सम्मर्दे सर्व एवातिमानुषाः ।
सर्वे जितमहीपाला दिग्जये भरतर्षभ ॥ २२ ॥

लज्जाशील, पुरुषोंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी, सिंहके समान बलवान् , वेग और शस्त्रोंके प्रहार तथा अन्य युद्धोंमें भी असाधारण पुरुष हैं, हे भरतश्रेष्ठ! इन लोगोंने दिग्विजयके समय सब राजाओंको पराजित किया था ॥ २२ ॥

न चैषां पुरुषाः केचिदायुधानि गदाः शरान् ।
विषहन्ति सदा कर्तुमधिज्यान्यपि कौरव ।
उद्यन्तुं वा गदां गुर्वीं शरान्वापि प्रकर्षितुम् ॥ २३ ॥

युद्धमें इनके शस्त्र, गदा और बाणोंको सह सके ऐसे पुरुष ही नहीं हैं। बाणोंको सहना तो दूरकी बात है इनके धनुषपर डोरी चढाना, भारी गदा आदि उठाने अथवा बाणोंको खींचनेमें भी कोई समर्थ नहीं है ॥ २३ ॥

जवे लक्ष्यस्य हरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे ।
बालैरपि भवन्तस्तैः सर्व एव विशेषिताः ॥ २४ ॥

बालक अवस्थामें भी वे लोग वेग, लक्ष्य वेधन, भोजन तथा धूलि फेंकने और खेल करनेमें तुम सब लोगोंसे अधिक थे ॥ २४ ॥

ते ते सैन्यं समासाद्य व्याघ्रा इव बलोत्कटाः ।
विध्वंसयिष्यन्ति रणे मा स्म तैः सह सङ्गमः ॥ २५ ॥

सिंहके समान बलशाली वे युद्धमें तुम्हारी सेनाको प्राप्त करके उनका नाश अवश्य कर देंगे; अतः उनके साथ युद्ध मत करो ॥ २५ ॥

एकैकशस्ते संग्रामे हन्युः सर्वान्महीक्षितः ।
प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र राजसूये यथाभवत् ॥ २६ ॥

हे राजेन्द्र ! वे लोग अकेले ही सब राजाओंको मार सकते हैं, उन्होंने जो कुछ किया था उसे राजसूय यज्ञमें तुमने अपनी आंखोंसे प्रत्यक्ष देखा ही था ॥ २६ ॥

द्रौपद्याश्च परिक्लेशं द्यूते च परुषा गिरः ।
ते संस्मरन्तः संग्रामे विचरिष्यन्ति कालवत् ॥ २७ ॥

वे लोग द्रौपदीके क्लेश और जुएके समयके कठोर वचनोंको स्मरण करके साक्षात् कालके समान तुम्हारी सेनामें विचरण करेंगे । ॥ २७ ॥

लोहिताक्षो गुडाकेशो नारायणसहायवान् ।
उभयोः सेनयोर्वीर रथो नास्तीह तादृशः ॥ २८ ॥

कृष्णकी सहायतासे युक्त, लालनेत्रवाला जो अर्जुन है, उसके समान दोनों सेनाके बीच कोई भी रथी नहीं है ॥ २८ ॥

न हि देवेषु वा पूर्वं दानवेषूरगेषु वा ।
राक्षसेष्वथ यक्षेषु नरेषु कुत एव तु ॥ २९ ॥
भूतोऽथ वा भविष्यो वा रथः कश्चिन्मया श्रुतः ।
समायुक्तो महाराज यथा पार्थस्य धीमतः ॥ ३० ॥

हे महाराज ! जो बुद्धिमान् अर्जुनसे टक्कर ले सके ऐसा कोई रथी देवताओं, दानवों, सर्पों यक्षों, राक्षसों और यक्षोंके बीचमें भी हुआ था ऐसा मैंने नहीं सुना और भविष्यकालमें होगा भी नहीं, जब इन सबमें उससे टक्कर लेनेवाला कोई नहीं हुआ, तो फिर मनुष्योंमें कहांसे होगा ॥ २९–३० ॥

वासुदेवश्च संयन्ता योद्धा चैव धनञ्जयः ।
गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं ते चाश्वा वातरंहसः ॥ ३१ ॥

हे राजेन्द्र ! वासुदेव कृष्ण सारथी, धनंजय अर्जुन योद्धा, दिव्य धनुष्य गाण्डीव, वायुके समान चलनेवाले रथके घोडे ॥ ३१ ॥

अभेद्यं कवचं दिव्यमक्षय्यौ च महेषुधी ।
अस्त्रग्रामश्च माहेन्द्रो रौद्रः कौबेर एव च ॥ ३२ ॥
याम्यश्च वारुणश्चैव गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः ।
वज्रादीनि च मुख्यानि नानाप्रहरणानि वै ॥ ३३ ॥

अभेद्य दिव्य कवच, दोनों अक्षय तूणीर, इन्द्र, रुद्र, कुबेर, यम और वरुण सम्बन्धी सम्पूर्ण अस्त्र और भयङ्कर गदायें तथा वज्र आदि अनेक प्रकारके मुख्य मुख्य शस्त्र एकत्रित हुए हैं ॥ ३२–३३ ॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
हतान्येकरथेनाजौ कस्तस्य सदृशो रथः ॥ ३४ ॥

जिस पुरुषने एक ही रथसे हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवोंको मारा था, उसके समान रथी और दूसरा कौन हो सकता है ? ॥ ३४ ॥

एष हन्याद्धि संरम्भी बलवान्सत्यविक्रमः ।
तव सेनां महाबाहुः स्वां चैव परिपालयन् ॥ ३५ ॥

यह अत्यन्त बलशाली, सत्य पराक्रमी, महाबाहु अर्जुन क्रोधित होकर अपनी सेनाकी रक्षा करता हुआ तुम्हारी सेनाका नाश कर सकता है ॥ ३५ ॥

अहं चैनं प्रत्युदियामाचार्यो वा धनञ्जयम् ।
न तृतीयोऽस्ति राजेन्द्र सेनयोरुभयोरपि ।
य एनं शरवर्षाणि वर्षन्तमुदियाद्रथी ॥ ३६ ॥

हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य अथवा मैं, ये ही दो पुरुष अर्जुनसे युद्ध करनेमें समर्थ हो सकते हैं । इनके अतिरिक्त दोनों सेनाओं ऐसा कोई तीसरा रथी नहीं है, जो बाणोंकी वर्षा बरसानेवाले इस महावीर अर्जुनके संमुख खडा हो सके ॥ ३६ ॥

जीमूत इव घर्मान्ते महावातसमीरितः ।
समायुक्तस्तु कौन्तेयो वासुदेवसहायवान् ।
तरुणश्च कृती चैव जीर्णावावामुभावपि ॥ ३७ ॥

ग्रीष्मकालके अन्तमें महा वायुसे प्रेरित हुए मेघकी भांति कृष्णकी सहायतासे युक्त सव्यसाची अर्जुन युद्धके निमित्त सज्जित हो रहा है; वह तरुण और सभी तरहके अस्त्रोंको चलानेमें कुशल है और हम दोनों ही बूढे हैं ॥ ३७ ॥

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु भीष्मस्य राज्ञां दध्वंसिरे तदा।
काञ्चनाङ्गदिनः पीना भुजाश्चन्दनरूषिताः ॥ ३८ ॥

संजय बोले– तब भीष्मके ऐसे वचन सुनकर राजाओंकी सोनेके भूषणोंसे भूषित और चन्दनसे चर्चित भुजायें शिथिल हो गईं ॥ ३८ ॥

मनोभिः सह सावेगैः संस्मृत्य च पुरातनम्।
सामर्थ्यं पाण्डवेयानां यथाप्रत्यक्षदर्शनात् ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥ ५२४८ ॥

पाण्डवोंके पुराने सामर्थ्यको याद करके मानों उन्होंने पाण्डवोंके सामर्थ्यको प्रत्यक्ष ही देख लिया हो इस प्रकार उनके मन व्याकुलतासे भर गए ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ छियासठवां अध्याय समाप्त ॥ १६६ ॥ ५२४८ ॥

: १६७ :

भीष्म उवाच

द्रौपदेया महाराज सर्वे पञ्च महारथाः।
वैराटिरुत्तरश्चैव रथो मम महान्मतः ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे राजन्! द्रौपदीके पांचों पुत्र महारथी हैं; विराटपुत्र उत्तर भी महारथी है ऐसा मेरा मत है ॥ १ ॥

अभिमन्युर्महाराज रथयूथपयूथपः।
समः पार्थेन समरे वासुदेवेन वा भवेत् ॥ २ ॥

हे महाराज! अभिमन्यु रथके यूथपतियोंका भी यूथपति है; वह युद्धमें अर्जुनके समान तो है ही अथवा कृष्णके समान भी हो सकता है ॥ २ ॥

लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च मनस्वी दृढविक्रमः।
संस्मरन्वै परिक्लेशं स्वपितुर्विक्रमिष्यति ॥ ३ ॥

वह शीघ्र शस्त्र चलानेवाला, अनेक प्रकारसे युद्ध करनेवाला मनस्वी और दृढ पराक्रमी है। यह अपने पिता अर्जुनके दुःखों और क्लेशोंको स्मरण करके अपना पराक्रम प्रकट करेगा ॥ ३ ॥

सात्यकिर्माधवः शूरो रथयूथपयूथपः ।
एष वृष्णिप्रवीराणाममर्षी जितसाध्वसः । ॥ ४ ॥
उत्तमौजास्तथा राजन्रथो मम महान्मतः ।
युधामन्युश्च विक्रान्तो रथोदारो नरर्षभः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! वृष्णिवंशियोंमें श्रेष्ठ भयरहित सात्यकी रथयूथपतियोंका भी यूथपति शूरवीर है और उत्तमौजा भी मेरे विचारमें बहुत बडे रथी हैं तथा बलवान् नरश्रेष्ठ युधामन्यु भी रथी हैं ॥ ४-५ ॥

एतेषां बहुसाहस्रा रथा नागा हयास्तथा ।
योत्स्यन्ते ते तनुं त्यक्त्वा कुन्तीपुत्रप्रियेप्सया ॥ ६ ॥

हे भारत ! इन लोगोंके कई हजार रथ, हाथी और घोडोंकी सेना है, कुन्ती पुत्रोंके हितकी इच्छासे ये लोग अपना प्राणत्याग करके भी युद्ध करेंगे ॥ ६ ॥

पाण्डवैः सह राजेन्द्र तव सेनासु भारत ।
अग्निमारुतवद्राजन्नाह्वयन्तः परस्परम् ॥ ७ ॥

हे राजेन्द्र ! पाण्डवोंके साथ मिलकर परस्पर आवाहन करते हुए अग्नि और वायुकी भांति ये लोग तुम्हारी सेनामें भ्रमण करेंगे ॥ ७ ॥

अजेयौ समरे वृद्धौ विराटद्रुपदावुभौ ।
महारथौ महावीर्यौ मतौ मे पुरुषर्षभौ ॥ ८ ॥

हे राजेन्द्र ! युद्धमें अपराजित महापराक्रमी पुरुषश्रेष्ठ बूढे राजा विराट और द्रुपद भी मेरे विचारमें महारथी हैं ॥ ८ ॥

वयोवृद्धावपि तु तौ क्षत्रधर्मपरायणौ ।
यतिष्येते परं शक्त्या स्थितौ वीरगते पथि ॥ ९ ॥

क्षत्रियधर्मसे युक्त वे दोनों राजा बूढे होनेपर भी अपनी पूरी शक्तिसे वीरोंके गमन करने योग्य मार्गमें स्थित होकर यत्नपूर्वक युद्ध करेंगे ॥ ९ ॥

सम्बन्धकेन राजेन्द्र तौ तु वीर्यबलान्वयात् ।
आर्यवृत्तौ महेष्वासौ स्नेहपाशसितावुभौ ॥ १० ॥

हे राजेन्द्र ! प्रेमके पाशसे बंधे हुए वे दोनों श्रेष्ठ चरित्रवाले महाधनुर्धर पाण्डवोंके सम्बन्धी होनेके कारण तथा अपने पराक्रमके कारण लडेंगे ॥ १० ॥

कारणं प्राप्य तु नराः सर्व एव महाभुजाः ।
शूरा वा कातरा वापि भवन्ति नरपुङ्गव ॥ ११ ॥

हे नरश्रेष्ठ राजन् ! किसी कारणके आने पर ही सम्पूर्ण महाबाहु पुरुष शूर या कातर होते हैं ॥ ११ ॥

एकायनगतावेतौ पार्थेन दृढभक्तिकौ ।
त्यक्त्वा प्राणान्परं शक्त्या घटितारौ नराधिप ॥ १२ ॥

हे राजन् ! एक ही उद्देश्यको लेकर चलनेवाले, अर्जुनमें अत्यन्त भक्ति करनेवाले ये दोनों विराट और द्रुपद अपने प्राणोंको हथेली पर रखकर भी बहुत शक्तिसे युद्ध करेंगे ॥ १२ ॥

पृथगक्षौहिणीभ्यां तावुभौ संयति दारुणौ ।
सम्बन्धिभावं रक्षन्तौ महत्कर्म करिष्यतः । ॥ १३ ॥

दारुण कर्म करनेवाले ये दोनों राजा युद्धमें सम्बन्धिभावकी रक्षा करते हुए पृथक् पृथक् अक्षौहिणी सेनाके सहित बहुत बडे कर्म करेंगे ॥ १३ ॥

लोकवीरौ महेष्वासौ त्यक्तात्मानौ च भारत ।
प्रत्ययं परिरक्षन्तौ महत्कर्म करिष्यतः ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ ५२६२ ॥

हे भारत ! ये दोनों ही संसारमें विख्यात वीर हैं, दोनों ही महान् धनुषवाले हैं तथा दोनों ही अपने प्राणोंको हथेली पर रखकर लडनेवाले हैं, ऐसे ये दोनों अपने विश्वासकी रक्षा करते हुए महान् कर्म करेंगे ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ सडसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६७ ॥ ५२६२ ॥

: १६८ :

भीष्म उवाच

पाञ्चालराजस्य सुतो राजन्परपुरञ्जयः ।
शिखण्डी रथमुख्यो मे मतः पार्थस्य भारत ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे भारत ! मेरे विचारमें पाञ्चालराजका पुत्र शत्रुके देशको जीतनेवाला शिखण्डी युधिष्ठिरकी सेनामें एक मुख्य रथी है ॥ १ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे नाशयन्पूर्वसंस्थितिम् ।
परं यशो विप्रथयंस्तव सेनासु भारत ॥ २ ॥

हे भारत ! यह पुरुष पूर्वजन्मके स्त्री स्वभावको त्याग करके युद्धमें तुम्हारी सेनाके बीच परम यशका विस्तार करता हुआ युद्ध करेगा ॥ २ ॥

एतस्य बहुला: सेना: पाञ्चालाश्च प्रभद्रका: ।
तेनासौ रथवंशेन महत्कर्म करिष्यति ॥ ३ ॥

इसके साथ पांचाल और प्रभद्रककी बहुतसी सेनायें हैं, उन रथसमूहोंके सहित यह वीरवर युद्धमें बहुत बडे कार्य करेगा ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नश्च सेनानी: सर्वसेनासु भारत ।
मतो मेऽतिरथो राजन्द्रोणशिष्यो महारथ: ॥ ४ ॥

हे राजन् ! पाण्डवोंकी सब सेनाओंमें सेनापति द्रोणाचार्यका शिष्य महारथी धृष्टद्युम्न मेरी समझमें अतिरथी है ॥ ४ ॥

एष योत्स्यति संग्रामे सूदयन्वै परान्रणे ।
भगवानिव संक्रुद्ध: पिनाकी युगसंक्षये ॥ ५ ॥

यह वीर, सृष्टिके अन्तमें अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए साक्षात् पिनाकधारी रुद्रकी भांति संग्राममें शत्रुओंको नष्ट करता हुआ युद्ध करेगा ॥ ५ ॥

एतस्य तद्रथानीकं कथयन्ति रणप्रिया: ।
बहुत्वात्सागरप्रख्यं देवानामिव संयुगे ॥ ६ ॥

युद्धसे प्यार करनेवाले योद्धा लोग देवताओंकी सेनाके समान संग्राममें इसकी रथसे युक्त सेनाका समुद्रकी भांति वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥

क्षत्रधर्मा तु राजेन्द्र मतो मेऽर्धरथो नृप ।
धृष्टद्युम्नस्य तनयो बाल्यान्नातिकृतश्रम: ॥ ७ ॥

हे राजेन्द्र ! धृष्टद्युम्नका पुत्र क्षत्रधर्मा बालक होनेके कारण अधिक परिश्रम नहीं कर सकता, इसलिए उसे मैं अर्धरथीकी संख्यामें गिनता हूं ॥ ७ ॥

शिशुपालसुतो वीरश्चेदिराजो महारथ: ।
धृष्टकेतुर्महेष्वास: सम्बन्धी पाण्डवस्य ह ॥ ८ ॥

हे भारत ! महाधनुर्धारी, महारथी शिशुपालपुत्र चेदिराज धृष्टकेतु युधिष्ठिरका सम्बन्धी है ॥ ८ ॥

एष चेदिपति: शूर: सह पुत्रेण भारत ।
महारथेनासुकरं महत्कर्म करिष्यति ॥ ९ ॥

यह पराक्रमी चेदिराज पुत्रके सहित महारथियोंके द्वारा भी करनेमें कठिन युद्धके कठिन कार्यको करेगा ॥ ९ ॥

×

क्षत्रधर्मरतो मह्यं मतः परपुरञ्जयः।
क्षत्रदेवस्तु राजेन्द्र पाण्डवेषु रथोत्तमः।
जयन्तश्चामितौजाश्च सत्यजिच्च महारथः ॥ १० ॥

हे राजेन्द्र ! पाण्डवोंमें क्षत्रियधर्ममें रत, शत्रुके देशको जीतनेवाले क्षत्रदेव मेरे मतमें रथश्रेष्ठ हैं। उसीतरह जयन्त, अमितौजा, और सत्यजित ये सभी महारथी हैं ॥ १० ॥

महारथा महात्मानः सर्वे पाञ्चालसत्तमाः।
योत्स्यन्ते समरे तात संरब्धा इव कुञ्जराः ॥ ११ ॥

हे तात ! इनके अलावा भी महारथी और महात्मा सभी श्रेष्ठ पांचाल रणभूमिमें क्रुद्ध हुए मतवाले हाथियोंकी भांति युद्ध करेंगे ॥ ११ ॥

अजो भोजश्च विक्रान्तौ पाण्डवेषु महारथौ।
पाण्डवानां सहायार्थे परं शक्त्या यतिष्यतः
शीघ्रास्त्रौ चित्रयोद्धारौ कृतिनौ दृढविक्रमौ ॥ १२ ॥

शीघ्र शस्त्र चलानेवाले, अनेक तरहसे युद्ध करनेवाले, महाबली, अत्यन्त पराक्रमी अज और भोज ये दोनों ही पाण्डवोंकी सेनामें महारथी हैं तथा पाण्डवोंकी सहायताके लिए अपनी पूरी शक्तिसे युद्ध करेंगे ॥ १२ ॥

केकयाः पञ्च राजेन्द्र भ्रातरो युद्धदुर्मदाः।
सर्वे एते रथोदाराः सर्वे लोहितकध्वजाः ॥ १३ ॥

हे राजन् ! युद्धमें भयरहित केकयराजके पांच पुत्र हैं, वे सभी रथश्रेष्ठ हैं और सभी लाल ध्वजाओंसे युक्त हैं ॥ १३ ॥

काशिकः सुकुमारश्च नीलो यश्चापरो नृपः।
सूर्यदत्तश्च शङ्खश्च मदिराश्वश्च नामतः ॥ १४ ॥
सर्वे एते रथोदाराः सर्वे चाहवलक्षणाः।
सर्वास्त्रविदुषः सर्वे महात्मानो मता मम ॥ १५ ॥

काशिक, सुकुमार, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख और मदिराश्व ये लोग भी मुख्य रथी हैं; ये युद्ध तथा सब शस्त्रोंको जाननेवाले और महात्मा हैं ऐसा मेरा विचार है ॥ १४-१५ ॥

वार्धक्षेमिर्महाराज रथो मम महान्मतः।
चित्रायुधश्च नृपतिर्मतो मे रथसत्तमः।
स हि संग्रामशोभी च भक्तश्चापि किरीटिनः ॥ १६ ॥

हे महाराज ! वार्धक्षेमिको भी मैं महारथी समझता हूं और राजा चित्रायुधको रथीश्रेष्ठ मानता हूं, वह युद्धमें शोभित होनेवाला है और अर्जुनका भक्त है ॥ १६ ॥

चेकितानः सत्यधृतिः पाण्डवानां महारथौ ।
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ रथोदारौ मतौ मम ॥ १७ ॥

चेकितान और सत्यधृति ये भी पाण्डवोंके महारथी हैं, ये दोनों पुरुषसिंह मेरे मतमें रथीश्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

व्याघ्रदत्तश्च राजेन्द्र चन्द्रसेनश्च भारत ।
मतौ मम रथोदारौ पाण्डवानां न संशयः ॥ १८ ॥

हे राजेन्द्र भारत ! व्याघ्रदत्त और चन्द्रसेन भी पाण्डवोंके रथियोंमें उत्तम हैं इसमें कुछ भी संन्देह नहीं है ॥ १८ ॥

सेनाबिन्दुश्च राजेन्द्र क्रोधहन्ता च नामतः ।
यः समो वासुदेवेन भीमसेनेन चाभिभूः ।
स योत्स्यतीह विक्रम्य समरे तव सैनिकैः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! सेनाबिन्दु, जिसे लोग क्रोधहन्ता भी कहते हैं, जो भीमसेन और कृष्णके समान पराक्रमी है, वह भी अपना पराक्रम प्रकट करके तुम्हारी सेनासे युद्ध करेगा ॥ १९ ॥

मां द्रोणं च कृपं चैव यथा सम्मन्यते भवान्
तथा स समरश्लाघी मन्तव्यो रथसत्तमः ॥ २० ॥

हे राजन् ! तुम द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और मुझको जैसा समझते हो, उसी तरह उस समरप्रिय महारथी सेनाबिन्दुको समझो ॥ २० ॥

काश्यः परमशीघ्रास्त्रः श्लाघनीयो रथोत्तमः ।
रथ एकगुणो मह्यं मतः परपुरञ्जयः ॥ २१ ॥

शत्रुके देशको जीतनेवाला, प्रशंसाके योग्य, रथियोंमें श्रेष्ठ, अस्त्रोंको शीघ्रतासे चलानेमें कुशल काशिराज मेरे मतमें एक रथी है ॥ २१ ॥

अयं च युधि विक्रान्तो मन्तव्योऽष्टगुणो रथः ।
सत्यजित्समरश्लाघी द्रुपदस्यात्मजो युवा ॥ २२ ॥

और युवा, युद्धमें पराक्रम करनेवाला तथा समरमें प्रशंसा करनेवाला द्रुपदपुत्र सत्याजित् आठ गुना रथी है ॥ २२ ॥

गतः सोऽतिरथत्वं हि धृष्टद्युम्नेन सम्मितः
पाण्डवानां यशस्कामः परं कर्म करिष्यति ॥ २३ ॥

क्योंकि धृष्टद्युम्नके समान पराक्रमी होनेसे वह अतिरथित्व पदके योग्य है और यश पानेकी इच्छासे पाण्डवोंके बहुत बडे युद्धका कार्य करेगा ॥ २३ ॥

अनुरक्तश्च शूरश्च रथोऽयमपरो महान् ।
पाण्डयराजो महावीर्यः पाण्डवानां धुरन्धरः ॥ २४ ॥

महाबलवान् पाण्डयराज पाण्डवोंमें एक बहुत बडा रथी है, यह उन लोगोंमें अनुरक्त है और पराक्रमी भी है; अतः यह भी एक दूसरा महान् रथी है ॥ २४ ॥

दृढधन्वा महेष्वासः पाण्डवानां रथोत्तमः ।
श्रेणिमान्कौरवश्रेष्ठ वसुदानश्च पार्थिवः ।
उभावेतावतिरथौ मतौ मम परंतप ॥ २५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ ५२८७ ॥

हे शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले कौरवश्रेष्ठ दुर्योधन ! महाधनुर्धारी तथा दृढ धनुषको धारण करनेवाला, पाण्डवोंमें रथीश्रेष्ठ श्रेणिमान् और राजा वसुदान ये दोनों ही मेरे मतमें अतिरथ हैं ॥ २५ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ अडसठवां अध्याय समाप्त ॥ १६८ ॥ ५२८७ ॥

: १६९ :

भीष्म उवाच

रोचमानो महाराज पाण्डवानां महारथः ।
योत्स्यतेऽमरवत्संख्ये परसैन्येषु भारत ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे महाराज ! पाण्डवोंके महारथी रोचमान युद्धमें शत्रुसेनाके बीच देवके समान संग्राम करेगा ॥ १ ॥

पुरुजित्कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः ।
मातुलो भीमसेनस्य स च मेऽतिरथो मतः ॥ २ ॥

भीमसेनका मामा महाधनुर्धारी महाबलशाली कुन्तिभोज पुरुजित् मेरे विचारमें अतिरथी हैं ॥ २ ॥

एष वीरो महेष्वासः कृती च निपुणश्च ह ।
चित्रयोधी च शक्तश्च मतो मे रथपुङ्गवः ॥ ३ ॥

इस रथ-सत्तम वीर पुरुषको मैं अत्यन्त कृतास्त्र, युद्धमें निपुण, अनेक ढंगसे लडनेवाला और समर्थ समझता हूं ॥ ३ ॥

स योत्स्यति हि विक्रम्य मघवानिव दानवैः ।
योधाश्चास्य परिख्याताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥

हे भारत ! इन्द्रने जैसे दानवोंसे युद्ध किया था, वैसे ही वह बल और पराक्रम प्रकट करके युद्ध करेगा । उसके जो सब विख्यात सैनिक वीर योद्धा हैं, वे भी सब युद्धके कार्यमें निपुण हैं ॥ ४ ॥

भागिनेयकृते वीरः स करिष्यति सङ्गरे ।
सुमहत्कर्म पाण्डूनां स्थितः प्रियहिते नृपः ॥ ५ ॥

पाण्डवोंके प्रिय और हितको करनेवाला यह वीरवर अपने भांजोंके लिए युद्धमें अत्यन्त बडा कार्य करेगा ॥ ५ ॥

भैमसेनिर्महाराज हैडिम्बो राक्षसेश्वरः ।
मतो मे बहुमायावी रथयूथपयूथपः ॥ ६ ॥

हे महाराज ! मेरे विचारमें भीमसेनका पुत्र हिडिम्बाके गर्भसे उत्पन्न हुआ राक्षसेन्द्र घटोत्कच बहुत ही मायावी और रथयूथपतियोंका भी यूथपति है ॥ ६ ॥

योत्स्यते समरे तात मायाभिः समरप्रियः ।
ये चास्य राक्षसाः शूराः सचिवा वशवर्तिनः ॥ ७ ॥

युद्धको चाहनेवाला, वह अपनी मायाओंसे युद्धमें लडेगा और उसके वशमें रहनेवाले जो सब बलवान् राक्षस उसके सहायक हैं, वे भी सब संग्राममें महाघोर युद्ध करेंगे ॥ ७ ॥

एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
समेताः पाण्डवस्यार्थे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ८ ॥

ये सब लोग और दूसरे भी बहुतसे राजा श्रीकृष्णको मुख्य बना करके पाण्डवोंके कार्यके निमित्त इकट्ठे हुए हैं ॥ ८ ॥

एते प्राधान्यतो राजन्पाण्डवस्य महात्मनः ।
रथाश्चातिरथाश्चैव ये चाप्यर्धरथा मताः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! महात्मा युधिष्ठिरकी सेनामें मुख्यतः ये रथी, अतिरथी और अर्धरथी हैं ॥ ९ ॥

नेष्यन्ति समरे सेनां भीमां यौधिष्ठिरीं नृप ।
महेन्द्रेणेव वीरेण पाल्यमानां किरीटिना ॥ १० ॥

हे राजन् दुर्योधन ! ये सब अतिरथी आदि महेन्द्रके समान वीर अर्जुनके द्वारा रक्षित युधिष्ठिरकी भयंकर सेनाको युद्धमें आगे ले चलेंगे ॥ १० ॥

तैरहं समरे वीर त्वामायद्भिर्जयैषिभिः ।
योत्स्यामि जयमाकांक्षन्नथ वा निधनं रणे ॥ ११ ॥

हे वीर ! युद्धमें तुमपर चढकर चले आनेवाले और जयकी इच्छा करनेवाले योद्धाओंसे मैं युद्धमें विजय पाने अथवा मरनेकी अभिलाषा करके युद्ध करूंगा ॥ ११ ॥

पार्थं च वासुदेवं च चक्रगाण्डीवधारिणौ ।
सन्ध्यागताविवार्केन्दू समेष्ये पुरुषोत्तमौ ॥ १२ ॥

चक्र और गाण्डीवधारी पुरुषश्रेष्ठ कृष्ण और अर्जुनका सन्ध्याकालके सूर्य और चन्द्रमाके समान एक ही स्थानपर एकत्र होनेपर भी मैं तुम्हारे निमित्त उन लोगोंका मुकाबला करूंगा ॥ १२ ॥

ये चैव ते रथोदाराः पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
सहसैन्यानहं तांश्च प्रतीयां रणमूर्धनि ॥ १३ ॥

युधिष्ठिरके दूसरे जो सब रथीश्रेष्ठ सेनापति हैं, अपनी सेनाके सहित उनके साथ भी युद्ध करनेके लिए मैं आगे बढूंगा ॥ १३ ॥

एते रथाश्चातिरथाश्च तुभ्यं यथाप्रधानं नृप कीर्तिता मया ।
तथा राजन्नर्धरथाश्च केचित्तथैव तेषामपि कौरवेन्द्र ॥ १४ ॥

हे राजन् ! प्रधानताके अनुसार पाण्डवोंके सब रथियों और अतिरथियोंका वर्णन मैंने कर दिया है । और, हे कौरवेन्द्र ! उनमें कुछ अर्धरथी भी हैं, जिनका भी वर्णन मैं कर चुका हूँ ॥ १४ ॥

अर्जुनं वासुदेवं च ये चान्ये तत्र पार्थिवाः ।
सर्वानावारयिष्यामि यावद्द्रक्ष्यामि भारत ॥ १५ ॥

हे भारत ! मैं जहांतक देख सकूंगा, वहांतक अर्जुन कृष्ण तथा दूसरे सब राजाओंका निवारण करूंगा ॥ १५ ॥

पाञ्चाल्यं तु महाबाहो नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
उद्यतेषुमभिप्रेक्ष्य प्रतियुध्यन्तमाहवे ॥ १६ ॥

परन्तु, हे महाबाहो ! युद्धमें मेरी सेनाके विरुद्ध संग्राम करनेवाले शस्त्रधारी द्रुपदपुत्र शिखण्डीको युद्ध करते देखकर भी मैं उसका वध नहीं करूंगा ॥ १६ ॥

लोकस्तद्वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया ।
प्राप्तं राज्यं परित्यज्य ब्रह्मचर्यं धृतव्रतः ॥ १७ ॥

पिताके प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे मैंने प्राप्त हुआ राज्य भी त्याग दिया और ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित हो गया, इस मेरे कामको सारा संसार जानता है ॥ १७ ॥

चित्राङ्गदं कौरवाणामहं राज्येऽभ्यषेचयम् ।
विचित्रवीर्यं च शिशुं यौवराज्येऽभ्यषेचयम् ॥ १८ ॥

चित्राङ्गदको कौरवोंके महाराजके और बालक विचित्रवीर्यको युवराजके पदपर नियुक्त किया था ॥ १८ ॥

देवव्रतत्वं विख्याप्य पृथिव्यां सर्वराजसु ।
नैव हन्यां स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कथंचन ॥ १९ ॥

पृथ्वीके सब राजाओंके बीचमें देवव्रत अर्थात् ब्रह्मचारीके रूपमें मैं विख्यात हूं; इसलिए स्त्री अथवा पूर्वजन्ममें स्त्री हुए पुरुषको मैं कभी नहीं मार सकता ॥ १९ ॥

स हि स्त्रीपूर्वको राजञ्शिखण्डी यदि ते श्रुतः ।
कन्या भूत्वा पुमाञ्जातो न योत्स्ये तेन भारत ॥ २० ॥

हे राजन् ! तुमने शायद सुना भी होगा कि यह शिखण्डी पहिले स्त्रीरूपमें था, वह प्रथम कन्या होकर फिर पुरुष बना, हे भारत ! इसलिए मैं उसके साथ युद्ध नहीं करूंगा ॥२०॥

सर्वांस्त्वन्यान्हनिष्यामि पार्थिवान्भरतर्षभ ।
यान्समेष्यामि समरे न तु कुन्तीसुतान्नृप ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥
समाप्तं रथातिरथसंख्यापर्व ॥ ५३०८ ॥

हे भरतश्रेष्ठ राजन् ! इसके अतिरिक्त संग्राममें जिन सब राजाओंके सम्मुख जाऊंगा; उन सबको अवश्य मारूंगा; परन्तु कुन्तीपुत्रोंको नहीं मार सकूंगा ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६९ ॥
रथातिरथसंख्यापर्व समाप्त ॥ ५३०८ ॥

: १७० :

दुर्योधन उवाच

किमर्थं भरतश्रेष्ठ न हन्यास्त्वं शिखण्डिनम् ।
उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा समरेष्वाततायिनम् ॥ १ ॥
पूर्वमुक्त्वा महाबाहो पाण्डवान्सह सोमकैः ।
वधिष्यामीति गाङ्गेय तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

दुर्योधन बोले– हे गंगापुत्र, हे महाबाहु भीष्म ! पहले आपने कहा था कि मैं सोमकोंके साथ सारे पाण्डवोंको मार गिराऊंगा, पर अब मना करते हैं, इसका क्या कारण है, मुझसे कहिए कि, हे भरतश्रेष्ठ ! युद्धमें आततायी, शस्त्र लिये हुए शिखण्डीको देखकर भी आप किस कारणसे उसका वध न करेंगे ॥ १-२ ॥

भीष्म उवाच

शृणु दुर्योधन कथां सहैभिर्वसुधाधिपैः।
यदर्थं युधि सम्प्रेक्ष्य नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ॥ ३ ॥

भीष्म बोले– हे दुर्योधन ! मैं शिखण्डीको रणभूमिमें देखकर भी जिस कारणसे उसका वध नहीं करूंगा; वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मुझसे इन सब राजाओंके सहित सुनो ॥ ३ ॥

महाराजो मम पिता शन्तनुर्भरतर्षभः।
दिष्टान्तं प्राप धर्मात्मा समये पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥

हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाराज! मेरे पिता भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा महाराज शन्तनु यथासमय शरीरको छोडकर स्वर्गको चले गये ॥ ४ ॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ प्रतिज्ञां परिपालयन्।
चित्राङ्गदं भ्रातरं वै महाराज्येऽभ्यषचेयम् ॥ ५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! तब अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए मैंने अपने भाई चित्राङ्गदका इस सम्पूर्ण राज्यके राजापदपर अभिषेक किया ॥ ५ ॥

तस्मिंश्च निधनं प्राप्ते सत्यवत्या मते स्थितः।
विचित्रवीर्यं राजानमभ्याषिञ्चं यथाविधि ॥ ६ ॥

हे राजन् ! चित्राङ्गदके मरजानेपर सत्यवतीकी सम्मतिसे विचित्रवीर्यको विधिपूर्वक राज्य-पदपर प्रतिष्ठित किया ॥ ६ ॥

मयाभिषिक्तो राजेन्द्र यवीयानपि धर्मतः।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा मामेव समुदैक्षत ॥ ७ ॥

हे राजेन्द्र ! छोटे होकर भी धर्मके अनुसार मेरे द्वारा राज्यपदपर अभिषिक्त किए जानेके कारण धर्मात्मा विचित्रवीर्य केवल मेरी ही ओर देखा करते थे ॥ ७ ॥

तस्य दारक्रियां तात चिकीर्षुरहमप्युत।
अनुरूपादिव कुलादिति चिन्त्य मनो दधे ॥ ८ ॥

हे तात ! उसके विवाह करनेकी इच्छा करनेवाले मैंने अपने मनमें निश्चय किया कि इसके अनुरूप कुलकी लडकीसे ही इस विचित्रवीर्यकी शादी करूंगा ॥ ८ ॥

तथाश्रौषं महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वयंवरे।
रूपेणाप्रतिमाः सर्वाः काशिराजसुतास्तदा।
अम्बा चैवाम्बिका चैव तथैवाम्बालिकापरा ॥ ९ ॥

हे महाबाहो ! उस समय मैंने सुना, कि काशिराजके यहां रूपमें अद्वितीय उनकी अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नामक तीन कन्याओंका स्वयंवर होरहा है ॥ ९ ॥

राजानश्च समाहूताः पृथिव्यां भरतर्षभ ।
अम्बा जेष्ठाभवत्तासामम्बिका त्वथ मध्यमा ।
अम्बालिका च राजेन्द्र राजकन्या यवीयसी ॥ १० ॥

हे भरतश्रेष्ठ! उसके निमित्त पृथ्वीपरके सम्पूर्ण राजा बुलाए गए। हे राजेन्द्र ! इन कुमारियोंमें अम्वा बडी, अम्बिका मध्यमा और अम्बालिका छोटी राजकन्या थी ॥ १० ॥

सोऽहमेकरथेनैव गतः काशिपतेः पुरीम् ।
अपश्यं ता महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वलंकृताः ।
राज्ञश्चैव समावृत्तान्पार्थिवान्पृथिवीपते ॥ ११ ॥

हे महाबाहो ! मैं एक ही रथसे काशिराजके नगरमें गया और सब भूषणों अलंकृतसे उन तीन कन्याओंको देखा, साथ ही, हे राजन्! काशीराजाके द्वार निमंत्रित किए गए राजाओंको भी देखा ॥ ११ ॥

ततोऽहं तान्नृपान्सर्वानाहूय समरे स्थितान् ।
रथमारोपयाञ्चक्रे कन्यास्ता भरतर्षभ ॥ १२ ॥

तब, हे भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ! मैंने युद्ध करनेके लिए इकट्ठे हुए उन सम्पूर्ण राजाओंको आवाहन करके उन तीनों कन्याओंको रथमें बैठा लिया ॥ १२ ॥

वीर्यशुल्काश्च ता ज्ञात्वा समारोप्य रथं तदा ।
अवोचं पार्थिवान्सर्वानहं तत्र समागतान् ।
भीष्मः शान्तनवः कन्या हरतीति पुनः पुनः ॥ १३ ॥

पराक्रमसे ही वे प्राप्त की जा सकती हैं ऐसा जानकर उन तीनों कन्याओंको रथपर बैठाकर मैंने वहां आए हुए सब राजाओंसे बारबार यह वचन कहा, हे राजाओ! देखो, शन्तनुनन्दन भीष्म कन्याओंका हरण कर लिए जा रहा है ॥ १३ ॥

ते यतध्वं परं शक्त्या सर्वे मोक्षाय पार्थिवाः ।
प्रसह्य हि नयाम्येष मिषतां वो नराधिपाः ॥ १४ ॥

अतः, हे राजाओ ! तुम लोग अपनी पूरी शक्तिसे उनको छुडानेका यत्न करो। हे राजाओ! तुम सबके सम्मुख ही इन कन्याओंका मैं बलपूर्वक हरण किये जाता हूँ ॥ १४ ॥

ततस्ते पृथिवीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ।
योगो योग इति क्रुद्धाः सारथींश्चाप्यचोदयन् ॥ १५ ॥

तब वे सब राजा अपने सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंको लेकर उठ खडे हुए और क्रोधित होकर " रथ जोडो, रथ जोडो," इस प्रकार कहकर वे सारथियोंको आज्ञा देने लगे ॥ १५ ॥

×

ते रथैर्मेघसङ्काशैर्गजैश्च गजयोधिनः ।
पृष्ठ्यैश्चाश्वैर्महीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः ॥ १६ ॥

और तब, हे राजेन्द्र ! शस्त्रास्त्रोंको उठाये हुए वे राजा रथों पर, हाथियों पर बैठकर लडनेवाले मेघके समान हाथियों पर, तथा घुडसवार घोडों पर बैठकर लडने आ पहुंचे ॥ १६ ॥

ततस्ते मां महीपालाः सर्व एव विशां पते ।
रथव्रातेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ १७ ॥

इसके बाद, हे राजन् ! उन सभी राजाओंने बहुत बडे रथसमूहसे मुझे चारों ओरसे घेर लिया ॥ १७ ॥

तानहं शरवर्षेण महता पर्यवारयम् ।
सर्वान्नृपांश्चाप्यजयं देवराडिव दानवान् ॥ १८ ॥

मैंने भी अपने बाणोंकी महान् वर्षासे उन सबको घेर लिया और इन्द्र जैसे दानवोंको पराजित करते हैं, उसी प्रकारसे मैंने अकेले ही सब राजाओंको जीत लिया ॥ १८ ॥

तेषामापततां चित्रान्ध्वजान्हेमपरिष्कृतान् ।
एकैकेन हि बाणेन भूमौ पातितवानहम् ॥ १९ ॥

मेरे ऊपर आक्रमण करनेवाले उन शत्रुओंकी सोनेके कामसे युक्त अनेक तरहकी ध्वजाओंको मैंने एक ही बाणसे भूमि पर गिरा दिया ॥ १९ ॥

हयांश्चैषां गजांश्चैव सारथींश्चाप्यहं रणे ।
अपातयं शरैर्दीप्तैः प्रहसन्पुरुषर्षभ ॥ २० ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! उसीप्रकार मैंने हंसते हंसते अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनके घोडों, हाथियों और सारथियोंको युद्धमें मार गिराया ॥ २० ॥

ते निवृत्ताश्च भग्नाश्च दृष्ट्वा तल्लाघवं मम ।
अथाहं हास्तिनपुरमायां जित्वा महीक्षितः ॥ २१ ॥

इसप्रकार मुझे शस्त्रास्त्रोंको शीघ्रतासे छोडते देखकर सब राजा पराजित होकर भाग गये। और, हे महाबाहो ! मैं भी उन सब राजाओंको जीतकर हस्तिनापुर आ गया ॥ २१ ॥

ततोऽहं ताश्च कन्या वै भ्रातुरर्थाय भारत ।
तच्च कर्म महाबाहो सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ ॥ ५३३० ॥

इसके बाद, हे महाबाहो भारत ! भ्राताके निमित्त उन कन्याओंको लेकर सत्यवतीको सौंप दिया और युद्धका वृत्तान्त भी सम्पूर्ण रूपसे कह सुनाया ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७० ॥ ५३३० ॥

: १७१ :

भीष्म उवाच

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ मातरं वीरमातरम्।
अभिगम्योपसंगृह्य दाशेयीमिदमब्रुवम् ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर मैंने कैवर्तकी कन्या वीर जननी सत्यवतीके समीप जाकर प्रणाम करके यह वचन कहा ॥ १ ॥

इमाः काशिपतेः कन्या मया निर्जित्य पार्थिवान्।
विचित्रवीर्यस्य कृते वीर्यशुल्का उपार्जिताः ॥ २ ॥

हे माता ! मैं सब राजाओंको जीतकर विचित्रवीर्यके निमित्त, पराक्रमके द्वारा ही जो प्राप्त की जा सकती हैं ऐसी काशिराजकी इन कन्याओंको लाया हूं ॥ २ ॥

ततो मूर्धन्युपाघ्राय पर्यश्रुनयना नृप।
आह सत्यवती हृष्टा दिष्ट्या पुत्र जितं त्वया ॥ ३ ॥

तब सत्यवतीने आनंदित होकर मेरा मस्तक सूंघा और आंखोंमें आंसू भरकर वह यह वचन बोली– हे पुत्र ! सौभाग्यहीसे तुमने विजय प्राप्त की है ॥ ३ ॥

सत्यवत्यास्त्वनुमते विवाहे समुपस्थिते।
उवाच वाक्यं सव्रीडा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ॥ ४ ॥

इसके बाद सत्यवतीकी अनुमतिसे जब विवाहका समय उपस्थित हुआ, तब काशिराजकी बडी कन्या लज्जापूर्वक मुझसे यह वचन बोली ॥ ४ ॥

भीष्म त्वमसि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः।
श्रुत्वा च धर्म्यं वचनं मह्यं कर्तुमिहार्हसि ॥ ५ ॥

हे भीष्म ! तुम सब शास्त्रोंको जाननेवाले और धर्मात्मा हो; अतः मेरे धर्मयुक्त वचनोंको सुनकर उनका तुम्हें पालन करना चाहिये ॥ ५ ॥

मया शाल्वपतिः पूर्वं मनसाभिवृतो वरः।
तेन चास्मि वृता पूर्वं रहस्यविदिते पितुः ॥ ६ ॥

पहिलेसे ही मैंने शाल्वपतिको मन ही मन अपना वर चुन लिया है और उन्होंने भी पिताके अनजाने ही एकान्त स्थानपर मुझे स्वीकार कर लिया है ॥ ६ ॥

कथं मामन्यकामां त्वं राजञ्शास्त्रमधीत्य वै।
वासयेथा गृहे भीष्म कौरवः सन्विशेषतः ॥ ७ ॥

हे भीष्म ! अतः तुम श्रेष्ठ कौरवोंके कुलमें उत्पन्न होकर तथा धर्मके विद्वान् होकर भी दूसरेकी अभिलाषा करनेवाली एक कामिनीको अपने घरमें कैसे रख सकते हो ? ॥ ७ ॥

एतद्बुद्ध्या विनिश्चित्य मनसा भरतर्षभ ।
यत्क्षमं ते महाबाहो तदिहारब्धुमर्हसि ॥ ८ ॥

हे महाबाहो भरतश्रेष्ठ ! बुद्धि और मनसे इस विषयपर अच्छी प्रकारसे विचार करके जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिये ॥ ८ ॥

स मां प्रतीक्षते व्यक्तं शाल्वराजो विशां पते ।
कृपां कुरु महाबाहो मयि धर्मभृतां वर ।
त्वं हि सत्यव्रतो वीर पृथिव्यामिति नः श्रुतम् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ५३३९ ॥

हे राजेन्द्र ! वह शाल्वराज अवश्य मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। हे महाबाहो ! हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्म ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये; मैंने सुना है, आप पृथ्वीमें सत्यकी रक्षा करनेवालेके रूपमें विख्यात हैं ॥ ९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७१ ॥ ५३३९ ॥

: १७२ :

भीष्म उवाच

ततोऽहं समनुज्ञाप्य कालीं सत्यवतीं तदा ।
मन्त्रिणश्च द्विजांश्चैव तथैव च पुरोहितान् ।
समनुज्ञासिषं कन्यां ज्येष्ठामम्बां नराधिप ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे प्रजानाथ ! तब मैंने सत्यवती, मन्त्री, ब्राह्मण और पुरोहितोंको सब बात सुनाकर उन लोगोंकी सम्मतिसे बडी कन्या अम्बाको शाल्वराजके यहां जानेकी आज्ञा दे दी ॥ १ ॥

अनुज्ञाता ययौ सा तु कन्या शाल्वपतेः पुरम् ।
वृद्धैर्द्विजातिभिर्गुप्ता धात्र्या चानुगता तदा ।
अतीत्य च तमध्वानमाससाद नराधिपम् ॥ २ ॥

और वह भी मेरी आज्ञा पाकर बूढे ब्राह्मणोंसे रक्षित और धाईयोंसे युक्त होकर शाल्वराजके नगरको चली गई और सब मार्गोंको लांघ कर शाल्वराजके समीप पहुंची ॥ २ ॥

सा तमासाद्य राजानं शाल्वं वचनमब्रवीत् ।
आगताहं महाबाहो त्वामुद्दिश्य महाद्युते ॥ ३ ॥

वह कन्या उस शाल्वराजाके पास पहुंचकर यह वचन बोली— हे महाबाहो ! हे महातेजस्वी ! मैं तुम्हारे निमित्त यहांपर आई हूं ॥ ३ ॥

तामब्रवीच्छाल्वपतिः स्मयन्निव विशां पते ।
त्वयान्यपूर्वया नाहं भार्यार्थी वरवर्णिनि ॥ ४ ॥

हे राजेन्द्र ! तब शाल्वराज हंसकर उससे यह वचन बोले—हे सुन्दरी ! तुम पहलेसे ही दूसरेकी हो चुकी हो; इस कारण मैं तुमको अपनी भार्या बनानेकी अभिलाषा नहीं करता ॥४॥

गच्छ भद्रे पुनस्तत्र सकाशं भारतस्य वै ।
नाहमिच्छामि भीष्मेण गृहीतां त्वां प्रसह्य वै ॥ ५ ॥

हे भद्रे ! तुम फिर भरतवंशी भीष्मके समीप चली जाओ; भीष्म तुमको बलपूर्वक हरकर ले गया था; अतः अब मैं तुमसे विवाह करनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ५ ॥

त्वं हि निर्जित्य भीष्मेण नीता प्रीतिमती तदा ।
परामृश्य महायुद्धे निर्जित्य पृथिवीपतीन् ।
नाहं त्वय्यन्यपूर्वायां भार्यार्थी वरवर्णिनि ॥ ६ ॥

जब भीष्म महायुद्धमें राजाओंको जीतकर तुम्हें जबर्दस्ती हरकर ले गया था, तब तुम उससे बहुत प्रसन्न हुईं, इस प्रकार, हे सुन्दरी ! तुम पहले ही किसी दूसरीकी हो चुकी हो, इस कारण मैं अब तुम्हें अपनी स्त्री नहीं बना सकता ॥ ६ ॥

कथमस्मद्विधो राजा परपूर्वां प्रवेशयेत् ।
नारीं विदितविज्ञानः परेषां धर्ममादिशन् ।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे मा त्वां कालोऽत्यगादयम् ॥ ७ ॥

शास्त्र और धर्मको जाननेवाला तथा दूसरेको धर्मपालन करनेका उपदेश देनेवाला मेरे समान राजा दूसरेकी ग्रहण की हुई स्त्रीको किस प्रकारसे अपने घर रख सकता है ? अतः हे भद्रे ! अब जहां तुम्हारी इच्छा होवे, जाओ, कहीं यह समय बीत न जाए ॥ ७ ॥

अम्बा तमब्रवीद्राजन्ननङ्गशरपीडिता ।
मैवं वद महीपाल नैतदेवं कथञ्चन ॥ ८ ॥

हे राजन् ! तब अम्बा कामदेवके शरसे पीडित होकर उनसे यह वचन बोली—हे राजेन्द्र ! ऐसा न कहिये; आप जो कुछ कहते हैं, वह किसी प्रकारसे भी सत्य नहीं है ॥ ८ ॥

नास्मि प्रीतिमती नीता भीष्मेणामित्रकर्शन ।
बलान्नीतास्मि रुदती विद्राव्य पृथिवीपतीन् ॥ ९ ॥

हे शत्रुनाशी राजन् ! भीष्मके द्वारा हरण किये जातेसमय मैं उनपर कभी प्रसन्न नहीं हुई, भीष्म जिस समय सब राजाओंको जीतकर बलपूर्वक मेरा हरण करके मुझे ले जाने लगे उस समयमें मैं रो रही थी ॥ ९ ॥

भजस्व मां शाल्वपते भक्तां बालामनागसम् ।
भक्तानां हि परित्यागो न धर्मेषु प्रशस्यते ॥ १० ॥

हे शाल्वराज! इस कारण तुम अपने भक्त तथा इस निरपराधिनी बालाको ग्रहण करो, भक्तोंको त्यागना धर्ममें प्रशंसनीय नहीं माना जाता ॥ १० ॥

साहमामन्त्र्य गाङ्गेयं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
अनुज्ञाता च तेनैव तवैव गृहमागता ॥ ११ ॥

मैं युद्धमें अपराजित गङ्गानन्दन भीष्मसे पूछकर उनकी आज्ञाके अनुसार ही तुम्हारे घर आई हूं ॥ ११ ॥

न स भीष्मो महाबाहुर्मामिच्छति विशां पते ।
भ्रातृहेतोः समारम्भो भीष्मस्येति श्रुतं मया ॥ १२ ॥

हे राजेन्द्र! मैंने सुना है, कि वह महाबाहु भीष्म स्वयं मेरी इच्छा नहीं करते, अपितु भाईके निमित्त ही उन्होंने ऐसा यत्न किया था ॥ १२ ॥

भगिन्यौ मम ये नीते अम्बिकाम्बालिके नृप ।
प्रादाद्विचित्रवीर्याय गाङ्गेयो हि यवीयसे ॥ १३ ॥

हे राजन! गङ्गातनय भीष्म जो मेरी और दो बहिन अम्बिका और अम्बालिकाको ले गये थे, उन्हींके साथ अपने छोटे भाई विचित्रवीर्यका विवाह किया है ॥ १३ ॥

यथा शाल्वपते नान्यं वरं ध्यामि कथञ्चन ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र तथा मूर्धानमालभे ॥ १४ ॥

हे पुरुषसिंह शाल्वराज! तुम्हारे अतिरिक्त मैं और दूसरे किसी वरकी इच्छा नहीं करती हूं, मैं मस्तक छूकर शपथ लेती हूं ॥ १४ ॥

न चान्यपूर्वा राजेन्द्र त्वामहं समुपस्थिता ।
सत्यं ब्रवीमि शाल्वैतत्सत्येनात्मानमालभे ॥ १५ ॥

हे राजन्! मैं पहिले किसी दूसरेकी होकर तुम्हारे पास नहीं आई हूं; हे शाल्वराज! मैं अपनी आत्माकी शपथ लेकरके यह सत्य ही कह रही हूं ॥ १५ ॥

भजस्व मां विशालाक्ष स्वयं कन्यामुपस्थिताम् ।
अनन्यपूर्वां राजेन्द्र त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणीम् ॥ १६ ॥

हे विशाल आंखोंवाले प्रजानाथ! अतः दूसरेकी इच्छा न करनेवाली, आपके ही प्रसादकी इच्छा करती हुई स्वयं उपस्थित हुई मुझ कुमारीको आप ग्रहण करें ॥ १६ ॥

तामेवं भाषमाणां तु शाल्वः काशिपतेः सुताम् ।
अत्यजद्भरतश्रेष्ठ त्वचं जीर्णामिवोरगः ॥ १७ ॥

हे भरतर्षभ ! काशिराजकी कन्याके ऐसा कहनेपर भी शाल्वराजने पुरानी केंचुलीको छोडनेवाले सर्पके समान उसे त्याग ही दिया ॥ १७ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानस्तयानघ ।
नाश्रद्दधच्छाल्वपतिः कन्याया भरतर्षभ ॥ १८ ॥

हे अनघ भरतश्रेष्ठ ! कन्याके द्वारा इसी प्रकारसे अनेक वचनोंसे प्रार्थना करने पर भी शाल्वराजने कन्याकी बात पर विश्वास नहीं किया ॥ १८ ॥

ततः सा मन्युनाविष्टा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।
अब्रवीत्साश्रुनयना बाष्पविह्वलया गिरा ॥ १९ ॥

तब वह काशीराजकी बडी लडकी क्रोधमें भरकर आंसुओंसे युक्त आंखोंवाली होकर आंसुओंसे रुंधी हुई वाणीसे बोली ॥ १९ ॥

त्वया त्यक्ता गमिष्यामि यत्र यत्र विशां पते ।
तत्र मे सन्तु गतयः सन्तः सत्यं यथाब्रुवम् ॥ २० ॥

हे राजन् ! तुम्हारे द्वारा परित्यक्त होकर मैं जहां जहां जाऊं, वहां वहां साधु पुरुष मेरी रक्षा करें; जो कुछ मैंने कहा है, वह सब सत्य है ॥ २० ॥

एवं संभाषमाणां तु नृशंसः शाल्वराट् तदा ।
पर्यत्यजत कौरव्य करुणं परिदेवतीम् ॥ २१ ॥

हे कुरुनन्दन ! तब ऐसा वचन कहकर करुण स्वरसे रोदन करनेवाली उस काशिराजकी कन्याको निर्दय शाल्वराजने त्याग दिया ॥ २१ ॥

गच्छ गच्छेति तां शाल्वः पुनः पुनरभाषत ।
बिभेमि भीष्मात्सुश्रोणि त्वं च भीष्मपरिग्रहः ॥ २२ ॥

और जाओ, जाओ इस प्रकार कहकर उससे बार बार कहने लगा कि हे सुन्दरि ! तुम भीष्मके द्वारा हरी गई हो, (अतः यदि वह तुम्हारे कारण मुझपर क्रोधित होगा, तो मैं उसका मुकाबला नहीं कर सकूंगा) इसलिए मैं भीष्मसे डरता हूँ, (अतः तुम शीघ्र यहांसे चली जाओ) ॥ २२ ॥

एवमुक्ता तु सा तेन शाल्वेनादीर्घदर्शिना।
निश्चक्राम पुराद्दीना रुदती कुररी यथा ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥ ५२६२ ॥

अदीर्घदर्शी शाल्वराजके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर अम्बा कातर होके कुररीकी भांति रोदन करती हुई नगरसे बाहर चली गई ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७२ ॥ ५२६२ ॥

: १७३ :

भीष्म उवाच

सा निष्क्रमन्ती नगराच्चिन्तयामास भारत।
पृथिव्यां नास्ति युवतिर्विषमस्थतरा मया।
बांधवैर्विप्रहीनास्मि शाल्वेन च निराकृता ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे भारत ! काशिराजकी कन्या नगरसे निकल कर सोचने लगी, कि पृथ्वीमें मेरे समान भाग्यहीन लडकी और कोई भी नहीं है, मैं अपने बन्धुबान्धवोंसे ही पृथक् तो हुई ही हूं पर शाल्वने भी मेरा त्याग कर दिया है ॥ १ ॥

न च शक्यं पुनर्गन्तुं मया वारणसाह्वयम्।
अनुज्ञातास्मि भीष्मेण शाल्वमुद्दिश्य कारणम् ॥ २ ॥

फिर भी हस्तिनापुरको लौट जानेका अब मुझे साहस नहीं होता, क्योंकि शाल्वराजके निमित्त भीष्मसे उनकी आज्ञा लेकर ही यहां आई हूं ॥ २ ॥

किं नु गर्हाम्यथात्मानमथ भीष्मं दुरासदम्।
आहोस्वित्पितरं मूढं यो मेऽकार्षीत्स्वयंवरम् ॥ ३ ॥

अतः अब अपनी निन्दा करूं, वा उस दुष्ट भीष्मका ही तिरस्कार करूं वा जिसने मेरा स्वयंवर किया था, उस मूढ पिताकी ही निन्दा करूं ? ॥ ३ ॥

ममायं स्वकृतो दोषो याहं भीष्मरथात्तदा।
प्रवृत्ते वैशसे युद्धे शाल्वार्थं नापतं पुरा।
तस्येयं फलनिर्वृत्तिर्यदापन्नास्मि मूढवत् ॥ ४ ॥

अथवा यह मेरा अपना ही दोष है, क्योंकि उस दारुण संग्रामके उपस्थित होनेपर मैं भीष्मके रथसे उतरकर शाल्वराजके रथपर क्यों न चली गई ? यह उसी बुद्धिहीनताका फल है कि मैं अब मूर्खके समान संकटसे घिर गई हूँ ॥ ४ ॥

धिग्भीष्मं धिक्च मे मन्दं पितरं मूढचेतसम् ।
येनाहं वीर्यशुल्केन पण्यस्त्रीवत्प्रवेरिता ॥ ५ ॥

भीष्मको धिक्कार है, उस मन्दबुद्धि मूढ पिताको भी धिक्कार है। जिसने पराक्रमका शुल्क लगा करके वेश्याकी भांति मेरा हरण करवा दिया ॥ ५ ॥

धिङ्मां धिक्शाल्वराजानं धिग्धातारमथापि च ।
येषां दुर्नीतभावेन प्राप्तास्म्यापदमुत्तमाम् ॥ ६ ॥

मुझे धिक्कार है, उस शाल्वराजको भी धिक्कार है और विधाताको भी धिक्कार है। जिनकी बुरी नीतिके कारण ही आज मैं इस आपत्तिमें पडी हुई हूं ॥ ६ ॥

सर्वथा भागधेयानि स्वानि प्राप्नोति मानवः ।
अनयस्यास्य तु मुखं भीष्मः शान्तनवो मम ॥ ७ ॥

मनुष्य अपने प्रारब्धके अनुसार फल पाता है, यह ठीक है; परन्तु इस विपत्तिका मुख अर्थात् मूल कारण शन्तनुपुत्र भीष्म ही है ॥ ७ ॥

सा भीष्मे प्रतिकर्तव्यमहं पश्यामि साम्प्रतम् ।
तपसा वा युधा वापि दुःखहेतुः स मे मतः ।
को नु भीष्मं युधा जेतुमुत्सहेत महीपतिः ॥ ८ ॥

अतः चाहे तपस्यासे हो अथवा युद्धसे हो सके; उससे बदला लेना ही मेरा कर्तव्य है, क्योंकि वही मेरे इस दुःखका कारण है। परन्तु कौन राजा युद्धमें भीष्मको जीतनेका उत्साह कर सकता है ? ॥ ८ ॥

एवं सा परिनिश्चित्य जगाम नगराद्बहिः ।
आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ।
ततस्तामवसद्रात्रिं तापसैः परिवारिता ॥ ९ ॥

हे भारत ! इसी प्रकारसे चिन्ता करती हुई अम्बा नगरके बाहर पुण्यशील महात्मा तपस्वियोंके आश्रमोंमें जा पहुंची । वहांपर तपस्वियोंसे घिरी जाकर रात्री बितायी ॥ ९ ॥

आचख्यौ च यथा वृत्तं सर्वमात्मनि भारत ।
विस्तरेण महाबाहो निखिलेन शुचिस्मिता ।
हरणं च विसर्गं च शाल्वेन च विसर्जनम् ॥ १० ॥

और, हे महाबाहो दुर्योधन ! सुन्दर मुस्कराहटोंवाली सुन्दरी अम्बाने अपने हरे जाने, छूटने तथा शाल्वराजके द्वारा परित्याग किये जानेका सम्पूर्ण वृत्तान्त उन तपस्वियोंसे कहा ॥ १० ॥

×

ततस्तत्र महानासीद्ब्राह्मणः संशितव्रतः।
शैखावत्यस्तपोवृद्धः शास्त्रे चारण्यके गुरुः ॥ ११ ॥

हे महाबाहो ! वहांपर तपमें वृद्ध, शास्त्र और आरण्यकोंके आचार्य व्रतका पालन करनेवाले शैखावत्य नामक एक महाविद्वान् ब्राह्मण थे ॥ ११ ॥

आर्तां तामाह स मुनिः शैखावत्यो महातपाः।
निःश्वसन्तीं सतीं बालां दुःखशोकपरायणाम् ॥ १२ ॥

वह महातपस्वी शैखावत्य मुनि अत्यन्त कातर, शोक और दुःखके कारण लम्बी सांस छोडनेवाली उस साध्वी कन्या अम्बासे बोले ॥ १२ ॥

एवं गते किं नु भद्रे शक्यं कर्तुं तपस्विभिः।
आश्रमस्थैर्महाभागैस्तपोनित्यैर्महात्मभिः ॥ १३ ॥

हे भद्रे ! ऐसी अवस्थामें आश्रमवासी महाभाग तपस्वी महात्मा लोग कर ही क्या सकते हैं ! ॥ १३ ॥

सा त्वेनमब्रवीद्राजन्क्रियतां मदनुग्रहः।
प्रव्राजितुमिहेच्छामि तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ॥ १४ ॥

हे राजन् ! परन्तु अम्बा उससे यह वचन बोली, हे महाभाग ! मेरे ऊपर कृपा कीजिए। मैं प्रव्रज्या धर्म अर्थात् संन्यासको ग्रहण करनेकी इच्छा करती हूं, कठिन होनेपर भी मैं तपस्या करूंगी ॥ १४ ॥

मयैवैतानि कर्माणि पूर्वदेहेषु मूढया।
कृतानि नूनं पापानि तेषामेतत्फलं ध्रुवम् ॥ १५ ॥

मैंने मोहमें पडकर पूर्वजन्मोंमें जो कुछ पाप किया था; उसका यह सब फल भोग कर रही हूं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥

नोत्सहेयं पुनर्गन्तुं स्वजनं प्रति तापसाः।
प्रत्याख्याता निरानन्दा शाल्वेन च निराकृता ॥ १६ ॥

हे तपस्वियो ! शाल्वके द्वारा तिरस्कृत होनेके कारण आनन्दरहित हुई हुई मैं अब अपने भाईयोंके पास जानेका साहस नहीं कर सकती ॥ १६ ॥

उपदिष्टमिहेच्छामि तापस्यं वीतकल्मषाः।
युष्माभिर्देवसंकाशाः कृपा भवतु वो मयि ॥ १७ ॥

हे पापरहित तपस्वियो ! अतः अब मैं तपस्या कर्मके उपदेशको सुननेकी इच्छा करती हूं; आप लोग देवताओंके समान हैं, अतः मेरे ऊपर कृपा कीजिये ॥ १७ ॥

स तामाश्वासयत्कन्यां दृष्टान्तागमहेतुभिः ।
सान्त्वयामास कार्यं च प्रतिजज्ञे द्विजैः सह ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३॥ ५३८० ॥

तब उस मुनिने लौकिक दृष्टान्त, वेद और युक्तिसे शान्त करके उस कन्याको धीरज दिया और ब्राह्मणोंके साथ मिलकर उसके कार्यको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा की ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ तिहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७३ ॥ ५३८० ॥

: १७४ :

भीष्म उवाच

ततस्ते तापसाः सर्वे कार्यवन्तोऽभवंस्तदा ।
तां कन्यां चिन्तयन्तो वै किं कार्यमिति धर्मिणः ॥ १ ॥

भीष्म बोले– तदनन्तर वे धर्मात्मा तपस्वी लोग, उस समय इस कन्याके विषयमें क्या करना चाहिए इस बारेमें विचार करने लगे ॥ १ ॥

केचिदाहुः पितुर्वेश्म नीयतामिति तापसाः ।
केचिदस्मदुपालम्भे मतिं चक्रुर्द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥

कुछ तपस्वी बोले, कि इसको पिताके घर ले जाना चाहिये, और कुछ ब्राह्मण श्रेष्ठ मेरी निन्दा करनेका विचार करने लगे ॥ २ ॥

केचिच्छाल्वपतिं गत्वा नियोज्यमिति मेनिरे ।
नेति केचिद्व्यवस्यन्ति प्रत्याख्याता हि तेन सा ॥ ३ ॥

कोई शाल्वराजके पास जाकर उसीको कन्या समर्पित करनेके लिए कहने लगे; परन्तु कोई कोई तपस्वी यह कहने लगे, कि उसके समीप ले जाकर इसका समर्पण करना उचित नहीं है क्योंकि उसने इसका परित्याग कर दिया है ॥ ३ ॥

एवं गते किं नु शक्यं भद्रे कर्तुं मनीषिभिः ।
पुनरूचुश्च ते सर्वे तापसाः संशितव्रताः ॥ ४ ॥

दृढव्रत करनेवाले तपस्वियोंने आपसमें सोच विचार करके फिर उस कन्यासे कहा, हे भद्रे ! ऐसी अवस्थामें धर्मात्मा लोग क्या कर सकते हैं ? ॥ ४ ॥

अलं प्रव्रजितेनेह भद्रे शृणु हितं वचः।
इतो गच्छस्व भद्रं ते पितुरेव निवेशनम् ॥ ५ ॥

हे भद्रे! तुम तापस धर्मको ग्रहण करनेका विचार मत करो; हम लोगोंके हितकर वचन सुनो; इस स्थानसे लौट कर तुम पिताके घर ही जाओ ॥ ५ ॥

प्रतिपत्स्यति राजा स पिता ते यदनन्तरम्।
तत्र वत्स्यसि कल्याणि सुखं सर्वगुणान्विता।
न च तेऽन्या गतिर्न्याय्या भवेद्भद्रे यथा पिता ॥ ६ ॥

तुम्हारे पिता काशिराज जैसा कुछ करने योग्य होगा वैसा वे करेंगे। हे कल्याणी वहांपर सब गुणोंसे भूषित होकर तुम सुखसे रह सकोगी। हे भद्रे! न्यायके अनुसार अब ऐसी अवस्थामें पिताके अलावा तुम्हारा दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है ॥ ६ ॥

पतिर्वापि गतिर्नार्याः पिता वा वरवर्णिनि।
गतिः पतिः समस्थाया विषमे तु पिता गतिः ॥ ७ ॥

हे सुन्दरि! स्त्रीके लिए पति अथवा पिता ही गतिरूप हैं। कालकी अनुकूलतामें पति और प्रतिकूलतामें पिता ही रक्षक होता है ॥ ७ ॥

प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्या विशेषतः।
राजपुत्र्याः प्रकृत्या च कुमार्यास्तव भामिनि ॥ ८ ॥

हे भामिनि! तुम स्वभावहीसे राजपुत्री हो उस पर भी सुकुमारी कन्या हो; अतः तपस्या तुम्हारे लिए अत्यन्त ही दुःखदायी होगी ॥ ८ ॥

भद्रे दोषा हि विद्यन्ते बहवो वरवर्णिनि।
आश्रमे वै वसन्त्यास्ते न भवेयुः पितुर्गृहे ॥ ९ ॥

हे भद्रे सुन्दरी! विशेष करके आश्रममें वास करनेमें जो अनेक दोष हो सकते हैं, पिताके घरमें उन सब दोषोंके होनेकी संभावना नहीं है ॥ ९ ॥

ततस्तु तेऽब्रुवन्वाक्यं ब्राह्मणास्तां तपस्विनीम्।
त्वामिहैकाकिनीं दृष्ट्वा निर्जने गहने वने।
प्रार्थयिष्यन्ति राजेन्द्रास्तस्मान्मैवं मनः कृथाः ॥ १० ॥

तदनन्तर दूसरे ब्राह्मण लोग उस तपस्विनीसे यह वचन बोले, हे भद्रे! इस निर्जन भयङ्कर वनमें तुमको अकेली देखकर राजा लोग तुम्हें अपनी पत्नी बनानेकी अभिलाषा करेंगे; अतः तुम कभी यहांपर रहनेकी इच्छा मत करो ॥ १० ॥

अम्बोवाच

न शक्यं काशिनगरीं पुनर्गन्तुं पितुर्गृहान्।
अवज्ञाता भविष्यामि बान्धवानां न संशयः ॥ ११ ॥

अम्बा बोली– हे तपस्वियो ! मैं फिर काशीनगरीमें अपने पिताके घर नहीं जा सकती; यदि मैं लौट जाऊंगी तो बन्धु बान्धवोंके बीचमें अवश्य ही मैं अवज्ञाका पात्र बनूंगी ॥ ११ ॥

उषिता ह्यन्यथा बाल्ये पितुर्वेश्मनि तापसाः।
नाहं गमिष्ये भद्रं वस्तत्र यत्र पिता मम।
तपस्तप्तुमभीप्सामि तापसैः परिपालिता ॥ १२ ॥

हे तपस्वियो ! तुम्हारा कल्याण हो। बालक अवस्थामें बहुत दिन तक मैंने पिताके घरमें वास किया था; परन्तु अब जहां मेरे पिता हैं, उस स्थानपर नहीं जाऊंगी। इस समय अब मैं तपस्वियोंसे रक्षित होकर तपस्या करना चाहती हूं ॥ १२ ॥

यथा परेऽपि मे लोके न स्यादेवं महात्ययः।
दौर्भाग्यं ब्राह्मणश्रेष्ठास्तस्मात्तप्स्याम्यहं तपः ॥ १३ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ महात्मागण ! परलोकमें भी दुर्भाग्यरूप ऐसी ही विपत्ति उपस्थित न होवे; और मेरे सुखोंका नाश न हो इसीलिए मैं तपस्या करूंगी ॥ १३ ॥

भीष्म उवाच

इत्येवं तेषु विप्रेषु चिन्तयत्सु तथा तथा।
राजर्षिस्तद्वनं प्राप्तस्तपस्वी होत्रवाहनः ॥ १४ ॥

भीष्म बोले– वे ब्राह्मण लोग इसी प्रकारसे कर्तव्य कार्यके बारेमें विचार कर रहे थे; कि उसी समय तपस्वी राजर्षि होत्रवाहन उस तपोवनमें आये ॥ १४ ॥

ततस्ते तापसाः सर्वे पूजयन्ति स्म तं नृपम्।
पूजाभिः स्वागताद्याभिरासनेनोदकेन च ॥ १५ ॥

तपस्वियोंने स्वागत करके विधिपूर्वक आसन अर्घ आदि पूजा सामग्रीको प्रदान करके उनकी पूजा की ॥ १५ ॥

तस्योपविष्टस्य सतो विश्रान्तस्योपशृण्वतः।
पुनरेव कथां चक्रुः कन्यां प्रति वनौकसः ॥ १६ ॥

उनके विश्राम करके बैठनेपर वनवासी तपस्वी लोग उनके संमुख ही फिर उस कन्यासे बातचीत करने लगे ॥ १६ ॥

अम्बायास्तां कथां श्रुत्वा काशिराज्ञश्च भारत ।
स वेपमान उत्थाय मातुरस्याः पिता तदा ।
तां कन्यामङ्कमारोप्य पर्याश्वासयत प्रभो ॥ १७ ॥

हे भारत ! अम्बा और काशिराजका वह वृत्तान्त सुनकर अम्बाकी माताके पिता होत्रवाहन कांपते हुए उठकर कन्याको गोदमें लेकर उसे धीरज देने लगे ॥ १७ ॥

स तामपृच्छत्कार्त्स्न्येन व्यसनोत्पत्तिमादितः ।
सा च तस्मै यथावृत्तं विस्तरेण न्यवेदयत् ॥ १८ ॥

उन्होंने अंबासे उसके दुःखकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण वृत्तान्त आदिसे ही पूछना आरंभ किया और उसने भी जो कुछ हुआ था, उसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया ॥ १८ ॥

ततः स राजर्षिरभूद्दुःखशोकसमन्वितः ।
कार्यं च प्रतिपेदे तन्मनसा सुमहातपाः ॥ १९ ॥

तब वह महातपस्वी राजर्षिने दुःख और शोकसे युक्त होकर अपने मन ही मन अपने कार्यका निश्चय कर लिया ॥ १९ ॥

अब्रवीद्वेपमानश्च कन्यामार्तां सुदुःखितः ।
मा गाः पितृगृहं भद्रे मातुस्ते जनको ह्यहम् ॥ २० ॥

बहुत दुःखी होकर कांपते हुए उस दुःखी कन्यासे बोले, हे भद्रे ! पिताके घर मत जाओ; मैं तुम्हारी माताका पिता अर्थात् नाना हूँ ॥ २० ॥

दुःखं छेत्स्यामि तेऽहं वै मयि वर्तस्व पुत्रिके ।
पर्याप्तं ते मनः पुत्रि यदेवं परिशुष्यसि ॥ २१ ॥

मैं तुम्हारे दुःखको दूर करूंगा । हे पुत्री ! तुम मेरे साथ रहो । तुम जिस प्रकारसे सूखी जा रही हो, उससे प्रतीत होता है, कि तुम्हारा अन्तःकरण दुःखसे घिर गया है ॥ २१ ॥

गच्छ मद्वचनाद्रामं जामदग्न्यं तपस्विनम् ।
रामस्तव महद्दुःखं शोकं चापनयिष्यति ।
हनिष्यति रणे भीष्मं न करिष्यति चेद्वचः ॥ २२ ॥

मेरे वचनके अनुसार तुम तपस्वियोंमें श्रेष्ठ परशुरामके समीप जाओ, वह तुम्हारे इस बहुत बडे दुःख और शोकको दूर करेंगे । भीष्म यदि उनकी बात न मानेगा; तो वह युद्धमें अवश्य ही उसका वध करेंगे ॥ २२ ॥

तं गच्छ भार्गवश्रेष्ठं कालाग्निसमतेजसम् ।
प्रतिष्ठापयिता स त्वां समे पथि महातपाः ॥ २३ ॥

अतः तुम उसी प्रलयकालके अग्निके समान तेजस्वी परशुरामके पास जाओ । वह महातपस्वी महात्मा भार्गव तुमको सन्मार्गमें प्रतिष्ठित करेंगे ॥ २३ ॥

ततस्तु सुस्वरं बाष्पमुत्सृजन्ती पुनः पुनः।
अब्रवीत्पितरं मातुः सा तदा होत्रवाहनम् ॥ २४ ॥
अभिवादयित्वा शिरसा गमिष्ये तव शासनात्।
अपि नामाद्य पश्येयमार्यं तं लोकविश्रुतम् ॥ २५ ॥

तब अम्बा बार बार जोर जोरसे रोती हुई अपनी माताके पिता होत्रवाहनको सिरसे प्रणाम करके बोली, आपकी आज्ञाके अनुसार मैं जाऊंगी; परन्तु उन लोक-विख्यात महात्मा भार्गवको मैं कहांपर देख सकूंगी? ॥ २४-२५ ॥

कथं च तीव्रं दुःखं मे हनिष्यति स भार्गवः।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुमथ यास्यामि तत्र वै ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥ ५४०६ ॥

वह भार्गव किस प्रकारसे मेरे तीव्र दुःखका नाश करेंगे यह सब मैं सुनना चाहती हूँ, यह सब सुननेके बाद मैं उनके पास जाऊंगी ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७४ ॥ ५४०६ ॥

: १७५ :

होत्रवाहन उवाच

रामं द्रक्ष्यसि वत्से त्वं जामदग्न्यं महावने।
उग्रे तपसि वर्तन्तं सत्यसन्धं महाबलम् ॥ १ ॥

होत्रवाहन बोले— हे वत्से! तुम सत्यव्रती महाबलवान् जामदग्न्य परशुरामको महावनमें अत्यन्त कठिन तपस्या करते हुए देखोगी ॥ १ ॥

महेन्द्रे वै गिरिश्रेष्ठे रामं नित्यमुपासते।
ऋषयो वेदविदुषो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ २ ॥

पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र-गिरिके शिखरपर वेदको जाननेवाले ऋषि, गन्धर्व तथा अप्सरायें सदा ही परशुरामकी सेवा किया करती हैं ॥ २ ॥

तत्र गच्छस्व भद्रं ते ब्रूयाश्चैनं वचो मम।
अभिवाद्य पूर्वं शिरसा तपोवृद्धं दृढव्रतम् ॥ ३ ॥

तुम उसी स्थानमें जा करके उन दृढव्रती, तपमें लगे हुए महात्मा भार्गवको पहले सिरसे प्रणाम करके मेरा वचन कहना ॥ ३ ॥

ब्रूयाश्चैनं पुनर्भद्रे यत्ते कार्यं मनीषितम् ।
मयि सङ्कीर्तिते रामः सर्वं तत्ते करिष्यति ॥ ४ ॥

और फिर तुम्हारी जो भी अभिलाषा पूरी करनेकी हो, उसे तुम उनसे कहना। मेरा नाम लेनेपर वे तुम्हारे सब काम अवश्य ही पूरा करेंगे ॥ ४ ॥

मम रामः सखा वत्से प्रीतियुक्तः सुहृच्च मे ।
जमदग्निसुतो वीरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ५ ॥

हे पुत्री ! वह सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीरवर जमदग्निपुत्र परशुराम मेरे सखा और प्रेम करनेवाले सुहृद् हैं ॥ ५ ॥

एवं ब्रुवति कन्यां तु पार्थिवे होत्रवाहने ।
अकृतव्रणः प्रादुरासीद्रामस्यानुचरः प्रियः ॥ ६ ॥

राजा होत्रवाहन कन्यासे ऐसे वचन कह ही रहे थे, कि उसी समय परशुरामके प्रिय सेवक अकृतव्रण वहांपर प्रकट हुए ॥ ६ ॥

ततस्ते मुनयः सर्वे समुत्तस्थुः सहस्रशः ।
स च राजा वयोवृद्धः सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥ ७ ॥

तब वहांपर वे सब सहस्रों मुनि और अवस्थामें बूढे राजा सृंजयवंशी होत्रवाहन भी उठ खडे हुए ॥ ७ ॥

ततः पृष्ट्वा यथान्यायमन्योन्यं ते वनौकसः ।
सहिता भरतश्रेष्ठ निषेदुः परिवार्य तम् ॥ ८ ॥

हे भरतर्षभ ! तब वे सब तपस्वी लोग उनका यथा उचित कुशल पूछ करके सब कोई उनको चारों ओरसे घेरकर बैठ गये ॥ ८ ॥

ततस्ते कथयामासुः कथास्तास्ता मनोरमाः ।
कान्ता दिव्याश्च राजेन्द्र प्रीतिहर्षमुदा युताः ॥ ९ ॥

हे राजेन्द्र ! इसके बाद प्रीतिपूर्वक प्रसन्न चित्तसे वे बहुतसी दिव्य उत्तम और मनोहर कथायें कहने लगे ॥ ९ ॥

ततः कथान्ते राजर्षिर्महात्मा होत्रवाहनः ।
रामं श्रेष्ठं महर्षीणामपृच्छदकृतव्रणम् ॥ १० ॥

तदनन्तर कथाके समाप्त होने पर महात्मा राजर्षि होत्रवाहनने अकृतव्रणसे महर्षिश्रेष्ठ परशुरामकी कुशलता पूछी ॥ १० ॥

क सम्प्रति महाबाहो जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
अकृतव्रण शक्यो वै द्रष्टुं वेदविदां वर ॥ ११ ॥

हे महाबाहो वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ अकृतव्रण ! प्रतापवान् परशुराम इस समय कहांपर मिल सकते हैं ? ॥ ११ ॥

अकृतव्रण उवाच

भवन्तमेव सततं रामः कीर्तयति प्रभो ।
सृञ्जयो मे प्रियसखो राजर्षिरिति पार्थिव ॥ १२ ॥

अकृतव्रण बोले— हे प्रभावसे युक्त राजेन्द्र ! परशुराम राजऋषि होत्रवाहन मेरे प्रिय मित्र हैं ऐसा कहकर सदा तुम्हारा स्मरण किया करते हैं ॥ १२ ॥

इह रामः प्रभाते श्वो भवितेति मतिर्मम ।
द्रष्टास्येनमिहायान्तं तव दर्शनकांक्षया ॥ १३ ॥

मेरा विचार है, कि तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे वह कल सबेरे यहींपर आवेंगे; अतः यहां आनेपर तुम उन्हें देख सकोगे ॥ १३ ॥

इयं च कन्या राजर्षे किमर्थं वनमागता ।
कस्य चेयं तव च का भवतीच्छामि वेदितुम् ॥ १४ ॥

हे राजर्षि ! यह कन्या किस कारणसे वनमें आई है ? यह किसकी कन्या है और तुम्हारी कौन होती है ? इस विषयको सुननेकी मेरी बहुत ही इच्छा है ॥ १४ ॥

होत्रवाहन उवाच

दौहित्रीयं मम विभो काशिराजसुता शुभा ।
ज्येष्ठा स्वयंवरे तस्थौ भगिनीभ्यां सहानघ ॥ १५ ॥

होत्रवाहन बोले— हे विभो निष्पाप अकृतव्रण ! यह मेरी दौहित्री, काशिराजकी यह बडी पुत्री अपनी दो छोटी बहिनोंके सहित स्वयंवरमें आकर उपस्थित हुई थी ॥ १५ ॥

इयमम्बेति विख्याता ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ।
अम्बिकाम्बालिके त्वन्ये यवीयस्यौ तपोधन ॥ १६ ॥

काशिराजकी यह बडी पुत्री अम्बाके नामसे विख्यात है । हे तपोधन ! इसकी दो अन्य छोटी बहनें अम्बिका और अम्बालिकाके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ १६ ॥

समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां ततोऽभवत् ।
कन्यानिमित्तं ब्रह्मर्षे तत्रासीदुत्सवो महान् ॥ १७ ॥

उस स्वयंवरमें पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रिय राजा कन्याको प्राप्त करनेके लिए काशीपुरीमें इकट्ठे हुए थे । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उस समय वहांपर बहुत बडा उत्सव हुआ था ॥ १७ ॥

×

ततः किल महावीर्यो भीष्मः शान्तनवो नृपान्।
अवाक्षिप्य महातेजास्तिस्रः कन्या जहार ताः ॥ १८ ॥

तब महाबली अत्यन्त तेजस्वी शन्तनुपुत्र भीष्मने सब राजाओंको पराजित करके उन तीनों कन्याओंका हरण किया ॥ १८ ॥

निर्जित्य पृथिवीपालानथ भीष्मो गजाह्वयम्।
आजगाम विशुद्धात्मा कन्याभिः सह भारत ॥ १९ ॥

हे भारत! वह निर्मल चित्तवाला प्रतापी भीष्म सब राजाओंको परास्तकर तीनों कन्याओंके सहित हस्तिनापुरमें आया ॥ १९ ॥

सत्यवत्यै निवेद्याथ विवाहार्थमनन्तरम्।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य समाज्ञापयत प्रभुः ॥ २० ॥

और उस प्रभु भीष्मने सत्यवतीको सारी बात बताकर अपने भ्राता विचित्रवीर्यके विवाहके लिए आज्ञा दी ॥ २० ॥

ततो वैवाहिकं दृष्ट्वा कन्येयं समुपार्जितम्।
अब्रवीत्तत्र गाङ्गेयं मन्त्रिमध्ये द्विजर्षभ ॥ २१ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ! तब यह कन्या विचित्रवीर्यको विवाहके निमित्त उपस्थित और माङ्गलिक सूत्रबन्धन आदिसे युक्त होते देखकर मन्त्रियोंके बीच भीष्मसे यह वचन बोली ॥ २१ ॥

मया शाल्वपतिर्वीर मनसाभिवृतः पतिः।
न मामर्हसि धर्मज्ञ परचित्तां प्रदापितुम् ॥ २२ ॥

हे वीर! मैंने मन ही मन शाल्वराजको पतिरूपमें चुन लिया है, अतः, हे धर्मके जाननेवाले! परपुरुषके बारेमें सोचनेवाली मुझे अपने भाईके लिए देना तुम्हारे लिए योग्य नहीं है ॥ २२ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं भीष्मः सम्मन्त्र्य सह मन्त्रिभिः।
निश्चित्य विससर्जेमां सत्यवत्या मते स्थितः ॥ २३ ॥

भीष्मने उस वचनको सुनकर मन्त्रियोंके साथ विचार कर सत्यवतीकी आज्ञा पाकर इसे छोड दिया ॥ २३ ॥

अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वं सौभपतिं ततः।
कन्येयं मुदिता तत्र काले वचनमब्रवीत् ॥ २४ ॥

तब यह कन्या भीष्मकी आज्ञा पाकर प्रसन्न चित्तसे सौभपति शाल्वके निकट जाकर यह वचन बोली ॥ २४ ॥

विसर्जितास्मि भीष्मेण धर्मं मां प्रतिपादय।
मनसाभिवृतः पूर्वं मया त्वं पार्थिवर्षभ ॥ २५ ॥

हे राजन्! मैंने पहले ही मन ही मन तुमको पतिरूपमें वरण कर लिया है, इस समय भीष्मने मुझको स्वतंत्र कर दिया है, अतः अब तुम धर्मानुसार चलनेवाली मुझको स्वीकार करो ॥ २५ ॥

प्रत्याचख्यौ च शाल्वोऽपि चारित्रस्याभिशङ्कितः।
सेयं तपोवनं प्राप्ता तापस्येऽभिरता भृशम् ॥ २६ ॥

परन्तु शाल्वराजने इसके चरित्रके विषयमें शंकित होकर इसको ग्रहण करनेसे अस्वीकार कर दिया। इसी कारणसे यह तपके निमित्त इच्छावाली होकर इस तपोवनमें आई है ॥ २६ ॥

मया च प्रत्यभिज्ञाता वंशस्य परिकीर्तनात्।
अस्य दुःखस्य चोत्पत्तिं भीष्ममेवेह मन्यते ॥ २७ ॥

मैंने भी वंशका नाम लेनेपर ही इसको जाना है। हे तपोधन! अपने इस दुःखकी उत्पत्तिके विषयमें यह भीष्महीको कारण समझती है ॥ २७ ॥

अम्बोवाच

भगवन्नेवमेवैतद्यथाह पृथिवीपतिः।
शरीरकर्ता मातुर्मे सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥ २८ ॥

अम्बा बोली— हे द्विजसत्तम! यह राजा जो कुछ कहते हैं, वह सब ठीक है। ये सृंजयवंशी होत्रवाहन मेरी माताके शरीरका निर्माण करनेवाले अर्थात् उसके पिता हैं ॥ २८ ॥

न ह्युत्सहे स्वनगरं प्रतियातुं तपोधन।
अवमानभयाच्चैव व्रीडया च महामुने ॥ २९ ॥

हे तपोधन महामुनि! मैं लज्जा और अपमानके भयसे फिर अपने पिताके घर जाना नहीं चाहती ॥ २९ ॥

यत्तु मां भगवान्रामो वक्ष्यति द्विजसत्तम।
तन्मे कार्यतमं कार्यमिति मे भगवन्मतिः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५॥ ५४३६ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ भगवन्! अब मेरी यही इच्छा है, कि भगवान् परशुराम मुझसे जो कुछ कहेंगे, वही कार्य मैं सब प्रकारसे करूंगी ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ पिचहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७५ ॥ ५४३६ ॥

: १७६ :

अकृतव्रण उवाच

दुःखद्वयमिदं भद्रे कतरस्य चिकीर्षसि।
प्रतिकर्तव्यमबले तत्त्वं वत्से ब्रवीहि मे। ॥ १ ॥

अकृतव्रण बोले- भद्रे! तुम्हारे सामने भीष्म और शाल्व ये दो दुःखके कारण उपस्थित हैं; हे अबले! इनमेंसे तुम किससे बदला लेनेकी इच्छा करती हो; हे वत्से! वह मुझे बताओ ॥ १ ॥

यदि सौभपतिर्भद्रे नियोक्तव्यो मते तव।
नियोक्ष्यति महात्मा तं रामस्त्वद्धितकाम्यया ॥ २ ॥

हे भद्रे! यदि शाल्वसे विवाह करनेकी तुम्हारी इच्छा हो, तो महात्मा परशुराम अवश्य ही तुम्हारे हितके निमित्त उसके हाथमें तुम्हें समर्पित करेंगे ॥ २ ॥

अथापगेयं भीष्मं त्वं रामेणेच्छसि धीमता।
रणे विनिर्जितं द्रष्टुं कुर्यात्तदपि भार्गवः ॥ ३ ॥

और जो तुम गंगानन्दन भीष्मको बुद्धिमान् परशुरामके हाथों युद्धमें पराजित हुआ देखना चाहती हो, तो भृगुनन्दन परशुराम उस कार्यको भी कर सकते हैं ॥ ३ ॥

सृञ्जयस्य वचः श्रुत्वा तव चैव शुचिस्मिते।
यदत्रानन्तरं कार्यं तदद्यैव विचिन्त्यताम् ॥ ४ ॥

हे सुन्दर हंसीवाली सुन्दरी! सृंजयकी और तुम्हारी बात सुनकर, अब इस विषयमें भृगुपुत्र परशुरामको जो कुछ करना हो, उसका आज ही विशेष रूपसे विचार कर लें ॥ ४ ॥

अम्बोवाच

अपनीतास्मि भीष्मेण भगवन्नविजानता।
न हि जानाति मे भीष्मो ब्रह्मञ्शाल्वगतं मनः ॥ ५ ॥

अम्बा बोली–हे भगवन्! भीष्मने बिना जाने ही मुझे हर लिया था, हे ब्रह्मन्! मेरा मन जो शाल्वराजमें लगा हुआ था, इस बातको भीष्म नहीं जानते थे ॥ ५ ॥

एतद्विचार्य मनसा भवानेव विनिश्चयम्।
विचिनोतु यथान्यायं विधानं क्रियतां तथा ॥ ६ ॥

हे ब्राह्मण! अतः आप अच्छी तरहसे इसका विचार करके न्यायके अनुसार जैसा निश्चय करें, उसीको करनेका विधान कीजिये ॥ ६ ॥

भीष्मे वा कुरुशार्दूले शाल्वराजेऽथ वा पुनः ।
उभयोरेव वा ब्रह्मन्यद्युक्तं तत्समाचर ॥ ७ ॥

हे ब्रह्मन् ! कुरुशार्दूल भीष्म अथवा शाल्वराज या दोनोंके विषयमें जैसा करना आप उचित समझें वैसा ही आप करें ॥ ७ ॥

निवेदितं मया ह्येतद्दुःखमूलं यथातथम् ।
विधानं तत्र भगवन्कर्तुमर्हसि युक्तितः ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! मैंने तो अपने दुःखका मूल कारण पूर्ण रीतिसे कह सुनाया है; इस समय युक्तिके अनुसार जैसा करना उचित हो, वैसा ही आप लोग कीजिये ॥ ८ ॥

अकृतव्रण उवाच

उपपन्नमिदं भद्रे यदेवं वरवर्णिनि ।
धर्मं प्रति वचो ब्रूयाः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥

अकृतव्रण बोले—हे भद्रे हे सुन्दरी ! तुमने धर्मकी ओर लक्ष्य करके जो यह वचन कहा है, वह ठीक है, इस विषयमें मेरा भी यह वचन सुनो ॥ ९ ॥

यदि त्वामापगेयो वै न नयेद्गजसाह्वयम् ।
शाल्वस्त्वां शिरसा भीरु गृह्णीयाद्रामचोदितः ॥ १० ॥

हे भीरु ! यदि गंगापुत्र भीष्म तुमको हस्तिनापुर न ले जाते, तो शाल्व परशुरामकी आज्ञासे तुम्हें मस्तकके ऊपर धारण करते ॥ १० ॥

तेन त्वं निर्जिता भद्रे यस्मान्नीतासि भामिनि ।
संशयः शाल्वराजस्य तेन त्वयि सुमध्यमे ॥ ११ ॥

हे भामिनि ! परन्तु चूंकि भीष्मने सब राजाओंको जीत कर तुम्हें हरण किया है; इसी कारण, हे सुन्दरी ! तुम्हारे ऊपर शाल्वराजको सन्देह हुआ है ॥ ११ ॥

भीष्मः पुरुषमानी च जितकाशी तथैव च ।
तस्मात्प्रतिक्रिया युक्ता भीष्मे कारयितुं त्वया ॥ १२ ॥

हे कल्याणि ! भीष्म अपने पराक्रम पर अभिमान करनेवाला तथा काशी नगरीका विजेता है । इस कारण उसी भीष्मका प्रतिकार करना तुम्हारे लिए उचित है ॥ १२ ॥

अम्बोवाच

ममाप्येष महान्ब्रह्मन्हृदि कामोऽभिवर्तते ।
घातयेयं यदि रणे भीष्ममित्येव नित्यदा ॥ १३ ॥

अम्बा बोली— हे ब्रह्मन् ! मेरे भी मनमें यही महान् इच्छा है, कि जिस प्रकारसे भी हो सके भीष्मका युद्धमें वध कराऊं ॥ १३ ॥

भीष्मं वा शाल्वराजं वा यं वा दोषेण गच्छसि।
प्रशाधि तं महाबाहो यत्कृतेऽहं सुदुःखिता ॥ १४ ॥

हे महाबाहो ! जिसके कारण मैं अत्यन्त दुःखित हुई हूं, वह भीष्म ही हो अथवा शाल्व ही हो; जिसको आप लोग दोषी निश्चित करते हैं उसी पर शासन कीजिए ॥ १४ ॥

भीष्म उवाच

एवं कथयतामेव तेषां स दिवसो गतः।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ सुखशीतोष्णमारुता ॥ १५ ॥

भीष्म बोले– हे भरतश्रेष्ठ ! इसी प्रकारसे वातचीत करते हुए उन लोगोंका वह दिन बीत गया और सुख देनेवाले शीतल और उष्ण वायुसे युक्त रात्रि भी बीत गई ॥ १५ ॥

ततो रामः प्रादुरासीत्प्रज्वलन्निव तेजसा।
शिष्यैः परिवृतो राजञ्जटाचीरधरो मुनिः ॥ १६ ॥

हे राजन् ! अगले दिन जटा चीर धारण किये, तेजसे जलते हुएके समान परशुराम शिष्योंसे घिरे हुए आकर उपस्थित हुए ॥ १६ ॥

धनुष्पाणिरदीनात्मा खड्गं बिभ्रत्परश्वधी।
विरजा राजशार्दूल सोऽभ्ययात्सृञ्जयं नृपम् ॥ १७ ॥

हे राजशार्दूल ! कंधे पर फरसा लिये तलवार तथा धनुष बाण धारण किये हुए पापरहित भार्गव महात्मा राजा होत्रवाहनसे मिलनेको वहां पर आये ॥ १७ ॥

ततस्तं तापसा दृष्ट्वा स च राजा महातपाः।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे सा च कन्या तपस्विनी ॥ १८ ॥

उनको देखकर सम्पूर्ण तपस्वी और महातपस्वी राजा होत्रवाहन और तपस्विनी कन्या सब लोग हाथ जोडकर खडे हो गये ॥ १८ ॥

पूजयामासुरव्यग्रा मधुपर्केण भार्गवम्।
अर्चितश्च यथान्यायं निषसाद सहैव तैः ॥ १९ ॥

उन्होंने स्थिर चित्तसे मधुपर्कसे परशुरामकी पूजा की। वह भी यथोचित रूपसे पूजित होकर उन लोगोंके साथ आसनपर बैठे ॥ १९ ॥

ततः पूर्वव्यतीतानि कथयेते स्म तावुभौ।
सृञ्जयश्च स राजर्षिर्जामदग्न्यश्च भारत ॥ २० ॥

हे भारत ! जमदग्निपुत्र परशुराम और होत्रवाहन दोनों महात्मा एकत्र बैठकर पहिले हुई हुई अत्यन्त उत्तम कथाओंको कहने लगे ॥ २० ॥

ततः कथान्ते राजर्षिर्भृगुश्रेष्ठं महाबलम् ।
उवाच मधुरं काले रामं वचनमर्थवत् ॥ २१ ॥

तदनन्तर उस कथाके समाप्त होनेपर राजर्षि होत्रवाहन अवसर देखकर महाबली भृगुनन्दन परशुरामसे यह अर्थयुक्त मधुर वचन कहने लगे ॥ २१ ॥

रामेयं मम दौहित्री काशिराजसुता प्रभो ।
अस्याः शृणु यथातत्त्वं कार्यं कार्यविशारद ॥ २२ ॥

हे प्रभो परशुराम ! यह कन्या काशिराजकी पुत्री और मेरी दौहित्री है, हे उत्तम कार्य करनेवालोंमें श्रेष्ठ परशुराम ! इसका एक कार्य है; उसको ठीक ठीक सुने ॥ २२ ॥

परमं कथ्यतां चेति तां रामः प्रत्यभाषत ।
ततः साभ्यगमद्रामं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ २३ ॥
सा चाभिवाद्य चरणौ रामस्य शिरसा शुभा ।
स्पृष्ट्वा पद्मदलाभाभ्यां पाणिभ्यामग्रतः स्थिता ॥ २४ ॥

यह वचन सुनकर परशुराम अम्बासे बोले, तुम्हारा कौनसा कार्य है ? मुझसे कहो । तब कल्याणी अम्बा जलती हुई अग्निके समान परशुरामके समीप गई और अपने कमलके समान सुन्दर हाथोंसे उनके दोनों चरणोंको स्पर्श कर सिर झुकाकर प्रणाम करके सम्मुख खडी हो गई ॥ २३–२४ ॥

रुरोद सा शोकवती बाष्पव्याकुललोचना ।
प्रपेदे शरणं चैव शरण्यं भृगुनन्दनम् ॥ २५ ॥

और शोकित तथा दुःखित होकर आंखोंमें आंसू भरकर रोदन करती हुई शरणागतकी रक्षा करनेवाले परशुरामकी शरणमें गई ॥ २५ ॥

राम उवाच

यथासि सृञ्जयस्यास्य तथा मम नृपात्मजे ।
ब्रूहि यत्ते मनोदुःखं करिष्ये वचनं तव ॥ २६ ॥

परशुराम बोले– हे राजपुत्री ! तुम इस सृंजयकी जैसी प्रिय हो, मुझे भी उतनी ही प्रिय हो; अतः तुम्हारे मनमें जो कुछ दुःख है, उसको कहो, मैं तुम्हारे वचनके अनुसार काम करूंगा ॥ २६ ॥

अम्बोवाच

भगवञ्शरणं त्वाद्य प्रपन्नास्मि महाव्रत ।
शोकपङ्कार्णवाद्धोरादुद्धरस्व च मां विभो ॥ २७ ॥

अम्बा बोली– हे भगवन् ! हे महाव्रत ! आज मैं आपकी शरणमें आई हूं; हे विभो ! महाघोर शोकरूपी कीचडसे मेरा आप उद्धार करें ॥ २७ ॥

भीष्म उवाच

तस्याश्च दृष्ट्वा रूपं च वयश्चाभिनवं पुनः ।
सौकुमार्यं परं चैव रामश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ २८ ॥

भीष्म बोले– भृगुश्रेष्ठ परशुराम उसके रूप, तरुणाई, देह और परम सुकुमारताको देखकर चिन्ता करने लगे ॥ २८ ॥

किमियं वक्ष्यतीत्येवं विमृशन्भृगुसत्तमः ।
इति दध्यौ चिरं रामः कृपयाभिपरिप्लुतः ॥ २९ ॥

कि यह क्या कहेगी? ऐसा मनमें विचारते हुए भृगुश्रेष्ठ कृपायुक्त होकर वहुत समय तक ध्यान करते रहे ॥ २९ ॥

कथ्यतामिति सा भूयो रामेणोक्ता शुचिस्मिता ।
सर्वमेव यथातत्त्वं कथयामास भार्गवे ॥ ३० ॥

तदनन्तर तुम्हारा क्या कार्य है, उसे कहो, ऐसा कहनेपर उस सुन्दर मुस्कराहटोंवाली कन्याने विस्तारपूर्वक अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३० ॥

तच्छ्रुत्वा जामदग्न्यस्तु राजपुत्र्या वचस्तदा ।
उवाच तां वरारोहां निश्चित्यार्थविनिश्चयम् ॥ ३१ ॥

तव परशुराम राजपुत्रीके सब वचनोंको सुनकर कार्यका निश्चय करके उस सुन्दर कुमारीसे बोले ॥ ३१ ॥

प्रेषयिष्यामि भीष्माय कुरुश्रेष्ठाय भामिनि ।
करिष्यति वचो धर्म्यं श्रुत्वा मे स नराधिपः ॥ ३२ ॥

हे भामिनि ! मैं कुरुश्रेष्ठ भीष्मके पास अपना सन्देश भेजूंगा, वह राजा अवश्य ही मेरे धर्मयुक्त वचनको सुनकर उसे स्वीकार करेगा ॥ ३२ ॥

न चेत्करिष्यति वचो मयोक्तं जाह्नवीसुतः ।
धक्ष्याम्येनं रणे भद्रे सामात्यं शस्त्रतेजसा ॥ ३३ ॥

यदि गङ्गानन्दन भीष्म यदि मेरी वातोंको न मानेगा, तो मैं अपने शस्त्रोंके प्रतापसे युद्धमें उसको वन्धु वान्धव और अनुयायियोंके सहित भस्म कर दूंगा ॥ ३३ ॥

अथ वा ते मतिस्तत्र राजपुत्रि निवर्तते ।
तावच्छाल्वपतिं वीरं योजयाम्यत्र कर्मणि ॥ ३४ ॥

हे राजपुत्रि ! यदि तुम्हारा मन उसके वधको पसन्द न करता हो तो मैं शाल्वराजको तुम्हारे साथ विवाह करनेके लिए प्रेरित करूंगा ॥ ३४ ॥

अम्बोवाच

विसर्जितास्मि भीष्मेण श्रुत्वैव भृगुनन्दन ।
शाल्वराजगतं चेतो मम पूर्वं मनीषितम् ॥ ३५ ॥

अम्बा बोली– हे भृगुनन्दन ! शाल्वराजके विषयमें मेरे पहिले सङ्कल्पको सुनकर ही भीष्मने मुझे स्वतंत्र किया था ॥ ३५ ॥

सौभराजमुपेत्याहमब्रुवं दुर्वचं वचः ।
न च मां प्रत्यगृह्णात्स चारित्र्यपरिशङ्कितः ॥ ३६ ॥

मैंने सौभराजके समीप जाकर कठिनतासे कहने योग्य उन सब वचनोंको कहा, परन्तु उन्होंने मेरे चरित्र पर शङ्का करके मुझे स्वीकार नहीं किया ॥ ३६ ॥

एतत्सर्वं विनिश्चित्य स्वबुद्ध्या भृगुनन्दन ।
यदत्रौपयिकं कार्यं तच्चिन्तयितुमर्हसि ॥ ३७ ॥

हे भृगुनन्दन ! अतः सम्पूर्ण विषयका आप अपनी बुद्धिसे विचार करके और निश्चय करके जैसा करना उचित हो वैसा कीजिये ॥ ३७ ॥

ममात्र व्यसनस्यास्य भीष्मो मूलं महाव्रतः ।
येनाहं वशमानीता समुत्क्षिप्य बलात्तदा ॥ ३८ ॥

महाव्रती भीष्म ही मेरे इस विपत्तिके मूल कारण हैं; क्योंकि बलपूर्वक मुझे हर करके उन्होंने अपने वशमें किया था ॥ ३८ ॥

भीष्मं जहि महाबाहो यत्कृते दुःखमीदृशम् ।
प्राप्ताहं भृगुशार्दूल चराम्यप्रियमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

अतः, हे महाबाहो ! जिसके कारण मैं ऐसे अत्यन्त अप्रिय दुःखको पाकर घूम रही हूं उस भीष्महीको आप युद्धमें विनष्ट कीजिये ॥ ३९ ॥

स हि लुब्धश्च मानी च जितकाशी च भार्गव ।
तस्मात्प्रतिक्रिया कर्तुं युक्ता तस्मै त्वयानघ ॥ ४० ॥

हे भार्गव ! भीष्म अत्यन्त लोभी, जयके अभिमानमें भरा हुआ तथा काशीनगरीका विजेता है; अतः, हे अनघ ! उसका ही वध करके आप बदला लें ॥ ४० ॥

×

एवं मे ह्रियमाणाया भारतेन तदा विभो।
अभवद्धृदि सङ्कल्पो घातयेयं महाव्रतम् ॥ ४१ ॥

हे विभो! जिस समय भीष्मने मुझको हरण किया था उसी समय मेरे मनमें यह संकल्प उत्पन्न हो गया था कि मैं किसी प्रकार इस महाव्रती भीष्मका वध कराऊं ॥ ४१ ॥

तस्मात्कामं ममाद्येमं राम संवर्तयानघ।
जहि भीष्मं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥ ५४७८ ॥

हे निष्पाप राम! अतः आज आप मेरी उसी अभिलाषाको पूर्ण कीजिये। हे महाबाहो! इन्द्रने जैसे वृत्रासुरका संहार किया था, उसी तरह तुम भी भीष्मका वध करो ॥ ४२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ छियत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७६ ॥ ५४७८ ॥

: १७७ :

भीष्म उवाच

एवमुक्तस्तदा रामो जहि भीष्ममिति प्रभो।
उवाच रुदतीं कन्यां चोदयन्तीं पुनः पुनः ॥ १ ॥

भीष्म बोले– तब, हे प्रभो दुर्योधन! परशुराम "भीष्मका वध करो" बारबार ऐसा ही कहकर रोनेवाली कुमारी अम्बासे बोले ॥ १ ॥

काश्ये कामं न गृह्णामि शस्त्रं वै वरवर्णिनि।
ऋते ब्रह्मविदां हेतोः किमन्यत्करवाणि ते ॥ २ ॥

हे सुन्दरी! हे काशिराजपुत्रि! ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके कामको सिद्ध करके अतिरिक्त और कभी मैं हाथमें शस्त्रग्रहण नहीं करता (तुम चूंकि क्षत्रिय-कन्या हो, अतः तुम्हारे प्रयोजनकी सिद्धिके लिए मैं शस्त्रग्रहण नहीं कर सकता), अतः शस्त्रग्रहण करनेके अलावा तुम्हारा और कौनसा कार्य करना होगा उसे कहो ॥ २ ॥

वाचा भीष्मश्च शाल्वश्च मम राज्ञि वशानुगौ।
भविष्यतोऽनवद्याङ्गि तत्करिष्यामि मा शुचः ॥ ३ ॥

हे राजनन्दिनि! भीष्म और शाल्व दोनों ही मेरे शब्दके कहने अर्थात् आदेश देने मात्रसे ही मेरे वशवर्ती हो जाएंगे; हे अनिन्दिते! तुम शोक मत करो, तुम्हारे कार्यको मैं अवश्य सिद्ध करूंगा ॥ ३ ॥

न तु शस्त्रं ग्रहीष्यामि कथञ्चिदपि भामिनि ।
ऋते नियोगाद्विप्राणामेष मे समयः कृतः ॥ ४ ॥

परन्तु, हे भामिनि ! बिना ब्राह्मणोंकी आज्ञाके मैं कभी शस्त्रग्रहण नहीं करूंगा; क्योंकि मैंने पहिलेसे ही ऐसी प्रतिज्ञा कर रखी है ॥ ४ ॥

अम्बोवाच

मम दुःखं भगवता व्यपनेयं यतस्ततः ।
तत्तु भीष्मप्रसूतं मे तं जहीश्वर माचिरम् ॥ ५ ॥

अम्बा बोली– हे प्रभो ! जिस प्रकारसे भी हो, मेरे दुःखको आप छुडाइए; वह दुःख भीष्म-हीसे उत्पन्न हुआ है, इसलिए भीष्मको ही आप शीघ्र नष्ट कीजिये ॥ ५ ॥

राम उवाच

काशिकन्ये पुनर्ब्रूहि भीष्मस्ते चरणावुभौ ।
शिरसा वन्दनार्होऽपि ग्रहीष्यति गिरा मम ॥ ६ ॥

परशुराम बोले– हे काशीराजपुत्रि ! तुम यदि कहो, तो तुम्हारे द्वारा वन्दनीय होनेपर भी भीष्म मेरे बचनसे तुम्हारे दोनों पांवों पर अपना सिर रखेगा ॥ ६ ॥

अम्बोवाच

जहि भीष्मं रणे राम मम चेदिच्छसि प्रियम् ।
प्रतिश्रुतं च यदि तत्सत्यं कर्तुमिहार्हसि ॥ ७ ॥

अम्बा बोली– हे राम ! यदि मेरे प्रिय कार्यको आप करनेकी इच्छा करते हों, तो युद्धमें भीष्मका वध कीजिए । आपने जो प्रतिज्ञा की है उसे आप सत्य कीजिए ॥ ७ ॥

भीष्म उवाच

तयोः संवदतोरेवं राजन्रामाम्बयोस्तदा ।
अकृतव्रणो जामदग्न्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥

भीष्म बोले– हे राजन् ! परशुराम और अम्बाका इस ही प्रकारसे बातचीत हो रही थी, कि उसी समय अकृतव्रण ऋषि जमदग्निपुत्र परशुरामसे यह वचन बोले ॥ ८ ॥

शरणागतां महाबाहो कन्यां न त्यक्तुमर्हसि ।
यदि भीष्मं रणे राम गर्जन्तमसुरं यथा ॥ ९ ॥

हे महाबाहो भृगुनन्दन ! शरणागता कन्याका परित्याग न कीजिये । हे राम ! यदि आप असुरके समान गरजनेवाले भीष्मको युद्धमें मार दें ॥ ९ ॥

यदि भीष्मस्त्वयाहूतो रणे राम महामुने ।
निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूयात्कुर्याद्वा वचनं तव ॥ १० ॥

अथवा, हे महामुने राम ! यदि भीष्म आपके बुलाये जानेपर युद्धमें आकर कहे कि मैं हार गया हूं अथवा यदि वह आपके आदेशका पालन करे ॥ १० ॥

कृतमस्या भवेत्कार्यं कन्याया भृगुनन्दन ।
वाक्यं सत्यं च ते वीर भविष्यति कृतं विभो ॥ ११ ॥

तो भी, हे भृगुनन्दन ! इस कन्याका कार्य पूर्ण हो जाएगा और हे वीर विभो ! आपका वचन भी सत्य हो जाएगा ॥ ११ ॥

इयं चापि प्रतिज्ञा ते तदा राम महामुने ।
जित्वा वै क्षत्रियान्सर्वान्ब्राह्मणेषु प्रतिश्रुतम् ॥ १२ ॥

हे महामुनि राम ! पहिले सब क्षत्रियोंको जीतकर आपने ब्राह्मणोंके सामने यह प्रतिज्ञा की थी ॥ १२ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव रणे यदि ।
ब्रह्मद्विड्भविता तं वै हनिष्यामीति भार्गव ॥ १३ ॥

कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा जो कोई भी पुरुष ब्राह्मणोंका द्रोही होगा; उसको मैं युद्धमें विनष्ट करूंगा ॥ १३ ॥

शरणं हि प्रपन्नानां भीतानां जीवितार्थिनाम् ।
न शक्ष्यामि परित्यागं कर्तुं जीवन्कथञ्चन ॥ १४ ॥

और भयभीत होकर शरणमें आये हुए तथा जीवनदान मांगनेवाले लोगोंका जीते जी कभी परित्याग न कर सकूंगा ॥ १४ ॥

यश्च क्षत्रं रणे कृत्स्नं विजेष्यति समागतम् ।
दृप्तात्मानमहं तं च हनिष्यामीति भार्गव ॥ १५ ॥

और जो पुरुष सामने आए हुए सम्पूर्ण क्षत्रिय कुलको युद्धमें परास्त करेगा; उस अभिमानसे भरे हुए पुरुषका भी मैं वध करूंगा ॥ १५ ॥

स एवं विजयी राम भीष्मः कुरुकुलोद्वहः ।
तेन युद्ध्यस्व संग्रामे समेत्य भृगुनन्दन ॥ १६ ॥

हे भृगुनन्दन ! वह कुरुकुल धुरंधर भीष्म भी इसी प्रकारसे विजयी हुआ है; अतः रण-भूमिमें आये हुए उसके साथ युद्ध कीजिये ॥ १६ ॥

राम उवाच

स्मराम्यहं पूर्वकृतां प्रतिज्ञामृषिसत्तम ।
तथैव च करिष्यामि यथा साम्नैव लप्स्यते ॥ १७ ॥

परशुराम बोले– हे ऋषिसत्तम ! मैं पहिले की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण करता हूं, तो भी शान्तिपूर्वक यदि कार्य सिद्ध हो जाए तो प्रथम शान्तिका ही सहारा लूंगा ॥ १७ ॥

कार्यमेतन्महद्ब्रह्मन्काशिकन्यामनोगतम् ।
गमिष्यामि स्वयं तत्र कन्यामादाय यत्र सः ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन् ! काशिराजकी कन्याके मनकी अभिलाषा बहुत ही बडी है पर उसकी अभिलाषा पूरी ही करनी है । इसलिए इस कन्याको साथमें लेकर मैं स्वयं भीष्मके समीप जाऊंगा ॥१८॥

यदि भीष्मो रणश्लाघी न करिष्यति मे वचः ।
हनिष्याम्येनमुद्रिक्तमिति मे निश्चिता मतिः ॥ १९ ॥

युद्धमें प्रशंसित भीष्म यदि मेरे वचनोंको न मानेगा तो मेरा यह निश्चय है, कि मैं उस अभिमानी क्षत्रियको युद्धमें अवश्य मार डालूंगा ॥ १९ ॥

न हि बाणा मयोत्सृष्टाः सज्जन्तीह शरीरिणाम् ।
कायेषु विदितं तुभ्यं पुरा क्षत्रियसङ्गरे ॥ २० ॥

मेरे हाथसे छूटे हुए सम्पूर्ण बाण मनुष्योंके शरीरमें लगकर उसे जीवित नहीं छोडते, वह तुमको पहिले क्षत्रियोंके युद्धमें ज्ञात हो ही गया होगा ॥ २० ॥

भीष्म उवाच

एवमुक्त्वा ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः ।
प्रयाणाय मतिं कृत्वा समुत्तस्थौ महामनाः ॥ २१ ॥

भीष्म बोले– महामनस्वी परशुराम ऐसा वचन कह कर उन ब्रह्मवादियोंके सहित प्रस्थान करनेके निमित्त संकल्प करके उठ खडे हुए ॥ २१ ॥

ततस्ते तामुषित्वा तु रजनीं तत्र तापसाः ।
हुताग्नयो जप्तजप्याः प्रतस्थुर्मज्जिघांसया ॥ २२ ॥

तदनन्तर उन तपस्वियोंने वहांपर उस रात्रिको बिताकर सबेरा होते ही होम जप और समस्त नित्यकर्म समाप्त करके मेरे वधकी इच्छासे प्रस्थान किया ॥ २२ ॥

अभ्यगच्छत्ततो रामः सह तैर्ब्राह्मणर्षभैः ।
कुरुक्षेत्रं महाराज कन्यया सह भारत ॥ २३ ॥

हे भारत महाराज ! इसके बाद परशुराम उन ब्राह्मणश्रेष्ठों और कन्याके सहित कुरुक्षेत्रमें पहुंचे ॥ २३ ॥

न्यविशन्त ततः सर्वे परिगृह्य सरस्वतीम् ।
तापसास्ते महात्मानो भृगुश्रेष्ठपुरस्कृताः ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥ ५५०२ ॥

और वहां पहुंचकर भृगवंशियोंमें श्रेष्ठ परशुरामको आगे करके उन सभी तपस्वियोंने सरस्वती नदीके तीरपर विश्राम किया ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ सतहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७७ ॥ ५५०२ ॥

: १७८ :

भीष्म उवाच

ततस्तृतीये दिवसे समे देशे व्यवस्थितः ।
प्रेषयामास मे राजन्प्राप्तोऽस्मीति महाव्रतः ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे राजन् ! तब उस महाव्रती अत्यन्त तेजस्वी परशुरामने वहांपर आकर तीसरे दिन मेरे समीप यह सन्देशा भेजा, कि मैं आ गया हूं ॥ १ ॥

तमागतमहं श्रुत्वा विषयान्तं महाबलम् ।
अभ्यगच्छं जवेनाशु प्रीत्या तेजोनिधिं प्रभुम् ॥ २ ॥

उस महातेजस्वी बलवान् तपोनिधि परशुरामको अपने राज्यमें आया हुआ सुनकर मैं प्रसन्न चित्तसे शीघ्रतापूर्वक उनके पास गया ॥ २ ॥

गां पुरस्कृत्य राजेन्द्र ब्राह्मणैः परिवारितः ।
ऋत्विग्भिर्देवकल्पैश्च तथैव च पुरोहितैः ॥ ३ ॥

और देवोंके समान ब्रह्मचारी, ऋत्विक्, पुरोहित और ब्राह्मणोंके सहित एक गौ लेकर आतुरतासे शीघ्र ही उनके समीप जा पहुंचा ॥ ३ ॥

स मामभिगतं दृष्ट्वा जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
प्रतिजग्राह तां पूजां वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ४ ॥

प्रतापवान् परशुरामने मुझको वहांपर आया हुआ देखकर वह पूजा ग्रहण की और मुझसे यह वचन बोले ॥ ४ ॥

भीष्म कां बुद्धिमास्थाय काशिराजसुता त्वया ।
अकामेयमिहानीता पुनश्चैव विसर्जिता ॥ ५ ॥

हे भीष्म ! तुमने कामरहित होकर भी किस प्रयोजनका विचार करके इस काशिराजकी कन्याके स्वयंवरके समय इसका हरण किया, और फिर किस कारण इसका परित्याग भी कर दिया ? ॥ ५ ॥

विस्रंशिता त्वया हीयं धर्मावाप्तेः परावरात् ।
परामृष्टां त्वया हीमां को हि गन्तुमिहार्हति ॥ ६ ॥

तुम्हारे परित्याग करनेके कारण ही यह तपस्विनी अपने धर्मसे भ्रष्ट हो रही है; क्योंकि जब तुमने स्पर्श किया है, तब कौन पुरुष इसको ग्रहण कर सकता है ? ॥ ६ ॥

प्रत्याख्याता हि शाल्वेन त्वया नीतेति भारत ।
तस्मादिमां मन्नियोगात्प्रतिगृह्णीष्व भारत ॥ ७ ॥

हे भारत ! तुमने इसका हरण किया था, इसी कारण शाल्वने इसको स्वीकार करनेसे मना कर दिया । इस कारण अब मेरी आज्ञासे तुम इसको स्वीकार करो ॥ ७ ॥

स्वधर्मं पुरुषव्याघ्र राजपुत्री लभत्वियम् ।
न युक्तमवमानोऽयं कर्तुं राज्ञां त्वयानघ ॥ ८ ॥

हे पुरुषसिंह ! यह राजपुत्री अपने धर्मका लाभ उठावे । हे पापरहित ! राजाओंका ऐसा अपमान करना तुमको उचित नहीं है ॥ ८ ॥

ततस्तं नातिमनसं समुद्वीक्ष्याहमब्रुवम् ।
नाहमेनां पुनर्दद्यां भ्रात्रे ब्रह्मन्कथञ्चन ॥ ९ ॥

तब परशुरामको अप्रसन्न देखकर मैंने उनसे यह वचन कहा—हे ब्राह्मण ! मैं किसी प्रकारसे भी भाईके हाथमें अब इसे समर्पित नहीं कर सकता ॥ ९ ॥

शाल्वस्याहमिति प्राह पुरा मामिह भार्गव ।
मया चैवाभ्यनुज्ञाता गता सौभपुरं प्रति ॥ १० ॥

हे भार्गव ! पहिले इसने मुझसे ही यह वचन कहा था, कि मैं शाल्वकी हो गई हूं और मेरी ही अनुमतिसे यह सौभनगर गई थी ॥ १० ॥

न भयान्नाप्यनुक्रोशान्न लोभान्नार्थकाम्यया ।
क्षत्रधर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम् ॥ ११ ॥

अतः अब न भयसे, न दयासे न लोभसे और न धन पानेकी ही इच्छासे ही अपना क्षात्र धर्म मैं छोड सकता हूँ, क्योंकि यह मेरा सदासे व्रत रहा है ॥ ११ ॥

अथ मामब्रवीद्रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ।
न करिष्यसि चेदेतद्वाक्यं मे कुरुपुङ्गव ॥ १२ ॥

हे राजेन्द्र ! तब परशुराम क्रोधसे लाल नेत्र करके मुझसे बोले— हे कुरुश्रेष्ठ तुम यदि मेरे वचनको न मानोगे ॥ १२ ॥

हनिष्यामि सहामात्यं त्वामद्येति पुनः पुनः ।
संरम्भादब्रवीद्रामः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ १३ ॥

तो तुमको मंत्रियोंके सहित आज ही मार दूंगा, परशुराम क्रोधसे नेत्र लाल करके गम्भीर स्वरसे वार वार मुझे इस प्रकार कहने लगे ॥ १३ ॥

तमहं गीर्भिरिष्टाभिः पुनः पुनररिन्दमम् ।
अयाचं भृगुशार्दूलं न चैव प्रशशाम सः ॥ १४ ॥

तब मैंने विनयपूर्वक शत्रुओंके विनाशक उन भृगुसिंह परशुरामसे बार वार प्रार्थना की; तो भी वह शान्त न हुए ॥ १४ ॥

तमहं प्रणम्य शिरसा भूयो ब्राह्मणसत्तमम् ।
अब्रुवं कारणं किं तद्यत्त्वं योद्धुमिहेच्छसि ॥ १५ ॥

तब मैंने फिर उन ब्राह्मण सत्तम भृगुनन्दनको सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा– हे महाबाहो ! जो मेरे साथ आप युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं, उसका कारण क्या है ? ॥१५॥

इष्वस्त्रं मम बालस्य भवतैव चतुर्विधम् ।
उपदिष्टं महाबाहो शिष्योऽस्मि तव भार्गव ॥ १६ ॥

हे भार्गव ! बालक अवस्थामें आपने ही मुझे चारों प्रकारकी धनुर्विद्या सिखाई थी; हे महाबाहो ! इसप्रकार मैं आपका शिष्य ही हूं ॥ १६ ॥

ततो मामब्रवीद्रामः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
जानीषे मां गुरुं भीष्म न चेमां प्रतिगृह्णसे ।
सुतां काश्यस्य कौरव्य मत्प्रियार्थं महीपते ॥ १७ ॥

तब परशुराम क्रोधसे लाल आंखोंवाले होकर मुझसे यह वचन फिर बोले– हे राजन् भीष्म ! तुम मुझको अपना गुरु भी समझते हो और मेरी प्रीतिके निमित्त इस काशिराजकी कन्याको ग्रहण भी नहीं करते हो ॥ १७ ॥

न हि ते विद्यते शान्तिरन्यथा कुरुनन्दन ।
गृहाणेमां महाबाहो रक्षस्व कुलमात्मनः ।
त्वया विभ्रंशिता हीयं भर्तारं नाधिगच्छति ॥ १८ ॥

हे कुरुनन्दन ! इसके अतिरिक्त और किसी प्रकारसे भी तुम्हें शान्ति न मिल सकेगी। हे महाबाहो ! इस कारण इस कन्याको तुम स्वीकार करो और अपने कुलकी रक्षा करो; तुम्हारे द्वारा हरे जानेसे यह भ्रष्ट हो गई है, इसलिये अब इसको कोई पति नहीं मिल रहा है ॥१८॥

तथा ब्रुवन्तं तमहं रामं परपुरञ्जयम् ।
नैतदेवं पुनर्भावि ब्रह्मर्षे किं श्रमेण ते ॥ १९ ॥

शत्रुके देशको जीतनेवाले परशुरामके इस वचनको सुनकर मैंने उनसे फिर कहा— हे ब्रह्मर्षि ! आप निरर्थक श्रम क्यों कर रहे हैं ? यह किसी प्रकारसे भी नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

गुरुत्वं त्वयि सम्प्रेक्ष्य जामदग्न्य पुरातनम् ।
प्रसादये त्वां भगवंस्त्यक्तैषा हि पुरा मया ॥ २० ॥

हे जामदग्न्य परशुराम ! आप मेरे प्राचीन गुरु हैं, यही देखकर मैं आपसे विनय कर रहा हूं । हे भगवन् ! इस कन्याको मैंने पहिले ही त्याग दिया है ॥ २० ॥

को जातु परभावां हि नारीं व्यालीमिव स्थिताम् ।
वासयेत गृहे जानन्स्त्रीणां दोषान्महात्ययान् ॥ २१ ॥

स्त्रियोंके महा अनर्थकारी दोषोंको जानकर भी कौन पुरुष सांपिनकी भांति दूसरे पुरुषमें आसक्त हुई स्त्रीको अपने घरमें रख सकता है ? ॥ २१ ॥

न भयाद्वासवस्यापि धर्मं जह्यां महाद्युते ।
प्रसीद मा वा यद्वा ते कार्यं तत्कुरु माचिरम् ॥ २२ ॥

हे महातेजस्वी ! मैं इन्द्रके भयसे भी धर्मको नहीं छोड सकता, अतः आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों या न हों; अथवा आप जैसा करना उचित समझें उसे शीघ्र ही पूर्ण कीजिए ॥ २२ ॥

अयं चापि विशुद्धात्मन्पुराणे श्रूयते विभो ।
मरुत्तेन महाबुद्धे गीतः श्लोको महात्मना ॥ २३ ॥

हे विभो ! हे पापरहित ! हे महाबुद्धिमान् राम ! पुराणमें महात्मा मरुत्तका कहा हुआ यह एक श्लोक सुन जाता है ॥ २३ ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥ २४ ॥

कार्याकार्यको न जाननेवाले, बुरे मार्गसे गमन करनेवाले और अभिमानसे युक्त गुरुको भी दण्ड देना चाहिए ॥ २४ ॥

स त्वं गुरुरिति प्रेम्णा मया सम्मानितो भृशम् ।
गुरुवृत्तं न जानीषे तस्माद्योत्स्याम्यहं त्वया ॥ २५ ॥

आप मेरे गुरु हैं, इसी कारण प्रेमके वशमें होकर मैं वार वार आपका सम्मान करता रहा; परन्तु आप गुरुके धर्मको नहीं जानते; इस कारण मैं आपके साथ युद्ध करूंगा ॥ २५ ॥

×

गुरुं न हन्यां समरे ब्राह्मणं च विशेषतः।
विशेषतस्तपोवृद्धमेवं क्षान्तं मया तव ॥ २६ ॥

गुरु और विशेष करके ब्राह्मणको और उसमें भी तपस्वीको युद्धमें नहीं मार सकता; यही विचारकर मैंने आपको क्षमा किया था ॥ २६ ॥

उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा ब्राह्मणं क्षत्रबन्धुवत्।
यो हन्यात्समरे क्रुद्धो युध्यन्तमपलायिनम्।
ब्रह्महत्या न तस्य स्यादिति धर्मेषु निश्चयः ॥ २७ ॥

परन्तु धर्मशास्त्रमें लिखा हुआ है, कि शस्त्र लिये हुए उद्यत और डटे हुए तथा युद्धमें प्रवृत्त हुए ब्राह्मणको भी क्षत्रियको मारनेके समान जो मारता है; उसे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता ॥ २७ ॥

क्षत्रियाणां स्थितो धर्मे क्षत्रियोऽस्मि तपोधन।
यो यथा वर्तते यस्मिंस्तथा तस्मिन्प्रवर्तयन्।
नाधर्मं समवाप्नोति नरः श्रेयश्च विन्दति ॥ २८ ॥

हे तपोधन! मैं क्षत्रियधर्मका पालन करनेवाला क्षत्रिय हूं। जो पुरुष जिसके साथ जैसा आचरण करता है, उसके साथ वैसा ही आचरण करनेसे पाप नहीं होता, इसके विपरीत वह अपना कल्याण ही करता है ॥ २८ ॥

अर्थे वा यदि वा धर्मे समर्थो देशकालवित्।
अनर्थसंशयापन्नः श्रेयान्निःसंशयेन च ॥ २९ ॥

धर्म अथवा अर्थके विचार करनेमें समर्थ, देशकालको जाननेवाले पुरुष यदि अर्थ वा धर्मके विषयमें कुछ संशय-युक्त होते हैं, तो अर्थको छोडकर धर्महीका अनुष्ठान करके कल्याणको प्राप्त करते हैं ॥ २९ ॥

यस्मात्संशयितेऽर्थेऽस्मिन्यथान्यायं प्रवर्तसे।
तस्माद्योत्स्यामि सहितस्त्वया राम महाहवे।
पश्य मे बाहुवीर्यं च विक्रमं चातिमानुषम् ॥ ३० ॥

हे परशुराम! इस कारण संशय करने योग्य अर्थमें भी जब आप निरर्थक और अन्यायपूर्वक प्रवृत्त हो रहे हैं, तब महान् युद्धमें आपके साथ मैं अवश्य ही संग्राम करूंगा, हे भृगुनन्दन! मेरे बाहुबल और अलौकिक पराक्रमको देखिए ॥ ३० ॥

एवं गतेऽपि तु मया यच्छक्यं भृगुनन्दन ।
तत्करिष्ये कुरुक्षेत्रे योत्स्ये विप्र त्वया सह ।
द्वन्द्वे राम यथेष्टं ते सज्जो भव महामुने ॥ ३१ ॥

हे भृगुनन्दन ! ऐसी अवस्थामें भी मैं जो कर सकता हूं, वह अवश्य ही करूंगा । हे विप्र ! कुरुक्षेत्रमें आपके साथ युद्ध करूंगा । हे महामुने ! द्वन्द्व युद्धके निमित्त इच्छानुसार तैयार हो जाइए ॥ ३१ ॥

तत्र त्वं निहतो राम मया शरशताचितः ।
लप्स्यसे निर्जिताँल्लोकाञ्शस्त्रपूतो महारणे ॥ ३२ ॥

हे राम ! इस रणमें सैंकडों बाणोंसे पीडित होकर आप मरकर और शस्त्रोंसे पवित्र होकर सब निर्जित लोकोंको प्राप्त करेंगे ॥ ३२ ॥

स गच्छ विनिवर्तस्व कुरुक्षेत्रं रणप्रिय ।
तत्रैष्यामि महाबाहो युद्धाय त्वां तपोधन ॥ ३३ ॥

अतः, हे युद्धसे प्रेम करनेवाले महाबाहो तपोधन राम ! आप जाइए और कुरुक्षेत्रमें वापस आ जाइए । वहां मैं भी युद्धके लिए आऊंगा ॥ ३३ ॥

अपि यत्र त्वया राम कृतं शौचं पुरा पितुः ।
तत्राहमपि हत्वा त्वां शौचं कर्तास्मि भार्गव ॥ ३४ ॥

हे राम ! हे भार्गव ! पहिले जिस स्थलपर आपने पिताकी शुद्धि की थी, मैं भी उसी स्थानपर आपको मारकर स्वयंको शुद्ध करूंगा ॥ ३४ ॥

तत्र गच्छस्व राम त्वं त्वरितं युद्धदुर्मद ।
व्यपनेष्यामि ते दर्पं पौराणं ब्राह्मणब्रुव ॥ ३५ ॥

हे युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले अभिमानी विप्र ! आप शीघ्र ही वहांपर चलें, मैं आपके इस पुराने घमण्डको दूर कर दूंगा ॥ ३५ ॥

यच्चापि कत्थसे राम बहुशः परिषत्सु वै ।
निर्जिताः क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छृणु ॥ ३६ ॥

हे भार्गव ! मैंने अकेले ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीकेक्षत्रियोंको जीता है आप जो ऐसा गर्व सभी सभाओंमें किया करते हैं, उसका कारण सुनिए ॥ ३६ ॥

न तदा जायते भीष्मो मद्विधः क्षत्रियोऽपि वा ।
यस्ते युद्धमयं दर्पं कामं च व्यपनाशयेत् ॥ ३७ ॥

उस समय भीष्म अथवा भीष्मके समान कोई क्षत्रिय पुरुष उत्पन्न नहीं हुआ था । जो आपके युद्धमय अभिमान और अभिलाषाको पूरा कर सकता ॥ ३७ ॥

सोऽहं जातो महाबाहो भीष्मः परपुरञ्जयः ।
व्यपनेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम न संशयः ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥ ५५४० ॥

हे महाबाहो ! शत्रुओंके देशको जीतनेवाला वह भीष्म अब उत्पन्न हो गया है । हे राम ! युद्धमें अवश्य ही मैं आपके इस अभिमानको नष्ट कर दूंगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ अठहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ १७८ ॥ ५५४० ॥

: १७९ :

भीष्म उवाच

ततो मामब्रवीद्रामः प्रहसन्निव भारत ।
दिष्ट्या भीष्म मया सार्धं योद्‌धुमिच्छसि सङ्गरे ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे भारत ! तब परशुराम हंसते हुए मुझसे यह वचन बोले– हे भीष्म ! प्रारब्धहीसे तुम मेरे साथ युद्धमें लडनेकी इच्छा करते हो ॥ १ ॥

अयं गच्छामि कौरव्य कुरुक्षेत्रं त्वया सह ।
भाषितं तत्करिष्यामि तत्रागच्छेः परन्तप ॥ २ ॥

हे कौरव ! अब मैं तुम्हारे साथ कुरुक्षेत्र चलता हूं; हे परन्तप ! तुम भी वहांपर आ जाना; मैं तुम्हारे वचनको पूरा करूंगा ॥ २ ॥

तत्र त्वां निहतं माता मया शरशताचितम् ।
जाह्नवी पश्यतां भीष्म गृध्रकङ्कबडाशनम् ॥ ३ ॥

हे भीष्म ! तुम्हारी माता जाह्नवी वहांपर तुमको मेरे द्वारा सैकडों बाणोंसे युक्त मारा हुआ और गिद्ध कौए सियार आदिका भक्ष्य होते देखे ॥ ३ ॥

कृपणं त्वामभिप्रेक्ष्य सिद्धचारणसेविता ।
मया विनिहतं देवी रोदतामद्य पार्थिव ॥ ४ ॥
अतदर्हा महाभागा भगीरथसुता नदी ।
या त्वामजीजनन्मन्दं युद्धकामुकमातुरम् ॥ ५ ॥

हे राजन् ! जिसने तुम जैसे मूर्ख और युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले और युद्धके लिए आतुर पुत्रको पैदा किया वह सिद्धों और चारणोंसे सेवित, महाभाग्यशालिनी भगीरथ की पुत्री देवी गंगा नदी रोनेके अयोग्य होनेपर भी मेरे द्वारा मारे जानेपर तुम्हें दयाके योग्य देखकर आज रोये ॥ ४-५ ॥

एहि गच्छ मया भीष्म युद्धमद्यैव वर्ततात्।
गृहाण सर्वं कौरव्य रथादि भरतर्षभ ॥ ६ ॥

हे कुरुवंशी भीष्म ! चलो, मेरे साथ चलो, तुम्हारा जो कुछ रथ आदि सामग्री है, उसे ले करके चलो । हे भरतश्रेष्ठ ! आज ही हम दोनोंका युद्ध हो ॥ ६ ॥

इति ब्रुवाणं तमहं रामं परपुरञ्जयम् ।
प्रणम्य शिरसा राजन्नेवमस्त्वित्यथाब्रुवम् ॥ ७ ॥

ऐसे वचनको सुनकर मैंने शत्रुओंके देशको जीतनेवाले परशुरामको सिर झुकाकर प्रणाम करके कहा– बहुत अच्छा वही होगा ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा ययौ रामः कुरुक्षेत्रं युयुत्सया ।
प्रविश्य नगरं चाहं सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ ८ ॥

हे राजेन्द्र ! परशुराम मुझसे ऐसे वचन कहके युद्धकी इच्छासे कुरुक्षेत्रको गये और मैंने भी नगरमें आकर सत्यवतीसे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ॥ ८ ॥

ततः कृतस्वस्त्ययनो मात्रा प्रत्यभिनन्दितः ।
द्विजातीन्वाच्य पुण्याहं स्वस्ति चैव महाद्युते ॥ ९ ॥

हे महातेजस्वी ! तब मैंने जननीसे आशीर्वाद पाकर ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन स्वस्तिवाचन कराकर ॥ ९ ॥

रथमास्थाय रुचिरं राजतं पाण्डुरैर्हयैः ।
सूपस्करं स्वधिष्ठानं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥ १० ॥

सारे शस्त्रास्त्रोंसे युक्त, उत्तम आसनोंसे युक्त, व्याघ्रचर्मसे अच्छी तरह ढके हुए पाण्डुरवर्णके घोडोंसे युक्त, सुन्दर चांदीसे बने रथ पर बैठकर ॥ १० ॥

उपपन्नं महाशस्त्रैः सर्वोपकरणान्वितम् ।
तत्कुलीनेन वीरेण हयशास्त्रविदा नृप ॥ ११ ॥

सब शस्त्रास्त्रोंसे युक्त और सब साधनोंसे युक्त श्रेष्ठ सूतकुलमें उत्पन्न हुए वीर और घोडोंकी विद्याको जाननेवाले ॥ ११ ॥

युक्तं सूतेन शिष्टेन बहुशो दृष्टकर्मणा ।
दंशितः पाण्डुरेणाहं कवचेन वपुष्मता ॥ १२ ॥

अनेक युद्धोंके देखनेवाले सारथीसे युक्त उत्तम कवचसे युक्त होकर सुन्दर हृष्ट पुष्ट और पाण्डुरवर्णके घोडोंसे युक्त होकर ॥ १२ ॥

पाण्डुरं कार्मुकं गृह्य प्रायां भरतसत्तम।
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ॥ १३ ॥

हे भरतर्षभ दुर्योधन! पांडुरवर्णका धनुष लेकर सिरपर सफेद वर्णका छत्र धारण कर मैं कुरुक्षेत्र गया ॥ १३ ॥

पाण्डुरैश्चामरैश्चापि वीज्यमानो नराधिप।
शुक्लवासाः सितोष्णीषः सर्वशुक्लविभूषणः ॥ १४ ॥

हे राजन्! सफेद वस्त्र, सफेद पगडी और सभी सफेद अलंकारोंको पहनकर पाण्डुरवर्णके चामरोंको झुलवाता हुए ॥ १४ ॥

स्तूयमानो जयाशीर्भिर्निष्क्रम्य गजसाह्वयात्।
कुरुक्षेत्रं रणक्षेत्रमुपायां भरतर्षभ ॥ १५ ॥

जयका आशीर्वाद सुनते हुए हस्तिनापुरसे निकलकर, हे भरतश्रेष्ठ दुर्योधन! मैंने रणभूमि कुरुक्षेत्रके लिए यात्रा की ॥ १५ ॥

ते हयाश्चोदितास्तेन सूतेन परमाहवे।
अवहन्मां भृशं राजन्मनोमारुतरंहसः ॥ १६ ॥

हे राजन्! मन और वायुके समान शीघ्र दौडनेवाले उत्तम घोडे उस बुद्धिमान् सारथीके चलानेपर अतिशीघ्र ही मुझे लेकर महायुद्धके स्थान पर आकर पहुंच गए ॥ १६ ॥

गत्वाहं तत्कुरुक्षेत्रं स च रामः प्रतापवान्।
युद्धाय सहसा राजन्पराक्रान्तौ परस्परम् ॥ १७ ॥

हे राजन्! मैं और प्रतापवान् परशुराम दोनों युद्धके लिए एक दूसरेपर आक्रमण करनेकी इच्छासे वहांपर सहसा आकर खडे हुए ॥ १७ ॥

ततः सन्दर्शनेऽतिष्ठं रामस्यातितपस्विनः।
प्रगृह्य शङ्खप्रवरं ततः प्राधममुत्तमम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर अत्यन्त तपस्वी परशुरामके सामने जाकर खडा हो गया और हाथोंमें शंख लेकर खडा हो गया और मैंने अपने उत्तम शङ्खको जोरसे बजाया ॥ १८ ॥

ततस्तत्र द्विजा राजंस्तापसाश्च वनौकसः।
अपश्यन्त रणं दिव्यं देवाः सर्षिगणास्तदा ॥ १९ ॥

तब, हे राजन्! उस समय ब्राह्मण, वनवासी, तपस्वी और ऋषियोंके सहित सब देवता लोग वहांपर दिव्य युद्धको देखने लगे ॥ १९ ॥

ततो दिव्यानि माल्यानि प्रादुरासन्मुहुर्मुहुः।
वादित्राणि च दिव्यानि मेघवृन्दानि चैव ह ॥ २० ॥
तब बहुतसी दिव्यमालायें, दिव्य बाजे और बादलोंके समूह इधर उधर दीखने लगे॥२०॥

ततस्ते तापसाः सर्वे भार्गवस्यानुयायिनः।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त परिवार्य रणाजिरम् ॥ २१ ॥
तदनन्तर परशुरामके अनुयायी वे सब तपस्वी लोग रणभूमिको घेरकर दर्शक बने॥ २१ ॥

ततो मामब्रवीद्देवी सर्वभूतहितैषिणी।
माता स्वरूपिणी राजन्किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ २२ ॥
इसके बाद सब प्राणियोंकी हितैषिणी मेरी माता गङ्गादेवी शरीर धारण करके मेरे पास आकर बोली– हे पुत्र ! तुम यह क्या करनेकी इच्छा करते हो ? ॥ २२ ॥

गत्वाहं जामदग्न्यं तु प्रयाचिष्ये कुरूद्वह।
भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति पुनः पुनः ॥ २३ ॥
हे कुरुश्रेष्ठ ! मैं परशुरामके पास जाकर बार बार यह प्रार्थना करूंगी, कि तुम अपने शिष्य भीष्मके साथ युद्ध मत करो ॥ २३ ॥

मा मैवं पुत्र निर्बन्धं कुरु विप्रेण पार्थिव।
जामदग्न्येन समरे योद्धुमित्यवभर्त्सयत् ॥ २४ ॥
हे राजन् पुत्र ! तुम क्षत्रिय होकर ब्राह्मण तपस्वी परशुरामके साथ युद्ध करनेकी इच्छा मत करो– इस प्रकार उस गंगाने मुझे डाँटा ॥ २४ ॥

किं न वै क्षत्रियहरो हरतुल्यपराक्रमः।
विदितः पुत्र रामस्ते यतस्त्वं योद्धुमिच्छसि ॥ २५ ॥
शंकरके समान अत्यन्त पराक्रमी जो परशुराम क्षत्रियकुलके संहार करनेवाले हैं; वह क्या तुमको विदित नहीं है; जो तुम उनके साथ युद्ध करनेकी इच्छा कर रहे हो ? ॥ २५ ॥

ततोऽहमब्रुवं देवीमभिवाद्य कृताञ्जलिः।
सर्वं तद्भरतश्रेष्ठ यथावृत्तं स्वयंवरे ॥ २६ ॥
हे भारत ! तब मैंने अपनी माता गंगादेवीको दोनों हाथ जोडकर प्रणाम करके स्वयंवरमें जो कुछ वृत्तान्त हुआ था, उसे पूर्ण रीतिसे कह सुनाया ॥ २६ ॥

यथा च रामो राजेन्द्र मया पूर्वं प्रसादितः।
काशिराजसुतायाश्च यथा कामः पुरातनः ॥ २७ ॥
और, हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार मैंने परशुरामको पहले प्रसन्न किया था और काशीराजकी पुत्री अम्बाकी भी जो प्राचीन कामना थी, उन सबका वृत्तान्त मैंने कह सुनाया ॥ २७ ॥

ततः सा राममभ्येत्य जननी मे महानदी ।
मदर्थं तमृषिं देवी क्षमयामास भार्गवम् ।
भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति वचोऽब्रवीत् ॥ २८ ॥

तब मेरी माता महानदी गंगादेवी परशुरामके पास जाकर "तुम अपने शिष्य भीष्मके साथ युद्ध मत करो" ऐसा कहकर मेरे निमित्त उन ऋषि परशुरामसे विनती करने लगी ॥२८॥

स च तामाह याचन्तीं भीष्ममेव निवर्तय ।
न हि मे कुरुते काममित्यहं तमुपागमम् ॥ २९ ॥

परन्तु उन्होंने उस प्रार्थना करनेवाली मेरी माता जाह्नवीसे कहा, कि तुम भीष्महीको रोको; वह मेरी अभिलाषाको पूर्ण नहीं करता है, इसी कारण मैं उससे युद्ध कर रहा हूँ ॥ २९ ॥

संजय उवाच

ततो गङ्गा सुतस्नेहाद्भीष्मं पुनरुपागमत् ।
न चास्याः सोऽकरोद्वाक्यं क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ ३० ॥

संजय बोले– तब गंगा पुत्रके प्रेमके वशमें होकर फिर भीष्मके समीप गईं; परन्तु क्रोधसे लाल आंखोंवाले भीष्मने उसके वचनोंको नहीं माना ॥ ३० ॥

अथादृश्यत धर्मात्मा भृगुश्रेष्ठो महातपाः ।
आह्वयामास च पुनर्युद्धाय द्विजसत्तमः ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥ ५५७१ ॥

इसके अनन्तर द्विजसत्तम महा तपस्वी धर्मात्मा परशुराम दीख पडे और उन्होंने युद्धके लिए भीष्मको ललकारा ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ उनासीवां अध्याय समाप्त ॥ १७९ ॥ ५५७१ ॥

: १८० :

भीष्म उवाच

तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ।
भूमिष्ठं नोत्सहे योद्‌धुं भवन्तं रथमास्थितः ॥ १ ॥

भीष्म बोले– तब मैंने मुसकराकर रणभूमिमें स्थित परशुरामसे यह वचन कहा– हे वीर ! मैं रथपर बैठकर पृथ्वीपर पैदल चलनेवाले आपके साथ युद्ध नहीं करना चाहता ॥ १ ॥

आरोह स्यन्दनं वीर कवचं च महाभुज ।
बधान समरे राम यदि योद्धुं मयेच्छसि ॥ २ ॥

हे महाबाहो राम ! यदि आप मेरे साथ युद्ध करना चाहते हों, तो रथपर चढकर कवच धारण कीजिये ॥ २ ॥

ततो मामब्रवीद्रामः स्मयमानो रणाजिरे ।
रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदाः सदश्ववत् ॥ ३ ॥

तब परशुराम हंसते हंसते रणभूमिमें मुझसे बोले– हे भीष्म ! पृथ्वी ही मेरा रथ है, वेद उत्तम घोडोंके समान मेरे वाहन है ॥ ३ ॥

सूतो मे मातरिश्वा वै कवचं वेदमातरः ।
सुसंवीतो रणे ताभिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन ॥ ४ ॥

वायु मेरा सारथी, और वेदमाता गायत्री, सावित्री और सरस्वती मेरे कवच हैं । हे कुरुनन्दन ! मैं इन ही सब सामग्रियोंसे अच्छी तरह रक्षित होकर तुमसे युद्ध करूंगा ॥ ४ ॥

एवं ब्रुवाणो गान्धारे रामो मां सत्यविक्रमः ।
शरव्रातेन महता सर्वतः पर्यवारयत् ॥ ५ ॥

हे गान्धारीनन्दन ! सत्य पराक्रमी परशुरामने ऐसे वचनोंको कहते कहते बडे बडे बाणोंके समूहसे चारों ओरसे मुझे घेर लिया ॥ ५ ॥

ततोऽपश्यं जामदग्न्यं रथे दिव्ये व्यवस्थितम् ।
सर्वायुधधरे श्रीमत्यद्भुतोपमदर्शने ॥ ६ ॥

तब मैंने परशुरामको सब शस्त्रास्त्रोंसे युक्त, शोभासम्पन्न होनेके कारण अद्भुत दर्शनवाले दिव्य रथपर बैठे हुए देखा ॥ ६ ॥

मनसा विहिते पुण्ये विस्तीर्णे नगरोपमे ।
दिव्याश्वयुजि संनद्धे काञ्चनेन विभूषिते ॥ ७ ॥

मनसे निर्मित बडे नगरके समान, दिव्य घोडोंसे युक्त, अच्छी तरह बांधे गए सोनेके कामसे विभूषित ॥ ७ ॥

ध्वजेन च महाबाहो सोमालंकृतलक्ष्मणा ।
धनुर्धरो बद्धतूणो बद्धगोधांगुलित्रवान् ॥ ८ ॥
सारथ्यं कृतवांस्तत्र युयुत्सोरकृतव्रणः ।
सखा वेदविदत्यन्तं दयितो भार्गवस्य ह ॥ ९ ॥

चन्द्र सूर्यके चिह्नसे चित्रित ध्वजासे युक्त रथपर स्थित देखा, इस रथमें परशुरामके प्रिय सखा वेदको जाननेवाले अकृतव्रण गोधा, अंगुलित्राण, तूणीर और शरासनधारी होकर परशुरामके सारथीका कार्य कर रहे थे ॥ ८-९ ॥

४

आह्वयानः स मां युद्धे मनो हर्षयतीव मे ।
पुनः पुनरभिक्रोशन्नभियाहीति भार्गवः ॥ १० ॥

भार्गव " आओ ! आओ ! " कहकर मेरे मनको हर्षित करते हुए से युद्धके निमित्त बार बार मुझे ललकारने लगे ॥ १० ॥

तमादित्यमिवोद्यन्तमनाधृष्यं महाबलम् ।
क्षत्रियान्तकरं राममेकमेकः समासदम् ॥ ११ ॥

मैं उन महातेजस्वी सूर्यके समान प्रकाशित, पराजित न होनेवाले, महाबली, क्षत्रियोंके नाश करनेवाले तथा अकेले परशुरामके सम्मुख अकेला ही गया ॥ ११ ॥

ततोऽहं बाणपातेषु त्रिषु वाहान्निगृह्य वै ।
अवतीर्य धनुर्न्यस्य पदातिर्ऋषिसत्तमम् ॥ १२ ॥
अभ्यगच्छं तदा राममर्चिष्यन्द्विजसत्तमम् ।
अभिवाद्य चैनं विधिवदब्रुवं वाक्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥

तब उनके तीन बार बाणके छोडनेपर मैंने घोडोंको रोककर और धनुषको उतारकर पैदल ही उन ऋषिसत्तमकी पूजा करके उनके पास गया और उन श्रेष्ठ ब्राह्मणको विधिपूर्वक प्रणाम करके यह उत्तम वचन कहा ॥ १२-१३ ॥

योत्स्ये त्वया रणे राम विशिष्टेनाऽधिकेन च ।
गुरुणा धर्मशीलेन जयमाशास्स्व मे विभो ॥ १४ ॥

हे परशुराम ! आप मेरे समान हों, अथवा मुझसे अधिक ही हों, परन्तु मैं आपके साथ युद्ध अवश्य करूंगा । हे विभो ! आप मेरे गुरु और धर्मात्मा हैं, अतः मुझे जयके निमित्त आशीर्वाद दीजिए ॥ १४ ॥

राम उवाच

एवमेतत्कुरुश्रेष्ठ कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।
धर्मो ह्येष महाबाहो विशिष्टैः सह युध्यताम् ॥ १५ ॥

राम बोले— हे महाबाहो ! कुरुश्रेष्ठ ! कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषको इसी प्रकारका कर्म करना चाहिए, क्योंकि जो बडोंके साथ युद्ध करता है, उसे ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए, यही उसका धर्म है ॥ १५ ॥

शपेयं त्वां न चेदेवमागच्छेथा विशां पते ।
युध्यस्व त्वं रणे यत्तो धैर्यमालम्ब्य कौरव ॥ १६ ॥

हे प्रजापालक ! तुम यदि इस प्रकारसे मेरे पास न आते; तो मैं तुमको शाप देता । हे कौरव ! अब तुम धीरज धरके प्रयत्नशील होकर युद्ध करो ॥ १६ ॥

न तु ते जयमाशासे त्वां हि जेतुमहं स्थितः ।
गच्छ युध्यस्व धर्मेण प्रीतोऽस्मि चरितेन ते ॥ १७ ॥

हे राजन् ! मैं स्वयं तुमको जीतनेके लिए उद्यत हुआ हूं; अतः तुम्हें जयका आशीर्वाद नहीं दे सकता; अब तुम जाओ, धर्मपूर्वक युद्ध करो; मैं तुम्हारे इस व्यवहारसे प्रसन्न हूं ॥ १७ ॥

भीष्म उवाच

ततोऽहं तं नमस्कृत्य रथमारुह्य सत्वरः ।
प्राध्मापयं रणे शङ्खं पुनर्हेमविभूषितम् ॥ १८ ॥

भीष्म बोले– तदनन्तर मैंने उन्हें नमस्कार करके शीघ्र ही रथपर चढकर रण भूमिमें सुवर्ण भूषित अपने शङ्खको फिर बजाया ॥ १८ ॥

ततो युद्धं समभवन्मम तस्य च भारत ।
दिवसान्सुबहून्राजन्परस्परजिगीषया ॥ १९ ॥

हे भरतवंशी राजन् दुर्योधन ! इसके अनन्तर एक दूसरेको जीतनेकी अभिलाषासे उनका और मेरा युद्ध बहुत दिनतक हुआ ॥ १९ ॥

स मे तस्मिन्रणे पूर्वं प्राहरत्कङ्कपत्रिभिः ।
षष्ट्या शतैश्च नवभिः शराणामग्निवर्चसाम् ॥ २० ॥

उस युद्धमें पहिले परशुरामने कङ्कपत्रसे युक्त अग्निके समान तीक्ष्ण नौसौ साठ बाणोंसे मेरे रथपर प्रहार किया ॥ २० ॥

चत्वारस्तेन मे वाहाः सूतश्चैव विशां पते ।
प्रतिरुद्धास्तथैवाहं समरे दंशितः स्थितः ॥ २१ ॥

और, हे प्रजापालक ! मेरे रथके चारों घोडे और सारथीको बाणोंकी वर्षासे विकल कर दिया । पर मैं इस प्रकारसे पीडित होकर भी संग्राममें निर्भय खडा ही रहा ॥ २१ ॥

नमस्कृत्य च देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च भारत ।
तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ॥ २२ ॥

हे भारत ! तब देवता और ब्राह्मणोंको नमस्कार करके रणभूमिमें स्थित उन ऋषिराज परशुरामसे हंसते हुए मैंने यह वचन कहा ॥ २२ ॥

आचार्यता मानिता मे निर्मर्यादे ह्यपि त्वयि ।
भूयस्तु शृणु मे ब्रह्मन्सम्पदं धर्मसंग्रहे ॥ २३ ॥

हे ब्रह्मन् ! आपके मर्यादा रहित होनेपर भी मैं आपके गुरुपनका सम्मान करता हूं और धर्म रक्षाके विषयमें मेरी कितनी तत्परता है, उसे आप सुनिये ॥ २३ ॥

ये ते वेदाः शरीरस्था ब्राह्मण्यं यच्च ते महत् ।
तपश्च सुमहत्तप्तं न तेभ्यः प्रहराम्यहम् ॥ २४ ॥

आपके शरीरमें जो सब वेद और जो श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व है और उससे जो आपने बहुत ही तपस्या सञ्चित की है; उन सबके ऊपर मैं प्रहार नहीं कर रहा ॥ २४ ॥

प्रहरे क्षत्रधर्मस्य यं त्वं राम समास्थितः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियत्वं हि याति शस्त्रसमुद्यमात् ॥ २५ ॥

प्रहार करनेमें आपने जिस क्षत्रिय धर्मका आसरा लिया है; मैं उसहींके ऊपर प्रहार करता हूं; क्योंकि शस्त्रधारण करनेसे ब्राह्मण भी क्षत्रियत्वको प्राप्त हो जाता है ॥ २५ ॥

पश्य मे धनुषो वीर्यं पश्य बाह्वोर्बलं च मे ।
एष ते कार्मुकं वीर द्विधा कुर्मि ससायकम् ॥ २६ ॥

हे वीर ! आप मेरे धनुषके पराक्रम और बाहुबलको देखें । मैं आपके धनुषके बाणके सहित दो टुकडे कर देता हूँ ॥ २६ ॥

तस्याहं निशितं भल्लं प्राहिण्वं भरतर्षभ ।
तेनास्य धनुषः कोटिश्छिन्ना भूमिमथागमत् ॥ २७ ॥

हे भरतर्षभ ! ऐसा कहकर मैंने उनके ऊपर एक तेज बाण चलाया और उसीसे उनके धनुषका अग्रभाग—सिरा कटकर पृथ्वी पर गिर पडा ॥ २७ ॥

नव चापि पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् ।
प्राहिण्वं कङ्कपत्राणां जामदग्न्यरथं प्रति ॥ २८ ॥

जमदग्निपुत्र परशुरामके रथपर भी मैंने कंकपत्रोंसे युक्त नौ सौ तीक्ष्ण बाणोंको चलाया ॥ २८ ॥

काये विषक्तास्तु तदा वायुनाभिसमीरिताः ।
चेलुः क्षरन्तो रुधिरं नागा इव च ते शराः ॥ २९ ॥

हे राजन् ! पहिले शरीरमें विद्ध होकर तथा हवासे प्रेरित होकर सर्पकी भांति वे सब बाण शरीरसे रक्त बहाने लगे ॥ २९ ॥

क्षतजोक्षितसर्वाङ्गः क्षरन्स रुधिरं व्रणैः ।
बभौ रामस्तदा राजन्मेरुर्धातूनिवोत्सृजन् ॥ ३० ॥

तब उनका सारा शरीर घावसे भर गया और उन घावोंसे बहनेवाले रक्तसे परशुराम ऐसे शोभित हुए, जैसे धातुओंके बहनेसे सुमेरू पर्वत ॥ ३० ॥

हेमन्तान्तेऽशोक इव रक्तस्तबकमण्डितः ।
बभौ रामस्तदा राजन्क्वचित्किंशुकसंनिभः ॥ ३१ ॥

अथवा, हे राजन् ! हेमन्त ऋतुके अन्तमें अशोक और वसन्त ऋतुमें पलाशका वृक्ष अपने लालरंगके फूलोंसे शोभायमान होता है उसी तरह परशुराम अपने रक्तमय देहसे सुशोभित हुए ॥ ३१ ॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय रामः क्रोधसमन्वितः ।
हेमपुङ्खान्सुनिशिताञ्शरांस्तान्हि ववर्ष सः ॥ ३२ ॥

तब परशुराम क्रोधसे युक्त होकर दूसरा धनुष लेकर सुवर्ण पंखसे युक्त अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंको बरसाने लगे ॥ ३२ ॥

ते समासाद्य मां रौद्रा बहुधा मर्मभेदिनः ।
अकम्पयन्महावेगाः सर्पानलविषोपमाः ॥ ३३ ॥

महा वेगशाली, सर्पके विष अथवा अग्निके समान भयङ्कर तथा मर्मका भेदन करनेवाले अनेक बाण मेरे शरीरमें लगकर मुझे कंपाने लगे ॥ ३३ ॥

ततोऽहं समवष्टभ्य पुनरात्मानमाहवे ।
शतसंख्यैः शरैः क्रुद्धस्तदा राममवाकिरम् ॥ ३४ ॥

तब मैंने किसी प्रकार अपनेको युद्धमें फिर स्थिर करके क्रोधमें भरकर सौ बाण परशुरामके ऊपर चलाये ॥ ३४ ॥

स तैरग्न्यर्कसङ्काशैः शरैराशीविषोपमैः ।
शितैरभ्यर्दितो रामो मन्दचेता इवाभवत् ॥ ३५ ॥

अग्नि और सूर्यके तेज और विषैले सर्पके समान तीक्ष्ण उन बाणोंके शरीरमें लगनेसे परशुराम चेतनारहितसे हो गये ॥ ३५ ॥

ततोऽहं कृपयाविष्टो विनिन्द्यात्मानमात्मना ।
धिग्धिगित्यब्रुवं युद्धं क्षत्रं च भरतर्षभ ॥ ३६ ॥

हे भारत ! उस समय मैं कृपासे युक्त होकर स्वयंकी निन्दा करके, हे भरतश्रेष्ठ ! युद्धको और क्षात्रधर्मको धिक्कारने लगा ॥ ३६ ॥

असकृच्चाब्रुवं राजञ्शोकवेगपरिप्लुतः ।
अहो बत कृतं पापं मयेदं क्षत्रकर्मणा ॥ ३७ ॥

और शोकके वेगसे प्रभावित होकर मैं बार बार यह कहने लगा कि मैंने क्षत्रियधर्मको ग्रहण करके यह पाप किया है ॥३७॥

गुरुर्द्विजातिर्धर्मात्मा यदेवं पीडितः शरैः ।
ततो न प्राहरं भूयो जामदग्न्याय भारत ॥ ३८ ॥

जो धर्मात्मा ब्राह्मण और विशेष करके मेरे गुरु हैं, उन्हींको मैंने अपने बाणोंसे पीडित किया है । फिर उसके बाद फिर मैंने परशुरामके ऊपर प्रहार नहीं किया ॥ ३८ ॥

अथावताप्य पृथिवीं पूषा दिवससंक्षये ।
जगामास्तं सहस्रांशुस्ततो युद्धमुपारमत् ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥५६१० ॥

तदनन्तर भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे पृथ्वीको तपाकर सन्ध्याके समय अस्त हो गये और उस दिनका युद्ध भी समाप्त हो गया ॥ ३९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥ १८० ॥ ५६१० ॥

: १८१ :

भीष्म उवाच

आत्मनस्तु ततः सूतो हयानां च विशां पते ।
मम चापनयामास शल्यान्कुशलसम्मतः ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे प्रजानाथ ! इसके बाद मेरे निपुण सारथीने अपना, घोडोंका और मेरे शरीरका सब शल्य निकाला ॥ १ ॥

स्नातोपवृत्तैस्तुरगैर्लब्धतोयैरविह्वलैः ।
प्रभात उदिते सूर्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

दूसरे दिन सवेरे सूर्यके उदय होनेपर सारथि नहाये हुए और पानी पिलाये हुए होनेके कारण व्याकुलतासे रहित पुनः तरोताजा हुए हुए अत्यन्त तेजस्वी घोडोंको रथमें जोडकर मुझे रणभूमिमें ले आया, उसके बाद फिर युद्ध आरंभ हुआ ॥ २ ॥

दृष्ट्वा मां तूर्णमायान्तं दंशितं स्यन्दने स्थितम् ।
अकरोद्रथमत्यर्थं रामः सज्जं प्रतापवान् ॥ ३ ॥

प्रतापवान् परशुरामने मुझे रथमें बैठे हुए, कवचसे युक्त शीघ्र आया हुआ देखकर शीघ्र ही अपनी रथसज्जा की ॥ ३ ॥

ततोऽहं राममायान्तं दृष्ट्वा समरकांक्षिणम् ।
धनुःश्रेष्ठं समुत्सृज्य सहसावतरं रथात् ॥ ४ ॥

इसके बाद मैं युद्धकी अभिलाषा करनेवाले परशुरामको आते हुए देखकर अपने उत्तम धनुषको त्यागकर शीघ्र ही रथसे उतर गया ॥ ४ ॥

अभिवाद्य तथैवाहं रथमारुह्य भारत ।
युयुत्सुर्जामदग्न्यस्य प्रमुखे वीतभीः स्थितः ॥ ५ ॥

हे भारत ! पहिलेकी भांति उन्हें प्रणाम करके फिर रथपर चढके युद्ध करनेके निमित्त जमदग्निके पुत्र परशुरामके सामने निर्भय होकर खडा हो गया ॥ ५ ॥

ततो मां शरवर्षेण महता समवाकिरत् ।
अहं च शरवर्षेण वर्षन्तं समवाकिरम् ॥ ६ ॥

इसके बाद उन्होंने मुझे बाणोंकी बरसातसे ढक दिया और बाणोंको बरसाते हुए मैंने भी उन्हें ढक दिया ॥ ६ ॥

संक्रुद्धो जामदग्न्यस्तु पुनरेव पतत्रिणः ।
प्रेषयामास मे राजन्दीप्तास्यानुरगानिव ॥ ७ ॥

हे राजन् ! तब क्रोधित होकर परशुरामने फिर मेरे ऊपर जलते हुए मुखवाले सांपोंके तुल्य बाणोंको चलाया ॥ ७ ॥

तानहं निशितैर्भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
अच्छिदं सहसा राजन्नन्तरिक्षे पुनः पुनः ॥ ८ ॥

तब, हे राजन् ! मैंने सहस्रों और सैकडों तीक्ष्ण बाणोंसे उन सबको बार बार अन्तरिक्षमें ही काटना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

ततस्त्वस्त्राणि दिव्यानि जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
मयि प्रचोदयामास तान्यहं प्रत्यषेधयम् ॥ ९ ॥

तब महाप्रतापी परशुरामने मेरे उपर दिव्य अस्त्रोंको चलाना आरंभ किया और मैंने भी उन दिव्य अस्त्रोंको बीचमें ही रोक दिया ॥ ९ ॥

अस्त्रैरेव महाबाहो चिकीर्षन्नधिकां क्रियाम् ।
ततो दिवि महान्नादः प्रादुरासीत्समन्ततः ॥ १० ॥

मैंने उससे भी अपनी अधिक श्रेष्ठता दिखानेके लिए अपने अस्त्रोंसे उन अस्त्रोंको काट डाला तब आकाश-मण्डलमें चारों ओर महा गंभीर नाद उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥

ततोऽहमस्त्रं वायव्यं जामदग्न्ये प्रयुक्तवान् ।
प्रत्याजघ्ने च तद्रामो गुह्यकास्त्रेण भारत ॥ ११ ॥

हे भारत ! इसके बाद मैंने परशुरामके ऊपर वायव्य-अस्त्र चलाया और उन्होंने भी गुह्यक अस्त्रसे उसे काट गिराया ॥ ११ ॥

ततोऽस्त्रमहमाग्नेयमनुमन्त्र्य प्रयुक्तवान् ।
वारुणेनैव रामस्तद्वारयामास मे विभुः ॥ १२ ॥

तब मैंने मन्त्र पढकर आग्नेय अस्त्र चलाया; परन्तु विभु परशुरामने वारुणास्त्रसे उस मेरे आग्नेयास्त्र संहार कर दिया ॥ १२ ॥

एवमस्त्राणि दिव्यानि रामस्याहमवारयम् ।
रामश्च मम तेजस्वी दिव्यास्त्रविदरिन्दमः ॥ १३ ॥

इसी प्रकारसे मैं भी रामके सब दिव्य अस्त्रोंका निवारण करने लगा; और शत्रुओंके नाशक तेजस्वी परशुरामने भी मेरे सब दिव्य अस्त्रोंका निवारण किया ॥ १३ ॥

ततो मां सव्यतो राजन्रामः कुर्वन्द्विजोत्तमः ।
उरस्यविध्यत्संक्रुद्धो जामदग्न्यो महाबलः ॥ १४ ॥

हे राजन् ! तब महाबलवान्, द्विजश्रेष्ठ जमदग्निके पुत्र रामने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुझे बांयी ओर करके मेरे छातीमें शस्त्र प्रहार किया ॥ १४ ॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ संन्यषीदं रथोत्तमे ।
अथ मां कश्मलाविष्टं सूतस्तूर्णमपावहत् ।
गोरुतं भरतश्रेष्ठ रामबाणप्रपीडितम् ॥ १५ ॥

उससे पीडित होकर मैं चेतना रहित होकर रथपर ही बैठ गया । तब सारथी इस प्रकारसे मूर्च्छित तथा रामके बाणोंसे पीडित होकर गायके समान चिल्लाते हुए मुझे देखकर शीघ्र ही रथ ले भागा ॥ १५ ॥

तत्तो मामपयातं वै भृशं विद्धमचेतसम् ।
रामस्यानुचरा हृष्टाः सर्वे दृष्ट्वा प्रचुक्रुशुः ।
अकृतव्रणप्रभृतयः काशिकन्या च भारत ॥ १६ ॥

हे राजन् ! अकृतव्रण आदि रामके अनुयायी लोग और काशिराजकी कन्या भार्गवके बाणसे मुझे अत्यन्त पीडित, विद्ध, ग्लानिसे युक्त, अचेत और रणसे पराजित होते देख कर आनन्दित होकर चिल्लाने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तु लब्धसंज्ञोऽहं ज्ञात्वा सूतमथाब्रुवम् ।
याहि सूत यतो रामः सज्जोऽहं गतवेदनः ॥ १७ ॥

इसके बाद मेरी चेतना लौटी तब मैंने सारथीसे कहा– हे सूत ! मैं पीडासे रहित और सावधान हो गया हूं; इसलिए अब तुम जहां परशुराम हों, वहीं मुझको ले चलो ॥ १७ ॥

ततो मामवहत्सूतो हयैः परमशोभितैः ।
नृत्यद्भिरिव कौरव्य मारुतप्रतिमैर्गतौ ॥ १८ ॥

हे कौरव ! मेरा सारथी मुझे उत्तम घोडोंसे युक्त शोभायमान रथपर लेकर चला और गतिमें वायुके समान वेगवान् घोडे भी अत्यन्त शीघ्रतासे नाचते हुए चले ॥ १८ ॥

ततोऽहं राममासाद्य बाणजालेन कौरव ।
अवाकिरं सुसंरब्धः संरब्धं विजिगीषया ॥ १९ ॥

तदनन्तर मैंने क्रोधसे युक्त परशुरामके पास जाकर उन्हें जीतनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ की ॥ १९ ॥

तानापतत एवासौ रामो बाणानजिह्मगान् ।
बाणैरेवाच्छिनत्तूर्णमेकैकं त्रिभिराहवे ॥ २० ॥

उन्होंने तीन तीन बाणोंसे अपनी ओर सीधे चले आते हुए मेरे सब बाणोंको शीघ्र ही काट डाला ॥ २० ॥

ततस्ते मृदिताः सर्वे मम बाणाः सुसंशिताः ।
रामबाणैर्द्विधा छिन्नाः शतशोऽथ महाहवे ॥ २१ ॥

इस प्रकारसे उस महायुद्धमें मेरे सैकडों तीक्ष्ण बाण परशुरामके बाणोंसे दो दो टुकडे होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २१ ॥

ततः पुनः शरं दीप्तं सुप्रभं कालसम्मितम् ।
असृजं जामदग्न्याय रामायाहं जिघांसया ॥ २२ ॥

तब मैंने परशुरामके वध करनेकी इच्छासे साक्षात् काल दण्डके समान अत्यन्त प्रकाशित और तेजसे जलता हुआ शस्त्र चलाया ॥ २२ ॥

×

तेन त्वभिहतो गाढं बाणच्छेदवशं गतः ।
मुमोह सहसा रामो भूमौ च निपपात ह ॥ २३ ॥

उस बाणसे बुरी तरह विद्ध होकर और बाणके वेगसे प्रभावित होकर परशुराम अचानक मूर्च्छित हो गए और भूमि पर गिर पडे ॥ २३ ॥

ततो हाहाकृतं सर्वं रामे भूतलमाश्रिते ।
जगद्भारत संविग्नं यथार्कपतनेऽभवत् ॥ २४ ॥

हे भारत ! सूर्यके पतित होनेसे जगत् जिस प्रकारसे व्याकुल हो जाता है उसी प्रकार परशुरामके पृथ्वीपर गिरनेसे सब हाहा करने लगे ॥ २४ ॥

तत एनं सुसंविग्नाः सर्वे एवाभिदुद्रुवुः ।
तपोधनास्ते सहसा काश्या च भृगुनन्दनम् ॥ २५ ॥

तब वे सब तपस्वी और काशिराजकी कन्या अत्यन्त व्याकुल होकर भृगुनन्दन परशुरामके पास गये ॥ २५ ॥

त एनं संपरिष्वज्य शनैराश्वासयंस्तदा ।
पाणिभिर्जलशीतैश्च जयाशीर्भिश्च कौरव ॥ २६ ॥

और धीरे धीरे उनका आलिङ्गन करके जलसे युक्त शीतल हाथोंसे स्पर्श करके और जयके आशीर्वादसे उनको होशमें लाने लगे ॥ २६ ॥

ततः स विह्वलो वाक्यं राम उत्थाय माब्रवीत् ।
तिष्ठ भीष्म हतोऽसीति बाणं सन्धाय कार्मुके ॥ २७ ॥

इसके बाद परशुराम उठ कर धनुषपर बाण चढाके विह्वल होकर मुझे कहने लगे– भीष्म ! खडा रह ! अब तू अपनेको मारा गया ही समझ ॥ २७ ॥

स मुक्तो न्यपतत्तूर्णं पार्श्वे सव्ये महाहवे ।
येनाहं भृशसंविग्नो व्याघूर्णित इव द्रुमः ॥ २८ ॥

संग्राममें वह बाण धनुषसे छूट कर अत्यन्त वेगसे मेरी बायीं और हृदयमें लगा । उसके लगनेसे मैं वायुसे उखडते हुए वृक्षकी भांति व्याकुल होगया ॥ २८ ॥

हत्वा हयांस्ततो राजञ्शीघ्रास्त्रेण महाहवे ।
अवाकिरन्मां विस्रब्धो बाणैस्तैर्लोमवाहिभिः ॥ २९ ॥

हे राजन् ! तब परशुरामने युद्धमें शीघ्रतासे अपना शस्त्र चलाकर मेरे सब घोडोंको मार डाला और क्रोधपूर्वक लोमयुक्त बाणोंके जालसे मुझे ढक दिया ॥ २९ ॥

ततोऽहमपि शीघ्रास्त्रं समरेऽप्रतिवारणम् ।
अवासृजं महाबाहो तेऽन्तराधिष्ठिताः शराः ।
रामस्य मम चैवाशु व्योमावृत्य समन्ततः ॥ ३० ॥

मैंने भी युद्धमें उनके शस्त्रोंके निवारण करनेके लिए शीघ्र शस्त्र चलाया। हे महाबाहो दुर्योधन! अन्तरिक्षमें जाकर मेरे और परशुरामके उन सब बाणोंने आकाशको चारों ओर से ढक लिया ॥ ३० ॥

न स्म सूर्यः प्रतपति शरजालसमावृतः ।
मातरिश्वान्तरे तस्मिन्मेघरुद्ध इवानदत् ॥ ३१ ॥

उस समय आकाशके बाणोंके समूहसे आच्छादित हो जानेके कारण सूर्यकी किरणें प्रकाशित नहीं होती थी, और भी मेघ जिस प्रकार अन्दर ही अन्दर गरजता है, उसी प्रकार वायु भी उन बाणोंके कारण रुद्ध होकर अन्दर ही अन्दर शब्द करने लगी ॥ ३१ ॥

ततो वायोः प्रकम्पाच्च सूर्यस्य च मरीचिभिः ।
अभितापात्स्वभावाच्च पावकः समजायत ॥ ३२ ॥

इसलिए वायुकी सनसनाहट, बाणोंके आपसमें रगड खानेसे और सूर्यकी किरणसे अग्निकी उत्पत्ति हुई ॥ ३२ ॥

ते शराः स्वसमुत्थेन प्रदीप्ताश्चित्रभानुना ।
भूमौ सर्वे तदा राजन्भस्मभूताः प्रपेदिरे ॥ ३३ ॥

हे राजन्! तब सम्पूर्ण बाण स्वतःसे उत्पन्न हुई अग्निसे जल जानेके कारण भस्म होकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३३ ॥

तदा शतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
अयुतान्यथ खर्वाणि निखर्वाणि च कौरव ।
रामः शराणां संक्रुद्धो मयि तूर्णमपातयत् ॥ ३४ ॥

हे कौरव! तदनन्तर परशुराम क्रोधमें भरकर सौ, हजार, दश हजार, लाख, अर्बुद, खर्व निखर्व आदि अनगितन बाणोंको अत्यन्त शीघ्रतासे मुझ पर बरसाने लगे ॥ ३४ ॥

ततोऽहं तानपि रणे शरैराशीविषोपमैः ।
संछिद्य भूमौ नृपतेऽपातयं पन्नगानिव ॥ ३५ ॥

मैंने भी विषधारी सर्पके समान अपने बाणोंसे उनके सब बाणोंको काट काट कर सांपोंके समान पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ३५ ॥

एवं तदभवद्युद्धं तदा भरतसत्तम ।
सन्ध्याकाले व्यतीते तु व्यपायात्स च मे गुरुः ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥ ५६४६ ॥

हे भरतसत्तम ! उस समय इसी प्रकारसे घोर संग्राम हो रहा था । पर संध्याकाल के व्यतीत हो जाने पर वह मेरे गुरु युद्धसे विरत होगये ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ इक्यासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८१ ॥ ५६४६ ॥

: १८२ :

भीष्म उवाच

समागतस्य रामेण पुनरेवातिदारुणम् ।
अन्येद्युस्तुमुलं युद्धं तदा भरतसत्तम ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे भरतर्षभ ! दूसरे दिन फिर मेरा और परशुरामका समागम होने पर अत्यन्त घोर और महान् युद्ध हुआ ॥ १ ॥

ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ।
अयोजयत धर्मात्मा दिवसे दिवसे विभुः ॥ २ ॥

वह दिव्य शस्त्रोंके जाननेवाले धर्मात्मा प्रतापी परशुराम प्रतिदिन अनेक दिव्य अस्त्रोंको चलाने लगे ॥ २ ॥

तान्यहं तत्प्रतीघातैरस्त्रैरस्त्राणि भारत ।
व्यधमं तुमुले युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥ ३ ॥

और मैं भी उन सब अस्त्रोंका प्रतिकार करनेवाले अस्त्रोंसे निवारण करने लगा । हे भारत ! मैं बडी मुश्किलसे त्यागने योग्य अपने प्राणोंकी भी आशा छोडकर युद्ध करने लगा ॥ ३ ॥

अस्त्रैरस्त्रेषु बहुधा हतेष्वथ च भारत ।
अक्रुध्यत महातेजास्त्यक्तप्राणः स संयुगे ॥ ४ ॥

हे भारत दुर्योधन ! इसी प्रकारसे अनेक शस्त्रोंके चलने और उनका निवारण होनेपर महातेजस्वी परशुराम बहुत क्रोधित हो गए और वे भी प्राणपणसे युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥

ततः शक्तिं प्राहिणोद्घोररूपामस्त्रै रुद्धो जामदग्न्यो महात्मा ।
कालोत्सृष्टां प्रज्वलितामिवोल्कां सन्दीप्ताग्रां तेजसावृत्य लोकान् ॥ ५ ॥

अस्त्रोंके रुद्ध होनेपर महात्मा जमदग्निपुत्र परशुरामने प्रकाशमान् उल्काके समान जलती हुई मानों कालके द्वारा छोडी गई, जिसका अग्रभाग जल रहा था, ऐसी सब लोकोंको तेजसे व्याप्त करनेवाली एक महाघोर शक्ति चलायी ॥ ५ ॥

ततोऽहं तामिषुभिर्दीप्यमानैः समायान्तीमन्तकालार्कदीप्ताम् ।
छित्त्वा त्रिधा पातयामास भूमौ ततो ववौ पवनः पुण्यगन्धिः ॥ ६ ॥

मैंने भी अपने तेज बाणोंसे उस सम्मुख आनेवाली प्रलयकालके सूर्यके समान प्रकाशित शक्तिको तीन खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया; तब शीतल और सुगंधित हवा चलने लगी ॥ ६ ॥

तस्यां छिन्नायां क्रोधदीप्तोऽथ रामः शक्तीर्घोराः प्राहिणोद्द्वादशान्याः ।
तासां रूपं भारत नोत शक्यं तेजस्वित्वाल्लाघवाच्चैव वक्तुम् ॥ ७ ॥

हे भारत ! उस शक्तिको कटकर गिरती हुई देखकर परशुरामने क्रोधमें भरकर और भी बारह महा भयङ्कर शक्तियाँ चलायीं। तेजस्विता और शीघ्रतासे युक्त होनेसे उन शक्तियोंके रूपका वर्णन करना भी बहुत कठिन है ॥ ७ ॥

किं त्वेवाहं विह्वलः सम्प्रदृश्य दिग्भ्यः सर्वास्ता महोल्का इवाग्नेः ।
नानारूपास्तेजसोग्रेण दीप्ता यथादित्या द्वादश लोकसंक्षये ॥ ८ ॥

सब दिशाओंसे अग्निकी चिनगारियोंके समान नाना रूपसे युक्त, प्रलयकालके बारह आदित्यके समान तेजसे जलती हुई उन शक्तियोंको देखकर ही मैं विह्वल हो गया ॥ ८ ॥

ततो जालं बाणमयं विवृत्य संदृश्य भित्त्वा शरजालेन राजन् ।
द्वादशेषून्प्राहिणवं रणेऽहं ततः शक्तीर्व्यधमं घोररूपाः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! तब अपने शरसमूहसे परशुरामके शरसमूहको काटकर उन शक्तियोंको भी संमुख आई हुई जानकर मैंने अत्यन्त उत्तम बारह बाण चलाये और उन्हींसे उन महाघोर शक्तियोंको भी भस्म कर दिया ॥ ९ ॥

ततोऽपरा जामदग्न्यो महात्मा शक्तीर्घोराः प्राक्षिपद्धेमदण्डाः ।
विचित्रिताः काञ्चनपट्टनद्धा यथा महोल्का ज्वलितास्तथा ताः ॥ १० ॥

हे राजन् ! तब महात्मा परशुरामने फिर सुवर्णके दण्डसे युक्त अत्यन्त विचित्र जलती हुई उल्काके समान महाभयङ्कर तथा सोनेके पट्टोंसे सुशोभित बहुतसी शक्तियाँ चलायीं ॥ १० ॥

ताश्चाप्युग्राश्चर्मणा वारयित्वा खड्गेनाजौ पातिता मे नरेन्द्र ।
बाणैर्दिव्यैर्जामदग्न्यस्य संख्ये दिव्यांश्चाश्वानभ्यवर्षं ससूतान् ॥ ११ ॥

हे नरेन्द्र ! मैंने उन भयंकर शक्तियोंको भी चर्मके ढालसे रोककर तलवारसे काटा डाला और युद्धमें दिव्य बाणोंको चलाकर परशुरामके सारथीके सहित दिव्य घोड़ोंको बाणोंसे छा दिया ॥ ११ ॥

निर्मुक्तानां पन्नगानां सरूपा दृष्ट्वा शक्तीर्हेमचित्रा निकृत्ताः।
प्रादुश्चक्रे दिव्यमस्त्रं महात्मा क्रोधाविष्टो हैहयेशप्रमाथी ॥ १२ ॥

तब हैहयवंशीय कार्त्तवीर्य अर्जुनके नाश करनेवाले महात्मा परशुरामने केंचुलीसे छूटे हुए सर्पकी भांति सुवर्ण भूषित उन शक्तियोंको कटती हुई देखकर अत्यन्त ही क्रोधके वशमें होकर दिव्य अस्त्रोंको चलाना आरम्भ किया ॥ १२ ॥

ततः श्रेण्यः शलभानामिवोग्राः समापेतुर्विशिखानां प्रदीप्ताः।
समाचिनोच्चापि भृशं शरीरं हयान्सूतं सरथं चैव मह्यम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर प्रचण्ड तेजसे युक्त प्रकाशित शलभ-समूहकी भांति उन सब जलते हुए शस्त्रोंने आकर मेरे रथके घोडे और रथसमेत सारथी तथा मेरे शरीरको सब ओरसे आच्छादित कर दिया ॥ १३ ॥

रथः शरैर्मे निचितः सर्वतोऽभूत्तथा हयाः सारथिश्चैव राजन्।
युगं रथेषा च तथैव चक्रे तथैवाक्षः शरकृत्तोऽथ भग्नः ॥ १४ ॥

तब उन बाणोंने मेरे रथ, घोडे और सारथीको आच्छादित करते हुए रथकी दोनों धुरी तथा रथके पहिये आदिको तोडकर गिरा दिया ॥ १४ ॥

ततस्तस्मिन्बाणवर्षे व्यतीते शरौघेण प्रत्यवर्षं गुरुं तम्।
स विक्षतो मार्गणैर्ब्रह्मराशिर्देहादजस्रं मुमुचे भूरि रक्तम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर उनके बाणोंकी वर्षा समाप्त हो जानेपर मैंने भी अपने उन गुरुके प्रति अपने तेज बाणोंकी वर्षा करनी आरंभ कर दी। तब मेरे बाणोंसे जख्मी हुए तपोराशि महात्मा परशुरामके शरीरसे रक्तकी धारा बह चली ॥ १५ ॥

यथा रामो बाणजालाभितप्तस्तथैवाहं सुभृशं गाढविद्धः।
ततो युद्धं व्यरमच्चापराह्णे भानावस्तं प्रार्थयाने महीध्रम् ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥ ॥ ५६६२ ॥

मेरे बाणोंके जालसे परशुराम व्याकुल हो गये; और मैं भी अनेक बाणोंसे अत्यन्त ही विद्ध हो गया। अन्तमें सन्ध्याके समय सूर्यके अस्ताचलपर चले जानेपर युद्ध बन्द हो गया ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८२ ॥ ५६६२ ॥

: १८३ :

भीष्म उवाच

ततः प्रभाते राजेन्द्र सूर्ये विमल उद्गते ।
भार्गवस्य मया सार्धं पुनर्युद्धमवर्तत ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे राजेन्द्र ! अगले दिन प्रातःकाल विमल सूर्यके उदय होनेपर मेरे साथ फिर परशुरामका युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १ ॥

ततो भ्रान्ते रथे तिष्ठन्रामः प्रहरतां वरः ।
ववर्ष शरवर्षाणि मयि शक्र इवाचले ॥ २ ॥

प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ परशुराम अपने भ्रमणशील रथपर बैठकर पर्वतके ऊपर बाण वर्षाने वाले इन्द्रकी भांति मेरे ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

तेन सूतो मम सुहृच्छरवर्षेण ताडितः ।
निपपात रथोपस्थे मनो मम विषादयन् ॥ ३ ॥

तब मेरा सुहृद् सारथी परशुरामके बाणोंसे पीडित होकर मेरे अन्तःकरणको दुःखित करता हुआ रथके अन्दरके भागमें गिर पडा ॥ ३ ॥

ततः सूतः स मेऽत्यर्थं कश्मलं प्राविशन्महत् ।
पृथिव्यां च शराघातान्निपपात मुमोह च ॥ ४ ॥

अत्यन्त ही मूर्च्छाके वशमें होके परशुरामके बाणोंसे पीडित होकर वह मेरा सारथी पृथ्वीपर गिरकर मूर्च्छित हो गया ॥ ४ ॥

ततः सूतोऽजहात्प्राणान्रामबाणप्रपीडितः ।
मुहूर्तादिव राजेन्द्र मां च भीराविशत्तदा ॥ ५ ॥

और फिर वह सारथी परशुरामके बाणोंसे पीडित होकर मुहूर्त्त भरमें ही मर गया और मैं भी उस समय भयभीत होगया ॥ ५ ॥

ततः सूते हते राजन्क्षिपतस्तस्य मे शरान् ।
प्रमत्तमनसो रामः प्राहिणोन्मृत्युसम्मितान् ॥ ६ ॥

सारथीके मारे जानेपर मैं डांवाडोल चित्तसे परशुराम पर बाण चला रहा था कि उसी समय रामने मेरे ऊपर कालके समान बाण चलाया ॥ ६ ॥

ततः सूतव्यसनिनं विप्लुतं मां स भार्गवः ।
शरेणाभ्यहनद्गाढं विकृष्य बलवद्धनुः ॥ ७ ॥

मैं सूतके अभावसे विपद्ग्रस्त होकर विचार कर रहा था; तोभी परशुरामने बलपूर्वक बाण चढाकर मुझे पीडित किया ॥ ७ ॥

अनुष्टुप्

स मे जत्र्वन्तरे राजन्निपत्य रुधिराशनः ।
मयैव सह राजेन्द्र जगाम वसुधातलम् ॥ ८ ॥

हे राजाओंमें श्रेष्ठ राजन् दुर्योधन ! वह रक्तको पीनेवाला भयङ्कर बाण मेरी छातीमें लगकर मेरे सहित ही पृथ्वीपर जा गिरा ॥ ८ ॥

मत्वा तु निहतं रामस्ततो मां भरतर्षभ ।
मेघवद्व्यनदच्चोच्चैर्जहृषे च पुनः पुनः ॥ ९ ॥

तब, हे भरतश्रेष्ठ! परशुराम मुझे मरा हुआ समझकर प्रसन्न हो ऊंचे स्वरसे बादलके समान बार बार गर्जने लगे ॥ ९ ॥

तथा तु पतिते राजन्मयि रामो मुदा युतः ।
उदक्रोशन्महानादं सह तैरनुयायिभिः ॥ १० ॥

हे राजेन्द्र ! मुझे इस प्रकारसे पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर परशुराम अपने अनुचरोंके सहित हर्षित होकर सिंहनाद करने लगे ॥ १० ॥

मम तत्राभवन्ये तु कौरवाः पार्श्वतः स्थिताः ।
आगता ये च युद्धं तज्जनास्तत्र दिदृक्षवः ।
आर्तिं परमिकां जग्मुस्ते तदा मयि पातिते ॥ ११ ॥

वहांपर मेरे निकट जो कौरव खडे हुए थे, तथा जो लोग युद्ध देखनेके लिए आये हुए थे; वे लोग मुझे इस प्रकारसे गिरा दिये जानेपर बहुत ही दुःखित हुए ॥ ११ ॥

ततोऽपश्यं पतितो राजसिंह द्विजानष्टौ सूर्यहुताशनाभान् ।
ते मां समन्तात्परिवार्य तस्थुः स्वबाहुभिः परिगृह्याजिमध्ये॥ १२ ॥

हे राजसिंह ! अनन्तर मैंने रथसे गिरकर रणभूमिमें सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी आठ ब्राह्मणोंको देखा। वे मुझे चारों ओरसे घेरकर अपनी भुजाओंसे मुझे युद्धमें धारण किये हुए थे ॥ १२ ॥

रक्ष्यमाणश्च तैर्विप्रैर्नाहं भूमिमुपास्पृशम् ।
अन्तरिक्षे स्थितो ह्यस्मि तैर्विप्रैर्बान्धवैरिव ।
स्वपन्निवान्तरिक्षे च जलबिन्दुभिरुक्षितः ॥ १३ ॥

उन ब्राह्मणोंसे रक्षित होकर मैंने पृथ्वीको स्पर्श नहीं किया अर्थात् मैं भूमिपर नहीं गिरा, उन ब्राह्मणोंने बन्धुकी भांति मुझे अन्तरिक्षहीमें थामे रक्खा था और जलकी बूंदोंसे छिडका जाता हुआ मैं मानों अन्तरिक्षमें ही सो रहा था ॥ १३ ॥

ततस्ते ब्राह्मणा राजन्नब्रुवन्परिगृह्य माम् ।
मा भैरिति समं सर्वे स्वस्ति तेऽस्त्विति चासकृत् ॥ १४ ॥

हे राजन् ! वे ब्राह्मण मुझे धारण करके " तुम भय मत करो, तुम्हारा कल्याण होगा " इस प्रकार वे बार बार मुझसे कहने लगे ॥ १४ ॥

ततस्तेषामहं वाग्भिस्तर्पितः सहसोत्थितः ।
मातरं सरितां श्रेष्ठामपश्यं रथमास्थिताम् ॥ १५ ॥

उन लोगोंके वचनसे मैं तृप्त होकर अचानक उठ खडा हुआ और नदियोंमें श्रेष्ठ अपनी माता गंगाको रथमें बैठी हुई देखा ॥ १५ ॥

हयाश्च मे संगृहीतास्तया वै महानद्या संयति कौरवेन्द्र ।
पादौ जनन्याः प्रतिपूज्य चाहं तथार्ष्टिषेणं रथमभ्यरोहम् ॥ १६ ॥

हे कौरव ! मेरी माता गंगाने युद्धमें मेरे घोडोंके लगाम थाम रखें थे । तब मैं जननी और आर्ष्टिषेण ऋषिकी चरण-वन्दना करके रथपर चढा ॥ १६ ॥

ररक्ष सा मम रथं हयांश्चोपस्कराणि च ।
तामहं प्राञ्जलिर्भूत्वा पुनरेव व्यसर्जयम् ॥ १७ ॥

तब मेरी माता रथ, घोडे और सब सामग्रियोंके सहित मेरी रक्षा करने लगी । परन्तु मैंने हाथ जोडकर विनयपूर्वक उन्हें विदा किया ॥ १७ ॥

ततोऽहं स्वयमुद्यम्य हयांस्तान्वातरंहसः ।
अयुध्यं जामदग्न्येन निवृत्तेऽहनि भारत ॥ १८ ॥

हे भारत ! स्वयं ही वायुके समान शीघ्र चलनेवाले घोडोंको चलाकर मैंने सन्ध्याकाल पर्यन्त परशुरामके साथ युद्ध किया ॥ १८ ॥

ततोऽहं भरतश्रेष्ठ वेगवन्तं महाबलम् ।
अमुञ्चं समरे बाणं रामाय हृदयच्छिदम् ॥ १९ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! युद्धमें उनके ऊपर मैंने एक हृदयको छेदनेवाला महाबलशाली अत्यन्त वेगवान् एक बाण चलाया ॥ १९ ॥

ततो जगाम वसुधां बाणवेगप्रपीडितः ।
जानुभ्यां धनुरुत्सृज्य रामो मोहवशं गतः ॥ २० ॥

मेरे उस बाणके वेगसे पीडित हो परशुराम मूर्च्छितसे हो गए और धनुषको छोडके दोनों घुटनोंको पृथ्वी पर टिकाकर बैठ गये ॥ २० ॥

×

ततस्तस्मिन्निपतिते रामे भूरिसहस्रदे।
आवव्रुर्जलदा व्योम क्षरन्तो रुधिरं बहु ॥ २१ ॥

सहस्रों सुवर्णोंका दान देनेवाले उन महातेजस्वी परशुरामके पृथ्वीपर टेककर बैठ जाने पर बादलयुक्त आकाशसे रुधिरकी वर्षा होने लगी ॥ २१ ॥

उल्काश्च शतशः पेतु सनिर्घाताः सकम्पनाः।
अर्कं च सहसा दीप्तं स्वर्भानुरभिसंवृणोत् ॥ २२ ॥

और बडे बडे शब्द करते हुए तथा कम्पन करते हुए सैकडों उल्कापात होने लगे और प्रकाशित होते हुए सूर्यको अचानक राहुने ग्रस लिया ॥ २२ ॥

ववुश्च वाताः परुषाश्चलिता च वसुन्धरा।
गृध्रा बडाश्च कङ्काश्च परिपेतुर्मुदा युताः ॥ २३ ॥

वायु बडे जोरसे बहने लगी, पृथ्वी डगमगाने लगी, गिद्ध, कौए तथा बगुला आदि मांस भक्षण करनेवाली पक्षी हर्षित होकर इधर उधर घूमने लगे ॥ २३ ॥

दीप्तायां दिशि गोमायुर्दारुणं मुहुरुन्नदत्।
अनाहता दुन्दुभयो विनेदुर्भृशनिस्वनाः ॥ २४ ॥

सब दिशाएं जलने लगीं, सियार महाघोर शब्द करने लगे और बिना बजाये ही नगाडे अत्यन्त कर्कश शब्दसे बजने लगे ॥ २४ ॥

एतदौत्पातिकं घोरमासीद्भरतसत्तम।
विसंज्ञकल्पे धरणीं गते रामे महात्मनि ॥ २५ ॥

हे भरतश्रेष्ठ! महात्मा परशुरामके चेतरहित होकर पृथ्वीपर गिर जानेसे महाघोर भयङ्कर ये सब उत्पातके चिह्न उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥

ततो रविर्मन्दमरीचिमण्डलो जगामास्तं पांसुपुञ्जावगाढः।
निशा व्यगाहत्सुखशीतमारुता ततो युद्धं प्रत्यवहारयावः ॥ २६ ॥

तदनन्तर शिथिल किरणोंके समूहवाले भगवान् सूर्य धूलसे छिप कर अस्त होगये और सुख देनेवाली शीतल वायुसे युक्त रात्रिका समय हुआ, तब हम दोनोंने युद्ध करना बन्द कर दिया ॥ २६ ॥

एवं राजन्नवहारो बभूव ततः पुनर्विमलेऽभूत्सुघोरम्।
काल्यं काल्यं विंशतिं वै दिनानि तथैव चान्यानि दिनानि त्रीणि ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ ५६८९ ॥

हे राजन्! इसी प्रकारसे सन्ध्याको समाप्त होकर प्रातःकाल फिर युद्धका आरंभ होने लगा। इसी भांतिसे तेईस दिनतक महाघोर संग्राम हुआ ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ तिरासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८३ ॥ ५६८९ ॥

: १८४ :

ततोऽहं निशि राजेन्द्र प्रणम्य शिरसा तदा।
ब्राह्मणानां पितॄणां च देवतानां च सर्वशः ॥ १ ॥
नक्तश्चराणां भूतानां रजन्याश्च विशां पते।
शयनं प्राप्य रहिते मनसा समचिन्तयम् ॥ २ ॥

भीष्म बोले– हे राजेन्द्र ! तदनन्तर रात्रिके समय मैं ब्राह्मण, पितर, देवता, रात्रिको भ्रमण करनेवाले राक्षस आदि तथा रात्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य प्राणियोंको सिर झुका कर प्रणाम करके, हे प्रजापालक ! एकान्त स्थानपर शय्याके ऊपर लेटकर मन ही मन यह चिन्ता करने लगा ॥ १-२ ॥

जामदग्न्येन मे युद्धमिदं परमदारुणम्।
अहानि सुबहून्यद्य वर्तते सुमहात्ययम् ॥ ३ ॥

कि आज बहुत दिनोंसे परशुरामके साथ मेरा महा-भयंकर दारुण-संग्राम हो रहा है ॥ ३ ॥

न च रामं महावीर्यं शक्नोमि रणमूर्धनि।
विजेतुं समरे विप्रं जामदग्न्यं महाबलम् ॥ ४ ॥

तो भी मैं महाबलसे युक्त महावीर विप्र परशुरामको युद्धमें पराजित नहीं कर सका हूं ॥ ४ ॥

यदि शक्यो मया जेतुं जामदग्न्यः प्रतापवान्।
दैवतानि प्रसन्नानि दर्शयन्तु निशां मम ॥ ५ ॥

प्रतापी परशुरामको युद्धमें पराजित करनेका यदि मुझमें सामर्थ्य हो, तो देवता लोग प्रसन्न होकर आज रात्रिके समय मुझे दर्शन देवें ॥ ५ ॥

ततोऽहं निशि राजेन्द्र प्रसुप्तः शरविक्षतः।
दक्षिणेनैव पार्श्वेन प्रभातसमये इव ॥ ६ ॥

हे राजन् ! मैं बाणोंके लगनेसे घायल होकर उस रात दाहिनी करवटसे शय्यापर सोया था, उसी समय प्रातःकालके समान ॥ ६ ॥

ततोऽहं विप्रमुख्यैस्तैर्यैरस्मि पतितो रथात्।
उत्थापितो धृतश्चैव मा भैरिति च सान्त्वितः ॥ ७ ॥

जिन ब्राह्मणोंने मुझे रथसे गिरनेपर उठाया और मुझे सम्हाल करके कहा था, तुम्हें भय नहीं है ॥ ७ ॥

त एव मां महाराज स्वप्नदर्शनमेत्य वै।
परिवार्याब्रुवन्वाक्यं तन्निबोध कुरूद्वह ॥ ८ ॥

हे महाराज ! उन्हीं लोगोंने स्वप्नमें मुझे दर्शन दिया और उन सबने मुझे घेरकर जो वचन कहा, उन वचनोंको, हे कुरुश्रेष्ठ ! तुम सुनो ॥ ८ ॥

उत्तिष्ठ मा भैर्गाङ्गेय भयं ते नास्ति किञ्चन।
रक्षामहे नरव्याघ्र स्वशरीरं हि नो भवान् ॥ ९ ॥

हे गंगापुत्र नरसिंह भीष्म ! उठो; तुमको कुछ भी भय नहीं है; हम लोग तुम्हारी रक्षा करेंगे; क्योंकि तुम हम लोगोंके शरीर हो ॥ ९ ॥

न त्वां रामो रणे जेता जामदग्न्यः कथञ्चन।
त्वमेव समरे रामं विजेता भरतर्षभ ॥ १० ॥

हे भरतर्षभ ! जमदग्निपुत्र परशुराम किसी प्रकारसे भी तुम्हें युद्धमें पराजित नहीं कर सकेंगे बल्कि तुम ही परशुरामको परास्त करोगे ॥ १० ॥

इदमस्त्रं सुदयितं प्रत्यभिज्ञास्यते भवान्।
विदितं हि तवाप्येतत्पूर्वस्मिन्देहधारणे ॥ ११ ॥

प्राजापत्यं विश्वकृतं प्रस्वापं नाम भारत।
न हीदं वेद रामोऽपि पृथिव्यां वा पुमान्कचित् ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! विश्वकर्माका वनाया यह जो प्रस्वाप नाम उत्तम प्राजापत्य अस्त्र है, उसे परशुराम अथवा इस पृथ्वीपरका कोईभी मनुष्य नहीं जानता यह अत्यन्त प्रिय अस्त्र तुमको युद्धके समय विदित हो जायेगा, क्योंकि पूर्वजन्ममें भी यह तुमको विदित था ॥११-१२॥

तत्स्मरस्व महाबाहो भृशं संयोजयस्व च।
न च रामः क्षयं गन्ता तेनास्त्रेण नराधिप ॥ १३ ॥

हे महाबाहो ! तुम इस अस्त्रको स्मरण करो; और दृढताके सहित चलाओ। हे राजन् ! इस अस्त्रसे परशुरामकी मृत्यु नहीं होगी ॥ १३ ॥

एनसा च न योगं त्वं प्राप्स्यसे जातु मानद।
स्वप्स्यते जामदग्न्योऽसौ त्वद्बाणबलपीडितः ॥ १४ ॥

और, हे मानके योग्य भीष्म ! तुमको भी ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगेगा। हे भीष्म ! तुम्हारे बाणके बलसे पीडित होकर परशुराम केवल सो जायेंगे ॥ १४ ॥

ततो जित्वा त्वमेवैनं पुनरुत्थापयिष्यसि।
अस्त्रेण दयितेनाजौ भीष्म सम्बोधनेन वै ॥ १५ ॥

इसप्रकार युद्धमें उनको जीतकर, हे भीष्म ! तुम ही अपने उत्तम सम्बोधन अस्त्रसे उठाओगे ॥ १५ ॥

एवं कुरुष्व कौरव्य प्रभाते रथमास्थितः ।
प्रसुप्तं वा मृतं वापि तुल्यं मन्यामहे वयम् ॥ १६ ॥

हे कौरव ! प्रातःकाल उठकर और रथपर बैठकर तुम ऐसा ही करो; सोना और मरना दोनोंको हम लोग समान ही समझते हैं ॥ १६ ॥

न च रामेण मर्तव्यं कदाचिदपि पार्थिव ।
ततः समुत्पन्नमिदं प्रस्वापं युज्यतामिति ॥ १७ ॥

हे राजन् ! परशुरामकी कभी मृत्यु नहीं होगी; अतः तुम तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुए इस प्रस्वाप अस्त्रको धनुषपर चढाओ ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वान्तर्हिता राजन्सर्व एव द्विजोत्तमाः ।
अष्टौ सदृशरूपास्ते सर्वे भास्वरमूर्तयः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥ ५७०७ ॥

हे राजन् ! वह तेजस्वी, मूर्तिमान्, समान रूपवाले आठों ब्राह्मण ऐसा वचन कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ चौरासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८४ ॥ ५७०७ ॥

: १८५ :

भीष्म उवाच

ततो राञ्यां व्यतीतायां प्रतिबुद्धोऽस्मि भारत ।
तं च सञ्चिन्त्य वै स्वप्नमवापं हर्षमुत्तमम् ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे राजेन्द्र ! तदनन्तर रात्रिके बीत जानेपर मैं निद्रासे उठा और उस स्वप्नके वृत्तान्तको याद करनेपर मुझे बहुत हर्ष मिला ॥ १ ॥

ततः समभवद्युद्धं मम तस्य च भारत ।
तुमुलं सर्वभूतानां लोमहर्षणमद्भुतम् ॥ २ ॥

हे भारत ! इसके बाद परशुरामका और मेरा सब प्राणियोंके रोंगटे खडे कर देनेवाला परम अद्भुत संग्राम आरम्भ हुआ ॥ २ ॥

ततो बाणमयं वर्षं ववर्ष मयि भार्गवः ।
न्यवारयमहं तं च शरजालेन भारत ॥ ३ ॥

हे भारत ! उस समय परशुरामने मेरे ऊपर बाणोंकी वर्षा की और मैंने भी अपने बाणोंसे उनके बाणोंका निवारण किया ॥ ३ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः पुनरेव महातपाः ।
ह्यस्तनेनैव कोपेन शक्तिं वै प्राहिणोन्मयि । ॥ ४ ॥
इन्द्राशनिसमस्पर्शां यमदण्डोपमप्रभाम् ।
ज्वलन्तीमग्निवत्संख्ये लेलिहानां समन्ततः ॥ ५ ॥

तब परम तपस्वी परशुरामने पिछले दिनके क्रोधसे फिर क्रोधित होकर इन्द्रके वज्रके समान कठोर स्पर्शवाली, यमदण्डके समान तेजवाली, अग्निके समान जलती हुई तथा युद्धमें चारों ओरके पदार्थोंको भस्म करती हुई एक शक्ति मेरे ऊपर फेंककर मारी ॥ ४–५ ॥

ततो भरतशार्दूल धिष्ण्यमाकाशगं यथा ।
सा मामभ्यहनत्तूर्णमंसदेशे च भारत ॥ ६ ॥

हे भरतसिंह ! वह शक्ति आकाशमें स्थित नक्षत्रके समान शीघ्रही आकर मेरे कन्धेमें लगी ॥ ६ ॥

अथासृङ्मेऽस्रवद्घोरं गिरेर्गैरिकधातुवत् ।
रामेण सुमहाबाहो क्षतस्य क्षतजेक्षण ॥ ७ ॥

हे महाबाहो तथा घावसे निकलनेवाले रक्तके समान लाल आंखोंवाले दुर्योधन ! तब परशुरामके शस्त्रसे घायल होकर गेरूकी धार वर्षानेवाले पर्वतकी भांति मेरे शरीरसे रक्त बहने लगा ॥ ७ ॥

ततोऽहं जामदग्न्याय भृशं क्रोधसमन्वितः ।
प्रेषयं मृत्युसङ्काशं बाणं सर्पविषोपमम् ॥ ८ ॥

तब मैं अत्यन्त क्रोधित होकर परशुरामकी ओर सर्प-विषके समान तथा मृत्युकी तरह भयंकर बाण चलाया ॥ ८ ॥

स तेनाभिहतो वीरो ललाटे द्विजसत्तमः ।
अशोभत महाराज सशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ९ ॥

हे महाराज ! वह बाण वीरवर द्विजसत्तम परशुरामके मस्तकमें जाकर लगा; उससे वे शृङ्ग-युक्त पर्वतकी भांति सुशोभित हुए ॥ ९ ॥

स संरब्धः समावृत्य बाणं कालान्तकोपमम् ।
सन्दधे बलवत्कृष्य घोरं शत्रुनिबर्हणम् ॥ १० ॥

तब उन्होंने क्रोधपूर्वक धनुषको जोरसे खींचकर शत्रुओंका नाश करनेवाला, कालके समान भयंकर एक बाण चलाया ॥ १० ॥

स वक्षसि पपातोग्रः शरो व्याल इव श्वसन्।
मही राजंस्ततश्चाहमगच्छं रुधिराविलः ॥ ११ ॥

फुफुकार करते हुए सर्पके समान वह तीक्ष्ण बाण मेरी छातीमें आकर लगा, उसके लगनेसे मैं रक्तसे भीगकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ११ ॥

अवाप्य तु पुनः संज्ञां जामदग्न्याय धीमते।
प्राहिण्वं विमलां शक्तिं ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ १२ ॥

परन्तु फिर होशमें आकर बुद्धिमान् परशुरामकी ओर वज्रके समान जलती हुई तेजयुक्त शक्ति चलायी ॥ १२ ॥

सा तस्य द्विजमुख्यस्य निपपात भुजान्तरे।
विह्वलश्चाभवद्राजन्वेपथुश्चैनमाविशत् ॥ १३ ॥

हे राजन्! वह शक्ति द्विजसत्तम परशुरामकी छातीमें जाकर लगी; उससे वह विह्वल होकर कांपने लगे ॥ १३ ॥

ततः एनं परिष्वज्य सखा विप्रो महातपाः।
अकृतव्रणः शुभैर्वाक्यैराश्वासयदनेकधा ॥ १४ ॥

तब उनके प्रिय मित्र महातपस्वी ब्राह्मण अकृतव्रण उनको आलिङ्गन देकर अनेक प्रकारके उत्तम और शुभ वचनोंसे सात्वना देने लगे ॥ १४ ॥

समाश्वस्तस्तदा रामः क्रोधामर्षसमन्वितः।
प्रादुश्चक्रे तदा ब्राह्मं परमास्त्रं महाव्रतः ॥ १५ ॥

तब आश्वस्त होकर पर क्रोध और वेगसे युक्त होकर महाव्रती परशुरामने श्रेष्ठतम अस्त्र ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया ॥ १५ ॥

ततस्तत्प्रतिघातार्थं ब्राह्ममेवास्त्रमुत्तमम्।
मया प्रयुक्तं जज्वाल युगान्तमिव दर्शयत् ॥ १६ ॥

तब मैंने उसका निवारण करनेके लिए अस्त्रोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग किया। हे भारत! मेरे द्वारा प्रयुक्त वह महा अस्त्र प्रलयकालके दृश्यको दिखाता हुआ प्रज्वलित होने लगा ॥ १६ ॥

तयोर्ब्रह्मास्त्रयोरासीदन्तरा वै समागमः।
असम्प्राप्यैव रामं च मां च भारतसत्तम ॥ १७ ॥

हे भारतसत्तम! वे दोनों ब्रह्मास्त्र परशुरामके तथा मेरे पास न पहुंच कर आकाशके बीचमें ही मिल गए ॥ १७ ॥

ततो व्योम्नि प्रादुरभूत्तेज एव हि केवलम् ।
भूतानि चैव सर्वाणि जग्मुरार्तिं विशां पते ॥ १८ ॥

हे प्रजानाथ ! उन दोनोंके आपसमें टकरानेसे आकाशमें चारों ओर आग ही आग फैल गई और उससे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त ही पीडित होने लगे ॥ १८ ॥

ऋषयश्च सगन्धर्वा देवताश्चैव भारत ।
सन्तापं परमं जग्मुरस्त्रतेजोभिपीडिताः ॥ १९ ॥

हे भारत ! दोनों अस्त्रोंके तेजसे पीडित होकर ऋषि, गन्धर्व, देवता आदि सभी अत्यन्त दुःखित हुए ॥ १९ ॥

ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा ।
सन्तप्तानि च भूतानि विषादं जग्मुरुत्तमम् ॥ २० ॥

तब पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित पृथ्वी कांपने लगी और प्राणी अत्यन्त पीडित होकर अत्यधिक विषाद करने लगे ॥ २० ॥

प्रजज्वाल नभो राजन्धूमायन्ते दिशो दश ।
न स्थातुमन्तरिक्षे च शेकुराकाशगास्तदा ॥ २१ ॥

हे राजन् ! आकाशमण्डल प्रज्वलित होने लगा, सब दिशाओंमें धूंआं भर गया; इस कारण आकाशचारी पक्षी भी आकाशमें निवास न कर सके ॥ २१ ॥

ततो हाहाकृते लोके सदेवासुरराक्षसे ।
इदमन्तरमित्येव योक्तुकामोऽस्मि भारत ॥ २२ ॥

तब देव, असुर और राक्षसोंसे युक्त सब लोकोंमें हाहाकार होने लगा । हे भारत ! यही उत्तम समय है यह विचार करके मैंने शीघ्र ही प्रस्वाप अस्त्रको धनुषपर चढानेकी इच्छा की ॥ २२ ॥

प्रस्वापमस्त्रं दयितं वचनाद्ब्रह्मवादिनाम् ।
चिन्तितं च तदस्त्रं मे मनसि प्रत्यभात्तदा ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ ५७३० ॥

उस अस्त्रको चढानेकी इच्छा करनेके साथ ही उन ब्राह्मणोंके वचनके अनुसार विचित्र अस्त्र प्रस्वापास्त्र मेरे मनमें प्रकाशित हो गया ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ पिच्चासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८५ ॥ ५७३० ॥

: १८६ :

भीष्म उवाच

ततो हलहलाशब्दो दिवि राजन्महानभूत् ।
प्रस्वापं भीष्म मा स्राक्षीरिति कौरवनन्दन ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे राजन् ! तब आकाशमें 'हे कौरवनन्दन भीष्म ! प्रस्वापास्त्र मत चलाओ' इस प्रकार महाघोर शब्द हुआ ॥ १ ॥

अयुञ्जमेव चैवाहं तदस्त्रं भृगुनन्दने ।
प्रस्वापं मां प्रयुञ्जानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

तो भी परशुरामकी ओर छोडनेके लिए मैंने उस अस्त्रको धनुषपर चढा ही दिया । तब नारद उस प्रस्वापास्त्रका प्रयोग करनेवाले मुझसे बोले ॥ २ ॥

एते वियति कौरव्य दिवि देवगणाः स्थिताः ।
ते त्वां निवारयन्त्यद्य प्रस्वापं मा प्रयोजय ॥ ३ ॥

हे कौरव ! देखो आकाश और द्युलोकमें सब देवता स्थित हैं; वे सब इस अस्त्रको छोडनेसे तुम्हें रोक रहे हैं अतः तुम यह प्रस्वापास्त्र मत चलाओ ॥ ३ ॥

रामस्तपस्वी ब्रह्मण्यो ब्राह्मणश्च गुरुश्च ते ।
तस्यावमानं कौरव्य मा स्म कार्षीः कथञ्चन ॥ ४ ॥

परशुराम तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हैं, विशेष करके तुम्हारे गुरु हैं; इसलिए, हे कौरव ! किसी प्रकारसे भी उनका अपमान मत करो ॥ ४ ॥

ततोऽपश्यं दिविष्ठान्वै तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।
ते मां स्मयन्तो राजेन्द्र शनकैरिदमब्रुवन् ॥ ५ ॥

हे राजेन्द्र ! फिर मैंने उन आठ ब्राह्मणोंको आकाशमें स्थित देखा, वे हंसते हुए मुझसे धीरेसे यह वचन बोले ॥ ५ ॥

यथाह भरतश्रेष्ठ नारदस्तत्तथा कुरु ।
एतद्धि परमं श्रेयो लोकानां भरतर्षभ ॥ ६ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! नारद जो कहते हैं, वही करो; क्योंकि, हे भरतश्रेष्ठ ! यह लोकका परम कल्याण करनेवाला वचन है ॥ ६ ॥

ततश्च प्रतिसंहृत्य तदस्त्रं स्वापनं मृधे ।
ब्रह्मास्त्रं दीपयाञ्चक्रे तस्मिन्युधि यथाविधि ॥ ७ ॥

तब मैंने युद्धमें उस महाघोर प्रस्वापास्त्रका संहार करके उस युद्धमें विधिपूर्वक ब्रह्मास्त्र ही दीपित किया ॥ ७ ॥

×

ततो रामो रुषितो राजपुत्र दृष्ट्वा तदस्त्रं विनिवर्तितं वै ।
जितोऽस्मि भीष्मेण सुमन्दबुद्धिरित्येव वाक्यं सहसा व्यमुञ्चत् ॥ ८ ॥

हे राजपुत्र ! तब क्रोधमें भरे हुए परशुराम मेरे द्वारा उस प्रस्वापनास्त्रको लौटाया हुआ देखकर सहसा यह वचन बोले— भीष्मने मुझे पराजित कर दिया । मैं अत्यन्त ही मन्द-बुद्धि हूं ॥ ८ ॥

ततोऽपश्यत्पितरं जामदग्न्यः पितुस्तथा पितरं तस्य चान्यम् ।
त एवैनं परिवार्य तस्थुरूचुश्चैनं सान्त्वपूर्वं तदानीम् ॥ ९ ॥

इसके बाद परशुरामने अपने पिता और पितामह तथा अन्य पितरोंको देखा । वह लोग उसी स्थानपर उनको घेर कर खडे हो गए और उस समय उन्हें शान्त करनेके निमित्त यह वचन बोले, ॥ ९ ॥

मा स्मैवं साहसं वत्स पुनः कार्षीः कथञ्चन ।
भीष्मेण संयुगं गन्तुं क्षत्रियेण विशेषतः ॥ १० ॥

हे तात ! तुम फिर कभी किसी प्रकारसे ऐसा साहसिक कर्म मत करना, विशेष करके क्षत्रिय भीष्मके साथ अब कभी युद्ध करनेका साहस मत करो ॥ १० ॥

क्षत्रियस्य तु धर्मोऽयं यद्युद्धं भृगुनन्दन ।
स्वाध्यायो व्रतचर्या च ब्राह्मणानां परं धनम् ॥ ११ ॥

हे भृगुनन्दन ! युद्ध करना क्षत्रियोंका ही धर्म है, ब्राह्मणोंका तो वेद पढना और व्रत करना ही परम धन है ॥ ११ ॥

इदं निमित्ते कस्मिंश्चिदस्माभिरुपमन्त्रितम् ।
शस्त्रधारणमत्युग्रं तच्च कार्यं कृतं त्वया ॥ १२ ॥

पहिले किसी कारण हम लोगोंने तुमको इस शस्त्र धारणरूप अतिभयंकर कामको करनेके लिए सलाह दी थी, और तुमने भी उस कार्यको किया है ॥ १२ ॥

वत्स पर्याप्तमेतावद्भीष्मेण सह संयुगे ।
विमर्दस्ते महाबाहो व्यपयाहि रणादितः ॥ १३ ॥

हे महाबाहो ! संग्राममें भीष्मके साथ तुम्हारा यह युद्ध इतना ही पर्याप्त है । हे पुत्र ! अतः अब तुम इस रणभूमिसे बाहर चलो ॥ १३ ॥

पर्याप्तमेतद्भद्रं ते तव कार्मुकधारणम् ।
विसर्जयैतद्दुर्धर्ष तपस्तप्यस्व भार्गव ॥ १४ ॥

हे भार्गव ! तुम्हारा धनुष धारण करना भी पर्याप्त हो गया है, अतः, हे अत्यन्त वीर पुत्र ! अब तुम इसे त्याग दो और तपस्या करो ॥ १४ ॥

एष भीष्मः शान्तनवो देवैः सर्वैर्निवारितः ।
निवर्तस्व रणादस्मादिति चैव प्रचोदितः । ॥ १५ ॥

सम्पूर्ण देवताओंने भी शन्तनुनन्दन भीष्मको यह कहकर युद्धसे रोक दिया कि हे कुरुश्रेष्ठ ! इस संग्रामसे निवृत्त हो जाओ ॥ १५ ॥

रामेण सह मा योत्सीर्गुरुणेति पुनः पुनः ।
न हि रामो रणे जेतुं त्वया न्याय्यः कुरूद्वह
मानं कुरुष्व गाङ्गेय ब्राह्मणस्य रणाजिरे ॥ १६ ॥

अपने गुरु परशुरामके साथ युद्ध मत करो; । हे कुरुश्रेष्ठ ! इनको युद्धमें पराजित करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। हे गंगानन्दन भीष्म ! रणभूमिमें इनका यथा उचित सम्मान करो ॥ १६ ॥

वयं तु गुरवस्तुभ्यं ततस्त्वां वारयामहे ।
भीष्मो वसूनामन्यतमो दिष्ट्या जीवसि पुत्रक ॥ १७ ॥

हे पुत्र ! हम लोग भी तुम्हारे गुरु हैं; इसी कारणसे हम तुम्हें युद्ध करनेसे रोक रहे हैं। भार्गव ! भीष्म वसुओंमें एक प्रधान पुरुष हैं, अतः सौभाग्यसे ही जो तुम जीते बचे हो; यही बहुत है ॥ १७ ॥

गाङ्गेयः शन्तनोः पुत्रो वसुरेष महायशाः ।
कथं त्वया रणे जेतुं राम शक्यो निवर्त वै ॥ १८ ॥

शन्तनुके वीर्यसे गंगाके गर्भमें उत्पन्न यह महायशस्वी भीष्म वसु है । अतः, हे राम ! तुम इन्हें युद्धमें किस प्रकार जीत सकते हो ? अतः तुम युद्धसे लौट जाओ ॥ १८ ॥

अर्जुनः पाण्डवश्रेष्ठः पुरन्दरसुतो बली ।
नरः प्रजापतिर्वीरः पूर्वदेवः सनातनः ॥ १९ ॥

पाण्डवोंमें श्रेष्ठ इन्द्रके पुत्र, महाबलशाली, प्रजाओंके स्वामी, वीर, पूर्वदेव और सनातन अर्जुन नरके अवतार हैं ॥ १९ ॥

सव्यसाचीति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान् ।
भीष्ममृत्युर्यथाकालं विहितो वै स्वयम्भुवा ॥ २० ॥

वे वीर्यशाली तीनों ही लोकोंमें सव्यसाचीके नामसे विख्यात हैं । स्वयंभू विधाताने उन्हें समयके अनुसार भीष्मके वधके लिए उत्पन्न किया है ॥ २० ॥

एवमुक्तः स पितृभिः पितॄन्रामोऽब्रवीदिदम् ।
नाहं युधि निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ॥ २१ ॥

परशुरामने अपने पिता, पितामह आदि पितरोंके वचनको सुनकर यह कहा— कि मैं युद्धसे कभी भी निवृत्त नहीं होऊंगा ऐसा व्रत मैंने धारण किया है ॥ २१ ॥

न निवर्तितपूर्वं च कदाचिद्रणमूर्धनि ।
निवर्त्यतामापगेयः कामं युद्धात्पितामहाः ।
न त्वहं विनिवर्तिष्ये युद्धादस्मात्कथञ्चन ॥ २२ ॥

और पहिले भी मैं युद्धमें कभी पीछे नहीं हटा हूं । पितामहगण ! इसालिए आप लोग गंगातनय भीष्महीको युद्धसे निवृत्त कीजिये, मैं इस युद्धसे किसी प्रकारसे भी निवृत्त नहीं होऊंगा ॥ २२ ॥

ततस्ते मुनयो राजन्नृचीकप्रमुखास्तदा ।
नारदेनैव सहिताः समागम्येदमब्रुवन् ॥ २३ ॥

हे राजन् ! तब वे ऋचिक आदि मुनि लोग नारदके साथ मेरे पास आकर बोले ॥ २३ ॥

निवर्तस्व रणात्तात मानयस्व द्विजोत्तमान् ।
नेत्यवोचमहं तांश्च क्षत्रधर्मव्यपेक्षया ॥ २४ ॥

हे तात ! युद्धसे निवृत्त हो जाओ, इन द्विजोत्तमोंके वचनोंका सम्मान करो । तब मैंने भी क्षत्रिय धर्मका पालन करते हुए युद्धसे निवृत्त होनेसे इन्कार कर दिया और कहा ॥ २४ ॥

मम व्रतमिदं लोके नाहं युद्धात्कथंचन ।
विमुखो विनिवर्तेयं पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः ॥ २५ ॥

लोकमें मेरी यह प्रतिज्ञा है, कि मैं युद्धमें किसी भी प्रकार पीठमें बाणोंसे मारा जाकर निवृत्त नहीं होऊंगा ॥ २५ ॥

नाहं लोभान्न कार्पण्यान्न भयान्नार्थकारणात् ।
त्यजेयं शाश्वतं धर्ममिति मे निश्चिता मतिः ॥ २६ ॥

मैं न लोभ, न कृपणता, न भय और न अर्थसे ही अपने सनातन धर्मको छोड सकता हूं, यही मेरा स्थिर निश्चय है ॥ २६ ॥

ततस्ते मुनयः सर्वे नारदप्रमुखा नृप ।
भागीरथी च मे माता रणमध्यं प्रपेदिरे ॥ २७ ॥

हे राजेन्द्र ! तब नारद आदि वे सब मुनि और मेरी माता भागीरथी रणभूमिमें आये ॥२७॥

तथैवात्तशरो धन्वी तथैव दृढनिश्चयः ।
स्थिरोऽहमाहवे योद्धुं ततस्ते राममब्रुवन् ।
समेत्य सहिता भूयः समरे भृगुनन्दनम् ॥ २८ ॥

तो भी मैं उसी प्रकारसे धनुष बाण धारण करके संग्राममें लडनेके लिए दृढ निश्चयसे खडा रहा । तब वे सब मिलकर फिर भृगुनन्दन परशुरामके पास जाकर यह वचन बोले ॥ २८ ॥

नावनीतं हि हृदयं विप्राणां शाम्य भार्गव ।
राम राम निवर्तस्व युद्धादस्माद्द्विजोत्तम ।
अवध्यो हि त्वया भीष्मस्त्वं च भीष्मस्य भार्गव ॥ २९ ॥

हे भार्गव ! ब्राह्मणोंका हृदय मक्खनके समान अत्यन्त ही कोमल होता है, अतः तुम ही शान्त हो जाओ । हे राम ! हे द्विजोत्तम ! इस युद्धसे निवृत्त हो जाओ । हे भृगुनन्दन ! भीष्म तुम्हारे लिए अवध्य है और तुम भी भीष्मके लिए अवध्य हो ॥ २९ ॥

एवं ब्रुवन्तस्ते सर्वे प्रतिरुद्ध्य रणाजिरम् ।
न्यासयाञ्चक्रिरे शस्त्रं पितरो भृगुनन्दनम् ॥ ३० ॥

इस प्रकार कहते हुए पितर लोगोंने रणभूमिको रोककर भृगुनन्दन परशुरामने शस्त्रत्याग करवाया ॥ ३० ॥

ततोऽहं पुनरेवाथ तानष्टौ ब्रह्मवादिनः ।
अद्राक्षं दीप्यमानान्वै ग्रहानष्टाविवोदितान् ॥ ३१ ॥

इसके बाद मैंने प्रकाशित आठ ग्रहसमूहकी भांति उन ब्रह्मवादी आठ ऋषियोंको फिर देखा ॥ ३१ ॥

ते मां सप्रणयं वाक्यमब्रुवन्समरे स्थितम् ।
प्रैहि रामं महाबाहो गुरुं लोकहितं कुरु ॥ ३२ ॥

वे युद्धमें स्थिर मुझको प्रीतिपूर्वक यह वचन बोले— हे महाबाहो ! लोकके हितका कार्य करो; विनयपूर्वक अपने गुरु परशुरामके पास जाओ ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वा निवर्तितं रामं सुहृद्वाक्येन तेन वै ।
लोकानां च हितं कुर्वन्नहमप्याददे वचः ॥ ३३ ॥

तब मैंने परशुरामको सुहृद लोगोंके वचनसे निवृत्त होता हुआ देखकर लोगोंके हितके निमित्त अपने सुहृद् पुरुषोंके कथनको स्वीकार किया ॥ ३३ ॥

ततोऽहं राममासाद्य ववन्दे भृशविक्षतः ।
रामश्चाभ्युत्स्मयन्प्रेम्णा मामुवाच महातपाः ॥ ३४ ॥

इसके बाद शस्त्रोंसे अत्यन्त पीडित हुए मैंने परशुरामके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, महातपस्वी परशुराम भी प्रेमपूर्वक हंसते हुए मुझसे ये वचन बोले ॥ ३४ ॥

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्क्षत्रियः पृथिवीचरः ।
गम्यतां भीष्म युद्धेऽस्मिंस्तोषितोऽहं भृशं त्वया ॥ ३५ ॥

हे भीष्म ! पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण क्षत्रियोंमें भी तुम्हारे समान कोई क्षत्रिय पुरुष विद्यमान नहीं है; इस युद्धमें तुमने मुझको अत्यन्त ही सन्तुष्ट किया है; अब तुम जाओ ॥ ३५ ॥

मम चैव समक्षं तां कन्यामाहूय भार्गवः ।
उवाच दीनया वाचा मध्ये तेषां तपस्विनाम् ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥ ५७६६ ॥

मुझसे ऐसा वचन कहकर परशुराम सब तपस्विओंके बीचमें मेरे सम्मुख ही उस कन्याको बुला करके दीन वचनसे कहने लगे ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ छियासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८६ ॥ ५७६६ ॥

: १८७ :

राम उवाच

प्रत्यक्षमेतल्लोकानां सर्वेषामेव भामिनि ।
यथा मया परं शक्त्या कृतं वै पौरुषं महत् ॥ १ ॥

परशुराम बोले– हे भामिनि ! मैंने अपने पुरुषार्थके अनुसार महान् पराक्रमको प्रकट करके जो युद्ध किया, उसे सब लोगोंने देखा ही है ॥ १ ॥

न चैव युधि शक्नोमि भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ।
विशेषयितुमत्यर्थमुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ २ ॥

मैंने अनेक उत्तम अस्त्र शस्त्र चलाए, तो भी युद्धमें शस्त्रधारिओंमें श्रेष्ठ भीष्मको परास्त न कर सका ॥ २ ॥

एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ।
यथेष्टं गम्यतां भद्रे किमन्यद्वा करोमि ते ॥ ३ ॥

मेरी इतनी ही शक्ति और इतना ही बल है, अतः, हे भद्रे ! अब जहां इच्छा हो वहां जाओ। अब तुम्हारा दूसरा कार्य मैं क्या कर सकूंगा ? ॥ ३ ॥

भीष्ममेव प्रपद्यस्व न तेऽन्या विद्यते गतिः ।
निर्जितो ह्यस्मि भीष्मेण महास्त्राणि प्रमुञ्चता ॥ ४ ॥

अतः अब तुम भीष्महीकी शरणमें जाओ; इसके अतिरिक्त और कहीं भी तुम्हारे लिए शरण नहीं है; मैं अपने परम दिव्य अस्त्रोंको चलाने पर भी भीष्मके द्वारा जीत लिया गया हूँ ॥४॥

भीष्म उवाच

एवमुक्त्वा ततो रामो विनिःश्वस्य महामनाः ।
तूष्णीमासीत्तदा कन्या प्रोवाच भृगुनन्दनम् ॥ ५ ॥

भीष्म बोले– महातेजस्वी परशुराम ऐसे वचन कहकर लम्बी सांस लेते हुए चुप होगये। तब अम्बाने भृगुनन्दन परशुरामसे कहा ॥ ५ ॥

भगवन्नेवमेवैतद्यथाह भगवांस्तथा ।
अजेयो युधि भीष्मोऽयमपि देवैरुदारधीः ॥ ६ ॥

भगवन् ! आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है; यह उदार बुद्धिवाले भगवान् भीष्म युद्धमें देवताओंके लिए भी अजेय हैं ॥ ६ ॥

यथाशक्ति यथोत्साहं मम कार्यं कृतं त्वया ।
अनिधाय रणे वीर्यमस्त्राणि विविधानि च ॥ ७ ॥

आपकी जितनी शक्ति और जैसा उत्साह था, उसके अनुसार ही आपने मेरा कार्य किया है, रणभूमिमें अत्यन्त बल, पराक्रम और दिव्य शस्त्रोंको अपने प्रकट किया ॥ ७ ॥

न चैष शक्यते युद्धे विशेषयितुमन्ततः ।
न चाहमेनं यास्यामि पुनर्भीष्मं कथञ्चन ॥ ८ ॥

तो भी युद्धमें अन्त तक आप भीष्मसे अधिक न हो सके, परन्तु मैं इस भीष्मकी शरणमें अब किसी भी प्रकार नहीं जाऊंगी ॥ ८ ॥

गमिष्यामि तु तत्राहं यत्र भीष्मं तपोधन ।
समरे पातयिष्यामि स्वयमेव भृगूद्वह ॥ ९ ॥

हे भृगुवंशके उद्धारक तपोधन परशुराम ! अब मैं उसी स्थान पर जाऊंगी जहां स्वयं ही रणभूमिमें उसे मार सकूं ॥ ९ ॥

एवमुक्त्वा ययौ कन्या रोषव्याकुललोचना ।
तपसे धृतसङ्कल्पा मम चिन्तयती वधम् ॥ १० ॥

ऐसा वचन कह कर वह कन्या क्रोधसे व्याकुल आंखोंवाली होकर मेरे वधके बारेमें सोचती हुई तथा तपस्या करनेका संकल्प करके वहांसे चली गई ॥ १० ॥

ततो महेन्द्रं सह तैर्मुनिभिर्भृगुसत्तमः ।
यथागतं ययौ रामो मामुपामन्त्र्य भारत ॥ ११ ॥

हे भारत दुर्योधन ! इसके बाद भृगुसत्तम परशुराम मुझसे अनुमति लेकर उन मुनियोंके सहित जिस मार्गसे आए थे, उसी मार्गसे महेन्द्र पर्वत पर चले गये ॥ ११ ॥

ततोऽहं रथमारुह्य स्तूयमानो द्विजातिभिः ।
प्रविश्य नगरं मात्रे सत्यवत्यै न्यवेदयम् ।
यथावृत्तं महाराज सा च मां प्रत्यनन्दत ॥ १२ ॥

हे भारत ! मैं भी रथ पर चढके ब्राह्मणोंसे प्रशंसित होता हुआ हस्तिनापुर गया और वहां जाकर मैंने माता सत्यवतीसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा और, हे महाराज ! उन्होंने भी मेरा अभिनन्दन किया ॥ १२ ॥

पुरुषांश्चादिशं प्राज्ञान्कन्यावृत्तान्तकर्मणि।
दिवसे दिवसे ह्यस्या गतजल्पितचेष्टितम्।
प्रत्याहरंश्च मे युक्ताः स्थिताः प्रियहिते मम ॥ १३ ॥

हे महाराज! तब मैंने अम्बाके वृत्तान्तको जाननेके लिए अत्यन्त निपुण बुद्धिमान् पुरुषोंको नियुक्त किया। वह सब दूत मेरे प्रिय कार्यमें रत होकर उस कन्याके प्रतिदिनकी गति, वाणी और चेष्टाका विवरण सुनाने लगे ॥ १३ ॥

यदैव हि वनं प्रायात्कन्या सा तपसे धृता।
तदैव व्यथितो दीनो गतचेता इवाभवम् ॥ १४ ॥

वह कन्या अम्बा जब तपस्याके निमित्त सङ्कल्प करके वनको गई, तभी मैं व्याकुल, दीन और चेतनारहितके समान हो गया ॥ १४ ॥

न हि मां क्षत्रियः कश्चिद्वीर्येण विजयेद्युधि।
ऋते ब्रह्मविदस्तात तपसा संशितव्रतात् ॥ १५ ॥

क्योंकि ब्रह्मज्ञ लोगोंसे ही मुझे भय हुआ करता है; तपस्या करनेवाले ब्रह्मज्ञ लोगोंके अतिरिक्त और कोई भी क्षत्रिय मुझे युद्धमें नहीं जीत सकता ॥ १५ ॥

अपि चैतन्मया राजन्नारदेऽपि निवेदितम्।
व्यासे चैव भयात्कार्यं तौ चोभौ मामवोचताम् ॥ १६ ॥

हे राजन्! मैंने भयभीत होकर नारद और व्यासदेवसे भी यह बात कही। उसे सुनकर वे दोनों मुझसे बोले ॥ १६ ॥

न विषादस्त्वया कार्यो भीष्म काशिसुतां प्रति।
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ॥ १७ ॥

हे भीष्म! तुम काशिराजकी कन्याके विषयमें कुछ भी शोक मत करो; पुरुषार्थसे भला कौन दैवको विपरीत कर सकता है? ॥ १७ ॥

सा तु कन्या महाराज प्रविश्याश्रममण्डलम्।
यमुनातीरमाश्रित्य तपस्तेपेऽतिमानुषम् ॥ १८ ॥

हे राजन् दुर्योधन! वह कन्या आश्रममें प्रवेश करके यमुनाके तीरपर अपना आश्रम बनाकर अलौकिक तपस्या करने लगी ॥ १८ ॥

निराहारा कृशा रूक्षा जटिला मलपङ्किनी।
षण्मासान्वायुभक्षा च स्थाणुभूता तपोधना ॥ १९ ॥

उसने आहारको त्याग दिया और कृशित, रूक्ष, जटाधारिणी, धूल और कीचडके साथ रहनेवाली, सूखी लकडीकी भांति स्थिर होकर वह छः महीने वायु–भक्षण करके तपस्या करती रही ॥ १९ ॥

यमुनातीरमासाद्य संवत्सरमथापरम् ।
उदवासं निराहारा पारयामास भामिनी ॥ २० ॥

फिर उस कन्याने एक वर्ष तक यमुनाके किनारे पर ही रहकर निराहार होकर व्रत पूरा किया ॥ २० ॥

शीर्णपर्णेन चैकेन पारयामास चापरम् ।
संवत्सरं तीव्रकोपा पादांगुष्ठाग्रधिष्ठिता ॥ २१ ॥

फिर केवल वृक्षसे गिरे हुए एक एक सूखे पत्तोंको खाकर एक वर्ष बिताया । उस महाक्रोध करने-वाली तपस्विनीने अपने पांवके अंगूठेके अग्रभागके बलपर खडी होकर एक वर्ष बिताया ॥ २१ ॥

एवं द्वादश वर्षाणि तापयामास रोदसी ।
निवर्त्यमानापि तु सा ज्ञातिभिर्नैव शक्यते ॥ २२ ॥

इसी प्रकारसे बारह वर्ष तपस्या करके स्वर्ग और पृथ्वीको तपाने लगी । जातिके लोगोंने बहुत ही चेष्टा की; परन्तु किसी प्रकारसे भी उसे तपस्यासे निवृत्त न कर सके ॥ २२ ॥

ततोऽगमद्वत्सभूमिं सिद्धचारणसेविताम् ।
आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ॥ २३ ॥

इसके बाद अम्बा भूत, सिद्ध और चारणोंसे सेवित वत्सभूमिमें पुण्यशाली और महात्मा तपस्वियोंके आश्रममें गई ॥ २३ ॥

तत्र पुण्येषु तीर्थेषु साप्लुताङ्गी दिवानिशम् ।
व्यचरत्काशिकन्या सा यथाकामविचारिणी ॥ २४ ॥

सुन्दर अंगोंवाली वह काशिराजकी कन्या रात दिन सभी पुण्यतीर्थोंमें स्नान करती हुई इच्छापूर्वक भ्रमण करने लगी ॥ २४ ॥

नन्दाश्रमे महाराज ततोलूकाश्रमे शुभे ।
च्यवनस्याश्रमे चैव ब्रह्मणः स्थान एव च ॥ २५ ॥

हे महाराज! वह क्रमसे पुण्यशाली नन्दाश्रम, उलूक आश्रम, च्यवनके आश्रम, ब्रह्म-स्थान, ॥ २५ ॥

प्रयागे देवयजने देवारण्येषु चैव ह ।
भोगवत्यां तथा राजन्कौशिकस्याश्रमे तथा ॥ २६ ॥

उसी तरह, हे राजन् दुर्योधन! प्रयाग, देवयजन, देव अरण्य, भोगवती, विश्वामित्रके आश्रम ॥ २६ ॥

×

माण्डव्यस्याश्रमे राजन्दिलीपस्याश्रमे तथा।
रामह्रदे च कौरव्य पैलगार्ग्यस्य चाश्रमे ॥ २७ ॥

हे कुरुवंशी राजन्! माण्डव्यके आश्रम, दिलीप आश्रम, रामह्रद और पैल गार्ग्यके आश्रममें भ्रमण करती रही ॥ २७ ॥

एतेषु तीर्थेषु तदा काशिकन्या विशां पते।
आप्लावयत गात्राणि तीव्रमास्थाय वै तपः ॥ २८ ॥

हे राजेन्द्र! उस काशिराजकी कन्याने अत्यन्त कठिन तपका अवलम्बन करके उन सम्पूर्ण तीर्थोंमें जाकर अपने अंगोंको धोया अर्थात् स्नान किया ॥ २८ ॥

तामब्रवीत्कौरवेय मम माता जलोत्थिता।
किमर्थं क्लिश्यसे भद्रे तथ्यमेतद्ब्रवीहि मे ॥ २९ ॥

हे कौरव! तब एक दिन जलसे प्रकट होकर मेरी माता गङ्गादेवीने उससे कहा- हे भद्रे! तुम किस कारणसे इतना क्लेश सह रही हो; हे राजन्! मुझसे सब सत्य सत्य कहो ॥२९॥

सैनामथाब्रवीद्राजन्कृताञ्जलिरनिन्दिता।
भीष्मो रामेण समरे न जितश्चारुलोचने ॥ ३० ॥

तब वह अनिन्दिता काशीराजकी कन्या हाथ जोडकर बोली- हे देवी! हे सुन्दर नेत्रवाली! परशुराम भीष्मको युद्धमें नहीं जीत सके ॥ ३० ॥

कोऽन्यस्तमुत्सहेज्जेतुमुद्यतेषुं महीपतिम्।
साहं भीष्मविनाशाय तपस्तप्स्ये सुदारुणम् ॥ ३१ ॥

तब और कौन् बलवान् राजा उस शस्त्रधारी महावीरको जीतने साहस कर सकता है? अतः मैं भीष्मके वधके निमित्त यह महा घोर तपस्या कर रही हूं ॥ ३१ ॥

चरामि पृथिवीं देवि यथा हन्यामहं नृपम्।
एतद्व्रतफलं देहे परस्मिन्स्याद्यथा हि मे ॥ ३२ ॥

हे देवि! यही निश्चय करके मैं पृथ्वी पर भ्रमण कर रही हूं। ताकि अगले शरीरमें अर्थात् अगले जन्ममें मैं इस व्रतके फलको पा सकूं ॥ ३२ ॥

ततोऽब्रवीत्सागरगा जिह्मं चरसि भामिनि।
नैष कामोऽनवद्याङ्गि शक्यः प्राप्तुं त्वयाबले ॥ ३३ ॥

तब समुद्रमें गमन करनेवाली मेरी माता भागीरथीने उससे कहा- हे भामिनि! तुम कुटिल आचरण कर रही हो; हे सुन्दरी, हे अबले! तुम अपनी यह अभिलाषा पा न सकोगी ॥३३॥

यदि भीष्मविनाशाय काश्ये चरसि वै व्रतम् ।
व्रतस्था च शरीरं त्वं यदि नाम विमोक्ष्यसि ।
नदी भविष्यसि शुभे कुटिला वार्षिकोदका ॥ ३४ ॥

हे काशीराजकी कन्या ! यदि भीष्मके बधके निमित्त तुम इस प्रकारसे व्रत करोगी, और व्रत करती हुई शरीरको छोडोगी; तो, हे कल्याणि ! तुम टेढी चालसे बहनेवाली बरसाती नदी हो जाओगी ॥ ३४ ॥

दुस्तीर्था चानभिज्ञेया वार्षिकी नाष्टमासिकी ।
भीमग्राहवती घोरा सर्वभूतभयङ्करी ॥ ३५ ॥

केवल वर्षाकालहीमें तुममें जल रहेगा और दूसरे आठ महीने तुम जलरहित रहोगी। बर्षाकालमें तुम्हें पार करना कठिन होगा, कोई भी तुम्हारी गहराईको न जान सकेगा। तुम विकराल ग्राहोंसे युक्त और घोररूप होकर सब प्राणियोंके लिए भयङ्कर बन जाओगी ॥ ३५ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजन्काशिकन्यां न्यवर्तत ।
माता मम महाभागा स्मयमानेव भामिनी ॥ ३६ ॥

हे राजन् ! मेरी माता यशस्विनी भागीरथीने हंसते हंसते ऐसे वचन कहकर काशिराजकी कन्याको विदा किया ॥ ३६ ॥

कदाचिदष्टमे मासि कदाचिद्दशमे तदा ।
न प्राश्नीतोदकमपि पुनः सा वरवर्णिनी ॥ ३७ ॥

तो भी यह सुन्दरी कन्या फिर व्रत अवलम्बन करके कभी आठ महीने तो कभी दस महीने तक जल भी नहीं पीती थी ॥ ३७ ॥

सा वत्सभूमिं कौरव्य तीर्थलोभात्ततस्ततः ।
पतिता परिधावन्ती पुनः काशिपतेः सुता ॥ ३८ ॥

हे कौरव ! और तीर्थके लोभसे इधर उधर भ्रमण करती हुई फिर वह वत्सभूमिमें आई और वहांपर वह काशिराजकी कन्या दौडते दौडते गिर गई ॥ ३८ ॥

सा नदी वत्सभूम्यां तु प्रथिताम्बेति भारत ।
वार्षिकी ग्राहबहुला दुस्तीर्था कुटिला तथा ॥ ३९ ॥

हे भारत ! वह वहीं वत्सभूमिमें वर्षाकालमें बहनेवाली, अनेक ग्राह आदि जलजन्तुओंसे युक्त, टेढी और भय उत्पन्न करनेवाली नदी होकर अम्बाके नामसे विख्यात हुई ॥ ३९ ॥

सा कन्या तपसा तेन भागार्धेन व्यजायत।
नदी च राजन्वत्सेषु कन्या चैवाभवत्तदा ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ ५८०६ ॥

हे राजन्! वत्सभूमिमें अम्बा अपनी तपस्याके बलसे शरीरके आधे भागसे नदी हुई और शेष आधे भागसे कन्या भी बनी रही ॥ ४० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ सत्तासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८७ ॥ ५८०६ ॥

: १८८ :

भीष्म उवाच

ततस्ते तापसाः सर्वे तपसे धृतनिश्चयाम्।
दृष्ट्वा न्यवर्तयंस्तात किं कार्यमिति चाब्रुवन् ॥ १ ॥

भीष्म बोले— हे तात! तब सब तपस्वी लोगोंने काशिराजकी कन्याको तपस्यामें कृतसंकल्प देखकर उसे रोका और पूछा कि तप करके तुम्हें क्या करना है? ॥ १ ॥

तानुवाच ततः कन्या तपोवृद्धानृषींस्तदा।
निराकृतास्मि भीष्मेण भ्रंशिता पतिधर्मतः ॥ २ ॥

तब कन्या अम्बा उन तपोवृद्ध ऋषियोंसे बोली— हे तपोधनवृन्द! भीष्मने मुझे पतिधर्मसे भ्रष्ट करके उसने मेरा नाश किया है ॥ २ ॥

वधार्थं तस्य दीक्षा मे न लोकार्थं तपोधनाः।
निहत्य भीष्मं गच्छेयं शान्तिमित्येव निश्चयः ॥ ३ ॥

उसीके वधके निमित्त मेरी यह तपस्या है, स्वर्ग आदि लोकोंके प्राप्त करनेके लिए मैं तप नहीं कर रही। भीष्मको मारकर ही मैं शान्त होऊंगी, यही मेरा निश्चय है ॥ ३ ॥

यत्कृते दुःखवसतिमिमां प्राप्तास्मि शाश्वतीम्।
पतिलोकाद्विहीना च नैव स्त्री न पुमानिह ॥ ४ ॥

हे तापसवृन्द! जिसके कारणसे मुझे शाश्वत दुःखमें रहना पड रहा है और पति-लोकसे रहित हो गई हूं, अतः अब न मैं स्त्री ही हूं और नहीं पुरुष ही ॥ ४ ॥

नाहत्वा युधि गाङ्गेयं निवर्तेयं तपोधनाः।
एष मे हृदि सङ्कल्पो यदर्थमिदमुद्यतम् ॥ ५ ॥

हे तपस्वियो! उस गङ्गापुत्र भीष्मको बिना युद्धमें मारे अब मैं निवृत्त नहीं होऊंगी। यही मेरे हृदयका सङ्कल्प है जिसके लिए मैं तपस्या कर रही हूँ ॥ ५ ॥

स्त्रीभावे परिनिर्विण्णा पुंस्त्वार्थे कृतनिश्चया ।
भीष्मे प्रतिचिकीर्षामि नास्मि वार्येति वै पुनः ॥ ६ ॥

स्त्रीभावसे दुःख पाकर अब पुरुषत्व प्राप्त करनेका निश्चय करके मैं भीष्मसे बदला लेनेकी इच्छा करती हूं । अतः आप लोग अब मुझको रोकिये मत ॥ ६ ॥

तां देवो दर्शयामास शूलपाणिरुमापतिः ।
मध्ये तेषां महर्षीणां स्वेन रूपेण भामिनीम् ॥ ७ ॥

हे भारत ! तब देवोंके देव शूलधारी उमापति महादेवने उन महर्षियोंके बीच इस भामिनीको अपने रूपका साक्षात् दर्शन दिया ॥ ७ ॥

छन्द्यमाना वरेणाथ सा वव्रे मत्पराजयम् ।
वधिष्यसीति तां देवः प्रत्युवाच मनस्विनीम् ॥ ८ ॥

महादेवके द्वारा उसे वर देकर सन्तुष्ट करनेकी इच्छा करनेपर उस मनस्विनी काशिराजकी कन्याने मेरे वध करनेका ही वरदान मांगा । उसका वचन सुनकर महादेव बोले— अवश्य वध करोगी ॥ ८ ॥

ततः सा पुनरेवाथ कन्या रुद्रमुवाच ह ।
उपपद्येत्कथं देव स्त्रियो मम जयो युधि ।
स्त्रीभावेन च मे गाढं मनः शान्तमुमापते ॥ ९ ॥

यह वचन सुनकर अम्बाने महादेवसे फिर पूछा— कि हे देवोंके देव ! मैं स्त्री होकर युद्धमें मेरी जीत होगी, यह कैसे संभव हो सकता है। हे उमानाथ ! स्त्री होनेके कारण तपस्यासे मेरा मन अत्यन्त ही शान्त हो गया है ॥ ९ ॥

प्रतिश्रुतश्च भूतेश त्वया भीष्मपराजयः ।
यथा स सत्यो भवति तथा कुरु वृषध्वज ।
यथा हन्यां समागम्य भीष्मं शान्तनवं युधि ॥ १० ॥

हे भूतपति ! तुमने भी भीष्मका वध करनेका मुझे वर दिया, अतः हे वृषभध्वज ! शन्तनु-नन्दन भीष्म जिस प्रकारसे मेरा वध्य होवे, और आपका वरदान सत्य हो, वही कीजिये। मैं युद्धमें भीष्मसे लडकर उसे मार सकूं उसी उपायको बताइये ॥ १० ॥

तामुवाच महादेवः कन्यां किल वृषध्वजः ।
न मे वागनृतं भद्रे प्राह सत्यं भविष्यति ॥ ११ ॥

तब वृषभध्वज महादेव उस कन्यासे बोले— हे भद्रे ! मेरी बात कभी मिथ्या न होगी, यह अवश्य ही सत्य होगी ॥ ११ ॥

वधिष्यसि रणे भीष्मं पुरुषत्वं च लप्स्यसे ।
स्मरिष्यसि च तत्सर्वं देहमन्यं गता सती ॥ १२ ॥

तुम भीष्मको युद्धमें मारोगी, और पुरुषत्व भी प्राप्त करोगी तथा दूसरे शरीरमें जाकर भी पूर्वजन्मके सम्पूर्ण वृत्तान्तको भी स्मरण करोगी ॥ १२ ॥

द्रुपदस्य कुले जाता भविष्यसि महारथः ।
शीघ्रास्त्रश्चित्रयोधी च भविष्यसि सुसम्मतः ॥ १३ ॥

द्रुपदके कुलमें जन्म लेकर तुम महारथी, शीघ्र अस्त्र चलानेवाला, अनेक प्रकारसे युद्ध करनेवाला तथा सबके लिए पूज्य योद्धा बनोगी ॥ १३ ॥

यथोक्तमेव कल्याणि सर्वमेतद्भविष्यति ।
भविष्यसि पुमान्पश्चात्कस्माच्चित्कालपर्ययात् ॥ १४ ॥

हे कल्याणि! मैंने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य होगा, तुम कुछ कालके बाद पुरुष हो जाओगी ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वा महादेवः कपर्दी वृषभध्वजः ।
पश्यतामेव विप्राणां तत्रैवान्तरधीयत ॥ १५ ॥

वृषभध्वज कपाली महादेव ऐसा वचन कहकर तपस्वी ब्राह्मणोंके देखते देखते वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ १५ ॥

ततः सा पश्यतां तेषां महर्षीणामनिन्दिता ।
समाहृत्य वनात्तस्मात्काष्ठानि वरवर्णिनी ॥ १६ ॥

तदनन्तर अनिन्दिता काशिराजकी कन्या अम्बाने उन महर्षियोंके सम्मुख ही वनमेंसे लकडियां लाकर ॥ १६ ॥

चितां कृत्वा सुमहतीं प्रदाय च हुताशनम् ।
प्रदीप्तेऽग्नौ महाराज रोषदीप्तेन चेतसा ॥ १७ ॥
उक्त्वा भीष्मवधायेति प्रविवेश हुताशनम् ।
ज्येष्ठा काशिसुता राजन्यमुनामभितो नदीम् ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥ ५८२४ ॥

यमुनाके समीप एक बडी चिता बनाकर उसमें अग्नि लगा दी । हे महाराज! उस अग्निके प्रज्वलित होनेपर वह काशिराजकी बडी कन्या क्रोधपूर्वक चित्तसे 'मैं भीष्मके वधके निमित्त इस अग्निमें प्रवेश करती हूं' ऐसा वचन कहकर अग्निमें प्रवेश करके जल गई ॥ १७-१८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ अठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८८ ॥ ५८२४ ॥

: १८९ :

दुर्योधन उवाच

कथं शिखण्डी गाङ्गेय कन्या भूत्वा सती तदा ।
पुरुषोऽभवद्युधि श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

दुर्योधन बोले– हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ गंगानन्दन पितामह! शिखण्डी पहिले सती कन्या होकर बादमें किस प्रकारसे पुरुष हो गया; उसका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

भीष्म उवाच

भार्या तु तस्य राजेन्द्र द्रुपदस्य महीपतेः ।
महिषी दयिता ह्यासीदपुत्रा च विशां पते ॥ २ ॥

भीष्म बोले– हे प्रजापालक राजेन्द्र! राजा द्रुपदकी एक रानी उसे बडी प्रिय थी, पर वह रानी पुत्रहीन थी ॥ २ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदो वै महीपतिः ।
अपत्यार्थं महाराज तोषयामास शङ्करम् ॥ ३ ॥

हे राजेन्द्र! उसी समय राजा द्रुपदने पुत्र प्राप्त करनेके लिए पिनाकधारी महादेवको सन्तुष्ट किया ॥ ३ ॥

अस्मद्वधार्थं निश्चित्य तपो घोरं समास्थितः ।
लेभे कन्यां महादेवात्पुत्रो मे स्यादिति ब्रुवन् ॥ ४ ॥

और मेरे वधका संकल्प करके बडी भारी तपस्या करने लगे, शंकरके प्रकट होनेपर उन्होंने एक पुत्र मांगा, पर उन्हें एक कन्याका वरदान मिला ॥ ४ ॥

भगवन्पुत्रमिच्छामि भीष्मं प्रतिचिकीर्षया ।
इत्युक्तो देवदेवेन स्त्रीपुमांस्ते भविष्यति ॥ ५ ॥

तब द्रुपद उनसे यह वचन बोले– हे भगवन्! मैं भीष्मके वधके निमित्त एक पुत्रकी इच्छा करता हूं; उनकी यह प्रार्थना सुनकर देवोंके देव महादेव बोले, तुम्हारे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा कि जो पहले स्त्री होकर बादमें पुरुष हो जाएगा ॥ ५ ॥

निवर्तस्व महीपाल नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
स तु गत्वा च नगरं भार्यामिदमुवाच ह ॥ ६ ॥

हे राजन्! अतः अब तुम तपस्यासे निवृत्त हो जाओ; मैंने जो वचन कहा है, वह कभी झूठ न होगा। राजा द्रुपद महादेवका यह वचन सुनकर नगरमें आकर अपनी भार्यासे बोले ॥ ६ ॥

कृतो यत्नो मया देवि पुत्रार्थे तपसा महान् ।
कन्या भूत्वा पुमान्भावी इति चोक्तोऽस्मि शम्भुना ॥ ७ ॥

हे देवी ! तपस्यासे मैंने पुत्रकी प्राप्तिके लिए बडा प्रयत्न किया, तब महादेवने कहा कि प्रथम तुम्हारे एक कन्या होकर फिर वह पुरुष होगी ॥ ७ ॥

पुनः पुनर्याच्यमानो दिष्टमित्यब्रवीच्छिवः ।
न तदन्यद्धि भविता भवितव्यं हि तत्तथा ॥ ८ ॥

उस वचनको सुनकर मैंने बार बार प्रार्थना की, परन्तु शङ्करने कहा, यह मेरी बात कभी अन्यथा नहीं हो सकती । उस वचनमें अब कुछ भी बदल नहीं होगा, क्योंकि इसी प्रकारकी भवितव्यता थी ॥ ८ ॥

ततः सा नियता भूत्वा ऋतुकाले मनस्विनी ।
पत्नी द्रुपदराजस्य द्रुपदं संविवेश ह ॥ ९ ॥

तदनन्तर मनस्विनी द्रुपदराजकी पत्नीने ऋतुमती होकर नियमपूर्वक द्रुपदके साथ सहवास किया ॥ ९ ॥

लेभे गर्भं यथाकालं विधिदृष्टेन हेतुना ।
पार्षती सा महीपाल यथा मां नारदोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

हे महाराज दुर्योधन ! जैसा कि नारदमुनिने मुझे बताया— उस पृषद्वंशी द्रुपदकी पत्नीने भाग्यमें लिखे गए हेतुसे द्रुपदसे यथासमयमें गर्भ धारण किया ॥ १० ॥

ततो दाधार तं गर्भं देवी राजीवलोचना ।
तां स राजा प्रियां भार्यां द्रुपदः कुरुनन्दन ।
पुत्रस्नेहान्महाबाहुः सुखं पर्यचरत्तदा ॥ ११ ॥

हे कुरुनन्दन ! तब कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली महारानीने गर्भ धारण किया । तब महाबाहु राजा द्रुपदने पुत्रस्नेहके कारण उस अपनी प्रिया भार्याकी आनन्दसे सब प्रकारकी सेवा करने लगा ॥ ११ ॥

अपुत्रस्य ततो राज्ञो द्रुपदस्य महीपतेः ।
कन्यां प्रवररूपां तां प्राजायत नराधिप ॥ १२ ॥

तब, हे राजन् ! पुत्रहीन राजा द्रुपदके लिए रानीने एक उत्तम रूपवाली कन्याको जन्म दिया ॥ १२ ॥

अपुत्रस्य तु राज्ञः सा द्रुपदस्य यशस्विनी ।
ख्यापयामास राजेन्द्र पुत्रो जातो ममेति वै ॥ १३ ॥

हे राजेन्द्र दुर्योधन! द्रुपदराजके पुत्र न होनेपर भी उनकी प्यारी स्त्रीने यह घोषणा करवा दी, कि मेरे पुत्र हुआ है ॥ १३ ॥

ततः स राजा द्रुपदः प्रच्छन्नाया नराधिप ।
पुत्रवत्पुत्रकार्याणि सर्वाणि समकारयत् ॥ १४ ॥

हे राजन्! तब उस राजा द्रुपदने भी उस छिपी हुई कन्याको पुत्रके समान जानकर उसका सम्पूर्ण पुत्रकार्य कराया ॥ १४ ॥

रक्षणं चैव मन्त्रस्य महिषी द्रुपदस्य सा ।
चकार सर्वयत्नेन ब्रुवाणा पुत्र इत्युत ।
न हि तां वेद नगरे कश्चिदन्यत्र पार्षतात् ॥ १५ ॥

और द्रुपदकी उस रानीने भी पुत्र पुत्र कहकर उस रहस्यकी सब प्रकारसे यत्नपूर्वक उसकी रक्षा की। नगरमें एकमात्र राजा द्रुपदको छोड कर और कोई भी उस कन्याको कन्याके रूपमें नहीं जानता था ॥ १५ ॥

श्रद्दधानो हि तद्वाक्यं देवस्याद्भुततेजसः ।
छादयामास तां कन्यां पुमानिति च सोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥

हे राजन्! राजा द्रुपदने अद्भुत तेजस्वी महादेवके वचनपर श्रद्धा रखकर उस कन्याको छिपाया और यह पुत्र है यह कहकर सर्वत्र घोषणा की ॥ १६ ॥

जातकर्माणि सर्वाणि कारयामास पार्थिवः ।
पुंवद्विधानयुक्तानि शिखण्डीति च तां विदुः ॥ १७ ॥

उस राजाने पुत्रहीके समान ही सब जातिकर्म–संस्कार कराये। लोग इस कन्याको शिखण्डीके रूपमें जानने लगे ॥ १७ ॥

अहमेकस्तु चारेण वचनान्नारदस्य च ।
ज्ञातवान्देववाक्येन अम्बायास्तपसा तथा ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥ ५८४२ ॥

परन्तु मैं ही अकेला दूतों, नारदके वचन, देववाक्य और अम्बाकी तपस्याके कारण उसके सच्चे स्वरूपको जानता था ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ उनासीवां अध्याय समाप्त ॥ १८९ ॥ ५८४२ ॥

×

: १९० :

भीष्म उवाच

चकार यत्नं द्रुपदः सर्वस्मिन्स्वजने महत्।
ततो लेख्यादिषु तथा शिल्पेषु च परं गता।
इष्वस्त्रे चैव राजेन्द्र द्रोणशिष्यो बभूव ह ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे राजेन्द्र ! राजा द्रुपदने अपने सम्बन्धियोंमें बहुत यत्न किया और वह कन्या भी लिखने और शिल्प आदि सब कर्मोंमें निपुण हो गई। शिखण्डी बाण और अस्त्र-शिक्षामें द्रोणाचार्यका शिष्य हुआ ॥ १ ॥

तस्य माता महाराज राजानं वरवर्णिनी।
चोदयामास भार्यार्थं कन्यायाः पुत्रवत्तदा ॥ २ ॥

तब, हे महाराज दुर्योधन ! उसकी सुन्दरी माताने पुत्रकी भांति उस कन्याके विवाहके निमित्त राजासे अनुरोध किया ॥ २ ॥

ततस्तां पार्षतो दृष्ट्वा कन्यां सम्प्राप्तयौवनाम्।
स्त्रियं मत्वा तदा चिन्तां प्रपेदे सह भार्यया ॥ ३ ॥

हे महाराज ! तब द्रुपदराज कन्याको यौवनवती देखकर तथा उसे स्त्री जानकर भार्याके सहित चिन्ता करने लगे ॥ ३ ॥

द्रुपद उवाच

कन्या ममेयं सम्प्राप्ता यौवनं शोकवर्धिनी।
मया प्रच्छादिता चेयं वचनाच्छूलपाणिनः ॥ ४ ॥

द्रुपद बोले– मेरा शोक बढानेवाली यह कन्या यौवनावस्थाको प्राप्त हो गई है; मैंने शूलधारी महादेवके वचनसे इसे छिपा कर रक्खा है ॥ ४ ॥

न तन्मिथ्या महाराज्ञि भविष्यति कथञ्चन।
त्रैलोक्यकर्ता कस्माद्धि तन्मृषा कर्तुमर्हति ॥ ५ ॥

हे महारानी ! वह महादेवका वचन कभी मिथ्या न होगा, तीनों लोकोंके कर्त्ता होकर महादेव किस प्रकार झूठ बोल सकते हैं ॥ ५ ॥

भार्योवाच

यदि ते रोचते राजन्वक्ष्यामि शृणु मे वचः।
श्रुत्वेदानीं प्रपद्येथाः स्वकार्यं पृषतात्मज ॥ ६ ॥

भार्या बोली– हे राजन् ! यदि मेरे वचनमें आपकी रुचि होवे, तो मैं जो वचन कहती हूं, उसको सुनिये और हे पृषतपुत्र ! उसे सुनकर अपने मतके अनुसार वह कार्य कीजिये ॥ ६ ॥

क्रियतामस्य यत्नेन विधिवद्दारसंग्रहः ।
सत्यं भवति तद्वाक्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥ ७ ॥

किसी प्रकार यत्न करके विधिपूर्वक किसी कन्यासे इसका विवाह कीजिये; शिवका वचन अवश्य ही सत्य होगा यह मेरा निश्चित विचार है ॥ ७ ॥

भीष्म उवाच

ततस्तौ निश्चयं कृत्वा तस्मिन्कार्येऽथ दम्पती ।
वरयाञ्चक्रतुः कन्यां दशार्णाधिपतेः सुताम् ॥ ८ ॥

भीष्म बोले– तब वह दोनों स्त्री-पुरुष उस कार्यका निश्चय करके दशार्णाधिपतिकी कन्याको अपनी कन्याके निमित्त चुना ॥ ८ ॥

ततो राजा द्रुपदो राजसिंहः सर्वान्राज्ञः कुलतः सन्निशाम्य ।
दाशार्णकस्य नृपतेस्तनूजां शिखण्डिने वरयामास दारान् ॥ ९ ॥

राजाओंमें सिंहके समान शूरवीर राजा द्रुपदने कुलके अनुसार सब राजाओंके वृत्तान्तको सुनकर दशार्णराजाकी कन्याको ही शिखण्डीकी पत्नीके रूपमें वरण किया ॥ ९ ॥

हिरण्यवर्मेति नृपो योऽसौ दाशार्णकः स्मृतः ।
स च प्रादान्महीपालः कन्यां तस्मै शिखण्डिने ॥ १० ॥

हिरण्यवर्मा नामसे विख्यात जो दशार्णराज था, उस राजाने भी अपनी कन्या शिखण्डीके लिए प्रदान कर दी ॥ १० ॥

स च राजा दशार्णेषु महानासीन्महीपतिः ।
हिरण्यवर्मा दुर्धर्षो महासेनो महामनाः ॥ ११ ॥

वह राजा हिरण्यवर्मा भी अपराजेय, महासेनावाला, मनस्वी और दशार्णोंमें सबसे श्रेष्ठ राजा था ॥ ११ ॥

कृते विवाहे तु तदा सा कन्या राजसत्तम ।
यौवनं समनुप्राप्ता सा च कन्या शिखण्डिनी ॥ १२ ॥

हे राजसत्तम ! विवाह कर्मके समाप्त होनेपर दाशार्णराजकी कन्या और यह कन्या शिखण्डिनी धीरे धीरे सम्पूर्ण रूपसे यौवनवती हुई ॥ १२ ॥

कृतदारः शिखण्डी तु काम्पिल्यं पुनरागमत् ।
न च सा वेद तां कन्यां कञ्चित्कालं स्त्रियं किल ॥ १३ ॥

शिखण्डी भी दार-परिग्रह अर्थात् विवाह करके काम्पिल्य नगरमें फिर लौट आया । कुछ दिनोंतक तो वह कन्या यह नहीं जान पाई कि शिखण्डी स्त्री है ॥ १३ ॥

हिरण्यवर्मणः कन्या ज्ञात्वा तां तु शिखण्डिनीम् ।
धात्रीणां च सखीनां च व्रीडमाना न्यवेदयत् ।
कन्यां पाञ्चालराजस्य सुतां तां वै शिखण्डिनीम् ॥ १४ ॥

बादमें हिरण्यवर्माकी कन्याने शिखण्डीको शिखण्डीनी जानकर लज्जापूर्वक दुःखित चित्तसे दासी और सखियोंसे पाञ्चालराजकी कन्या शिखण्डिनीके स्वरूपकी बात कह डाली ॥१४॥

ततस्ता राजशार्दूल धात्र्यो दाशार्णिकास्तदा ।
जग्मुरार्तिं परां दुःखात्प्रेषयामासुरेव च ॥ १५ ॥

हे राजशार्दूल ! तब दशार्णराजकी दासियां बहुत दुःखी और व्याकुल हुईं और अपने स्वामीके पास दूतियोंको भेजा ॥ १५ ॥

ततो दशार्णाधिपतेः प्रेष्याः सर्वं न्यवेदयन् ।
विप्रलम्भं यथावृत्तं स च चुक्रोध पार्थिवः ॥ १६ ॥

उन दूतियोंने भी दशार्णराजसे इस प्रवञ्चना–ठगाईका वृत्तान्त ठीक ठीक कह सुनाया और यह सब सुनकर राजा भी क्रोधित हो गया ॥ १६ ॥

शिखण्ड्यपि महाराज पुंवद्राजकुले तदा ।
विजहार मुदा युक्तः स्त्रीत्वं नैवातिरोचयन् ॥ १७ ॥

हे महाराज दुर्योधन! इधर शिखण्डिनी भी नारीत्वको पसन्द न करते हुए पुरुषके समान प्रसन्नतापूर्वक राजकुलमें भ्रमण करने लगी ॥ १७ ॥

ततः कतिपयाहस्य तच्छ्रुत्वा भरतर्षभ ।
हिरण्यवर्मा राजेन्द्र रोषादार्तिं जगाम ह ॥ १८ ॥

हे भरतश्रेष्ठ राजेन्द्र ! राजा हिरण्यवर्मा कुछ दिनोंके बाद इस वृत्तान्तको सुनकर क्रोधसे व्याकुल हो गया ॥ १८ ॥

ततो दाशार्णको राजा तीव्रकोपसमन्वितः ।
दूतं प्रस्थापयामास द्रुपदस्य निवेशने ॥ १९ ॥

तब अत्यन्त ही कुपित हो दाशार्णक राजाने राजा द्रुपदके महलमें एक दूत भेजा ॥१९॥

ततो द्रुपदमासाद्य दूतः काञ्चनवर्मणः ।
एक एकान्तमुत्सार्य रहो वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥

हिरण्यवर्माका दूत द्रुपदके पास जाकर उस राजाको अकेले ही एकान्तमें ले जाकर निर्जन स्थानमें यह वचन बोला ॥ २० ॥

दशार्णराजो राजंस्त्वामिदं वचनमब्रवीत् ।
अभिषङ्गात्प्रकुपितो विप्रलब्धस्त्वयानघ ॥ २१ ॥

हे पापरहित राजन्! तुम्हारी प्रवञ्चनासे जो दाशार्णराजकी मानहानि हुई है, उससे कुपित होकर उसने यह बचन कहा है ॥ २१ ॥

अवमन्यसे मां नृपते नूनं दुर्मन्त्रितं तव ।
यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थे मोहाद्याचितवानसि ॥ २२ ॥

हे राजेन्द्र! तुमने जो मोहमें पडकर अपनी कन्याके निमित्त मेरी कन्या मांगी है, वह निश्चय ही तुम्हारी दुष्ट मन्त्रणाका कार्य है। तुमने मेरा अपमान किया है ॥ २२ ॥

तस्याद्य विप्रलम्भस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ।
एष त्वां सजनामात्यमुद्धरामि स्थिरो भव ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥ ५८६५ ॥

अतः, हे नीचबुद्धिवाले द्रुपद! अब तुम प्रतारणाके फलको भोगो। मैं तुमको अब इष्ट मित्र और बन्धुबान्धवोंके सहित मारूंगा; तुम सावधान हो जाओ ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ नब्बेवां अध्याय समाप्त ॥ १९० ॥ ५८६५ ॥

: १९१ :

भीष्म उवाच

एवमुक्तस्य दूतेन द्रुपदस्य तदा नृप ।
चोरस्येव गृहीतस्य न प्रावर्तत भारती ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे राजन्! तब दूतके मुखसे ऐसा वचन सुनकर रंगे हाथों पकडे गए चोरकी भांति राजा द्रुपदके मुखसे कुछ भी शब्द न निकला ॥ १ ॥

स यत्नमकरोत्तीव्रं सम्बन्धैरनुसान्त्वनैः ।
दूतैर्मधुरसम्भाषैर्नैतदस्तीति सन्दिशन् ॥ २ ॥

वह मीठे स्वरसे बोलनेवाले दूतोंसे यह वचन बोले– यह ठीक नहीं है, इस प्रकारसे सन्देश भेज कर वह सम्बन्धीको प्रसन्न करनेके निमित्त अत्यन्त यत्न करने लगे ॥ २ ॥

स राजा भूय एवाथ कृत्वा तत्त्वत आगमम् ।
कन्येति पाञ्चालसुतां त्वरमाणोऽभिनिर्ययौ ॥ ३ ॥

परन्तु राजा हिरण्यवर्माने फिरसे पता लगा करके यह जान लिया, कि शिखण्डी द्रुपद-राजकी कन्या ही है; अतः शीघ्र ही वह युद्धके लिए चल पडा ॥ ३ ॥

ततः सम्प्रेषयामास मित्राणाममितौजसाम् ।
दुहितुर्विप्रलम्भं तं धात्रीणां वचनात्तदा ॥ ४ ॥

तब हिरण्यवर्माने दासियोंके वचनके अनुसार अपनी कन्याके इस प्रकारसे ठगे जानेका वृत्तान्त अपने महातेजस्वी मित्रोंसे भी कहा ॥ ४ ॥

ततः समुदयं कृत्वा बलानां राजसत्तमः ।
अभियाने मतिं चक्रे द्रुपदं प्रति भारत ॥ ५ ॥

हे भारत ! उस राजसत्तम हिरण्यवर्माने बहुत बडी सेनाका संग्रह करके द्रुपदपर आक्रमण करनेकी इच्छा की ॥ ५ ॥

ततः सम्मन्त्रयामास मित्रैः सह महीपतिः ।
हिरण्यवर्मा राजेन्द्र पाञ्चाल्यं पार्थिवं प्रति ॥ ६ ॥

और, हे राजेन्द्र ! वह हिरण्यवर्मा राजा अपने मित्रोंके साथ उस द्रुपद राजाके बारेमें विचार करने लगा ॥ ६ ॥

तत्र वै निश्चितं तेषामभूद्राज्ञां महात्मनाम् ।
तथ्यं चेद्भवति ह्येतत्कन्या राजञ्शिखण्डिनी ।
बद्ध्वा पाञ्चालराजानमानयिष्यामहे गृहान् ॥ ७ ॥

हे राजन् ! उसमें उन महात्मा राजाओंका यह निश्चय हुआ, कि शिखण्डी कन्या है, यदि यह सत्य होवे, तो हम लोग पाञ्चालराजको बांधकर इस स्थान पर ले आवेंगे ॥ ७ ॥

अन्यं राजानमाधाय पाञ्चालेषु नरेश्वरम् ।
घातयिष्याम नृपतिं द्रुपदं सशिखण्डिनम् ॥ ८ ॥

और दूसरे किसी भूपालको पञ्चाल देशका राजा बनाकर शिखण्डीके सहित द्रुपदका वध करेंगे ॥ ८ ॥

स तदा दूतमाज्ञाय पुनः क्षत्तारमीश्वरः ।
प्रास्थापयत्पार्षताय हन्मीति त्वां स्थिरो भव ॥ ९ ॥

तब हिरण्यवर्मा राजाने ऐसा ही निश्चय करके " तुम्हारा वध करूंगा, सावधान रहो " ऐसा सन्देश देकर फिर राजा द्रुपदके समीप दूत भेजा ॥ ९ ॥

स प्रकृत्या च वै भीरुः किल्बिषी च नराधिपः ।
भयं तीव्रमनुप्राप्तो द्रुपदः पृथिवीपतिः ॥ १० ॥

राजा द्रुपद स्वभावसे ही डरपोक थे, उस पर उस पापकर्मके कारण वे राजा द्रुपद अत्यन्त ही भयभीत हो गए ॥ १० ॥

विसृज्य दूतं दाशार्णं द्रुपदः शोककर्शितः ।
समेत्य भार्यां रहिते वाक्यमाह नराधिपः ॥ ११ ॥

वह शोकयुक्त होकर हिरण्यवर्माके पास दूत भेज कर निर्जन स्थानमें बैठकर शोक और भय-युक्त चित्तसे प्यारी रानीसे यह वचन बोले ॥ ११ ॥

भयेन महताविष्टो हृदि शोकेन चाहतः ।
पाञ्चालराजो दयितां मातरं वै शिखण्डिनः ॥ १२ ॥

वह पांचालराज द्रुपद बहुत भयभीत होकर और शोकसे भरपूर हृदयवाले होकर शिखण्डीकी प्यारी मातासे बोले ॥ १२ ॥

अभियास्यति मां कोपात्सम्बन्धी सुमहाबलः ।
हिरण्यवर्मा नृपतिः कर्षमाणो वरूथिनीम् ॥ १३ ॥

हे सुश्रोणि ! हम लोगोंके सम्बन्धी महाबली हिरण्यवर्मा राजा सेनाका संग्रह करके कुपित होकर मुझसे लडनेको चले आते हैं ॥ १३ ॥

किमिदानीं करिष्यामि मूढः कन्यामिमां प्रति ।
शिखण्डी किल पुत्रस्ते कन्येति परिशङ्कितः ॥ १४ ॥

इस समय इस कन्याके विषयमें मैं क्या करूंगा, कुछ समझ नहीं पा रहा । मैंने सुना है, कि तुम्हारे पुत्र शिखण्डीपर लोग कन्याका सन्देह करने लगे हैं ॥ १४ ॥

इति निश्चित्य तत्त्वेन समित्रः सबलानुगः ।
वञ्चितोऽस्मीति मन्वानो मां किलोद्धर्तुमिच्छति ॥ १५ ॥

इसी कारणसे हिरण्यवर्मा " मैं ठगा गया हूं, " यह कहकर यत्नपूर्वक मित्र, बल और अनुचरोंके साथ मिलकर मेरे नाश करनेकी इच्छा करता है ॥ १५ ॥

किमत्र तथ्यं सुश्रोणि किं मिथ्या ब्रूहि शोभने ।
श्रुत्वा त्वत्तः शुभं वाक्यं संविधास्याम्यहं तथा ॥ १६ ॥

हे भद्रे ! अतः अब इस विषयमें सत्य वा मिथ्या जो कुछ हो, वह तुम मुझे बताओ । हे सुन्दरी ! तुम्हारे शुभ वचन सुनकर मैं उसके अनुसार ही कार्य करूंगा ॥ १६ ॥

अहं हि संशयं प्राप्तो बाला चेयं शिखण्डिनी ।
त्वं च राज्ञि महत्कृच्छ्रं सम्प्राप्ता वरवर्णिनि ॥ १७ ॥

हे वरवर्णिनि रानी ! मेरी जान भी खतरेमें है और बाला शिखण्डिनी और तुम भी महाक्लेशसे युक्त हो गई हो ॥ १७ ॥

सा त्वं सर्वविमोक्षाय तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ।
तथा विदध्यां सुश्रोणि कृत्यस्यास्य शुचिस्मिते ।
शिखण्डिनि च मा भैस्त्वं विधास्ये तत्र तत्त्वतः ॥ १८ ॥

अतः तुमसे पूछता हूं, सबको इस विपत्तिसे छुडानेके लिए तुम सब कुछ सच सच बताओ। हे उत्तम जांघों तथा मुस्कराहटोंवाली ! मैं तुम्हारे वचनको सुनकर वैसे ही कार्यका अनुष्ठान करूंगा। तुम शिखण्डीके बारेमें कुछ भी भय मत करो, मैं सब कुछ ठीक कर दूंगा॥१८॥

क्रिययाहं वरारोहे वञ्चितः पुत्रधर्मतः ।
मया दाशार्णको राजा वञ्चितश्च महीपतिः ।
तदाचक्ष्व महाभागे विधास्ये तत्र यद्धितम् ॥ १९ ॥

हे वरारोहे ! यद्यपि तुमने मुझे पुत्रधर्मसे वञ्चित किया है, और मेरे कारण दशार्णराज हिरण्यवर्मा ठगा गया है, इसलिए, हे महाभागे ! तुम सच सच बताओ ताकि मैं जो हितकारी हो, उसे कर सकूं ॥ १९ ॥

जानतापि नरेन्द्रेण ख्यापनार्थं परस्य वै ।
प्रकाशं चोदिता देवी प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१॥ ५८८५ ॥

शिखण्डी कन्या है इस बातको जानते हुए भी पाञ्चालराज द्रुपदने दूसरेके सामने अपनी निर्दोषिता प्रकट करनेके लिए प्रकट रूपसे अपनी भार्यासे पूछा और उसने भी राजाको उत्तर दिया ॥ २० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ इक्यानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९१ ॥ ५८८५ ॥

: १९२ :

भीष्म उवाच

ततः शिखण्डिनो माता यथातत्त्वं नराधिप ।
आचचक्षे महाबाहो भर्त्रे कन्यां शिखण्डिनीम् ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे महाबाहो प्रजानाथ ! तब शिखण्डिकी माताने अपने पति राजा द्रुपदसे कन्या शिखण्डिनीके बारेमें सब बातें सच सच कह सुनाईं ॥ १ ॥

अपुत्रया मया राजन्सपत्नीनां भयादिदम् ।
कन्या शिखण्डिनी जाता पुरुषो वै निवेदितः ॥ २ ॥

उसने कहा– महाराज ! पुत्ररहित होनेके कारण मैंने सौतोंके भयसे युक्त होकर इस कन्याके उत्पन्न होनेपर भी तुम्हें पुत्र उत्पन्न होनेकी बात बताई थी ॥ २ ॥

त्वया चैव नरश्रेष्ठ तन्मे प्रीत्यानुमोदितम् ।
पुत्रकर्म कृतं चैव कन्यायाः पार्थिवर्षभ ।
भार्या चोढा त्वया राजन्दशार्णाधिपतेः सुता ॥ ३ ॥

तुमने भी मेरी प्रीतिके निमित्त उस वचनका अनुमोदन किया था और, हे राजश्रेष्ठ ! तुमने कन्याका पुत्रके समान जातकर्म संस्कार कराया था । फिर तुमने दशार्णराजकी कन्याके साथ इसका विवाह भी किया ॥ ३ ॥

त्वया च प्रागभिहितं देववाक्यार्थदर्शनात् ।
कन्या भूत्वा पुमान्भावीत्येवं चैतदुपेक्षितम् ॥ ४ ॥

हे राजन् ! तुमने महादेवका वरदान पानेके कारण पहले कहा था कि तुम्हारे प्रथम कन्या उत्पन्न होकर पुरुष हो जावेगी, अतएव मैंने इस विषयमें उपेक्षा की थी ॥ ४ ॥

एतच्छ्रुत्वा द्रुपदो यज्ञसेनः सर्वं तत्त्वं मन्त्रविद्भ्यो निवेद्य ।
मन्त्रं राजा मन्त्रयामास राजन्यथायुक्तं रक्षणे वै प्रजानाम् ॥ ५ ॥

हे भारत ! यह वचन सुनकर यज्ञसेन द्रुपदराज मन्त्रियोंको सच्ची बात बताकर प्रजाकी रक्षाके निमित्त यथोचित उपायका विचार करने लगे ॥ ५ ॥

सम्बन्धकं चैव समर्थ्य तस्मिन्दाशार्णके वै नृपतौ नरेन्द्र ।
स्वयं कृत्वा विप्रलम्भं यथावन्मन्त्रैकाग्रो निश्चयं वै जगाम ॥ ६ ॥

स्वयं प्रतारणा करके भी दशार्णाधिपति हिरण्यवर्माके साथ किये हुए उस सम्बन्धको उचित बताकर, हे नरश्रेष्ठ दुर्योधन ! द्रुपदने चित्तको एकाग्र करके प्रजाकी रक्षा करनेका निश्चय किया ॥ ६ ॥

स्वभावगुप्तं नगरमापत्काले तु भारत ।
गोपयामास राजेन्द्र सर्वतः समलंकृतम् ॥ ७ ॥

हे राजेन्द्र ! उनका नगर स्वाभाविक ही रक्षित था; उस पर भी आपत्तिकालके उपस्थित होनेपर उन्होंने सब भांतिसे नगरको अलंकृत करके उसकी अच्छी तरह रक्षा करनेका निश्चय किया ॥ ७ ॥

आर्तिं च परमां राजा जगाम सह भार्यया ।
दशार्णपतिना सार्धं विरोधे भरतर्षभ ॥ ८ ॥

हे भरतर्षभ ! दशार्णपतिके साथ विरोध होनेके कारण पाञ्चालराज भार्याके सहित अत्यन्त ही दुःखी हुए ॥ ८ ॥

×

कथं सम्बन्धिना सार्धं न मे स्याद्विग्रहो महान् ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा दैवतान्यर्चयत्तदा ॥ ९ ॥

सम्बन्धीके साथ मेरा यह महाविग्रह न होवे, इस प्रकार मन ही मन सोचकर वे देवताओंकी पूजा करने लगे ॥ ९ ॥

तं तु दृष्ट्वा तदा राजन्देवी देवपरं तथा ।
अर्चां प्रयुञ्जानमथो भार्या वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

हे राजन् ! तब राजा द्रुपदकी प्यारी रानी उनको इस प्रकारसे देव-परायण और पूजामें तत्पर देखकर यह वचन बोली ॥ १० ॥

देवानां प्रतिपत्तिश्च सत्या साधुमता सदा ।
सा तु दुःखार्णवं प्राप्य नः स्यादर्चयतां भृशम् ॥ ११ ॥

हे महाराज ! देवताओंकी आराधना सदा ही कल्याण करनेवाली है, ऐसा साधु पुरुषोंका मत है । फिर दुःखसागरमें गोते खानेवाले हमारे लिए वह देवपूजा अत्यन्त ही कल्याणप्रद होगी ॥ ११ ॥

दैवतानि च सर्वाणि पूज्यन्तां भूरिदक्षिणैः ।
अग्नयश्चापि हूयन्तां दाशार्णप्रतिषेधने ॥ १२ ॥

अतः दशार्णराज लौट जाए इसके लिए ब्राह्मणोंका संमान तथा उन्हें बहुतसी दक्षिणा प्रदान करके देवताओंकी पूजा और अग्निमें होम करो ॥ १२ ॥

अयुद्धेन निवृत्तिं च मनसा चिन्तयाभिभो ।
देवतानां प्रसादेन सर्वमेतद्भविष्यति ॥ १३ ॥

हे स्वामी ! तुम मन ही मन उस उपायका विचार करो कि जिससे विना युद्धके किये ही शान्ति हो जाए, अतः देवताओंको सन्तुष्ट करनेसे यह सब कुछ हो सकता है ॥ १३ ॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रितं सार्धं त्वया यत्पृथुलोचन ।
पुरस्यास्याविनाशाय यच्च राजंस्तथा कुरु ॥ १४ ॥

हे बडी बडी आंखोंवाले राजन् ! इस नगरकी रक्षाके निमित्त तुमने मन्त्रियोंके साथ जैसा विचार किया है; उसको भी पूर्ण रीतिसे क्रियान्वित करो ॥ १४ ॥

दैवं हि मानुषोपेतं भृशं सिद्ध्यति पार्थिव ।
परस्परविरोधात्तु नानयोः सिद्धिरस्ति वै ॥ १५ ॥

क्योंकि, हे राजन् ! पुरुषार्थ युक्त होनेपर दैवी प्रारब्ध पूर्णरूपसे शीघ्र सिद्ध होता है; पर यदि दोनों परस्पर विरोधी हों तो कार्य सिद्ध नहीं हो सकता ॥ १५ ॥

तस्माद्विधाय नगरे विधानं सचिवैः सह ।
अर्चयस्व यथाकामं दैवतानि विशां पते ॥ १६ ॥

इसलिए, हे राजेन्द्र ! मन्त्रियोंके साथ मिलकर नगरकी रक्षाका उपाय निश्चित करके इच्छानुसार देवताओंकी आराधना कीजिये ॥ १६ ॥

एवं सम्भाषमाणौ तौ दृष्ट्वा शोकपरायणौ ।
शिखण्डिनी तदा कन्या व्रीडितेव मनस्विनी ॥ १७ ॥

इस प्रकार शोकसे युक्त उन दोनोंको बात करते देखकर मनस्विनी कन्या शिखण्डी अत्यन्त लज्जित हुई ॥ १७ ॥

ततः सा चिन्तयामास मत्कृते दुःखितावुभौ ।
इमाविति ततश्चक्रे मतिं प्राणविनाशने ॥ १८ ॥

तब उसने जब जाना कि ये लोग मेरे ही कारण दुःखी हैं, तब सोच विचार करके उसने आत्महत्या करनेका निश्चय किया ॥ १८ ॥

एवं सा निश्चयं कृत्वा भृशं शोकपरायणा ।
जगाम भवनं त्यक्त्वा गहनं निर्जनं वनम् ॥ १९ ॥

हे राजन् ! शिखण्डी ऐसा निश्चय करके अत्यन्त दुःखित होकर घर त्यागकर निर्जन और घने वनमें चली गई ॥ १९ ॥

यक्षेणर्द्धिमता राजन्स्थूणाकर्णेन पालितम् ।
तद्भयादेव च जनो विसर्जयति तद्वनम् ॥ २० ॥

हे राजन् ! यह वन स्थूणाकर्ण नामके एक महाबलवान् यक्षसे रक्षित था; उसके भयसे ही मनुष्योंने उन वनको छोड रखा था ॥ २० ॥

तत्र स्थूणस्य भवनं सुधामृत्तिकलेपनम् ।
लाजोल्लापिकधूमाढ्यमुच्चप्राकारतोरणम् ॥ २१ ॥

वहांपर स्थूणाकर्णका एक ऊंचा तोरणयुक्त, चूना और स्वच्छ मृत्तिकासे पुता हुआ, शीतल मन्द सुगन्ध वायुसे युक्त अत्यन्त सुन्दर निवासस्थान था ॥ २१ ॥

तत्प्रविश्य शिखण्डी सा द्रुपदस्यात्मजा नृप ।
अनश्नती बहुतिथं शरीरमुपशोषयत् ॥ २२ ॥

हे महाराज दुर्योधन ! द्रुपदकी पुत्री शिखण्डीनी उसी स्थानमें प्रवेश करके बहुत दिनोंतक आहार त्यागकर अपना शरीर सुखाने लगी ॥ २२ ॥

दर्शयामास तां यक्षः स्थूणो मधुरक्षसंयुतः ।
किमर्थोऽयं तवारम्भः करिष्ये ब्रूहि माचिरम् ॥ २३ ॥

तब स्थूणाकर्ण मीठी आंखोंसे युक्त होकर अर्थात् दया करके उसे दर्शन देकर बोला, कि किस कारणसे तुम ऐसा व्रत करती हो; मुझे शीघ्र ही बताओ, देर मत करो॥ २३ ॥

अशक्यमिति सा यक्षं पुनः पुनरुवाच ह ।
करिष्यामीति चैनां स प्रत्युवाचाथ गुह्यकः । ॥ २४ ॥

तब शिखण्डीने बार बार उससे कहा— मेरा काम एक असाध्य कार्य है, तुम उससे पूर्ण न कर सकोगे। उसकी बात सुनकर यक्ष बोला— मैं अवश्य पूर्ण करूंगा ॥ २४ ॥

धनेश्वरस्यानुचरो वरदोऽस्मि नृपात्मजे ।
अदेयमपि दास्यामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ २५ ॥

हे राजपुत्री ! मैं धनोंके स्वामी कुबेरका सेवक हूं, और वर देनेवाला हूँ । अतः मैं न दे सकने योग्य पदार्थको भी देनेमें समर्थ हूं, अतः तुम्हारी जो मांगनेकी इच्छा हो, वह मुझसे कहो ॥ २५ ॥

ततः शिखण्डी तत्सर्वमखिलेन न्यवेदयत् ।
तस्मै यक्षप्रधानाय स्थूणाकर्णाय भारत ॥ २६ ॥

हे भारत ! तब शिखण्डीने उस यक्षोंमें प्रधान स्थूणाकर्णको आदिसे अन्ततक सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥

आपन्नो मे पिता यक्ष नचिराद्विनशिष्यति ।
अभियास्यति संक्रुद्धो दशार्णाधिपतिर्हि तम् ॥ २७ ॥

हे यक्ष ! आपत्तिमें पडे हुए मेरे पिता शीघ्र ही मारे जायेंगे, क्योंकि दशार्णराज क्रोधमें भरकर उनके ऊपर चढाई करने जा रहे हैं ॥ २७ ॥

महाबलो महोत्साहः स हेमकवचो नृपः ।
तस्माद्रक्षस्व मां यक्ष पितरं मातरं च मे ॥ २८ ॥

वह हिरण्यवर्मा राजा महाबल और उत्साहसे युक्त है; अतः, हे यक्ष ! तुम मेरी और मेरे माता पिताकी रक्षा करो ॥ २८ ॥

प्रतिज्ञातो हि भवता दुःखप्रतिनयो मम ।
भवेयं पुरुषो यक्ष त्वत्प्रसादादनिन्दितः ॥ २९ ॥

हे यक्ष ! तुमने मेरे दुःखको दूर करनेकी प्रतिज्ञा की है; अतः कोई ऐसा उपाय करो कि तुम्हारी कृपासे मैं अनिन्दित पुरुष हो जाऊं ॥ २९ ॥

यावदेव स राजा वै नोपयाति पुरं मम ।
तावदेव महायक्ष प्रसादं कुरु गुह्यक   ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ ५९१५ ॥

हे महायक्ष ! जबतक राजा हिरण्यवर्मा मेरे नगरमें नहीं आता है, तबतक मुझपर कृपा करो ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ बानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९२ ॥ ५९१५ ॥

: १९३ :

भीष्म उवाच

शिखण्डिवाक्यं श्रुत्वाथ स यक्षो भरतर्षभ ।
प्रोवाच मनसा चिन्त्य दैवेनोपनिपीडितः ।
भवितव्यं तथा तद्धि मम दुःखाय कौरव   ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे भरतर्षभ कुरुवंशी दुर्योधन ! मुझे दुःख प्राप्त होनेके लिए ही मेरा भवितव्य था, इसीलिए वह यक्ष शिखण्डीके वचन सुनकर दैवी संयोगके वशमें होकर मन ही मन विचार करके बोला ॥ १ ॥

भद्रे कामं करिष्यामि समयं तु निबोध मे ।
किञ्चित्कालान्तरं दास्ये पुंलिङ्गं स्वमिदं तव ।
आगन्तव्यं त्वया काले सत्यमेतद्ब्रवीमि ते   ॥ २ ॥

हे भद्रे ! मैं अवश्य ही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा, परन्तु जिस प्रकारकी मेरी शर्त है, उसको तुम सुनो । कुछ ही समयके लिये मैं अपना यह पुरुषचिह्न तुमको देता हूं; फिर निश्चित समयपर तुम्हें मेरे निकटमें आना पडेगा (और यह मेरा पुरुषत्व मुझे वापस लौटा देना पडेगा) यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ २ ॥

प्रभुः सङ्कल्पसिद्धोऽस्मि कामरूपी विहङ्गमः ।
मत्प्रसादात्पुरं चैव त्राहि बन्धूंश्च केवलान्   ॥ ३ ॥

मैं सङ्कल्प सिद्ध कामरूपी खेचर हूं; जो इच्छा करूं, वही कर सकता हूं; अतः तुम मेरी कृपासे नगरकी और बन्धुबान्धवोंकी रक्षा करो ॥ ३ ॥

स्त्रीलिङ्गं धारयिष्यामि त्वदीयं पार्थिवात्मजे ।
सत्यं मे प्रतिजानीहि करिष्यामि प्रियं तव   ॥ ४ ॥

हे राजपुत्री ! मैं तुम्हारा यह स्त्री–चिह्न धारण करूंगा; पर तुम भी प्रतिज्ञा करो कि काम हो जानेके बाद यह पुरुषत्व तुम्हें लौटा दूंगी, तभी तुम्हारा प्रिय कार्य पूरा करूंगा ॥४॥

शिखण्ड्युवाच

प्रतिदास्यामि भगवँल्लिङ्गं पुनरिदं तव।
किञ्चित्कालान्तरं स्त्रीत्वं धारयस्व निशाचर ॥ ५ ॥

तब शिखण्डी बोली– हे भगवन् ! मैं तुम्हारा पुरुषचिह्न तुम्हें फिर प्रदान कर दूंगी। हे रात्रीमें विचरनेवाले यक्ष ! तुम थोडे समयके लिए स्त्रीभाव धारण करो ॥ ५ ॥

प्रतिप्रयाते दाशार्णे पार्थिवे हेमवर्मणि।
कन्यैवाहं भविष्यामि पुरुषस्त्वं भविष्यसि ॥ ६ ॥

दशार्ण देशके राजा हिरण्यवर्माके लौट जानेपर मैं कन्या हो जाऊंगी और तुम भी पुरुष बन जाओगे ॥ ६ ॥

भीष्म उवाच

इत्युक्त्वा समयं तत्र चक्राते तावुभौ नृप।
अन्योन्यस्यानभिद्रोहे तौ संक्रामयतां ततः ॥ ७ ॥

भीष्म बोले– हे राजन् ! ऐसा कहकर उन दोनोंने शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की और आपसमें लिङ्गको बदल लिया ॥ ७ ॥

स्त्रीलिङ्गं धारयामास स्थूणो यक्षो नराधिप।
यक्षरूपं च तद्दीप्तं शिखण्डी प्रत्यपद्यत ॥ ८ ॥

हे राजन् ! यक्ष स्थूणाकर्णने स्त्रीलिङ्ग धारण किया और शिखण्डीने उस प्रकाशमान यक्षरूपको प्राप्त किया ॥ ८ ॥

ततः शिखण्डी पाञ्चाल्यः पुंस्त्वमासाद्य पार्थिव।
विवेश नगरं हृष्टः पितरं च समासदत्।
यथावृत्तं तु तत्सर्वमाचख्यौ द्रुपदस्य च ॥ ९ ॥

इसके बाद उस पांचालराजके पुत्र शिखण्डीने पुरुषत्वको प्राप्त करके, हे राजन् ! प्रसन्न होकर नगरमें प्रवेश किया और पिताके पास गया और जाकर जो कुछ वृत्तान्त हुआ था, सब उसने द्रुपदसे कहा ॥ ९ ॥

द्रुपदस्तस्य तच्छ्रुत्वा हर्षमाहारयत्परम्।
सभार्यस्तच्च सस्मार महेश्वरवचस्तदा ॥ १० ॥

तब राजा द्रुपद उसका वह वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और तब द्रुपदने भार्याके सहित महादेवके उस वचनको याद किया ॥ १० ॥

ततः सम्प्रेषयामास दशार्णाधिपतेर्नृप ।
पुरुषोऽयं मम सुतः श्रद्धत्तां मे भवानिति ॥ ११ ॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर उन्होंने दशार्णराजके निकट यह संवाद भेज दिया, कि मेरा यह पुत्र यथार्थमें पुरुष ही है तुम मेरे वचनपर विश्वास करो ॥ ११ ॥

अथ दाशार्णको राजा सहसाभ्यागमत्तदा ।
पाञ्चालराजं द्रुपदं दुःखामर्षसमन्वितः ॥ १२ ॥

उस समय तक राजा हिरण्यवर्माने भी दुःख और शोकसे युक्त होकर सहसा पाञ्चालराज द्रुपदके ऊपर चढाई कर दी ॥ १२ ॥

ततः काम्पिल्यमासाद्य दशार्णाधिपतिस्तदा ।
प्रेषयामास सत्कृत्य दूतं ब्रह्मविदां वरम् ॥ १३ ॥

तब दशार्णराज हिरण्यवर्माने काम्पिल्य नगरके पास जाकर शास्त्र जाननेवाले एक ब्राह्मणका सत्कार करके उसे अपना दूत बनाकर द्रुपदके पास भेजा ॥ १३ ॥

ब्रूहि मद्वचनाद्दूत पाञ्चाल्यं तं नृपाधमम् ।
यद्वै कन्यां स्वकन्यार्थे वृतवानसि दुर्मते ।
फलं तस्यावलेपस्य द्रक्ष्यस्यद्य न संशयः ॥ १४ ॥

हिरण्यवर्माने उस दूतसे कहा– हे दूत ! तुम मेरे कथनसे उस अधम राजा द्रुपदसे यह कहना, कि रे नीचबुद्धि ! तूने जो अपनी कन्याके लिए मेरी कन्याका वरण किया है, उस गर्वका फल तू आज ही भोगेगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥

एवमुक्तस्तु तेनासौ ब्राह्मणो राजसत्तम ।
दूतः प्रयातो नगरं दाशार्णनृपचोदितः ॥ १५ ॥

हे राजसत्तम ! उसका यह वचन सुनकर वह पुरोहित-ब्राह्मण दशार्णराजके द्वारा प्रेरित होकर द्रुपदराजके नगरकी ओर गया ॥ १५ ॥

तत आसादयामास पुरोधा द्रुपदं पुरे ।
तस्मै पाञ्चालको राजा गामर्घ्यं च सुसत्कृतम् ।
प्रापयामास राजेन्द्र सह तेन शिखण्डिना ॥ १६ ॥

और शीघ्र ही वह पुरोहित राजा द्रुपदकी नगरीमें पहुंचा, तब, हे राजेन्द्र ! उस शिखण्डीके सहित पाञ्चालराज द्रुपदने गौ और अर्घ आदि देकर उस ब्राह्मणका यथोचित सत्कार किया ॥ १६ ॥

तां पूजां नाभ्यनन्दत्स वाक्यं चेदमुवाच ह।
यदुक्तं तेन वीरेण राज्ञा काञ्चनवर्मणा ॥ १७॥
परन्तु उस पुरोहितने उस पूजाको स्वीकार नहीं किया, वीरवर राजा हिरण्यवर्माने जो वचन कहे थे उन्हें वह सुनाने लगा ॥ १७॥

यत्तेऽहमधमाचार दुहित्रर्थेऽस्मि वञ्चितः।
तस्य पापस्य करणात्फलं प्राप्नुहि दुर्मते ॥ १८॥
रे नृपाधम! तूने जो कन्याके साथ मेरी कन्याका विवाह करके मुझे ठगा है, हे दुष्ट बुद्धिवाले राजन्! तू उस पापकर्मका फल शीघ्र ही पावेगा ॥ १८॥

देहि युद्धं नरपते ममाद्य रणमूर्धनि।
उद्धरिष्यामि ते सद्यः सामात्यसुतबान्धवम् ॥ १९॥
हे राजन्! आज रणभूमिमें आकर मेरे साथ युद्ध कर। मैं सेवक, पुत्र और बन्धुबान्धवोंके सहित शीघ्र ही तेरा नाश कर दूंगा ॥ १९॥

तदुपालम्भसंयुक्तं श्रावितः किल पार्थिवः।
दशार्णपतिदूतेन मन्त्रिमध्ये पुरोधसा ॥ २०॥
हे भरतश्रेष्ठ! मन्त्रियोंके बीचमें दशार्ण-राजाके द्वारा भेजे गए उस पुरोहित-दूतने राजाको ऐसे तिरस्कारसे युक्त वचन सुनाये ॥ २०॥

अब्रवीद्भरतश्रेष्ठ द्रुपदः प्रणयानतः
यदाह मां भवान्ब्रह्मन्सम्बन्धिवचनाद्वचः।
तस्योत्तरं प्रतिवचो दूत एव वदिष्यति ॥ २१॥
उसे सुनकर, हे भरतश्रेष्ठ दुर्योधन! राजा द्रुपद प्रीति और विनय पूर्वक यह वचन बोले— हे ब्राह्मण! मेरे सम्बन्धी हिरण्यवर्माके वचनके अनुसार तुमने मुझसे जो कुछ कहा है, मेरा दूत ही राजाके पास जाकर उसका यथार्थ उत्तर देगा ॥ २१॥

ततः सम्प्रेषयामास द्रुपदोऽपि महात्मने।
हिरण्यवर्मणे दूतं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ २२॥
तब द्रुपदने भी महात्मा हिरण्यवर्माके पास एक वेद जाननेवाले ब्राह्मणको दूत बनाकर भेजा ॥ २२॥

समागम्य तु राज्ञा स दशार्णपतिना तदा।
तद्वाक्यमाददे राजन्यदुक्तं द्रुपदेन ह ॥ २३॥
तब वह ब्राह्मण दशार्णराज हिरण्यवर्माके पास जाकर राजा द्रुपदने जो कुछ कहा था, उन्हीं वचनोंको राजा हिरण्यवर्मासे कहने लगा ॥ २३॥

आगमः क्रियतां व्यक्तं कुमारो वै सुतो मम ।
मिथ्यैतदुक्तं केनापि तन्न श्रद्धेयमित्युत ॥ २४ ॥

आप स्पष्टरूपसे परीक्षा कीजिये, मेरा यह पुत्र यथार्थमें कुमार ही है, आपसे न जाने किसने मिथ्या वचन कह दिया है, उन वचनों पर आपको विश्वास नहीं करना चाहिए ॥२४॥

ततः स राजा द्रुपदस्य श्रुत्वा विमर्शयुक्तो युवतीर्वरिष्ठाः ।
सम्प्रेषयामास सुचारुरूपाः शिखण्डिनं स्त्री पुमान्वेति वेत्तुम् ॥ २५ ॥

तब राजा हिरण्यवर्माने द्रुपदके उस वचनको सुनकर और विचार करके शिखण्डी स्त्री है, वा पुरुष, इस बातको जाननेके लिए अत्यन्त सुन्दरी उत्तम वाराङ्गनाओंको भेजा ॥२५॥

ताः प्रेषितास्तत्त्वभावं विदित्वा प्रीत्या राज्ञे तच्छशंसुर्हि सर्वम् ।
शिखण्डिनं पुरुषं कौरवेन्द्र दशार्णराजाय महानुभावम् ॥ २६ ॥

हे कौरवेन्द्र दुर्योधन ! भेजी गई उन्होंने भी यथार्थ वृत्तान्तको जानकर-महानुभाव शिखण्डी पुरुष ही है, इस प्रकारका समाचार दशार्णराज हिरण्यवर्माके समीप जाकर बताया ॥२६॥

ततः कृत्वा तु राजा स आगमं प्रीतिमानथ ।
सम्बन्धिना समागम्य हृष्टो वासमुवास ह ॥ २७ ॥

तब वह राजा साक्षियोंके वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने अपने सम्बन्धी द्रुपदके साथ मिलकर आनन्दपूर्वक एकत्र वास किया ॥ २७ ॥

शिखण्डिने च मुदितः प्रादाद्वित्तं जनेश्वरः ।
हस्तिनोऽश्वांश्च गाश्चैव दास्यो बहुशतास्तथा ।
पूजितश्च प्रतिययौ निवर्त्य तनयां किल ॥ २८ ॥

तब राजा हिरण्यवर्माने अत्यन्त आनन्दित होकर शिखण्डीको बहुतसा धन, हाथी, घोडे, गौ तथा सैंकडों दासियां प्रदान कीं और अन्तमें पूजित होकर तथा लौटकर उसने अपनी कन्या भी शिखण्डीको प्रदान की ॥ २८ ॥

विनीतकिल्बिषे प्रीते हेमवर्मणि पार्थिवे ।
प्रतियाते तु दाशार्णे हृष्टरूपा शिखण्डिनी ॥ २९ ॥

दशार्णदेशके राजा हिरण्यवर्माको क्रोधरहित और सन्तुष्ट होकर लौट जानेपर शिखण्डी अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ ॥ २९ ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य कुबेरो नरवाहनः ।
लोकानुयात्रां कुर्वाणः स्थूणस्यागान्निवेशनम् ॥ ३० ॥

कुछ समयके अनन्तर धनके स्वामी यक्षोंके राजा नरवाहन कुबेर लोकमें भ्रमण करते हुए स्थूणाकर्णके भवनमें आये ॥ ३० ॥

स तद्गृहस्योपरि वर्तमान आलोकयामास धनाधिगोप्ता।
स्थूणस्य यक्षस्य निशाम्य वेश्म स्वलंकृतं माल्यगुणैर्विचित्रम् ॥ ३१ ॥
लाजैश्च गन्धैश्च तथा वितानैरभ्यर्चितं धूपनधूपितं च।
ध्वजैः पताकाभिरलंकृतं च भक्ष्यान्नपेयामिषदत्तहोमम् ॥ ३२ ॥

घरके ऊपर आकाशमें घूमते हुए ही उस घरकी तरफ धनपति कुबेरकी नजर गई, तब नाना प्रकारकी फूलमालाओंसे अलंकृत, अनेक प्रकारके परदोंसे, सुगन्धित पदार्थोंसे, चंदोवोंसे सजाये गए, धूपोंसे सुगंधित, ध्वजाओं और पताकाओंसे सुशोभित, भक्ष्य, अन्न, पेय, मांस आदि पदार्थों तथा होमके लिए आवश्यक सामग्रियोंसे भरपूर स्थूणाकर्णके उस घरको देखकर ॥ ३१-३२ ॥

तत्स्थानं तस्य दृष्ट्वा तु सर्वतः समलंकृतम्।
अथाब्रवीद्यक्षपतिस्तान्यक्षाननुगांस्तदा ॥ ३३ ॥

उस सुन्दर तथा हर तरफसे सजे सजाये भवनको देखकर अपने पीछे चलनेवाले यक्षोंसे यक्षोंके पति कुबेर बोले ॥ ३३ ॥

स्वलंकृतमिदं वेश्म स्थूणस्यामितविक्रमाः।
नोपसर्पति मां चापि कस्मादद्य सुमन्दधीः ॥ ३४ ॥

हे अत्यन्त पराक्रमी यक्षो ! स्थूणाकर्णका यह मन्दिर अच्छी तरह अलंकृत है। परन्तु वह मन्दबुद्धि अभीतक मेरे समीप क्यों नहीं आया ? ॥ ३४ ॥

यस्माज्जानन्सुमन्दात्मा मामसौ नोपसर्पति।
तस्मात्तस्मै महादण्डो धार्यः स्यादिति मे मतिः ॥ ३५ ॥

वह मूर्ख बुद्धिवाला स्थूणाकर्ण जान बूझकर मेरे सामने नहीं आ रहा है, अतः उसके लिए महादण्डका विधान करना चाहिए, ऐसा मेरा विचार है ॥ ३५ ॥

यक्षा ऊचुः

द्रुपदस्य सुता राजन्राज्ञो जाता शिखण्डिनी।
तस्यै निमित्ते कस्मिंश्चित्प्रादात्पुरुषलक्षणम् ॥ ३६ ॥

यक्ष बोले– हे राजन् ! द्रुपदराजके शिखण्डिनी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई थी, स्थूणाकर्णने किसी कारण अपना पुरुष–लक्षण उसे अर्पित किया है ॥ ३६ ॥

अग्रहील्लक्षणं स्त्रीणां स्त्रीभूतस्तिष्ठते गृहे।
नोपसर्पति तेनासौ सव्रीडः स्त्रीस्वरूपवान् ॥ ३७ ॥

और उसने स्वयं शिखण्डिनीसे स्त्री-चिन्ह ले लिए हैं और वह स्त्री होकर घरमें बैठा हुआ है। अतः स्त्रीभावसे युक्त होनेके कारण लज्जासे आपके समीप नहीं आ रहा है ॥ २७ ॥

एतस्मात्कारणाद्राजन्स्थूणो न त्वाद्य पश्यति ।
श्रुत्वा कुरु यथान्यायं विमानमिह तिष्ठताम् ॥ ३८ ॥

इसी कारण, हे राजन् ! वह स्थूणाकर्ण आज आपको देखने नहीं आ रहा है। यह सुनकर अब आपको इस विषयमें जो करना हो, वह कीजिये; विमान यहां ही रहे ॥ ३८ ॥

भीष्म उवाच

आनीयतां स्थूण इति ततो यक्षाधिपोऽब्रवीत् ।
कर्तास्मि निग्रहं तस्येत्युवाच स पुनः पुनः ॥ ३९ ॥

भीष्म बोले– यह सुनकर यक्षोंके स्वामी कुबेर बोले– स्थूणाकर्णको शीघ्र यहां पर लाओ, मैं उसे यथा उचित दण्ड दूंगा । इस प्रकार वे बार बार कहने लगे ॥ ३९ ॥

सोऽभ्यगच्छत यक्षेन्द्रमाहूतः पृथिवीपते ।
स्त्रीस्वरूपो महाराज तस्थौ व्रीडासमन्वितः ॥ ४० ॥

हे पृथ्वीके स्वामी महाराज दुर्योधन ! वह स्त्रीरूपधारी स्थूणाकर्ण स्वामीकी आज्ञा सुनकर उनके समीप आकर लज्जापूर्वक खडा हो गया ॥ ४० ॥

तं शशाप सुसंक्रुद्धो धनदः कुरुनन्दन ।
एवमेव भवत्वस्य स्त्रीत्वं पापस्य गुह्यकाः ॥ ४१ ॥

तब, हे कुरुनन्दन ! धनके स्वामी यक्षराज कुबेरने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, 'हे यक्षवृन्द ! यह पापी इसी प्रकारसे स्त्री ही बना रहे ' ऐसा कहकर उसे शाप दिया ॥ ४१ ॥

ततोऽब्रवीद्यक्षपतिर्महात्मा यस्माददास्त्ववमन्येह यक्षान् ।
शिखण्डिने लक्षणं पापबुद्धे स्त्रीलक्षणं चाग्रहीः पापकर्मन् ॥ ४२ ॥

फिर महात्मा यक्षपति कुबेर बोले– रे पापी ! तूने यक्षोंकी अवमानना करके शिखण्डीको अपना पुरुष लक्षण अर्पित किया और उसका स्त्री चिन्ह तूने धारण किया है ॥ ४२ ॥

अप्रवृत्तं सुदुर्बुद्धे यस्मादेतत्कृतं त्वया ।
तस्मादद्य प्रभृत्येव त्वं स्त्री स पुरुषस्तथा ॥ ४३ ॥

अतः, दुष्ट बुद्धे ! जो तूने ऐसा अयुक्त कर्म किया है; इस कारण आजसे तू स्त्री हो जाएगा और वह पुरुष हो जाएगी ॥ ४३ ॥

ततः प्रसादयामासुर्यक्षा वैश्रवणं किल ।
स्थूणस्यार्थे कुरुष्वान्तं शापस्येति पुनः पुनः ॥ ४४ ॥

हे तात ! तब यक्ष लोगोंने शापसे मुक्त कीजिये बार बार ऐसा कहकर स्थूणाकर्णके निमित्त कुबेरको प्रसन्न किया ॥ ४४ ॥

ततो महात्मा यक्षेन्द्रः प्रत्युवाचानुगामिनः।
सर्वान्यक्षगणांस्तात शापस्यान्तचिकीर्षया ॥ ४५ ॥

तब, हे तात ! महात्मा यक्षराज कुबेर शापसे मुक्त करनेके अभिलाषी होकर अपने अनुगामी सेवक यक्षगणोंसे यह बोले ॥ ४५ ॥

हते शिखण्डिनि रणे स्वरूपं प्रतिपत्स्यते।
स्थूणो यक्षो निरुद्वेगो भवत्विति महामनाः ॥ ४६ ॥

युद्धमें शिखण्डीके मरने पर यक्ष स्थूणाकर्ण फिर अपने स्वरूपको प्राप्त कर लेगा, अतः यह महात्मा यक्ष धीरज धारण करके उद्वेगरहित हो ॥ ४६ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्देवो यक्षराक्षसपूजितः।
प्रययौ सह तैः सर्वैर्निमेषान्तरचारिभिः ॥ ४७ ॥

ऐसा कहकर भगवान् कुबेर यक्ष और राक्षसोंसे पूजित होकर एक ही पलमें जहां चाहे वहां पहुंच जानेवाले सेवकोंके सहित अपने स्थान पर गये ॥ ४७ ॥

स्थूणस्तु शापं सम्प्राप्य तत्रैव न्यवसत्तदा।
समये चागमत्तं वै शिखण्डी स क्षपाचरम् ॥ ४८ ॥

और तब स्थूणाकर्ण शापग्रस्त होकर वहीं पर निवास करने लगा। शिखण्डी यथा समय रात्रीमें विचरनेवाले उस यक्षके निकट आया ॥ ४८ ॥

सोऽभिगम्याब्रवीद्वाक्यं प्राप्तोऽस्मि भगवन्निति।
तमब्रवीत्ततः स्थूणः प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः ॥ ४९ ॥

और उसके सम्मुख जाकर यह वचन बोला— हे भगवन् ! मैं आ गया हूं; तब स्थूणाकर्णने बार बार यही वचन कहा कि मैं तुझसे प्रसन्न हूं ॥ ४९ ॥

आर्जवेनागतं दृष्ट्वा राजपुत्रं शिखण्डिनम्।
सर्वमेव यथावृत्तमाचचक्षे शिखण्डिने ॥ ५० ॥

उस यक्षने राजपुत्र शिखण्डीको सरलभावसे आया हुआ देखकर जो कुछ हुआ था, वह सब शिखण्डीसे कह डाला ॥ ५० ॥

यक्ष उवाच

शप्तो वैश्रवणेनास्मि त्वत्कृते पार्थिवात्मज।
गच्छेदानीं यथाकामं चर लोकान्यथासुखम् ॥ ५१ ॥

यक्ष बोला— हे राजपुत्र ! मैं तुम्हारे कारण कुबेरसे शाप पा चुका हूं, अब तुम जाओ और इच्छानुसार सुखपूर्वक लोकमें आनन्द करो ॥ ५१ ॥

दिष्टमेतत्पुरा मन्ये न शक्यमतिवर्तितुम् ।
गमनं तव चेतो हि पौलस्त्यस्य च दर्शनम् ॥ ५२ ॥

तुम्हारा यहांसे जाना और उसी समय यक्षराज कुबेरका आना ये दोनों देवके द्वारा निश्चित किये गए थे, ऐसा ही मैं समझता हूं; यह किसी भी प्रकारसे टाला नहीं जा सकता ॥५२॥

भीष्म उवाच

एवमुक्तः शिखण्डी तु स्थूणयक्षेण भारत ।
प्रत्याजगाम नगरं हर्षेण महतान्वितः ॥ ५३ ॥

भीष्म बोले– हे भारत ! शिखण्डी स्थूणाकर्णकी यह बात सुनकर अत्यन्त हर्षित हो अपने नगर लौट आया ॥ ५३ ॥

पूजयामास विविधैर्गन्धमाल्यैर्महाधनैः ।
द्विजातीन्देवताश्चापि चैत्यानथ चतुष्पथान् ॥ ५४ ॥

और उसने महामूल्य अनेक सुगन्धित माला तथा धनसे ब्राह्मणों तथा देवताओंकी पूजा की। मन्दिर तथा चौराहे सजाये ॥ ५४ ॥

द्रुपदः सह पुत्रेण सिद्धार्थेन शिखण्डिना ।
मुदं च परमां लेभे पाञ्चाल्यः सह बान्धवैः ॥ ५५ ॥

हे भारत ! पांचाल राजा द्रुपद प्रयोजन सिद्धिको प्राप्त हुए हुए अपने पुत्र शिखण्डी और और बन्धु-बान्धवोंके साथ बहुत ही आनन्दित हुए ॥ ५५ ॥

शिष्यार्थं प्रददौ चापि द्रोणाय कुरुपुङ्गव ।
शिखण्डिनं महाराज पुत्रं स्त्रीपूर्विणं तथा ॥ ५६ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ महाराज ! इसके बाद उन्होंने स्त्रीसे पुरुष हुए अपने पुत्र शिखण्डीको धनुष विद्या सिखानेके लिए द्रोणाचार्यके हाथमें समर्पित किया ॥ ५६ ॥

प्रतिपेदे चतुष्पादं धनुर्वेदं नृपात्मजः ।
शिखण्डी सह युष्माभिर्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ५७ ॥

पृषत्वंशी राजपुत्र धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने तुम लोगोंके साथ चारों पादोंसे युक्त धनुष-विद्या सीखी ॥ ५७ ॥

मम त्वेतच्चरास्तात यथावत्प्रत्यवेदयन् ।
जडान्धबधिराकारा ये युक्ता द्रुपदे मया ॥ ५८ ॥

हे तात ! मैंने द्रुपदके नगरमें जो जड, अन्धे और बधिरके रूपमें सब गुप्तचरोंको नियुक्त किया था, उन्हीं लोगोंने मुझे यह यथार्थ वृत्तान्त सुनाया था ॥ ५८ ॥

एवमेष महाराज स्त्रीपुमान्द्रुपदात्मजः ।
सम्भूतः कौरवश्रेष्ठ शिखण्डी रथसत्तमः ॥ ५९ ॥

हे कौरवश्रेष्ठ ! द्रुपदपुत्र रथसत्तम शिखण्डी इस प्रकारसे स्त्री होकर फिर पुरुष हुआ है ॥ ५९ ॥

ज्येष्ठा काशिपतेः कन्या अम्बा नामेति विश्रुता ।
द्रुपदस्य कुले जाता शिखण्डी भरतर्षभ ॥ ६० ॥

हे भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ! अम्बाके नामसे विख्यात काशीराजकी बडी कन्या राजा द्रुपदके कुलमें जन्म लेकर शिखण्डी हुई है ॥ ६० ॥

नाहमेनं धनुष्पाणिं युयुत्सुं समुपस्थितम् ।
मुहूर्तमपि पश्येयं प्रहरेयं न चाप्युत ॥ ६१ ॥

हाथमें धनुष लेकर युद्धके लिए शिखण्डीके सम्मुख उपस्थित होनेपर भी मैं उसकी ओर क्षणमात्र भी न देखूंगा और न उसके ऊपर प्रहार ही करूंगा ॥ ६१ ॥

व्रतमेतन्मम सदा पृथिव्यामपि विश्रुतम् ।
स्त्रियां स्त्रीपूर्वके चापि स्त्रीनाम्नि स्त्रीस्वरूपिणि ॥ ६२ ॥
न मुञ्चेयमहं बाणानिति कौरवनन्दन ।
न हन्यामहमेतेन कारणेन शिखण्डिनम् ॥ ६३ ॥

पृथ्वीमें मेरा यह व्रत सदासे प्रसिद्ध है, कि मैं स्त्री, अथवा पहले जो स्त्री रहा हो, स्त्रीस्वरूप स्त्रीनामधारी पुरुषके ऊपर शस्त्र नहीं चलाता हूं । हे कौरवनन्दन ! इसी कारणसे मैं शिखण्डीका वध नहीं करूंगा ॥ ६२-६३ ॥

एतत्तत्त्वमहं वेद जन्म तात शिखण्डिनः ।
ततो नैनं हनिष्यामि समरेष्वाततायिनम् ॥ ६४ ॥

हे तात ! मैं इस शिखण्डीके जन्म—वृत्तान्तके तत्त्वको जानता हूं, अतः युद्धमें आततायी होनेपर भी उसका वध नहीं करूंगा ॥ ६४ ॥

यदि भीष्मः स्त्रियं हन्याद्धन्यादात्मानमप्युत ।
नैनं तस्माद्धनिष्यामि दृष्ट्वापि समरे स्थितम् ॥ ६५ ॥

भीष्म यदि स्त्रीकी हत्या करेगा, तो मानों वह स्वयंकी ही हत्या करेगा, अतः मैं उसे युद्धमें सम्मुख खडा देख करके भी नहीं मारूंगा ॥ ६५ ॥

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु कौरव्यो राजा दुर्योधनस्तदा।
मुहूर्तमिव स ध्यात्वा भीष्मे युक्तममन्यत ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥ ५९८१ ॥

संजय बोले– तब कौरव राजा दुर्योधनने यह वचन सुनकर एक मुहूर्त भर विचार करके भीष्मके लिये यह समुचित ही जाना ॥ ६६ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ तिरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९३ ॥ ५९८१ ॥

: १९४ :

सञ्जय उवाच

प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनरेव सुतस्तव।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पितामहमपृच्छत ॥ १ ॥

सञ्जय बोले– हे राजन् ! रातके बीत जाने तथा प्रातःकाल होने पर तुम्हारे पुत्रने फिर सेनाके बीचमें भीष्म पितामहसे पूछा ॥ १ ॥

पाण्डवेयस्य गाङ्गेय यदेतत्सैन्यमुत्तमम्।
प्रभूतनरनागाश्वं महारथसमाकुलम् ॥ २ ॥

हे गङ्गानन्दन ! युधिष्ठिरकी अनेक पैदल हाथी, घोडोंसे युक्त तथा अनेकों महारथियोंसे युक्त यह जो उत्तम सेना है ॥ २ ॥

भीमार्जुनप्रभृतिभिर्महेष्वासैर्महाबलैः।
लोकपालोपमैर्गुप्तं धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥ ३ ॥

योद्धा धृष्टद्युम्नको आगे करके अर्थात् सेनापति बनाकर लडनेवाले लोकपालके समान भीम, अर्जुन आदि महाबलशाली धनुर्धारियोंसे युक्त रक्षित ॥ ३ ॥

अप्रधृष्यमनावार्यमुद्वृत्तमिव सागरम्।
सेनासागरमक्षोभ्यमपि देवैर्महाहवे ॥ ४ ॥

अत्यन्त बलवान्, निवारण न होने योग्य, महासमुद्रके समान, देवताओंसे भी युद्धमें न जीते जा सकने योग्य, यह जो अपार सेनासागर युद्धके निमित्त तैयार है ॥ ४ ॥

केन कालेन गाङ्गेय क्षपयेथा महाद्युते ।
आचार्यो वा महेष्वासः कृपो वा सुमहाबलः ॥ ५ ॥

उस सेनाका, हे महातेजस्वी भीष्म! आप कितने समयमें नाश कर सकते हैं? महा धनुर्धारी आचार्य द्रोण और महाबलवान् कृपाचार्य ॥ ५ ॥

कर्णो वा समरश्लाघी द्रौणिर्वा द्विजसत्तमः ।
दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे भवन्तो हि बले मम ॥ ६ ॥

युद्धमें प्रसंशित कर्ण और द्विजसत्तम अश्वत्थामा आदि आप सब लोग मेरी सेनामें दिव्य अस्त्रोंको जाननेवाले हैं। ये लोग भी कितने दिनोंमें शत्रुसेनाका नाश कर सकते हैं? ॥६॥

एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे ।
हृदि नित्यं महाबाहो वक्तुमर्हसि तन्मम ॥ ७ ॥

हे महाबाहो! मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं; यह परम कुतूहल मेरे हृदयमें उत्पन्न हुआ है, अतः आप मुझे यह बात बतायें ॥ ७ ॥

भीष्म उवाच

अनुरूपं कुरुश्रेष्ठ त्वय्येतत्पृथिवीपते ।
बलाबलममित्राणां स्वेषां च यदि पृच्छसि ॥ ८ ॥

भीष्म बोले— हे कुरुश्रेष्ठ राजन्! तुम जो इस समय शत्रुओंके तथा अपने बल और अबलको जाननेकी इच्छा करते हो, यह तुम्हारे योग्य ही प्रश्न है ॥ ८ ॥

शृणु राजन्मम रणे या शक्तिः परमा भवेत् ।
अस्त्रवीर्यं रणे यच्च भुजयोश्च महाभुज ॥ ९ ॥

हे महाबाहो राजन्! युद्धमें मेरी जितनी शक्ति, शस्त्रका पराक्रम, बाहुबल है, उसे तुम सुनो ॥ ९ ॥

आर्जवेनैव युद्धेन योद्धव्य इतरो जनः ।
मायायुद्धेन मायावी इत्येतद्धर्मनिश्चयः ॥ १० ॥

हे राजन्! युद्धधर्मका यही सिद्धान्त है, कि साधारण लोगोंके साथ सरल युद्ध करे और मायासे युद्ध करनेवालोंके साथ माया-युद्ध ही करे ॥ १० ॥

हन्यामहं महाबाहो पाण्डवानामनीकिनीम् ।
दिवसे दिवसे कृत्वा भागं प्रागाह्निकं मम ॥ ११ ॥
योधानां दशसाहस्रं कृत्वा भागं महाद्युते ।
सहस्रं रथिनामेकमेष भागो मतो मम ॥ १२ ॥

हे महाभाग, महातेजस्वी दुर्योधन! प्रतिदिन मेरे पूर्वाह्नका कार्य समाप्त हो जानेपर पाण्डवोंकी सेनामेंसे दस हजार योद्धा, एक हजार रथी, इतना रोजका भाग बनाकर शाम तक उनका नाश करता जाऊंगा। यह अपना रोजका हिस्सा मैंने निश्चित किया है ॥११-१२॥

अनेनाहं विधानेन सन्नद्धः सततोत्थितः ।
क्षपयेयं महत्सैन्यं कालेनानेन भारत ॥ १३ ॥

हे भारत ! मैं सावधान और सदा उद्यमशील होकर इसी प्रकारसे और इतने ही समयमें उस महासेनाके नाश करनेमें समर्थ हूं ॥ १३ ॥

यदि त्वस्त्राणि मुञ्चेयं महान्ति समरे स्थितः ।
शतसाहस्रघातीनि हन्यां मासेन भारत ॥ १४ ॥

अथवा, हे भारत ! युद्धमें स्थित होकर शतघाती तथा सहस्र पुरुषोंके मारनेवाले महान् शस्त्रोंको चलाऊं, तो एक ही महीनेमें पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश कर सकता हूं ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच

श्रुत्वा भीष्मस्य तद्वाक्यं राजा दुर्योधनस्तदा ।
पर्यपृच्छत राजेन्द्र द्रोणमङ्गिरसां वरम् ॥ १५ ॥

सञ्जय बोले– हे राजेन्द्र ! तब राजा दुर्योधनने भीष्मके उस वचनको सुनकर फिर भरद्वाज-श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे भी यह प्रश्न किया ॥ १५ ॥

आचार्य केन कालेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।
निहन्या इति तं द्रोणः प्रत्युवाच हसन्निव ॥ १६ ॥

हे गुरुदेव ! आप कितने समयमें युधिष्ठिरकी सेनाका नाश कर सकते हैं ? तब द्रोणाचार्य हंसकर उससे यह वचन बोले ॥ १६ ॥

स्थविरोऽस्मि कुरुश्रेष्ठ मन्दप्राणविचेष्टितः ।
अस्त्राग्निना निर्दहेयं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १७ ॥
यथा भीष्मः शान्तनवो मासेनेति मतिर्मम ।
एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ॥ १८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन ! मैं अब वृद्ध हो गया हूं, अतः मेरी चेष्टा और तेज भी कम हो गया है; तो भी अपने अस्त्रोंकी अग्निसे अपने विचारसे शन्तनुपुत्र भीष्मकी भांति मैं भी एक महीनेमें पाण्डवोंकी सेना भस्म कर सकता हूं; यही मेरी परम शक्ति तथा परम बल है ॥ १७-१८ ॥

द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम् ।
कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ॥ १९ ॥

तदनन्तर शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने दो महीनेमें, अश्वत्थामाने दस रातमें ही पाण्डवसेनाको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की और महाअस्त्रोंके जाननेवाले कर्णने केवल पांच दिनमें ही पाण्डवोंके बलको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की ॥ १९ ॥

×

तच्छ्रुत्वा सूतपुत्रस्य वाक्यं सागरगासुतः ।
जहास सस्वनं हासं वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ २० ॥

सूतपत्र कर्णका यह कथन सुनकर गङ्गानन्दन भीष्म ऊंचे स्वरसे हंसने लगे और यह वचन बोले ॥ २० ॥

न हि तावद्रणे पार्थं बाणखड्गधनुर्धरम् ।
वासुदेवसमायुक्तं रथेनोद्यन्तमच्युतम् ॥ २१ ॥
समागच्छसि राधेय तेनैवमभिमन्यसे ।
शक्यमेवं च भूयश्च त्वया वक्तुं यथेष्टतः ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ ६००३ ॥

हे राधेय ! तुम जबतक संग्राममें बाण, तलवार और शरासनधारी तथा कृष्णके सहित रथपर चढे हुए अर्जुनके संमुख नहीं पहुंचते हो तभीतक ऐसा समझते हो, पर इस समय तो इतना ही क्या, तुम चाहो तो इससे भी अधिक कह सकते हो ॥ २१-२२ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ चौरानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९४ ॥ ६००३ ॥

: १९५ :

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयः सर्वान्भ्रातॄनुपह्वरे ।
आहूय भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— हे भरतश्रेष्ठ ! युधिष्ठिर यह वृत्तान्त सुनकर सब भाइयोंको निर्जन स्थानमें बुलाकर उनसे यह वचन बोले ॥ १ ॥

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु ये चारपुरुषा मम ।
ते प्रवृत्तिं प्रयच्छन्ति ममेमां व्युषितां निशाम् ॥ २ ॥

मैंने जो दुर्योधनकी सब सेनामें अपने गुप्तचरोंको नियुक्त किया था, उन लोगोंने आज रातके बीत जानेपर अर्थात् प्रातःकाल मुझे यह सन्देश दिया है ॥ २ ॥

दुर्योधनः किलापृच्छदापगेयं महाव्रतम् ।
केन कालेन पाण्डूनां हन्याः सैन्यमिति प्रभो ॥ ३ ॥

कि दुर्योधनने महाव्रती गङ्गानन्दन भीष्मसे पूछा था कि हे प्रभो ! आप सब कितने समयमें पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर सकेंगे ? ॥ ३ ॥

मासेनेति च तेनोक्तो धार्तराष्ट्रः सुदुर्मतिः ।
तावता चापि कालेन द्रोणोऽपि प्रत्यजानत ॥ ४ ॥

उस बातको सुनकर भीष्मने उस नीचबुद्धि धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनसे कहा कि एक महीनेमें, और द्रोणाचार्यने भी उतने ही समयमें मेरी सेनाके नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ४ ॥

गौतमो द्विगुणं कालमुक्तवानिति नः श्रुतम् ।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ॥ ५ ॥

मैंने सुना है, कृपाचार्यने दो मासका समय बताया है और महाअस्त्रोंके जाननेवाले अश्वत्थामाने दस दिनमें मेरी सेनाको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ५ ॥

तथा दिव्यास्त्रवित्कर्णः सम्पृष्टः कुरुसंसदि ।
पञ्चभिर्दिवसैर्हन्तुं स सैन्यं प्रतिजज्ञिवान् ॥ ६ ॥

दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाले कर्णने कौरवोंके बीच पूछे जानेपर पांच दिनमें ही मेरी सेनाके नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ६ ॥

तस्मादहमपीच्छामि श्रोतुमर्जुन ते वचः ।
कालेन कियता शत्रून्क्षपयेरिति संयुगे ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! अतः मैं भी तुम्हारा वचन सुननेकी इच्छा करता हूं; तुम युद्धमें कितने समयमें शत्रुओंकी सेनाका संहार कर सकते हो ? ॥ ७ ॥

एवमुक्तो गुडाकेशः पार्थिवेन धनञ्जयः ।
वासुदेवमवेक्ष्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर धनंजय अर्जुन कृष्णको देखकर यह वचन बोले ॥८॥

सर्व एते महात्मानः कृतास्त्राश्चित्रयोधिनः ।
असंशयं महाराज हन्युरेव बलं तव ॥ ९ ॥

हे महाराज ! ये सभी भीष्म आदि महात्मा, अस्त्रविद्यामें कुशल और महावीर योद्धा हैं, अतः अवश्य ही ये उतने समयमें तुम्हारी सेनाका नाश कर सकते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥९॥

अपैतु ते मनस्तापो यथा सत्यं ब्रवीम्यहम् ।
हन्यामेकरथेनाहं वासुदेवसहायवान् ॥ १० ॥
सामरानपि लोकांस्त्रीन्सहस्थावरजङ्गमान् ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च निमेषादिति मे मतिः ॥ ११ ॥

परन्तु आप अपने मनसे यह दुःख दूर कीजिये; मैं सत्य कहता हूं, श्रीकृष्णकी सहायतासे एकरथसे ही निमेषमात्रमें मैं भूत, वर्तमान, भविष्य स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण प्राणियों, यहांतक कि देवताओंके सहित तीनों लोकका भी संहार कर सकता हूं ॥ १०–११ ॥

यत्तद्घोरं पशुपतिः प्रादादस्त्रं महन्मम ।
कैराते द्वन्द्वयुद्धे वै तदिदं मयि वर्तते ॥ १२ ॥

किरातीय द्वन्द्व-युद्धमें भगवान् महादेवने मुझे जो यह अत्यन्त घोर महाअस्त्र प्रदान किया था, वह मेरे पास विद्यमान है ॥ १२ ॥

यद्युगान्ते पशुपतिः सर्वभूतानि संहरन् ।
प्रयुङ्क्ते पुरुषव्याघ्र तदिदं मयि वर्तते ॥ १३ ॥

हे पुरुषसिंह ! प्रलयकालके समय सब प्राणियोंके संहारके लिए भगवान् रुद्र इस महाअस्त्रको चलाते हैं । वही यह महाअस्त्र मेरे पास है ॥ १३ ॥

तन्न जानाति गाङ्गेयो न द्रोणो न च गौतमः ।
न च द्रोणसुतो राजन्कुत एव तु सूतजः ॥ १४ ॥

उस अस्त्रको न गंगापुत्र भीष्म जानते हैं, न द्रोणाचार्य जानते हैं, न कृपाचार्य जानते हैं और नाही द्रोणपुत्र अश्वत्थामा जानते हैं । जब ये भी नहीं जानते, तो सूतपुत्र कर्ण ही कैसे जान सकेगा ? ॥ १४ ॥

न तु युक्तं रणे हन्तुं दिव्यैरस्त्रैः पृथग्जनम् ।
आर्जवेनैव युद्धेन विजेष्यामो वयं परान् ॥ १५ ॥

परन्तु दिव्य-अस्त्रोंसे साधारण लोगोंको युद्धमें मारना उचित नहीं है; इस कारणसे हम सरल युद्धहीसे शत्रुओंको पराजित करेंगे ॥ १५ ॥

तथेमे पुरुषव्याघ्राः सहायास्तव पार्थिव ।
सर्वे दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ॥ १६ ॥

और, हे राजन् ! यह जो सब पुरुषसिंह तुम्हारे सहायक हैं, ये सभी दिव्य अस्त्रोंके जानने-वाले तथा सभी युद्धको चाहनेवाले हैं ॥ १६ ॥

वेदान्तावभृथस्नाताः सर्वे एतेऽपराजिताः ।
निहन्युः समरे सेनां देवानामपि पाण्डव ॥ १७ ॥

विवाह कर्मके साथही साथ सब यज्ञस्नात हुए हैं, हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ! ये अपराजित वीर युद्धमें देवताओंकी सेनाका भी संहार कर सकते हैं ॥ १७ ॥

शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
भीमसेनो यमौ चोभौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ १८ ॥

शिखण्डी, युयुधान, पृषद्वंशी धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल, सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा ॥ १८ ॥

विराटद्रुपदौ चोभौ भीष्मद्रोणसमौ युधि।
स्वयं चापि समर्थोऽसि त्रैलोक्योत्सादने अपि ॥ १९ ॥

युद्ध करनेमें भीष्म–द्रोणके समान बूढे विराट और द्रुपद, और तुम स्वयं भी तीनों लोकोंके नाश करनेमें समर्थ हो ॥ १९ ॥

क्रोधाद्यं पुरुषं पश्येस्त्वं वासवसमद्युते।
क्षिप्रं न स भवेद्व्यक्तमिति त्वां वेद्मि कौरव ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥ ६०२३ ॥

हे इन्द्रके समान तेजस्वी कुरुवंशी युधिष्ठिर ! मैं इस बातको निश्चयसे जानता हूं, कि तुम क्रोधपूर्वक जिस पुरुषकी ओर देखोगे वह क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ २० ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ पिचानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९५ ॥ ६०२३ ॥

: १९६ :

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रभाते विमले धार्तराष्ट्रेण चोदिताः।
दुर्योधनेन राजानः प्रययुः पाण्डवान्प्रति ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर भलीभांतिसे सवेरा होनेपर दुर्योधनके द्वारा प्रेरित होकर सब राजागण पाण्डवोंपर हमला करनेके लिए चल पडे ॥ १ ॥

आप्लाव्य शुचयः सर्वे स्रग्विणः शुक्लवाससः।
गृहीतशस्त्रा ध्वजिनः स्वस्ति वाच्य हुताग्नयः ॥ २ ॥

वे सब राजा स्नान करके पवित्र हो, सफेद वस्त्र और माला पहनकर अस्त्र शस्त्र ध्वजा आदि ग्रहण करके होम और स्वस्ति वाचनसे सम्पन्न थे ॥ २ ॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः।
सर्वे कर्मकृतश्चैव सर्वे चाहवलक्षणाः ॥ ३ ॥

वे सब लोग वेदज्ञ शूरवीर उत्तम-चरित और व्रत करनेवाले, पराक्रमी, अभीष्टके सिद्ध करनेवाले और युद्ध–विद्याके जाननेवाले थे ॥ ३ ॥

आहवेषु पराँल्लोकाञ्जिगीषन्तो महाबलाः।
एकाग्रमनसः सर्वे श्रद्दधानाः परस्य च ॥ ४ ॥

वे महाबलवान् क्षत्रिय लोग आपसमें श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त होकर युद्धमें शत्रु लोगोंके जीतनेकी अभिलाषासे चल पडे ॥ ४ ॥

×

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केकया बाह्लिकैः सह ।
प्रययुः सर्व एवैते भारद्वाजपुरोगमाः ॥ ५ ॥

पहिले अवन्ती-देशीय विन्द और अनुविन्द और बाह्लिकके सहित केकय देशके वीर योद्धा द्रोणाचार्यको आगे करके चले ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा शान्तनवः सैन्धवोऽथ जयद्रथः ।
दाक्षिणात्याः प्रतीच्याश्च पार्वतीयाश्च ये रथाः ॥ ६ ॥

उसके बाद अश्वत्थामा, शन्तनुपुत्र भीष्म, सिन्धुदेशका राजा जयद्रथ, दक्षिण और पश्चिम दिशा तथा पर्वत प्रदेशके जो रथी थे, वे भी चल पडे ॥ ६ ॥

गान्धारराजः शकुनिः प्राच्योदीच्याश्च सर्वशः ।
शकाः किराता यवनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ७ ॥

उसके बाद गांधारराज शकुनि पूर्व और उत्तर दिशाके राजा लोग और शक, किरात, यवन, शिवि और वसाति आदि ॥ ७ ॥

स्वैः स्वैरनीकैः सहिताः परिवार्य महारथम् ।
एते महारथाः सर्वे द्वितीये निर्ययुर्बले ॥ ८ ॥

ये सब महारथी राजा अपनी अपनी सेनासे महारथियोंको घेरकर दूसरी टुकडीमें चले ॥८॥

कृतवर्मा सहानीकस्त्रिगर्ताश्च महाबलाः ।
दुर्योधनश्च नृपतिर्भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ९ ॥

उसके बाद सेनाके सहित कृतवर्मा, महाबली त्रिगर्त्त, भाइयोंसे घिरा हुआ राजा दुर्योधन ॥ ९ ॥

शलो भूरिश्रवाः शल्यः कौसल्योऽथ बृहद्बलः ।
एते पश्चादवर्तन्त धार्तराष्ट्रपुरोगमाः ॥ १० ॥

शल, भूरिश्रवा, शल्य और कौशलराज बृहद्बल; ये लोग धार्तराष्ट्र दुर्योधनको आगे करके सब पीछे चले ॥ १० ॥

ते समेन पथा यात्वा योत्स्यमाना महारथाः ।
कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवतिष्ठन्त दंशिताः ॥ ११ ॥

हे भारत! वे महाभाग महारथी उत्तम और समतल मार्गोंको तय करते हुए कुरुक्षेत्रके अर्धभागमें स्थित होकर युद्धके निमित्त सजकर खडे हो गए ॥ ११ ॥

दुर्योधनस्तु शिबिरं कारयामास भारत ।
यथैव हास्तिनपुरं द्वितीयं समलंकृतम् ॥ १२ ॥

हे भारत जनमेजय! दुर्योधनने अपने शिविरको दूसरे हस्तिनापुरके समान अलंकृत कराया ॥ १२ ॥

न विशेषं विजानन्ति पुरस्य शिबिरस्य वा ।
कुशला अपि राजेन्द्र नरा नगरवासिनः ॥ १३ ॥

हे राजन्! नगरवासी निपुण मनुष्य भी नगर और शिबिरमें कुछ भी भेद न कर सके ॥ १३ ॥

तादृशान्येव दुर्गाणि राज्ञामपि महीपतिः ।
कारयामास कौरव्यः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥

कौरवराज दुर्योधनने दूसरे राजाओंके भी वैसे ही सैंकडों सहस्रों दुर्गम शिविर निर्माण कराये ॥ १४ ॥

पञ्चयोजनमुत्सृज्य मण्डलं तद्रणाजिरम् ।
सेनानिवेशास्ते राजन्नाविशञ्शतसङ्घशः ॥ १५ ॥

हे राजन्! उस रणभूमिके पांच योजन अर्थात् चालीस मीलकी परिधि युक्त स्थानको व्याप्त करके वह सब सहस्र राजाओंकी सेना इकट्ठी हुई ॥ १५ ॥

तत्र ते पृथिवीपाला यथोत्साहं यथाबलम् ।
विविशुः शिबिराण्याशु द्रव्यवन्ति सहस्रशः ॥ १६ ॥

वहांपर उन सब राजाओंने उत्साह और बलके अनुसार बहुतसी सामग्रियोंसे युक्त अनेकों शिबिरोंमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥

तेषां दुर्योधनो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ।
व्यादिदेश सबाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

राजा दुर्योधनने उन सब सेनाओंसे युक्त महात्मा राजाओंके लिए-भक्ष्य, भोजनकी उत्तम प्रकारसे व्यवस्था की ॥ १७ ॥

सगजाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ।
ये चान्येऽनुगतास्तत्र सूतमागधबन्दिनः ॥ १८ ॥

इसी प्रकार हाथी घोडों आदियोंसे युक्त जो मनुष्य तथा वहांपर जो सब शिल्पी, सूत, मागध, स्तुतिपाठ करनेवाले आए हुए थे, उनके लिए उत्तम प्रबन्ध किया ॥ १८ ॥

वणिजो गणिका वारा ये चैव प्रेक्षका जनाः ।
सर्वांस्तान्कौरवो राजा विधिवत्प्रत्यवैक्षत ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ ॥ ६०४२ ॥

वणिक्, वेश्या, वारांगनायें और युद्धको देखनेवाले पुरुष आये थे, कौरवराज दुर्योधनने उन लोगोंके लिए भी विधिपूर्वक प्रबन्ध किया ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ छियानव्वेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९६ ॥ ६०४२ ॥

: १९७ :

वैशम्पायन उवाच

तथैव राजा कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
धृष्टद्युम्नमुखान्वीरांश्चोदयामास भारत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले- हे भारत ! उधर कुन्तीमें धर्मसे उत्पन्न राजा युधिष्ठिरने भी उसी प्रकारसे धृष्टद्युम्न आदि वीरोंको तैयार होनेके लिए आज्ञा दी ॥ १ ॥

चेदिकाशिकरूषाणां नेतारं दृढविक्रमम् ।
सेनापतिममित्रघ्नं धृष्टकेतुमथादिशत् ॥ २ ॥

चेदि काशि और करूषगणोंके नायक सेनापति, शत्रुओंके विनाशक धृष्टकेतुको भी तैय्यार रहनेका आदेश दिया ॥ २ ॥

विराटं द्रुपदं चैव युयुधानं शिखण्डिनम् ।
पाञ्चाल्यौ च महेष्वासौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ३ ॥

विराट, द्रुपद, युयुधान, शिखण्डी महाधनुर्धारी पांचालनन्दन युधामन्यु और उत्तमौजा आदि सबने उनकी आज्ञाका पालन किया ॥ ३ ॥

ते शूराश्चित्रवर्माणस्तप्तकुण्डलधारिणः ।
आज्यावसिक्ता ज्वलिता धिष्ण्येष्विव हुताशनाः ।
अशोभन्त महेष्वासा ग्रहाः प्रज्वलिता इव ॥ ४ ॥

वे सब महारथी शूरवीर विचित्र कवच और सुवर्ण कुण्डलधारी अग्निके स्थानपर रहनेवाले, घृतसे युक्त प्रज्वलित अग्नि अथवा प्रकाशमान ग्रहोंके पुञ्जोंकी भांति शोभित होने लगे ॥४॥

सोऽथ सैन्यं यथायोगं पूजयित्वा नरर्षभः ।
दिदेश तान्यनीकानि प्रयाणाय महीपतिः ॥ ५ ॥

तब पुरुषश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने सम्पूर्ण सेनाके वीरोंकी यथोचित पूजा करके उन सब सेनाओंको युद्धके लिए चलनेकी आज्ञा दी ॥ ५ ॥

अभिमन्युं बृहन्तं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नमुखानेतान्प्राहिणोत्पाण्डुनन्दनः ॥ ६ ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने पहिले धृष्टद्युम्नको आगे करके अभिमन्यु, बृहन्त और द्रौपदीके पुत्रोंको भेजा ॥ ६ ॥

भीमं च युयुधानं च पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
द्वितीयं प्रेषयामास बलस्कन्धं युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥

फिर युधिष्ठिरने भीम, युयुधान और पाण्डुपुत्र अर्जुनको दूसरी सेनाके विभागमें नियुक्त करके भेजा ॥ ७ ॥

आण्डं समारोपयतां चरतां सम्प्रधावताम् ।
हृष्टानां तत्र योधानां शब्दो दिवमिवास्पृशत् ॥ ८ ॥

वहांपर घोडोंको भूषणोंसे भूषित करनेमें तत्पर इधर उधर घूमनेवाले, दौडनेवाले, प्रसन्न चित्तवाले सब योद्धाओंके कोलाहलका शब्द मानो आकाशको स्पर्श करने लगा ॥ ८ ॥

स्वयमेव ततः पश्चाद्विराटद्रुपदान्वितः ।
तथान्यैः पृथिवीपालैः सह प्रायान्महीपतिः ॥ ९ ॥

महाराज युधिष्ठिरने अन्तमें विराट, द्रुपद और दूसरे राजाओंके साथ स्वयं भी प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

भीमधन्वायनी सेना धृष्टद्युम्नपुरस्कृता ।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्यन्दमाना व्यदृश्यत ॥ १० ॥

भयंकर धनुर्धर वीर जिसमें हैं, ऐसी वह धृष्टद्युम्नसे रक्षित सेना, जलसे भरपूर पर निश्चल रूपसे बहनेवाली गंगा नदीके समान दिखाई पडती थी ॥ १० ॥

ततः पुनरनीकानि व्ययोजयत बुद्धिमान् ।
मोहयन्धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां बुद्धिनिस्रवम् ॥ ११ ॥

तब बुद्धिमान् युधिष्ठिर धृतराष्ट्रपुत्रोंकी बुद्धिमें भ्रम उत्पन्न करते हुए फिर दूसरी रीतिसे अपनी सेनाको सजाकर चलने लगे ॥ ११ ॥

द्रौपदेयान्महेष्वासानभिमन्युं च पाण्डवः ।
नकुलं सहदेवं च सर्वांश्चैव प्रभद्रकान् ॥ १२ ॥

महाधनुर्धारी द्रौपदीपुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, और सम्पूर्ण प्रभद्रक वीर योद्धा ॥ १२ ॥

दश चाश्वसहस्राणि द्विसाहस्रं च दन्तिनः ।
अयुतं च पदातीनां रथाः पञ्चशतास्तथा ॥ १३ ॥

दस हजार घोडे, दो हजार हाथी, दस हजार पैदल और पांचसौ रथ ॥ १३ ॥

भीमसेनं च दुर्धर्षं प्रथमं प्रादिशद्बलम् ।
मध्यमे च विराटं च जयत्सेनं च मागधम् ॥ १४ ॥

भीमसेन तथा अन्य सेना इन सबको पहले चलनेकी आज्ञा दी, बीचकी सेनामें विराट, जयत्सेन और मगधराजको चलनेके लिए कहा ॥ १४ ॥

महारथौ च पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
वीर्यवन्तौ महात्मानौ गदाकार्मुकधारिणौ ।
अन्वयातां ततो मध्ये वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १५ ॥

गदा धनुष धारण करनेवाले, पराक्रमी, महारथी महात्मा पाञ्चालनन्दन युधामन्यु और उत्तमौजाको नियुक्त किया। उस समय कृष्ण और अर्जुन भी मध्यभागमें चले ॥ १५ ॥

बभूवुरतिसंरब्धाः कृतप्रहरणा नराः ।
तेषां विंशतिसाहस्रा ध्वजाः शूरैरधिष्ठिताः ॥ १६ ॥

उस टुकडीमें सभी वीर प्रहारविद्यामें कुशल तथा अत्यन्त ही क्रोधित थे। उस सेनामें जिन पर ध्वजायें लेकर शूरवीर बैठे हुए हैं, ऐसे बीस हजार घोडे थे ॥ १६ ॥

पञ्च नागसहस्राणि रथवंशाश्च सर्वशः ।
पदातयश्च ये शूराः कार्मुकासिगदाधराः ।
सहस्रशोऽन्वयुः पश्चादग्रतश्च सहस्रशः ॥ १७ ॥

तथा पांच हजार हाथी और रथोंका समूह था और आगे तथा पीछे धनुष, तलवार, गदा धारण करनेवाले सहस्रों पैदल वीर योद्धा थे ॥ १७ ॥

युधिष्ठिरो यत्र सैन्ये स्वयमेव बलार्णवे ।
तत्र ते पृथिवीपाला भूयिष्ठं पर्यवस्थिताः ॥ १८ ॥

जिस सेनाके समूहमें महाराज युधिष्ठिर स्वयं विराजमान थे; उसे अनेक राजा लोग घेरे हुए थे ॥ १८ ॥

तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च ।
तथा रथसहस्राणि पदातीनां च भारत ।
यदाश्रित्याभियुयुधे धार्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ १९ ॥

हे भारत ! उस टुकडीमें कई हजार हाथी; कई अयुत घोडे, कई हजार रथ और पैदल योद्धा थे । जिनका सहारा लेकर पाण्डवोंने धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके साथ युद्ध किया था ॥ १९ ॥

ततोऽन्ये शतशः पश्चात्सहस्रायुतशो नराः ।
नदन्तः प्रययुस्तेषामनीकानि सहस्रशः ॥ २० ॥

ऊपर लिखे हुए हाथियोंके अतिरिक्त सैकडों, सहस्रों तथा लक्षों मनुष्य और सहस्रों सेनाके पुरुष गर्जते हुए पीछे चलने लगे ॥ २० ॥

तत्र भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च ।
वादयन्ति स्म संहृष्टाः सहस्रायुतशो नराः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥
समाप्तमम्बोपाख्यानपर्व ॥ ६०६३ ॥

हे महाराज ! तब हजारों तथा अयुतों सैनिक-पुरुष पूर्ण रीतिसे आनन्दित और प्रसन्नचित्त होकर वहांपर सहस्रों भेरी और शंख आदि बाजोंको बजाने लगे ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके उद्योगपर्वमें एकसौ सत्तानवेवां अध्याय समाप्त ॥ १९७ ॥
अंबोपाख्यानपर्व समाप्त ॥ ६०६३ ॥

॥ उद्योगपर्व समाप्त ॥